Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याण

VOL : 41

1967

C. K. Y. LIB.
HARIDWAR

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

110326

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याण

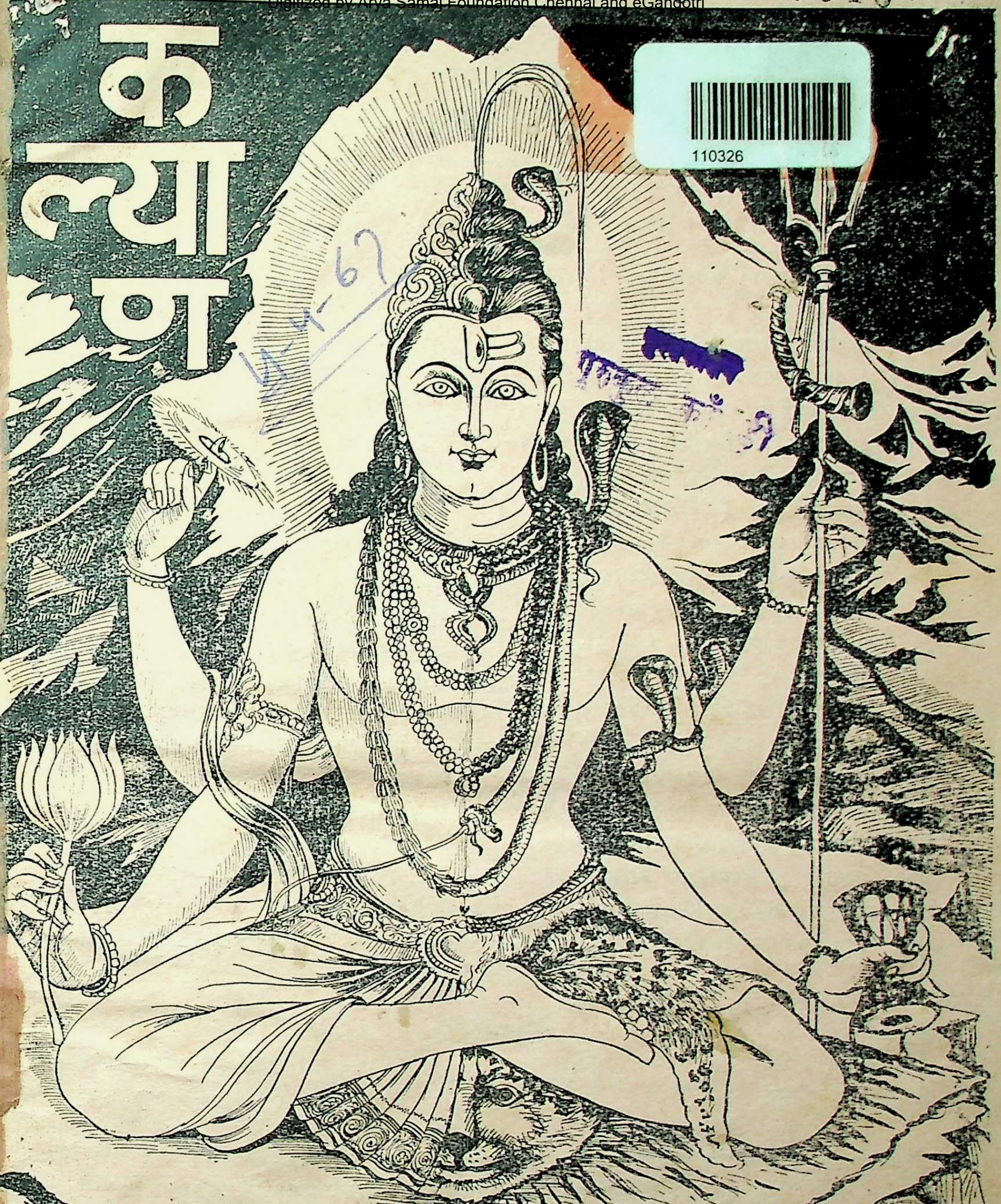

र्ष ४१] * * * [अङ्क ३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

संस्करण १,५०,०००

विषय-सूची

कल्याण, सौर चैत्र २०२३, मार्च १९६७

विषय	पृष्ठ-संख्या
१–मीराँका प्रेम-नृत्य [कविता] ···	७६९
२–कल्याण ('शिव') ···	७७०
३–परमात्मापर एक सरल दृष्टिकोण (अज्ञात)	७७१
४–भगवान् श्रीरामका घोष (° श्रीरामचन्द्रजी शर्मा एम्० ए०, साहित्यरत्न)	७७२
५–भगवान्‌का स्वभाव [कविता] ···	७७४
६–अनारम्भ (श्रीपरमेश्वरीशरणजी वर्मा)	७७५
७–मनुष्यकी कामनाएँ (° श्रीदेवदत्तजी मिश्र काव्य-व्याकरण-सांख्य-स्मृतितीर्थ)	७७८
८–भारतीय संस्कृतिकी ये विशेषताएँ अपने चरित्रमें उत्पन्न कीजिये (डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०) ···	७८१
९–जीवनका प्रयोजन [कहानी] (श्री'चक्र')	७८५
१०–सहज सुखका मार्ग (प्रो० पं० श्रीलालजीरामजी शुक्ल, एम्० ए०) ···	७८९
११–शुभ भावना [कविता] ···	७९०
१२–ज्ञान-दान (श्रीश्रीरामजी शर्मा 'राम')	७९१
१३–गोस्वामी तुलसीदासजीका सांस्कृतिक व्यक्तित्व (डॉ० श्रीरघुराजशरणजी शर्मा, एम्० ए०, पी-एच्० डी०) ···	७९४
१४–प्राचीन भारतमें गौका महत्त्व और पालन (श्रीसुरेशचन्द्रजी वेदालंकार, एम्० ए०, एल्० टी०) ···	७९६
१५–गोवधपर केवल केन्द्रीय शासन ही प्रतिबन्ध लगा सकता है (श्रीमती उर्मिला जोशी) ··· ···	८००
१६–दक्षिण भारतकी तीर्थयात्रा (सेठ श्रीगोविन्ददासजी, श्रीमती रत्नकुमारी देवी, श्रीगोविन्दप्रसादजी श्रीवास्तव) ···	८०३
१७–कामके पत्र ···	८०८
१८–व्रज-जनताकी पुकार ! (मन्त्री, पशुरक्षिणी सभा, आगरा) ···	८११
१९–गोहत्या-निरोध (हनुमानप्रसाद पोद्दार)	८१३
२०–जनतन्त्र या असुरतन्त्र (हनुमानप्रसाद पोद्दार) ··· ···	८१८
२१–राग-द्वेषसे हानि (संकलित—गीता) ···	८२०
२२–अध्यात्म-हलके बैल—विवेक-वैराग्य (श्रीहरिकिशनदासजी अग्रवाल) ···	८२१
२३–गौ और गोपालके भक्त श्रीपाहुजा (श्रीराधेश्यामजी बंका) ···	८२२
२४–पढ़ो, समझो और करो ···	८२६
२५–पवित्र कर्तव्य और धर्म [कविता] ···	८३२

चित्र-सूची

१–हरि-हर	(रेखाचित्र) ···	मुखपृष्ठ
२–मीराँका प्रेमनृत्य	(तिरंगा) ···	७६९

वार्षिक मूल्य
भारतमें ८.५०
विदेशमें १५.६०
(१५ शिलिंग)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय । सत-चित-आनँद भूमा जय जय ॥
जय जय विश्वरूप हरि जय । जय हर अखिलात्मन् जय जय ॥
जय विराट जय जगत्पते । गौरीपति जय रमापते ॥

साधारण प्रति
भारतमें ५० पै०
विदेशमें ८० पै०
(१० पेंस)

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाल गोस्वामी, एम्० ए०, शास्त्री
मुद्रक-प्रकाशक—मोतीलाल जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मीराँका प्रेमनृत्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

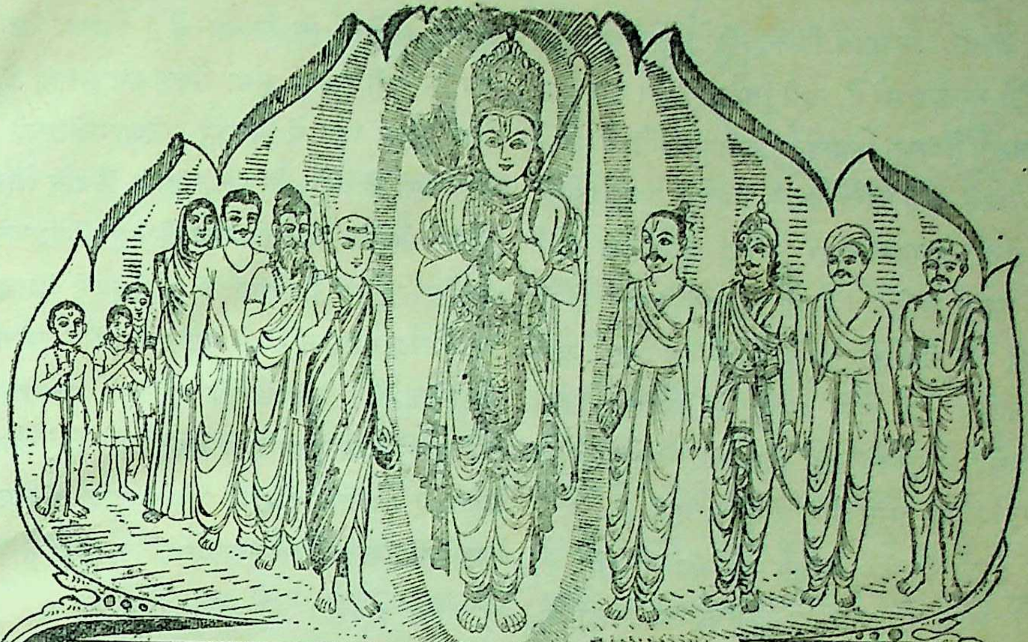

कल्याण

अविरतभवभावनातिदूरं भवविमुखैर्मुनिभिः सदैव दृश्यम् ।
भवजलधिसुतारणाङ्घ्रिपोतं शरणमहं रघुनन्दनं प्रपद्ये ॥
रतिपतिशतकोटिसुन्दराङ्गं शतपथगोचरभावनाविदूरम् ।
यतिपतिहृदये सदा विभातं रघुपतिमार्तिहरं प्रभुं प्रपद्ये ॥

वर्ष ४१ | गोरखपुर, सौर चैत्र २०२३, मार्च १९६७ | संख्या ३
पूर्ण संख्या ४८४

मीराँका प्रेम-नृत्य

पग बाँध घुँघरु मीराँ नाची रे ॥
उदै भई उर बिच प्रीतम-पद-प्रीति पावनी साँची रे ।
बिसरे निज-पर, काम-धाम सब स्याम-रंग सुचि राँची रे ॥
निरतत ताल अंग भये टेढ़े, टेढ़ी भई कल काँची रे ।
पियत प्रेमरस-सुधा प्रगट प्रच्छन्न पीय बिनु भाँची रे ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

याद रक्खो—संसारमें जितने भी जड-चेतन जीव हैं—सभीमें भगवान् भरे हैं, सभी भगवान्‌के ही रूप हैं या सभी आत्मरूप हैं—यह समझकर जिन प्राणियोंसे भी सम्पर्क प्राप्त हो, उनके रूप तथा वेशके अनुसार मन, वाणी, शरीरसे दान, सम्मान देकर उनका पूजन या उन्हें सुख-दान करना चाहिये। किसी भी कार्यकी बात सोचते तथा किसी भी कार्यको करते समय यह पूरा ध्यान रखना चाहिये कि इससे किसी भी प्राणीका किसी प्रकारका कोई अहित तो नहीं होगा और केवल मेरा ही नहीं, दूसरोंका भी इससे हित होगा या नहीं।

याद रक्खो—'स्व' जितना ही सीमित होता है, उतना ही 'स्वार्थ' परिणाममें हानिकारक, अशान्तिदायक, दुःखप्रद और गंदा होता है। 'स्व' जितना ही बृहद्—विशाल होता है, उतना ही 'स्वार्थ' भी पवित्र, परिणाममें लाभकारक, शान्तिदायक तथा सुखप्रद होता है। जो केवल अपने व्यक्तिगत अथवा कुटुम्बतकके लाभके लिये ही सोचता करता है—इसीको स्वार्थ समझता है, वह व्यक्तिगत लाभके लिये चराचर जीवों तथा विश्वमानवोंकी तो कभी बात सोचता ही नहीं, देशको भी भूल जाता है। उसकी ईश्वरभक्ति, देशभक्ति, जनसेवा—सीमित स्वार्थके निम्नस्तरमें उतरकर ईश्वरद्रोह और देशद्रोह तथा जनसंतापतकमें परिणत हो जाती है। ऐसा 'ईश्वरभक्त', 'देशभक्त' तथा 'सेवक' कहलानेवाला वास्तवमें साधारण मनुष्यकी अपेक्षा भी बहुत अधिक खतरनाक होता है—समाजके लिये, देशके लिये, विश्वके लिये। क्योंकि वह अपने नीच स्वार्थभरे आचरणसे ईश्वर, देश तथा सेवाके पवित्र नामको बदनाम करता है, उनके स्वरूपको लोकदृष्टिमें गिराता है और आदर्शको नष्ट करता है।

याद रक्खो—सेवक, देशभक्त और ईश्वरभक्त पदका अधिकारी वही होता है जिसका 'स्व' छोटी सीमासे निकलकर उत्तरोत्तर बड़ी-से-बड़ी सीमामें पहुँचता हुआ अन्तमें असीममें जा मिलता है। जिसका 'स्व' सर्वभूतमय है, वही सबका सच्चा सेवक बन सकता है, जिसका 'स्व' देशके 'स्व' में मिलकर 'देशात्मबोध'की अनुभूति करा देता है वही 'देशभक्त' होता है और जिसका 'स्व' असीम अनन्त सर्वात्मा भगवान्‌के साथ एकात्मताको प्राप्त कर सर्वात्मरूप हो जाता है, जो प्रत्येक चराचर प्राणीमें सदा-सर्वदा भगवान्‌के ही मङ्गलमय दर्शन करता है, वही ईश्वरभक्त है। ऐसे लोगोंके जीवनमें उत्तरोत्तर 'त्याग' की वृद्धि होकर वह सदा असीमकी ओर अग्रसर होता रहता है। जितना-जितना त्याग बढ़ता है उतना-उतना 'स्व' का विस्तार तथा 'स्वार्थ' पवित्र होता है।

याद रक्खो—जो इन्द्रिय-भोगासक्त है, जो नाम-रूपके मिथ्या सुखका आकांक्षी है, जो प्रत्येक कार्यका भौतिक-भोगफल चाहता है, वह कभी यथार्थ त्याग नहीं कर सकता। उसमें कहीं त्याग दिखायी देगा भी तो वह वस्तुतः भोगके साधनरूपमें होगा। विशुद्ध त्यागका उदय उसमें नहीं होगा और त्यागके बिना कभी न सच्ची सेवा हो सकती है, न भक्ति और न प्रेम ही।

याद रक्खो—निज भोगसुखके लिये जो विचार तथा कर्म होते हैं, उनमें पर-हित तथा पर-सुखका खयाल नहीं रहता, वरं अवहेलनासे और नीच स्वार्थवश तमसाच्छन्न विपरीत बुद्धि हो जानेके कारण आगे चलकर दूसरोंके दुःख तथा अहितकी चेष्टा तथा प्रयत्न भी होने लगते हैं और यह निश्चित है कि जिस कार्यसे दूसरोंका परिणाममें असुख और अहित होता है उससे हमारा परिणाममें कभी हित हो ही नहीं सकता। अतएव परिणाममें अपना सुख तथा हित चाहनेवाले बुद्धिमान् पुरुषका यह कर्तव्य होता है कि वह अपने 'स्व' को सीमित न रखकर विस्तृत करे और ऐसे ही विचार तथा कर्म करे जिनसे परिणाममें विश्वके प्राणिमात्रका सुख तथा हित-साधन हो।

'शिव'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय
110326
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार

परमात्मापर एक सरल दृष्टिकोण

(लेखक—अज्ञात)

आइये शवका अवलोकन करें, उसके सब-के-सब अवयव ज्यों-के-त्यों हैं, पर वह निष्क्रिय पड़ा है। उसके कान हैं, फिर वह सुनता क्यों नहीं ? उसके आँखें हैं, फिर वह देखता क्यों नहीं ? उसके मुख है, फिर वह बोलता क्यों नहीं ? आदि-आदि सारा जगत् वैसे-का-वैसा ही बना हुआ है, पर उसके लिये इसका कोई अस्तित्व नहीं। सूर्य-चन्द्रादि सभी ज्योतियाँ हैं, परंतु इनका भी उसके लिये कोई अस्तित्व नहीं। अब जरा डाल दीजिये उसमें वह तत्त्व जो कि निकल गया था, आँखें देखने लगती हैं, कान सुनने लगते हैं, हाथ चलने लगते हैं आदि-आदि। सूर्य-चन्द्र और समस्त जगत्का भास होने लगता है। इस शरीरको समस्त प्रकारके अस्तित्व भासनेके लिये उस तत्त्वका होना आवश्यक है, मानो शरीरके नाते वही जगत् और सूर्य-चन्द्रादिका कारण हो, उनका पिता हो; क्योंकि उसीके प्रकाशमें शरीरको ये भासते हैं, शरीरके नाते वही सूर्योंका सूर्य, चन्द्रोंका चन्द्र, चक्षुओंका चक्षु, श्रोत्रोंका श्रोत्र आदि-आदि हो। सुविधाके लिये इस तत्त्वको शक्तिके नामसे पुकारिये। शक्तिकी उपस्थितिमें शव क्रियाशील बनता है और शक्तिके न होनेपर शव ही है।

शक्तिका स्वरूप सबमें एक-जैसा है, आप इसको विज्ञानके आधारपर समझनेका प्रयत्न करें। मोटर-सायकिल, मोटर, रेलवे इंजिन, विमानादि सबमें चालन करनेवाली जो शक्ति है उसका रूप और गुण एक ही होता है। बढ़ती-घटती है उसकी मात्रा, जिसे 'हार्सपावर' के नामसे पुकारते हैं, किसीमें हार्सपावर कम, किसीमें ज्यादा, परंतु शक्ति सबमें एक ही है। इसी प्रकार चाहे चींटी हो चाहे हाथी, चाहे गिलगिलिया हो या शुतुर्मुग, चाहे मेंढक हो या ह्वेल, चाहे सींकिया हो या गामा—सभीमें शक्ति एक ही गुण-रूपवाली मिलेगी। यह शक्ति प्रत्येक प्राणीके भीतर निहित है, इसी कारण इसे 'आत्मा' कहते हैं (आत्म=अंदर, अंदर बसती है जो सो है आत्मा); क्योंकि यही समस्त चराचर सृष्टिमें निहित है, इसीसे इसके व्यापक बृहत् रूपको 'परमात्मा' कहते हैं। इसी व्यापकताके कारण कहा गया है कि समस्त प्राणी इसमें ऐसे पिरोये हुए हैं जैसे मालामें गुरिये। मालाका सूत्र शक्ति है और गुरिये प्राणी हैं।

प्रत्येक प्राणीका जो अहंकार है जो सुख-दुःख, शीत-उष्ण, अपने-बिराने आदिका भास कराता है, उसे जीव कहते हैं। मैं दुखी हूँ, मैं सुखी हूँ, यह मेरा है, यह मेरा नहीं है, मुझे उन्नति करना है, मैं दुनियामें नाम करूँगा—यह जो 'मैं-पन' है इसीको अहंकार कहते हैं, 'मैं-पन'के होते हुए प्राणी 'जीव' कहलाता है और जब 'मैं-पन' नहीं रहा तो वही प्राणी परमात्मा हो जाता है, अर्थात् तब जीव और आत्माका अन्तर मिट जाता है।

जीवके विचार करनेके तन्त्रको 'मन' कहते हैं। अन्तःकरणकी जितनी उथल-पुथल है उसका कारण मन ही है। यह मन अपना एक अनोखा अन्तर्जगत् बनाया करता है, उस अन्तर्जगत्पर निर्धारित जो प्रक्रियाएँ हुआ करती हैं, उन्हींको बाह्यजगत्में प्राणीका 'मैं-पना' सदा कार्यान्वित किया करता है, मनुष्य यदि इतना भर समझ ले कि बाह्यजगत्के हमारे समस्त प्रयास मनोजगत्की प्रेरणासे हमारे अहंकारको सक्रिय करनेका ही परिणाम है, तो एक बहुत बड़ी बात हो गयी। इतना भास होते ही, वह मन और अहंकारके तमाशेको समझने लगता है, जब मन और अहंकारके तमाशेको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझने लगता है, तब सिद्ध है कि वह अपनेको मन और अहंकारसे भिन्न समझता है। यह भिन्नताका भाव ही महत्त्वका है। देखिये, वह तत्त्व जो हमारे अंदर बैठा है कि जिसके न रहनेसे हम शव कहलाते हैं और जिसके रहनेसे हम प्राणी कहलाते हैं, क्या उस तत्त्वमें हम दुखी हैं, हम सुखी हैं? हमारा बेटा मर गया, हमको लाखों मिल गया—इनसे कोई हलचल मचती है? क्या वह शक्ति इन सभी दशाओंमें शरीरका चालन समान दशामें नहीं करती? क्या सुखमें वह शरीरमें आ जाती है और दुःखमें शरीरसे भाग जाती है? वस्तुतः यह शक्ति भी मन और अहंकारके तमाशेसे सदा अप्रभावित रहकर अपना काम किया करती है। इससे सिद्ध है कि जब हम अपनेको मन और अहंकारसे पृथक् करनेकी क्षमता प्राप्त कर लेते हैं, तो उसी तत्त्वके निकट पहुँच जाते हैं जिसे हम आत्मा कह आये हैं और जिसके बृहत् रूपको परमात्मा कह आये हैं।

भगवान् श्रीरामका घोष

(लेखक—पं० श्रीरामचन्द्रजी शर्मा एम्० ए०, साहित्यरत्न)

जो रन हमहि पचारै कोऊ। लरहिं सुखेन कालु किन होऊ॥

इस चौपाईमें भगवान् श्रीरामकी युद्धनीति सूत्ररूपमें कही गयी है। साक्षात् काल भी सामने हो तो भी एक बार तो उससे भी लड़ेंगे। तो क्या विवशता है लड़नेकी? कदापि नहीं, विवशता और भयका तो प्रश्न ही नहीं है। वहाँ तो सुखपूर्वक लड़नेकी बात कही गयी है। तो क्या हम युद्ध-पिपासु हैं? इसका उत्तर श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज पहले ही दे चुके हैं, 'जो रन हमहि पचारै कोऊ' द्वारा। इस प्रकारका भीषण युद्ध भारत तभी करता है जब कोई पहलेसे युद्धके लिये हमें ललकारे। प्रस्तुत लेखमें हम भगवान्के इसी युद्ध-घोषपर विचार करेंगे।

सुखनिधान, करुणाभवन भगवान् श्रीरामका मङ्गलमय अवतार सबको सुख देनेके लिये हुआ—'राम जनम जग मंगल हेतू।' वे शैशवावस्थासे ही ऐसे कार्य करते थे, जिनसे पुरवासी तथा परिवारके लोग सुख पावें—

जेहि बिधि सुखी होहिं पुर लोगा।
करहिं कृपानिधि सोइ संयोगा॥

यही कारण था कि जिन वीथियोंमें भगवान् विचरण करते थे, सब स्त्री-पुरुष निर्निमेष नेत्रोंसे उस मङ्गलमयी रूपमाधुरीको निहारते-निहारते थकित हो जाते थे। इस प्रसङ्गमें यह कहना असङ्गत न होगा कि वे इस धरा-धामपर सुख और आनन्दका भण्डार कहीं अन्यत्रसे लेकर अवतरित नहीं हुए; अपितु उन्होंने अपने चरित्र और कर्तृत्वद्वारा इस धरतीपर ही स्वर्ग-तुल्य स्थिति उत्पन्न कर दी थी। इसी कारण आजतक रामराज्यकी कल्पना आदर्श सुखमय राज्यके लिये की जाती है।

उन्होंने अपने विचारोंके प्रचार एवं तदनुकूल आचरण करानेके लिये किसीपर शक्तिका प्रयोग नहीं किया, कभी युद्धका सहारा नहीं लिया। उनके चरित्रकी छाप उनके सम्पर्कमें आनेवाले व्यक्तियोंपर अनिवार्यतः पड़ती थी। आज भी जब साधारण राजकुमारके उज्ज्वल आदर्श चरित्रका प्रजाजनोंपर अनुकरणात्मक प्रभाव पड़ सकता है तो फिर सर्वथा अलौकिक परम दिव्य राजकुमारके परम पावन चरित्रबलसे लोग क्यों न प्रभावित होते? वन्य जातियोंके लोग कोल, किरात आदि जो चोरी, लूट-खसोट तथा हिंसाद्वारा अपना पेट पालन करते थे, उनसे अधिक असभ्य व्यक्तिकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या कल्पना की जा सकती है । परंतु भगवान् रामके सम्पर्कमें आनेपर वे भी उच्च कोटिके आदर्श नागरिक बन गये । श्रीभरतजीको जैसे ही देखा, वे लोग तुरंत स्वागत-सत्कारके लिये दौड़ पड़े, नाना प्रकारके कंद, मूल, वन्य-फल आदि भेंटको ले आये और प्रार्थना करने लगे कि हमें कृतार्थ करनेके लिये फल, तृन, अङ्कुर स्वीकार कीजिये । इन कोल-किरातोंने दैन्य और अनुरागका अनूठा उदाहरण प्रस्तुत किया । कहने लगे, 'प्रभो ! हम सेवा करने योग्य हैं ही नहीं, आपको भेंटके लिये भी हम कुछ नहीं दे सकते । हमारे पास क्या है, हम तो भूखे-नंगे रहते हैं, निशि-दिन पापाचार करते हैं । किंबहुना, हमारी तो यही बड़ी भारी सेवा है कि आपका टाट-कमंडल नहीं उठा लिया । जो कुछ लाये हैं, आपको रामकी शपथ है जो इसे स्वीकार न करें—

भरि भरि परन पुटीं रचि रूरी । कंद मूल फल अंकुर जूरी ॥
सबहि देहिं करि बिनय प्रनामा । कहि कहि स्वाद भेद गुन नामा ॥
देहिं लोग बहु मोल न लेहीं । फेरत राम दोहाई देहीं ॥
देब काह हम तुम्हहि गोसाँई । ईंधनु पात किरात मिताई ॥
पाप करत निसि बासर जाहीं । नहिं कटि पट नहिं पेट अघाहीं ॥
यह हमारि अति बड़ि सेवकाई । लेहिं न बासन बसन चोराई ॥

श्रीभरतजी तथा उनके दलके अन्य लोगोंको इस व्यवहारसे अत्यन्त आश्चर्य होना स्वाभाविक था । अतः कोल-किरात स्वयं ही उनके समाधान हेतु उत्तर देने लगे कि हममें यह सभ्यता कहाँसे आ गयी—

सपनेहुँ धरम बुद्धि कस काऊ । यह रघुनंदन दरस प्रभाऊ ॥

यह था भगवान् रामका चरित्र-बल ।

कई बार युद्धका प्रसङ्ग आ गया । युद्धका वातावरण होनेपर भी भगवान् श्रीरामने अपनी विशिष्ट शिष्टता, सौम्यता एवं शालीनताद्वारा स्थितिको युद्धसे रोका । श्रीलक्ष्मणजी एवं परशुरामजीमें युद्ध होनेमें क्या देर रह गयी थी ? इधर परशुरामजीने परशु निकालकर सुधार लिया था—

सुनि कटु बचन कुठार सुधारा । हाय हाय सब सभा पुकारा ॥

तो उधर लक्ष्मणजी भी तैयार थे—

भृगुबर परसु दिखावहु मोही । बिप्र बिचारि बचउँ नृपद्रोही ॥

यहाँतक कि लोग चिल्ला पड़े—

अनुचित कहि सब लोग पुकारे ।

किंतु—

रघुपति सयनहिं लखनु निवारे ।

बस, युद्ध टल गया । परंतु यह सब होते हुए भी रामको युद्धमें कूदना पड़ा, युद्ध-नीति बनानी पड़ी । यही हमारा मूल विषय है कि भगवान् रामकी युद्ध-नीति क्या थी और उन्होंने युद्धका क्या आदर्श रक्खा ।

क्रमिक युद्ध खर और दूषणके युद्धसे ही माना जायगा; क्योंकि ताड़का, सुबाहु और मारीच आदिके युद्ध तो भगवान्के खेल मात्र बनकर रह गये । एक-एक बाणमें ही काम चल गया और फिर कुछ समयतक युद्धका नाम भी सुननेमें नहीं आता । अस्तु, युद्धका आरम्भ खर-दूषणके युद्धसे ही समझना चाहिये ।

शूर्पणखाद्वारा प्रेरित खर-दूषण विशाल सेना लेकर युद्धके लिये मैदानमें आ गये । योद्धाओंके झुंड-के-झुंड चारों ओरसे युद्धके नारे लगाने लगे । दशा यह थी—

धाए निसिचर निकर बरूथा । जनु सपच्छ कज्जल गिरि जूथा ॥
नाना बाहन नानाकारा । नानायुध धर घोर अपारा ॥
गर्जहिं तर्जहिं गगन उड़ाहीं । देखि कटकु भट अति हरषाहीं ॥
कोउ कह जिअत धरहु दोउ भाई । धरि मारहु तिय लेहु छड़ाई ॥

इस प्रकार धनुर्धर श्रीरामने देखा कि चारों ओर युद्धका वातावरण उत्पन्न कर दिया गया है और बिना युद्ध किये शान्ति सम्भव नहीं । अतः अब युद्ध टाला नहीं जा सकता । तुरंत निश्चित कर लिया कि आह्वानका स्वागत करना चाहिये । बस, चुनौती स्वीकार कर ली और—

देखि राम रिपु दल चलि आवा । बिहसि कठिन कोदंड चढ़ावा ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हँसकर धनुषपर बाण चढ़ा लिया और शत्रु-दलकी ओर ऐसे देखा जैसे हाथियोंके झुंडको सिंह देखता है । धन्य है भगवान् रामका शौर्य—

चितवत मनहुँ मृगराज प्रभु गजराज घटा निहारि कै ।

राक्षसोंने श्रीरामजीको ऐसे घेर लिया जैसे बाल रविको दनुज घेर लेते हैं । भगवान्‌के सौन्दर्य-सुधा-समुद्रस्वरूपको देखकर शत्रुओंका हृदय भी विचलित हो गया और वे शत्रुताका भाव छोड़कर सन्धिका प्रस्ताव करने लगे । कहने लगे कि यद्यपि इन्होंने हमारी बहिनको कुरूप कर दिया है परंतु फिर भी नरभूषण ये अनुपम नृप-बालक वध्य नहीं हैं । इनसे कह दो कि अपनी स्त्रीको तुरंत कहीं छिपा दें और दोनों भाई सकुशल अपने घर चले जायँ । दूतोंद्वारा यह प्रस्ताव श्रीरामजीके पास आया । वे मुस्कराये और अपनी युद्ध-नीति बताने लगे कि हम क्षत्रिय हैं, मृगया-विहार हमारा सहज धर्म है । घर क्यों चले जायँ ? हम तो तुम-जैसे खल-मृगोंको मारनेके लिये ही आये हैं । शत्रु कितना ही बलवान् हो, हम डरते नहीं और एक बार तो कालसे भी लड़ते हैं—

हम छत्री मृगया बन करहीं । तुम्ह से खल मृग खोजत फिरहीं ॥
रिपु बलवंत देखि नहिं डरहीं । एक बार कालहु सन लरहीं ॥

इस युद्धमें क्या हुआ, सर्वविदित है । मेघनाद, कुम्भकर्ण एवं रावण आदि महाभटोंसे भी युद्ध किया और विजयश्रीने भगवान्‌का वरण किया ।

चीन तथा पाकिस्ताननें भारतका सिद्धान्त समझनेमें भूल की । भगवान् राम-कृष्णके देश भारतने युद्धके माध्यमद्वारा कीर्ति अर्जित करनेका विचार कभी नहीं किया । उसकी कीर्तिपताका फहरानेका मुख्य कारण है उसकी सत्यपर आधारित निष्पक्ष नीति । आज जब उसे युद्धके लिये ललकारा गया तो भारतकी सोयी हुई आत्मा जाग पड़ी और युयुत्सुओंके प्रति अपना कर्तव्य-पालन करनेके लिये फड़फड़ा उठी । मृत-देहमें भी प्राण-संचार करनेवाला भगवान् रामका घोष—

जो रन हमहि पचारै कोऊ । लरहिं सुखेन काल किन होऊ ॥

—हमारा मन्त्र है, राष्ट्रीय चेतना हमारा पाथेय है और विजयश्री हमें वरण करेगी—यह ध्रुव है । जब हम युद्धमें घसीटे ही जा चुके हैं तो कोई चिन्ता नहीं—

शत्रु पाक नापाक सामने अथवा होवे बर्बर चीन ।
विजय हेतु निशि दिन तत्पर हैं भारत वीरों की संगीन ॥

हाँ, हमें भगवान् रामकी नीतिका सहारा लेना होगा—

रन चढ़ि करिअ कपट चतुराई । रिपु पर कृपा परम कदराई ॥

अस्तु, भगवान् रामका जय-घोष आपको, हमको तथा सम्पूर्ण राष्ट्रको विजय प्रदान करे ।

भगवान्‌का स्वभाव

सब प्रकारसे मलिन दीन अति हीन निराश्रय ।
दुराचार-दुर्गुण-रत जड पूरित विषाद-भय ॥
ऐसा भी, यदि मान मुझे ही अनन्य आश्रय ।
हो मेरे शरणागत, कर दूँ सबसे निर्भय ॥
यह मेरा व्रत है, मेरा स्वभाव यह निश्चय !
मुझे न कोई शरणागत-सेवक सम अति प्रिय ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनारम्भ

(लेखक—श्रीपरमेश्वरीशरणजी वर्मा)

श्रीमद्भगवद्गीताके बारहवें अध्यायमें भक्तोंके लक्षण दिये हैं। उन लक्षणोंमें एक लक्षण 'अनारम्भ' भी है।

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः।
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः॥
(गीता १२। १६)

श्रीरामचरितमानसमें भी भक्तोंके लक्षण बताते हुए प्रभुने कहा है—

अनारंभ अनिकेत अमानी। अनघ अरोष दच्छ बिग्यानी॥

प्रायः यह समझा जाता है कि अनारम्भका अर्थ निष्क्रिय होना है। यह ठीक है कि 'अनारम्भ'के लक्षणवाला भक्त सांसारिक विषयोंमें कोई रुचि नहीं लेता है और वह कोई कार्य स्वयं आरम्भ नहीं करना चाहता है, किसी उद्यमकी चेष्टा नहीं करता है, पर ऐसा करनेके पीछे उसकी कोई तामसी प्रवृत्ति नहीं छिपी है। वह प्रमादी या आलसी नहीं है। उसके अंदर किसी भी परिस्थितिमें उचित कार्य करनेका विश्वास है। उसके अंदर किसी भी परिस्थितिका सामना करनेकी क्षमता है। जो प्रतिकूल परिस्थितिको भी अपने अनुकूल कर सके और उसका अपने उद्देश्य-पूर्तिमें प्रयोग कर सके, वही भक्त 'अनारम्भ' है। यह क्षमता—यह पौरुष केवल भगवत्-कृपासे प्रभुके चरणोंमें तन-मनके अर्पण करनेसे ही प्राप्त होती है।

भगवान् श्रीरामने 'अनारम्भ'का उदाहरण अपने जीवनमें चरितार्थ करके दिखाया। उनका सारा जीवन 'अनारम्भ'का ज्वलन्त उदाहरण है।

जब गुरु वसिष्ठसे शिक्षा लेकर राम पिताके पास आये और वह समय आया कि अपने पिताके राज-कार्यमें हाथ बँटायें, उसी समय विश्वामित्र उनकी याचना करने राजा दशरथके पास आये। क्या उस समयतक राजा दशरथको पता नहीं था कि राक्षस मुनियोंको सताते हैं? उनको पता हो या न हो, रामको तो पता था ही; क्योंकि उनका जन्म ही इसीलिये हुआ था। फिर भी उन्होंने राक्षसोंको मारनेकी, उनको नष्ट करनेकी कोई योजना नहीं बनायी और न तो विश्वामित्रके साथ जानेकी कोई उत्सुकता दिखलायी। राजा दशरथने पहले तो राम-लक्ष्मणको भेजनेमें आनाकानी की पर वसिष्ठके कहनेसे तैयार हो गये।

वनमें जाकर उन्होंने ताड़काको देखा और उसका वध किया। फिर सुबाहुको मारा। मारीचको बाण मारा जो उसको शतयोजन पार ले गया। उन्होंने इस बातकी चिन्ता नहीं की कि यह घायल राक्षस लौटकर दूने वेगसे मुनियोंको सता सकता है, लाओ, इसकी खोज कर लें और इसका पूर्ण अन्त कर डालें। उन्होंने मुनियोंके यज्ञकी वर्तमान बाधाओंको हटा दिया। आगे जो भी परिस्थिति आवे, उसके बारेमें वे पूर्ण निश्चिन्त थे कि उचित समाधान करनेमें वे पूर्ण समर्थ हैं।

यहाँसे उनको अयोध्या लौट जाना चाहिये था, पर इस विषयमें भी उन्होंने कोई उत्सुकता नहीं दिखायी। विश्वामित्रने कहा कि जनकपुर चलो तो वे वहाँ चल दिये। जनकपुरमें पुष्पवाटिकामें जानकीजीको देखा। मनका उधर रुझान भी हुआ। इस स्थानपर तुलसीकी कलाका चमत्कार मिलता है।

कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि।
कहत लखन सन रामु हृदयँ गुनि॥
तात जनकतनया यह सोई।
धनुष जग्य जेहि कारन होई॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जासु बिलोकि अलौकिक सोभा।
सहज पुनीत मोर मन छोभा॥
सो सबु कारन जान बिधाता।
फरकहिं सुभद अंग सुनु भ्राता॥
रघुबंसिन्ह कर सहज सुभाऊ।
मनु कुपंथ पगु धरइ न काऊ॥
मोहि अतिसय प्रतीति मन केरी।
जेहिं सपनेहुँ पर नारि न हेरी॥

मन तो क्षुब्ध हुआ, पर उसका उपाय कुछ नहीं किया। न तो विश्वामित्रसे ही कुछ कहा, न धनुषको उठानेका ही प्रयास किया। माना कि वे उस स्वयंवरमें आदिसे आमन्त्रित नहीं थे पर जनकपुरीमें प्रवेश करनेके बाद वे राजा जनकके विशेष आमन्त्रित जन हो गये थे। स्वयंवर-भूमिमें उनके लिये विशेष मञ्चका प्रबन्ध था।

सब मंचन्ह तें मंचु एक सुंदर बिसद बिसाल।
मुनि समेत दोउ बंधु तहँ बैठारे महिपाल॥
(रा० बा० २४४)

यदि आरम्भमें धनुष उठानेमें कोई संकोच था तो जब सब राजा हार गये और धनुष नहीं उठा तब तो धनुष उठानेमें कोई संकोच नहीं रहना चाहिये। राजा जनकने तो यहाँतक कहा—

अब जनि कोउ माखै भट मानी।
बीर बिहीन मही मैं जानी॥

तब भी वह 'अनारम्भ' ही रहे। लक्ष्मण तो अपना संतुलन खो बैठे।

रघुबंसिन्ह महँ जहँ कोउ होई।
तेहिं समाज अस कहइ न कोई॥
कही जनक जसि अनुचित बानी।
बिद्यमान रघुकुल मनि जानी॥

पर रामके मनमें न तो कोई रोष उठा, न उन्होंने यह ज्ञात होने दिया कि वे धनुष तोड़ सकते हैं। वे और न सही, रघुवंशियोंका बल दिखानेके लिये ही धनुषको तोड़ते। जब विश्वामित्रने ही उनसे कहा—

उठहु राम भंजहु भव चापा।
मेटहु तात जनक परितापा॥

तब वे विश्वामित्रको प्रणाम करके खड़े हो गये। उसमें भी कोई आतुरता नहीं, कोई शीघ्रता नहीं।

ठाढ़े भए उठि सहज सुभाएँ।
ठवनि जुबा मृगराजु लजाएँ॥

उनको अपनी शक्तिपर पूर्ण विश्वास था। उठकर कमल-डंडीकी तरह धनुष तोड़ दिया। दूतोंने राजा दशरथको उस दृश्यका कितना सुन्दर वर्णन सुनाया है—

सीय स्वयंबर भूप अनेका।
समिटे सुभट एक तें एका॥
संभु सरासनु काहुँ न टारा।
हारे सकल बीर बरिआरा॥
तीनि लोक महँ जे भट मानी।
सभ कै सकति संभु धनु भानी॥
सकइ उठाइ सरासुर मेरू।
सोउ हियँ हारि गयउ करि फेरू॥
जेहिं कौतुक सिवसैलु उठावा।
सोउ तेहि सभाँ पराभव पावा॥
तहाँ राम रघुबंस मनि सुनिअ महा महिपाल।
भंजेउ चाप प्रयास बिनु जिमि गज पंकज नाल॥
(रा० बा० २९२)

यह अनारम्भका जाग्रत् रूप है।

जब घर लौट आये और राज्यकी जगह वनवास मिला, तब भी वही विश्वासप्रेरित उदासीनता। कोई चिन्ता नहीं कि घरके स्थानपर वन मिला, कोई चिन्ता नहीं कि वनमें कहाँ रहेंगे, क्या भोजन होगा, कहाँ विश्राम होगा—कुछ नहीं। तभी तो गोस्वामीजीने वन्दनामें लिखा—

प्रसन्नतां या न गताभिषेकत-
स्तथा न मम्ले वनवासदुःखतः।
मुखाम्बुजश्री रघुनन्दनस्य मे
सदास्तु सा मञ्जुलमङ्गलप्रदा॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वनमें पहुँच गये। भरतको वापस कर दिया और अधिक दक्षिणमें चले गये। दण्डक वनमें जाकर मनुष्यकी हड्डियोंका ढेर देखा। जब पता चला कि यह राक्षसोंद्वारा खाये हुए मुनियोंकी हड्डियाँ हैं तो—

निसिचर हीन करउँ महि भुज उठाइ पन कीन्ह।
सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि जाइ जाइ सुख दीन्ह॥
(रा० अ० ९)

'पन' तो किया, पर पृथ्वीको राक्षसोंसे विहीन करनेका उपाय क्या किया; कोई प्रयत्न इस बातको जाननेका नहीं किया कि ये राक्षस कहाँ रहते हैं और इनके नाशमें कौन-कौन सहायता कर सकते हैं। कोई तो योजना बनाते। पर उन्होंने कुछ नहीं किया। पंचवटीमें रहते थे। गोदावरीका पानी पीते थे। लक्ष्मण कन्द-मूल-फल ले आते थे, वे खाते थे और सीता और लक्ष्मणके साथ ज्ञानचर्चा करते थे। यहाँतक कि शूर्पणखाकी नाक-कान काटकर रणभेरी तो बजा दी गयी, पर स्वयं युद्ध आरम्भ न करके अपनी कुटीमें ही राक्षसोंकी सेनाकी प्रतीक्षा करते रहे। जो-जो वहाँ आया, मारा गया। पर इसके आगे कुछ भी नहीं। इस बातका पता लगानेका कोई प्रयत्न नहीं किया कि और राक्षस कहाँ रहते हैं और वे क्या कर सकते हैं ?

सीताहरण हो गया। अब तो कुछ उपाय करते। पर अब भी वही अनारम्भकी दशा। सीताको खोजते-खोजते वे केवल संयोगसे वहाँ पहुँच गये जहाँ घरसे निकाला हुआ भाईसे भयभीत सुग्रीव रहता था। क्या वह सीताकी खोजमें मदद कर सकता था ? पर रामको तो अपनेपर विश्वास था कि वे प्रतिकूल परिस्थितिको भी अपने अनुकूल बना सकते हैं। अतएव उन्होंने सुग्रीवसे ही मित्रता कर ली और वाली-जैसे महाबलीको मारकर सुग्रीवको ही किष्किन्धाका राजा बना दिया।

अब भी उनकी ओरसे रावण-वधकी योजना नहीं बनी। वे तो केवल सीताको वापस चाहते थे। पहले हनुमान्‌के द्वारा, फिर अंगदके द्वारा इस बातका प्रयास किया कि युद्ध न हो और सीता वापस आ जाय। यह संदेह करनेका स्थान नहीं है कि उन्हें रावणको मार सकनेमें अपने ऊपर विश्वास नहीं था, न यह कि वे युद्धसे भयभीत थे। केवल अनारम्भकी भावना कि युद्धके आरम्भ करनेका उत्तरदायित्व रावणपर हो, अपनी ओरसे कोई कार्य आरम्भ न करके प्रत्येक परिस्थितिका सामना करनेकी और उसको अपने अनुकूल बना सकनेकी क्षमता ही इस कार्यशैलीका रहस्य था।

जीवनमें बहुत कम ऐसा होता है कि हमारे मनके अनुकूल परिस्थिति हमारे सामने आये। जब हम कोई कार्य नहीं कर पाते हैं तो विधाताको दूषण देते हैं कि क्या करें हमको उचित परिस्थिति मिलती तो हम यह कर लेते, ऐसे कर लेते, पर वास्तवमें यह बात हमारी अपनी अकर्मण्यतापर पर्दा डालना मात्र है। सच पूछिये तो हम ऐसे प्रयास करते रहते हैं कि जिनसे हमारी शक्ति क्षीण होती रहती है और इसलिये जब उचित कार्यके लिये शक्तिकी आवश्यकता होती है तो वहाँ हम अपनेको अशक्त पाते हैं। इसीलिये 'अनारम्भ'की इतनी महिमा है। व्यर्थके प्रयास आरम्भ करना तो केवल शक्तिका ह्रास करना है। निरन्तर प्रयास तो शक्ति-संग्रहका, उचित शिक्षा-दीक्षाका होना चाहिये। जब समय आवे तो उन संचित शक्तियोंका उचित प्रयोग किया जाय। लक्ष्मणके द्वारा गुप्तजीने भी पंचवटीमें कहलाया है—

मेरे मत में तो विपदाएँ,
हैं प्राकृतिक परीक्षाएँ।
उनसे वही डरें कच्ची हो,
जिनकी शिक्षा दीक्षाएँ॥

जो भी कार्य या परिस्थिति हमारे सौभाग्य या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुर्भाग्यसे सामने आ जाय, उसका प्रभु-चरणोंमें मन दृढ़ करके समस्त शक्तिसे सामना किया जाय, इस आशासे नहीं कि फल हमारे अनुकूल होगा। फल कुछ भी हो, अपनी शक्ति भर प्रयास करना चाहिये, जो भी फल निकले वह प्रभु-चरणोंमें अर्पित कर दे। यही 'सर्वारम्भ-परित्यागी'का तात्पर्य है।

मनुष्यकी कामनाएँ

(लेखक—पं० श्रीदेवदत्तजी मिश्र काव्य-व्याकरण-सांख्य-स्मृतितीर्थ)

प्रतिदिन ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यको संध्या तीनों समय—प्रातः, मध्याह्न और सायंकालमें करनेका शास्त्रोंमें विधान है। गृहस्थको तीनों संध्या करनेमें असुविधा हो तो कम-से-कम सायंकाल और प्रातःकाल तो संध्या करनी ही चाहिये; क्योंकि संध्या करनेसे लौकिक और आध्यात्मिक दोनों तरहके बल प्राप्त होते हैं। संध्या न करनेसे उक्त दोनों तरहके बल क्षीण हो जाते हैं, जिससे मनुष्य-जन्मको सफल बनानेमें वह सदा असफल रहता है।

इसीलिये श्रुतिमें लिखा है **'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः'** अर्थात् जिन्हें बल नहीं है, उन्हें आत्माकी प्राप्ति नहीं होती; क्योंकि अन्तःशुद्धि और बाह्यशुद्धिसे अन्तःकरण (मन) और बाह्यकरण (इन्द्रियाँ) बलिष्ठ होनेपर ब्रह्मज्ञानका अधिकार प्राप्त होता है।

शुक्ल यजुर्वेदीय संध्याकी पुस्तकमें सूर्यार्घ्य देनेके पश्चात् सूर्यकी प्रार्थनाके चार मन्त्र हैं। जिनमें अन्तिम मन्त्र है—

ॐ तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतम्, जीवेम शरदः शतम्, शृणुयाम शरदः शतम्, प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्।

इसका अभिप्राय यह है, संध्या करनेवाला प्राणी ईश्वरसे प्रार्थना करता है कि 'हे देव (परमात्मा)! वह चक्षुस्वरूप प्रकाशमान ज्योति हमारे अन्तःकरणको प्रकाशित करे। उस प्रकाशसे हम सौ वर्षतक देखें, सौ वर्षतक जीवित रहें, सौ वर्षतक सुनें, सौ वर्षतक बोलें, अर्थात् बोलनेकी शक्ति बनी रहे, जिससे हम अपने मनके भावको प्रकट करनेमें असमर्थ न हों। एवं अपने सौ वर्षके जीवनमें कभी अभावग्रस्त न रहें।' ये हैं मनुष्यकी कामनाएँ। मनुष्यका स्वभाव है कि वह अपने वचनकी पटुतासे दूसरेको अपना आज्ञाकारी बनाना चाहता है। अतः ब्रू धातुके पहले 'प्र' उपसर्ग लगा है। और क्रियाओंमें उपसर्ग नहीं है। प्रब्रवाम, अर्थात् वाक्-शक्ति हमारी कभी न घटे। वाक्-शक्ति इन सब शक्तियोंमें प्रधान है; क्योंकि हृदयगत अनुभवको प्रकाशित करनेका एकमात्र वचन ही साधन है। भगवान्‌की स्तुति करनेका अथवा ब्रह्मका उपदेश देकर दूसरेको ब्रह्मप्राप्ति करानेका साधन वाक्-शक्ति ही है।

ऐतरेयोपनिषद्‌के शान्तिपाठके मन्त्रोंमें मन और वचनके एक होनेकी प्रार्थना ईश्वरसे की गयी है। यथा—

ॐ वाङ् मे मनसि प्रतिष्ठिता, मनो मे वाचि प्रतिष्ठितम्, आविरावीर्म एधि। वेदस्य म आणीस्थः, श्रुतं मे मा प्रहासीः, अनेनाधीतेनाहोरात्रान् संदधाम्यृतं वदिष्यामि। सत्यं वदिष्यामि। तन्मामवतु, तद्वक्तारमवतु, अवतु मामवतु वक्तारमवतु वक्तारम्।

इस शान्तिपाठमें वचनको मनमें और मनको वचनमें स्थित होनेकी प्रार्थना है। तात्पर्य यह है कि मन और वचन दोनों एक होनेसे जो कुछ हम बोलेंगे वह सत्य होगा; क्योंकि मनमें कुछ और वचनमें कुछ दुर्जनोंका हुआ करता है, मन और वचन दोनोंमें एकता सज्जनोंके वचनमें होती है। जैसा कि लिखा है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनस्यन्यद् वचस्यन्यत् कर्मण्यन्यद् दुरात्मनाम् ।
मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम् ॥

अतः वाक्-शक्तिकी अधिष्ठात्री देवी सरस्वती है । जो ज्ञानस्वरूप है । इसकी उपासनाके बिना मनुष्यका जीवन निष्फल हो जाता है । उपर्युक्त शान्तिपाठ यही बतलाता है कि मेरे मन और वचन दोनों एकमें मिल जायँ, जिससे हम दूसरेको धोखा देनेके लिये झूठे व्यवहार न करें । इन दोनोंके एक होनेमें ज्ञानकी आवश्यकता है, अतः उपासक कहता है कि हे आविः ! प्रकाशस्वरूप अर्थात् ज्ञानस्वरूप ईश्वर मुझमें एधि रहो । मतलब यह है हममें सदा ज्ञान और विवेक-शक्ति रहे, जिससे हम भले-बुरेको सोच सकें । ऐसे वचन न बोलें जिससे इस भवसागरमें ही गोते लगाते रहना पड़े । अतः उपासक मन और वचनसे प्रार्थना करता है कि तुम दोनों वेदविहित शुभ कर्मोंको ही लानेवाले बनो । जिससे मैं वेदविरुद्ध किसी बातको न सोचूँ और न किसी दूसरेको ऐसा उपदेश करूँ जिससे उसके कल्याणमें बाधा हो । मैंने आजतक गुरुसे जो कुछ सुना है, अर्थात् आचरण करनेके लिये सुना है वह मुझको छोड़ न दे, तात्पर्य यह है कि गुरुप्राप्त जो ज्ञान है, उसको मैं भूल न जाऊँ और इस अध्ययनसे मैं रात और दिनको मिला दूँ । निरन्तर दिन-रात मैं उस ज्योतिस्स्वरूप ब्रह्मका चिन्तन करूँ, रात्रिमें भी मैं निद्राकी स्थितिमें ब्रह्मका ही स्वप्न देखूँ और जब जग जाऊँ तो फिर उसीके चिन्तनमें लग जाऊँ, जिससे ब्रह्मज्ञानसे कभी वियुक्त न होऊँ । इससे फल क्या मिलेगा कि ऋतं वदिष्यामि, अर्थात् श्रेष्ठ शब्दोंको ही बोलूँगा । श्रेष्ठ शब्द वे ही हैं, जिनसे सर्वसाधारणको लाभ हो, किसीकी हानि न हो और किसीको भी अप्रिय न हो । एवं मैं सत्य बोलूँगा । सत्य ईश्वर है, उसीका प्रतिपादन करूँगा । झूठ जो माया है, उसके फंदेमें स्वयं नहीं फँसूँगा और सत्य उपदेशके द्वारा दूसरेकी भी उससे रक्षा करूँगा । वह ब्रह्म मेरी रक्षा करे और मुझे शिक्षा देनेवाले मेरे गुरुकी भी रक्षा करे ।

प्रश्नोपनिषद्के शान्तिपाठमें लिखा है—

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा
भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभि-
र्व्यशेम देवहितं यदायुः ॥

अर्थात् हे देवगण ! हमलोग अपने कानोंसे सदैव कल्याणकी ही बातें सुनें । कानोंसे कभी मानसिक कष्ट देनेवाले अपवित्र शब्दोंको न सुनें, देखें भी तो केवल कल्याण करनेवाली वस्तुओंको, अर्थात् भगवान्‌के विग्रह आदिको या शास्त्रोंको देखें । अपने दृढ़ अङ्गोंसे उस परब्रह्मका यजन करते हुए, जितनी हमारी आयु है, सम्पूर्ण अपनी आयुको हम देव (ब्रह्म) की सेवा करते हुए भोगें ।

भगवान्‌की स्तुति करते हुए एक भक्तने भी कहा है—

मूकं करोति वाचालं पङ्गुं लङ्घयते गिरिम् ।
यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्दमाधवम् ॥

इसीके अनुवादस्वरूप महात्मा तुलसीदासजीने भी अपनी स्तुतिमें लिखा है—

मूक होइ बाचाल पंगु चढ़इ गिरिबर गहन ।
जासु कृपा सो दयाल द्रवउ सकल कलिमल दहन ॥

इसका अर्थ स्पष्ट है कि जिसकी कृपासे गूँगा मनुष्य भी वक्ता हो जाता है और लँगड़ा आदमी पर्वतको पार कर जाता है, ऐसे परम आनन्दस्वरूप माधव भगवान् अर्थात् विष्णुको मैं प्रणाम करता हूँ ।

इसमें एक विचारणीय विषय है कि भगवत्कृपासे जिस वस्तुकी प्राप्ति होती है, वह हर तरहसे स्वच्छ और सर्वथा निर्दोष होती है, फिर भी कविने मूकको वाचाल होनेको क्यों कहा; क्योंकि वाच् शब्दसे आलच् प्रत्ययसे वाचाल शब्द बनता है । इसका नियम है— 'आलजाटचौबहुभाषिणि' साथ ही वार्तिककारने लिखा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है—'कुत्सित इति वक्तव्यम्' बहुत कुत्सित—निन्दनीय शब्दोंको बोलनेवालेको वाचाल कहते हैं। उसी स्थानपर यह भी लिखा है कि **'यस्तु सम्यग् बहु भाषते तत्र वाग्मी इत्येव'**। अतः **'मूकं करोति वागीशम्'** यदि कवि कहते तो अच्छा होता। यद्यपि भक्त कविने भगवत्कृपाकी उत्कृष्टता बतानेके विचारसे ऐसा लिखा है; क्योंकि जो बिलकुल गूँगा है, एक शब्द भी नहीं बोल सकता, वह बहुत बोलने लगे, तो भगवान्‌की कृपामें असम्भवको सम्भव करनेकी शक्ति है, इस बातको प्रकाशित किया है।

मनुष्य-जन्म और शरीरस्थ इन्द्रियोंकी सार्थकता भगवान्‌की सेवामें समर्पित होना ही है। श्रीमद्भागवतमें वेदव्यासजीने लिखा है—

बिले बतोरुक्रमविक्रमान् ये
न शृण्वतः कर्णपुटे नरस्य।
जिह्वासती दार्दुरिकेव सूत
न चोपगायत्युरुगायगाथाः॥
भारः परं पट्टकिरीटजुष्ट-
मप्युत्तमाङ्गं न नमेन्मुकुन्दम्।
शावौ करौ नो कुरुतः सपर्यां
हरेर्लसत्काञ्चनकङ्कणौ वा॥
बर्हायिते ते नयने नराणां
लिङ्गानि विष्णोर्न निरीक्षतो ये।
पादौ नृणां तौ द्रुमजन्मभाजौ
क्षेत्राणि नानुव्रजतो हरेर्यौ॥
जीवञ्छवो भागवताङ्घ्रिरेणुं
न जातु मर्त्योऽभिलभेत यस्तु।
श्रीविष्णुपद्या मनुजस्तुलस्याः
श्वसञ्छवो यस्तु न वेद गन्धम्॥
(२।३।२०—२३)

मनुष्य अपनी इन्द्रियोंको केवल सांसारिक विषयोपभोगका उपकरण मानते हैं; परंतु इनका यथार्थ उपयोग भगवान्‌की सेवामें ही है।

और यह भी समझना चाहिये कि कामनाओंका अन्त नहीं होता। एक कामनाके सिद्ध हो जानेपर दूसरी कामना उत्पन्न होती है। यदि हम प्रार्थनाके बलसे सक्षम इन्द्रियोंके साथ दीर्घ आयु प्राप्त कर लेते हैं तो मन बलपूर्वक इन्द्रियोंको सांसारिक विषयोपभोगकी ओर आकृष्ट कर लेता है और यदि उसके वशीभूत होकर हम विषयभोगमें लिप्त हो जाते हैं, तो न हमारी तृष्णा शान्त होगी, न हम आत्मशान्ति ही प्राप्त कर सकेंगे। इसी बातको सोचकर मनुस्मृतिमें भगवान् मनुने कहा है—

कामात्मता न प्रशस्ता न चैवेहास्त्यकामता।
काम्यो हि वेदाधिगमः कर्मयोगश्च वैदिकः॥
(२।२)

अर्थात् कामनाके साथ किसी कर्मको नहीं करना चाहिये। फिर उन्होंने ही यह भी कहा कि बिना कामनाके कर्म करना सम्भव नहीं है; क्योंकि अवश्य कर्तव्यरूपसे विहित वेदाध्ययन भी तो काम्यकर्म ही है। कर्तव्यपालनरूप फलकी आकाङ्क्षा उसमें भी है एवं वेद-विहित यज्ञादिक कर्म भी फल-प्राप्तिकी अभिलाषासे ही करनेको लिखा है। फिर मनुष्य निष्काम कैसे हो सकता है? इसलिये गीतामें भगवान्‌ने उपदेश देते हुए अर्जुनसे कहा है—

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।
निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान्॥
यावानर्थ उदपाने सर्वतः संप्लुतोदके।
तावान् सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः॥
(२।४५-४६)

अर्थात् वेदोंमें यज्ञादिके जो विधान सकाम कर्मके रूपमें कहे गये हैं, वे त्रिगुणात्मक हैं। तुम इन तीनों गुणोंके प्रभावसे ऊपर हो जाओ। यह सुख-दुःखादि द्वन्द्व तो उनके लिये है जो मायामें फँसे हुए हैं। तुम इससे ऊपर उठ जाओ। त्रिगुणमें रहनेसे तुमको सुख-दुःखादिका अनुभव होता है। अर्थात् रजोगुण और तमोगुणके प्रभावसे अज्ञान होता है और अज्ञान ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुख-दुःखादिके अनुभवका कारण है। अतः वेदोंमें स्वर्ग और नरककी प्राप्तिकी बात जो लिखी है, वह फल-प्राप्तिकी आशासे कर्म करनेवालोंके लिये ही है। तुम केवल सत्यनिष्ठ हो जाओ। अर्थात् कर्तव्य समझकर कर्म करो, फलकी आशा न रक्खो। सिद्धि और असिद्धि—दोनोंको एक समान समझो, न सिद्धि होनेपर प्रसन्न होओ और न असिद्धिसे दुखी होओ।

इसी बातको भगवान्ने योगशब्दसे गीतामें कहा है। यथा—

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते॥

इसलिये अपनी वासनाकी तृप्तिके विचारसे जितने कर्म किये जाते हैं, उनसे दुःख होता है और भगवत्प्रीत्यर्थ जितने कर्म किये जाते हैं उनसे सुख-प्राप्ति होती है। स्वर्गादिकी प्राप्तिके लिये जो यज्ञादिका अनुष्ठान किया जाता है, उससे आत्यन्तिक सुखकी प्राप्ति नहीं होती; क्योंकि **'क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति'** अर्थात् पुण्यका प्रभाव जबतक रहता है, तभीतक स्वर्गमें निवास रहता है, पुण्यका फल जब नष्ट हो जाता है तब पुनः इसी दुःखालय मर्त्यलोकमें आना पड़ता है।

अतः यदि ऊपर लिखी हुई जो कामनाएँ हैं वे यदि भगवत्सेवार्थ की जायँ तो उनसे आत्यन्तिक सुखकी प्राप्ति हो सकती है; क्योंकि कामनाएँ बन्धनमें कारण नहीं, बल्कि अपनी इच्छाकी पूर्तिके लिये कामना करना बन्धनमें हेतु हैं। इसी स्वार्थ-बुद्धिका नाम आसक्ति है। आसक्तिपूर्ण कर्म करनेसे भवसागरकी तरङ्गोंमें डूबते-उतराते रहना पड़ता है।

भारतीय संस्कृतिकी ये विशेषताएँ अपने चरित्रमें उत्पन्न कीजिये

(लेखक—डाक्टर श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

प्रत्येक व्यक्तिकी आन्तरिक इच्छा यही होती है कि वह सुख-शान्तिसे रहे, अधिक-से-अधिक जीवनका आनन्द लेकर दीर्घकाल तक आन्तरिक शान्ति और संतोषका रस लूटता रहे। हिंदू विद्वानों और तत्त्वदर्शियोंने समय-समयपर इसी उद्देश्यकी सिद्धिके लिये ऐसे विचार तथा कार्यके रूप स्थिर किये हैं, जिनके अनुसार आचरण करनेसे समस्त सांसारिक और आध्यात्मिक सुख-साधन प्राप्त हो सकते हैं; व्यक्ति और समाज आनन्दित रह सकते हैं और पृथ्वीपर स्वर्गकी सृष्टि हो सकती है। यदि हिंदूधर्मके इन विचारोंके अनुसार जीवन ढाल लिया जाय तो मनुष्यका जीवन मधुर तथा सफल बन सकता है और हमारे समाजमें देवत्वका विकास हो सकता है।

हिंदूधर्म महान् उपयोगी मानवधर्म है। यह अति व्यापक दृष्टिकोणवाला है तथा समस्त मानव मात्रके लिये कल्याणकारी है। हिंदू दर्शन और भारतीय संस्कृति मनुष्यमें ऐसे भाव और विचार जाग्रत् करती है, जिनपर आचरण करनेसे हमारा समाज स्थायी रूपसे सुख और शान्तिका अमृत घूँट पी सकता है। हिंदू संस्कृतिमें जिन उपयोगी तत्त्वोंका समावेश है, उसमें तत्त्वज्ञान और अनुभवके वे मूल सिद्धान्त रक्खे गये हैं, जिनको जीवनमें ढालनेसे आदमी सच्चे अर्थोंमें 'मनुष्य' बन सकता है।

आप भारतीय संस्कृतिकी इन विशेषताओंको अपने जीवनमें उतारें

भारतीय संस्कृतिके अनुसार आपका दृष्टिकोण क्षुद्र सांसारिक बातोंसे बहुत ऊँचा उठना चाहिये। हिंदूधर्ममें संस्कृतिको प्रधानता दी गयी है। हिंदू तत्त्वदर्शियोंने संसारकी व्यवहार वस्तुओं, व्यक्तिगत जीवन-यापनके ढंग और मूलभूत सिद्धान्तोंमें पारमार्थिक दृष्टिकोणको ही महत्त्व दिया है। आपको भी क्षुद्र सांसारिक सुखोपभोगकी बातोंसे ऊपर उठकर, वासनाजन्य इन्द्रियोंसे सम्बन्धित साधारण सुखोंसे ऊपर उठकर आत्मभाव विकसित करना है। हमारे यहाँ नैतिकताकी रक्षाके लिये सदा यही प्रयत्न किया गया है।

भारतीय विचारकोंने हिंदूसंस्कृतिका सूक्ष्म आधार जिन मान्यताओंपर रक्खा है, वे संक्षेपमें इस प्रकार हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१–सुखका केन्द्र—आन्तरिक श्रेष्ठता

भारतीय ऋषि खोज और अनुभवके आधारपर इस निष्कर्षपर पहुँचे थे कि मनुष्यकी चिरन्तन अभिलाषा, सुख-शान्तिकी उपलब्धि इस बाह्य संसार या प्रकृतिकी भौतिक सामग्री या इन्द्रियोंके क्षुद्र विषयोंको तृप्त करनेकी नहीं हो सकती। पार्थिव आकर्षण हमारी तृष्णाओंको बढ़ानेवाला है।

एक वासनाकी पूर्ति दूसरी नयी वासनाको जन्म देती है। मनुष्य धनके पीछे, उसे सुखका साधन समझ, पागलोंकी तरह दौड़ता है, अपार धनसंग्रह करता है, अनियन्त्रित काम-क्रीड़ामें सुख ढूँढ़ता है; लूट-खसोट और क्षुद्र स्वार्थ-साधनके लिये दूसरोंको ठगता है। धोखाधड़ी, छल-प्रपञ्च नाना प्रकारके षड्यन्त्र करता है; विलासिता, नशेबाजी, ईर्ष्या-द्वेषमें प्रवृत्त होता है, पर स्थायी सुख और आनन्द नहीं पाता।

हिंदू तत्त्ववेत्ताओंने उपर्युक्त त्रुटियोंको देखकर ही यह निष्कर्ष निकाला था कि स्वार्थपरता और सांसारिक भोग कदापि स्थायी आनन्द नहीं दे सकते। हमारे स्थायी सुखोंका केन्द्र भौतिक सुख-सामग्री न होकर आन्तरिक श्रेष्ठता है। इस आन्तरिक शुद्धिके लिये हमारे यहाँ नाना विधानोंका क्रम रक्खा गया है। त्याग, बलिदान, संयम और उपवास—वे अमोघ उपाय हैं, जिनसे आन्तरिक शुद्धिमें प्रचुर सहायता मिलती है।

२–अपने साथ कड़ाई और दूसरोंके साथ उदारता

भारतीय संस्कृतिमें अपनी इन्द्रियोंके ऊपर कठोर नियन्त्रणका विधान है। जो व्यक्ति अपनी वासनाओं और इन्द्रियोंके ऊपर नियन्त्रण कर सकेगा; वही वास्तवमें दूसरोंके सेवा-कार्यमें हाथ बँटा सकता है। जिससे खुद अपना शरीर, अपनी इच्छाएँ, अपनी पशु-प्रकृति, वासनाएँ और आदतें ही नहीं सँभलतीं, वह क्या तो अपना हित करेगा और क्या लोकहित! इन्द्रियोंके मायाजालसे सावधान रहिये—

'बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति'

(श्रीमद्भागवत ९। १९। १७)

अर्थात् सावधान, ये इन्द्रियाँ बहुत बलवान् हैं। ये समझदार आदमी तकको अपनी तरफ खींच लेती हैं।

अतः भारतीय संस्कृतिने सदा अपनी कुप्रवृत्तियों (काम, क्रोध, लोभ, मोह, वासना, ईर्ष्या, द्वेष) को दबानेमें कड़ाईकी व्यवस्था की है। यदि हम अपनी कुप्रवृत्तियोंको नियन्त्रित न करेंगे तो हमारी बहुत-सी उपयोगी शक्तियोंका इन्हींकी पूर्तिमें अपव्यय हो जायगा।

आदर्श भारतीय वह है, जो दम, दान एवं दया—(ब्रह्माजीने द द दसे दमन, दान तथा दयाका ही उपदेश किया था—) इन तीनोंका पालन करता है। इन तीनोंमें भी विशेषतः दम (अर्थात् इन्द्रियदमन) भारतीय तत्त्वदर्शी पुरुषोंका सनातन धर्म है। इन्द्रिय-दमन आदमीके आत्मतेज और पुरुषार्थको बढ़ानेवाला है। अपनेको संयमित करना परम पवित्र और उत्तम है। गंदगीसे रोकना मनुष्यको ऊँची चीजोंकी ओर बढ़ाता है। अपनी आध्यात्मिक और नैतिक शक्तियाँ बढ़ाकर ही हिंदू पाप-रहित और तेजस्वी, शूरवीर और वीर्यवान् बनता है।

संसारमें जो कुछ नियम, धर्म, शुभ कर्म अथवा सम्पूर्ण यज्ञोंके फल हैं, उन सबकी अपेक्षा दमका महत्त्व अधिक है। दमके बिना दानरूपी क्रियाकी यथावत् शुद्धि नहीं हो सकती। अतः इन्द्रिय-दमनसे ही उन्नतिका प्रारम्भ मानना चाहिये।

भारतीय संस्कृति जहाँ एक ओर इन्द्रिय-संयमका उपदेश देती है, वहीं दूसरोंके प्रति अधिक-से-अधिक उदार होने, सेवा-सहायता और सहयोग करनेका आग्रह करती है। सच्चे भारतीयको सदैव दूसरोंका कार्य पूर्ण करने और जो बन पड़े सेवा करनेके लिये सदा तैयार रहना चाहिये—

आत्मोत्कर्षं न मार्गेत परेषां परनिन्दया।
स्वगुणैरेव मार्गेत विप्रकर्षं पृथग्जनात्॥

अर्थात् दूसरोंकी निन्दासे अपनी उन्नतिको कभी न देखे। अपने सद्गुणोंसे ही दूसरे मनुष्योंकी जो उन्नति चाहे, वही सच्चा भारतीय है। भारतीय संस्कृतिके उपासक सदा निर्बलों, अपनी शरणमें आये हुए और अतिथियोंके सहायक होते हैं।

भारतमें सदा दूसरोंके साथ उदारताका व्यवहार रहा है। जो लोग बाहरसे मारनेके लिये आये, जिन्होंने विष दिया, जिन्होंने आगमें जलवाया, जिन्होंने हाथियोंसे रौंदवाया और जिन्होंने साँपोंसे डँसवाया, उन सबके प्रति भी भारतीय संस्कृति उदार रही है। हमने सबमें भगवान्‌को देखा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हाथीमें विष्णु, सर्पमें विष्णु, जलमें विष्णु और अग्नि तकमें भगवान् विष्णुको देखा है, तो फिर मनुष्योंकी तो बहुत ही ऊँची बात है। हम जीवमात्रको प्यार करनेवाले उदार जाति रहे हैं।

दूसरोंको दुःखग्रस्त देखकर हृदयका द्रवित हो जाना और उनके दुःखको अपना ही दुःख मानकर उसे मिटानेकी सहज चेष्टाका नाम दया है। दयाहीन मानव तो राक्षस है।

३–सद्भावोंका विकास

मनुष्यकी अन्तरात्मामें दबे पड़े हुए सद्विचार और सद्भावोंको दूसरोंके साथ अधिकाधिक विकसित एवं चरितार्थ करना भारतीय संस्कृतिका एक तत्त्व है।

भारतीय संस्कृति मनुष्यकी अन्तरात्मामें संनिहित सद्भावोंके विकासपर अधिक जोर देती है। 'शीलं हि शरणं सौम्य' (अश्वघोष) सत्-स्वभाव ही मनुष्यका रक्षक है। उसीसे अच्छे समाज और अच्छे नागरिकका निर्माण होता है। हमारे चरित्र और स्वभावमें बड़े-बड़े गुण भरे पड़े हैं। हमारे यहाँ कहा गया है—

तीर्थानां हृदयं तीर्थं शुचीनां हृदयं शुचिः।

(म० भा० शा० प० १९३। १)

'सब तीर्थोंमें हृदय (हमारी यह अन्तरात्मा) ही परम तीर्थ है। सब पवित्रताओंमें अन्तरात्माकी पवित्रता ही मुख्य है।'

हम यह मानकर चलें कि जो कुछ महत्त्वपूर्ण है, देवत्व है, उन्नतिशील तत्त्व हैं, वे सब हमारी अन्तरात्मामें, हमारे गुप्त मनमें, हमारे स्वभावमें शुरूसे ही मौजूद हैं। हमारे अंदर साक्षात् भगवान्‌का निवास है—

शास्ता विष्णुरशेषस्य जगतो यो हृदि स्थितः।
तमृते परमात्मानं तात कः केन शास्यते॥

(विष्णुपुराण १। १७। २०)

'हृदयमें स्थित भगवान् विष्णु ही तो सम्पूर्ण जगत्‌के उपदेशक हैं। उन परमात्माको छोड़कर और कौन किसीको कुछ सिखा सकता है।'

भारतीय संस्कृति हमें दूसरोंके प्रति उदारताका व्यवहार करनेपर जोर देती है। हम मनुष्यकी पूजा करें। मनुष्यको मनुष्य नहीं, ईश्वरका रूप मानें; सभी बन्धु-बान्धवोंको मनुष्य नहीं, ईश्वरका रूप मानें; सभीको ईश्वररूप, परमात्मा-का अंश समझें। इस सद्व्यवहारसे हम ईश्वरकी उपासना ही करते हैं। अपने अंदरसे हमें अमृतका प्रवाह बहाना चाहिये, जिससे दूसरे भी अपने व्यक्तित्वको अधिकाधिक विकसित करें और आगे बढ़ते रहें। दूसरोंको आगे बढ़नेमें सहायता करना भी धर्मका एक अङ्ग है।

४–व्यक्तिगत आवश्यकताएँ घटाकर विश्वहितकी ओर ध्यान

अपनी स्वयंकी जरूरतोंको कम करके, अपने स्वार्थसे समय बचाकर, अपनी निजी आवश्यकताओंको घटाते रहना और अपना अधिक समय, शक्ति तथा योग्यता विश्व-हितमें लगाना हमारा आदर्श रहा है।

खुद कम-से-कम खा-पहिनकर दूसरोंकी, पीड़ित और दुखी जनताकी अधिक-से-अधिक सेवा करना, स्वादके लोभसे अधिक भोजन न करना और विलास तथा दिखावेके लोभसे बिलासिताके वस्त्र न पहिनना हमारे देशकी पुरातन परिपाटी रही है।

भोजन इसलिये किया जाता है कि शरीर स्वस्थ रहे और उस शरीरसे अधिक-से-अधिक विश्वकी सेवा की जाती रहे। भारतीय संस्कृतिके पुजारीके लिये यह जरूरी है कि उसके वस्त्र सादे और स्वच्छ हों और उनमें किसी प्रकारका दिखावटीपन न हो। वह कम-से-कम सोये और सांसारिक दिखावेसे अपनेको अलिप्त रक्खे। अपनी आवश्यकताओंसे समय निकालकर ही आदमी दूसरोंकी सेवा कर सकता है। जिसे अपनी जरूरतें पूरी करनेसे ही फ़ुरसत नहीं है, वह दूसरेका क्या भला करेगा ?

हमारे गृहस्थ भी ऐसे-ऐसे हुए हैं, जो पूरे राज्यका संचालन करते हुए भी उनसे सर्वथा अनासक्त रहे हैं। उन देव-तुल्य आत्माओंने अपने शरीरतकका मोह नहीं किया था।

महाराज जनक इसीलिये बिदेह कहे जाते थे; क्योंकि वे राजा होते हुए भी उसमें लिप्त नहीं थे। विरक्तशिरोमणि श्रीशुकदेवजी, जिन्हें गुरु बनाकर ज्ञानोपदेश लेने गये, उस परम ज्ञानीके सम्बन्धमें क्या कहा जाय ?

तुलाधार वैश्य थे। अपनी व्यक्तिगत जरूरतें घटाकर वे सदा अपने ग्राहकका अधिक-से-अधिक हित देखा करते थे। महर्षि याज्ञवल्क्यने एक कौपीन और जलपात्रके अतिरिक्त अपने पास कभी कुछ नहीं रक्खा था।

श्रीशुकदेवजी तथा श्रीशंकराचार्यजी-जैसे विरक्त भारतीय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संत और विद्वान् सदा लोकहितका काम करते रहे थे। दूसरोंका अधिक-से-अधिक भला कर जायँ, यही उनके जीवनका स्वभाव था। इस प्रकारके अनेक भारतीय ज्ञानियोंने निष्काम भावसे परोपकार और प्राणिमात्रकी सेवाको अपने जीवनका ध्येय बनाया था। आप भी यह मनोवृत्ति अपने स्वभावमें विकसित करें और जितना बन पड़े जनताकी सेवा करें।

भारतीय संस्कृति आपसे कह रही है—

'हे मनुष्यो! अपने हृदयमें विश्वप्रेमकी ज्योति जला दो। दीन, हीन, रोगी, दुखी—सबसे प्रेम करो। अपनी भुजाएँ पसारकर प्राणिमात्रको प्रेमके पाशमें बाँध लो। विश्वके कण-कणको अपने प्रेमकी सरितासे सींच दो।

'विश्वप्रेम वह रहस्यमय दिव्य रस है, जो एक हृदयको दूसरेसे जोड़ता है। यह एक अलौकिक शक्तिसम्पन्न जादू-भरा मरहम है, जिसे लगाते ही सब घाव भर जाते हैं, सारे रोग दूर हो जाते हैं।

'सच्चा जीना आदर्श और महत् उद्देश्यके लिये जीना है। जबतक जीना है, विश्व-हितके लिये जिओ।

'अपने परमपिता परमात्माकी सम्पत्ति (दूसरोंके अधिकाधिक भले) को सम्हालो। यह सब तुम्हारी है। तुम्हें दूसरोंकी अधिकाधिक सहायता करते रहना चाहिये।

'सबको अपना समझो और अपनी चीज़की तरह विश्वकी समस्त वस्तुओंको अपने प्रेमकी छायामें रक्खो। सबको आत्मभाव और आत्म-दृष्टिसे देखो।'

५—शुद्ध कमाईका ही उपयोग करें

भारतीय संस्कृति अपने परिश्रम और अनुशासनसे प्राप्त ईमानदारीकी कमाईपर ही जोर देती है। हम खुद मेहनत करें, हाथ-पाँव चलाते रहें, दूसरोंके टुकड़ोंपर न पलें। जीवनभर अपने पसीनेकी रोज़ी खाते रहें—यह हमारा आदर्श है।

अपमित्य धान्यं यजघसाहमिदं।

(अथर्ववेद ६। ११७। १)

अर्थात् ऋण लेना एक प्रकारकी चोरी है। (हमें उतनेमें ही अपना खर्च चलाना चाहिये जितना हम कमाते हैं।) हम अपनी सात्त्विक कमाईसे अधिक खर्च न करें। पापकी कमाई जन्म-जन्मतक दुःखरूपी नरकमें पड़े रहनेकी तैयारी है।

रमतां पुण्या लक्ष्मीर्याः पापीस्ता अनीनशम्।

(अथर्ववेद ७। ११५। ४)

अर्थात् पुण्यसे कमाया हुआ धन ही सुख देता है। जो पापयुक्त धन है, उसका मैं नाश करनेवाला बनूँ।

सच्चे परिश्रम, उचित साधनों और ईमानदारीसे जो कुछ भी प्राप्त हो जाय उसीपर जोर दिया गया है।

सर्वेषामेव शौचानामर्थशौचं परं स्मृतम्।
योऽर्थे शुचिर्हि स शुचिर्न मृद्वारिशुचिः शुचिः॥

(मनुस्मृति ५। १०६)

'सब शुद्धियोंमें धनकी पवित्रता ही श्रेष्ठ है। जो ईमानदारीसे कमाकर खाता है, वही व्यक्ति धनकी दृष्टिसे शुद्ध कहा जा सकता है। मिट्टी या जलकी शुद्धि सच्ची शुद्धि नहीं कही जा सकती।'

तात्पर्य यह है कि जो पराया धन नहीं हरता और न्यायसे धन कमाता है, वह शुद्ध है। जो अन्यायसे द्रव्य हरता है, किंतु मिट्टी लगाकर जलसे स्नान करता है; वह केवल शुद्धता और स्वच्छताका दिखावा मात्र करता है।

हमारे यहाँ कहा गया है—

प्र पतेतः पापि लक्ष्मि।

(अथर्ववेद ७। ११५। १)

अर्थात् पापकी कमाई छोड़ दो। अपने श्रमसे, पसीनेकी कमाईसे ही मनुष्य सुखी बनता है।

याद रखिये, धन उन्हींके पास ठहरता है, जो सद्गुणी होते हैं। दुर्गुणीकी विपुल सम्पदा भी स्वल्पकालमें नष्ट हो जाती है।

रयिं दानाय चोदय।

(अथर्ववेद ३। २०। ५)

दान देनेके लिये धन कमाइये। संग्रह करने या विलासिताके लिये धन नहीं कमाना चाहिये।

अपनेको एकाकी नहीं, विश्व-मानवकी महान् मशीनका एक पुर्जा मानना और अपने संकुचित स्वार्थको परमार्थ (परोपकार) में भुला देना

आप यह मानिये कि समस्त विश्वमें ही हमारा प्राण बिखरा पड़ा है। सब प्राणिमात्रमें आत्मा समष्टिरूपसे फैला हुआ है। वहाँ सब समान हैं। हम सब एक ही विराट् मशीनके कल-पुर्जे हैं। अतएव सबको समान रूपसे प्यार-दुलार देना चाहिये। हिंदू मानता है कि वह शरीर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं आत्मा है। महान् विश्वात्माका एक अंश है। एक ही प्राण सबमें व्याप्त है; एक ही विराट् आत्माका सबमें प्रकाश है। एक ही सूर्यका प्रतिबिम्ब सर्वत्र जगमगा रहा है। हमारा सम्पूर्ण समाज एक बड़ा शरीर है और हम सब उसके अङ्ग मात्र हैं। नर-नारायण, जनता-जनार्दन, विराट्-पुरुष आदि शब्दोंमें यही भाव भरा हुआ है। हमें अपना आत्मभाव सबमें विस्तृत कर देना चाहिये। प्रेमका दायरा अधिक-से-अधिक बड़ा रखना चाहिये।

भारतीय शास्त्र कहते हैं—

ये पायवो मामतेयं ते अग्ने पश्यन्तो अन्धं दुरितादरक्षन्।
ररक्ष तान्त्सुकृतो विश्ववेदा दिप्सन्त इद्रिपवो नाह देभुः॥

(ऋग्वेद १ । १४७ । ३)

अर्थात् परोपकार और परमार्थके कार्योंमें निन्दा, लाञ्छन, उपहास आदिका भय नहीं करना चाहिये। ऐसे परोपकारी और उदार मनुष्योंकी रक्षा स्वयं परमात्मा करता है। अतः उत्तम पुरुषको व्यर्थके क्षुद्र सांसारिक कार्य छोड़कर लोक-कल्याणमें लगे रहना चाहिये।

इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि मैषां नु गादपरो अर्थमेतम्।
शतं जीवन्तु शरदः पुरूचीरन्तर्मृत्युं दधतां पर्वतेन॥

(ऋग्वेद १० । १८ । ४)

याद रखिये, यह मनुष्यका जीवन बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसे व्यर्थके नीचतापूर्ण कामोंमें नष्ट करना ठीक नहीं है। इसलिये पुरुषार्थी बनकर सौ वर्ष जियें; अर्थात् दुराचार त्यागकर सदाचारी हों। इससे मनुष्य पूर्ण आयु प्राप्त करता है।

नकिर्देवा मिनीमसि नकिरा योपयामसि मन्त्रश्रुत्यं चरामसि।
पक्षेभिरपिकक्षेभिरत्राभि संरभामहे॥

(ऋग्वेद १० । १३४ । ७)

अर्थात् इस मानव-समाजमें हिंसा और फूट अवनतिके कारण हैं। इसलिये उत्तम व्यक्तिको चाहिये कि दुनियाके, समाज और परिवारके प्रत्येक छोटे-से-छोटे कार्यमें भी एक दूसरेको भरपूर यथाशक्ति सहायता और सहयोग दिया करें।

हम आदर्श मानव बननेके लिये इन विशेषताओंको धारण और उत्तरोत्तर विकसित करें।

जीवनका प्रयोजन

[कहानी]

(लेखक—श्री'चक्र')

'जीवस्य तत्त्वजिज्ञासा नार्थो यश्चेह कर्मभिः॥'

(श्रीमद्भा० १ । २ । १०)

'अमर वस्तुतः अमर हैं क्या?' ऋषि-पुत्र शुक्लवीतिके अन्तरमें अचानक प्रश्न उठा। प्रश्न अचानक ही उठा करते हैं और वे धन्य हैं, जिनके अन्तरमें प्रश्न उठते हैं; क्योंकि प्रश्नोत्थान विवेकके प्रबोधका लक्षण है। प्रश्न या तो पूर्ण-पुरुष—आप्तकाम महापुरुषके मनमें नहीं उठते या पामरके मनमें।

'शक्रकी कितनी आयु है?' ऋषि-पुत्र अल्पवयस्क सही, जन्मसे इतने शुद्धान्तःकरण थे कि अर्थ-काम-सम्बन्धी प्रश्न उन्होंने शैशवमें भी नहीं पूछे। लौकिक वस्तुओंके सम्बन्धमें उन्हें कोई कुतूहल नहीं था। उपनयनके पश्चात् पिताने उन्हें महर्षि जैमिनिके समीप अध्ययनके लिये भेज दिया था। अब तो उन्होंने पूर्व-मीमांसाके उन आचार्यसे कर्मका रहस्य समझना प्रारम्भ कर दिया था। वेदोंकी मन्त्र-संहिताएँ उन्हें सस्वर कण्ठस्थ हो गयी थीं। अपने गुरुदेवके अतिरिक्त वे किससे प्रश्नका समाधान कराने जाते।

'एक महायुग अर्थात् एक चतुर्युगीका परिमाण तुम जानते हो।' महर्षिने अभी प्रश्नको गम्भीर भावमें लिया नहीं था। उन्होंने सामान्य उत्तर दिया—'एक कल्पमें सहस्र महायुग होते हैं और उसमें चौदह मन्वन्तर व्यतीत होते हैं। एक मन्वन्तरका एक इन्द्र होता है।'

'इसका अर्थ कि अमराधिप भी वस्तुतः अमर नहीं हैं। देवता भला कैसे अमर हो सकते हैं!' शुक्लवीतिके स्वरमें क्लान्ति थी।

'वत्स! अमरत्वका अर्थ दीर्घायुमात्र है!' महर्षिने अब शिष्यकी ओर ध्यान दिया। 'कालका अतिक्रमण कोई व्यक्तित्व नहीं कर सकता। जगत्स्रष्टाकी आयु ही जब दो परार्ध है, उनकी सृष्टिका कोई प्राणी नित्य अमर कैसे हो सकता है? देवत्व कर्म प्राप्य है और कर्मका वेग जिसका भी निर्माण करेगा—शाश्वत नहीं होगा वह, कर्मका वेग समाप्त होनेपर उस कर्मसे जो निर्मित हुआ, उसका विशीर्ण हो जाना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहज स्वाभाविक है। इसीलिये कर्म ही गुरु है। कर्म ही महान् है। कर्म ही ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति-स्थितिका हेतु है।'

कर्ममीमांसाके महाचार्य सम्भवतः और कुछ कहते; किंतु उन्होंने देखा कि उनका शिष्य इस समय कुछ अधिक सुननेकी स्थितिमें नहीं है। वह अन्तर्मुख न भी हो गया हो, उसके नेत्र यज्ञीय कुण्डसे उठते सुरभित धूम्रपर स्थिर हो गये हैं। जैसे वह उस धूम्रकी कुण्डलियोंमें अपने प्रश्नका उत्तर ढूँढ़ रहा हो।

शान्त—अतर्क्य आनन्दसे पूर्ण शान्तिसे परिपूत तपोवन। स्वच्छ गोमयोपलिप्त भूमि है दूरतक। मध्यमें एक विशाल यज्ञ-मण्डप है और उससे थोड़ा हटकर कुछ पर्णशालाएँ हैं। एक पर्याप्त विशद पर्णकुटी है उनमें। सम्भवतः वह महर्षिका आवास है।

प्रातःकालीन हवन समाप्त करके छात्र कुश, समिधाएँ, फलादि संग्रह करने जा चुके हैं। दो-तीन, जो आश्रममें हैं भी, वे आश्रम-धेनुओंकी सेवामें लगे हैं अथवा नीवार-परिशोधनका कार्य कर रहे हैं। यज्ञशालामें वेदिकाओंपर इस समय कोई सामग्री नहीं है। अवश्य ही क्रमबद्ध मृगचर्म आस्तृत हैं और कुश-प्रकीर्ण है लगभग पूरा यज्ञमण्डप। आश्रममें मृग, धेनु, वृषभोंके साथ वृक्षोंके नीचे एक सिंह-युगल भी आ बैठा है और उसके तीनों शावक मृग-शिशुओंके साथ क्रीड़ा कर रहे हैं।

यज्ञमण्डपमें दो-तीन बछड़े एवं एक-दो मृग-शावक आ गये हैं। वे क्रीड़ापूर्वक आस्तीर्ण कुशोंको सूँघते हैं, मुखमें लेते हैं और स्वच्छन्द फुदकते हैं। इस समय उन्हें स्नेहसे रोकनेवाला भी कोई नहीं है। वे जानते हैं कि शुक्लवीति तो उन्हें तब भी नहीं रोकेगा, जब वे उसकी जटाएँ मुखमें लेकर तृणके समान खींचनेका यत्न करेंगे। वह तो केवल देख लेगा उनकी ओर और बहुत हुआ तो हँस देगा।

महर्षि—द्वितीय अग्निके समान यज्ञीय कुण्डके समीप वेदिकापर आस्तीर्ण मृगचर्मपर पद्मासनासीन तेजोमय वपु महर्षि तो आश्रमके कुलपति हैं। पशु ही नहीं, नन्हे पशु-शावक भी समझते हैं कि महर्षि पिता हैं, श्रद्धेय हैं। उनके समीप पहुँचकर कोई बछड़ा भी चपलता नहीं करता। उनके चरणोंको सूँघ लेनेमात्रकी धृष्टता—इससे अधिक अविनय किसी मृग-शिशुने कभी नहीं किया। केवल शशक, गिलहरी-जैसे कुछ पशु हैं जो यदा-कदा महर्षिकी गोदमें आ बैठते हैं।

शुक्लवीति इधर अधिक अन्तर्मुख रहने लगा है। महर्षिने ही आज्ञा दे दी है कि वह आश्रम-सेवामें योग देनेसे विरत रहे। उसे अपनी अन्तर्मुखताको महत्त्व देना चाहिये। आज वह गुरुदेवके चरणोंके समीप आ बैठा है नित्य-हवनके पश्चात्, किंतु इस समय तो उसकी दृष्टि हवन-कुण्डसे उठते धूम्रकी कुण्डलियोंपर स्थिर है।

'आहुतिरूप कर्मका वेग धूम्रकी कुण्डलियाँ उठाता है। ये धूम्र-कुण्डलियाँ कुछ आकृतियाँ बनाती हैं।' वह अपने-आप कुछ कह चला है। 'धूम्रकी आकृतियोंमें स्थिरता क्या? कर्मका वेग कितनी स्थिरता देगा? अमरत्व भी धूम्राकृति धूसर—मरण-परिवेष्टित ही है!'

× × ×

'देखने-सुनने, छूने-सूँघने और चखनेमें मेरी कोई रुचि नहीं है।' ऋषि-पुत्र शुक्लवीति विषयी नहीं थे। पामर तो उस युगमें मानव-कुलमें उत्पन्न ही नहीं होते थे। उन्हें दानव-राक्षसकुलमें ही उत्पन्न होना पड़ता था। उस दिन जब महर्षि जैमिनि यज्ञशालासे उठ गये, स्वयं देवराज इन्द्र प्रकट हुए। उन महाध्वर्युके सम्मुख आनेमें शतक्रतुको भी लज्जाका बोध होता था। ध्यानस्थप्राय शुक्लवीतिसे देवराजने प्रस्ताव किया कि वे सशरीर कुछ दिन अमरावतीमें रहें। प्रत्यक्ष स्वर्गका अनुभव करके तब कोई निर्णय करें; किंतु उन्हें उत्तर मिला—'स्वर्गमें क्या कोई और विशेषता उपलब्ध होगी?'

देवराज जैसे प्रकट हुए थे, अदृश्य हो गये। स्वर्गमें भोगातिशय भले कल्पनातीत हो, है ऐन्द्रियक भोग ही। जिसे ऐन्द्रियक भोगमें कोई अभिरुचि ही न हो, उसे स्वर्ग ले जाकर अमरपुरको साधनाश्रम तो उन्हें बनाना नहीं था।

'तुम्हें महर्षि पतञ्जलिका आश्रय लेना चाहिये।' कर्म-मीमांसाके प्रणेता महर्षि जैमिनिने कुछ सोचकर ही शिष्यको अपने गुरु भगवान् व्यासके यहाँ नहीं भेजा होगा। सम्भवतः वे उसके लिये योगकी साधना पहले आवश्यक मानते होंगे।

'तुम्हें योग ही तो करना है!' गुरुदेवकी आज्ञा स्वीकार करके शुक्लवीतिने हिमालयकी ओर प्रस्थान किया था। मार्गमें उसे मिल गये लक्षयोगके आचार्य महाकात्यायन। उन्होंने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेरणा दी—'थोड़े समय यहाँ निवास करो। सामान्य श्रमसे भी समाधि सिद्ध हो सकती है। अष्टाङ्गयोगकी श्रम-साध्य साधना आवश्यक नहीं है।'

शुक्लवीतिको वैसे भी चातुर्मास्य करना था। यात्रा अवरुद्ध ही होती है तो इस अवरोधका उपयोग क्यों न कर लिया जाय। हिमालयका शैवालिक अञ्चल वह अपनी सौम्य सुरम्यतामें अद्वितीय था। उसे यहाँ उटजके स्थानपर पर्वतीय गुहा मिल गयी आवासके लिये।

'नाद—स्वर ही तो है वह।' शुक्लवीतिको अनहदनादमें भी कोई महत्त्व नहीं जान पड़ा। उसे कहाँ सहस्रारका वैभव या 'धुरधाम' का चमत्कार चकित कर सकता था। वह कह रहा था—'नाद अन्तरमें श्रवण गोचर हो या बाह्य जगत्में, इन्द्रियका ही विषय है। वीणा, वंशी, शंख या मेघगर्जन—श्रोत्रेन्द्रिय-प्रत्यक्ष ही होता है। वह इन्द्रियगोलकके माध्यमसे हो अथवा गोलकके माध्यमके बिना हो। वह विषय है, अतः कर्म-साध्य है और कर्मसाध्य है तो नश्वर है। कर्मका नाम कोई साधन दे ले, क्या अन्तर पड़ता है। कर्म-साध्य तथ्य अविनाशी हो नहीं सकता।'

आचार्य महाकात्यायन आरम्भमें बहुत उत्साहित हुए। शुक्लवीति उत्थित-जाग्रत् कुण्डलिनी-साधक मिला था उन्हें। मणिपूर-अनाहत चक्रोंका वेध प्रारम्भमें ही हो गया। मेरुदण्डमें महास्फोट नाद, कम्प एवं गतिका अनुभव सहज बात थी। आज्ञा-चक्र अर्थात् त्रिपुटीका भंग, बिन्दुवेध बङ्कनाल, भ्रमरगुहा आदिका अतिक्रमण करके कुण्डलिनीने सहस्रारके महाह्रदमें स्नान किया और अमृत-निर्झरसे उठकर वह दिव्यालोक पीठपर आसीन हो गयी। नित्य धामकी प्राप्ति—उस दिन आचार्यने सोल्लास कहा और तभी शुक्लवीतिने उन्हें निराश कर दिया।

'नित्यधाम कैसे हो सकता है वह?' उस प्रबुद्धप्रज्ञको कोई कल्पित मानसिक अवस्था संतुष्ट करके अपनेमें उलझानेमें असमर्थ थी। 'किसी नादके अश्रवण, किसी रूपके अदर्शनके कारण जीव बन्धनमें नहीं पड़ा है। जीवका बन्धन, उसके सुख-दुःखका कारण है राग-द्वेष एवं देहासक्ति। इनकी निवृत्ति हुए बिना जन्म-मरणसे जीव छूट गया—किसी भी मानसिक अनुभवको लेकर ऐसा मान लेना तो प्रत्यवाय होगा। यह तो स्वयंको धोखा देना है।'

खेचरी—जो अनहद-श्रवणसे भी संतुष्ट नहीं हुआ, उसे अस्पर्शयोग, गन्धयोग, ज्योतिर्दर्शन अथवा शाम्भवी मुद्राकी सिद्धिसे अमृतास्वादनमें संतुष्टि प्राप्त हो जायगी, इसकी आशा आचार्य महाकात्यायन नहीं कर सकते थे। उन्होंने चातुर्मास्यके अन्तमें उसे सस्नेह विदा किया।

यम और नियम ऋषि-कुमारके लिये स्वभावसिद्ध आचरण होते हैं। जो आहवनीय अग्निके समीप बैठकर अहर्निश अग्नि-सेवा कर चुका हो, आसन-सिद्धिकी बात उससे कोई क्या करेगा? धारणा और ध्यानका आलम्बन भले परिवर्तित किया जाय, अनहदोत्थान पर्यन्त ध्यान-सिद्ध तो वह था ही।

देवराज इन्द्र जिसे सशरीर स्वर्ग ले जाने पधार चुके हों, उस तपस्वी कुमारको न हिमालयका शीत बाधा देता था और न किन्नर-प्रदेशका संगीत-सौन्दर्य आकृष्ट करनेमें समर्थ था। हरित उपत्यकाएँ और शुभ्र हिमशृंग केवल अन्तर्मुख होनेकी सात्त्विक प्रेरणामात्र देते थे उसे। जनपदमें जानेसे सहज अरुचि थी और उस युगमें तपस्वीका आतिथ्य करके तो अधिदेवता भी अपनेको कृतकृत्य मानते थे। दिनचर्याकी पूर्तिके लिये कन्द, फलकी प्राप्ति जैसे कठिन नहीं हुई, शुद्ध समिधाएँ भी उपलब्ध होती रहीं।

शुक्लवीतिको हिमालयके कुल-क्षेत्रसे भी ऊपर (व्यास नदीके उद्गमसे आगे) श्रीशुकदेवजीके स्थानपर पहुँचकर कहीं महर्षि पतञ्जलिके वर्तमान स्थलका पता लगा। आहवनीय अग्नि लिये ही वे उन परमयोगाचार्यकी मानव-अगम्य गुहा-द्वारपर उपस्थित हुए थे।

'सिद्धकामो भव!' अधिकारीकी उपस्थिति सर्वज्ञ गुरुको अज्ञात नहीं थी। समाधिसे उसी समय महर्षि उठे थे। अपने पदोंमें प्रणिपात करते शुक्लवीतिको उन्होंने उठा लिया। उसी दिन एक गुहा इस नवीन योगीकी साधनस्थली बन गयी।

× × ×

'भगवन्! समाधि कालावच्छिन्न अवस्था नहीं है क्या?' अनेक मासके अनन्तर शुक्लवीति अपनी गुहासे महर्षिके श्रीचरणोंमें प्रणाम करने आये थे। उनका मुख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तेजोद्दीप्त हो रहा था। सुदीर्घ लोचनोंमें अबतक ध्यानस्थ होनेकी अरुणिमा थी। अभिवादनके पश्चात् उन्होंने अञ्जलि बाँधकर प्रश्न किया—'यह भी प्रयत्नसाध्य स्थिति है। प्रयत्न कितना भी विशुद्ध, निर्बीज हो चुका हो, कर्म ही है।'

'कर्मसाध्य स्थिति अविनश्वर नहीं होती।' महर्षिने स्वयं वह बात कही जो शुक्लवीति कहना चाहते थे। 'इसीसे समाधिसे व्युत्थान होता है।'

'जीव अविनाशी है। शाश्वत है। निरपवाद अमर है। काल उसे परिच्छिन्न नहीं करता।' शुक्लवीतिने जिज्ञासा की। 'तब जीवको अपने सहज स्वरूपकी नित्य प्राप्ति क्यों सम्भव नहीं है? क्यों उसके समस्त प्रयत्न काल-परिच्छिन्न—मृत्युके ग्रास होकर रह जाते हैं?'

सविकल्प-निर्बिकल्प, सबीज-निर्बीज समाधियोंकी अवस्थाओंको पार करता जो परम सिद्ध योगी हो चुका है, उसका यह प्रश्न सामान्य व्यक्तिकी समझमें न आवे, यह स्वाभाविक है। महर्षि पतञ्जलिने भी दो क्षण नेत्र बंद कर लिये। उन्होंने गम्भीर स्वरमें कहा—'प्रत्येक साधन अधिकारीविशेषके लिये होता है। महर्षि जैमिनिकी सेवाने—धर्माचरणने तुम्हारे अन्तःकरणको शुद्ध कर दिया और यहाँ आकर तुम चित्तके विक्षेपसे मुक्त हो गये। व्यक्तित्वकी परिशुद्धिकी यह सीमा है। प्रकृति और प्राकृत प्रपञ्चसे पृथक्, कालसे अपरिच्छिन्न चेतन सत्ता—जीवनका अनुभव और उस अपने द्रष्टा स्वरूपमें अवस्थिति तुम प्राप्त कर चुके।'

'यह अवस्थिति बनी नहीं रहती प्रभु!' शुक्लवीतिके स्वरमें वेदना थी। 'जीवनका क्या यही परम प्राप्य है?'

'कर्मसे प्राप्त होनेवाली कोई स्थिति, कोई भोग, कोई अवस्था अविनाशी नहीं है।' महर्षिने शान्त स्वरमें समझाया। 'जो अविनाशी है, उसका प्राप्य विनाशी नहीं हो सकता। अतः जीवनका परम प्रयोजन किसी भी कर्म-प्राप्य भोग अथवा स्थितिकी उपलब्धि नहीं है।'

'तब?' शुक्लवीतिने यह शब्द मुखमें नहीं कहे। उसके नेत्रोंमें ही यह प्रश्न साकार हुआ।

'वत्स! प्रत्येककी अपनी सीमा है। शरीर और अन्तःकरण असीम शक्ति एवं संस्कारमुक्त नहीं हुआ करते।' महर्षिने सस्नेह समझाया उसे। 'तुम्हें भगवान् श्रीकृष्ण-द्वैपायनके श्रीचरणोंका आश्रय लेना चाहिये। वे यहाँसे दूर नहीं हैं।'

× × ×

आपने यदि हिमालयका मानचित्र देखा हो—प्रसिद्ध तीर्थस्थलोंमें वास्तविक दूरी अधिक नहीं है। उत्तुंग हिम-शिखरोंके कारण साधारण यात्रीको बहुत घूमकर यात्रा करनी पड़ती है; किंतु योगसिद्ध पुरुषोंके लिये तो ये श्रृंग-शिखर बाधक नहीं बना करते। कुलक्षेत्रसे इलावर्तको दाहिने छोड़ते, यमुनोद्गमकी प्रदक्षिणा करके, उसी दिन शुक्लवीतिने भगवती भागीरथीके उद्गममें स्नान किया। दूसरे दिन दिव्य कैलाशको दक्षिण करते वे अलकनन्दामें मिलनेवाली उदीची सरस्वतीके तटपर शम्याप्रासमें भगवान् व्यासके आश्रममें पहुँच गये थे।

'तुम कौन हो—यह जान लेना ही पर्याप्त नहीं है वत्स!' भगवान् व्यासने समझाया उस दिन। 'यह दृश्य जगत् क्या है? यह जिसे तुम नश्वर, दुःखद कहते हो, यह कहाँसे आया? तुम स्वयं इस जगत्में क्यों आये? यह जिज्ञासाकी पूर्तिमें ही तुम्हारे जीवनका प्रयोजन पूर्ण होता है।'

'यह नाशवान् जगत्!' चौंका शुक्लवीति। इसके सम्बन्धमें उसे अबतक जिज्ञासा क्यों नहीं हुई? वह क्यों अपने आपमें इतना लीन रहा कि इस दृश्यपर ध्यान ही नहीं दे सका।

'प्रश्न नहीं; क्योंकि शब्दकी गति वहाँ नहीं है।' भगवान् व्यासने उसे बोलने नहीं दिया। 'तुम विशुद्धचित्त हो। मल-विक्षेप विनष्ट हो चुके हैं। तुम जानते हो कि ज्ञान प्रकाशस्वरूप और नित्य है। जिज्ञासाका जो प्राप्य है, वह शाश्वत है। जीवनका परम प्रयोजन इसीलिये जिज्ञासा है। तुम जिज्ञासा करो—मनन करो! जिसे तुम्हें जानना है, श्रुति कहती है—'तत्त्वमसि।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहज सुखका मार्ग

(लेखक—प्रोफेसर पं० श्रीलालजीरामजी शुक्ल, एम्० ए०)

डा० हजारीप्रसाद द्विवेदीने अपनी बैठकमें यह आर्षविचार (मोटो) लिख रक्खा है—'ऐसा लोग कहते हैं, जैसा वे कहते हैं, कहने दो' (So they say, what they, let them say) एक बहुत ही चिन्तनशील अंग्रेज लेखकने कहा है कि हमें अपनी. प्रसन्नताको दूसरोंके सिरमें जमा नहीं कर देना चाहिये। इससे बड़ी और कोई मूर्खता नहीं है।

संसारमें मनुष्य इसीलिये दुखी होता है कि वह सोचता रहता है कि दूसरे लोग उसके बारेमें क्या कहते हैं। यह अच्छा भी है और बुरा भी है। दूसरे प्रतिष्ठित व्यक्तियोंकी अपने विषयमें राय अच्छी बनानेके लिये मनुष्य अनेक प्रकारके भले काम करता है। इस प्रकारका विचार मनुष्यको असाधारण पुरुषार्थ करनेके लिये प्रेरणा देता है। जब कोई व्यक्ति यह सोचने लगता है कि समाजके लोग उसे विद्वान्, धनवान्, उदार, बहादुर तथा चरित्रवान् मानते हैं एवं अपनी ख्याति बचाये रखनेके लिये ऐसा काम नहीं करता जिससे उसकी सुख्यातिका विनाश हो जाय। इतना ही नहीं, यह सुख्यातिका बिचार उससे ऐसे अनेक प्रकारके काम करवाता रहता है, जिससे वह और भी बढ़ जाय। परंतु जब मनुष्य अपने हर समयके चिन्तनमें केवल यही सोचता रहता है कि उसके मित्र अथवा समाजके लोग उसके बारेमें क्या सोचते रहते हैं तो वह अपनेको विक्षिप्त बना लेता है। जो व्यक्ति किसी एक ही मित्रके विचारको अपने कार्योंका नियन्त्रक बना लेता है, उसके समान दुखी और कोई नहीं। एक व्यक्ति अपने दृष्टिकोणसे सही बातें सोचता है। एक ही व्यक्तिके विचारसे यदि हम सोचने लग जायँ तो हमारे प्रतिदिनके व्यवहार अजनबी बन जायँगे। उनमें न तो तर्कशीलता रहेगी और न व्यावहारिक औचित्य। अच्छा और सच्चा विचार वह है जो अनेक लोगोंके विचारों-की तुलना करनेके बाद हम स्वयं निर्णय करके प्राप्त करते हैं। एक व्यक्तिके विचारको सर्वथा सत्य मान लेना उससे सम्मोहित होना है। सम्मोहनकी अवस्था स्वयं पागलपन है। इसमें मानसिक विभाजन उपस्थित रहता है। जो व्यक्ति विवेकशीलतामें जितना कम रहता है वह उतनी ही जल्दी सम्मोहित हो जाता है। स्त्री, बच्चे और अनपढ़ लोग शीघ्रतासे सम्मोहित हो जाते हैं। दूसरोंके विचारोंके सम्मोहनसे अपनेको बचा सकना यह मानसिक प्रौढ़ताकी कसौटी है।

सामान्यतया संसारके लोग अपने स्वार्थवश ही हमारे बारेमें अच्छी या बुरी धारणा बनाते हैं। जब उनके स्वार्थकी सिद्धि नहीं होती तब वे भले-से-भले आदमीके बारेमें बुरी धारणा बना लेते हैं। यदि हमें इस प्रकारकी बुरी धारणाओं-के प्रति भय हो जाय तो हम या तो पागल हो जाते हैं या मृत्युके मुँहमें चले जाते हैं। पारानोमियाके रोगसे पीड़ित व्यक्ति सदा यह सोचता रहता है कि दूसरे लोग उसके विरुद्ध षड्यन्त्र करते रहते हैं। काशीविश्वविद्यालयके प्रथम श्रेणीके फिजिक्सके एम्० एस्-सी० के एक विद्यार्थीको यह धारणा हो गयी थी कि कुछ लोगोंने उसके मस्तिष्कमें ऐसा यन्त्र लगा रक्खा है कि उसके गुप्त विचार उन्हें मालूम हो जाते हैं। एक दूसरे व्यक्तिको यह भ्रम रहता था कि उसके एक बड़े आफिसर उसके विरुद्ध योगिनियाँ भेजते रहते हैं। अपनी सुख्यातिके प्रति अति लिप्सा रखनेवाले व्यक्ति सहजमें ही यह सोचने लगते हैं कि उनके मित्र उनके शत्रु बन गये हैं। अपने सम्मानको सुरक्षित रखनेकी भावना उनके मनमें अनेक ऐसे विचारोंको जन्म देती रहती है कि जिनके कारण उनका जीवन भाररूप हो जाता है।

काशीके एक प्रतिष्ठित नागरिक, जो एक समय विधान-सभाके सदस्य रह चुके थे, इसी भ्रमसे पीड़ित होकर मर गये कि समाजके सभी प्रतिष्ठित लोग उनकी निन्दा करते हैं। इस भ्रमको हटानेके लिये उन्हें राँचीके मानसिक चिकित्सालयमें ले जाया गया। वहाँ उन्हें बिजलीके झटके लगाये गये; परंतु सुधार कुछ भी नहीं हुआ। अपने दुःखदायी विचारोंसे परीशान होकर उनका शरीरान्त ही हो गया।

भारतवर्षके एक समयके प्रतिष्ठित नेता श्रीभूलाभाई देसाईका देहान्त भी इसी प्रकारकी दुर्भावनाओंके कारण ही हुआ। उन्होंने पाकिस्तान बननेके विषयमें सरकारसे समझौता किया था। इसमें श्रीराजगोपालाचारीजीने उनका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साथ दिया था। कहा जाता है कि इस समझौतेके परिणाम-स्वरूप ही १९४६में सभी कांग्रेस-नेता जेलसे मुक्त किये गये। कांग्रेसके कुछ शीर्षस्थ नेताओंको यह समझौता जहरके प्यालेके समान लगा। श्रीभूलाभाई देसाईको चुनावके लिये कांग्रेस-टिकट ही नहीं दी गयी। वे पार्लियामेंट्री बोर्डके प्रेसिडेंट थे। पर उनका कांग्रेसमें कोई स्थान ही नहीं रह गया था। मरनेके पूर्व उन्होंने अपने मित्रके पुत्र श्रीसहगलको लाहौरसे बम्बई बुलाया और उसे राजनीतिक कार्योंमें भाग लेनेके खतरेसे यह कहकर आगाह किया कि ये लोग तुम्हारी शक्तिको नारंगीके रसके समान निचोड़ लेंगे और सिठीको फेंक देंगे।

वास्तवमें समाज हमें तभीतक सम्मान देता है, जबतक हम उसके मनोभावोंके अनुसार काम करते रहते हैं। जब हम समाजके हितका साधन नहीं करते हैं, तो वह हमें व्यर्थ अथवा निकम्मा मानकर फेंक देता है। एक-दो मित्रोंकी बात तो दूसरी ही है।

हमारे पुराने ऋषियोंने तीन प्रकारकी एषणाओंको दुःखका कारण बताया है—वित्तैषणा, पुत्रैषणा और लोकैषणा। इनमें लोकैषणाका प्रभाव सबसे सूक्ष्म तथा देर-तक ठहरनेवाला होता है। यही दूसरोंकी राय सदा अनुकूल बनाये रखनेके लिये हमें प्रेरणा देती है, पर सभी लोगोंको सब समय तो प्रसन्न रक्खा नहीं जा सकता और जिस व्यक्तिके कुछ मौलिक सिद्धान्त हैं, उससे एक समय उसके विश्वसनीय और समीपस्थ व्यक्ति भी अप्रसन्न हो जाते हैं।

वास्तवमें हमारी इस प्रकारकी अनुभूति हमें एक ऐसे तत्त्वकी खोज करनेकी प्रेरणा देती है जो सभी समयमें हमारा साथ दे और जिसके विषयमें हमारा विश्वास है कि दुनियाके सभी लोग छोड़ देंगे, तब भी वह हमें नहीं छोड़ेगा। इस तरहकी धारणा ही मनुष्यको अचल और निष्पक्ष सदा सुखमय पदार्थकी खोज कराती है। हमारा सतत विवेकशील विचार इस निष्कर्षपर आता है कि हमारे अन्तिम मूल्य हमारी अन्तरात्मामें ही वर्तमान हैं। दूसरे व्यक्ति हमें तभीतक आदर करते हैं जबतक हम स्वयंका निरादर नहीं करते अर्थात् जबतक हम अपनी अन्तरात्मासे एकत्व स्थापित किये हुए हैं। यह अन्तरात्मासे एकत्वका भाव तब टूट जाता है जब हम भावावेशमें आकर किसी भी पदार्थको अनुचित प्रेम देने लगते हैं और जिसके कारण उसके मूल्याङ्कनमें गलती करते हैं। इस प्रकारकी मनःस्थितिसे बचनेके लिये भगवान् बुद्धने अपने ही विचारोंके प्रति जागरूकताका अभ्यास नितान्त आवश्यक बताया है।

प्रत्येक विवेकशील व्यक्तिको अपने मनके दरवाजेके सामने एक पहरुआ रखना चाहिये। उसका यह काम होगा कि बिना छानबीन किये वह किसी प्रकारके विचारको मनमें घुसने न दे। जो भी भाव अथवा विचार हमें दूसरोंके वशमें कर देता है, वह हमारा मित्र नहीं अपितु शत्रु है। सद्‌विचार वह है जिससे हम अपनी मानसिक स्वाधीनताकी रक्षा कर सकते हैं और दूसरे लोगोंके मनोभावोंमें हम स्वयंको इतना नहीं बहा देते कि अपने स्वत्वका कहीं ठिकाना ही नहीं रहे। सुखी मनुष्य वह है जो समाजकी सब प्रकारकी सेवा करके आवश्यकता पड़नेपर स्वयंको समाजसे अलग रख सकता है। इमर्सन महाशयका कहना है कि सहानुभूतिमें हमें सबके साथ रहना चाहिये और विचारमें स्वतन्त्र रहना चाहिये। ऐसा ही जीवन सफल जीवन है।

शुभ भावना

सद्विचार हों उदित सर्वदा, प्रभुमें रहे सुदृढ़ विश्वास।
होता रहे नित्य जीवनमें सदाचारका विमल विकास॥
शुचि सत्कर्मोंमें प्रवृत्ति हो, बढ़े सदा दैवी सम्पत्ति।
धर्म सुरक्षित रहे, पड़े चाहे कितनी ही घोर विपत्ति॥
बनता रहे सहज ही तन-मन-वाणीसे सबका हित नित्य।
नित्य सत्य प्रिय प्रभुमें रति हो, मिटे जगत्-कल्पना अनित्य॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञान-दान

(लेखक—श्रीश्रीरामजी शर्मा 'राम')

पण्डित सालिगरामजी विद्वान् थे और पूजा-पाठ भी पर्याप्त करते थे। एक दिन वे मन्दिरमें पूजासे निवृत्त होकर, मन्दिरकी सीढ़ियोंपर रखी खड़ाऊँ पहन रहे थे कि गाँवका गङ्गाराम वहाँ आया और अत्यन्त विनीत भावमें पण्डितजीको पालागन करके बोला—'मैं आपके ही पास आया था, महाराज !'

पण्डित सालिगरामने उसकी ओर देखा और दो पग पीछे हटते हुए उपेक्षाभावसे कहा—'रे, क्या बात है, गङ्गाराम !'

गङ्गारामने कहा—'घर चलो, तो बताऊँ।' और वह बोला—'पण्डितजी ! बीस रुपयोंकी जरूरत है। यह चीज…'

पण्डित सालिगरामने गङ्गारामके हाथमें चाँदीके दो कड़े देखे और कहा—'अच्छा, अच्छा, घर चल !' और तभी वे बोले—'इन दो कड़ोंमें लेगा, बीस रुपये ? मूर्ख ! इनमें गिलट मिला है। काँसा उठा लाया है, कहींसे ! और यह नहीं समझता आजकल रुपयेका मोल कितना है ! बता तो, कितने वजनके होंगे, ये कड़े। थोते भी होंगे। अंदर लाख भरा होगा। बस, दो-तीन तोलेसे अधिकके नहीं होंगे ?' उन्होंने कहा—'मैं ऐसा घाटेका सौदा नहीं करता, गङ्गाराम ! लाला धनपतरायके पास जा। वे इन्हें रखकर रुपये दे देंगे।'

इतनी बात करते पण्डितजीका घर आ गया। अपने द्वारपर खड़े होकर पण्डितजीने कहा—'तू तो पैसा देनेवालेको मूर्ख बनाता है। ये कड़े उठा लाया और मेरे पैसेको कंकड़-पत्थर समझ रहा है।'

लेकिन दिखता था कि गङ्गाराम किसी विशेष जरूरतसे ही पण्डितजीके पास आया था। वह अतिशय करुण और दीन बना था। पण्डित सालिगरामकी बात सुनकर बोला—'महाराज ! लड़का बीमार पड़ा है। मेरे पास और तो कुछ है नहीं, मेहतरानीने जाने कब-कबके सहेजकर रखे ये कड़े निकालकर दे दिये। वह भी विवश थी। लड़केकी दवा-दारू तो करनी थी। वही घरका सहारा है। दया करें और इन्हें रखकर रुपये दे दें।'

तभी पण्डित सालिगराम कुटिल भावसे मुसकराये। बोले—'दस रुपये मिलेंगे इन कड़ोंके। रुपये लेने हों, तो दे। एक महीने इन्तजार करूँगा। वापिस लेने न आया, तो इन्हें किसीको दे दूँगा। मैं घरमें रखकर इनका क्या अचार डालूँगा ?'

लेकिन गङ्गाराम उस समय सचमुच परीशान था। उसने आसमानकी ओर देखते हुए कहा—'पण्डितजी ! ये कड़े पचास रुपयेसे कमके नहीं होंगे। लड़का बीमार न होता, तो क्या मैं इन्हें इतने सस्तेमें रखता ! आप तो भगवान्‌के भगत हैं, ज्ञानी-ध्यानी हैं, जरा रहमसे काम लो। मेरी मुसीबत समझो।'

पण्डित सालिगरामने कुछ क्षुब्ध बनकर कहा—'उपदेश मत दे ! व्यवहारकी बात है, उसे समझ ले। मैं इन कड़ोंके पंद्रह रुपयेसे अधिक नहीं दे सकता।'

बरबस, गङ्गारामके मुँहसे निकला—'जैसी आपकी इच्छा।'

पण्डितजीने कागजपर रसीद लिखी, अंगूठा लगवाया और कड़े लेकर आलमारीसे निकालकर पंद्रह रुपये गङ्गारामके हाथपर रख दिये। जब वह चला गया, तो पण्डितने अपने-आप कहा—'कम्बख्त, सुबह-ही-सुबह आ गया।' उन्होंने बहीके पन्ने उलटने आरम्भ किये और उन कड़ोंको हाथमें लेकर अंदाज करते हुए कहा, 'पंद्रह तोलेसे कमके नहीं होंगे। बाजारमें जाओ, तो साठ रुपयेसे कममें नहीं मिलेंगे ऐसे कड़े। ये ठोस भी होंगे।' और तभी अपना मुँह पिचकाकर बोले, 'इस गङ्गारामने ही कौन खरीदे होंगे। किसी जिजमानने दे दिये होंगे—हाँ, आजकी तरह तो कलका समय नहीं था। तब तो जिसे देखो, वही चाँदीसे लदा दीखता था और इन भंगियोंको तो शौक ही चाँदीका था।'

संयोगसे उसी समय वहाँ पण्डितजीकी पत्नी आ गयी। पत्नीको कड़े दिखाकर पण्डितने कहा—'सौदा अच्छा है न, पंद्रह रुपये दिये हैं, उस गङ्गारामको।'

पत्नीने कहा—'जब तुम मन्दिरपर थे, वह यहाँ भी आया था। सुना, उसका लड़का बीमार है। हिरिया मेहतरानी कहती थी कि लड़का मौतके मुँहमें पड़ा है। भगवान् ही उसे बचा सकता है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पण्डित सालिगरामने बात सुनी, तो ध्यान नहीं दिया। उनके मस्तिष्कमें तब भी कड़ोंकी बात थी और वे सोच रहे थे, आज सुबह ही, कम-से-कम चालीस रुपयेका लाभ कमा लिया। आज किसी अच्छेका ही मुँह देखा था।

किंतु उसी समय पत्नीने फिर कहा—'गङ्गाराम दुखी होगा। उसका मानस रो रहा होगा। बेचारा, अपनी यह आखिरी चीज भी यहाँ रख गया।' वह बोली—'तुमसे यह भी नहीं हुआ, इस मुसीबतमें उसे दस-पाँच दे देते। कड़े रखकर क्या बड़ा धन कमा लिया। तुमने तो व्यर्थ ही पूजा-पाठ करनेका ढोंग रच रक्खा है।'

पत्नीसे इतनी बात सुननी थी कि पण्डित सालिगरामका पारा चढ़ गया। तुरंत कहा—'देवीजी! मैं ऐसे दया-धर्म करता फिरूँ, तो फिर भूखों मरूँगा। तुम जो यह सोना लादे फिरती हो, फिर मुझे भी इस गङ्गारामकी तरह, इन्हीं सबको उतरवाकर किसी बनियेके पास जाना पड़ेगा। यह दुनिया है, दुनिया! यहाँ पूजा-पोथी पढ़नेका यह अर्थ नहीं लगाया जाता कि संसारके व्यवहारको भी ताकमें उठाकर रख दिया जाय। गङ्गाराम जरूरतमन्द था, तभी आया। नहीं तो, वह मेरी परछाईंसे भी दूर भागता है। मुझे पता है, वह मेरे पूजा-पाठ और माथेपर लगे तिलक-चन्दनका उपहास करता है। यह भंगी बड़ा बदजात है।'

लेकिन पतिसे इतनी बात सुनकर भी पत्नीको संतोष नहीं हुआ। उसे पतिका वह व्यवहार क्रूर लगा, जैसे अमानुषीय पाप। गङ्गाराम जो कुछ सोचता है, वह संगत लगा।

उसी समय पण्डित बोले—'अब ये कड़े इसको दूँगा भी नहीं। यह साठ रुपयेका माल मैं यों ही न खो दूँगा। कुछ मैं भी तो कमाऊँगा।'

पत्नी सूखे भावसे हँसी—'तुम्हें तो किसी बनियेके घरमें जन्म लेना था, ब्राह्मणके घरमें नहीं। और जब यह काम करना है, तो इन बड़े-बड़े पोथोंको आलमारीमें बंद कर दो। धर्मका अर्थ है दया करना, सो वह तुम्हारे पास है नहीं।' वह बोली—'गङ्गाराम कल रुपये लेकर आये और तुम उसे कड़े न दो, तो क्या यह बेईमानी न होगी। और देखती हूँ इस ब्याज-सूदके चक्करमें तुमने लाला धनपतरायकी भी नाक काट ली। यह मत भूलो, लक्ष्मी किसी एक जगह नहीं रहती। यह तो धूप-छाँहकी तरह आती-जाती है।'

स्वयं पत्नीसे ऐसी बात सुनकर, पण्डित सालिगरामका विवेक विकृत बन गया। माथा झनझना गया। तुरंत कहा—'मैं नहीं समझता था कि देवीजी दयाकी अवतार हैं। आज मुझे धर्मका उपदेश देने चली हैं। मूर्ख बता रही हैं और कह रही हैं, यह तो पाप है, क्रूरता है···ऊँह!'

किंतु पत्नी फिर भी सरल भावमें बोली—'मैं उपदेश नहीं देती। पर कहती हूँ, तुम जो कुछ हो, वही रहो। अपनेसे छलावा मत करो। समाजको भी मत ठगो।'

सुनते ही, एकाएक पण्डित सालिगराम लाल पड़ गये। वे क्षुब्ध बनकर बोले—'बस, बस, चुप रहो! आगे मत बढ़ो। अच्छा खानेको मिल जाता है, तो दिमाग भी चलता है। कल कुछ न रहे, तो पता चले।'

तब, बलात् पत्नी भी तमतमा गयी। बोली—'तो तुम्हीं मुझे रोटी देते हो? मैं अपने भाग्यका खाती हूँ। क्या भूल गये, जब इस घरमें आयी, तो शऊरसे चार बर्तन भी नहीं थे। महाराजका खानेका भी ठौर नहीं था।' उसने कहा—'मैं सत्य और धर्मका पल्ला पकड़कर भूखी भी रह लूँगी। पर यह मेरी छातीमें काँटेकी तरह चुभता है कि तुम अब इतने हृदयहीन बनते जा रहे हो। गंदे पैसेके पीछे पड़े हो।'

एकाएक पण्डित सालिगराम चीख उठे—'पार्वती!'

पार्वतीने कहा—'मैं सत्यको नहीं छिपाऊँगी। आज तुमने अधर्म किया है। उस गङ्गारामका लड़का मौतके मुँहमें पड़ा है और तुमने उसीको ठग लिया। अपनी झूठी पण्डिताईका प्रभाव तुम दूसरेपर डाल सकते हो, मुझपर नहीं। ऐसा आदमी तो कसाई है, धर्म-ग्रन्थोंका पाठ करनेवाला नहीं।' वह बोली—'आज तुम्हें अवसर मिला था दुखीकी आत्माका आशीष पानेके लिये। पर तुम्हारी आँखोंपर तो मायाका चश्मा चढ़ा है, न तुमने गङ्गारामके आँसू देखे, न उसके मनकी पीड़ा। मैं कहती हूँ आज भगवान् तुम्हारे द्वारपर आया था और वह माथा ठोंककर लौट गया। जिस लाला धनपतरायके पास हजारों रुपया है, उसे कौन गाँवमें अच्छा आदमी कहता है। पिछले दिनों जब उसके घर डाका पड़ा, तो गाँवका एक आदमी भी बाहर नहीं निकला। इस धरतीपर तो 'लो' और 'दो'का व्यापार चलता है। जब तुम नहीं दोगे, तो तुम्हारे पास कौन आयेगा। और सुना नहीं, लोग कहने लगे हैं, पण्डितने अपना पेशा छोड़कर बनियेका धंधा अपना लिया···कौआ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चला हंसकी चाल ।' यह कहकर रोषसे भरी पार्वती वहाँसे उठ गयी। वह घरमें जा बैठी। उस समय उसकी आँखें भी छलछला आयीं।

× × × ×

देर हो गयी कि पण्डित सालिगराम एकाएक ही उदास बन गये। उनके मनमें कम्पन आ गया। पार्वतीने एक साथ ही जितनी बात कही, मानो उनके जीवनका लेखा-जोखा ही खोलकर रख दिया। वह इतनी निर्मम बनी कि एक पलको नहीं सोचा, पतिसे क्या कहना है और क्या नहीं कहना। और यह बात सर्वसिद्ध थी कि पार्वतीके आनेपर ही पण्डित सालिगरामका घर फला-फूला। पैसा आया, प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। यह बात पार्वतीने तो उसी समय कही, पर उन्होंने गाँवमें अनेक व्यक्तियों और औरतोंसे सुनी, पण्डित तेरी औरत साक्षात् लक्ष्मी है। तेरे घरमें आयी तो अपने साथ वासन्ती बहार भी ले आयी।

यों दिन चला गया। रात आ गयी। घोर काली-काली। पार्वती देरको सो गयी। लेकिन पण्डित सालिगरामकी आँखोंमें नींद नहीं थी। वे बार-बार करवट बदलते। कभी आँख खोलते, कभी बंद करते। उनके मनमें जैसे कोई तोतेकी तरह चोंच मार रहा था। पीड़ा हो रही थी हृदयमें। जिस प्रकारकी हलचल आज उनके प्राणोंमें हो रही थी, कदाचित् वैसी कभी नहीं हुई। पिछले दिनों जब उनका छोटा भाई मरा, तो उस समय पण्डितजीकी अवस्था खराब थी। पैसा नहीं था। भाईका इलाज ठीकसे नहीं हुआ, तो मर गया। लालासे पचास रुपये माँगे, वह मुकर गया। और पण्डित सालिगरामके सामने थी पार्वतीकी बात। उन्होंने प्रातः गङ्गारामके साथ जो कुछ किया, अच्छा नहीं किया। निकृष्ट और घृण्य व्यवहार किया। भगवान्‌की पूजा करके भी उसे व्यवहारमें नहीं लाया गया। मनुष्य-जीवन सार्थक नहीं किया।

संध्या-समय ही उन्हें किसीने बताया था कि अपने घरके दरवाजेपर बैठा बूढ़ा गङ्गाराम रो रहा था। डाक्टर आया और कह गया, लड़केका बचना आसान नहीं। उसी समय जब गाँव सो गया, कुत्ते भौंकने लगे, तो पण्डित सालिगरामने आलमारीसे कड़े निकाले और कुछ रुपये। सभी कुरतेकी जेबमें रख लिये। वे हाथमें लाठी लिये मेहतरोंके टोलेमें पहुँचे। गङ्गारामके मकानके सामने जैसे ही पहुँचे, तो उन्होंने बाहर अँधेरेमें खड़े होकर ही देखा कि गङ्गाराम और उसकी औरत बीमार बेटेकी चारपाईके पास बैठे हैं। वे उदास हैं, खिन्न हैं। गङ्गारामकी औरत जैसे सुबक-सी रही है।

यह देख, पण्डितजीने आवाज दी—'गङ्गाराम !'

गङ्गारामने सुना, तो उठ खड़ा हुआ। बाहर आया। उसे देखते ही पण्डितने पूछा—'क्या हाल है, लड़केका ?'

उदास और पीड़ित स्वरमें गङ्गाराम बोला—'महाराज ! हाल बुरा है ।' और उसे अचरज हुआ कि यह जाति-धर्मको माननेवाला पण्डित इस भरी रातमें यहाँ कैसे आ गया। क्या कड़े वापिस करने आया ? अपने रुपये लेने ?

लेकिन तभी पण्डित सालिगरामने कहा—'गङ्गाराम ! जीवन और मृत्यु तो भगवान्‌के हाथ है। कह तो मैं देख लूँ, तेरे लड़केको ।'

गङ्गाराम जैसे आकाशमें उड़ गया। तुरंत बोला—'महाराज ! आपके पैर इस म्लेच्छके घरमें पड़ें, ऐसा मेरा भाग्य कहाँ !'

किंतु पण्डित सालिगराम अंदर चल दिये। देखा, लड़का सचमुच ही बुरी अवस्थामें है। जवान है। खाटसे लगा है। तभी उन्होंने जेबसे कड़े निकाले और पचास रुपये। बोले—'गङ्गाराम ! आज मेरे मनमें कोई बोलता है। मुझे धिक्कारता है। ये अपने कड़े रख। ये पचास रुपये भी। लड़केका इलाज करा। भगवान् भला करेगा।'

उसी समय गाँवकी परम्पराको भूलकर गङ्गाराम और उसकी औरतने पण्डितके पैर पकड़ लिये, वे दोनों रो पड़े। लेकिन उस समय पण्डित सालिगरामकी भी मनःस्थिति दुर्बल थी, जैसे निस्तेज बनी थी, वे स्वयं भी उद्विग्न बन गये। बोले—'गङ्गाराम ! हम सब एक ही रास्तेके पथिक हैं। चिन्ता न कर !' और वे तभी अपनी भरी आँखोंको लिये तेजीके साथ घरकी ओर लौट पड़े। वे जैसे ही फिर अपनी चारपाईपर जाकर पड़े, तो तभी, पार्वती उठ आयी और बोली—'आज जी चाहता है तुम्हारे पैरोंको धोकर पी लूँ। तुम्हें सिरपर उठा लूँ ! औरत भी अपने आदमीपर गर्व करती है और वही तो आज मैं अपने अंदर पा रही हूँ। तुम गये, तो मैं भी पीछे नहीं रही, सभी बातें सुन आयी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और तुम्हारे साथ-ही-साथ लौटकर आयी हूँ। अब आराम करो। रात बहुत हो गयी है।'

× × × ×

प्रातः हुआ, पण्डित सालिगराम मन्दिर गये। वहाँ प्रतिदिनकी तरह पूजा-पाठ की और लौट आये। उन्हें देखते ही पार्वती बोली—'तुम्हारा आशीष फल गया। गङ्गाराम-का लड़का बच गया। मैं गयी और देख आयी।'

प्रसन्नभावमें पण्डितजीने कहा—'तुमने बड़े पुण्यका काम किया, पार्वती! तुमने मुझे भी ज्ञान-दानकर कृतार्थ किया।'

और तब मुसकराती हुई पार्वती अपने पतिकी उन हर्षित आँखोंपर एकाएक ही टिक गयी। वह उसी भावनामें खो गयी।

गोस्वामी तुलसीदासजीका सांस्कृतिक व्यक्तित्व

(लेखक—डा० श्रीरघुराजशरणजी शर्मा, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

सबसे प्रथम प्रश्न यह उठता है कि सांस्कृतिक व्यक्तित्व-से अभिप्राय क्या है? किसी व्यक्तिकी सांस्कृतिक उच्चताके निर्धारणके क्या मापदण्ड हैं? मानवने अपने सांस्कृतिक विकासमें कुछ मूल मानवीय गुणों एवं मूल्योंकी प्रतिष्ठा की है। एक व्यक्ति उसी सीमातक सुसंस्कृत कहा जा सकता है, जहाँ-तक वह मूल मानवीय गुणोंके अनुसार जीवनमें निर्वैयक्तिक ढंगसे जीवन-यापन करता है। निर्वैयक्तिकताका अर्थ व्यक्तित्वका अतिक्रमण एवं शून्य होना नहीं है, वरं व्यक्तिगत संकीर्ण स्वार्थोंसे ऊपर उठकर उन जीवन-मूल्योंको ग्रहण करना है जो सार्वदेशीय, सार्वकालिक और सर्वमङ्गलकारी हैं। तब ही प्राणीमात्रसे तादात्म्यकी भावना उत्पन्न होती है।

जड-चेतनमें तादात्म्यकी भावना

गोस्वामीजीमें तादात्म्यकी भावना—

सीय राममय सब जग जानी।

जड़ चेतन जग जीव जत सकल राममय जानि।

—आदि वाक्योंसे स्पष्टरूपमें प्रकट होती है। अपने संकुचित 'स्व' को सर्वव्यापी विश्वात्मा राममें लीन करके उन्हीं सार्वभौम भावनाओंको अपने काव्यमें चित्रित करना गोस्वामीजीकी निर्वैयक्तिकता है। इसी कारण उनके 'स्वान्तः-सुखाय' ने उन्हें भी संतोष दिया और 'सर्वजनसुखाय' होकर मानवमात्रका भी कल्याण किया। यही मानव-संस्कृति-का उच्चतम स्तर है।

उच्चकोटिकी सांस्कृतिक नम्रता

मानस-जैसे महाकाव्यके प्रणेता होकर भी उनके हृदयमें उच्चकोटिकी सांस्कृतिक नम्रता और विनय है। वे कवि और चतुर दोनों ही होना अस्वीकार करते हैं।[1]

गोस्वामीजीके मनमें यही संकोच है कि जिस कथाको वाल्मीकि, व्यास-जैसे महामनीषियोंने वर्णन किया है, उसे मुझ-जैसा साधारण बुद्धिका व्यक्ति कैसे वर्णन कर सकता है।[2] परंतु उन्हें आत्मविश्वास भी है और अपने उन महर्षि पूर्वजोंके प्रदर्शित मार्गपर भी विश्वास है, जिसका अनुसरण करके वे अपना कार्य पूर्ण कर सकेंगे। महर्षि वाल्मीकिने उनके मार्गको प्रशस्त कर दिया है।[3] जिस सेतुका निर्माण महापुरुष करते हैं उसपर चढ़कर तुलसी-जैसी लघु पिपीलिका भी पार हो सकती है।[4]

उनकी इस सांस्कृतिक एवं साहित्यिक नम्रताको देखकर महाकवि कालिदासके ये शब्द बरबस स्मरण आ जाते हैं—

मन्दः कवियशःप्रार्थी गमिष्याम्युपहास्यताम्।
प्रांशुलभ्ये फले लोभादुद्बाहुरिव वामनः॥

महाकवि कालिदास अपनेको बौना कहते हैं, गोस्वामीजी

---

१. कबि न होउँ नहिं चतुर कहावउँ। मति अनुरूप राम गुन गावउँ॥
(मानस, बालकाण्ड)

२. ब्यास आदि कबि पुंगव नाना। जिन सादर हरिचरित बखाना॥
(मानस, बालकाण्ड)

३. मुनिन्ह प्रथम हरि कीरति गाई। तेहि मग चलत सुगम मोहि भाई॥
(मानस, बालकाण्ड)

४. अति अपार जे सरितबर जौं नृप सेतु कराहिं।
चढ़ि पिपीलिकउ परम लघु बिनु श्रम पारहि जाहिं॥
(मानस, बालकाण्ड)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनेको लघु चींटी मानते हैं। यह है भारतके महाकवियोंकी उच्चकोटिकी सांस्कृतिक एवं साहित्यिक शिष्टता एवं नम्रता, जिससे भारतके ये दोनों महाकवि ओतप्रोत हैं।

निर्भीकता

निर्भीकता गोस्वामीजीके व्यक्तित्वकी एक बड़ी विशेषता है।[1] लौकिक हानि, लाभ, यश, अपयशसे भयभीत होनेका तो कोई प्रश्न ही नहीं है, गोस्वामीजीको कालसे भी कोई भय नहीं है; क्योंकि जानकीनाथ उनके रक्षक हैं। समस्त तृष्णाओंसे मुक्त होकर गोस्वामीजी जीवन्मुक्त हैं, क्योंकि जैसा महात्मा बुद्धने कहा—सब दुःखोंका मूल तन्हा (तृष्णा) है।

आत्मसमर्पणकी भावना

गोस्वामीजीकी अपने इष्टदेव राममें सम्पूर्ण आत्मसमर्पणकी भावना है। अपने इष्टदेवकी शपथ लेकर वे अपना सर्वस्व रामनामको ही मानते हैं।[2] उनकी एक ही आशा, एक ही भरोसा और एक ही विश्वास है और वह अपने इष्टदेवमें ही केन्द्रित है। वे उन्हें ही अपना माता, पिता, बन्धु, सुजन, गुरु, पूज्य, परमहितैषी, सखा, सहायक सब कुछ मानते हैं।[3]

'सर्वभूतहिते रताः'की भावना

मनुष्यत्व और पशुत्वका भेद करते हुए हम मानवताके साथ बुद्धि, विवेक, स्नेह, सहानुभूति, दया आदि गुणोंका समावेश करते हैं और पशुतामें अविवेक, क्रूरता और कठोरता आदि अवगुणोंको संयुक्त करते हैं। अंग्रेजीमें प्रयुक्त होनेवाले शब्द 'ह्यूमेनिटी' भी इन्हीं भावोंका द्योतक है। 'सर्वभूतहिते रताः' की भावना इसकी आधारभूत भावना है। यह मोक्षका मार्ग भी है; क्योंकि इसी भावनामें रत होकर इष्टदेवकी प्राप्ति की जाती है।[1] गोस्वामीजीने भी मानवताकी इस आधारभूत भावनाकी स्थल-स्थलपर घोषणा की है।[2] उनका स्पष्ट मत है कि परहितके समान कोई धर्म नहीं है और परपीड़नके समान कोई अधर्म नहीं है। जिनका मन परहितमें लगा हुआ है उनके लिये इस विश्वमें कुछ दुर्लभ नहीं है। इसीलिये वे मानवशरीर धारण करनेकी सार्थकता परोपकार-वृत्ति धारण करने और जन-कल्याण-साधना करनेमें ही मानते हैं[3]; क्योंकि संतोंका सहज-स्वभाव ही होता है कि वे मन, वचन और शरीरसे परोपकारमें लगे रहते हैं।[4]

गोस्वामीजीके सांस्कृतिक व्यक्तित्वका आदर्श—संत-स्वभाव

संत और संत-स्वभाव गोस्वामीजीके सांस्कृतिक व्यक्तित्वके आदर्श हैं और उनके समस्त समन्वित-गुण गोस्वामीजीके आदर्श गुण हैं। संतजनोंकी रहनि (जीवन-शैली) क्या है? गोस्वामीजीके मतमें शीलका ग्रहण, मानापमानकी भावनासे ऊपर उठकर सबसे मृदुल और कठोर व्यवहारोंको समानरूपसे सहना और मुख तथा हृदयसे सदैव राम-नामका स्मरण करना—यही संतोंकी जीवन-शैली[5] है। गीतामें मानवका परमोत्कर्ष 'स्थितप्रज्ञ' होनेमें माना गया है। ऊपर संतके जिन गुणोंका कथन किया गया है वही स्थितप्रज्ञके भी लक्षण हैं।[6]

गुण-संस्कृतिका विवेचन भारतीय साहित्यिक मनीषियोंकी पुरानी परम्परा है, जो आदिकवि वाल्मीकिसे प्रारम्भ होकर

---

१. तुलसी यह जानि हिएँ अपने सपने नहिं कालहु ते डरिहै।
कुमयाँ कछु हानि न औरन की जो पै जानकीनाथ मया करिहै॥

२. रामकी सपथ, सरवस मेरे राम नाम,
कामधेनु-कामतरु मोसे छीन-छाम को।
(कवितावली, उत्तर० छंद-संख्या १७८)

३. राम मातु, पितु, बंधु, सुजनु, गुरु, पूज्य परमहित।
साहेबु, सखा, सहाय, नेह नाते, पुनीत चित॥
(कवितावली ११०)

---

१. ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः। (गीता १२। ४)

२. परहित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई॥
परहित बस जिन्ह के मन माहीं। तिन्ह कहँ जग दुर्लभ कछु नाहीं॥
(मानस, उत्तर०)

३. लाभ कहा मानुष तन पाये।
काय-बचन-मन सपनेहुँ कबहुँक घटत न काज पराये॥
(विनय० पद २०१)

४. पर उपकार बचन मन काया। संत सहज स्वभाव खगराया॥
(मा० उत्तर०)

५. सील गहनि सबकी सहनि, कहनि हीय मुख राम।
तुलसी रहिए एहि रहनि, संत जनन कौ काम॥
(वैराग्यस० १७)

६. प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते॥
(गीता २। ५५)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अविच्छिन्न गतिसे निरन्तर चलती रही है। महाकवि महर्षि वाल्मीकि और महर्षि नारदका संवाद ही रामके गुण-संस्कृति-विवेचनसे प्रारम्भ होता है। महाकवि वाल्मीकि महर्षि नारदसे प्रश्न करते हैं कि इस लोकमें गुणवान्, वीर्यवान्, धर्मज्ञ, कृतज्ञ, सत्यवादी, दृढ़व्रत, प्राणीमात्रका हितैषी, धैर्यवान्, तेजस्वी, ईर्ष्याशून्य आदि गुणोंसे सम्पन्न कौन व्यक्ति है ?[1]

महर्षि वाल्मीकि विस्तारपूर्वक रामके गुणोंकी चर्चा करके अपना निष्कर्ष 'स च सर्वगुणोपेतः कौशल्यानन्दवर्धनः' देते हैं और महर्षि विविध चरित्रोंके द्वारा उन्हींकी गुण-संस्कृतिका वर्णन करते हैं।

महाकवि कालिदासको भी रघुवंशियोंके गुणोंने रघुवंश महाकाव्य रचनेकी प्रेरणा दी।[2] गोस्वामीजीने भी इसी गुण-संस्कृति-विवेचन-परम्पराका अनुसरण किया। गोस्वामीजीके समस्त साहित्यमें मर्यादा-पुरुषोत्तम और उनके आदर्श परिवारकी गुण-संस्कृतिका ही विवेचन है।

गुण-संस्कृति-विवेचनका लक्ष्य व्यक्ति एवं समाजके सम्मुख ऐसे गुणों और आदर्शोंको रखना होता है जो उनके तदनुकूल जीवन-निर्माण करके व्यक्तिगत एवं सामाजिक मङ्गल-साधना करानेमें सहायक हों। इस गुण-संस्कृति-विवेचनमें कविका अपना व्यक्तित्व भी झलकता ही है। गोस्वामीजीका सांस्कृतिक व्यक्तित्व उनकी सांस्कृतिक निधियोंसे समन्वित रचनाओंमें प्रत्यक्ष प्रतिबिम्बित होता है।

प्राचीन भारतमें गौका महत्त्व और पालन

(लेखक—श्रीसुरेशचन्द्रजी वेदालंकार, एम्० ए०, एल्० टी०)

आज भारतके ग्राम-ग्राममें, नगर-नगरमें 'गोवध बंद हो' 'गौ हमारी माता है' का नारा सुनायी दे रहा है। अनेक महानुभाव गौके लिये अपने प्राण समर्पित कर चुके हैं। हिंदूमात्र सभी एकमत और एकस्वरसे आज गौकी हत्या बंद करवानेके लिये सरकारसे प्रार्थना कर रहे हैं। पर, दूसरी ओर सरकार केवल संतोष और आश्वासन देनेके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं कर रही है। हमारा राष्ट्र धर्मनिरपेक्ष है। वह मन्दिरों, मस्जिदों और गिर्जाघरोंको तोड़ना अपराध मानता है। किसी धर्मके ऊपर दूसरे धर्म या व्यक्तिके प्रहार करनेपर उसे दण्ड दिया जा सकता है, यह उसकी नीति है। परंतु आश्चर्य है कि 'गौ'के विषयमें वही सरकार क्यों निरपेक्षता धारण कर लेती है। आज एक-दो नहीं, करोड़ों भारतवासियोंके लिये 'गाय' मन्दिर है, गाय पूजाका स्थान है, गाय उनके लिये धर्मस्थान है। जिस व्यक्तिके खूँटेमें बँधी गाय मर जाती है उसे कितना पश्चात्ताप और अनुष्ठान करने होते हैं, यह सर्वविदित तथ्य है। ऐसी दशामें गोहत्या बंद करनेका कानून क्यों नहीं बनता—यह एक रहस्य है।

आर्य जातिमें सदासे गौकी प्रतिष्ठा और पूजा होती आयी है। इसका नाम ही 'अघ्न्या' रख दिया गया है। कहा जाता है **'अघ्न्या' इति गवां नाम क एनां हन्तुमर्हसि'** अर्थात् गोजातिका नाम ही अघ्न्या है; इसे कौन मार सकता है ? शायद उन्हें यह मालूम न था कि स्वतन्त्र भारतकी सरकार इसे मार सकती है। शायद उन आर्योंको यह ज्ञान नहीं था कि गोहत्या जारी रहनेपर स्वतन्त्रता और स्वराज्यको अधूरा माननेवाली गाँधीकी नाम लेवा यह सरकार गौओंकी हत्याके लिये कारखाने और वधशालाएँ खुलवायेगी ? पर प्राचीन कालमें गाय 'अघ्न्या' ही मानी जाती थी। इसका इतना महत्त्व इसलिये था कि गौओंके बिना आर्योंका यज्ञ नहीं हो सकता था। **'गावो यज्ञस्य हि फलं गोषु यज्ञाः प्रतिष्ठिताः'** अर्थात् यज्ञफलका कारण गौएँ हैं; गौओंमें ही यज्ञ प्रतिष्ठित है। हविष्यके बिना यज्ञ नहीं हो सकता और गोदुग्धके बिना हविष्य बन नहीं सकता। इसलिये गायका एक नाम 'हविर्दुघा' भी रक्खा गया है। बिना गोबरके यज्ञवेदी पोती नहीं जा सकती और बिना कंडोंके यज्ञाग्नि प्रज्वलित नहीं की जा सकती है। गोघृतके बिना यज्ञमें आहुति नहीं डाली जा सकती। इतना ही नहीं, गीतामें कहा है—

१. को न्वस्मिन्साम्प्रतं लोके गुणवान्कश्च वीर्यवान्। आदि (देखिये वाल्मीकिरामायण बाल० २-३)

२. रघूणामन्वयं वक्ष्ये तनुवाग्विभवोऽपि सन्। आदि (रघुवंश प्रथम सर्ग श्लोक ९ देखिये)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्नाद् भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः ।
यज्ञाद् भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः ॥
(३ । १४)

इसका भाव यह है कि यज्ञधूमसे मेघ बनते हैं, मेघ जल बरसाते हैं, जलसे अन्न और तृण होते हैं और अन्न-तृणसे प्राणियोंका प्रतिपालन तथा जीवन धारण होता है, इसलिये समस्त विश्वका आधार गौएँ हैं। विना गौओंके सारा विश्व नष्ट हो सकता है। इसलिये आर्योंका मत है 'एतद् वै विश्वरूपं, सर्वरूपं, विश्वरूपम्' अर्थात् सम्पूर्ण विश्वरूप गायें हैं—विश्वमें जो कुछ है सब गोरूप है।' हमारी यह मान्यता है कि वह ग्रन्थ सद्ग्रन्थ नहीं जिसमें गोजातिकी महत्ताका वर्णन न हो; वह देश पवित्र देश नहीं, जिसमें गोवंश स्वच्छन्दतापूर्वक विचरण न करता हो, वह घर घर नहीं, जिसमें गौका निवास न हो—

यस्मिन् क्वापि गृहे नास्ति धेनुर्वत्सानुचारिणी ।
मङ्गलानि कुतस्तस्य कुतस्तस्य तमःक्षयः ॥
यत्र वेदध्वनिध्वान्तं यन्न गोभिरलंकृतम् ।
यन्न बालैः परिवृतं श्मशानं त्वेव तद् गृहम् ॥

प्राचीन साहित्यमें आया है—

धनं च गोधनं धान्यं स्वर्णादयो वृथैव हि ।

गोधनके सामने और सब धन व्यर्थ-से हैं।

अग्निपुराणमें गौके महत्त्वका प्रतिपादन करते हुए यहाँतक लिखा है—

गावः स्वर्गस्य सोपानं गावो माङ्गल्यमुत्तमम् ।
गावः पवित्रं परमं गावो धन्याः सनातनाः ॥
नमो गोभ्यः श्रीमतीभ्यः सौरभेयीभ्य एव च ।
नमो ब्रह्मसुताभ्यश्च पवित्राभ्यो नमो नमः ॥

अर्थात् गौएँ स्वर्गका सोपान हैं, गौएँ उत्तम मङ्गलकारिणी हैं, गौएँ परम पवित्र और सनातन हैं, इन ऐश्वर्यसम्पन्न गायोंको नमस्कार हो, ब्रह्मसुता इन गायोंको नमस्कार हो, पवित्रतमा इन गायोंको नमस्कार हो।

गौकी इतनी पवित्रताके पीछे उसकी अत्यधिक उपयोगिता ही प्रधान कारण थी। शायद कुछ व्यक्ति यह आपत्ति कर सकते हैं कि गायके प्रति ऋषि-मुनियोंने अनुचित पूजाकी भावना हममें उत्पन्न की है। ऐसी पशु-पूजा वैज्ञानिक नहीं है। परंतु हम जैसे उपयोगकी दृष्टिसे विचार करते हैं, वैसे ही ऋषि-मुनियोंने विचार किया और उन्होंने भारतवर्षके लिये इसकी उपयोगिता बतलायी। अतः हमें गायका पूर्णरूपसे उपयोग करना चाहिये। वेदका वचन है—

'सहस्रधारा पयसा मही गौः'

'ऐसी गाय जिससे कि हजार धाराएँ रोज पैदा होती हों' आप समझ सकते हैं कि दूधकी एक धारा कितनी होती है? स्वामी दयानन्दने अपनी पुस्तक 'गोकरुणानिधि' और 'सत्यार्थप्रकाश' में भी गौकी उपयोगिताका प्रतिपादन किया है। प्रायः लोग यह कहते सुने जाते हैं कि शरीरको हृष्ट-पुष्ट करनेके लिये दूधकी अपेक्षा घीकी आवश्यकता होती है और घी तो भैंससे ही प्राप्त हो सकता है; लेकिन हमारे वेदमें आया है—

यूयं गावो मेदयथाः कृशाश्चित्………………।

हे गायो! जिसका शरीर (स्नेहके अभावसे) सूख गया हो, उसे तुम अपने मेद (चर्बीसे) भर देती हो। यहाँ 'मेदयथा' यानी 'मेदती का प्रयोग किया गया है। मेद कहते हैं चरबीको, स्नेहको, जिसे हम आजकल 'फैट' कहते हैं। इसका तात्पर्य है कि दुबले-पतलेको मोटा-ताजा बनाने लायक चर्बी गायके दूधमें पर्याप्त मात्रामें विद्यमान है। यही कारण है कि आगे कहा गया है—

अश्रीरं चित् कृणुथा सुप्रतीकम् ।

जो शरीर अश्रीर है, उसे गाय श्रीर बनाती है। 'श्रीर' का अर्थ शोभन है और 'अश्रीर' का अर्थ 'शोभाहीन'। इसलिये 'गोरक्षा' 'गोसेवा' का जो पाठ प्राचीन वैदिक ऋषियोंने हमें पढ़ाया, वह केवल अनुचित पूजाकी भावनासे नहीं पढ़ाया। उसमें वैज्ञानिकता थी। उसमें उपयोगिता थी। जो वस्तु हमारे लिये उपयोगी है, उसकी सेवा और रक्षा भी उतनी ही आवश्यक है। अर्थात् हमें उपयोगी जानवरको अधिकाधिक उपयोगी बनाना है।

गोदुग्धसे बने पदार्थोंमें अनेक गुण रहते हैं। शास्त्रोंमें गोदुग्धरहित भोजनको कुभोजनकी श्रेणीमें रक्खा है। कहा है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'गव्यहीनं कुभोजनम्' गव्यहीन भोजन कुभोजन है। गौकी छाछ (मट्ठा) के विषयमें आयुर्वेदमें लिखा है—

'सर्वरोगहरं तक्रम्'

न तक्रसेवी व्यथते कदाचिन्-
न तक्रदग्धाः प्रभवन्ति रोगाः ।
यथा सुराणाममृतं सुखाय
तथा नराणां भुवि तक्रमाहुः ॥

अर्थात् मट्ठा पीनेसे सब रोग नष्ट हो जाते हैं। मट्ठा पीनेवाला कभी अस्वस्थ नहीं होता। जिस तरह देवताओंके लिये अमृत सुखदायक है उसी तरह भूलोकमें मनुष्योंके लिये (गायका) मट्ठा उपयोगी है।

बृहद्धर्मपुराण उत्तरखण्डमें गौके गोबरकी उपयोगिताका प्रतिपादन करते हुए लिखा है—

गवां मूत्रं पुरीषं च पवित्रं परमं मतम् ।

गौका गोबर हिंदुओंके यहाँ शुद्धि-कार्यमें प्रयोग होता है। यह फिनाइलका काम देता है। गोबरसे लिपे हुए स्थानमें मक्खियाँ बहुत कम आती हैं। यह दुर्गन्धनाशक तथा रोगोत्पादक कीटाणुओंको नष्ट करनेवाला है। गोबरमें फास्फोरिक एसिड, चूना, मैगनेशिया और सेलिका इत्यादि पदार्थ पाये जाते हैं। गोबरसे अति उत्कृष्ट खाद बनाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त गोमूत्रके लिये आयुर्वेदमें लिखा है कि—

गोमूत्रं कटु तीक्ष्णोष्णं क्षारं तिक्तं कषायकम् ।
लघ्वग्निदीपकं मेध्यं पित्तकृत् कफवातहृत् ॥

गोमूत्रमें फास्फेट, पोटाश, लवण और नाइट्रोजन नामक पदार्थ होते हैं। गोमूत्रसे नित्य आँखोंको धोते रहनेसे बुढ़ापेतक ज्योति नहीं बिगड़ती। कोढ़ीके लिये गोमूत्र अत्यन्त हितकर है। कोढ़के अतिरिक्त अन्य भी रोगोंके लिये इसे आयुर्वेदमें उपयोगी बताया है। इस प्रकार गव्य पदार्थ अत्यन्त गुणप्रद और पवित्र होनेके कारण ही गौ जातिको 'माता' नामसे पुकारा गया है। और माताकी रक्षा और सेवा मनुष्यका परम कर्तव्य है। यही कारण है कि भारतमें राजातक गोसेवा किया करते थे। दिलीपका उदाहरण हमारे सामने है। महाराज दिलीप ऋषिके आश्रममें रहनेको आता है। ऋषि उसे गायकी सेवाका काम देते हैं। वह गोसेवाका कार्य अत्यन्त लगन और परिश्रमसे करता है। उसका चित्र रघुवंशमें कालिदासने इस प्रकार खींचा है—

स्थितः स्थितामुच्चलितः प्रयातां
निषेदुषीमासनबन्धधीरः ।
जलाभिलाषी जलमाददानां
छायेव तां भूपतिरन्वगच्छत् ॥

शरीरकी छायाकी तरह राजा गायका अनुचर बन गया था। जब वह गाय खड़ी होती थी, तब वह भी खड़ा हो जाता था। जब वह चलती थी तो वह भी चलता, वह बैठ जाती तब वह बैठता, वह पानी पीती, तभी वह भी पानी पीता, गायको खिलाये-पिलाये बिना वह स्वयं नहीं खाता-पीता था।

इसलिये प्राचीन आर्योंने गौको इतना महत्त्व दिया था। ऋग्वेदमें दो गो-सूक्त अत्यन्त प्रख्यात हैं। एक छठे मण्डलका अट्ठाईसवाँ सूक्त और दूसरा है दशम मण्डलका १६९वाँ सूक्त। इसके अतिरिक्त अन्य वेदोंमें भी गौका महत्त्व प्रतिपादित किया गया है। अथर्ववेद १०।१०।३४ में गायकी उपयोगिता मनुष्यमात्रके लिये है, इसका बोध कराते हुए आया है—

वशां देवा उपजीवन्ति वशां मनुष्या उत
वशेदं सर्वमभवत् यावत्सूर्यो विपश्यति ।

जहाँतक सूर्यका प्रकाश जाता है, गाय ही सब कुछ बनती है। देव, मनुष्य, राक्षस—सभी गोदुग्धसे लाभ उठाते हैं।

ऋग्वेदके ८।१०१।१५ मन्त्रमें गोहत्या न करनेकी अपील करते हुए कहा गया है—

माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसाऽऽदित्यानाममृतस्य नाभिः।
प्र नु वोचं चिकितुषे जनाय मा गामनागामदितिं वधिष्ट ॥

जो गौ रुद्रोंकी माता, वसुओंकी पुत्री, आदित्योंकी भगिनी और दुग्धका निवासस्थान है, मनुष्यो! उस निरपराध और अदितिरूपिणी गोदेवीका वध नहीं करना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार भारतीयोंकी संस्कृतिके अनुसार गोहत्या बंद होना अत्यावश्यक है और सरकारको इस दिशामें अविलम्ब कदम उठाना चाहिये ही; क्योंकि मन्दिर, मस्जिद, गिर्जा-घरकी तरह गाय भी एक धार्मिक भावनाकी जीती-जागती प्रतीक है; इसलिये जहाँ गायोंकी हत्या बंद होनी चाहिये वहाँ सरकार तथा जनताको भी गायोंकी रक्षाका प्रयत्न करना चाहिये। गोहत्या बंद हो जानेके बाद यदि शहरों और गाँवोंमें गौएँ दूकानोंके बाहर फेंके कागज, गंदे कपड़े और दूसरी खराब वस्तुएँ खाती रहें, उन्हें भरपेट भोजन और स्वास्थ्यवर्धक वस्तुएँ खानेको न मिलें, उनके बैठने, सोने और जुगाली करनेके लिये स्थान न हो तो गोहत्या न होनेके पीछे गोरक्षाकी जो मूल भावना है, उसका पालन न हो सकेगा। वेदोंमें लिखा है—

प्रजावतीः सूयवसे रुशन्तीः शुद्धाः अयः सुप्रपाणे पिबन्तीः। मा व स्तेन ईशत माघशंसः परि वो रुद्रस्य हेतिर्वृणक्तु।

(अथर्व० ४। २१। ७)

अर्थात् उन गायोंका दूध आदि सेवन करना योग्य है जो बछड़ोंवाली हैं अर्थात् जिनके बछड़े मरते नहीं हैं, जो उत्तम घास आदि पदार्थ खाती हैं। उत्तम जलस्थानमें ही शुद्ध जल पीती हैं। अर्थात् जिनके बछड़े मरते हैं, जो शुद्ध अन्न नहीं खाती, जो उत्तम शुद्ध जल पीती नहीं ऐसी गायोंका दूध पीना योग्य नहीं।

ऋग्वेद १०। १६९। १ मन्त्रमें कहा है—

मयोभूर्वातो अभिवातूस्रा ऊर्जस्वतीरोषधीरा रिशंताम्। पीवस्वतीर्जीवधन्याः पिवन्त्ववसाय पद्वते रुद्र मृळ॥

अर्थात् गौएँ उत्तम वायुमें घूमती रहें, वह उत्तम ओषधियाँ खाकर पुष्ट हों। गाय ही जीवोंकी सच्ची माता है। गौएँ स्वच्छ पानी पीयें। रोगके कीटाणुओंसे गायोंको बचाया जाय और उनको खुश रक्खा जाये, क्योंकि गौएँ ही जीवोंको बचानेवाली हैं।

अथर्ववेद अध्याय ३। १४ के मन्त्रका भाव है कि गोशालमें स्थान ऐसा हो कि जहाँ किसी प्रकारका भय गौओंको न हो। गौओंसे प्रेमके साथ बरतना चाहिये। भयभीत और क्रोधित गौओंका दूध हानिकारक होता है। गौएँ अमृत रस धारण करती हैं। परंतु अपवित्र स्थानमें रहनेसे वही अमृत विषमय होकर रोग उत्पन्न करता है। इसलिये सावधानी रखकर पूर्ण स्वच्छतायुक्त स्थानमें गौओंको रखना चाहिये।

एक मन्त्रमें कहा है—

गौएँ हृष्ट-पुष्ट होनी चाहिये। उनको खूब पुष्टिकारक और ताजा भोजन देना चाहिये। बछड़े भी उत्तम होने चाहिये तथा मालिकका प्रेम गौओंपर और गौओंका मालिकपर होना चाहिये।

इसी अथर्ववेदके ३। १४। ५ मन्त्रमें कहा गया है—

गोशालाको अत्यन्त पवित्र और सुन्दर रखना चाहिये। गौओंको हृष्ट-पुष्ट रखना चाहिये। बछड़े भी प्रसन्न रहें तथा अपने साथ गौओंको भ्रमणादिके लिये खुला छोड़ना चाहिये।

ऋग्वेदके दशम मण्डलके १६९वें सूक्तके प्रथम मन्त्रमें कहा है—

सुखकर वायु गायोंकी ओर बहे। गायें बलकारक तृण, पत्र आदिका आस्वादन करें। ये प्रभूत और प्राण-तृप्तिकारक जलपान करें। रुद्रदेव, चरणयुक्त और अन्नस्वरूपिणी गायोंको स्वच्छन्दतासे रक्खो।

इस प्रकार आर्यलोग गोहत्याके पूर्णतः विरोधी थे। माताकी हत्यासे बढ़कर संसारमें कोई पाप नहीं और गायको वे माता मानते थे। आज भी आर्य और हिंदू ही नहीं विश्वके प्रत्येक व्यक्तिको लाभ पहुँचानेवाली इस गायकी हत्या-पर सरकारको तत्काल प्रतिबन्ध लगाना चाहिये। पर हमारा विचार है कि जहाँ एक ओर प्रतिबन्ध लगे, वहाँ दूसरी ओर उसकी रक्षा और भोजनकी जिम्मेवारी भी सरकार और साथ ही गोभक्त हिंदुओंको अपने कंधोंपर लेनी चाहिये। गोहत्या बंद होनेके साथ-साथ गोरक्षा भी परम आवश्यक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोवधपर केवल केन्द्रीय शासन ही प्रतिबन्ध लगा सकता है ।*

(लेखिका—श्रीमती उर्मिला जोशी)

गोवधका प्रतिषेध भारतीय संविधानके उन महत्त्वपूर्ण लक्ष्य और उद्देश्योंमेंसे एक है जो राज्यकी नीतिके निदेशिक तत्त्वोंमें सम्मिलित किये गये हैं; क्योंकि उनको तत्काल सम्पादित नहीं किया जा सकता था। इन मूल अधिकारों और निदेशिक तत्त्वोंमें अन्तर यह है कि जहाँ मूल अधिकार व्यक्तिके विरुद्ध कार्यवाहीमें राज्यपर बन्धन लगाते हैं, वहाँ निदेशिक तत्त्व जनताके लिये कुछ उद्देश्योंको पूरा करनेके लिये राज्यको कुछ कार्य करनेका निदेश देते हैं।

अनुच्छेद ४८में तीन बातें हैं

निदेशिक तत्त्वोंका महत्त्व इसलिये भी है कि जिन विषयोंको उनमें सम्मिलित किया गया है उनके सम्बन्धमें संविधानद्वारा ही नीति निर्धारित की गयी है। इन तत्त्वों और नीतियोंपर तबतक पुनः कोई विचार नहीं किया जा सकता जबतक कि उनमें कोई दोष अथवा कोई बुराई बतानेकी नियत न हो और संविधानमें संशोधन करनेकी आवश्यकता प्रतीत हो।

इसमें संदेह नहीं कि राज्य इन निदेशोंको लागू करनेमें विलम्ब कर सकता है, लेकिन यह नहीं हो सकता कि उन्हें कार्यान्वित करना अस्वीकर कर दे। इसके अतिरिक्त राज्य—जिसमें केन्द्रीय सरकार, संसद्, राज्य सरकारें और विधान-सभाएँ भी सम्मिलित हैं—के पास किसी निदेशिक तत्त्वको कार्यान्वित न करनेके लिये पर्याप्त कारण होने चाहिये। यद्यपि इस सम्बन्धमें न्यायालयोंमें कोई सुनवाई नहीं की जा सकती, फिर भी एक उचित अवधिके पश्चात् नागरिकोंको इसको कार्यान्वित करनेकी माँग करनेका पूर्ण अधिकार है। इन निदेशिक तत्त्वोंमें गोवधका प्रतिषेध भी सम्मिलित है। जब संविधानमें गोवधके प्रतिषेधकी आवश्यकताको स्वीकार किया जा चुका है, तो अब इस सिद्धान्तकी आवश्यकताको सिद्ध करनेके लिये किसी तरहके विवादकी जरूरत नहीं रह जाती। प्रश्न तो अब केवल यह है कि निदेशिक तत्त्वका पालन किया जाय।

केन्द्रीय सरकारका कहना है कि गोवधका प्रतिषेध राज्य-विषय है और कुछ राज्य-सरकारोंने गोवधपर प्रतिषेध लगा दिया है, शेषको ऐसा करनेका निवेदन किया जा रहा है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, निदेशिक तत्त्व राज्योंके सभी अभिकरणोंके लिये अनुदेशके रूपमें हैं।

निदेशिक तत्त्वोंके अन्तर्गत अनुच्छेद ३६ में लिखा है—

'यदि प्रसंगसे दूसरा अर्थ अपेक्षित न हो तो इस भागमें 'राज्य' का वही अर्थ है जो इस संविधानके भाग ३ में है।' भाग ३—मूल अधिकार—अनुच्छेद १२ में लिखा है:—

"यदि प्रसंगसे दूसरा अर्थ उपेक्षित न हो तो इस भागमें 'राज्य' के अन्तर्गत भारतकी सरकार और संसद् तथा प्रत्येक राज्यकी सरकार और उनके विधानमण्डल तथा भारतके राज्यक्षेत्रके भीतर अथवा भारत सरकारके नियन्त्रणके अधीन सब स्थानीय और अन्य प्राधिकारी भी हैं।"

ऊपरकी बातोंको पढ़कर एक साधारण व्यक्ति भी कह सकता है कि केन्द्रिय सरकारका कहना गलत है। फिर भी यह इतना सरल विषय नहीं है। केन्द्रिय सरकार और राज्य सरकारोंके बीच कई विषय बँटे हुए हैं और विषयोंकी एक समवर्ती सूची भी है। यह समझनेवाली बात है कि संविधानमें 'गाय' का इन विषयोंके वितरणमें किस प्रकार उल्लेख किया गया है। पहले सम्बन्धित निदेशपर एक दृष्टिपात किया जायः—

संविधानका अनुच्छेद ४८—

"राज्य कृषि और पशुपालनको आधुनिक और वैज्ञानिक प्रणालियोंसे संघटित करनेका प्रयास करेगा और विशेषतः गायों और बछड़ों तथा अन्य दुधारू और वाहक ढोरोंकी नस्लके परिरक्षण और सुधारनेके लिये तथा उनके वधका प्रतिषेध (निरोध) करनेके लिये अग्रसर होगा।"

* (क) साप्ताहिक अंग्रेजी 'आर्गेनाइजर' दिनाङ्क २९ जनवरी, १९६७, पृष्ठ ६ में प्रकाशित निबन्धका हिंदी अनुवाद।
(ख) इस निबन्धमें संविधानके सरकारी हिंदी अनुवादमें व्यवहृत शब्दावलीका ही प्रयोग किया गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस अनुच्छेदमें कई बातोंका उल्लेख है और वधका प्रतिषेध तो स्पष्टरूपसे बताया गया है। इन सब बातोंका स्पष्ट अर्थ यह है कि राज्यः—

(१) कृषि और पशुपालनको आधुनिक और वैज्ञानिक प्रणालियोंसे संघटित करनेका प्रयास करेगा, तथा

(२) विशेषतः गायों और बछड़ों तथा अन्य दुधारू और वाहक ढोरोंकी नस्लके परिरक्षण और सुधारके लिये अग्रसर होगा, और

(३) गायों और बछड़ों तथा अन्य दुधारू और वाहक ढोरोंके वधका प्रतिषेध करनेके लिये अग्रसर होगा।

पशुओंके प्रति निर्दयताके निवारणका विषय भी समवर्ती सूचीमें है—

अन्य बातोंके अतिरिक्त यह निदेश न केवल गायों और बछड़ोंके परंतु अन्य दुधारू और वाहक पशुओंके वधके प्रतिषेधके पक्षमें है।

इतना ही नहीं। अब हमें संविधानकी सातवीं अनुसूचीमें विषयोंके वितरणको भी देखना है। राज्योंसे सम्बन्धित दूसरी सूचीकी संख्या १५में—'नस्लका परिरक्षण, संरक्षण और उन्नति तथा पशुओंके रोगोंका निवारण, शालिहोत्री प्रशिक्षण और व्यवसाय'का उल्लेख है। यह उल्लेख विषय अनुसूचीमें ४८ के उपर्युक्त (१) (२) में चर्चित विषयोंको समा लेता है और वधके प्रतिषेधवाले भागको छोड़ देता है। 'संरक्षण' शब्दका अर्थ यहाँ 'वध'का प्रतिषेध नहीं लगाया जा सकता; क्योंकि इसे परिरक्षणके साथ ही पढ़ा जाना चाहिये, जिसमें संरक्षण भी सम्मिलित है। निदेशक तत्त्व जहाँ 'परिरक्षण' का निदेश देता है वहाँ उसमें वधके प्रतिषेधका अलगसे उल्लेख किया गया है। इसका महत्त्व यह है कि वधके प्रतिषेधके लिये अलगसे प्रबन्ध न होनेके कारण, वंश (न कि किसी एक पशु) के परिरक्षण और संरक्षण मात्रके लिये यदि आवश्यक हो तो राज्य कसाइयोंकी वृत्तिके मूल अधिकारपर आघात किये बिना वधका परिषेध कर सकता है। राज्यकी सूचीमें वधके परिषेधका उल्लेख नहीं है।

एक दूसरा पक्ष भी है। परिरक्षण और संरक्षण तो राज्यके लिये निश्चित कर्तव्य है, लेकिन वध-प्रतिषेध व्यक्तियोंके लिये निषेधात्मक कर्म है जिसकी अवहेलना करनेवालेको दण्ड मिल सकता है। यह बात और भी स्पष्ट रूपसे समझमें आ जायगी। यदि यह जान लिया जाय कि 'पशुके प्रति निर्दयताके निवारण' का विषय, जो नस्लके परिरक्षण और संरक्षणमें ही सम्मिलित है, समवर्ती सूचीका अङ्ग है न कि राज्यसूचीका। इसलिये यह तथ्य कि गोवध-प्रतिषेध निदेशक तत्त्वमें विशेष रूपसे सम्मिलित होते हुए भी राज्य-सूचीमें नहीं है, विशेष रूपसे ध्यान देने योग्य है। लेकिन समवर्ती सूचीमें भी यह सम्मिलित नहीं किया गया है। इससे यही परिणाम निकलता है कि यह केन्द्रीय विषय है। अनुच्छेद २४८ (१) में लिखा है।

"संसद्‌को ऐसे किसी विषयके बारेमें, जो 'समवर्ती सूची' अथवा 'राज्यसूची'में प्रगणित नहीं है, विधि बनानेकी अनन्य क्षमता है।"

ऊपरकी बातसे यह भी स्पष्ट है कि कोई भी राज्य किसी भी पशुके वधपर पूर्ण प्रतिषेध क्यों नहीं लगा सकता। वह केवल समवर्ती सूची और राज्यसूचीके अन्तर्गत उद्देश्योंकी पूर्ति मात्रके लिये आवश्यक प्रतिबन्ध लगा सकता है। पूर्ण प्रतिषेध तो केवल संसद्-अधिनियमद्वारा ही लगाया जा सकता है।

कुछ विद्वानोंद्वारा संदेह प्रकट किया गया है कि क्या संसद् गोवधपर पूर्ण प्रतिषेध लगा सकती है ? इस संदेहके कारण हैं—(१) इस विषयपर कुछ राज्योंकी विधियोंपर उच्चतम न्यायालयका निर्णय, (२) संविधानद्वारा संरक्षित मूल अधिकार; क्योंकि अभीतक संसद्‌द्वारा ऐसी कोई विधि नहीं बनायी गयी है, इसलिये उसपर न्यायालयके निर्णयकी बात केवल अटकल मात्र ही है। यदि केन्द्र और राज्योंके बीच विषयों और शक्तियोंके अन्तरको समझ लिया जाय तो यह स्पष्ट हो जायगा कि राज्य-विधिपर न्यायालयका निर्णय केन्द्र-विधिपर पूरे-के-पूरे रूपमें नहीं दोहराया जा सकता।

कसाइयोंकी वृत्ति निरंकुश अधिकार नहीं है

अब मूल अधिकारों (fundamental rights) का प्रश्न उठता है। यह सच है कि जब कभी भी किसी मूल अधिकार और निदेशक तत्त्वमें असंगति होगी, तो मूल अधिकार ही प्रबल माना जायगा। इसलिये कुछ व्यक्तियोंको यह भय है कि गोवधपर पूर्ण प्रतिषेध कसाइयोंकी वृत्तिके मूल अधिकारोंका अतिलङ्घन करेगा, इसलिये संसद्-विधि भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शून्य (प्रवृत्तिहीन) हो जायगी । वास्तवमें ऐसे व्यक्ति यह मान बैठे हैं कि 'कोई वृत्ति, उपजीविका, व्यापार या कारबार करने'का अधिकार निरंकुश अधिकार है । किंतु ऐसी बात नहीं है । अनुच्छेद १९ (खण्ड ६) द्वारा यह अधिकार निर्बन्धित है, जिसमें उल्लिखित है कि—

'उक्त अधिकारके प्रयोगपर साधारण जनताके हितोंमें युक्तियुक्त निर्बन्धन जहाँतक कोई वर्तमान विधि लगाती हो, वहाँतक उसके प्रवर्तनपर प्रभाव, अथवा वैसे निर्बन्धन लगानेवाली कोई विधि बनानेमें राज्यके लिये रुकावट न डालेगी ।'

इसलिये हमारे समक्ष केवल दो प्रश्न हैं—(१) क्या गोवधपर पूर्ण प्रतिषेध साधारण जनताके हितमें होगा, और (२) क्या इस कसाई-वृत्तिके मूल अधिकारपर निर्बन्ध लगाना युक्तिसंगत होगा ? दोनों प्रश्नोंका उत्तर है—'हाँ' ।

स्वयं संविधान जब गोवधपर प्रतिषेध लगाना चाहता है तो यह नहीं कहा जा सकता कि यह साधारण जनताके हितमें नहीं है । और किसी राज्यद्वारा एक निदेशक तत्त्वको कार्यान्वित करनेके लिये निर्बन्ध लगाना युक्तिविरुद्ध नहीं कहा जा सकता । कुछ अधिनियमोंको, विशेषकर भूमिसुधार-सम्बन्धी—जो कुछ मूल अधिकारोंपर निर्बन्ध लगानेवाले प्रतीत होते थे—इन आधारोंपर मान्यता मिल चुकी है ।

उक्त विश्लेषणसे स्पष्ट हो जाता है कि (१) संविधानमें विद्यमान उपबन्ध संसद्‌को (न कि राज्य-विधानमण्डलोंको) गायों, बछड़ों और अन्य दुधारू और वाहक ढोरों या इनमेंसे किसीके भी वधपर प्रतिषेध लगानेकी क्षमता देते हैं, और (२) इस कार्यके लिये संविधानमें संशोधन करनेकी आवश्यकता नहीं है । फिर भी यदि कोई संशय शेष रह जाता हो, तो संविधानमें ही उसे दूर करनेका उपाय भी है । अनुच्छेद २४३ (१) के अन्तर्गत राष्ट्रपति इन तथ्यों और अन्य सम्बन्धित मामलोंको उच्चतम न्यायालयकी सम्मति प्राप्त करनेके लिये भेज सकते हैं और उसकी सम्मतिके अनुसार संसद् विधि बना सकती है या संविधानमें संशोधन कर सकती है । केरल शिक्षा-विधेयकके सम्बन्धमें भी यही नियम अपनाया गया था जब कि केरलके राज्यपालने उसपर अपनी स्वीकृति प्रदान करनेसे पहले उसे राष्ट्रपतिके विचारणार्थ भेजा था ।

हिंदी और गायके विषयमें कांग्रेसकी नीयतमें खराबी—

यह प्रश्न पूछा जा सकता है कि अपने सभी संसाधनों और विधि-विशेषज्ञोंके होनेपर भी क्या केन्द्रीय शासन इन संवैधानिक उपबन्धोंसे अनभिज्ञ है ? मेरा विश्वास है कि वह अनभिज्ञ नहीं है, लेकिन वह गोवधपर पूर्ण प्रतिषेध लगाना नहीं चाहती । अपने-अपने क्षेत्रोंमें राज्य गोवधपर आंशिक प्रतिषेध लगानेके लिये, जैसा कि मैंने ऊपर समझाया है, विधि बना सकते हैं । मेरा अनुमान है कि इसी पृष्ठभूमिके आधारपर शासनके प्रवक्ता कहते हैं कि गोवधपर प्रतिषेध राज्यका विषय है । मौलिक संविधानके प्रारूपमें गाय आदिके वधपर प्रतिषेध लगानेके लिये कोई उपबन्ध नहीं था और जब यह कहा गया कि यह होना चाहिये तो शासनकी ओरसे उत्तर मिला कि 'गाय, बछड़ों आदिके परिरक्षण, संरक्षण और उनकी नस्लकी उन्नति'के अन्तर्गत यह भी किया जा सकता है । लेकिन क्योंकि श्रीपुरुषोत्तमदास टण्डन तथा कुछ अन्य व्यक्ति इस उत्तरसे संतुष्ट नहीं हुए, इसलिये 'वधपर प्रतिषेध' शब्द जोड़ दिये गये । इन शब्दोंको जोड़े बिना वर्तमान संविधानके लागू होनेसे पहले, भारत सरकार अधिनियम १९३५ के अन्तर्गत यह पहलेसे ही राज्यका विषय था । प्रारम्भमें सरकारका यह क्या रवैया था—यह इससे स्पष्ट हो जाता है और उस रवैयेमें अब भी कोई परिवर्तन नहीं हुआ है ।

संघकी राज्यभाषा हिंदीके भाग्यके साथ इस विषयकी समतुलना भी समझनेवाली बात है । ऐसा प्रतीत होता है कि हिंदी और गोरक्षा—दोनोंके लिये विशेष संवैधानिक उपबन्धोंको खटाईमें डाले रखनेके लिये नियमित रूपसे सम्मिलित चेष्टाएँ परदेकी आड़में होती रहती हैं ।

संकटकालीन उपबन्ध

उपर्युक्त परिस्थिति साधारण रूपसे शान्तिकालके लिये है । आजकी राष्ट्रीय संकटकालीन स्थितिमें राज्य-सूचीके किसी भी विषयपर संसद्‌को विधि बनानेकी क्षमता है और जब संसद्‌का अधिवेशन न हो रहा हो तो अनुच्छेद २५० और १२३के अन्तर्गत राष्ट्रपति अध्यादेश घोषित कर सकते हैं । इसके अतिरिक्त जबतक संकटकालीन स्थिति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है अनुच्छेद १९के अन्तर्गत मूल अधिकार (जिनमें वृत्तिका अधिकार भी सम्मिलित है) स्वतः स्थगित हो जाते हैं और अन्य सभी मूल अधिकार या उनमेंसे कोई भी अनुच्छेद ३५८ और ३५९ के अन्तर्गत राष्ट्रपतिके आदेशसे स्थगित हो सकते हैं। कुछ व्यक्तियोंने यह सुझाव दिया है कि यदि राज्य-सभा विशेष बहुमतसे यह संकल्प पारित कर दे कि किसी राज्यसूचीके विषयपर संसद्‌द्वारा विधि बनाना राष्ट्रीय हितमें होगा तो संसद् उस विषयपर विधि बना सकती है। लेकिन ऐसी कोई विधि केवल एक वर्षके लिये वैध होगी जिसके बाद राज्यसभाको पुनः उस संकल्पको पारित करना होगा (अनुच्छेद २४९के अन्तर्गत)। यह स्पष्ट है कि विशेष उपबन्धोंसे सदाके लिये समस्या नहीं सुलझ सकती। ये तो केवल राष्ट्रीय संकटकालीन स्थितिमें या फिर विशेष परिस्थितियोंका सामना करनेके लिये ही काममें लाये जा सकते हैं, जिनकी समाप्तिपर सामान्य उपबन्ध फिर लागू हो जायँगे।

दक्षिण भारतकी तीर्थयात्रा

(लेखक—सेठ श्रीगोविन्ददासजी, श्रीमती रत्नकुमारी देवी, श्रीगोविन्दप्रसादजी श्रीवास्तव)

[गताङ्क पृष्ठ ७४९ से आगे]

त्रिचनापल्ली श्रीरंगमसे चार मीलकी दूरी कावेरीके तटपर बसा है। इसका प्राचीन संस्कृत नाम त्रिशिरःपुरम् है। कहते हैं कि रावणके शिवभक्त भाई त्रिशिराने इसे बसाया था। यही त्रिशिरःपुरम् जैन तीर्थंकरोंके आनेपर तिरुसिनःपल्ली और फिर त्रिचनापल्ली कहलाने लगा। इस नगरके मध्यमें २५० फुट ऊँची एक चट्टान दर्शनीय है, जिसे कैलासका एक प्रस्तर खण्ड माना जाता है। शिखरपर गणेशजीका एक छोटा-सा मन्दिर है, जहाँतक पहुँचनेके लिये सीढ़ियाँ बनी हैं।

श्रीरंगम्‌का महत्त्व अनेक ऐतिहासिक तथा धार्मिक ग्रन्थोंमें अङ्कित है। अनेक आचार्योंने यहाँ अपनी कृतियोंका सृजन कर इस नगरीकी गौरव-गरिमाको बढ़ानेमें सहयोग प्रदान किया है। वल्लभसम्प्रदायके आचार्य श्रीवल्लभाचार्यका जीवन इसी नगरसे सम्बद्ध है।

श्रीरंगम्‌की धार्मिक महत्ता एक पौराणिक आख्यानपर आधारित है। कहते हैं कि एक बार श्रीरंगनाथजी चोल देश एवं चोल राजाओंके आराध्यदेव बनकर कावेरीके मध्यमें विराजित हो गये। कावेरीके तटपर एक नगर बस गया, जिसे श्रीरंगम् कहने लगे। एक बार कावेरी नदीमें बहुत बड़ी बाढ़ आयी और श्रीरंगम्‌का समस्त क्षेत्र बालूके ढेरसे दब गया। उसी समय चोल राज्यका एक नरेश शिकार खेलने जंगल गया। थककर जब वह एक सघन वृक्षकी छायामें आराम करने लगा तो वृक्षपर बैठे एक तोतेसे उसे ज्ञात हुआ कि श्रीरंगक्षेत्र नीचे बालूसे दबा है। राजाने प्रयत्न कर मन्दिरका उद्धार किया। यही नरेश 'किलिकण्ड चोलन' के नामसे विख्यात हुए। आगे चलकर राजा महेन्द्र चोलने भी श्रीरंगजीको अपना आराध्यदेव माना और उक्त स्थानपर अनेक भग्नावशेषोंकी मरम्मत करायी।

इस सम्बन्धमें एक और जनश्रुति प्रचलित है। धर्मवर्माके वंशज नन्द चोलने भी श्रीरंगजीकी भक्ति की। वे निःसंतान थे। एक दिन उन्हें कमलिनीसे एक अत्यन्त सुन्दर कन्या मिली। उन्होंने उसका पुत्रीवत् पालन-पोषण किया। उसका नाम कमलवल्ली रक्खा गया। एक दिन जब वह अपनी वाटिकामें फूल चुन रही थी तो उसकी दृष्टि एक अश्वारोही राजकुमारपर पड़ी। कहते हैं कि भगवान् श्रीरंगजी स्वयं तरुण राजकुमारका वेष धरकर आये थे। कमलवल्लीने मुग्ध होकर मन-ही-मन उनका पतिके रूपमें वरण कर लिया। तदनन्तर वह उसी विरहाग्निमें तपने लगी। राजाको उसके मनकी बात ज्ञात हो गयी और उसका विवाह उसी तरुण युवकसे कर दिया गया। विवाहके बाद जब कमलवल्ली अपने पतिके साथ मन्दिरमें प्रविष्ट हुई तो दोनों ही भगवत्-ज्योतिमें अन्तर्निहित हो गये। राजाने वहाँ एक बड़े मन्दिरका निर्माण कराया और उसमें अनेक मण्डप, प्राचीरें, गोपुरम् और पुष्पवाटिकाएँ आदि बनवा दीं। उसके बाद प्रतिवर्ष कमलवल्लीका विवाहोत्सव मनाया जाने लगा। यह उत्सव आजकल भी फाल्गुनके महीनेमें सम्पन्न होता है।

इसके बाद भी अनेक नरेश अपने अतुल ऐश्वर्यमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीरंगम् मन्दिरका परिवर्द्धन एवं शोभावृद्धि करते रहे; किंतु मुगलकालमें इस मन्दिरको पर्याप्त क्षति उठानी पड़ी। भगवान् श्रीरंगकी मूर्ति मुसल्मान शासकोंद्वारा दिल्ली पहुँचा दी गयी। तदनन्तर वैष्णव आचार्योंके अथक परिश्रमसे मन्दिरमें पुनः भगवान्‌की मूर्ति स्थापित की गयी।

यह भी कहा जाता है कि दिल्लीमें मुसल्मान शासककी पुत्री श्रीरंगजीपर मुग्ध हो गयी। वह श्रीरंगजीसे मिलकर एक हो गयी। आज भी उस मुसल्मान स्त्रीका एक मन्दिर है, जिसमें श्रीरंगजीके समान ही पूजा हुआ करती है।

आगे चलकर विजयनगर साम्राज्यके नायक शासकोंने भी मन्दिरकी समृद्धिमें पर्याप्त रुचि ली। बहुमूल्य रत्नोंके आभरणोंसे भगवान्‌को अलंकृत किया। विजयरंग चोक्कनाथ नायकने कई मण्डप बनवाये। आजकल मन्दिरमें स्वर्ण और रजतकी जो पूजाके पात्र, सामग्री आदि पाये जाते हैं वह सब विजयनगरके शासकोंकी देन है।

श्रीरंगकी पौराणिक तथा ऐतिहासिक महत्तापर विचार कर लेनेके बाद इस नगर और मन्दिरकी स्थितिका परिचय भी आवश्यक है। कावेरी नदीकी दो धाराओंके मध्य बसा श्रीरंगम् नगर लगभग १८ मील लम्बा तथा चार मील चौड़ा है। कावेरीकी उत्तरी धारा 'कोलरून' तथा दक्षिणी धारा कावेरी कहलाती है। श्रीरंगम् मन्दिरसे लगभग १० मील ऊपर दोनों धाराएँ पृथक् होती हैं और मन्दिरसे लगभग १२ मील आगे जाकर दोनों धाराएँ एक हो जाती हैं। इन दोनों धाराओंके मध्यमें अवस्थित श्रीरंगम् नगरकी जनसंख्या लगभग सत्तर हजार है। श्रीरंगम् मन्दिरका विस्तार तीन मीलतक है। नगरका सारा प्रदेश मन्दिरके घेरेके भीतर आ जाता है। इतना विशाल मन्दिर भारतमें शायद ही कोई हो।

मन्दिर सात प्राचीरोंमें समाया है। जिसमें छोटे-बड़े कुल मिलाकर २१ गोपुर हैं। इनमें वेल्ले गोपुर (श्वेत गोपुर) सबसे बड़ा लगभग १७० फुट ऊँचा है। मन्दिरके सातों प्राचीर भू-लोक, भुवर्लोक आदि सप्तलोकोंके परिचायक माने जाते हैं। आधुनिक खोजके अनुसार यह मन्दिर लगभग पाँच हजार वर्ष पुराना है।

इस मन्दिरकी पहली, दूसरी और तीसरी परिक्रमामें पण्डों और ब्राह्मणोंके घर हैं। आचार्यगणोंके महल तथा मठ भी हैं। चौथे घेरेमें सहस्र-स्रोत-मण्डप, श्रीरामानुजाचार्यजीका मन्दिर, भगवान् सुदर्शनका मन्दिर और देवी रंगनायकी (लक्ष्मीजी)का मन्दिर उल्लेखनीय है। पाँचवें घेरेमें दक्षिणी गोपुरके सामने गरुड़मण्डप है, जिसमें गरुडजीकी एक विशाल भव्य मूर्ति है। इसी घरके ईशानकोणमें चन्द्र-पुष्करिणीका गोलाकार सरोवर है जिसके तटपर अनन्त पीठ; प्राचीनतम पुन्नाग वृक्ष, श्रीरामचन्द्रजी एवं वैकुण्ठनाथजीका मन्दिर है। छठे घेरेके भीतरी भागमें भगवान्‌के सामने स्वर्णमण्डित ध्वज-स्तम्भ है तथा अन्यत्र चारों ओर अनेक मण्डप हैं।

सातवें घेरेमें भगवान् श्रीरंगजीका मन्दिर है जिसका द्वार दक्षिणाभिमुखी है। मन्दिरका विमान स्वर्ण-मण्डित है जो ओं (ॐ) कारकी आकृतिमें है। चार वेदोंके परिचायक विमानमें चार कलश हैं। विमानमें भगवान् श्रीवासुदेवजीकी भव्य मूर्ति है।

गायत्री महामण्डपके मध्य शेषशय्यापर शयन किये श्याम वर्णकी विशाल दक्षिणाभिमुखी द्विभुजमूर्तिके माध्यमसे श्रीरंगजीके दर्शन होते हैं। मूर्तिके मस्तकपर अपने फणोंके छत्रसे शेषनागजी शोभायमान हो रहे हैं। बहुमूल्य रत्नाभरणोंसे विभूषित यह देवोपम मूर्ति अपनी भव्यतासे सहज ही दर्शकोंको एकाग्र कर देती है। निकट ही उत्सवमूर्ति, श्रीदेवी और भूदेवी समेत नम्पेरुमाल स्थित हैं।

श्रीरंग-मन्दिरकी इन परिक्रमाओं, मण्डपों और गोपुरोंका निर्माण समय-समयपर विभिन्न राजाओंके द्वारा सम्पन्न हुआ है, इनमें कुलशेखरन, आर्यभटाल, परकालन, विक्रमचोल, श्रीसुन्दर पाँडियन, विक्रमन आदि चोल राजाओंके नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। मन्दिरके निर्माणकार्यके अतिरिक्त वाहन, बर्तन, जिनमें स्वर्ण और चाँदीके पात्र तथा आभूषण आदि शामिल हैं, आदिकी भेंटद्वारा उक्त राजा लोग मन्दिरकी समय-समयपर समृद्धि करते रहे हैं।

इस प्रकार सात विस्तीर्ण परकोटों, इक्कीस द्वारों और चौबीस गोपुरोंसे युक्त श्रीरंगनाथजीका यह मन्दिर चार स्क्वायर वर्गमीलके क्षेत्रमें फैला हुआ है। मन्दिर चौखुटा है तथा प्रथम तीन परिक्रमाओंमें बस्ती है। इन तीन परिक्रमाओंमें लगभग दस हजार आदमी रहते हैं। इन्हीं परिक्रमाओंमें बाजार है, जिसमें हर प्रकारकी सामग्री मिलती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरा महत्त्वपूर्ण मन्दिर है जम्बुकेश्वर महादेवका। इसकी परिक्रमामें श्रीपार्वतीजीका मन्दिर है। इसके पाँच परकोटे हैं, सोलह गोपुर हैं तथा दो परिक्रमाओंमें बस्ती हैं, जिनमें लगभग पाँच हजार आदमी निवास करते हैं।

श्रीरंगम् श्रीरामानुजाचार्यके श्रीवैष्णव सम्प्रदायका भारतवर्षका सबसे प्रमुख मन्दिर है। श्रीवैष्णव सम्प्रदायके भारतमें जो अन्य प्रमुख मन्दिर हैं, दृष्टान्तके लिये वृन्दावनका श्रीरंगजीका मन्दिर आदि वे सब इसी मन्दिरके अनुकरण हैं। श्रीरंगनाथजीकी मूर्ति कितनी पुरानी है, इस सम्बन्धमें तो कुछ कहना कठिन है; किंतु श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके उत्तरार्द्ध के ७९वें अध्यायके १४ वें श्लोकमें जहाँ बलरामकी तीर्थयात्राका वर्णन है, वहाँ बलरामके श्रीरंगम् आने और इस मूर्तिके दर्शन करनेका उल्लेख हुआ है—

कामकोष्णीं पुरीं काञ्चीं कावेरीं च सरिद्वराम्।
श्रीरङ्गाख्यं महापुण्यं यत्र संनिहितो हरिः॥

उस समय श्रीरङ्गनाथजीके मन्दिरका क्या रूप था। यह आज कहना कठिन है।

श्रीरंगनाथके वर्तमान मन्दिरका निर्माण श्रीतिरुमंगै आलवारने कराया। दक्षिण भारतमें आलवार वैष्णवोंका एक बहुत पुराना सम्प्रदाय है। आलवारोंके कथनानुसार इस सम्प्रदायके संत द्वापरयुगसे होते आये हैं। इनमें तिरुमंगै आलवार एक प्रधान संत हुए।

तिरुमंगै आलवारका जन्म ईसापूर्व आठवीं शताब्दीमें हुआ था। वे परम भक्त थे। बचपनसे ही तीर्थयात्राओंपर जाना और देवी-देवताओंके दर्शन करना उन्हें बहुत प्रिय था। वे एक प्रतिभाशाली व्यक्ति और महान् कवि थे। उनकी यात्राओंके दौरानमें उनके गौरवशाली व्यक्तित्वसे प्रभावित होकर ४ सिद्ध एवं असाधारण गुणोंसे सम्पन्न व्यक्तियोंने उनकी शिष्यता ग्रहण कर ली और उनके साथ दूर-दूरतक यात्राएँ करने लगे। पहले शिष्यका नाम 'तोलावलाक्कन' था। इस नामका अर्थ है 'अजेय वक्ता' और उसका यह नाम इसलिये पड़ा था कि उसे कोई शास्त्रार्थमें नहीं हरा सकता था। दूसरे शिष्यका नाम 'तालुधवन' था—जिसका अर्थ है 'द्वार खोलनेवाला'। वह बिना किसी चाबीकी सहायतासे अपनी एक साँससे ही कोई भी ताला खोल सकता था। तीसरे शिष्यका नाम 'निललै मिथिप्पन' था; जिसका अर्थ है 'छायाको पकड़नेवाला'। वह जिस किसीकी परछाईंको अपने पैरसे छू लेता था, उसकी चेतना चली जाती थी। चौथे शिष्यका नाम 'नीर्मल नडाप्पन' था, जिसका अर्थ है 'जलपर चलनेवाला'। वह पानीपर उसी प्रकार चल लेता था, जिस प्रकार जमीनपर।

अपने चार शिष्योंसहित अनेक तीर्थोंके दर्शन करनेके बाद तिरुमंगै रंगनाथजीके मन्दिरपर पहुँचा, जो कावेरीके मध्य एक छोटेसे टापूपर स्थित है। इस समय यह मन्दिर बहुत छोटा था और चमगादड़ोंका आश्रयस्थल बना हुआ था। वह ध्वस्त अवस्थामें था और चारों ओर वनसे घिरा था। दिन ढलनेसे पूर्व एक बार पुजारी वहाँ आता था और प्रतिमापर कुछ पुष्प तथा थोड़ा-सा जल चढ़ाकर लकड़बग्घों तथा गीदड़ोंके भयसे भाग जाता था। श्रीरंगनाथकी यह दुर्दशा देखकर तिरुमंगैको वहाँ एक उपयुक्त भवन निर्माण करानेकी तीव्र इच्छा जाग्रत् हुई। यह इच्छा शीघ्र ही उत्कट अभिलाषामें परिणत हो गयी। वह स्वयं धनहीन था और नहीं जानता था कि इसके लिये आवश्यक धनराशि कहाँसे प्राप्त हो। अपने चारों शिष्योंसे परामर्शके बाद उसने देशके विभिन्न भागोंमें रहनेवाले धनिकोंसे भीख माँगनेका निश्चय किया। जब भी उसे किसी धनी व्यक्तिका नाम ज्ञात होता; वह तत्काल उसके पास पहुँच जाता, अपना उद्देश्य स्पष्ट करता और इसके लिये धन माँगता। किंतु इन धनिकोंमेंसे एकने उसे फूटी कौड़ी भी नहीं दी और उल्टे उसे चोर बताकर अपनी नास्तिकता व्यक्त की।

तिरुमंगै परम भक्त था। इस दुर्व्यवहारपर वह जरा भी उद्विग्न नहीं हुआ। किंतु जंगलमें भगवान्‌को इस प्रकार पूजारहित देखकर और मन्दिरको लकड़बग्घों तथा गीदड़ोंसे घिरा पाकर उसे बहुत क्षोभ और दुःख होता था। जिस प्रकार कोमल मिट्टीसे बना बर्तन अग्निके स्पर्शसे सख्त हो जाता है, उसी प्रकार उसका सुकोमल हृदय रोषसे भरकर तड़ित (बादलोंकी बिजली) के समान मचल उठा। वह अन्तमें अपने चारों शिष्योंके समक्ष फूट पड़ा और कहा—'मेरे बचो ! क्या तुमने भगवान्‌के प्रति इन धनिकोंकी भक्ति नहीं देख ली। ये सदा नास्तिक और पाखण्डी ही बने रहेंगे। तब हमारा क्या कर्तव्य है ? क्या हम इन पिशाचोंके पैर पड़कर श्रीरंगनाथजीको इस दुर्दशामें रक्खें या हम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जगत्स्रष्टा भगवान्‌का अभूतपूर्व भव्यताका मन्दिर बनाकर इन दुर्जनोंको लज्जित करें।'—शिष्योंने उत्तर दिया 'हमारा कर्तव्य भगवान्‌की सेवा है, इन दुष्टोंकी खुशामद करना नहीं।' गुरुने कहा—'तब तैयार हो जाओ और आजसे देखो कि इन लालची लोगोंका सारा धन मन्दिरके निर्माणपर व्यय हो। ये धनी लोग स्वभावमें बड़े निर्मम होते हैं और गरीबोंका खून चूसते रहते हैं, जो कठोर परिश्रमके बाद भी भूखे रह जाते हैं। तब आओ, हम इन धनियोंको लूटें और इनकी सम्पत्ति मन्दिरके निर्माण और गरीबोंकी सेवापर व्यय करें।' शिष्य अपने गुरुके आदेशका पालन करनेके लिये तत्काल तैयार हो गये।

तोला बलाक्कनने कहा—'परम आदरणीय! आजतक कोई मुझे बहसमें नहीं हरा सका। जब मैं किसी धनी व्यक्ति और उसके कर्मचारियोंको वाद-विवादमें उलझा लूँ और वे शेष सब बातें भूल जायँ तो आप अपने लोगोंके साथ उसका सारा धन लेकर भाग सकते हैं।

ताल़ुधवनने कहा—'परम पूज्य! केवल अपनी एक साँससे ही मैं कोई भी द्वार खोल सकता हूँ, चाहे वह कितनी भी मजबूतीसे बंद क्यों न किया गया हो। धनियोंकी तिजोरियाँ मैं आसानीसे खोल सकता हूँ।'

नीललै मिथिप्पनने कहा—'परम माननीय! जिस किसीकी परछाईंको मैं अपने पैरोंसे छू लेता हूँ, वह तत्काल अपनी चेतना खो बैठता है। अतः आजसे धनी राहगीरोंका धन आप आसानीसे ले सकते हैं।'

नीर्मल नडाप्पनने कहा—'परमश्रेष्ठ गुरु! खाइयोंसे घिरे शाही किलोंमें घुसना मेरे लिये बहुत सरल है; क्योंकि मैं पानीपर आसानीसे चल सकता हूँ। अतः आजसे राजाओंके सब खजाने आपके हैं।'

इन असाधारण गुणोंसे युक्त अपने शिष्योंकी सहायतासे तिरुमंगै शीघ्र ही एक बड़े दस्यु-दलका नेता बन गया और अपरिमित धन द्वीपमें एक गुप्त स्थानपर जमा किया जाने लगा।

तिरुमंगैने भारी राशियाँ व्यय करके देशके विभिन्न भागोंसे शिल्पकारों (भवन निर्माण करनेवालों) को बुलवाया और एक विशेष समारोहमें मन्दिरकी आधारशिला रक्खी गयी।

इस पवित्र स्थलपर पहली दीवार और उसके ऊपर एक ऊँचे गुम्बदका निर्माण-कार्य पहले दो वर्षमें पूर्ण हो गया। हजारों शिल्पकारोंने दो वर्षतक दिन-रात काम करके आन्तरिक भागका निर्माण पूर्ण किया। तब बाह्य भागपर कार्य शुरू हुआ। ४ वर्षतक दिन और रात परिश्रमके बाद पहले भागका निर्माण पूर्ण हुआ। इस प्रकार १ लाख शिल्पकारोंने दूसरा भाग ६ वर्षमें, तीसरा ८ वर्षमें, चौथा १० वर्षमें, पाँचवाँ १२ वर्षमें और छठा भाग १८ वर्षमें बनाकर पूर्ण किया। सारे मन्दिरका निर्माण पूर्ण होनेमें कुल ६० वर्ष लग गये। अबतक तिरुमंगै अपने जीवनके ८०वें वर्षमें प्रवेश कर चुका था और उसके चारों शिष्योंकी आयुमें भी एक-एक दो-दो वर्षका ही अन्तर था।

जब आन्तरिक कमरोंका निर्माण पूर्ण हो गया तो राजा लोग स्वेच्छासे धन भेजने लगे और अपने शिल्पकारोंकी सेवाएँ अर्पित करने लगे। उन्हें विश्वास हो गया कि तिरुमंगै सच्चा भक्त है। इसके साथ ही वह १००० से अधिक डाकुओंके दलका नेता भी था। कोई भी राजा या धनी उसके आतङ्कसे अछूता न था, इससे पूर्व कि तिरुमंगै उनका सर्वस्व लूटकर ले जाय, वे स्वेच्छासे ही धन एवं अन्य प्रकारकी सहायता भेजना अधिक अच्छा समझते थे। तिरुमंगै अपने शिल्पकारोंको नियमित रूपसे पारिश्रमिक देकर उन्हें संतुष्ट रखता था। अपनी प्रसिद्धि तथा शक्तिके कारण वह अपने जमानेका सबसे बड़ा शासक बन गया और राजा उसके अधीन एवं आश्रितके समान थे। इसपर भी तिरुमंगैकी आदतें और व्यवहार अत्यन्त सरल थे। दिन ढलनेपर वह अपना भोजन भिक्षामें मिले अनाजसे स्वयं बनाता था। जैसा संयम और इच्छाओंपर नियन्त्रण तिरुमंगैको था, उतना बहुत कम लोगोंको होता है। उसकी भगवद्भक्ति इतनी प्रबल थी कि कभी भी अश्रु उसकी आँखोंसे झरने लग जाते। उसके क्षेत्रमें रहनेवाला कोई भी व्यक्ति निर्धनतासे पीड़ित नहीं था। केवल धनी व्यक्ति ही उससे आतङ्कित रहते थे।

सात दीवारोंके इस अति भव्य मन्दिरका निर्माण अब पूर्ण हो चुका था। तिरुमंगैने अपने शिल्पकारोंको उदारतापूर्वक पुरस्कार दिया। यहाँतक कि उसके पास एक पैसा भी नहीं बचा। इसी बीच लगभग १००० लुटेरे, जिन्होंने डकैतीमें उसका साथ दिया था, उससे धनकी माँग करने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगे। वह बहुत देरतक सोचता रहा किंतु उनकी माँग पूर्ण करनेका उसे कोई भी उपाय नहीं सूझा। सहसा उसने नीर्मल नडाप्पनको एक ओर बुलाया और उसके कानमें कुछ कहा। नडाप्पन कावेरीके उत्तरी तटपर एक विशाल नाव ले आया। इसका प्रयोग मन्दिरके लिये बड़े-बड़े पत्थर लानेमें होता था। नडाप्पन इस नावमें प्रवेश कर गया और इसमें दो घंटेतक रहा। लौटकर उसने अपने गुरुको कुछ बताया। इसी बीच लुटेरोंने तिरुमंगैको दिवालिया समझकर उसे मार डालनेका षड्यन्त्र रच डाला था। इसी समय नडाप्पन नावमें प्रविष्ट हुआ और उन लुटेरोंको सम्बोधित करके ऊँचे स्वरसे कहने लगा—'प्यारे भाइयो! यहाँ नजदीक ही कावेरीके उत्तरी तटपर हमारे मालिकका एक बड़ा खजाना है। आओ, हम सब वहाँ चलें और उस खजानेका सारा धन आपसमें बाँट लें। नाव तैयार है। मैं तुम्हें वहाँ ले जाऊँगा और तुम्हें वह स्थल दिखाऊँगा जहाँ खजाना छिपा है। तुम जैसे चाहोगे, वैसे इसे बाँट लिया जायगा। जो कुछ तुम हमें देना चाहोगे, हम ले लेंगे। हम इस देशमें ६० वर्षतक लूटमार करते रहे। अब लोगोंके पास कुछ नहीं बचा है। आओ, हम बचा-खुचा खजाना आपसमें बाँटकर अपने शेष दिन आरामसे गुजारें।' सब लोग इस प्रस्तावसे सहमत होकर और अपने नेताको मारनेका विचार छोड़कर नडाप्पनके पीछे हो गये।

सब लोग नावपर सवार हो गये। यह वर्षाऋतु थी। कावेरीकी गहरी धारा, जो अब एक मीलतक फैल गयी थी, तीव्र गति और भयानक आवाजके साथ बह रही थी। यह शामका समय था किंतु आकाशमें काले बादलोंके कारण मध्यरात्रि-सी लग रही थी। जहाज इस समय नदीके बीचोंबीच चल रहा था। अपने तीनों शिष्यों-सहित तिरुमंगै नदीके दक्षिणी तटपर खड़ा हुआ जहाजकी ओर देख रहा था। अचानक एक भीषण गर्जनपूर्ण ध्वनि हुई और कावेरीके धरातलसे हृदयविदारक आवाज आयी। कुछ ही क्षणोंमें सब शान्त हो गया। नाव अब दिखायी नहीं दे रही थी। कुछ ही समय बाद एक व्यक्ति पानीके ऊपर धीरे-धीरे चलता हुआ आया और इस परमभक्त और भूतपूर्व दस्यु-नेताके चरणोंपर झुक गया। यह व्यक्ति कोई अन्य नहीं, वरं चौथा शिष्य नीर्मल नडाप्पन ही था। तिरुमंगैने एक गहरी साँस भरी और कहा—'उठो वत्स! श्रीरंगनाथने निश्चयपूर्वक अपने बच्चोंको अपनी गोदमें ले लिया है। तुम उसकी चिन्ता मत करो। इस पृथ्वीको छोड़कर वे सब वैकुण्ठ चले गये हैं। मुझे बताओ, क्या लुटेरोंका जीवन बितानेसे यह अच्छा नहीं है। आओ, हम अपना शेष जीवन श्रीरंगनाथकी सेवामें वितायें। जिस उद्देश्यसे हमने डकैतीका पेशा अपनाया था, वह जब पूर्ण हो गया है। अब भगवान्‌की सेवाके सिवा हमारा अन्य कोई कार्य नहीं है।'

इस प्रकार तिरुमंगै और उसके ४ प्रिय शिष्योंने अपना जीवन पूर्ण कर विष्णुपद प्राप्त किया।

कावेरीकी उत्तरी शाखा, जहाँ हजार लुटेरोंकी मृत्यु हुई थी, अब भी 'कौल्लिडम'के नामसे पुकारा जाता है, जिसका अर्थ है 'हत्यास्थल'।

यह भी कहा जाता है कि एक बार एक राजाके महल-पर धावा बोलनेके बाद तिरुमंगै अंदर एक मन्दिरमें घुसा। इस मन्दिरमें श्रीमन्नारायणकी मूर्त्ति प्रतिष्ठित थी। इस मूर्त्तिपर बहुमूल्य हीरे-जवाहरातसे युक्त कई आभूषण थे। तिरुमंगैने ये सब आभूषण उतार लिये किंतु एक अंगूठी वह नहीं निकाल पाया। यह अंगूठी उँगलीपर इतनी मजबूतीसे सटी हुई थी कि वह काफी जोर लगाकर भी इसे नहीं निकाल पाया। अन्तमें उसने इसे निकालनेके लिये दाँतोंकी सहायता ली। जैसे ही उसके दाँत भगवान्‌की उँगलीसे छुए, तिरुमंगैमें तत्काल दैवी ज्ञान उत्पन्न हो गया। भगवान्‌के प्रेममें पागल होकर उसने भगव-त्प्रशस्तिमें एक हजार श्लोक गाये। आज भी ये श्लोक 'तिरुमोली' अर्थात् पवित्र वाक्यके नामसे पुकारे जाते हैं।

इसके बाद आलवार संतोंमें ही ईसाकी दसवीं शताब्दीमें एक श्रीयमुनाचार्य नामक महान् संत हुए! (क्रमशः)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कामके पत्र

(१)

हम जो चाहते हैं, पहले हमें वही देना चाहिये

सप्रेम हरिस्मरण ! आपका पत्र मिल गया था। उसके पश्चात् दूसरा पत्र भी मिला, पर मैं पत्र नहीं लिख सका, क्षमा कीजियेगा। आपके लंबे पत्रका थोड़ेमें ही उत्तर लिख रहा हूँ। यह सृष्टि त्रिगुणात्मक है। जहाँ सत्त्व है, वहाँ तम भी किसी अंशमें रहता है। तमोगुण बढ़ जानेपर मनुष्य प्रमाद कर बैठता है। वस्तुतः अपना भविष्य बिगाड़ना कोई नहीं चाहता, पर तमोगुणके आवेशमें भविष्यपर विचार करनेकी शक्ति निष्क्रिय हो जाती है। अतएव मनुष्य अपना ही भविष्य अपने हाथों नष्ट कर देनेवाला कार्य करने लगता है। ऐसा मनुष्य क्रोधका पात्र नहीं, क्षमाका—दयाका पात्र है। एक बात सदा याद रखनी चाहिये कि हमारा बुरा हमारे बुरे प्रारब्धके बिना कोई कर ही नहीं सकता, चाहे वह कितना ही प्रयत्न करे। जहाँ भी अपना अनिष्ट होता है अपने ही कर्मके फलरूपमें होता है। वह दूसरा व्यक्ति तो मूर्खतावश निमित्त बनकर अपना बुरा करता है। अतएव आपके साथ जिस भाईका व्यवहार अनुचित हुआ अथवा जिसके द्वारा आप अपनी हानि हुई मानते हैं, उस भाईने तो यथार्थमें आपकी हानि करने जाकर अपनी ही हानि की है। अतएव उससे बदला लेनेकी भावना जरा भी मनमें न रखकर भगवान्से यह प्रार्थना कीजिये कि भगवान् उसकी बुद्धिको तमोगुणके आच्छादनसे मुक्त करके शुद्ध कर दें।

यह भी स्मरण रखनेकी बात है जो दूसरेकी बुराई करनेकी बात सोचता है या दूसरेकी बुराई करनेमें निमित्त बनता है, वह दूसरेकी बुराई तो अगर उसके प्रारब्धमें नहीं है तो कर ही नहीं सकता है, अपनी बुराई अवश्य कर बैठता है। इसलिये भी, बदलेमें बुराई करनेकी बात सोचना अपनी ही बुराईको निमन्त्रण देकर बुलाना है।

हम जो चाहते हैं, पहले हमें वही देना चाहिये, वैसे ही, जैसे गेहूँ चाहनेवालेको गेहूँका बीज बोना चाहिये। हम जो देंगे—जो बोयेंगे वही अनन्तगुणा होकर हमें वापिस मिल जायगा। इसलिये हमें सदा सबका हित सोचना और करना चाहिये। सबको सुख पहुँचाना चाहिये, सबका सम्मान और आदर करना चाहिये, सबकी सेवा-सहायता करनी चाहिये; क्योंकि हम सभीसे यही सब चाहते हैं।

फिर असली बात तो यह है कि जितने भी प्राणी हैं सभीमें भगवान् परिपूर्ण है, प्रत्येक शरीर भगवान्का मन्दिर है। हम किससे वैर-विरोध करें, किसको शत्रु मानें। हमारे तो सभी आराध्य हैं।

उमा जे राम चरन रत बिगत काम मद क्रोध।
निज प्रभुमय देखहिं जगत का सन करहिं बिरोध॥

शेष भगवत्कृपा।

(२)

जगत्को भगवत्-रूप देखनेका प्रयत्न कीजिये

आपका कृपापत्र मिला। उत्तरमें निवेदन है कि न तो सबकी प्रकृति एक-सी है, न रुचि और न बुद्धि ही। लोगोंकी कार्यपद्धति भी भिन्न-भिन्न होती है। अतएव सब लोग एक-सा ही काम एक ही प्रणालीसे करें, यह सम्भव नहीं है। वस्तुतः कर्ममें कोई ऊँचा-नीचापन है भी नहीं। ब्राह्मण यज्ञ करता है, किसान खेती करता है। दोनों ही अपने-अपने स्थानमें महत्त्व रखते हैं। जैसे नाटकके पात्र राजासे लेकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भंगीतक अपना-अपना सफल अभिनय करते हैं। पर वे करते हैं—अहंता, आसक्ति, ममता, कामनासे रहित होकर केवल नाटकके स्वामीकी प्रसन्नताके लिये अपने-अपने स्वाँगके अनुसार। इसी प्रकार इस जगन्नाटकमें हम सभी पात्र हैं, सबको अपने-अपने जिम्मेका अभिनय करना है भलीभाँति, सुचारुरूपसे। हमें चाहिये कि हम अपनी प्रकृति, रुचि तथा स्वाँगके अनुसार आसक्ति, ममता, कर्माग्रह, कामना आदि न रखते हुए प्राप्त कर्मको कर्तव्यबुद्धिसे करते रहें—उत्साहके साथ, शान्तिपूर्वक, हर्ष-शोकरहित होकर सम्यक् प्रकारसे केवल भगवदर्थ—

'तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचर।'

(गीता ३। ९)

न तो कर्म पूर्ण होनेकी चिन्ता रखनी चाहिये और न उसके फलकी कामना। कर्म करनेमें प्रमाद नहीं करना चाहिये। भगवान् जैसी बुद्धि दें, उसके अनुसार किसीमें भी राग-द्वेष न रखते हुए कर्म करना चाहिये।

यह निश्चय रखना चाहिये कि भगवान् सबमें हैं—सर्वत्र व्यापक हैं, भगवान्‌में ही सब कुछ है। भगवान् ही सब कुछ हैं। एक ही सत्यको इन तीन रूपोंसे समझना चाहिये। जब भगवान् ही सब कुछ हैं, तब 'जगत्' नामक दूसरी वस्तु कोई रहती ही नहीं; जब भगवान् ही सर्वत्र हैं तो जगत् नामक दूसरी वस्तु रहती किस जगह है? और जब भगवान् ही सब कुछ हैं, तब जगत् भी भगवान्‌में ही समाया है—इन सारी बातोंपर गहराईसे विचार करनेपर माल्रम होगा कि जगत्-रूपमें भगवान् ही अभिव्यक्त हैं, प्रकट हैं या वर्तमान हैं। एक भगवान् ही विभिन्न रूपोंमें विभिन्न प्रकारसे लीलायमान हैं।

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥

भगवान् श्रीकृष्ण गीतामें कहते हैं जो मुझको (भगवान्‌को) सर्वत्र देखता है और सबको मुझ भगवान्‌में देखता है, उससे मैं (भगवान्) कभी अलग नहीं होता और वह भी मुझ (भगवान) से कभी अलग नहीं होता।

यों समझ लेनेपर जितने भी व्यवहार होते हैं, सब भगवान्‌में ही भगवान्‌से ही होते हैं। भक्तकी ललित भाषामें सब उन लीलामयकी अभिन्नस्वरूपा अनन्त विचित्र रसमयी लीला ही होती है।

यही परम सत्य है। इस सत्यका अनुभव ही परम ज्ञान है और इस अनुभवका प्रयत्न ही ज्ञानकी या भक्तिकी ऊँची साधना है। एक भगवान्‌के सिवा और कुछ है ही नहीं।

मत्तः परतरं नान्यत् किञ्चिदस्ति धनंजय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव॥

भगवान्‌ने कहा—'अर्जुन! मेरे अतिरिक्त अन्य किञ्चित् भी कुछ भी है ही नहीं। जैसे सूतमें सूतकी मणियाँ गुँथी होती हैं, ऐसे ही यह सब कुछ मुझमें मुझसे ही गुँथा है।'

हमारे कर्म साधन तभी बनते हैं, जब वे आसक्ति-कामना, ममता-अहंता-शून्य होकर केवल कर्तव्यरूप अथवा भगवत्पूजारूप होते हैं। ऐसे कर्मोंकी कसौटी यह है कि उनके प्रेरक राग-द्वेष, काम-लोभ आदि दोष नहीं होते। वे कर्म समाहित तथा शान्तचित्तसे होते हैं। उनसे किसी भी प्राणीका कभी अहित नहीं होता और उनकी पूर्णता-अपूर्णता तथा सिद्धि-असिद्धिमें—अनुकूल या प्रतिकूल फलमें समता रहती है।

यह आपके प्रश्नोंके संक्षिप्त उत्तर हैं, पर यह तत्त्व केवल लिखने-पढ़नेसे ठीक समझमें नहीं आता। बुद्धि सत्त्व-प्रधान होनेपर कुछ समझ तो लेती है, पर अनुभव नहीं होता। अतएव भगवान्‌का भजन करते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए संसारसे चित्तको उपरत करना चाहिये। विभिन्न रूपमें भासनेवाले जगत्को एक भगवान्में ही—भगवत्स्वरूप ही देखनेका सदा प्रयत्न करना चाहिये। शेष भगवत्कृपा।

(३)

शान्ति-सुख कहाँ है ?

प्रिय महोदय ! सादर प्रणाम। आपका कृपापत्र मिल गया था। उत्तरमें निवेदन है कि शान्ति कहीं बाहरसे नहीं आती। या तो कामना-स्पृहा, अहंता-ममता, आसक्ति-अभिमानके नष्ट होनेपर शान्ति मिलती है, या भगवान्के प्रत्येक विधानकी निश्चित मङ्गलमयतापर विश्वास होनेपर। दोनों ही कार्य आपके अपने अधीन हैं। बाहरका कोई व्यक्ति आपको कुछ समझा-बता सकता है; पर कामना आदिका त्याग या भगवान्के विधानकी मङ्गलमयतापर विश्वास तो आपको ही करना पड़ेगा। भगवान्ने कहा है—**'सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति'** भगवान् समस्त प्राणियोंके सुहृद् हैं—वे जिसके लिये जो कुछ विधान करते हैं, कल्याणकारी ही करते हैं; क्योंकि सुहृद् हैं, यह जान लेनेपर—इसपर विश्वास हो जानेपर शान्ति मिल जाती है। हम भोगोंपर विश्वास करते हैं, कहीं-कहीं अनाचार-दुराचार—पापकी मिथ्या मङ्गल-मयता मान लेते हैं; पर भगवान्पर विश्वास नहीं करते ! इसीलिये भोगोंकी चाह करते रहते हैं तथा मिलनेपर अधिक मिलनेकी कामनासे, न मिलनेपर कामनापर आघात लगनेसे तथा मिली हुई वस्तुके चले जानेपर उसके शोकसे सदा जलते रहते हैं। शान्ति कभी मिलती ही नहीं और अशान्त मनुष्यको सुख नहीं होता—**'अशान्तस्य कुतः सुखम्।'** अतएव शान्तिका सीधा उपाय है—भगवान्की अहैतुकी कृपापर, उनके सहज सौहार्दपर विश्वास करके जीवनमें उनके अनुकूल आचरण करना।

जहाँतक बने, संसारमें अनासक्त होकर रहनेका अभ्यास करना चाहिये। आसक्ति-ममता करनी हो तो भगवान्में करें। संसारमें कुछ भी न नित्य है, न सुखरूप है, न अपनी वस्तु है। सब अनित्य है, सब दुःखरूप है, सभी कुछ प्रकृतिका है। इनमें ममता करना, इन्हें सदा रहनेवाली वस्तु मानकर इनसे सुखकी आशा करना मूर्खता है। इस मूर्खताका त्याग करनेपर ही वस्तुतः सच्चे सुखके दर्शन प्रारम्भ होंगे। शेष भगवत्कृपा।

(४)

बुरा करनेवालोंका भी भला करो

प्रिय महोदय, सप्रेम हरिस्मरण। पत्र मिला। मेरा तो यही निवेदन है कि आप ऐसी ही चेष्टा करें, जिसमें उन भाइयोंमें परस्पर प्रेम हो जाय। एक दूसरेके सामने एक दूसरेकी वही बातें कहें जो खाई पाटनेवाली या घाव भरनेवाली हों—खाई चौड़ी करने तथा घाव हरा करनेवाली कोई बात किसी भाईके मुँहसे कभी निकली हो तो उसे किसीसे न कहें। जहाँतक हो अमृत ही ग्रहण करना तथा अमृतका ही वितरण करना चाहिये।

आपके प्रति जो भाई कुछ नाराज हैं, उनके साथ आपको विशेष प्रेमका व्यवहार करना चाहिये। उन्हें दिखाकर नहीं—चुपचाप, जिसका उनके जीवनपर गहरा असर हो। उनमें जो गुण हों, उनकी सच्ची तारीफ करनी चाहिये। इससे भी प्रेम बढ़ता है। साधुस्वभाव तो बुरा करनेवालेके साथ भी भला करना ही सिखाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रज-जनताकी पुकार !

[सम्मान्या श्रीइन्दिराजीके नाम 'पशुरक्षिणी सभा'के मन्त्री महोदयका एक पत्र 'आर्योदय' (१५-१-६७के अङ्क) में छपा है। उसका अन्तिम अंश नीचे दिया जा रहा है। —सम्पादक]

इस देशमें भुखमरी, कंगाली और महँगाईका मूल कारण है—पशुहिंसा तथा पशुओंकी कमी। इस देशका मुख्य धन था पशुधन, जिसे सदियोंसे लूटा-खसोटा तथा नष्ट किया गया और कम होते-होते केवल इतना रह गया कि किसी प्रकार किफायतसे देशका काम चल रहा था। किंतु द्वितीय विश्वयुद्ध छिड़नेपर अमेरिकन तथा British फौजोंके लिये बढ़िया-से-बढ़िया नस्लकी गायें, बैल, बछड़े काट डाले गये। चमड़ेके लिये भैंसें काट डाले गये। Calf leather के लिये बछड़े-बछिया नष्ट किये गये और सन् १९४५ तकके कालमें इतना अधिक पशुधन नष्ट किया गया कि खेतीके लिये बढ़िया बैल तथा भैंसे तथा दूधके लिये गाय एवं भैंस तथा बकरियाँ समाप्त हो गयीं। भेड़ोंके काटे जानेसे ऊन तथा खेतोंकी खाद समाप्त हो गयीं। जब पशु देशमें अत्यन्त कम हो गये तो खेतोंको प्राकृतिक खाद नहीं मिली, जिससे उनकी उर्वरा-शक्ति एकदम कम हो गयी। बनावटी खाद लादी गयी, पर उससे जो कुफल निकले, वे किसीसे छिपे नहीं। खेतोंकी उर्वरा-शक्ति उससे नष्ट हो रही है और वह खाद महँगी भी पड़ती है। जो अनाज उस बनावटी खादसे तैयार होता है, उसके खानेमें कोई स्वाद नहीं। अतः मिठास तथा स्वाभाविक सुगन्धि उपजकी नष्ट हो जाती है।

अब संक्षेपमें यह लिखना है कि कितने प्रकारसे पशुधन नष्ट किया गया और अब उसका संरक्षण किस प्रकार हो, जिससे देशका सच्चा हित हो।

पशुधन नष्ट होनेके प्रकार

१—स्वतन्त्रता-प्राप्तिके पश्चात् कसाइयों तथा पशुओंके रोजगारियोंका एक बहुत बड़ा दल इस कार्यमें लग गया कि भारतवर्षसे बढ़िया-से-बढ़िया नस्लके पशु अधिक-से-अधिक संख्यामें पाकिस्तानको रुपये लेकर खदेड़ दिये गये तथा खदेड़े जा रहे हैं। आगराको पक्की सराय तथा शहरके कितने ही व्यक्ति यह कार्य बड़ी तत्परतासे अब भी कर रहे हैं।

२—प्रत्येक बड़े शहरमें सरकारी बूचड़खानोंमें नियमित रूपसे पशु बड़ी भारी संख्यामें नित्य कट रहे हैं। उनका वर्ष-भरका हिसाब आप लगवा लें।

३—विदेशोंको जूतेकी सप्लाई और मांस तथा पशुओंके शरीरसे प्राप्त अन्य सामान कितनी भारी संख्यामें जा रहे हैं, यह आपका निर्यात (Export) विभाग यदि सही आँकड़े देनेकी कृपा करे तो पता चल जायगा और विचारशील देशभक्तकी रूह काँप जायगी।

४—देशमें मांसाहार इतना बढ़ गया है कि कोई बड़ा होटल तथा छोटा होटल बिना मांस एवं अण्डेके चल नहीं सकता। सुरक्षा मिनिस्टरीके प्रतिनिधि केन्द्रीय सुरक्षा अधिकारी श्रीरघुरमैया हजरतपुर कट्टीखानेके विषयमें जब पधारे दि० १७ नवम्बरको तो उन्होंने बताया था कि अकेले दिल्लीके निवासियोंके लिये १० हजार पशु रोजाना काटे जाते हैं। अब आप इसीसे अंदाजा लगायें कि सारे भारतवर्षमें कितने पशु नित्य कट रहे हैं जब कि पालनेवालोंकी संख्या नित्य घट रही है। पटवारियों (लेखपालों) से जो पशु-गणनाके आँकड़े माँगे गये थे, उन्होंने कोई परिश्रम नहीं किया, न वे गाँव-गाँव पशुओंकी गणना करने गये, घर बैठे-बैठे प्रत्येक काश्तकारके नाम मनचीते पशु लिखकर करोड़ोंकी संख्याका योग लगाकर भेज दिया। जब कि दशा यह है कि गाँवोंमें प्रातःकालके-से नक्षत्र—पशु जहाँ-तहाँ दिखायी देते हैं। जो बकरी ५) की कभी थी, आज २००) उसका मूल्य है। अच्छे कहे जानेवाले बैलोंका जोड़ा २०००) से कममें नहीं। एक-एक भैंस ८००) की आ रही है; पर अभी कसाईकी छुरी खूब चल रही है, मशीनोंसे पशु कट रहे हैं।

५—मशीनोंके अधिक चल जानेसे पशुओंके पालनेकी अनावश्यकता समझकर उदासीनता।

६—जमीदारियाँ एवं रियासतें चली जानेसे बड़े तथा धनाढ्य पुरुषोंद्वारा पशु-पालन समाप्त करना।

७—जंगल कट जानेसे तथा चरागाह जुत जानेसे पशुओंके पालनेमें असुविधा।

८—खाद न मिलनेसे खेतोंमें चारा कम पैदा होनेसे चारे तथा गन्नेकी महँगाई। इससे गरीब व्यक्ति पशु नहीं पाल सकता।

९—वेजीटेबलके लिये मूँगफलीकी अधिक काश्त होनेसे सब प्रकारके मोटे अनाज, मक्का, बाजरा, ज्वार तथा दालें कम होने लगीं, जिससे चारे, गन्ने तथा दालोंकी कमीसे पशु-पालनमें असुविधा।

१०—पाश्चात्त्य सभ्यता-संस्कृतिका व्यामोह बढ़ जानेसे शिक्षित कहे जानेवाले लोगोंकी पशुओंके प्रति उदासीनता आदि अनेक कारणोंसे आज पशुधन नष्ट हो गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपर्युक्त कारणोंसे इस कृषिप्रधान देशका पशुधन नष्ट हुआ, उपज कम होनेसे खाद्य-संकट सामने आया, अन्नकी भीख विदेशमें माँगनी पड़ी। अब भी दूध देनेवाली गायें कटकर विदेश जा रही हैं; डिब्बोंमें मक्खन निकले दूधका पाउडर गरीब बच्चोंमें बाँटकर, जो विदेशोंसे आता है, उन बच्चोंका वजन किया जाता है कि एक महीनेमें कितना वजन बढ़ गया। इस दशाको प्राप्त हो जानेपर भी अभी पशुहिंसकोंकी आँखें बंद हैं। नये-नये बूचड़खाने कभी रोजगारके नामपर, कभी जनतामें मांस-सप्लाईके लिये, तो कभी फौज-मांस-सप्लाईके लिये खोले जा रहे हैं, जिनमें करोड़ों रुपये खर्च किये जाते हैं। इस समय भी आगरासे लगभग ३१ मीलकी दूरीपर टूंडला एतमादपुरके समीप एक विशाल बूचड़खाना निर्मित हो रहा है, जिसके लिये सुना गया है कि कई करोड़ रुपयोंकी मशीनरी डेनमार्कसे मँगायी जा रही है। इस विशाल बूचड़खानेमें ५,००० उपयोगी पशु नित्य काटनेकी योजना है। जबसे यह बूचड़खाना बनना आरम्भ हुआ है, पवित्र व्रजभूमिकी भोली जनता अत्यन्त दुखी तथा बेचैन है। आज भी पशुओंके अभावमें एक-एक बूँद तथा अन्नकी कमीसे बच्चे, युवा, बूढ़े भूखों मर रहे हैं, स्वास्थ्य निरन्तर गिर रहा है। जब यह बूचड़खाना चालू हो जायगा, जिसे काँग्रेसी सरकार चुनावके पश्चात् चालू करना चाहती है तो क्या उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश तथा राजस्थानका कोई पशु इससे बच सकेगा? पशुओंको खरीद करके जनताकी गाढ़ी कमाईके पैसेसे ही जनताका धन, पशुधन नष्ट—अतिशीघ्र नष्ट कर दिया जायगा। आज एक बकरी गरीब आदमी नहीं पाल सकता; क्योंकि एक बकरी २००) में आती है। विचार कीजिये, जब ५,००० भेड़-बकरियाँ दूध, खाद तथा ऊन देनेवाली इस बूचड़खानेमें नित्य मारी जायँगी तो देशकी क्या दशा होगी। जहाँ हजरतपुरमें यह बूचड़खाना बन रहा है, वहाँकी निरामिष भोली कृषक जनताने यह जमीन किसी समय उत्तरप्रदेश सरकारको इस हेतु दी थी कि वर्षा न होनेके कारण जो रेगिस्तान आगरा, मथुराकी ओर बढ़ता चला आ रहा है, उसमें ऊँचे-ऊँचे विशाल वृक्ष लगाकर नरसरी-द्वारा हरा-भरा बनाकर वर्षा अधिक लायी जाय और बढ़ते हुए रेगिस्तानको किसी प्रकार रोककर कृषि-अन्न-उत्पादन एवं पशुपालन करके जनताको सुखी तथा समृद्धिशाली बनाया जाय। उत्तरप्रदेश सरकारने कई लाख रुपया व्यय करके नरसरी लगायी, वृक्षारोपण हुआ, किंतु उस सबको नष्ट-भ्रष्ट करके देशके सुरक्षा-मन्त्रालयद्वारा वहाँ यह परम विनाशकारी, भगवान् श्रीकृष्णजीकी व्रजभूमि—उनके लीलाधाममें, पशु-संहारकारी बूचड़खाना रात-दिन बड़ी तेजीसे बन रहा है। वहाँ आगराकी तथा सारे व्रजमण्डलकी जनता भारी विरोध कर रही है, पर सुनते हैं कि वहाँ उसके बननेमें कोई विघ्न न डाल सके, इसलिये फौज तथा पुलिसका पहरा लगा दिया गया है, पर बनना बंद नहीं, न गरीब जनताकी कोई सुनवायी है। जनता अपने नेताओंसे पूछना चाहती है कि क्या प्रजातन्त्रका यही नमूना है? हठी सरकार अपने दुराग्रहपर डटी हुई है!

इसलिये इन्दिराजी! आपसे व्रजमण्डल तथा समस्त भारतकी जनता आग्रह करती है कि यदि आप तथा आपकी सरकार सच्चे रूपमें इस देशको सुखी, समृद्धिशाली, स्वावलम्बी तथा आत्मनिर्भर देखना तथा करना चाहती है तो विनाशकारी पशुवधको तत्काल बंद करें। हजरतपुर बूचड़खानेकी योजनाको फल तथा सब्जी-संरक्षण-कारखाना (fruit and vegetable preservation factory) के रूपमें बदल दें और देशभरके सब बूचड़खाने बंद करके, स्थान-स्थानपर गो-सदन बनायें, जिनमें सभी प्रकारके पशु पाले जायँ। सीमाओंपर फौजको कड़े आदेश दिये जायँ कि कोई पशु पाकिस्तानकी सीमाके पार नहीं जायगा। तीन मीलका क्षेत्र पहलेसे ही वर्जित हो। जो इस आदेशको नहीं मानेगा, उसे कठोर दण्ड दिया जायगा। सारे देशमें गो-हत्या तथा गो-वंशविनाशको रोकनेके लिये राष्ट्रपतिका अविलम्ब अध्यादेश लागू हो, फिर विशेष बैठक सदनकी बुलाकर न केवल गायके अपितु गो-वंशके साथ-साथ पशुमात्रके वधपर प्रतिबन्ध लगे, कसाईको किसान बना दिया जाय, तभी यह देश पनपेगा। भारतवर्षमें जीवहिंसाको कोई स्थान नहीं। आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक, सामाजिक चतुर्दिक् उन्नतिका शोर है; पर पालतू तथा पशु-पक्षियोंकी रक्षाका अन्य कोई उपाय नहीं।

मन्त्री, पशुरक्षिणी सभा, आगरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोहत्या-निरोध

गोरक्षा-आन्दोलन चल रहा है, यद्यपि उसमें अभी सफलता नहीं मिली है । भगवान्‌की कृपासे इस बार समस्त देशमें जो महान् जागृति हुई, गोमाताकी रक्षाके लिये देश-भरके नर-नारियोंमें त्याग-तपस्याकी जो महान् तीव्र धारा बह चली, वह सर्वथा आदर्श तथा आदरणीय है । इस विषयमें 'कल्याण'में प्रकाशित लेखों तथा अपीलोंको पढ़कर हमारे 'कल्याण'के सम्मान्य पाठक-पाठिकाओंने बहुत बड़ा कार्य किया और वे अब भी कर रहे हैं । हजारों-लाखों नर-नारियोंने भगवान्‌की आराधना-प्रार्थना की, अपने-अपने विश्वास तथा रुचिके अनुसार देवाराधन किया । वैदिक यज्ञ, वेदपारायण, रुद्राभिषेक, गायत्री-पुरश्चरण, दुर्गा-अनुष्ठान, वाल्मीकि-रामायण-पारायण, मानस-पारायण, विष्णु-आराधन, शिवा-राधन, अखण्ड नामकीर्तन, करोड़ों अरबोंकी संख्यामें भगवन्नाम-जप, सामूहिक यज्ञ-यागादि, विभिन्न धर्मानुसार विविध अनुष्ठान आदि हुए तथा अब भी हो रहे हैं । लाखों-लाखों हस्ताक्षर गोहत्या-बंदीके लिये कराये गये । हजारों सभाएँ हुईं । संभ्रान्त घरोंकी ऐसी महिलाएँ, जिनका कभी किसी राजनीतिसे सम्बन्ध नहीं रहा, जिन्होंने जेलकी कल्पना भी नहीं की, गोमाताकी रक्षाके लिये प्रसन्नताके साथ जेल गयीं । हजारों साधु-महात्मा—विभिन्न सम्प्रदायोंके वैष्णव, शैव, वैरागी और सद्‌गृहस्थ जेलोंमें गये तथा अब भी जा रहे हैं । जगह-जगह समितियाँ बनीं । दिल्लीमें दस लाख नर-नारियोंकी अपूर्व ऐतिहासिक शोभायात्रा निकली—यद्यपि उसे बदनाम करनेके लिये जान-बूझकर उपद्रव कराये गये; बहुत-से निर्दोष लोगोंके प्राण गये, कितने ही घायल हुए तथा बहुत-से लोग मुकदमोंमें फँसाये गये । कवियों तथा लेखकोंने गोमाताकी रक्षाके लिये कविता और लेख लिखे, वक्ताओंने भाषण दिये और अपनी-अपनी हैसियतके अनुसार लोगोंने पैसे दिये । हमारे पास इतने अधिक पत्र आये तथा आ रहे हैं कि हम चाहनेपर भी उन सबके उत्तर नहीं लिख सके, इसके लिये हम उन सबसे हाथ जोड़कर क्षमा-प्रार्थना करते हैं ।

'कल्याण'की प्रार्थना तथा प्रेरणापर लाखों-लाखों देश-वासियोंने जो विलक्षण कार्य किया है, उसे हम भगवान्‌की कृपा समझते हैं और समझते हैं उन देशवासियोंका हमारे प्रति अनन्त उपकार । इसके लिये हम उन सबके हृदयसे कृतज्ञ हैं । वास्तवमें 'कल्याण'के सारे पाठक-पाठिकागण भगवान्‌की सेवाके लिये ही एक स्वयंनिर्मित 'कल्याण-परिवार' के ही सदस्य हैं; जो इस प्रकार समय-समयपर धर्मसेवाके द्वारा भगवत्सेवाके पवित्र कार्यमें सहर्ष सहयोग देते-दिलाते हैं । यह बड़े ही गौरव तथा संतोषका विषय है ।

आन्दोलनका क्या हो रहा है तथा क्या हुआ, इस सम्बन्धमें नीचे मैं अपने **सम्मान्य मित्र श्रीव्रजलालजी बियाणीके** महत्त्वपूर्ण विचारोंको उद्‌धृत कर रहा हूँ । सम्मान्य बियाणीजी पुराने प्रख्यात काँग्रेसी नेता और सच्चे देशसेवक हैं । इनका **'गोरक्षा-आन्दोलनपर एक दृष्टि'** शीर्षक एक विचारपूर्ण निबन्ध हिंदुस्तानमें छपा है । श्रीबियाणीजीका विवेचन बड़ा ही गम्भीर, युक्तियुक्त, सत्य तथा पक्षपातरहित है । उससे सरकारकी मनोवृत्ति तथा आन्दोलनकी वर्तमान परिस्थितिका कुछ पता लग जाता है ।

इसमें पूज्यपाद जगद्गुरु अनन्तश्री शंकराचार्यजी तथा पूज्यपाद श्रीप्रभुदत्तजीके सम्बन्धमें जो कुछ लिखा गया है, वह यथार्थ है । मनुष्य बिना मृत्युकालके मरता नहीं और मृत्युकाल आनेपर बचता नहीं । यदि किसीकी मृत्युमें निमित्त महान् गौरवयुक्त हो, धर्मयुक्त हो, भगवदर्थ, धर्मरक्षार्थ किसीके प्राण विसर्जित होते हों तो वह बहुत बड़ा सौभाग्य है तथा आदर्श तो है ही । मेरा परम पूज्य आचार्यजी तथा ब्रह्मचारीजीके जीवनसे मोह है तथा मैं इनके जीवनसे देश तथा धर्मका बड़ा लाभ मानता हूँ; इससे मैं निश्चय ही यह चाहता था कि इनके जीवनकी रक्षा हो । ये जब अनशन-व्रत करनेको प्रस्तुत हुए थे, उस समय भी मेरा मन सर्वथा अनुकूल नहीं था । पर जब व्रत ले लिया गया, तब इनकी जीवन-रक्षाके साथ ही इनके जीवनके व्रतकी रक्षाका प्रश्न जीवनरक्षाके प्रश्नसे भी अधिक महत्त्वकी वस्तु हो गया । इसीसे मैं चाहता था कि इनकी जीवन-रक्षा तो हो, पर वह हो इनके वचनानुसार सरकारके द्वारा सम्पूर्ण गोवंशकी रक्षा होनेपर ही—कम-से-कम सम्पूर्ण गोवंशकी रक्षाके लिये कानून बनाने या सिद्धान्तको मान लेनेका पूर्ण आश्वासन मिलनेपर ही । दुःखकी बात है कि वैसा नहीं हुआ । ये महात्मा हैं, संत-हृदय हैं, शुद्ध मानस हैं, राजनीतिके दावपेच भला क्यों जानने लगे ? राजनीतिज्ञोंकी कूटनीति सफल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो गयी। इन्हें समझा दिया गया कि 'जो कुछ सरकारने लिखा है, उससे अधिक सरकार लिख नहीं सकती, इसमें आंशिक आश्वासन है ही। आपका उद्देश्य सफल हो रहा है' आदि-आदि। और इनके द्वारा—समितिके आदेशसे अनशन-व्रत स्थगित हो गया। इसमें भी मैं किन्हींकी नीयतपर दोषारोपण नहीं करता। उस समय जिनको जैसी बुद्धि उपजी, अच्छी नीयतसे उनके द्वारा वैसा ही कार्य किया गया। पर इससे एक बार देशपर बहुत बुरा असर पड़ा। मेरे पास बहुत पत्र इस आशयके आये हैं। पर हुआ वही, जो होना था। पूज्यपाद जगद्गुरु महाराजका मन अब भी वैसा ही है। ऐसा सुना गया है कि उन्होंने बड़ी कठिनतासे अनशन स्थगित करना स्वीकार किया था और अब भी बड़े उत्साहके साथ वे हर तरहसे गोमाताकी रक्षाके लिये प्रयत्न करनेको प्रस्तुत हैं। अभी बम्बईमें उनके बहुत ही उत्साह तथा आशापूर्ण प्रवचन हुए हैं। सत्याग्रह भी चल ही रहा है। महीनोंसे चल रहे इस सत्याग्रहमें सभीने उत्साहसे भाग लिया है। भारतके विभिन्न सम्प्रदायके साधु सत्याग्रहमें आये और आ रहे हैं। वैष्णव-सम्प्रदायके भक्तगण आ रहे हैं। श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदायके पूज्य आचार्य तथा श्रीवल्लभ-सम्प्रदायके पूज्य आचार्य महोदयोंने बड़े उत्साहसे सब प्रकारसे योगदान देनेकी इच्छा प्रकट की है और वे बहुत दिनोंसे हजारों-हजारों भक्तोंके साथ प्रस्तुत हैं। सनातनधर्म-प्रतिनिधि-सभाके पूज्य स्वामी श्रीगणेशानन्दजी महाराजके लोग साथ हैं। राष्ट्रीय स्वयं-सेवक-संघ, जनसंघ तथा आर्यसमाजने बड़ी सहायता की है तथा कर रहे हैं, हिंदू-महासभा, जैन-समाज भी साथ हैं। और भी जगह-जगहसे ऐसे समाचार मिले हैं तथा मिल रहे हैं जो बड़े ही उत्साहप्रद हैं। इसलिये जनतामें शिथिलता आनेकी बात सोचना वस्तुतः भूल है। हम लोग अपने मनकी शिथिलता जनतापर लादकर आन्दोलनमें शिथिलता ला दें—यह दूसरी बात है।

फिर, एक प्रश्न यह भी है कि लाखों देशवासियोंने जो त्याग-तपस्या की है, भगवदाराधन और देवाराधन किया है तथा वे अब भी जो कर रहे हैं, क्या वह निष्फल होगा? प्रत्येक कर्मका अदृष्ट फल तो होता ही है। दृष्ट भी होगा। हमें ऐसा विश्वास करना चाहिये कि सम्पूर्ण गोवंशकी हत्या कानूनसे बंद होगी, गोपालन तथा गोरक्षणकी भी समुचित व्यवस्था होगी। और इस विश्वासके साथ-साथ दोनों ही कार्योंके लिये हमें यथाशक्ति यथासाध्य प्रयत्नशील बने रहना चाहिये।

यह सत्य है कि सरकारने न तो गोहत्यापर सम्पूर्ण प्रतिबन्ध लगानेके सिद्धान्तको स्वीकार किया है, न संविधान-में परिवर्तनकी बातको माना है, न किसी प्रकार भी वह कहीं वचनबद्ध ही हुई है; पर इसका यह अभिप्राय नहीं है कि भविष्यकी सरकारका भी यही दुराग्रह रहेगा। भगवान् सब-को सुबुद्धि दें। हमें आशा करनी चाहिये कि अगली सरकार सम्पूर्ण गोवंशकी हत्या पूर्णतया बंद करनेके लिये कानून बनायेगी तथा गो-पालन एवं गोरक्षण-गोसंवर्धनकी भी समुचित व्यवस्था होगी।

फिर असल बात तो यह है कि हमें पल-पलमें फलका अनुसंधान न करते हुए प्रतिपल कर्तव्य-पालनके द्वारा भगवत्पूजनमें लगे रहना है। हमें तो फल मिल ही गया यदि हमारे द्वारा सचमुच शुभ स्वकर्म-सम्पादनरूप भगवत्पूजा हो गयी। अतएव अहंकार, ममता, कामना तथा राग-द्वेषसे बचते हुए भगवत्पूजाके भावसे प्राप्तकर्तव्यका पालन करनेकी चेष्टा करनी चाहिये। यही परम फल है। गोरक्षा तो वस्तुतः भगवान् ही करेंगे। हम तो निमित्तमात्र भले ही हों। अब नीचे श्रीबियाणीजीका लेख पढ़िये—

आन्दोलनके विरुद्ध पाँच बातें

"कुछ माह पूर्वसे गोवध-बंदीके आन्दोलनमें तीव्रता और व्यापकता आयी। इस प्रश्नको लेकर व्यापक प्रचार हुआ। हमने गो-रक्षा और गो-वधबंदीके विषयमें अनेक बार अपने विचार लिखे हैं। हमारा मत है कि जबतक मनुष्यके लिये गायका दूध आवश्यक है, तबतक गाय अमर रहेगी। गायकी रक्षा मानवकी अपनी रक्षाके लिये आवश्यक है। अतः उसका नाश वर्तमान कालमें तो असंभव प्रतीत होता है।

इस आन्दोलनके विरुद्ध अनेक बातें कही गयी हैं; पर पाँच बातें मुख्यतः कही गयीं और कही जा सकती हैं—

(१) यह धार्मिक आन्दोलन है,
(२) अंग्रेजी राज्यके समय यह अन्दोलन नहीं हुआ,
(३) चुनावके समय आन्दोलन असामयिक कार्य है,
(४) यह राजनीतिक प्रश्न है और
(५) अनशन अनुपयोगी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परन्तु धार्मिक आन्दोलन धार्मिक है और हमारी राज्य-सत्ता धर्मनिरपेक्ष है, इसलिये धार्मिक आन्दोलनोंका हमारे यहाँ स्थान नहीं हो सकता, इस दलीलसे हम सहमत नहीं हैं।

धार्मिक आन्दोलन

हमारी राज्यसत्ता धर्म-निरपेक्ष है, इसका अर्थ यही है कि सब धर्मोंकी समान रूपसे रक्षा की जायगी, सबको समान रूपसे देखा जायगा। किसी एक धर्मको विशेष महत्त्व नहीं दिया जायगा; पर धार्मिक विषयोंको लेकर आन्दोलन नहीं होगा, यह धर्म-निरपेक्ष राज्य-सत्ताका अर्थ नहीं है। यदि राज्यसत्ता किसीके धर्ममें हस्तक्षेप करेगी तो उस धर्मके अनुयायियोंको आन्दोलन करनेका अधिकार है। हिंदुओंको एक समय एक ही पत्नी रखनेका अधिकार है और मुसलमानोंको चार पत्नियाँ। यदि शासनकी ओरसे वह अधिकार छीननेका प्रयास हो तो मुसलमान धर्मके नामपर आन्दोलन करनेके अधिकारी होंगे। हमारे देशमें शवके अन्त्येष्टिकी भिन्न-भिन्न प्रक्रियाएँ हैं। शवको जलाया जाता है, गाड़ा जाता है, कूएँमें डाला जाता है। जिन धर्मोंमें शवको गाड़ने या कूएँमें डालनेकी प्रथा है, उनके अनुयायियोंको बाध्य किया जाय कि वे भी अपने शवका दहन करें, कारण यह उत्तम और वैज्ञानिक प्रथा है, तो उनको इसके प्रतिकूल आन्दोलन करनेका अधिकार होगा।

इस प्रकार धार्मिक प्रथाओंके लिये या अधिकारोंके लिये आन्दोलन करना अनुचित नहीं होगा, इसलिये जब हिंदू जनता गायको माताकी दृष्टिसे देखती है, पूज्य समझती है, उसकी हत्या अनुचित मानती है तब उसको भी अधिकार है कि वह इसके लिये आन्दोलन करे।

अंग्रेजोंके समय

कुछ व्यक्तियोंने और हमारी प्रधान मन्त्रीने भी कहा है कि अंग्रेजोंके समय यह आन्दोलन नहीं होता था। हमारे खयालसे अंग्रेजोंके समय भी यह आन्दोलन हुआ है। जबसे भारतमें अपने अधिकारोंकी प्राप्तिकी लहर आयी और हर क्षेत्रमें वह दिखायी दी, तबसे ही गो-रक्षाका आन्दोलन भी आरम्भ हुआ। हमारे खयालसे गो-रक्षाका आंदोलन कांग्रेसकी स्थापनाके समयसे तो है ही, पर इसके पूर्व भी कुछ अंशमें होता था।

अंग्रेजी राज्यमें गो-वध होता था, इससे हिंदू जनता असंतुष्ट थी, यह निर्विवाद है। पर वह राजकीय दृष्टिसे गुलाम हो गयी थी। अतः उसकी शक्ति निर्बल हो गयी थी; तथापि दो बातें तो अवश्य हुईं—(१) स्थान-स्थानपर गो-रक्षण-संस्थाएँ खुलीं, जिनके द्वारा यह कोशिश हुई कि कसाइयोंके पास गायें न जायँ। गोरक्षण-संस्थाएँ दूली, लँगड़ी और बेकार गायोंकी रक्षा करें तो कसाइयोंके पास गायें न जायँगी। इस उद्देश्यसे आरम्भमें गोरक्षण-संस्थाएँ खुलीं। उन संस्थाओंसे पूरा कार्य नहीं हुआ और गायका कटना बंद न हुआ तथापि यह हिंदू जनताकी भावनाका द्योतक है, यह तो निःसंदेह है। (२) अनेक स्थानोंपर गौके कारण दंगे हुए, अनेकोंकी जानें गयीं। अतः यह कहना कि अंग्रेजोंके समय यह आंदोलन नहीं था, सही नहीं है।

एक बात और—अंग्रेजोंके समय यह आंदोलन नहीं था, अतः स्वराज्यके बाद भी न हो, यह कहना उचित नहीं है। स्वराज्यके बाद परिस्थितिमें आमूल परिवर्तन हो गया है। जनताके अधिकार व्यापक हो गये हैं। अतः अनेक आंदोलन, जो स्वराज्यके पहले नहीं हुए, वे भी हो रहे हैं। इस परिस्थितिमें यदि आज जनता गोवध-बंदीके लिये आंदोलन करती है तो वह गलत नहीं है। ब्रिटिश शासनका हवाला आजकी परिस्थितिमें योग्य नहीं है।

असामयिक कार्य

इस आंदोलनका व्यापक रूपमें चुनावके समय अवलम्ब किया गया, अतः कुछ लोगोंकी दृष्टिसे वह अनुचित है। हमारे खयालसे यह भी उचित ही है। जिस समय जो आंदोलन करनेसे, उसकी सफलताकी आशा हो, उस समय वह आंदोलन किया जाता है। आंदोलनकी सफलताके लिये उचित समयका खयाल रखना ही पड़ता है। जब अंग्रेज युद्धमें लगे हुए थे, तब हमने 'करो या मरो'का व्यापक आंदोलन शुरू किया था। महात्माजी यद्यपि कहते थे कि अंग्रेजोंकी कठिन स्थितिका लाभ नहीं उठायेंगे, तथापि व्यवहारमें हुआ यही। अंग्रेज भयंकर लड़ाईमें लगे थे और हमने अपना आंदोलन किया।

राजनीतिक दलोंका योग

यह आंदोलन मूलतः यद्यपि गो-रक्षा महाभियान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समितिका है, इसमें साधुओंका प्रभावी योग था, पर उसी समय इस आंदोलनमें जनसंघने भी अपना योग दिया। इसलिये यह आंदोलन राजकीय हो गया है, यह बात अनेक बार कही गयी। यों कहकर यह आंदोलन अनुचित है—यह भावना जनतामें पैदा करनेका प्रयास किया गया।

हमारी मान्यतानुसार देशमें हर राजकीय दलके कुछ सिद्धान्त हैं। उनके अनुसार वे अपना कार्य करते हैं। किसी राजकीय दलकी मान्यता है कि गो-वधपर प्रतिबन्ध होना चाहिये, उस दलके लिये तदनुसार कार्य करनेमें कोई अनुचित बात नहीं है। जिन दलोंकी भावना गो-वध बंदीके अनुकूल नहीं, उनको भी अधिकार है कि वे अपनी मान्यतानुसार कार्य करें। यदि उन दलोंका, जो गो-वध-बंदीके पक्षमें हैं, इस सम्बन्धमें कार्य करना या बात करना उचित नहीं, तो जो दल गो-वध बंदीके प्रतिकूल बात करते हैं, उनको भी उपदेश दिया जाना चाहिये कि वे गो-वध-बंदीके सवालपर चर्चा न करें।

देशमें आजकी परिस्थितिमें हर सवाल राजनैतिक रूप धारण कर लेता है। खाना, पीना, व्यापार आदि सब बातें राजकीय सीमामें आती हैं। गो-वध-बंदीके सम्बन्धमें यदि संविधानमें व्यवस्था है तो उसका राजनैतिक अधिकार निर्माण होना उचित है।

अनशनकी अनुपयोगिता

अनेक लोगोंने यह बात भी कही है कि अनशनके तरीकोंका अवलंबन न्याय नहीं है। राष्ट्रपतिने हालमें ही कहा कि अनशनके जरिये किसी अधिकारको प्राप्त करनेके लिये कार्य करना लोकतन्त्रके हितमें नहीं है। हमारे ध्यानसे यह कहना भी अनुचित है। हमारा अपना वर्तमान राजकीय इतिहास देखें तो दिखायी देगा कि महात्मा गांधीके पश्चात् अनशन राजकीय, सामाजिक और व्यक्तिगत क्षेत्रोंका एक प्रभावी शस्त्र हो गया है। महात्मा गांधीने समय-समयपर उपवासोंका अवलंबन किया और जब अंग्रेजी राज्यने हरिजनोंको हिंदुओंसे अलग करनेका प्रस्ताव किया, तब महात्मा-गांधीने आमरण उपवास किया। उसका परिणाम हुआ कि अंग्रेजी राज्यको अपना निर्णय बदलना पड़ा। महात्मा गाँधीके जीवनका इतिहास उपवासोंसे भरा पड़ा है और हमारी मान्यता है कि जब किसी अन्य मार्गसे महात्माजी उद्देश्य सफल न होता देखते थे तो संकटमें अनशनका सहारा लेते थे। इस परिस्थितिमें आज यह कहना कि अनशनसे कोई बात मनवानेका तरीका उचित नहीं है, समझमें नहीं आता।

महात्मा गाँधीके पश्चात् तो अनशन प्रभावी शस्त्र हो गया है और उसके अवलंबसे कार्य होते हैं—यह बात दिखायी देती है। पं० नेहरूके समय पोट्टी श्रीरामुलुने आन्ध्रनिर्माणके लिये आमरण अनशन किया, अपना जीवन इस कार्यके लिये दे दिया, तब आन्ध्र प्रदेशका निर्माण हुआ। अनशनसे कार्य होते हैं, आन्दोलनसे कार्य होते हैं, हिंसासे कार्य होते हैं, यह भावना देशमें बलवान् होती गयी। जनताकी वृत्ति इन कामोंको करनेकी ओर आकृष्ट हुई और होती जा रही है।

संक्षेपमें इस आन्दोलनके प्रतिकूल जो बातें कही गयी हैं और कही जा सकती हैं, उनका इस प्रकार समाधान किया जा सकता है।

देशकी वर्तमान परिस्थितिमें किसी भी माँगको प्रभावी करनेके लिये अन्य उपायोंके साथ अनशनका भी अवलंबन किया जाता है। अनशनमें शक्ति है; पर उस शक्तिका प्रभाव अनशनकर्ताकी प्रतिष्ठा, उसकी जनसेवा और माँगकी जन-उपयोगिता तथा भावनापर निर्भर है। हर अनशनमें वह शक्ति नहीं होती जो प्रभावी व्यक्तिके अनशनमें होती है। इस आन्दोलनको लेकर अनेकोंने उपवास किये, पर उनका कोई खास परिणाम नहीं हुआ। केवल दो उपवास परिणाम-की दृष्टिसे हुए—प्रभुदत्त ब्रह्मचारीका और पुरीके शंकराचार्यका।

पुरीके शंकराचार्यका उपवास अधिक प्रभावी हुआ। कारण, उनकी जनतामें अधिक प्रतिष्ठा है। वे हिंदू-धर्मके एक बड़े व्यक्ति माने जाते हैं। उनके जीवनका कार्य भी कुछ अंशमें प्रभावी था। प्रभुदत्तजीका अनशन भी प्रभाव रखता था।

कुछ दिन पहले श्री एस० के० पाटिलने कहा था कि 'यदि शंकराचार्यकी मृत्यु हो गयी तो वह हिंदू धर्मपर एक बहुत भारी कलंक होगा।' शंकराचार्यकी मृत्यु नहीं हुई, उनका अनशन टूट गया। पर हम श्रीपाटिलकी बातसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहमत नहीं हैं। शंकराचार्यकी मृत्यु होती तो वह हिंदू-धर्मपर कलंक नहीं होता, प्रत्युत वर्तमान राज्य-सत्तापर कलंक होता, जिसके कारण शंकराचार्यकी मृत्यु होती। साथ ही मृत्यु होती तो, हिंदू-धर्म कलंकित नहीं होता, वरं होता प्रतिष्ठित, जिसके अनुयायियोंमें अपनी माँगके लिये आत्म-समर्पण करनेकी इतनी विशाल शक्ति है, वह तो धर्मके प्रभावका द्योतक होता, न कि कलंकका। शंकराचार्यका जीवनकार्य भी अमर और प्रभावी हो जाता!

केन्द्र एवं राज्योंका कार्य

हमारे संविधानमें इस प्रश्नको लेकर ४८ वीं धारा है, जिसमें गो-रक्षाकी बातका उल्लेख है, पर इससे भी आगे संविधानमें राज्य और केन्द्रके कार्योंकी सूची है। उसमें राज्यसूचीकी १५ वीं धारामें व्यवस्था है। पशुकी नस्लका परिरक्षण, संरक्षण और उन्नति तथा पशुओंके रोगोंका निवारण होगा। साथ ही राज्य और केन्द्रके कार्योंकी सम्मिलित सूचीमें धारा १७में दोनोंको अधिकार दिया गया है—'पशुओंके प्रति निर्दयताका निवारण करें।'

इस मानेमें गो-वध-बंदीका प्रश्न दोनोंके अधिकारमें है। निश्चय ही गो-वध निर्दयताका प्रश्न है। इसके निवारणके लिये कानून बनाना राज्यके अधिकारमें तो है ही, पर केन्द्रको भी उसके अनुसार कानून बनानेका अधिकार है, यही संविधानका निदर्शन है।

माँग पूरी नहीं हुई

परंतु हमारे खयालसे प्रभुदत्तजी और शंकराचार्यजीका अनशन टूट जानेसे आन्दोलनका अब कोई विशेष परिणाम नहीं होगा। गो-रक्षा और गो-वधके प्रश्नको लेकर सत्याग्रह पहले भी हुए थे, पर वे सब असफल हुए। इस बारका आन्दोलन पहलेकी अपेक्षा बहुत प्रभावी हुआ, सारे देशमें इसके अनुकूल हवा बही, पर अन्तमें उपवासोंका अन्त किया गया। इसका परिणाम अच्छा हो, यह आशा सब करते हैं, पर हमको संदेह है कि गोवध-बंदीकी माँग पूर्णतया स्वीकार होगी।

उपवास छोड़नेके सम्बन्धमें जो चर्चाएँ हुईं, जो आश्वासन दिये गये उनमें कहीं भी गो-वध-बंदीकी माँगको पूर्णतया स्वीकार नहीं किया गया, प्रत्युत सरकारकी ओरसे यह बात कही गयी है कि 'गो-वंशके वधपर सम्पूर्ण प्रतिबन्धके समर्थनमें व्यापक भावनाके प्रति राज्य सरकारोंकी जागरूकता व्यक्त हुई है।' पर साथ ही उसके सम्पूर्ण प्रतिबन्धकी माँगको स्वीकार करनेके लिये सरकार वचनबद्ध नहीं है, इसपर समितिने बल दिया था। केन्द्र-शासनने यह स्वीकार नहीं किया, पर उपवासका त्याग हो गया। यह कह दें तो अनुचित नहीं होगा कि उपवासोंमें जो माँग की गयी थी वह पूरी होनेके पूर्व ही अनशन समाप्त हो गया। दो महान् व्यक्तियोंके जीवनकी रक्षा हो गयी। पर उनकी जो माँग थी वह स्वीकृत नहीं हुई। हमारे ध्यानसे कुछ अंशमें उनके जीवनकी उच्चता कम हुई। यदि हमारी धारणा गलत हुई और उनकी माँग पूरी हुई तो हमें आनन्द ही होगा, पर आशा कम है।

× × ×

देखें, एक ओर शासन है, जो अपनी शक्ति रखता है। इसकी ओर धर्मगुरुओं और धार्मिक भावना रखनेवाली जनताकी शक्ति है। क्या परिणाम होता है, किसकी विजय होती है यह भविष्य बतायेगा।

परिस्थिति देखते श्रीबियाणीजीको माँग पूरी होनेकी आशा कम है, सो इस दृष्टिसे तो वस्तुतः ऐसी ही बात है। पर भगवान् सर्वशक्तिमान् हैं। उनकी कृपासे सबमें सद्बुद्धि उदय हो जाय तो निश्चय ही भारतवर्षसे गोवंशके वधका पाप सर्वथा दूर हो सकता है, साथ ही गोरक्षाका समुचित प्रबन्ध भी। कानूनके द्वारा सम्पूर्ण गोवंशकी हत्याकी सर्वथा बंदी चाहनेवाले लोग भगवान्पर भरोसा रखते तथा सबका भला चाहते हुए अपने शान्ति एवं अहिंसापूर्ण प्रयत्नोंको सतत चालू रक्खें। न कभी उत्साहमें शिथिलता आने दें, न प्रयत्नमें। सचाईके साथ साधनामें संलग्न रहें। फल तो भगवान्के हाथ है। यह विनीत निवेदन है।

२२।२।६७ —हनुमानप्रसाद पोद्दार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जनतन्त्र या असुरतन्त्र

मानव-सृष्टिमें प्रधानतया दो प्रकृतियोंके मनुष्य हैं—'दैवी सम्पदायुक्त' और 'आसुरी सम्पदायुक्त ।' दैवी-सम्पदा बन्धनसे छुटकारा दिलाती है और आसुरी सम्पदा बन्धनमें डालती है—'दैवी सम्पद्विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता ।' (गीता १६ । ५) दैवी सम्पदायुक्त मानव भगवत्परायण रहकर सद्विचार और सत्कर्म करता है और आसुरी सम्पदायुक्त असद्विचार, असत्कर्ममें ही प्रवृत्त रहता है । दैवी सम्पत्तिवालेका लक्ष्य होता है—भगवत्प्राप्ति या मोक्ष एवं आसुरी सम्पत्तिवालेका लक्ष्य होता है—कामोपभोग । **'कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः ।'**

जिसका लक्ष्य 'मोक्ष या भगवत्प्राप्ति' है, वह दैव-मानव 'त्याग' और 'कर्तव्य'का ध्यान रखकर सब काम करता है और जिसका लक्ष्य 'कामोपभोग' है, वह हर चेष्टामें केवल 'अर्थ' और 'अधिकार'का अनुसंधान करता है। इस प्रकार मानव-जीवन जब केवल 'अर्थ' और 'अधिकार'-परायण हो जाता है, तब क्रमशः उसकी न्यूनाधिकरूपमें अर्थपैशाचिकता और अधिकारोन्मत्तता बढ़ने लगती है । तब वह मानवतासे गिरकर दानव, असुर, राक्षसके रूपमें परिणत होकर काम, लोभ तथा क्रोधको जीवनका संबल मान लेता है । इसीसे आसुरी सम्पदाके तीन नाम हैं—'मोहिनी' (कामग्रस्त पुरुषमें प्रधानरूपमें रहनेवाली), 'आसुरी' (लोभग्रस्तमें प्रधानरूपसे रहनेवाली) और 'राक्षसी' (क्रोधग्रस्तमें प्रधानतासे रहनेवाली) । ये काम, क्रोध और लोभ—तीनों ही नरकके द्वार हैं और आत्माका पतन करनेवाले हैं 'नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः' और इन तीनोंके त्यागकी भगवान्ने आज्ञा दी है—

'तस्माद् एतत् त्रयं त्यजेत् ।'

पर आसुर-मानव इन तीनोंको ही जीवनमें ग्रहण किये रहता है और 'अर्थ' तथा 'अधिकार'के लिये अपवित्र उग्र कर्मोंमें लगा रहता है । दिन-रात चिन्ता तथा द्वेषकी आगमें जलता रहता है, अभिमानमें चूर वह अन्याय तथा असत्यका आश्रय लेकर विपक्षी, प्रतिपक्षी या भिन्न मतावलम्बी लोगोंको व्यर्थ ही अपना शत्रु मानकर उनको हानि पहुँचाने, उनका अपमान करने, उन्हें गिराने या मारनेकी चिन्ता तथा चेष्टामें प्रवृत्त रहता है । ऐसा अशान्तचित्त पुरुष मृत्युके अन्तिम समयतक यहाँ दिन-रात चिन्ताग्रस्त रहता है, मरनेके बाद अशुचि नरकोंमें पड़ता है और भावी संततिके लिये बुरा आदर्श छोड़ जाता है । यह दशा आसुर-मानवकी निश्चित होती है ।

जितना-जितना ही मनुष्यमें 'त्याग' और 'कर्तव्य'का भाव बढ़ता है, उतना-उतना ही उसका जीवन पवित्र होता है और वह दैव-मानव बनता है । क्रमशः वह भगवत्प्राप्तिकी ओर बढ़ता है एवं उससे केवल उसके निकटस्थ रहनेवाले प्राणियोंका ही नहीं, देशवासियोंका—अखिल विश्वका उसकी अर्जित दैवी शक्ति-सामर्थ्यके अनुसार कल्याण-साधन होता है और इसके विपरीत जितना-जितना ही अर्थ तथा 'अधिकार'-की लिप्सा बढ़ती है, उतना-उतना ही जीवन अपवित्र होता है और वह आसुर-मानव बनता जाता है एवं दुःख-यातना, चिन्ता और नरकयन्त्रणाकी ओर बढ़ता है तथा उससे उसके निकटस्थ प्राणियोंका तो अकल्याण होता ही है, वह विश्व-प्राणियोंके अकल्याण और दुःखमें भी न्यूनाधिक रूपसे कारण बनता है ।

अभी-अभी देशमें जो आम चुनाव हुआ है, उसमें जो कुछ भी काण्ड हुए, उनसे पता लगता है कि त्याग-प्रधान ऋषियोंका देश 'अर्थ' और 'अधिकार'के लिये अन्धा-सा होकर किधर दौड़ा जा रहा है ! कौन कितने जीते, कितने हारे, यह प्रश्न नहीं है । प्रश्न है—'त्याग' तथा 'कर्तव्य'पर कितना ध्यान है, सत्य तथा न्यायपर कितनी दृष्टि है और देश तथा देशवासियोंकी कितनी चिन्ता है और व्यक्तिगत 'अर्थ' तथा 'अधिकार'की प्राप्तिके लिये असत्य-अन्यायका कितना ग्रहण है तथा देशकी कितनी विस्मृति है । प्रथम तो सबको मत देनेके अधिकार तथा बहुमतसे चुनावकी पद्धति ही गलत है; क्योंकि जनसमूहका मत कभी गम्भीर विचारपूर्ण तथा गहरी समझदारीका नहीं हुआ करता । जनसमूहका विचार तो बनाया जाता है और जिधरकी हवा जोरकी चलती है, उधर ही समूह चल पड़ता है । इसीसे जनसमूहके मतका कोई नियत मूल्य नहीं आँका जाता । इसीलिये मनुमहाराजने कहा है—

एकोऽपि वेदविद् धर्मं यं व्यवस्येद् द्विजोत्तमः ।
स विज्ञेयः परो धर्मो नाज्ञानामुदितोऽयुतैः ॥
(१२ । ११३)

'वेदका ज्ञाता एक भी ब्राह्मण जिसको धर्म निश्चित कर दे, उसीको श्रेष्ठ धर्म समझना चाहिये, दस सहस्र मूर्खोंके द्वारा कहा हुआ धर्म नहीं है ।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतएव बहुमतकी पद्धति यथार्थ प्रतिनिधिका चुनाव करनेमें समर्थ नहीं होती। फिर यहाँ तो बहुमत भी किसको समझा जाय और किनको बहुमतसे निर्वाचित प्रतिनिधि माना जाय! मान लीजिये कहीं एक हजार मत हैं—उनमें एक ओर ५०१ मत हैं और विपक्षमें ४९९ हैं; बराबर मत-में सिर्फ एक मतका अन्तर है, तो क्या एक मत अधिक होनेसे वे वास्तवमें एक हजारकी पूर्ण जनताके प्रतिनिधि हैं? आजकल और भी गड़बड़ी है। मान लें एक हजार मत हैं और छः प्रत्याशी हैं। पाँच प्रत्याशी १५०। १५० यों कुछ कम-ज्यादा—कुल मिलाकर ७५० मत प्राप्त करते हैं, एकको २५० मत मिल जाते हैं और चूँकि वे पाँचों ही २५०से कम मत प्राप्त करते हैं। इससे २५० वाले चुन लिये जाते हैं। पर वस्तुतः क्या वे बहुमतसे चुने गये हैं। तीन चतुर्थांश मत उनके विरुद्ध हैं, केवल एक चतुर्थांश उनके पक्षमें हैं। इसपर भी वे वहाँकी प्रजाके बहुमतसे चुने हुए प्रतिनिधि माने जाते हैं। यह यथार्थ प्रतिनिधित्व है या प्रतिनिधित्वका उपहास? विचारणीय विषय है। यह तो मतोंकी बात हुई, अब अन्यान्य विषयोंपर विचार कीजिये।

कहा जाता है कि इस बारके चुनावमें सब मिलाकर ६६ करोड़से अधिक रुपये खर्च होंगे। कुछ लोगोंका अनुमान है कि यह रकम भी कम है, इससे कहीं अधिक व्यय होगा। नौ करोड़ रुपये तो शायद सरकारी अनुमान है। प्रत्येक प्रत्याशी अमुक सहस्र संख्यासे अधिक खर्च दिखा नहीं सकता, चाहे वह कितना ही बड़ा हो और ऐसा सुना गया है कि जितना दिखाया जायगा उससे कई गुना अधिक तो सैकड़ों प्रत्याशियोंके खर्च लगेगा और कुछके तो एकसे पचीस-पचास लाखोंतक वरं करोड़ोंतक रुपये खर्च होंगे। एक तरफ सूखा तथा अकालके कारण त्राहि-त्राहि मची हुई है, करोड़ों हम-जैसे ही मानव नर-नारी बच्चे भूखके मारे छटपटा रहे हैं और दूसरी ओर इतना भयानक अपव्यय—सो भी चोरी असत्यके आधारपर।

मान लीजिये—किन्हीं प्रत्याशीको दस-बीस हजार या दस-बीस लाखकी जरूरत है, वे अपनी आवश्यकता-पूर्तिके लिये जाते हैं उनके पास या उन्हें बुलाकर कहते हैं जिनके पास रुपये हैं और चोरीके रुपये हैं जो बिना किसी खातेमें दर्ज किये उन्हें दे सकते हैं। उनसे यह जानते-समझते हुए वे रुपये लेते हैं कि ये रुपये ईमानदारीके नहीं हैं। वे ही पहले सम्भवतः कहीं मिनिस्टर हैं और आगे बननेवाली सरकारमें भी कहीं मिनिस्टर होंगे; पर वे उन व्यापारी महोदयको चोरीसे रुपये कमाते कैसे रोकेंगे? वरं उन्हें सुविधा प्रदान करनेका सौजन्य दिखानेमें भी शायद बाध्य कैसे नहीं होंगे? यों हजारों-लाखों रुपये चुनावके लिये देने-वाले धनी लोग दान तो देते ही नहीं वे तो इन्वेस्ट करते हैं या एक सट्टा खेलते हैं, बहुत अधिक प्राप्त करनेके लिये। इतनी रिस्क तो वे उठाते ही हैं कि कलको ये मिनिस्टर न बने तो शायद हमारे इस इन्वेस्टमेंटका फल तुरंत नहीं मिलेगा। कहीं-कहीं पूरी रकम डूबनेका भय भी रहता ही है!

कुछ प्रत्याशी जिनको धनियोंसे रुपये नहीं मिलते अतः वे ऋण लेकर चुनाव लड़ते हैं। वे भी इसी आशापर कि यदि जीत गये तो बहुत कमा लेंगे। उनके सामने अमुक-अमुकके उदाहरण हैं कि जो पहले अत्यन्त अभावग्रस्त थे, पर विधान-सभा या संसद्के सदस्य चुने जानेके बाद पैसेवाले हो गये। कइयोंके मकान बन गये। जिस सूत्रसे उनके पास पैसे आये, उन्हीं सूत्रोंसे ये भी अर्थप्राप्तिकी आशा रखते हैं। यह सब क्या है? असत्य, चोरी और बेईमानीको सीधा प्रोत्साहन है! या नहीं?

इस बार जगह-जगह हिंसापूर्ण उपद्रव हुए हैं। शायद कोई पार्टी बची हो जिसके सदस्यों या समर्थकोंने चोट न की हो या चोट न खायी हो। पत्थर, ईंट बरसाना साधारण-सी बात हो गयी। प्रधानमन्त्री श्रीइन्दिराजीपर पत्थरोंकी वर्षा हुई, श्रीमधु लिमयेपर घातक प्रहार हुआ और बहुत जगह पत्थर-ईंट फेंके गये, छूरे भोंके गये। लाठियाँ चलीं, गोलियोंकी बौछार हुई; कई जगह घर फूँक दिये गये, पोलिंगके खीमेमें आग लगा दी गयी। गंदे नारे लगाना, गालियाँ बकना तो आम बात थी। तामसिकताका यह ताण्डव नृत्य, जनतन्त्र या लोकतन्त्रके नामपर हुआ। बड़ी ही लज्जाकी—डूब मरनेकी बात है। भारतका पुराना अहिंसावाद तो कभीका भुला दिया गया था। गाँधीजीका ताजा अहिंसावाद भी दफनाया गया—इतनी जल्दी।

अब 'सत्य' पर आइये। भारतीय संस्कृतिके अनुसार तो अपने मुँहसे अपनी सच्ची प्रशंसा करना आत्महत्याके सदृश है तथा दूसरोंकी सच्ची निन्दा करना भी उनकी हत्या करना है। फिर अपने मुँहसे अपनी मिथ्या प्रशंसा और प्रतिपक्षी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यक्ति अथवा दलके सारे गुणोंमें दोषारोपण करके उनकी मिथ्या निन्दा करना तो सचमुच सत्यका नाश करनेके साथ ही एक बड़ा अपराध है और आजके हमारे इस जनतन्त्रके चुनावकी तो आधारशिला ही यह है। लिख-लिखकर—गला फाड़-फाड़ कर, छपवा-छपवाकर अपनी सर्वथा मिथ्या प्रशंसाके पुल बाँधना और प्रतिपक्षीकी सर्वथा मिथ्या निन्दाकी मूसलाधार झड़ी लगा देना और कोई कुछ बोले तो मार-पीटके लिये तैयार रहना। किसलिये ?—देशके लिये ? राष्ट्रके लिये, गरीब जनताके लिये ? या अपने लिये ? 'अर्थ' और 'अधिकार' की पिशाचिनी पिपासाको उत्तरोत्तर बढ़ानेके लिये ? इसका उत्तर अपने ही मनमें प्रत्येक प्रत्याशी अपनी आभ्यन्तरिक परिस्थिति देखकर अपने-आप ही दे लें। मेरा विश्वास है कि सभी दलोंमें ऐसे सज्जन महानुभाव हैं—जो सच्चे हैं, जिनके हृदयमें देशभक्तिकी सच्ची लगन है, जो देशका सचमुच कल्याण चाहते हैं और देशकी सेवाकी पवित्र भावनासे ही चुनाव क्षेत्रमें उतरे हैं। पर उनमेंसे भी अधिकांशका चुनावकी पद्धतिके दोषोंसे बचना असम्भव नहीं तो, बहुत कठिन अवश्य है। उस दिन मेरे एक प्रेमी सज्जन, जो स्वयं चुनावसे कोई सम्बन्ध नहीं रखते, मेरे पास आये हुए थे। मैंने पद्धतिकी एक बात सुनी थी, जो मेरी समझमें गलत थी, मैंने उनसे कहा—'यह नहीं करना चाहिये।' इसपर वे कुछ सकुचाते हुए-से बोले—'काँटेसे ही काँटा निकालना चाहिये।' मैंने उनसे कहा—'भाई ! मैं तो चाहता हूँ कि शूलके बदले भी फूल दिये जायँ।'

मतदानमें भी बहुत प्रकारकी अवाञ्छनीय बातें हुई। मरे हुए लोगोंके मत दिये गये, एकके बदले दूसरेने मत दिया, स्त्रीके वेषमें पुरुषने तथा पुरुषके वेषमें स्त्रीने मतदान किया, मतदान करनेवालोंको लानेके लिये गुंडे तैनात किये गये। मतदाताओंको रुपये बाँटे गये, अन्यान्य प्रकारसे उन्हें लालच-रिश्वत दी गयी। शराब बाँटी गयी, नाच दिखाये गये। प्रत्येक वोटपर अमुक संख्यामें रुपयेके हिसाबसे गुंडोंके द्वारा नकली मतदाता लाये गये। एक जगह एक लड़की दूसरेके नामपर मतदान करते पकड़ी गयी, बेचारी इतनी लजा गयी कि उसने आत्महत्या कर ली। इसके अतिरिक्त मत प्राप्त करनेके अन्य बहुत प्रकारके जघन्य साधनोंके समाचार मिले हैं। यदि यह सब सत्य है तो कहना ही पड़ेगा कि हमारा घोर पतन हो गया है और हम उत्तरोत्तर और भी पतनके गर्तमें गहरे गिरे जा रहे हैं। यह सब हो रहा है देश-सेवाके पवित्र नामपर और जनतन्त्रके नामपर ! गीताके सोलहवें अध्यायमें वर्णित आसुरी-सम्पदाके लक्षणोंका वर्णन पढ़ा जाता है तो ऐसा प्रतीत होता है मानो वह वर्णन हमारे वर्तमान विकास (या विनाश) की ओर द्रुत गतिसे जाते हुए समाजको लक्ष्य करके ही लिखा गया है। पूरे-पूरे मिलते हैं असुर-मानवके लक्षण। फिर स्वाभाविक ही यह प्रश्न उठता है कि इसे जनतन्त्र (डेमाक्रेसी) कहा जाय या असुरतन्त्र (डेमोनोक्रेसी) ? चुनावके बाद नयी सरकारें बनेंगी। उसमें भी हमारे मनोंमें व्यवस्थित राग-द्वेषका प्रभाव रहेगा ही और पता नहीं, उसका क्या परिणाम होगा, क्योंकि परिपंथी राग-द्वेष तो अध्यात्म-धन—दैवी-सम्पदाको लूटेंगे ही। भगवान् सबको सुबुद्धि दें।

—हनुमानप्रसाद पोद्दार

राग-द्वेषसे हानि

इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ। तयोर्न वशमागच्छेत् तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ॥

(गीता ३ । ३४)

प्रत्येक इन्द्रियके प्रत्येक विषयमें राग-द्वेष स्थित हैं। उन दोनोंके वशमें नहीं होना चाहिये; क्योंकि वे दोनों कल्याण-धनको लूटनेवाले बटमार शत्रु हैं।

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्। आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति॥
प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते।

(गीता २ । ६४-६५)

जिसका अन्तःकरण अपने अधीन है, ऐसा पुरुष अपने वशमें की हुई राग-द्वेषरहित इन्द्रियोंके द्वारा विषयोंमें विचरण करता है तो उसे अन्तःकरणकी प्रसन्नता—निर्मलता प्राप्त होती है और उस प्रसन्नता या निर्मलतासे सब दुःखोंका नाश हो जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्यात्म-हलके बैल—विवेक-वैराग्य

(लेखक—श्रीहरिकिशनदास अग्रवाल)

हलके बिना कोई भी खेती नहीं होती। हलको चलानेके लिये बैल परमावश्यक हैं। 'आत्मोपलब्धि' भी एक खेती है। इसके लिये भी इसके-जैसे ही बैल आवश्यक होते हैं।

इस खेतीके बैल—'विवेक' और 'वैराग्य' होते हैं,जिनसे यह खेती की जाती है। विवेक—विवेकका मतलब सच्चा विवेचन या निश्चित निर्दोष पारमार्थिक विचार है। जिससे मानव मायाके गहन अज्ञानान्धकारमें भी सच्चा मार्ग देख लेता है। तभी मोहकी गहन अन्धकारकी गलियोंको पार कर सकता है और रास्तेके भयंकर तामस, राजस-वृत्तिरूपी जीव-जन्तुओंसे बच सकता है। संसारमें विवेकसे काम लेनेवाला मनुष्य कभी असफल नहीं होता। पर विवेकहीन मनुष्य अपने कामको आप विफल ही नहीं बना देता, किंतु दूसरोंसे भी झगड़ा मोल लेता है। जो पुरुष विवेकसे आगे देखता है और चलता भी आगे है, वह जीवित है। पर जो मनुष्य देखता पीछे है और चलता आगे है—वह मुर्दा है; क्योंकि शवको जब अर्थीपर डालकर ले जाते हैं तो उसका सिर पीछेको किया हुआ होता है। सिर पीछे होने या करनेके कारण उसकी आँखें भी पीछे होती हैं।

जीवन अनमोल है, इसका कोई मूल्य नहीं चुकाया जा सकता। सड़कपर बैठकर पैसा-पैसा भीख माँगनेवाले भिखारीको भी यदि कोई कहे कि भीख माँगनेके बजाय हम तुम्हें एक करोड़ रुपये देते हैं, तुम अपनी दो आँखें निकालकर हमें दे दो। पर एक करोड़ तो क्या अगर दुनियाकी सारी दौलत भी उसे दे दी जाय तो भी वह अपनी दो आँखें देनेके लिये कभी तैयार नहीं होगा। आप सोचें कि जब दो आँखोंकी कीमत सारे जहानकी दौलत भी नहीं चुका सकती तो सारे शरीरकी कीमत क्या होगी? क्या वह कीमत चुकायी जा सकती है? नहीं, उसे कोई नहीं चुका सकता। न उसे कोई किसीको दे ही सकता है। महान् पुरुषोंसे सुना है कि शरीरके अंदर ७२ करोड़ नाड़ियाँ हैं। कोई धनवान् ७२ करोड़का धनी हो और उसकी एक नाड़ीमें पीड़ाके कारण उथल-पुथल हो जाय, जिससे उसको एक क्षण भी चैन न पड़े, ऐसे समयमें उससे कोई कहे कि तुम्हें अपना सारा धन त्यागना पड़ेगा तो तुम्हारी नाड़ीकी पीड़ा ठीक होगी। पीड़ा-निवारणके लिये वह अपना सर्वस्व त्यागनेके लिये भी तैयार हो जायगा। इसी कारण महान् पुरुषोंने इस देहको अनमोल रत्न बतलाया है; क्योंकि यह देह पुनः कोई नहीं प्राप्त कर सकता। देहको पाकर ही मनुष्य अपने लक्ष्यकी प्राप्ति कर सकता है। यही एक साधन है जिसका विवेकके साथ उपयोग करनेपर हम लक्ष्यकी प्राप्ति कर सकते हैं। साधन तो ईश्वरने हमें बहुत बढ़िया दिया। उसमें भी दो-दो आँख, नाक, कान, हाथ आदि सभी क्रियाशील दिये हैं। यदि वह एक-एक देता तो मानवका किसी प्रकार काम चल सकता था, किंतु वह परम कृपालु इतना उदार है कि उसने हमें हमारी दोनों जेबें भरकर संसारमें भेजा है। जिससे साधनाद्वारा लक्ष्य-प्राप्तिमें सफलता मिल सके। किंतु यदि हम विवेकहीन हो जाते हैं तो हमें भले-बुरेका ज्ञान नहीं रह जाता। सत्-असत्की पहचान नहीं रहती। जिससे आगे चलकर हम विषयोंके एक ऐसे गड्ढेमें गिर जाते हैं कि फिर निकलना बड़ा कठिन हो जाता है।

जिस प्रकार हल भूमिको कुरेदता हुआ भूमिसे अलग रहता है—उसी प्रकार वैराग्यवान् मनुष्य संसारमें रहता हुआ एवं संसारके काम-धंधे करता हुआ भी उनमें अनासक्त रहता है। जब मनुष्य संसारके विषयोंमें आसक्त हो जाता है, तो उसका हृदय सख्त हो जाता है। उसकी आत्मीय सहज कोमलता तिरोहित हो जाती है। वह कोमलता, सहज दयालुता, तत्त्व-ग्राहकता संसारके विषयोंमें रत होनेपर नहीं रहती जो कि स्वरूप-सिद्धिमें परम आवश्यक है। इसीसे वह अपने-आपको भी खो बैठता है।

विवेक और वैराग्य—मनुष्यकी आध्यात्मिक उन्नतिके उसी प्रकार मुख्य साधन हैं, जैसे कि दो बैलोंका हल खेती करनेमें मुख्य साधन होता है।

यह भूमि जब विवेक-वैराग्यके हलके द्वारा जोतकर नरम हो जाती है एवं रामनामके बीजके उपजानेके लायक कर ली जाती है तो उसमें राम-नामका बीज विधिपूर्वक बोते हैं तथा ऊपरसे सत्संगरूपी वर्षा होनेपर वह खेती हरिको मिलानेवाली हरी-भरी हो जाती है। इसके साथ एक बात यह भी है कि जो अपने जीवनमें ही 'राम-राम' कहता है, उसको कभी फिर 'मरा-मरा' नहीं कहना पड़ता; क्योंकि आत्मा अजर-अमर है। आत्माकी अमरताको जान लेनेपर फिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मरना बाकी नहीं रह जाता । जिन्होंने अपने जीवनमें रामको सत् करके नहीं जाना, उसके मरनेपर उसके शवको राम-नाम सत्य है, सुनाया जाता है । राम-नामका वास्तविक लाभ तो तभी होगा, जब कि जीवन-कालमें ही राम-रामको सत् करके जान लिया जाता ।

आकाशमें छाये हुए मेघोंके भीतर भी आकाश व्याप्त है, उसको वेदान्तकी परिभाषामें मेघाकाश कहा जाता है । आकाशमें बादल आ जानेसे एवं इसके दायरेमें आकाश तथा उसका जल, जलके अंदर प्रतिबिम्ब तथा उसके दायरेमें आया आकाश—ये सब सर्वव्यापक मेघाकाशसे भिन्न नहीं । आकाश सभी बादलोंमें एवं सर्वत्र एक ही है । बादलों आदिकी विभिन्नतासे व्यापक आकाशकी विभिन्नता नहीं हो सकती । इसी प्रकार जीवोंकी विभिन्नतासे आत्माकी विभिन्नता नहीं हो सकती । आत्मा सर्वत्र एक एवं अद्वितीय ही है । उपाधिभेदसे आत्माका भेद नहीं होता । हलके अंदर फौलादका टुकड़ा जिसे फाल या पाट भी कहते हैं—लगा रहता है । यह कठोर भूमिको उखाड़कर भूमिके अन्तरकी उर्वराशक्तिको बाहर विकसित करता है । उसी प्रकार जिज्ञासुके अंदर जब फौलाद-जैसी तत्त्वभरी मजबूत गुरुवाणी हृदयकी कठोरताको निकाल उर्वरा-जैसा बना देती है, तो उसमें कोमलता तथा ज्ञानके ग्रहणकी शक्ति आ जाती है, तब वह जीवन-संग्राममें लड़ता हुआ अपने अन्तरकी अभ्यास-शक्तिका विकास कर लेता है । जिसके फलस्वरूप उसे आत्म-प्राप्ति हो जाती है ।

पति-पत्नी शरीर दो होनेपर भी जब उनके विचार एक हो जाते हैं, तो वे अपने जीवनको परमार्थकी ओर झुकाकर उसमें राम-नामका बीज बोते हैं । जिससे वे आध्यात्मिक उन्नतिको प्राप्त कर लेते हैं । जहाँ पति और पत्नीके परस्पर विचार नहीं मिलते तो वहाँ घर-कलह होकर घरका घरूना हो जाता है । उनके गृहस्थमें कोई आनन्द अवशिष्ट नहीं रह जाता ।

जहाँ विवेक और वैराग्यके दो बैल हों, बीज राम-नामका और वर्षा सत्संगकी हो, वहाँ मानव अपने जीवनरूपी खेतमें परमानन्दकी उपजको प्राप्त करता है ।

गौ और गोपालके भक्त श्रीपाहुजा

(लेखक—श्रीराधेश्यामजी बंका)

बलिदानोंकी गाथाएँ प्रेरणाका अविरल स्रोत हैं । देशकी, धर्मकी, सत्यकी रक्षाके लिये प्रत्येक प्राणोत्सर्ग समाजमें चेतनाकी सृष्टि और वृद्धि करता है । श्रीपाहुजाके बलिदानकी गाथा भी ऐसी ही है ।

एक अत्यधिक साधारण स्तरके व्यक्ति श्रीपाहुजामें इतनी आस्तिकता, इतनी दृढ़ता, इतना त्याग होगा, यह किसे कल्पना थी ? श्रीपाहुजाकी उम्र थी ५१ वर्षकी । पूरा नाम था श्रीमेहरचन्दजी पाहुजा । मूल निवासी हैं फतेहपुर कुरेशीवाला, बहावलपुर रियासत (अब पाकिस्तान) के, किंतु भारत-विभाजनके बादसे दिल्लीमें ही रह रहे थे । पाकिस्तानमें पेशा था कपड़ेका व्यापार और तब थे भी बड़े सम्पन्न, किंतु दिल्लीमें एक साधारण-सी नौकरी करते थे जिससे परिवारका भरण-पोषण कठिनतासे हो पाता था ।

सं० २०२३, कार्तिक कृष्ण ९ सोमवार, (७ नवम्बर, ६६) को 'सर्वदलीय गोरक्षा-महाभियान-समिति' द्वारा संगठित महाविराट-प्रदर्शन दिल्लीमें होनेवाला था । इसके एक दिन पूर्व साधारण सभामें भाषण देते हुए पूज्य श्रीब्रह्मचारीजीने कहा था कि प्राणोंका उत्सर्ग किये बिना भारतका कलंक गोवध बंद नहीं होगा । जबतक गोवध बंद न हो जाय, तबतक जो व्यक्ति आमरण अनशन कर सकें, वे हाथ उठायें । अनेक हाथ उठाने-वालोंमें श्रीपाहुजा भी थे । तभी उन्होंने निश्चय कर लिया कि 'यदि गोबध बंद नहीं हुआ तो आगामी गोपाष्टमीसे आमरण अनशन आरम्भ कर दूँगा ।' महाविराट-प्रदर्शनमें गोलीकाण्ड हुआ, गोभक्तोंके सिर झूठा दोष मढ़ा गया और सरकारने गोवधके रोकनेके लिये कोई कदम नहीं उठाया । फलस्वरूप जगद्गुरु पुरी-शंकराचार्य पूज्य स्वामी श्रीनिरंजनदेव तीर्थजीने तथा पूज्य श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारीने अपनी पूर्व-घोषणानुसार गोपाष्टमी, २०२३ (२० नवम्बर, ६६) से आमरण अनशन आरम्भ कर दिया । पूज्य ब्रह्मचारीजीके साथ उनके आश्रम संकीर्तन-भवन, वंशीवट, वृन्दावनमें ही श्रीपाहुजाजीने भी अपना आमरण अनशन-व्रत आरम्भ कर दिया । उनके साथ अन्य अनेक लोगोंने भी अनशन-व्रत आरम्भ किया ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह न समझा जाय कि श्रीपाहुजाकी गोभक्ति पूज्य श्रीब्रह्मचारीजीके आह्वानपर उमड़ पड़ी। यह गोभक्ति तो उनके नस-नसमें समायी हुई थी। भारत-विभाजनके पूर्व जब वे अपने मूल-स्थान पाकिस्तानमें रहते थे, जब घर सुख-सुविधासे सम्पन्न था, उस समय यदि इनको संदेह हो जाता कि कोई व्यक्ति, फिर चाहे वह मुसल्मान हो या अन्य, गायको कष्ट देनेके लिये अथवा वध करनेके लिये ले जाता है तो ये उस गायको खरीदकर गोशालामें दे दिया करते थे। जैसी उनकी गोभक्ति थी, वैसी ही उनकी गीताभक्ति थी। भगवद्गीताका नित्य पाठ किया करते थे। गीताके सिद्धान्तोंको अपने जीवनमें उतारनेकी सतत चेष्टा किया करते थे। आमरण अनशनके दिनोंमें मालापर उनका जप हमेशा चलता रहता था। श्रीपाहुजाकी सत्य-निष्ठा और वचन-पालन एक आदर्श वस्तु है। पाकिस्तानसे आकर दिल्लीमें उन्होंने मनियारीकी दूकान खोली, पर वह नहीं चली। फिर गीताप्रेसकी धार्मिक पुस्तकोंकी दूकान खोली; पर उसमें भी घाटा लग गया। तब नौकरी करनेका निश्चय किया। जिस दूकानको श्रीपाहुजा छोड़नेवाले थे, उस दूकानको लेनेके लिये लोगोंने छः-सात हजार रुपये पगड़ी देनेका प्रस्ताव सामने रक्खा; परंतु श्रीपाहुजाको पगड़ीके रुपये लेना पापकर्म लगा। गरीबी थी, फिर भी सत्यकी टेक मनमें थी। पगड़ी नहीं ली और दूकान सरकारको दे दी, सरकार चाहे जिसे दे। नौकरी करते समय भी वही नेकनीयती, वही ईमानदारी। जिस दूकानमें काम करते, उसका मालिक एक सेर चीनीके १७ पैकेट बनाता। इस प्रकार हर पैकेटमें छटाँकसे कम चीनी होती। पर ग्राहकद्वारा छटाँक चीनी माँगनेपर मालिक एक पैकेट दे देता। श्रीपाहुजाने स्पष्ट अस्वीकार कर दिया कि वह ग्राहकोंको यह पैकेट नहीं देगा। श्रीपाहुजाजीने तौलमें कभी बेईमानी की ही नहीं।

श्रीपाहुजाजीके आमरण अनशनके दिन-पर-दिन निकलने लगे; किंतु मनमें वही उमंग थी, वही निश्चय था और वही उत्साह था। अपने पुत्रको भी अपने अनशनकी सूचना नहीं दी। अपने मित्रसे सूचना पाकर उनका पुत्र उनके पास आया। उनकी पत्नी दिल्लीसे उनके पास वृन्दावन आयी। मोहाविष्ट परिवारने अनशनव्रतके परित्यागके लिये अनुरोध किया, पर यह एक विफल प्रयास था। फिर परिवारवालोंने पूज्य श्रीब्रह्मचारीजीसे कहा कि 'आप अनशन तोड़नेके लिये कह दें। आपकी आज्ञा वे अवश्य ही मान लेंगे।' परिवारके अत्यधिक अनुरोधपर पूज्य ब्रह्मचारीजीने श्रीपाहुजाको व्रत तोड़नेके लिये कहा। इसपर श्रीपाहुजाने पूज्य श्रीब्रह्मचारीजीसे पूछा, 'आपने ६ नवम्बरको मुझसे गोवध-निषेधके उद्देश्यसे आमरण अनशनके लिये हाथ उठवाया था। क्या गोवध बंद हो गया? यदि आप जबरदस्ती मेरा व्रत-भंग करवा देंगे तो मैं पागल हो जाऊँगा।' इसी अवसरपर श्रीपाहुजाजीने पूज्य श्रीब्रह्मचारी-जीको भगवद्गीताका अमर श्लोक दिखाया—

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।

पूज्य ब्रह्मचारीजीके पास कोई उत्तर नहीं था। पूज्य ब्रह्म-चारीजीका अन्तर श्रीपाहुजाके उस निश्चयपर निछावर हो गया।

उनकी पत्नीको घरकी भी चिन्ता रहा करती थी। उनकी पत्नीने कहा—'मैं आपके व्रतको भंग नहीं करवाऊँगी। परंतु आप अपने घर दिल्ली चलें। आपको अनशन करना है तो वहीं करें। वहाँ मैं आपकी कुछ सेवा भी कर सकूँगी।' इसपर श्रीपाहुजाजीने कहा—'दिल्ली तो पापका घर है। मैं वहाँ नहीं जाऊँगा। और भला यह स्थान कैसे छोड़ूँ, जहाँ यमुनाजीका किनारा है, अखण्ड हरिनाम-संकीर्तन है, संतोंका सतत दर्शन है और गोपालक साँवरे गोपालकी भूमि है।' श्रीपाहुजाजी अपने परिवारवालोंको अपने पास नहीं बैठने दिया करते थे। उनको भय था कि ये परिवारवाले उनके अनशन-व्रतको तुड़वानेका प्रयत्न करेंगे और कहीं यह मन मोहग्रस्त न हो जाय। इन दिनों श्रीभीमसेनजी चोपड़ाने श्रीपाहुजाकी बड़ी सेवा की।

श्रीपाहुजाने श्रीचोपड़ाजीसे कहा—'आप मेरी सहायता कीजिये। मेरा परिवार मोहवश अनशन-व्रत भंग करनेके लिये कह रहा है। आप सबको समझा दीजिये कि मेरी सद्गतिसे उन सबका मस्तक ऊँचा उठ जायगा। व्रतसे गिर जानेपर हम किसीको मुँह दिखलाने लायक भी नहीं रहेंगे।'

दर्शनके लिये आनेवाले सज्जन पूछते—'क्या कोई तकलीफ है?' आश्रमवासी पूछते—'क्या कोई परेशानी है?' प्रेस-रिपोर्टर, स्वजन, सहानुभूति दिखानेवाले सभी श्रीपाहुजा-जीसे उनकी तकलीफ-परेशानी जाननेके लिये भाँति-भाँतिके प्रश्न करते; किंतु श्रीपाहुजाजी सबको एक यही उत्तर देते—'मुझे कोई परेशानी नहीं। मुझे कोई तकलीफ नहीं। मैं बहुत प्रसन्न हूँ। मेरा साँवरा मेरे साथ है। उसकी मुझपर अनन्त कृपा है। मैं बड़ा खुश हूँ। बस, चारों ओर आनन्द है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोग बार-बार यह चेष्टा करते कि श्रीपाहुजाजीका अनशन स्थगित हो जाय। श्रीपाहुजाजीकी अत्यन्त करुणापूर्ण स्थिति सबके मनको हिला देती थी, पर यह बात श्रीपाहुजाको कदापि अभीष्ट नहीं थी। जिस किसीको देखकर श्रीपाहुजाको यह लगता कि यह मेरे व्रतमें सहायक होगा तो उसका हाथ पकड़कर कहते, उसके कानमें कहते, उससे बार-बार कहते—'मेरी एक सहायता करो। सहायता यही कि मेरा व्रत लोग तुड़वाने न पावें। मेरा व्रत निभ जाय।' जब समाजके सम्माननीय लोग श्रीपाहुजाको व्रत-विसर्जनकी राय देते तो उनको बड़ा दुःख होता। एक बार तो 'सर्वदलीय गोरक्षा-महाभियान-समिति'की ओरसे भी व्रत-विसर्जनके लिये अनुरोध किया गया था। इस प्रकारके अन्य अनुरोध आनेपर श्रीपाहुजाजी कहा करते थे—'हिंदूसमाजका बड़ा दुर्भाग्य है। समाजके नेता तथा संत-महात्मा आत्म-बलिदानकी बातें कहते हैं और जन-समाजको बलिदानके लिये आह्वान करते हैं, किंतु जब वस्तुतः बलिदानका अवसर आता है तो बलिदानसे विरत होने और करने लगते हैं। बलिदानके अवसरपर पैरोंके नीचेसे जमीन खिसकने लगती है, पैर लड़खड़ाने लगते हैं। बलिदानका अवसर आते ही समझौतेकी बात करने लगते हैं केवल प्राणोंका मोह लेकर। बिना बलिदानके जाति उठती नहीं, चेतना आती नहीं, जन-जागरण होता नहीं। मुझे गौके लिये बलिदान हो जाने दो। मेरे बलिदानसे आपलोग घबराइये नहीं। मैं तो मरूँगा नहीं। धर्मयुद्धमें मरनेवाला कभी मरता नहीं। वह तो सदा अमर है, वह तो सदा अमर है।' श्रीपाहुजा इस बातका सतत उल्लेख करते कि विदेशोंसे आये अन्नको खाकर जीवित रहनेवालेको धिक्कार है। देशमें प्रतिदिन तीस हजार गाय कटती रहें और गायके मांस-हाड़-चामका निर्यात करके बदलेमें अन्न मँगाकर हम पेट भरते रहें, ऐसा जीना शर्मकी बात है।

श्रीपाहुजाजीकी स्थिति गम्भीर होती चली गयी। परिवारवालोंकी व्यथा बढ़ती ही जाती थी। उनकी व्यथासे द्रवित होकर पूज्य ब्रह्मचारीजीने कहा—'मैंने भी वैद्यकी दवा ली है, तुम भी ले लो।' तब श्रीपाहुजाजीने एक बार दवा ली। ली यह कहकर कि 'यदि दवा न लूँगा तो इसका अर्थ यह होगा कि मैं अपनेको पूज्य ब्रह्मचारीजीसे अधिक सुदृढ़ और बड़ा मानता हूँ। मैं अहंकारी हूँ। संताज्ञाकी अवहेलना न हो, इसलिये स्वीकार करता हूँ। सच बात तो यह है कि मैं न तो महात्मा हूँ, न संत हूँ। एक अत्यन्त साधारण गृहस्थ हूँ। बहुत पतित हूँ। पुलिसने एक दफा जबरदस्ती ले जाकर मुझे ग्लूकोजका इंजेक्शन लगा दिया। फिर भी मेरे प्राण नहीं गये। मुझे तो तभी मर जाना चाहिये था।'

श्रीपाहुजाजीकी स्थिति चिन्ताजनक तो होती ही जा रही थी। करुणाके वशीभूत होकर पूज्य ब्रह्मचारीजीने पुलिससे कहा कि 'आप इन्हें ले जाकर इनका उपचार कीजिये।' पुलिसद्वारा ले जानेका मतलब था वृन्दावनसे बाहर ले जाकर मथुरा जेलमें रखना। ऐसा ज्ञात होनेपर श्रीपाहुजाने भरी आँखोंसे कहा—'मेरी इस असहायावस्थामें मेरी इस दुर्बलताके कारण पुलिस स्वयं घसीटकर ले जाती तो और बात थी, उस समय भी मेरा साँवरा मेरी रक्षा करता। वह साँवरा पुलिसवालोंकी बुद्धिको ऐसा बदल देता कि वे मेरा व्रत भंग नहीं कर सकते थे। वे मुझे वृन्दावनसे बाहर मथुरा जेलमें नहीं ले जाते; परंतु कम-से-कम आपलोग तो मुझे वृन्दावनकी भूमिसे बाहर मत जाने दीजिये। यही मेरी करबद्ध प्रार्थना है। पुलिस ले जाने लगे तो आश्रमवासी पुलिसका रास्ता रोक लें। यदि ऐसा नहीं होगा तो मैं अपनी पत्नी और पुत्रसे कह दूँगा कि भले सिर कट जाय पर पुलिसको मेरा शरीर मत ले जाने देना और आप सभी भले मेरा साथ न दो, मेरा साँवरा मेरे साथ है, वह मेरी टेक निभायेगा। वह मुझको वृन्दावनकी भूमिसे बाहर नहीं ले जाने देगा।' उनकी इस आस्तिकताने सबको आश्चर्यमें डुबो दिया। उनकी इस सुदृढ़ताने जन-जनको रुला दिया।

अवस्था शोचनीय हो गयी। आश्रमवासी चाहते थे कि पुलिस श्रीपाहुजाजीको तंग न करे। अतः श्रीरामकृष्ण मिशन अस्पतालमें भर्ती करानेकी योजना बनी। वहाँके डाक्टर तैयार भी हो गये; किंतु डाक्टरोंने कहा—'हम जो भी देंगे, वह खाना-पीना पड़ेगा।' श्रीपाहुजाजीने श्रीचोपड़ाजीसे पूछा—'ये डाक्टर क्या कह रहे हैं? आप मेरे धर्मके साथी हैं। आप सारी बात स्पष्ट बतायें।' श्रीचोपड़ाजीने कहा—'डाक्टर आपके सामने स्पष्ट कह रहे हैं कि वे जो कुछ भी देंगे, आपको खाना-पीना पड़ेगा।' श्रीपाहुजाने कहा—'नहीं, कभी नहीं, मैं अपना अनशन नहीं तोड़ूँगा। मैंने ६ नवम्बरको भरी सभामें गोवध-निषेधतक आमरण अनशन करनेके लिये हाथ उठाया है। मैं अनशन नहीं छोड़ूँगा।' आश्रमवासियोंका यह प्रयास भी विफल गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मृत्युके मुखमें पड़े हुए श्रीपाहुजाजीने अपने आराध्य गोपालक साँवरे श्रीगोपालका चित्र मँगवाया। उनकी पत्नीने भी उनकी सेवा कमालकी की। वह स्वयं बवासीरसे ग्रस्त थी, बैठ सकना बहुत कठिन था; फिर भी पतिकी सेवामें आरम्भसे ही संलग्न थी। हमेशा ही श्रीपाहुजाजीकी टहलमें रहती। अन्तके पाँच दिन और पाँच रात तो वह सो भी नहीं पायी थी। वैसे उसकी आँखें यह सदा टटोलती रहती थीं कि शायद कोई उसके पतिके प्राणोंकी रक्षा कर दे। अन्तके दिनोंमें वह अपने हाथमें साँवरे श्रीगोपालका चित्र लिये रही और निरन्तर श्रीपाहुजाजीको दिखलाती रही।

श्रीपाहुजाजीने अपने जीवनका बीमा करा रक्खा था। परंतु अपनी गरीबीके कारण उसके रुपये भर नहीं सके थे। अतः जीवन-बीमा-पालिसी समाप्त हो गयी थी। किंतु उसके रुपये १६८) मिलनेवाले थे। अपने पुत्र श्रीजयदयालको बुलाया और कहा कि (क) ढाई आनेवाली एक हजार गीता बँटवा देना, जिसका दाम लगभग ९०) रुपये होगा। (ख) ५७)५० का प्रसाद यमुनाजीके किनारे बँटवा देना। (ग) रु० २०) ५० गोशालाको दान कर देना। यह सब तो उस १६८) रुपयेसे कर देना। फिर एक बछिया गोशालाको दान कर देना और सवा मन गुड़के लड्डू गायोंको खिला देना।

मरणासन्न श्रीपाहुजाजीने ३०।१२।६६ की रातके साढ़े दस बजे अपनी पत्नी-पुत्रको बुलाकर कहा—'कल मेरा शरीर नहीं रहेगा। आपलोग यहाँपर एक बालटी पानी और अँगीठी रख लेना। ब्राह्ममुहूर्तमें स्नान कराकर मेरे कपड़े बदल देना। इस कमरेमें रहनेवाले किसी अनशनकारीको या आश्रमवासीको कोई तकलीफ नहीं हो। स्नान कराकर लिपी-पुती जमीनपर मुझे लिटा देना और मेरे समीपमें गाय हो।' वह काली रात भी बीती। प्रातः सबेरे श्रीपाहुजाजीने अपनी पत्नीसे पूछा—'क्या पानी तैयार है? मुझे स्नान कराओ। मेरे जानेका समय आ गया है।' उनको विधिवत् शुद्धतापूर्वक स्नान कराया गया। उनका अन्त समीप जानकर उन्हें पूज्य श्रीब्रह्मचारीजीके कमरेमें ले जाया गया। वहाँ श्रीपाहुजाजीने पूज्य ब्रह्मचारीजीके अन्तिम दर्शन किये। पूज्य ब्रह्मचारीजीने उनके कानमें तारक मन्त्र दिया। तुलसीकी माला पहनायी। श्रीजीका चरणोदक दिया। ब्रजकी रजका तिलक लगाया गया। लोगोंने फिर श्रीपाहुजाजीको लाकर उस लिपी-पुती जगहपर लिटा दिया। वहींपर गाय बँधी थी। संयोगकी बात, गायने अपना पिछाड़ा श्रीपाहुजाजीकी ओर किया और अपने पवित्र गोमूत्रसे उनको नहला दिया। सब उपस्थित जन 'धन्य', 'धन्य', 'जय', 'जय' पुकार उठे। अन्तिम समयमें भी मुखपर वही प्रसन्नता, वही प्रशान्तता, वही प्रफुल्लता। धीरे-धीरे उनकी वाणी शान्त होने लगी और देखते-ही-देखते सदाके लिये शान्त हो गयी। मृत्युके बाद तो उनका मुखमण्डल दीप्तिसे और भी चमक उठा। उनकी अन्तिम अभिलाषा पूर्णतः पूर्ण हुई, उनकी मृत्यु वृन्दावनकी भूमिमें हुई, संतके आश्रममें हुई, गोमाताके आश्रयमें हुई और आराध्य गोपालकी संनिधिमें हुई। सबने उस महावीरके, महाबलिदानीके पावन शवको प्रणाम किया। पूज्य ब्रह्मचारीजीने साष्टाङ्ग प्रणाम किया। श्रीविहारीजीकी विशेष प्रसादी-माला चढ़ायी गयी। अनेक नर-नारी-बालक श्रीपाहुजाजीकी अर्थीके नीचेसे निकले। ऐसा तभी होता है, जब किसी बहुत सिद्ध और महान् संतका परमधाम-गमन होता है। श्रीपाहुजाजीके शवकी शोभा-यात्रामें सारा वृन्दावन उमड़ पड़ा। वृन्दावनका कण-कण उस महान् आत्माको प्रणाम कर रहा था। शोभायात्रा वृन्दावनके प्रमुख मार्गोंसे होती हुई वृन्दावनकी परिक्रमा देकर यमुना-तटपर आयी। शोभायात्रामें हजारों कण्ठ एक स्वरसे श्रीपाहुजाकी गोभक्तिकी उच्चध्वनिसे जय-जयकार कर रहे थे।

श्रीपाहुजा चले गये, किंतु उनकी आस्तिकता, गोभक्ति, निश्चय, गीता-निष्ठा, उत्साह, टेक सदा ही प्रेरणाकी वस्तु रहेगी। अपनी मृत्युशय्यापर उन्होंने छः पंक्तियोंकी एक कविता लिखी थी। अपनी पत्नीसे, पुत्रसे, मिलनेवालोंसे उन्होंने कहा कि 'इसको अच्छी तरहसे रट लो। खूब याद कर लो।' कविताके शब्द अत्यन्त साधारण हैं, किंतु उन शब्दोंमें एक महा-बलिदानीकी व्यथाभरी हृदयकी आवाज है—

दया कर दया कर दया वंशीवाले !
गउओंको आकर बचा वंशीवाले !!
गीताका वादा निभा वंशीवाले !
आसुरी शासन मिटा वंशीवाले !!
संतोंकी शान बढ़ा वंशीवाले
भारतकी आन बचा वंशीवाले !!

गौ और गोपालके भक्तकी जय !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़ो, समझो और करो

(१)

मेरी वस्तु कोई नहीं ले सकता

घटना अभी हालकी ही है जो कि मेरे मामाजीके साथ घटित हुई थी। मेरे मामाजी श्रीरामाधार चतुर्वेदी बल्केश्वर कालोनीके क्वार्टर नं० १०१। ३ में रहते हैं। मेरी मामीके सम्पूर्ण स्वर्ण-आभूषण एक डिब्बेमें बंद करके रेडियोके निकट रक्खे हुए थे और वह किसी सुरक्षित स्थानपर रखनेसे भूल गयी थी। लगभग एक माहके बाद जब मामीजी एक विवाहमें जानेको हुईं तो उन्होंने आभूषण पहननेके लिये बक्स खोला तो वहाँ कुछ भी नहीं पाया, तभी उनको ध्यान आया कि वे सब चीजें तो अमुक डिब्बेमें अमुक जगह रक्खी हुई थीं। तुरंत वे वहाँपर गयीं; किंतु वे वहाँ कुछ भी न पाकर निराश हो गयीं। उन्होंने सारा घर ढूँढ़ लिया। पास-पड़ोसवालोंसे पूछा किंतु उसका कोई फल न निकला। सारी खुशी रंजमें परिणत हो गयी। मामीजीको अपनी चीजें खो जानेका इतना दुःख नहीं था, जितना डर इस खबरके उनके श्वशुरतक पहुँच जानेका था; क्योंकि वे वृद्ध एवं कुछ ऐसे ही हृदयके आदमी हैं। उन्हें डर था कि कहीं इस संवादसे कोई अप्रिय घटना न घट जाय।

शामको दरवाजेपर जैसे ही साइकिलकी घंटी बजी, मामीका दिल धक्से हो गया। प्रसन्न मुखमुद्रामें मामाजी घरमें प्रविष्ट हुए, किंतु पत्नी तथा घरकी अस्त-व्यस्त हालत देखकर उन्हें किसी अनिष्टका आभास हो गया। पत्नीद्वारा सब बातका पता लगनेपर उन्हें दुःख तो अवश्य हुआ, किंतु फिर भी ढाढस बँधाते हुए उन्होंने पत्नीसे यही कहा कि 'मेरी वस्तु कोई नहीं ले सकता, मेरी वस्तु अवश्य मिलेगी। तुम क्यों व्यर्थमें चिन्ता करती हो। इसमें किसीका कोई दोष नहीं।' इन शब्दोंको सुनकर पत्नीकी आँखोंसे झर-झर आँसू बहने लगे।

मुहल्लेके बहुत-से व्यक्ति झूठी दिलासा एवं सम्मति देनेको आने लगे। कोई कहता अमुक ज्योतिषीके पास जाओ, कोई कहता अमुक आदमीके पास जाओ जो हाथ पकड़कर बतला देता है कि चोर कौन है। इसी प्रकार विभिन्न प्रकारकी सम्मतियाँ मामाजीको मिलने लगीं। मामाजी किंकर्तव्यविमूढ़-से होकर जो जैसा कहता, करने लगे, किंतु इसका कोई परिणाम न मिला। लगभग एक माह और व्यतीत हो गया।

एक दिनकी बात है, जब मामाजी, जो कि हमारे कारखानेमें ही काम करते हैं, अपने जीजाजी श्रीविश्वनाथ चतुर्वेदीजीसे मिले तो उन्होंने उनको यह नेक सलाह दी कि 'इन सब आडम्बरोंको छोड़कर श्रीबाँकेबिहारीजीकी शरणमें जाओ और सच्चे हृदयसे प्रार्थना करो। सफलता अवश्य मिलेगी।' मामाजी हताश हो चुके थे। उन्हें अब अपनी वस्तु मिलनेकी कोई भी आशा नहीं रह गयी थी। तथापि उन्होंने आखिरी प्रयास करनेकी सोची।

दिनभरके कामसे निवृत्त होकर मामाजी जब घर पहुँचे तो उन्होंने मामीजीसे सारी बातें कहकर निश्चय किया कि 'प्रातःकाल हमलोग वृन्दावन चलेंगे और श्रीबाँकेबिहारीजीके मन्दिरमें जाकर भगवान्से प्रार्थना करेंगे। हमारी चीज अवश्य मिलेगी।' दूसरे दिन पूर्वनिश्चित कार्यक्रमके अनुसार मामाजी तथा मामीजीने श्रीबिहारीजीके चरणोंमें पहुँचकर प्रार्थना की और शामको घर वापस लौट आये। दूसरे दिन प्रातःकाल जब मामीजी उठीं और अपने क्वार्टरके आँगनमें गयीं तो वहाँ देखती हैं कि एक अखबारके कागजमें लिपटी हुई कोई चीज पड़ी है। उन्होंने यों ही कौतूहलवश उसको उठाकर देखा तो खुशी एवं आश्चर्यके मिले-जुले भावमें वे केवल इतना ही कह सकीं कि 'बिहारीजीने मेरी सब चीजें भेज दीं।' फिर क्या था, मामाजी भी दौड़कर वहाँ पहुँचे। कागजको पूरी तरहसे खोलनेपर ज्ञात हुआ कि उसमें एक अँगूठी भी थी, जिसका कि इन लोगोंको स्मरण ही नहीं था।

इस घटनाको देखकर मुझको ऐसा भान हुआ है कि कोई यदि सच्चे हृदयसे भगवान्में आस्था रक्खे तो भगवान् उसके सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण करनेमें कुछ भी उठा नहीं रखते हैं।

—श्रीयोगेन्द्रकुमार चतुर्वेदी

(२)

भिखारीका वसीयतनामा

उसका नाम था धनिया, पर वह था निर्धन। एक आँखसे काना, एक हाथसे लूला और एक पैरसे लँगड़ा, शरीरसे हृष्ट-पुष्ट, रंगसे साँवला, जातिका कोरी।

वह जब पाँच वर्षका था, तभी उसके माँ-बाप महामारी रोगमें मर गये थे। आँसू बहाते निराधार धनियाको पड़ोसियोंने आश्रय दिया था, उन्होंने दो वर्षतक तो उसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाला-पोसा, फिर धीरे-धीरे सभी उसकी ओरसे बेपरवाह हो गये । जहाँसे उसे मान तथा प्रेम मिलता था वहाँसे उनका मिलना बंद हो गया, तब एक दिन धनिया उस गाँवसे चल दिया ।

पासके ही एक गाँवमें भिखारी मुहल्ला था, वह वहाँ जाकर खड़ा हो गया । एक भिखारी कुटुम्बने उसे स्वजनकी तरह रख लिया । फिर तो भिखारियोंके बच्चोंके साथ धनिया भी माँगने जाने लगा । उसे जो कुछ मिलता उसीसे वह अपना गुजारा चलाता ।

शरीरमें कोर-कसर होनेके कारण भीख माँगनेके सिवा वह दूसरा कोई काम कर नहीं सकता था । इसलिये इस कामके प्रति घृणा होनेपर भी तथा दूसरा काम मिलनेपर उसे करने या कहीं नौकरी करनेकी इच्छा होनेपर भी निरुपाय होकर उसे यही भीख माँगनेका काम चालू रखना पड़ा ।

दुर्भाग्यसे इस गाँवमें भी अकाल पड़ा । परिणामस्वरूप सभीको दूसरी जगह जाना पड़ा । धनिया भी सबके साथ था । कुछ दूरपर एक तीर्थस्थानमें भिखारियोंने झोंपड़े बनाकर वहाँ रहना शुरू किया । वहाँ गाँवमें और पहाड़पर असंख्य और आकर्षक मन्दिर थे, वहाँ धनियाका काम जोरोंसे चल रहा था ।

धनिया ज्यों-ज्यों बड़ा होता गया, त्यों-ही-त्यों अधिक समझदार भी होता गया । उसे जो कुछ खानेको मिलता, उसीसे काम चला लेता । सौभाग्यसे उसमें कोई व्यसन नहीं था । उसके मित्रोंका आग्रह होनेपर भी वह चाय या बीड़ी नहीं पीता था ।

इस प्रकार दिन, महीने और वर्ष बीतने लगे । धनिया अब जवान हो गया था । उसने सोचा था कि उसीके-जैसी ही शरीरमें कोर-कसरवाली किसी भिखारिनके साथ विवाह कर लिया जाता, पर फिर ऐसा करना उसे उचित नहीं लगा । किसीके जीवनको नष्ट कर देना मानवतारहित कार्य है, ऐसा मानकर उसने विवाहका विचार छोड़ दिया ।

उसने अपना सारा ध्यान माँग-जाँचकर पैसे बचाकर इकट्ठे करनेमें लगा दिया । उसने अपना अलग एक झोंपड़ा बना लिया । वह उसीमें पड़ा रहता । अपने पास बची हुई पूँजीमेंसे बहुत बार वह भिखारी मुहल्लेमें रहनेवालोंकी दवा-दारूके लिये या खास किसी दिक्कतके समय उनकी सहायता करता । एक बार सहायतामें दिये हुए पैसे वह कभी वापस नहीं लेता । इससे उसके मुहल्लेमें सभी उसको सम्मानकी दृष्टिसे देखते ।

एक दिन भिखारी मुहल्लेके झोंपड़ोंमें भयानक आग लग गयी । एक झोंपड़ेमें एक छोटा-सा बच्चा रह गया । उसे बचानेके लिये धनिया आगमें कूद पड़ा । उसके हाथ-पैर जल गये । पर वह बच्चेको सही-सलामत बचाकर बाहर ले आया । जल जानेके कारण धनियाको अस्पतालमें दाखिल करना पड़ा । पंद्रह दिनोंके बाद वह अच्छा होकर मुहल्लेमें वापस आया । उस समय सबने उसका बड़ा स्वागत-सत्कार किया ।

मुहल्लेमें रहनेवाले सभीका यह ख्याल था कि धनिया पैसा बचाता है; परंतु बचाकर कहाँ रखता है, इसका किसीको अनुमान नहीं था । धनियाकी गैरहाजिरीमें एक बार मुहल्लेके कुछ लोगोंने कुतूहलवश धनियाका झोंपड़ा खोद डाला, परंतु उसमेंसे निकला कुछ भी नहीं । गड्ढे भरकर जमीनको बराबर कर दिया गया । पर जब धनिया घर लौटा तब सारी परिस्थिति उसकी समझमें आ गयी । इसपर भी उसने कभी किसीसे एक शब्द भी नहीं कहा ।

इस प्रकार धनियाके जीवनके पैंसठ वर्ष बीत गये । एक रात्रिको उसकी छातीमें अचानक दर्द उठा । उसने मुहल्लेके आदमियोंको बुलाया । सारे मुहल्लेके लोग वहाँ इकट्ठे हो गये । दर्द बढ़ता जा रहा था । दो नौजवान डाक्टरको बुलाने गये । चार-छः जने धनियाकी सेवा-सँभालमें लगे । इधर डाक्टरने झोंपड़ीमें पैर रक्खा कि उधर धनियाके प्राण-पखेरू उड़ गये ।

डाक्टरने परिस्थिति समझ ली, परंतु सबके संतोषके लिये उसने शरीरकी अच्छी तरह जाँच-पड़ताल करके यह बतलाया कि धनियाकी मृत्यु हार्टफेलसे हुई है । इस समय भिखारी मुहल्लेके आबाल-वृद्ध सभीकी आँखें सजल हो रही थीं ।

धनियाकी आकस्मिक मृत्युका समाचार हवाकी तरह सारे गाँवमें फैल गया । धनियाकी शवयात्रा ठाट-बाटसे निकली । उसमें गाँवके नगरसेठ और दूसरे-दूसरे प्रतिष्ठित पुरुषोंने भाग लिया था । रात्रिको आजाद चौकमें एक पब्लिक शोक-सभा हुई । सभापति नगरसेठने शोक प्रकट करते हुए कहा—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'धनिया निर्धनके रूपमें जन्मा और जीवित भी रहा होगा, परंतु वह मरा है एक श्रीमान्‌के रूपमें। उसने एक-एक पैसा बचाकर इकट्ठा किया है। आज उसके नामपर बैंकमें पचीस हजार रुपये जमा हैं। इतनी बड़ी रकम उसने दानमें दे दी है। उसने एक वसीयतनामा लिखवाया है, उसे मैं आपलोगोंके सामने पढ़कर सुनाता हूँ—

'मेरे-जैसे क्षुद्र-से-क्षुद्र और भिखारी आदमीका वसीयतनामा कैसा? मेरे इस वसीयतनामेकी बात सुनकर कदाचित् आप सबको हँसी आयेगी; परंतु जीवनभर मेरे मनमें यही विचार आते रहे कि मेरे-जैसे लूले-लँगड़े अशक्त और निराधार मनुष्योंको कितना कष्ट सहना पड़ता होगा, उनको कितनी दिक्कतें उठानी पड़ती होंगी, कितना अपमान-तिरस्कार सहन करना पड़ता होगा? उन सबको थोड़ी-बहुत सुविधा मिले, इसके लिये एक आश्रमके स्थापनकी आवश्यकता है। मैंने माँग-माँगकर ये पैसे इकट्ठे किये हैं। यह कुल रकम मैं आश्रमके लिये दे रहा हूँ। मैंने कोई दान किया है, ऐसा मैं नहीं मानता। समाजका दिया हुआ पैसा मैं समाजके चरणोंमें रख रहा हूँ। मेरे इन पैसोंकी सँभाल रखनेके लिये मैं नगरसेठका और रकम स्वीकार करनेके लिये समाजका उपकार मानता हूँ······।'

नगरसेठने इस आश्रमकी स्थापनाके लिये अपनी ओरसे दस हजार रुपयेके दानकी घोषणा की। सभा विसर्जित हुई। उस समय लोग धनियाकी खूब-खूब प्रशंसा कर रहे थे। 'जगत्‌के इतिहासमें यह 'वसीयतनामा' बेजोड़ रहेगा' ऐसी बात भी कुछ लोग कर रहे थे। 'अखण्ड आनन्द'

—झवेर भाई बी० पटेल

(३)

अनोखा पागलपन

मेरे ग्राममें एक पागल व्यक्ति है। जातिका ब्राह्मण है और उसे पागल हुए लगभग पंद्रह वर्ष हो गये। पागल हो गया है, घर-द्वारका कोई ठीक नहीं, तो भी अपने कर्तव्यपर अडिग रहता है। गाँवके आस-पास ही मजदूरी करके अपना पेट पालता है। वह उन पागलोंमें नहीं, जो किसीको अंट-संट बकता रहता हो। उसका विचार इतना महान् है कि आप कोई भी वस्तु उसको दें, परंतु वह मुफ्तमें उसे ग्रहण नहीं कर सकता। एक दिनकी बात है कि मेरे द्वारपर दो मजदूर और मेरे चाचाजी चारा-मशीनसे चारा काट रहे थे। वह पागल कहींसे घूमता हुआ आया। कुछ समय रुकनेके बाद उसने चाचाजीसे कहा—'ओझाजी! एक जनेऊ दीजिये। मेरा जनेऊ अभी टूट गया।' चाचाजी जनेऊ लाने गये और इधर वह पागल एक मजदूरको हटाकर स्वयं चारा काटने लगा। शीघ्र ही चाचाजी जनेऊ लाकर उसे देते हुए बोले—'ये मजदूर हैं, मजदूरीपर चारा काट रहे हैं, तुम जाओ।' उस पागलने जनेऊ लेते हुए कहा—'इस जनेऊके बनानेमें आपको समय लगा होगा न? मैं जनेऊको मुफ्तमें नहीं ले सकता।' और यह कहकर उसने मशीन चलाना शुरू कर दिया। करीब पंद्रह मिनटतक काम करनेके बाद वह गया। मैं उसके ऐसे सुन्दर विचार देखकर दंग रह गया। कितनी पवित्र है उसकी आत्मा, कैसे सुन्दर हैं उसके विचार। हम सबके ऐसे ही विचार हो जायँ तो सारा संसार सुखकी नींदसे सोये!

—कामेश्वर ओझा

(४)

बचानेवालेके साथ ही गाय भी चल बसी

गाँव कचौरामें मेरे बड़े भाई वैद्य श्रीकुन्दनलालजी मोहताने एक काँजी-हाउसकी नीलामी गौ, जो एक कसाईके हाथों बिक रही थी, उसे बचानेकी दृष्टिसे ७) में खरीद ली और केवल सेवाभावसे उसको अपनी देख-रेखमें रख लिया। भाग्यसे चार महीने बाद उसने बच्चा दिया और वह खूब दूध देने लगी। फिर तो हर डेढ़ साल बाद वह बच्चा देती और दूध पिलाती। इस प्रकार उसकी कई बछियाँ हुईं और गायरूपमें दूसरोंको दान दी गयीं और जहाँ-जहाँ दी गयीं, वहाँ-वहाँ खूब बछड़े और बछिया दीं, जिनके बछड़े बैल बनकर उन लोगोंके खेतमें काम आये और गायकी बछियाँ पौद रूपमें गाय बनकर बराबर दूध देती रहीं। लगभग आठ वर्ष बाद वे कचौरेसे हाथरस रसायनशालाका काम ले आये। आते समय वे एक किसानको गाय इसलिये दे आये कि शहरमें जगहकी कमी रहेगी। किसान रघुवीर चन्दनपुराको इस शर्तपर गाय और बछड़ा दे आये कि इस गायकी अगली बार बछिया होनेपर हम हाथरस मँगा लेंगे और सेवा करेंगे। बछड़ा हर हालतमें तेरा है।

ईश्वरकी माया बड़ी विचित्र रही कि श्रीकुन्दनलालजी बीमार पड़े और उन्हीं दिनों उस किसानने खबर दी कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गायने बछिया दी है और दूध दे रही है। किसानको कहला दिया कि तुम गायका दूध पीओ, जब बछिया बड़ी हो जायगी तब हम मँगा लेंगे। किसानने बार-बार कहा कि 'दूध वहाँ आप पीते रहें। बड़ी होनेपर बछिया आप रख लें, तब मैं गाय ले जाऊँगा।'

इस सूचनाके बाद लगभग ८ दिन भी न बीते कि श्रीकुन्दनलालजीकी जीवन-लीला समाप्त हो गयी एकादशीको दस बजेके समय। तीसरे दिन वह किसान फिर आया और उसने समाचार दिया कि जिसे कोई भी रोग नहीं था, वह गाय १२ बजे अचानक खड़े-खड़े गिर गयी और मर गयी तथा २ बजे उसकी बछिया भी चल बसी। पूछनेपर उसने बताया कि दिन भी वही एकादशीका था। इस बातसे बड़ा आश्चर्य हुआ किंतु घटना बिल्कुल सत्य थी। आखिर सबने यही विचार किया कि कसाईके हाथसे मौतके मुँहमेंसे बचानेका ही परिणाम यह निकला कि बचानेवाले श्रीपूज्य भाईजीके साथ गायने भी परलोकमें उनके साथ जाना ठीक समझा। अतः शास्त्रकी बात ठीक साबित हुई कि गाय यहाँ भी तारती है और परलोकमें भी।

—रामचन्द्र मोहता

(५)

तुमने अपना कर्तव्य पूरा किया

आसाम प्रान्तके कछार जिलेके दूरके एक गाँवमें—गैर कानूनी तौरपर बनाया हुआ एक छप्पर तोड़नेके लिये मैं सरकारकी ओरसे गया था। एक गरीब ग्रामीणने अपने घरके बगलमें सरकारी स्वामित्वकी जमीनपर बाँस रोपकर एक छप्पर ढाल लिया था।

मेरे आदमियोंने छप्पर तोड़ना शुरू किया। वह ग्रामीण मेरे पास खड़ा था। न तो उसने इसके विरोधमें एक शब्द भी उच्चारण किया और न किसी प्रकारसे दयाकी ही भीख माँगी।

ज्यों ही छप्परके तोड़नेका काम पूरा हुआ कि तुरंत वह घरके अंदर गया और दूधसे भरा एक प्याला लाकर मेरे सामने रख दिया। मैं लज्जित-सा हो गया और मैंने दूध लेनेसे इन्कार कर दिया; परंतु बड़ी ही नम्रतासे उसने कहा—'साहेब! इस छप्परको तोड़ना तो तुम्हारा कर्तव्य था, तुमने उसे पूरा किया, पर तुम शहरसे कितनी दूर यहाँ आये हो तथा अबतक तुमने कुछ भी लिया नहीं है। कृपा करके भगवान्‌के नामपर इतना-सा दूध पी लो; नहीं तो, मुझे बहुत दुःख होगा।'

मैंने जब दूध पीया, तब उसके चेहरेपर संतोषकी झलक दिखायी दी। 'अखण्ड आनन्द'

—मृगाङ्कमोहनदास

(६)

ईश्वरका न्याय एवं चेतावनी

घटना कुछ पुरानी किंतु सच्ची है एवं इससे अनुभव होता है कि भगवान् समय-समयपर अपने भक्तोंको सही मार्गका अवलम्बन करनेकी प्रेरणा देते रहते हैं।

उस समय जाड़ोंके दिन थे। मैं राजस्थानमें अपने ग्राम उदयपुर शेखावाटीसे जैपुर कुछ कार्यवश आ रहा था—जाते समय पिताजीने वहाँसे कुछ मेवा लानेको कहा एवं साथ ही यह भी हिदायत दी कि जैपुरमें बहुत ज्यादा मोल-तोल होता है अतः बुद्धिमानीसे माल खरीदना; ठगा मत जाना। अतः उसी चेतावनीको ध्यानमें रखते हुए मैं मेवोंके बाजारमें गया एवं कई दूकानोंपर भावोंकी जाँच की; अन्तमें ४-५ दूकानोंके बाद एक दूकानपर पहुँचा, मेरे हाथमें सामानकी सूची थी, दूकानदार काफी चालाक होगा—अतः मैंने सूचीके अनुसार २-३ चीजोंके दाम पूछे तो उसने यह समझ लिया था कि मैं बाजारकी अन्य दूकानोंसे भाव पूछकर आ रहा हूँ, इसलिये उस भाईने मुझे, उनके दाम बाजारसे कुछ-कुछ कम करके बताये तो मैंने समझा कि यह ठीक दूकान है, यहाँ उचित दाम लगेंगे। अतः मैंने अपनी सूची उस दूकानदार भाईको सम्हलाकर कह दिया कि मैं और चीजें खरीदकर आ रहा हूँ, आप इस बीचमें सब चीजें बढ़िया देखकर ठीकसे तौलकर मेमो बनाकर तैयार रक्खें। थोड़ी देरके बाद और काम समाप्त करके मैं लौटा तो दूकानदारने सब चीजें तैयार कर कैश-मेमो तैयार कर रक्खा था। मैंने अपनी सूची लेकर कैश-मेमोसे मिलाया तो मालूम हुआ कि जिन दो-तीन चीजोंके दाम मैंने उससे पूछे थे वे तो उसने जो भाव मुझे बताये थे यानी बाजारसे कुछ नीचे, उनके तो वही दाम उसने लगाये, बाकी ८-१० चीजोंमें बाजारमें जो दाम थे, उनसे भी कुछ ऊँचे लगाये, मैंने दूकानदारसे विरोध किया तो वह तैयार नहीं हुआ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाजारभाव दाम लगानेको। मुझे जल्दी थी अतः लाचारीसे पछताते हुए दुःखित मनसे, क्योंकि उसके विश्वासके कारण मैं बेवकूफ बन चुका था, मेमोके अनुसार सामान मिलाने लगा तो देखा कि मेरी सूचीके अनुसार ३ सेर पिश्ते उसने दिये थे किंतु भूलसे मेमोमें दाम उसने दो सेरके ही लगाये थे। अतः ज्यों ही मैं उसे उसकी भूल बतानेको था कि मेरे मनमें अचानक यह भावना उठी कि चलो अच्छा हुआ इसने मेरे साथ बेईमानी की, उसकी कसर मेरी तो पूरी हो रही है एवं इसको कोई लाभ भी नहीं हो रहा है। अतः मैंने मनमें खुश होकर उससे उसकी गलती नहीं बतायी और रुपये देकर मेवोंकी सभी छोटी-बड़ी थैलियोंको एक बड़े बोरेमें डलवाकर ताँगेमें रखकर चला। साथ ही सोच रहा था कि दूकानदारको उसकी गलतीसे उसकी बेईमानीका कोई फायदा नहीं हुआ—भगवान् भी कितना न्यायप्रिय है—किंतु मैंने यह नहीं सोचा कि मेरे मनमें भी तो कुछ खोट आ ही गयी, चाहे किसी कारणसे हो; चाहे दूकानदारकी बेईमानी हो—वह अपनी करनी भोगता—मुझे तो जितनी चीज ली उसके पूरे दाम देने ही चाहिये थे—किंतु यह मेरी गलती थी। मुझे भी समझिये—लोभ आ गया। किंतु वाह रे 'ईश्वरका न्याय एवं चेतावनी'। मैं मन-ही-मन ताँगेपर हिसाब लगाये जा रहा था तो जोड़नेसे पता चला कि १ सेर पिश्तेके जितने दाम हुए करीब-करीब उतने ही पैसे उसने अन्य चीजोंमें मुझसे अधिक विशेष लिये थे—मैंने देखा कि दूकानदारको कोई लाभ नहीं हुआ और न मेरे ज्यादा पैसे लगे। किंतु मेरे मनमें जो दुर्भावना आयी, उसके प्रतीकारके लिये एवं भविष्यमें फिर इसी प्रकारकी पुनः गलती नहीं करूँ, इसके लिये दयालु भगवान्‌ने इतना सुन्दर सबक दिया जिसे कि मैं जीवनभर नहीं भूल सकता। ताँगा बाजारसे चला जा रहा था। इतनेमें पीछेसे ताँगा रोकनेकी आवाज सुनायी पड़ी तो घूमकर क्या देखता हूँ कि बोरा खिसककर ताँगेके पहियेके समीप आ गया था और उस पहियेकी रगड़से बोरा कटकर एवं उसके अंदरकी पिश्तोंवाली थैलीमें रगड़ लगकर वह भी कट गयी थी तथा सड़कपर पिश्ते गिरते जा रहे थे और लोग चुन रहे थे। हल्ला सुनकर ताँगेवालेने ताँगा रोककर पिश्ते बटोरनेकी सोची तो मैंने उसे मना करा दिया; क्योंकि पिश्ते गिरनेसे मनके अंदर एक प्रकाश-सा मालूम हुआ एवं अपनेपर दूकानदारको १ सेरका दाम नहीं देनेकी ग्लानि हुई एवं पश्चात्ताप हुआ। डेरेपर आकर पिश्तेको तौला तो ठीक एक सेर पिश्ते गिरे थे। यों दोनोंको सजा मिल गयी—दोनोंके घरमें नहीं रहा—न खरीदारके, न दूकानदारके; क्योंकि दोनोंके मनमें बुराई आ गयी थी। यह था 'ईश्वरका न्याय एवं चेतावनी' दूधका दूध, पानीका पानी। पिश्ते तौलनेके बाद बड़ी शान्ति मिली। इसी प्रकार भगवान् प्रायः हर मौकेपर प्रेरणा एवं सद्बुद्धि देते हैं।

—महाबीरप्रसाद पाण्डेय

(७)

समवेदना

गत ११ जून १९६६ शनिवारको सबेरे मैंने डी० एल वैद्य रोडपर रहनेवाले अपने मित्र काशीनाथके घर पहुँचकर देखा कि उनके वृद्ध पिता जमीनपर सोये हुए तड़प रहे हैं। मैं हैरान रह गया। पूछनेपर काशीनाथने बताया कि 'भाई! घबरानेकी कोई जरूरत नहीं है। गत कल रात्रिको ही पिताजीपर हलका-सा लकवेका हमला हो गया था! डाक्टरकी दवा चल रही है और सोमवारको सबेरे इनको सायन तिलक अस्पतालमें भर्ती करानेकी व्यवस्था हो चुकी है।'

सोमवारकी संध्याको मैंने काशीनाथके पिताजीके स्वास्थ्यका हाल जाननेके लिये उनके घरकी ओरका रास्ता पकड़ा कि इतनेमें ही बाजे-गाजेके साथ शवयात्राका एक जुलूस शिवाजी पार्ककी ओर जाता दिखायी दिया और उसमें सबसे आगे धूआँ छोड़ती हुई हाँड़ीके साथ काशीनाथको देखकर मैंने सारी परिस्थिति समझ ली और आँखोंके आँसू छिपाता हुआ मैं वहींसे वापस लौट गया।

दूसरे दिन काशीनाथसे मिलनेपर उनके पिताजीकी अकस्मात् मृत्युके सम्बन्धमें मैंने पूछा तो उन्होंने बताया—'भाई! सोमवारको सबेरे नियत समयपर उनको सायन अस्पतालमें ले गये और एक अच्छेसे सुविधापूर्ण कमरेमें उन्हें रखवा दिया। अभी इंजेक्शन-इलाज चालू हो ही रहा था कि माटुंगा-वडालाके बीचमें दो लोकल ट्रेनोंके आगने-सामने भिड़ जानेसे भयानक दुर्घटनाका समाचार मिला और साथ ही टैक्सियोंमें, मोटरोंमें, एम्बुलेन्सोंमें, बसोंमें—भर-भरकर करुण चीत्कार करते घायल यात्रियोंके समूह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अस्पतालमें पहुँचने लगे । देखा न जाय, ऐसा करुण दृश्य अस्पतालमें चारों ओर दृष्टिगोचर होने लगा । दुर्घटनाग्रस्त तुरंत ध्यान देने योग्य घायलोंसे अस्पतालके पलंग खचाखच भरने लगे और बाहरके अन्यान्य रोगियोंको लेना अस्पतालके अधिकारियोंने बंद कर दिया।

संयोगकी बात, उसी समय खूनसे तरतर एक नौजवानको मेरे पिताजीवाले कमरेमें लाया गया और तुरंत ऑपरेशन करनेकी जरूरत होनेके कारण मेरे पिताजीको घर वापस ले जाने और उस नौजवानके लिये पलंग खाली कर देनेके लिये अस्पतालके अधिकारी हमारे फेमिली डाक्टरको समझाने लगे ।

परंतु—'पहलेसे सब पक्की बात करके पैसे जमा करानेके बाद ही हमलोग यहाँ आये हैं ।' यह कहकर मेरे पिताजीका इलाज रोककर उन्हें वापस ले जाना हमारे डाक्टरने स्वीकार नहीं किया । कानूनके अनुसार कुछ भी हो नहीं सकता था । इससे अस्पतालके अधिकारी भी असमंजसमें पड़ गये ।

इसी बीच उस नौजवानके साथ आये हुए उसके माता-पिताके हृदय-विदीर्णकारी रुदनको देखकर पिताजीका हृदय द्रवित हो गया और उन्होंने डाक्टरोंको नजदीक बुलाकर कहा—'देखिये ! आप दोनों हठ नहीं करें । मुझे भी यही लग रहा है कि मेरी अपेक्षा इस आशास्पद नौजवानकी सार-सँभाल करना विशेष आवश्यक है । फिर—मेरे-जैसे वृद्धकी अपेक्षा इसके जीवनकी रक्षा करना विशेष उपयोगी भी है । अतएव घर वापस न ले जाकर मुझको नीचे जमीनपर सुला दिया जाय और पलंग नौजवानको दे दिया जाय ।' यों कहकर पिताजी स्वयं ही पलंगपरसे नीचे उतरने लगे, पर वे फिसल पड़े ।

फिर तो दुर्घटनाग्रस्त घायलोंसे भरे अस्पतालमें सारे साधन उन्हींकी सार-सँभालमें लग गये और साधन तथा उचित देख-रेखके अभावमें दोपहरको ही पिताजीका वहीं देहावसान हो गया ।

यह सुनकर भरे हृदयसे उनसे विदा लेते समय मैंने कहा—तुम्हारे पिताजी चाहे गये परंतु बिना कसूर एक दूसरेकी हत्या करनेवाले इस कलियुगके मनुष्योंके लिये वे मानवताका एक अमर संदेश देते गये—यह निश्चित है ।

—शान्तिलाल बोके

(८)

स्नेहकी अमृतधारासे घर जलते-जलते बच गया

'सद्व्यवहारका प्रभाव'

श्रीरामकुमार और ईश्वरचन्द दो भाई थे, दोनों ही विवाहित थे । छोटा भाई कुछ भोला था, बड़ा भाई उसके साथ बड़े प्रेमका बर्ताव करता, पर कभी-कभी खीझ भी जाता था । अपने पतिके भोलेपनपर छोटे भाईकी स्त्रीका मन उदास रहता । पर उसकी जेठानीका स्वभाव इतना आदर्श और उदार था कि वह अपने पतिको समय-समयपर नम्रतासे समझाती कि 'भाई भोला है तो क्या, है तो आपका भाई ही न ? आप उसपर कभी नाराज न हुआ करें ।' रामकुमार अपनी पत्नीके सद्व्यवहारपर प्रसन्न होकर मुस्करा देता !

एक दिन रामकुमार चार हीरेके कड़े लेकर आया, दो अपनी स्त्रीके लिये और दो छोटे भाईकी स्त्रीके लिये । उसने लाकर दो कड़े दिये और कहा—'बहूको दे देना !' उस दिन ईश्वरचन्द कुछ खीझमें था, इसलिये इन दोनों कड़ोंको फेंककर बोला—'या तो चारों कड़े लूँगा या एक भी नहीं ।' बड़े भाईने प्रेमसे समझाया पर वह समझा नहीं ! तब बड़े भाईने जरा खीझकर कुछ कह दिया तो इसपर उसने अधिक खोटी-खरी सुना दी । रामकुमारके मुँहसे आवेशमें अकस्मात् निकल गया कि 'इस तरह तुम्हारी शरारत नहीं चलेगी, अलग हो जाओ ।'

ईश्वरचन्दकी पत्नीको अपने स्वामीके व्यवहारपर दुःख हो रहा था, पर जेठके मुँहसे अलग हो जानेकी बात सुनकर उसे भी अलग होनेकी जँच गयी । उसकी जेठानी रामकुमारकी पत्नी छतपर रसोईघरमें थी । उसे इन सब बातोंका कुछ पता नहीं था । ईश्वरचन्दकी पत्नी रोती हुई ऊपर अपनी जेठानीके पास गयी और रोते-रोते बोली—'जेठजीने आज्ञा दे दी है । इसलिये मैं आपकी आज्ञा लेने आयी हूँ, हमलोग जा रहे हैं ।'

सुनते ही वह हक्की-बक्की रह गयी । उसने नीचे जाकर सब बातोंका पूरा पता लगाया । फिर उसने रोकर अपने पतिके पैर पकड़ लिये और कहा—'आप ईश्वरचन्द और उसकी पत्नीको अलग कर रहे हैं तो मुझे भी उनके साथ जाने दीजिये । मेरे कोई संतान नहीं ! मैंने छोटेसे देवरको अपने पेटके बच्चेकी तरह पाला है । इसकी बहूको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं अपनी बेटी मानती हूँ । मैं इनसे अलग नहीं रह सकूँगी । आप हमलोगोंको अलग भेजकर अकेले कैसे रह सकेंगे ? आप अपने इस भोले छोटे भाईको चारों कड़े दे देते तो क्या बिगड़ता ? आखिर सारी सम्पत्ति है तो इन्हींकी न । फिर यह भेद-भाव क्यों, मैं जानती हूँ आपका हृदय भाईके प्रति अत्यन्त स्नेहसे भरा है पर आपका यह भोला भाई बड़े ही स्नेहसे पाला-पोसा गया है, यह आपकी स्नेहभरी खीझको न समझ सकता है और न सहन ही कर सकता है । इसे हृदयसे लगाइये और सबको सुखी कीजिये ।'

रामकुमारका हृदय तो स्वभावसे अच्छा था ही । पत्नीके इन शब्दोंने बड़ा असर किया । उसने उठकर तुरंत छोटे भाईको हृदयसे लगा लिया । वह खीझता और बकता रहा । पर रामकुमार रोता और पुचकारता गया । ईश्वरचन्दका भी हृदय पलट गया । पलटना था ही । सच्चे त्याग और स्नेहका शुभ परिणाम निश्चित है ।

इस दिनसे घरमें सर्वत्र स्नेहकी सरिता बहने लगी । रामकुमारकी पत्नी यदि उस दिन पतिकी क्रोधाग्निमें जरा-सी आहुति डालनेकी मूर्खता कर बैठती तो सारा घर भस्म हो जाता । पर उसने अपने हृदयके अमृत-रसको आँसुओंकी धाराके रूपमें बहाकर उसके द्वारा बढ़ती हुई आगको सदाके लिये शान्त कर दिया ।

धन्य है ऐसी नारी ! —सुरेन्द्रकुमार जैन

(९)

सरल प्रेमभावना

'क' स्वयं हाईकोर्टके बड़े न्यायाधीश हैं । इनकी विद्वत्ता और न्यायपरायणताके विषयमें दो मत नहीं है । ये पुराने सम्बन्ध कभी भूलते नहीं । छोटे-से-छोटे आदमीको भी कभी ख्याल न आवे कि मैं बहुत बड़ा आदमी हूँ—ऐसा इनका व्यवहार । इतने ऊँचे पदपर पहुँचनेपर भी बचपनके बालगोठियोंके साथ मित्रता निभाना जानते हैं । इतना ही नहीं, व्यावहारिक जगत्के लोग जहाँ बड़प्पनके अभिमानमें ऐसे मित्रोंसे मिलनातक बंद कर देते हैं, वहाँ ये न्यायमूर्ति, आज भी अपने एक लंगोटिया बालगोटिया दोस्तके यहाँ, जिसने शहरमें एक छोटी-सी घड़ीकी दूकान कर रक्खी है, कोर्टसे छुट्टी मिलते ही नियमित रूपसे जाते हैं, लगभग घंटेभर इधर-उधरकी बातें करते हैं, परस्पर तू-ता से ही सम्बोधन करते हैं । दोनोंमें गुण और व्यवहारका कुछ भी साम्य नहीं है । तथापि दोनोंकी दोस्ती बेजोड़ है। एकमें बड़प्पनका अभिमान नहीं, तो दूसरेमें गरीबीकी कमी नहीं !

एक दिन न्यायमूर्ति अपनी मोटरको बगलमें पार्क खड़ी करके घड़ीवालेके यहाँ सदाकी तरह गप्पें लड़ा रहे थे। इसी बीच घड़ीवाले दोस्तने किसी बातमें उनसे असम्मत होकर कहा—'किस गधेने तुझे चीफ जस्टिस बनाया है ?' और हँसते-हँसते ही न्यायमूर्तिने दोस्तकी चुटकी लेते हुए कहा—'शायद तेरे अब्बाजान (पिता) ने ही बनाया होगा ।' और दोनों ही मित्र सरलभावसे ठहाका मारकर हँस उठे । ऐसी प्रेमभावना आज भी जब कहीं देखनेको मिल जाती है, तब जीवनका दुःख हल्का हो जाता है ।

'अखण्ड आनन्द' —चन्द्रकान्त जे० पंड्या

पवित्र कर्तव्य और धर्म

धन-ऐश्वर्य, सफलता भौतिक, पद-अधिकार, मान-सम्मान ।
प्रचुर भोगसाधन, निरोग तन, रागयुक्त इन्द्रिय बलवान ॥
सभी अपूर्ण, अनित्य क्षणिक हैं, सभी मृत्युमय दुःखागार ।
भूलो नहीं इन्हें पा क्षणभर, प्रभु-पद-रति-रस-सिन्धु अपार ॥
मानव-जीवनका न कभी है लक्ष्य—अशुचितम भौतिक भोग ।
लक्ष्य एक ही, रहे सुदृढ़ नित प्रभुसे भेदशून्य संयोग ॥
हों मन-बुद्धि-इन्द्रियोंके सब इसी हेतु सुविचार सुकर्म ।
है पुनीत कर्तव्य यही मानवका यही एक शुचि धर्म ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुत दिनोंसे अप्राप्य कुछ पुस्तकोंके नये संस्करण

पुस्तकोंका आर्डर यहाँ देनेसे पहले स्थानीय विक्रेतासे प्राप्त करनेकी चेष्टा करनी चाहिये

१-व्रत-परिचय—तीसरा संस्करण, पृष्ठ-संख्या ४८०,	मूल्य २.२५
२-प्रेमयोग—लेखक—श्रीवियोगी हरिजी, आठवाँ संस्करण, पृष्ठ-संख्या ३४४, सचित्र,	मूल्य १.९०
३-मानसिक दक्षता—छठा संस्करण, पृष्ठ-संख्या ३४४,	मूल्य १.२५
४-सूर-विनय-पत्रिका—सरल भावार्थसहित, छठा संस्करण, पृष्ठ-संख्या ३२४, सचित्र,	मूल्य १.१०
५-सूररामचरितावली—सरल भावार्थसहित, तीसरा संस्करण, पृष्ठ-संख्या २५४, सुन्दर तिरंगा चित्र,	मूल्य ०.८५
६-शरणागतिरहस्य—चौथा संस्करण, पृष्ठ-संख्या ३६०, सचित्र,	मूल्य १.१०
७-तैत्तिरीयोपनिषद्—सानुवाद शाङ्करभाष्यसहित, आठवाँ संस्करण, पृष्ठ-संख्या २५२, सचित्र,	मूल्य १.००
८-मुण्डकोपनिषद्—सानुवाद शांकरभाष्यसहित, नवाँ संस्करण, पृष्ठ-संख्या १२२, सचित्र,	मूल्य ०.५५
९-पातञ्जलयोगदर्शन सटीक—सातवाँ संस्करण, पृष्ठ-संख्या १९२, दो चित्र,	मूल्य ०.९०
१०-तत्त्व-चिन्तामणि बड़ा (भाग २)—ग्यारहवाँ संस्करण, लेखक—श्रीजयदयालजी गोयन्दका, पृष्ठ-संख्या ५९२, सचित्र,	मूल्य १.००
११- ,, ,, (भाग ४)—छठा संस्करण ,, ,, पृष्ठ-संख्या ५२८, सचित्र,	मूल्य ०.९५
१२- ,, ,, (भाग ५)—सातवाँ संस्करण ,, ,, पृष्ठ-संख्या ४९६, सचित्र,	मूल्य ०.९५
१३-सत्संग-सुधा—सातवाँ संस्करण, पृष्ठ-संख्या २२४,	मूल्य ०.६५
१४-श्रीकृष्ण-गीतावली सरल भावार्थसहित—चौथा संस्करण, पृष्ठ-संख्या ८०,	मूल्य ०.३५
१५-लोक-परलोकका सुधार भाग २—पाँचवाँ संस्करण, पृष्ठ-संख्या २४४,	मूल्य ०.४५
१६-परमार्थ-पत्रावली भाग २—पाँचवाँ संस्करण, श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके ८० पत्रोंका संग्रह, पृष्ठ-संख्या १७२, सचित्र,	मूल्य ०.३०
१७-कल्याण-कुञ्ज भाग १—मननीय तरंगोंका संग्रह, सचित्र, पृष्ठ-संख्या १३६,	मूल्य ०.३०

सभी पुस्तकोंका डाक-खर्च अलग ।

व्यवस्थापक—**गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)**

'कल्याण' नामक हिंदी मासिकपत्रके सम्बन्धमें विवरण

फार्म चार—नियम-संख्या—आठ

१-प्रकाशनका स्थान—गीताप्रेस, गोरखपुर

२-प्रकाशनकी आवृत्ति—मासिक

३-मुद्रकका नाम—मोतीलाल जालान
राष्ट्रगत सम्बन्ध—भारतीय
पता—गीताप्रेस, गोरखपुर

४-प्रकाशकका नाम—मोतीलाल जालान
राष्ट्रगत सम्बन्ध—भारतीय
पता—गीताप्रेस, गोरखपुर

५-सम्पादकका नाम—(१) हनुमानप्रसाद पोद्दार,
(२) श्रीचिम्मनलाल गोस्वामी, एम्० ए०, शास्त्री
दोनोंका राष्ट्रगत सम्बन्ध—भारतीय
दोनोंका पता—गीताप्रेस, गोरखपुर

६-उन व्यक्तियोंके नाम-पते जो इस समाचार-पत्रके मालिक हैं और जो इसकी पूँजीके भागीदार हैं। — श्रीगोविन्दभवनकार्यालय, पता—नं० १५१, महात्मा गाँधी रोड, कलकत्ता (सन् १८६० के विधान २१ के अनुसार रजिस्टर्ड धार्मिक संस्था)

मैं मोतीलाल जालान, इसके द्वारा यह घोषित करता हूँ कि ऊपर लिखी बातें मेरी जानकारी और विश्वासके अनुसार यथार्थ हैं।

मोतीलाल जालान
प्रकाशक

दि० १ मार्च १९६७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रजि० सं० एल्० १७५

गीताभवन-स्वर्गाश्रम-सत्सङ्गकी सूचना

ब्रह्मलीन श्रद्धेय श्रीजयदयालजीकी लोककल्याणकारिणी लगन एवं उनकी मङ्गल-प्रेरणाके फलस्वरूप वर्षोंसे ऋषिकेशकी तपोभूमि गीताभवन-स्वर्गाश्रममें श्रीगङ्गाजीके पुनीत तटपर प्रतिवर्ष सहस्र-सहस्र नर-नारी सत्सङ्गका पवित्र लाभ उठाते थे। पूज्य श्रीजयदयालजीके अभावकी पूर्ति तो असम्भव है परंतु उनके अन्तिम संकेतके अनुसार गत वर्ष भी गीताभवन-स्वर्गाश्रममें सत्सङ्गका आयोजन किया गया था। उसीके अनुसार इस वर्ष भी सत्सङ्गका विचार है। सबसे प्रार्थना है कि प्रतिवर्षकी भाँति ही सत्सङ्गी महानुभाव तथा माताएँ-बहिनें अधिकाधिक संख्यामें सत्सङ्गके पवित्र उद्देश्यसे ऋषिकेश पधारें। भाई हनुमानप्रसाद पोद्दारकी चैत्र शुक्ल पक्षमें श्रीरामनवमीके बाद ही वहाँ पहुँचनेकी बात है। उसी समय श्रद्धेय स्वामी रामसुखदासजी महाराज भी पधार सकते हैं। श्रद्धेय स्वामीजी श्रीशरणानन्दजीसे भी प्रार्थना की गयी है तथा अन्यान्य महात्मागण भी पधारनेवाले हैं। सदाकी भाँति ही यह नम्र निवेदन है कि सत्सङ्गमें पधारनेवालोंको ऐश-आराम या केवल जलवायु-परिवर्तनकी दृष्टिसे न जाकर सत्सङ्गके उद्देश्यसे ही जाना चाहिये तथा वहाँ यथासाध्य नियमित तथा संयमित साधकजीवन बिताते हुए सत्सङ्गमें अधिक-से-अधिक भाग लेना चाहिये।

नौकर-रसोइया आदि यथासम्भव साथ लाने चाहिये। स्वर्गाश्रममें नौकर-रसोइया मिलना कठिन है। स्त्रियाँ पीहर या ससुरालवालोंके अथवा अन्य किन्हीं सम्बन्धीके साथ वहाँ जायँ, अकेली न जायँ एवं अकेली जानेकी हालतमें कदाचित् स्थान न मिल सके तो कृपया दुःख न करें। गहने आदि जोखिमकी चीजें साथ नहीं रखनी चाहिये। बच्चोंको वे ही लोग साथ ले जायँ जो उन्हें अलग डेरेपर रखनेकी व्यवस्था कर सकते हों; क्योंकि बच्चोंके कारण स्वाभाविक ही सत्सङ्गमें विघ्न होता है। खान-पानकी चीजोंका प्रबन्ध यथासाध्य किया जा रहा है, यद्यपि इस बार बड़ी कठिनता है; परंतु दूधका प्रबन्ध होना कठिन है।

विभिन्न भाषाओंके विद्वान् लेखकोंसे निवेदन

'श्रीरामवचनामृताङ्क'में भारतकी विभिन्न भाषाओंके श्रीरामवचनोंका संग्रह किया गया है पर श्रीरामवचन इतने अधिक हैं कि उनका पूरा संग्रह करना तो अत्यन्त ही कठिन है। विभिन्न भाषाओंमें भी बहुत-सी भाषाओंके वचनोंका संग्रह नहीं हो सका है। कुछका बहुत ही थोड़ा हुआ है—जैसे मराठी भाषामें समर्थ श्रीरामदासजीका तथा अन्यान्य महानुभावोंका प्रचुर रामसाहित्य है, तेलुगुमें भी बहुत राम-साहित्य है, परंतु उनमेंसे बहुत कम ही वचन संकलित हो पाये हैं। मैथिल भाषामें भी राम-साहित्य है, इसी प्रकार भारतकी अन्यान्य प्रान्तीय बोलियोंमें है। उनमेंसे भी कुछ वचन संकलित हो जाते तो अच्छा था। विदेशी भाषाओंमें भी रामपर जो कुछ लिखा गया है, उसमें भी उपयोगी चीजें मिल सकती हैं। अतएव यह निवेदन है कि जिन-जिन भाषाओंके रामवचन न आये हों या बहुत ही कम आये हों, उन-उन भाषाके विद्वान् सज्जन श्रीरामके चुने हुए महत्त्वपूर्ण वचन मूल तथा हिंदी अनुवादसहित लिख भेजनेकी कृपा करेंगे तो उन्हें यथावकाश 'कल्याण'के आगामी साधारण अङ्कोंमें प्रकाशित कर दिया जायगा। आशा है विद्वान् सज्जन हमारी प्रार्थनापर ध्यान देंगे।

निवेदक—सम्पादक 'कल्याण' गोरखपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

65260
2-8-67

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ष ४१] * * * [अङ्क ४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्करण १,५०,०००

विषय-सूची

कल्याण, सौर वैशाख २०२४, अप्रैल १९६७

विषय	पृष्ठ-संख्या
१–सुग्रीवकी विनयसे लक्ष्मणजीका क्रोध शान्त [कविता] ···	८३३
२–कल्याण ('शिव') ···	८३४
३–एक महात्माका प्रसाद (संकलयिता—श्री 'माधव') ···	८३५
४–जनमे, पले और बढ़े [गद्य काव्य] (श्रीबालकृष्णजी बलदुवा) ···	८३६
५–संतों—महापुरुषोंकी महिमा (ब्रह्मलीन पूज्यपाद अनन्तश्री जयदयालजी गोयन्दका-के वचनामृत; संकलनकर्ता-प्रेषक—शालिगराम) ···	८३९
६–होलाका-रहस्य (तत्त्वचिन्तक श्रीअनिरुद्धाचार्य अनन्तश्री स्वामीजी श्रीवेंकटाचार्यजी तर्कशिरोमणि) ···	८४०
७–आत्मनिवेदन (श्रीश्रीमाताजी, श्रीअरविन्दाश्रम, पांडिचेरी) ···	८४५
८–हिंदू देवताओंमें विभिन्न रंगोंका छिपा हुआ गुप्त अभिप्राय (डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०) ···	८४९
९–जीवनमें स्वरोदयकी महत्ता (श्रीगुरुरामप्यारेजी अग्निहोत्री) ···	८५५
१०–दक्षिण भारतकी तीर्थयात्रा (सेठ श्रीगोविन्ददासजी, श्रीमती रत्नकुमारीदेवी, श्रीगोविन्दप्रसादजी श्रीवास्तव) ···	८५७
११–अकुतोभय [कहानी] (श्री 'चक्र') ···	८६०
१२–संकल्पका सुन्दरतम स्वरूप (पं० श्रीसत्यपालजी शर्मा वेदशिरोमणि, एम्० ए०) ···	८६४
१३–भ्रातृत्वका अवतार [कविता] (लाला श्रीजगदलपुरीजी) ···	८६७
१४–विलक्षण भाव-जगत् (हनुमानप्रसाद पोद्दारके एक प्रवचनके आधारपर) ···	८६८
१५–साधनाका फल (श्रीरामपुनीतजी श्रीवास्तव, एम्० ए०) ···	८७४
१६–रामचरितमानसमें वर्णित शिव (श्री वा० विष्णुदयालजी, मारीशस) ···	८७५
१७–पराजय [लघु कथा] (पं० श्रीविष्णुदत्तजी द्विवेदी) ···	८७८
१८–आत्मविश्लेषण और बुद्धियोग (डा० श्रीमुंशीरामजी शर्मा 'सोम') ···	८७९
१९–कृतिकी सद्गति [कविता] (डॉ० श्रीबलदेवप्रसादजी मिश्र) ···	८८२
२०–सदाचारका स्वरूप—वैज्ञानिक विवेचन (श्रीहरिहरदयालजी गुप्त एडवोकेट—भूतपूर्व अध्यक्ष दर्शन-विभाग, बरेली कालेज) ···	८८३
२१–कामके पत्र ···	८८८
२२–गोरक्षार्थ बाबा भोलेनाथका शरीर-त्याग (श्रीओमप्रकाशजी गोयल) ···	८९१
२३–पढ़ो, समझो और करो ···	८९३

चित्र-सूची

१–सूरदास और बालकृष्ण	(रेखाचित्र)	··· मुखपृष्ठ
२–मदरहित सुग्रीवका माला तोड़ना	(तिरंगा)	··· ८३३

वार्षिक मूल्य
भारतमें ८.५०
विदेशमें १५.६०
(१५ शिलिंग)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय । सत-चित-आनँद भूमा जय जय ॥
जय जय विश्वरूप हरि जय । जय हर अखिलात्मन् जय जय ॥
जय विराट जय जगत्पते । गौरीपति जय रमापते ॥

साधारण प्रति
भारतमें ५० पै०
विदेशमें ८० पै०
(१० पेंस)

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाल गोस्वामी, एम्० ए०, शास्त्री
मुद्रक-प्रकाशक—मोतीलाल जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

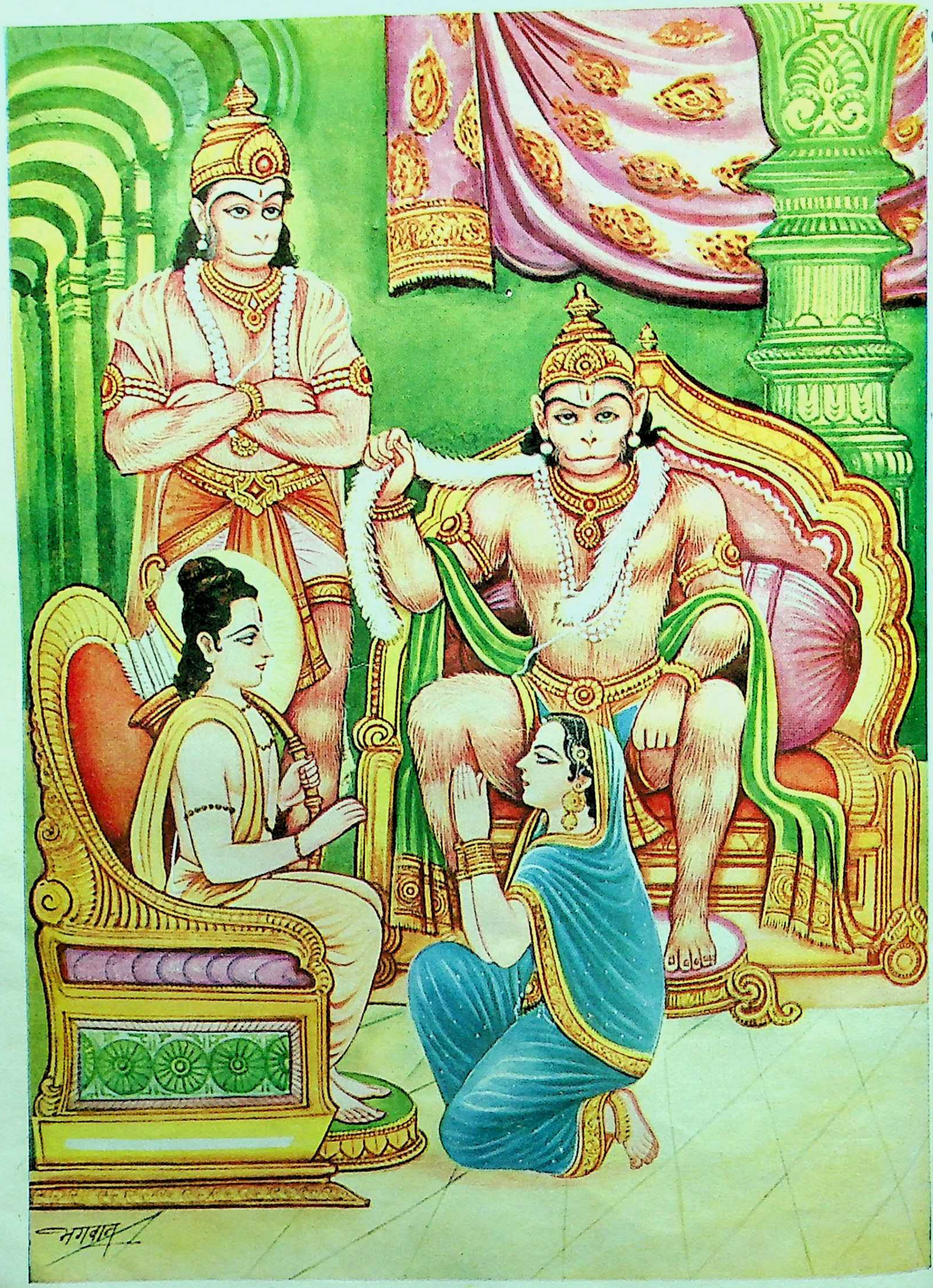

मदरहित सुग्रीवका माला तोड़ना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

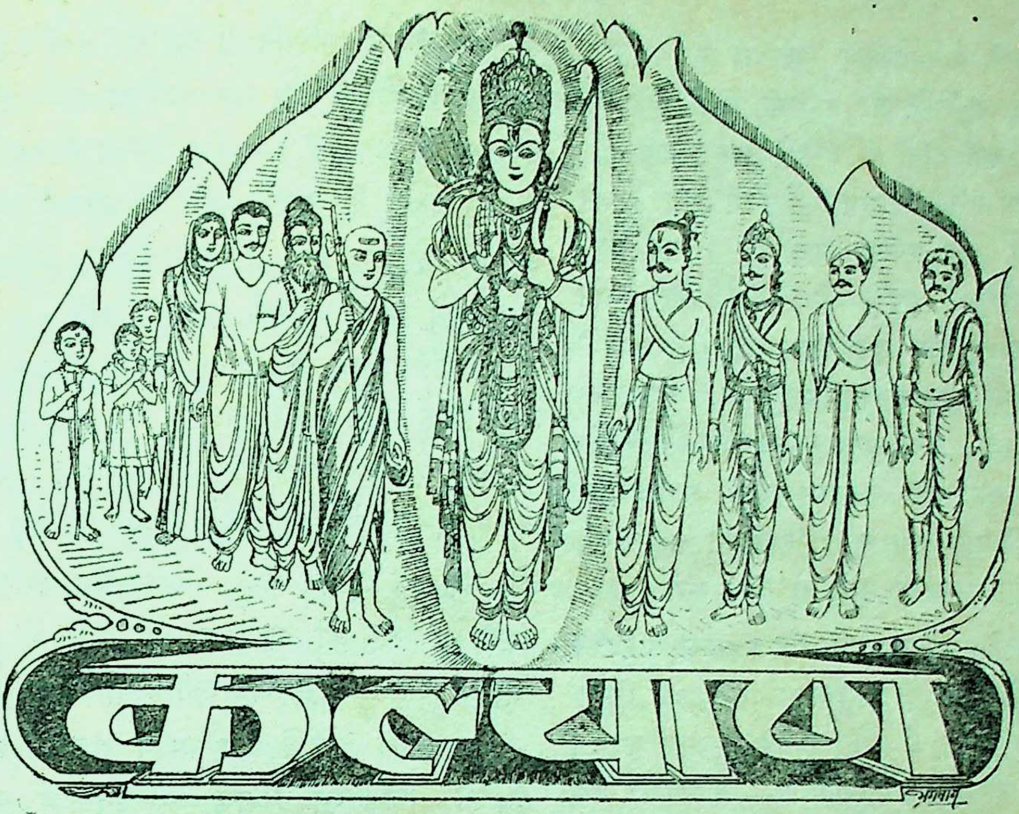

अविरतभवभावनातिदूरं भवविमुखैर्मुनिभिः सदैव दृश्यम् ।
भवजलधिसुतारणाङ्घ्रिपोतं शरणमहं रघुनन्दनं प्रपद्ये ॥
रतिपतिशतकोटिसुन्दराङ्गं शतपथगोचरभावनाविदूरम् ।
यतिपतिहृदये सदा विभातं रघुपतिमार्तिहरं प्रभुं प्रपद्ये ॥

वर्ष ४१ } गोरखपुर, सौर वैशाख २०२४, अप्रैल १९६७ { संख्या ४
पूर्ण संख्या ४८५

सुग्रीवकी विनयसे लक्ष्मणजीका क्रोध शान्त

'ओजस्वी सौमित्रि ! करो तुम क्षमा हमारे सारे दोष ।'
मदको त्याग, तोड़ मालाको, बोले कपिपति, 'छोड़ो रोष ॥
रामकृपासे ही पाया मैंने श्री, कीर्ति, राज्य सर्वस्व ।
राघवके उपकार अमितका क्या मैं बदला दूँ निस्सत्त्व ॥
होगा प्रभुकी महिमासे ही रावण-वध, सीता-उद्धार ।
मैं नगण्य भी पाऊँगा सेवाका शुचि सौभाग्य अपार' ॥
ताराने भी मधुर नम्र वचनोंसे स्थितिका किया बखान ।
मृदु-स्वभाव लक्ष्मणने हो संतुष्ट किया तत्क्षण प्रस्थान ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

याद रक्खो—मान-अपमान 'रूप'का या 'शरीर'का होता है और स्तुति-निन्दा 'नाम'की होती है। और ये रूप तथा नाम दोनों ही तुम्हारे स्वरूप नहीं हैं। देहका निर्माण माताके उदरमें गर्भकालमें होता है और नाम जन्मके बाद रक्खा जाता है। नाम बदले भी जाते हैं। अतएव ये रूप और नाम आत्माके नहीं हैं और तुम आत्मा हो। इस देहके निर्माणके पहले भी आत्मारूपमें तुम थे, देहावसान-के बाद भी रहोगे। आत्माका मान-अपमान और स्तुति-निन्दा कोई कर नहीं सकता। अतएव मान-अपमान तथा स्तुति-निन्दासे तुम न हर्षित होओ न उद्विग्न। दोनोंको समान समझकर उन्हें ग्रहण मत करो।

याद रक्खो—सत्कार-मान और बड़ाई-स्तुति जितने प्रिय लगते हैं, उतने ही असत्कार-अपमान और निन्दा-गाली अप्रिय लगते हैं और उसीके अनुसार राग-द्वेष होता है। राग-द्वेषका परिणाम है—आध्यात्मिक दैवी सम्पदाका नाश और भौतिक आसुरी सम्पदाका विकास। जहाँ आसुरी सम्पदाका सृजन-संरक्षण-संवर्धन होने लगता है, वहाँ भाँति-भाँतिके दुष्कर्म, दुर्विचार, पाप, दुःख, क्लेश, संताप, अशान्ति, यन्त्रणा आदिका होना-बढ़ना अनिवार्य होता है। यों मानवजीवन दुःखों तथा नरकोंका अमोघ साधन बन जाता है। तुम जरा ध्यान देकर सोचोगे तो यह प्रत्यक्ष दिखलायी देगा कि तुम न देह हो, न नाम हो और यहाँके मान-अपमान तथा स्तुति-निन्दा ही नहीं, लाभ-हानि, जय-पराजय, शुभ-अशुभ, प्रिय-अप्रिय, सुख-दुःख, मित्र-शत्रु, जीवन-मरण आदि सभी द्वन्द्व केवल देह-नाम या नाम-रूपसे ही सम्बन्ध रखते हैं। तुम इन द्वन्द्वोंको भगवान्‌की माया मान लो या उनका लीलानाट्य। बस तुम इस द्वन्द्वात्मक स्थितिसे ऊपर उठ जाओगे।

याद रक्खो—यह द्वन्द्व ही जगत् है—माया है और द्वन्द्वातीत या समस्थिति ही ब्रह्म है। द्वन्द्व परिवर्तन-शील है, विनाशी है और सम ब्रह्म नित्य अविनाशी है। यही तुम्हारा स्वरूप है। स्व-रूप होनेके कारण सहज ही अनुभवगम्य है, तथापि प्रकृतिस्थ अवस्थामें सत्यकी अनुभूति छिपी रह जाती है। अतएव अभी इस प्रकार द्वन्द्व-मोहसे मुक्त रहनेकी साधना करो; न मान-बड़ाईमें हर्षित होओ, न अपमान-निन्दामें दुःखित। इसी प्रकार हरेक द्वन्द्वमें समत्व रखनेकी चेष्टा करो।

याद रक्खो—व्यवहारमें—(शरीरके विभिन्न अङ्गोंके कार्योंकी भिन्नता रहनेपर आत्मरूपसे जैसे उनमें कोई भेद नहीं है, वैसे ही—) व्यावहारिक परिस्थितिके भेदसे भेद प्रतीत हो, पर अन्तस्‌में किसी भी द्वन्द्वमें अनुकूलता-प्रतिकूलताका बोध नहीं होना चाहिये।

याद रक्खो—देहमें और नाममें अहंबुद्धि होनेसे ही, जो सर्वथा मिथ्या है तथा अयुक्तियुक्त है, ममता, आसक्तिका प्रसार होता है और अनुकूलता-प्रतिकूलताकी अनुभूति होती है। अतएव अपनेको सदा-सर्वदा आत्मामें स्थित आत्मरूप देखनेकी चेष्टा करो और मिथ्या नाम-रूपको सर्वथा कल्पित मानकर अपनेको सदा उनसे पृथक् देखो।

याद रक्खो—जितने भी भेद हैं—सब नाम-रूपको लेकर हैं। नाम-रूप व्यवहारके लिये हैं। इनसे सर्वथा भेदरहित आत्माका सम-स्वरूप नहीं बदलता। तुम सम आत्मामें, जो तुम्हारा स्वरूप है—स्थित होकर व्यावहारिक जगत्‌में यथायोग्य व्यवहार करो। तुम्हारे व्यवहारमें विषमता रहेगी, पर तुम आत्म-स्वरूपमें नित्य निर्द्वन्द्व सर्वदा-सर्वथा सम रहोगे। व्यवहारकी लहरियाँ तुम्हारे प्रशान्त स्वरूपमें जरा भी क्षोभ उत्पन्न न कर सकेंगी, वरं वे तुम आत्मस्वरूप प्रशान्त महासागरकी शोभा होंगी।

'शिव'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक महात्माका प्रसाद

[दुःखकी समस्या]

(संकलयिता—श्री'माधव')

जो न चाहनेपर भी आ जाता है, वही दुःख है और जो चाहते हुए भी चला जाता है, वही सुख है। दुःख-सुखकी अनुभूति मानवमात्रको होती है। नवजात शिशु भूखसे पीड़ित होकर रोने लगता है। इस दृष्टिसे दुःख मानवकी प्रथम अनुभूति है। जो न चाहनेपर आता है, वह प्राकृतिक विधान है, व्यक्तिका उपजाया हुआ नहीं है। सुख चाहते हुए भी चला जाता है, मानवमें सुखासक्ति भले ही रहे, पर सुख तो चला ही जाता है। इस दृष्टिसे दुःखका आना और सुखका जाना वैधानिक तथ्य है।

दुःख है क्यों ? यदि जीवनमेंसे दुःखका भाग निकाल दिया जाय तो न तो सुखका सम्पादन ही हो सकता है और न मानव सुखकी दासतासे रहित हो सकता है। सुखका सम्पादन और उसकी दासतासे रहित करनेमें दुःख ही हेतु है। दुःख मानव-जीवनका आवश्यक अङ्ग है; फिर भी सभीको स्वभावसे प्रिय नहीं है। जो स्वभावसे प्रिय नहीं है, वह जीवन नहीं है और जिसमें स्थायित्व नहीं है, वह भी जीवन नहीं है। इस दृष्टिसे दुःख तथा सुख वास्तविक जीवन नहीं है, अपितु दुःख-सुखके सदुपयोगमें जीवन है। दुःखके प्रभावसे प्रभावित हुए बिना सर्वांशमें सुखासक्तिका नाश सम्भव नहीं है। इस दृष्टिसे दुःख विकासकी भूमि है। दुःखका भय तभीतक रहता है, जबतक मानव पराधीनताजनित सुख-लोलुपतामें आबद्ध है। अतः दुःख पराधीनताका अन्त करनेके लिये बिना बुलाये आता है। अतः वह मङ्गलमय विधानसे आता है।

मानव साधक है। साधकपर दायित्व होता है और उसकी कोई माँग होती है। जब मानव यह मान लेता है कि मुझे जो कुछ मिला है वह 'किसी'की देन है, तब उसमें उस बिना जाने हुएकी आस्था उदित होती है, एवं बिना जानेमें आस्था होनेपर स्वतः शरणागति उदित होती है। बल, विवेक और आस्था जिसने दी है, उसे ही मानव नहीं जानता। जिसे नहीं जानता, उसीकी शरणागति स्वीकार करना अनिवार्य है। आस्तिकवादकी दृष्टिसे शरणागति ही सर्वतोमुखी विकासका मुख्य साधन है।

अतः दुःखका आना, सुखका जाना मानवहितकारी विधान है। दुःखसे भयभीत होना और सुखमें आबद्ध रहना मानवका प्रमाद है। दुःखके प्रभावने ही दुखी-को दुःखहारीसे अभिन्न किया है। इस दृष्टिसे दुःख जीवनका बहुत ही आवश्यक अङ्ग है। दुःखसे वे ही भयभीत होते हैं, जिन्हें दुःखहारीसे अभिन्न होना है। दुःखकी महिमा वे ही मानव जान पाते हैं, जिन्होंने दुःखके प्रभावसे सुखासक्तिका सर्वांशमें अन्त कर दिया है। जो मानव दुःखहारीसे अभिन्न हुए, उन्होंने दुःख-को प्रियतमका संदेश जाना। सुखकी दासताको जीवित रखना और दुःखकी निन्दा करना—यह दुःखके प्रति बड़ी ही कृतघ्नता है। जो सुख चाहते हुए भी चला गया, उसकी दासता बनाये रखना और जिस दुःखसे सर्वतोमुखी विकास हुआ उससे भयभीत होना, उसके प्रभावको न अपनाना प्रमादके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। समस्त विकारोंकी भूमि सुखासक्ति और विकासकी भूमि दुःखका प्रभाव है।

प्राकृतिक नियमानुसार जो आता है, वह अवश्य जाता है। रहता वही है, इसमें आने-जानेकी बात नहीं है। अतः जो आता-जाता है, उसका सदुपयोग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करना है और जो रहता है उसमें प्रियता । आये हुए सुखका सदुपयोग दुखियोंकी सेवामें है और आये हुए दुःखका सदुपयोग अहम् और भयके नाशमें है । सुख-दुःखमें जीवन-बुद्धि स्वीकार करना भूल है और सुख-दुःखका सदुपयोग विकासका मूल है ।

समस्त विश्वमें केवल सुख तथा दुःखके ही दर्शन होते हैं परंतु उनमें नित्यता नहीं है । दोनों ही परिवर्तनशील हैं । सुखका प्रलोभन जबतक रहता है तबतक दुःख अवश्य आता है । सुखके भोगीको न चाहते हुए भी दुःख भोगना पड़ता है । अतः सुखासक्तिके रहते हुए दुःखका आना अनिवार्य है । जिसे दुःखका अन्त करना हो, उसे पराधीनताजन्य सुखका अन्त करना होगा । सुखका अन्त दुःखके प्रभावके अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार नहीं होता । दुःखके प्रभावको न अपनाना और उससे भयभीत रहना मानवकी भारी भूल है । इस भूलका अन्त प्रत्येक मानवको करना अनिवार्य है । भूलको भूल जान लेनेसे ही भूलका नाश होता है ।

प्रलोभनका अन्त होनेपर भय स्वतः मिट जाता है । अतः सुखके प्रलोभनने ही दुःखके भयको जन्म दिया है । मानवको दुःखसे भयभीत नहीं होना है और न सुखकी आशा रखकर उसका आह्वान करना है; अपितु दुःखकी वास्तविकताको अपनाकर सुख-दुःखसे अतीतके जीवनसे अभिन्न होना है । यदि दुःखका प्रादुर्भाव न होता तो सुखकी दासता-जनित पराधीनता, जडता एवं अभावका अभाव न होता । इस दृष्टिसे दुःखके प्रादुर्भावमें मानवमात्रके प्रति 'किसी'की कितनी करुणा निहित है । दुःख सर्वोत्कृष्टताकी ओर अग्रसर करनेमें हेतु है । परिस्थितियोंकी दासतामें आबद्ध होना मानवका प्रमाद है, जिसका अन्त दुःखके प्रभावमें ही निहित है । इस दृष्टिसे भूलके अन्त करनेमें, सुख-लोलुपताके नाशमें, स्वाधीनताकी प्राप्तिमें, भोगकी वास्तविकताके परिचयमें, निर्विकारताकी अभिव्यक्तिमें दुःखका मुख्य स्थान है ।

जनमे, पले और बढ़े

मालिकने अनेक मनचीती पूरी कीं,
परंतु पूरी कीं वैसे नहीं, जैसे चाहीं ।
पूरी कीं सदैव अपने ढंगसे ही ।
कभी असाधारण, अप्रत्याशित रीतिसे,
तो कभी अतिसाधारण, उपेक्षित रूपसे ।
यों—
अनिश्चय, उलझन और संघर्षके सायोंमें
जीवन, आदर्श और आस्था जनमे, पले और बढ़े ।

—बालकृष्ण बलदुवा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संतों-महापुरुषोंकी महिमा

(ब्रह्मलीन पूज्यपाद अनन्तश्री जयदयालजी गोयन्दकाके वचनामृत)

जिस प्रकार भगवान्‌के महान् आदर्श चरित्र और गुणोंकी महिमा अनिर्वचनीय है, उसी प्रकार भगवत्प्राप्त संत महापुरुषोंके पवित्रतम चरित्र और गुणोंकी महिमाका भी कोई वर्णन नहीं कर सकता। ऐसे महापुरुषोंमें समता, शान्ति, ज्ञान, स्वार्थत्याग और सौहार्द आदि पवित्र गुण अतिशयरूपमें होते हैं; इसीसे ऐसे पुरुषोंके सङ्गकी महिमा शास्त्रोंमें गायी गयी है। श्रीतुलसीदासजी महाराज कहते हैं—

तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग॥

× × ×

भगवत्प्रेमी महापुरुषोंके एक निमेषके सत्सङ्गके साथ स्वर्ग-मोक्ष किसीकी भी तुलना नहीं होती—यह बात उन्हीं लोगोंकी समझमें आ सकती है, जो श्रद्धा तथा प्रेमके साथ नित्य सत्सङ्ग करते हैं।

प्रथम तो संसारमें ऐसे महापुरुष हैं ही बहुत कम। फिर उनका मिलना बहुत दुर्लभ है और मिल जायँ तो पहचानना अत्यन्त दुर्लभ है। तथापि यदि ऐसे महापुरुषोंका किसी प्रकार मिलना हो जाय तो उससे अपने-अपने भावके अनुसार लाभ अवश्य होता है; क्योंकि उनका मिलना अमोघ है। श्रीनारदजीने भक्तिसूत्रोंमें कहा है—

'महत्सङ्गस्तु दुर्लभोऽगम्योऽमोघश्च।'
(नारद० सू० ३९)

'महात्माओंका सङ्ग दुर्लभ, अगम्य और अमोघ है।'

× × ×

........किन्हीं महापुरुषका यदि सङ्ग हो जाय और उन्हें पहचाना भी न जाय तो भी उनके स्वाभाविक तेजसे पापरूपी ठंडकका तो नाश होता ही है, जो लोग महात्माको किसी अंशमें ही जानते हैं और उनसे साधारण क्षणिक लाभ उठाना चाहते हैं, उन्हें साधारण क्षणिक लाभ मिल जाता है। जिनमें श्रद्धा है, पर साथ ही सकामभाव है, वे उनका सङ्ग करके इस लोक और परलोकके भोगोंकी प्राप्तिरूप वैषयिक लाभ प्राप्त करते हैं और जो उन्हें भलीभाँति पहचानकर श्रद्धाके साथ निष्कामभावसे उनका सङ्ग करते हैं, वे परमात्मप्राप्ति-विषयक लाभ उठाते हैं। इस प्रकार महात्माके अमोघ सङ्गसे लाभ सभीको होता है, पर होता है अपनी-अपनी भावनाके अनुसार।

× × ×

महात्मा पुरुषोंके भी शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि मायिक होते हैं; परंतु परमात्माकी प्राप्तिके प्रभावसे वे साधारण मनुष्योंकी अपेक्षा पवित्र, विलक्षण और दिव्य हो जाते हैं, अतएव उनके दर्शन, भाषण, स्पर्श, वार्तालापसे तो लाभ होता ही है, मनके द्वारा उनका स्मरण हो जानेसे भी बड़ा लाभ होता है।

× × ×

ऐसे महापुरुषोंके हृदयमें दिव्य गुणोंका अपार शक्ति-सम्पन्न समूह भरा रहता है, जिसके दिव्य बलशाली परमाणु नेत्रमार्गसे निरन्तर बाहर निकलते रहते हैं और दूर-दूरतक जाकर जड-चेतन सभीपर अपना प्रभाव डालते रहते हैं। मनुष्योंपर तो उनके अपने-अपने भावानुसार न्यूनाधिकरूपमें प्रभाव पड़ता ही है, विविध पशु-पक्षियों तथा जड आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, वृक्ष, पाषाण, काष्ठ, घास आदि पदार्थोंतक-पर भी असर पड़ता है। उनमें भी भगवद्भावके पवित्र परमाणु प्रवेश कर जाते हैं। ऐसे महात्मा जिस पशु-पक्षीको देख लेते हैं, जिस वायुमण्डलमें रहते हैं, जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वायु उनके शरीरको स्पर्श करके जाता है, जिस अग्निसे वे अग्निहोत्र करते, रसोई बनाते या तापते हैं, जिस सरोवर या नदीमें स्नान-पान करते हैं, जिस भूमिपर निवास करते हैं, जिस वृक्षका किसी प्रकार उपयोग करते हैं, जिस पाषाणखण्डको स्पर्श कर लेते हैं, जिस चौकीपर बैठ जाते हैं और जिन तृणाङ्कुरोंपर अपने पैर रख देते हैं, उन सभीमें भगवद्भावके परमाणु न्यूनाधिक-रूपमें स्थित हो जाते हैं; और उन वस्तुओंको जो काममें लाते हैं या जिन-जिनको उनका संसर्ग प्राप्त होता है—उन लोगोंको भी बिना जाने-पहचाने भी सद्भावकी प्राप्तिमें लाभ होता है। जिनमें श्रद्धा, ज्ञान तथा प्रेम होता है, उनको यथापात्र विशेष लाभ होता है।

× × ×

ऐसे महात्माओंकी वाणीसे भी उनके हृद्गत भावोंका विकास होता है; इससे उसे सुननेवालोंपर यथाधिकार—जो जैसा पात्र होता है तदनुसार प्रभाव पड़ता ही है, साथ ही वह वाणी (शब्द) नित्य होनेके कारण सारे आकाशमें व्याप्त होकर स्थित हो जाती है और जगत्के प्राणियोंका सदा सहज ही मङ्गल किया करती है। जहाँ उनकी वाणीका प्रथम प्रादुर्भाव होता है, वह स्थान और वहाँका वायुमण्डल विशेष प्रभावोत्पादक बन जाता है। इसी प्रकार उनके शरीरका स्पर्श होनेसे भी लाभ होता है। भावोंके परमाणु अत्यन्त सूक्ष्म होते हैं, इससे उनकी प्रत्यक्ष प्रतीति नहीं होती; पर वे वैसे ही सद्भावका प्रसार करते हैं, जैसे प्लेगके कीटाणु रोगका विस्तार करते हैं।

× × ×

ऐसे महापुरुषोंकी प्रत्येक क्रिया सर्वोत्तम दिव्य चरित्र, गुण और भावोंसे ओतप्रोत रहती है; अतएव उनके चिन्तनमात्रसे—स्मृतिमात्रसे उनके चरित्र, गुण और भावोंका प्रभाव दूसरोंके हृदयपर पड़ता है। नामकी स्मृति आते ही नामीके स्वरूपका स्मरण होता है। स्वरूपके स्मरणसे भी क्रमशः चरित्र, गुण और भावोंकी स्मृति हो जाती है, जो हृदयको उन्हीं भावोंसे भरकर पवित्र बना देती है।

× × ×

वस्तुतः महापुरुषका मानसिक सङ्ग बहुत लाभदायक होता है; चाहे महात्मा किसी साधकका स्मरण कर ले या साधक किसी महात्माका स्मरण कर ले। अग्नि घासपर पड़ जाय या घास अग्निमें पड़ जाय, अग्निका संसर्ग उसके घासस्वरूपको मिटाकर उसे तुरंत अग्नि बना देगा। इसी प्रकार ज्ञानाग्निसे परिपूर्ण अधिकारी महात्माके सङ्गसे साधकके दुर्गुण और दुराचारोंका तथा अज्ञानका नाश हो जाता है, चाहे वह संसर्ग महात्माके द्वारा हो या साधकके द्वारा। महात्मा स्वयं आकर दर्शन दें तब तो वह प्रत्यक्ष ही केवल श्रीभगवान्‌की अपार कृपाका ही फल है। परंतु यदि साधक अपने प्रयत्नसे महात्मासे मिले, तो इससे साधकके अन्तःकरणमें शुभ संस्कार अवश्य सिद्ध होते हैं; क्योंकि शुभ संस्कार हुए बिना महात्मासे मिलनेकी इच्छा और चेष्टा ही क्यों होने लगी, तथापि इसमें भी प्रधान कारण भगवान्‌की कृपा ही है—

'बिनु हरि कृपा मिलहिं नहिं संता।'

× × ×

जो भाग्यवान् पुरुष महापुरुषोंकी आज्ञाकी प्रतीक्षा न करके सारे कार्य उनकी रुचि तथा भावोंके अनुकूल करते हैं, उनपर भगवान्‌की विशेष कृपा माननी चाहिये।

× × ×

जिस प्रकार स्वाभाविक ही मध्याह्नकालके सूर्यसे प्रखर प्रकाश, पूर्णिमाके चन्द्रमाकी ज्योत्स्नासे अमृत एवं अग्निसे उष्णता प्राप्त होती है, उसी प्रकार महात्मा पुरुषोंके सङ्गसे स्वाभाविक ही ज्ञानका प्रकाश, शान्तिकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुधाधारा एवं साधनमें तीक्ष्णता और उत्तेजना प्राप्त होती है ।

× × ×

महात्माके पास अगर पचास वर्ष रहें और उनकी आज्ञाका पालन न करें तो कल्याण नहीं हो सकता । उनके सत्कार्योंका अनुकरण और उनकी आज्ञाका पालन दोनों कल्याणकारी हैं ।

× × ×

……महात्मा पुरुषके द्वारा कहे वचनोंको सुनकर जो उनके अनुसार साधन करते हैं, पालन करते हैं, वे दत्तचित्त, श्रुतिपरायण पुरुष संसार-सागरको तर जाते हैं ।

× × ×

……महात्माकी बात सुनकर उसपर जिसको 'इत्थंभूत' विश्वास हो जाय कि बस, यही करना है—चाहे मरें या जीयें, तो उसका कल्याण हो जाता है ।

× × ×

महापुरुषोंके आचरणसे बढ़कर कोई अनुकरणीय आचरण नहीं ।

× × ×

महात्माके हृदयमें किसी प्रकारकी भी इच्छा रहती ही नहीं; हमें भी उसी प्रकार बनना चाहिये ।

× × ×

महात्मा पुरुषोंका पुनर्जन्म नहीं होता; क्योंकि उनके हृदयमें किसी प्रकारका भी किञ्चिन्मात्र संकल्प रहता ही नहीं । प्रारब्धके अनुसार केवल स्फुरणा होती है, जो कि सत्ता और आसक्तिका अभाव होनेके कारण जन्म देनेवाली नहीं है तथा कार्यकी सिद्धि या असिद्धिमें उनके हर्ष-शोकादि कोई भी विकार लेशमात्र भी नहीं होते—यही संकल्प और स्फुरणाका भेद है ।

× × ×

जीवन्मुक्त ज्ञानी महापुरुषोंकी दृष्टिमें संसार स्वप्नवत् है । इसीलिये वे संसारमें रहकर भी संसारके भोगोंसे लिप्त नहीं होते ।

× × ×

श्रद्धालु मनुष्यके लिये तो महात्माका प्रभाव माने, जितना ही थोड़ा है; क्योंकि महात्माका प्रभाव अपरिमेय है ।

× × ×

महापुरुषोंके प्रभावसे भगवान्‌की प्राप्ति होना—यह तो उनका अलौकिक प्रभाव है तथा सांसारिक कार्यकी सिद्धि होना—लौकिक प्रभाव है ।

× × ×

महापुरुषोंकी चेष्टा उनके तथा लोगोंके प्रारब्धसे होती है एवं लोगोंके श्रद्धा-प्रेम तथा ईश्वराज्ञासे भी होती है ।

× × ×

श्रद्धा होनेपर श्रद्धेय पुरुषकी छोटी-से-छोटी क्रियामें भी बहुत ही विलक्षण भाव प्रतीत होने लगता है ।

× × ×

….सभीको चाहिये कि अपनी इन्द्रियोंको, मनको, बुद्धिको नित्य-निरन्तर महापुरुषोंके सङ्गमें और उन्हीं विषयोंमें लगाये, जो भगवान् तथा महापुरुषोंके संसर्ग या सम्बन्धसे भगवद्भावसम्पन्न हो चुके हों । ऐसा करनेपर उन्हें सर्वत्र तथा सर्वदा सत्सङ्ग ही मिलता रहेगा ।

× × ×

त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये

(संकलनकर्त्ता-प्रेषक—शालिगराम)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होलाका-रहस्य

(तत्त्वचिन्तक श्रीअनिरुद्धाचार्य अनन्तश्री स्वामीजी श्रीवेंकटाचार्यजी तर्कशिरोमणि)

प्रकृतिके साथ सम्बन्ध

आर्योंद्वारा फाल्गुनी पूर्णिमामें सम्पाद्यमान महोत्सव 'होला' 'होलाका' 'होलिका' किंवा 'होली' नामसे प्रसिद्ध है। यह भारतका महान् राष्ट्रीय पर्व है। इसका साक्षात् प्रकृतिके साथ सम्बन्ध होनेसे शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्यके साथ इसका गहन और निकट सम्बन्ध है। केवल 'होलाका' उत्सव ही नहीं, अपितु आर्योंके उत्सव-महोत्सव आदि जितने भी जो कुछ व्यवहार हैं, वे सब प्राकृत नियमोंके आधारपर तन्त्रित हैं। हमारी आचार-संहिता प्राकृत आचार-संहिताका अनुकरण मात्र है, इसमें **'देवानुकारा वै मनुष्याः'** यह शातपथी श्रुति प्रमाण है। जिसका अर्थ है आर्योंकी इतिकर्तव्यताका विधान देव-विधान (निसर्ग विधान) का अनुकरण मात्र है। 'होलाका' महापर्व भी ऋतुओंकी अभ्यावृत्तिके लिये वसन्तकालमें निसर्गजन्य संवत्सररूप 'मधु' नामक अग्निके पार्थिव रजःकणोंमें प्रज्वलनका अनुकरण मात्र है।

'होलिका' शब्दका अर्थ

वेदों तथा पुराणोंके पर्यालोचनसे 'होलिका' शब्दका अर्थ अग्निकी 'रक्षिका' शक्ति होता है। इसीका होम सम्बन्धसे 'होलिका' नाम हो गया है। 'होलिका' शब्दका निर्वचन करते हुए पुराण पुरुष कहता है कि—

सर्वदुष्टापहो होमः सर्वरोगोपशान्तये।
क्रियतेऽस्यां द्विजैः पार्थ तेन सा 'होलिका' स्मृता॥

'होलिकासे सम्बन्ध होनेके कारण ही अनग्नि मनुष्यों-द्वारा आग्रायणेष्टिके निमित्त 'होलाका' अग्निमें सेके गये चने, गेहूँ और यव आदि अन्नोंका नाम भी 'होला' पड़ गया है। राजस्थानके निवासी आज भी इनको 'होला' ही कहते हैं।

'होलिका' पर्वकी प्राचीनता

'होलाका' पर्व परम प्राचीन है; इसकी पुष्टि महर्षि जैमिनीयका कर्ममीमांसा शास्त्र कर रहा है। उसमें होलाकाधि-करण नायक एक स्वतन्त्र अधिकरणकी ही रचना की गयी है। वात्स्यायन ऋषिने भी आर्योंके प्राचीन पारम्परिक उत्सव-महोत्सवोंमें होलाका-महोत्सवको अन्यतम महोत्सव माना है।

होलीकी प्रतिमा

किसी भी अमूर्त पदार्थसे सम्बन्ध मूर्त-पदार्थके माध्यमसे ही शक्य हो सकता है, इसलिये अग्निकी रक्षिका शक्ति होलीसे सम्बन्ध स्थापित करनेके लिये अग्नि-गुण-प्रधान शमी वृक्षकी शाखाको निदान शास्त्रद्वारा 'होली'की प्रतिमा (मूर्ति) मान लिया गया है। शास्त्रद्वारा निश्चित शुभ मुहूर्तमें शमी (खेजड़ी) की शाखाका बालकोंद्वारा आहरण, पूजन और चतुष्पथमें निखनन होता है। यही 'होली' है। अग्निगर्भ सोमग्राह्य शमीवृक्ष अग्नीषोमात्मक बनता हुआ उस यज्ञाग्निका ही निदानसे प्रतिमा बना हुआ है, जिसका अग्नि—प्रज्वलनात्मक 'होलिका' पर्वसे सम्बन्ध है। मानो यह शमीवृक्षकी शाखा साक्षात् अग्निदेव है। रक्षोघ्न अग्निदेवता है। यही रक्षा देवी है, जिसे आहुति प्रदान करनेके लिये ही शुष्क काष्ठ, तृण एवं गोमयोपल एकत्रित किये जाते हैं। उसकी **'रक्षोहणं वलगहनं वैष्णवमिदमहं वलामुत्किरामि स्वाहा'** इत्यादि रक्षोघ्न मन्त्रोंद्वारा पूजा की जाती है। जिसमें संक्षेपतः 'होलिका' पर्वके विज्ञानका उल्लेख है, उस पौराणिक मन्त्रसे 'होलिका' (शमी-शाखा और तृणादिसमूहों) की स्तुति की जाती है। स्तोता कहता है—

असृक्पाभयसंत्रस्तैः कृता त्वं होलि बालिशैः।
अतस्त्वां पूजयिष्यामि भूते भूतिप्रदा भव॥

रुधिरपान करनेवाली 'ढुण्ढा' राक्षसीके भयसे परित्राण पानेकी इच्छासे हे 'होलिके' (रक्षा देवि) तुम्हारी पूजा और तुम्हारे भस्मकी वन्दना करते हैं, हम सबको नीरोग और ऐश्वर्यशाली बनाओ।

'होलिका'का लौकिक स्वरूप

पुराणोंमें 'होलिका'का लौकिक स्वरूप इस रूपमें उपलब्ध है। चक्रवर्ती सम्राट् 'रघु' के शासनकालमें एक 'ढुण्ढा' नामक भयावहा राक्षसीने बालकोंको उत्पीडित कर दिया था। उसके उपशान्त करनेका उपाय पूछने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवान् नारदने कहा कि—राजन् ! 'ढुण्ढा'-नाशका एकमात्र उपाय 'होलिका' नामक अग्नि ही है। इसमें—'सर्वदुष्टापह' होम करना आवश्यक है। इस होमकी इतिकर्तव्यताका वर्णन पुराण करता है कि काष्ठमय आयुधोंसे सज्ज हर्षोल्लासके साथ इतस्ततः घूमते हुए बालक मार्गमें उपलब्ध शुष्क काष्ठ, आरणा छाणा आदिका संग्रह करके एकत्र कर दें। एकत्र समवेत इस इन्धनकी रक्षोघ्न मन्त्रोच्चारणपूर्वक पूजा करें। तदनन्तर उसको प्रज्वलित कर दें। प्रज्वलनके साथ ही बालमण्डल उच्चस्वरसे किलकिला शब्दपूर्वक आकर्षक ताल शब्दोंके साथ इस प्रज्वलित अग्निदेवको गाते और देखते हुए तीन बार प्रदक्षिणा करें। साथ ही सभी बाल-मानव स्वेच्छापूर्वक निःशंक रूपसे जिसके मनमें जैसे भी भाव हों, जिसकी वाणीमें जैसा भी शब्दकोश हो, निःसंकोच अपनी-अपनी भाषामें यथेच्छ उद्घोष करते रहें। ऐसे स्वच्छन्द, स्वतन्त्र, उन्मुक्त, शंकारहित अभय उद्घोषसे वह पापिनी 'ढुण्ढा' राक्षसी इस शब्दाग्नि-ज्वालासे अवश्यमेव पलायित हो जायगी। अट्टाट्टहास-परिहासों एवं अवाच्यवादोंसे लज्जावनता बनती हुई अवश्यमेव नष्ट हो जायगी।

'ढुण्ढा'का भी नाम 'होलिका'

अग्नि-प्रज्वालनरूपा 'होलिका'से ही इस राक्षसीका नाश होता है; अतः इसका नाम भी 'होलिका' हो गया। न केवल 'होलिकानुगता' 'होलिका' राक्षसी ही अपितु अन्य तत्सहयोगी सभी दुष्ट राक्षस इस अग्निहोम रूप 'होलिका' पर्वसे नष्ट हो जाते हैं, अतः अग्निहोम सर्वलोक-शान्तिप्रद बनता है।

'होलिका'का वैदिक स्वरूप

फाल्गुनी पूर्णिमामें वैदिक ब्राह्मण अग्न्याधानरूप अग्निहोत्रका अनुगमन करते हैं, इस अग्निहोत्र-सम्बन्धसे भी यह पर्व 'होलिका' नामसे प्रसिद्ध हो गया है।

'ढुण्ढा'के नामान्तर

पुराणोंमें 'ढुण्ढा' राक्षसीके—शीतोष्णा, असृक्पा, संधिजा, अरुकूंढा, होलाका आदि अनेक नाम उपलब्ध होते हैं। इन नामोंके अर्थोंका विवेचन करनेपर 'ढुण्ढा' के तात्त्विक स्वरूपका परिचय भी मिल सकता है। इसका विवेचन अनुपदमें होगा। ढुण्ढाका 'होलाका' नाम किस हेतुसे पड़ा है; इसका कारण पूर्वमें कहा जा चुका है। अन्य नामोंके कारण अनुपदमें कहे जायँगे।

'ढुण्ढा'का तात्त्विक स्वरूप

पुराणद्वारा 'ढुण्ढा' नामकी राक्षसीके भयसे बाल-बन्धुओंका परित्राण करनेके लिये ही 'होलाका' महोत्सवके आधिभौतिक लौकिक स्वरूपका स्थापन हुआ है। वह सौम्य प्राण जो अग्निसे सर्वथा पृथक् होकर बालकोंमें क्षय रोग उत्पन्न कर देता है, वह राक्षस नामसे प्रसिद्ध है, जिसे सौम्य शक्तिके अनुबन्धसे राक्षसी कहा जा सकता है। सोम-प्रधानत्व ही इस प्राणका स्त्री-धर्मत्व है। अतएव इसे 'राक्षसी' कहना सार्थक है। इसीके आक्रमणसे क्षयका सम्बन्ध है। जिससे मानवका रक्त ही सूख जाता है। सौम्यावस्था ही बालावस्था है। अत्यन्त छोटे शिशुओंमें यह रोग 'सूखा' रोग कहलाया है। यही रोग 'ढुण्ढा' राक्षसी है।

'ढुण्ढा'-शब्द-निर्वचन

'ढुण्ढा' शब्द यदृच्छा शब्द है; यह 'ठुण्ठ' शब्दका अपभ्रंश है। जिस प्रकार आग्नेय मधुररसात्मक जीवनीय प्राणरससे वञ्चित वृक्ष शुष्क होकर केवल 'ठुण्ठ' ही रह जाता है। तथैव इस राक्षस-प्राणात्मक क्षयरोगसे बालकोंका शरीर सूखकर केवल ठुण्ठ-सा रह जाता है। वही 'ठुण्ठ' 'ढुण्ढ' है। यही 'धुन्ध' है। यही 'ढुण्ढा' राक्षसी है। जिसका वसन्त और शिशिर सन्धिमें साम्राज्य होता है। इसीलिये यह प्राणशीतोष्णा भी कहलाया है। वेद भी ऋतु-सन्धियोंको व्याधियोंका आवासस्थान मानता है। 'ऋतुसन्धिषु व्याधिर्जायते' (शांख्यनारण्यकम्।) श्रुतिका उपबृंहण करते हुए पुराण कहते हैं कि—शीतकालो विनिष्क्रान्तः प्रातर्ग्रीष्मो भविष्यति ॥ श्लोकका तात्पर्य है कि—'होलिका' महोत्सवका तात्पर्य है कि शीतोष्णकी संधिरूपा 'ढुण्ढा' राक्षसी इसके विनाशके लिये 'होलिका' का आविष्कार है।

वेदने शीतोष्ण-सन्धिज व्याधियोंके नाशके लिये 'वैश्वदेव' नामक चातुर्मास्य यज्ञका विधान किया है। पुराण-पुरुषने 'सर्वदुष्टापह' नामक होमका विधान किया है, जिसका नाम 'होली' है। दोनोंमें अग्निका प्रज्वालन विधि-पूर्वक है। अग्निका प्रज्वालन ही होलिका-महोत्सव है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अग्निकी उच्च ज्वालाएँ कीटाणुकी नाशिका हैं। **'अग्निर्वै रक्षसामयहन्ता'** वैदिक वचन प्रसिद्ध है।

मणि (ताबीज) एवं प्रतिसर (गंडा) आदि शिशुओंके गलेमें धूप देकर बाँधना, यह रक्षोघ्न-मन्त्र-होमका ही विकृत रूप है।

अनेक उत्सवोंका संघ और अनेक नाम—

होलिका-महोत्सव अनेक उत्सवोंका एक संघ है। इसमें अनेक वैदिक, लौकिक उत्सव एवं अनेक इतिवृत्त अन्तर्गत है। फाल्गुनी पूर्णिमामें सम्पाद्यमान उत्सव 'होलिका' है; परंतु इसके पूर्व तथा उत्तरमें सम्पाद्यमान अनेक उत्सव इसीके अङ्ग-प्रसङ्ग हैं। अतएव इसके अनेक नाम भी हैं।

मदनमहोत्सव, शारदामहोत्सव, शिवरात्रिमहोत्सव, दोला-महोत्सव, गणपति-गौरीपूजन-महोत्सव, शीतलापूजन-महोत्सव, फाल्गुन-महोत्सव, रतिपति-पूजन-महोत्सव, पुष्प-महोत्सव, होलाष्टक-महोत्सव, वसन्तोल्लास-महोत्सव एवं होलिका-महोत्सव आदि अनेक नाम हैं। ये सब उत्सव मिलकर ही 'होलिका'-महोत्सव है। कारण कि सब उत्सवोंका अग्नि-जागरण एक ही लक्ष्य है। कहीं आधिदैविक अग्निका जागरण, कहीं आध्यात्मिक प्राणाग्निका जागरण और कहीं आधिभौतिक अग्निका जागरण अभिप्रेत है। अग्निका जागरण ही 'होलिका' है।

उत्सवोंका किञ्चित् विवरण मदनमहोत्सव

'होलाका'-महोत्सव अनेक उत्सवों तथा इतिवृत्तोंका समूह है। इसमें मदनमहोत्सव भी सम्मिलित है। इसमें वसन्तपञ्चमीको रतिसहित कामदेवकी पूजाका विधान है। आर्य-कन्याएँ अभिलषित वरकी प्राप्तिके लिये एवं सौभाग्यवती स्त्रियाँ सौभाग्यवृद्धिके लिये पूजा करती हैं। इस प्रकार 'होलिका' महापर्वमें मदनपूजाका अन्तर्भाव है।

शारदा-पूजन

रतिपतिकी पूजा-अर्चनाके अनन्तर ही वसन्तपञ्चमीमें श्रीरूपा शारदाके पूजनका विधान है, जो शारदापूजन-महोत्सवके नामसे प्रसिद्ध है। अतः यह पञ्चमी 'श्रीपञ्चमी' नामसे भी प्रसिद्ध है। श्रीका अर्थ सरस्वती है।

प्रेङ्खोत्सव

वसन्त ऋतुमें कफकी निवृत्तिके लिये 'दोला-महोत्सव' का भी विधान हुआ है। वेदमें दोला (झूला) का नाम 'प्रेङ्खा' है। वसन्त ऋतुके कारण प्रकृतिमें मलयानिल इतस्ततः दोलायमान होता है। तदनुकृति ही आधिभौतिक 'दोला-महोत्सव' भी है। इससे कफकी निवृत्ति होती है। मदनपूजाका सम्बन्ध काम-नियन्त्रणसे, शारदापूजाका सम्बन्ध ज्ञानसे एवं दोला (झूला) का सम्बन्ध कफ-निवृत्तिसे है।

होलाष्टक-महोत्सव

गृहलिम्पन होलाष्टक-महोत्सवोंमें मुख्य है। घरोंमें भी शीतकालमें पूरी गरमी न पहुँचनेके कारण कई प्रकारके **'नाष्ट्रा रक्षांसि'** कीटाणु घर जमा लेते हैं। अतः उनके नाशके लिये गोमयसे गृहलिम्पन आवश्यक है। इससे यह भी प्रमाणित होता है कि आर्योंका अणुसे भी अणु विधान विज्ञानसे सम्प्लुत है। गृहोंमें माङ्गलिक स्वस्तिक आदि चित्रोंका चित्रण, वासन्तिक गीत, नृत्य-वाद्योंका आयोजन आदि अनेक उत्सव होलाष्टक-महोत्सवोंके अन्तर्गत हैं।

फाल्गुन मासके सम्बन्धसे 'होला-महोत्सव' फाल्गुन-महोत्सव नामसे, वसन्त ऋतुके सम्बन्धसे 'वसन्तोत्सव' नामसे, 'मधु' नामक दिव्य सौराग्निके सम्बन्धसे 'मधु-महोत्सव' नामसे एवं वसन्त ऋतुजनित पुष्पोद्गमके कारण पुष्प-महोत्सव नामसे भी प्रसिद्ध है। अन्य भी नामों और रूपोंका उल्लेख प्रथम हुआ है। परंतु सबका उपसंहार फाल्गुन मासमें ही हो रहा है। सबका लक्ष्य एक अग्निजागरण ही है। इन सब उत्सवोंसे ही होलाका-महोत्सव हो गया है।

बाल-रक्षा-विधि

शिशिर और वसन्तकी संधिरूपा यह पूर्णिमा तिथि 'ढुण्ढा' राक्षसीके कारण सौम्य बालकोंके लिये अत्यन्त भयावहा है। तत्रापि **'एषा वै घोरा रात्रिः संवत्सररूपा यत्फाल्गुनी'** अनुसार रात्रि तो निश्चयेन भयावहा है। अतएव रात्रिके आगमनपर इस तिथिमें बालकोंका संरक्षण सावधानतया माताओंके लिये आवश्यक हो जाता है। इ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अरक्षाभावके नाशके लिये ही होलाका-पर्वका आविष्कार हुआ है और उसका अनुष्ठान होता आ रहा है।

आधिदैविक होली

सनातन प्रकृतिके सनातन तत्तत् भावोंके आधारपर ही आर्योंके उत्सव-महोत्सव नियत हैं। 'होलाका'-महापर्वका भी प्रकृतिके साथ सम्बन्ध है, इसका कुछ विश्लेषण यहाँ किया जाता है। विश्वमें व्याप्त संवत्सराग्नि शिशिर ऋतुओंमें नितरां क्षीण हो जाती है। वसन्त ऋतुमें पुनरपि प्रकृतिमें 'मधु' नामक सौर अग्निका पार्थिव रजःकणोंमें आधान अर्थात् प्रज्वालन होता है, जिससे प्रत्येक रजःकण मधुमय बन जाता है। पार्थिव रजःकणोंकी इस मधुमत्ताका ही वर्णन 'मधुमत् पार्थिवं रजः' ऋचा कर रही है।

आध्यात्मिक होली

'पिण्डब्रह्माण्डयोरैक्यम्'के सिद्धान्तसे जब ब्रह्माण्डमें 'मधु' नामक अग्निका प्रज्वलन (आधान) होता है तब अध्यात्म-शरीरमें प्राणाग्निका प्रज्वलन होता है। शरीरमें भी 'मधु'-अग्निका आधान होता है। संचित मधु-अग्निका प्रेमरूपसे प्रस्फुटित होना प्राकृतिक है। इसी प्रेमोन्मादको पूर्ण चरितार्थ करने एवं उसको नियन्त्रित करनेके लिये आर्यजातिने एक दिन चैत्रकृष्णा प्रतिपदाको नियत किया है। वही 'वसन्तारम्भ' का दिन है। प्रवृद्ध माधुर्य (प्रेम) बड़े-छोटे, ऊँच-नीच, धनी-दरिद्र आदि भेदोंको भुलानेमें समर्थ होता है, अतएव उस दिन सबको मिलने एवं मधुर भाषणके लिये आदेश दिया है। अभिवृद्ध प्रेमका ही आधिभौतिक रूप परस्परमें रंग छोड़नेकी क्रिया है। इस दिन हरिजनोंके स्पर्शका भी विधान है। वसन्तके कारण उच्छृङ्खलतामें जाते हुए कामका नियन्त्रण ही आध्यात्मिक 'होली' है। केतुमाल (यूरोप) में वसन्त ऋतुमें 'एप्रिलफूल' नामक उत्सव होता है, वह भी 'होला-महोत्सव'का ही क्षुद्रतम रूप है।

रज, रंग और राग

रज

रागात्मा रजोगुण-समुद्भूत रसराज कामदेवके सम्मान-आतिथ्यमें आयोजित फाल्गुनीपूर्णिमाके उत्तर दिवस चैत्र कृष्णा प्रतिपदामें समायोजित रंजनात्मक रजोवर्षण (पराग-गुलाल-वर्षण) तथा रंग-वर्षणका भी रागात्मक कामके साथ सम्बन्ध होनेसे इनका भी आयोजन किया गया है। कामजनक रागतत्त्व संगीतके षट् प्रधान राग-रागिनियाँ रज (पराग-गुलाल) तथा रंग भेदसे अनेक रूपोंमें विभक्त है। उन सब रूपोंका संग्रह चैत्र कृष्ण प्रतिपदामें होता है। अतः इसका नाम 'वसन्तोल्लास-महोत्सव' है। इसमें कामदेवके सब रूपोंका समावेश है।

'यः पार्थिवानि विममे रजांसि'

—के अनुसार पार्थिवी कामशक्ति ही तो 'पार्थिव रजांसि' है। ये पार्थिव रजांसि आकाशीय मेघोंको रक्ताभ बनाते हुए 'होलिका' पर्वके—

उड़त गुलाल लाल भए बादल—

—उद्घोषको चरितार्थ कर रहे हैं। अतः इस महोत्सवमें चन्दन-गुलाल लगाना और उड़ाना भी विहित है। यह चन्दन-गुलाल आदिका उड़ाना और लगाना ही अशिक्षाके कारण गंदा कीचड़ उछालने और लगानेतक पहुँच गया है। 'होलिका'के धूलका वन्दन करना भी शास्त्रविहित है। इस विधिने भी राख-धूल उछालनेकी प्रथामें सहायता दी है।

रंग

अवश्य ही जवापुष्पोंके रागसे समाप्लुत उस रंगसे अपने शरीरको आपोमय बना लेना आवश्यक है। जवा रंग जवापुष्पके उष्ण प्रकृति होनेसे उष्ण प्रकृति बनता हुआ वसन्तमें उत्पन्न श्लेष्मा विकारको भी उपशान्त करता है एवं कामशक्तिको भी नियन्त्रणमें लाता है। जपा-पुष्प आग्नेय होनेसे श्लेष्मान्तक है।

वेदमें जपा-पुष्पका नाम 'फाल्गुनानि' है। जपा-पुष्पकी उत्पत्ति फाल्गुन और चैत्रमें ही होती है। सोम धर्मसे शुक्रका, अग्निप्रकृतिसे शोणितका, मधुर गन्ध धर्मसे, मनोरञ्जक वासन्तिक जवा-पुष्प एवं तत्सदृश गुणधर्मक पुष्प-रसोंसे विनिर्मित रंगोंसे शरीरको निमज्जित करना 'होलिका'पर्वानुगत वसन्तोत्सवमें अनुरूप ही माना जायगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी प्रकार 'होला'महोत्सवसे अनुप्राणित संगीत रागोंका भी रंजन आवश्यक है ।

संगीत राग

संगीतानुरूप रागतत्त्व षट् राग-रागिनियाँ आदि भेदसे अनेक भागोंमें विभक्त है । यह कामका सहायक है । जैसा कि **'निशम्य गीतं तदनङ्गवर्धनम्'** से प्रमाणित है । अतएव 'वसन्तोल्लास' में संगीतात्मक रागका भी समायोजन होना आवश्यक हो जाता है । डफ आदि वाद्योंपर उच्च स्वरसे धमाल आदि रागोंमें हास्यरसप्रधान गायन भी कफ-निवृत्तिके लिये सर्वोत्तम साधन माना गया है ।

देश-भेदसे भेद

देश-भेदसे भी 'होलिका'-महोत्सवके स्वरूप तथा कतिपय उद्देश्योंमें भेद हो जाता है । इम्फाल, मणिपुर आदिके कतिपय निवासीजन 'होलाका'-महोत्सवको श्रीकृष्णसम्बन्धी पर्व मानते हैं । 'होली'को 'पूतना' मानते हैं । किंतु उनकी यह धारणा ठीक नहीं मालूम होती; क्योंकि भगवान् श्रीकृष्णके अवतारके पूर्व भी 'होलाका'-महोत्सव प्रचलित था ।

राजपूताना-निवासी 'होलाका'-पर्वका सम्बन्ध श्रीप्रह्लादजीकी घटनासे मानते हैं । उनका ऐतिह्य है कि 'होलाका' श्रीप्रह्लादजीको जलानेके लिये आगमें बैठी थी । किंतु वह स्वयं जल गयी और श्रीप्रह्लादजी सदाके लिये अमर हो गये । इस घटनाकी स्मृतिके लिये प्रतिवर्ष 'होला'-महोत्सव मनाया जाता है । प्रह्लाद भक्तकी जय बोली जाती है ।

दक्षिण पथके निवासी इसको महादेवद्वारा दग्ध कामदेवका स्मारक मानते हैं । उनके मतमें इसका ज्वलन कामदेवका ही ज्वलन है । सबके मतमें अग्निज्वालनात्मक एक ही लक्षण है । व्यष्टि और समष्टि अग्नि-जागरणकी आवश्यकता वेद कहता है—

अग्निर्जागार तमृचः कामयन्ते
अग्निर्जागार तमु सामानि यन्ति ।
अग्निर्जागार तमयं सोम आह
तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः ॥
(ऋ० ५ । ४४ । १५)

व्यक्तिगत अग्नि (उत्साह) और राष्ट्रगत अग्नि (तेज) जिस राष्ट्रके जाग्रत् हैं, वही सर्वसौभाग्योंका पात्र है ।

श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभुका प्राकट्य फाल्गुनी पूर्णिमाको हुआ था । इसलिये बंगालमें तथा अन्यत्र भी उनके भक्तोंमें उसी दिन जन्ममहोत्सवके साथ अखण्ड हरिकीर्तन-महोत्सव मनाया जाता है । बंगीय आदि भक्त भगवान् श्रीकृष्णकी झूलन-लीलाका पर्व मानकर उसे 'दोलोत्सव'के नामसे मनाते हैं ।

'होलिका'-पर्वका विकृत रूप

इस प्रकार अग्न्युत्सव करना, समर्याद हास्य, गीत, नृत्य आदि करना, रज (पराग—गुलाल) आदिका वर्षण करना, जवा-पुष्पके रंगसे रक्त जलको डालना, होली-भस्मकी वन्दना करना, डफ आदि वाद्योंपर निर्दोष धमाल रागसे हरजस (हरियश) गाना आदि तो शास्त्रविहित हैं । किंतु 'होलाका'-पर्वके नामपर कहीं-कहीं निर्लज्ज होकर बीभत्स रसके गाने गाये जाते हैं, बीभत्स अवाच्य वादोंका उच्चारण करना, अफीम, गाँजा, भाँग आदि पीकर उन्मत्त होना, मल-मूत्र-मिश्रित गंदे कीचड़ आदिको मनुष्योंपर फेंकना, मार्गमें आने-जानेवाले मनुष्योंके मुखपर कालिख पोतना—ये सब अनार्य आचरण हैं, हमसे इस महापर्वका यत्किञ्चित् भी सम्बन्ध नहीं है । **'न च रागोऽस्य संविधिः'** ही आर्योंका आदेश है । अतः हमको त्याग देना ही आवश्यक है । वैसे ही विहितका अनुष्ठान भी परम आवश्यक है । मानवोंमें नैसर्गिक ऐसे उत्सवोंमें उदासीनताका होना भी अनार्य भावना है । अतः शारीरिक और मानसिक नीरोगताके लिये इसको मनाना आवश्यक है, किंतु यह उत्सव उच्छृङ्खलतामें न चला जाय, इसका ध्यान रखना भी परम आवश्यक है । कोई भी कार्य समर्याद होनेपर पालक एवं अमर्याद होनेपर नाशक हो जाता है । **'धर्मलाभोऽस्तु सर्वेषाम् ।'**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्मनिवेदन

(श्रीश्रीमाताजी, श्रीअरविन्दाश्रम पांडिचेरी)

'इस योगको अन्ततक वे ही कर सकते हैं जो इसे पूर्ण गम्भीरताके साथ अपनाते हैं तथा जो अपने क्षुद्र अहं एवं उसकी माँगोंको उत्सादित करनेके लिये तैयार रहते हैं जिसमें कि वे अपनेको भगवान्‌के भीतर पा सकें। यह कार्य बड़ा ही उच्च एवं कठिन है; निम्न प्रकृतिकी विरोधी शक्तियाँ न्यूनतम स्वीकृति या क्षुद्रतम छिद्रसे भी लाभ उठानेके लिये अत्यन्त तत्पर रहती हैं। सतत और तीव्र तपस्याकी आवश्यकता होती है। इसे तब नहीं किया जा सकता यदि मानव-मन बड़े जोर-शोरसे अपने ही विचारोंकी पुष्टि करे, अथवा सत्ताके निम्नतम भागकी माँगों, सहज-प्रवृत्तियों और दावोंको, जिन्हें सामान्यतः मानवप्रकृतिके नामपर औचित्य प्रदान किया जाता है, जान-बूझकर प्रश्रय दे।'

—श्रीअरविन्द

यह सभी जानते हैं, जो लोग अपने कार्य करनेकी प्रणाली या रहन-सहनका ढंग बदलना नहीं चाहते, वे सदा कहते हैं 'ओह, क्या करोगे तुम, यह तो मानवप्रकृति है।' इसीको कहते हैं 'जान-बूझकर प्रश्रय देना' अर्थात् इस बातके प्रति सचेतन होनेकी जगह कि ये मार्गकी अधःस्थितियाँ तथा कठिनाइयाँ हैं—वे यह कहकर उन्हें उचित ठहराते हैं—'ओह, इस बारेमें कुछ नहीं किया जा सकता, यह तो मानव-प्रकृति है। व्यक्ति बिना परिवर्तनके उसे ही करते रहना चाहता है, जिसे वह सदा करता आ रहा है। वह इन माँगोंके प्रति एक इच्छित दयाभावसे पूर्ण होता है। कारण, मनुष्यकी निम्न प्रकृति सदा इन वस्तुओंकी माँग करती है। वह कहती है 'ये आवश्यकताएँ हैं, अपरिहार्यताएँ हैं, इनके बिना मेरा काम नहीं चल सकता।' और तब हैं सहज-प्रवृत्तियाँ—एक प्रकारकी आत्मतुष्टिकी प्रवृत्ति—और झूठे दावे। निम्न सत्ता दावा करती है कि उसका बड़ा भारी महत्त्व है और कि उसे वह मिलना ही चाहिये जो उसके लिये आवश्यक है, अन्यथा उसका जीवित रहना सम्भव नहीं; वह कहती है कि अकेली वही महत्त्वपूर्ण है, और ऐसी-ही-ऐसी बातें। ये सबकी सब बाधा उपस्थित करती हैं, ये सब अन्ध और अज्ञ चेष्टाएँ, रहन-सहनके पुराने ढंगका समर्थन—वे लोग जो झल्लाकर कहते हैं 'क्या चाहते हो तुम, इस विषयमें कुछ नहीं किया जा सकता।' वह सब कुछ जो मनुष्य यह कहकर करता है 'ओह यह मानवप्रकृति है'। वह सब कुछ जिसे व्यक्ति यह कहकर उचित ठहराता है, 'किया क्या जा सकता है, लोग ही ऐसे हैं, लाचारी है।' यह पुराना विचार है कि हम एक विशेष प्रकृतिको लिये जन्मे हैं और हमें उसीके अनुकूल बनना चाहिये; क्योंकि उसे बदला नहीं जा सकता।

श्रीअरविन्द हमसे कहते हैं कि यदि तुम प्रकृतिको नहीं बदल सकते तो योगका अभ्यास करनेसे कोई लाभ नहीं; क्योंकि योगका अभ्यास प्रकृतिको बदलनेके लिये ही किया जाता है, अन्यथा इसका कुछ अर्थ नहीं।

प्र०—जब यह क्षुद्र अहं समाप्त हो जाता है तब क्या मनुष्य सीधा ही अपनेको भगवान्‌के भीतर नहीं पा सकता?

उ०—किंतु वह अपने क्षुद्र अहंको पूर्णतया समाप्त किये बिना भी अपनेको भगवान्‌के भीतर पा सकता है; क्योंकि इस 'क्षुद्र' अहंको समाप्त कर देना कोई छोटा-मोटा काम नहीं।

प्र०—किंतु यह किया कैसे जाय?

उ०—कैसे किया जाय? 'अहं' को कैसे समाप्त किया जाय? सबसे पहले यह चाहना होगा, और बहुत कम ऐसे लोग हैं जो यह चाहते हैं। और वे जो कहते हैं वह ठीक यही, अपने रहन-सहनके ढंगको वे इसी प्रकार उचित ठहराते हैं कि "मैं तो बना हुआ हूँ इसी तरहका, इससे अन्यथा मैं कुछ नहीं कर सकता। यदि मैं 'इसे' बदलूँ या 'उसे' बदलूँ या इस वस्तुको त्याग करूँ या उसका उन्मूलन करूँ तो मेरा अस्तित्व ही नहीं रहेगा।" ऐसा यदि वह खुलकर नहीं भी कहे, तो भी वह सोचता ऐसा ही है। इन सब क्षुद्र इच्छाओं, तुच्छ तुष्टियों, क्षुद्र प्रतिक्रियाओं और रहन-सहनके तुच्छ ढंगोंको वह कसकर पकड़े रहता है, उनके साथ वह बुरी तरह चिपटा रहता है, उन्हें वह जाने देना नहीं चाहता। मेरे पास ऐसे सैकड़ों उदाहरण हैं जिसमें किसी व्यक्तिकी कठिनाई दूर कर दी गयी थी (किसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशेष शक्तिद्वारा उसकी कोई विशेष कठिनाई दूर कर दी गयी थी) किंतु कुछ दिनोंके बाद उसने उत्साहपूर्वक फिरसे उसे अंगीकार कर लिया ! वह कहता था 'किंतु मैं तो इसके बिना रह ही नहीं सकता !' मैं ऐसे लोगोंको जानती हूँ जिन्हें प्रायः अनायास मनकी नीरवता दे दी गयी थी और जो एक या दो दिन बाद भयभीत होकर लौटे और पूछने लगे 'क्या मैं मूर्ख बनने लग गया हूँ ?'; क्योंकि मानसिक यन्त्र हर-घड़ी चालू नहीं था। तुम कल्पना नहीं कर सकते, तुम्हें इसका पता नहीं कि किस हदतक इस क्षुद्र 'अहं' से अपनेको पृथक् करना कठिन हो जाता है; अत्यन्त छोटा होते हुए भी यह कितना बड़ा रोड़ा है, अत्यन्त सूक्ष्म आकारका होते हुए भी यह कितना स्थान घेरता है। बड़ा कठिन है यह। और लोग इसे कई बहुत स्पष्ट कारणोंसे पीछे सरका देते हैं। उदाहरणार्थ, कोई अच्छी वस्तु है और वह व्यक्ति जो उसकी ओर इसलिये झपटता है जिसमें निश्चित रूपसे वह उसे सबसे पहले पा सके और ऐसा करनेमें वह अपने पड़ोसीको धक्के मारकर गिरा भी देता है (सामान्य जीवनमें ऐसा अत्यन्त प्रायः होता है), ऐसी अवस्थामें उसे यह समझ आती है कि यह कोई बहुत अच्छी बात नहीं है, तब वह इन भोंड़ी वृत्तियोंका दमन करनेके लिये कार्य करना आरम्भ करता है, वह कठोर प्रयास करता है—और वह अपने-आपसे बहुत अधिक संतुष्ट हो जाता है 'मैं स्वार्थी नहीं हूँ, अच्छी वस्तु मैं दूसरोंको दे देता हूँ, अपने लिये नहीं रखता।' और वह फूलने लगता है। और तब वह एक नैतिक अहंभावसे अपनेको भर लेता है, जो कि भौतिक अहंभावसे कहीं अधिक बुरा है; क्योंकि वह अपनी श्रेष्ठताके प्रति सचेतन हो जाता है। फिर कुछ ऐसे लोग भी हैं जिन्होंने सब कुछ छोड़ दिया है, जिन्होंने अपने परिवारका त्याग कर दिया है, अपनी धन-सम्पत्ति बाँट दी है, जो एकान्तमें चले गये हैं, जो तपस्याका जीवन बिता रहे हैं और वे अपनी उच्चताके प्रति बहुत सचेतन हैं, वे अपनी आध्यात्मिक महत्ताकी ऊँचाईसे इस तुच्छ मानव-जातिको देखते हैं—और उनका अहं इतना भयंकर होता है कि जबतक उसे टुकड़े-टुकड़े नहीं कर दिया जाय वे भगवान्‌को कभी नहीं, कभी भी नहीं देख पायेंगे। अतः यह कार्य कोई वैसा सरल नहीं है। इसमें बहुत समय लगता है। और मुझे तुम्हें यह भी बता देना चाहिये कि काम हो जानेपर भी उसे सदा फिरसे आरम्भ करना पड़ता है।

भौतिक रूपमें हमें जीवित रहनेके लिये भोजनपर निर्भर करना पड़ता है—यह हमारा दुर्भाग्य है; क्योंकि भोजनके साथ प्रतिदिन, सर्वदा हम निश्चेतनाकी, तमस, स्थूलता और मूर्खताकी एक बहुत बड़ी मात्रा ग्रहण करते रहते हैं। हमारे पास कोई दूसरा रास्ता नहीं। जबतक कि ऐसा न हो कि हम निरन्तर, अनवच्छिन्न रूपसे पूर्णतः चौकस रहें और ज्यों ही कोई वस्तु हमारे शरीरके अंदर प्रवेश करे, तत्काल ही हम उसमेंसे केवल प्रकाशको ही निकाल लेने और बाकी उस सब कुछको अस्वीकार कर देनेके लिये, जो हमारी चेतनाको मलिन बना सकता है उसपर क्रिया करें। भोजन करनेके पहले उसे भगवान्‌को अर्पित करनेकी धार्मिक रीतिका उद्गम और उसकी युक्तिपूर्ण व्याख्या इसीमें है। खाते समय व्यक्ति यह संकल्प करता है कि यह भोजन, जो कि वह खा रहा है, इस तुच्छ मानव अहंके लिये न हो, बल्कि उसके अंदर स्थित भागवत चेतनाको समर्पित हो। सभी योगों और धर्मोंमें इसे प्रोत्साहन दिया जाता है। इस प्रथाके मूलमें यही बात है, इसके पीछे यही चेतना विद्यमान है और यह इसीलिये है कि जिस निश्चेतनाको हम सदा अनजाने ग्रहण करते रहते हैं और जो दिन-प्रतिदिन बढ़ती रहती है, वह यथासम्भव कम हो सके।

प्राणिक दृष्टिकोणसे भी यही बात है। तुम प्राणके जगत्‌में प्राणिक रूपमें प्राणिक शक्तिकी उन सभी तरंगोंसहित निवास करते हो, जो तुम्हारे अंदर प्रवेश करतीं, बाहर निकलतीं, परस्पर मिलतीं, एक दूसरेका विरोध करतीं, लड़तीं, झगड़तीं और तुम्हारी चेतनाके साथ घुलमिल जाती हैं और यदि तुम अपनी प्राणिक चेतनाको शुद्ध करनेके लिये, उसके अंदरकी कामना और क्षुद्र मानव अहंको वशमें करनेके लिये व्यक्तिगत रूपसे प्रयत्न करो भी, तो भी तुम उन विरोधी स्पन्दनोंको सतत ग्रहण करनेको विवश होते हो जो तुम्हारे साथ रहनेवाले व्यक्तियोंकी ओरसे आते हैं। तुम कितने एकान्त हाथी-दाँतके दुर्गमें अपनेको बंद करके नहीं रख सकते, भौतिक रूपकी अपेक्षा प्राणिक रूपमें यह करना तो और भी कठिन है, और तुम सब प्रकारकी वस्तुएँ अपने अंदर ग्रहण करते रहते हो। जबतक कि तुम हर समय ही जाग्रत् नहीं रहते, चौकस नहीं रहते, जबतक उन सब वस्तुओंपर, जो तुम्हारे अंदर प्रवेश करती हैं, तुम्हारा प्रभावकारी नियन्त्रण नहीं रहता, जबतक तुम अपनी चेतनामें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन सब तत्त्वोंका, जिन्हें तुम नहीं चाहते, प्रवेश करना बंद नहीं कर देते, तबतक तुम सदा ही उन सभी कामनाओं और निम्नतर क्रियाओंको, उन सभी तुच्छ अन्ध-प्रतिक्रियाओंको, उन सभी स्पन्दनोंको जिन्हें तुम नहीं चाहते तथा जिन्हें तुम उन लोगोंसे प्राप्त करते हो जो तुम्हारे चारों ओर रहते हैं, छूतके समान ग्रहण करते रहते हो।

मानसिक दृष्टिकोणसे यह और भी अधिक बुरा है। मानव-मन एक सार्वजनिक स्थानके समान है और वह सार्वजनिक स्थान चारों ओरसे खुला है—सभी तरफसे वस्तुएँ आती हैं, जाती हैं, एक दूसरेको काटकर निकल जाती हैं और कुछ-एक वहीं जमकर रह भी जाती हैं और ये सदा बहुत अच्छी प्रकारकी नहीं होतीं। और वहाँ, इस संघातपर नियन्त्रण रखना सब नियन्त्रणोंसे अधिक कठिन होता है। तुम्हारे मनमें जो विचार आते हैं उन्हें नियन्त्रित करनेकी चेष्टा करो, तब तुम्हें यह पता लग जायगा। तुम सरलतासे देख पाओगे कि व्यक्तिको किस हदतक चौकस रहनेकी आवश्यकता है, एक संतरीके समान, जिसमें तुम अपनी मनकी आँखोंको पूरा खुला रक्खो और वे विचार जो तुम्हारी अभीप्साओंके साथ मेल खाते हैं तथा वे जो उनके विरोधी हैं, उनके विषयमें एक अत्यधिक स्पष्ट दृष्टि बनाये रख सको। और प्रत्येक मिनट तुम्हें उस सार्वजनिक स्थानपर जहाँ सब ओरसे सड़कें मिलती हैं, यातायात नियन्त्रित रखनेवाले सिपाहीकी तरह कार्य करना होगा, जिसमें सभी राही वहाँ फट न पड़ें। यह एक बड़ा भारी काम है। अतः तुम्हें अपने-आपसे स्पष्ट कह देना होगा कि चाहे तुम कितने भी सच्चे हृदयसे क्यों न प्रयत्न करो, तुम्हारी सभी कठिनाइयाँ एक दिनमें या एक मासमें या एक वर्षमें दूर नहीं हो जायँगी। जब तुम कार्य आरम्भ करो तो उसे अविचल धैर्यके साथ आरम्भ करना होगा। तुम्हें अपने-आपसे कहना होगा 'चाहे इसमें मुझे पचास वर्ष लगें, चाहे सौ वर्ष या चाहे कई जीवन भी लग जायँ, तो भी जो काम मैं पूरा करना चाहता हूँ उसे मैं पूरा करूँगा ही।'

एक बार जब तुम ऐसा निश्चय कर लो, एक बार जब तुम यह भलीभाँति जान लो कि यह बात ऐसी है और लक्ष्यप्राप्तिके लिये एक सतत और स्थिर प्रयत्न करनेकी आवश्यकता है, तब तुम इसे आरम्भ कर सकते हो, अन्यथा कुछ समय बाद तुम चित हो जाओगे। तुम्हारा उत्साह चला जायगा और तुम कहोगे 'ओह, यह बहुत कठिन है—मैं करता हूँ और वह फिर बिगड़ जाता है, दुबारा करता हूँ और वह फिर बिगड़ जाता है तथा उसे फिरसे करता हूँ और वह सदा बिगड़ता ही चला जाता है''''तब क्या होगा? कब हम यात्रा तय कर पायेंगे?' व्यक्तिमें असीम धैर्य होना चाहिये। कार्य सौ बार बिगड़ सकता है और तुम उसे एक सौ एक बार करोगे, शायद वह हजार बार भी बिगड़ सकता है और तुम उसे एक हजार एक बार करोगे जबतक कि अन्तमें वह फिर नहीं बिगड़े और अन्तमें वह फिर नहीं बिगड़ता।

किंतु बात यह है कि यदि व्यक्ति केवल एक ही खण्डका बना होता तो यह सब सरल होता, पर वह कई खण्डोंसे बना है और तब इनमेंसे एक खण्ड आगे बढ़ा हुआ है और वह काफी कार्य कर चुका है, वह बड़ा चेतन है, पूरी तरह जाग्रत् है, और जबतक वह वहाँ रहता है सब कुछ ठीक चलता है तब कोई भी वस्तु अंदर घुसने नहीं दी जाती, व्यक्ति चौकस रहता है। और तब''''''''', व्यक्ति सो जाता है और अगले दिन जब वह जगता है तो वहाँ दूसरा खण्ड उपस्थित होता है, तब व्यक्ति अपने-आपसे कहता है 'अरे, कहाँ चला गया वह सब कार्य जो मैं कर चुका था! ''''''''''', और उसे सब कुछ फिरसे करना पड़ेगा, तबतक फिरसे करते रहना पड़ेगा जबतक कि सभी भाग एक-एककर चेतनाके क्षेत्रमें प्रवेश न कर जायँ और सबके सब बदल न जायँ और जब तुम अपनी इस तालिकाके अन्तमें पहुँच जाओगे तब तुम्हें परिवर्तन दिखायी देगा, तुम एक प्रगति कर चुके होते हो। इसके बाद तुम एक अन्य उठाते हो पर वह पहला हो गया होता है। किंतु वह पूरी तरह तबतक नहीं होता जबतक सत्ताके सभी भाग इस प्रकार एक-एक करके आगे न लाये जायँ और तुम उन सबोंपर, किसी एकको भी छोड़े बिना, चेतना, प्रकाश, संकल्प एवं आदर्शका ऐसा दबाव न डालो कि सब कुछ बदल जाय।

यह मैं तुम्हें निरुत्साहित करनेके लिये नहीं वरं आगेसे बता देनेके लिये कह रही हूँ। मैं यह नहीं चाहती कि तुम्हें पीछे यह कहना पड़े—'ओह, यदि मैं जानता कि यह कार्य इतना कठिन है तो मैं इसे आरम्भ ही नहीं करता।' व्यक्तिको यह जान लेना चाहिये कि यह अत्यधिक कठिन है और खूब दृढ़तापूर्वक आरम्भ करना चाहिये तथा अन्ततक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निभाना चाहिये, तब भी जब अन्त बहुत दूर हो—बहुत-से कार्य करने होते हैं। अब मैं तुम्हें बतला सकती हूँ कि यदि तुम उस कार्यको लगन और सावधानीपूर्वक करो तो वह बड़ा ही रुचिकर हो जाता है। वे लोग भी, जिनका जीवन नीरस और अरुचिकर होता है (कुछ बेचारे ऐसे लोग भी होते हैं, जिन्हें किसी ऐसे कार्यको जिसमें उनकी बिल्कुल रुचि नहीं होती, एक ही कामको और सदा उन्हीं परिस्थितियोंमें करना पड़ता है और जिनका मस्तिष्क भी पर्याप्त रूपमें जाग्रत् नहीं होता कि वे किसी भी प्रकारके कार्यमें रस ले सकें), ये लोग यदि अपने ऊपर नियन्त्रण और निराकरणकी इस छोटी-सी क्रियाको आरम्भ कर दें, अर्थात् जब कोई तत्त्व अपने अज्ञान और निश्चेतना और अहंभावके साथ आवे, उसे बदलनेके संकल्पके सामने रखें और व्यक्ति जाग्रत् रहे, उसकी तुलना करे, निरीक्षण करे एवं अध्ययन करे तथा धीरे-धीरे उसपर कार्य करे तो यह सब बहुत ही अधिक मनोरञ्जक हो जाता है। व्यक्ति चमत्कारपूर्ण और सर्वथा आशातीत खोजें कर लेता है। तुम अपने अंदर छोटी-छोटी गुप्त तहोंके एक ढेरका पता पाते हो, छोटी-छोटी वस्तुओंके जिन्हें तुम आरम्भमें नहीं देख सके थे। यह एक आन्तरिक शिकारखेलने-जैसा है। तुम छोटे-छोटे अँधेरे कोनोंकी खोजमें निकल पड़ते हो और अपनेसे कहते हो 'क्या! मैं ऐसा था, यह मुझमें था, मैं इसको अपने अंदर प्रश्रय दिये हूँ!' कभी-कभी वह कितनी मलिन, कितनी निम्न और घिनौनी होती है! और एक बार जब तुम इसे खोज निकालते हो तो फिर कैसा आश्चर्य होता है, तुम उसपर प्रकाश डालते हो और वह लुप्त हो जाती है! और तब तुममें वे प्रतिक्रियाएँ नहीं उठतीं जिनसे तुम्हें पहले इतना दुःख होता था और तुम कहते थे 'ओह, मुझे कभी सफलता नहीं मिलेगी। उदाहरणार्थ, तुम एक बहुत ही सामान्य-सा निश्चय बनाते हो (देखनेमें बड़ा ही सामान्य), 'मैं कभी झूठ नहीं बोलूँगा।' और फिर अचानक ही, तुम्हारे यह बिना जाने ही कि यह क्योंकर और कैसे हुआ, झूठ अकस्मात् तुम्हारे मुँहसे फूट पड़ता है और तुम्हें इसका पता तब लगता है जब तुम उसे कह चुके होते हो 'किंतु मैंने जो कहा वह तो ठीक नहीं है, जो मैं कहना चाहता था वह उससे बिल्कुल भिन्न है।' तब तुम खोजते हो, और खोजते हो······'यह कैसे हुआ? मैंने ऐसा कैसे सोचा? कैसे कहा? मेरे अंदर कौन बोला, किसने मुझसे यह कहला दिया?······' तुम इसकी बड़ी संतोषपूर्वक व्याख्या भी कर सकते हो और कह सकते हो 'यह मेरे अंदर बाहरसे आया था' अथवा 'यह अचेतनाका एक क्षण था।' और तुम उसके विषयमें सोचना बंद कर देते हो। अगली बार यह फिर आरम्भ होता है। अब तुम इस बातकी खोज करते हो 'जो व्यक्ति झूठ बोलता है उसका अभिप्राय क्या हो सकता है?······' और तुम आगे बढ़ते हो और आगे बढ़ते हो और तब अचानक तुम देखते हो कि एक छोटेसे कोनेमें कोई वस्तु है जो अपनेको उचित ठहराना चाहती है, अपनेको बड़ा करके दिखाना चाहती है, देखनेके अपने ढंगकी पुष्टि करना चाहती है (कुछ भी हो, इसके कारण अनेक हो सकते हैं), जो कुछ वह है उससे भिन्न दीखनेकी चेष्टा कर रही है, जिसमें लोग तुम्हारा सम्मान करें और वे यह समझें कि तुम एक विशिष्ट व्यक्ति हो।·········यही वस्तु तुम्हारे अंदर बोली थी—यह तुम्हारी सक्रिय चेतना नहीं है, वरं वह जो वहाँ विद्यमान थी और जिसने तुम्हारी चेतनाको पीछेसे ढकेला था। जब तुम पूर्णतः चौकस नहीं थे, उस वस्तुने तुम्हारे मुँहका, तुम्हारी जिह्वाका प्रयोग किया और तब लो, झूठ बाहर निकल पड़ा। मैं तुम्हें यह उदाहरण दे रही हूँ, ऐसे करोड़ों अन्य उदाहरण हैं और ये सब अत्यन्त मनोरंजक हैं। ज्यों ही तुम अपने अंदरकी इस वस्तुको खोज लेते हो और सच्चाईके साथ कहते हो—'इसे बदलना ही चाहिये', तब तुम्हें पता लगता है कि तुम्हारे अंदर एक प्रकारकी आन्तरिक स्पष्ट-दर्शिता है, जिसकी सहायतासे तुम धीरे-धीरे यह जानने लगते हो कि दूसरोंके अंदर क्या घटता है और तब उस समय, जब कि वे पूरी तरह वैसे नहीं होते जैसा कि तुम चाहते हो कि वे हों, तुम क्रोध करनेके स्थानपर यह समझना आरम्भ करते हो कि वस्तुएँ कैसे घटती हैं, किस प्रकार व्यक्ति 'वैसा' होता है, प्रतिक्रियाएँ कैसे उत्पन्न होती हैं·····तब तुम ज्ञानकी सहिष्णुतासे मुस्कुरा देते हो। तुम कोई तीखी टीका-टिप्पणी नहीं करते, तुम कठिनाईको, चाहे वह अपनी हो या दूसरोंकी,—अभिव्यक्तिका स्थान चाहे जो भी हो—दिव्य चेतनाको समर्पित कर देते हो और उसे इसे रूपान्तरित करनेके लिये कहते हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिंदू-देवताओंमें विभिन्न रंगोंका छिपा हुआ गुप्त अभिप्राय

(लेखक—डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

रंगोंमें सुन्दरता और कल्याणका संदेश

हिंदू कलाकारोंने भारतीय देवी-देवताओंके शरीर तथा वस्त्रोंमें नाना रंगोंका कलात्मक प्रयोग किया है। एक ओर जहाँ ये विभिन्न रंग उन्हें चित्ताकर्षक बनाते हैं, वहाँ दूसरी ओर प्रत्येक देवतामें निहित गुणों और विशिष्ट कर्मों अथवा उच्च उद्देश्योंको भी अभिव्यक्त करते हैं।

हिंदू-देवताओंमें प्रयुक्त रंगोंके चुनावमें कुछ रंगोंका निश्चित मनोवैज्ञानिक सांकेतिक अर्थ है। कुछकी स्वास्थ्य, दीर्घजीवन और धर्मकी दृष्टियोंसे विशेष उपयोगिता है। विविध रंग हमारे दैनिक जीवनमें उपयोगिताके साथ-साथ ही नव-स्फूर्ति, सुन्दरता और कल्याणका संदेश देते हैं।

हिंदू विचारक प्रत्येक ऐसे महत्त्वपूर्ण कार्यको, जिसे वे मानवजीवन और समाजके लिये उपयोगी, स्वास्थ्यप्रद और लाभदायक समझते थे, सहज ही धर्मके अंदर स्थान दे दिया करते थे। धर्मका अङ्ग होनेसे लोग सहर्ष उसका उपयोग करते थे और अनेक लाभ उठाते थे।

आजकी रंगोंपर आधारित सूर्यकिरण-चिकित्साने रंगों-वाली बोतलोंमें रक्खे हुए जलद्वारा अनेक रोगोंको दूर करना प्रमाणित कर दिया है। रंगोंका स्वास्थ्य और मनपर उपयोगी प्रभाव पड़ता है। रंगोंके आकर्षक वातावरणमें मन आह्लादित रहता है और ऊब दूर होती है। निराशा भागती है। धार्मिक कृत्योंमें रोलीका लाल, हल्दीका पीला, पत्तियोंका हरा, आटेका सफेद रंग प्रयोगमें लाया जाता है। यह हमारे लिये स्वास्थ्यदायक, स्फूर्तिप्रद और कल्याणकारी होता है।

प्राचीन युगसे अर्वाचीन कालतक हमारे धर्म तथा समाजमें रंगोंका सम्मिश्रण नये-नये रूपोंमें होता रहा है। एक ओर रंग जहाँ हमारे यहाँ सौन्दर्य-प्रसाधनोंके विविध रूपोंमें प्रयुक्त हुए हैं, वहाँ दूसरी ओर ये धर्ममें निहित उपयोगी तथ्योंको भी जनमानसतक पहुँचाते रहे हैं। एक युग था जब भारतमें प्रत्येक उद्बुद्ध समझदार हिंदू रंगोंमें व्याप्त गुप्त सांकेतिक भाषाका अर्थ अच्छी तरह समझता था। खेद है, आज उस वर्ण (रंग-) विज्ञानके विकसित मनोवैज्ञानिक चमत्कारोंको हिंदू भूल बैठे हैं। रंगोंके ठीक प्रयोगसे मानव-जीवन प्रसन्न, कलात्मक, शुभ शान्ति-दायक बन सकता है।

सब रंग सूर्यकी किरणोंके प्रभावसे बनते हैं। सूर्यकी किरणोंमें सभी रंगोंका सम्मिश्रण है। सूर्यकी छत्रछायामें नाना वनस्पतियाँ तथा जीवधारी पनपते और बढ़ते हैं, उसी प्रकार हरा, लाल और नीला रंग—ये मनुष्यको स्वस्थ, यशस्वी और गौरवशाली बनानेवाले हैं। लाल रंग सौभाग्यका चिह्न है तो हरा शुभ कामना प्रकट करता है।

लाल रंगमें सर्वाधिक धार्मिकता

हिंदूधर्ममें लाल रंगका सर्वाधिक महत्त्व स्वीकार किया गया है तथा अधिक-से-अधिक मङ्गल कार्योंमें उपयोग किया गया है। प्रायः सभी देवी-देवताओंके लाल रोलीका टीका लगाया जाता है। लाल चन्दन चन्द्रमाका परिचायक है। लाल टीका शौर्यका प्रतीक है। लाल टीका लगाकर व्यक्ति (विशेषतः पुरुष) में तेजस्विता, पराक्रम, गौरव और यशका अस्तित्व होना माना गया है।

लाल रंग मनुष्यके शरीरको स्वस्थ और मनको हर्षित करनेवाला है। इससे शरीरका स्वास्थ्य सुधरता है और मन प्रसन्न रहता है। यह पौरुष और आत्मगौरव प्रकट करता है। गौरवका रंग ही लाल है। क्रोधसे लाल होना हमारे यहाँका मुहावरा है। उत्तम स्वास्थ्य और शक्ति मनुष्यके गुलाबी आभायुक्त रंगसे प्रकट होती है।

प्राचीन कालसे अर्वाचीन युगतक भारतीय ललनाओं-के जीवन और शृंगारमें लाल रंगका प्रमुख स्थान रहा है। सौभाग्यवती नारी लाल बिन्दी तथा पौरुषपूर्ण व्यक्ति माथेपर लाल चन्दनका टीका लगाते हैं। लाल चन्दन चन्द्रमाका परिचायक है। लाल टीका शौर्य और विजयका सूचक है। नारीकी गरिमा, सौभाग्य, संम्मान और स्नेह लाल रंगसे प्रकट होता है।

हिंदूधर्ममें लाल रंगसे उन्हीं देवी-देवताओंको अभिषिक्त किया गया है, जो परम मङ्गलकारी, धन, तेज, शौर्य और पराक्रमको प्रकट करते हैं। उन देवताओंको भी शौर्य-सूचक लाल रंग दिया गया है, जिन्होंने अपने समुन्नत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाहुबल, अस्त्र-शस्त्र तथा शारीरिक शक्तियोंसे दुष्ट दैत्यों या आसुरी प्रवृत्तियोंको परास्त किया था।

लाल रंग बल, उत्साह, स्फूर्ति, पराक्रमका द्योतक है। हर्षके अवसर लाल रंगसे ही स्पष्ट किये जाते हैं। विवाह, जन्म, विभिन्न उत्सवोंपर आनन्दकी भावना लाल रंगसे प्रकट होती है। समस्त मङ्गलमय उत्सवोंमें अधिक-से-अधिक लाल रंगका प्रयोग आवश्यक है।

लाल रंग नारीकी मर्यादाकी रक्षा भी करता है, नारीका सौभाग्य-चिह्न है। नारीकी माँगमें लाल सिंदूर जहाँ एक ओर उसका सौन्दर्य बढ़ाता है, वहाँ दूसरी ओर उसका अटल सौभाग्य तथा पतिप्रेम भी प्रकट करता है। नारीका स्नेह लाल रंगसे परिलक्षित होता है। माँगमें लाल रंग देखकर सहसा किसीकी हिम्मत उसपर कुदृष्टि डालनेकी नहीं होती। उसे यह प्रकट होता है कि यह स्त्री चरित्रवान् महिला है। लाल रेखा जैसे उसकी मर्यादाकी परिधि है। लाल गरिमासे युक्त प्रभुतामयी कल्याणमयी गृहिणी ही गृहलक्ष्मी है।

चूँकि नारी-जीवनमें लाल रंगका विशिष्ट महत्त्व है, इसलिये हमारी देवियोंमें (विशेषतः भगवती दुर्गा और श्रीमहालक्ष्मीजीमें) लाल रंगोंका अधिकतम प्रयोग किया गया है।

हिंदू तत्त्वदर्शियोंने सिंहवाहिनी भगवती दुर्गाको लाल रंगके चमकदार वस्त्रोंसे सुसज्जित किया है। उनके दस हाथोंमें भाला, तलवार, धनुष, तीर, गदा, फरसा, शंख, सर्प, चक्र आदि विविध हथियार वीरवेश प्रकट करनेके लिये रक्खे गये हैं। उनका मुखमण्डल तेजसे लाल है, उनकी लाल त्वचासे उनका शौर्य और स्वास्थ्य झलकता है। उनकी पूजासे आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक त्रितापोंको दूर करनेका विधान है। लाल वस्त्रोंवाली भगवतीकी कृपासे परिवारके सब संकट दूर होते हैं। देवीपूजासे समस्त आसुरी और तामसी प्रवृत्तियोंपर दैवी और सात्त्विक प्रवृत्तियोंकी विजय होती है। पाप नष्ट होता है। दुर्गाकी लालीसे सात्त्विक लोगोंमें पुण्यके प्रति स्फूर्ति और उत्साह भर जाता है।

महिष नामक राक्षस घोर तामसी प्रवृत्तियोंका असुर था। वह साम्राज्यवादी दुष्प्रवृत्तियोंका दानव था और पापसे सर्वशक्तिमान् बनना चाहता था। उसने पृथ्वीतलके बाद देवताओंके अधिकारोंका भी अपहरण किया था। उसे वध करनेके लिये ब्रह्मा, विष्णु और शिवजी आदिके शरीरसे तेज निकला और उस तेजने शक्तिशाली दुर्गाका रूप धारण किया। इन्हें सब प्रकारकी शक्ति और पौरुषका प्रतीक लाल वस्त्र पहनाया गया। भड़कीले लाल रंगसे उनका शृंगार किया गया। यह आकर्षक रंग बरबस सबका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करनेवाला था। उनके मुखमण्डलका वर्ण लाल था, मुँहमें लाल पान चमक रहा था, लाल चूड़ियाँ और लाल ओढ़नी दी गयी। पाँवोंमें लाल महावर लगाया गया। सर्वत्र लाल रंगद्वारा वीर-पौरुषपूर्ण भावना प्रकट हो रही थी। यह लाल रंग शत्रुका दमन करनेवाला तत्त्व था। महिषकी आसुरी और तामसिक वासनाओंके प्रति क्रोधित होकर भगवती दुर्गा रक्तिम थीं। अहह! उस लाल वीरवेशमें सिंहवाहिनीकी यशस्वी शोभा दर्शनीय थी। इस समस्तका मनोवैज्ञानिक प्रभाव यह पड़ा कि दुष्ट महिषासुर सिंहवाहिनी भगवतीके प्रकोपसे अनायास ही भयभीत हो उठा। अन्तमें घोर युद्धके उपरान्त लाल रंगवाली देवीकी विजय हुई। आसुरी प्रवृत्तियोंको दबा दिया गया।

फलतः दशमीको देवताओंने लाल रंगसे भगवती दुर्गाका अभिषेक किया। लाल रंगको विजयका प्रतीक माना गया। दसों दिशाएँ रक्ताभसे उल्लसित हो उठीं। भक्तजनों तथा देवताओंने माँ दुर्गाकी स्तुति की!

देवी दुर्गाने उन्हें वर दिया—

'जो कोई लाल रंगसे मेरा अभिषेक कर भक्तिपूर्वक मेरे वीरत्वका चिन्तन करेगा, उसकी पाशविक प्रवृत्तियोंका दमन करूँगी। जब कभी पापवृत्तियाँ सिर उठायेंगी, तो मेरे लालवर्णके कारण उनका नाश होगा।'

इस प्रकार लाल रंग पौरुष, पराक्रम और यशको प्रकट करता है।

लक्ष्मीजीका लाल रंग मङ्गलका प्रतीक

धनकी देवी लक्ष्मीजीको भी मङ्गलकारी लाल वस्त्र पहिनाये गये हैं। लाल रंग धन, विपुल सम्पत्ति, समृद्धि, शुभ लाभको प्रकट करनेवाला है। लक्ष्मीजीको लाल कमलपर खड़ा किया गया है, जो समृद्धिका सूचक है। लक्ष्मीजीमें प्रयुक्त लाल रंग भाग्य एवं धन-धान्य प्रकट करनेवाला है। लक्ष्मी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूर्य-स्वरूपा, हिरण्यमयी, मङ्गलदायिनी, उदारशीला, पद्महस्ता, कमलके आसनपर विराजमान, लालवर्णा, साक्षात् ब्रह्मरूपा, सोने तथा चाँदीके हार पहिननेवाली तथा चन्द्रवत् प्रसन्न कान्तिमती कही गयी हैं। लाल वस्त्रोंमें उनके आगमनसे सोना, गौ, घोड़े तथा पुत्रादिकी प्राप्ति होती है। लाल रंग मङ्गलकारी है।

ऐसी लक्ष्मीका आवाहन करनेके लिये पुराणोंमें लिखा है कि पत्र, लाल पुष्पों, तोरण, स्वच्छ वस्त्र, लाल ध्वजा तथा पताकासे सुसज्जितकर एक लाल मण्डप बनायें। प्रदोषके समय उसमें लक्ष्मीजीके साथ अन्य देवी-देवताओंकी षोडशोपचारपूर्वक पूजा करें। (स्कन्दपुराण)

लक्ष्मीजी धन-धान्य और समृद्धिद्वारा लाल रंगसे सर्वत्र उल्लास बिखेरनेवाली हैं। लाल रंग धरतीपर हर्ष और आनन्द बिखेरनेवाला है। होली, दीवाली लाल रंगके त्यौहार हैं। यह रंग हमारे पुरखोंकी उज्ज्वल गौरव-गाथाको स्पष्ट करनेवाला है।

लाल वस्त्रोंमें रहने और लाल कमलके पुष्पपर खड़ी रहनेवाली लक्ष्मीजी स्वधर्मका आचरण करनेवाले, धर्मकी मर्यादा जाननेवाले, वृद्धजनों अथवा गुरुजनोंकी सेवामें तत्पर रहनेवाले, जितेन्द्रिय, आत्मविश्वासी, क्षमाशील और समर्थ पुरुषोंके साथ रहती हैं। इसी प्रकार देवता और गुरुजनोंकी पूजामें निरत रहनेवाली, सदा हँसमुख बनी रहनेवाली, सौभाग्ययुक्त, गुणवती, पतिव्रता, कल्याणकामिनी और अलंकृता स्त्रियोंके पास रहनेमें उन्हें बड़ा आनन्द मिलता है।

भगवाँ रंग—त्याग, तपस्या और वैराग्यका प्रतीक

भगवाँ रंग अग्निकी लपटका रंग है। भारतीय धर्ममें इस रंगको साधुता, पवित्रता, शुचिता, स्वच्छता और परिष्कारका द्योतक माना है। अग्नि तमाम गंदगी, कल्मष, कलुषितताको नष्ट करनेवाली है। आगमें तपकर वस्तुएँ निखर उठती हैं। उनकी कालिमा और खराबी दूर हो जाती हैं। सोनेको जितना ही अग्निमें तपाया जाता है, वह उतना ही चमक-दमक उठता है। इसी प्रकार इस रंगको पहिननेवाला अपनी विषय-वासनाओंको दग्धकर आध्यात्मिकताकी ओर अग्रसर होता है।

भगवाँ रंग आध्यात्मिक प्रकाशका रंग है। यह धार्मिक ज्ञान, तप, संयम और वैराग्यका रंग है। हिंदू योगी, तपस्वी, वैरागी, साधु भगवाँ वस्त्र पहनकर मानो अन्धकारसे प्रकाशकी ओर चलते हैं, मृत्युसे अमरताकी ओर बढ़ते हैं एवं अज्ञानसे ज्ञान और सन्मतिकी ओर अग्रसर होते हैं।

जैसे अग्निसे प्रकाश उत्पन्न होता है, उसी प्रकार भगवाँ-वस्त्र पहिननेवाला योगी आध्यात्मिक ज्योतिसे निखर उठता है। वह यह रंग धारणकर संसारमें त्याग, तपस्या, संयम और वैराग्यका पवित्र जीवन व्यतीत करना चाहता है।

भगवाँ वस्त्र पहने साधु देवताओंके गुणोंको अपने व्यक्तित्वमें विकसित करना चाहता है। भगवाँ रंग साधुको उसके जनसेवा, जन-शिक्षण और पथप्रदर्शनके महान उत्तरदायित्वकी स्मृति दिलाया करता है। यह रंग शुभ संकल्पका सूचक है। जब व्यक्ति उसी रंगको पहनता है, तो उसे अपने कर्तव्य खूब स्मरण रहते हैं, उसकी नैतिक उन्नति होती जाती है, बुद्धि-विवेक और संयम उत्तरोत्तर बढ़ते हैं। प्राचीन कालमें भगवाँ-वस्त्र पहनकर भारतीय ऋषि-मुनि जन-जागरणकी अलख जगाते हुए देशके कोने-कोनेमें भ्रमण करते थे। मन्दिरोंमें ठहरते थे। जन-जीवनमें जो विकृति दीखती थी, परिव्राजक बनकर तीर्थ-यात्रा, पद-यात्रा करते हुए उसे दूर किया करते थे। धर्म, समाज, संस्कृति एवं राष्ट्रकी सुरक्षामें कर्मठ प्रहरीको भगवाँ-वस्त्र पहननेका प्राचीन विधान है।

भगवाँ-वस्त्र पहननेसे यह स्पष्ट होता है कि साधुने तप, त्याग और आत्मसंयमद्वारा अपने व्यक्तित्वको क्षुद्र सांसारिकतासे ऊपर उठा लिया है, अपनी रुचिको उन्नत, प्रशस्त और परिष्कृत कर लिया है। अब वह इन्द्रिय-लोलुपता, भोग-विलास, वासनाओंके ताण्डवसे बचकर शुभ्र और पवित्र आध्यात्मिक प्रदेशमें विचरण करने लगा है। विवेक, ज्ञान, अध्ययन, उच्चचिन्तनका पथिक बन गया है। भगवाँ-वस्त्र योगी और महात्माओंको सदा विषय-वासनाओं, संसारके माया और प्रपञ्चों तथा मोहको त्यागनेका वैराग्यप्रधान संदेश देता है।

हरा रंग आध्यात्मिक प्रेरक वातावरणका प्रतीक

हरा रंग समग्र प्रकृतिमें व्याप्त है। यह पेड़-पौधों, लहलहाते खेतों, क्यारियों, पर्वतीय प्रदेशोंको ढकनेवाला मधुर रंग है। यह मनको शान्ति और हृदयको शीतलता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रदान करता है। हमारे नेत्रोंको प्रिय लगता है। यह मनुष्यको सुख, शान्ति, ताजगी, जिन्दादिली देनेवाला प्रिय रंग है। यह नेत्र-ज्योतिकी वृद्धि करता है और मनमें संतुलन, प्रसन्नता, सुख और शीतलता देता है।

लक्ष्मीजीको मङ्गलकारी लाल वस्त्रों तथा नेत्र-सुखदायक हरे रंगसे भी विभूषित किया गया है। लाल और हरे रंगके सम्मिश्रणसे महालक्ष्मीजीकी सात्त्विकता, जितेन्द्रियता, सत्यपरायणता, कल्याणकामना और सौभाग्यको स्पष्ट किया गया है। लाल और हरे रंगोंसे उद्योगशीलता स्पष्ट होती है। लक्ष्मीजी उन्हीं पुरुषश्रेष्ठोंके पास रहती हैं, जो उद्योगी, परिश्रमी, स्फूर्तिदायक और आत्मविश्वासी हैं। ये दोनों रंग मिलकर मनुष्यके मनकी शान्ति, तेज, बल और आत्मगौरवको बढ़ानेवाले हैं। यदि हम इन रंगोंको धारण करें, तो प्रकृतिके साथ सामञ्जस्य स्थापित करते हैं और सुखी रहते हैं। लक्ष्मीजीको आसपासका हरा वातावरण विशेष प्रिय है।

हरे-भरे जंगल तथा हरित पुष्पाच्छादित उद्यान जहाँ धरती माताकी शोभा बढ़ाते हैं, वहाँ हरे रंगके मनोमुग्धकारी प्रिय वातावरणमें मानव-मनको अत्यधिक प्रसन्नता प्राप्त होती है। हमारा मन-मयूर मस्त होकर नृत्य करने लगता है।

पहले लोग घरोंके आस-पास पूरे वर्षतक विविध प्रकारके रंग-बिरंगे फूल देनेवाले पौधे लगाते थे, जिससे उस स्थानका वातावरण शुभ विचारोंके लिये प्रेरक होता था और सौन्दर्य बढ़ता था। प्राणवायुकी स्वास्थ्य और यौवन देनेवाली सुगन्ध चारों ओर फैलकर लोगोंको प्रसन्नता प्रदान करती थी।

प्राचीन ऋषि-मुनियोंने अपनी आध्यात्मिक उन्नति ऊँचे हरे पर्वत-शिखरों, लंबे-लंबे घासके हरे मैदानों, कल-कलनिनादिनी सरिताओं और चाँदी बिखेरते निर्झरोंके हरे तटोंके शान्त सुखद वातावरणमें की थी। संसारके महान् ग्रन्थ, मौलिक विचार, प्राचीन शास्त्र, वेद-पुराण आदि उत्तमोत्तम ग्रन्थ हरे वातावरणमें ही निर्मित हुए हैं। हमारे पूर्वजोंके आत्मा तथा परमात्मा-सम्बन्धी उत्कृष्ट विचार हरे वातावरणकी उर्वर विचार-शक्तिकी देन हैं।

हरा रंग आलस्य दूर कर ताजगी देता है, मूर्खता दूर कर वेदज्ञानकी ओर उन्मुख करता है। हरे वातावरणमें स्फूर्ति आती है और कठिन काममें मन लगता है।

हरा रंग आत्मिक शान्ति देनेवाला है। प्राचीन कालके व्यक्ति घने औद्योगिक नगरोंकी अपेक्षा हरे-भरे ग्रामीण वातावरणमें रहना अधिक पसंद करते थे। ऋषियोंके आश्रम खेतोंमें थे। हरियालीके वातावरणमें रहकर हमारे विचारक, शिक्षक, नेता, लेखक—अनर्थमूलक असामाजिक दुष्ट तत्त्वोंसे सुरक्षित रहते हैं।

हरे वातावरणमें लगे फूलोंका एक आध्यात्मिक महत्त्व भी है। कमलका फूल हमारे धर्मका अविभाज्य अङ्ग है। लक्ष्मीजी लाल कमलपर ही निवास करती हैं। हिंदू धर्म तथा भारतीय संस्कृतिमें पुष्प श्रेष्ठता, पवित्रता और समाज-सेवाके प्रति आत्म-समर्पणका प्रतीक भी है। इसीलिये बेल-पत्र, तुलसी-पत्र आदिके साथ पुष्प देवताओंकी भेंटमें पूजा-अर्चामें प्रमुख स्थान रखता है।

हरा रंग हमारी नैतिक जागृति और आध्यात्मिक चेतनाका प्रतीक है। खाद्यान्नकी पूर्ति, अच्छे स्वास्थ्यकी प्राप्ति, गंदगी-निवारण आदि आवश्यकताएँ स्वच्छ हरे वातावरणमें होती हैं। यह रंग सामाजिक जीवनमें एक नयी रचनात्मक विचारधाराका प्रसार करनेवाला है। इसमें रहकर हम प्रसन्नता और सौभाग्य प्राप्त करते हैं।

जैसे पानी पाकर बीजोंसे अंकुर फूटते हैं, वृक्षोंमें हरी-हरी प्यारी कोपलें निकलती हैं, शाक-सब्जी उगती है; उसी प्रकार धरतीको हरा-भरा बनानेसे गरीबी और भुखमरी दूर होती है। खानेके लिये अन्न पैदा होता है। नये पौधे उग आनेसे गाँव हरे-भरे नजर आते हैं और उसे देखकर ग्रामीण मस्त हो झूमने लगते हैं। दीपावली और होली अवसरोंपर नयी फसलके आगमनपर हमारे यहाँ उत्सव मनानेका विधान है।

गंदे स्थानोंपर भी साफ करके फूल लगाये जा सकते हैं, उसी प्रकार निम्नकोटिके विचारोंमें रहनेवाले व्यक्ति भी हरे वातावरणमें विचारोंकी उच्चता प्राप्त कर सकते हैं। आज देशभरमें फल-शाक-तरकारी और फूलों लगानेका अभियान शुरू किया जा रहा है। पंजाब सरकारके निर्णयके अनुसार पं० जवाहरलाल नेहरूके प्रिय गुलाब की स्मृतिमें चण्डीगढ़के ३० एकड़ क्षेत्रमें गुलाबका बाग लगानेकी योजना बनायी गयी है। जब इस हरे बागका पूर्ण विकास होगा, तो यह विश्वका सबसे बड़ा गुलाबके बगीचोंमें होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पीला रंग ज्ञान, विद्या और विवेकका प्रतीक

पीला रंग ज्ञान और विद्याका भव्य रंग है। यह सुख, शान्ति, अध्ययन, विद्वत्ता, योग्यता, एकाग्रता और मानसिक बौद्धिक उन्नतिका प्रतीक है। पीला रंग सरसोंका बसन्ती रंग है, जो मस्तिष्कको प्रफुल्लित और उत्तेजित करता है। ज्ञानकी ओर प्रवृत्ति उत्पन्न करता है, नये-नये स्वस्थ विचार मनमें पैदा करता है। वसन्त ऋतु मनको मस्त करनेवाली ज्ञानवर्द्धक ऋतु है।

भारतमें विद्यार्थी कंधेपर पीला दुपट्टा रखते रहे हैं। पीली धोती, पीली टी या कुर्ता धारण करते हैं। उनका पीतवर्ण विद्या और सद्ज्ञानके प्रति प्रेम, नया ज्ञान प्राप्त करनेकी उत्कट इच्छा और मानसिक उन्नतिकी आकाङ्क्षाका उपयोगी रंग है। विद्यार्थीका पीला दुपट्टा यह स्पष्ट करता है कि विद्यार्थीमें ज्ञान, बुद्धि, विवेक इत्यादि उत्तरोत्तर बढ़ते ही रहें; उसकी मानसिक, बौद्धिक और नैतिक उन्नति लगातार चलती रहे; वेदमन्त्रों, ज्ञानशक्तिके स्वरूप, रहस्य एवं प्रयोग होते रहें। पीला रंग विद्यार्थीके बुद्धि-बलको बढ़ानेका प्रतीक है। इसका विस्तृत अर्थ लें तो इसमें विद्याबल, चातुर्यबल, स्वास्थ्यबल, आत्मबल, धनबल—सभी कुछ आ जाता है।

भगवान् विष्णुका वस्त्र पीताम्बर होता है। विष्णु ब्रह्माकी नाभिसे जन्मे माने गये हैं। इसका प्रतीकात्मक मतलब यह है कि वे ज्ञान, विद्या, बुद्धि, तर्क और विवेकशीलताके जन्मदाता हैं। उनका पीतवस्त्र उनके असीम ज्ञानका द्योतक है। भगवान् श्रीकृष्ण भी पीताम्बर ही पहनते हैं। उनका पीले रंगसे सम्बन्ध रक्खा गया है। इसका तात्पर्य यह है कि भगवान् श्रीकृष्ण जहाँ व्यावहारिक बुद्धिमें सबसे आगे थे, वहाँ उनमें नीति, विद्या, शास्त्रोंका उच्चतम ज्ञान, नैतिक, धार्मिक और आध्यात्मिक शक्ति, आध्यात्मिक पथ-प्रदर्शन सभी कुछ मौजूद था। वे अपनी विद्या-बुद्धिसे निराश व्यक्तिमें भी गति और शक्ति, सद्भाव और सद्वृत्तियाँ उत्पन्न कर सकते थे, कायरता भगा सकते थे। उपनिषद्, वेद, दर्शन, गीताका सारा प्रेरक ज्ञान पीले कपड़ेसे स्पष्ट किया गया है।

गणपति गणेशजीकी धोती पीली रक्खी गयी है और दुपट्टा नीला रक्खा गया है। उनकी वेश-भूषामें केवल पीले तथा नीले रंगोंसे ही अभिषेक किया गया है। गणपति गणेशका पूजन, अर्चन किसी भी शुभ कार्यके लिये आवश्यक माना गया है। हिंदू मनीषियोंने गणेशजीको विघ्नेश्वर देवके नामसे भी पुकारा है। भगवान् शिवके पुत्र होनेके कारण वैष्णव तथा शैव दोनों ही गणेश-पूजनको बड़े प्रेम और चावसे करते हैं। सभी मङ्गलकार्योंमें पीली धोतीवाले गणेश विघ्नहर्त्ता हैं। किसी भी महत्त्वपूर्ण कार्यकी सिद्धिके लिये गणेशपूजन आवश्यक आरम्भ है।

गणेशजीकी पीली धोती इसीलिये बनायी गयी है; क्योंकि वे विद्याके दाता माने गये हैं। शीघ्र लेखन (शार्टहैण्ड) की कलाका आरम्भ विद्वद्वर गणेशके द्वारा ही हुआ था।

नीले रंगमें बल-पौरुषका संदेश निहित है

विश्वमें नीला रंग सृष्टिकर्त्ताने सर्वाधिक रक्खा है। आखिर क्यों ?

हमारे सिरके ऊपर विस्तृत अनन्त नील वर्णका आकाश है, नीचे सृष्टिमें समुद्र तथा सरिताओंमें नीले रंगका आधिक्य है। ऊपर और नीचे सर्वत्र हम नीले रंगमें रहते हैं।

मनोविज्ञानके अनुसार नीला रंग बल, पौरुष और वीर भावका प्रतीक है। जिस महापुरुषमें जितना ही अधिक बल-पौरुष है, युद्धमें दृढ़ता, साहस, शौर्य है, कठिन-से-कठिन परिस्थितियोंमें निरन्तर सत्य, नीति, धर्मके लिये संग्राम करनेकी योग्यता है, वचनोंमें स्थायित्व है, संकल्पशक्ति और धीरता है, उसे उतने ही नीले रंगसे चित्रित किया जाता है।

मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रजी तथा लीला-पुरुषोत्तम योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी दोनोंका सम्पूर्ण जीवन दानवताके विरुद्ध युद्ध करनेमें व्यतीत हुआ था। रामको रावण तथा श्रीकृष्णको कंस आदि राक्षसोंसे निरन्तर युद्ध करना पड़ा था। राम और कृष्ण महाबली योद्धा और शूरवीर थे। सारे जीवन प्राणोंकी ममता छोड़ असत्य, दानवत्व और राक्षसत्वके विरुद्ध युद्ध करते रहे थे। अतः चित्रकारोंने इन दोनों देवताओंको नीले रंगसे रँगा है। कारण यह है कि ये देवता मनुष्यकी सर्वोच्च युद्ध-विषयक शक्तियोंसे परिपूर्ण हैं। इनमें पौरुष, धैर्य, वीरता, कष्ट-सहिष्णुता, सत्य और धर्मकी रक्षाके लिये कभी युद्धसे विमुख न होना, कठिनाइयोंसे विचलित न होना आदि-आदि अनेक शूरवीरोंके गुण भरे हुए हैं।

नीला रंग आकाश और पृथ्वीपर सर्वव्यापक है। उसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकार नीले रंगवाले वीरपुंगव राम और महायोद्धा श्रीकृष्ण भी सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान् हैं। नीला रंग क्षत्रिय-स्वभाव प्रकट करता है। नीला रंग यह बताता है कि क्षत्रियको युद्धसे चलायमान नहीं होना चाहिये, सत्य और धर्मके हेतु युद्धसे नहीं हटना चाहिये। क्षत्रियके लिये धर्मयुद्धसे बढ़कर कोई बात नहीं है।

नीला रंग उद्योगी पुरुषोंका रंग है। इस रंगको पहननेवाला अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखता है, भोगोंसे घृणा करता है और धर्मके अनुसार युद्धमें लगता है।

नीला समुद्र गहन गम्भीर माना गया है; इसी प्रकार वीर राम और महाबली श्रीकृष्ण शक्ति और सामर्थ्यमें गहन हैं, गम्भीर हैं।

नीला वर्ण राम तथा कृष्णकी सहनशीलता, स्वभावकी स्थिरता और कष्टोंमें शान्त रहनेके स्वभावका द्योतक है। भगवान् अति गम्भीर हैं। वे कष्टों और परेशानियोंमें उत्तेजित नहीं होते। क्षीरसागरमें भुजंगकी कठोर शय्यापर पूर्ण शान्तिसे निवास करते हैं। यह उनके पौरुषका प्रभाव है।

भगवान् शिवको नीलकण्ठ कहा जाता है। सागर-मन्थन करनेपर उसमेंसे विष निकला था। प्रश्न था कि उस विषको कौन कहाँ रक्खे? यदि विष पेटके भीतर जाता है, तो मनुष्यको मार डालता है, बाहर रहता है तो संसारका अहित करता है। भगवान् शिव ही ऐसे पौरुषवान् थे, जो उस विषको रख सकते थे। उसे उन्होंने अपने कण्ठमें रख लिया। उसके प्रभावसे वे नील वर्ण हो गये। यह नीलवर्ण उनके बल-पौरुषको स्पष्ट करता है। शिवरात्रिके दिन शिवजीने अपने असीम पौरुषसे आसुरी शक्तियोंको नष्ट किया था।

शिव, विष्णु, गणेश, सूर्य और देवी—ये पाँच देवता हिंदू-उपासनामें प्रसिद्ध हैं। इनमें शिवको महादेव—अर्थात् सबसे अधिक पौरुषवान् देवता कहा गया है। ये आशुतोष कहे जाते हैं। ये इतने बल और पौरुषवाले हैं कि सर्प भी इनके भूषण बने हुए हैं। ब्रह्माण्ड इनका लिङ्ग है—ज्ञापक है। उसका ब्रह्मा, विष्णु भी पार नहीं पा सके हैं। इतने बल-पौरुष और पराक्रमको प्रकट करनेवाला यह नीला रंग है।

सफेद रंग पवित्रता, शुद्धता, विद्या और शान्तिका प्रतीक

श्वेत रंग सातों रंगोंके सम्मिश्रणसे बना है। सूर्यकी सफेद रश्मिको तोड़नेपर उससे सभी रंग प्रकट हो जाते हैं। अतः इसमें सभी रंगोंकी थोड़ी बहुत छाया है।

श्वेत रंग पवित्रता, शुद्धता, विद्या और शान्तिका प्रतीक है। इससे मानसिक, बौद्धिक और नैतिक स्वच्छता प्रकट होती है। नीर-क्षीरका विवेक इसी रंगसे प्रकट होता है।

ज्ञान और विद्याका रंग सफेद है; क्योंकि जो विद्याके सच्चे पुजारी हैं, उनमें किसी प्रकारका कल्मष नहीं ठहर सकता। ज्ञानके सामने कालिमा कहाँ ठहर सकती है! विद्या हमें सब प्रकारकी पवित्रताकी ओर बढ़ाती है, समाजके दुर्गुणोंसे बचाती है, सन्मति और विवेक देती है, सांसारिक संकुचिततासे ऊपर उठाती है। इसलिये विद्याका रंग श्वेत है।

विद्याकी अधिष्ठात्री देवी सरस्वतीको श्वेत रंग सबसे प्रिय है। उनका वर्णन निम्न स्तोत्रमें देखिये—

या कुन्देन्दुतुषारहारधवला या शुभ्रवस्त्रावृता
या वीणावरदण्डमण्डितकरा या श्वेतपद्मासना।
या ब्रह्माच्युतशंकरप्रभृतिभिर्देवैः सदा वन्दिता
सा मां पातु सरस्वती भगवती निःशेषजाड्यापहा॥

अर्थात् वे भगवती सरस्वती मेरा पालन करें—

जो कुन्दके फूल, चन्द्रमा, बर्फ और हारके समान श्वेत हैं, जो शुभ्र (सफेद) कपड़े पहनती हैं, जिनके हाथ उत्तम वीणासे सुशोभित हैं; जो श्वेत कमलासनपर बैठती हैं; ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देव जिनकी सदा स्तुति करते हैं और जो सब प्रकारकी जडता हर लेती हैं।

आशासु राशीभवदङ्गवल्ली-
भासैव दासीकृतदुग्धसिन्धुम्।
मन्दस्मितैर्निन्दितशारदेन्दुं
वन्देऽरविन्दासनसुन्दरि त्वाम्॥

अर्थात् हे कमलके आसनपर बैठनेवाली सुन्दरी सरस्वति! तुम सब दिशाओंमें पुञ्जीभूत हुई अपनी देहलताकी आभासे ही क्षीर-समुद्रको दास बनानेवाली हो, अपनी मन्द मुसकानसे शरद्‌ऋतुके (सफेद) चन्द्रमाको तिरस्कृत करनेवाली हो। मैं तुमको प्रणाम करता हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुक्लां ब्रह्मविचारसारपरमामाद्यां जगद्व्यापिनीं
वीणापुस्तकधारिणीमभयदां जाड्यान्धकारापहाम्।
हस्ते स्फाटिकमालिकां च दधतीं पद्मासने संस्थितां
वन्दे तां परमेश्वरीं भगवतीं बुद्धिप्रदां शारदाम्॥

जिन सरस्वतीका रूप श्वेत है, जो ब्रह्मविचारकी परम तत्त्व हैं, जो सब संसारमें फैल रही हैं, जो हाथोंमें (संगीतकलाकी प्रतीक) वीणा और (ज्ञानकी प्रतीक) पुस्तक लिये रहती हैं, जो अभय देती हैं, जो मूर्खतारूपी अन्धकारको दूर करती हैं, जो हाथोंमें स्फटिकमणिकी माला लिये रहती हैं, जो कमलके आसनपर विराजमान हैं और बुद्धि देनेवाली हैं, उन आद्या परमेश्वरी भगवती सरस्वतीकी मैं वन्दना करता हूँ। देवी सरस्वती श्वेत कमलोंसे भरे हुए निर्मल आसनपर विराजनेवाली हैं। वे खिले हुए सुन्दर श्वेत कमलके समान मंजुल मुखवाली हैं। विद्याकी देवी हैं। सफेद रंगके प्रति उनका प्रेम पवित्रता, शुद्धता, विद्या और शान्तिका प्रतीक है। सबसे अधिक विकसित व्यक्तियोंको श्वेत वस्त्र ही धारण करने चाहिये।

काला रंग मृत्यु और भयंकरताका रंग है। मङ्गलकारी कार्योंमें इसका निषेध है।

जीवनमें स्वरोदयकी महत्ता

(लेखक—श्रीगुरुरामप्यारेजी अग्निहोत्री)

स्वरोदय-ज्ञानके साथ ही तत्त्वोदयका भी प्रकरण नियोजित है। स्वरोदयकी पूर्ति स्वर और तत्त्व—दोनों अङ्गोंसे होती है। पिछले लेखोंमें स्वरसम्बन्धी प्रकरणपर संक्षिप्त रूपसे प्रकाश डाला जा चुका है। यहाँपर केवल तत्त्वोदय-प्रकरणपर ही विचार करना है। तत्त्वका अर्थ होता है सार। तत्त्वोंसे ही जीवनकी सृष्टि होती है और सृष्टिका प्रधान कारण तत्त्व ही है। स्वर और तत्त्वोंके संयोगसे ही शरीरमें जीवन-शक्तिका विकास होता है। इनमेंसे किसीका भी अभाव जीवनसमाप्तिका कारण होता है। स्वर तत्त्वमय होते हैं। योगाभ्यासी स्वर और तत्त्वोंका ज्ञाता होता है। तत्त्वोंसे परे केवल निराकार ब्रह्म ही है। तत्त्वयुक्त होनेसे संसारके सभी पदार्थ दृश्यमान होते हैं; किंतु तत्त्वोंका अस्तित्व समाप्त होते ही दृश्यमान जगत् अदृश्य हो जाता है।

पृथ्वी, जल, अग्नि, तेज और आकाश—यही पाँच तत्त्व होते हैं। प्राणी पञ्चतात्त्विक होता है। अन्य पदार्थोंमें पाँचों तत्त्वोंका मिश्रण नहीं पाया जाता। किसीमें एक, किसीमें दो, किसीमें तीन और किसीमें चार तत्त्वतक विद्यमान पाये जाते हैं।

तत्त्वोंका आश्रय लेकर ही स्वर-प्रवाह होता है। जिस प्रकार स्वर-प्रवाह परीक्षासे जाना जाता है, उसी प्रकार स्वर-परीक्षासे तत्त्वोंका भी ज्ञान होता है। भिन्न-भिन्न तत्त्वोंके संयोगसे स्वर-प्रवाहकी भिन्न-भिन्न गतियाँ हो जाती हैं। चन्द्र-स्वर, सूर्य-स्वर अथवा शिव-स्वरमें तत्त्वोंका समान प्रवाह होता है। स्वर-प्रवाहमें तत्त्वोंका प्रमुख स्थान है और केवल स्वरकी जानकारी गौण है। स्वर तत्त्वहीन कभी नहीं होते। बिना तत्त्वोंके जाने कभी-कभी अनुकूल तत्त्व न होनेसे शुभ स्वर भी प्रतिकूल हो जाता है और वास्तविक फलकी प्राप्ति नहीं होती। उस समय स्वराश्रयीको स्वर-प्रवाहपर अविश्वास हो जाता है। स्वरका फलाफल तत्त्वोंपर ही निर्भर है; अगर तत्त्व अनुकूल हुए तो स्वर-प्रवाह भी अनुकूल फल देता है और अगर स्वरमें तत्त्वका प्रवाह उपयुक्त न हुआ तो स्वर व्यापक फलदायी नहीं होता।

साधारण रूपसे स्वरमें तत्त्वोंका स्थान इस प्रकार जाना जाता है। मुँहसे श्वास निकालकर स्वच्छ दर्पणमें फूँक मारनेपर यदि दर्पणमें चौकोण आकृति बने तो उस समय स्वरमें पृथ्वीतत्त्वका प्रवाह मानना चाहिये। यदि दर्पणमें अर्धचन्द्राकार आकृति बने तो जल-तत्त्व, त्रिकोण आकृति बने तो तेजस्तत्त्व और वर्तुलाकार आकृति बननेपर वायुतत्त्वका प्रवाह स्वरमें होता है। बिन्दीदार आकृति बननेपर स्वरमें आकाशतत्त्वका प्रवाह मानना चाहिये। स्वर-प्रगतिसे तत्त्वका बोध अभ्यास करनेपर होता है। स्वरमें तत्त्वोंका ज्ञान, स्वर-प्रवाहकी प्रगति और स्वभाव दोनोंसे हो सकता है। इसके समझनेके लिये स्वरमें तत्त्व-प्रवाहकी तालिका इस प्रकार है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तालिका

क्रमांक	तत्त्व	स्वर-प्रवाह-प्रगति	स्वभाव
१	पृथ्वी	सीधा स्वर-प्रवाह	शान्ति तथा भारीपनका अनुभव
२	जल	नीचेकी ओर स्वर-प्रवाह	प्यासका अनुभव होना
३	अग्नि	ऊपरकी ओर स्वर-प्रवाह	तीखी वस्तुपर चित्त जाना
४	वायु	तिरछा (दाँये या बाँये) स्वर-प्रवाह	अँगड़ाई आना
५	आकाश	दोनों (चन्द्र-सूर्य) स्वरोंका समान प्रवाह	उकताहट, उद्विग्नता

पृथ्वी, जल, अग्नि और वायुतत्त्व चन्द्र अथवा सूर्य स्वर दोमेंसे किसी एकमें ही प्रवाहित होते हैं; कि आकाशतत्त्वका प्रवाह शिवस्वरमें होता है। चाहे उस मिश्रित स्वरकी प्रगति सीधी, तिरछी, ऊँची, नीची किसी ओर हो। तत्त्वोंके रंग, स्थान, स्वाद और गतिकी तालिका इस प्रकार है—

क्रमांक	तत्त्व	शरीरमें स्थान	स्वाद	स्वर-प्रवाहकी गति	रंग
१	पृथ्वी	दोनों जंघाएँ	मीठा	बारह अंगुल सीधा	पीला
२	जल	दोनों पाँव	कसैला	दस अंगुल	सफेद
३	अग्नि	दोनों कंधे	तीक्ष्ण	चार अंगुल	लाल
४	वायु	नाभि-मूल	खट्टा	आठ अंगुल	नीला
५	आकाश	मस्तक	कड़ुआ	मिश्रित	मिश्रित

पृथ्वीतत्त्वके चलनेसे लाभ देरमें होता है; किंतु जलतत्त्व तुरंत लाभदायक होता है। अग्नि और वायुतत्त्व चलनेसे हानि होती है। आकाशतत्त्व निष्फल और अनिष्टकारी होता है। इनके फलाफलकी तालिका इस प्रकार है—

क्रमांक	तत्त्व	स्वर-प्रवाह	फल	कार्य-सम्पादन
१	पृथ्वी	सीधा	सिद्धिदाता	स्थिर तथा धैर्यके काम
२	जल	नीचेकी ओर	सिद्धिदाता	शीघ्रतावाले कार्य
३	अग्नि	ऊपरकी ओर	मृत्युदायक	क्रूरकर्म-लड़ाई आदि
४	वायु	तिरछा	क्षयकारक	मारण-मोहन-उच्चाटन
५	आकाश	शिव-स्वर	फलहीन	सभी काम वर्जित

पृथ्वीतत्त्व धीरे-धीरे स्वरोंके साथ बहनेवाला, भारी शब्द करनेवाला, कुछ गरम होता है। यह तत्त्व स्थिर कर्मों-जैसे लाभ—जमीन-जायदादका लेन-देन, भवन-निर्माण, कूपारम्भ, बगीचा लगाना आदि-आदिमें सिद्धिदायक होता है। जलतत्त्व स्वरोंके साथ तीव्र गतिसे नीचेकी ओर गतिमान होनेवाला तत्त्व है। इससे शीघ्र लाभवाले कार्य निस्संदेह सफल होते हैं। व्यापार-क्रय-विक्रय आदिमें यह तत्त्व विशेष सिद्धिदाता होता है। अग्नितत्त्व चक्रकी भाँति चलनेवाला अधिक गरम होता है। इस तत्त्वसे मिश्रित स्वर ऊपरकी ओर गतिमान होता है। इस तत्त्वके प्रवाहकालमें जुआ, चोरी, हत्या, झगड़ा आदि दुष्ट कार्य सिद्धि माने गये हैं। वायुतत्त्वसे मिला हुआ स्वर शीतोष्ण है। शीघ्रगामी तथा तिरछी चालवाला होता है। यह स्थायी कार्योंमें निषिद्ध माना गया है। शीघ्रताके कार्य इस तत्त्वका मिश्रित स्वर-प्रवाह सिद्धिदाता होता है। आकाशतत्त्व सभी तत्त्वोंसे मिश्रित होता है। यह कार्योंमें निष्फल होता है। पर योग-साधना या भगवद्भ लिये सर्वश्रेष्ठ माना गया है। आकाशतत्त्व शिवस्व अलावा चन्द्र और सूर्यस्वरमें भी मिश्रित होता है।

पृथ्वी और जलतत्त्वोंसे मिश्रित स्वर-प्रवाह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माने गये हैं। पृथ्वीतत्त्वका स्वर-प्रवाह कार्य-सिद्धिदायक होनेके साथ-साथ सब भोगोंके लिये उत्तम है। लाभ-सिद्धिके लिये जलतत्त्वयुक्त स्वर-प्रवाह सर्वश्रेष्ठ है। पूर्व और पश्चिम पृथ्वीतत्त्वके स्थान माने गये हैं। पृथ्वीतत्त्वके स्वर-प्रवाहमें पूर्व और पश्चिमकी यात्रा फलवती होती है। अग्नितत्त्व दक्षिणमें और वायुतत्त्वका स्थान उत्तरमें होता है; अतः इन तत्त्वोंके स्वर-प्रवाहकालमें इन दिशाओंकी यात्रा फलवती नहीं होती। आकाशतत्त्वका स्थान ऊपर और जलका स्थान निम्नस्थ धरातलमें माना गया है। अतः आकाशतत्त्वके स्वर-प्रवाहकालमें वायुयान-यात्रा निषिद्ध है। इसी प्रकार जलतत्त्वके स्वर-प्रवाहकालमें जल-यात्रा असिद्धिकारिणी होती है।

चन्द्रस्वरमें पृथ्वी तथा जलतत्त्वोंका प्रवाह सभी शान्ति तथा लाभसम्बन्धी कार्योंमें सर्वश्रेष्ठ है। इसी प्रकार सूर्य-स्वरमें अग्नितत्त्वका मिश्रण क्रूर कर्मोंमें वाञ्छित फलदाता माना गया है। दिनमें पृथ्वीतत्त्व मिश्रित स्वर-प्रवाह और रात्रिमें जलतत्त्व मिश्रित स्वर-प्रवाह लाभ-प्राप्तिका द्योतक है। दिनमें यदि अग्नितत्त्वयुक्त स्वर-प्रवाह होता रहे तो मृत्यु, वायुतत्त्वमिश्रित स्वर-प्रवाह होनेसे हानि तथा क्षय और आकाशतत्त्वमिश्रित स्वर-प्रवाह होते रहनेसे चित्तमें अशान्ति एवं अग्निदाह सर्वथा सम्भव है।

दक्षिण भारतकी तीर्थयात्रा

(लेखक—सेठ श्रीगोविन्ददासजी, श्रीमती रत्नकुमारी देवी, श्रीगोविन्दप्रसादजी श्रीवास्तव)

[गताङ्कसे आगे]

जिस समय श्रीयामुनाचार्य हुए, इस क्षेत्रपर पाण्ड्य वंशका राज्य था। पाण्ड्य राजाकी राजसभामें विद्याजनक कोलाहल नामक एक दिग्गज विद्वान् थे, जिन्होंने शास्त्रार्थमें दक्षिणके ही नहीं, वरं उत्तर भारतके भी अनेक प्रकाण्ड पण्डितोंको परास्त कर दिया था। यामुनाचार्य भाष्याचार्य नामक गुरुके यहाँ विद्याध्ययन करते थे। केवल बारह वर्षकी अवस्थामें यामुनाचार्य विद्याजनक कोलाहलसे शास्त्रार्थ करने पहुँचे। पाण्ड्यनरेश और उनकी रानीमें इस शास्त्रार्थपर एक विवाद छिड़ गया। राजाने कहा 'विद्याजनक कोलाहलकी विजय होगी' और रानीने कहा 'यामुनाचार्यकी।' राजाने यहाँ-तक कह डाला कि यदि यामुनाचार्य विजयी हुए तो वे उसे अपना आधा राज्य दे देंगे। विद्याजनक कोलाहल और यामुनाचार्यका बड़ा मनोरंजक शास्त्रार्थ हुआ।

एक बार शाही दरबारमें राजा एवं रानीमें यामुनाचार्यके सम्बन्धमें बहस छिड़ गयी। राजाने कहा कि जैसे बिल्ली चूहेको खा लेती है, उसी प्रकार कोलाहल इस लड़केको हरा देगा। रानीने कहा, 'जैसे आगकी एक चिनगारी रूईके पहाड़को राख कर देती है, उसी प्रकार यह छोटा-सा लड़का कोलाहलका सारा गर्व चूर कर देगा।' राजाने क्रुद्ध होकर कहा' 'इस अनजान लड़केमें अपनी आस्था सिद्ध करनेके लिये तुम क्या शर्त लगाओगी।' रानीने उत्तर दिया 'मैं आपके दासकी दासी हो जाऊँगी।' राजाने आश्चर्यपूर्वक कहा—'तुम मूर्ख औरत हो। तुमने बहुत भयानक प्रतिज्ञा की है। मैं भी वचन देता हूँ कि यदि इस लड़केने कोलाहलको हरा दिया तो मैं अपना आधा राजपाट उसे सौंप दूँगा।'

जब राजा और रानीमें यह बहस चल ही रही थी, तो अचानक यामुनाचार्य अपनी पालकीसे उतरे और नम्रतापूर्वक राजा, रानी और दरबारियोंको प्रणाम किया। तब विद्याजनक कोलाहलके सामने उन्होंने अपना स्थान ग्रहण किया। उनकी बहुत कम आयु देखकर कोलाहलने हँसी उड़ाते हुए रानीसे पूछा—'अला बण्डारा ?' (क्या यही वह लड़का है, जो मुझे जीतने आया है ?) रानीने उत्तर दिया—'अला बण्डार' (हाँ, यही आपको जीतने आया है)।

प्रारम्भमें कोलाहलने उससे व्याकरण और अमरकोष-जैसी पुस्तकोंके सम्बन्धमें कुछ साधारण प्रश्न पूछे। जब यामुनाचार्य इनके उत्तर बहुत आसानीसे देता गया, तो उसने कुछ कठिन प्रश्न पूछे। यामुनाचार्यने इनके उत्तर भी बड़ी सरलतासे दे दिये और कोलाहलसे कहा—'तुमने मुझे बालक देखकर अनजान समझा। महान् ऋषि अष्टावक्रने जनकके दरबारमें बन्दीको हराया था। क्या तब वह लड़का था या तुम्हारे-सदृश वृद्ध व्यक्ति था। क्या तुम एक व्यक्तिके ज्ञानका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पता उसके शरीरसे लगा सकते हो ? यदि ऐसा है तो एक विशालकाय साँड़ तुमसे अधिक विद्वान् होगा ।'

कोलाहल इस तीखी भाषाको सुनकर मन-ही-मन क्रुद्ध गया । उसने अपनी भावनाओंको संयत रखकर हँसते हुए कहा—'तुमने ठीक उत्तर दिये हैं । अब तुम प्रश्न पूछो और मैं उत्तर दूँगा ।' लड़केने कहा—'अब मैं तीन प्रस्ताव रक्खूँगा । यदि तुम उनमेंसे एकको भी गलत सिद्ध कर सके तो मैं तुम्हारे हाथों हार मान लूँगा ।' कोलाहलने चिल्लाकर कहा—'तुरंत पूछो, विलम्ब करनेसे कोई लाभ नहीं ।' लड़केने पूछा—'मेरा पहला प्रस्ताव यह है कि तुम्हारी माँ बाँझ नहीं थी । तुम इसे गलत सिद्ध करके दिखाओ ।'

कोलाहलने मन-ही-मन सोचा' 'यदि मेरी माँ बाँझ होती तो मेरा जन्म असम्भव हो जाता ।' इस प्रकार सोचते हुए कोलाहल किंकर्तव्यविमूढ़ होकर गूँगे व्यक्तिकी भाँति मौन रहा । सब दरबारी इसपर चकित हो गये ।

कोलाहलने अपनी आन्तरिक मनःस्थिति छिपानेका पूरा प्रयत्न किया; किंतु उसके गाल सूख गये और चेहरा मुरझा गया । कुछ क्षण बाद यामुनाचार्यने अपना दूसरा प्रश्न इन शब्दोंके साथ पूछा—'श्रीमन् ! आप अपनी सबको जीतनेवाली विद्वत्ताके साथ मेरी पहली प्रस्तावना भी नहीं झुठला सके ? मेरा दूसरा प्रस्ताव यह है कि 'पाण्ड्य-नरेश अत्यन्त न्यायी हैं' आप इसे गलत सिद्ध कीजिये ।'

इसपर कोलाहलको अँधेरा दिखायी देने लगा । उसका सारा विवेक समाप्त हो गया । जब नरेश उसके सामने बैठा है तो वह उसे अन्यायी कैसे कहे । वह इतना कृतघ्न कैसे हो सकता था कि राजाको अन्यायी बताये । वह समझ गया कि इस बालकसे उसे अवश्य नीचा देखना पड़ेगा । उसकी आकृति पीली पड़ गयी । वह अपना क्रोध नहीं छिपा सका । इसी समय यामुनाचार्यने तीसरा प्रश्न किया—'ओ विद्वानोंको आतंकित करनेवाले ! मेरी तीसरी प्रस्तावना यह है कि 'हमारे सामने बैठी महारानी सावित्रीके समान सती हैं । कृपया इसे गलत सिद्ध कीजिये ।'

क्रोध एवं लज्जासे भरकर कोलाहल अब फूट पड़ा । उसने कहा—'लड़के ! तुम्हारा सारा इरादा मेरा मुँह बंद करनेका है । कोई वफादार व्यक्ति कैसे अपने राजाको अन्यायी और रानीको सतीत्वरहित कह सकता है । मेरा मुँह अवश्य बंद हो गया है, किंतु इसका यह अर्थ नहीं कि मैं हार गया हूँ । अब तुम स्वयं अपनी इन कुटिल प्रस्तावनाओंको गलत सिद्ध करके दिखाओ । यदि तुम ऐसा न कर सके तो तुम्हें राजाके आदेशसे अपने प्राण खोने होंगे; क्योंकि तुमने राजा एवं रानीपर कीचड़ उछाला है ।' जब कोलाहल लाल आँखोंसे चिल्ला रहा था तो उसके पक्षपातियोंने 'शाबाश ! शाबाश !' के नारे लगाये; किंतु यामुनाचार्यके समर्थकोंने कहा—'कोलाहल पहले ही काफी पिट चुका है । उसने पहले यामुनाचार्यके सब प्रस्ताव गलत सिद्ध करनेका वचन दिया था किंतु अब वह क्रुद्ध हो रहा है ।' यामुनाचार्यने तब मुस्कराते हुए कहा—'मेरी आप सबसे प्रार्थना है कि आप शान्त हो जाइये । मैं तीनों प्रस्ताव एक-एक करके गलत सिद्ध करूँगा । कृपया मुझसे सुनिये ।'

जहाँतक पहले प्रस्तावका सम्बन्ध है । हमारे शास्त्रोंमें कहा है कि जिस औरतका एक ही पुत्र हो, वह बाँझ समझी जानी चाहिये । आपकी माताने केवल एक ही पुत्रको जन्म दिया है, चाहे वह आपके समान कितना ही गुणी क्यों न हो ? अतः शास्त्रोंके अनुसार आपकी माँ एक पुत्रकी माता होते हुए भी बाँझ है ।

दूसरी बात यह है कि कलियुगमें धर्मका एक पैर और अधर्मके तीन पैर होते हैं । हमारी पवित्र पुस्तकोंमें लिखा है कि जो राजा अपनी प्रजाकी हर तरहसे रक्षा करता है, उसे उसके (प्रजाके) धर्मका छठा हिस्सा और पापोंका छठा हिस्सा भी अपने ऊपर लेना पड़ता है । कलियुगमें अधार्मिकताकी प्रधानता रहती है । अतः राजा कितना भी योग्य क्यों न हो, कलियुगके कारण उसकी प्रजा अधार्मिक अवश्य होगी और उसे प्रजाके पापोंका छठा हिस्सा अपने ऊपर लेना पड़ेगा । इस प्रकार हमारी पवित्र पुस्तकोंके आधारपर राजा काफी सीमातक अन्यायके लिये उत्तरदायी है ।

अब मेरी तीसरी प्रस्तावना रह जाती है ।

मनुने कहा है कि राजामें अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र, यम, कुबेर, वरुण और इन्द्र सम्मिलित हैं । अतः रानीका विवाह न केवल एक व्यक्ति 'राजा' से हुआ है, वरं वह इन आठोंकी पत्नी भी बन जाती है । तब वह पूर्ण रूपसे सती कैसे कही जा सकती है ?

दरबारीगण तथा उपस्थित लोग यह शास्त्रार्थ सुनकर स्तम्भित रह गये । रानीने अत्यन्त प्रसन्न होकर बालकको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी गोदमें ले लिया । राजाने उसे आदरपूर्वक सम्बोधित करते हुए कहा—'आज तुमने अपनी विद्वत्ता और विवेकसे कोलाहलके गर्वको जीत लिया है । चढ़ते हुए सूर्यके सामने तारोंकी चमक लुप्त हो जाती है । मैं इस दम्भी व्यक्तिको तुम्हें समर्पित करता हूँ, जिसने कई विद्वानोंको पीड़ित किया है और जो कुछ समय पूर्व तुम्हें भी भारी दण्ड दिलाना चाहता था । तुम उससे जैसा व्यवहार करना चाहो, करो । इसके साथ तुम अपनी विजयके पुरस्कारस्वरूप आधा राज्य लेकर मुझे भी मेरी प्रतिज्ञासे मुक्त करो ।' यह कहकर राजाने रानीकी गोदसे इस बालकको ले लिया और इसे अपने साथ अपने सिंहासनपर बैठा दिया । लोगोंने इस विजयपर भारी करतल-ध्वनि की ।

यामुनाचार्यने विजयी होकर कोलाहलको क्षमा कर दिया । आधा राज्य पानेपर उसने बालक होते हुए भी पूर्ण योग्यतासे उसपर शासन किया । उसे केवल एक बालक समझकर पड़ोसी राजाओंने उसपर आक्रमण करनेकी योजना बनायी । गुप्तचरोंसे यह सूचना पाकर उसने पहले ही उनपर धावा बोल दिया । हार मानकर उन राजाओंने उसका सहायक तथा मित्र कहलानेमें ही सौभाग्य समझा ।

यामुनाचार्य पहले तो उस राजकाजमें लिप्त हो गये, परंतु उनके नाना नाथमुनिके एक शिष्यने राजकाज-लिप्सासे निवृत्त करा उन्हें श्रीरंगनाथजीके मन्दिरका मुख्य अधिष्ठाता बनाया । श्रीयामुनाचार्य पूरे सौ वर्षकी अवस्थातक जीवित रहे । जिस विशिष्टाद्वैत सिद्धान्तको आगे चलकर श्रीरामानुजाचार्यने अपने श्रीवैष्णव-सम्प्रदायका सिद्धान्त बनाया, उसपर पहले चार ग्रन्थ श्रीरामानुजाचार्यने लिखे हैं । इनके नाम हैं—स्तोत्ररत्न, सिद्धित्रय, आगम-प्रामाण्य और गीतारसासनग्रह । वृद्धावस्थामें श्रीयामुनाचार्यने रामानुजाचार्यको देखा और वे उनके प्रति अत्यधिक आकृष्ट हुए । यामुनाचार्यने अपने अन्तिम समयमें अपने शिष्य महापूर्णको कांचीपुरम्, रामानुजाचार्यको लेने तथा श्रीरंगनाथका मन्दिर उन्हें सौंपनेके लिये बुलवाया । परंतु यामुनाचार्यकी मृत्युके पूर्व रामानुजाचार्य श्रीरंगम् न पहुँच सके । जब रामानुज श्रीरंग पहुँचे, उस समय यामुनाचार्यका शव अन्तिम संस्कारके लिये ले जाया जा रहा था । रामानुजाचार्यने उस शवको देखा । शवके दाहिने हाथकी तीन अँगुलियाँ टेढ़ी थीं । रामानुजके यह पूछनेपर कि क्या यामुनाचार्यकी ये अँगुलियाँ ऐसी ही थीं और नकारात्मक उत्तर पानेपर रामानुजाचार्यने एकके बाद एक तीन प्रतिज्ञाएँ कीं । उनकी हर प्रतिज्ञापर शवकी एक-एक अँगुली सीधी होती गयी ।

श्रीरामानुजाचार्यका शेष जीवन इन्हीं प्रतिज्ञाओंके अनुसार चला । वे आगे चलकर श्रीरंगम् आये और अपने जीवनका वर्षोंका उत्तर भाग उन्होंने यहीं व्यतीत किया । श्रीरामानुजाचार्यके श्रीभाष्य, गीताभाष्य आदि प्रधान ग्रन्थोंकी श्रीरंगम्में ही रचना हुई । उत्तर भारतमें जो स्थान जगद्गुरु शंकराचार्यका है, दक्षिण भारतमें वही स्थान श्रीरामानुजाचार्यका है । यद्यपि दोनों ही दक्षिणके ही हैं । शंकर निर्गुण उपासनाप्रधान थे, यद्यपि उन्होंने भी अनेक मन्दिरोंकी स्थापना की है । उस निर्गुण उपासनामें रामानुज सगुण उपासनाकी सरसता लाये । उनकी उदारता इसीसे प्रकट हो जाती है कि उन्होंने अपना गुरु एक शूद्र कांचीपूर्णको बनाया । श्रीरंगम् क्षेत्र कांचीपुरम्के बाद उनके कार्यका प्रधान क्षेत्र रहा और भगवान् श्रीरंगनाथ भगवान् श्रीवरदराजके पश्चात् उनके प्रधान इष्ट ।

गीत

श्रीरङ्गजीकी स्तुति

पुण्य सलिल धारा कावेरी
घेरे दोनों भुजा प्रसार ।
रङ्गनाथका नगर मनोरम,
मन्दिरका अनुपम विस्तार ।
सप्त लोक सेवा समुपस्थित,
दृढ प्राचीर बने सुविशाल ।
चतुर्विंश गोपुर शोभित हैं,
नभको छूता जिनका भाल ।
शेष तल्प पर, योग-शयन-रत,
श्रीरङ्गम्का दर्शन ध्यान ।
नाभि कमलकी ब्राह्मी स्थिति तक,
खींच रहा मानवका मान ।
चरणोंमें श्री बिखरी पड़ती,
सहस फनोंके विषकी हार ।
पूर्ण पुरुषताकी परिभाषा,
तभी बनी, त्रिभुवन आधार ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीरंगम्‌में चौबीस घंटेके अपने प्रवासमें कावेरी-स्नान, श्रीमहालक्ष्मीजी, श्रीरामचन्द्रजी और श्रीवैकुण्ठनारायण आदिके दर्शन कर श्रीरंगनाथजीके दर्शन-परसनका पुण्यलाभ ले हमलोग सोलह सितम्बरके प्रातःकाल लगभग साढ़े नौ बजेकी ट्रेनसे त्रिचनापल्लीके लिये रवाना हुए। ट्रेन कुछ लेट थी, अतः श्रीरंगम्‌से कुछ देरसे निकली। श्रीरंगम्‌से त्रिचनापल्लीके रेल-मार्गकी दूरी केवल सात मील है। मीटर गेजकी रेल थी, बीचमें जहाँ-तहाँ ठहरती करीब आधा घंटे बाद हमें त्रिचनापल्ली ले गयी। हमारे साथ श्रीरंगम्‌के पण्डा श्रीकस्तूरी भी त्रिचनापल्ली आये थे। त्रिचनापल्लीसे हम करीब ११ बजे त्रिवेन्द्रम् फास्ट पैसेंजरसे त्रिवेन्द्रम्‌के लिये रवाना हुए। त्रिचनापल्लीसे त्रिवेन्द्रम् जानेवाली इस गाड़ीमें विशेष भीड़ नहीं थी। अतः गोविन्ददासको छोड़ शेष हमारे ग्यारह साथियोंके लिये त्रिचनापल्लीमें एक छोटा-सा थर्ड क्लास सुरक्षित करा दिया गया था।

(क्रमशः)

अकुतोभय

[कहानी]

(लेखक—श्री 'चक्र')

हिरण्यरोमा दैत्यपुत्र है, अतः कहना तो उसे दैत्य ही होगा। उसका पर्वताकार देह दैत्योंमें भी कमको प्राप्त है; किंतु स्वभावसे उसका वर्णन करना हो तो एक ही शब्द पर्याप्त है उसके वर्णनके लिये—'भोला!'

वह दैत्य है, अतः दैत्योंको जो जन्मजात सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, उसमें भी हैं। बहुत कम वह उनका उपयोग करता है। केवल तब जब उसे कहीं जानेकी इच्छा हो—गगनचर बन जाता है वह। अपना रूप भी वह परिवर्तित कर सकता है, जैसे यह बात उसे स्मरण ही न हो।

वह दैत्य है; किंतु दैत्योंका कोई अवगुण उसमें है तो यही कि उसे बहुत भोजन चाहिये। क्षुधा वह सहन नहीं कर पाता। भूखा होनेपर यह नहीं देखता कि भोज्य-पदार्थपर उसका स्वत्व भी है या नहीं। कोई डाँटे तो कहेगा—'आप क्यों अप्रसन्न होते हैं? मुझे जठराग्नि जला रही है, अतः उसे आहुति दे रहा हूँ।'

वह दैत्य है; किंतु न सुरापी है और न मांसाहारी। उसे अन्न और फल चाहिये और बहुत चाहिये। भूख लगनेपर भोजनको वह अपना स्वत्व मानता है और यह कोई कैसे कहेगा कि भोजनपर क्षुधातुरका स्वत्व नहीं है। कोई डाँट दे, पीट भी दे तो वह प्रतिकार करनेके स्थानपर चुपचाप आहारको उदरस्थ करनेमें लगा रहना अधिक अच्छा मानता है। बहुत हुआ तो दृष्टि उठाकर बड़े निरीह भावसे देख लेगा। उसके चित्त जैसे किसीके अपशब्दका प्रभाव नहीं पड़ता, उसकी पर्वताकार कायापर किसीका आघात भी कुछ जान नहीं पड़ता।

वह दैत्य है—है तो दैत्यपुत्र ही; किंतु किसीको उत्पीड़ित करना तो दूर, दूसरोंकी पीड़ा उससे देखी नहीं जाती। एक बार मर्त्यलोक गया था और वहाँ किसीको व्याधिग्रस्त देखकर क्रन्दन करता सीधे सुतल आया। भगवान् वामनके चरण उसने तब छोड़े, जब उस प्राणीके व्याधिमुक्त होनेका वचन उसे मिल गया।

'वत्स! तुम धरापर मत जाया करो!' वामनने उस दिन उसके लिये एक मर्यादा बनायी। सुतलमें तथा दूसरे दिव्य लोकोंमें तो आधि-व्याधि होती नहीं। वह घूम लिया करे तो कोई हानि नहीं थी।

'क्यों तात!' वह भगवान् वामनको पिता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानता है। उसके पिता उसी दिन, उसी क्षण मारे गये, जब वह उत्पन्न हुआ था। उन्होंने दैत्यराज बलिकी अवज्ञा करनेका दुःसाहस कर लिया और सुतलमें तो भगवान् नारायणका महाचक्र दैत्यराजके प्रतिपक्षीको एक क्षण भी जीवित रहने नहीं देता। माताने उससे कह दिया है कि दैत्यराजके द्वारपर गदापाणि उपस्थित रहनेवाले त्रिभुवनेश्वर ही उसके पिता हैं और उसने इसे सहज भावसे स्वीकार कर लिया है। उसे अटपटा लगा कि त्रिभुवनके स्वामी उसके ये पिता हैं तो वह त्रिलोकीमें कहीं भी क्यों नहीं जा सकता।

'धराके लोग अल्पकाय, अल्पप्राण हैं।' भगवान् वामनने उसे समझाया। 'उनका साहस भी अल्प है और संग्रह भी। तुम्हारे देहको देखकर वे भयभीत होंगे। तुम्हें वहाँ क्षुधा लग गयी तो उनमेंसे बहुत अधिक लोगोंका आहार तुम्हें आवश्यक होगा, वे भूखे रह जायँगे।'

'मैं वहाँ नहीं जाऊँगा।' उसे किसीको भी आतंकित करना प्रिय नहीं है। कोई उसके कारण भूखा रह जाय, यह तो बहुत बुरी बात होगी। उसे भूखका अनुभव है और किसीको भी भूख लगनेपर आहार न मिले, यह वह सोचना भी नहीं चाहेगा।

सुतलमें जो ऐश्वर्य है, स्वर्गके देवता उसकी केवल स्पृहा कर सकते हैं। इच्छा करते ही पदार्थ उपस्थित होता है वहाँ और देवताओंके समान दैत्य घ्राणग्राही नहीं हैं। उनके उपभोगमें धराकी स्थूलता भले न हो, देवों-जैसी सूक्ष्मता भी नहीं है। लेकिन वह तो इच्छा भी नहीं करता। आहार दीखनेपर उसे क्षुधा लगती है और तब यह देखनेकी क्या आवश्यकता है कि वह किसके लिये प्रस्तुत हुआ है।

जहाँ पदार्थ-बाहुल्य होता है, स्वत्वका प्रश्न प्रायः विवाद नहीं खड़ा करता। वह अन्न और फल ही तो खाता है। उसके आहारको लेकर किसीमें वहाँ ईर्ष्या नहीं जागती। कहीं वह भोजन करने बैठ जाय, दूसरा हँसकर उसको भोजन कराना अपने विनोदका साधन बना लेता है। असुविधा तब होती है, जब वह कहीं भी पड़कर खर्राटे लेने लगता है। किसीका घर, किसीका अन्तःपुर, किसीकी शय्या हो—निद्रा आने लगे तो वह उसे अपनी ही शय्या समझ लेता है।

'अरे उठो!' उस दिन वह दैत्यराजके पुत्र बाणासुरके अन्तःपुरमें उनकी शय्यापर सो गया था। बाणपत्नीने उसे जगाना आवश्यक माना; क्योंकि उनके पतिदेवके आनेका समय हो गया था।

'माँ! सोने दे मुझे।' उसने करवट बदल ली।

'मैं तुम्हारी माँ नहीं भाभी हूँ।' बाणपत्नीको क्रोध नहीं आया। वे हँसीं। उन्हें पता है कि हिरण्यरोमा प्रत्येक स्त्रीको माँ कह लेता है। उसे तो सम्बन्ध समझाना पड़ता है।

'तो क्या हुआ? भाभी माँ!' वह बहुत हिलाने-डुलानेपर उठकर बैठा भी तो फिर लेटते हुए बोला—'मुझे निद्रा आ रही है।'

'अपने घर जाकर सोओ! तुम्हारे भाई आनेवाले हैं।' बाणपत्नीने उसके मुखपर पानीके छींटे दिये—'अब तुम विवाह कर लो!'

'विवाह? क्यों?' बस, वह विवाहके नामसे ही झल्लाता है—'तुम कर लो विवाह!'

'मैंने तो तुम्हारे भाईसे विवाह कर लिया है!' बाणपत्नी हँस रही थीं।

'तब हो तो गया, अब क्या पूरा संसार विवाह ही करेगा।' वह उठ खड़ा हुआ—'एक काम था, किसीने कर लिया; हो गया। मैं कहूँगा कि मुझे लोग सोने भी नहीं देते।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'तुम्हें कौन सोने नहीं देता ?' बाणने अन्तःपुरमें प्रवेश करते हुए पूछा।

'माँ नहीं सोने देती।' हिरण्यरोमा अब भी निद्रालस स्वरमें बोल रहा था। 'सो जाओ !' बाणने अनुमति दे दी। पत्नीसे वे बोले—'इनके भोजन-शयनमें व्याघात मत बना करो। तुम जानती तो हो कि केवल ये हैं जो दैत्येश्वरके सिंहासनपर भी इसी प्रकार सो सकते हैं।'

'शान्तं पापम्।' पत्नीने पतिके मुखपर हाथ रख दिया। 'दैत्येश्वरका अपमान करनेवालेके साथ वह श्रीहरिका ज्योतिर्मय चक्र क्या करता है, जानते तो हो।'

'मैं भला क्यों पिताजीका अपमान करूँगा।' बाण खुलकर हँसा। 'सचमुच यह हिरण्यरोमा एक दिन सो गया था सिंहासनपर। मुझे भी तुम्हारे समान ही आशंका हुई थी। पता नहीं क्यों, यह मुझे बहुत प्रिय है।'

'वत्स ! वह भगवान् वामनका बहुत स्नेहभाजन शिशु है।' माता पार्वतीने पूछनेपर मुझे समझाया था—'उसके मनमें निखिल लोक उसके पिताके—श्रीहरिके हैं। सत्य ही तो है उसकी भावना। वह कहीं सोता है, कहीं आहार करता है तो अपने पिताकी शय्या और सामग्रीका ही उपयोग करता है। उसकी किसी क्रियासे किसीका कोई अपमान नहीं होता।'

'ये मुझे भी माँ कहते हैं।' सलज्जभावसे बाण-पत्नीने कहा।

'मेरा छोटा भाई ही तो है।' बाणने हँसकर कह दिया। 'वह तो तुम्हारी कन्याको भी देखेगा तो माँ ! कहकर ही पुकारेगा। ऊषा बहुत चिढ़ती है; किंतु इसको तो प्रत्येक बार समझाना पड़ता है कि वह इसकी भ्रातृ-पुत्री है।'

× × ×

'तुमलोग इस प्रकार क्यों भागते हो ? मैं थोड़े फल खाऊँगा।' वह हिरण्यरोमा एक दिन घूमता हुआ अमरोद्यान नन्दन-कानन जा पहुँचा। उसके अकल्पित विराट वपुको देखकर रक्षक क्रन्दन करते भागे तो उसे आश्चर्य हुआ। उसने उन्हें आश्वासन देनेका यत्न किया।

'कोई दैत्य अमरावतीमें आ गया है !' रक्षकोंको कहाँ धैर्य था, प्राणीका अपना भय ही तो उसे आतंकित करता है। निर्विष सर्पको भी देखकर अधिकांश मनुष्यों-के प्राण सूख जाते हैं। हिरण्यरोमा दैत्य था—दैत्य देवताओंके सहज शत्रु और जो एकाकी शत्रुपुरीमें शस्त्रहीन चला आया है, वह सामान्य शक्तिशाली कैसे हो सकता है। उद्यान-रक्षकोंने सुधर्मा सभामें पहुँचकर देवराजसे पुकार की—'वृत्रसे किञ्चित् ही अल्पकाय है वह ! कौन जाने, अपनी कायाका विस्तार वह अब करने लगा हो। नन्दन-काननके समस्त फल अवश्य उसके उदरमें आ जायँगे !'

'कौन है वह ?' देवराजने देखा कि सुरोंके सेनापति इस समय सुधर्मा सभामें नहीं हैं। उन शिव-सुतकी संरक्षा देवताओंको प्राप्त है, इतनी ही कृपा उनकी। अन्यथा कार्तिकेय कोई देवेन्द्रके आज्ञानुवर्ती तो हैं नहीं कि मल्लिकार्जुन जानेके लिये शक्रको सूचना देना आवश्यक मानें।

'हम केवल धराके लोगोंको प्रभावित करते हैं !' सुरेन्द्रकी दृष्टि ग्रहगणोंकी ओर गयी तो उनमें भौमने सूचित कर दिया—'दैत्य देवताओंके अग्रज हैं। यदि वे कभी आतिथ्य-ग्रहण करने आ ही जायँ, उनसे युद्ध करना तो आवश्यक नहीं होना चाहिये।'

युद्ध-प्रिय मङ्गलका यह दृष्टिकोण अकारण नहीं था। जो योधा है, वही बलाबलका ठीक विचार भी कर सकता है। वृत्रके साथ संग्राममें सुर अपने समस्त शस्त्र खो चुके थे। वृत्रने शान्तभावसे उन्हें उदरस्थ कर लिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था । यह दैत्य भी एकाकी आया है और क्षुधित है । नन्दन-काननसे आहार ही प्रारम्भ किया है इसने । शान्त भी है और निर्भय भी । पता नहीं किस तपः-प्रभावसे वह इतना साहस कर सका है ।

'आप उसे देख लें !' इन्द्र स्वयं भी आशंकित हैं । वज्र लेकर उठ दौड़नेका साहस वे अपनेमें भी नहीं पाते हैं । किञ्चित् अवकाश चाहिये उन्हें । देवगुरुतक जानेका अवसर मिल जाय तो जैसी गुरुदेव अनुमति देंगे, वैसा करना है; किंतु दैत्य नन्दनवनमें आ गया है । वह किसी क्षण आ सकता है यहाँ । देवराजको आशा है कि दण्डधर यम उसे कुछ काल तो रोक ही सकते हैं ।

'दैत्यराज बलि मेरे आराध्यके अनुग्रह-भाजन हैं ।' महाभागवत यमराजने उठते हुए सूचित किया । 'यदि ये महानुभाव उनके स्नेहपात्र हैं तो मुझे इनका स्वागत करके प्रसन्नता होगी !'

'संयमनीके शास्ता किसका स्वागत करना चाहते हैं ?' सहसा देवर्षि नारद पधारे । समस्त सुर उनके स्वागतमें उठ खड़े हुए ।

'भगवन् ! कोई दैत्य आ गया है आज अमरपुरमें ।' शक्रने ही सूचना दी । 'हम नहीं जानते, वह किस शक्तिसे अकुतोभय है ? हमें क्या करना चाहिये ?'

'ओह ! तो सुरपति हिरण्यरोमासे आतंकित हैं !' देवर्षि खुलकर हँसे । 'सावधानी अवश्य अपेक्षित है; क्योंकि भगवान् उपेन्द्रका पुत्र है वह, और कोई उसका अहित करने उठे तो वे भक्तवत्सल भूल जा सकते हैं कि देवमाता अदितिके कारण सहस्राक्ष उनके अग्रज होते हैं ।'

'उपेन्द्र-पुत्र !' इन्द्रको आश्चर्य होना स्वाभाविक था । ऐसा कौन-सा पुत्र उपेन्द्रका है, जिसे स्वयं देवराज जानते नहीं हैं । 'वह तो दैत्य है ।'

'दैत्य तो प्रह्लाद भी थे ।' देवर्षिने व्यंगके स्वरमें कहा । 'उन अजन्माको देवमाता अपना पुत्र कह सकती हैं, देवराज अपना अनुज कह सकते हैं; किंतु कोई दैत्य उन्हें अपना पिता नहीं कह सकता ?'

'वे महानुभाव कौन हैं ?' इन्द्रने इस बार सीधे ही पूछा ।

'हिरण्यरोमा दैत्य-पुत्र ही है; किंतु भगवान् उपेन्द्र भावगम्य हैं । वह उन्हें पिता कहता है तो वे उसके पिता हैं, इतनी बात सुरपति समझ सकते हैं ।' देवर्षिने समझाया । 'जब देवशक्ति उसका परिचय जाननेमें असमर्थ है, जब देवेन्द्रका व्यापक बोध उसका तेज समझ नहीं पाता, इतना तो सिद्ध है कि वह पुरुषोत्तम-का पदाश्रित है ।'

इन्द्रको लगा कि उनसे प्रमाद हुआ है । देवता—स्वयं देवेश भी जिसके सम्बन्धमें अधिक नहीं जान पाते, उसकी अगम्यता तो भगवान्की कृपा ही सूचित करती है । अन्यथा पृथ्वीपर, अधोलोकोंमें जो प्राणी हैं, उनके अन्तः-बाह्यके साक्षी तो देवता ही हैं । नम्रता-पूर्वक इन्द्रने जानना चाहा—'हमारा कर्तव्य ?'

'कुछ नहीं ।' देवर्षिने आशंका दूर की । 'हिरण्य-रोमासे किसीको कोई भय नहीं है । अवश्य ही उसको क्षति पहुँचानेकी इच्छा करनेवालेको भय है और वह तो अच्युतकी कौमोदकीसे भय है । हिरण्यरोमा तो आया है दैत्योंकी आदि मातृष्वसाकी पद-वन्दना करने । देवमाताकी वन्दना करके उसे चले जाना है । बहुत हुआ तो कुछ फल खायेगा और देवधानीमें कहीं भी एक नींद ले लेगा ।'

'वे देवधानीमें हम सबके उपस्थित रहते सो सकेंगे ?' इन्द्रका प्रश्न उचित है । देवराज जब दैत्यधानीमें नहीं सो सकते, हिरण्यरोमाके रहते देवधानीमें निश्चिन्त नहीं हो सकते, एक दैत्यको शत्रुओंके मध्य निद्रा कैसे आयेगी ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'उसे किसका भय है ।' देवर्षि खुलकर हँसे । 'वह देवेन्द्रके सदनमें या इस देवसभामें निद्रा लेने लगे तो किसीको व्याघात डालनेका साहस नहीं करना चाहिये । समस्त लोक उसके पिताके, और अपने पिताके घरमें उसे निद्रा क्यों नहीं आयेगी ? लेकिन देवराज ! पिताके घरमें पुत्रकी निद्रामें बाधा देनेवाला क्षमा नहीं किया जाता । वह तो सो सकता है यमराजके किसी नरकमें भी ।'

'प्रभो ! मुझपर तो कृपा ही रहे ।' धर्मराजने आतुरतापूर्वक हाथ जोड़े । देवर्षि बड़े विनोदी हैं। कहीं इन्होंने उन महानुभावको उभाड़ दिया किसी दिन नरकमें निद्रा लेनेके लिये तो नरक सदाको ही नष्ट हुए धरे हैं ।

'भय होता है प्राणीको तब जब वह नारायणसे विमुख होता है ।' देवर्षि जानेको उद्यत होकर बोले— 'श्रीहरिके पदाश्रित ही अकुतोभय होते हैं । देवाधीशको यह बात स्मरण रखनी चाहिये !'

संकल्पका सुन्दरतम स्वरूप

(लेखक-पं० श्रीसत्यपालजी शर्मा, वेदशिरोमणि, एम्० ए०)

यथा सूर्यो मुच्यते तमसस्परि
रात्रिं जहात्युषसश्च केतून् ।
एवाहं सर्वं दुर्भूतं कर्त्रं कृत्याकृता
कृतं हस्तीव रजो दुरितं जहामि ॥
(अथर्व० १० । १ । ३२)

पाप और पुण्य—ये दोनों शब्द मेरे कानोंके लिये चिरपरिचित हैं । अनेक बार कइयोंके मुखसे इन्हें सुन चुका हूँ । मैं यह भी जानता हूँ कि मुझे पाप नहीं करना चाहिये और सदा पुण्य ही करते रहना चाहिये । पापसे नरक और पुण्यसे स्वर्ग मिलता है । पर पापकी उत्पत्तिका कारण क्या है ? उसका मूल उद्गम क्या है ? उससे मैं कैसे छूट सकता हूँ ? इतना तो मैं जानता हूँ कि एक बार पाप कर लेनेपर—केवल मनमें ले आनेपर ही—मैं दण्डनीय बन जाता हूँ और फिर उस दण्डसे मुझे कोई नहीं बचा सकता, चाहे वह शास्त्रज्ञ पण्डित हो या पुजारी या पादरी । और मैं यह भी जानता हूँ कि पाप क्षमा करवानेके बहाने ये लोग जो कुछ करते हैं वह स्वयं पाप है, क्योंकि वे तो भोले व्यक्तियोंको लोभ देकर उनसे अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं और अपनी उदरपूर्तिके लिये दूसरोंको धोखा देते हैं । परमात्मा दयालु तो है पर उसकी दयालुताका यह अर्थ नहीं है कि वह पापोंको क्षमा कर देता है । अपने बच्चेको कुमार्गसे न हटानेवाली, और उसे दण्ड देकर सीधे रास्तेपर न लाकर लाड़-प्यार ही करते रहनेवाली माँ वर्तमानमें और प्रत्यक्ष भले ही दयालु प्रतीत होती हो, पर वास्तवमें वह उसकी दया नहीं है; क्योंकि इससे भविष्यमें उस बच्चेका सारा जीवन ही खराब हो जाता है । परमात्मा ऐसा अबोध और अज्ञानी दयालु नहीं है । वह उस माँकी तरह है जो खराब काम करनेपर अपने बच्चेको दण्डित भी करती चली जाती है और मन-ही-मन रोती भी चली जाती है । तो फिर मैं इस पापपुञ्जसे कैसे छूटूँ ? क्या कभी छूट भी सकता हूँ ?

वेदमाता कहती है—तुम छूट तो सकते हो, पर इसके लिये तुम्हें कुछ बनना पड़ेगा, कुछ करना पड़ेगा। देखो मैं तुम्हें एक उदाहरण देती हूँ । तुमने सूर्यको देखा है ? सूर्य निकलनेसे पूर्व कितना अन्धकार होता है, ऐसा अँधेरा कि हाथको हाथ न सूझे । यदि प्रकाशका कोई साधन न हो तो अच्छे और बुरे सब एक-सी शक्लके दिखायी देते हैं, विवेचना-शक्ति समाप्त हो जाती है । पर, सूर्य इस अन्धकारसे मुक्त हो जाता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, तेजस्वी बनकर चमकने लगता है। यही 'अन्धकार' या 'तमस्' है पापोंका उद्गम, कारण। तमस् क्या है?—बताओ तो सही अन्धकार क्या है? अन्धकार है प्रकाशका अभाव। जहाँ सूर्यका प्रकाश नहीं होता वहाँ तमस् छा जाता है। जैसे ब्रह्माण्डमें अन्धकार सूर्य-प्रकाशका अभाव रूप है, वैसे ही मनुष्यमें एक प्रकारका जो अन्धकार छाया हुआ है वह भी सूर्यके अभावसे ही है। 'सूर्य' के प्रकाशका अभाव ही 'तमस्' है। 'सूर्य' का अर्थ है वह सत्ता जिससे मनुष्यके अभाव दूर हों। परमात्माकी स्तुति, प्रार्थना, उपासना, उस परम शक्तिमें अटल विश्वास और श्रद्धा जबतक मनमें रहती है, समझो सूर्यका प्रकाश होता रहता है और जब परमात्माके अस्तित्वके ही बारेमें संदेह पैदा हो जाय, उसमें कोई श्रद्धा, भक्ति या विश्वास न हो तो उस मनमें पूर्ण 'तमस्' छा जाता है। तब परमात्माके अस्तित्वका अभाव ही तो 'तमस्' हुआ न? जहाँ उसका अस्तित्व नहीं है वहाँ और भी बहुत-से तत्त्वोंका अभाव स्वयमेव हो जाता है। इस तमस्के प्रावरणमें अच्छा-बुरा सभी एक-सा दिखायी देता है और यही अभाव या तमस् है जो पापोंको जन्म देता है। सभी मनोवैज्ञानिक इस बातको जानते और कहते हैं कि जिस मनुष्यमें शक्ति जितनी ही कम होगी, वह उतना ही क्रोधी होगा। तो क्रोध है परिणाम शक्तिके अभावका। जिसमें वीर्य-शक्ति जितनी ही कम होगी, उसमें कामकी उतनी ही प्रबलता होगी—काम है परिणाम वीर्यशक्तिके अभाव-का। संतोष जिसमें जितना ही कम होगा उसमें लोभ उतना ही अधिक होगा—तो लोभ हुआ परिणाम संतोषके अभावका। इस प्रकार ज्ञानका अभाव, शान्तिका अभाव, वीर्य-शक्तिका अभाव, संतोषका अभाव, शुद्ध शक्तिका अभाव, स्नेहका अभाव, दयाका अभाव, रसका अभाव, जीवन और स्फूर्तिका अभाव, धैर्यका अभाव, स्मृतिका अभाव, आदि जितने भी अभाव हैं—वे ही पापके बीज हैं। तो—

यथा सूर्यो मुच्यते तमसस्परि।

जिस प्रकार सूर्य अन्धकार—अभावसे ऊपर उठ जाता है—मुक्त हो जाता है, हमें भी इन सभी अभावोंसे ऊपर उठना होगा।

पापका दूसरा उद्गम है—रात्रि। रात्रिमें हम बड़े आनन्दसे सोते हैं। सारी इन्द्रियाँ सुषुप्तिके आनन्दमें इतनी मग्न हो जाती हैं कि उनको बाह्य संसारका कुछ भी ज्ञान नहीं रहता और जब हम सोकर उठते हैं तो हमारा मन कहता है—और हम भी कहते हैं दूसरोंसे—कि आज तो बड़ी अच्छी नींद आयी, बड़ा आनन्द आया। पर जरा इस आनन्दका विश्लेषण तो कीजिये। 'सुषुप्ति' और 'समाधि'के आनन्दका स्वरूप एक-सा होनेपर भी जमीन-आसमानका अन्तर है। सुषुप्ति समाधि नहीं हो सकती और समाधि सुषुप्ति नहीं हो सकती। क्या अन्तर है दोनोंमें? सुषुप्ति है तमो-जनित और समाधि है सत्त्वजनित। तमस्में घोर अज्ञान है, सत्त्वमें है पूर्ण बोध—पूर्ण जागरण। तमस्में है अचेतनता—अबोधता—निष्क्रियता। सत्त्वमें है चेतनता—बोध और सक्रियता। सुषुप्तिका तमोजनित आनन्द अचेतनता, अबोधता और निष्क्रियताका आनन्द है। समाधिका सत्त्वजनित आनन्द चेतनता, पूर्ण बोध, सक्रियता और जागरूकताका आनन्द है। सुषुप्तिका आनन्द अभावात्मक है, समाधिका आनन्द भावात्मक है। रात्रिमें सुषुप्तिका आनन्द ही अनुभव होता है, समाधिका आनन्द नहीं। दूसरे शब्दोंमें दार्शनिक परिभाषाके अनुसार वे सभी तामसिक चीजें रात्रि हैं जो मनुष्यकी चेतनता, बोध और सक्रियताको पूर्ण निश्चेष्ट बनाकर उसे आनन्द प्रदान करती हैं। काम-शक्तिका आनन्द, मद्यपानका आनन्द, जुआ खेलनेका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आनन्द, आलस्य और प्रमादजनित भी आनन्द हैं। इन आनन्दोंको देनेवाली सभी चीजें 'रात्रि' हैं। यह 'रात्रि' भी पापका उद्गम है। रात्रिने उस सूर्यको आनन्दमें मग्न रहकर मौज लेनेका निमन्त्रण दिया, पर सूर्यने उस स्नेह-भरे निशा-निमन्त्रणको भी अस्वीकार कर दिया।

रात्रिं जहाति।

उसने 'रात्रि' को भी ऐसे ही पीछे छोड़ दिया जैसे महर्षिने अपने आनन्दपूर्ण घरको, बुद्धने यशोधराको, जिस प्रकार कि तेजोमय व्यक्ति, जिसका लक्ष्य ही 'अपवर्ग' है, 'अत्यन्त पुरुषार्थ' के देवयान मार्गपर बढ़नेके लिये गृहस्थाश्रमको छोड़कर संन्यास ग्रहण कर लेता है। पापके एक और पाशसे उसने अपनेको मुक्त कर लिया।

पापका तीसरा उद्गम है—'आकर्षण'। आकर्षण 'मृगमरीचिका' है और मनुष्यकी 'इच्छा' उसमें तृप्ति प्राप्त करनेकी भ्रान्तिमें पड़ा हुआ 'मृग'। रात्रिकी समाप्तिपर उषा आयी। उसने अपने सौन्दर्यकी झलक दिखाकर सूर्यको अपने मोहमें बाँध लेनेका प्रयत्न किया। ऐसे ही दुनियाकी चमक भी मनुष्यको अपनी ओर आकर्षित करके उसे सत्यसे परे रखती है। उसे उसके वास्तविक मार्गसे विचलित कर देती है।

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।

सत्यके मुँहपर चढ़ा हुआ यह आवरण—हिरण्मय है—चमचमा रहा है। यही आकर्षण और ऊपरी आडम्बरका मोह न जाने मनुष्यसे कितने पापकर्म करवाता है। इन्हीं आकर्षणोंको 'एषणा' के नामसे पुकारा जाता है। संन्यासी बनते समय मनुष्य इन्हीं सब एषणाओंको छोड़नेकी प्रतिज्ञा करता है। वह संसारके इन सभी आकर्षणोंसे उसी तरह ऊपर आ जाता है जैसे कि सूर्य—

उषसश्च केतून्।

उषाकी चमक और आसमानके सौन्दर्यके मोहमें न पड़कर उससे भी ऊपर उठ जाता है और फिर आकाशमें ऐसा सूर्य चमकता है कि कोई उसकी ओर दृष्टि भी नहीं उठा सकता।

इस प्रकार सूर्यके समान ही तुम्हें भी अभावोंसे, अचेतन अनित्य आनन्दोंसे, आकर्षणोंसे ऊपर उठना होगा। तब तुम पापोंसे सर्वथा बचे रहोगे।

पर ऐसा करनेके लिये मानसिक शक्ति चाहिये, सामर्थ्य चाहिये। आत्मा और मनमें जबतक इस तरहकी शक्ति और सामर्थ्य नहीं आयगी, ऐसा नहीं कर सकोगे। यह सामर्थ्य आती है 'कल्प' से—संस्कारों और यज्ञोंसे। 'कल्प'का ही एक और रूप है 'संकल्प'। 'कल्प' क्रियात्मक है और क्रियाजन्य भाव आत्मा और मनमें सामर्थ्य पैदा करते हैं। 'संकल्प' शक्ति है। यह मनकी शक्ति है, भावात्मक। यह संकल्प-साधन जिसके पास है वह मनसा कभी भी दुर्बल नहीं हो सकता। तो तुम भी संकल्प करो और प्रतिदिन अपने मनमें इस बातकी घोषणा किया करो कि—

जहामि।

मैं भी छोड़ रहा हूँ। छोड़ूँगा—नहीं, भविष्यत्की बातें न करो, 'कल' पता नहीं आये, न आये। इसलिये वर्तमानकी भाषामें घोषणा करो। 'संकल्प' के साथ तुम्हें यह भी ध्यान होना चाहिये कि तुम छोड़ने क्या जा रहे हो ? कहीं ऐसा न हो कि घरसे कूड़ा-कचरा निकालते हुए बहुमूल्य पदार्थोंको भी कूड़ा समझकर निकाल दो।

एवाहं सर्वं दुर्भूतम् (जहामि)।

मैं सारी दुर्भावनाएँ छोड़े दे रहा हूँ। मैं व्यक्तिसे घृणा क्यों करूँ ? व्यक्तिसे मुझे द्वेष क्यों हो ? क्यों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसीके प्रति कोई दुराशय या दुर्भावना रक्खूँ । इसमें उस व्यक्तिका तो कुछ नहीं बिगड़ेगा, मन तो मेरा खराब होगा न ? नहीं—मैं अब यह सब छोड़ दे रहा हूँ—'भावना मिट जाय मनसे पाप-अत्याचारकी ।'

कर्त्रं (जहामि) ।

ऐसी सभी चीजोंको छोड़ दे रहा हूँ जो मेरा सम्बन्ध मानवसे, पशु-पक्षीसे, परमशक्तिसे काट देनेवाली हैं । मैं ऐसी सभी चीजोंको छोड़ रहा हूँ जो मुझे पाप-पङ्कमें लपेट देनेवाली हैं, मुझे अन्धा बना देनेवाली हैं । ऐसी सङ्गतियों, ऐसी संस्थाओं, ऐसे समाज-समुदायों, ऐसी परिस्थितियों और बातोंसे दूर और उदासीन रह रहा हूँ ।

कृत्याकृता कृतं (जहामि) ।

ऐसे सभी कर्म जो मेरी दूषित भावनाओं या दूषित मन और इन्द्रियोंसे उत्पन्न हों, छोड़ दे रहा हूँ ।

हस्तीव रजो दुरितं जहामि ।

जिस प्रकार हाथी अपने शरीरपर धूलका एक कण नहीं बैठने देता, उसी प्रकार मैं भी अपने मन, बुद्धि, चित्त या इन्द्रियोंमें 'दुर्+इतं' दुष्ट तत्त्वों, भावनाओं या वासनाओंका एक भी कण किसी भी क्षण बैठने नहीं देता हूँ । हाथी और भैंसमें यही तो फर्क है । भैंस कीचड़, धूल और दलदलसे प्रेम करती है । उसको उसीमें आनन्द आता है जैसे कि सामान्य मनुष्योंको वासनाओं, अन्य अभावों या आकर्षणोंमें आनन्द आता है । मैं भैंस क्यों बनूँ ? हाथी क्यों न बनूँ ?

तो यह है संकल्पका सुन्दरतम स्वरूप । यही संकल्प मुझे पापोंसे दूर रखेगा—यही संकल्प मुझे पाप-पङ्कमें फँसने नहीं देगा—यही संकल्प मुझमें इतनी शक्ति और सामर्थ्य पैदा कर देगा कि मैं सूर्य बनूँ—सूर्यके समान ऊपर-ही-ऊपर चढ़ता चला जाऊँ । मैं कैसा अबोध था । तमस्—अभाव—शून्य अभीतक मुझे दबाये हुए था । 'शून्य' ने 'सत्ता' को कैदमें कर रक्खा था । नहीं, अब मैं 'शून्य'की कैदसे मुक्त हो जाऊँगा ।

भ्रातृत्वका अवतार

(रचयिता—लाला श्रीजगदलपुरीजी)

वैरको निर्बल प्रमाणित कर दिया,
छद्मको निष्फल प्रमाणित कर दिया,
भरतने भ्रातृत्वको संसारमें;
मेरु-सा निश्चल प्रमाणित कर दिया ।

है नहीं स्वीकार ऐसा धन मुझे,
है नहीं स्वीकार ऐसा तन मुझे,
भरतके भ्रातृत्वने रोकर कहा;
है नहीं स्वीकार सिंहासन मुझे ।

हृदयका विस्तार देखा विश्वने,
स्नेहका संचार देखा विश्वने,
भरतके तनमें सहज भ्रातृत्वका;
प्राण-प्रिय अवतार देखा विश्वने ।

स्वार्थने देखा कि वह निरुपाय है,
कपटने देखा कि वह असहाय है,
क्योंकि जिसका तिलक मनमें हो चुका;
वह भरत भ्रातृत्वका पर्याय है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विलक्षण भाव-जगत्

(हनुमानप्रसाद पोद्दारके एक प्रवचनके आधारपर)

विषयी और साधकका जगत् अलग-अलग होता है। विषयी और साधकके पथ और लक्ष्य दोनोंमें ही बड़ी विभिन्नता है। विषयीका रुख संसारकी ओर होता है और साधकका रुख भगवान्की ओर।

शुद्ध विषयी भी भगवान्को भजते हैं। पर वे भजते हैं विषयकी कामनाको लेकर। इच्छित विषयको पानेके लिये वे सकाम भावनासे भगवान्की आराधना करते हैं। उनकी उस आराधनामें प्रेरणा है विषय-प्राप्तिकी और उसका फल भी संसारके विषय ही होते हैं। भगवान् विषयीकी कामनाको भी पूरा करते हैं और आगे चलकर उसकी सकामताको हर भी लेते हैं। अतः किसी प्रकारसे भी भगवान्से संयोग होना—भगवान्की आराधनामें लगना तो अच्छा ही है; क्योंकि वह आराधना भी अन्तमें भगवत्प्राप्तिकी हेतु बन सकती है—**'मद्भक्ता यान्ति मामपि।'**

पर विषयी व्यक्ति साधक नहीं होता। विषयीकी चाहसे साधककी चाह सर्वथा विपरीत होती है। विषयीको सम्मान-धन प्रिय लगते हैं और वह उनकी कामना करता है, साधकको सम्मान-धन बुरे लगते हैं और वह उनका विषवत् त्याग करना चाहता है। विषयी जो चाहता है, उसीका साधक त्याग करता है। विषयी चाहता है विषय-सुख और साधक इसीसे दूर भागता है। अभिप्राय यह कि संसारके द्वन्द्वोंमें विषयी प्रिय मानकर जिसे चाहता है, उसीका साधक अप्रिय अनुभव करके त्याग करता है।

भगवान्को लोग अपनी-अपनी आँखोंसे देखते हैं। देखनेकी सबकी दृष्टि अपनी-अपनी है। श्रीकृष्णको कंसकी सभामें सबने अपनी-अपनी विभिन्न दृष्टिसे देखा। वे मल्लोंको वज्रके रूपमें, साधारण मनुष्योंको नरश्रेष्ठ, रमणियोंको मूर्तिमान् मदन, गोपोंको स्वजन, असतोंको दण्डदाता, वसुदेव-देवकीको बच्चे, कंसको साक्षात् मृत्यु, विद्वानोंको विराट्, योगियोंको परतत्त्व और वृष्णियोंको परमदेवताके रूपमें दिखायी दिये। इसी तरह विषयी और साधकको भगवान् अलग-अलग दिखलायी देते हैं। विषयीके लिये भगवान् साधन हैं और साधकके लिये भगवान् साध्य है। कामी भगवान्से सुख लेना चाहता है और प्रेमी भगवान्को सुख देना चाहता है।

साधकोंकी दो श्रेणियाँ हैं, इनके दो प्रधान भेद हैं। एक मुक्तिकामी और दूसरे प्रेमी। एकमें अहंके मङ्गलकी कामना है और दूसरेमें अहंकी सर्वथा विस्मृति है।

मुक्तिका अर्थ है—छुटकारा। बन्धनके अभावमें छुटकारेका कोई अर्थ नहीं, कोई स्वारस्य नहीं। अतः मुक्ति चाहनेवाला किसी बन्धनमें है, जिससे छुटकारा चाहता है। मुमुक्षु मात्र, कहीं भी हो, कैसा भी हो, कभी भी हो, बन्धनसे छूटना चाहता है। जितनी तीव्र लालसा होगी, छुटकारा पानेकी जितनी उत्कट उत्कण्ठा होगी, उतनी ही उसकी मुमुक्षा—मोक्षकी इच्छा मुख्य तथा अनन्य होगी और उतनी ही जल्दी उसे स्वरूपकी प्राप्ति होगी। अतः जो बन्धनसे मुक्ति चाहता है वह मुक्तिकामी है। अहं बन्धनमें है। मुक्तिकामी बन्धनसे मुक्त होकर अपने अहंका मङ्गल चाहता है। यह ज्ञानकी साधना है और बड़ी ऊँची साधना है। षट्-सम्पत्तिकी प्राप्तिके बाद मुमुक्षुत्वकी जागृति होती है और फिर आत्मसाक्षात्कार स्वरूपकी प्राप्ति।

दूसरा वर्ग प्रेमी साधकोंका है। ज्ञानोत्तर कालमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और सीधे भी यह स्थिति प्राप्त हो सकती है। प्रेमी साधक मुक्ति नहीं चाहता, पर वह संसारके बन्धनमें भी नहीं रहता। जगत्के बन्धनसे मुक्त ही भगवत्प्रेमी होता है। उसके पवित्र प्रेमके एक झटकेमें ही सारे बन्धन सदाके लिये टूट जाते हैं। फिर भी वह बन्धनमें रहता है। उसका यह बन्धन है—प्रेमका बन्धन, जो नित्य मुक्तस्वरूप भगवान्को उसके साथ बाँधे रखता है।

भगवान् विरुद्ध गुण-धर्माश्रयी हैं। उनमें युगपत् विरोधी धर्मगुण हैं। वे निराकार होकर भी साकार है। कठोर होकर भी अत्यन्त कोमल हैं। अजन्मा-अविनाशी होते हुए ही जन्म लेते और अप्रकट होते हैं। व्रजसे जाकर भी व्रजसे बाहर नहीं गये। भगवान्के सिवा ऐसा कोई नहीं है, जिसमें एक साथ विरुद्ध गुण-धर्म रहते हों। इसी तरह भगवान्के प्रेमी भी विरुद्ध गुण-धर्माश्रयी होते हैं। वे नित्य मुक्त होकर भी नित्य बन्धनमें रहते है और उस बन्धनसे कभी छूटना नहीं चाहते।

प्रेमीको किसी प्रकारका सांसारिक बन्धन नहीं है। जो संसारके किसी प्रकारके बन्धनमें है, वह प्रेमी नहीं। जो संसारके भोगोंके साथ-साथ पवित्र भगवत्-प्रेम प्राप्त करना चाहते हैं, वे भूलमें हैं, भ्रममें हैं। प्रेम-पथपर पैर रखते ही सारा संसार समाप्त हो जाता है। सारी सांसारिक कामनाएँ छिन्न-भिन्न हो जाती हैं, फिर सांसारिक बन्धन कैसा? प्रेमीके एकमात्र बन्धन भगवान्का है। प्रेमी भगवान्के साथ प्रेम-रज्जुसे बँध जाता है। भगवान् नित्य मुक्त हैं, भगवान्में बन्धनकी कल्पना नहीं, वे भगवान् स्वयं लालसायुक्त होकर प्रेमीके बन्धनमें रहते हैं। उस बन्धनमें सुखस्वरूप भगवान्को सुख मिलता है। यह सुखस्वरूपका सुख-विलास है। यह प्रेमका बन्धन नित्य, असीम और अनन्त है।

इस प्रेमके अनेक स्तर हैं, अनेक स्वरूप हैं। प्रेमीमें एक पवित्र विलक्षण प्रेम-जगत् लहराता रहता है। वह बड़ा विचित्र है। इस प्रेम-जगत्का जो नित्य मिलन है—वह है सर्वथा भावमय।

यह 'भाव' भावनामय–कल्पनामय नहीं है, ध्यानजनित ध्येयाकार वृत्ति-जगत् नहीं है, अज्ञानमें स्थित कोई वस्तु नहीं है, पाञ्चभौतिक नहीं है, क्रियाशून्यता नहीं है। इसका एक-एक रहस्य समझने योग्य है, सब अर्थ-गर्भ है। लोग कहते हैं 'प्रेमी तो केवल कल्पनाके जगत्में रहता है, वस्तुतः उसको भगवान् मिलते नहीं। वह केवल भगवान्की भावना भर करता रहता है।' किंतु कल्पना या भावना तो मायाकी चीज है और भगवान् मायासे अतीत हैं। अतः यह भाव-जगत् माया-जगत्की वस्तु नहीं। इसी प्रकार ध्येयाकार वृत्तिको ध्यान कहते है। जबतक वृत्ति टिकी है तबतक भाव-जगत्का अस्तित्व स्वीकार करें और जब वृत्ति हट जाय तो भाव-जगत्का अस्तित्व समाप्त हो जाय। ऐसी बात इस भाव-जगत्के साथ नहीं है। इससे वृत्तिका सम्बन्ध नहीं; क्योंकि वृत्तिजनित मानस मात्र नहीं है। सत्य है–नित्य है। इसी प्रकार यह भाव-जगत् पाञ्चभौतिक नहीं है। पाञ्चभौतिक वस्तु अनित्य है और भाव-जगत् नित्य है। अवश्य ही भाव-जगत्की सारी चेष्टाएँ—भावनाएँ प्राकृत जगत्के समान दिखायी देती हैं और प्राकृतिक शब्दोंसे, नामोंसे ही उनका निर्देश किया जाता है परंतु वास्तवमें वे अप्राकृतिक हैं, भगवत्स्वरूप हैं।

व्रजकी जितनी लीला हैं, सारी भगवान् श्रीकृष्णके ११ वर्षकी उम्रसे पहले-पहलेकी है। ब्रह्मवैवर्तपुराणमें आया है कि मथुरासे जानेके बाद १०० वर्षोंतक गोपाङ्गनाओंसे श्रीकृष्णकी भेंट नहीं हुई। मथुरा थी ही कितनी दूर, परंतु न तो गोपियाँ मथुरा गयीं और न भगवान् श्रीकृष्ण व्रजमें आये। गोपियाँ क्यों आयीं नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और श्रीकृष्ण क्यों नहीं गये ? केवल इसीलिये कि वहाँ स्व-सुखकी कल्पना नहीं, त्याग-ही-त्याग है । प्रियतम-सुख ही सर्वस्व है । गोपियाँ विरहसे अत्यन्त व्याकुल हैं, उनमें अत्यन्त मिलनोत्कण्ठा है, फिर भी गोपियाँ नहीं गयीं । तो क्या फिर मिलन हुआ ही नहीं ? सच बात तो यह है कि उनके प्रियतम श्रीकृष्णका उनसे कभी वियोग ही नहीं हुआ । अन्तर केवल इतना ही हुआ कि ११ वर्षकी उम्रके बाद प्राकृतिक—पाञ्चभौतिक जगत्के अनुरूप दीखनेवाली लीला नहीं हुई । भगवान् सर्व-समर्थ हैं, चाहते तो वह भी कर सकते थे, किंतु लोक-संग्रहके लिये, आदर्शकी प्रतिष्ठाके लिये उसे नहीं किया । भगवान्ने स्वयं श्रीमुखसे गीतामें कहा है कि तीनों लोकोंमें मेरा कोई कर्तव्य न होने तथा मुझे कुछ भी प्राप्त करनेकी अपेक्षा न होनेपर भी लोकसंग्रहके लिये मैं विहित कर्म करता हूँ । इसी कारण पाञ्चभौतिक जगत्के अनुरूप दिखलायी देनेवाली लीला मथुरा जानेके बाद उनमें दिखायी नहीं दी, अन्यथा, वहाँ तो नित्य लीला-विलास चलता ही रहता है । गोपियोंके परम प्रियतम श्रीकृष्ण भावरूपसे निरन्तर उनके पास रहे, वे व्रजसे गये ही नहीं । परंतु यह सब लीला अधिकारियोंके लिये ही थी। अतः बाहर इनका प्रकाश नहीं था । शिशुपालने भगवान् श्रीकृष्णको गाली दी किंतु उसने इस गोपीप्रेमकी बात नहीं कही । शिशुपालवाले जगत्को व्रजके भाव-जगत्की बातका ज्ञान ही नहीं था । हाँ, द्रौपदीको कुछ-कुछ पता था । कौरव-सभामें विवस्त्र होते समय रक्षा पानेके लिये द्रौपदीने अपनी प्रार्थनामें 'द्वारकावासिन्'के साथ-साथ 'गोपीजन-प्रिय' भी सम्बोधन किया था । यह महाभारतकी चीज है ।

व्रजकी गोपियोंमें भाव-जगत्का नित्य एवं निरवधि विलास है । भाव-जगत् ऐसा है जहाँ कभी वियोग है ही नहीं । यह परम सत्य है कि भगवान् मिलकर कभी बिछुड़ते नहीं । मिलकर बिछुड़नेका क्रम प्रापञ्चिक जगत्की वस्तुका है । भाव-जगत्में बिछुड़नेकी कल्पना ही नहीं । भाव-जगत्में अ-मिलनकी जो लीला होती है, वह भी मिलनकी ही एक तरंग है । त्यागमय प्रेमकी पराकाष्ठापर नहीं पहुँचे हुए साधकोंको वह लीला नहीं दिखलायी देती । जहाँ मुक्तिका भी परित्याग हो जाता है वहाँ इस लीलाका विकास होता है । उसके अधिकारी अलग-अलग हैं ।

भगवान् श्रीरामने अपनेको भगवान् कहा है पर छिपे-छिपे । भगवान् राम मर्यादाका अधिक ख्याल रखते हैं । कहीं देवताओंके सामने, कहीं ऋषियोंके सामने भगवान् रामने अपनेको भगवान् कहा है, परंतु भगवान् श्रीकृष्णने तो बारंबार स्पष्ट कहा है । द्वारकामें श्रीकृष्ण भगवान् होकर भी द्वारकापति हैं । जहाँ ऐश्वर्य है, वहाँ वे मर्यादानुकूल कार्य करते हैं । द्वारकामें भगवान् श्रीकृष्णकी आदर्श दिनचर्या है । वे उषाकालमें शय्या त्यागकर ध्यान करते हैं । स्मृतियोंके अनुकूल शौच-स्नान करते हैं, संध्या करते हैं, अग्निहोत्र-गोदान करते हैं, अपने माता-पिताको प्रणाम करते हैं । जहाँ जैसी लीलाका प्रयोजन है तदनुरूप आचरण करते हैं । जिस तरह प्रेमियोंके प्रेम जगत्में प्रेमरसास्वादनके लिये प्रेमास्पद भगवान्का अवतरण होता है, वैसे ही लोकमें धर्मकी स्थापनाके लिये उनका अवतरण होता है । गीतामें कहा है—

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥
(४।८)

साधुका परित्राण, पापका विनाश और धर्मकी स्थापनाके लिये भगवान् अवतार लेते हैं । जब जैसी लीला होती है, भगवान् वैसे बन जाते हैं । भगवान् श्रीकृष्णकी दामोदरलीलामें काम, क्रोध, लोभ, भय, पलायन, बन्धन सभी हैं और सच्चे रूपमें हैं । यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सब भगवान् श्रीकृष्णका न नाटक है, न मिथ्या विलास है और न दम्भ है। जैसी लीला करनी होती है, वे स्वयं ही वैसे ही बन जाते हैं। जिस समय ब्रह्माने बछड़ोंको तथा गोपबालकोंको चुरा लिया, उस समय भगवान् क्या-क्या नहीं बन गये? रस्सी, बछड़े, बालक, उनके कपड़े, काली कमली, जूती, लकुटी—सभी कुछ तो बने। भगवान् रासमें अगणित रूपोंमें प्रकट हो गये। यह रास भगवान्का अपनेमें अपना ही रसास्वादन है और है प्रेमियोंमें स्वरूपभूत रसका वितरण। यह भोगियोंका भोग-रमण नहीं, यह योगियोंका आत्मरमण नहीं, यह है प्रेमस्वरूप रसस्वरूप भगवान्का रस-वितरण तथा रसास्वादन-विलास।

रासमण्डलमें प्रवेश पानेके लिये देवता तथा ऋषियोंको गोपी बनना पड़ा। आकाशमें देवता और देवपत्नियाँ थीं, पर क्या वे रासकी अन्तरङ्ग सभी लीला देख पायीं? अर्जुनको अर्जुनी बनना पड़ा। अर्जुनको इच्छा हुई कि इस प्रेम-जगत्का उन्हें दर्शन मिले। पहले तो भगवान् श्रीकृष्णने टलाया। बहुत आग्रह करनेपर मन्त्र बताया, उसका जप करना पड़ा, कात्यायनीकी उपासना करनी पड़ी, प्रेम-ह्रदमें स्नान करना पड़ा, फिर गोपीका रूप मिला, फिर सखी अर्जुनीको निकुञ्जमें ले गयी। अर्जुनी केवल एक रात ही वहाँपर रह पायी। पुनः ह्रदमें स्नान कराया गया, वे तुरंत अर्जुन बन गये और वापस भेज दिये गये। शिशुपाल आदिको इस रासका पता नहीं था, हाँ, भीष्मजीको थोड़ा-थोड़ा ज्ञान था। केवल अन्तरङ्ग लोगोंको ही इसका पता था।

वियोगमें भी भगवान्का मिलन रहता है। भगवान्की वियोगलीलामें नित्य संयोग रहता है। प्रेमीसे पूछा जाय क्या चाहते हो, मिलन या वियोग। तो सच्चा प्रेमी विरह ही माँगता है। संयोगमें समय, स्थान, मर्यादा आदिके अनेक बन्धन हैं, पर वियोगमें तो नित्य-निर्बाध मिलन है। भगवान्को कहींसे आना नहीं पड़ता। वे तो नित्य सर्वत्र विराजमान हैं। प्रेमी भक्तका हृदय उनका अनन्त प्रलोभनीय प्यारा आवास है। वे वियोग देते हैं विशेष रसास्वादनके लिये—प्रगाढ़ रसास्वादनके लिये। वस्तुतः देखा जाय तो प्रेमी साधकको वियोग होता ही नहीं।

प्रेममें भुक्ति-मुक्तिकी कोई आकाङ्क्षा होती ही नहीं। आकाङ्क्षाकी अपूर्तिमें दुःख होता है; क्योंकि उससे मनमें एक प्रतिकूलताका उदय होता है। वही दुःख है। प्रेम-जगत्में प्रतिकूलता होती ही नहीं। प्रेममें जो कहीं प्रतिकूलताकी लीला होती है, वह वस्तुतः महान् अनुकूलताकी एक लहर मात्र है; क्योंकि उस प्रतिकूलतामें प्रियतमका सुख निहित है जो परम अनुकूलताका स्वरूप है। मिलन और विरहके रूपमें ये तरंगें उठती-गिरती रहती हैं। भूख बिना भोजनका मजा क्या? विरहके बिना मिलनका आनन्द क्या? विरह और मिलन प्रेम-सरिताके दो तट हैं। इन्हींके बीचमें यह सतत प्रेमास्पद-सागरकी ओर प्रवाहित है। प्रेमास्पद प्रेमीके पाससे जाते ही नहीं। एक प्रेमिका गोपीने उद्धवसे अपना अनुभव बताया—'लोग भले कहें, पर मुझे तो प्रियतम कहीं जाते दीखते ही नहीं। लोग कहते हैं कि गये, पर वे तो सदा मेरे पास हैं। मैं अपने प्रत्यक्ष अनुभवके सामने दूसरोंकी बात कैसे मानूँ? अब भ्रम किसको है, मुझको या लोगोंको? लोगोंको ही है। मैं तो नित्यमिलनानन्दका रस लेती हूँ।' विरहकी अनुभूति तत्त्वतः सुखरूप है।

प्रेमी मुक्तिकामी नहीं होता; क्योंकि प्रेममें अनन्त जीवन है और अनन्त सुख है। इस प्रेम-जीवनमें न कमी होती है और न रुकावट आती है। ज्ञानीके लिये जो प्राप्त करना था, वह प्राप्त हो गया। अब उसे कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी करना-पाना नहीं—'**तस्य कार्यं न विद्यते ।**' किंतु प्रेमीके जीवनमें प्रेमधारा सर्वदा बहती रहती है और बहती ही रहेगी । उस धारामें निरन्तर अधिकाधिक तीव्रता, मधुरता और उज्ज्वलता आती रहेगी ।

प्रेमीमें यदि वस्तुतः कोई क्षोभ होता है तो अवश्य मानना चाहिये कि उसके अंदर स्व-सुखकी कोई वासना अवश्य है । किसी कामनासे ही विक्षोभ उत्पन्न होता है । अवश्य ही कोई चाह है, भले ही वह छिपी हो । वास्तवमें प्रेमी प्रत्येक द्वन्द्वमें पवित्र लीलानन्दका अनुभव करता है । वह सतत लीला-समुद्रमें निमग्न रहता है । प्रेमीके जीवनमें प्रत्येक चेष्टा सहज ही भगवत्प्रीत्यर्थ होती है ।

जो भगवान्‌के प्रतिकूल हो, वही अविधि है और जो भगवान्‌के अनुकूल हो वही विधि है । यही भाव-जगत्‌का 'विधि-निषेध' है । वस्तुतः वहाँ सब कुछ भगवान्‌के मनका ही होता है । अवश्य ही मनरहित भगवान्‌में मनका पवित्र निर्माण प्रेमियोंमें दिव्य सुख-वितरणके लिये ही होता है । प्रेमीके मनमें वही बात आती है जो प्रेमास्पदके मनमें है । जहाँ अन्तरङ्गता होती है, वहाँ प्रेमास्पदकी बात प्रेमीमें आने लगती है । मनमें स्वतः स्फुरित होने लगती है । फिर उसे कुछ कहना नहीं पड़ता । भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा है—

मन्माहात्म्यं मत्सपर्यां मच्छ्रद्धां मन्मनोगतम् ।
जानन्ति गोपिकाः पार्थ ! नान्ये जानन्ति तत्त्वतः ॥

मेरे मनकी बात तो तत्त्वसे केवल गोपियाँ ही जानती हैं । परम प्रेमास्पद भगवान्‌के मनमें क्या है, इसको बस, सर्वत्यागी परम प्रेमी जानता है और जानकर वह प्रेमी वही बोलता है, वही करता है । वही उसकी विधि है । भाव-जगत्‌में शास्त्र देखनेकी फुरसत किसको है, कौन देखता है ? तो क्या उनके आचरण शास्त्र-विरुद्ध हैं ? नहीं । प्रेमीका प्रत्येक विचार तथा कर्म सहज ही भगवान्‌के अनुकूल, भगवान्‌के प्रीत्यर्थ होता है । वही तो शास्त्रका साफल्य है । वही तो शास्त्रका फल है । अतः प्रेमी जो करता है, वही विधि है, वही शास्त्र है । प्रेमीके अंदर लौकिक प्रपञ्च नहीं है, कोई भी जागतिक वासना नहीं है । उसके अंदर भगवान् हैं । उसकी चेष्टा, उसकी वाणी भगवान्‌की चेष्टा और वाणी है । वह तीर्थोंको तीर्थ बनाता है । जहाँ ऐसे प्रेमी संत रहे, वे तीर्थ बन गये । उन्होंने जो कुछ कहा वही शास्त्र बन गया और जो आचरण किया वही शास्त्रकी विधि बन गयी ।

शास्त्रकी अन्य किसी विधिका बन्धन वहाँ नहीं है; क्योंकि वहाँ शास्त्रकी विधिका फल फलित हो चुका है । जो पवित्र प्रेम प्राप्त कर चुके हैं, उनपर शास्त्रका बन्धन नहीं है । जबतक यह स्थिति नहीं आती है, तबतक शास्त्रकी प्रत्येक विधि लागू होगी । जो वासनाबद्ध मनुष्य प्रेमके नामपर शास्त्रकी मर्यादाका उल्लंङ्घन करते हैं, विधिकी अवहेलना करते हैं, उनको अवश्य ही सावधान हो जाना चाहिये । भगवान् श्रीकृष्णने ऐसा किया तो हम भी ऐसा ही करें । यह मानना ठीक नहीं । भगवान्‌के सब आचरण अनुकरणीय नहीं हैं । भगवान्‌ने दावानल पान किया, क्या हम भी पान कर सकेंगे ? भगवान्‌ने सात दिनोंतक कनिष्ठिका अंगुलिपर गोवर्धन धारण किये रक्खा । क्या हम एक घंटे भी एक सेरका पत्थर भी अँगुलीपर रखकर खड़े रह सकते हैं ? कलालके घरकी शराब और सुनारका यहाँ ढलाईघरका तप्त गला हुआ शीशा शंकराचार्यजी पी सकते हैं पर क्या सभी पी सकते हैं ? इसीलिये भगवान्‌के आचरणोंका अनुकरण नहीं, उनके आज्ञानुसार व्यवहार करना चाहिये । तैत्तिरीय उपनिषद्‌में आया है। भलीभाँति वेदाध्ययन सम्पन्न करानेके बाद आचार्य अपने विद्यार्थियोंको शिक्षा देकर कहते हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'यान्यस्माकं सुचरितानि, तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि'

'हमारे आचरणोंमें भी जो-जो अच्छे आचरण हैं, तुमको उन्हींका सेवन करना चाहिये। दूसरोंका कभी नहीं।' अतः गोपियोंकी नकल कभी नहीं करनी चाहिये। विशुद्ध प्रेमके नामपर मोहवश कभी भी अपनी वासना-को पूरी करनेका प्रयास नहीं करना चाहिये। असलमें साधकको तो विषयोंसे उलटे चलना है। श्रीचैतन्य महाप्रभु बड़े ही सुन्दर सुकोमल-वदन थे। पर जब संन्यास ले लिया तो उन्होंने कठोर नियमोंका पालन किया और करवाया। श्रीचैतन्य महाप्रभु बड़े रसिक भी थे। जयदेवजीका गीत-गोविन्द सुना करते थे, पर साथ बड़े ही संयमी थे। श्रीरूप-सनातन आदि रसशास्त्रके महान् ज्ञाता थे। उन्होंने इसपर अनोखे ग्रन्थ लिखे हैं, पर साथ ही वे महान् विलक्षण त्यागी और विरक्त थे। अतएव इनसे हमें संयमकी शिक्षा लेनी चाहिये तथा संयमकी बात अपनानी चाहिये। चैतन्य महाप्रभुने अपने शिक्षाष्टकमें बताया है कि भगवान्के कीर्तनका कौन अधिकारी है? जो राहमें पड़े हुए तिनकेसे भी अपनेको नीचा मानता हो, जो वृक्षसे भी अधिक सहनशील हो और जो मान न चाहकर दूसरोंको मान देता हो, उसीके द्वारा भगवान्का कीर्तन होता है और उसीको भगवान् मिलते हैं।

तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः॥

प्रेमके पवित्र क्षेत्रमें इन्द्रिय-भोगको स्थान नहीं है। भाव-जगत्में भोगको स्थान है, पर उसी पवित्र भोगको जो **'तत्सुखसुखित्वम्'से** अनुप्राणित हो। गोपियोंके जीवनमें भोग है पर वह केवल प्रेमास्पद श्रीकृष्णके लिये है। वहाँ रागका एकमात्र विषय हैं श्रीकृष्ण। वहाँपर अनन्य अनुराग है। इतर रागके लिये स्थान नहीं। गोपियोंमें स्वाभाविक ही विषय-वैराग्य है। भगवान्के चरणानुरागमें सभी आसक्तियोंका अभाव हो गया है। साधकके लिये विशेष सावधानीकी आवश्यकता है।

साधकको जहाँ उसका साधन भारी मालूम होता है, उसमें मन ऊबता है, मनको बल लगाना पड़ता है और जो साधन सुखमय नहीं लगता, वह जबरदस्तीका साधन बहुत दिनों तक टिकता नहीं। जिस साधनमें हर्ष होता है, सहज प्रसन्नता होती है, मनमें उमंग रहती है, उसीसे लाभ होता है। अन्यथा तमोगुण आ सकता है। फिर भी अच्छा काम जबरदस्ती किया जाय तो वह भी उत्तम ही है। पर मनसे हो, चावसे हो तो बहुत उत्तम। थोड़ा करे, पर उत्साहके साथ करे। सात्त्विक उत्साहसे किया गया साधन अधिक लाभकारी होता है।

भाव-जगत्के सम्बन्धमें आज संकेतसे कुछ कहा गया है। यह परम रहस्य है। व्रजकी गोपियोंकी रासलीला भाव-जगत्की लीला है। भागवतमें स्पष्ट लिखा है—

मन्यमानाः स्वपार्श्वस्थान्
स्वान् स्वान् दारान् व्रजौकसः॥
(१०।३३।३८)

गोपियाँ गयीं, पर गयीं नहीं। सब गोपोंने स्पष्ट देखा कि उनकी पत्नियाँ उनके पास घरमें सो रही हैं। वे गयीं ही नहीं। गोपियोंका पाञ्चभौतिक शरीर घरपर ही रहा। रासमें गोपियोंका पवित्र चिन्मय नित्य सत्य भाव-वपु गया था। रास भावमयी गोपियोंकी भावमयी लीला है, पूर्णतः भाव-जगत्की लीला है।

यह भाव-जगत् अत्यन्त ही गुह्यतम, रहस्यमय और उच्चतम साधना-लभ्य है। यह बड़ी ऊँची स्थितिकी चीज है। ऊँची-से-ऊँची साधनाकी चीज है। जहाँतक अपनी कल्पना पहुँचे, कीजिये। उतना ही सत्यका अनुभव होगा। अनन्त रसमय सत्यका अनुभव होगा। इस रसका कहीं अन्त नहीं है। नयी-नयी अनुभूतियोंकी उपलब्धि होगी। **'प्रतिक्षणवर्धमानम्'** यह रस प्रतिक्षण वर्धमान है। भाव-जगत्में आनन्द-ही-आनन्द है, सुख-ही-सुख है, रस-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही-रस है। भगवान् ही रस हैं—'रसो वै सः' और कहीं रस है नहीं। रसके नामपर सब ओर अरस (रसहीनता) है, कुरस (कुत्सित रस) है और विरस (विपरीत रस) है। हम रस मान लेते हैं, रसके बदले आग पी लेते हैं और जलते रहते हैं। रसकी शीतलताके बदले जलन मिलती है। जहाँ रस है वहाँ भगवान् हैं और जहाँ भगवान् हैं वहीं रस है। भाव-जगत्‌में रस-ही-रस है। यह भाव-जगत् न पाञ्चभौतिक है, न मानसिक है, न काल्पनिक है, न औपचारिक है, न नाटकीय है, न केवल चिदानन्दाद्वैतमय है और इसे कामविलास मानना तो घोर पाप तथा पूर्ण भ्रम है। यह प्रेममय भगवान्‌का रस-वितरण है। यह पवित्र रसार्णव है, जिसका अवतरण केवल व्रजमें ही हुआ और व्रजकी गोपियोंमें ही हुआ—

'यथा व्रजगोपिकानाम्'।

साधनाका फल

(लेखक—श्रीरामपुनीतजी श्रीवास्तव, एम्० ए०)

उसे क्या पता कि कामकी पूर्ति निष्कामतामें भी निहित है। प्रियतम-प्राप्तिके लिये उसने कम प्रयत्न नहीं किये, पर प्रियतमके निकट वह पहुँच नहीं पाया। बाहरी साधनोंसे निराश होकर अन्तमें वह भीतरी साधनाकी ओर प्रवृत्त हुआ। व्रत-अनुष्ठान, जप-आराधनामें उसकी साधना निरत हो गयी। दिन बीतते गये, साधनाका रूप सूक्ष्म होता गया। मनकी दुनिया एक केन्द्रमें सिमट गयी। प्रेमदेवका आसन हिला। देवतामें भी इतना साहस कहाँ कि वह साधनाकी निरन्तर अवज्ञा कर सके। साधकके तपसे आकर्षित होकर प्रेमदेवताको आना पड़ा। साधकको देखकर देवता द्रवित हुए और देवताके दर्शनसे साधक धन्य हुआ। देवताने पूछा—'साधक! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ। बोलो, क्या चाहते हो?'

साधक अनुगृहीत होकर बोला—'देवता! तुम मेरी इच्छाको जानते हो। उसीके लिये तो मैं एक युगसे तप कर रहा हूँ।'

देवता मुस्कराये और बोले—'तो तुम अपने रूठे हुए प्रियतमको चाहते हो न? तुम्हें तुम्हारा प्रियतम मिलेगा और वह तुम्हारे संकेतपर नाचेगा।'

साधक प्रसन्न हो उठा। उसका मस्तक देवताके चरणोंपर झुक गया। देवता वरदान देकर चले गये और साधकको उसका प्रियतम मिल गया।

× × ×

प्रियतम तो मिल गया, परंतु साधना एक कोनेमें बैठ गयी। फिर प्रेमी और प्रियतम, प्रियतम और प्रेमी एक दूसरेमें इतने भूले कि उन्हें वह साधना भी भूल गयी, जिसके कारण उन्हें प्रेमका वरदान मिल पाया था। प्रणयकी नित्य नयी मदिरामें सारा उत्ताप खो गया। इसके प्रवाहमें सुख डूबने-उतराने लगा, दुःख छटपटाने लगा। आनन्द सीमापर पहुँचकर एकरस बन जाता है और एकरसता जीवनका धर्म नहीं है।

नित्यकी एकरसतासे जीवन घबराने लगा। उसकी घबराहट देखकर प्रेमी सजग—सचेत हो उठा। सोचा कि यह अशान्ति और अतृप्ति कहाँसे आ गयी? मदिराके माधुर्यमें यह कटुता कैसे मिल गयी? प्रियतम तो मिल गया, पर यह चिन्ता और अधीरता क्यों? प्रियतम वही है, पर वैसा आनन्द अब कहाँ है? इस आनन्दमें ग्लानि और क्षोभ कैसे समा गये? प्रेमी परेशान हो गया। प्रियतमसे पूछ बैठा—'प्रियतम! क्या तुम बदल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गये ? तुम्हारा आनन्द बदल गया ? पहले-जैसे तुम क्यों नहीं प्रतीत होते ?'

प्रियतम बोला—'मेरे प्रेमी ! तुम भी तो बदल गये हो ? क्या तुम्हारा प्यार-दुलार संकुचित नहीं हो गया ?'

प्रेमी और प्रियतम, प्रियतम और प्रेमी एक दूसरेसे दूर होते गये और साधना निकट आती गयी । प्रेमीने पुनः साधनाका हाथ पकड़ा और चल पड़ा उसी पुराने मार्गपर । दूसरा कौन उपाय वह करता ? साधना बढ़ती गयी और लक्ष्य निकट आता गया । प्रेमदेव व्याकुल हुए, विवश हुए । उन्हें पुनः साधकके समक्ष उपस्थित होना पड़ा । बोले—'साधक ! अब यह साधना किसलिये ? तुम तो अपनी इष्ट वस्तु पा चुके हो न ?'

प्रेमी देवताके चरणोंको चूमता हुआ दीन होकर बोला—'देव ! तुम्हारे वरदानका सुख अमर क्यों नहीं हो सका ? क्या जीवनका सुख—हृदयका प्यार एक ही स्थानपर सीमित नहीं रह सकता ?'

'तुमने ठीक ही सोचा है साधक ! जीवनका रस एक ही जगह संचित करते रहनेसे वह स्थान स्वस्थ और स्वच्छ नहीं रह पाता और रसमें भी खटास और मालिन्य आने लगता है ।'

'तो मैं अब क्या करूँ देव ! मुझे अब कोई इच्छा ही नहीं होती । अब तो केवल तुमको—बस, तुमको चाहता हूँ । तुम रहो और तुम्हारी साधना रहे ।'
'आनन्द मिले जग-जीवनका, तुम रहो साधना बनी रहे ।'

प्रेमीने प्रेमदेवके चरणोंको भुजाओंमें कस लिया । देवता उसके सिरपर हाथ फेरने लगे ।

रामचरितमानसमें वर्णित शिव

(लेखक—श्री वा० विष्णुदयालजी, मारीशस)

हम बाल्यावस्थासे ही वृद्धोंके मुखसे सुनते आते हैं—

'होइहि सोइ जो राम रचि राखा ।'

बड़े होकर हम रामचरितमानसका अध्ययन करने लगते हैं और तब यह जानकर हमारे आनन्दका पार नहीं रहता कि हमारे श्रद्धेय वयोवृद्ध लोग भगवान् शिवजीके शब्द दोहराते आये हैं और हम उनके मुखसे शिववाणी सुनते रहे हैं ।

बालकाण्डमें भक्तवर तुलसीदासजी शिवजीके प्रायः ये सब नाम देते हैं—चंद्रसेखर, संकर, महादेव, उमापति, त्रिनेत्र आदि । हमें शिवजीसे परिचित करानेके उद्देश्यसे ही उनकी वाणी तथा उनके नामोंका उल्लेख किया जाता है ।

रामचरितमानसके अन्तर्गत जो शिवचरित पाया जाता है, वह लघु होनेपर भी हमें सुख-दुःखकी समस्यापर ध्यान देनेको प्रेरित करता है । इस दृष्टिसे रामचरितमानसकी आवश्यकतापर पाठकका ध्यान सहसा खिंच जाता है । नास्तिक और आस्तिक—दोनों ही दुःखोंसे सताये जाते हैं । दुःखोंसे छुटकारा पाने और सुख प्राप्त करनेके उपाय कौन नहीं ढूँढ़ा करता ? परंतु हम जान नहीं पाते कि वस्तुतः मङ्गल किस चीजमें है और अमङ्गल किसमें; यथार्थमें दुःख क्या है और सुख क्या है ?

गीताने हमारे नेत्र खोले हैं जब यह स्पष्ट किया है कि आरम्भमें जो विषके समान है और अन्तमें अमृतके सदृश है वह (सात्त्विक सुख) वास्तव सुख है—और आरम्भमें जो अमृत-सा लगता है पर परिणाममें विषका काम देता है, वह (राजस सुख) सुख नहीं है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मदिरापान कइयोंके लिये सुखद है, किंतु अन्तमें वह नाश लाता है। इसके विपरीत पाठशाला जाना पहले विष-सा लगता है और अन्तमें सुखद होता है।

गोस्वामीजी शिवजीके बारेमें कहते हैं कि ये अमङ्गल वेषधारी हैं—

जोगी जटिल अकाम मन नगन अमंगल बेष ।
अस स्वामी एहि कहँ मिलिहि परी हस्त असि रेख ॥

हम कपड़ोंपर हर मास धनका व्यय करते हैं; क्योंकि पोशाक हमारे देखनेमें सभ्यताका चिह्न है। शिवजी तो नंगे रहते हैं, वे दिगम्बर हैं। इनके अमङ्गल वेषके लक्षण हैं भस्म, मृगचर्म, कपाल आदि। ये श्मशानभूमिके मध्य अवस्थित हैं। सब लोग अमृतपानके इच्छुक हैं पर हमारे ये भोलेबाबा प्रसन्नतासे विष-पान किया करते हैं।

यहाँ शिवजीका सच्चा स्वरूप दीख पड़ता है। यह विश्व एक विशाल श्मशानभूमि है। इसमें कोई भी ऐसा स्थल है ही नहीं, जहाँ किसी-न-किसीकी मृत्यु न हुई हो। जंगलमें जैसे ऋषियोंका देहावसान होता है, ठीक वैसे ही राजाओंका देहान्त उनके प्रासादोंमें होता है।

यदि श्मशानभूमिसे हमें भय है तो हम विश्वमें रहनेके योग्य नहीं हैं। शिवजी हमें अभयदान देते हैं। ज्यों ही वे इस भूमिके मध्य आकर आसन जमाते हैं, त्यों ही यह नन्दनवनमें परिणत हो जाती है। जो अभयदान दिया करते हैं वे सचमुच शिव हैं, कल्याणकारी हैं।

दुःख संसारमें है, परंतु उसका हरण किया जा सकता है। शिवजी मृगचर्मसे अपना तन ढकते हैं, उस चर्मसे जो चितकबरा है, चर्मके दाग नन्हें-नन्हें तारे हैं, जो रात्रिके अन्धकारको मिटाकर छोड़ते हैं। जर्मन तत्त्वज्ञानी कांटके जीवनमें नया मोड़ तब आया था, जब एक बार उन्होंने ध्यानसे तारे देखे थे।

शिवजी हमारी आँखें खोलते हैं, हमें बताते हैं कि अन्धेरा है तो सही, किंतु उसे नष्ट करनेका उपाय भी तो है। उपनिषद्में बताया गया है कि अन्धेरे, असत् और मृत्युमें साम्य है। बृहदारण्यकोपनिषद्में आया है—

असतो मा सद् गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्माऽमृतं गमयेति ।

शिवजीकी शरणमें हम आये कि असत्, अन्धेरे और मृत्युसे हटकर हम सत्, प्रकाश और अमृतकी ओर आ सकते हैं।

श्रीगोसाईंजीने क्या ही ठीक लिखा है—

सुर नर मुनि सब नावत सीसा ।

'शिव' पवित्र नाम लेते ही हम नतमस्तक हो जाते हैं; नमः, नमः कहने लग जाते हैं—

ॐ नमः शंभवाय च मयोभवाय च ।
नमः शंकराय च मयस्कराय च ।
नमः शिवाय च शिवतराय च ॥
(यजु० १६ । ४१)

उक्त वेदमन्त्रकी एक बार कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुरने व्याख्या की थी। उन्होंने लिखा था। मन्त्रमें कहा गया है—

'सुखकरको नमस्कार करता हूँ, कल्याणकरको नमस्कार करता हूँ।' लेकिन हम सुखकरको ही नमस्कार करते हैं, कल्याणकरको सदा-सर्वदा नमस्कार नहीं कर पाते; क्योंकि कल्याणकर सिर्फ सुखकर नहीं, वह दुःखकर भी है।

वे मानो शिवचरितपर प्रकाश डाल रहे थे। सुख दुःखके बाद आता है। यदि दुःख सहनेके लिये कोई तैयार हो तो उसे सुख प्राप्त होगा। जो दिनभर डटकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काम करता है, उसे भूख खूब लगती है, वह खूब खाता है, स्वस्थ रहता है। परिश्रमी सदा सुखी रहता है। आलसी परिणाममें दुःख देखता है।

रामचरितमानस एक सागर है, एक छोटेसे लेखमें उन सब स्थलोंका उल्लेख कदापि हो नहीं सकता, जहाँ-जहाँपर इस महद्ग्रन्थमें शिवजीकी चर्चाका विषय है। इतना ही स्मरण करें कि शिवजीके चरितके साथ-साथ पार्वतीजीका चरित देकर ग्रन्थकारने हमारे सामने संसारका सच्चा चित्र उपस्थित किया है। लोग पार्वतीजीका ध्यान शिवजीसे उचाटनेमें प्रयत्नशील थे और वे विफल हुए। इसी भाँति असंख्य नर ईश्वरसे विमुख होकर हमें भी उनसे विमुख होनेको दिन-रात कहते हैं। हम दृढ़ रहेंगे तो हमारा कल्याण होगा।

हमें इस कलियुगमें पार्वतीका रुख अपनाना होगा। अपनेको ही दोष देकर पार्वतीजी कहती हैं—

सत्य कहहु गिरिभव तनु एहा।
हठ न छूट छूटै बरु देहा॥

यह मेरा शरीर पर्वतसे पैदा हुआ है, मैं जड़ हूँ—

दुनियाकी दृष्टिमें जो धृष्टता है, वह वास्तवमें दृढ़ता है।

दुनियाकी चालका ख्याल करके शिवजीको निम्न शब्दोंमें चित्रित किया गया है—

अगुन अमान मातुपितुहीना।
उदासीन सब संसय छीना॥

जहाँ दुनियाके देखनेमें वे गुणोंसे रहित हैं, वहाँ वस्तुतः वे तीन गुणोंसे परे हैं। अहंकाररहित, स्वयं सबके माता-पिता होनेसे अनादि, समदर्शी, सब संदेहोंके दूर करनेवाले शिव पूज्य हैं, न कि त्याज्य या निन्दनीय। और तो और पार्वतीजीकी मातातक शिवजीसे, रहस्योद्घाटनसे पूर्व, विमुख हो गयी थीं। वे नारद मुनिको कोसने लगी थीं।

ऐसा क्यों न होता? शिवजी एक स्वच्छ दर्पण हैं। मुखके सामने दर्पण हो तो हम अपना ही चेहरा देख पाते हैं। चेहरा सुन्दर नहीं है। अतः हम घबरा उठते हैं। हम इस दुनियाको उसके असली रूपमें देखना पसंद नहीं करते।

उनकी बरातमें विचित्र लोगोंको देखकर—

बालक सब लै जीव पराने।

—भयत्रस्त बालकोंने कहा, 'बावला दूल्ह है, बैलपर सवार है, साँपों और कपालोंके गहने पहने है, नंग-धड़ंग है, सङ्गमें भयंकर मुखवाले हैं।'

तुलसीदासजीने क्या ही ठीक लिखा है—

जस दूलह तसि बनी बराता।

जब भेद खुला तब विदित हुआ कि शिवजी परम कल्याणरूप हैं—

रामचरितमानसमें शिवजीकी एक-एक चेष्टा, उनके अनेक नाम तथा उनकी संगिनी पार्वतीजीपर प्रचुर मात्रामें प्रकाश डाला गया है। इस बातको ध्यानमें रखकर तुलसीदासजीकी इस कृतिको पढ़ा जाय तो पाठकको विशेष लाभ हो सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पराजय

[लघु कथा]

(लेखक—पं॰ श्रीविष्णुदत्तजी द्विवेदी)

भारतके तपस्वियोंकी विलक्षणता सुनकर सिकंदरने दस प्रसिद्ध साधुओंको पकड़वा बुलाया। दसों तपस्वी निर्वसन थे। सिकंदरने एककी ओर मुख करके कहा—'इन नौ साधुओंसे मैं एक-एक प्रश्न करूँगा। सबसे अच्छा उत्तर देनेवालेको सर्वप्रथम और उसके बाद अच्छाईके क्रमसे शेष सबको मार डाला जायगा। उत्तरका श्रेष्ठता-क्रम तुम्हें बताना है।'

निर्णायक साधु अलग बैठ गया। शेष एक-एक कर सिकंदरके समक्ष प्रस्तुत हुए।'

पहले साधुसे सिकंदरने प्रश्न किया,—'जीवित मनुष्योंकी संख्या अधिक है या मृतकी?'

'जीवितकी' साधुने उत्तर दिया। कारण यह कि 'मृत्यु होनेके बाद तो वे रहते ही नहीं।'

सिकंदरने दूसरेसे पूछा,—'समुद्रमें अधिक जीव हैं या पृथ्वीपर?' साधुका उत्तर था—'पृथ्वीपर; क्योंकि समुद्र पृथ्वीका ही एक भाग है।' सिकंदरका प्रश्न तीसरे साधुसे था—'जानवरोंमें सबसे बुद्धिमान् कौन है?' उत्तर मिला—'वह जो मनुष्यके लिये अब-तक अज्ञात है।'

सिकंदरने चौथे साधुसे पूछा—'तुमने अपने राजा शम्भुको विद्रोहके लिये क्यों प्रेरित किया?'

'इसलिये कि जीना या मरना इज्जतके साथ चाहिये।' उत्तर मिला। उसने पाँचवें साधुसे पूछा,—'पहले दिन बना या रात?'

'दिन रातसे एक दिन पहले?'

सिकंदरने खीझकर कहा—'क्या मतलब?'

साधुका निर्भीक उत्तर था, 'जैसा प्रश्न, वैसा उत्तर।'

सिकंदर हतप्रभ हो रहा था। उसने छठे साधुसे पूछा—'मनुष्य किस प्रकार दुनियाका प्यारा हो सकता है?'

उत्तर मिला—'शक्ति और प्रजाके स्नेहसे।'

उसने सातवें साधुसे पूछा—'मनुष्य देवता कैसे बन सकता है?'

साधुने उत्तर दिया—'अमनुजकर्मा होकर।'

'जीवन और मृत्यु दोनोंमें—अधिक बलवान् कौन है?'

साधु बोला—'जीवन; क्योंकि वह भयानक-से-भयानक कष्ट सहन कर सकता है।'

सिकंदरने नवेंसे पूछा—'कबतक जीवन इज्जतसे जीना है?'

'जबतक मनुष्य यह न सोचने लग जाय कि अब जीनेसे अच्छा मर जाना है।'

अब सिकंदरने निर्णायक साधुसे निर्णय माँगा।

वह साधु बोला—'उत्तर एक-से-एक बढ़कर है।'

सिकंदर किसीको न मार पाया। वह जीतकर भी हार गया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्मविश्लेषण और बुद्धियोग

(लेखक--डा० श्रीमुंशीरामजी शर्मा 'सोम')

नाथ ! तुमसे और तुम्हारोंसे कितनी दूर होता जा रहा हूँ कहाँसे कहाँ, कितना समीप और कितना पृथक् । इसपर ध्यान जाते ही विकल हो उठता हूँ । यह कैसे हुआ ? तुम्हारे भय-भञ्जन सामीप्यसे कितना सुख और कितनी शान्ति, कितनी निश्चिन्तता और कितना प्रकाश मिलता था । आज तुमसे दूर होकर शंका, संशय, भ्रम, अज्ञान, चिन्ता, भय आदिके घेरेमें घिर गया हूँ। घोर अशान्ति छायी हुई है। यह कैसे दूर होगी?

देव ! संत संकेत कर गये हैं—'जाको प्रभु दारुन दुख देहीं । ताकी मति पहिले हरि लेहीं।' बुद्धिका यह विभ्रम, तो क्या तुमने किया है ? और यह कष्ट भी क्या तुम्हारी ओरसे ही आ रहा है? पर यह क्या? कष्टका और तुम्हारा क्या सम्बन्ध ? तुम तो आनन्द-रूप हो, तुम्हारे पास कष्ट ठहर ही नहीं सकता। जो तुम्हारे समीप होगा, वह कष्ट नहीं होगा आनन्द ही होगा। सम्भव है जिसे हम कष्ट कहते हैं, वह अपनी परिभाषा बदलकर आनन्दरूपमें ही तुम्हारे समीप निवास करता हो ।

हाँ, यही जान पड़ता है । तुम्हारे उपासकोंके समीप भी तो वे कष्ट रहते हैं, जिन्हें हम कष्ट समझा करते हैं। पर उन्हें वे कष्ट नहीं जान पड़ते । हम समझते हैं, नग्न रहना, पादत्राणका अभाव, रूखा-सूखा खाना, घरबार-विहीनता, बच्चोंके मनोविनोदी वातावरण-की शून्यता, धनराहित्य, निन्दा आदि क्लेशके जनक हैं। पर संत तो इन सभी क्लेशोंको सुखसे अपनाते देखे गये हैं । तो क्या उन्हें ये क्लेश क्लेश नहीं देते ? कदाचित् नहीं देते ? देते तो वे कहते और अनुभव करते ।

यह कैसे ? क्लेश क्लेश न हो ? क्लेश शारीरिक हैं, मानसिक भी हैं—क्या संतोंका शरीर और मन हम सामान्य क्लेशसे विचलित हो जानेवाले मानवोंके शरीर और मनसे भिन्न है ? कोई हमें अपशब्द कहता है, तो हमारा रोम-रोम भन्ना उठता है । एक दिन रोटी न मिले तो भूख व्याकुल कर देती है। बुद्धि निर्णय न ले सके और संशय बना रहे तो बड़ी खीझ, बड़ी तड़पन होती है । क्या यह जलन संतोंके संवेदनमें प्रवेश नहीं कर पाती ?

हाँ, हो सकता है । सम्भव है, ऐसा ही हो । यदि मनको कहीं टिका देनेपर शरीरका भान न रह सके, तो क्लेशकी क्लेशकतोंका भी भान नहीं होता । मन जहाँ रम गया, वहाँकी अनुभूति अपने साथ रखता है। विद्यार्थी परीक्षाभवनमें परीक्षा दे रहा है। उसका मन प्रश्नकी गुत्थीको सुलझाने और लिखनेमें है । न उसे भूख लगती है न प्यास । शरीरके अन्य व्यापार भी उस समय रुक जाते हैं। सड़कसे बाजे बजते निकल जाते, पर मन एक विषयमें रम रहा है, उसे अन्य विषय—बाजोंका बजना कैसे आकर्षित कर सकता है ? जब सुखप्रद वस्तु नहीं खींच सकती, तो दुःख-प्रद वस्तु भी प्रभावित नहीं कर सकेगी ।

संत तुम्हारे समीप रहते हैं । यदि दुःख-सुख उनके निकट रहते हुए भी उन्हें प्रभावित नहीं कर सकते, तो तुम्हें क्यों करेंगे ? तो क्या तुम्हारा अस्तित्व दुःख-सुखमय होता हुआ भी उससे पृथक् है ? हाँ, ऐसा ही है । अन्तर एक ही प्रतीत होता है अभिभूति-का । दुःखने मुझे अभिभूत कर रक्खा है, दबा लिया है । अभिभावी होनेके कारण वह मुझे क्लेश दे रहा है या दुःखदायक जान पड़ता है । यदि मैं उसे अभिभूत कर लूँ, मैं उसके ऊपर सवार हो जाऊँ, तो वह मुझसे दबकर मेरे लिये क्लेशकारक नहीं रहेगा, दुःख-सुख सब आपके पैरोंके नीचे पड़े हैं अतः आपके अनुचर हैं । आपके वशवर्ती आपपर अपना प्रभाव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या डाल सकेंगे ? आप दुःख-सुख क्या, सर्वाभिभावी हैं, सर्ववशी हैं, स्वभावतः सबको वशमें रखनेवाले हैं । इसीमें आपकी आनन्दरूपता है ।

संतोंको आपका यह रूप कैसे प्राप्त होता है ? कहते हैं, वे अपनी बुद्धिका योग आपके साथ कर देते हैं । बुद्धियोगमें आप उन्हें प्राप्त हो जाते हैं । पर यह योग कैसा होता है ? अपनी बुद्धिको वे आपके साथ कैसे जोड़ते हैं ? बुद्धि निर्णयात्मिका है । यह अपना निर्णय छोड़कर आपके निर्णयको स्वीकार करने लगे, बुद्धिका स्व निकालकर सर्वके साथ संयुक्त हो जाय—'जा बिधि राखै राम ताही बिधि रहिये' अपना नहीं, उसने जो निर्णय कर दिया है वही शिरोधार्य है, वही सर्वोपरि है—चलते चलो, जो कुछ मार्गमें आ जाय और मार्गमें सब कुछ उसके विधानसे ही आ रहा है, उसे देखते, भोगते चले चलो, अपनी नमक-मिर्च मत मिलाओ । बुद्धियोगका एक साधन तो यही है, कदाचित् यह सर्वश्रेष्ठ साधन भी हो ।

एक और साधन है जो बुद्धियोगको सहायता पहुँचाता है । प्रभुके गुण-कर्म-स्वभावोंका मनन, चिन्तन, अनुशीलन । यह ज्ञान-विज्ञानकी अपेक्षा रखता है । ब्रह्माण्डकी गतिविधियोंका अध्ययन, अपने शरीरका अध्ययन, बाह्यकरणों तथा अन्तःकरणोंपर विचार, आत्म-चिन्तन । यह पथ भी दुरूह है—पर है उपयुक्त पथ । सूर्य न जाने कबका हमारा साथी है । चन्द्र, नक्षत्र, विद्युत्, वायु, पावक, जल और यह विश्वम्भरा पृथ्वी माता हमें कबसे सहायता पहुँचा रहे हैं । इस अनन्त आकाशमें इनका भ्रमण निश्चित कक्षामें निश्चित गतिके साथ कितने आश्चर्यजनक रूपमें हो रहा है । इसके पीछे किसका हाथ है ? कौन इसके संतुलनको सँभाले हुए है ? और कबसे सँभाले हुए है ? यह शरीर भी तो इसीका एक भाग है । इसके कान, नेत्र, नासिका, मुख, दन्त, जिह्वा, कण्ठ, आमाशय, नाड़ी-जाल, प्राण-का कार्य, बाहु, अंगुलियाँ, नख और पैर उत्सर्जक अवयव—सब अद्भुत—अत्यन्त विचित्र हैं । कौन है इस सबका विधाता ? कौन है इस सबका संचालक ? किसकी प्रेरणामें, किसकी देख-रेखमें यह सब हो रहा है ? कोई तो है ही, जो है, वह न दिखायी दे, अनुभूतिमें तो आ रहा है—बस, उसीका पल्ला पकड़ो । ब्रह्माण्ड और शरीरपर विचार करते हुए उसीके कर्मों, दानों, ऐश्वर्योंका भावन, निरन्तर उसीके संरक्षणोंका संकल्पन उसके साथ हमारा बुद्धियोग करा देगा ।

एक और मार्ग है—भक्ति-भावना और विचारणासे पृथक् अनासक्तमयी कर्मप्रणालीका मार्ग । कर्मको कर्तव्य समझकर करना, उसकी फलाकाङ्क्षासे रहित होकर अनासक्त रूपसे कर्ममें जुटे रहना । फल-दान तो वैसे भी प्रभुके ही हाथमें है । महत्ता, तेज, बल, धन, शरीर-सम्पदा आदिका वितरण कर्मफलके रूपमें वही कर रहा है । जब वह कर ही रहा है तो तू क्यों चिन्ता करे ? फलदान उसका काम है वह जाने । तुझे क्या पड़ी है । तू यह समझ ले कि निष्काम कर्म तथा कर्मों अनासक्ति, मानो उस प्रभुकी ही सेवा है । कर्मविचिकित्सा आनेपर वही परम देव बुद्धिको प्रकाशित भी कर देता है ।

देवोंकी दक्षिणाके लिये मैं उस दाताका प्रिय बन जाऊँ । वह देवोंको सब कुछ दे रहा है, अपनी प्रिय-से-प्रिय वस्तु दे रहा है । मैं भी उसका प्रिय बन जाऊँ, जिससे वह मुझे भी दक्षिणामें देवोंको दे दे । त्वावतो अवितुः शूर रातौ—मैं भी उसके दानका एक अङ्ग बन जाऊँ । वह अविता है, रक्षक है । उसीका बनना, उसके प्रियत्वको प्राप्त करना संरक्षणका अमोघ साधन है । प्रभु मुझको प्यार करें, मैं प्रभुको प्यार करूँ । प्रभु मुझे प्रिय लगें, प्रभुको मैं प्रिय लगूँ । वे मुझमें रहें, मैं उनमें रहूँ । वे मेरे हैं, मैं उनका हूँ । इस प्रकारकी मनोवृत्ति और उससे प्रेरित आचरणशीलता प्रभुके साथ सद्यः बुद्धियोग करा देती है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक ओर साधन है—बुद्धिद्वारा उसके रथके योग्य बनना—धिया स्याम रथ्यः सदासः—अपनेको उसके रथका एक लघु यन्त्र समझना। रथमें छोटे-बड़े कई यन्त्र होते हैं। सब मिलकर उस रथका निर्माण करते हैं। सबका सह-अस्तित्व रथ शब्दकी सार्थकता सिद्ध करनेवाला है। क्या मैं इस योग्य हूँ कि उसके रथका एक अङ्ग, एक यन्त्र-भाग समझा जाऊँ। क्या मैं इतना संयत हूँ कि अपने अस्तित्वको, ढाई चावलकी अलग खिचड़ी पकानेवाला न समझकर, उसके रथ-यन्त्र रूपमें समर्पित कर दूँ ?'

मेरा अपना कुछ नहीं, जो कुछ है सो तोर।
तेरा तुझको सौंपते, क्या लागे है मोर?

और वास्तविकता भी यही है। मेरे पास जो कुछ है सब उसीका है। मैं स्वयं उसीका हूँ। यह उसीका होकर रहे, उसीका बने, मनसा-वाचा-कर्मणा उसीके वाहनका, अभिव्यक्तिका अङ्ग बने। उसका है, अतः उसीका कार्य करे। भोजन, भाजन, भजन, भवन, विभूति सबमें उसीका दर्शन करे। अपनी बुद्धिके एक-एक निर्णयपर उसकी मुद्रा अङ्कित हुई अनुभव करे। पल-पलमें पग-पगपर अपनी गति-विधिमें, अपनी क्रिया-प्रक्रियामें अपनेको उसकी गोदमें बैठा हुआ समझे। यह पद्धति बुद्धियोगकी पद्धति है।

इन सबकी अपेक्षा भी एक सुगम पथ है—संतसेवा, प्रभुके प्यारोंसे प्रेम करना, उनका प्यारा बनना। संतोंका प्यार उनकी सेवासे सहज उपलब्ध हो जाता है। सेवा करनेमें हम झुकते हैं। इसकी ओर संतोंकी तुरंत दृष्टि जाती है। उनकी यह दृष्टि ही मानो उनका हमारी ओर झुकना है। संतोंकी दृष्टि झुकी, तो उनके हृदयमें प्रविष्ट विराजमान प्रभुकी दृष्टि भी हमारी ओर झुक ही जायगी। संतोंका आशीर्वाद प्रभुका ही आशीर्वाद है। संतोंकी प्रसन्नता प्रभुकी ही प्रसन्नता है। अतः संतोंकी सेवा अन्ततोगत्वा प्रभुकी सेवाका रूप धारण कर लेगी। सेवाका यह माध्यम प्रभुके साथ बुद्धिका योग करा देगा।

मैं संतोंके निकट पहुँचूँ। मैं प्रभुके पद-पद्मोंका सामीप्य लाभ करूँ। मैं क्यों पृथक् हूँ ? क्यों दूर जा रहा हूँ ? यह शरीर, इस शरीरमें बैठे हुए देवता, ये द्यावा-पृथ्वी सब उसकी सेवा कर रहे हैं, उसकी अर्चा-पूजामें लगे हैं। उसके यज्ञको, उसकी सहनशक्तिको, उसके यशको और उसके बलको देवोंने अपने अंदर धारण किया है। उसका आध्यायनीय परम प्रसन्न रूप देवोंमें ही नहीं, नरोंमें भी परिलक्षित होता है। देवोंका बुद्धियोग तो निरन्तर प्रभुके साथ रहता है, उनका प्रकाश प्रभुके प्रकाशके साथ मिला रहता है, झकाझक ज्योतिमें ही वे निवास करते हैं, पर नरोंमें भी तो उसकी झरती विभाकी झलक दृष्टिगोचर होती है। वह नरोंमें उत्तम है। नरत्वमें उसीका प्रभुत्व है। नर-वरमें उसीकी वरणीयता है। नरकी अग्रणीयतामें उसीकी अग्रणीयता, उसीकी नयन-शक्ति सक्रिय है। यह नरत्व और यह अस्तित्व, यह मानवता और यह दिव्यता उसी एककी गुणगरिमाके निदर्शन हैं, उसीके प्रकाशक हैं, उसीके स्तोता हैं, उसीके गायक हैं। मैं भी इनका एक अङ्ग हूँ—फिर दूरी कहाँ, भिन्नता कहाँ, पार्थक्य कहाँ ?

तो क्यों भटक रहा है ? क्यों बिलख रहा है ? चल उसकी ओर, बाहरसे भी, भीतरसे भी, संतोंकी सेवा करता हुआ, निष्काम कर्ममें लीन, उसके गुण-कर्मों तथा स्वभावका चिन्तन करता हुआ, उन्हें आचरणमें उतारता हुआ, भक्ति-गद्गद हृदयसे उसके चरणोंमें झुकता हुआ—चला चल। आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों, किसी-न-किसी दिन, किसी-न-किसी क्षणमें वे प्राप्त हो ही जायँगे!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृतिकी सद्गति

(रचयिता—डॉ० श्रीबलदेवप्रसादजी मिश्र)

(१)

निर्धन हो या लखपती असल कंगाल वही
जो व्यग्र अभावों की पीड़ा में रहता है।
प्राकृत अभाव मिट जाते हैं प्राकृत श्रम से
जग क्यों संस्कृत अभाव रच उसमें दहता है ?

(२)

कृत्रिम संस्कृति के आडम्बर में सुख भी हो
पर वह विलास है, तृप्ति नहीं जिसने सीखी।
कुछ लोग कुछ दिनों, कलाकन्द चाहे चख लें
संतुष्टि दाल रोटी ही में जगको दीखी॥

(३)

तन है तो होंगे रोग, न पर न्योतो उनको
आ जायें तो हिम्मत से उनको दूर करो।
समझो कि निरुजता ही है प्राकृत नियम सदा
दम को बेदम होने को मत मजबूर करो॥

(४)

माना कि विषमताएँ दुनिया को घेरे हैं
उस घेरे को भी घेर धैर्य से बढ़े चलो।
उल्लास भरा है तो मंज़िल तय ही होगी
मंज़िल को भी सोपान बनाकर चढ़े चलो॥

(५)

निश्चय समझो जो कभी तुम्हारा बाधक था
वह देख तुम्हारा तेज स्वयं साधक होगा।
तुम अपने आदर्शों के आराधक हो लो
पथ स्वयं तुम्हारे पद का आराधक होगा॥

(६)

तुम हो अकाल, तन काल-कवल है, सही बात
पर, काल अकाल पहुँच आये यह तो न करो।
तन जला रहे क्यों चिन्ताओं की भट्ठी में
बेमौत मौत के पहिले ही तो यों न मरो॥

(७)

किसको न बुढ़ापा आता है इस जीवन में,
पर वह क्या, जिसकी यौवन में झुक जाय कमर।
जो होना है जब होगा तब होगा, लेकिन
पहिले ही ध्वस्त हुए क्यों अनहोने भय पर ?

(८)

सच है हर मानव के पीछे है पेट लगा
पर उसकी सीमा तो बीते भर है केवल।
फिर लाद रहे हो भार पीठ पर क्यों इतना
जो पेट पकड़ कर तुम्हें रुदन हित करे बिकल॥

(९)

श्रम की महिमा है खूब, पसीना यमुना है,
पर उस यमुना का इष्ट शान्ति की गंगा है।
जिस मन के स्थल में शान्ति और श्रम का संगम
वह ही प्रयाग-सा पावन, मोहक, चंगा है॥

(१०)

वह कृपा वृथा, जो क्रिया-प्रेरणा दे न हमें
वह क्रिया वृथा, जिसमें न शान्ति के तत्त्व रहें।
तड़पाने को हैं यहाँ विषम परिवेश बहुत
रम जाने को है इष्ट कि समता-सत्त्व रहें॥

(११)

विषमावस्था में भी समता के सत्त्व मधुर
कर्कश तारों पर मधुर रागिनी से भाते।
स्वर उन मस्तों की मस्त रागिनी के सुन लो
जो सम पर आकर कल्याणी धुन में गाते॥

(१२)

दुनिया के संघर्षों से लोहा लेने का
वे ध्वनियाँ तुमको सोने सा साहस देंगी।
जिससे जीवन की कालिख हीरा बन चमके
उस दिव्य किरण के कोष तुम्हें बरबस देंगी॥

(१३)

नैतिकता से, विवेक से, जो करणीय जँचे
वह, करो क्रिया के बिना न जीवन चक्र चला।
पर जो करना है उसमें यदि मन रमा नहीं
फिर तो अपने पथ का है पुनर्विचार भला॥

(१४)

दुनिया की मर्जी है, माने या मत माने
कृति की सद्गति मैंने मस्ती में मानी है।
जिसमें न सरसता है, तरंग है, वह सरिता
सूखी सिकता की केवल करुण कहानी है॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सदाचारका स्वरूप—वैज्ञानिक विवेचन

(लेखक—श्रीहरिहरदयालजी गुप्त एडवोकेट—भूतपूर्व अध्यक्ष दर्शन-विभाग, बरेली कालेज)

१–आजकल सदाचारके विषयमें बड़ी अराजकता फैली हुई है। परम्परागत आचार-विचारोंको दकियानूसी, आधुनिकताके प्रतिकूल तथा इस वैज्ञानिक युगके लिये, जब कि मानवने अणुविस्फोट कर लिया है और निकट भविष्यमें व्योमके नक्षत्रोंपर पहुँचनेकी तैयारी कर रहा है, नितान्त अनुपयुक्त और अव्यावहारिक समझा जाता है। हमारी पुरानी, लगभग सभी मान्यताएँ टूट रही हैं और चारों ओर नये मूल्योंकी पुकार हो रही है। आधुनिकताके नामपर हम प्रायः सभी दायित्वोंसे मुक्त होना चाहते हैं। यहाँतक कि प्रत्येक आधुनिक शिक्षाप्राप्त व्यक्ति आचार-विचारका मानदण्ड स्वयं ही बना लेना अपना अधिकार समझता है। आचार-विचारकी इस अस्तव्यस्ततामें व्यक्तिगत स्वार्थ ही मानदण्ड बन गया है। इसका एक बड़ा कारण यह है कि हमारे समाजमें सदाचार-सम्बन्धी कोई नियमित शिक्षा न घरमें दी जाती है, न स्कूल-कालेज अथवा युनिवर्सिटियोंमें। एक ओर समाज शीघ्रतासे अधिकाधिक जटिल होता जा रहा है, उसमें आये दिन नये-नये सम्बन्ध, नयी आवश्यकताएँ, नयी समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं। दूसरी ओर पुराने मानदण्डोंके प्रति अश्रद्धाके कारण कोई पथ-निर्देशन नहीं रह गया है। सदाचारका उपदेश और समर्थन सब करते हैं; किंतु यदि पूछा जाय कि सदाचार क्या है और क्यों है तो, कोई विरला ही कुछ सुलझा हुआ उत्तर दे सकेगा। अतः आज बुद्धिवादके युगमें इस प्रश्नका विश्लेषण नितान्त आवश्यक है।

२–सदाचार क्या है ? यह प्रश्न उठते ही उन आचारके नियमोंका ध्यान आता है, जिनके पालन करनेकी हमसे अपेक्षा की जाती है। यथा—सत्य बोलना चाहिये, चोरी नहीं करनी चाहिये, पिता-माता एवं गुरुजनोंका आदेश मानना चाहिये, स्वदेश-प्रेम होना चाहिये, दीन-दुःखियोंपर दया करनी चाहिये, दिया हुआ वचन नहीं तोड़ना चाहिये—इत्यादि, सकारात्मक-नकारात्मक कितने ही नियम समाजमें प्रचलित हैं। ऐसे ही नियमोंके समूहसे सदाचारका कलेवर बना है; पर जब हम व्यवहारके क्षेत्रमें आते हैं, तो बहुधा इन नियमोंके पालनमें परस्पर तीव्र विरोध दिखायी पड़ता है—जैसे, देश-सेवा करने और माता-पिताके आदेश अथवा कुटुम्बका पालन करनेमें; जीव-हिंसा न करने और सत्य बोलने या अपने देशके लिये लड़नेमें, किसी दीन-हीनको दयावश चोरी करने देने या पुलिसमें पकड़वा देनेमें। जब इस प्रकार कितनी ही बार प्रचलित नियमोंके बीच प्रत्यक्ष विरोध उठ खड़ा होता है, तब क्या कर्तव्य है ? यह कहा जाता है कि ऐसी स्थितिमें अधिकतर महत्त्ववाले नियमको ही बरतना चाहिये या जो अन्तःकरण कहे वह करना चाहिये। परंतु नियमोंका अधिक तथा न्यून महत्त्व कैसे निर्णय किया जाय और यदि एक ही विषयमें भिन्न-भिन्न पुरुषोंका अन्तःकरण एक दूसरेके विरुद्ध निर्णय दे, तो किसे मानना चाहिये ?

३–यह भी प्रश्न हो सकता है कि यदि इन नियमोंपर चलनेसे हमारे स्वार्थकी हानि होती है, तो हम उनको माननेके लिये क्यों बाध्य हों ? उनके अधिकारका स्रोत क्या है ? यदि कहा जाय कि यह नियम समाजने अथवा ईश्वरने बनाये हैं, तो क्या उनके आदेश दे देनेमात्रसे कोई कर्म शुभ, और कोई दूसरे अशुभ या बुरे हो जाते हैं ? क्या शुभ-अशुभका अपना स्वरूप कुछ नहीं है ? यदि उनका आदेशमात्र ही निर्णायक मान लिया जाय, तब भी नियमोंके परस्पर विरोध तथा महत्त्वकी समस्या वैसी ही बनी रहती है। साथ ही यह भी एक प्रश्न उठता है कि ईश्वर या समाजने सदाचारके नियमोंको बनाया है, तो क्यों ? हर आदेशके पीछे कोई कारण या उद्देश्य होता है। आदेश केवल आदेशके लिये नहीं दिये जाते। अतः सदाचारके नियमोंका कारण अथवा उद्देश्य क्या है ? इसका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये हमको भले और बुरेके स्वरूपका विवेचन करना पड़ेगा।

४–मनुष्य जो कुछ भी सोचता या करता है, उसके पीछे कोई प्रयोजन, एक उद्देश्य अवश्य होता है। उसी लक्ष्य या प्रयोजनको सिद्ध करनेके लिये वह सोचता और कर्म करता है, जैसे धनकी प्राप्ति, विद्योपार्जन या अन्न-वस्त्रका उत्पादन आदि। जो भी लक्ष्य वह सामने रखता है, उसीके अनुसार नियम बन जाते हैं, जिनसे वह अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्मोंको नियन्त्रित—शासित करता है । जो कर्म उसके लक्ष्यके साधक होते हैं वे भले हैं। कर्तव्य हो जाते हैं। इसके विपरीत जो कर्म लक्ष्यमें बाधक होते हैं, वही बुरे अकर्तव्य हो जाते हैं। इस प्रकार हर नियमके बननेका कारण किसी प्रयोजनकी प्राप्ति है । और जैसे ही हम कोई प्रयोजन अपना लेते हैं, उससे सम्बद्ध भले-बुरे कर्मोंकी सृष्टि हो जाती है । तो, सदाचारके नियमोंमें कौन-सा प्रयोजन निहित है, जो हमारे जीवनको शासित करनेका अधिकारी है ! चूँकि सदाचार हमारे जीवनके प्रत्येक क्षेत्रको नियन्त्रित करता है, उसमें जो उद्देश्य निहित है, वह किसी पक्ष-विशेषका नहीं हो सकता, वह हमारे सम्पूर्ण जीवन, वरं हमारे समग्र अस्तित्वसे सम्बन्धित होना चाहिये ।

५–अब यदि जीवनके प्रयोजनोंपर दृष्टिपात किया जाय, तो वह तीन श्रेणियोंमें बँटे दिखायी पड़ते हैं । कुछ प्रयोजन साधनमात्र हैं, वे अपने-आपमें कोई मूल्य नहीं रखते, जैसे धन-धाम इत्यादि—इनके द्वारा केवल दूसरे प्रयोजनोंकी पूर्ति होती है। यदि उन दूसरे प्रयोजनोंकी पूर्ति वे न करें, तो वे बेकार हैं। राजा मीडास जो वस्तु छूता, वह सोना बन जाती। यही वरदान उसने माँगा था। फलतः वह भूखा मर गया। इससे स्पष्ट है कि धन साधन-मात्र है, साध्य नहीं।

६–दूसरी श्रेणीके प्रयोजन वे हैं, जो अपने-आपमें मूल्य रखते हैं तथा दूसरे प्रयोजनोंके लिये साधन भी हैं—जैसे स्वास्थ्य। स्वास्थ्यका अपना महत्त्व भी है और इसके द्वारा नाना प्रकारके दूसरे प्रयोजनोंकी सिद्धि होती है। स्वास्थ्य अपने-आपमें हमको सुख-शान्ति प्रदान करता है और दूसरे सभी प्रयोजनोंकी प्राप्तिमें नितान्त सहायक है। अतः यह साध्य और साधन दोनों है।

७–तीसरी श्रेणीके वे प्रयोजन हैं, जो अपने-आपमें पूर्णता रखते हैं, जो किसी और प्रयोजनके लिये साधन नहीं हैं, वरं और दूसरे प्रयोजन उनके लिये साधन हैं। वे अपने स्वरूपसे ही हमको तुष्टि प्रदान करते हैं—जैसे सत्य या सौन्दर्यकी प्राप्ति हम उनके लिये ही चाहते हैं, उनसे परे किसी अन्य पदार्थके लिये नहीं।

८–इस प्रकार मूल्यकी दृष्टिसे मानव-जीवनके प्रयोजन छोटे-बड़े महान् और महानतम होते हैं। तब यह स्पष्ट है कि जो प्रयोजन सदाचारमें निहित है और जिसका सम्बन्ध हमारे समग्र जीवन अथवा सम्पूर्ण अस्तित्वसे है, वह महानतम होगा। उसकी सिद्धि जीवनके हरेक प्रयोजनकी सिद्धि होगी, वह जीवनका चरम लक्ष्य होगा और उससे हमारा व्यक्तित्व पूर्णता प्राप्त कर लेगा। इसीको धर्मपुस्तकोंमें निःश्रेयस्की प्राप्ति कहा है, जब कुछ भी और प्राप्त करना नहीं रह जाता। यह महानतम प्रयोजन स्वरूपतः केवल साध्य है, साधन नहीं। वह स्वतः मूल्य-स्वरूप है और सब मूल्योंका निर्णायक है।

९–इस परम लक्ष्य या निःश्रेयस्का स्वरूप क्या है! यह हमारे स्वरूपद्वारा ही जाना जा सकता है; क्योंकि यदि यह हमारे स्वभाव या स्वरूपके अनुरूप होगा, तभी हमारे व्यक्तित्वको पूर्णता और शाश्वत तुष्टि प्रदान कर सकेगा। और जब हम अपने स्वरूपका विश्लेषण करते हैं तो निम्न बातें दिखलायी पड़ती हैं—(१) हमारा स्थूल शरीर, (२) उसके साथ मन, (३) मनके साथ भाव, इच्छा-शक्ति और बुद्धि, (४) शरीर अपनेमें जड है, मन-भाव-इच्छा, शक्ति और बुद्धि चैतन्य दीखते हैं और इनके संयोगसे ही शरीरमें चेतनता रहती है, पर मन-बुद्धिकी यह चेतनता इनके स्वरूपगत नहीं है । आत्माकी चेतनासे ही इनमें चेतनता है, (५) इस चेतनाके कारण ही हम व्यक्ति हैं; क्योंकि हमारी इच्छाशक्ति और बुद्धि ही हमारे व्यक्तित्वका विकास करती है, उसको एक विशेष साँचेमें ढालती है, (६) शरीर चैतन्य-शक्तियोंके आधीन है, वह एक खोल या उपकरण अथवा साधनमात्र है, जिसके द्वारा हम बाहरी दुनियासे अपना सम्बन्ध स्थापित करते हैं, (७) स्पष्ट है कि यह चैतन्य शक्तियाँ ही हमारी विशेषताएँ हैं, (८) पर इनको भी नियन्त्रित, समन्वित करनेवाली हममें एक शक्ति और है, जिसको हम अपना 'स्वः' (Self) या आत्मा (Soul) कहते हैं । हमारे शरीर तथा मन, बुद्धि, भाव, इच्छाकी प्रक्रियाएँ क्षण-क्षण परिवर्तित होती रहती हैं, किंतु उनके पीछे हमारा 'स्व' या आत्मा सदा एक रहती है। उसका एकत्व (Identity) स्थायी है। असलमें चैतन्यताका स्रोत आत्मा ही है। मन, बुद्धि, इच्छा, भाव इसीकी ज्योतिसे प्रकाशित होकर चैतन्य दीखते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१०—उक्त विवेचनद्वारा हम देखते हैं कि हमारा व्यक्तित्व बड़ा ही जटिल (Complex) है। वह कितने ही भावों, शक्तियों, प्रवृत्तियोंका भण्डार है और उसकी शारीरिक, मानसिक, आत्मिक आवश्यकताएँ सभीकी पूर्ति होनी चाहिये। परंतु, उन सबकी पूर्ति एक साथ ही, एक ही समयमें नहीं हो सकती। उनको हमें इस प्रकार संगठित करना होगा कि प्रत्येकके महत्त्वके अनुसार आगे-पीछे उन सबकी पूर्ति हो सके तथा प्रत्येककी पूर्तिकी सीमा भी निर्धारित करनी होगी; क्योंकि हमारे पास न तो इतना समय है और न शक्ति ही है कि हम उन सबकी निस्सीम पूर्ति कर सकें। अपनी आवश्यकताओंकी मर्यादा बाँधनेके लिये हमें नियमोंको अपनाना पड़ेगा, जो कि हमारे जीवनकी रूप-रेखाके अनुसार ही होंगे। जैसे एक विद्यार्थी, एक गृहस्थ, एक सिपाही, एक डाक्टरके जीवनके नियमोंमें अन्तर होगा। इसी प्रकार समय, अवस्था या वातावरणकी भिन्नतासे भी नियमोंमें हेर-फेर हो सकता है। पर, यह अन्तर उतना ही होगा जितनी भिन्नता है। जहाँतक समानता है, आचारके नियम समान ही होंगे।

११—यहाँपर एक बड़े महत्त्वकी बात दिखलायी पड़ती है। चूँकि हमारा स्वरूप सरल नहीं है, अनेक भावों, इच्छाओं, प्रवृत्तियोंका इसमें समन्वय है, हम यदि समाजसे एकदम अलग किसी निर्जन स्थानमें रहें, तो वहाँ भी हमें उनके बीच समन्वय स्थापित करनेके लिये कुछ नियम तो अपनाने ही होंगे। आचारके नियम प्रत्येक स्थान तथा अवस्थामें मनुष्यके लिये अनिवार्य हैं। जिसका यह अर्थ हुआ कि सदाचार समाज, ईश्वर या सरकारके द्वारा नहीं बनाया गया है। वह हमको स्वरूपतः अथवा अपने स्वभावसे ही प्राप्त है। या तो हम नियमित नियन्त्रित जीवन अपनायें या छिन्न-भिन्न हो जायँ। अतः सदाचारके द्वारा ही हम अपने व्यक्तित्वका सर्वाङ्गीण विकास करके भरा-पूरा जीवन प्राप्त कर सकते हैं।

१२—आजकल अनेक स्त्री-पुरुष बड़ी विद्वत्ताके साथ विज्ञानकी दुहाई देकर आत्मा और परमात्मा दोनोंके अस्तित्वको नहीं मानते अथवा उनके प्रति घोर संदेह प्रकट करते हैं। वस्तुतः इन अर्धशिक्षित लोगोंको पता ही नहीं है कि आधुनिक विज्ञान कहाँ पहुँच गया है तथा विश्वके मूल तत्त्वके सम्बन्धमें उसका मत क्या है। विज्ञानके नवीनतम खोजने 'मैटर' या जड पदार्थको शक्ति (Energy) अथवा विद्युत् (Electricity) में परिणत कर दिया है। वैज्ञानिक कहते हैं कि भौतिक पदार्थ परमाणुओंसे निर्मित हैं और परमाणु 'इलेक्ट्रोन' तथा 'प्रोटोन' से बना है। 'प्रोटोन' परमाणुका केन्द्र है और 'इलेक्ट्रोन' उस केन्द्रके चारों ओर घूमते रहते हैं। परमाणुके ये दोनों अंश अत्यन्त छोटे-छोटे अदृश्य टुकड़े नहीं हैं। वरं 'प्रोटोन' धन-विद्युत् (Positive electricity) और 'इलेक्ट्रोन' ऋण-विद्युत् (Negative electricity) है और इनकी सम्मिलित प्रक्रिया परमाणु है। इस प्रकार जगत्का मूल तत्त्व विद्युत् है और उसकी गति अथवा प्रकम्पन (Vibration) द्वारा स्थूल तथा सूक्ष्म पदार्थोंका हमको अनुभव होता है। पहाड़ और समुद्रसे लेकर वनस्पति और तरह-तरहके पशु-पक्षी, रंग-रूप, गरमी-सर्दी, अग्नि-वायु सब इसी विद्युत्के ही कार्य हैं। एक ही शक्ति सब पदार्थोंके मूलमें है और उस एकसे ही नाना नाम-रूपवाली वस्तुएँ उत्पन्न होती हैं। परमाणुमें इलेक्ट्रोन चक्कर लगाते-लगाते एकाएक स्थान बदल देता है, जिसका कोई कारण नहीं होता। उसका यह स्थान-परित्याग, कार्य-कारण-सिद्धान्त (Law of causation) से परे है। यानी, विद्युत्की प्रक्रियामें स्वेच्छा भी दीखती है (Law of indeterminacy)। साथ ही विज्ञान बतलाता है कि विश्वमें सभी वस्तुएँ एक-दूसरेसे सम्बद्ध, परस्पर अवलम्बित, एक ही संगठनमें परिवेष्टित हैं। सर्वत्र नियमबद्धताका राज्य है। यह विश्व इतना विशाल है कि जो अत्यन्त दूरस्थ सितारे हैं, उनसे ज्योति (Light) को १,८६,००० मील प्रति सेकेण्डकी गतिसे चलकर पृथ्वीतक पहुँचनेमें अरबों-खरबों वर्ष लग जाते हैं। फिर भी इस कल्पनातीत महान् ब्रह्माण्डमें कहीं भी, छोटी-से-छोटी घटना घटित होती है तो उसका प्रभाव सर्वत्र होता है, भले ही प्रत्यक्षतः हमें इसका भान न हो सके। समग्र विश्व एक बौद्धिक संस्थान (Rational system) है। इसीसे वैज्ञानिक पूर्ण विश्वासके साथ प्राकृतिक नियमोंको खोजा करते हैं। घटनाएँ चाहे जितनी अस्त-व्यस्त दिखायी पड़ें, उनका ध्रुव विश्वास है कि प्रकृतिमें नियम है अवश्य। और वे प्राप्त नियमोंको उत्तरोत्तर अधिक विस्तृत नियमोंके अन्तर्गत लाते रहते हैं, जबतक कोई एक महानतम नियम या नियम-संस्थान न मिले, जिसके द्वारा सम्पूर्ण सृष्टिकी व्यवस्था हो जाय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैज्ञानिकोंकी यह दृढ़ धारणा है कि ऐसा एक व्यापक नियम अवश्य है। इसीसे वे सतत प्रयत्नशील रहते हैं।

१३–यद्यपि वैज्ञानिक विद्युत्को सब पदार्थोंका मूल तत्त्व कहते हैं, वे उसके स्वरूपको नहीं जानते। विद्युत् क्या करती है, यह बता सकते हैं, पर वह क्या है, यह बतलानेमें वे असमर्थ हैं; क्योंकि उनकी प्रयोगशालामें और वस्तुओंकी भाँति विद्युत्से साक्षात्कार सम्भव नहीं है। वे कहते हैं इस प्रश्नका उत्तर तत्त्ववेत्तासे या तर्कशास्त्र अथवा धर्मशास्त्रसे पूछो। स्वरूपतः विद्युत् प्रयोगकी वस्तु नहीं है, वह एक व्यापक शक्ति है—बस, यहींतक विज्ञानकी पहुँच है। परंतु हम पूछ सकते हैं कि क्या विद्युत् इस अत्यन्त स्वनियमपरिचालित बौद्धिक संस्थानका निर्माण करनेवाली एक अंधी शक्ति या जड प्रकृति हो सकती है? इतने विशाल नियमबद्ध सुसंगठित विश्वको निर्मित करनेवाली शक्तिका सर्वज्ञानसम्पन्न, सर्वव्यापक, सर्वसमर्थ, अनन्त ऐश्वर्यवान् होना अनिवार्य है। चैतन्य शक्ति ही ऐसी हो सकती है, जिसका हम अपने अन्तरमें अनुभव करते हैं। उसको प्रयोगशालामें, पानेका प्रयास वैसा ही है, जैसा हवाको देखनेका हठ करना। वैज्ञानिक स्वयं कहते हैं कि विद्युत् ज्ञानेन्द्रियोंद्वारा नहीं जाना जा सकता। एडिंग्टन, आइन्सटीन, हक्सले आदि चोटीके वैज्ञानिक कहते हैं कि जगत्की अन्तिम व्याख्या प्राकृतिक नियमोंसे नहीं, किसी चैतन्य स्वरूप (Conscious Intelligence) सर्वशक्तिमान् सर्वज्ञान-सम्पन्नके द्वारा ही सम्भव है। विज्ञान कहता है कि मूल शक्तिके प्रकम्पन (Vibration) से ही सर्व-पदार्थ उत्पन्न होते हैं। वेदोंमें कहा गया है कि 'ॐ ब्रह्म' से ही सृष्टि हुई है। ॐ शब्द है और शब्द प्रकम्पन है, सबसे पहला प्रकम्पन। यह प्रकम्पन ही सारे विश्वके मूलमें है। इसीको बाइबिलमें–In the beginning was the Word and the Word was God—कहा गया है। अर्थात् शब्दब्रह्मसे ही सृष्टिका आरम्भ है। तब धर्मशास्त्र जिसको परमात्मा कहते हैं और जिस महान् मूल शक्तिकी ओर विज्ञान पथ-प्रदर्शन कर रहा है वह एक ही है, चाहे जिस नामसे उसे पुकारें। दोनोंमें प्रभेद करना, हठधर्मी मात्र है।

१४–चैतन्य जहाँ भी हो, उसका असली स्वरूप सर्वत्र एक ही होगा। इस प्रकार चैतन्य-स्वरूप हमारा आत्मा भी सर्वज्ञानवान्, सर्वसमर्थ, पूर्ण ऐश्वर्यशाली होना चाहिये। इसका प्रमाण यह है कि हमारी सब महत्त्वाकाङ्क्षाएँ असी- हैं, अनन्त हैं। हमारी अभिलाषा यह है कि हम सभी ज्ञा- उपलब्ध कर लें, जबतक कुछ भी जानना शेष रहे- मानव-मन शान्त नहीं बैठ सकता। उसी तरह हम सम्पू- प्रभुत्व, सम्पूर्ण सौन्दर्य, अनन्त शक्ति, अनन्त जीवन चाह- हैं। धन हो, अधिकार हो या मान-यश हो, कहीं भी ह- सीमामें बँधना नहीं चाहते। हमारी स्पर्द्धाओं, अभिलाषाओं- अन्त है ही नहीं। हम सम्पूर्ण रुकावटों, यहाँतक देश-कालपर भी विजयी होना चाहते हैं। इसीको धर्मशास्त्र- मुक्त होना कहा गया है। हम इस जीवनमें अपनी शक्तियों- सीमित पाते हैं, पर हमारी आकाङ्क्षाएँ, सभी अन- निस्सीम हैं। यदि स्वरूपतः मनुष्य सीमित होता, तो उ- अनन्त-निस्सीम अभिलाषाएँ धारण करनेकी क्षमता ही होती और अनन्तकी ओर जो उसकी सदा प्रेरित होने- क्षमता है, वह कभी नष्ट नहीं होती। इतिहास बतलाता और हम देखते हैं कि एक-से-एक बढ़कर विद्वान्, बुद्धिम- शक्तिमान्, ऐश्वर्यवान् व्यक्ति हो गये हैं और होते हैं, ऐसे मह- कि विश्वास करना कठिन हो जाता है। मनुष्यकी उन्न- उपलब्धि, पराक्रम, शारीरिक, मानसिक अथवा आत्मिक- किसीकी सीमा नहीं बाँधी जा सकती। जर्मन दार्शनि- काण्ट कहता है कि हमारा नैतिक आदर्श निस्सीम है औ- जीवन सीमित, इस कारण शारीरिक मृत्युसे हमारा अ- नहीं हो सकता, हम स्वरूपसे अमर हैं, ताकि अ- आदर्शको प्राप्त कर सकें। ऐसा नहीं हो सक- कि विश्वशक्तिने हमें असीम अभिलाषाएँ दे- पर उसकी उपलब्धिकी क्षमता अथवा अवसरसे वञ्चि- रक्खा हो। वर्तमानमें हम सीमित जान पड़ते हैं; पर वस्त- स्वरूपसे हम हर प्रकार अनन्त हैं। इसी कारण मनुष्य- विकासकी कोई सीमा नहीं है। मृत्यु शरीरकी होती आत्माकी नहीं, जैसा कि भगवान्ने गीतामें कहा है। अपने आदर्शों, आकाङ्क्षाओंकी पूर्तिके लिये बार-बार श- धारण करते हैं, जबतक सब सीमाओंका अतिक्रमण कर लें और पूर्णता प्राप्त करके मुक्त न हो जायँ। ह- जीवन जन्म और मरणके बीचका काल नहीं है, जै- हम समझते हैं। वरं जन्म और मृत्यु दोनों हमारे अ-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवनके अन्तर्गत हैं। जीवन तो सतत गतिशील है और उसीके दौरानमें जन्म और मरण होता रहता है।

१५—अब यदि मनुष्य निस्सीम है, तो परमात्मा और आत्मा दोनों स्वरूपतः एक हैं। दोनोंमें भेद इतना ही है कि मनुष्य शरीरसे अपने कर्मोंके कारण आवद्ध है। वस्तुतः परमात्मा ही भिन्न-भिन्न रूपोंमें हर ओर प्रकट है। अपने-परायेका भेद इस कारण है कि हम अपने वास्तविक स्वरूपसे अनभिज्ञ हैं। यदि गम्भीरतासे विचार करें, तो सब भेद-भाव मिट जाते हैं। अपनेको पृथक् समझनेकी प्रवृत्ति ही भ्रान्तिपूर्ण है। हमारा शरीर माता-पिताका, अर्थात् समाजकी ही देन है। हम समाजद्वारा उत्पन्न होते हैं और समाजमें ही हमारा विकास तथा सभी आवश्यकताओंकी पूर्ति हो सकती है। समाजके हम वैसे ही अभिन्न अङ्ग हैं, जैसे हमारे शरीरसे उसके अवयव। अवयव शरीरसे पृथक् होकर नष्ट हो जाते हैं, उसी प्रकार समाजके बिना हमारा जीवन प्रत्येक दृष्टिसे अत्यन्त दीन-हीन हो जायगा। समाज जितना समृद्ध, ज्ञान-कला-कौशलसे परिपूर्ण होगा, उतना ही हमारा व्यक्तित्व भी सुसंस्कृत, विकसित होगा। पृथक् दीखते हुए भी हमारा सम्बन्ध अन्य व्यक्तियोंसे कितना गहरा है, यह निम्नलिखित तथ्योंसे प्रकट होता है—

(क) सबसे अपनेको पृथक् करके अपने विषयमें न हम कुछ कह सकते हैं, और न सोच ही सकते हैं। यदि पूछा जाय कि आप क्या या कौन हैं, तो, आप यह कह सकेंगे, हम व्यापारी हैं, वकील हैं, विद्यार्थी हैं या अमुकके पिता हैं, पुत्र हैं, भ्राता हैं या फिर अमुक अधिकारी हैं, अमुक स्थानके रहनेवाले अथवा अमुकके स्वामी इत्यादि। यह सभी सामाजिक सम्बन्धोंका वर्णन है। सम्पूर्ण सामाजिक सम्बन्धोंको त्यागकर किसी व्यक्तिके बारेमें कुछ नहीं कहा जा सकता और न सोचा ही जा सकता है। दूसरोंसे सम्बन्धद्वारा ही हर मनुष्यका व्यक्तित्व निर्मित होता है।

(ख) यह भी एक भ्रम है कि व्यक्तिगत स्वार्थ परस्पर-विरोधी हैं। प्रत्येक व्यक्तिका स्वार्थ उसके कुटुम्ब, स्त्री, संतान, इष्ट-मित्रके स्वार्थमें लिपटा हुआ है। ऐसा कोई स्वार्थ नहीं, जो पूर्णरूपेण अकेले एकका ही हो और दूसरे कोई भी व्यक्ति उसमें सम्मिलित न हों। अपना स्वार्थ सिद्ध करनेमें व्यक्ति अनिवार्यरूपसे दूसरे व्यक्तियोंका स्वार्थ भी सम्पन्न करता है। जो इस बातका द्योतक है कि दूसरोंसे वह अविच्छिन्न है। उनसे नितान्त विलग होकर उसका स्वयंका स्वार्थ भी कुछ नहीं रह जाता। दूसरे लोगोंसे उसके सम्बन्धका क्षेत्र छोटा हो अथवा बड़ा, पर वह दूसरे लोगोंसे अविभाज्य है।

(ग) यदि सब सम्बन्धोंका सम्पूर्ण विच्छेद कर दीजिये, तो आपका व्यक्तिगत जीवन एकदम रीता, असहनीय हो उठेगा। इसीसे समाजसे परित्यक्त, तिरस्कृत मनुष्य, जब उससे कोई भी प्रेम नहीं करता, अपने जीवनका मूल्य खो देता है और आत्महत्या कर लेता है। यदि अपने आपमें वह कुछ है, तो वह ऐसा क्यों करता है? यह वैसा ही है कि जैसे शरीरका रस किसी एक अङ्गमें जाना बंद हो जाय, तो वह सूख जाता है। आप समाजके जितने बड़े भागसे अपनेको संलग्न करेंगे, उससे तादात्म्य प्राप्त करेंगे, उतना ही विकसित और विशाल आपका व्यक्तित्व होगा। यह स्पष्ट सत्य विश्वके महापुरुषोंमें दृष्टिगत होता है।

१६—इसी कारण ईसाने कहा है—Others are the flesh of your flesh and the bone of your bone—अर्थात्, दूसरे मनुष्य तुम्हारे ही हाड़-मांस हैं, तुम और वे वस्तुतः एक हैं। इस प्रकार दूसरोंको क्षति पहुँचाना, अन्ततः अपनी ही हानि करनी है और दूसरोंका उपकार करना अपना ही भला करना है। इसी कारण श्रीमद्भागवतमें कहा गया है—'परोपकार ही धर्म है।' यही सदाचारका रहस्य है। सबके जीवनके साथ मिलाकर ही हम अपने जीवनको परिपूर्ण कर सकते हैं। अपने विचारोंको संकुचित करके हम अपने 'स्व', अपने आत्माका ही हनन करते हैं। उसको अपेक्षाकृत क्षुद्र, दीन-हीन बना देते हैं, जबकि वह स्वरूपसे अनन्त है। आत्माकी विशालताको सतत चरितार्थ करते रहना ही सदाचारका अर्थ है। इसीसे निःश्रेयस्की, पूर्णताकी, मुक्तिकी प्राप्ति होगी।

१७—सदाचारके स्वरूपको गीतामें भगवान्ने स्पष्टरूपसे चित्रित कर दिया है। अर्जुनकी यही समस्या थी कि जीवनके प्रचलित आचारके नियमोंमें जब तीव्र विरोध उत्पन्न हो जाय तो क्या करना चाहिये। वह भाव-अतिरेकसे किंकर्तव्य विमूढ़ होकर कर्मसे पलायन करना चाहता था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवान्ने उसको बतलाया कि तुम और विश्व-आत्मा एक हो। अपनेको नाते-रिश्तोंमें सीमित मत करो, विश्वके कल्याणकी कामनासे प्रेरित होकर कर्म करो, केवल अपने या स्वजनोंके लिये नहीं। उन्होंने कहा कि विश्वात्माके साथ तादात्म्य होकर कर्म करना ही सत्य है—धर्म है, यही तुम्हारा सत्स्वरूप है। उसके विपरीत कर्म करना—अपनी आत्माकी विशालताको भूलकर उसको संकुचित कर देना—यही अनाचार है—पाप है। दूसरे शब्दोंमें उन्होंने फिर कहा—सब कर्मोंको मुझ विश्वात्माको अर्पण कर दो—अर्थात् विश्व-हितार्थ कर्म करो, स्वार्थके लिये नहीं।

१८—विश्वका स्वरूप और उसके धारण-पोषणका नियम गीताके अध्याय ३। १०। ११ में भगवान्ने बड़ी सरलतासे थोड़ेसे शब्दोंमें अङ्कित कर दिया है। वे कहते हैं, प्रारम्भमें यज्ञके साथ-साथ प्रजाको उत्पन्न करके ब्रह्माने कहा—'इस (यज्ञ) के द्वारा तुम्हारी वृद्धि हो, यह तुम्हारी कामधेनु अर्थात् इच्छित फलोंका देनेवाला हो। तुम सब इस यज्ञसे देवताओंको संतुष्ट करते रहो, वे देवता तुम्हें संतुष्ट करते रहें, इस प्रकार दोनों कल्याण प्राप्त करें'—इससे स्पष्ट है कि स्वरूपसे ही यह विश्व एक है, इसके अङ्ग परस्पर अवलम्बित हैं और उन सबका कल्याण एक दूसरेमें संनिहित है तथा यज्ञ कर्म ही नियम है। इस कारण सर्वदा सम्पूर्ण जगत्के हितार्थ कर्म करना चाहिये। यज्ञ सर्वलोकहितार्थ ही किये जाते हैं, उसमें संकुचित स्वार्थका भाव नहीं होता। हमारा सारा जीवन यज्ञमय होना चाहिये, इसीमें हमारा परम कल्याण है। ऐसी उदार दृष्टिसे किया हुआ कर्म हमको बन्धन-मुक्त करता है। स्वार्थ-परता हमें बन्धनमें डालती है; क्योंकि स्वयं ही हम सीमित बनकर बन्धन स्वीकार कर लेते हैं। यह यज्ञ ही है—निष्काम कर्म और सच्चा समाजवाद। इसीका अभ्यास हममेंसे प्रत्येक को करना चाहिये।

कामके पत्र

(१)

मानसिक दासता

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण! आपका कृपापत्र मिला। आपने लिखा सो ठीक है, पर इसमें प्रधान कारण 'मानसिक दासता' है। वास्तवमें शारीरिक दासता की अपेक्षा मानसिक दासता कहीं अधिक भयानक और पतनकारक होती है। आज हम इसी मानसिक दासताके शिकार हो रहे हैं। अंगरेजोंका शासन नहीं रहा। वे यहाँसे चले गये। भारतने शारीरिक तथा शासनकी स्वतन्त्रता प्राप्त की, परंतु अंगरेजोंके रहन-सहन, खान-पान, वेश-भूषा, भाषा-भाव एवं जीवन-पद्धतिका इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि उनके जानेके बाद हम और भी अधिक उनकी नकल करने लगे। महात्मा गांधीजीके आन्दोलनके समय देशमें खादीका धोती-कुर्ता विशेषरूपसे फैला था। धोती-कुर्ता पहननेमें लोग गौरव अनुभव करते थे। विभिन्न प्रदेशोंमें पहलेसे ही अपना-अपना पहनावा था। धोती, कुर्ता, मिर्जई, साफा, पगड़ी, टोपी आदिका प्रचलन था। अब तो चारों ओर सभी प्रदेशोंमें और सभी अवसरोंपर—यहाँतक कि सामाजिक कार्योंमें, धार्मिक समारोहोंमें और विवाह-शादी आदिमें भी पेंट, कोट, बुशशार्ट, नेकटाई आदि ही नजर आते हैं, बल्कि इसीमें लोग अपनी शान समझते हैं और देशी पोशाक धोती-कुर्ता पहननेवालोंको मानो असभ्य या पिछड़े हुए मानते हैं। यह मानसिक दासताका प्रत्यक्ष चिह्न है। जिस जातिमें अपनी संस्कृति, अपने वेश-भूषा, अपने खान-पान, अपने भाषा-भावके प्रति हेयबुद्धि हो जाती है, वह अंधी होकर दूसरोंकी नकल करती है; उसे दूसरोंकी बुरी चीज भी अच्छी मालूम होती है और अपनी अच्छी भी बहुत बुरी मालूम होती है। यही कारण है कि आज पवित्र भारतीय संस्कृतिके नर-नारी विदेशी पोशाक पहनकर अभिमान करते हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मातृभाषाके बदले अंगरेजीमें बातचीत करना गौरवकी बात मानते हैं। हाथ-पैर धोये बिना जूते पहने खाना, कुरसीपर बैठकर खाना, हरेककी जूँठन खाना, छूरी-काँटेसे खाना, प्रणामादि न करके अंगुली दिखाना या हाथ मिलाना; बच्चोंको माताजी, अम्माजी, पिताजी, बाबूजी आदि कहना न सिखाकर मम्मी, डैडी, पापा कहना सिखाना, खड़े-खड़े मूत्र-त्याग करना, खाकर कुल्ले न करना आदि छोटी-बड़ी इतनी बातें हैं, जिनसे सब प्रकारकी हानि होती है, पर हमारा गुलामीसे भरा दिमाग इसीमें लाभ मानकर उन्हींको करता-करवाता है। यह हमारा मानस-पतन है जो हमें सदाचारसे दूर हटाकर दुराचारमें प्रवृत्त करता है।

सबसे दुःखकी बात तो यह है कि अपनी संस्कृति-की जड़ काटनेवाले इन सब कार्योंमें हमारी गौरवबुद्धि हो गयी है। भगवान् ही रक्षा करें।

निज देशमें ही आज हम पूरे विदेशी हो गये।
वेश, भाषा, भाव सब अपने चिरन्तन खो गये॥
मानसिक दासत्व वश कर त्याग निज संस्कृति अमल।
करने लगे हर बातमें पाश्चात्त्य की अंधी नकल॥
श्वेत धोती, साफ कुर्ता, मिरजई, पगड़ी हटी।
कोट औ पतलूनके सँग नेकटाई आ डटी॥
खाने लगे जूँठन सभीकी मेजपर रक्खी हुई।
भोजकी पशुरीति निकली अब बफ्फे (Buffet) नामक नई॥
मातृभाषा छोड़ अंगरेजी लगे हम बोलने।
पश्चिमी रँगमें रँगे ही लगे हिलने-डोलने॥
बाल भी माता-पिताजी अब कभी कहते नहीं।
ममी, डैडी और पापा बोलते हैं सब कहीं॥
अन्ध पर-अनुकरणताका जोर अब सब ओर है।
इसीसे अब पतनका भी कहीं ओर न छोर है॥

विशुद्ध अध्यात्म-जगत्से इसका कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है; क्योंकि उसमें किसी देश, काल, जाति, संस्कृतिका भेद नहीं है। तथापि अध्यात्मकी ओर अग्रसर होनेमें जितनी त्यागमूलक भारतीय संस्कृति सहज सहायक है, उतनी ही भोगमूलक पाश्चात्त्य संस्कृतियाँ सहज बाधक हैं। अतएव इस दृष्टिसे भी भारतीय संस्कृतिका समादर, संरक्षण छोटे-छोटे व्यावहारिक कार्योंके द्वारा भी किया जाना आवश्यक है।

(२)

मङ्गल सोचो, मङ्गल करो

प्रिय भाई ! सप्रेम हरिस्मरण ! तुम्हारा पत्र मिला था। तुम्हारे साथ जो कुछ हो रहा है, वह यद्यपि बड़ा ही दुःखद और अवाञ्छनीय है, पर उसे भगवान्का मङ्गल-विधान मानकर संतुष्ट रहनेकी चेष्टा करो। निश्चय ही, मनुष्यको फलरूपमें जो कुछ भी भला-बुरा—अनुकूल-प्रतिकूल प्राप्त हो रहा है, वह उसके अपने ही किये हुए कर्मका फल है, दूसरे तो केवल निमित्तमात्र हैं। अतएव उनपर रोष करके उनके प्रति मनमें द्वेषका स्थान नहीं देना चाहिये। वे तुम्हारा बुरा करने जाकर वस्तुतः अपना ही बुरा कर रहे हैं—अपने लिये आप ही दुःखोंका निर्माण कर रहे हैं अतएव दयाके पात्र हैं। फिर तुम्हारे मनमें द्वेष होगा तो तुम अंदर-ही-अंदर जलते रहोगे। द्वेषाग्नि जलाया करती है और द्वेषवश उनको हानि पहुँचानेकी चेष्टा करोगे जिससे वैर बद्धमूल होगा, तुम्हारे चित्तकी अशान्ति बढ़ेगी और तुम्हारी साधन-शक्ति जो अपने तथा दूसरोंके मङ्गल-सम्पादनमें लगती, अमङ्गलमें लगकर सब ओर अमङ्गलकी सृष्टि करती रहेगी। सर्वोत्तम तो यह है कि बुरा करने-वालेका भला करनेकी चेष्टा करके तुम अमृत-वितरण करो, उनके मनके विषको नष्ट कर दो। यही संतका आदर्श है।

उमा संत की यहै बड़ाई। मंद करत सो करइ भलाई॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्यको सदा मङ्गल सोचना तथा मङ्गल-कार्य करना चाहिये। प्राणि-मात्रका मङ्गल सोचने-करनेवालेका कभी अमङ्गल नहीं होता। उसका प्रत्येक श्वास मङ्गल-मय बन जाता है। उससे सूर्यसे प्रकाशकी भाँति सहज ही सबको मङ्गल प्राप्त होता है। उसका बुरा चाहनेवालोंका मन भी उसकी मङ्गलमयतासे प्रभावित होकर बदल जाता है। वह उनकी बुराईको भलाईमें परिणत कर देता है। पर कहीं कदाचित् ऐसा न भी हो तो उसका अपना अमङ्गल तो होता ही नहीं। यही बड़ा लाभ है।

अतएव तुम मनमें भलीभाँति सोचकर दूसरे तुम्हारे अहित—अमङ्गल कर रहे हैं, इस मान्यताको छोड़कर कभी किसीका बुरा मत चाहो। अपने मनको तथा क्रियाको अपना तथा सबका भला सोचनेमें लगाकर सबको सहज ही मित्र बनानेका मार्ग स्वीकार करो। शक्तिका सदुपयोग करके उससे लाभ उठाओ। कभी दुरुपयोग मत करो।

जो संकट आया है, उसे भगवान्का मङ्गल-विधान मानकर स्वीकार करो। उसे टालनेकी न्याययुक्त चेष्टा करो। इसके लिये प्रधान उपाय है—'सच्चे विश्वासके साथ भगवान्से कातर प्रार्थना।' पर ध्यान रहे प्रार्थनामें कभी भी दूसरोंका अमङ्गल हो, दूसरोंको हानि पहुँचे—ऐसा भाव मत आने दो। बुद्धिको स्थिर रखकर भगवान्से यही प्रार्थना करो कि 'नाथ! किसीका भी कभी तनिक भी अमङ्गल हो, ऐसा विचार मेरे मनमें कभी न आवे, ऐसी चेष्टा मुझसे कभी न बन पड़े। सबका मङ्गल हो, उसीके साथ मेरा भी मङ्गल हो। मुझपर जो कष्ट आया है, उसे आप हरण कर लें। उत्तम तो यह है कि मैं उस कष्टको आपका मङ्गल वरदान मानकर उसे सचमुच वरदानमें बदल सकूँ, आपकी कृपाके विश्वासपर। ऐसा बल दो मेरे प्रभु! यही वास्तवमें आपके द्वारा मेरा कष्ट-हरण होगा। मुझे प्रत्येक कष्टमें सदा-सर्वत्र आपकी अनन्त कृपा[illegible] दर्शन हों। आपका मङ्गलमय आनन्दमय कर-स्पर्श प्रा[illegible] करके मैं धन्य हो सकूँ। मेरा जीवन सर्वथा आ[illegible] अनुकूल रहे—उसका बाहरी रूप कैसा ही क्यों [illegible] हो—सुखमय या घोर दुःखमय।'

बस, इसी आशयकी विश्वासपूर्वक सच्चे हृद[illegible] अपने ही शब्दोंमें प्रार्थना करो। प्रभु-कृपासे तुम [illegible] संकटोंसे सर्वथा मुक्त हो जाओगे।

फिर, वस्तुतः ये संकट कुछ भी अर्थ नहीं रखते[illegible] यहाँके धन, मान, वैभव, अधिकार, पद, पदार्थ स[illegible] तो अनित्य, अपूर्ण, विनाशी अतः दुःखरूप हैं। इन[illegible] मनके अनुकूल न रहने या चले जानेको हम 'दुःख[illegible]' नाम देते हैं और इनके अनुकूल तथा बने रहने[illegible] 'सुख' कहते हैं। यह हमारे मनकी कल्पनामात्र है[illegible] इनके आने-जानेसे आत्मामें कोई लाभ-हानि नहीं होती[illegible] अतः इस मोहको छोड़नेका प्रयास करो। जगत्में [illegible] यात्रीकी भाँति रहो और जीवनयात्रा चलाते रहो। [illegible] ध्यान रक्खो—यात्राके लक्ष्य रहें भगवान्, भोग नहीं[illegible]

तुम्हारा शरीर ठीक होगा। तुम चिन्ता बहुत कर[illegible] हो। चिन्ताका बुरा असर शरीरपर भी होता है[illegible] तुम्हारे पेटकी बीमारीका यह एक प्रधान कारण [illegible] सकता है। अतएव हर हालतमें भगवान्के विधान[illegible] मङ्गलमयतापर विश्वास करके प्रसन्न रहनेका प्रया[illegible] करो। शेष भगवत्कृपा।

(३)

भगवान् और भगवान्की स्वरूपलीला

भैया! क्या लिखूँ। जो कुछ दीखता है वह [illegible] नहीं। सदा-सर्वत्र एक भगवान् ही हैं। उन्हींकी अव्य[illegible] और व्यक्त स्वरूप-लीला है। तीव्र चाह तथा उचि[illegible] सत्प्रयत्न होनेपर उनकी कृपासे यह तत्त्व प्रत्यक्ष [illegible] सकता है, होता है। फिर किसी समय तो जगद[illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारा दृश्य ही लुप्त हो जाता है, केवल एक अचिन्त्य अनिर्वचनीय स्वरूप रह जाता है, उसे समाधि कहा जा सकता है और जिस समय जगत् दीखता है, जगत्की सारी प्रापञ्चिक स्थितिकी उपलब्धि होती है, उस समय भी कभी जगत्के होनेवाले छोटे-बड़े प्राकृतिक परिवर्तनोंका कोई प्रभाव नहीं होता। वे सभी नित्य प्रशान्त एकरस महान् भगवत्-समुद्रकी लीला-लहरियाँ होती हैं। लहरें—तरङ्गें मधुर-कटु, सौम्य-भयानक, बृहत्-क्षुद्र, बहुसंख्यक-अल्पसंख्यक हो सकती हैं; पर होती हैं सब उसी समुद्रमें, उसी समुद्रसे और उसी समुद्रकी। अतएव इस क्रियाशील कालमें भी एकमात्र भगवान् ही प्रत्यक्ष रहते हैं। तुम भी इस सत्यको प्राप्त करनेका सङ्कल प्रयास करो। भगवान् तुम्हारी सहायता करेंगे। शेष भगवत्कृपा।

गोरक्षार्थ बाबा भोलेनाथका शरीर-त्याग

(लेखक—श्रीओमप्रकाशजी गोयल)

गोमाताके लिये अपने प्राणोंको दावपर लगानेका जो महाप्रण आदरणीय गोभक्तों और महात्माओंद्वारा किया गया है, वह तबतक चलता रहेगा; जबतक कि भारतमें पूर्णरूपसे गोहत्या बंद नहीं हो जाय। यह सबको विदित ही है कि सहस्रों स्त्री-पुरुष, बच्चे, साधु एवं संत महानुभाव 'गोहत्याबंदी' आन्दोलनमें सत्याग्रही बनकर इस महायज्ञमें अपनी आहुति देते आ रहे हैं एवं हजारों सत्याग्रही जगह-जगह जेलोंमें बंदी बनकर पड़े हैं। ७ नवम्बर, १९६६ को घटित गोलीकाण्डकी दुर्घटना हमारे राष्ट्रके ऊपर एक भयंकर अभिशाप बनकर रह गयी है, जिसे कभी भी भुलाया नहीं जा सकता। क्या उस घटनाके शिकार महानुभावों एवं संत पुरुषोंका बलिदान निष्फल जायगा? इसका उत्तर स्पष्ट है, 'नहीं! कदापि नहीं!!'

इसी संदर्भमें महायोगिराज, परम गोभक्त एवं शिवाराधनामें तल्लीन साक्षात् शिव-स्वरूप बाबा भोलेनाथका नाम गोरक्षाके इतिहासमें स्वर्णाक्षरोंमें अङ्कित होगा और २२-३-६७ का दिन ऐतिहासिक दिन होगा, जब उन्होंने गोरक्षार्थ आत्मोत्सर्ग किया। बाबा भोलेनाथजी, मन्दिर श्रीवनखण्डेश्वरनाथ महादेव, ग्राम—गैलाना, जिला—आगराके महन्त थे। उनकी बड़ी मान्यता थी। बहुत दूर-दूरसे भक्तजन, स्त्री-पुरुष, राजा-महाराजा, साधु-संन्यासी उनके दर्शनार्थ आते रहते थे और बाबाके दर्शन पाकर अपनेको कृतार्थ मानते थे।

जब गत २० नवम्बर, १९६६ को जगद्गुरु शंकराचार्य आदि महात्माओंने आमरण अनशन आरम्भ किया तो परम गोभक्त बाबा भोलेनाथ भी इस महायज्ञमें पीछे नहीं रहे। उन्होंने कार्तिक पूर्णिमा दिनाङ्क २८-११-६६ से प्रतिदिन केवल एक बेलपत्ती चबाकर एवं लगभग एक छटाँक गङ्गाजल ग्रहण करनेका दृढ़ संकल्प किया, जिसे उन्होंने अन्तिम दिन, दिनाङ्क २२-३-६७ तक निभाया। बाबाने उसी दिनसे मौनव्रत भी धारण कर लिया था और बाबा भोलेनाथका लक्ष्य गोवध-बंदीपर पूर्ण सफलता था जिसके लिये उन्होंने अपने प्राणोंकी बाजी लगा दी। बाबा सदा यही कहा करते थे कि जिस कार्यको प्रारम्भ करो, उसे आखिर तक निभाओ। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण भी बाबाने प्रस्तुत किया।

बाबा भोलेनाथका पूर्वाश्रमका नाम श्रीदेवकीनन्दन अवस्थी था। उनके पिता स्वर्गीय पं० बालगोविन्दजी अवस्थी उन्नाव जिलेके तौरा गाँवके प्रतिष्ठित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कान्यकुब्ज परिवारके थे । बाबा भोलेनाथकी आयु इस समय लगभग १०० (सौ) वर्ष थी । भारतके विभिन्न तीर्थस्थानोंका भ्रमण करनेके पश्चात् सन् १९४७ में आपने मन्दिर श्रीवनखण्डेश्वरनाथ महादेव, आगरापर स्वयंको प्रतिष्ठापित किया । सन् १९५७ से उन्होंने आबादीकी ओर जाना एवं अन्न, नमक ग्रहण न करनेका संकल्प किया । केवल दिनमें एक बार ही फलाहार करते थे । वह भी बहुत सूक्ष्म मात्रामें । इसका भी त्याग उन्होंने २८-११-६६ से कर दिया था । शरीरपर केवल एक कौपीन ही रहता था ।

बाबा भोलेनाथ हर समय शिवाराधनामें तल्लीन रहते थे और अपने भक्तोंको सन्मार्ग प्रदर्शित करते थे । भक्तोंको गोसेवा एवं गोपालनका उपदेश भी निरन्तर देते रहते थे, जिसके वे स्वयं प्रतीक थे । इसका प्रत्यक्ष उदाहरण यह है कि उनके आश्रमपर ही लगभग पचास गायें सदासे रही हैं जिनकी सेवा, पूजा एवं भोजनकी व्यवस्थाका पूर्ण कार्य भोलेबाबा स्वयं करते थे तथा भक्तोंको उनकी सेवाका पाठ पढ़ाते थे ।

बाबा भोलेनाथको उनके कई हजार भक्तोंकी उपस्थितिमें उनके स्थानपर ही बड़े समारोह एवं श्रद्धाभावके साथ दिनाङ्क २३-३-६७ प्रदोषके दिन सायं ३॥ बजे समाधिस्थ कर दिया गया । सहस्रों भक्त, साधु, महात्मा एवं नर-नारियोंने श्रद्धापूर्ण हृदयसे बाबा भोलेनाथको अन्तिम श्रद्धाञ्जलि अर्पित की । धन्य हैं बाबा भोलेनाथ, जिन्होंने इस अवस्थामें भी गोरक्षार्थ अपना शरीर त्याग कर शिवलोक प्राप्त किया एवं युग-युगके लिये अमर हो गये ।

ऐसे महान् संत पुरुषोंका त्याग एवं बलिदान भारत-सरकारको सुबुद्धि प्रदान करेगा और उसको गोहत्या-बंदीपर पूर्ण प्रतिबन्ध लगाना पड़ेगा ।*

बाबा भोलेनाथकी जय !

गोमाताकी जय !!

---

* 'गोरक्षा-आन्दोलन' अब भी चल रहा है । सत्याग्रह जारी है । लोकसभाके सदस्य श्रद्धेय स्वामीजी श्रीब्रह्मानन्दजीने कई भक्तोंके साथ धरना दे रक्खा था । वे कई सौ सत्याग्रहियोंके साथ पकड़े गये हैं । सम्मान्य श्रीप्रकाशवीरजी शास्त्रीने लोकसभामें एक विधेयक उपस्थित कर दिया है । राष्ट्रपतिने समिति-निर्माणकी घोषणा की है । सेठ गोविन्ददासजी आदि बहुत-से लोकसभाके सदस्य चेष्टा कर रहे हैं । तिहाड़ जेलमें गोभक्त बन्दियोंने नवरात्रमें मानसपारायण प्रारम्भ किया है ।

गत दिनाङ्क ३ अप्रैलको सेठजीकी अध्यक्षतामें लोकसभाके सदस्योंकी एक सभा हुई थी । जिसमें कानूनके द्वारा पूर्णरूपसे गोवधबंदीके सम्बन्धमें विचार हुआ । गोपालन, गोसंवर्धन तथा नस्ल-सुधारकी व्यवस्थाके लिये भी प्रयास किया जा रहा है । लोकसभाके सदस्योंका एक शिष्टमण्डल प्रधानमन्त्री, गृहमन्त्री, खाद्यमन्त्री आदिसे मिलनेवाला है । उस दिन खाद्यमन्त्री श्रीजगजीवनरामजीने भी गोरक्षा-सम्बन्धी कानूनके सम्बन्धमें कुछ अनुकूल ही कहा है । भगवान्से प्रार्थना है कि वे इन सबको सद्बुद्धि प्रदान करें, जिससे भारतवर्ष गोहत्याके महापापसे सर्वथा मुक्त हो जाय और साथ ही गोपालन तथा गोसंवर्धनकी भी समुचित व्यवस्था हो जाय ।

पिछले दिनों जब देशमें प्रायः सर्वत्र कांग्रेस सरकार थी, बहुत प्रार्थना की गयी थी; बहुत तरहसे समझाया गया था, न माननेपर बुरा परिणाम होनेका भी संकेत किया गया था, परंतु सुबुद्धि नहीं आयी । इसीका परिणाम है कि बहुतसे प्रदेशोंसे कांग्रेसकी सरकार नहीं बन सकी है और इसी पापका परिणाम है देशमें अन्नसंकट और अकाल । अब भी सचेत हो जाना चाहिये ।

हिंदू एकमत रहें, आन्दोलनमें शिथिलता न आने दें, भगवान्पर विश्वास रक्खें तो भगवत्कृपासे गोहत्या अवश्य बंद हो जा सकती है ।

हनुमानप्रसाद पोद्दार

१० । ३ । ६७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़ो, समझो और करो

(१)

प्रतिज्ञा-रक्षा

गाँधीजी दक्षिण अफ्रिकामें थे। वहाँ उनके फिनिक्स-आश्रममें एक दिन भोजनमें कढ़ी-खिचड़ी बनी। साधारणतया आश्रममें दूध-दहीका उपयोग कम ही होता अतएव कढ़ी बननेका मौका कभी-कभी ही आता। जिन विद्यार्थियोंको नमक न खानेका नियम था वे कढ़ी-खिचड़ी नहीं ले सकते थे। गाँधीजी तो किसको क्या-क्या और कितना खानेको देना है इसका भी पूरा ध्यान रखते। उनके लड़के देवदासने अपना कटोरा रक्खा। पर बापूजीने पूछा—'देवा, तुझे तो बिना नमकका खाना है न?'

देवदासने सकुचाते हुए उत्तर दिया—'आज मेरा कढ़ी खानेका मन हो रहा है।'

'बिना नमकका तेरा व्रत कब पूरा होता है?' बापूजीके इस प्रश्नके उत्तरमें देवदासने कहा—'अभी दस दिन बाकी हैं।'

'तो फिर किया हुआ व्रत तू कैसे तोड़ सकता है? तेरी प्रतिज्ञा तोड़नेमें मैं हिस्सेदार नहीं बनूँगा।'

देवदासने कहा—'मैं बिना नमक खानेकी अवधि और आगे बढ़ा लूँगा; परंतु आज तो खिचड़ी-कढ़ी खानेका मेरा मन है।'

'नहीं; खिचड़ी-कढ़ी तुझे नहीं मिलेगी; रोटी, टमाटर, तेल, दूध, दही आदि तू जितना चाहे ले ले।'

बापूजीका निश्चय सुनकर देवदास रो पड़े।

सारे विद्यार्थी जिज्ञासाके साथ देख रहे थे कि देखें इसका क्या परिणाम होता है!

बापूजी विचारमें पड़े, सोचने लगे क्या किया जाय? यह तो मनकी कमजोरी है, क्या मोहवश इसका पोषण करें? ऐसा तो नहीं करना है। फिर क्या करें। वे घबराये और एकाएक अपने गालपर जोरसे दो तमाचा लगाकर बोले—'देवा! तुझमें यह कमजोरी कहाँसे आयी? मुझसे ही तो तू सीखा है।'

देवदासके लिये इतना काफी था। वे एकदम चुप हो गये और बोले—'बापूजी! मुझे माफ कीजिये, मैं भूल रहा था। मुझे खिचड़ी-कढ़ी नहीं चाहिये।' यों कहकर वे बगलसे निकल गये।

इस प्रसङ्गसे सारे विद्यार्थी प्रतिज्ञाकी गम्भीरताको समझ गये। मन कैसा चञ्चल है, कैसा कमजोर है, वह किस तरह हमपर चढ़ बैठता है और किस तरह उसको कामयाब न होने देना है; इन सारी बातोंकी शिक्षा ऐसे प्रसङ्गोंसे विद्यार्थियोंको मिलती थी। 'अखण्ड आनन्द'

—रावजीभाई मणिभाई पटेल

(२)

उपकारका बदला

अबसे करीब दस साल पहलेकी बात है। घटना सत्य है, केवल नाम बदले गये हैं। ननकू नामक एक चोर था। कई दिनोंसे कहीं कुछ मिला नहीं। भूखके मारे व्याकुल हो गया। बच्चे भी भूखों मरने लगे। भूखसे घबराया हुआ वह अनाज मिलनेकी आशा लेकर प्रभु महाजनके घर पहुँचा। चोरको कौन अनाज देता? बड़े संकोचसे वह प्रभु महाजनके घरके अंदर घुसा।

उस दिन प्रभु महाजनके यहाँ अनाजकी खत्ती खुली थी। ननकूको देखते ही महाजन गुस्सेमें भर गया और ननकूको भली-बुरी कहने लगा। ननकू बेचारा चुपचाप सुनता रहा। उसका सिर झुका था। आँखोंमें आँसू थे। प्रभु महाजनका बोलना बंद हुआ तब उसने साहस बटोरकर कहा—'बाबूजी! मैं चोर हूँ, पर इस समय भूखसे मर रहा हूँ, अन्नकी भीख माँगने आया हूँ। कुछ अनाज देकर मेरे और मेरे परिवारके प्राण बचाइये। मैं कभी उपकार नहीं भूलूँगा।'

महाजनको दया आ गयी और उसने ननकूको बीस सेर बेझर तुलवा दिया। ननकू प्रसन्न मन अनाज लेकर चला गया। उसका हृदय कृतज्ञतासे भरा था।

कुछ ही दिनों बाद डकैतोंने प्रभु महाजनके घर डाका डालनेकी योजना बनायी। डकैतोंके दलमें ननकू भी शामिल था। गाँवके किनारे एक जगह डकैत इकट्ठे हुए। ननकूने पूछा—'किसके घर डाका डालना है?' उन्होंने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहा—'प्रभु महाजनके यहाँ बोरेमें गहना रक्खा है, आज रातको उसीके घर डाका डालना है।' प्रभु महाजनका नाम सुनते ही ननकू स्तम्भित-सा रह गया। उसे बीस सेर बेझरकी बात याद आ गयी।

वह किसी बहानेसे वहाँसे निकलकर सीधा प्रभु महाजनके घर पहुँचा। उस समय प्रभु महाजन अपनी चौपालमें एक कुर्सीपर बैठे तन्द्राका सुख ले रहे थे। उसने प्रभुको सचेत किया। इस समय ननकूके आनेका कारण पूछा। ननकूने बताया कि 'आपके घर आज रातको डाका डालनेकी योजना डकैतोंने बनायी है। अमुक स्थानपर एक बोरेमें गहना रक्खा है। इसका पता उन लोगोंको लग गया है। अतएव उसे सँभालकर अलग कर दीजिये और सावधान हो जाइये। मैं आपके पास केवल इसीलिये आया हूँ कि आपने मुझे भूखके समय बीस सेर बेझर दिया था।' इतना कहकर वह चुपचाप चला गया।

महाजनने सारी व्यवस्था कर दी। डकैतोंको यह मालूम हो गया कि उसके यहाँ पुलिस आदिकी खासी व्यवस्था है। इसलिये उन्होंने डाका डालनेका विचार छोड़ दिया।

एक चोरने भी उपकारका बदला चुकाया। इससे यह शिक्षा मिलती है कि मनुष्यको सबका उपकार करना चाहिये। और उपकार करनेवालेके प्रति चोर भी कृतज्ञ होता है। वह भी आदमी ही है।

—चन्द्रशेखर माहेश्वरी

(२)

विलियम स्काउट सैनिककी देशभक्ति

अमेरिकामें राष्ट्रपति अब्राहिम लिंकनका शासन चल रहा था। देशमें गृह-युद्ध छिड़ गया। फौज बुला ली गयी और सैनिकोंने मोरचे सँभाल लिये। कमाण्डर फौज यह देखनेके लिये कि फौजमें सब लोग अपनी-अपनी ड्यूटीपर तत्पर हैं या नहीं, रात्रिको निकला। केवल एक सैनिक सोया हुआ मिला। उसके हथियार पास पड़े थे। उसे देख कमाण्डरको गुस्सा आया और सैनिकके हथियार सँभालकर, कमाण्डरने ठुड्डा लगाकर सैनिकको जगाया और इस प्रकारसे प्रश्न किये!

कमाण्डर—क्या तुम सो गये?

सैनिक—हाँ, सो गया।

कमाण्डर—हथियार तुम्हारे पकड़े गये?

सैनिक—हाँ, पकड़े गये।

कमाण्डर—तुम्हारी त्रुटि है?

सैनिक—हाँ, यह मेरी त्रुटि है।

कमाण्डर—तुमको प्रातः सैनिक-अदालतमें उपस्थित होना है।

सैनिक—जैसी आपकी आज्ञा।

प्रातःकाल वह सैनिक विलियम स्काउट सैनिक अदालतमें उपस्थित हुआ और जज साहबने कमाण्डरकी रिपोर्ट पढ़कर उससे इस प्रकार प्रश्न किये।

जज—क्या तुम रातको ड्यूटीपर सो गये?

सैनिक—हाँ, सो गया।

जज—तुम्हारे हथियार पकड़े गये?

सैनिक—हाँ, पकड़े गये।

जज—तुम अपनी त्रुटि मानते हो?

सैनिक—हाँ, मानता हूँ।

जज—यह सैनिक अदालत तुम्हें मृत्यु-दण्ड देती है।

सैनिक—मुझे स्वीकार है।

मृत्युदण्डकी सजा मिलते ही, सैनिक गिरफ्तार कर लिया गया और मृत्युदण्डके आज्ञा-पत्रपर राष्ट्रपतिके हस्ताक्षर करवानेके लिये एक संदेश-वाहक राष्ट्रपतिके पास गया। उस समय राष्ट्रपति कार्यालयमें बैठे युद्ध-समाचारोंकी प्रतीक्षा कर रहे थे। मृत्युदण्ड-आज्ञापत्रपर हस्ताक्षर करनेसे पूर्व सैनिकसे कुछ बातें पूछनेके लिये उसको अपने पास बुलाया और इस प्रकारसे प्रश्न किये।

राष्ट्रपति—क्या तुम ड्यूटीपर सो गये?

सैनिक—हाँ, सो गया।

राष्ट्रपति—क्या तुम्हारे हथियार पकड़े गये?

सैनिक—हाँ, पकड़े गये।

राष्ट्रपति—तुम अपना अपराध स्वीकार करते हो?

सैनिक—हाँ, मैं अपना अपराध स्वीकार करता हूँ!

राष्ट्रपति—तुम्हें मृत्युदण्ड स्वीकार है?

सैनिक—मुझे स्वीकार है।

राष्ट्रपति—तुमने अपने प्राणदण्डका समाचार घरवालोंको भेज दिया है?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सैनिक—जी नहीं।

राष्ट्रपति—क्यों नहीं भेजा ?

सैनिक—श्रीमान्‌जी ! मेरे परिवारमें केवल मेरी एक बूढ़ी माता ही है, जिसका केवल एकमात्र मैं ही सहारा हूँ। ऐसा न हो कि मेरे प्राणदण्डका समाचार पाते ही वह मुझसे पहिले स्वर्गमें चली जाय।

राष्ट्रपति—तुम्हें इस मृत्युदण्डसे कोई दुःख तो अनुभव नहीं होता ?

सैनिक—दुःख तो अवश्य अनुभव होता है।

राष्ट्रपति—क्या तुम मृत्युसे डरते हो ?

सैनिक—बिल्कुल नहीं !

राष्ट्रपति—तो फिर दुःख अनुभव क्यों करते हो ?

सैनिक—क्योंकि कुत्तेकी मौत मारा जा रहा हूँ।

राष्ट्रपति—किस प्रकारसे ?

सैनिक—जिस समय मैं सेनामें भरती हुआ; उस समय मेरे मनमें यह भावना थी कि मैं मातृभूमिकी रक्षा करता हुआ हँसते-हँसते समर-यज्ञमें प्राणोंकी आहुति दे दूँगा। परंतु इस समय स्थिति कुछ दूसरी ही हो गयी। वह इस प्रकारसे है। जिस समय मैं घरसे ड्यूटीपर आ रहा था, उस समय मेरा एक मित्र सैनिक बीमार था। उसकी माताजीने मुझसे कहा—'बेटा ! यह बीमार है। बीमारीकी अवस्थामें इसका ध्यान रखना !' तब मैं उनकी आज्ञाका पालन करते हुए पहिले सारी रात उसकी देख-भाल करता रहा। वह बेचारा चल भी नहीं सकता था, इसलिये उसका सारा बोझ भी मैंने अपने कंधोंपर वहन किया। वह सो गया तब मैं उसकी ड्यूटीपर गया। उसके पश्चात् जब मैं अपनी ड्यूटीपर उपस्थित हुआ तो उस समय मेरा शरीर थकावटसे चूर-चूर हो गया था, जिसके फलस्वरूप मुझे अपनी ड्यूटीपर नींद आ गयी। मेरा मन अपने आपको बहुत धिक्कारता है। मेरी भावना तो यह थी कि देशकी रक्षा करता हुआ हँसते-हँसते इज्जतकी मौत मरूँ; परंतु होनहार मुझे आज इस प्रकारसे कुत्तेकी मौत मरवा रही है।

इतना सुनते ही राष्ट्रपतिके रोंगटे खड़े हो गये और वे विचारने लगे कि इस प्रकारकी इतनी देशभक्तिकी दृढ़ भावना धन्य है। हमें ऐसे देशभक्तोंपर गर्व होना चाहिये। इन्हीं कारणोंसे हम वीरोंको याद करते हैं और श्रद्धाञ्जलियाँ देते हुए श्रद्धाके पुष्प अर्पित करते हैं। इस प्रकार विचार करते हुए राष्ट्रपतिने उसी समय उसका प्राण-दण्ड क्षमा कर दिया और वह सैनिक अपनी ड्यूटीपर चला गया। रात्रिको युद्ध छिड़ गया और वह सैनिक उस युद्धमें मारा गया।

प्रातःकाल ही उस सैनिककी वीर-गाथा, चित्र सहित सभी अमेरिकाके समाचार-पत्रोंमें छपी।

—केवलचन्द

श्रीआत्माराम जैन शिक्षानिकेतन, गोपा

(४)

ऋण-मुक्ति

आजके मध्यप्रदेशके अन्तर्गत पूर्व ग्वालियर-राज्यके जिला-गुनाके परगना चाचौड़ामें कस्बा-बीनागंजके समीप एक ग्राम बीजनीपुरा है। वहाँ मीना जातिके श्रीदेवचन्द कृषि-कार्य करते हैं। श्रीदेवचन्दके पुरखे श्रीभगवानजी काशीराम ग्राम-बीजनीपुराकी ओर कस्बा बीनागंजके सेठ कन्हैयालाल हजारीलाल खण्डेलवाल (लश्करवाले) के पूर्वसे चले आये हुए खातेमें रु० ८२५) वैशाख बदी सप्तमी संवत् १९८५ को बाकी लेने निकलते थे। जिसकी ८६) रु० सालाना किस्त कर दी गयी थी। परंतु आर्थिक परिस्थिति ठीक न होनेके कारण रकम अदा नहीं हो सकी थी और वह रकम सेठोंकी ओरसे म्यादबाहर हो जानेके कारण समाप्त कर दी गयी थी।

लगभग तीन मास पूर्व श्रीभगवानजी काशीरामके वारिस श्रीदेवचन्द मीनाने सेठ कन्हैयालाल हजारीलाल बीनागंज फर्मके मुनीम द्वारकादास गर्गसे अपने पुरखोंके ऋणसे मुक्त होनेकी इच्छा प्रकट की और द्वारकादास मुनीमने उनकी भावनाओंकी प्रशंसा करते हुए उन्हें उक्त फर्मके मौजूदा मालिकान लश्करके (श्रीरघुवरदयाल शिवशंकरलालजीसे) बीनागंज दूकानपर दौरेके समय मिलनेको कहा।

दिनाङ्क ३। १। ६७ को श्रीरघुवरदयालजी; मालिक फर्म श्रीकन्हैयालालजी हजारीलालजी लश्करसे बीनागंज आये एवं श्रीदेवचन्द मीना बीजनीपुराने स्वेच्छासे अपने बुजुर्गोंको ऋणमुक्त करनेकी दृष्टिसे उन्हें रु० ५०१) देकर चुकती फारगती चाही। जिसे सेठजीने सहर्ष स्वीकारकर खातेकी चुकती रसीद दे दी और उक्त रकम मियादबाहर होनेपर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी अपनी इच्छासे देनेके कारण उसे अपने निजी उपयोगमें न लेकर किसी धार्मिक कार्यमें ही व्यय करनेका उन्होंने निश्चित विचार व्यक्त किया।

ध्यान देने योग्य महत्त्वपूर्ण बात यह है कि आजके इस युगमें, जब कि अधिकांश व्यक्ति रजिस्टर्ड दस्तावेजोंसे भी इन्कार कर देते हैं, लगभग ३९ वर्षसे भी पूर्वकी और वह भी उनके बुजुर्गोंनके हाथकी पुरानी मियादबाहरकी रकमका ऋणमुक्त होनेकी दृष्टिसे स्वेच्छासे देना श्रीदेवचन्द मीनाका आजके इस युगमें एक आदर्श कार्य है।

—द्वारकादास गर्ग

(भूतपूर्व सदस्य, मध्यप्रदेश विधान-सभा)

(५)

उदार व्यवहार

एक दिन मैं पानवालेकी दूकानपर खड़ा था, वहाँ कनुने आकर मुझसे कहा 'तुमने जो कमरा दिलवाया है, इसके लिये तुम्हें धन्यवाद है। बालुसेठ तो बालुसेठ ही है।'

बालुसेठके विषयमें मैं कुछ भी नहीं जानता था। कौंदावलीकी बीस कमरोंकी एक चालीमें एक कमरा खाली होनेकी खबर मुझे मिली। तब मैंने कनुसे बात की। वहाँ रहने लगनेके बाद पहली बार ही कनु मुझे मिला। मैंने उससे पूछा—'बालुसेठ क्या मकानका भाड़ा नहीं लेते जो तू उनके इतने गुण गा रहा है?'

'गरीबसे धनी बने हुए बहुतसे मकान-मालिक हैं। पर धनी होनेपर वे बीती बातको भूल जाते हैं। लेकिन बालुसेठ भूतकालको भूले नहीं हैं। इतना ही नहीं; उन्होंने स्वयं दुःख देखे हैं, इससे आज भी वे दूसरेकी दुःखद स्थितिको ठीक-ठीक समझ सकते हैं।' इतना कहकर कनुने चालीका हाल बताया और उसके मालिक बालुसेठके परदुःख-भंजन स्वभावका विस्तारसे वर्णन किया।

एक बार कनुकी नौकरी छूट गयी। वह बालुसेठके पास गया। दीवाली आ गयी थी और उसके पास एक पैसा भी नहीं था। उसने महीने-दो-महीनेमें वापस लौटा देनेकी शर्तपर बालुसेठसे बीस रुपये उधार माँगे।

'लो ये रुपये, घबराना मत, सुख-दुःख तो आया ही करते हैं।' सेठने रुपये देते हुए कनूको इन शब्दोंमें हिम्मत बँधायी।

बालुसेठकी चालीके छः महीनेसे लेकर दो-दो वर्षका कमरोंका भाड़ा चढ़ जाता है, परंतु वे भाड़ेके लिये सख्ती नहीं करते। वरं उल्टे किरायेदारके 'विपत्ति-विदारण भैरव' की तरह सहायक बनकर खड़े रहते हैं।

नट्टु नामक एक किरायेदार एक बार बेकार हो गया। बहुत दिन बीत गये, नौकरी नहीं मिली। वह बालुसेठका छः सौ रुपयेका कर्जदार हो गया। चिन्ताका पार नहीं था। एक दिन तो उसे राशनके लिये भी पैसे नहीं मिले। क्या करना चाहिये, इसी विचारसे जागते रात बीती। अन्तमें वह टूटेके सहारे जैसे बालुसेठके पास पहुँचा और उनसे कहा—'सेठ! मीठे पेड़की जड़ कहाँतक खायी जाय। अब तो राशनके पैसे भी नहीं रहे, मुझे कोई रास्ता सुझायेंगे?'

बालुसेठने बड़े ममत्वसे कहा—'भाई! यों घुटते रहनेसे क्या होगा। समय कठिन है। नौकरी भी कहाँ मिले? मेरी बात मानो तो देश चले जाओ।'

नट्टुकी धीरज समाप्त हो गयी। उसने कहा—'देश जानेके लिये भी मैं पैसे कहाँसे लाऊँ?' बालुसेठने नट्टुको धीरज देकर सौ रुपये दिये। कमरा खाली करके नट्टु देश चला गया। नट्टुकी कोठरी खाली होनेपर कनु अपने एक सम्बन्धीको कोठरी दिलवानेके लिये सेठके पास गया। थोड़ा बहुत भी कमानेवाले व्यक्तिको कोठरी किराये देनेमें सेठको आपत्ति नहीं थी। अतः बालुसेठने कनुके सम्बन्धीको कोठरी दे दी। इस विषम कालमें बालुसेठ चालीके किरायेदारोंके लिये जीवन-आधार बन गये थे। उनकी मानवता ही किरायेदारोंकी रक्षा कर रही थी। सेठको कोई व्यवहारकुशल बननेकी सलाह देता तो उत्तरमें वे इतना ही कहते—

'भाई! मैं बिना कुछ साथ लिये ही जन्मा था। यहाँ आया था, तब केवल राहखर्च ही साथ था। पैसे यहीं कमाये। अतः वे यहींके भाइयोंके काममें लग जायँ तो इससे अच्छा और क्या होगा? 'अखण्ड आनन्द'

—ताराचन्द्र ल० ह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दस पुस्तकोंके नये संस्करण

१-**श्रीमद्भागवतमहापुराण (मूलमात्र)**—गुटका साइजमें; संस्करण आठवाँ, पृष्ठ-संख्या ७६८, स० मू० ४.००

(बहुत दिनोंसे इसका संस्करण समाप्त हो गया था, जनता बराबर माँग रही थी परंतु अवकाशाभावसे अबतक तैयार न हो सकी थी।)

२-**मानस-रहस्य**—ले० श्रीजयरामदासजी 'दीन'; संस्करण दसवाँ, पृष्ठ-संख्या ५१२, सचित्र मूल्य १.५०

(इसमें 'मानस'के गूढ़ रहस्योंपर प्रकाश डालनेकी चेष्टा की गयी है।)

३-**श्रीश्रीचैतन्य-चरितावली (खण्ड १)**—ले० श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी, संस्करण छठा, पृष्ठ-संख्या २८८, पाँच बहुरंगे चित्र, मूल्य १.१५

(त्याग, वैराग्य और प्रेमके समुद्र महाप्रभु श्रीगौराङ्गदेवकी यह जीवनी भक्तोंको महान् आनन्द प्रदान करनेवाली है।)

४-**तत्त्व-चिन्तामणि भाग ३ (बड़ा)**—ले० श्रीजयदयालजी गोयन्दका; संस्करण आठवाँ, पृष्ठ-संख्या ४२४, सचित्र मूल्य .... .८०

५-**भक्त-सुधाकर**—संस्करण सातवाँ, पृष्ठ-संख्या १००; इसमें भावुक भक्तोंकी बारह कथाएँ और उनके चित्र हैं। मूल्य .... .६०

६-**भक्त-दिवाकर**—संस्करण छठा, पृष्ठ-संख्या १००, इसमें आठ भक्तोंकी भावपूर्ण कथाएँ तथा उनके चित्र हैं। मूल्य .... .५५

७-**बालचित्रमय चैतन्य-लीला**—आकार डबल क्राउन आठपेजी, संस्करण आठवाँ; श्रीमन्महाप्रभुजीका सुन्दर बहुरंगा चित्र, साथ ही प्रत्येक पृष्ठके सादे चित्रोंके नीचे पद्यमें तथा उसके सामने सरल भाषामें परिचय, मूल्य .४०

८-**बालकोंकी बातें**—संस्करण ग्यारहवाँ, पृष्ठ-संख्या १५२, इसमें बालकोंके लिये खेल-कूद, माता-पिता, पढ़ाई, ईश्वर-भक्ति आदि विषयोंका विवेचन है। मूल्य .... .३०

९-**भजन-संग्रह (भाग २)**—तेईसवाँ संस्करण, पृष्ठ १३६, इसमें हितहरिवंशजी, स्वामी हरिदासजी, गदाधरजी भट्ट, नन्ददासजी, कुम्भनदासजी आदि व्रजके प्रेमी महात्माओंके तथा दादूदयालजी, रैदासजी, मलूकदासजी, चरनदासजी आदि आत्मानुभवी ज्ञानी संतोंके भजन एवं बानियोंका संग्रह है। मूल्य .... .१५

१०-**रामायण-मध्यमा-परीक्षा पाठ्यपुस्तक**—संस्करण सातवाँ, इसमें परीक्षोपयोगी विनय-पत्रिकाके १५ चुने हुए पद एवं दोहावलीके साठ दोहे सानुवाद दिये गये हैं। मूल्य .... .१०

सभी पुस्तकोंका डाकखर्च अलग

पुस्तकोंका आर्डर यहाँ देनेसे पहले स्थानीय विक्रेताओंसे प्राप्त करनेकी चेष्टा करनी चाहिये।

एक विशेष पुस्तक

महाभारतकी नामानुक्रमणिका

इसमें महाभारतमें आये हुए लोक, द्वीप, देश, नगर, जनपद, समुद्र, नद, नदी, सरोवर, कुण्ड, तीर्थ, वन, पर्वत, देवता, देवी, मातृका, यक्ष, गन्धर्व, नाग, नक्षत्र, अप्सरा, राक्षस, असुर, दैत्य-दानव, ऋषि-मुनि, राजा, अन्यान्य मनुष्य, स्थान, वस्तु, पर्व आदिके नाम तथा कौन नाम कहाँ किस प्रसङ्गमें आया है इसके उल्लेखसहित वर्णानुक्रमसे वर्णन है। इसके तैयार करनेमें बहुत भारी परिश्रम और व्यय हुआ है। **एक सुप्रसिद्ध विद्वान्के शब्दोंमें यह "महाभारतका कल्पवृक्ष" है।**

आकार २२×३० आठपेजी पृष्ठ ४१६, मूल्य २.५०, सजिल्द ३.५०, डाकखर्च अलग।

व्यवस्थापक—**गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

- 3 MAY 1967

गीताप्रेस-सेवादलकी ओरसे बिहारमें किंचित् सेवाकार्य

जब जहाँ मनुष्य धर्मको छोड़कर अधर्मपरायण हो जाता है और जब जहाँ प्राणियोंके पूर्वकृत दुष्क फलदानोन्मुख होते हैं, तब वहाँ अवर्षा, अतिवर्षा, अकाल, बाढ़, सूखा, महामारी, कलह, हिंसा आ उपद्रव होने लगते हैं, जिससे न्यूनाधिक रूपमें प्रारब्धानुसार सभी जीवोंको कष्ट होता है। आज विश्व प्रायः यही स्थिति है। और किसी युगका धर्म-प्राण भारत भी आज धर्मरहित शासन तथा धर्मरहित शिक्ष सम्पन्न होकर मानो अधर्ममय ही बनता जा रहा है। इसीका परिणाम है—महँगी, भूखमरी, कलह, हिं आदि। जबतक मनुष्य धर्मपर आरूढ़ नहीं होगा, तबतक किसी भी अन्य साधनसे वह क्लेशमुक्त नहीं सकता, क्लेशके कारण तथा रूप भले ही बदलते रहें। आज भारतके कई प्रदेशोंमें अन्नका भयानक अभ है, लोग भूखों मर रहे हैं। ऐसी अवस्थामें जिनके पास जो साधन हैं, उन्हें भगवान्‌की वस्तु मानक भूखोंकी प्राण-रक्षाके रूपमें भगवान्‌की सेवामें लगाकर मानवताके स्वरूपकी रक्षा और कर्तव्यका पाल करना चाहिये। कष्ट तो तभी दूर होंगे, जब सर्वशक्तिमान् भगवान् दूर करेंगे। हमें तो केवल भगवान दी हुई वस्तुको भगवान्‌के अर्पण करनेका प्रयास भर करना है अभिमानशून्य होकर विनम्रत साथ भगवत्प्रीत्यर्थ।

इसी दृष्टिकोणसे अत्यन्त सीमित शक्ति-सामर्थ्यके अनुसार बिहारके १९ गाँवोंमें 'गीताप्रेस-सेवाद की ओरसे अभी अन्न-वितरणका कार्य हो रहा है। कुछ वस्त्रादि भी भेजे गये हैं। काम बढ़ाने विचार है। कार्यक्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है, शक्ति तथा साधन अत्यन्त सीमित। जितना जो कुछ बन ज वही भगवत्कृपा है—गीताप्रेस रुपयोंके लिये अपील नहीं करता। केवल सूचनामात्र दी जा रही है

व्यवस्थापक—**गीताप्रेस-सेवाद**

गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस, गोरख

'कल्याण'के पुराने प्राप्य विशेषाङ्क (डाकखर्च सबमें हमारा है)

१—**मानवता-अङ्क**—पृष्ठ-सं० ७०४, मानवताकी प्रेरणा देनेवाले सुन्दर चित्र—बहुरंगे ३९, दुरं एकरंगे १०१ और रेखाचित्र ३९, मूल्य रु० ७.५० पैसे।

२—**संक्षिप्त शिवपुराणाङ्क**—प्रसिद्ध शिवपुराणका संक्षिप्त सार-रूप है। इसमें ७०४ पृष्ठोंकी ठोस प सामग्री है, बहुरंगे चित्र १७, दोरंगा १, सादा १२ तथा रेखाचित्र १३८, मूल्य रु० ७.५०, सजिल्दका रु० ८.

३—**संक्षिप्त ब्रह्मवैवर्त्तपुराणाङ्क**—इसमें भगवान श्रीकृष्णकी विविध दिव्य लीलाओंका बड़ा ही रोचक व है। पृष्ठ-संख्या ७०४, बहुरंगे चित्र १७, दोरंगा १, इकरंगे ६, रेखाचित्र १२०, मूल्य रु० ७.५०, सजिल्द रु० ८.

४—**धर्माङ्क**—धर्म-सम्बन्धी विवेचनाओं, सुरुचिपूर्ण कथाओं, सरस सूक्तियों तथा रोचक निबन्धोंसे यु पृष्ठ-सं० ७००, बहुरंगे चित्र १४, दोरंगा १, सादे चित्र ४ तथा रेखाचित्र ८१, सजिल्द (कपड़ेकी जि मूल्य रु० ८.७५।

व्यवस्थापक—**'कल्याण'**. पो० गीताप्रेस (गोरख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ष ४१] * * * [अङ्क ५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

संस्करण १,५०.०००

विषय-सूची

कल्याण, सौर ज्येष्ठ २०२४, मई १९६७

विषय	पृष्ठ-संख्या
१–भक्तिकी महिमा [कविता]	८९७
२–कल्याण ('शिव')	८९८
३–ब्रह्मलीन पूज्यपाद अनन्तश्रीविभूषित श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके अनुपम अमृतोपदेश (संकलनकर्ता और प्रेषक श्रीसालिगरामजी)	८९९
४–एक महात्माका प्रसाद (संकलयिता—श्री'माधव')	९००
५–उपनिषद् और वैदिक यज्ञ (श्रीवसन्तकुमार चट्टोपाध्याय)	९०१
६–चेतावनी [कविता] (भारतेन्दु हरिश्चन्द्र)	९०७
७–शुक्ल-संन्यासी (श्रीचारुचन्द्र चट्टोपाध्याय)	९०८
८–अर्थ (धनका) प्रयोजन [कहानी] (श्री'चक्र')	९०९
९–रामसे लगन कैसी हो ! [कविता] (संत तुकारामजी)	९१३
१०–प्रभु विश्वास [कहानी] (श्रीरामरूपजी तिवारी, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०)	९१४
११–अध्यात्म-गुरु (श्रीस्वामीजी श्रीकृष्णानन्दजी महाराज; अनुवादक—श्री ति० न० आत्रेय)	९१७
१२–भारतीय सभ्यताकी सनातन वाणी (प्रा० श्रीजगन्नाथप्रसादजी मिश्र)	९२०
१३–धर्मनिरपेक्ष राज्य एवं धार्मिक शिक्षा (श्रीरामनारायणजी परमार, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०, साहित्यरत्न)	९२३
१४–कर्म करो, कर्म करो (श्रीसुरेशचन्द्रजी वेदालंकार, एम्० ए०, एल्० टी०)	९२८
१५–दक्षिणभारतकी तीर्थयात्रा (सेठ श्रीगोविन्ददासजी, श्रीमती रत्नकुमारी देवी, श्रीगोविन्दप्रसादजी श्रीवास्तव)	९३२
१६–राम—एक मनोवैज्ञानिक अध्ययन (प्रो० श्रीलल्लनजी पाण्डेय, एम्०ए०, बी० एल्०)	९३९
१७–पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण (डा० श्रीहजारीलालजी माहेश्वरी)	९४३
१८–स्वरज्ञान और सामान्य जीवन (श्रीरविप्रकाशजी नाग, एम्० ए०, एल्-एल्०बी०)	९४६
१९–भगवान्की सच्ची पूजा (पं० श्रीजयकान्तजी झा)	९४८
२०–भगवान् कैसे भोजन कराते हैं ! (श्रीनिरञ्जनदासजी धीर)	९५०
२१–प्रभुका सर्वत्र दर्शन [कविता] (संत मानपुरी महाराज)	९५१
२२–कामके पत्र	९५२
२३–पढ़ो, समझो और करो	९५५

चित्र-सूची

१–गौओंके बीचमें श्रीराधा-गोविन्द	(रेखाचित्र)	मुखपृष्ठ
२–भक्तिकी महिमा—भगवत्कृपा	(तिरंगा)	८९७

वार्षिक मूल्य
भारतमें ८.५०
विदेशमें १५-६०
(१५ शिलिंग)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत-चित-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट, जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

साधारण प्रति
भारतमें ५० पै०
विदेशमें ८० पै०
(१० पेंस)

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाल गोस्वामी, एम्० ए०, शास्त्री
मुद्रक-प्रकाशक—मोतीलाल जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्तिकी महिमा—भगवत्कृपा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

कल्याण

अविरतभवभावनातिदूरं भवविमुखैर्मुनिभिः सदैव दृश्यम् ।
भवजलधिसुतारणाङ्घ्रिपोतं शरणमहं रघुनन्दनं प्रपद्ये ॥
रतिपतिशतकोटिसुन्दराङ्गं शतपथगोचरभावनाविदूरम् ।
यतिपतिहृदये सदा विभातं रघुपतिमार्तिहरं प्रभुं प्रपद्ये ॥

वर्ष ४१ | गोरखपुर, सौर ज्येष्ठ २०२४, मई १९६७ | संख्या ५ पूर्ण संख्या ४८६

भक्तिकी महिमा

भक्तिकी महिमा अतुल अपार ।
बारांगना-प्रीति तें रीझे, हरि साँचे रिझवार ॥
अब लौं अबुध रिझावत भोगी लोगनि रही गँवार ।
सपनें निरखि स्याम-सुंदरता बिसरी सब संसार ॥
प्रेम-मगन सो भई बावरी, सजि सोरह सिंगार ।
कर इकतार झाँझ लै निकसी, उमग्यौ रस-भंडार ॥
नाचि-नाचि गावत जमुनातट प्रिय-गुन-नाम उदार ।
अपलक नैन, भूलि अग-जग, मनमोहन रही निहार ॥
प्रगटे स्याम मुदित मन निरखत प्रीति-रीति सुख-सार ।
लगे बहावन भरि मुरली मग मधुर अमिय-रस-धार ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याण

याद रक्खो—राग और द्वेष मनुष्यके बहुत बड़े शत्रु हैं, जो प्रत्येक इन्द्रियके प्रत्येक विषयमें स्थित रहकर तुम्हारे जीवनसंगी बने तुम्हारे परम अर्थको निरन्तर लूट रहे हैं। राग-द्वेषसे ही काम-क्रोधकी उत्पत्ति होती है, जो समस्त पापोंके मूल हैं।

याद रक्खो—जिसके मनमें भोगकामना है, वह कभी सच्चे अर्थमें सुखी नहीं हो सकता; कामनाकी पूर्तिमें एक बार सुखकी लहर-सी आती है; पर कामना ऐसी अग्नि है, जो प्रत्येक अनुकूल भोगको आहुति बनाकर अपना कलेवर बढ़ाती रहती है। जितनी-जितनी कामनाकी पूर्ति होती है, उतनी-उतनी कामना अधिक बढ़ती है। कामना अभावकी स्थितिका अनुभव कराती है और जहाँ अभाव है, वहीं प्रतिकूलता है एवं प्रतिकूलता ही दुःख है। अतएव कामना कभी पूर्ण होती ही नहीं और इसलिये मनुष्य कभी दुःखसे मुक्त हो ही नहीं सकता। कामना बड़े-से-बड़े समृद्धिमान् वैभवशाली पुरुषको भी दीन बना देती है, कामना बड़े-से-बड़े विचारक तथा बुद्धिमान् पुरुषके मनमें भी अशान्तिका तूफान खड़ा कर देती है। कामनाकी अपूर्तिमें क्षोभ तथा क्रोध होता है, जो मनुष्यको विवेकशून्य बनाकर उसको सर्वनाशके पथपर तेजीसे आगे बढ़ाता है। इसलिये इन काम-क्रोधके मूल राग-द्वेषका त्याग करो।

याद रक्खो—यदि राग-द्वेषका त्याग न हो तो उनके विषयोंको तो जरूर बदल डालो। राग करो श्रीभगवान्में, उनके स्वरूप-गुण-लीलामें, उनके नाममें और उनमें आत्मसमर्पित उनके भक्तोंमें; द्वेष करो अपने दुर्गुणोंमें, दुर्विचारोंमें, बुरे कामोंमें, पापोंमें, अन्तःकरणकी बुरी वृत्तियोंमें, भोगासक्तिमें और विषय-सुखकी कामनामें। बस, फिर ये राग-द्वेष ही तुम्हारे परम अर्थके—आध्यात्मिक सम्पत्तिके रक्षक और पोषक बन जायँगे। अग्निसे घरमें आग लगकर सब कुछ भस्म हो जाता है और अग्निसे ही यज्ञ-कर्म सम्पन्न होनेपर सब कुछ प्राप्त हो जाता है।

याद रक्खो—भगवान्में राग होनेपर भगवद्विरोधी अपने तन-मनके कार्योंमें द्वेष होगा ही। जिनमें द्वेष होता है, वे बुरे लगते हैं और मनुष्य उनका विनाश चाहता है। अतएव भगवान्में उत्पन्न राग स्वभावतः ही शरीर तथा मनसे होनेवाले दुष्कर्म तथा दुष्ट विचारोंका नाश कर देता है। भगवान्में राग ही परम दुर्लभ भगवत्प्रेम है और पापमें द्वेष ही सच्चा वैराग्ययुक्त परम साधन है।

याद रक्खो—भगवान्में तुम्हारा राग बढ़े, इसके लिये भगवान्के स्वरूप, गुण, चरित्र, लीला आदिका बार-बार श्रवण करो, कीर्तन करो, चिन्तन करो, मनन करो और इसमें गौरव, आनन्द तथा शान्तिका अनुभव करो। भगवान्के अतुलनीय सुन्दर मधुर परम पावन नाम, रूप, भगवान्के अप्रतिम अनन्त ऐश्वर्य-गुण, भगवान्के चिदानन्दमय अनुपम सौन्दर्य-माधुर्य, भगवान्के सर्वविलक्षण तत्त्वस्वरूप आदिके श्रवण-कीर्तन-मननसे जितना ही मन उनकी ओर आकर्षित होगा, जितनी ही उनमें रुचि बढ़ेगी, उतना ही उनमें राग बढ़ेगा, उतनी ही उनमें प्रीति बढ़ेगी, उतनी ही उत्तरोत्तर उनके प्रति आत्मसमर्पणकी अधिकाधिक लालसा बढ़ेगी।

याद रक्खो—भगवान्में पूर्ण आत्मसमर्पणकी लालसाका उदय बहुत ऊँची साधनाका फल है, स्वयं परम तथा चरम साधन है, जो भगवत्प्रेमरूप सुदुर्लभ वस्तु प्रदान कराकर भगवान्का अभिन्नस्वरूप निजजन बना देता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

याद रक्खो—पूर्ण आत्मसमर्पणकी लालसा जाग्रत् होनेपर उसमें बड़ी-से-बड़ी भोगकामना तो रहती ही नहीं, मोक्षकामना भी छिप जाती है। एकमात्र भगवान्के परम पावन सुरेन्द्र-मुनीन्द्रवन्दित चरणकमलोंकी शरण ही उसकी सारी कामना, वासना, इच्छा, अपेक्षा, स्पृहा, लालसा आदिका विषय हो जाती है।

'शिव'

ब्रह्मलीन पूज्यपाद अनन्तश्रीविभूषित श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके अनुपम अमृतोपदेश

(संकलनकर्ता और प्रेषक—श्रीसालिगरामजी)

(महापुरुषोंकी रहस्यपूर्ण आज्ञाएँ)

........संसारमें जो महापुरुष हो गये हैं अथवा जो महापुरुष वर्तमानकालमें ईश्वर-कृपासे हमें प्राप्त हैं, उनके आचरणोंका अनुकरण करना चाहिये, उनकी आज्ञाका पालन करना चाहिये तथा उनके संकेतका अनुवर्तन करना चाहिये। संकेतका अर्थ यह कि बिना बोले इशारेसे उन्होंने कोई बात कह दी अथवा जिज्ञासाके भावसे कोई बात पूछ ली। मान लीजिये, उन्होंने आपसे पूछा—जप, ध्यान होता है न? उनके इस प्रकार पूछनेपर यदि अबतक न करते हों तो आपको जप और ध्यान प्रारम्भ कर देना चाहिये। प्रश्नके रूपमें उनका आपके लिये यह संकेत ही है कि आप ऐसा करें। यदि वे किसी कामके लिये आपको साक्षात् प्रेरणा कर दें, तब तो आपको अपना अहोभाग्य मानना चाहिये। आज्ञा और प्रेरणाका अर्थ प्रायः मिलता-जुलता-सा है। प्रेरणाका स्वरूप यह है—'प्रातःकाल बड़े सबेरे उठना चाहिये। सूर्योदयसे पहले ही स्नान करके यज्ञोपवीत हो तो संध्या एवं गायत्री-जप प्रारम्भ कर देना चाहिये। शास्त्रकी मर्यादा तो यह है कि संध्या और भी जल्दी—रात रहते ही प्रारम्भ कर दी जाय और सूर्योदयतक गायत्रीका जप करते रहा जाय। संध्या-गायत्रीमें जिनका अधिकार नहीं है अर्थात् जिनके यज्ञोपवीत नहीं हैं—जैसे स्त्रियाँ, शूद्र एवं बालक आदि, उनके लिये वे महापुरुष यह कह सकते हैं कि 'भगवान्के नामका जप एवं स्वरूपका ध्यान, गीताका पाठ, भगवान्की मानसिक पूजा या मूर्तिपूजा, अपने आत्माके कल्याणके लिये भगवान्से प्रार्थना, भगवान्के गुणोंका गान, यह तो अवश्य ही करना चाहिये। सोनेके समय भगवान्के नाम, रूप, लीला, धाम, गुण, प्रभाव, तत्त्व, रहस्यको याद करते-करते सोना चाहिये। अथवा निर्गुण-निराकार ब्रह्ममें श्रद्धा, प्रेम, विश्वास हो तो निर्गुण-निराकार तत्त्वका ध्यान करते-करते शयन करना चाहिये और काम करते समय लक्ष्य भगवान्की ओर रहना चाहिये।' यह प्रेरणाके रूपमें एक प्रकारकी आज्ञा ही है। इसके उत्तरमें हमारे यह कहनेपर कि 'जो आप कहते हैं, बहुत ठीक है, और तदनुसार यत्किंचित् प्रयत्न भी किया जाता है; किंतु मन भगवान्में नहीं लगता,' यदि महात्मा यह कहें कि मन न लगे तो भी ऐसा करते रहो तो यह उनकी स्पष्ट आज्ञा हुई। इसके भी आगे यदि वे यह कह दें कि 'करते-करते मन लगने लगेगा' तो यह उनका आशीर्वाद हुआ, जो उन्होंने भविष्यकी बात कह दी। दूसरे शब्दोंमें यह उनका एक प्रकारसे वरदान हो गया। अमुक कार्य करो, इस प्रकार करो—यह आज्ञा है। अमुक कार्य करनेसे अवश्य सफलता मिलेगी, यह एक प्रकारका आशीर्वाद है, वरदान है।

× × ×

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक महात्माका प्रसाद

विश्रामकी महिमा

(संकलयिता—श्री'माधव')

विश्राम निर्बलका बल तथा सफलताके लिये अचूक अस्त्र है। जब सभी प्रयास असफल हो जाते हैं, तब विश्रामसे सफलता होती है। इस दृष्टिसे विश्राम अन्तिम साधन है। लक्ष्यसे अभिन्न होनेके लिये विश्राम अत्यन्त आवश्यक है। प्रत्येक दशामें क्षोभरहित होनेसे ही यथेष्ट विश्राम मिल सकता है। विश्राम आलस्य नहीं है, अकर्मण्यता नहीं है। विश्राम वह जीवन है, जिससे सभी क्रियाएँ उदित होती हैं अथवा जिसमें सभी क्रियाएँ विलीन होती हैं। जिस प्रकार अचल हिमालयसे ही अनेक नदियाँ निकलती हैं और सभी नदियाँ जाकर उसी समुद्रमें विलीन होती हैं जो अपनी मर्यादामें ही प्रतिष्ठित है, उसी प्रकार समस्त प्रवृत्तियोंका उद्गमस्थान भी विश्राम है और समस्त प्रवृत्तियोंका अन्त भी विश्राममें ही निहित है। विश्राम जडतत्त्व नहीं है। विश्राम चिन्मय तत्त्व है। विश्राम उन्हींको प्राप्त होता है, जो अपनेको सभी वस्तु, अवस्था आदिसे असङ्ग कर लेते हैं।

शक्तिसंचयका केन्द्र एकमात्र विश्राम है। गहरी नींदके द्वारा विश्राम पाकर शारीरिक श्रम दूर हो जाता है और कार्य करनेकी क्षमता आ जाती है। शारीरिक विश्राम आवश्यक श्रमसे, मानसिक विश्राम अनावश्यक संकल्पोंके त्यागसे और बौद्धिक विश्राम संकल्पपूर्तिके सुखका त्याग करनेसे प्राप्त होता है। प्राकृतिक नियमानुसार भौतिक विकास भी विश्राममें ही निहित है। प्रत्येक बीज पृथ्वीमें विश्राम पाकर ही विकसित होता है। मृत्यु ही, जो प्राकृतिक विश्राम है नवीन जीवन देती है। जीवनका सदुपयोग जीवनकालमें ही विश्राम प्रदान करता है, जो नित्य जीवनका हेतु है।

विश्राम साधन भी है और साध्य भी, कारण कि विश्रामसे ही समस्त शक्तियोंका विकास होता है और उनके सदुपयोगसे अन्तमें मिलता है विश्राम ही; क्योंकि विश्राममें ही जीवन है, चिन्मयता है, नित्य नवरस है।

अब विचार यह करना है कि विश्रामप्राप्तिमें क्या-क्या विघ्न है। तो यह कहना होगा कि जो वर्तमानका कार्य है, उसे भविष्यपर छोड़ना और जो वर्तमानका कार्य नहीं है उसका चिन्तन करना। शरीर और विश्वकी एकता, प्राप्त वस्तुओंकी ममताका त्याग एवं उनका सदुपयोग वर्तमान जीवनकी वस्तु है। ममता-रहित होते ही सभी बन्धन स्वतः टूट जाते हैं। जिसका होना सम्भव नहीं, उसके लिये सोचना या चिन्ता करना जीवनका अनादर तथा सामर्थ्यका दुरुपयोग करना है। जो करने योग्य नहीं है, उसके न करनेसे जो करने योग्य है, उसकी योग्यता तथा सामर्थ्य स्वतः आ जाती है।

हमें तो संसारकी सेवा करना है, उससे लेना कुछ नहीं। बेचारा संसार स्वयं ही किसीकी खोजमें है। वह हमें दे ही क्या सकता है? फिर भी हम उसके पीछे पड़े हैं। यही प्रमाद है। अतः हमें संसारकी धरोहर जो शरीर आदि वस्तुओंके रूपमें प्राप्त है, उसे संसारकी सेवामें लगा देना है और आगे उससे क्षमा माँग लेना है। जब हम संसारकी समस्त वस्तुओंको उसीकी सेवामें लगा देते हैं, तब हम स्वभावसे ही उसके बन्धनसे मुक्त हो जाते हैं और समस्त संसार हमसे प्रसन्न हो जाता है। संसार उसीको भय देता है, जो अच्छी वस्तुओंको अपनी मान लेता है। अतः हमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संसारसे कुछ लेना नहीं है, अपितु उससे मिली वस्तुओंको उसीको दे देना है और स्वयं विश्राम पा लेना है, जो हमारा साधन है।

साधन-तत्त्व साधकका जीवन है और साधकका स्वभाव है, अतः विश्राम उस अनन्तका स्वभाव है और हमारा जीवन है। विश्राम आते ही दीनता तथा अभिमानकी अग्नि सदाके लिये शान्त हो जाती है, शरीर विश्वके काम आ जाता है और हृदयमें प्रीतिकी गङ्गा लहराने लगती है—यही साधनकी सिद्धि है, जो चिर विश्राममें निहित है।

उपनिषद् और वैदिक यज्ञ

(लेखक—श्रीवसन्तकुमार चट्टोपाध्याय)

साधारणतया पाश्चात्त्य विद्वानोंका यह मत है कि उपनिषदोंके रचयिता मनीषियोंको वैदिक यज्ञोंकी कार्यकारितामें विश्वास नहीं रहा था और उन्होंने पूर्व-कालीन वेदमन्त्रोंमें जो अनेकों देवताओंकी भावना मिलती है, उसका निराकरण करके एकेश्वरवादकी अनुभूति प्राप्त की थी। इसी भावसे प्रोफेसर मैक्‌जलनने लिखा है—'यद्यपि उपनिषद् साधारणतया ब्राह्मण-ग्रन्थोंके अङ्ग हैं, वास्तवमें वे एक नवीन धर्मको प्रस्तुत करते हैं, जो कर्मकाण्ड अथवा क्रियापद्धतिके पूर्ण प्रतिकूल है।' (संस्कृत साहित्यका इतिहास, पृ० २१५) डाक्टर विन्टरनित्स लिखते हैं—'जब ब्राह्मणलोग अपनी निष्फल यज्ञविद्याके अध्ययनाध्यापनमें लग रहे थे, अन्य वर्ग उन उत्कृष्ट प्रश्नोंके विचारमें व्यस्त थे, जिनकी विवेचना परम प्रशंसनीय ढंगसे उपनिषदोंमें की गयी है। पुरोहितवर्गसे भिन्न इन्हीं तपस्वी जनोंमेंसे आगे चलकर वनवासी तापस और रमते योगी निकल पड़े थे।' (संस्कृत साहित्यका इतिहास, पृ० २३७)। मैक्सम्मूलर लिखते हैं—'इन उपनिषदोंमें वेदोंके समस्त कर्मकाण्ड अथवा यागपद्धतिका अनादर ही नहीं, उन्हें निरर्थक, बल्कि अनिष्टकारी मानकर अस्वीकार किया है। वेदोक्त पुरातन देवताओंको अब मान्यता नहीं दी जाती।' (वेदान्तकी उत्पत्ति, पृ० १६)। डायसनने लिखा है—

'आत्मवाद (अर्थात् उपनिषदोंका प्रधान वाद) मौलिकरूपसे वैदिक देवपूजारूपी धर्म और ब्राह्मणोंकी शास्त्रविधि-परम्पराके विरुद्ध है।' (उपनिषद्-प्रोक्त धर्म और दर्शन, पृ० २१)। गार्बेने लिखा है—'ब्राह्मण पुरोहितवर्ग एकके बाद दूसरे यज्ञोंके विस्तार करनेमें, बालकी खाल निकालनेवाली परिभाषाओंके रचनेमें, मन्त्रों और विधियोंकी निरर्थक व्याख्या करनेमें कुशल हैं। परंतु अब हमारे समक्ष एक उच्चकोटिका विवेचन आता है। विश्वकी पहेलीको बूझनेके लिये उत्कट आकाङ्क्षा और जीवात्माका उसके साथ क्या सम्बन्ध है? यह महान् प्रश्न हमारे मनको वशीभूत कर लेता है।' हरटलने कहा है—'क्षत्रिय जातिके लोगोंने वैदिक देवगणमें श्रद्धारहित होनेके कारण, उन देवगणके स्थानपर प्राकृतिक दैवीशक्तियोंको स्थापित किया और एक दार्शनिक मतका प्रतिपादन किया, जो साररूपसे ब्रह्मवाद है—निरीश्वर, चार्वाकीय और नीतिधर्मनिरपेक्ष।' डाक्टर राबर्ट अर्नेस्ट ह्यूमने लिखा है—'अब इस जीवनमें आचरणके लिये और परलोकमें मोक्षलाभके लिये देवपूजा, यज्ञ अथवा नैतिक आचरण आवश्यक धर्म नहीं रहा। अब तो ज्ञानसे ही मुक्ति प्राप्त हो जाती है और ज्ञान पूजा आदि धर्मोंको मान्यता नहीं देता। अनेक देवगणसम्बन्धी समग्र धर्म और उन देवोंके लिये याग करनेकी आवश्यक विधियाँ अब एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाण्ड कपट-जाल-सा दिखायी पड़ता है, उस पुरुषको जिसने जीवात्मा तथा परब्रह्म एक हैं—ऐसा आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त कर लिया है।' (त्रयोदश उपनिषद् ग्रन्थ, पृ० ५३) डाक्टर ह्यूम आगे लिखते हैं—'मोहजनित देवोंके लिये यज्ञ तथा पुण्य-कर्म अध्यात्म ज्ञानकी ज्योतिमें निरर्थक प्रतीत होते हैं।' (वही पृ०५९)।

उपनिषदोंने प्रतिपादन किया है कि परमेश्वर अथवा परब्रह्म एक है, इससे पश्चिमी विद्वानोंने यह निर्णय कर लिया कि उपनिषदोंके कर्त्ता, उनके समान ही, गौण देवोंके अस्तित्वमें विश्वास नहीं करते थे। उपनिषद् यह भी प्रतिपादन करते हैं कि मानुष जीवनका ध्येय है आत्म-ज्ञानद्वारा मोक्ष पाना। इससे पश्चिमी विद्वानोंने यह परिणाम निकाला कि उपनिषद्कर्त्ता उनकी तरह, स्वर्गप्राप्तिमें यज्ञोंकी कार्यकारितामें विश्वास नहीं करते थे। पर ये दोनों निष्कर्ष तर्कानुमोदित नहीं। एकेश्वर और अनेक गौण देवताओंकी भावनाएँ परस्पर विरोधी नहीं। ज्ञानद्वारा मनुष्य ब्रह्मको प्राप्त कर सकता है, इस कथनसे यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि वैदिक यज्ञोंद्वारा स्वर्गलाभ सम्भव नहीं। हम अनेकों उपनिषदोंके अंश नीचे उद्धृत करते हैं—यह दर्शानेके लिये ठीक उपनिषदोंने भी गौणदेवसमूहकी सत्ताको स्वीकार किया है और वैदिक यज्ञोंकी कार्यकारिताकी पुष्टि की है।

ईशोपनिषद्में मरणोन्मुख मनुष्य अपने आत्माको सुखप्रद मार्गसे ले जानेके लिये अग्निदेवसे प्रार्थना करता है।[1] केनोपनिषद्में ब्रह्म देवोंके समक्ष अपने तेजोमय स्वरूपमें प्रकट हुए और उनके कहनेपर न तो अग्निदेव एक तिनकेको जलानेमें समर्थ हो सके और न वायुदेव उसको चलानेमें ही, कारण ब्रह्म ऐसा चाहते न थे। शायद यह दलील पेश की जाय कि इस आख्यानका तात्पर्य ही है यह शिक्षा देना कि केवल एकमात्र ब्रह्मका ही अस्तित्व है, गौण-देवसमूहकी सत्ता नहीं। किंतु ऐसा हो नहीं सकता। कारण, आगे चलकर कहा है कि इन्द्र, वायु तथा अग्नि अन्य देवोंसे अतिशायी हैं; क्योंकि उन्होंने ही सबसे पहिले इतनी समीपतासे ब्रह्मका दर्शन-स्पर्श पाया था।[2] गौणदेवोंकी भावना यदि निराधार हो, तब यह कैसे कहा जा सकता है कि उनमें कुछ देवता अन्य देवताओंमेंसे अतिशायी हैं। गौणदेवोंके निष्फल प्रयत्नोंके सम्बन्धमें यह कहना है कि परमेश्वरकी इच्छाके प्रतिकूल होनेपर मनुष्योंके भी प्रयत्न विफल हो जाते हैं। अतः यह निष्कर्ष निकालना समीचीन नहीं होगा कि अवान्तरदेवोंका अस्तित्व सिद्ध नहीं, जैसे वह निर्णय करना असमीचीन होगा कि मनुष्योंकी सत्ता नहीं।

केनोपनिषद्में कर्मोंको ज्ञानका एक साधन माना है। 'तप, इन्द्रिय-निग्रह और कर्म उपनिषद्-प्रोक्त सत्य ज्ञानकी प्रतिष्ठा—नींव हैं, वेद उसके अङ्ग और सत्य शरीर हैं।[3]

कठोपनिषद्में ब्राह्मण-बालक नचिकेता यमसे आरम्भमें वैदिक यागविधिकी शिक्षाको प्राप्त करता है। 'हे यम! आप जानते हैं उस अग्निको, जिससे स्वर्गलाभ होता है। कृपया मुझे वह यज्ञविधि सिखा दीजिये। मैं इसमें श्रद्धावान् हूँ।[4]

जब नचिकेता ब्रह्मज्ञानके लिये प्रार्थना करता है, तब यम कहते हैं कि देवता भी ब्रह्मको जाननेकी इच्छा

(१) अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् (ईश उ० १८)

(२) तस्माद्वा एते देवा अतितरामिवान्यान् देवान् यदग्निर्वायुरिन्द्रस्ते ह्येनन्नेदिष्ठं पस्पर्शुः। (केन उ० ४। २)

(३) तस्यै तपो दमः कर्मेति प्रतिष्ठा वेदाः सर्वाङ्गानि सत्यमायतनम्। (केन उ० ४। ८)

(४) स त्वमग्निं स्वर्ग्यमध्येषि मृत्यो, प्रब्रूहि श्रद्दधानाय मह्यम्। (कठ उ० १। १। १३)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि गौण देवोंकी सत्ताको उपनिषदोंमें अस्वीकृत नहीं किया गया है—'पुरातन कालमें देवसमूह भी इस ब्रह्मको जानना चाहते थे।'[५]

आगे कठोपनिषद्में कहा है—'सकल गौण-देवसमूह उस ब्रह्ममें अन्तर्भूत है।'[६]

'ब्रह्मके भयसे अग्निदेव ताप देते हैं, सूर्यदेव ताप और प्रकाश देते हैं, इन्द्र, वायु और पाँचवें यमदेव अपने नियत कर्मोंको करते हैं।'[७]

प्रश्नोपनिषद्में कहा है—'जो मनुष्य यज्ञ करते हैं, कूप-तड़ाग खुदवाते हैं, वे चन्द्रलोकको जाते हैं।'[८]

मुण्डकोपनिषद्का तो प्रारम्भ ही होता है यह कहकर कि 'गौणदेवोंमें ब्रह्मा सर्वप्रथम उत्पन्न हुए थे।'[९]

मुण्डकोपनिषद् स्पष्टरूपसे वैदिक यज्ञोंकी सत्यताकी स्थापना करता है—'ये सब सत्य हैं—मन्त्रोंमें कथित कर्म—जिनका ज्ञान ऋषियोंको प्राप्त हुआ था[१०]।'

मुण्डक-उपनिषद्-वैदिक यज्ञोंके सम्पादनका आदेश भी देता है—'इन यज्ञोंको तुमलोग नियमपूर्वक सम्पादन करो, सत्य ज्ञानको पाना चाहते हो तो[११]।'

आगे भी मुण्डकमें कहा है—'जो मनुष्य यज्ञोंका सम्पादन करते हैं, वे उनके पुण्यफलोंको स्वर्गमें भोगकर इस लोकमें अथवा इससे निम्न लोकोंमें उत्पन्न होते हैं[१२]।'

'गौण देवसमूह परब्रह्मसे उत्पन्न हुए थे[१३]।'

तैत्तिरीय उपनिषद् यज्ञोंको सम्पादन करनेका आदेश देता है—'देवों और पितरोंके कर्मोंके सम्पादनमें प्रमाद नहीं करना चाहिये[१४]।' (देवोंके कर्म हैं यज्ञ, पितरोंके कर्म हैं श्राद्ध और तर्पण)।

तैत्तिरीय उपनिषद्में आगे कहा है—'धर्माचरण करो[१५]।' इसकी व्याख्यामें श्रीशंकराचार्यने लिखा है, 'जबतक मनुष्य ब्रह्मके साथ अपने जीवात्माकी एकताकी अनुभूति नहीं कर पाता, तबतक वेदोक्त और स्मृत्युक्त कर्मोंको अप्रमादसे करना चाहिये[१६]।'

छान्दोग्यमें कहा है—'धर्मके तीन विभाग हैं—यज्ञ, अध्ययन और दान पहिला भाग है[१७]।'

बृहदारण्यकमें कहा है—'इसी ब्रह्मको ब्राह्मणलोग जानना चाहते हैं—निष्काम यज्ञ, दान और तपको सम्पादन करके[१८]।

ऊपर जो कुछ कहा है, उससे पूर्णरूपसे स्पष्ट हो गया होगा कि वस्तुतः प्रत्येक प्रधान उपनिषद्में गौण

---

(५) देवैरत्रापि विचिकित्सितम्। (वही २। १। ९)

(६) तं देवाः सर्वे अर्पिताः। (वही २। १। ९)

(७) भयादग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः।
भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः॥
(वही २। ३। ३)

(८) तद् ये ह वै ते इष्टापूर्ते कृतमित्युपासते, ते चान्द्रमसमेव लोकमभिजयन्ते। (प्रश्न उ० १। ९)

(९) ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव। (मुण्डक उप० १। १)

(१०) तदेतत् सत्यं मन्त्रेषु कर्माणि कवयो यान्यपश्यन्।
(वही १। २। १)

(११) तान्याचरथ नियतं सत्यकामाः। (वही १। २। १)

(१२) नाकस्य पृष्ठे ते सुकृतेऽनुभूत्वा इमं लोकं हीनतरं वा विशन्ति। (वही १। २। १०)

(१३) तस्माच्च देवा बहुधा सम्प्रसूताः।
(मुण्डक उप० २। १। ७)

(१४) देवपितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम्।
(तैत्तिरीय उप० १। ११। २)

(१५) धर्मं चर। (वही १। ११। १)

(१६) प्राग् ब्रह्मात्म प्रतिबोधान्नियमेनानुष्ठेयानि श्रौत-स्मार्त्तकर्माणि। (शांकरभाष्य, तैत्तिरीय उप० १। ११। १)

(१७) त्रयो धर्मस्कन्धा यज्ञोऽध्ययनं दानमिति प्रथमः।
(छान्दोग्य उप० २। ३। १)

(१८) तमेतं ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन तपसानाशकेन। (बृहदारण्यकोप० ४। ४। २२)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवताओंकी सत्ता और यज्ञोंकी कार्यकारिताके विश्वासकी दृढ़ स्थापना की गयी है। शायद कई लोगोंका यह विचार हो कि उपनिषद् एक ही मतको दृढ़रूपसे अन्ततक प्रस्तुत नहीं करते और ऊपर दिये उद्धरण यद्यपि बहुदेवोंके अस्तित्व तथा यज्ञोंकी सफलताके विश्वासका अनुमोदन करते हैं, तथापि ऐसे वचन भी हैं, जो यज्ञोंकी कार्यकारिताको अस्वीकार करते हैं। अतः मैं उन वचनोंपर विचार करूँगा, जिनको पाश्चात्त्य विद्वानोंने अपने मतकी पुष्टिमें उद्धृत किया है। एक उद्धरण है—

'ये यज्ञ कच्ची लकड़ीसे बनी नावों-जैसे हैं। जो इनको उत्तम कहते हैं, उन्हें पुनः जरा-मृत्युके वशमें जाना पड़ता है[१९]।'

यह उद्धरण इतना ही कहता है कि यज्ञोंके साधनसे मनुष्य पुनर्जन्मको रोक नहीं सकता। इस कथनका यह अभिप्राय नहीं कि यज्ञ-सम्पादन करके मनुष्य स्वर्गारोहण नहीं कर सकता। तात्पर्य यह है कि मनुष्य यज्ञोंद्वारा स्वर्गलाभ तो कर सकता है, परंतु सदैव वहाँ नहीं रह सकता। ज्यों ही यज्ञोंसे उपार्जित पुण्य तथा अन्य सुकृत समाप्त होते हैं, मनुष्यको स्वर्ग छोड़कर पुनर्जन्म लेना पड़ता है। अतः मनुष्य-जीवनका सर्वोच्च ध्येय यज्ञोंद्वारा स्वर्गारोहण नहीं हो सकता, वह ध्येय होना चाहिये ज्ञानद्वारा मोक्ष-प्राप्ति। जो वचन ऊपर उद्धृत किया गया है, वह प्रथम मुण्डकके द्वितीय प्रपाठकमें आता है। इस प्रपाठकका आदिका श्लोक ही प्रतिपादन करता है कि यज्ञोंकी विधियाँ सत्य हैं और उनके सम्पादनके लिये वहाँ आदेश है[२०]। इससे स्पष्ट ज्ञात होगा कि यह वचन यज्ञोंकी कार्यकारिताको अस्वीकार नहीं करता।

दूसरा उद्धरण जिसका इस मतकी पुष्टि करनेमें उल्लेख किया जाता है कि उपनिषद् यज्ञोंकी निन्दा करते हैं, वह बृहदारण्यक उपनिषद्में मिलता है। इसमें कहा गया है कि जो मनुष्य यज्ञोंका सम्पादन करता है, वह देवताओंके हितार्थ ही कार्य करता है, जैसे घरेलू पशु अपने पालनेवालेके लिये[२१]। तदनन्तर यह कहा है कि जब कोई मनुष्य ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर लेता है, वह यज्ञोंको बंद कर देता है। देवगण इस स्थितिको पसंद नहीं करते, कारण इससे वे अपने बलिभागोंसे वञ्चित होते हैं। अतः देवगण मनुष्यके ब्रह्मज्ञानके प्रयत्नोंमें विघ्न डालनेकी चेष्टा करते हैं।

निस्संदेह यह उद्धरण न तो देवोंके अस्तित्वको ही अस्वीकृत करता है और न स्वर्गलाभमें यज्ञोंकी कार्यकारिताको ही। यह तो उपनिषदोंका जो प्रधान मत है कि मोक्ष ही मनुष्यजीवनका सर्वोच्च ध्येय है और यज्ञसम्पादनसे स्वर्गारोहण निम्नतर लक्ष्य है, उसका पुनः-पुनः समर्थन करता है।

डा० विन्टरनित्सका जो ऊपर लिखा यह कथन है कि दार्शनिक प्रश्नोंपर विचार करनेवालोंका वर्ग पुरोहितवर्गसे विभिन्न होता था, उसके सम्बन्धमें हम यह कह सकते हैं कि बृहदारण्यक उपनिषद्में ऐसा प्रसङ्ग है कि राजा जनक यज्ञ-सम्पादन कर रहे हैं और अन्य एकत्रित ब्राह्मण दार्शनिक प्रश्नोंपर वादाविवाद कर रहे हैं[२२]। छान्दोग्य उपनिषद्में भी हम देखते हैं, ऋषि उषस्ति यज्ञमें दीक्षित राजाके पास गये, वहाँ उन्होंने अपने दार्शनिक ज्ञानकी महत्ता स्थापित की। तब राजाने उनको पौरोहित्य स्वीकार करनेके लिये

(१९) प्लवा ह्येतेऽदृढा यज्ञरूपाः अष्टादशोक्तमवरं येषु कर्म।
एतच्छ्रेयो ये प्रवेदयन्ति मूढा जरामृत्युं ते पुनरेवापि यन्ति॥ (मुण्डक उप० १।२।७)

(२०) तदेतत् सत्यं मन्त्रेषु कर्माणि कवयो यान्यपश्यन्।
× × × ×
तान्याचरथ नियतं सत्यकामाः। (मुण्डक उप० ८।४।१०)

(२१) यथा पशुरेवं स देवानाम्। (बृहद् उप० ८।४।१०)

(२२) बृहदारण्यक उप०, तृतीय ब्राह्मण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रार्थना की[२३]। इससे विदित होगा कि एक ही वर्गके विद्वान् यज्ञ भी करवाते थे और दार्शनिक प्रश्नोंपर वाद भी करते थे। अतः डा० विन्टरनित्सका कथन समीचीन नहीं।

वेदोंके प्राचीनतर भाग (अर्थात् संहिता) में संनिहित ज्ञानके प्रति निरादर प्रकट करनेकी बात तो दूर रही, उपनिषद् संहिताओंके वचनोंको प्रायः अपने कथनोंके प्रमाणमें उद्धृत करते हैं। ऐसे वचनोंको उद्धृत करते हुए वे कहते हैं—इसी अर्थका वेदोंमें भी श्लोक है[२४]। उपनिषद् कभी भी संहिताओंसे अपने पदको ऊँचा नहीं मानते। उपनिषदोंमें प्रोक्त ज्ञानको किसी स्थानमें भी नवीन आविष्कारके रूपमें नहीं दर्शाया गया। इसके विपरीत स्पष्टतया यह कहा गया है कि यह गुरु-शिष्य-परम्पराद्वारा चला आ रहा है और इस लंबी शृङ्खलाका आरम्भ सृष्टिके आरम्भका समकालीन है। इस प्रकार मुण्डक उपनिषद्के आरम्भमें कहा गया है कि उसमें निहित ज्ञानको सृष्टिके रचयिता ब्रह्माने अपने पुत्र अथर्वाको दिया, अथर्वाने उसे सिखाया अङ्गिराको, अङ्गिराने सत्यवाहको, सत्यवाहने आङ्गिरसको और आङ्गिरसने शौनकको। ईशोपनिषद्में भी कहा गया है कि उस उपनिषद्में निहित ज्ञान गुरु-शिष्य-परम्परासे प्राप्त है—

'हमने सुना है यह उन मनीषियोंसे, जिन्होंने हमें इसे सिखाया था।[२५]'

इसके अतिरिक्त संहिता-भागको प्राप्त करनेवाले ऋषियोंको परब्रह्मका ज्ञान नहीं था, ऐसे अनुमानके लिये भी कोई समर्थन नहीं है। संहिताओंके अनेक स्थलोंमें परब्रह्मके निर्देश मिलते हैं। नासदीय सूक्तमें (ऋग्वेद १०। १२९ में) आया है—

'प्रलयकालमें केवल ब्रह्म ही विद्यमान थे। माया उनमें लीन थी। उनसे भिन्न कुछ नहीं था[२६]।'

उसी सूक्तमें आगे कहा गया है—'परब्रह्म जो समस्त ब्रह्माण्डके अधिपति हैं, परमोच्च लोकमें विराजते हैं[२७]।'

हिरण्यगर्भ सूक्त (ऋग्वेद संहिता १०। १२१) में मन्त्रपाद हैं—

'उस परमेश्वरके आदेशोंको समग्र देवसमूह पालन करते हैं[२८]।'

'अपनी महिमासे वह परब्रह्म एक ही समस्त ब्रह्माण्डके अधिपति बने[२९]।'

'जो सकल देवोंके अधिदेव थे[३०]।'

पुरुषसूक्त (ऋग्वेद-संहिता १०। ९०) में निम्नलिखित मन्त्रपाद हैं—

'पुरुषके सहस्रों सिर हैं, सहस्रों चक्षु और सहस्रों चरण (अर्थात् सब प्राणियोंके मस्तक, चक्षु और चरण उसी परमेश्वरके हैं—सायणाचार्य)। वह पुरुष समस्त ब्रह्माण्डमें परिव्याप्त है और ब्रह्माण्डसे भी विशाल है अपनी विशालतासे[३१]।'

---

(२३) छान्दोग्य उप० १। १० और ११

(२४) तदेतदृचा चाभ्युक्तम्। (प्रश्न उप० १। ७)
तदेष श्लोकः। (मुण्डक उप० ३। २। १०)
(प्रश्न उप० १। १०; ४। १०; ६। ५)

(२५) इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे। (ईश उप० १०। १३)

(२६) आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न परः किंचनास। (ऋग्वेद १०। १२९। २)

(२७) योऽस्याध्यक्षः परमे व्योमन्। (ऋक् सं० १०। १२९। ७)

(२८) उपासते प्रशिषं यस्य देवाः। (वही १०। १२१। २)

(२९) महि त्वा एक इद् राजा जगतो बभूव। (वही १०। १२१। ३)

(३०) यो देवेष्वधिदेव एक आसीत्। (वही १०। १२१। ८)

(३१) सहस्रशीर्षः पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'वह पुरुष ही यह समस्त ब्रह्माण्ड है, जो भूत कालमें था और जो भविष्यत्‌में होगा[३२]।'

'समस्त विश्व उस पुरुषकी शक्तिकी अभिव्यक्ति है। वह इससे भी अतिशायी है। समस्त प्राणिवर्ग उसका चतुर्थभाग है। उसके अन्य तीन भाग अपरिणामी द्युलोकमें हैं[३३]।'

फिर ऋग्वेद-संहितामें एक मन्त्रपाद है—'उस एक ही पुरुषको ऋषिजन अनेक प्रकारसे कहते हैं—इन्द्र, यम और वायु[३४]।'

ऋग्वेद-संहिताके दशम मण्डलमें निम्नलिखित मन्त्रांश हैं—

'जो हमारे पिता, जनक और भाग्यविधाता हैं[३५]।'

अतः यह कहना समीचीन नहीं कि संहिता-भागके 'रचयिता' एक परम ब्रह्मकी धारणा करनेमें असमर्थ थे और उनकी कल्पना विविध गौण देवोंतक सीमित रही। वास्तवमें संहिताओं और उपनिषदों—दोनों भागोंमें एक परमेश्वर और साथ ही अनेक अवान्तर देवोंके वर्णन मिलते हैं, जिसका अर्थ यह है कि गौण देवसमूह परब्रह्म परमेश्वरद्वारा उत्पन्न किये गये हैं। परब्रह्मने गौण देवगण उत्पन्न किये, इस भावनामें कोई असंगति नहीं। गौण देवता मनुष्यों और पशुओंके समान एक प्राणिवर्ग हैं, हाँ, उन्नत वर्गके प्राणी और उनको उच्चकोटिकी शक्तियाँ तथा कार्यभार प्रदान किये गये हैं।

इस विवेचनसे यह सिद्ध होता है कि पश्चिमी विद्वानोंका यह कथन निराधार है कि वेदोंके कर्मकाण्ड तथा ज्ञानकाण्डमें परस्पर विरोध है।

पश्चिमी विद्वान् जो वैदिक ज्ञानकी परम्परासे अपरिचित हैं, वेदोंको समझनेमें उनकी भूलको क्षमा किया जा सकता है। परंतु यह अत्यन्त खेदका विषय है कि पश्चिमी विद्वानोंके अनुगामी बनकर अनेक आधुनिक उच्च कोटिके भारतीय विद्वानोंने भी ऐसे मौलिक विषयमें वैसी ही भूलें की हैं।

देखिये, मैसूर विश्वविद्यालयके प्रोफेसर हिरियन्ना लिखते हैं—'उपनिषद् मुख्यतया ऐसे भावोंको प्रस्तुत करते हैं, जो कर्मकाण्डसे भिन्न बल्कि प्रतिकूल हैं और उनमें विश्वके विषयमें ऐसा मत है, जो ब्राह्मणोंकी यागविद्यासे नितान्त विभिन्न है।' (भारतीय दर्शनशास्त्रकी रूप-रेखाएँ, पृ० ४८)।

कलकत्ता विश्वविद्यालयके डा० एस्० एन्० दासगुप्त लिखते हैं—'उपनिषद् ग्रन्थ अन्य वैदिक साहित्यसे नितान्त विभिन्न प्रकारके हैं। कारण, वे उस ज्ञानमार्गको दर्शाते हैं, जो कर्ममार्गसे विरुद्ध है। उपनिषद् यागादि कर्मोंके सम्पादनको नहीं चाहते, वे परमार्थ सत्य परम सत्ताको प्रदर्शित करते हैं।' (भारतीय दर्शनशास्त्रका इतिहास, पृ० २८)।

ज्ञानका मार्ग कर्ममार्गके प्रतिकूल नहीं। इसके विपरीत, कर्मका मार्ग ज्ञानमार्गतक पहुँचाता है। उपनिषद्ग्रन्थ कर्मोंके सम्पादनकी प्रेरणा करते हैं—

देवपितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम्।
(तैत्तिरीय उपनिषद् १।११।२)

---

(३२) पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं (वही १०।९०।१)
यच्च भाव्यम्। (वही १०।९०।२)

(३३) एतावानस्य महिमातो ज्यायांश्च पूरुषः।
पादोऽस्य सर्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि॥
(वही १०।९०।३)

(३४) एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति।
इन्द्रं यमं मातरिश्वानमाहुः।
(वही २।२।३२)

(३५) यो नः पिता जनिता यो विधाता।
(वही १०।८२।३)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इलाहाबाद विश्वविद्यालयके प्रो० रानडेने लिखा है—(उपनिषदोंकी भावना, इसके विपरीत, इधर-उधरके कुछ प्रतिवादोंको छोड़कर) पूर्णरूपसे ब्राह्मणग्रन्थोंके यज्ञवादके प्रतिकूल है । (उपनिषत्प्रोक्त दर्शन-शास्त्रका रचनात्मक सर्वेक्षण, पृ० ६) ।

मनको पवित्र बनानेके लिये उपनिषद् यज्ञोंका सम्पादन चाहते हैं । प्रो० रानडेने जिन उक्तियोंको प्रतिवाद कहा है, वे विधि हैं ।

डा० एस्० राधाकृष्णन् उपनिषदोंकी उत्पत्तिके विषयमें लिखते हैं—'लोग जिन देवगणोंकी अज्ञानतासे पूजा करते थे, अब मिलकर उनके विषयमें संदेह करने लगे । इस प्रकार असभ्य बहु देवतावादसे सुश्रृङ्खल दर्शनशास्त्रतक पहुँचते बड़ा लंबा समय लग गया ।' (भारतीय दर्शनशास्त्र, प्रथम खण्ड, पृ० ७१-७२) ।

उपनिषद् ग्रन्थ वैदिकसंहिताओंका उल्लेख परम आदरके साथ करते हैं, न कि अज्ञानकी उपजके रूपमें। यदि संहिताएँ बहुदेवतावादी हैं, तो उपनिषद् भी वैसे ही बहुदेवतावादी हैं। कारण, संहिताएँ और उपनिषदें—दोनों गौण देवतागणकी सत्ता और परब्रह्मका उल्लेख करती हैं ।

लखनऊ विश्वविद्यालयके डाक्टर राधाकुमुद मुखर्जी लिखते हैं—'वास्तवमें उपनिषद् एक नूतन धर्मका प्रतिपादन करते हैं, जो कर्मकाण्डके विरुद्ध है ।' (हिंदुओंकी संस्कृति, पृ० ११८) ।

पुनरपि—

सर आर० जी भांडारकर अपने ग्रन्थ 'वैष्णव, शैव और अन्य 'गौण सम्प्रदाय' में उपनिषदोंकी उत्पत्ति वैदिक कर्मकाण्डमें अश्रद्धासे हुई दरसाते हैं ।

बंबईमें स्थित भारतीय विद्याभवन द्वारा प्रकाशित 'वैदिक युग' में कहा गया है कि उपनिषदोंके समस्त विषयों-की भावना कर्मकाण्डविरोधी है (अध्याय २४) । यह भी वहाँ कहा गया है कि उपनिषद् वैदिक यज्ञोंकी कार्य-कारितामें विश्वास नहीं रखते थे ।*

चेतावनी

चेत चेत रे सोवनवाले सिर पर चोर खड़ा है ।
सारी बैस बीत गई अब भी मद में चूर पड़ा है ॥
सहि अपमान स्वान-सम निरलज जग के द्वार अड़ा है ।
जरा याद उस समय की भी कर सब से जौन कड़ा है ॥
देखु न पाप नरक में तेरा जीवन जनम सड़ा है ।
'हरीचंद' अब तौ हरि-पद भजु क्यों जग-कीच गड़ा है ॥

—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

* इस प्रकार हमारे भारतीय विद्वान् भी भ्रान्तधारणाकी पुष्टि कर बैठे हैं । यह वास्तवमें भारतीय शास्त्रकी गहराई-तक न पहुँचे हुए विदेशी विद्वानोंकी विचारधाराका ही अवाञ्छनीय प्रभाव है । —सम्पादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुक्र-संन्यासी

[एक महापुरुषकी संक्षिप्त जीवनी]

(लेखक—श्रीचारुचन्द्र चट्टोपाध्याय)

स्वर्गीय प्राणगोपाल मुखोपाध्याय वैद्यनाथ-देवघरमें, अपनी नौकरीसे अवसर लेनेके उपरान्त रहने लगे। उनकी मृत्यु १६ वर्ष पहले हुई थी। वे थे तो गृहस्थ, परंतु लोग उनको 'शुक्र-संन्यासी' कहते थे; क्योंकि संसारमें रहते हुए तथा सांसारिक सब काम-काज करते हुए भी आप बिल्कुल विरक्त थे। पातञ्जल-दर्शनके उस वैराग्यके पूरे उदाहरण थे, जिसको 'दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकारसंज्ञा' कहा गया है।

आप जीवनमें डाकविभागके कार्यमें व्यापृत थे। जब पोस्ट मास्टर-जेनरलके पदपर पहुँचे, तब आपने अवकाश ले लिया। तबसे बराबर पेन्शन पाते रहे। आपको सरकारने 'रायबहादुर' की उपाधिसे भूषित किया और भारत-धर्म-महामण्डलने 'धर्मालंकार'की उपाधिसे। परंतु आपने न तो कभी अपने नामके साथ उपाधियोंको लिखा और न कभी किसीसे कहा ही।

डाकविभागमें काम करते समय आपको यहाँसे वहाँ, वहाँ-से-यहाँ आना-जाना पड़ता था। पर उन दिनोंमें भी आपका अध्ययन-कार्य चलता रहता था। आप गीता, उपनिषद् इत्यादि पढ़ते रहते थे। आपका सब काम व्यवस्थित रूपसे होता था तथा आप सारा हिसाब-किताब ठीक रखते थे। गीता और उपनिषदोंपर आपने व्याख्यासहित टिप्पणी लिखी थी। परंतु उसे कभी प्रकाशित नहीं करवाया। उसे प्रकाशित क्यों नहीं किया, पूछनेपर आप कहते थे—'मैंने यह देखनेके लिये इसे लिखा है कि मैंने स्वयं इन विषयोंको कितना समझा; दूसरोंको समझानेके लिये नहीं लिखा।'

आपने जितना लिखा है, उसे छापा जाय तो लग एक सहस्र पृष्ठकी पुस्तकें हो सकती हैं। गीता प्रश्नावली है, उपनिषदोंपर सरल और ओजस्वि भाषामें व्याख्या है और दूसरे विषयोंपर भी निब हैं। आप ऐसे अध्ययन करते थे, जैसे स्कूलके लड़ पाठ्यपुस्तक पढ़ते हैं। वर्तमान लेखकको उनकी ए कापी देखनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। वह गीताक कुंजी (key) थी। उसमें गीताका प्रत्येक श्लोक था प्रत्येक शब्दका बँगलामें अर्थ लिखा हुआ था और फि पूरे श्लोकका अर्थ था। ऐसे ही पूरे ७०० श्लोकों अर्थ लिखा गया था। एकमें भी बल नहीं पड़ा था।

आप ईश्वरको छोड़कर अन्य विषयोंपर बातची नहीं करते थे। कोई करना चाहता तो पहले उनक अनुमति लेकर तब। कोई ऐसी पुस्तक न स्वयं पढ़ते थे न दूसरोंको पढ़नेके लिये देते थे, जिसमें शास्त्र या धर्म सम्बन्धी लेख न हो। कभी-कभी आश्चर्य होता था कि आप उनसे कोई प्रश्न पूछने गये हैं, तब वे ऐसी पुस्त पढ़नेको देते थे जिसमें उसी प्रश्नका उत्तर लिखा हो।

आप अपने गुरु ब्रह्मलीन श्रीबालानन्दजी ब्रह्मचारी के परम भक्त थे। आप कहते थे कि श्रीगुरुकी कृ त्रिधारारूपमें आपको जीवनमें प्राप्त हुई थी। पहले गीताकी प्रेरणा, फिर उपनिषदोंकी प्रेरणा और अन्त ब्रह्मसूत्रकी प्रेरणाके रूपमें। वेदान्तके प्रस्थानत्रय भीतरके अपूर्व प्रकाशकी अनुभूति ऐसे ही आप मिली थी।

आप हिंदू-धर्मके आचार-विचारोंका ध्यान र थे। सन्ध्या-वन्दन शास्त्र-विधिके अनुसार करते थे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गायत्री-मन्त्र और प्रणवका यथारीति जप करते थे। और नाद-ब्रह्मकी ध्वनिमें मग्न रहते थे, जिसके सम्बन्धमें यह कहा गया है—

नादस्यान्तर्गतं ज्योतिर्ज्योतिरन्तर्गतं मनः।
तन्मनो विलयं याति तद् विष्णोः परमं पदम्॥

रात्रिके शेष प्रहरमें सर्वदा उठते थे। घरके किसी विशेष काम-काजके कारण शयन करनेमें देर हो जाती तो भी दो-तीन बजे अवश्य उठ जाते थे। आलस्यसे कभीं नहीं सोते थे। दृढ़ संकल्पसे सब काम गुरुजी-के नामसे करते थे। इसीलिये अटल विश्वास रखते थे कि अन्तमें 'जय गुरु' कहकर जब पार जाने लगेंगे तब उनका आशीर्वाद अवश्य मिलेगा, अवश्य महानिशा-का अन्धकार दूर होकर दिव्यालोकमें उनके दर्शन मिलेंगे।

श्वेताश्वतर उपनिषद्का यह वाक्य उन-जैसे महा-पुरुषके लिये बेखटके प्रयोग किया जा सकता है—

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः॥
(६। २३)

अर्थ (धन) का प्रयोजन

[कहानी]

(लेखक—श्री'चक्र')

नार्थस्य धर्मैकान्तस्य कामो लाभाय हि स्मृतः।
(भागवत १। २। ९)

'मुझे परम धर्मात्मा सुप्रसिद्ध दानवीर सेठ झगड़ूसाहके दर्शन करने हैं!' गौरवर्ण आतपमें तपकर ताम्र बन चुका था और क्षीण काया तथा मलिन वस्त्र बतला रहे थे कि उसपर यदि किसीने कृपा की है तो वे ज्येष्ठा देवी (दरिद्रता) ही हैं।

'आप दूरसे आये जान पड़ते हैं और ब्राह्मण लगते हैं। मैं आपके चरणोंमें प्रणाम करता हूँ।' हाथ जोड़कर, मस्तक झुकाकर उस काठियावाड़ी पुरुषने बड़ी श्रद्धासे मस्तक झुकाया। 'झगड़ूसाहको आपके दर्शन करने चाहिये। वह कब ऐसा धर्मात्मा और दानी हुआ कि उसके दर्शन करने आप-जैसे ब्राह्मण पधारें। आप इस घरको पवित्र करें। कोई सेवा मैं कर सकूँ तो मेरे अहोभाग्य!'

'उन लोकविख्यात उदारचेतासे आपकी ईर्ष्या उचित नहीं है!' आगन्तुक कैसे जानता कि उसके सामने जो घुटनोंसे ऊपर धोती बाँधे बिना उत्तरीयके किंचित् स्थूलकाय अधेड़ उम्रका बड़ी-बड़ी मूँछोंवाला व्यक्ति है, उसीसे मिलने वह आया है और यही वह व्यक्ति है, जिसके समुद्री व्यापारकी धाक सुदूर पश्चिमके गौराङ्ग देशोंतक मानी जाती है। आगन्तुकने तो उसे सामान्य व्यक्ति ही समझा था। 'मैं सेठ झगड़ूसाहसे मिलकर ही विश्राम करूँगा। आप उनका गृह बतला देनेकी कृपा करेंगे!'

'आपके इस सेवकका ही नाम झगड़ूसाह है।' आगन्तुक दूरसे आया है, उसके चरणोंपर धूलिकी परत जम रही है। वह बहुत थका लगता है। उसे अधिक उलझनमें डालना अनुचित मानकर प्रार्थना की गयी—'आप भीतर पधारनेकी कृपा करें!'

'आप!' आगन्तुक दो क्षण तो स्तब्ध देखता ही रह गया सामने खड़े व्यक्तिको। उसने झगड़ूसाहके सम्बन्धमें क्या-क्या सोचा था—कितनी भव्य, कितनी तड़क-भड़क, कितने सेवक-सैनिकोंसे घिरे व्यक्तित्वकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसने कल्पना की थी और यह उसके सम्मुख खड़ा ग्रामीण-जैसा दीखता व्यक्ति········ ।

'आप पधारें !' झगड़ूसाहने फिर आग्रह किया। उसे भवनके भीतर जाकर अपनी कल्पनाकी सार्थकता जान पड़ी। राजसदन भी कदाचित् ही उतना सुसज्ज और कलापूर्ण होगा। सेवकोंकी तत्परता—उसने सुना था कि उत्तम सेवक स्वामीके हृदयके भाव समझते हैं और यहाँ वह देख रहा था कि उसके स्वागत-सत्कारमें आतिथेयको कहीं एक शब्द बोलनेकी अपेक्षा नहीं हो रही थी।

'यह सेठजीका निजी सदन है ?' तनिक अवकाश मिलनेपर एक सेवकसे आगन्तुकने पूछ लिया।

'यह उनका अतिथि-गृह है।' सेवकने बड़े सम्मानसे सूचित किया।

'सेठजी ! आप यदि अन्यथा अर्थ न लें, मुझे एक बात पूछनी थी !' आगन्तुक अपनेको रोक नहीं सका था।

'आप आज्ञा करें !' सेठने सरल भावसे कहा।

'आप देशके श्रेष्ठतम श्रीमंतोंमें हैं। स्वदेश एवं विदेशके भी श्रीमंत आपके अतिथि होते होंगे। अनेक नरपतियोंका भी आपने आतिथ्य किया होगा। आपकी अतिथिशाला आपके गौरवके सर्वथा अनुरूप है; किंतु—' दो क्षण आगन्तुक रुका। 'आप जानते हैं कि मैं ब्राह्मण हूँ और धर्मनिष्ठ आर्य गृहस्थ ब्राह्मण अतिथिका सत्कार प्रायः अपने निज सदनमें ही करते हैं। आपने इस परम्परासे पृथक् जो व्यवहार किया है, उसका कुछ कारण तो होगा ? मुझमें ऐसी कोई त्रुटि—कोई प्रमाद आपने········।'

'नहीं देव !' सेठने आतुरतापूर्वक ब्राह्मणके चरण पकड़ लिये। 'आप दूरसे पधारे हैं और थके हुए हैं। आपकी समुचित सेवा मेरा कर्तव्य है। आप विश्राम कर लें, तब यह जन आपके श्रीचरणोंसे अपने आवास को भी पवित्र करेगा और तब आप स्वयं समझ लेंगे कि देवका सत्कार वहाँ करनेका आग्रह मैंने क्यों नहीं किया।'

× × × ×

'देशके अनेक नरेश कठिन स्थितिमें जिनसे ऋण लेते हैं, जिनकी सम्पत्तिका कहा जाता है कि कोई अनुमान नहीं है, उनका यह आवास और यह जीवन! आगन्तुकको अपने पूरे जीवनमें ऐसा अनुभव कभी नहीं हुआ था।

उसे जहाँ ले जाया गया था—कठिनाईसे ही कह सकते हैं कि वह झोंपड़ी नहीं थी। क्योंकि वह पक्की दीवारोंसे बना घर था; किंतु कुल तीन कक्ष उसमें भोजनशालाके अतिरिक्त और उसमें भी एक पूजन-कक्ष था। उसी कक्षमें कुछ वैभवके दर्शन उसे हो सके थे।

प्रायः आभूषणरहित एक सामान्य नारीने उसके सत्कारमें भाग लिया था। झगड़ूसाह उन्हें बार-बार 'सती' न कहते तो वह जान भी नहीं पाता कि वही सेठानी हैं। कोई सेवक-सेविका नहीं। कोई विलास-सामग्री नहीं। गुजरात-काठियावाड़में ग्रामीण कृषकके घरमें भी इससे अधिक साज-सज्जा एवं सामग्री मिलती है।

'स्वच्छता, सुव्यवस्था, सौम्यता—अतिथि ब्राह्मण है, अतः उसने केवल एक अनुभव किया कि वह किसी गृहस्थके गृहमें न पहुँचकर देवालयमें पहुँच गया है। देवालयमें वह उपासना कर सकता है, दस पाँच घंटे ध्यानस्थ रह सकता है; किंतु उसे आवास बनाकर तो रहनेयोग्य वह अपनेको सचमुच नहीं पाता।

'आप इतने अल्पमें कैसे निर्वाह कर लेते हैं !' युवक अतिथि एक शब्द नहीं बोल सका था उस समय, जब वह सेठके साथ उनके निज-सदनमें गया था। उसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो रात्रिके प्रथम प्रहरमें अतिथिशालामें अपने पदोंके पास बैठे सेठसे पूछा था ।

'इतना वैभव—इतना विस्तार और यह जीवन !' अतिथि सायं-संध्यासे पूर्व सेठके व्यावसायिक कार्यालयमें भी हो आया था । उस गद्दीमें उसने पंक्तियाँ देखी थीं बहीखाता सँभालनेवाले मुनीमोंकी और वहाँ देखा था कि एक व्यावसायिकके प्रबन्ध, प्रशासन और नरेशके प्रशासनमें क्या अन्तर होता है । सेठका आत्मीय-जैसा सबके साथ व्यवहार उसने देखा तो यह भी देखा कि उनका कितना सम्मान करते हैं उनके सेवक एवं सहचर। उनके प्रत्येक शब्द एवं संकेतको कितनी गम्भीरतासे ग्रहण किया जाता है । वही व्यक्ति यह उसके पैरोंके समीप आ बैठा है और उसका निजी जीवन—निजी जीवनकी वह सादगी समझनेका प्रयत्न कर रहा था वह ।

'अल्प—अल्पमें कहाँ निर्वाह कर पाता हूँ, प्रभु ?' —सेठके व्यवहार और वाणीमें आडम्बर उसे सर्वथा नहीं दीखा । वे कह रहे थे—'भगवान्ने एक सेवा दे दी है । उसका पारिश्रमिक जितना लेना चाहिये, उससे यदि अधिक न लेता होऊँ तो उनकी कृपा है । शरीरकी सुख-सुविधाके लिये कितना अल्प प्राप्त है इस देशके अनेक अभावग्रस्त लोगोंको । झोपड़ियोंके निवासी क्या इतनी भी सुविधा पाते हैं ? झगड़ूसाह तो अपनी देहके लिये बहुत व्यय करनेवाला बन गया है ।'

'किंतु सेठजी ! व्यक्तिको अपने पूर्वकृत कर्मोंसे सम्पत्ति प्राप्त होती है ।' अतिथिने अपनी बात कही । 'जिनके भाग्यमें धन नहीं है, जिनके पूर्वकृत शुभ कर्म नहीं हैं, वे कंगाली भोगते हैं । यह उनका कर्मफल—उनका प्रायश्चित्त; किंतु जिसे पूर्वपुण्यके फलरूपमें अपार सम्पत्ति मिली है, वह उसका उपभोग न करके अभावकी पीड़ा क्यों उठाये ?'

'देव ! मैंने तो दूसरी ही बात सत्पुरुषोंके मुखसे सुनी है ।' सेठने सुनाया ।

> पानी बाढ़ै नावमें, घरमें बाढ़ै दाम ।
> दोनों हाथ उलीचिये, यही सयानो काम ॥

'श्रीपति तो श्रीनारायण हैं । समस्त सम्पत्ति उन्हींकी है । उनकी कृपा होती है तो वे किसीको अपना मुनीम बना लेते हैं । उन दीनबन्धुके बन्धुओंकी जो सेवा कर सके तो वह मुनीम सच्चा ।' सेठने अपने ढंगसे उत्तर दिया । 'मैं वैश्य हूँ, मैंने तो यही समझा है ।'

'आप कहते ठीक हैं ।' आगन्तुक ब्राह्मण था और ब्राह्मण उस समयतक शास्त्रसे विमुख एवं बहिर्मुख नहीं हुए थे। युवक आसनसे उठकर नीचे बैठ गया । 'धनका एकमात्र उपयोग है—यज्ञ और दान । अर्थकी परानिष्ठा धर्म है । धन किसी भी पुण्यसे आया हो—पुरस्कार है और प्राप्त पुरस्कारको वितरित कर देनेमें ही मनुष्यकी उदारता, महानता है । उसका उपभोग करने जो बैठा, वह तो कृपण है । आपने आज एक ब्राह्मणको बचा लिया लोभके पाशसे !'

'देव !' सेठ दो क्षण मौन रहे । 'आपने अपने आगमनसे मुझे धन्य किया; किंतु इस जनको सेवाका सौभाग्य अभी प्राप्त नहीं हुआ । परिचय पाना भी चाहता था ।'

'तक्षशिलाका स्नातक बनकर तीर्थयात्राको निकल पड़ा था ।' युवकने बिना किसी भूमिकाके परिचय दिया । 'पिता-माता बाल्यकालमें परलोकवासी हो गये; किंतु देशमें ब्राह्मण-पुत्रके पालन-शिक्षणकी व्यवस्था करनेवाले उदारचेता कम नहीं हैं । श्रीद्वारकाधीशके दर्शन करनेके बहुत पूर्वसे—कहना तो यह चाहिये कि तीर्थयात्राके प्रारम्भसे ही आपकी कीर्ति कर्णकुहरोंको पवित्र कर रही थी । इधर आया तो आपके दर्शनकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्कण्ठा हुई। मेरा अध्ययन आज पूर्ण हुआ, ऐसा अनुभव करता हूँ।'

'आप प्रमुख पथ त्यागकर केवल एक व्यापारीसे मिलनेमात्रके लिये तो यहाँ नहीं आये होंगे।' सेठने इस बार आग्रह किया कि युवक संकोच त्यागकर उद्देश्य सूचित करे।

'आपका अनुमान अयथार्थ नहीं है।' युवक किंचित् हँसकर बोला। 'तीर्थयात्रा पूर्ण करके गृहस्थ-जीवन स्वीकार करनेकी बात मनमें थी। यह कल्पना ही नहीं थी कि बिना अर्थके भी गार्हस्थ्य चला करता है; किंतु अब आपका गृह देखकर मुझे अपनी अल्पज्ञतापर लज्जा आती है। आप मेरे गुरु इस विषयके।'

'आप मुझे सेवासे वञ्चित करना चाहते हैं!' सेठने भी हँसकर कहा।

'आप धर्मात्मा हैं।' युवक गम्भीर बना रहा। 'एक ब्राह्मणकुमारको आप परिग्रहके कुपथपर जानेकी प्रेरणा नहीं देंगे। ब्राह्मणके गार्हस्थ्यमें अर्थकी आवश्यकता नहीं है, यह आप अनुभवी होनेके कारण मुझसे अधिक जानते हैं।'

'पञ्चाल धन्य है ऐसे विद्वानोंसे।' सेठने सिर झुकाया। 'किंतु आप मुझ-जैसे एक व्यापारीको यह कैसे समझा देना चाहते हैं कि घर आये अतिथिको रिक्तहस्त चले जाने देनेका अपकर्म मैं स्वीकार कर लूँ?'

'आप ज्ञान-दानको दान ही नहीं मानते?' युवकने पूछा।

'सर्वश्रेष्ठ दान है वह; जब वह अपनी प्रज्ञासे स्वतः प्राप्त कर लिया जाता है, दान नहीं होता। उसका नाम उपार्जन होता है और वह अपना स्वत्व है।' सेठने कहा। 'मैंने तो अपने सम्पूर्ण व्यापारमें यही सीखा है। व्यापारी होनेके कारण मेरी दृष्टि अर्थपर ही अधिक रहे तो आपको इसे मेरा स्वधर्म समझकर सत्कृत करना चाहिये।'

रात्रि-विश्रामका समय देखकर सेठने स्वयं चर्चा समाप्त कर दी। अतिथिका अभिवादन करके उस समय विदा होना ठीक लगा उन्हें।

× × ×

'मैंने जब तक्षशिलामें आयुर्वेदकी शिक्षा प्रारम्भ की—एक बाल्यचापल्य चित्तमें था।' दूसरे दिन युवकने विदा होनेसे पूर्व सेठको सुनाया। 'एक समृद्ध चिकित्सालयका स्वप्न था वह। यात्रामें आपकी कीर्ति सुनकर सोचा था कि प्रचुर धन आपसे सहज ही इसके लिये प्राप्त हो सकता है।'

'बड़ा शुभ संकल्प है। आप यहाँ निवास करें तो इस प्रान्तका सौभाग्य।' सेठने अवसर खो देना सीखा होता तो इतने समृद्ध वे होते ही नहीं। वे बोलते गये—'मेरा कोई आग्रह नहीं है। आप जहाँ उपयुक्त समझें—जैसी व्यवस्थाकी आज्ञा करें।'

'तीर्थाटनका कार्यक्रम मैंने अपने चिकित्सागुरुकी सम्मतिसे बनाया।' युवकने सेठकी बात जैसे सुनी ही न हो। 'देशके विभिन्न भागोंमें होनेवाली वनस्पतियों तथा अन्य ओषधियोंसे परिचयके साथ लोगोंकी प्रवृत्ति एवं प्रकृतिका अनुभव भी हो गया। मेरे दो सहयात्री संगृहीत ओषधियाँ लेकर पञ्चाल चले गये हैं।'

'पञ्चालमें ही आप अपना चिकित्सालय स्थापित करें।' सेठने बिना संकोच स्वीकार किया। उन्होंने दावात खींच ली अपने पास, अपने पञ्चालस्थित प्रतिनिधिको आदेश-पत्र लिखनेके लिये।

'कलतक जो बात समझमें नहीं आयी थी, अकस्मात् कल रात्रिमें ध्यानमें आ गयी। वैसे मैं अनेक बार श्रीमद्भागवतके पारायणमें उसे पढ़ चुका हूँ—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यात्रार्थमपि नेहेत धर्मार्थं बाधनो धनम्।

'ब्राह्मणके लिये गृह-निर्वाहकी चिन्ता व्यर्थ है। जीवन-निर्वाह तो उसे करना है, जिसने जीवनका निर्माण किया है और सेठजी ! सृष्टिकर्ताने स्वयं जिसे मुनीम नहीं बनाया है, वह बलात् यह परतन्त्रता अपने सिर ले, अज्ञता ही तो है ?'

झगड़ू साहने दोनों हाथ जोड़ लिये। उनके-जैसा संयमी, दानी, धर्मात्मा तथ्यको ग्रहण करनेमें न असमर्थ रह सकता था और न उससे संकोच कर सकता था।

'धर्मका एक तथ्य मैं विस्मृत हो गया था।' युवक कहता गया। 'अपने समीप जो शक्ति, जो साधन, जो क्षमता है, उसके सदुपयोगका ही नाम धर्म है। धर्मके लिये दूसरोंपर निर्भर करके, दूसरोंसे परिग्रह करके जो प्रयत्न चलता है—वह विश्वनियन्ताकी प्रेरणा नहीं है। उसकी प्रेरणा होती, उसको वह सेवा लेनी होती तो उसका साधन वह सहज दे सकता था। यह धर्मके नामपर होनेवाला प्रयत्न तो आत्मप्रचारकी प्रेरणा—अहंकी पूजा है।' *

'आपकी योग्यताका लाभ तो प्राप्त होना चाहिये रोगार्त जनोंको।' सेठने सविनय कहा।

'मैं उसे अस्वीकार कहाँ करता हूँ।' युवक बोला। 'मेरा शरीर सशक्त है और वनौषधियोंके द्वारा भी रोग-निवारण सम्भव है। जितनी शक्ति मुझे प्राप्त है, उसका उपयोग करनेका कर्तव्य तो मुझे स्रष्टाने सौंप ही दिया है।'

'मुझ-जैसोंको उन्होंने यह व्यवस्था करनेके लिये नियुक्त किया है कि आप-जैसे महाप्राणोंकी शक्तिका समुचित उपयोग हो जाय।' अब सेठने स्थिर स्वरमें कहा—'आप कहाँ अपना निवास बनायेंगे, केवल इतना सूचित कर दें। आपकी लोकसेवाको जो सहयोग समाजकी ओरसे अनायास प्राप्त होगा, उसे अस्वीकार करना आपके लिये भी उचित नहीं है।'

युवक इस आग्रहको अस्वीकार नहीं कर सकता था। पश्चात् दुर्भाग्यसे आक्रान्ताओंका बार-बार आखेट हुआ। तक्षशिला भी अब पाकिस्तानमें है। अतः शताब्दियों पूर्वकी इस घटनाका कोई चिह्न—किसी प्राचीन चिकित्सालयका कोई खँडहर पश्चात्में भूमिके नीचे कहीं दबा पड़ा भी हो तो उसका पता लगा लेना आज सरल नहीं है।

रामसे लगन कैसी हो ?

लोभीके चित धन बैठे, (अरु) कामिनिके चित काम।
माताके चित पूत बैठे, तुकाके मन राम॥

—संत तुकाराम

* पाठशाला, गोशाला, विद्यालय, चिकित्सालय आदिकी स्थापना तथा अभावग्रस्त, अकाल-पीड़ित प्राणियोंकी सेवा धर्म नहीं है, ऐसा तात्पर्य मेरा सर्वथा नहीं है। किंतु इन कामोंके लिये भी साधककी प्रवृत्ति धन एकत्र करनेमें हो तो वह बाधक प्रवृत्ति ही है। जन-सेवकोंका यह काम है। उसमें स्वयं जो सहयोग दिया जा सकता हो, सर्वथा श्रेयस्कर है।—लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रभु-विश्वास

[कहानी]

(लेखक—श्रीरामरूपजी तिवारी, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०)

उत्तर भारतमें भागीरथीके तटपर एक ग्राम है। वहाँ स्वामी ध्यानानन्द निवास करते थे। धीरे-धीरे उनका एक आश्रम बन गया। यह आश्रम धन-धान्यसे पूर्ण था। भक्तलोग स्वामीजीकी सेवा करते थे। दोनों समय कीर्तन-प्रवचन इत्यादि होते थे। कुछ साधक बाहरसे भी आकर रहते थे।

उस ग्राममें एक विचित्र साधु आये। उनके पास एक झोली थी, जिसमें कुछ फल-मेवा इत्यादि थे। वे साधु ग्रामके प्रत्येक घरके द्वारपर पहुँचते और राधाकृष्ण-की धुन लगाते, लोग बाहर निकलकर आते और भिक्षा देने लगते। किंतु साधु महाराज भिक्षा न लेते हुए, झोलीमेंसे निकालकर सबको फल इत्यादि वितरण कर देते। साधुके चेहरेपर तेज था, शान्ति थी और प्रेमका निःस्पृह प्रकाश था। साधु गङ्गातटपर निवास करने लगे। ग्रामके लोगोंकी उनके प्रति श्रद्धा-भक्तिका अविरल प्रवाह बहने लगा—स्वामी ध्यानानन्दके प्रति लोगोंका खिंचाव कम हो गया।

स्वामी ध्यानानन्दके मनमें एक प्रश्न बार-बार उठता कि नये साधुके प्रति लोगोंका इतना आकर्षण तथा सम्मान क्यों है, मैं तो बहुत समयसे ग्रामवासियोंकी सेवा करता चला आया हूँ। इस प्रश्नने स्वामीजीकी शान्तिका अपहरण कर लिया। एक दिन स्वामीजी साधु महाराजसे एकान्तमें यह प्रश्न कर ही बैठे। साधु महाराजने कहा कि 'आपके प्रश्नका ठीक-ठीक उत्तर उस दिन दिया जायगा, जब आप मेरे साथ कभी बाहर चलेंगे और मैं आपको बिना सूचनाके एकाएक चलने-के लिये कहूँगा।'

थोड़े दिनोंके पश्चात् एक दिन साधु महाराजने स्वामीजीको चलनेके लिये कहा—दोनों बाहर निकल गये। दिनभर यात्रा करते रहे। धधकती ग्रीष्म ऋतुकी चिलचिलाती धूपमें जनविहीन तथा चरण-चिह्न-विरहित अरण्यके बीच यात्रा हो रही थी। स्वामीजीने कहा—'महाराज! कहीं विश्राम करना चाहिये।' स्वामीजी भूख और गरमीसे व्याकुल हो रहे थे। साधुने कहा—'मैंने अपना जीवन प्रभुको समर्पित कर दिया है। जब वे विश्राम देंगे, तब विश्राम करूँगा। मैं भिक्षा भी नहीं माँगता, जब वे खिला देते हैं, तब ग्रहण कर लेता हूँ। सूर्यास्त होने लगा। अन्धकारकी चादरका फैलाव बढ़ने लगा। इसी समय एक व्यक्तिने सामनेसे आकर साधु महाराजको प्रणाम किया और कहा—'महाराज! इस अन्धकारमें आप कहाँ जा रहे हैं, मेरे यहाँ रात्रि-में विश्राम कीजिये।' साधु और स्वामीजी उसके साथ चल दिये। वह एक टीलेकी तरफ बढ़ने लगा। उस टीलेपर उसका निवास था। वहाँ ले जाकर उसने साधु तथा स्वामीजीको अच्छा आसन दिया, सब प्रकारकी सुविधा दी तथा भोजन करवाया। उस टीलेके चारों ओर घनी वनमाला फैली हुई थी। क्षितिज पृथ्वीसे आलिङ्गन कर रहा था। सब दृश्य अन्धकारमें विलीन हो रहे थे। साधु महाराज बोले—'देखो, इस गोलाकार क्षितिजके उस पार सूर्यभगवान्ने पदार्पण किया है। उनके जाते ही अन्धकारने अपने पैर फैला दिये हैं। क्या यह अन्धकार कोई सत्ता रखता है? क्या इसे कोई निकालकर बाहर कर सकता है। यह तो केवल प्रकाशका अभाव है। प्रकाशके आते ही अन्धकार नहीं रहता। यही बात प्रभु-विश्वासके सम्बन्धमें है। प्रभु-विश्वासका प्रकाश सब प्रकारके अभावके अन्धकार-को दूर कर देता है। जबतक हम वस्तु, व्यक्ति, परिस्थितिमें विश्वास करते हैं, तबतक हमें अभाव, अतृप्ति, दुःख, निराशा घेरे रहते हैं, जो हटाये नहीं जा सकते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भोजन करनेसे तृप्ति होती है, वह भ्रमात्मक है; क्योंकि वह तृप्ति ठहरती नहीं, फिर अतृप्ति आ घेरती है। किंतु प्रभु-विश्वाससे, प्रभु-समर्पणसे अतृप्ति, अभाव सदाके लिये चले जाते हैं। वस्तु, पदार्थ मिलें या न मिलें, शान्तिका साम्राज्य विशाल अपरिच्छिन्न आकाशकी भाँति कभी नहीं छोड़ता।'

साधु महाराज चुप हो गये। उनकी उस मूकतामें आनन्दकी छटा मूक नक्षत्रोंकी छटाके समान छिटक रही थी।

साधु महाराज ब्राह्ममुहूर्तमें उठ खड़े हुए और उन्होंने स्वामीजीसे चलनेके लिये कहा। आतिथेय महोदय भी आ गये। उन्होंने कुछ दिन विश्राम करनेके लिये आग्रह किया। स्वामीजीका भी आग्रह था—एक दिन वहाँ विश्राम किया जाय। सुन्दर भोजन, दूध, मीठा जल तथा सब सुविधाएँ वहाँ उपलब्ध थीं; किंतु साधुने कहा 'नहीं चलना ही होगा।' आगेका पथ कठिन था, कुछ भी प्राप्य न था। आगन्तुकने कहा—थोड़ा भोजन लेते जाइये; किंतु साधु महाराजने कहा 'संग्रह सर्वथा त्याज्य है, संग्रह प्रभु-विश्वासमें विघ्न है। केवल प्रभु-विश्वास ही जीवनका सहारा होना चाहिये।'

साधु तथा स्वामीजी यात्रापर फिर निकल पड़े। आगेका प्रदेश मरुस्थल था। बालूके कण उड़-उड़कर शरीरको आच्छादित कर देते थे। मरुस्थलकी प्रचण्ड ऊष्मा, जलविहीन धराने स्वामीजीको विकल कर दिया। साधु महाराज भगवान्‌के नामका उच्चारण करने लगे। प्रगाढ़ अन्धकारने फिर घेरा डाल दिया—यात्रा असम्भव हो गयी। साधु तथा स्वामीजी एक वृक्षके नीचे ठहर गये। दूर एक टिमटिमाता प्रकाश आता हुआ दृष्टिगोचर हुआ। वह प्रकाश उसी वृक्षकी ओर आ रहा था। एक बूढ़ा एक लालटेन लिये आ गया। उसने उन्हें देखकर पूछा—'आप भूखे-प्यासे जान पड़ते हैं, थोड़ा भोजन कर लीजिये।' उसने कुछ भोजन दिया तथा जल पिलाया। उसके पास लोटेमें जल था और थैलीमें सूखा भोजन। स्वामीजीको पृथ्वीपर सोनेसे नींद नहीं आयी। किंतु साधु महाराज खूब सोये और उषःकालमें उठ खड़े हुए।

मरुस्थलमें उषःकालमें अनुपम सौन्दर्य होता है। क्षितिजके नीचेसे प्रकाशने फूटकर निर्मल आकाशको लालिमायुक्त कर दिया। साधु महाराज बोले, 'जिस प्रकार निर्मल आकाशमें लालिमाकी भ्रान्ति हो रही है, उसी प्रकार हमारे निजस्वरूप आत्मामें भ्रान्तिसे सीमित अहंका भास हो रहा है। आकाश अनन्त है, अपरिच्छिन्न है, उसका वारापार नहीं है। लालिमा तो उससे बहुत नीचे है और वास्तवमें है नहीं, केवल प्रतीतिमात्र है। सूर्य निकलनेपर कहीं लालिमाका पता नहीं लगता। वास्तवमें होती तो तब भी रहती। इसी प्रकार सीमित अहं भी अवास्तविक है, जाग्रत्‌में भासित होता है और फिर विलीन हो जाता है।

साधु महाराज और स्वामीजी यात्रापर चल दिये। साधुने पूछा—'स्वामीजी! आपको प्रश्नका उत्तर मिला कि नहीं?' स्वामीजीने कहा—'महाराज मिल गया, मैंने आश्रम बनाकर धन-धान्य-सामग्रीका संग्रह करके प्रभु-विश्वास खो दिया। जब मैं आया था, प्रभु-विश्वास था, लोगोंने सम्मान दिया और सब कुछ दिया। मैंने संग्रह किया और प्रभुसे दूर हो गया। मैंने सोचा कि मेरे पश्चात् आश्रम चलानेके लिये धनकी आवश्यकता होगी। धन नहीं रहेगा तो आश्रम बंद हो जायगा। मैंने प्रभुपर विश्वास न करके धनमें विश्वास किया। यह मेरी बड़ी भूल थी। अब मैं संगृहीत सब धन सेवामें व्यय करके प्रभुपर ही आश्रित रहूँगा।'

साधुने कहा—'स्वामीजी! सम्मान चाहनेसे नहीं मिलता। सम्मान जगत्‌की सेवा तथा प्रभुमें भक्तिसे स्वतः प्राप्त होता है।' पर सम्मानमें कभी भी आसक्ति नहीं होनी चाहिये।

स्वामीजी—आपको प्रभुकी अनन्य भक्ति कैसे प्राप्त हुई?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधु—"मैं जिज्ञासु था, ब्रह्मसाक्षात्कार मेरा लक्ष्य था। विचार, मनन तथा निदिध्यासनसे मैंने ब्रह्मका साक्षात्कार किया। एक समय मैं मीराँका जीवन-चरित्र पढ़ रहा था, उसमें मैंने पढ़ा कि मीराँने अनन्त रसकी प्राप्ति की। मीराँने एक प्रभुसे नाता जोड़ लिया, वह अर्धरात्रिको बिखरे हुए नक्षत्रोंकी छायामें महलसे निकल पड़ी। प्रभुके गीत गाती हुई निर्जन प्रदेशमें भ्रमण करती हुई वृन्दावन पहुँची। वहाँ सुमधुर गीतोंसे तथा अनोखे नृत्योंसे श्रीकृष्णका आह्वान करने लगी। वहाँसे फिर श्रीकृष्णसे साकार भेंटके लिये द्वारका पहुँची, वहीं श्रीकृष्णसे उसका सशरीर मिलन हुआ। नित-नव रसका संचार हुआ और परम रसकी उपलब्धि कर वह श्रीकृष्णसे अभिन्न हो गयी। मीराँके जीवनसे मुझे एक प्रेरणा हुई कि श्रीकृष्णके रूपमें सविशेष ब्रह्मके दर्शन करूँ।

"अर्धरात्रिको पूर्णचन्द्रकी श्वेत किरणें समस्त धरातलको स्नान करा रही थीं। उस समय गङ्गाकी लहरोंसे गीत-गोविन्दकी मधुर तानें सुनायी दे रही थीं। मैं अपनेको भूल गया। किसीने कहा 'वृन्दावन जाओ, वहाँ तुम्हारा श्रीकृष्णसे साक्षात् मिलन होगा।' मैं वृन्दावन आया और यमुना-तटपर बैठ गया। रात्रिके एकान्तमें एक श्वेत वस्त्र धारण किये हुए एक महिला दिखायी दी। उसने मुझे देखकर कहा कि 'तू कौन है, यहाँ क्यों बैठा है ? चला जा ?' मैंने महिलाको प्रणाम किया और विनीत शब्दोंमें कहा—'मैं प्रेम-पंथका पथिक हूँ, श्रीकृष्णसे मिलनेके लिये आया हूँ।' महिलाने कहा—'यदि तू श्रीकृष्णके दर्शन करना चाहता है तो श्रीकृष्णके किसी विग्रहके रूपमें उनका ध्यान कर, यों बैठे रहनेसे उनके दर्शन नहीं होंगे।' मैंने कहा—'मैं ध्यानके द्वारा श्रीकृष्णके मानस रूपके दर्शन नहीं करना चाहता, मैं तो उनके उस स्वरूपका दर्शन चाहता हूँ, जिस शरीरसे उन्होंने लीला की थी।'

"महिलाने कहा—'ऐसा नहीं होगा, तू यहाँसे चला जा।'

"मेरी आँखोंसे अश्रुधाराका प्रबल वेग उमड़ पड़ा। महिला बोली—'अच्छा, तू यहाँसे कुछ दूर चला जा और वहाँसे चुपचाप कृष्णके दर्शन कर लेना।' मैंने कहा—'मैं केवल दर्शन ही नहीं चाहता, मैं उनके चरणोंका स्पर्श, उनकी मधुर वाणीका श्रवण, उनके शरीरका सौरभ तथा उनके प्रसादका रस भी प्राप्त करना चाहता हूँ, ताकि प्राकृतिक शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धसे सदाके लिये मुक्त हो जाऊँ। विषयरूपी शब्द, रस, रूप, स्पर्श तथा गन्धसे कभी तृप्ति नहीं होती; क्योंकि क्षणिक तृप्तिके पश्चात् फिर अतृप्ति आ जाती है। किंतु श्रीकृष्णके शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धकी सदैव उपलब्धि होगी; क्योंकि वह दिव्य—अलौकिक है।' महिलाने कहा,' ठीक है।'

"रात्रिका समय था। यमुनाका कलरव सुनायी देता था। प्रकृति निस्तब्ध थी। नक्षत्रोंका झिलमिला प्रकाश पृथ्वीपर पड़ रहा था। दूरसे बाँसुरीका शब्द सुनायी दिया और देखते-देखते श्रीकृष्ण आ गये। उनके मुखकी शोभा अवर्णनीय थी। माधुर्य फूट-फूटकर बह रहा था। उनके शरीरसे एक ज्योति निकल रही थी। मैंने चरण-स्पर्श किया। उन्होंने माखन अपने हाथसे मेरे मुखमें दे दिया और वे अदृश्य हो गये।"

इतना कहकर साधु मूक हो गये। स्वामीजी भी मूक हो गये। ग्राम निकट आ गया। स्वामीजीने साधुके चरणोंकी धूलि अपने मस्तकपर लगायी और विदा हो गये।

सुना गया, बादमें स्वामीजी भी साधु हो गये। आश्रमका धन-धान्य सब वितरण कर दिया और वृन्दावन-धामकी ओर रवाना हो गये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्यात्म-गुरु

(लेखक—श्रीस्वामीजी श्रीकृष्णानन्दजी महाराज; अनुवादक—श्री ति० न० आत्रेय)

ईश्वर ही गुरु हैं

गुरु वह है, जो अज्ञानको मिटाता है। हमारा मोह-तिमिर निवारणकर ज्ञान-ज्योतिर्मय सूर्यके समान हमारे सामने जो उपस्थित होता है, वही गुरु है। वह मानवरूप-धारी साक्षात् परमेश्वर है। हमारी उन्नतिके लिये आवश्यकता अनुभव होनेपर ईश्वर गुरुके रूपमें हमें यथोचित ज्ञान देता है और उसके लिये स्वेच्छासे कोई भी रूप धारण करता है। वह अनन्त रूप ले सकता है और वे अनन्त रूप हमारे गुरु बन सकते हैं। श्रीमद्भागवतमें दत्तात्रेय और राजा यदुके संवाद-प्रसङ्गमें इसका अत्यन्त रमणीय वर्णन आया है। श्रीदत्तात्रेयने अपने कई गुरु गिनाये हैं। वे यह नहीं कहते कि अमुक मानवदेहधारी ही उनके गुरु हैं। बल्कि वे अपने गुरु गिनाते गये और संख्या चौबीस तक पहुँची। कहा—'ये सब मेरे गुरु हैं।' वे सब मनुष्य ही थे, सो नहीं; और दत्तात्रेय-यदु-संवादमें इसी अंशपर विशेष बल दिया गया है। उनमें पशु भी हैं, एक भ्रमर भी है, पृथिवी, जल, वायु, अग्नि आदि पदार्थ भी हैं। श्रीदत्तात्रेयके लिये संसारमें ऐसा एक भी पदार्थ नहीं था, जो गुरु नहीं था।

यह नहीं कि दत्तात्रेय गुरुको खोजते फिरे होंगे। वे तो स्वयं गुरुओंके गुरु थे। जिस प्रकार भगवद्गीता केवल अर्जुनके लिये नहीं थी, उसी प्रकार श्रीदत्तात्रेयके उपदेश भी केवल यदुके लिये नहीं थे, बल्कि समस्त मानवजातिके लिये हैं। मानवके नाते और अन्वेषकके नाते हम सब अर्जुन और यदुके स्थानमें हैं।

श्रीदत्तात्रेयके उपदेशोंमें गुरु-शिष्य-सम्बन्धोंपर विशेष गहरा विचार प्रकट किया गया है। मुख्यतः हमारे सामने यह तथ्य प्रस्तुत किया गया है कि स्वयं परमेश्वर, उसके तीनों रूप—ब्रह्मा विष्णु और महेश ही हमारे गुरु हैं। तात्पर्य यह कि ईश्वर ही गुरु है और गुरु ही ईश्वर है। ईश्वर और गुरुमें कोई भेद नहीं है। शिष्यके लिये ईश्वर और गुरुमें कोई भेद नहीं है, दोनों एक हैं।

गुरु-शिष्यके इन आन्तरिक और गूढ़ आध्यात्मिक सम्बन्धोंमें गुरु-शिष्य दोनों दो व्यक्ति नहीं रह जाते। दोनोंका स्थूल रूप लुप्त हो जाता है। दोनों क्रमशः शारीरिक सम्बन्धोंसे परे हो जाते हैं और शिष्य कभी यह अनुभव नहीं करेगा कि गुरु लुप्त हो सकता है। गुरुका लोप असम्भव है। वह कभी लुप्त नहीं हो सकता। होता यही है कि उसका आकार बदलता है और उसके कामका प्रकार बदलता है। विभिन्न परिस्थितियोंमें और शिष्यकी विभिन्न अवस्थाओंमें वह विभिन्न प्रकारसे काम करता है। कभी वह प्रत्यक्ष काम करता दिखायी देता है, तो कभी अप्रत्यक्ष रहकर करता है। गुरुगीता नामक एक उत्तम ग्रन्थ है। ऋभुगीता एक दूसरा ग्रन्थ है। दोनोंमें इस बातका सविस्तार वर्णन है कि शिष्यके कल्याणके लिये गुरु किस-किस प्रकार काम करता है, उसका कार्य किस प्रकार अनिर्वचनीय है और उसकी पद्धति कितनी अद्भुत है।

गुरुका धर्म यही है कि शिष्यके प्रेयके लिये नहीं, श्रेयके लिये जो-जो काम आवश्यक हों, उन्हें करे। अधिकतर गुरु बड़े कठोर होते हैं। स्वयं परमेश्वर भी तो कठोर है। हम कहते हैं कि भगवान् कृपासमुद्र है, करुणासागर है आदि-आदि। उसे हम मातासे भी अधिक दयालु मानते हैं। परंतु आवश्यकता पड़नेपर वह वज्रसे भी अधिक कठोर हो सकता है। संत भी ऐसे ही होते हैं। वे वज्रसे भी कठोर होते हैं और समयपर कमलदलसे भी कोमल होते हैं। परमेश्वर समयपर विधिका रूप लेता है और फिर समयपर प्रेमरूप भी बनता है। ईश्वरकी सृष्टिमें विधि और प्रेम दोनों साथ-साथ चलते हैं। और गुरु इस धरतीपर परमेश्वरकी प्रकृति है। वह गुरु 'देव' है। परमेश्वरका साक्षात् स्वरूप है। जिस प्रकार सूर्य 'प्रत्यक्ष देवता' कहलाता है, उसी प्रकार आध्यात्मिक अधिरोहणकी भूमिकामें गुरु भी प्रत्यक्ष देवता है।

गुरु-शिष्य-सम्बन्ध शाश्वत है

राजा यदुको दिये गये दत्तात्रेयके उपदेशोंसे हमें यही शिक्षा ग्रहण करनी है कि ईश्वरके ये जो अनन्त रूप विश्वमें दिखायी देते हैं, वे सब हमारे गुरु बन सकते हैं और विश्वमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घटित होनेवाली प्रत्येक घटनासे हमें कुछ-न-कुछ शिक्षा मिल सकती है । संसारकी प्रत्येक घटना हमारी आँखें खोल सकती है, बशर्ते कि हमारी पात्रता और शक्ति हो ।

हम प्रायः गुरु-पूजा करते हैं। उसका अर्थ क्या है ? उसका अर्थ यही कि उस निमित्तसे हमें उस ऊँचाई तक उठनेका एक अवसर मिलता है । हमें चाहिये कि हम अपनेको आध्यात्मिक उन्नति प्राप्त कर सकनेवाली दीपशिखाकी एक कली समझें, केवल मरणशील पार्थिव शरीर ही समझकर न रह जायँ। इस धरतीपर हमारा धर्म यही है कि अपनी मुक्तिके लिये प्रयत्नशील रहें, न कि इस मिट्टीको ही अपना लक्ष्य मानें।

सनातन कालसे हमें यह समझाया गया है कि यह दुनिया एक रैनबसेरा है, एक 'क्षेत्र' है, जहाँ अपनी मंजिलकी ओर जाते-जाते थोड़ी देरके लिये विश्राम करना है। यह कभी नहीं समझना है कि यही हमारी मंजिल है । इस सीखके बावजूद अनादि अविद्याके कारण हमारी आँखोंके सामनेसे यह महान् ध्येय ओझल हो जाता है और इस दो घड़ीके रैनबसेरेको ही हम अपना शाश्वत स्थान मान बैठते हैं। किंतु जब अगली पौ फटती है तब हम देखते हैं कि अभी लंबा रास्ता तय करनेके लिये बचा पड़ा है। सराय हमारा घर नहीं है, हमें तो अभी और आगे बढ़ना है।

यह जो आगे बढ़नेकी, एक स्थानसे दूसरे स्थान चलनेकी प्रक्रिया है, यह इस जीवका 'पुनरावर्तन' है। जन्म-मरणका चक्र यही है। हमारा आत्मा एक पड़ावसे दूसरे पड़ावकी ओर निरन्तर, सतत, अखण्ड चलता रहता है और पूर्णताकी खोजमें बढ़ता रहता है।

प्रत्येक अवस्थामें हमें गुरु दर्शन देते हैं । अतः हमें यह नहीं समझना है कि आज इस मानवयोनिमें हमें गुरु मिले और जब हम मरे तो गुरु भी खो गये, अथवा गुरु शरीर छोड़ जाते हैं तो वे भी सदाके लिये छूट गये । गुरु परमेश्वरके समान ही एक शाश्वत तत्त्व है। ईश्वर ही गुरु है और गुरु ही ईश्वर है; इसलिये गुरुका लोप कभी नहीं होता। क्या कभी उन्नति नष्ट होती है ?

साधक भी नश्वर नहीं है, गुरु भी नश्वर नहीं है। दोनों शाश्वत तत्त्व हैं और दोनोंका सम्बन्ध भी अविनाशी है। शिष्य या साधक आध्यात्मिक प्रगतिका एक अधिष्ठान है, आध्यात्मिक ज्योतिका एक स्फुलिङ्ग है, जो कभी बुझता नहीं। उसे या उसके गुरुको, वह जिस शरीरमें आज प्रकट हुआ है या शिष्यके उद्धारके लिये गुरुने जो शरीर ग्रहण किया है, उस शरीरसे कुछ भी लेना-देना नहीं है।

भगवद्गीतामें श्रीकृष्णने कहा है—

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप॥

—मेरे कई जन्म बीत गये हैं और तुम्हारे भी। परंतु उन सबको मैं जानता हूँ, तुम नहीं।

यही हममें भेद है। सृष्टिके आदिकालसे नर और नारायणके, मानव और ईश्वरके अनन्त अवतार जीवोंके उद्धारके—प्राणियोंके श्रेयके लिये निरन्तर होते रहे हैं। परंतु नारायण सब जानता है, नर नहीं। ईश्वर और मानवमें यही अन्तर है। परंतु तत्त्वतः ये दोनों सागर और उसके तरंगोंके समान हैं। उनको एक दूसरेसे सर्वथा पृथक् नहीं किया जा सकता। मूलतः दोनों एक हैं । गुरु-शिष्यका सम्बन्ध भी ऐसा ही है। वह दो शरीरोंका सम्बन्ध नहीं है, वह तो ज्वाला और स्फुलिङ्गका सम्बन्ध है । स्फुलिङ्ग ज्वालामें मिलनेके लिये छटपटा रहा है और ज्वाला क्या है! वह भी उस वैश्विक अग्निका ही रूप है, जो ईश्वरीय चैतन्यका रूप है और उसीमें हम सबको लीन होना है।

यही ज्ञानयज्ञ कहलाता है। आध्यात्मिक साधनाकी सारी प्रक्रिया ही ज्ञानयज्ञ है। यही ब्रह्मज्ञानमें आत्माको होम देना है। इस दृष्टिसे यह कहा जा सकता है कि ईश्वर और जीवके बीचका माध्यम गुरु है । वह हमारे नित्य-जीवनमें हमारी स्थिति और दृष्टिके अनुसार ब्रह्मज्ञानका दाता है, उस हदतक वह ईश्वर ही है।

गुरु शिष्यको स्वयं खोज लेता है

उपनिषदोंका कहना है कि गुरु श्रोत्रिय और ब्रह्मनिष्ठ होना चाहिये, सकलशास्त्रवेत्ता और ज्ञानी होना चाहिये। क्या इस संसारमें ऐसा परिपूर्ण गुरु मिल सकता है ? उसे पाना क्या सरल है ? कइयोंके मनमें यह एक समस्या है। उन्हें गुरु-प्राप्तिकी कठिनाई बराबर सताती रहती है।

एक प्राचीन वचन है कि 'गुरु स्वयं शिष्यको ढूँढ लेता है, शिष्य गुरुको नहीं खोजने जाता।' गुरु सर्वदा सुयोग्य शिष्यकी खोजमें रहता है। शिष्यको ढूँढ पानेका भार गुरुके सिरपर बराबर रहता है। शिष्यपर वह भार नहीं होता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारण स्पष्ट है। शिष्य अज्ञानी है, वह नहीं जानता कि गुरु कौन है, कहाँ है, कैसे मिलता है। मान लीजिये आपके सामने स्वयं कालिदास भी बैठे हों, लेकिन कालिदासको पहचान लेनेकी प्रतिभा आपमें न हो तो आप उनको जान ही नहीं पायेंगे। साक्षात् योगिराज शुक महर्षि ही आपके सामने हों, तो भी आप उन्हें पहचान नहीं सकेंगे। किंतु गुरु शिष्यको स्वयं खोज लेते हैं।

शिष्यके लिये वे चाहे जो कर सकते हैं, कभी-कभी तो अद्भुतसे अद्भुत कर्म भी कर देते हैं। आवश्यकता केवल इस बातकी है कि भले हम अज्ञानी हों, हममें यथोचित बुद्धिवैभव भले न हो, फिर भी हम प्रामाणिक रहें, ऋजुता-सम्पन्न रहें तो पर्याप्त है। किसी भक्तने कहा है कि यदि भक्त सच्चे हृदयसे और भावगद्गद होकर ईश्वरकी ओर एक कदम रखता है तो ईश्वर उसकी ओर सौ कदम दौड़ आता है। ईश्वर सोचता है—'अहा! यह मेरी ओर आ रहा है, उसकी रक्षाके लिये मुझे जाना चाहिये।' ऐसी है ईश्वरकी करुणा!

नदियाँ जिस प्रकार सागरकी ओर दौड़ती हैं, उसी प्रकार साधक-रूपी ये सब नाले और झरने ईश्वररूपी सागरकी ओर ही दौड़ रहे हैं। और ये गुरु उस सागर-तीरवर्ती मैदानके समान हैं, जहाँ नदियाँ विशाल रूप धारण करती हैं और अनन्त सागरमें विलीन होती हैं। यह है गुरुतत्त्व! यह सनातनतत्त्व है। वह हमारे सामने सदा सेवाके लिये संनद्ध है। जब भी हम सहायताकी याचना करते हैं, तब अँगुली पकड़कर चला ले जानेको वह सदा तैयार है।

हजरत मूसाको किसने ज्ञान दिया? महात्मा ईसाको किसने ज्ञान दिया? भगवान् बुद्धको किसने बोध दिया? ऐसे सहस्रों आचार्योंने उस सनातन तत्त्वसे ही ज्ञान प्राप्त किया। यह इसीलिये सम्भव हुआ कि उन सबका हृदय ब्रह्मविद्याके सामुद्रतरंगोंके स्वागतके लिये सदा उन्मुक्त रहा। इसका अर्थ यही कि शिष्यका काम केवल यही है कि वह अपना हृदय खुला रक्खे, उन्मुक्त रक्खे। बस! "हृदयपट बंद मत रक्खो, खोल दो।"

हमारी साधनाका आखिर लक्ष्य क्या है? भगवत्पादारविन्दोंमें आत्म-समर्पण ही तो है! यह न सोचो कि आत्मसमर्पण केवल भक्तियोगका एक अङ्ग है और दूसरे योगोंकी प्रक्रियाएँ भिन्न हैं। चाहे ज्ञानयोग हो, कर्मयोग हो, ध्यानयोग हो या भक्तियोग—सबमें आत्मसमर्पणका स्थान और महत्त्व समान है। योगमात्रसे समर्पणतत्त्वको पृथक् नहीं कर सकते। योगका अर्थ ही है युक्त होना—ईश्वरसे युक्त होना, ईश्वरमें मिल जाना। मिलनेवाला कौन है? वह भव्य मिलन किस-किसका है? वह शरीरका मिलन नहीं है, मनका मिलन नहीं है, इन्द्रियोंका मिलन नहीं है, अहंका मिलन भी नहीं है। वह तो अन्तःसारभूत आत्मतत्त्वका परतत्त्वसे मिलन है। यही योग है। यही समर्पण है।

यह योग तपस्याद्वारा शरीर, मन, बुद्धि, इन्द्रिय आदिकी शुद्धि करनेसे सधता है। वैराग्यकी अग्निमें, आत्मनिग्रहकी अग्निमें, चित्तैकाग्रताकी अग्निमें और साधना-की अग्निमें अपनेको पूर्णतया तपाओ। साधना ऐसी हो, तपस्या ऐसी हो, जो सर्वाङ्गीण हो, मानव-जीवनके सब पहलुओंका स्पर्श करती हो, समस्त जीवनको प्रभावित करती हो। वही तपस्या है।

उपसंहार

मौन-व्रत पालन करते हुए, गुरुकी महत्ता और प्रमुखता-को जानते हुए, गुरुके और अपने सम्बन्धको पहचानते हुए, ईश्वरकी उपस्थितिका अनुभव करते हुए और यह विश्वास रखते हुए कि हम ईश्वरको भले भूल जायँ, परंतु ईश्वर हमारी सहायता अवश्य करेगा, हमें साधना करनी चाहिये। याद रक्खो, तुम ईश्वरको न भी मानो, तो भी वह तुम्हारी सहायता करता रहता है। वह तुम्हें भूलता नहीं है। सदा प्रकाशित रहना सूर्यका जैसे स्वभाव है, अपनी ओर सबको आकर्षित करना ईश्वरका वैसा ही स्वभाव है! वह एक विश्वचुम्बक है और हम सब विश्वभरमें बिखरे हुए अयस्कणोंके समान हैं। उसीमें हमारा अस्तित्व है, उसीके आकर्षणमें हम अपनी जगह स्थित हैं। परंतु यह जानते नहीं हैं, यही कठिनाई है। अतः सदा अपने सामने ध्येय स्पष्ट रखना चाहिये, उसीमें लीन रहना चाहिये और उपासनामय और साधनामय जीवन जीना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय सभ्यताकी सनातन वाणी

(लेखक—प्रा० श्रीजगन्नाथप्रसादजी मिश्र)

प्रत्येक जातिका एक वैशिष्ट्य होता है। इस वैशिष्ट्यका कारण होता है उस जातिकी संस्कृति, उसका नीतिबोध एवं आचार-विचार। जातिके रीति-रिवाज उसकी विशिष्ट नीतिके ही बहिःप्रकाश होते हैं। प्रत्येक जातिका नैतिक चरित्र उसकी विभिन्न रीतियों एवं आचारोंके माध्यमसे अभिव्यक्त होता है। सांस्कृतिक क्षेत्रमें एक जाति दूसरी जातिका अनुकरण नहीं कर सकती। जातिकी प्राणधारा उसकी संस्कृतिमें ही अन्तर्हित रहती है। संस्कृतिके उत्ससे प्राण-रस ग्रहण करके ही एक-एक जाति अपने अस्तित्वको बनाये रखती है। इसलिये किसी जातिके नैतिक चरित्र एवं उसके जातीय जीवनकी पङ्किलताको दूर करनेके प्रयासमें हमें उसके उत्समुखकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। उत्समुखका संधान पाये बिना विदेशी सभ्यता या संस्कृति-की धाराका अंधानुकरण करना मृत्युमुखकी ओर धावित होना है।

श्रीमद्भागवतमें लिखा है—भारतवर्ष कर्मभूमि या साधन-भूमि है और भारतवर्षसे भिन्न अन्यान्य आठ वर्ष स्वर्गवासी जनोंका पुण्य शेष होनेपर उनके उपभोगके स्थान हैं। मनुष्य बड़े पुण्यफलसे इस पुण्यभूमि भारतमें जन्म ग्रहण करता है। इस भारतभूमिमें न जाने कितने संत-महात्माओं, योगियों और तपस्वी महापुरुषोंने जन्म ग्रहण करके यहाँके विभिन्न आश्रमों, तीर्थक्षेत्रों, गिरि-कन्दराओं और मठ-मन्दिरों-को अपनी साधनासे तपःपूत किया है। भारतका मस्तक कोपीनधारी सर्वत्यागी संन्यासीके चरणोंमें झुका है, न कि दिग्विजयी सम्राटों और सेनापतियोंके चरणोंमें। अन्य देशोंने जहाँ बड़े-बड़े वैज्ञानिकों, दुर्धर्ष विजेताओं और धन-कुबेरोंको जन्म देनेके कारण गौरव बोध किया है, वहाँ भारतने योगी महापुरुषों एवं साधक तपस्वियोंको जन्म देकर अपनेको कृतार्थ माना है।

भारतीय सभ्यताका जन्म शान्त, स्निग्ध वातावरणके बीच तपोभूमिमें हुआ था। इस सभ्यताका उत्स है—तपः-सिद्ध, त्यागव्रती, सत्यद्रष्टा ऋषियोंके अन्तरका अन्तरतम क्षेत्र, जिन्होंने अपनी अन्तर्दृष्टिद्वारा सत्यका दर्शन किया था। इसलिये भारतीय सभ्यता अन्तर्मुखी एवं त्यागव्रती है। इस सभ्यतामें जीवनका लक्ष्य मुक्ति माना गया है। मुक्तिका अर्थ है—बन्धन-मुक्ति, न कि लोकालयका त्याग। जबतक मनुष्य वासनाओंका दास बना रहेगा, इन्द्रियों और उनके विषयोंके संस्पर्शमें जो सुख है, उसमें आसक्त रहेगा, तबतक वह वास्तविक सुखका भागी नहीं हो सकता। भगवान्‌का वचन है—

> **ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।**
> **आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥**
>
> (गीता ५। २२)

हमारे शास्त्रकारोंने सब प्रकारकी वासनाओंसे मुक्त होना मनुष्यके लिये कल्याणप्रद माना है—चाहे देहकी वासना हो या लौकिक वासना अथवा शास्त्रवासना। देहवासनाका अर्थ है स्थूल शरीरको ही सब कुछ समझकर इसमें आत्मबुद्धि रखकर इसीके पोषणके लिये अहर्निश साधन जुटाते रहना, विषय-भोगको ही जीवनका चरम, परम लक्ष्य मानना। शरीरका पालन-पोषण करना, उसे स्वस्थ एवं नीरोग बनाये रखना आवश्यक कर्तव्य है—किंतु भोग-सुखके लिये नहीं; साधन, भजन, ध्यान, धारणाद्वारा ईश्वरोपलब्धिके लिये, आत्मज्ञानद्वारा अपने दिव्यस्वरूपको हृदयंगम करनेके लिये। समस्त सांसारिक कर्मोंका विधिवत् सम्पादन करते हुए भी मनुष्य साधनामें निरत रह सकता है, यदि उसे यह ज्ञान हो जाय कि इन्द्रियाँ भोगोंसे न तृप्त हुई हैं और न हो सकती हैं। भोगके बाद राग रक्तबीजकी तरह बढ़ता ही जाता है। भारतीय संस्कृतिका मूल आधार है—पुनर्जन्मवाद, कर्मफलवाद और वर्णाश्रम। मनुष्य जैसा कर्म करेगा, उसका भोग अवश्यम्भावी होगा। कर्मफल भोगे बिना शत-कोटि कल्पमें भी उसका क्षय नहीं हो सकता—

> **नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि।**
> **अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्॥**

कर्मफल-लाभकी आशासे अहंबुद्धिका आश्रय ग्रहण करके जो भी कर्म करेगा, उसका फल उसे भोगना ही पड़ेगा। शुभ कर्मका फल सुख और अशुभ कर्मका फल दुःख होगा। किंतु इसका अभिप्राय यह नहीं है कि मनुष्य कर्मसे सर्वथा विरत हो जाय। आत्मशुद्धिके लिये कर्म करना ही होगा। योगीजन भी आसक्तिका त्याग करके आत्म-शुद्धिके लिये कर्म करते हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्गं त्यक्त्वाऽऽत्मशुद्धये ।

जो भगवान्‌के निर्गुण, निराकार, अचिन्त्य, अव्यक्त रूपके उपासक हैं, वे भी 'सर्वभूतहिते रताः'—सब प्राणियोंके हित-साधनमें लगे रहेंगे। इसलिये गीतोक्त धर्मके अनुसार फलाशात्याग, अहंकारवर्जन एवं ईश्वरार्पण-बुद्धिद्वारा जो कर्म किया जाता है, वह भगवान्‌के निमित्त कर्म होता है और शुभ फलका दाता होता है। इसके विपरीत कर्म अशुभ-फलदायक होता है।

मानवेतर जितने प्राणी हैं, उन्हें पूर्वजन्मकृत कर्मफलका भोग करनेके लिये भोगशरीर मिला है। उनके समस्त कर्म प्रकृतिकी प्रेरणासे प्रणोदित होते हैं। उनके लिये वर्तमान ही सब कुछ है—अतीत एवं भविष्यत् उनके लिये गौण है; किंतु मानव-देह प्रारब्ध कर्म-फलका भोग करनेके साथ-साथ साधनाद्वारा कर्मफलका निराकरण करनेमें भी समर्थ है। यही मानवशरीरकी विशेषता है। मनुष्य अपने अतीत-पर दृष्टि रखकर वर्तमानकी अपेक्षा भविष्यको विशेष महत्त्व देता है। वह अपने मनको ऊर्ध्वगामी बना सकता है और आत्मविकासद्वारा इस धरा-धामपर ही अपने देवत्वको चरितार्थ कर सकता है।

मनुष्य यदि दुर्लभ मानव-शरीरका उपयोग केवल अपनी स्थूल भोगवृत्तिको चरितार्थ करनेके लिये करता है—आहार, निद्रा और मैथुन-कर्ममें शरीरका क्षय करता है तो उसका मनुष्य-शरीर धारण करना व्यर्थ है। ऋषिवाक्य है—

नाल्पे सुखमस्ति, भूमैव सुखम् ।

जगत्‌में जितनी भोगैश्वर्यकी वस्तुएँ हैं, सब नाशवान् हैं। उनमें वास्तविक सुख नहीं है। शाश्वत, चिरंतन सुख भूमामें ही है। भारतीय नारी ऋषिपत्नी अपने पतिसे कहती है—

येनाहं नामृता स्यां तेनाहं किं कुर्याम् ।

'जिससे मैं अमृतत्वको प्राप्त न होऊँ, उसे लेकर मैं क्या करूँगी?' उपनिषद्‌का मर्म-वाक्य है—

त्यक्तेन भुञ्जीथाः। मा गृधः कस्यस्विद् धनम् ॥

'त्यागद्वारा भोग करो—किसीके धनपर लोभ मत करो।' इस सभ्यताके महाज्ञानी आचार्यका उपदेश है—

कामं क्रोधं लोभं मोहं त्यक्त्वाऽऽत्मानं भावय कोऽहम् ।

'काम, क्रोध, लोभ आदि षड्विकारोंका त्याग करके निरन्तर चिन्तन करो, मैं कौन हूँ? किसलिये मुझे यह शरीर मिला है? मैं पञ्चभूतोंका संघात (शरीर) नहीं हूँ, कालरहित ब्रह्म ही मैं हूँ।'

तद्ब्रह्म निष्कलमहं न च भूतसंघः। आत्मन्येव खलु अरे दृष्टे श्रुते मते ज्ञाते इदं सर्वं विज्ञातं भवति।

'आत्माको जानो। दर्शन, श्रवण, मनन, निदिध्यासन-द्वारा आत्माको जान लेनेपर सब कुछ जान लिया जाता है।' इसलिये जो ज्ञान इन्द्रियोंके वेगको शान्त करनेवाला है, वही ज्ञान है; उपनिषदोंका जो निश्चित सिद्धान्त है, वही ज्ञेय है और जिनकी समस्त कर्म-प्रचेष्टाएँ परमार्थदृष्टिसे होती हैं, वे ही इस पृथिवीपर धन्य हैं—

तज्ज्ञानं प्रशमकरं यदिन्द्रियाणां
तज्ज्ञेयं यदुपनिषत्सु निश्चितार्थम् ।
ते धन्या भुवि परमार्थनिश्चितेहाः
शेषास्तु भ्रमनिलये परिभ्रमन्ति ॥

शेष मनुष्य तो इस संसाररूपी भूल-भुलैयामें भटकते रहते हैं। भारतीय सभ्यताकी दृष्टिमें यह जगत् अनित्य, अशाश्वत, दुःखालय होनेपर भी भगवन्मूर्त्ति है, भगवान्‌की लीला है। संसारी जीव इस लीलाके पात्र हैं। जितने नर-नारी हैं, सब इस लीलामें भाग लेकर अपनेको अमृतत्वके अधिकारी बना सकते हैं। प्रत्येक मनुष्य 'प्रज्ञानमानन्दं ब्रह्म, सर्वं खल्विदं ब्रह्म'की उपलब्धि साधनाद्वारा कर सकता है। भारतीय ऋषियोंने अपनी साधना एवं ज्ञान-तपस्याद्वारा जिस एक एवं अद्वितीय ब्रह्मकी उपासना की थी, वह एक होकर भी बहुरूपमें अपनी लीलाका विस्तार करता है। आत्माराम होनेपर भी रमणेच्छया अनेक रूप धारण करता है। वह निराकार होकर भी साकार, निर्गुण होकर भी सगुण, असीम होकर भी ससीम है। उपनिषद्‌की वाणी है—

नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनाना-
मेको बहूनां यो विदधाति कामान् ।

भागवतकारके शब्दोंमें—

अहो भाग्यमहो भाग्यं नन्दगोपव्रजौकसाम् ।
यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम् ॥

कठोर अद्वैतवादी शंकराचार्य भी स्वीकार करते हैं—

स्यात् परमेश्वरस्यापि इच्छावशात् मायामयं रूपं साधकानुग्रहार्थम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गीताके अनुसार सम्भ्रम एवं श्रद्धाके साथ विश्वमय भगवान्‌की असीम विभूतियोंका अनुध्यान किया जा सकता है।

यद् यद् विभूतिमत् सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम्॥

इस प्रकार अद्वैतवादके साथ द्वैतवाद, एक एवं अद्वितीय ब्रह्मवादके साथ बहुदेवतावाद भारतीय धर्म एवं संस्कृतिका साधना-लब्ध अमूल्य धन है। उस अद्वितीय परब्रह्मके ही विभिन्न प्रकाश अधिकारि-भेदसे विभिन्न रूपोंमें उपासनीय हैं। ऐश्वर्य एवं माधुर्य दोनोंका समन्वय एक साथ ही परब्रह्ममें हुआ है। वह कुलिश-कठोर होनेपर भी कुसुम-कोमल है। मधुर भावमें वह चक्र-सुदर्शनधारी नहीं, गदाधर नहीं, शार्ङ्गपाणि नहीं—करुणामय, दयामय, प्रेममय एवं प्राणवल्लभ है। ज्ञानी भक्तका आलम्बन ऐश्वर्य, भक्तका आलम्बन माधुर्य। भारतीय धर्म यह मानता है कि जो ईश्वर सर्वशक्तिमान्, अनन्तकोटि ब्रह्माण्डका सृष्टि-स्थिति-लय-कर्त्ता है, वह यदि एक होकर भी बहु नहीं हो सकता तो उसकी सर्वशक्तिमत्ता किस प्रकार सिद्ध की जा सकती है?

पाश्चात्त्य सभ्यताका जन्म भोगभूमिमें हुआ है, जहाँ मनुष्य शक्तिमान् बनकर अपने पौरुषसे विषयभोगकी अदम्य आकाङ्क्षाको चरितार्थ करना चाहता है। वह अनन्त पार्थिव सुख-भोगके लिये अपनी समस्त कर्मेन्द्रियोंको नियोजित करता है। उसका चरम लक्ष्य मोक्ष या वैराग्य नहीं—'आत्मानं विद्धि' नहीं—बहिःप्रकृतिको, स्थूल भौतिक पदार्थोंको जानना, उनका विश्लेषण करना, उन्हें वशीभूत करके उनका उपयोग-भोग वह्निमें घृताहुतिके रूपमें करना है। इसके लिये ही उनकी ज्ञान-विज्ञान-साधना अनवरत रूपमें चल रही है। नित्य नूतन आविष्कार हो रहे हैं और उनके द्वारा भोग्य वस्तुओंको सर्व-जनसुलभ बनानेका अशेष प्रयास हो रहा है। वहाँ जीवनके रहन-सहनके मानको ऊँचा उठाना अर्थात् आवश्यकताओंको निरन्तर बढ़ाते रहना और उनकी पूर्तिमें लगे रहना—यही परम पुरुषार्थ है। इस पुरुषार्थमें जीवनके मानको, मनुष्यके मनुष्यत्वको ऊँचा उठाने, अन्तरके दानवत्वको पराभूत करके देवत्वको विकसित करनेकी अपेक्षा भोगबाधक सब प्रकारकी प्राकृतिक शक्तियोंको आयत्त करना ही जीवनकी सबसे बड़ी साधना एवं सिद्धि है। इस साधनामें पाश्चात्त्य विज्ञानकी जो अभूतपूर्व एवं अभावनीय उन्नति हुई है उसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। पाश्चात्त्य सभ्यताके भोगप्रवण विज्ञानी जल, स्थल, आकाश—सर्वत्र अपनी शक्तिका विस्तार चाहते हैं। पृथिवीके भोगैश्वर्यसे संतुष्ट न होकर खगोलके शक्तिमान् एवं अन्यान्य ग्रह-उपग्रहोंमें अपनी सत्ता स्थापित करना चाहते हैं। इसके लिये बृहत् शक्तियोंमें प्रतिद्वन्द्विता चल रही है। सब क्षेत्रोंमें गतिवेगको बढ़ानेके लिये भौतिक जगत्‌के रहस्योंका पता लगाने और उनपर विजय प्राप्त करनेमें वे व्यस्त हैं। भोगाकाङ्क्षाकी सर्वमयी सत्ताके मार्गमें जो भी बाधाएँ उपस्थित हों, उनके अपसारणके लिये मारणास्त्रोंका बीभत्स एवं विराट् आयोजन चल रहा है। शान्तिकामी असंख्य नर-नारीगण भावी युद्धकी विभीषिकासे आतङ्कित हो रहे हैं।

भोगवादी सुधीजनोंका जीवन-दर्शन है—संघर्ष एवं संग्रामके बीच तुमुल कोलाहलमय जीवन। इस जीवनमें अयोग्य, दुर्बल एवं अक्षम जनोंके लिये स्थान नहीं है। उनकी दृष्टिमें बहिःप्रकृतिमें भी यह संग्राम चल रहा है, योग्यतमका संरक्षण एवं अयोग्य शक्तिहीनका विनाश; किंतु भारतीय मनीषियोंने प्रकृतिके इस संग्राममय रूपमें भी लीलामयकी लीलाका बहिःप्रकाश अवलोकन किया था। सम्पूर्ण जीव-जगत्—जड-चेतनके प्रति आध्यात्मिक दृष्टिसे ममत्व बोध किया था। प्रकृतिके बाह्यरूपमें केवल संग्राम ही नहीं, उसके शान्त, स्निग्ध वातावरणमें एक अपूर्व समन्वय एवं माधुर्य भी है। प्रकृति स्नेहमयी, ममतामयी एवं दयामयी है। वह मनुष्यकी आद्य सहचरी है।

जिस सभ्यताका, जिस जीवन-दर्शनका लक्ष्य विषयभोग होगा, वहाँ जीवनमें संघर्ष, हिंसा, द्वेष अवश्यम्भावी हैं। जिस सभ्यताका लक्ष्य त्याग, इन्द्रिय-संयम, देहसे ऊर्ध्व आत्मा और भौतिकतासे परे आध्यात्मिकता तथा सर्वभूत-हित होगा, उसमें घृणा, हिंसा, अतिहिंसा एवं परस्वापहरणके लिये कोई स्थान नहीं होगा। युग-युगान्तरसे भारतीय सभ्यता इसी वाणीकी धारक एवं वाहक रही है। यही भारतका सनातन धर्म एवं उसका जीवन-दर्शन है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्म-निरपेक्ष राज्य एवं धार्मिक शिक्षा

(लेखक—श्रीरामनारायणजी परमार, एम्० ए०, एल्०-एल्० बी०, साहित्यरत्न)

१–समाजमें विद्यमान परिस्थितियोंसे—आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं नैतिक अवस्थाओंसे हम विमुख नहीं रह सकते । इसी दृष्टिसे मैंने इस लेखमें 'धर्म-निरपेक्ष राज्य एवं धार्मिक शिक्षा' विषयपर दो शब्द लिखनेका प्रयासमात्र किया है ।

२–'धर्मनिरपेक्ष राज्य एवं धार्मिक शिक्षा' विषय संविधानके अनुच्छेद २५ से ३० तकमें समाविष्ट है । इसमें मेरे विषयसे सम्बन्धित अनुच्छेद २८ उपखण्ड १ तथा ३ ही प्रासङ्गिक हैं । अनुच्छेद २८ (१)—राज्यनिधिद्वारा पूरी तरहसे पोषित किसी शिक्षासंस्थामें कोई धार्मिक शिक्षा न दी जायगी । २८ (३)—राज्यसे अभिज्ञात अथवा राज्यनिधिसे सहायता पानेवाली शिक्षा-संस्थामें उपस्थित होनेवाले किसी व्यक्तिको ऐसी संस्थामें दी जानेवाली धार्मिक शिक्षामें भाग लेनेके लिये अथवा ऐसी संस्थामें या उससे संलग्न स्थानमें की जानेवाली धार्मिक उपासनामें उपस्थित होनेके लिये बाध्य न किया जायगा—जबतक कि उस व्यक्तिसे, या यदि वह अवयस्क हो तो, उसके संरक्षकने इसके लिये अपनी सम्मति न दे दी हो ।

इस अध्यायके अन्य अनुच्छेदोंमें राज्यनिधिके आंशिकरूपसे या स्वतन्त्ररूपसे चलनेवाली शिक्षासंस्थाओंको धार्मिक शिक्षा देनेकी स्वतन्त्रता है । किंतु शिक्षाका व्यापक प्रसार जितना शासकीय विद्या-संस्थाओंमें होता है, उतना अन्य शिक्षा-संस्थाओंसे नहीं होता । इस कारण मैं शासकीय शिक्षा-संस्थाओंमें धार्मिक शिक्षाका समावेश होना चाहिये या नहीं, इस विषयपर ही विचार करूँगा । धर्मनिरपेक्ष राज्य एवं धार्मिक शिक्षाके विषयमें 'धर्म' शब्द बहुत ही अर्थपूर्ण (significant) एवं महत्त्वका है । वर्तमान विधान (Laws) में जहाँतक मुझे ज्ञात है, 'धर्म' शब्दकी परिभाषा नहीं दी गयी है । ऐसी स्थितिमें हमें 'धर्म' शब्दकी व्युत्पत्ति तथा शब्दकोषगत (etymological and dictionary) स्पष्ट व्याख्याको ग्रहण करना होगा । धर्म-निरपेक्ष राज्यको अंग्रेजीमें (Secular state) कहा गया है । सेक्यूलर शब्दका अर्थ यह है कि जो लौकिक–ऐहिक हो, धर्मसे अलग हो । अस्थायी तथा अधार्मिक अर्थ भी इस शब्दके बतलाये गये हैं । तदनुसार सेक्यूलर स्टेटकी व्याख्या यह होगी 'लौकिक राज्य, असाम्प्रदायिक राज्य, जिस राज्यको धर्मकी अपेक्षा या कामना न हो । धर्मसे तटस्थ राज्य अर्थात् धर्म-निरपेक्ष राज्य ।'

धर्मका अर्थ है ऐसी वृत्ति या आचरण, जो लोक या समाजकी स्थितिके लिये आवश्यक हो, वह आचार जिससे समाजकी रक्षा एवं सुख-शान्तिमें वृद्धि हो ।' दूसरे अर्थमें धर्मकी व्याख्या है–'अपने श्रद्धा-विश्वास एवं उपासनाकी व्यक्तिगत वृत्ति (Personal belief, faith and worship) जो मानव-जीवनका अन्तिम लक्ष्य (मोक्ष) प्राप्त करनेका ज्ञान, भक्ति, कर्म मार्गोंमेंसे भक्तिमार्ग नामक एक साधन है ।

३–यह अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण एवं शोचनीय विषय है कि जब कभी हमें किसी पद या विधिकी व्याख्या करनी होती है, तब हम पश्चिमकी ओर अभिमुख होते हैं, हम अपने ज्ञानके भंडारको पूर्णतः विस्मरण कर जाते हैं । दूसरे शब्दोंमें हम अपने संचित ज्ञानकोषको देखनेमें रूढ़िवादिता या पिछड़ेपनका अनुभव करते हैं, इस वृत्तिसे सर्वाधिक पीड़ित हैं हमारे नेता एवं विधिनिर्माता । धर्मकी संकुचित व्याख्या है—'धर्म व्यक्तिगत विश्वास एवं उपासनाकी वृत्ति है,' जिसको हमारे नेता एवं विधिनिर्माताओंने दृष्टिमें रखी है । यह व्याख्या पश्चिमकी आधुनिक शिक्षाके प्रकाशमें की गयी है, ऐसा कहनेमें कोई त्रुटि नहीं है । उसे दृष्टिमें रखकर ही 'धर्मनिरपेक्ष राज्य'की कल्पना की गयी और ऐसे राज्यको संविधानमें स्थान दिया गया । मैं संविधान-निर्माताओंकी बुद्धि अथवा ज्ञानको किंचित् मात्र भी चुनौती नहीं देता । मैं उन सबको श्रद्धास्पद मानता हूँ और उनमेंसे बहुतोंके विशद एवं प्रकाण्ड ज्ञानका सम्मान करता हूँ ।

धर्मशब्दकी व्याख्या विशदरूपसे हमारे धर्मशास्त्रों (वेद, उपनिषद्, स्मृति, पुराण) में की गयी है तथा कथानकोंके द्वारा धर्मके मूलभूत सिद्धान्त समझाये गये हैं, ताकि उन्हें जीवनमें उतारा जा सके । इस व्याख्याको दृष्टिसे ओझल करनेका कोई कारण नहीं है । वेद, श्रुति, स्मृति आदि ग्रन्थोंमें धर्मके लक्षण बतलाये गये हैं । 'धर्म' शब्दकी सच्ची व्याख्या एवं व्युत्पत्तिको समझनेके लिये यहाँ कुछ प्रयत्न किया जाता है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४—हमारे मानवधर्म दूसरे शब्दोंमें मानव-विधानके प्रणेता, (Law-giver) मनुमहाराजने मनुस्मृतिमें धर्मके मूलभूत सिद्धान्त, मूलाधार तथा लक्षण इस प्रकार बतलाये हैं, जिससे धर्मका स्वरूप ज्ञात होता है—

वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम्।
आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च ॥
(२। ६)

सम्पूर्ण वेद, वेदोंके जाननेवालों (मनु आदि) की स्मृति और उनका शील, साधुपुरुषोंका आचरण और अपने आत्माका संतोष—ये धर्मके मूल हैं।

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ॥
(२। १२)

वेद, स्मृति, सदाचार और अपने मनकी प्रसन्नता—ये चार धर्मके साक्षात् लक्षण हैं।

(The Vedas, Smṛtis, the conduct of saintly souls and action which brings satisfaction to the heart, these four are said to be the direct criteria of Dharma.)

जो अपनेको अच्छा लगे, वह भी धर्मका लक्षण है। इसलिये कविकुलगुरु कालिदासने भी अपने अन्तःकरणकी वृत्ति (conscience) को संदेहात्मक विषयमें निर्णयात्मक वृत्ति माना है, जिसे मनुके शब्दोंमें '**स्वस्य च प्रियमात्मनः**' कह सकते हैं। देखिये—

संदेहपदेषु वस्तुषु अन्तःकरणप्रवृत्तयः प्रमाणम्।
—अभिज्ञानशाकुन्तलम्

धर्मकी मुख्य विशेषताएँ मनुने दस बतलायी हैं—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥

धृति, क्षमा, मनका संयम, अस्तेय, इन्द्रियनिग्रह, बुद्धि, विद्या, सत्य, अक्रोध—ये दस धर्मके लक्षण हैं।

(Fortitude, forgiveness, self-control, abstaining from theft, purity of mind and body, mastery of the senses, a pure intellect, wisdom, truthfulness and absence of wrath)

मनुके द्वारा प्रणयन किये गये धर्मके विषयमें कहा गया है—

यः कश्चित्कस्यचिद्धर्मो मनुना परिकीर्तितः।
स सर्वोऽभिहितो वेदे सर्वज्ञानमयो हि सः ॥

जो धर्म मनुने कहा है, वह सम्पूर्ण वेदमें कहा हुआ है; क्योंकि वेद सर्वज्ञानमय है।

श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः।
ते सर्वार्थेष्वमीमांस्ये ताभ्यां धर्मो हि निर्बभौ ॥

वेदको श्रुति और धर्मशास्त्रको स्मृति जानना चाहिये। ये दोनों सब विषयोंमें असंदिग्ध प्रमाण हैं; क्योंकि इनसे ही धर्म प्रकाशित हुआ है।

प्राचीन महाकाव्य महाभारतमें भगवान् वेदव्यासने वनपर्वमें धर्मके विषयमें कहा है—

अद्रोहः सर्वभूतेषु कर्मणा मनसा गिरा।
अनुग्रहश्च दानं च सतां धर्मः सनातनः ॥

प्राणिमात्रके प्रति मन-वाणी-कर्मसे द्रोह न करना, अनुग्रह, दान—ये सत्पुरुषोंके सनातन धर्म हैं।

(Absence of enmity with all creatures in thought, word and deed, compassion on all and charity, these are the eternal Dharma of the virtuous.)

इन तत्त्वोंके प्रकाशमें आधुनिक पञ्चशील तो एक तुच्छ वस्तु प्रतीत होते हैं, जो चीनके क्रियाकलापको देखते हुए केवल पाखण्ड-मात्र हैं।

हमारे धर्मशास्त्रोंके अनुसार यदि मानवसमाजमेंसे धर्मको निकाल दिया जाय तो वह निरा पशु-समुदाय हो जायगा।

आहारनिद्राभयमैथुनं च
सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणाम्।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो
धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः ॥

प्राचीन कालमें धर्मको जीवन एवं आत्माका उन्नायक तत्त्व माना गया था और अन्य उपदेशोंके साथ यह भी आदेश दिया जाता था —'धर्मं चर', धर्मका आचरण करो, अनुशीलन करो। किंतु यह शोचनीय है कि अर्वाचीन कालमें पश्चिमी सभ्यता एवं संस्कृतिसे प्रभावित होकर (यह हमारी एक बड़ी कमजोरी है) धर्मको अवनतिका मुख्य कारण माना जाने लगा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋग्वेदमें 'धर्म' की व्याख्या करते हुए निम्नलिखित शिक्षा दी गयी है। अन्य शब्दोंमें धर्म वह वस्तु है, जो हमें सब प्रकारकी एकता, सहिष्णुता एवं समता सिखलाती है और प्रत्येक मानवको यही शिक्षा दी जाती थी। डॉ० राधाकृष्णन्ने भी कहा है—The more religious we grow the more tolerent of diversity shall we become.

देखिये—

सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भाग यथा पूर्वे सं जानाना उपासते॥
समानो मन्त्रः समितिः समानी
समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः
समानेन वो हविषा जुहोमि॥
समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति॥

(ऋग्वेद १० । १९१ । २—४)

'तुम साथ-साथ चलो, साथ-साथ बोलो, तुम्हारे मन समान रूपसे विचार करें, पक्षपातरहित धर्मात्मा विद्वान् लोग वेदरीतिसे सत्य-धर्मका आचरण करते हैं, उसी प्रकार तुम भी करो। तुम्हारे मन्त्र—भाव समान हों, तुम्हारी समिति या तुम्हारी समाजव्यवस्था समान हो, तुम्हारे मन समान हों, तुम्हारे संकल्प-विकल्प, तुम्हारी चित्तवृत्तियाँ साथ रहें। मैं इस हेतु तुम्हें सलाह एवं आशीर्वाद देता हूँ कि तुम मेरे आज्ञानुसार चलो। समान रूपसे दो और लो। तुम्हारे आचरण तथा निश्चय समान हों। हृदय एवं मनके सब व्यवहार समान हों; तुम अपने मनको ऐसा बनाओ कि वह सदैव सत्कर्ममें प्रवृत्त हो, जिससे सब सुखी हों।'

इनकी विशद व्याख्या न करते हुए मैं यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त समझता हूँ कि हमारे ऋषियोंने सदैव समन्वय, एकता, समताकी परिकल्पना की है। यह समन्वय-की भावना भारतीय संस्कृतिकी मुख्य विशेषता है। दूसरे शब्दोंमें यही धर्मका प्रमुख अङ्ग है।

जहाँ उत्तर मीमांसामें ब्रह्मजिज्ञासाका समाधान किया गया है, वहाँ पूर्वमीमांसामें **'अथातो धर्मजिज्ञासा'** के अन्तर्गत धर्मकी व्यञ्जना इस प्रकार की गयी है—

'चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः।'

'ईश्वरने वेदोंमें मनुष्योंके लिये जिसके करनेकी आज्ञा दी है, वही धर्म है।' वह धर्म अधर्मसे अलग है। इस धर्मका आचरण करना ही मनुष्यमें मनुष्यत्व है।

वैशेषिकमें सांसारिक अथवा लौकिक सुख-समृद्धि तथा आध्यात्मिक आनन्द—मोक्षसुखकी प्राप्तिके साधनको ही 'धर्म' कहा गया है—

यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः।

जिससे अभ्युदय और निःश्रेयसकी सिद्धि हो, वह धर्म है। योगिराज भर्तृहरिने भी मनुष्य-जीवनमें धर्मको विशेष महत्त्व प्रदान किया है—

येषां न विद्या न तपो न दानं
ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः।
ते मर्त्यलोके भुवि भारभूता
मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति॥

जिनमें विद्या, तप, दान, ज्ञान, शील, गुण और धर्म नहीं हैं, वे पृथ्वीपर भार होकर मनुष्यरूपमें पशुके समान विचरण करते हैं।

'धर्म' शब्दकी व्युत्पत्ति करनेपर धर्मका अर्थ होता है—धृ अर्थात् धारण करना। **'धारयते इति धर्मः'**—जो समाजको सम्यक् रूपसे धारण करता है, वह धर्म है। 'धर्म' धृ धातुसे बना है; धर्मसे प्रत्येक मानव-समाज, राष्ट्रको वाञ्छित फल प्राप्त होता है। फिर धर्मकी राज्यको कामना या अपेक्षा क्यों नहीं? धर्मका कर्तव्यरूपमें भी शास्त्रोंमें निरूपण किया गया है। श्रीमद्भगवद्गीतामें प्रत्येक वर्णाश्रमके धर्मका निर्धारण किया गया है।

५—राजनीति अनेकरूपा है। वह सदैव परिवर्तनशील है। राजनीतिके सिद्धान्त स्थायी नहीं होते, किंतु धर्मके सिद्धान्त शाश्वत, चिरंतन एवं अक्षुण्ण हैं। धर्मके जिन रूपोंका ऊपर वर्णन किया गया है, वे प्रायः सभी धर्मोंके मूलाधार रूपमें निरूपित हैं। ऐसी स्थितिमें यदि ये लक्षण किसी धर्मविशेषके मूल नहीं हैं तो इनसे साम्प्रदायिकताका भय क्यों होता है। जीवनमें जो कुछ सत् है, वह सब धर्ममें समाविष्ट है। राजनीति धर्मसे भिन्न नहीं हो सकती। राजनीति क्या, समाजका कोई भी अङ्ग, क्षेत्र या भावना धर्मरहित होकर जीवित नहीं रह सकती। जीवनमें जो सत्य, शिव और सुन्दर है, वह सब धर्मका ही स्वरूप है। चार पुरुषार्थ—धर्म, अर्थ, काम, मोक्षमें भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्मको महत्त्वका स्थान प्रदान किया गया है, though our summum bonum is the attainment of Mokṣa.

उक्त विवेचनके प्रकाशमें मैं ईशोपनिषद्के शब्दोंमें प्रार्थना करूँगा—

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ।
तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये ॥१५॥

दूसरे शब्दोंमें—

O, Thou who givest sustenance to the world, unveil that face of the true sun which is now hidden by a veil of golden light, so that we may see the truth and know our whole duty, *i. e.*, Dharma.

६—अबतक धर्मके शास्त्रसम्मत स्वरूपपर विचार किया गया। वैधानिक दृष्टिसे धर्म-निरपेक्ष राज्यका अभिप्राय यह है कि राष्ट्रकी बहुसंख्याके धर्म (व्यक्तिगणके विश्वास एवं उपासनाकी वृत्तिके अर्थमें ही धर्मका अभिप्राय मानकर 'धर्म-निरपेक्ष राज्य' की कल्पना तथा चिन्तन किया गया है) को राज्यद्वारा विशेष संरक्षण प्रदान नहीं किया गया है। दूसरे शब्दोंमें राज्यका कोई अपना धर्म नहीं है। सभी प्रकारके धर्मोंको समान रूपसे संरक्षण दिया गया है। संवैधानिक दृष्टिसे राज्यके धर्मके अभावका अभिप्राय यह है कि राज्य सब धर्मोंको समानताके व्यवहारकी गारंटी देता है। इसी मन्तव्यको लक्ष्यमें रखकर कोई भारतको अति-विकसित 'धर्म-निरपेक्ष राज्य'के रूपमें देखते हैं। किंतु मेरा निवेदन है कि 'धर्म-निरपेक्ष राज्य'का यह अभिप्राय तो कदापि नहीं हो सकता कि राज्यको Secularism अथवा irreligion—अधार्मिकताकी वृद्धि करनी चाहिये। राज्यको धर्मके प्रति, धार्मिक सिद्धान्तोंके प्रति कदापि उदासीन नहीं रहना चाहिये। इसी प्रकार राज्यके विधि-विधान नैतिक मानदण्डोंसे पृथक् नहीं किये जा सकते।

जहाँतक धर्मनिरपेक्ष राज्यका यह अभिप्राय है कि राज्य प्रत्येक नागरिकको धर्म एवं उपासनाकी स्वतन्त्रता प्रदान करता है, उचित है। किंतु धर्मनिरपेक्ष समाजका निर्माण नैतिक मान-दण्डों तथा आध्यात्मिक आधार-शिलाओंपर होना आवश्यक है।

७—धर्मनिरपेक्ष राज्यका अभिप्राय मेरे मतमें यह होना चाहिये कि वह सम्प्रदायविशेषके धर्मको 'राज्यधर्म' नहीं माने, किंतु राज्य किसी धर्मविशेषकी उपेक्षा भी नहीं करे। सब धर्मोंका समानरूपसे सम्मान करे और उन्हें संरक्षण प्रदान करे। धर्मके अभावमें समाज तथा राष्ट्र जीवित तथा विकसित नहीं हो सकता। इसीसे आज धर्मके अभावमें हमारी नैतिकता तिरोहित हो रही है और हमारे राष्ट्र तथा समाजमें कई दुर्गुणोंका प्रवेश हो गया है एवं वे घुनकी तरह राष्ट्रको नष्ट करनेमें लगे हैं। महात्मा गांधी इसलिये महात्मा बने कि उन्हें बाल्यकालमें धर्मकी, नैतिक मूल्योंकी कथाएँ सुननेको तथा पढ़नेको मिली थीं। आज सर्वत्र भ्रष्टाचारका साम्राज्य है। १८ वर्षके धर्म-निरपेक्ष एवं धार्मिक शिक्षाविहीन जनतन्त्रमें हमने क्या पाया? यदि हम नैतिकताकी दृष्टिसे पतित हुए तो मैं कहूँगा कि हम सभी दृष्टियोंसे पतित हो गये। आर्थिक अथवा भौतिक विकासकी योजनाओंसे राष्ट्रका स्थायी ठोस तथा शाश्वत चिरंतन निर्माण नहीं हो सकता। आज भ्रष्टाचारके व्यापक स्वरूपको देखते हुए राज्यों तथा केन्द्रमें Vigilance Commission—निगरानी आयोगका गठन हो रहा है और लोकसभामें स्वीडनकी ओम्बड्समैन प्रणालीको प्रभावशाली रूपसे लागू करनेकी चर्चा हो रही है, जिसमें प्रधानमन्त्रीके समान अधिकारसम्पन्न पदपर एक व्यक्तिकी नियुक्ति की जाती है, जो निष्पक्ष हो, संसद्के प्रति उत्तरदायी हो और भ्रष्टाचारसम्बन्धी जनताकी शिकायतें सुनकर उनकी जाँच करे तथा उसके निर्णयको सरकार शत-प्रतिशत ज्यों-का-त्यों स्वीकार कर लेती है। मेरा नम्र मत है कि इस 'निगरानी आयोग' तथा 'ओम्बड्समैन' पद्धतिसे भ्रष्टाचारका अन्त नहीं हो सकता। हमारे नेतालोग जिन विषयोंमें कुछ जानते नहीं हैं, उनमें भी अपनी टाँग अड़ाते रहते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि हमारे इन नेताओंने भ्रष्टाचारकी जड़को समाप्त करने तथा उसे रोकनेके उपायोंकी ओर कभी ध्यान ही नहीं दिया। वस्तुतः सद्गुणोंका प्रचार-प्रसार करनेके लिये शिक्षा ही एकमात्र प्रभावशाली साधन है। बालकका मन एक कोमल तनेके समान होता है। उसे वाञ्छित रूपसे ढालनेमें शिक्षा बहुत बड़ी सीमातक सहायक होती है। अतः बालकोंको प्रारम्भसे नैतिक, धार्मिक शिक्षा देना उनके सार्वभौम विकासके लिये अत्यावश्यक है। शुष्क नैतिकता को जीवनमें उतारना कठिन है। नैतिक मूल्योंको धर्म तथा धर्मकथाओंके द्वारा जीवनमें पूरी तरह ग्रहण करना तथा उनका क्रियान्वित करना बहुत सहज तथा प्राकृतिक होगा। इस कारण धर्म तथा धर्म-कथाके द्वारा सच्ची धार्मिक शिक्षा देना आवश्यक है। किंतु शिक्षाके क्षेत्रमें भी नेता अपनी नीति लागू करना चाहते हैं। पाठशालाओंमें प्रारम्भसे धर्मकी, नैतिक मूल्योंकी, आध्यात्मिकताकी शिक्षा देना अनिवार्य है। धर्म-विशेष नहीं, सब धर्मोंके मूल तत्त्वों, सिद्धान्तोंकी, जो प्रायः एक ही समान हैं,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिक्षा देना परमावश्यक है। धार्मिक, नैतिक शिक्षाके बिना कोई बालक नैतिक या सुसंस्कृत नागरिक नहीं बन सकेगा। शिक्षाका उद्देश्य शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक अथवा नैतिक विकास करना है। अन्तिम एवं सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण उद्देश्यकी ओर राज्यका ध्यान नहीं है। नैतिकता-के ग्रहणके बिना भ्रष्टाचारका क्या, किसी भी सामाजिक दोषका निवारण नहीं हो सकता।

मैं तो नेताओंसे कहता हूँ—**'न तेऽधिकारो धर्मेऽस्ति मा भूरात्मप्रशंसकः'**—तुम्हारा अधिकार धर्मके विषयमें नहीं है, स्वयं अपनी प्रशंसा न करो। हमारे शासक सदैव गला फाड़कर चिल्लाते हैं कि हमें चाहिये तकनीकी, इंजिनियर, डाक्टर और वैज्ञानिक—We want technicians, engineers, doctors and scientists। उन्हें यह चिन्ता नहीं है कि मानवमें मानवता ही नहीं रहेगी तो फिर किसीसे भी कोई कल्याण नहीं हो सकेगा। सबसे पहली आवश्यकता है मानवतासे पूर्ण सद्‌गुणी मानवोंकी। मानवकी महत्ताके सम्बन्धमें भगवान् वेदव्यासने महाभारत, शान्तिपर्वमें कहा है—**'गुह्यं ब्रह्म तदिदं ब्रवीमि नहि मानवाच्छ्रेष्ठतरं हि किंचित्॥'** यदि सद्‌गुणी मानव आज बन सकते हैं और तकनीकी तथा वैज्ञानिक कल प्राप्त होते हों तो कोई हानि नहीं है। वरं सद्‌गुणी मानवका निर्माण सर्वप्रथम प्रयोजनीय है। सबसे अधिक आवश्यकता है आध्यात्मिक आधारपर मानवताके विकासकी, संस्कृति और दर्शनसे प्राप्त मानवीय दृष्टिकी। विज्ञान, कला, तर्क, आर्थिक एवं सामाजिक, भौतिक दृष्टिकी प्रधानता होनेपर मनुष्यका आध्यात्मिक पतन होने लगता है। इसीसे आध्यात्मिक आधारहीन इंजिनियर, डाक्टर और दूसरे वैज्ञानिकोंका निर्माण उन्हें मानवीय गुणोंसे शून्य कर देता है। मानवताके गुणोंकी कमीसे ही मनुष्य ऐसे काम कर बैठता है, जिससे दूसरे मनुष्यका—समाजका नुकसान होता है। नयी-नयी इमारतों, सड़कों तथा पुलोंका बननेके कुछ ही दिनों बाद टूट जाना यही सिद्ध करता है।

इस विषयमें तपःपूत श्रीश्रीप्रकाशजीके विचार सुनिये—'भ्रष्टाचारकी विभीषिका सबको सताये हुए है। जबतक कि देशभरका नैतिक स्तर नहीं उठेगा, तबतक कोई भी कानून किसीको लाभ नहीं पहुँचा सकेगा। समुचित शिक्षा ही सब रोगोंके निवारणका एकमात्र उपाय है। हमारा नैतिक स्तर बहुत नीचे गिर गया है, हमें न ईश्वरका और न मनुष्यका ही कोई भय रह गया है। जबतक कि हम सच्ची धार्मिक शिक्षाका आयोजन न करेंगे, जबतक घर-घर आध्यात्मिक सद्‌भावना न फैलायेंगे, तबतक कोई कानून हमारा सहायक नहीं हो सकता।' श्रीसंतानम्-समितिके विवरणसे भी प्रतीत होता है कि चारों ओर भ्रष्टाचार-ही-भ्रष्टाचार है। कोई छूट नहीं पाया है। मन्त्री, विधायक, शासकीय कर्मचारी, अधिकारी, न्यायाधीश आदि—प्रायः न्यूनाधिक रूपमें सभी इसकी लपेटमें आ गये हैं। उनका प्रतिवेदन है कि जबतक उच्च पदासीन व्यक्ति आदर्श आचरण उपस्थित नहीं करेंगे, भ्रष्टाचार समाप्त नहीं होगा तथा उन्होंने आदर्श आचरण-संहिताके निर्माणपर बल दिया दूसरे शब्दोंमें संतानम्-समितिने भी नैतिक शिक्षापर, जिसे मैं धार्मिक शिक्षामें समाविष्ट मानता हूँ, बल दिया है। भ्रष्टाचारके अतिरिक्त हमारे समाजमें नैतिकता तथा सच्ची धार्मिक शिक्षाके अभावमें कई अन्य भयानक दोषोंने—जैसे खाद्यवस्तुओंमें मिलावट, कालाबाजारी, संग्रह, जातिपक्षपात (Food adulteration, Black-marketing, hoarding, nepotisn, red-tapism) अपना गहरा स्थान बना लिया है। इन सब रोगोंको दूर करनेका उपाय भी सच्ची नैतिक, धार्मिक तथा आध्यात्मिक शिक्षा ही है, जिसे राज्य अपनी ओरसे नहीं करता तथा ऐसी शिक्षा देनेके लिये राज्यपर संविधानके द्वारा रोक है।

८—उक्त विवेचनके पश्चात् मेरा नम्र मत है कि भारत-शासनको आवश्यकरूपमें सभी धर्मोंकी सच्ची शिक्षा देनी चाहिये। धार्मिक शिक्षासे मेरा आशय है—नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्योंकी शिक्षा देना, जिससे प्रत्येक विद्यार्थीमें अनुशासन हो, सद्‌गुणोंका जीवनमें समावेश हो, व्यवस्था-पालनमें उत्साह हो, संस्कृतिसे प्रेम हो, त्यागकी भावना जाग्रत् हो। सच्ची धार्मिक शिक्षा कदापि सम्प्रदायवादकी उत्पत्ति नहीं करेगी, यह बलपूर्वक कहा जा सकता है। यह कार्य शीघ्र-से-शीघ्र किया जाय। प्रायः सभीने इसकी आवश्यकताका अनुभव किया है। रोग असाध्य बन जायगा तो फिर उपाय नहीं रह जायगा। भगवान् वेदव्यासके अनुसार प्रत्येक भारतीयका उद्देश्य **'सर्वभूतहिते रताः'** होता है। हमारे ऋषियोंने भी यही घोषणा की थी। धर्म **'वसुधैव कुटुम्बकम्'**, 'जीओ और जीने दो' ही सिखलाता है। हमारा तो यह सांस्कृतिक स्वाभाविक नारा है—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्‌दुःखभाग्भवेत्॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सब सुखी हों, सब नीरोग हों, सभी कल्याणके दर्शन करें, जरा-सा भी दुःख किसीको न मिले ।

'May all living beings be hale and hearty. May all see happy days, *i. e.* let no one be miserable.'

ऐसी उच्च कामना करनेवाले नैतिक, आध्यात्मिक विचारोंमें कहीं साम्प्रदायिकताकी गन्धतक नहीं आती ।

९–विज्ञानसे भौतिक सुख एवं समृद्धि तो प्राप्त हो सकती है, किंतु वह आत्मिक आनन्द प्राप्त नहीं हो सकता, जिसको प्राप्त करना मनुष्यमात्रके जीवनका परम लक्ष्य है । वह धर्मके द्वारा ही प्राप्त हो सकता है । हमें विप्रयानन्दवादको त्यागकर आध्यात्मिक तुष्टिकी स्थापना करनी चाहिये । हमारा ध्येय यही हो—

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः ।
आत्मन्येव च संतुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते ॥

(गीता ३ । १८)

और इस उद्देश्यको ध्यानमें रखकर मैं ईशावास्योपनिषद् (१८) के शब्दोंमें ईश्वरसे यह प्रार्थना करता हुआ इस निबन्धको समाप्त करता हूँ—

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमउक्तिं विधेम ॥

'हे अग्निदेवता ! आप हमें परमधन परमेश्वरके पास शुभमार्गसे ले चलिये । हे देव ! आप समस्त कर्मोंको जाननेवाले हैं, अतः हमारे मार्गमें यदि कोई विघ्न हों तो उन सबको दूर कर दीजिये । आपको हम बार-बार नमस्कार करते हैं ।'

(O All-wise Being ! Thou art the source of all knowledge. Inspire us with Thy wisdom, lead us to rectitude and drive off our evil. To this end we repeatedly praise Thee and adore Thee.)

क्योंकि **'यतो धर्मस्ततो जयः ।'**

कर्म करो, कर्म करो

(लेखक—श्रीसुरेशचन्द्रजी वेदालंकार, एम्० ए०, एल्० टी०)

मनुष्य संसारमें रहता है । वह एक सामाजिक प्राणी है । समाजमें रहते हुए यदि हम अपनेपर ही दृष्टि रक्खें तो वह मिथ्या है । अपने आस-पास दुःख रहते हुए भी यदि हम अकेले ही सुखी होनेकी इच्छा करें तो वह भ्रम है । यदि आस-पास आग लगी है तो अकेला हमारा मकान कैसे सुरक्षित रह सकता है ? संसारमें केवल अपने ही ऊपर दृष्टि रखनेसे काम नहीं चल सकता । जिस कुटुम्बमें प्रत्येक व्यक्ति दूसरोंके सुखमें ही अपना सुख और दूसरोंके दुःखमें अपना दुःख समझता है, वही कुटुम्ब समृद्ध बनेगा, सुखी और आनन्दमय दिखायी देगा । यही नियम समाजपर भी लागू होता है । समाजमें दुखी मनुष्योंको देखकर और उनपर करुणार्द्र होकर उनके दुःखको दूर करनेके लिये उनकी सेवाकी आवश्यकता है । यह सेवा ही कर्म है । सेवाका उपयोग अपने लिये और दूसरे दोनोंके लिये होगा । इसीलिये कर्मकी आवश्यकता है । कर्मके विना मनुष्य जीवित नहीं रह सकता । यदि हम सब कर्मशून्य हो जायँ तो समाज चलेगा कैसे ? सारी सृष्टि कर्म कर रही है, अतः प्रत्येक व्यक्तिको कर्म करना ही चाहिये । प्रत्येक व्यक्तिके शरीर, हृदय और बुद्धि हैं । शरीरको कर्म करना चाहिये । कर्ममें हृदयका प्रेम उतरना चाहिये और उस कर्मके करते हुए बुद्धिको काममें लेना चाहिये । यही कारण है कि उपनिषदों, वेदों और गीता, ब्राह्मणग्रन्थ आदिमें कर्मकी महत्ताका प्रतिपादन किया गया है । ईशोपनिषद्के दूसरे मन्त्रमें सौ वर्षतक जीवनकी कामना करते हुए स्पष्ट कर दिया है कि हम कर्म करते हुए ही सौ वर्षतक जीवित रहें । वहाँ लिखा है—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतᳬ समाः ।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥

अर्थात् मनुष्य कर्म करता हुआ ही सौ वर्षतक जीनेकी इच्छा करे । इस प्रकार तुझ मनुष्यमें कर्म नहीं लिप्त होता (अर्थात् मनुष्य सकाम कर्मके बन्धनमें नहीं आता) । इससे भिन्न (पूर्ण आयु उपलब्ध करनेका) और कोई मार्ग नहीं है । इसी प्रकारकी प्रार्थना प्रतिदिन की जानेवाली संध्यामें भी की गयी है । वहाँ कहा गया है—**'अदीनाः स्याम शरदः शतम् ।'** दीनता उस मानसिक दुर्बलताको कहते हैं, जो मनुष्यको दूसरोंकी दयापर जीनेका प्रलोभन देती है, जो मुहताज बनकर किसीकी कृपा प्राप्त करनेको सुविधाजनक मार्ग समझाती है, जो स्वावलम्बनके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थानपर परावलम्बनको ही अपना आधार बनाती है, वह दीनता है। वीरलोग दीनताको जीवनमें स्थान नहीं देते। भारतवर्षके श्रेष्ठ वीर अर्जुनकी दो प्रतिज्ञाएँ प्रसिद्ध हैं—'दैन्य न दिखलाना और युद्धसे न भागना' (**अर्जुनस्य प्रतिज्ञे द्वे न दैन्यं न पलायनम्**)। और इन दोनोंका आधार है—कर्म। यह कर्म क्या है? यह कैसा हो? इसका मार्ग दिखलायेगा कौन? बतायेगा कौन?

यहाँ हमें मानवके महत्त्वको स्मरण करना होगा। पुरुष-के पुरुषार्थसे वह मार्ग पूछना होगा। बुद्धदेव सदा ही कहा करते थे—"दूसरोंपर अवलम्बित मत हो, स्वयं अपने आपको दीपक बनाओ—'**आप्पदीपो भव।**' उपनिषदें भी यही बात कहती हैं। मनुष्य तो विज्ञानमय है; फिर चिन्ता किस बातकी? (बृहदारण्यक २। १। १६) मानव ही तो स्वयं ज्योति है (बृहदारण्यक ४। ३। ९)। मनुष्यके भीतर जो विज्ञानमय परमज्योति विद्यमान है। उसे आवाहन करके उद्‌बोधित करना होगा। अन्तरस्थित महा-गुरुके सिवा ऐसा और कोई दूसरा नहीं है, जो यह महान् आलोक दे सके। मानवके भीतर जो चिन्मय वेद है, एक-मात्र उसीके द्वारा परिपूर्ण सत्यकी उपलब्धि हो सकती है। उपनिषद्‌में कहा गया है—'ऋक्-मन्त्र यदि तुमने जाना है तो अधिक-से-अधिक यही कहा जा सकता है कि तुमने देवोंका रहस्य जान लिया है; यजुर्वेद यदि तुमने जाना है तो यज्ञोंका रहस्य ही समझा है, साममन्त्रकी जानकारी प्राप्त की तो माना कि और भी सब कुछ जान गये हो, परंतु मानवकी अन्तरात्मामें वेद है, उसे तुमने जाना है तभी ब्रह्मको जाना है—

ऋचो ह यो वेद स वेद देवान्
यजूंषि यो वेद स वेद यज्ञम्।
सामानि यो वेद स वेद सर्वं
यो मानसं वेद स वेद ब्रह्म॥

साधनाके द्वारा अपने अन्तःस्थित चिन्मय ज्योतिको उद्‌भासित करके परम सत्यको जानो, जाग्रत् होओ। जाग्रत् न होनेसे ब्रह्मको नहीं जाना जा सकता और न उसकी सेवा की जा सकती है। यह साधना क्या है? कर्म ही साधना है—साधना ही कर्म है। निद्रामग्न और अकर्मण्य ज्ञानी या पुरोहित उस ब्रह्मको नहीं प्राप्त कर सकते—

मोषु ब्रह्मेव तन्द्रयुर्भव। (ऋ० ८। ९२। ३०)

उद्यमी और जाग्रत् लोग ही धन्य हैं, निद्रालु और अवसादग्रस्त नहीं। अतन्द्र उत्साहशील लोग ही आनन्दके अधिकारी हैं; क्योंकि ऐतरेय ब्राह्मणमें कहा गया है कि देवता उसीके साथ-साथ चलते हैं, जो अग्रसर होकर चल पड़ा है, जिसने जीवनमें कर्मका लक्ष्य बना लिया है—

इन्द्र इच्चरतः सखा। (७। १५। १)

पाप-पुण्यकी समस्याओंको लेकर ही उपदेशकोंके व्यस्त-दलोंको ऐतरेय ब्राह्मणका संदेश है—जीवनमें कर्म करते हुए बढ़े चलो, बढ़े चलो; तुम्हारा पाप तुम्हारे चलनेके मार्गमें स्वयमेव हतवीर्य होकर सो रहेगा—

शेरेऽस्य सर्वे पाप्मानः श्रमेण प्रपथे हताः।
(ऐतरेय० ७। १५। २)

शायद इसे सुनकर हम कहें कि हम दुर्भाग्यग्रस्त हैं, हम क्या इस मन्त्रकी साधना कर सकते हैं? ऐतरेयने इस आपत्तिका दृढ़कण्ठसे प्रतिवाद किया है। भाग्य है क्या वस्तु? जो बैठा रहता है, उसका भाग्य भी बैठा रहता है; जो उठ खड़ा होता है, उसका भाग्य भी उठ खड़ा होता है; जो सोया पड़ा रहता है, उसका भाग्य भी सोया पड़ा रहता है। जो अग्रसर होता है, उसका भाग्य भी अग्रसर होता है। इसीलिये आगे बढ़ो, आगे बढ़ो—

आस्ते भग आसीनस्योर्ध्वस्तिष्ठति तिष्ठतः।
शेते निपद्यमानस्य चराति चरतो भगः॥
चरैवेति चरैवेति।
(ऐतरेय० ७। १५। ३)

यह कहना बेकार है कि इस कलियुगमें ये बातें नहीं हो सकतीं; क्योंकि ऐतरेयने कहा है कि सो रहनेको ही कलियुग कहते हैं, निद्रा छोड़कर जग पड़ना ही द्वापर है, उठ खड़ा होना ही त्रेता है और कर्म करते हुए अग्रसर होना ही सत्ययुग है। अतः आगे बढ़ो, आगे बढ़ो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कलिः शयानो भवति संजिहानस्तु द्वापरः ।
उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति कृतं सम्पद्यते चरन् ॥
चरैवेति चरैवेति ।
(ऐतरेय० ७ । १५ । ४)

हमें शक्तिके अभावकी चिन्ता कभी नहीं करनी चाहिये । कर्मसे मनुष्यमें शक्ति आती है। सारे संसारको आलोक वितरित करनेवाले सूर्यको कभी क्या आलोकका अभाव अनुभव हुआ है ? ज्यों-ज्यों वह आलोक वितरित करता हुआ आगे बढ़ता गया है त्यों-त्यों उसका आलोक-भंडार पूर्ण होता गया है ।

सूर्यस्य पश्य श्रेयाणं यो न तन्द्रयते चरन् ।

शायद कर्मका, आशाका, आगे बढ़नेका इतना भावपूर्ण, गतिशील और शक्तिशाली मन्त्र संसारकी किसी अन्य जातिके ग्रन्थमें नहीं मिलता ।

प्रश्न उपस्थित हो सकता है कि वह कर्म कौन-सा है, जिसे करके हम आगे बढ़ सकते हैं—आनन्दकी प्राप्ति कर सकते हैं—मोक्षतक पहुँच सकते हैं ? गीतामें इस प्रश्नका उत्तर दिया गया है और कहा गया है—

स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ।

स्वकर्मको ही मोक्षका साधन बताया गया है । यह स्वकर्म सभी मनुष्योंके भिन्न-भिन्न होंगे । ईश्वरने संसारमें सैकड़ों रंग और गन्धके फूल खिलाये हैं, ठीक उसी प्रकार उसने सैकड़ों गुण-धर्मोंके व्यक्ति भी भेजे हैं । बगीचेमें एक ही रंग और एक ही गन्धके फूल हमें अच्छे नहीं लगते । गुलाब, मोगरा, जुही आदिके साथ गेंदा, कनेर आदिके फूल भी होने चाहिये । सबका रंग भिन्न है, गन्ध भिन्न है । सबके कारण ही बगीचा सुन्दर दिखायी देता है । मानव-समाजमें यदि सभी एक ही वर्ण, एक ही कर्मके हों तो समाज नीरस हो जायगा। समाजमें आनन्द नहीं दिखायी देगा । विविधतामें ही आनन्द है । इसलिये किसी भी कर्मको समाजकी सेवाके भावसे करता हुआ मनुष्य मोक्षका अधिकारी हो सकता है । हमें कर्मके प्रकारके कारण किसीको छोटा और किसीको बड़ा नहीं समझना चाहिये । हमें अपने कर्मके कारण कभी घमंड भी नहीं करना चाहिये । सभी कर्म कर्मकी दृष्टिसे समान हैं । उपनिषद्में एक सुन्दर कथा है—

एक बार इन्द्र, वायु, अग्नि आदि देवोंमें बड़ा विवाद हुआ । प्रत्येक कहता था कि मैं श्रेष्ठ हूँ । इन्द्रने कहा—'मैं वर्षा करता हूँ । यदि वर्षा न हो तो पृथ्वी सूख जाय और जीवन असम्भव बन जाय ।' वायुने कहा—'यदि पानी न बरसा तो एक बार चल सकता है, किंतु हवा तो अत्यन्त आवश्यक है । अतः मैं श्रेष्ठ हूँ ।' अग्निने कहा—'सबसे पहले गरमी होनी चाहिये, उष्णता होनी चाहिये। जब उष्णता समाप्त होती है, तब आदमी ठंडा हो जाता है । उष्णताके बिना सब मिथ्या है ।'

जब यह वाद-विवाद चल रहा था, तब वहाँ एक तेजस्विनी देवी आयीं । देवता बड़े चक्करमें पड़े कि यह देवी कौन है, कहाँकी है ? अग्निने कहा—'मैं उस देवीके पास जाकर सारी जानकारी प्राप्त कर आता हूँ ।' अग्नि उसके पास गया और पूछने लगा—'आप कौन हैं ?' उस देवताने उल्टे अग्निसे ही प्रश्न किया—''आप कौन हैं?'' अग्निने चिढ़कर कहा—'मेरा नाम ज्ञात नहीं है ? मैं अग्नि हूँ ।'

देवीने कहा—'आप क्या करते हैं ?'

अग्निने क्रोधित होकर कहा—'मैं सारे ब्रह्माण्डको एक क्षणमें जला दूँगा । क्या तुम्हें मेरा पराक्रम ज्ञात नहीं है ?'

देवीने कहा—'होगा तुम्हारा पराक्रम, मुझे तो ज्ञात नहीं है। किंतु यहाँ यह तिनका है, इसे जलाकर दिखाओ।'

अग्निने अपनी सारी ज्वाला प्रज्वलित की, किंतु वह तिनका नहीं जला । वह सिर नीचा करके चला गया ।

इसके बाद वायु आया । उससे भी उसी तरहके प्रश्नोत्तर हुए । वायुने घमंडके साथ कहा—'मैं पर्वतोंको गेंदकी तरह उछालता हूँ, वृक्ष उखाड़ता हूँ, पानीको नचाता हूँ, प्रचण्ड लहरें पैदा करके बड़े-बड़े जहाजोंको डुबा देता हूँ । क्या तुम्हें मेरा पराक्रम नहीं ज्ञात है ?' देवीने कहा—'नहीं । यहाँ एक तिनका है, इसे उड़ाकर दिखाइये; तब जानूँ ।'

वायुने अपनी सारी शक्ति लगा दी, किंतु क्षुद्र तिनका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने स्थानसे नहीं हिला। वायु लज्जित होकर चला गया। इस प्रकार इन्द्र इत्यादि सभी लज्जित और पराजित होकर चले गये, तब उस अध्यात्मदेवी उमाने कहा—'अरे देवो! मैं श्रेष्ठ हूँ, मैं श्रेष्ठ हूँ—यों कहकर क्यों लड़ते हो? न कोई श्रेष्ठ है न कनिष्ठ। उस विश्वशक्तिने इन्द्रको पानी बरसानेकी शक्ति दी है, अग्निको जलानेकी शक्ति दी है, हवाको बहनेकी शक्ति दी है; अतः इनमें अपनी-अपनी शक्ति है। किसीका कर्म किसीसे हीन या उच्च नहीं। यह सब विश्वशक्तिकी देन है और उसे उसी रूपमें समझकर तुम अपना-अपना कार्य करो—घंमड मत करो।'

याद रक्खो, बिना कर्मके संसारका काम चल नहीं सकता। ज्ञान उत्तम वस्तु है, वह मानव-जीवनका लक्ष्य है; परंतु ज्ञान भी कर्मसे ही प्राप्त होता है। बिना कर्मके ज्ञान लँगड़ा है, चल नहीं सकता, बढ़ नहीं सकता। कर्म ही मानव-जीवनको खड़ा कर सकता है। श्रमके कार्योंको छोटा समझना भूल है।

रामायणमें एक कथा आती है। जिस समय भगवान् राम शबरीसे मिलने गये, वे एक वनमें पहुँचे और वहाँ चारों ओर खिले हुए फूल उन्होंने देखे। वे फूल मुर्झाते न थे, सूखते न थे। उनसे सदा मधुर गन्ध निकलती रहती थी। रामने शबरीसे कहा—'ये फूल किसने लगाये हैं।'

शबरीने कहा—'राम! सुनो एक बार आश्रममें लकड़ी न होनेके कारण मतंग ऋषि विचारमें डूबे हुए थे। यहाँ उन्हींका आश्रम था। उनके आश्रममें बहुत-से विद्यार्थी थे। बहुत-से अतिथि आये हुए थे। वर्षाके चार मासके लिये उन्हें लकड़ियोंकी आवश्यकता थी। पर गरमीके कारण न विद्यार्थी और न अतिथि—कोई भी जा नहीं रहा था। इतनेमें वृद्ध मतंग ऋषि कंधेपर कुल्हाड़ी रखकर निकले। आचार्यको जाते देखकर विद्यार्थी, अतिथि—सभी आश्रमवासी चल पड़े। सब लोग जंगलमें गये और तीसरे पहरतक पसीनेसे तर-बतर वापस लौटे। अगले दिन प्रातःकाल जब सब लोग उठे, तब एकदम उस आश्रममें सुगन्ध आयी। सब लोग आश्चर्यसे पूछने लगे—'यह सुगन्ध कहाँसे आ रही है?' मतंग ऋषिसे आज्ञा पाकर छात्रोंने जब उन फूलोंको जाकर देखा; तब उन्हें ज्ञात हुआ कि लकड़ीके गट्ठर लाते हुए जहाँ-जहाँ पसीना गिरा था, वहाँ एक सुन्दर खिला हुआ फूल दिखायी दिया। हे राम! ये पसीनेसे उत्पन्न होनेवाले फूल हैं—'धर्मजानि कुसुमानि', पसीनेसे पैदा होनेवाले फूल। श्रमसे पसीना बहानेवाले अपने बच्चोंको मानो भूमाता सहस्रों नेत्र खोलकर देख रही है।'

इस प्रकार भारतीय संस्कृति कर्ममय और आशाभरी संस्कृति है। यह संस्कृति कर्मको प्रधानता देनेवाली संस्कृति है। इस संस्कृतिमें कोई कर्म तुच्छ नहीं, छोटा नहीं। कर्मके सभी साधन भी यहाँ पवित्र माने गये हैं। स्त्रियाँ झाड़ू, चक्की, चूल्हेको पैरसे नहीं छूतीं। किसान हलको पैर नहीं लगाता। पण्डित पुस्तकको पैर नहीं लगाता। चमार अपने दरवाजेपर चमड़ेका तोरन लगाता है। अर्थात् कर्ममय जीवनमें कर्मके साधन भी पवित्र हैं, यही भारतीय विचारधारा है।

'स्वकर्म-सुमनसे पूजो प्रभुको, तभी मिलेगी मुक्ति यहाँ।' अतः **'कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः'**—कर्म करते हुए सौ वर्ष जीनेकी कामना करनेमें वेदके आदेशका, आइये, हम पालन करनेका व्रत लें और संसारसे दुःखोंको दूर करें। अरे मनुष्यो!

उठो देवगण! जागो सुन्दर, यह कर्मकी बेला आई।
निशा-कालिमा दूर हो चली, उषा-अरुणिमा नभ छाई॥
नव जीवनकी आभा फैली, हुआ प्रकृतिका नव शृङ्गार।
कर्म-ज्योतिका उदय हुआ, फिर चमक उठा सारा संसार॥
अन्तर-तममें परम ज्योति वह जाग उठेगी अब निश्चय ही।
उसके दिव्य प्राणको पाकर, देव बनेंगे मृत्युंजय ही॥
पहुँचे हम उस दिव्य मार्गमें, जहाँ न जीवनका क्षय है।
आगे-ही-आगे बढ़ना है, गति है, जय है और अभय है॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दक्षिण भारतकी तीर्थयात्रा

(लेखक—सेठ श्रीगोविन्ददासजी, श्रीमती रत्नकुमारी देवी, श्रीगोविन्दप्रसादजी श्रीवास्तव)

[गताङ्क, पृष्ठ ८६० से आगे]

अब हमारे दिनकी रेलयात्रा थी और स्वभावतः हमारा ध्यान चारों ओरके प्राकृतिक दृश्यकी ओर घूमा। वर्षाऋतु थी। गगन-मण्डल सर्वथा मेघोंसे आवृत तो नहीं था; फिर भी मेघोंकी घटाएँ उठ-उठकर यत्र-तत्र दौड़ती नजर आ रही थीं। अवनितलका दृश्य हरियालीसे परिपूर्ण था। दूर-दूर तक, जहाँ तक दृष्टि जाती, हरा-हरा ही दृष्टिगोचर होता था। हरी घास, धानकी हरी फसल, कहीं बढ़ी हुई विकसित युवती-सी तो कहीं नवोदित बालिका-सी चारों खूँट हरी-भरी चौड़े खेतोंमें लहलहा रही थी; फिर चौड़े-चौड़े हरे पत्तोंवाले केलेके पौधे, जो दूर-दूरतक फैले सघन कदली-वन बन गये थे। इनके बाद हरे-हरे कलमी आम्रवृक्ष, जो अधिकतर गोलाकार थे और जिनकी शाखाएँ भूमिका स्पर्श करती दिखायी देतीं, जिसके कारण उनकी पींड दृष्टिसे ओझल हो जाती। यही नहीं, शाखाएँ और टहनियाँ भी अदृश्य हो केवल हरे-हरे पत्ते ही हमें दिखायी दे रहे थे। इनके बाद हरे पत्तोंवाले ऊँचे-ऊँचे नारियलके वन दूर-दूरतक फैले हमारे दृष्टि-पथमें आँख-मिचौनी खेलते अपनी और इस प्रदेशकी गरिमाका इतिहास बता रहे थे। कहीं-कहीं ये तीनों प्रकारके वृक्ष अर्थात् केलेके, आमके और नारियलके साथ-साथ थे। यकायक हमारे मनमें उठा, आम और केलेके वृक्षोंमें तो स्पर्द्धा है। अतः दोनोंके सौन्दर्यमें कोई कमी नहीं हुई है; परंतु शायद नारियलके वृक्ष केले और आम्र वृक्षोंसे ईर्ष्यावश ऊँचे उठे हैं और यद्यपि इस प्रयत्नमें उन्हें सफलता भी मिल गयी है, तथापि इस ईर्ष्याके कारण ही कदाचित् ये कुरूप भी हो गये हैं। समतामें जो सफलता, सिद्धि और सौन्दर्य है, वह विषमतामें कहाँ। नंगी पींड़ और सिरपर एक झुरमुट-सी धारण किये नारियलके ये वृक्ष आम्र और कदली-वृक्षोंके मध्य भी सर्वथा अलग दीख रहे थे—एक अलगाव, एक दुराव लिये। कुछ आगे चलकर हमें अंगूर-की बेलोंकी झाड़ियाँ दिखायी दीं। दूर-दूरतक फैली अंगूरकी इन झाड़ियोंमें फले अंगूर यद्यपि हमारी दृष्टिमें नहीं आये, तथापि इनकी सुन्दर आकृति, इनके समृद्धरूप स्वरूपका अवलोकन करते ही इनके समधुर फल अंगूरकी मिठाससे एक क्षणको न केवल हमारा मन मधुरिमामें खो गया वरं हमारी रसना इन मादक झाड़ियोंमें लदी अदृश्य अंगूरगुच्छिओं से रसानुभूति कर उठीं।

केले, आम, नारियल और अंगूर-बेलोंके अतिरिक्त इस विस्तीर्ण उद्यानमें हमने कुछ अन्य वृक्ष भी देखे; किंतु बबूल अथवा बेरका कहीं कोई वृक्ष हमारी दृष्टिमें नहीं आया। कदाचित् यह इसलिये नहीं कि किसीने इनका बीजारोपण नहीं किया, वरं जैसा कि रहीम खानखानाके शब्दोंमें—'कहु रहीम कैसे बनैं, केर-बेरको संग। वे रस डोलें आपुन, इनके फाटे अंग।' की सम्भावनासे प्रकृतिने ही इन्हें इस क्षेत्रमें पनपने नहीं दिया और यही इनके निर्वंश होनेका कारण था।

दिनभर हम इस सघन हरियालीवाले दृश्यको देखते रहे। प्रकृतिकी इस वरदानभूमिमें आज हम एक प्रकृतिपूजक बन उसके चप्पे-चप्पेको जी भर देख रहे थे। अम्बरमें उमड़ती मेघमालाएँ और अवनिपर काईके सदृश हरी कच्छ बिछी हरियाली सुदूर शोभायमान हो रही थी। नीलाकाशमें यत्र-तत्र मेघोंकी चलती हुई चादरें तनी थीं। नीचे धरती हरी ओढ़नी ओढ़े दुलहिन बनी थी। दोनोंके बीचमें इधर हमारी रेल तेजीसे बढ़ी जा रही थी। एकाएक हमें अनुभव हुआ, गगन और धरतीके बीच प्रकृतिके दो वरदानोंके मध्य मानवका यह साधना-पथ, जिसपर हम जा रहे थे, धरती और आकाशकी भाँति उन्मुक्त, स्वच्छन्द और विस्तीर्ण नहीं है। एक ओर हमारे ऊपर गगनकी छाया, दूसरी ओर नीचे धरतीकी पावन गोद, बीचमें हम और हमारी लंबी मंजिल, जिसमें आजू-बाजू ऊँचे पहाड़, नीचे गहरे खाई-खंदक और पग-पगपर पड़नेवाली मोड़ें। फिर कौन जानता है, इस दुर्गम मगके कितने पड़ाव हमें पार करने होंगे। धरती और आकाशके इस अन्तरपर जब हमारी दृष्टि गयी तो हमें अपनी मंजिल भी उतनी ही दूर दीखी, जितनी दूर गगनसे धरती। इसी बीच हमने दूर क्षितिज देखा, जहाँ दोनों आपसमें मिलते, आलिङ्गन-सा करते हमें दिखायी दिये। फिर हमारा ध्यान दूरगामी आकाश और विस्तीर्ण धरतीके उस क्षेत्रपर गया, जहाँ हवाई मार्ग बन गये हैं और जिस रेलमार्गसे हम यात्रा कर रहे थे, उस धरतीको भी हमने देखा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पल-मात्रमें यह विचार आते ही, मानवके इस पुरुषार्थकी याद आते ही गगन और धरतीका यह अन्तर क्षितिजकी भाँति हमारे अन्तरमें एकदम समा-सा गया और प्रयत्न तथा पुरुषार्थकी अमरगाथाके साथ हमें अपनी मंजिल, जो आकाश और धरतीकी भाँति ही हमसे बहुत दूर होती जा रही थी, पलमें हमारे सामने आ गयी। हमारी मोटर, जो तेज दौड़ती हमारी मंजिलको नाप रही थी, हमारे इस विचारकी पोषक बन गयी।

गीत

प्रकृतिके उत्सङ्ग में है,
सघन ऋतु की सजल क्रीड़ा।
धराके सिञ्चित हृदय से,
जा चुकी है तपन पीड़ा।
स्वर्ण संध्याका चुराये,
झुक पड़े पर तोल बादल।
पंक धूमिल घोल तन में,
उमड़ उठता नद नदी दल।
मृदुल कदली हरित हाथों-
में, पकड़ती बिन्दु मोती।
आम्र विटपावलि छिपी सी,
पल्लवों में, देह धोती।
नारिकेलों के विटप गण
गर्व से उठते गये जब।
छोड़ बान्धव, कुटी सुषमा,
ठूँठ बनकर स्थिर रहे तब।
भरे पूरे नवल तन पर
ओस मुक्ता हार संचित।
सरस द्राक्षा वल्लरी नव
विटप लम्बित, नमित, लज्जित।
लौह पथ पर दौड़ता
वाहन हमारा छू न पाया—
उस क्षितिजको, जहाँ मिलती
भूमिसे नभ नील छाया।

दिनभर इस सघन हरियालीवाले दृश्यको देखते संध्या आ गयी और प्रदोषके अन्धकारने जब प्रकृतिके इस वरदानी क्षेत्रपर तमकी चादर डाल दी, तब अनायास ही हमारे दृष्टि-द्वारकी खिड़की बंद हो गयी। दृश्यके लुप्त होते ही हमारी दृष्टि लुप्त हो गयी और हम अपने डिब्बेमें बैठे बिजलीके प्रकाशमें अपने साथियोंके साथ भोजनादिसे निवृत्त हो आड़े-टेढ़े सो गये। एकाएक अर्द्धरात्रिको हमें यह कहकर जगाया गया कि हमारा डिब्बा कटनेवाला है। हम सब हड़बड़ाकर उठे; क्योंकि त्रिचनापल्लीमें जब त्रिवेन्द्रम् तककी यात्राके लिये हमारा यह डिब्बा सुरक्षित किया गया था, तब यह कहा ही नहीं गया था कि यह डिब्बा आगे चलकर कट जायगा। इस कृत्यसे हम कुछ क्षुब्ध हुए, कुछ क्रुद्ध, परंतु रेलकर्मचारियोंने जब हमें डिब्बेके बोर्डपर दिखा दिया कि यह डिब्बा तो यहींतक आनेवाला था, तब हम कुछ न कह सके और मन-ही-मन त्रिचनापल्लीके रेलवे कर्मचारियोंपर, जिन्होंने हमें इस डिब्बेमें बिठा दिया, कुपित होने लगे। पर इससे कहीं अधिक कुपित हम अपने आपपर हुए, जो स्वयं एक अनुभवहीनकी भाँति इस असुविधाका कारण बने। इससे एक सबक मिला कि प्रभातके उजेलेमें हमने त्रिचनापल्लीमें जो यह न देखनेकी कि यह डिब्बा त्रिवेन्द्रम् न जाकर बीच मार्गमें ही हमारा साथ छोड़नेवाला है, आलस्य और असावधानी की उसका परिमार्जन न केवल हमको वरं हमारे सभी साथियोंको, जिसमें बेचारी वृद्धा महिलाएँ भी थीं, रातके बारह बजे करना पड़ा। गनीमत यह हुई कि गोविन्ददास जिस फर्स्ट क्लासमें यात्रा कर रहे थे, उसमें अन्य कोई यात्री नहीं थे। अतः त्रिवेन्द्रम् तक हमने तीन टिकिट फर्स्टक्लासके कराये और एक सेकण्ड क्लास की। किसी तरह जल्दी-जल्दी अपना सामान स्थानान्तरितकर हम फिर अपनी मंजिलपर रवाना हुए।

सत्रह सितम्बरके प्रातःकाल आठ बजे हम केरलकी राजधानी त्रिवेन्द्रम् पहुँचे। त्रिवेन्द्रम्में हमारे ठहरनेकी व्यवस्था हिज हाइनेस महाराजा रामवर्मा, भूतपूर्व त्रावणकोर नरेशके यहाँ थी। इनके नाना भूतपूर्व त्रावणकोर-नरेश दो बार जबलपुर नर्मदा-स्नानको आ चुके थे। उस समय गोविन्ददासके पितामह राजा गोकुलदासजी जीवित थे और वे उन्हींके मेहमान थे। अतः इस पुराने सम्बन्धके कारण ही हमारे ठहरनेका प्रबन्ध महाराजा रामवर्माने किया था।

केरलकी परम्परामें राज्य अथवा सम्पत्तिका उत्तराधिकार पुत्रको नहीं मिलता। वह बहनके लड़के भानजेको जाता है। यह एक अजीब परम्परा है, जो कम-से-कम समूचे भारतके नहीं, तो उत्तर भारतके लोगोंके लिये तो सर्वथा अनूठी ही है। बहनके लड़केको सम्पत्तिका स्वामित्व मिले,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह एक दृष्टिसे यदि हम इसलिये प्रशंसनीय मानें कि इससे पुरुष-की अपेक्षा नारीको न केवल समान दर्जा दिया गया, वरं उसका इस अधिकारद्वारा अपेक्षाकृत पुरुषके समान सम्मान भी किया गया तो भी सम्मानकी इस प्रथामें एक ओर जहाँ हम बहनके लड़के भानजेको यह अधिकार देते हैं वहाँ दूसरी ओर हम अपनी ही आत्मजा लड़कीका अधिकार छीन भी लेते हैं। उदाहरणके लिये एक सम्पत्तिशाली व्यक्ति अपनी बहिनके लड़केको उस सम्पत्ति-का वारिश बनाता है जबकि वह स्वयं एक लड़के और लड़कीका पिता है। इस प्रथासे भले ही उसने अपनी बहिनका सम्मान किया, किंतु इस सम्मानमें वह अपने ही औरस लड़केके साथ उसी वर्गकी एक लड़कीको, जिसका वह सम्मान कर रहा है, उस अधिकारसे वञ्चित कर अपमान कर बैठा! यह एक विचारणीय बात है। इस तरह यदि हम देखें तो नारी-जातिकी सम्मान-सूचक इस प्रथामें भी अपने-आप नारीका ही असम्मान हो जाता है। अतः जैसा कि उत्तर-भारतमें प्रचलित है कि पिताकी सम्पत्तिका स्वामित्व पुत्रको प्राप्त हो और पुत्री कन्यादानके साथ अपने पितासे प्राप्त दहेजसे ही संतुष्ट, सुखी और तृप्त रहे—यही बनिस्बत केरलकी इस प्रथाके जिसमें पुत्रके स्थानपर उसकी फुआको सम्पत्तिका स्वामित्व मिलता है, कहीं श्रेयस्कर है। फिर नारीका सम्मान सम्पत्ति-दानसे न होकर यदि समाजमें समान अधिकार-दानसे हो तो बनिस्बत सम्पत्तिके स्वामित्वके कहीं श्रेयस्कर है। सम्मानकी जो परिभाषा है, वह समाजमें मिलनेवाले स्थानसे होनी चाहिये, न कि सम्पत्तिसे। फिर सामाजिक रचना, जिसका सर्वेसर्वा बहुत दूरतक पुरुष ही है, नारीको जब अपनी सहयोगिनी स्वीकार कर लेती है, तब अधिकारके क्षेत्रमें भी अपने-आप प्रतिष्ठा जो पुरुषकी होती है, वह नारीकी बन जाती है और जो नारीकी होती है, वह पुरुषकी हो जाती है। इस दृष्टिसे यदि हम अधिकारको प्रतिष्ठारूपमें स्वीकार करें तो नारीका दर्जा अपने-आप ऊपर उठ जाता है और सम्पत्तिरूपमें यदि हम उसे भौतिक सम्पत्तिका स्वामित्व ही दें और पुरुषके समान अधिकार नहीं, भले ही वे सम्पत्तिवश उसे प्राप्त हों, तो हमने नारीकी सेवा की, उसे समाजमें समान दर्जा दिया या उससे कुछ ऊपर—यह बात हमारी समझमें नहीं आती। सम्पत्ति अनेक बार विग्रहका कारण होती है। अतः उसके स्वामित्वको लेकर फुआ-भतीजेमें अथवा भाई-बहनमें कलह हो—यह पारिवारिक दृष्टिसे ही नहीं, सांस्कृतिक दृष्टिसे भी उचित और कल्याणकर नहीं है। इस सम्बन्धमें तो उत्तर-भारतकी परम्परामें कन्यादान और इस कन्यादानमें सामर्थ्यानुसार पिताद्वारा समर्पित दहेज हमारे पारिवारिक और सांस्कृतिक जीवनका एक सुन्दर और समुज्ज्वल अङ्ग है। 'किंतु भिन्नरुचिर्हि लोकः'के अनुसार केरलकी इस परम्परामें केरलवासियोंकी जिस रुचि और पुरुषके त्याग तथा नारीवर्गके प्रति समर्पणकी जो भावना हमें दिखायी देती है, उसके लिये हम उनको साधुवाद ही देंगे।

स्टेशनसे हम महाराजा साहबके गेस्टहाउसमें लाये गये, जहाँ नित्य-नेमसे निवृत्त हो महाराजा साहबकी मोटरमें ही हम त्रिवेन्द्रम् नगर देखने निकल पड़े। गोविन्ददास इसके पहले भी दो बार त्रिवेन्द्रम् आ चुके थे। प्रथम बार अखिल भारतीय हिंदी-साहित्य-सम्मेलनके अध्यक्षकी हैसियतसे सन् १९४८ में और दूसरी बार अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके सदस्य-रूपमें सन् १९५८ में। पहली बार वे हिंदी-प्रचारके कामसे आये थे और दूसरी बार मण्डल कांग्रेस-कमेटियोंके निरीक्षणके लिये, जो काम उन्हें कांग्रेस वर्किंग कमेटीने सौंपा था। दोनों अवसरोंका उन्हें आज स्मरण हो आया। संविधान-सभामें भारतकी राजभाषाके लिये उस समय कैसी कशमकश चल रही थी! सम्मेलनके अध्यक्षकी हैसियतसे उन्होंने अहिंदी-भाषा-भाषी क्षेत्रोंका दौरा किया था, हिंदीके पक्षमें मत बनानेके लिये। उन्हें इस कार्यमें सफलता भी कम नहीं मिली। सन् १९५० में हिंदी संविधानद्वारा सर्वमतसे देशकी राजभाषा स्वीकृत की गयी और उसी समय यह भी निर्णय हुआ कि पंद्रह वर्षके भीतर हिंदी अंग्रेजीका स्थान ले लेगी। संविधान-सभाके इस निर्णयके बाद आजतक व्यावहारिक रूपमें इस भाषायी सत्ताके हस्तान्तरणमें कहाँतक प्रगति हुई है, उसे देखनेपर मूलरूपसे हमने हिंदीके लिये अंग्रेजीका दर्जा प्राप्त करनेमें जो पंद्रह वर्षकी अवधि रक्खी, वही भूल हुई—यह आज स्पष्ट परिलक्षित होने लगा है। कमजोर होनेकी बजाय अपनेको कमजोर समझना अधिक भयंकर होता है। अंग्रेजोंने हमपर हमारी इसी भावनाके कारण अपना आधिपत्य जमा रक्खा था। जब हम हाथ-पैर हिलाते और उनसे मुक्त करनेकी बात कहते तो वे हमें आपसी फूट और हमारी अनेक कमजोरियोंको बताकर समझा देते। हम मान जाते। किंतु जिस दिन गांधीजीने 'भारत छोड़ो' कहा—यही नहीं, उनसे स्पष्ट कहा कि यदि भगवान्पर भरोसा हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो भारतको उसके भरोसे छोड़ दो और यदि उसपर तुम्हारा विश्वास नहीं तो उसे अराजकताके ही हवाले कर दो। बस, उनकी इस आवाजने अंग्रेजोंके पैर उखाड़ दिये। उन्हें यहाँसे जाना पड़ा। हिंदी समृद्ध नहीं है, देशके कुछ क्षेत्रोंमें उसका विरोध है आदि बातोंके आधार-पर ही हमारी सरकारने उसे उस समय सिद्धान्त-रूपसे स्वीकार करते हुए भी व्यावहारिक रूपमें अपने अधिकारसे पंद्रह वर्षोंतक निष्कासित कर दिया। आज यह बात भी नहीं रही। सरकारने पंद्रह वर्षोंकी इस अवधिके पूरे हुए बिना ही अनिश्चित कालके लिये उसके साथ सहभाषाके रूपमें अंग्रेजीको लगा दिया। यह तो इस तरहकी बात हुई, जैसे किसी जनतन्त्रमें वहाँकी जनताके सिरपर राजचिह्नसे अङ्कित टोपियाँ लगा दी जायँ, जिसमें हर व्यक्ति अपनेको बादशाह समझे, और बादशाहत करे कोई अकेला एक व्यक्ति, जिसके हर हुक्म-कानून और इशारेपर सारी जनताको चलना पड़े। इसी तरह अंग्रेजीका देशपर साम्राज्य रहे और संविधानमें दुहाई दी जाय हिंदीकी! यह एक ऐसा मजाक है, जिसका जवाब नहीं। देशका बहुमत, देशकी एक बड़ी आबादी हिंदी-भाषा-भाषी हो और उससे कहा जाय कि दिलमें हिंदी है तो रहने दो, जबान अंग्रेजी बोलो, तो इससे अधिक हास्यास्पद बात और क्या हो सकती है? इस प्रकार हमारी अपनी कमजोरीके कारण ही हिंदीको उसका स्थान मिलनेमें न केवल अनावश्यक देर हुई है, वरं हमारी यह कमजोरी ही उसके मार्गमें एक बड़ी बाधा बनी हुई है। जबतक हमारे दिल और दिमागमें यह कमजोरी बनी रहेगी, तबतक अंग्रेजोंके जानेके बावजूद भी उनका भाषायी साम्राज्य भारतपर अपना आधिपत्य जमाये रहेगा और इसका अर्थ यह होगा कि हिंदीको अपना दर्जा न मिलनेसे, न केवल हिंदीकी हित-हानि होगी वरं अन्य भारतीय भाषाओंकी समृद्धिके द्वार भी अवरुद्ध ही रहेंगे और भाषा-विकासके बिना व्यक्ति, व्यक्तित्व और उसकी संस्कृतिके विकासकी बात सोचना नितान्त भ्रान्तिमूलक होगा। भौतिक दृष्टिसे भले ही हम कुछ उन्नति कर लें, किंतु भारतकी भारतीयता और उसकी सनातन संस्कृतिका संरक्षण-संवर्द्धन तो भारतीय भाषाओंसे ही सम्भव है—अंग्रेजी, फ्रांसीसी, रूसी अथवा अन्य विदेशी भाषाओंसे नहीं।

जैसा कि ऊपर कहा गया है, गोविन्ददास यद्यपि दो बार त्रिवेन्द्रम् आ चुके थे, तथापि हम सबके लिये तो त्रिवेन्द्रम् सर्वथा नया था। फिर गोविन्ददासके लिये भी जो यहाँ आ चुके थे, आजकी यह त्रिवेन्द्रम्-यात्रा धार्मिक दृष्टिकोण-प्रधान होनेके कारण अपना एक अलग महत्त्व रखती थी। अनेक बार दृष्टि-भेदके कारण ही जिस एक ही वस्तुको हम कभी देख चुके हैं, वह कालान्तरमें हमारे आकर्षणका कारण बन जाती है—यह बात आज उनकी इस धार्मिक यात्रामें त्रिवेन्द्रम् और उनके इस मिलनमें हो रही थी।

हम सबका ध्यान केरलके अत्यन्त समृद्ध हरे-भरे दृश्यकी ओर गया। महाराजा साहबकी ओरसे जो गाइड हमारे साथ था, उससे जब हमने यह पूछा कि यह हरियाली केवल वर्षामें रहती है या सदा ही, तब हमें ज्ञात हुआ कि केरलकी यह कभी न मुरझाने और सूखनेवाली हरियाली है। त्रिवेन्द्रम् समुद्रके किनारे बसा हुआ है—चारों ओर छोटी-छोटी पहाड़ियोंसे घिरा हुआ। सारी पहाड़ियाँ विविध प्रकारके सघन वृक्षोंसे ढकी हुई हैं। समतल भूमि और पहाड़ियोंपर सर्वत्र ही नारियलके वृक्षोंकी बहुतायत है। इससे यह सारा स्थल नारियलका वन हो गया है। आबादीके मकान इन नारियलके वृक्षोंके बीचमें हैं और सड़कोंपर इन वृक्षोंकी सघन छाया है। नारियलके वृक्ष बारहों महीने फलते हैं। अतः ये वृक्ष यहाँके निवासियोंको केवल छाया ही नहीं देते, पर छायाके साथ उनकी क्षुधा-तृप्ति और जीवनकी अन्य आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिये धन भी देते हैं। नारियलके वृक्षोंके बाद यहाँ केलेके वृक्ष हैं और फिर आमके। न जाने कितने प्रकारके केले और कितने प्रकारके आम यहाँ पैदा होते हैं। केले भी बारहों महीने फलते हैं। आम अवश्य ऋतुफल है। परंतु इतनेपर भी हमें कुछ बारहो मास फलनेवाले आमके वृक्ष भी दृष्टिगोचर हुए, जिनमेंसे इस आश्विन महीनेमें भी कोई मौरोंसे लदे हुए थे और कोई फलोंसे। शरद्‌का आश्विन और वसन्तका चैत्र—इन दोनों महीनोंकी ऋतुओंमें शरद् और वसन्त होते हुए भी बहुत साम्य रहता है। यकायक कुछ देरतक तो हमें भ्रम-सा हो गया कि हम यहाँ शरद्‌में न आकर वसन्तमें तो नहीं आये हैं। फलोंकी यह प्रधानता इन फल-वृक्षोंसे नहीं, अपितु यहाँकी दूकानोंपर यत्र-तत्र दृष्टिगोचर होते उनके संग्रहसे ही स्पष्ट मालूम हो जाती है। पान, सोडा, लेमन और खानपानकी एक भी ऐसी दूकान दिखायी नहीं दी, जिसमें लाल-पीले, हरे, लंबे-बौने, मोटे-पतले, बड़े-छोटे, विविध रंगों और रूपोंवाले केलेके फलोंकी गौरें न लटक रही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हीं। नारियल, केले और आमके वृक्षोंके सिवा सुपारीके भी यहाँ काफी वृक्ष हैं; परंतु ये सुन्दर नहीं। पतली-पतली पींडोंके ऊँचे-ऊँचे। ऊपर ताड़के सदृश एक झुरमुट और उसके नीचे सुपारीके गुच्छे। इनके अलावा कटहर, इमलीके वृक्ष और अनन्नासके पौधोंकी भी बहुतायत है। इन सभी फलोंकी यहाँकी दूकानोंपर भरमार रहती है। फिर यहाँ रहवासकी नारियलके पत्तोंसे आच्छादित झोपड़ियों, मकानों तथा सार्वजनिक इमारतोंमें क्वचित् ही ऐसे मकान और इमारतें हों, जिनमें नजरबाग न हो। इस प्रकार हरियालीसे परिपूर्ण उद्यानोंवाली इस पुरीकी अद्भुत शोभा है। मकान यहाँके बहुत बड़े नहीं, सरकारी इमारतें भी विशाल नहीं। परंतु इतनेपर भी इस प्राकृतिक शोभाने इस नगरको एक विलक्षण छटा प्रदान की है। इसीलिये प्राकृतिक सौन्दर्यकी दृष्टिसे इसे दक्षिणका कश्मीर कहा गया है। सड़कें साफ-स्वच्छ हैं—यही नहीं, दक्षिणकी साफ-सफाई यहाँ सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है।

हमने समझा था, यहाँके निवासी काफी श्यामवर्णके होंगे; पर ऐसा नहीं है। अधिकतर लोग गेहुएँ रंगके हैं। कुछ श्यामवर्णके भी हैं। हाँ, गोरा रंग क्वचित् ही दृष्टिगोचर होता है। पुरुषोंका पहनाव—वही विकच्छ धोती और कुरता तथा महिलाओंका—सलूका और साड़ियाँ।

चूँकि हम तीर्थयात्राके लिये आये थे, अतः हमारा प्रधान गन्तव्यस्थान तो था श्रीपद्मनाभ अनन्तशयनम्का मन्दिर; परंतु मन्दिर जानेका हमारा कार्यक्रम संध्याको साढ़े पाँच बजेका निश्चित हुआ था। अतः इस बीच हमने केरलके कुछ और प्रमुख स्थानोंका निरीक्षण किया।

केरलके दर्शनीय स्थलोंमें यहाँ नैपियर म्युजियम, चित्रालयम् और अनन्तशयनम्का मन्दिर ही प्रधान हैं। प्रथम दो स्थानोंमें हमें यहाँका चित्रालयम् बहुत रुचिकर लगा। चित्रालय बहुत बड़ा न होनेपर भी इसका संग्रहालय प्रतिनिधित्वात्मक है। भारतकी सभी प्राचीन प्रणालियोंके चित्र इस संग्रहमें हैं—जैसे मुगलस्कूल, राजस्थानी स्कूल इत्यादि। साथ ही आधुनिक सभी प्रमुख कलाकारोंके चित्र भी हैं। दृष्टान्तके लिये श्रीरविवर्मा, श्रीअवीन्द्रनाथ ठाकुर, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, असितकुमार हालदार, नन्दलाल बोस, जैमिनीराय, वेंकट सुब्बाराव, रसिकलाल पारिख, कनु देसाई, फैजी रहमिन इत्यादि। कुछ विदेशी चित्रोंका भी संग्रह है, जिसमें चीन, जापान, तिब्बत आदिके चित्र प्रमुख हैं।

चित्रालयम्का उद्घाटन २६ सितम्बर १९३५ को त्रावन्कोर-नरेशद्वारा हुआ था। इसका प्रधान उद्देश्य प्रदर्शनीके रूपमें कुछ ऐसे चित्रोंको प्रस्तुत करना था, जो भारतके विभिन्न भागों और भारतीय संस्कृतिपर आधारित कुछ अन्य देशोंकी कलाका प्रतिनिधित्व कर सकें। चित्रालयम्में संगृहीत अधिकांश चित्र खरीदकर लाये गये हैं। कुछ चित्र उपहार-स्वरूप भी प्राप्त हुए हैं।

चित्रालयम्के प्रथम तीन कमरोंमें १९ वीं और २० वीं सदीके आधुनिक भारतीय कलाकारोंकी कला-कृतियाँ संगृहीत हैं। कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुरद्वारा निर्मित एक पक्षीका चित्र विशेष दर्शनीय है। अपनी कविसुलभ भाव-कल्पनाको चित्रों की रेखाओंमें उतारनेका उनका प्रयास वस्तुतः प्रभावोत्पादक और सराहनीय है। कवीन्द्रके भतीजे अवनीन्द्रनाथ ठाकुरके चित्र भी इन्हीं कमरोंमें संगृहीत हैं। इन चित्रोंमें उन्होंने कलकत्ताके गवर्नमेंट स्कूल आफ आर्ट्सके प्रिंसिपल श्री ई० बी० हावलकी प्रेरणासे भारतीय कलाकारोंद्वारा विस्मृत कुछ पुरानी कलाओंको उतारनेका प्रयास किया है। कुछ अन्य टैगोर (ठाकुर) बन्धुओं एवं बंगाली कलाकारोंके चित्र भी दर्शनीय हैं। इसके अतिरिक्त राजस्थानी, मुगल तथा फारसी कलाओं पर आधारित चित्र भी चित्रालयमें उपलब्ध हैं। राजस्थानी चित्र भारतीय संस्कृति तथा हिंदूधर्मपर भी प्रकाश डालते हैं। गरुडारूढ़ विष्णु और लक्ष्मी, शेष-शय्यापर सोते हुए अनन्तशयनम् विष्णु—लक्ष्मी जिनके पैरोंके पास बैठी हैं, 'राग मल्हार', और 'राग हिण्डोल', 'महाशक्ति', 'पार्वती-तपस्या' एवं 'श्रीकृष्णपूजा' इसी प्रकारके चित्र हैं। कुछ चित्र प्राकृतिक दृश्योंपर भी आधारित हैं—जैसे चाँदनी रात तथा तूफानी रात आदि। कुछ चित्र राजस्थानी इतिहासपर भी प्रकाश डालते हैं, जैसे राजपूत योद्धा।

मुगलकलापर आधारित चित्र भी बहुतायतमें हैं। कई चित्र मुस्लिम शाहजादों और शाहज़ादियोंकी बहुत-सी मुद्राओंको अङ्कित करते हैं। कुछ चित्र मुगलकालके बादशाहोंसे सम्बन्धित हैं—जैसे 'अकबरकी अदालत' और 'हुमायूँका दरबार' आदि।

फारसी चित्र प्रमुखतः फारसी संस्कृतिपर आधारित हैं। 'शराबका प्याला', 'मधुपायी', 'एकान्तप्रिय महिला' एवं 'फारसी ज्योतिषी' इस दृष्टिसे विशेष उल्लेखनीय हैं। दर्शकको इन चित्रोंसे फारसके साहित्य तथा संस्कृतिका अच्छा खासा अंदाज हो जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके अतिरिक्त तिब्बत, चीन, जापान, श्रीलंका और कुछ अन्य एशियाई देशोंकी कलाकृतियाँ भी हैं, जो इन देशोंके इतिहास, संस्कृति तथा साहित्यका सजीव परिचय प्रस्तुत करती हैं।

चित्र-विश्लेषणकी दृष्टिसे राजा रविवर्माके चित्रोंका इस चित्रालयमें बहुत बड़ा और रुचिकर संग्रह है; क्योंकि वे पुराने त्रावणकोर राज्यके ही थे, साथ ही त्रावणकोरके भूतपूर्व नरेशके नातेदार। अवनीन्द्रनाथ ठाकुरकी चित्र-प्रणालीके पूर्व राजा रविवर्माके चित्रोंने इस देशमें सर्वाधिक ख्याति प्राप्त की थी। परंतु बादमें कुछ आलोचकोंने उनके चित्रोंकी निन्दा आरम्भ की। यह प्रायः देखा जाता है कि हम अधिकतर अपनी स्वयंकी आँखोंसे न देख दूसरोंकी आँखोंसे देखनेका प्रयत्न करते हैं। आलोचनाके क्षेत्रमें लहरें उठती हैं। कभी किसीके पक्षमें, फिर उसीके विपक्षमें और फिर उसीके पक्षमें। पहले रविवर्माके चित्रोंके पक्षमें बहुत कहा गया, फिर उनके विपक्षमें और अब फिर उनके पक्षमें कहा जाने लगा है। साहित्यमें प्रगतिवादकी तरह चित्रकलामें भी एक नये वादका जन्म हुआ है; जिस वादके चित्रोंकी बागड़-बिल्लेके सदृश आँखें बनायी जाती हैं, बेलन चली हुई चपटी नाक और कभी-कभी तो इधर-उधर कुछ रेखाएँ। ऐसे चित्रोंमें न तो चित्रित वस्तुमें कोई भावनाएँ दीख पड़ती हैं और न ऐसे चित्रोंके दर्शनसे हमारे मनमें कोई भावना ही उठती है। कलाका कार्य हृदयमें भावनाओंको उद्दीप्त करना है। ऐसे चित्र इस दिशामें सर्वथा प्रभावशून्य हैं। कवि-सम्राट् रवीन्द्र बाबूने भी ऐसी ही रेखाओंवाले कुछ चित्र बनाये। कविकी दृष्टिसे हम उन्हें कविसम्राट् मानते हैं, संसारके आधुनिक साहित्यकारोंमेंसे सर्वश्रेष्ठ साहित्यकारोंमें एक साहित्यकार। उनके साहित्यने केवल आधुनिक भारतीय साहित्यको ही सब क्षेत्रोंमें प्रेरणा नहीं दी, वरं संसारके साहित्यको भी। परंतु उनके चित्र कभी हमारी समझमें नहीं आये। इन आधुनिक बागड़-बिल्लेके सदृश आँखों और बेलन चली हुई चपटी नाकोंवाले इस प्रकारके रेखाचित्रोंकी अपेक्षा हमें तो इस देशकी पुरानी चित्रकारी और रविवर्मा तथा अवनीन्द्रनाथ ठाकुर-जैसे चित्रकारोंके चित्र कहीं सुन्दर, आकर्षक और भावनाओंको उद्दीप्त करनेवाले जान पड़ते हैं।

आजकल कलाके सभी क्षेत्रोंमें नवीनताके नामपर ऊट-पटाँग बातें करके उन्हें नवीन कलाका नाम दिया जा रहा है। स्थापत्य कलाके क्षेत्रमें सीमेंटके सफाचट्ट भवन पुराने गुम्बजों, झरोखों, महराबों तथा खुदाईके विविध प्रकारके कामोंवाले भवनोंसे श्रेष्ठ बताये जा रहे हैं। कविताके क्षेत्रमें छन्दोंके बन्धनोंसे रहित, अनुप्रास-यमक आदिसे वञ्चित, कोई पंक्ति छः इंच लंबी और कोई डेढ़ इंच—ऐसी कविता नयी शैलीकी कविता मानी जा रही है। चित्रकलाके क्षेत्रका भी यही हाल है, जिसका कुछ विवेचन हमने ऊपर किया है।

निष्कर्षरूपमें 'चित्रालयम्' पूर्वकी कलाका सच्चा और प्रभावशाली प्रतिनिधित्व करनेके कारण त्रिवेन्द्रम्के सबसे बड़े आकर्षणोंमेंसे एक है। इसके बाद हम यहाँकी प्रसिद्ध समुद्रदीर्घिका (Back waters) देखने भी गये। प्राकृतिक दृष्टिसे त्रिवेन्द्रम्के प्राकृतिक स्वरूपमें यह समुद्र-दीर्घिका एक और वरदान बन गयी है।

संध्याको साढ़े पाँच बजे हम श्रीपद्मनाभ स्वामीके मन्दिर गये। यहाँकी प्रतिष्ठित मूर्तिका नाम श्रीपद्मनाभ और अनन्त-शयनम् दोनों ही हैं। दक्षिणके अन्य मन्दिरोंके सदृश गोपुरोंसे युक्त यह भी एक विशाल मन्दिर है। यद्यपि त्रिवेन्द्रम्में बिजली है, तथापि इस मन्दिरमें बिजलीका प्रवेश नहीं हुआ है। बिजलीके स्थानपर इसकी परिक्रमाके परकोटोंमें हजारों दीप-कतारें हैं। यद्यपि आज ये सभी दीपक प्रज्वलित नहीं थे, तथापि जिस प्रकार एक-पर-एक अनेक पंक्तियोंमें ये धातुके दीप स्थायीरूपसे लगाये गये हैं, उससे इनके प्रज्वलित होनेके समय मन्दिरकी आभा-शोभा कितनी अपूर्व होती होगी—इसका अनुमान हो जाता है।

अनन्तशयनम् मन्दिरके, जो त्रिवेन्द्रम्का एक प्रमुख आकर्षण है, निर्माणका एक बहुत रोचक आख्यान है। प्राचीन कालमें दिवाकर नामक एक विष्णु-भक्तने, जो कर्णाटकके 'तुलु-ब्राह्मण सम्प्रदाय' के ब्राह्मण थे, अनन्तशायी विष्णुके दर्शनार्थ घोर तप किया। एक बार विष्णुभगवान् प्रसन्न होकर उनके सामने एक अबोध शिशुके रूपमें प्रकट हुए। दिवाकरके मनमें शिशुको देख वात्सल्य तथा ममताकी भावना उत्पन्न हुई। उन्होंने उससे पूछा—'तेरे माँ-बाप कौन हैं?' बालकने उत्तर दिया—'मैं नहीं जानता कि मेरे माँ-बाप कौन हैं। यदि आप मुझे पुत्रवत् रक्खें तो आपका हित होगा और यदि आप मुझपर नाराज हुए तो मैं भाग जाऊँगा।'

योगी दिवाकरने उस बालकको प्रेमपूर्वक अपना लिया। उनकी आत्मीयता बढ़ने लगी और दिवाकरके लिये क्षणभर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी उससे पृथक् रहना कठिन हो गया। एक दिन जब मुनि दिवाकर शालग्राम रखकर उसका अभिषेक करने लगे, तब बालक शालग्रामको उठाकर अपने मुँहमें डालने लगा। मुनिने जब उसे रोका, तब वह यह कहकर अन्तर्द्धान हो गया कि अब फिर आप यदि मुझे देखना चाहें तो अनन्तकाट (अनन्तवन) में आइये।'

इसपर मुनि दिवाकरको संदेह हुआ कि शायद भगवान् विष्णु ही बालकके रूपमें प्रकट हुए थे। वे उस बच्चेके कथनानुसार अनन्तकाटकी खोजमें चल पड़े। आजकल जहाँ 'अनन्तशयनम् मन्दिर' स्थित है, उस कालमें वहाँ 'अनन्तकाट' नामक एक बहुत बड़ा जंगल था। इस वनके दो छोरोंपर 'कृष्ण-मन्दिर' एवं 'शास्ता मन्दिर' भी हैं।

मुनि दिवाकरने उस वनमें पहुँचकर उसी सुन्दर बालकको एक वृक्षमें घुसते हुए देखा। मुनिने जब उसके निकट पहुँचनेकी चेष्टा की, तब वह वृक्ष टूटकर गिर पड़ा। वह पेड़ मुनिको अनन्तशायीके रूपमें पड़ा हुआ प्रतीत हुआ। मुनिने वहाँ एक मन्दिरका निर्माण कराया और उसी पेड़की लकड़ीसे अनन्तशायीकी एक कल्पित मूर्ति बनवाकर प्रतिष्ठित की। अपने जीवनकालमें वे स्वयं उसपर पुष्पाञ्जलि चढ़ाते रहे, किंतु उनकी मृत्युके बाद भी यह प्रथा जारी रही। आज भी इस मन्दिरकी पूजाके लिये 'तुलुब्राह्मण' नियुक्त होते हैं और आज भी वे पुष्पाञ्जलि चढ़ाकर अनन्तशायीके प्रति अपना सम्मान, श्रद्धाञ्जलि और भाव-भक्ति अर्पित करते हैं। दर्शनार्थी भी भगवत्-दर्शनके अनन्तर इसी प्राचीन पद्धतिके अनुसार भगवान् अनन्तशायीको अपनी पुष्पाञ्जलि अर्पित करते हैं।

बादमें पुनरुद्धारकी आवश्यकता पड़नेपर इस मन्दिरका और भी विस्तार कर दिया गया। तत्कालीन निर्माणकला-विशेषज्ञ श्रीतेक्काभट्टतिरिने 'अनन्तशायी' की एक बहुत बड़ी मूर्तिका निर्माण कराया। आज भी मन्दिरमें यही मूर्ति स्थापित है। शयन करती हुई श्याम शालग्राम शिलाकी यह मूर्ति अठारह फुट लंबी है। हमें बताया गया कि लाखों छोटी-बड़ी शालग्रामकी बट्टियोंसे इस मूर्तिका निर्माण हुआ है और ये शालग्राम नेपालसे लाये गये थे। अनन्तशायीकी इतनी विशाल प्रतिमा भारतमें अन्यत्र कहीं नहीं है। मुनि दिवाकरने भगवान् विष्णुका एक शिशुके रूपमें साक्षात्कार किया था। इसी साक्षात्कारके स्मारक-स्वरूपमें उस शिशुकी मूर्ति बनवायी गयी और उसे मन्दिरमें प्रतिष्ठित किया गया। तदनन्तर अनेक शासकोंने समय-समयपर इस मन्दिरमें अनेक परिवर्तन एवं परिवर्द्धन किये। एक बार महाराजा मार्तण्डवर्माने अपना राज्य इस मन्दिरके पद्मनाभ भगवान् विष्णुके चरणकमलोंमें अर्पित कर दिया और कहते हैं कि उनके उत्तराधिकारियोंने उसके बाद पद्मनाभके दासके रूपमें ही राज्य किया। आज भी त्रावणकोरके भूतपूर्व नरेश नित्य प्रातःकाल पूजाके लिये आते हैं। मन्दिरके लिये वर्तमान केरलसरकारसे पाँच लाख रुपया प्रतिवर्ष आर्थिक अनुदान दिया जाता है; परंतु मन्दिरका व्यय इससे कहीं अधिक है, जो त्रावणकोरके भूतपूर्व नरेश तथा जनताद्वारा पूरा होता है।

इस मन्दिरके पीछे एक बहुत बड़ी आध्यात्मिक कल्पना है। अनन्तशायी भगवान् विष्णुकी प्रतिमाको देखकर, जैसे कि निम्नलिखित श्लोकसे प्रतिभासित है—

तवैव वेषं फणिराजि शेषे
जलैकशेषे भुवनस्य शेषे।
आनन्दसान्द्रानुभवस्वरूपः
स्वयोगनिद्रापरिमुद्रितात्मा ॥

उन्नति चाहनेवाले त्रिगुणात्मक सांसारिक व्यक्ति, क्रममुक्तिकी अभिलाषा करनेवाले भक्त, सत्त्वगुणवाले योगी और गुणातीत तथा जीवन्मुक्त संन्यासी—सभीके लिये वे सत्, रज और तम—इन तीन महान् शक्तियोंका ध्यान करते हुए अनन्त शयन कर रहे हैं। उनके नाभिकमलमें ब्रह्मा, स्वयं विष्णु और ध्यानमें शिव प्रतीत होते हैं। इस प्रकार इस प्रतिमामें हिंदू धर्म एवं दर्शनके आधार सृष्टि, स्थिति और संहारके कारणस्वरूप ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वरके साथ-साथ दर्शनकर भक्तगण अपना जन्म और जीवन सफल कर सकते हैं।

हम सबने मन्दिरमें आरतीके दर्शन किये और इन दर्शनोंके अनन्तर अपनी श्रद्धा—श्रद्धाञ्जलिके पत्र-पुष्प भगवान् पद्मनाभको भेंटकर मन्दिरसे बिदा ली।

दूसरे दिन प्रातःकाल गोविन्ददास त्रिवेन्द्रम्के आयुर्वेद कालेजको देखने गये। त्रिवेन्द्रम्का यह आयुर्वेद कालेज भारतवर्षकी सर्व-प्रधान आयुर्वेदिक संस्थाओंमेंसे एक है। यहाँकी तैल-चिकित्साके सदृश चिकित्सा तो भारतमें अन्यत्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं होती। हमने यह कालेज देखा, तैल-चिकित्सा देखी और फिर कालेजका वह विभाग, जहाँ टूटी हुई हड्डियाँ जोड़ी जाती हैं। ऐलोपैथिक अस्पतालोंमें हड्डियोंके टूट जाने अथवा स्थानान्तरित होनेपर प्लास्टरका प्रयोग किया जाता है। इस आयुर्वेद कालेजके इस विभागमें ये हड्डियाँ तेलमालिशके द्वारा जोड़ी और यथास्थान की जाती हैं। हमने इस विभागमें कुछ ऐसे व्यक्तियोंको देखा, जिनकी हड्डियोंको प्लास्टरका इलाज ठीक न कर पाया था और अब वे इस विभागमें आरोग्य लाभ कर रहे थे।

आयुर्वेदकालेजसे लौटनेके बाद गोविन्ददास त्रावणकोर के भूतपूर्व नरेश हिज हाईनेस महाराजा श्रीमार्तण्ड वर्मा और राजमातासे मिले। (क्रमशः)

राम—एक मनोवैज्ञानिक अध्ययन

(लेखक—प्रो० श्रीलल्लनजी पाण्डेय, एम्० ए०, बी० एल्०)

जीवनके विभिन्न पक्षोंके सर्वोत्कृष्ट उच्चतम आदर्शों एवं मूल्योंकी रक्षा करनेवाली भारतीय संस्कृतिने समय-समयपर कुछ ऐसे महापुरुषोंको प्रकट किया है, जिनके व्यक्तित्वकी आभासे सम्पूर्ण विश्व युगों एवं शत-शत शताब्दियोंतक प्रकाशित होकर, अपने अमानवीय आचरणोंसे मुक्ति पाता रहा है। नग्न भौतिकताके परिवेशमें निर्मित तथाकथित अत्याधुनिक सभ्यताकी नितान्त निर्बल भित्तिपर **'यौवनं धनसम्पत्तिःप्रभुत्वमविवेकता'**के व्यामोहसे ग्रसित आजके मानवसमाजमें भी यदा-कदा मानवताके लक्षणोंका प्रादुर्भाव हो जाता है। इसका कारण यही है कि उन महापुरुषोंके अक्षुण्ण पद-चिह्नोंसे अभी भी हम भूले-भटके आ मिलते हैं। यदि जीवनपर्यन्त उन्हीं पद-चिह्नोंपर सतत चलनेका संकल्प ले लिया जाय तो मानव-जीवन पुनः दैवदुर्लभ हो जाय। अन्यथा निकृष्ट पशु भी मानवजीवन ग्रहण करनेमें संकोचका अनुभव करेगा। अस्तु, भारतवर्षके अनुकरणीय महापुरुषोंकी लंबी शृङ्खलामें मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामका स्थान ऐसा अनूठा है कि भारतीय संस्कृतिके पुजारियोंने उन्हें हृदयकी समस्त श्रद्धा समर्पितकर उनमें परब्रह्म परात्पर परमेश्वरके श्रीविग्रहका साक्षात् दर्शन किया। जिस किसी भी दृष्टिकोणसे देखा जाय, रामका व्यक्तित्व पूर्ण था। आधुनिक मनोवैज्ञानिकोंने 'व्यक्तित्व' शब्दको परिभाषित करनेकी सफल चेष्टा की है, जो वैज्ञानिक दृष्टिसे बहुत महत्त्वपूर्ण है। यहाँ अभिप्रेत यह है कि मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों एवं तथ्योंके आधारपर रामके व्यक्तित्वकी व्याख्या एवं उसका मूल्याङ्कन हो सकेगा या नहीं? मानव-जीवनका अध्ययन कर लेनेका दम्भ करनेवाले आजके एक मनोवैज्ञानिककी दृष्टिमें भी रामका व्यक्तित्व पूर्णताको प्राप्त है या नहीं? यही देखना है।

मनोवैज्ञानिकोंने 'व्यक्तित्व' शब्दको परिभाषित करनेमें दो प्रकारके दृष्टिकोणोंकी सहायता ली है—१. बाह्य या धरातलीय दृष्टिकोण (सरफेस अप्रोच) तथा २. तात्त्विक दृष्टिकोण (सब्स्टांस अप्रोच)। धरातलीय दृष्टिकोणके अनुयायियोंने, जिसमें वादसन, शरमन प्रभृति विद्वानोंके नाम उल्लेखनीय हैं, व्यक्तिके अन्तर्गत द्रष्टव्य क्रियाओं तथा व्यवहारोंके समुच्चय मात्रको व्यक्तित्वकी संज्ञा दी है। इनके अनुसार जिसकी आकृति सुन्दर है, जिसके वस्त्राभूषणोंमें आकर्षण है, जिसकी वाणीमें सरलता एवं माधुर्य है, जिसकी चालमें अजीब कसक है आदि, उसीका सर्वोत्तम व्यक्तित्व है। इसके विपरीत, तात्त्विक दृष्टिकोणके समर्थक वैरन, कारमाइकेल आदि मनोवैज्ञानिकोंने मानवकी उन समस्त मानसिक शक्तियोंके समूहको व्यक्तित्वकी संज्ञा दी है, जिसमें चरित्र, बुद्धि, धातुस्वभाव, नैतिकता आदि अनेक मानवीय मूल्य समाहित हैं। निरीक्षण करनेपर स्पष्ट प्रतीत होता है कि उक्त दोनों ही दृष्टिकोण एकपक्षीय एवं एकाङ्गी हैं। पहला केवल बाह्य रूपरेखा एवं वेशभूषाको ही महत्त्व-पूर्ण समझता है तो दूसरा व्यक्तिके केवल आभ्यन्तरिक गुणोंको ही प्रधानता देता है। इसी अपूर्णता एवं संकीर्णतासे मुक्ति पानेके लिये आलपोर्ट नामक मनोवैज्ञानिकने व्यक्तित्वकी एक विशिष्ट परिभाषा प्रस्तुत की है, जिसमें उपर्युक्त दोनों ही दृष्टिकोणोंका समावेश है। इसके अनुसार व्यक्तित्वके अन्तर्गत उन मनोदैहिक गुणोंका गत्यात्मक संगठन है, जिनपर उसके वातावरणके प्रति होनेवाले विशिष्ट अभियोजन निर्भर करते हैं। अर्थात् वही सर्वोत्कृष्ट व्यक्तित्व है, जो अपने विशिष्ट मानसिक एवं शारीरिक गुणोंकी सहायतासे नित्य परिवर्तनशील अभिनव एवं पेंचीदे वातावरणके साथ अपनेको पूर्ण सफलताके साथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभियोजित करनेमें समर्थ है । इस प्रकार, संक्षेपमें, व्यक्तित्वके लिये निम्नलिखित तत्त्वोंका होना अनिवार्य है—१. विशिष्ट दैहिक गुण, २. विशिष्ट मानसिक गुण, ३. इन गुणोंको संगठितकर इन्हें उचित दिशामें निर्देशित करनेकी अपूर्व क्षमता तथा ४. वातावरणके साथ सहज स्वाभाविक रूपसे अभियोजन स्थापित करनेकी दृढ़ता । व्यक्तित्व-मापनके इन चार मनोवैज्ञानिक तत्त्वोंके आधारपर हमें श्रीरामके व्यक्तित्वका अध्ययन करना है ।

सम्पूर्ण दैहिक गुणोंके साक्षात् प्रतिमूर्ति श्रीराम

काव्यात्मक दृष्टिसे 'अतिशयोक्ति' भले ही दोषोंकी शृङ्खलामें आ जाय, परंतु मनोविज्ञानकी दृष्टिसे तो यह हृदयकी सत्य किंतु अव्यक्त भावनाओंको अभिव्यक्त करनेकी एक मानवीय स्वाभाविक पद्धति है । अपने उद्गारोंको प्रकट करनेके लिये जब कविको पर्याप्त शब्द नहीं मिलते तो वह भावविभोर होकर तनावका अनुभव करने लगता है । इस तनावपूर्ण स्थितिसे छुटकारा पानेके लिये वह अतिशयोक्तिका आश्रय ग्रहणकर अपूर्व शान्तिका अनुभव करता है । संत तुलसीके लिये राघवेन्द्र कौसलकिशोर श्रीरामभद्रके सौन्दर्यको शब्दोंमें अभिव्यक्त करना सम्भव नहीं हो रहा है । क्या अपरिमित एवं अलौकिक सौन्दर्य है श्रीरामका ! तुलसी उस सौन्दर्यका अनुभव करके तन्मय हो उठे, नेत्र निर्निमेष, वाणी मूक—वर्णन करनेकी शक्ति कहाँ रही ! चेतनाके पुनः लौटनेपर ज्ञात हुआ कि श्रीरामके सौन्दर्यका वर्णन करना है, अतः उसी तन्मयतामें कह बैठे—

काम कोटि छबि स्याम सरीरा। नीलकंज बारिद गंभीरा ॥
अरुन चरन पंकज नख जोती। कमल दलन्हि बैठे जनु मोती ॥

करोड़ों कामदेवोंकी छबिकी उपमा देनेके पश्चात् नख-शिख-सौन्दर्य वर्णन कोई आवश्यक नहीं; क्योंकि सौन्दर्यका कोई अङ्ग वर्णन करनेको अब शेष नहीं रहा । ठीक यही स्थिति जनकपुरमें महिलाओंकी हो रही है—

सखि इन्ह कोटि काम छबि जीती।
या
स्याम गौर किमि कहौं बखानी। गिरा अनयन नयन बिनु बानी॥

यह तो उनकी बात हुई, जिनको रामके प्रति स्नेह या ममता है । कहीं-कहीं तो ऐसा भी वर्णन मिलता है कि युद्धस्थलमें भी श्रीरामके परम शत्रु उनके सौन्दर्यको देखकर कुछ क्षणोंके लिये शत्रुता भूल जाते हैं ।

प्रभु बिलोकि सर सकहिं न डारी। थकित भई रजनीचर धारी ॥

यह थी राक्षसोंकी सेनाकी स्थिति । इस सेनाके अग्रनायक खर एवं दूषण भी रामके सौन्दर्यकी अतिशयतासे इतने विमुग्ध हैं कि शूर्पणखाकी नासिका खण्डित करनेके अपराधको भी क्षमा कर देना चाहते हैं—

जद्यपि भगिनी कीन्हि कुरूपा। बध लायक नहिं पुरुष अनूपा ॥

यह है रामके रूपकी अतिशयता एवं उनका बाह्य स्वरूप ।

रामका आभ्यन्तरिक वैशिष्ट्य

समस्त भारतीय संस्कृति त्यागमयी है । इस दृष्टिसे देखा जाय तो राम भारतीय संस्कृतिकी सामाजिक विशिष्टताओंके प्रतीक हैं । उनके जीवनमें हमारी सामाजिक मर्यादाएँ एवं आदर्शोंकी अभिव्यक्ति हुई है । उनका आभ्यन्तरिक जीवन ही इस प्रकार परमोदात्त विचारोंसे ओतप्रोत है कि भारतीय समाज राममें अपनी मर्यादाओं और आदर्श सहज ही देख लेता है । धर्माचारके प्रति रामकी अनन्य प्रीति एवं आस्था अन्यत्र दुर्लभ है ।

अप्यहं जीवितं जह्यां त्वां वा सीते सलक्ष्मणाम्।
न हि प्रतिज्ञां संश्रुत्य ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः॥

अर्थात् सीते ! मैं अपना जीवन छोड़ सकता हूँ, लक्ष्मणको और तुम्हें भी छोड़ सकता हूँ; पर ब्राह्मण और धर्मकी रक्षाके लिये की गयी प्रतिज्ञाका त्याग कैसे सम्भव है ? परम धैर्य, सरस गाम्भीर्य, सहज सौशील्य, महान् औदार्य, शरणागतवत्सलता, साम्य, करुणा, स्थैर्य, सत्य, अहिंसा, मृदुता, आर्जव, ज्ञान, तेज, बल, बुद्धि आदि जिन मानवके आभ्यन्तरिक गुणोंसे आधुनिक पाश्चात्त्य मनोविज्ञान परिचित भी नहीं होगा—वे सभी श्रीरामके व्यक्तित्वमें समाहित थे । इस सम्बन्धमें दृष्टान्तोंको प्रस्तुत करना आवश्यक नहीं प्रतीत होता—सर्वप्रथम तो इसलिये कि अनावश्यक विस्तारमें चले जानेका भय है और द्वितीय इसलिये भी कि तुलसीकृत रामचरितमानसके माध्यमसे ये सभी दृष्टान्त सर्वसाधारणके लिये अत्यधिक बोधगम्य हैं ।

आधुनिक मनोवैज्ञानिकोंके अनुसार विभिन्न मनोदैहिक गुणोंको गत्यात्मक संगठन प्रदान करना व्यक्तित्वकी एक आवश्यक विशेषता मानी गयी है; क्योंकि इसीपर वातावरणके साथ व्यक्तिके विशिष्ट अभियोजन निर्भर करते हैं । यहाँ तात्पर्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह है कि परिस्थितिके अनुकूल ही अपने विभिन्न गुणोंमें गतिशीलता उत्पन्नकर व्यक्तित्वको प्रवाहपूर्ण एवं सर्वोन्मुखी बनाया जाय। शारीरिक एवं मानसिक अनेकानेक क्षमताओं-के रहते भी व्यक्तित्वमें तबतक प्रवाह नहीं आ सकता, जबतक इन विभिन्न गुणोंको संगठितकर, विषमताओं एवं वैविध्योंसे परिपूर्ण परिस्थितियोंमें उन्हें प्रयुक्त करनेकी पर्याप्त शक्ति न हो। अपने गुणोंको संगठितकर उन्हें उचित दिशामें निर्देशित करनेकी राममें अपूर्व क्षमता थी। अपनी क्षमताओंका अनावश्यक दुरुपयोग न करना तथा समयकी पुकारपर उनका उचित प्रयोग करनेमें तनिक भी संकोचका अनुभव नहीं करना—यही है गत्यात्मकता, जो व्यक्तित्वमें चमक पैदा करती है। लक्ष्मणके सुझावपर राम समुद्रको तत्काल सुखा सकते थे। परशुरामके उपस्थित होनेके साथ ही राम उन्हें अपनी शक्तिका ज्ञान करा सकते थे। किंतु रामने सर्वप्रथम इन कार्योंसे अपनेको विरत रख नम्रता एवं शीलताका आश्रय लिया। आखिर, राम और रावणमें यह भी तो एक अन्तर है। रावण भी रामकी ही तरह बलवान् एवं सामर्थ्यवान् था, परंतु उसने अपने बल तथा सामर्थ्यका सदा ही दुरुपयोग किया। रामने पहले उचकोटिकी नम्रताका परिचय दिया। **"शठं शाठ्ये समाचरेत्"** की नीतिका अनुसरण तो बादमें करना पड़ा। इस प्रकार, राममें मनोदैहिक गुणोंका असाधारण संगठन था।

दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि गुणोंके इस संगठनमें गतिशीलता थी, तटस्थता नहीं। इस सम्बन्धमें अरण्यकाण्डके प्रारम्भमें महर्षि वाल्मीकिने एक बहुत ही उपयोगी दृष्टान्त उपस्थित किया है। राक्षसोंद्वारा मारे गये ऋषिगणके पर्वतीय अस्थिपञ्जरका अवलोकन करके रामका हृदय आहत हो उठता है। फलस्वरूप, राम राक्षस-वंशको समूल नष्ट करनेका कठोर व्रत लेते हैं। चौदह वर्षोंतक अनवरत तपस्वीका जीवन-यापन करनेके लिये कटिबद्ध राम इसी अवधिमें राक्षसोंका हनन करके शासककी भूमिका निभायें—यह बात सीताको कुछ अच्छी नहीं लगती। पूछनेपर रामने बताया कि परोपकार-जैसा मानवके लिये कोई दूसरा धर्म नहीं। इस धर्मकी रक्षाके लिये आततायियोंसे युद्ध करना ही पड़ता है—यही नियम है। अन्यायके विरुद्ध एक दुर्बल व्यक्तिका शान्त रह जाना स्वाभाविक भी है और क्षम्य भी। परंतु एक सामर्थ्यवान् व्यक्ति यदि अनाचारके प्रति तटस्थ दर्शककी भूमिका निभाये, निश्चेष्ट बैठा रहे—तो यह निश्चित ही लज्जाका विषय है। रामने कभी भी इन परिस्थितियोंके प्रति क्लैब्य एवं तटस्थताकी नीति नहीं अपनायी। उनका जीवन सदैव गतिशील रहा। यदि वर्तमान भारतकी दुर्दशाको मिटाना है तो हमें रामके व्यक्तित्वके इस गत्यात्मक स्वरूपका अनुकरण करना होगा।

रामकी अभियोजनशीलता

आधुनिक मनोवैज्ञानिकोंके अनुसार वातावरणके साथ अभियोजनशीलता ही व्यक्तित्वकी सर्वश्रेष्ठ कसौटी है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिसे वही व्यक्ति सफलताके सर्वोच्च शिखरपर है, जिसके व्यक्तित्वमें सहज अभियोजनशीलताका गुण हो। कुछ विद्वानोंने 'अभियोजनशीलता' शब्दका अनर्थ किया है। यह एक पारिभाषिक शब्दके रूपमें आया है। यहाँ इसका तात्पर्य निकृष्ट अभियोजनशीलतासे नहीं है। आजकी अवसरवादिता या 'जैसी बहै बयार, पीठ तहँ तैसी दीजै' आदि युक्तियाँ निकृष्ट अभियोजनशीलताकी श्रेणीमें आती हैं, जो निश्चित ही व्यक्तित्वका गुण नहीं है। तब अभियोजनशीलता है क्या? अनुकूल या प्रतिकूल किसी भी प्रकारके वातावरणमें शारीरिक या मानसिक संतुलनकी पूर्ण रक्षा करते हुए अपने उद्देश्योंकी प्राप्तिके निमित्त निरन्तर क्रियाशील रहना ही लोकोत्तर अभियोजनशीलता है। इस संदर्भमें रामके व्यक्तित्वपर विचार करनेपर प्रतीत होगा कि इस क्षेत्रमें भी वे अद्वितीय थे। रामके राज्याभिषेककी सूचना पाकर अयोध्याके कण-कणमें हर्षातिरेक है। मुनिवर वसिष्ठ जब इस राज्यादेशको रामतक पहुँचाकर उन्हें शास्त्रानुगत अनुष्ठानपूर्वक रात्रि व्यतीत करनेका आग्रहपूर्ण निर्देश देते हैं, तब रामके हृदयमें यदि कोई भाव भी उत्पन्न होता है तो मात्र 'विस्मय'का। 'राम हृदय अस बिसमउ भयऊ'। अयोध्याका राज्य प्राप्त करके भी, जिसके समक्ष इन्द्रका ऐश्वर्य भी संकुचित था, रामका हृदय रञ्चमात्र भी प्रफुल्लित नहीं हुआ। इतना ही नहीं, रामने राज्याभिषेक-सम्बन्धी अयोध्याकी इस परम्पराको अनुचित भी ठहराया—'बिमल बंस यहु अनुचित एकू। बंधु बिहाइ बड़ेहि अभिषेकू' ॥ परंतु रामको जिनका सम्पूर्ण जीवन ही 'मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव।' (तैत्तिरीयोपनिषद्, प्र० वल्ली २०) आदि मन्त्रोंसे अभिषिञ्चित था, पिता एवं गुरुके आदेशोंको शिरोधार्य करना पड़ा—बिना किसी हर्षके केवल कर्तव्य समझकर। कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्वज्जन यहाँ शङ्का उपस्थित करते हैं । उनके अनुसार राज्यके प्रति रामके हृदयमें यदि मोह नहीं होता तो राज्याभिषेकके कार्यक्रमको वे भरतके आनेतक स्थगित करा सकते थे, कम-से-कम प्रस्ताव तो रख ही सकते थे । परंतु मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तोंके अनुसार यह आलोचना निर्मूल है । जिस वस्तुके प्रति किसी व्यक्तिके हृदयमें जितना ही मोह होगा, उस वस्तुके क्षणिक या स्थायी वियोगमें उसे उसी अनुपातमें कष्टकी अनुभूति होगी । इसी मनोवैज्ञानिक तथ्यके आधारपर हमें देखना होगा कि राज्यप्राप्तिके प्रति रामके हृदयमें लिप्सा थी या नहीं ? अपने लिये चौदह वर्षोंका वनवास तथा भरतके राज्याभिषेककी सूचना पाकर उनकी अन्तर्दशा कैसी थी ? 'मन मुसुकाइ भानुकुल भानू। रामु सहज आनंद निधानू' ॥ यहाँ रामका मन-ही-मन मुस्करा उठना क्या विषादका लक्षण है ? रामके लिये ये बातें इतनी नगण्य हैं कि पिताके दुःखका ये कारण भी हो सकती हैं—उन्हें सहसा विश्वास नहीं होता । 'थोरिहिं बात पितहि दुख भारी । होति प्रतीति न मोहि महतारी ॥' रामके इन आचरणों एवं भावनाओंसे यही निश्चित निष्कर्ष निकलता है कि रामको राज्यके प्रति लिप्सा नहीं थी । जहाँतक भरतके आगमनतक राज्याभिषेकको स्थगित करनेके प्रस्तावका प्रश्न है, राम इसीलिये नहीं कर सके कि अनुशासनके भङ्ग होनेका भय था । पिता और गुरुकी इच्छा ही उनके लिये सर्वोपरि आदेश था । अनुशासनकी पवित्रतासे वञ्चित रहनेवालोंको सम्भवतः ये बातें समझमें न आ सकें । इसलिये उनके अनुभूतिशून्य मस्तिष्कसे उद्भूत आलोचनाओंपर अत्यधिक ध्यान देना समय एवं शक्तिका अपव्यय करना है । अस्तु, परिस्थितियोंकी अनुकूलता एवं प्रतिकूलताके बीच समस्थिति प्रस्तुतकर रामने जिस विलक्षण अभियोजनशीलताका परिचय दिया है—मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोणानुसार निश्चित ही वह वन्दनीय है । तभी तो तुलसीने रामकी इस मुखकमलच्छविको मङ्गलप्रदाके विशेषणसे विभूषित किया है—

"प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा न मम्ले वनवासदुःखतः ।
मुखाम्बुजश्री रघुनन्दनस्य मे सदास्तु सा मञ्जुलमङ्गलप्रदा ॥
(अयोध्या० श्लोक २)

कुछ विद्वज्जन, जिनके मस्तिष्क तथाकथित प्रगतिशीलताके कुप्रभावसे विकारग्रस्त हो गये हैं, भारतीय ग्रन्थोंको अकारण शङ्काकी दृष्टिसे देखते हैं । वे उनमें कृत्रिमता एवं आडम्बरका आभास पाते हैं । इनकी शङ्काएँ कुछ कारणोंपर आधारित हैं । सर्वप्रथम तो यह कि रामके ब्रह्मका अवतार होनेकी कल्पनाएँ उनके मस्तिष्कमें बैठ ही नहीं पातीं; दूसरा यह कि यदि रामको अवतारी पुरुष मान भी लिया जाय तो आद्योपरान्त उनका चरित्र ईश्वरोचित होना चाहिये—निष्कलङ्क, उज्ज्वल । इन आलोचकोंके अनुसार वालीका अन्यायपूर्ण वध एक घृणित कार्य है । इस कार्यसे रामका चरित्र कलङ्कित हो गया है । इस तरहकी आलोचनाओंपर दृष्टिपात करनेपर यहाँ प्रतीत होता है कि इन आलोचकोंने कुछ पूर्वाग्रहोंसे ग्रसित होकर मनोवैज्ञानिक तथ्योंसे अपनी दृष्टि हटा ली है । यदि किसी ग्रन्थकारने अपने ग्रन्थके नायकके आदर्शोंसे प्रभावित हो उसमें ब्रह्मत्वका आरोपित किया हो तो इसमें अस्वाभाविकता क्या है ? क्या गांधीके आदर्शोंसे प्रभावित हो हमने उन्हें पूज्य नहीं माना ? आज गांधी हमारे लिये 'महात्मा' मात्र हैं । क्या यह सम्भव नहीं कि आनेवाली पीढ़ियाँ उन्हें भी ईश्वरका अवतार मानने लग जायँ ? यह तो मानव-हृदयकी स्वाभाविक वृत्ति है । यह आलोचनाकी वस्तु नहीं । वस्तुस्थिति तो यह है कि भारतीय ग्रन्थकारोंने अपनी कृतियोंमें, अपनी-अपनी शैलीमें, भारतके राष्ट्रीय चरित्रको, उसकी सम्पूर्ण विशिष्टताओं एवं त्रुटियोंके सहित, संसारके समक्ष प्रस्तुत करनेकी सफल चेष्टा की है । वे न तो एकाङ्गी थे, न पूर्वाग्रही । सम्भवतः इसीलिये उन्होंने अपने मर्यादापुरुषोत्तम रामकी त्रुटियोंको भी प्रस्तुत करनेमें संकोच नहीं किया है । 'सोइ करतूति बिभीषन केरी । सपनेहुँ सो न राम हियँ हेरी'—इस युक्तिद्वारा तुलसीने अपने आराध्यकी जिस मानव-सुलभ दुर्बलताका संकेत दिया है—वह निश्चित ही सराहनीय है । दुर्भाग्य तो यह है कि उक्त आलोचक इन नगण्य बातोंकी ही परिधिमें पर्यटन करके अपनी शक्ति एवं समयका अपव्यय कर रहे हैं । क्या ही अच्छा होता यदि रामके अनेकानेक आदर्शोंमेंसे एकको भी ये विद्वज्जन जन-मानसतक पहुँचानेका संकल्प लेते । ऐसी स्थितिमें, मानव-समाजका महान् कल्याण होता ।

अतः निष्कर्ष-स्वरूप हम कह सकते हैं कि मनोविज्ञानकी कसौटीपर भी रामके व्यक्तित्वकी पूर्णता स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है । ऐसा प्रतीत होता है कि रामका उदात्त व्यक्तित्व ही स्वतः पूर्णताका आश्रय है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण

(लेखक—डॉ० श्रीहजारीप्रसादजी माहेश्वरी)

श्रीकृष्ण और उनके संदेशके प्रति हमारी श्रद्धाका सीधा सम्बन्ध हमारी उस धारणासे है, जो श्रीकृष्णको लेकर हमारे मनमें है। अथवा श्रीकृष्णका हमें जो और जैसा परिचय है, उसीके अनुरूप उनके संदेशके प्रति हमारी भावना होगी। पुराणेतिहासमें श्रीकृष्ण-वार्ताएँ भरी पड़ी हैं, उससे उनके व्यक्तित्वका वह परिचय मिलता है, जो हमारी सांस्कृतिक परम्पराकी एक निधि है। सांस्कृतिक इतिहासकी दृष्टिसे हमारी वही धारणा, वही परिचय महत्त्वपूर्ण है तथा उसीपर अवलम्बित हैं हमारी वे समस्त आस्थाएँ, जो आज भी हमारे लिये जीवनके मूल्योंका आधार बनी हुई हैं।

श्रीकृष्णके उसी परिचयको व्यक्त करनेके लिये एक अद्भुत और सारगर्भित पदका प्रयोग हुआ है। वह पद है—**'पुरुषोत्तम'**। श्रीकृष्णको पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण कहा गया है। यह 'पुरुषोत्तम' पद अत्यन्त सक्षम है। इसी पदमें निहित वह भाव है, हमारी वह श्रद्धा है, जिसके नाते भारतीय संस्कृति स्वयं उज्ज्वल है तथा मानवमात्रके लिये प्रेरणा-दायिनी हो सकती है, । यह पद एक ऐसा पद है जिसमें स्यात् श्रीकृष्णका पूर्ण परिचय संनिहित है अथवा जिसमें उनके व्यक्तित्वका सामग्र्य अभिव्यक्त है। अतः यदि हम इस पदका अर्थ समझ सकें, इसका विश्लेषण कर सकें, इसकी व्याख्या और अर्थ-विस्तार कर सकें तो श्रीकृष्णका परिचय खुल जाय और सम्भवतः उनके प्रति हमारी श्रद्धा प्रकाशित हो उठे।

'पुरुषोत्तम' शब्दका प्रयोग दो भूमिकाओंमें हो सकता है। एक है तात्त्विक भूमिका, दूसरी है व्यावहारिक प्राकट्य-भूमिका। तात्त्विक भूमिका पारमार्थिक है, अलौकिक है, जो लोक-परलोकसे परे सर्वोपरि सत्य भूमिका है—कदाचित् उसे भूमिका कहना भी अयुक्त होगा। प्राकट्य-भूमिका व्यावहारिक भूमिका है, लोक-भूमिका है, उसमें देश-काल-सम्बन्ध विद्यमान है। तात्त्विक भूमिकामें पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण नित्य हैं, सच्चिदानन्दस्वरूप हैं। प्रकट भूमिकामें श्रीकृष्ण इतिहास-पुरुष हैं तथा देश-काल-परिस्थितिगत उनका जीवन-वृत्त है। इन दोनों ही भूमिकाओंमें श्रीकृष्ण अभिन्न हैं, एक हैं। अतः वे परमार्थ सत्य भी हैं, व्यवहार-विभूति भी हैं और उभय परिपूर्ण दिव्यातिदिव्य तत्त्व हैं। उनमें लोक-अलोक, नित्य-अनित्य, देशान्तर्गत-देशातीत कालगत-कालातीत—सभी भूमिकाओंका सामञ्जस्य है, सभीका समावेश है। श्रीमद्भगवद्-गीतामें श्रीकृष्ण अपना रहस्य प्रकट करते हुए यहाँतक कह देते हैं—'सदसच्चाहमर्जुन' अर्थात् 'मैं सत् भी हूँ, असत् भी हूँ'। इससे स्पष्ट है कि विभिन्न भूमिकाओंमें जो विरोध-व्याघात-द्वैतादि हैं, वे सब श्रीकृष्णमें समाहित हो जाते हैं, उन श्रीकृष्णकी परिपूर्णतामें वे सब समन्वित हो जाते हैं। वे स्वयं सभी भूमिकाओंमें परिपूर्ण हैं एवं उन्हींसे समस्त भूमिकाएँ सार्थक हैं। वे सर्वशः उच्चातिउच्च उत्तम पुरुष हैं। यह उत्तमता ही उनके स्वरूपका परिचय है, पुरुषोत्तम भाव ही उनका दिव्यातिदिव्य स्वभाव है।

श्रीमद्भगवद्गीतामें पुरुष-तत्त्वकी व्याख्या करते हुए श्रीकृष्ण पुरुषत्रयका वर्णन करते हैं। उसके अन्तर्गत वे 'क्षर-पुरुष', 'अक्षर-पुरुष' एवं उभयातीत 'पुरुषोत्तम' का रहस्योद्घाटन करते हैं—

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते॥
उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः॥
यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः॥

(गीता १५। १६—१८)

अर्थात् 'लोकमें 'क्षर' और 'अक्षर' दो पुरुष हैं। समस्त भूतादि क्षर हैं एवं कूटस्थ अक्षर हैं। इन दोनोंसे अन्य उत्तम पुरुष है, जिसे परमात्मा कहा जाता है, जो तीनों लोकोंको आविष्ट करके अव्यय ईश्वरभावसे उनका भरण करता है। मैं क्षरसे भी अतीत हूँ और अक्षरसे भी उत्तम हूँ। अतः लोक और वेद दोनोंमें पुरुषोत्तम-भावसे प्रसिद्ध हूँ।'

उपर्युक्त भाषामें श्रीकृष्णने पुरुष-तत्त्वकी तीन भूमिकाएँ बतायी हैं। पुरुष-तत्त्व, जो वस्तुतः परम तत्त्व है, सबका कारण है, एकमेवाद्वितीय तत्त्व है, वही तीन अवस्थाओंमें विद्यमान है। वे अवस्थाएँ हैं—'क्षर', 'अक्षर' एवं 'उत्तम'। क्षरभावसे यह समस्त संसार, नित्य बनने-बिगड़नेवाले इसके अनेक पदार्थ, इसकी समस्त गति, जन्म-कर्म-युक्त हमारी समस्त सत्ता, देशकालगत सभी परिस्थितियाँ,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह सब कुछ जो परिवर्तनशील है, वस्तुतः पुरुषका ही रूप है, वह पुरुष-तत्त्वकी ही क्षरावस्था है । उसके विपरीत जो क्षयरहित है, अविनाशी है, समस्त क्रियाओं और गतियोंमें निहित, सदा निष्क्रिय है, अगत है, समस्त परिवर्तनोंके पीछे उनमें निहित सदा अपरिवर्तनीय है । वह भी पुरुष-तत्त्व ही है । उसे पुरुष-तत्त्वका अक्षरभाव कहा जाता है, वह अक्षर पुरुष है ।

चिन्तन और अनुभवकी भूमिकामें प्रायः इन्हीं दोनों रूपोंमें हम स्थायी और अस्थायी तत्त्वोंकी व्याख्या करते हैं । स्थिर और अस्थिर रूपोंमें वही एक तत्त्व है और हम उसे पुरुष-तत्त्व कहते हैं । 'पुरुषोत्तम' इन दोनों भूमिकाओंसे ऊपर, इन दोनोंसे अतीत किंतु साथ ही इन दोनोंका आधार-तत्त्व है । श्रीकृष्ण स्वयं अपनेको पुरुषोत्तम कहते हैं । वे पुरुषोत्तम क्षर और अक्षर भावसे परे, उनसे अतीत स्वयं परमात्मा हैं, ईश्वर हैं । उनमें 'क्षर' और 'अक्षर' दोनोंका ही समावेश है, ये दोनों उन्हींके अन्तर्गत हैं, यद्यपि वे स्वयं उभयातीत हैं ।

उपर्युक्त व्याख्याका यही आशय प्रतीत होता है कि श्रीकृष्ण स्वयं परात्पर तत्त्व हैं एवं वे सर्वातीत हैं । वे पूर्ण पुरुष हैं, उत्तम पुरुष हैं । अपरंच वे ही सर्वाधार हैं, सर्वान्तर्यामी हैं, सर्वमय हैं । वस्तुतः व्यक्ताव्यक्त सभी रूपोंमें वे स्वयं ही सत्य हैं । व्यक्त विशाल यह विश्व, जिसमें अनन्त-अनन्त घटनाएँ घटती हैं, अनन्त देशमें अनन्त कालकी अनन्त गति होती है, अनन्त प्रक्रियाओं और अनन्त परिस्थितियोंके अनन्त चक्र घूमते रहते हैं, सृजन और विनाश, उद्भव और विलयनका अनन्त क्रम चलता रहता है—यह सब कुछ श्रीकृष्णका ही प्रकट रूप है । उसके अतिरिक्त जो अव्यक्त, नित्य, अविनाशी, अव्यय-तत्त्व है, वह भी श्रीकृष्ण स्वयं हैं । अपने आपमें वे अविनाशी सत् तथा विनाशमय असत् दोनोंसे ही अतीत परमात्म-तत्त्व पुरुषोत्तम हैं ।

श्रीकृष्णका पुरुषोत्तम-भावसे यह आत्मपरिचय केवल चिन्तन और विवेचनकी भूमिकातक ही सीमित नहीं है । उनसे इस परिचयका हमारे अन्तरात्मापर यह प्रभाव पड़ता है कि हम सब प्रकारसे उनके हो जाते हैं । वे कहते हैं—

यो मामेवमसम्मूढो जानाति पुरुषोत्तमम् ।
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत ॥

(गीता १५ । १९)

अर्थात् 'जो असम्मूढ़ (बुद्धिमान्) मुझको ही पुरुषोत्तम समझता है, वह सब कुछ जाननेवाला सब भावोंसे मुझे ही भजता है ।' सर्वात्म-तत्त्व पुरुषोत्तम भगवान्को सचमुच जो जान ले, उसके लिये फिर क्या जानना शेष रह गया ! उनको जाननेका अर्थ ही है सब कुछ जान लेना । अतः उनको जाननेवाला सर्वविद् ही होगा । अथ च उनके जाननेवाला सब प्रकारसे उन्हींका हो जायगा । उसका शरीर, उसकी इन्द्रियाँ, उसके प्राण, उसका मन, उसका हृदय, उसकी बुद्धि—उसका सम्पूर्ण व्यक्तित्व सब प्रकारसे श्रीकृष्णार्पण हो जायगा । उसका जीवन श्रीकृष्णमय हो जायगा । यह होगा स्वाभाविक परिणाम श्रीकृष्णके पुरुषोत्तम-तत्त्वको जान लेनेका । यह जीव परमात्मतत्त्वका बोध करेगा । यह मानव दिव्यतासे अभिभूत हो उठेगा ।

ऐसी है श्रीकृष्णके पुरुषोत्तमभावकी तात्त्विक भूमिका । प्राकट्य-भूमिकापर भी श्रीकृष्णका ऐतिहासिक परिचय अत्यन्त प्रेरणाप्रद है । इतिहास भूतकालीन घटनाचक्रोंका लेखा मात्र नहीं है, वह तो हमारे सांस्कृतिक विकासकी कहानी है, जो अभी समाप्त नहीं हो गयी है । वह सांस्कृतिक विकास अभी प्रगत है और उसमें भावी उज्ज्वलताकी प्रेरणा विद्यमान है । उस सांस्कृतिक भूमिकामें इतिहास-पुरुष श्रीकृष्णका व्यक्तित्व अत्यन्त आकर्षक तो है ही, वह मानवीय आदर्शोंसे परिपूर्ण पूर्ण मानवका एक अपूर्व उदाहरण है । उस भूमिकामें भी वे सर्वोत्तम प्रतीत होते हैं, अतः पुरुषोत्तम पदसे ही उनका यथोचित परिचय होगा ।

श्रीकृष्ण पूर्ण मानव

श्रीकृष्ण सम्भवतः हमारे सांस्कृतिक विभुमें महत्तम ज्योतिःपुञ्ज हैं । यद्यपि उनका जीवन-वृत्तान्त उस कालका है, जिसे इतिहासकार प्रागैतिहासिक काल कहते हैं, तो भी भारतीय संस्कृतिके इतिहासमें वे इस प्रकार वर्तमान हैं कि उनकी उपस्थितिसे, उनके प्रेम, ज्ञान और ज्योतिसे हमारा भविष्य आलोकित और प्रेरित बना रहेगा ।

उस इतिहास-संस्कृतिमें श्रीकृष्ण उस पूर्णताकी साकार प्रतिमा हैं जिनकी मानवको स्वाभाविक अभीप्सा है । वे हमारे लिये एक आदर्श मानवका सजीव उदाहरण हैं । परम्परासे मान्यता-प्राप्त उनके ऐश्वर्य तथा अलौकिकताको अपने सम्मुख हम न भी रक्खें तो भी उनका व्यक्तित्व अपने आपमें मानवताके समस्त आदर्शोंसे परिपूर्ण है—प्रेम, सत्य, सौन्दर्य, शक्ति, ज्ञान और आनन्द—सभी उनके व्यक्तित्व

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाविष्ट हैं । सबसे पहले तो उनके जन्मका जो हेतु श्रीमद्भगवद्गीतामें मिलता है, उसमें ही एक महान् मानवीय अभिलाषाकी पूर्ति दिखायी पड़ती है । गीता कहती है—

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥
(गीता ४ । ८)

अर्थात् 'साधुओंके परित्राणके लिये, दुष्कर्म करनेवालोंका विनाश करनेके लिये, धर्मकी उचित व्यवस्था और स्थापनाके लिये मैं युग-युगमें जन्म लेता हूँ ।' उनके अवतारका यह हेतु कितना उच्च है, कितना मानवीय है, कितना मानवाभिलाषाको तृप्त करनेवाला है ! इतना ही नहीं, श्रीकृष्णने अवतार ग्रहण करके मानवको उन-उन विभूतियोंकी ओर प्रेरित किया, जो विशेषतः अतिमानवीय हैं और मानवकी समस्त कुण्ठाओं और अपूर्णताओंसे ऊपर उठनेके लिये प्रेरणादायिनी हैं, स्वभावतः अभीष्ट हैं, मानवमात्र उनकी प्राप्तिके अभीप्सु हैं ।

श्रीकृष्णका जन्म अत्यन्त प्रतिकूल परिस्थितियोंमें हुआ, किंतु वे अपने युगके महत्तम नायक हो गये । उन्होंने जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें नेतृत्व किया और अग्रगण्य बन गये । अपने शैशवमें वे एक मधु-मुकुल-नवल सौरभके समान प्रत्येक व्यक्तिको अपनी ओर आकर्षित कर लेते और दिव्य स्फुरणासे उसे भर देते । प्रसन्नतासे भरी हुई उनकी सरलता, नित्य नूतन उनका उल्लास, चतुराईसे भरी हुई उनकी शरारतें—उनकी हर भाव-भङ्गिमासे एक ऐसा रस बरसता था, जिसमें नहाकर मनुष्य ही नहीं, प्राणिमात्र आनन्द-विभोर हो उठते थे । बचपनमें ही उनके क्रीड़ा-कलापने, गायोंके लाड़ भरे लालन-पालनने, मनमोहिनी आह्लादिनी उनकी मुरली-ध्वनिने और सहचरोंके संग उनके नृत्यादिने उनको एक ओरसे सभीका लाड़ला बना दिया था । उनके सभी परिजन एकताके सूत्रमें बँधे हुए थे और उस एकताके प्राण-केन्द्र वे स्वयं ही थे । कंस-जैसे आततायियोंके संहारके लिये उनका बल अतुलनीय था । उनकी सभी वृत्तियाँ सर्वतः कौशलपूर्ण होती थीं । युद्धभूमि कुरुक्षेत्रमें अर्जुनके सारथि तथा उपदेष्टाके रूपमें उनकी दूरदर्शिता, उनके आदेश-उपदेश अद्वितीय थे । मैत्रीमें, उनके स्नेहकी प्रगाढ़तामें इतनी गहराई थी कि मित्र-स्नेहकी उत्कृष्टताका गान करनेके लिये श्रीकृष्ण-सुदामा-सम्बन्ध कवियोंकी प्रेरणाका स्रोत बना रहा है । धर्म तथा समाजनीति—धार्मिक प्रथाओं और सामाजिक रीति-रिवाजोंके क्षेत्रमें उनके द्वारा किये गये सभी सुधार बड़े प्रगतिशील थे । अन्ध-विश्वासयुक्त प्राणहीन प्रथाओंके प्रति उनकी क्रान्तिकारी वृत्ति अत्यन्त दृढ़ किंतु सृजनात्मक थी । मानव-जीवनका ऐसा कोई भी क्षेत्र नहीं, जिसमें भगवान् श्रीकृष्णने कोई चिरस्मरणीय अद्भुत कार्य न किया हो । मानवोत्कर्षकी ऐसी कोई दिशा नहीं, जहाँ वे सर्वाग्रणी न बने हों । कला, संगीत, नृत्य, समस्त प्रकृति—पशु-पक्षी, नदी-पर्वतादि सबके प्रति उनकी सर्वाङ्ग प्रनिष्ठता, प्रेम, रसात्मकता, मैत्री, युद्ध-कौशल, रथचालन, राजनीति-सुधार, विश्वधर्म, दर्शन एवं रहस्यानुभूति—सभी श्रीकृष्णके अधिकृत क्षेत्र थे । कदाचित् हम भगवान् श्रीकृष्णकी महत्ताको मात्र मानवीय भूमिकापर भी व्यक्त करना चाहें तो संस्कृत शब्द 'पुरुषोत्तम' (जिसका अर्थ होगा श्रेष्ठ पुरुष) सम्भवतः उनके लिये सर्वाधिक उपयुक्त शब्द होगा ।*

* यह लेखांश 'श्रीकृष्णजन्मस्थान-सेवा-संघ मथुरा'से प्रकाशित 'पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण' शीर्षक लेखसे उद्धृत है । श्रीकृष्णजन्म-स्थान (कंसका कारागार) हिन्दुओंका परम पवित्र स्थान है । इसपर बड़े-बड़े मन्दिर बने और वे समय-समयपर मुसल्मान आक्रमणकारियोंके द्वारा नष्ट-भ्रष्ट कर दिये गये ।

भगवान् श्रीकृष्णकी कृपासे जन्म-स्थानकी वह भूमि अधिकांश श्रीकृष्णजन्मस्थान-संघके अधिकारमें है । वहाँ एक भव्य मन्दिर तथा एक संगमरमरका विशाल चबूतरा बन गया है । अब विशाल श्रीभागवतभवनका निर्माण हो रहा है, जिसपर लगभग पैंतीस लाख रुपये व्यय होनेका अनुमान है । इसी जन्मस्थानसे 'श्रीकृष्ण-संदेश' नामक एक बहुत सुन्दर सचित्र पत्रिका निकल रही है । देशके बड़े-बड़े लेखक इसमें श्रीकृष्ण-चरित्रपर अध्ययनपूर्ण लेख लिखते हैं । इसका वार्षिक मूल्य है—७) ।

पत्रिकामें बहुत ही सुन्दर सुपाठ्य सामग्री प्रकाशित होती है । अधिक-से-अधिक लोगोंको इसके ग्राहक बनकर लाभ उठाना चाहिये—श्रीकृष्णजन्म-स्थान सेवासंघ, मथुरा ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वरज्ञान और सामान्य जीवन

(लेखक—श्रीरविप्रकाशजी नाग, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०)

सब जोगन कौ जोग है, सब ज्ञानन कौ ज्ञान ।
सर्बसिद्धि की सिद्धि है, तत्त्व स्वरन कौ ध्यान ॥

साधकके जीवनमें स्वर-ज्ञानका महत्त्व अनेक प्रकारसे स्वयं सिद्ध है। योगमार्गी साधक तो इससे सर्वप्रकारसे लाभ लेते ही हैं, पर जीवनकी सामान्य प्रक्रियाओंके संचालनमें भी इसका महत्त्व है। दैनिक जीवनमें जो भी षट्-कर्म करने होते हैं, वे सब भी स्वर-ज्ञानद्वारा संचालित एवं प्रेरित होने चाहिये। उदाहरणार्थ भोजनके विषयमें सर्वमान्य सिद्धान्त है—'भूख लगे, तब खाओ' पर इतनी-सी बातका पालन बिरले साधक ही कर पाते हैं। दूसरी बात है जब दाहिना स्वर चलता हो तभी भोजन करना चाहिये। 'ज्ञान-स्वरोदय'में श्रीचरणदासजी महाराजका कथन है—

बायीं करवट सोइये, जल बायें स्वर पीव ।
दहिने स्वर भोजन करै तौ सुख पावत है जीव ॥

तथा इसके विपरीत यदि—

बायें स्वर भोजन करै, दहिने पीवै नीर ।
दस दिन भूल्यौ यौं फिरै, आवै रोग सरीर ॥

यह बात आजमायी हुई है। मैंने निज जीवनमें देखा है कि लगातार यदि कई दिन बायें स्वरमें भोजन कर लिया जाय तो निश्चित ही शरीरमें रोग उत्पन्न होंगे। पिङ्गला नाड़ीके बहते अर्थात् दाहिने स्वरके चलते भोजन करना शरीरकी प्रकृतिकी माँग है। उदाहरण आप स्वयं हैं। कभी बहुत जोरकी भूख लगे तो आप देखेंगे कि आपका दाहिना स्वर ही चल रहा है। इसी प्रकार बहुत प्यास लगी होगी तो स्वाभाविक बायाँ स्वर चलेगा ही। कई रोगी विद्यार्थियोंको बायीं करवट सोने एवं दाहिने स्वरमें भोजन करनेका सुझाव देकर तथा इसका पालन करवाकर मैंने चंगा कर दिया है।

यह तो सब जानते-मानते ही हैं कि 'स्वर'पर नियन्त्रण हुए बिना न तो योग सधता है और न दूसरेपर शासन ही होता है। अपनी इन्द्रियाँ जबतक वशमें नहीं होंगी, आध्यात्मिक तथा भौतिक जीवनमें असफलता हीं प्राप्त होगी। श्रीहरिगीतामें कहा है—

निजसे करे उद्धार निज, निजको न गिरने दे कभी ।
नर आप ही है शत्रु अपना, आप ही है मित्र भी ॥

तो कुंजी अपने हाथ है तथा सही रूपसे स्वर-साधनके बाद आप स्वयं अपने स्वामी बन जायँगे और निजानन्दके प्रकाशसे आप्लावित रहेंगे। यह करनेकी बात है—करके देखनेकी बात है, केवल कहने-सुननेकी नहीं। 'शिव-स्वरोदय'में श्रीमहादेवजीने पार्वतीजीसे यही कहा, 'यह सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म स्वरोदय सुन्दर ज्ञान देनेवाला और सत्यका निश्चय करानेवाला है; नास्तिकोंके लिये यह आश्चर्य है एवं आस्तिकोंका आधार है।'

भोजनके बाद या यों कहिये कि इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण बात है जल पीनेकी। जल जीवन है एवं जलसे सभी पेय निर्मित होते हैं। आजकल सामान्य जीवनमें पेयका चलन बहुत है एवं सभ्यताका तकाजा यह है कि घर आये मेहमानसे यह पूछा जाय कि 'ठंडा पीयेंगे या गरम'—न तो हमें यह पता कि हमारे शरीरकी प्राकृतिक माँग क्या है तथा न हम यह जानते हैं कि यह माँग कब की जा रही है? चायका चलन तो सामान्य चाल-चलनकी बात है। ऐसे समयमें हम केवल बायें स्वरमें ही पेय पदार्थोंको ग्रहण करनेकी शपथ लेकर चलें तो काया निरोगी रहेगी। यह तो निर्विवाद सत्य है कि औषधालयोंमें स्वास्थ्य उपलब्ध नहीं होता और न बढ़ते हुए औषधालय राष्ट्रके शुभ स्वास्थ्यके ही लक्षण हैं। परंतु जो सज्जन टेरामाइसिन एवं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पेनिसिलिनका सेवन करके ही पुष्ट रहना अधिक सुविधा-जनक समझते हैं, वे इस मार्गको नहीं पसंद करेंगे। मैं तो यह चाहता हूँ कि इस सर्वसिद्धिकारक स्वर-ज्ञानको, जो जीवन-प्रयोगशालामें अनुभूत विज्ञान है, हमारे सामान्य विद्यार्थीतक जान लें, जिससे उनका जीवन उन्नतिकी ओर अग्रसर हो, जद्यपि वैसा 'होना' प्रभु-आधीन है।

दाहिने स्वरमें भोजन एवं बायें स्वरमें पेय पदार्थोंके ग्रहणके साथ-साथ भोजनके साथ पानी पीना, दही पीना, छाछ या सब्जीका रसा पीना चल सकता है। आयुर्वेदवाले बहुधा भोजनके साथ पानी पीनेका निषेध शायद इसीलिये करते हैं कि दाहिने स्वरमें पानी पीना अनुचित है। एक घड़ीके बाद स्वर-परिवर्तन होता ही है; अतः जल भोजनोत्तर लगभग सवा घंटेके बाद ही पीना श्रेयस्कर है।

यह कितनी वैज्ञानिक बात है कि जब भोजन दाहिने स्वरमें किया तो मल-त्याग भी उसी स्वरमें करना चाहिये। दाहिने स्वरमें भोजन करनेसे जठराग्निकी प्रबलता उस समय रहती है एवं इससे भोजन सहजमें पचता है। करोड़पति हो या अरबपति, गरीब हो या मध्यमवर्गीय, जितनी भूख हो, उतना ही खा सकता है, जितनी जठर-शक्ति होगी उतना ही पचा सकता है; अतः बीस रोटी खाकर भी यदि अपच रहा तो दो रोटियाँ खाकर पचाना अधिक उत्तम है। मल-त्याग इसीलिये दाहिने-स्वर यानी सूर्य-स्वरमें करना चाहिये कि इस स्वरकी सहज शक्तिसे शौचके समय मल-त्याग सहज हो जायगा। न तो शौचालयमें अधिक देर बैठकर वहाँकी दूषित वायुका सेवन करना होगा और न जोर लगाकर शक्तिका अपव्यय ही होगा। परंतु जैसा पूर्वमें भी निवेदन किया गया है, दस्तावर एवं कब्जहर गोलियाँ खा-खाकर जो महामानव अपना स्वास्थ्य ठीक रखे हों, वे जैसा उचित समझें करें, मार्ग सबके लिये सहज सुलभ है।

शौचके साथ तो मूत्र-त्याग होता ही है, जैसे कि भोजनके साथ जल-ग्रहण हो जाता है; अन्यथा मूत्र-त्याग सदा बाँये स्वरकी उपस्थिति अर्थात् चन्द्रस्वरके बहनेपर ही करना श्रेयस्कर है। इसमें बचतकी बात निवेदन कर दूँ कि किसी कारण-विशेषसे यदि आपको अचानक मल या मूत्रका वेग प्रतीत हो तो हाजतकी सफाईके लिये स्वरको न देखें। मैं तो सामान्य जीवनकी प्रक्रियाका निवेदन कर रहा हूँ और मेरी यह मान्यता है कि बादमें जाकर आपके जीवनपर आपका इतना नियन्त्रण हो जायगा कि इस 'अचानक' तत्त्वका भी ह्रास हो जायगा।

अब बायीं करवट सोनेके वैज्ञानिक तथ्यका विवेचन करें। इसमें कुछ स्पष्टवादिताका सहारा भी लेना होगा; परंतु जीवनकी बात है। अतः कहनेकी आज्ञा चाहता हूँ। मैंने तीन दर्जनसे अधिक व्यक्तियोंका इस संदर्भमें अध्ययन किया (Case-study)। उनमेंसे कुछके केवल लड़के-ही-लड़के थे, कुछके लड़कियाँ-ही-लड़कियाँ। अनजानमें वे बायीं एवं दाहिनी करवट शयन करनेकी आदतमें हैं। परिवार-आयोजन और नियोजन तो सरकारी रूपसे अब चले हैं। भारतके इस पुरातन एवं सनातन विज्ञानद्वारा जो जैसी संतान आप चाहें प्राप्त हो सकती है। सामान्य मानवोंमें भ्रम रहता है कि बायीं ओर 'हृदय' होता है, अतः उसे दबाकर सोनेसे हानि होगी। यह भ्रामक बात है। बायीं करवट सोनेसे सूर्य-स्वर (दाहिने) की उपस्थिति रहेगी एवं आपकी धर्मपत्नीके दाहिनी करवट शयन करनेसे वाम स्वर चलेगा। ऐसी परिस्थितिमें सम्भोग होनेसे केवल लड़का ही पैदा होगा यह निश्चित है। हमारे यहाँ विवाहमें स्त्रीको बायीं अङ्ग बताया जाकर बायीं ओर उसे सदा रखनेकी शिक्षा दी जाती है जो कि इसी तथ्यकी मूक-शिक्षा है कि आप आगे दुःख न पायें। मैंने देखा है कि पाँच लड़कियोंके बाद भी इसलिये लोग दुखी रहते हैं कि लड़का नह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ । इसके अतिरिक्त सामान्यतया भी बायीं करवट सोनेसे रातभर दाहिना-स्वर चलेगा तथा चन्द्रमाकी उपस्थितिमें चन्द्रमाका निषेध योगीके लिये प्रामाणिक है ।

दिन को तौ चंदा चलै, चलै रात में सूर ।
यह निश्चै करि जानिये, प्रानगमन बहु दूर ॥
रात चलै स्वर चंद में, दिन को सूरज बाल ।
एक महीना यों चलै, तो छठे महीने काल ॥

रात्रिको इसलिये भी बायीं करवट सोना चाहिये कि यह अधिक प्राकृतिक एवं सुविधाजनक है । करना यह है कि आप तो जब शयनके बाद यह अवसर देखें कि निद्रा देवीने अब शरण दे ही दी है, तभी बायीं करवट लेकर सो जायें । सोनेके बाद सुषुप्ति-अवस्थामें जो अनायास करवटोंकी अदला-बदली होती है, वह आपके करनेका विषय ही नहीं रहती । अतः आप उसका विचार ही न करें । रात्रिको दाहिना स्वर चलनेसे (बायीं करवट सोनेसे) भोजन पचनेमें आवश्यक सहायता मिलती है; क्योंकि रात्रि-भोजनके पश्चात् सामान्यतः कोई शारीरिक श्रम न तो किया जाता, न ऐसा सम्भव ही है । अतः करबद्ध निवेदन है कि आज से ही स्वामी चरणदासजी महाराजके आज्ञानुसार—

बायीं करवट सोइये, जल बायें स्वर पीव ।
दहिने स्वर भोजन करें, सुख पावत है जीव ॥

भगवान्‌की सच्ची पूजा

(लेखक—पं० श्रीजयकान्तजी झा)

संत एकनाथ हृदयमें प्रभुकी झाँकी करते हुए गंगोत्रीके पुनीत जलको काँवरमें भरकर अपने साथियोंके साथ काशी होते हुए रामेश्वरकी ओर जा रहे थे । वहाँ जाकर वे उस जलसे प्रभुकी पूजा करना चाहते थे । ग्रीष्मऋतु थी । इसी बीच एक दिन दोपहरकी जलती धूपमें संतने रेतीले मैदानमें एक गधेको प्यासे छटपटाते देखा । अविलम्ब काँवर उतारकर गंगोत्रीका पुनीत जल गधेके मुखमें डालकर एकनाथजीने मरणासन्न प्राणीकी जान बचायी । एकनाथजीके अन्य साथियोंको इस बातका दुःख हो रहा था कि इतने परिश्रमसे लाया हुआ गंगोत्रीका पुनीत जल व्यर्थ चला गया । उनकी ऐसी भावना देखकर एकनाथजीने उन्हें समझाया—'एकमात्र प्रभु ही सर्वत्र परिपूर्ण हैं । मेरी पूजा तो प्रभुने यहींसे स्वीकार कर ली ।'

यदि हम विश्वरूप भगवान्‌की पूजाको अपनी दिनचर्यामें सम्मिलित कर लेते तो हमारा जीवन पूजामय बन जाता । हमारी पूजा सर्वाङ्गीण पूजा बन जाती । भगवान्‌की पूजा समाप्त करनेके पश्चात् हम स्वयं प्रसाद ग्रहण करते हैं । शीतका अनुभव होनेपर हम अपने अङ्गोंको आवश्यक वस्त्रोंसे ढकते हैं, शरीरके रोग-निवारणार्थ ओषधियोंका सेवन भी करते हैं; पर हममेंसे अधिकांश इस बातको भूल जाते हैं कि अभी-अभी हम जिन प्रभुकी पूजा मन्दिरमें कर आये हैं, वे ही प्रभु पुनः हमारी पूजा ग्रहण करनेके लिये विविध रूपोंमें हमारे सम्मुख उपस्थित हैं । वे प्रभु ही पूज्य संतके रूपमें प्रसाद पानेकी शान्तिसे बाट देख रहे हैं तथा वे ही कंगाल बनकर भिक्षा प्राप्त करनेके लिये करुण पुकार कर रहे हैं । वे ही एक रूपमें सुन्दर वस्त्रोंसे सुसज्जित भद्र पुरुषके वेषमें दीनोंके शीत-निवारणार्थ कम्बल बाँटनेके सम्बन्धमें हमसे परामर्श करने आये हैं और दूसरे रूपमें हमारे द्वारके सामने जाड़ेसे ठिठुरते हुए टाटके टुकड़ोंके लिये चिल्ला रहे हैं । ऐसे अवसरों पर हम भूल जाते हैं कि प्रभु ही इन सभी रूपोंमें हमारी पूजा ग्रहण करनेके लिये आये हैं । इसीलिये हम प्रायः उनके प्रति दुर्व्यवहार कर बैठते हैं । प्रभुकी सर्वव्यापकताका ज्ञान न होनेसे हमारी भगवत्पूजा प्रायः अधूरी ही रह जाती है ।

कभी-कभी हमारी ऐसी भावना होती है कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्वरूप भगवान्की पूजाके योग्य साधन हमारे पास नहीं हैं। पर यह हमारे मनका भ्रम ही है। वास्तवमें तो हमारे अंदर पूजाकी सच्ची चाह होनी चाहिये। चाह होनेपर तो हम अपने द्वारा होनेवाले प्रत्येक कर्मसे प्रभुकी पूजा कर सकते हैं। यदि हम दूकानदार हैं तो अपने ग्राहकोंको प्रभुरूपमें देखकर सम्मानपूर्वक उचित मूल्य लेकर उनकी सेवाकी दृष्टिसे यदि हम उन्हें ईमानदारीके साथ अच्छी वस्तु दे देते हैं तो इस प्रकारके क्रय-विक्रयसे ही विश्वरूप भगवान्की सच्ची पूजा हो जायगी। यदि हम चिकित्सक हैं तो प्रत्येक रोगीमें प्रभुकी झाँकी करके, यदि हम शिक्षक हैं तो प्रत्येक छात्रमें प्रभुको विराजित देखकर और यदि वकील हैं तो प्रत्येक वादी-प्रतिवादी, न्यायाधीश एवं साक्षी इत्यादिमें अपने इष्टदेवको ही अभिव्यक्त देखकर यथायोग्य अपने विशुद्ध व्यवहारसे उनकी पूजा कर सकते हैं। हम जहाँ जिस क्षेत्रमें हैं, जिस परिस्थितिमें, जो भी काम करते हैं, वहीं उसी क्षेत्रमें, उसी परिस्थितिमें अपने कामको विशुद्ध बना सकते हैं और अपने सम्पर्कमें आनेवाले प्रत्येक व्यक्तिमें प्रभुको देखकर उन्हें अपनी विशुद्ध पूजा समर्पित कर सकते हैं। यदि अपने जीवनको पूजामय बनानेके लिये हम कटिबद्ध हैं तो सर्वशक्तिमान् प्रभुकी शक्ति अपने आप हमें ऊपर उठाने लगेगी और हमें स्पष्ट दीखेगा कि जिस वेशमें प्रभु पूजा ग्रहण करने आये हैं, उसके अनुरूप पूजाकी सामग्री उन्होंने पहलेसे ही हमारे पास भेज रक्खी है। उन सामग्रियोंका खुले हाथों उपयोग करनेसे हमारा जीवन पूजामय बन जायगा। इस प्रकार सर्वत्र प्रभुको विराजित, सबको प्रभुका ही रूप देखकर यदि हम उन्हें सुख पहुँचानेकी चेष्टा कर सकें तो हमारा काम बन जायगा और हमारी पूजा सर्वाङ्गीण हो जायगी। हमारा एवं प्रभुका मिलन तुरंत ही हो जायगा और प्रभुकी सच्ची पूजा करके हम सदाके लिये कृतकृत्य हो जायँगे।

प्रभुके साथ हमारा जो सम्बन्ध है, वह तो अनादि है, सदा स्थिर, एकरस रहनेवाला है। उनके सम्बन्धमें कोई हेतु नहीं। वह सम्बन्ध अत्यन्त निर्मल, अपरिसीम एवं प्रेमसे परिपूर्ण है। इसीसे वे हमारे लिये अपना सर्वस्व दान भी करते हैं। उनके प्रेमकी शक्ति-सामर्थ्यकी भी सीमा नहीं, वह तो अनन्त—असीम है। उनके लिये यह नहीं कहा जा सकता कि प्रभु यह कर सकते हैं, यह नहीं। वे सर्वसमर्थ हैं, असम्भवको सम्भव कर सकते हैं। साथ ही वे सर्वज्ञ हैं, सब कुछ जानते हैं। अतीत, वर्तमान, भविष्यका अणु-अणु उन्हें ज्ञात है। अगणित विश्व-ब्रह्माण्डमें कहाँ किस समय क्या हुआ, क्या हो रहा है और क्या होगा—इसको वे पूरा-पूरा जानते हैं। इसीलिये उनसे कभी तनिक-सी भी भूल नहीं होती। ऐसे प्रभुको, प्रभुके साथ अपने नित्य सम्बन्धको यदि हम जान लें, उनके सम्बन्धका ही एकमात्र भरोसा करके हम अपने कार्य-क्षेत्रमें उतरें, तभी सफलता, आनन्द और संतोष आगेसे आगे हमें वरण करनेके लिये तैयार खड़े मिलेंगे और हमारे द्वारा भगवान्की सच्ची पूजा हो सकेगी।

यह बात विचारणीय है कि जब हमारा नित्य सम्बन्ध महामहिम प्रेममय प्रभुसे है, वे सदैव हमारे साथ रहते हैं, तब हम उन्हींपर निर्भर क्यों नहीं रहते? इसका कारण केवल यही है कि हमारी इन्द्रियाँ स्वभावसे ही बहिर्मुख हैं। इसीलिये अपने अन्तरालमें विराजित प्रभुको हम जान नहीं पाते। जबतक इन्द्रियोंका प्रवाह बाहरकी ओरसे मुड़कर अन्तर्मुख न बन जाय, प्रभुकी ओर न हो जाय तबतक हमारी इन्द्रियाँ प्रगाढ़ तमोगुणकी ओर दौड़ती रहेंगी। हमारे हृदय तमोमय आसुर भावोंसे भरे रहेंगे और हमें कभी भी इस बातका ज्ञान न होगा कि किन कर्मोंसे इस जीवनमें एवं जीवनके पश्चात् परलोकमें यथार्थ कल्याण होना सम्भव है। अतः हमें प्रभुमें दृढ़ आस्था करके गम्भीरतासे विचार करना पड़ेगा और जब हृदयमें भगवान्की ज्योति जग उठेगी, तब हमें दीखेगा कि समस्त विश्व प्रभुमें ही स्थित है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एवं विश्वके कण-कणमें प्रभु अवस्थित हैं । ऐसी स्थितिमें अपने-परायेका भेद जाता रहेगा, शत्रु-मित्रकी भावना नष्ट हो जायगी, सर्वत्र एक अखण्ड सत्ता-आत्मसत्ता, भगवत्सत्ता-की ही अनुभूति होगी । उस स्थितिमें प्रत्येक वस्तु हमारे नेत्रोंके सामने भगवान्‌की परम सुन्दर आनन्दमयी लीला बनकर उपस्थित होगी—हमें सदा-सर्वदा भगवान्‌का मङ्गलमय स्पर्श प्राप्त होने लगेगा और अपने द्वारा होनेवाले प्रत्येक कर्मसे हम भगवान्‌की सच्ची पूजा करनेमें रत हो जायँगे ।

येन केन प्रकारेण यस्य कस्यापि देहिनः ।
संतोषं जनयेत्प्राज्ञस्तदेवेश्वरपूजनम् ॥

किसी भी साधनसे किसी भी देहधारीको सुख पहुँचाना भगवत्पूजन है । सभी देहोंमें जीवरूपसे एक ही प्रभु विराज रहे हैं । अतः किसी भी देहधारीको सुख पहुँचाना प्रभुको ही सुख पहुँचाना कहलायेगा और प्रभुको प्रसन्न करनेवाली प्रत्येक क्रियाका नाम ही भगवत्पूजन है । अपने नित्यके व्यवहारमें किसीको किसी प्रकारकी सेवा अथवा सहायता करना ही भगवान्‌की सच्ची पूजा है और किसी भी स्थितिका मनुष्य इसे कर सकता है । सामान्यतः प्रत्येक व्यक्ति अपना-अपना कार्य करते हुए अपने व्यवहारकी शुद्धतासे अपने समस्त जीवनको भगवत्पूजनका रूप दे सकता है ।

ईश्वर हमें शक्ति दे, जिससे हम विषयोंसे विमुख होकर अपना सारा जीवन भगवत्पूजनमय बना लें ।

भगवान् कैसे भोजन कराते हैं ?

(लेखक—श्रीनिरञ्जनदासजी धीर)

महाराष्ट्रमें हर एक ग्राममें मन्दिर तथा पथिकशाला होती है, रमते राम साधुओंको वहीं विश्राम मिलता है । श्रीस्वामी रामदास तथा उनके शिष्य रामचरणदास इस यात्रामें प्रातःकाल ही चल देते और जहाँ दोपहर हो जाती, वहीं विश्राम-भोजनके लिये ठहर जाते । एक दिन मध्याह्नके समय जब ग्राम समीप आया तो स्वामीजीने शिष्यको संकेत किया कि 'भिक्षा नहीं माँगनी है । भोजनका प्रबन्ध विश्वम्भरपर छोड़ो । तुम तो मन्दिरमें बैठकर नाम-जप करो ।'

ग्राममें पहुँचे तो वहाँ श्रीविट्ठल भगवान्‌का छोटा-सा मन्दिर था । वहीं बरामदेमें बैठकर दोनों नाम-जप करने लगे । दिनके बारह बजे होंगे । एक दर्शनार्थी मन्दिरमें आया और साधुओंको बैठे देखकर कहने लगा—'यहाँ क्यों बैठे हो, मध्याह्नके भोजनका समय है, ब्राह्मणोंकी बस्तीमें जाकर भिक्षा माँगकर खा लो ।' दोनों साधु मौन रहे और वह चला गया । आधा घंटा हो गया, शिष्यको संदेह होने लगा । दस मिनट बीते होंगे कि एक अन्य व्यक्ति आया और पूछने लगा कि 'दोपहरकी भिक्षा हो गयी ?' स्वामीजीने नकारात्मक उत्तर दिया । 'आप भिक्षा कैसे किया करते हैं ?' उसने पूछा । 'जैसी ईश्वरेच्छा हो'—उसको उत्तर मिला । इससे वह प्रभावित हुआ और कहने लगा—

'महाराज ! आपके ईश्वर मुझे आज्ञा देते हैं कि मैं आप दोनोंको अपने घर ले जाकर भिक्षा कराऊँ । किंतु एक कठिनाई है कि मैं जातिका दर्जी हूँ; इसलिये आप मेरे घर भिक्षा करेंगे अथवा नहीं, यह मुझे पता नहीं ।'

स्वामीजीने कहा—'साधुओंकी दृष्टिमें आप ईश्वर-स्वरूप हैं, इसलिये उनको कोई आपत्ति नहीं है ।' 'मैं अभी आता हूँ'—यह कहकर वह चला गया और थोड़ी ही देरमें रस्सी-बाल्टी लेकर लौट आया । साधुओंको वह एक कुँएपर ले गया और प्रेमसे स्नान करवाया । फिर उनको अपने घर ले गया, वहाँ दर्जीकी धर्मपत्नी और बच्चोंने बड़ी प्रसन्नतासे उनका आदर-सत्कार किया और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़े प्रेमसे बढ़िया भोजन कराया। भोजन करके साधु मन्दिर लौट आये और कुछ समय विश्राम करके आगे चल दिये। पथमें स्वामीजीने शिष्यसे पूछा—'तुम्हें यह विश्वास है कि नहीं कि जिसने हमें इतने प्रेमसे भोजन कराया, वह ईश्वर है ?' शिष्य क्या उत्तर देता, वह मौन रहा। वह दिन बीत गया। साधु एक ही समय भोजन करते थे।

दूसरा दिन आया। मध्याह्नके समय वे एक अन्य ग्राममें पहुँच गये। वहाँ भी श्रीविठोवाके मन्दिरमें उन्होंने आसन लगाया। मध्याह्न बीत गया, एक बजनेको आया। भोजनका कुछ ठिकाना प्रतीत नहीं होता था। शिष्य रामचरणदास अशान्त तथा व्यग्र हो रहा था। वह कहने लगा कि 'स्वामीजी ! श्रीविठोवा आज तो बड़ी देर कर रहे हैं। मुझे डर लग रहा है कि कहीं हमें भूल तो नहीं गये।'

स्वामीजीने उत्तर दिया—'भोजनका विचार करना छोड़ दो। केवल प्रभु-स्मरण करो। अपनेको प्रभु-इच्छापर छोड़ दो।'

कुछ समय और प्रतीक्षा करनेके पश्चात् जब भोजन नहीं आया, तब रामचरणने कहा कि थोड़ी निद्रा ले लूँ और वह लेट गया। किंतु जब आँतें क्षुधाके कारण कुलकुला रही हों, निद्रा शरण नहीं दिया करती। वह बार-बार चादर उठाकर बाजारकी ओर देख रहा था कि भोजन अब आया—अब आया। दो बजेका समय होगा कि वह झपटकर बैठ गया और चिल्लाया—'स्वामीजी ! स्वामीजी ! विठोवा आ रहे हैं। वह देखो, बाजारसे हमारी ओर भागे आ रहे हैं।'

स्वामीजीने देखा कि एक श्यामरंगका व्यक्ति बड़ी त्वरासे मन्दिरकी ओर आ रहा है। वह साधुओंके पास आया और पूछने लगा कि 'आपने भिक्षा की है ?' (जैसे उसको पता न हो)। जब उनको उत्तर मिला कि 'नहीं' तो वह चला गया और दो पत्तल भोजन लेकर आ गया और साधुओंके सामने रखकर उसने प्रसाद पानेको कहा। कहनेकी आवश्यकता क्या थी, वे दोनों भोजन करने लगे। उसी समय दस व्यक्तियोंकी एक कीर्तन-मण्डलीने मन्दिरमें प्रवेश किया। उनके पास वीणा, झाँझ तथा मृदङ्ग थे और वे श्रीतुकाराम महाराजके उत्तम-उत्तम अभंग गा रहे थे तथा नृत्य कर रहे थे। इस समय साधु प्रसाद पा रहे थे। इस घटनाका तात्पर्य क्या था ? यही कि श्रीभगवान् केवल स्थूलशरीरको भोजन देकर ही संतुष्ट नहीं हुए, उनके लिये एक विलक्षण आध्यात्मिक भोजकी भी व्यवस्था कर दी। उस करुणावरुणालयकी कृपाका क्या ठिकाना ?*

प्रभुका सर्वत्र दर्शन

भई अब मैं बैरागन बौरी, लागी हरि सों ठौरी।
छाँड़ी लोकलाज चतुराई, बंसी सुनि उठि दौरी॥
ढूँढ़त ढूँढ़त कान्हा भेंटे, सुख नहिं जात कह्यौ री।
मानपुरी प्रभु परगट देखा, जहँ-तहँ धाय रह्यौ री॥

—संत मानपुरी महाराज

* श्रीस्वामीजीके ग्रन्थ ''भगवान्‌के साक्षात्कारमें'' के आधारपर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कामके पत्र

(१)

बंदीजीवनके पौने दो वर्ष

प्रिय महोदय, सप्रेम हरिस्मरण। आपका कृपापत्र मिला। यह सत्य है—सन् १९१६ में बंगालकी अंगरेजी सरकारने मुझे गिरफ्तार किया था। एक महीने तो कलकत्तेके डापांडर हाउस और अलीपुर जेलमें रक्खा। फिर मुकदमा न चलाकर 'भारत-रक्षा कानून'के अन्तर्गत मुझे बंगालके बाँकुड़ा जिलेके शिमलापाल नामक एक छोटेसे गाँवमें नजरबंद कर दिया गया। वहाँ मेरे लिये नजरबंदीके कुछ नियम थे, जिनका पालन करना अनिवार्य था——जैसे गाँवके बाहरके किसी भी आदमीसे बिना सरकारी आज्ञाके न मिलना, शिक्षा-सम्बन्धी किसी व्यक्तिसे न मिलना, संध्यासे सुबहतक रात्रिको किसीसे न मिलना, पत्र-व्यवहार पुलिसके मारफत करना आदि। वहाँ मैं पौने दो सालतक रहा। मेरे लिये वह पौने दो वर्षका समय——यह बंदीजीवन भगवान्के कृपापूर्ण वरदानके रूपमें फलित हुआ। इसी एकान्तवासमें मेरी परमार्थसाधना आरम्भ हुई। स्वाध्याय, नाम-जप, ध्यानका अभ्यास बढ़नेके साथ ही उनमें रुचि तथा रतिका उदय हुआ। पौने दो वर्षके बाद राजनीतिमें भाग न लेनेका लिखित वचन न देनेके कारण १८१८ के एक पुराने कानूनके अनुसार चौबीस घंटेके अंदर बंगाल छोड़कर चले जानेका आदेश प्राप्त हुआ। तदनुसार मैं बंगाल छोड़कर राजस्थान होते हुए बम्बई चला गया। यह सत्य है कि पहलेके संस्कार तथा किसी अंशमें कुछ रुचि होनेपर भी जीवनकी वास्तविक परमार्थ-साधनाका श्रीगणेश शिमलापालमें ही हुआ। इसी कारण इसके बाद भी पूर्वाभ्यासवश राजनीतिसे सम्पर्क रहा, पर मनकी रुचि उत्तरोत्तर घटती गयी और क्रमशः (बीच-बीचमें छूटनेपर भी) परमार्थपथपर अग्रसर होनेका——भोगोंसे बचनेका प्रयास सदा जारी है रहा। बड़े-बड़े प्रलोभन आये——बड़ी भारी धन-सम्पत्तिके, ऊँची-से-ऊँची उपाधियोंके तथा देश-सेवाके क्षेत्रके महत्त्वपूर्ण स्थानोंके, साधनाके क्षेत्रमें भी गुरु पद ग्रहण करने आदिके बड़े मोहक मधुर प्रलोभन आये; पर भगवान्की कृपाने सारे प्रलोभनोंसे बचाया—ऐसी रक्षा की जैसे मातृ-परायण अबोध शिशुकी एक स्नेहमयी सावधान माँ करती है। मैं भटक जाता, यदि मुझे भगवान्की कृपा बार-बार रोककर न बचाती। आज मैं सर्वथा साधनहीन होनेपर भी इतना तो कह सकता हूँ कि भगवान्की अनन्त अपार अहैतुकी कृपाकी सुधाधारा निरन्तर मुझपर बरसती रही है और वह अब भी बरस रही है। मेरे अंदर निरन्तर प्रवेश करके मेरे सारे कलुष—समस्त विषको निर्मूल करती रही है और अब भी मेरे अंदर एक भी विष-बीजका वपन नहीं होने दे रही है। मैं कहीं कभी किसी कारणवश विषय-विष-बीजको ग्रहण करना चाहूँ भी तो वह नहीं लेने देती, दूरसे ही छीनकर झटक देती है और कभी कोई लेशमात्र आ जाता है तो उसे अपनी अमृत-धारासे सींचकर तुरंत अमृतके रूपमें परिणत कर देती है। मेरा तो सचमुच एकमात्र सम्बल यह अनन्त अहैतुकी भगवत्कृपा ही है।

आपने विस्तारसे उस जीवनकी तथा उसके बादके बदले हुए साधक-जीवनकी बातें लिखनेका आग्रह किया है, यह आपकी कृपा है। पर ये सब बातें लिखनेमें कोई औचित्य नहीं जान पड़ता। सब बातें लिखनेकी होती भी नहीं। इसलिये मैं क्षमा चाहता हूँ; केवल इतना ही कह सकता हूँ, उस समय मेरी रुचि और मेरे जीवनकी गति देशभक्तिकी प्रेरणासे राजनीतिकी ओर थी। हिंसात्मक क्रान्तिको भी मैं आवश्यक तथा अनि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानता था । मनमें कामना थी, अभिमान था, अन्यान्य दोष भी थे । अवश्य ही उस समयका राजनीतिक जगत् अधिकांशमें विशुद्ध त्यागमय होनेके कारण ये दोष भी वर्तमान राजनीतिक जगत्की स्थितिको देखते—(साधनदृष्टिसे त्याज्य दोष होनेपर भी) सांघातिक दोष नहीं, वरं गुण-रूप ही थे; इस समय भगवत्कृपासे मैं ऐसी चेष्टा करता हूँ कि जिससे मैं सर्वथा निरभिमान रहकर अपनेको सदा-सर्वदा भगवान्‌के हाथका यन्त्र अनुभव करता रहूँ ।—बस इतना ही ! आपका—

(२)

आत्मा नहीं मरता, जीव ही जन्मता-मरता दीखता है

प्रिय महोदय ! सादर हरिस्मरण । आपका कृपापत्र मिला । उत्तरमें निवेदन है—जैसे एक अनन्त आकाश है; वह कभी टूटता नहीं, नया बनता नहीं । स्वरूपतः उसमें कुछ नहीं होता । पर उसी आकाशसे जैसे अनन्त नगर-ग्राम बसे हैं, उन नगरों, ग्रामोंमें असंख्य भवन बने हैं, प्रत्येक भवनमें अलग-अलग विभिन्न नाम तथा आकारवाले कमरे-कोठरी आदि बने हैं । उन कमरे, कोठरीकी दीवालोंसे घिरे हुए जितने आकाशके अंश हैं, वे एक महान् आकाशकी दृष्टिसे नित्य आकाशस्वरूप ही हैं । पर दीवालके घेरेसे उतने अंशका नाम (जैसे मन्दिर, रसोईघर, पूजागृह, पाखाना आदि) तथा लंबाई-चौड़ाईका आकार—रूप बन गया है और समय-समयपर वे दीवालें टूटती हैं, नयी बनती हैं । कमरोंके नाम बदल जाते हैं । वास्तवमें इतना सब होनेपर भी महान् आकाश सदा स्वरूपस्थित तथा निर्लेप है । इसी प्रकार स्वरूपतः एक ही आत्मा सर्वत्र व्याप्त है । वह शस्त्रोंसे कटता नहीं, आगसे जलता नहीं, जलसे भीगता नहीं, वायुसे सूखता नहीं । वह सदा अच्छेद्य, अदाह्य, अक्लेद्य, अशोष्य है, वही नित्य है; सर्वगत है, घन है, अचल है, सनातन है ।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥
अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च ।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ॥

(गीता २ । २३-२४)

पर उसीमें प्रकृतिके संयोगसे नानात्व आ जाता है और जबतक आत्माका जितना जो अंश प्रकृतिस्थ रहता है, तबतक उसकी 'जीव' संज्ञा है और तबतक वह प्रकृतिके गुणोंको भोगता है और मरता तथा अच्छी-बुरी योनियोंमें जन्म लेता हुआ दिखायी पड़ता है ।

पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान् गुणान् ।
कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु ॥

(गीता १३ । २१)

यहाँ तत्त्वतः आत्मा नित्य, असङ्ग, निर्लेप, जन्म-मृत्यु-रहित होते हुए ही प्रकृतिके संयोगसे जन्म-मरणयुक्त देखा जाता है । पर मान लीजिये—किसी कमरेके अंदरका दीवालसे घिरा आकाश यह अनुभव करे कि "मैं तो महान् आकाश हूँ । ये सारे कमरे, कोठरी मुझमें ही बने हैं, इनकी पुरानी दीवालें टूटती, नयी बनती हैं । मैं अपनेको दीवालसे घिरा अंश होनेके कारण अबतक छोटा-सा कमरा मानता था और कमरेके नाम-रूपमें अहंकार करता था, इसीसे सुखी-दुखी होता था । अब मैं प्रकृतिके इस कल्पित संयोगका त्याग करके कल्पित नामरूपसे सम्बन्ध-रहित हो गया । प्रकृतिस्थ—प्रकृतिमें स्थित न रहकर स्व—आत्मामें अपने आत्मस्वरूप-में स्थित हो गया । अतः मेरे लिये अब सुख-दुःख समान हो गये । सोना, लोहा, पत्थर—समान हो गये; क्योंकि मैं अब 'स्व-स्थ' हो गया ।" ऐसा मानते ही क्षुद्र नामरूपात्मक व्यष्टि अहंकारसे निकलकर एक समष्टि-परमात्मामें स्थित होते ही, वह मुक्त हो जाता है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यही जीवन्मुक्ति है। मुक्ति तो पहले भी थी। मिथ्या मोह था। अब वह मोह नहीं रहा।

समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः।

इस प्रकार आत्मा एक है, जन्म-मरणरहित है, सुख-दुःख-शून्य है; पर प्रकृति-संयोगसे जीव अनन्त हैं। जीवमें असत् होनेपर भी सुख-दुःख-भोग तथा जन्म-मरणकी प्रतीति प्रत्यक्ष अनुभवरूपसे होती है और जबतक वह जीवरूप रहेगा, तबतक होती ही रहेगी। आशा है, इससे आपकी शङ्काका समाधान हो गया होगा। शेष भगवत्कृपा।

(३)

उच्च गति प्राप्त करनेके साधन

सम्मान्य श्रीशर्माजी, सादर प्रणाम। आपका पत्र मिला। उत्तरमें निवेदन है कि मनुष्यके लिये गिरना सहज है, चढ़ना कठिन है। जरा-सा पैर फिसला कि गिरा; पर चढ़नेमें प्रयास करना पड़ता है। वर्तमानमें तो सब ओर कुसङ्ग-ही-कुसङ्ग है। हाथ-पकड़कर बचानेवाले, रक्षा करनेवाले, चढ़नेमें सहायता करनेवाले पुरुषोंका—ऐसे वातावरणका मिलना प्रायः कठिन हो गया है। इस अवस्थामें मनुष्यका पतन हो जाय तो कोई आश्चर्य नहीं। पर इस समय भी जो सावधान तथा सचेष्ट हैं तथा जिन्होंने किसी अमोघ शरण्य शक्तिका आश्रय ले रक्खा है, वह गिरनेसे बचकर ऊँचे-पर चढ़ सकता है, अनायास ही ऊर्ध्व गतिको प्राप्त हो सकता है। इसके लिये करना यह है—

१—निकम्मा न रहकर काममें लगे रहना—काम भी ऐसा हो, जो बुरे विचारोंको उत्पन्न करनेवाला, बढ़ानेवाला न हो, और दबे बुरे विचारोंको उभाड़नेवाला न हो।

२—यथासाध्य आँख, कान, नासिका, जिह्वा और त्वक्—इन सभी इन्द्रियोंको तथा मनको सत्—भगवान्-के साथ जोड़े रखनेका प्रयत्न करना। इनके द्वा[रा] असत्—गिरानेवाले विषयोंका सेवन कभी न करना।

३—प्रतिदिन सद्विचारोंके उदय, संरक्षण त[था] संवर्धनके लिये सत्सङ्ग या सद्ग्रन्थोंका श्रद्धापूर्व[क] अध्ययन करना।

४—भगवान्‌के किसी भी नामका जप और यथा-साध्य स्मरण सदा करते रहना।

५—भगवान्‌की अमोघ तथा अहैतुकी अनन्त कृपा[पर] परम तथा अटल विश्वास रखना।

६—जहाँतक बने, किसीसे द्वेष न करना, किसी[का] बुरा न चाहना, न करना। दूसरेके हितकी बात सोचना करना, मित्रभावसे बर्त्ताव करना। दुखी प्राणियोंके दुःखसे निरन्तर करुणाद्रवित रहना। अपराध करने-वालोंका भी मङ्गल चाहना और वे संतस्वभावके ब[न] जायँ, ऐसी सद्भावना तथा भगवान्‌से प्रार्थना करना। दूसरोंकी निन्दा न करना।

७—अपने पास जो कुछ भी है, सब भगवान्‌की वस्तु समझकर अभावग्रस्त प्राणिमात्रकी सेवामें निरभिमा[न] होकर यथायोग्य लगाते रहना।

८—भगवान् सर्वशक्तिमान् सर्वलोकमहेश्वर हो[ते] हुए ही मेरे परम सुहृद् हैं, यह मानकर उनके अनन्य शरण होना। मेरा ऐसा अनुभव है कि उपर्युक्त साधनों[में] कुछका भी सेवन करनेपर मनुष्य सहज ही उच्चस्तर[पर] पहुँच सकता है। याद रखना चाहिये—भगवद्भाव त[था] दैवीसम्पदासे युक्त होना ही उच्चस्तरपर चढ़ना है। धन-अधिकार प्राप्त होना—यहाँतक कि इन्द्रपदका प्रा[प्त] होना भी उच्चस्तरपर चढ़ना नहीं है। उच्चस्तर[पर] पहुँचा मनुष्य ही मानव-जीवनके परम उत्कर्षस्वरूप मुक्ति—भगवत्प्राप्ति या भगवत्प्रेमकी प्राप्तिका अधिकारी होता है और अन्तमें उसे प्राप्त करके कृतार्थ हो जाता है। शेष भगवत्कृपा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़ो, समझो और करो

(१)

ईश्वर-विश्वास और उसका फल

घटना लगभग दो वर्ष पुरानी है। मैं राजस्थानके एक प्रमुख नगरके एक विद्यालयमें अध्यापन कार्य करता हूँ एवं घटनाके समय भी यही पवित्र कार्य कर रहा था। मैं एक ग्रामका रहनेवाला ब्राह्मण युवक हूँ। मेरे पूज्य पिताजीका स्वर्गवास मेरी शिशु अवस्थामें ही हो गया था; अतः ग्राममें कक्षा आठ तककी पढ़ाई समाप्त करनेके पश्चात् आगेकी पढ़ाईकी मुझे बड़ी चिन्ता रहती थी।

उन दिनों उक्त नगरसे एक सज्जन एक पड़ौसी ग्रामकी वसूली करने जाया करते थे। ये उक्त नगरके ही रहनेवाले थे। वह ग्राम एक ठिकानेके अधीन था और उस ठिकानेसे हमारा भी सम्बन्ध रहता आया है। अतः मेरा उनसे परिचय हो गया। मैंने देखा कि वे सज्जन न कभी किसी मन्दिरमें जाते, न कभी तीर्थपर जाते, न कभी कोई व्रत करते; परंतु गरीबोंकी सेवाके लिये तो उनके तन-मन एवं धन——तीनों ही सदा तैयार रहते थे।

जब मैंने अपनी आगेकी पढ़ाईकी पीड़ा उनसे कही, तब उन्होंने मुझे बहुत ही सान्त्वना देकर कहा——'तुम अपने ग्रामके विद्यालयका अध्ययन समाप्तकर मेरे पास नगरमें चले आना, मैं तुम्हारे आगेके अध्ययनके लिये सब समुचित व्यवस्था कर दूँगा।' कुछ दिनों बाद जब मैंने अपने ग्रामके विद्यालयका अध्ययन समाप्त कर दिया, तब नगरमें मैं उनके पास आ गया। उन्होंने मेरी सब प्रकारकी समुचित व्यवस्था कर दी, जिससे उनकी कृपा एवं प्रेरणासे मैंने बी० ए० तक अध्ययन पूरा कर लिया एवं स्वेच्छासे अध्यापन-कार्य करने लगा।

मैं मन-ही-मन अपनेको उनके इस कृपाप्रसादका बहुत ऋणी मानता था तथा सोचता रहता था कि मैं कब किस रूपमें इस उपकारका किंचित् भी बदला चुकाकर आत्मसंतोष प्राप्त करूँ। पर ऐसा कोई अवसर ही उन्होंने नहीं आने दिया। उन्होंने केवल मेरी ही पढ़ाईकी व्यवस्था की हो सो नहीं; न जाने कितने गरीब छात्रोंको पढ़ानेकी व्यवस्था वे करते रहते थे एवं अब ठिकानेसे पेंशन होनेपर भी वे वैसे ही गरीबोंकी सेवा करते रहते हैं।

अबसे दो वर्ष पहले वे सज्जन प्रातःकाल मेरे निवासस्थानपर आये और मुझे अपने घर लिवा ले गये। घर ले जाकर उन्होंने मुझसे कहा——'भैया! मेरा एक बहुत जरूरी कार्य है, जिसे तुम्हीं कर सकते हो, और कोई नहीं। बताओ, तुम करनेके लिये तैयार हो या नहीं?' मैं उनकी बात सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ तथा मैंने सहर्ष उनका कार्य करनेकी स्वीकृति दे दी। मैं तो था ही इसी प्रतीक्षामें।

मेरी स्वीकृति प्राप्तकर उन्होंने मुझसे कहा——'तुमको मेरी ओरसे एक मुकदमेमें झूठी गवाही देनी है।' झूठी गवाहीका नाम सुनते ही मैं तो सन्न रह गया। मेरी मुखाकृति देखकर वे सज्जन मेरी बातको भाँप गये एवं कहने लगे कि 'घबरानेकी कोई बात नहीं है; मुझपर जो मुकदमा दायर किया गया है, वह भी झूठा है। वास्तवमें उनके विरुद्ध दायर किया गया दावा सर्वथा झूठा था। परंतु मेरे सामने प्रश्न उनके मुकदमेका नहीं, मेरा स्वयं अपना था। मैं झूठी गवाही कैसे दूँ? मेरे पैर खिसक-से रहे थे। पृथ्वी फिर-सी रही थी। उन्होंने मुझे बहुत समझा-बुझाकर वकीलका पता बताया तथा सायंकाल सात बजे वहाँ पहुँच जानेके लिये कहा।

अब तो मेरा चित्त उड़-सा रहा था। खाना-पीना कुछ नहीं सुहाता था। कोई उपाय दृष्टिगत नहीं हो रहा था। घरमें जब धर्मपत्नीको उक्त घटनाके बारेमें कहा, तब उसने भी यही कहा कि 'मेरा निर्णय अविवेकपूर्ण रहा।' परंतु मैं तो पूर्ण दृढ़ताके साथ स्वीकृति दे चुका था।

बचपनसे ही मैं बहुत अधिक ईश्वरविश्वासी हूँ और आपत्ति-कालमें तो करुणासागर ही अकारण करुणा करते हैं। 'झूठी गवाही हे ईश्वर! मैं कैसे दे पाऊँगा? आप मेरी रक्षा कीजिये और मुझे इस झूठे चक्करसे बचाइये।' सायंकाल निश्चित समयपर मैं वकीलके घर पहुँचा, वे सज्जन वहाँ पहलेसे ही बैठे थे। मेरे जाते ही वकील महोदयने मेरे नाम तथा व्यवसायके बारेमें पूछा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरे सब कुछ बता देनेके पश्चात् वकील साहबने उस लिस्टको देखा, जिसमें उन सज्जनकी ओरसे कोर्टद्वारा स्वीकृत गवाहोंके नाम थे। उन नामोंमें मेरा नाम नहीं था। अतः वकील साहबने कहा—'साहब! गवाहोंकी सूचीमें इनका तो नाम ही नहीं है, इनकी गवाही कैसे हो सकेगी?' इस तथ्यको सुनकर मैं मन-ही-मन ईश्वर-को बार-बार धन्यवाद देने लगा। परंतु उक्त सज्जनने कहा कि विरोधियोंने भी तो बिना सूचीमें नामके गवाही करवायी है। इसपर वकील साहबने कहा कि 'उन्होंने आपकी स्वीकृति ले ली थी।' इस विषयपर उन दोनोंमें कुछ कहा-सुनी-सी हुई। फिर उन सज्जनने कहा कि 'वकील साहब! मेरा चाहे जो कुछ खर्च हो जाय, इनकी गवाही होना तो नितान्त आवश्यक है।' मेरे सामने पुनः विपत्तिका पहाड़ आ खड़ा हुआ। उन दोनोंने अलग जाकर कुछ बातचीत की। इसके पश्चात् वकील साहब-ने एक छोटा-सा मजमून बना दिया एवं सारी स्थिति संक्षिप्तरूपसे मुझे बता दी। मुझसे यह भी कह दिया गया कि 'इस मजमूनके अनुसार ही तुम्हें सब कुछ कहना है।' मैं उस संकटपूर्ण मजमूनको लेकर लौट आया।

तीन दिन पश्चात् मुझे गवाही देनी थी। मेरा खाना-पीना-सोना सब हराम हो रहा था। मैं अपने इष्टदेव अकारण करुणासागर भगवान् गोविन्दसे प्रार्थना कर रहा था कि 'मुझे आप ही इस संकटसे बचा सकते हैं।' मैंने गवाहीके एक दिन पहले उक्त सज्जन-से कहा कि 'गवाहीवाले दिन मैं ग्यारह एवं बारह-के बीच अदालतमें उपस्थित नहीं हो सकूँगा; क्योंकि उस दिन हमारा निरीक्षकके द्वारा निरीक्षण होगा।' उन्होंने कहा कि 'वकील साहबसे कहकर तुम्हारी गवाहीका समय तीन बजे बाद रखवा दूँगा।' मैं अपने सब प्रयत्नोंमें असफल हो रहा था तथा 'हाँ' करनेके पश्चात् मना करना भी मुझसे नहीं बन पा रहा था।

आखिर वह दिन भी आ ही पहुँचा, जिस दिन मुझे झूठी गवाही देनी थी। ईश्वरके ऊपरसे विश्वास हटता-सा जा रहा था। द्रौपदी, गजराजकी घटनाओंको मैं महत्त्व-हीन-सा समझ रहा था। कभी तो मैं अपनी नासम[झी] पर झल्लाता था और कभी ईश्वरपर। खैर, तीन [बजे] मैं कोर्ट पहुँच गया। वे सज्जन दरवाजेपर ही खड़े-[खड़े] मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे। मुझे देखते ही वे प्रसन्न [हो] उठे तथा उन्होंने स्वयं मेरी साइकिलको लेकर साइकि[ल] स्टैंडपर जमा करवा दिया। तदनन्तर वे मुझे [तु]रं[त] न्यायाधीशके सामने ले गये।

न्यायमूर्तिके कमरेके बाहर मुझे खड़ा करके [वे] इसकी सूचना न्यायाधीशको देने गये। मैंने देखा [कि] वे सज्जन भी अंदर ही खड़े हैं, जिनके विपक्षमें मु[झे] बयान देने थे। मैं पानी-पानी हो रहा था तथा म[न]-ही-मन ईश्वरको बुरा-भला न जाने क्या-क्या कह रहा था। मैं ऐसी संज्ञा-शून्य स्थितिमें हो रहा था कि गवा[ही] देनेमें भी असमर्थता प्रकट होती जा रही थी। पर[ंतु] यहाँ जो रोमाञ्चकारी आश्चर्य-घटना घटी, उसको मैं कि[स] प्रकार लिपिबद्ध करूँ? उक्त सज्जनने जब न्यायमूर्तिको जा[कर] यह संदेश दिया कि 'मेरा गवाह हाजिर है' तब न्यायमूर्तिने [य]ह कहकर मेरी गवाही लेनेसे इन्कार कर दिया कि 'अब आगे और गवाहोंके गवाहीकी आवश्यकता नहीं रही, आपके ए[क] गवाहके बयान ही तथ्यपूर्ण हो चुके हैं।'

मैंने बाहर खड़े न्यायाधीशकी यह बात सुनी तो मन-ही-मन प्रसन्न हुआ तथा अपने उन प्यारे प्रभु[से] क्षमायाचना करने लगा, जिनको न जाने मैंने क्या-क्या कहकर कोसा था। उक्त सज्जनने बाहर आ[कर] कहा कि अबतक तो न्यायाधीश बार-बार यह कह [रहे] थे कि 'तुम्हारे गवाहको बुलाओ, तुम्हारे गवाहको बुलाओ' और अब वे ही मना करने लगे। मैं उनको नमस्का[र] करके चला आया। साइकिल उठायी तथा एकान्त-में जाकर बहुत रोया। दयासागरसे क्षमा करनेकी प्रार्थना की तथा दृढ़ विश्वासपूर्वक आगेके लिये सचेत हो गया।

धन्य हो दीनदयाल! जो आप मेरी तुच्छ विनती सुनकर न्यायाधीशमें आ बसे। आपकी लीला आप ही जानें।

हरिलाल शर्मा
स० अ० श्रीमाहेश्वरी उच्च विद्यालय, जयपुर (राजस्थान)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२)

श्रवननि और कथा नहिं सुनिहौं ।

बहुत पुरानी बात नहीं है। एक साधक थे। उनका ऐसा स्वभाव बन गया था कि वे या तो भगवान्‌के लीला-गुणका श्रवण-स्मरण करके भावनिमग्न हुए आँसू बहाया करते या समाधिस्थ हो जाते थे। भगवान्‌के सिवा कुछ भी सुननेको उनका मन तथा उनके कान सदाके लिये सर्वथा इन्कार कर चुके थे। जो सुनना ही नहीं चाहता, वह स्वयं वाणीसे बोलकर चर्चा तो क्या करेगा। अतएव यह देखा गया कि वे जब होशमें रहते—स्नान, नित्यकर्म, भोजनादि तथा किसी समय कुछ अन्य कार्य भी करते, तब सहज ही या तो कोई ऐसे सज्जन उस समय उनके पास रहते, जो लीला-गुण सुनाया करते या मन-ही-मन वे स्वयं स्मरण करके गुनगुनाया करते। शेष समय वे प्रायः समाधिस्थ रहते। आश्चर्यकी बात तो यह थी कि वे कभी-कभी बड़ी-बड़ी जिम्मेवारीके कार्य करते भी देखे जाते थे; पर उस समय भी उनका स्मरण-कार्य एक क्षणके लिये भी नहीं रुकता था—मानो श्रीमद्भगवद्गीतोक्त **'सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर'** भगवान्‌की इस आज्ञाके वे सजीव मूर्तिमान् स्वरूप थे।

उन्होंने एक बार लिखकर बताया था कि उन्होंने भगवत्कृपाके आश्रयपर बहुत पहले—लगभग सोलह वर्षकी अवस्थामें ही किसीकी निन्दा न सुननेकी प्रतिज्ञा कर ली थी और भगवान्‌से यह प्रार्थना की थी कि 'कानमें यदि किसीकी निन्दाका शब्द चला जाय तो उसी समय मेरे प्राण निकल जायँ।' इसका यह फल हुआ कि प्राण तो नहीं निकले, पर कभी किसीकी निन्दाका शब्द उनके कानमें पड़ जाता—यद्यपि ऐसे अवसर बहुत कम ही आये—तो उनके सारे शरीरमें भयानक जलन हो जाती—अग्नि-सी लग जाती, जिसका सहन करना असम्भव हो जाता। इसी समय अकस्मात् किसी भी सूत्रसे अप्रत्याशित रूपसे किसीके द्वारा भगवान्‌के लीला-नाम-गुण सुनायी देने लगते, तब जलन शान्त होती।

इसके बाद यह इच्छा उत्पन्न हुई और इसके लिये भी भगवान्‌से विश्वासपूर्वक प्रार्थना की गयी कि 'जबतक जीवन रहे, प्रातःकाल उठनेसे लेकर रातको निद्राग्रस्त होनेके समयतक भगवान्‌के लीला-गुणोंका श्रवण-स्मरण अनवरतरूपसे होता रहे; एक क्षण भी ऐसा न हो और समाधि भी न हो जाय तो प्राण निकल जायँ।' इसका मङ्गल परिणाम यह हुआ कि प्राण तो नहीं निकले, पर शरीरमें वैसी ही जलन होने लगी, जैसी परनिन्दाका शब्द कानमें पड़नेपर होती थी। पर यह बात बहुत दिनोंतक रही नहीं। श्रवण-स्मरण निरन्तर होने लगा और उसके छूटते ही सहज ही समाधि होने लगी। उन्होंने बताया था कि "यह सब भगवान्‌की कृपासे ही हुआ। अवश्य ही मेरी इच्छा अनन्य तथा तीव्र थी और भगवत्कृपासे ही भगवत्कृपा-पर मेरा विश्वास था—'जासु कृपा नहिं कृपा अघाती।'"

यह देखा गया कि भगवत्कृपासे मृत्युके समयतक उनका श्रवण-स्मरण चालू रहा। मृत्युसे दस घंटे पहले उनकी समाधि हो गयी थी। तीन घंटे पहले समाधि टूटी और वे स्वयं लीला-गुण-स्मरण करते हुए स्पष्ट गुनगुनाने लगे। लोग लीला-गुण सुना भी रहे थे। धन्य !

—हरिशंकर अग्रवाल

(३)

पुराना कोट

जेठाके पास सचमुच ओढ़नेके लिये कुछ भी नहीं था। पुराने चिथड़ोंमें कारी लगाकर पति-पत्नी तथा दोनों बच्चे गुजारा करते थे। माणेक कभी नहाती हो, कपड़ा धोती हो या सिरमें तेल डालती हो, इसमें मुझे संदेह ही था। जेठा मेरे पास कपड़ा माँग रहा था, इसी समय माणेक भी बच्चोंको लेकर वहाँ आ गयी—उसने कदाचित् सोचा होगा कि अकेला जेठा अपनी दुःख-दर्दभरी हालतका पूरा बयान शायद न कर सकेगा। इसके शरीरसे बदबू निकल रही थी। मेरी नाक उसे सह न सकी और उसके पाससे तुरंत निकल भागनेकी मैंने कोशिश की। इसके लिये मैंने कहा—'अच्छी बात है, कल घर लौटते समय मिलना।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अकालके दिनोंमें जेठा मिट्टी खोदता था—पति-पत्नी दोनों मिलकर मिट्टी खोदनेका काम करते थे। जेठा पहलेसे ही मेहनती था, अपनी शक्तिभर काम करता था। पर दिनभर सख्त मेहनत करनेपर भी किसी दिन भी डेढ़ रुपयेसे ज्यादा वह नहीं कमा सका। किसी-किसी दिन तो और भी कम मिलता। चार जीव और इतनी-सी कमाई और बाजारमें एक कीलो मकईका भाव एक रुपये बारह पैसेसे लेकर सवा रुपयेतक था। ऐसी हालतमें वे भूखे रहकर जाड़ेमें एक धाबला भी कैसे खरीद सकते?

मैंने निश्चय कर रक्खा था कि चारोंको कपड़ा देना है। मनमें था कि जेठाको विलायतसे आया हुआ एक कोट देना चाहिये। दिनमें पहनेगा और रातको सोते समय ओढ़ भी लेगा।

संध्याको सब आये। मैंने जेठासे पूछा—'क्यों, यह कोट चाहिये न? पुराना है पर है, बहुत बढ़िया।'

'यह तो आपके लायक है, सेठ!' उसने कहा। तब मैंने उसको समझाया—'नहीं जेठा! अकालकी बात सुनकर विलायतसे अंगरेजोंने बहुत कपड़े भेजे हैं। उन्होंने जो कपड़े अपने शरीरोंपर पहन रक्खे थे, उन्हींको उतारकर भेज दिया है। यह कोट किसी अमीर अँगरेजका लगता है। लंबा कोट है, अतः रातको भी काम आ जायगा।'

'जैसी आपकी मरजी।' लंबी साँस छोड़ते हुए उसने कहा। 'क्यों, नहीं पसंद है?' मैंने तुरंत पूछा।

'गरीबकी पसंदगी कैसी? परंतु आजतक कभी किसीके पहनकर उतारे हुए कपड़े पहननेका अवसर नहीं आया था। मेरे नन्हेसे खेत तथा कुदालकी कमाईसे पेट भरता और शरीर भी ढक जाता। लेकिन समय सब कुछ करवाता है। गरीब होनेपर भी कभी हाथ लंबा करनेका मौका नहीं आया था।' जेठाकी बातोंमें वेदना थी।

'समय अपना काम करता है।' मैंने उसको हिम्मत देते हुए कहा। इस बीच माणेक खड़ी-खड़ी कपड़ोंके ढेरको एकटक देख रही थ

'हाँ, सेठ! समय अपना काम करता ही है; परंतु मिट्टीके साथ काम करनेका मेरा समय न बदलेगा, मुझे ऐसा लगता है।'

सर्दीके दिन होनेके कारण सूर्य पहाड़के पी चला जा रहा था। जेठाके हाथोंपर मैंने कोट र दिया। बम्बईकी सहायता-समितिके द्वारा मिली हु एक साड़ी मैंने माणेकको दी और बच्चोंको एक-ए बुशशर्ट पहनाया। ऐसा करके मैंने दयाके सुख अनुभव किया। माणेक प्रसन्न हो गयी। मैंने दे कि जेठा जाते-जाते कोटको बार-बार ऊँचा उठा देख रहा था और माणेकको कुछ कह रहा था।

जेठा चला गया। परंतु मेरा मन मुझे बार-ब कहने लगा—अँगरेजका पहना हुआ पुराना कोट— हाँ पहना हुआ, उतारा हुआ। मुझे याद आया—जब मैं ग वर्षका था, तब सन् १९२१में विदेशी कपड़ोंकी होली मैंने माँसे माँगकर नीले रंगका एक बढ़िया कमीज दिया था और जब वह कमीज अग्निमें भस्मीभूत गया, तब मैंने दौड़ते हुए घर जाकर माँसे कहा था— 'माँ! कमीज जल गया, अब मैं विलायती कपड़ा सिलाऊँगा।' वही मैं आज किसी अंग्रेजका पहना हु पुराना कोट वितरण कर रहा हूँ और वह किसको? स्वाभिमान और कुदालके मालिक जेठाको और अभी तो कितने कुदालवाले बाकी हैं, जिनके हा ऐसे कोटके लिये लंबे किये ही रह जायँगे। अंग्रे जानेके बीस वर्ष बाद भी उनका पहना हुआ पुराना को

(अखण्ड आन

(४)

कुसङ्गसे पतन और सद्व्यवहारसे सुधार

हमारे पड़ोसमें एक ब्राह्मणपरिवार रहता था। मा पिता पुराने विचारोंके धर्मभीरु सनातनी थे, परंतु उ दोनों लड़के हालकी हवामें उड़नेवाले थे। बात हुई कि ब्राह्मण देवताके एक यजमान थे धनी। उ मनमें सद्भावना जागी, उन्हें दया आयी और उ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्राह्मणके दोनों पुत्रोंको उच्च शिक्षा दिलाकर सम्पन्न-सुखी बनानेका निश्चय किया। ब्राह्मण देवताने कहा भी कि 'इन्हें संस्कृत पढ़ाकर संध्या सिखानी है और सनातन धर्मके रहस्योंको जाननेवाले सदाचारी पण्डित बनाना है। ब्राह्मणके लिये धनका कोई महत्त्व नहीं है। हमारा संतोष, सदाचार तथा सादगीभरी गरीबी ही हमारी शोभा है; क्योंकि हमें उसमें संतोष है और हम किसी भी अभावकी पीड़ासे दुखी नहीं हैं।' किंतु यजमानके मनमें पण्डितजीकी गरीबी खलती थी। वे उनके संतोषका मूल्य तथा महत्त्व नहीं समझते थे। उन्हें यह पता नहीं था कि असंतोषी धनी भी बहुत दुखी रहता है। उनकी नीयत अच्छी थी। अतएव उन्होंने अनुनय-विनय करके पण्डितजीको समझा दिया। पण्डितजी तर्कसे समझे तो नहीं, परंतु यजमानकी हितैषिताके सामने कुछ बोल नहीं सके। यजमानने यह सोचकर कि लड़के घर रहेंगे तो उनका विकास नहीं होगा, उनके रहने तथा खाने-पीनेकी व्यवस्था स्कूली पढ़ाईसे लेकर कालेज तक बोर्डिंगमें कर दी। यजमान कुसङ्गके दुष्परिणामकी बात भूले हुए थे। अस्तु,

लड़के सदाचारी ब्राह्मणका घर छोड़कर उच्छृङ्खलता-भरे छात्रावासोंमें रहकर शास्त्रज्ञानसे तो वञ्चित रहे ही, क्रमशः असदाचारी, अभक्ष्यभोजी, धर्म तथा भगवान्में अविश्वासी, यथेच्छाचारी, उच्छृङ्खल बनने लगे। उनको अब माता-पिताके प्रति उदासीनता, घरकी जीवन-पद्धतिसे घृणा, धर्मसे द्वेष तथा ब्राह्मणोचित वेश-भूषा, खान-पान, आचार-विचारमें असभ्यता दिखलायी देने लगी। वे कोट-पतलून पहनने और टाई लगाने लगे। माता-पिताका परिहास तथा उनकी उपेक्षा तो उनका स्वभाव ही बन गया। इसी बीच यजमान महोदयका देहावसान हो गया। ये दोनों भाई एक शराबके कारखानेमें तथा दूसरे एक बड़े होटलमें मैनेजर हो गये। उनके जीवनमें उच्छृङ्खलता-के साथ ही असंतोष था, दुःख था। वे दिन-रात मानसिक अभावोंकी आगमें जलते थे। माता-पिताको बड़ा दुःख था, पर वे बेचारे निरुपाय थे। उनके सारे प्रयत्न असफल हो चुके थे। सङ्ग-दोषसे वे दोनों शिकारके व्यसनी हो गये। जब अवकाश मिलता या कोई शिकारी पार्टी आती, तब जरूर निर्दोष पशु-पक्षियोंकी हत्या करने जाते; पता नहीं कितने प्राणियोंका इन्होंने वध किया होगा। पर भगवान्‌की लीला विचित्र है।

इनके एक ममेरे भाई थे—शशिकान्त द्विवेदी। उन्होंने एम्० ए० पास किया था। परंतु बचपनसे ही वे अपने सदाचारी, कट्टर निरामिष-भोजी, ब्राह्मणोचित व्यवहार एवं दृढ़ निष्ठावाले पिताकी सेवामें रहे। पिताने आरम्भसे ही इन्हें सदाचार, शास्त्र-निष्ठाकी शिक्षा दी। घरमें ही पढ़ाया। भाग्यसे उन्हींके एक सम्बन्धी दृढ़ धर्मात्मा आचार्य इन्हें मिल गये। अतएव वे अंग्रेजीमें एम्० ए० होकर भी सदाचारी रहे और ब्राह्मणोचित व्यवहारसे तनिक भी विचलित नहीं हुए। पता नहीं क्यों एक दिन उनके मनमें अपने फुफेरे भाइयोंसे मिलनेकी तीव्र इच्छा हो गयी और उस समय उनके घर पहुँचे, जब दोनों भाई बंदूकें लेकर शिकारको जा रहे थे। शशिकान्तको आते देखकर कुछ देर ठहर गये। शशिकान्तने उनकी चालढाल, वेश-भूषा, बोल-चाल तथा कार्यकलापसे उनकी स्थितिको समझ लिया। शशिकान्तके मनमें दया और प्रीतिका उदय हो आया। उन्होंने मन-ही-मन निश्चय किया, इन्हें कुमार्गसे हटाकर ठीक राहपर लानेका। उन्होंने प्रेम तथा सद्व्यवहारका साधन अपनाया। उनके दोषोंकी चर्चा नहीं की और बड़े स्नेहसे मधुर शब्दोंमें यह कहकर चलने लगे कि 'आज तो तुमलोगोंको जानेकी जल्दी है। भैया, मैं फिर आऊँगा। तुमलोगोंसे मिलकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। तुमलोगोंसे बहुत दिन बाद मिला। सचमुच तुम-लोग मुझे बड़े प्यारे लगते हो। अब तो तुमसे बार-बार मिलूँगा।' वे भी मधुर शब्द सुनकर मुग्ध-से हो गये। बोले—'भैया! तुम्हें आपत्ति न हो तो हमारे साथ चलो। देखना, शिकार कैसे खेला जाता है।' शशि-कान्तने कहा—'तुम्हारे साथ जानेमें तो मुझे प्रसन्नता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है; परंतु भैया, मैं कायर हृदयका आदमी हूँ । मुझसे किसीके द्वारा किसी भी प्राणीका मारा जाना देखा नहीं जाता। शायद मैं बेहोश हो जाऊँ । अतः आज तो नहीं, फिर कभी साहस बटोरकर तुम्हारे साथ चलूँगा ।' वे दोनों भाईकी बुजदिलीपर हँस दिये । शशिकान्त चला गया, अपने स्नेहके निशान उनके हृदयोंपर छोड़कर ।

दो-तीन दिनोंके बाद वे फिर आये । आज वे घरसे बहुत-सी चीजें उन लोगोंको खिलानेके लिये बनवाकर लाये थे । वे बड़े प्रेमसे मिले । शशिकान्तने अपने हाथों परसकर उन दोनोंको भोजन करवाया । उन्होंने जब वे सात वर्षके थे, तभीसे छात्रावासोंमें रहना शुरू कर दिया था । ऐसा भोजन कभी मिला ही नहीं था । आज उन्हें बड़ी ही प्रसन्नता हुई । वे बार-बार बड़ाई करने लगे भाईके स्नेहकी तथा उनके यहाँकी आयी हुई चीजोंकी ।

किसीको अपने अनुकूल बनाना हो, अपनी बात उसे मनवानी हो तो उसका उपाय उसके दोष बताकर उसपर नाराज होना, उसे डाँट-डपट करना, घृणा करना, निन्दा करना, उन्हें नीच मानना आदि नहीं है; उसका उपाय है—उसके अंदर सचमुच जो भी अच्छी बातें हों, गुण हों (अच्छी बात या गुण थोड़े-बहुत सभीमें होते हैं), उनकी निष्कपट प्रशंसा करना, उसके साथ हृदयसे प्रेम करना, उसके साथ सक्रिय सद्व्यवहार करना और आवश्यकतानुसार उसकी सेवा करना बिना अहसान जनाये । शशिकान्तने उन भाइयोंके साथ यही व्यवहार किया । जब उन दोनोंका शशिकान्तके प्रति विश्वास बढ़ गया, आत्मीयता जाग उठी, उसे वे अपना परम हितैषी मानने लगे, तब धीरे-धीरे शशिकान्तने रोज आकर अनेक युक्तियाँ तथा बुरे कार्योंके बुरे परिणामके उदाहरण—सच्चे दृष्टान्त देकर उन्हें असदाचार, यथेच्छाचार, अभक्ष्यभोजन, माता-पिताकी अवज्ञा, हिंसा आदि कार्योंके दोष समझाना शुरू किया ।

उनपर असर पड़ा । वे सचमुच बदलने लगे । एक दि
वे शिकारको गये, शशिकान्तको भी साथ ले गये।
वहाँ एक हरिनके बच्चेको गोली लगी । होनीकी बा
उसकी माँ हरिनी दौड़ी आयी, उसने बड़ी करुण दृष्टि
मरे बच्चेकी ओर देखा, फिर रोषभरी दृष्टिसे शिकारियों
ओर। तदनन्तर वह पछाड़ खाकर गिर पड़ी और बच्चे
लाशके पास ही उसने प्राण त्याग कर दिये । शशिका
को अवसर मिला, उन्होंने दोनों भाइयोंको समझाया—
हरिनीके दुःखकी व्याख्या की, जिसे सुनकर
दोनोंके हृदय द्रवित हो गये । उन्होंने भविष्यमें शिका
न खेलनेकी—प्राणिमात्रकी कभी हिंसा न करनेकी
प्रतिज्ञा की । आज वे बहुत ही बदले हुए घर लौटे
उनके हृदयमें अबतककी अपनी हिंसा-वृत्ति त
अन्यान्य दोषोंके लिये पश्चात्तापकी अग्नि जल उठी
पश्चात्ताप ही वास्तविक प्रायश्चित्त है । उन्होंने सचमु
अपनेको सुधारना चाहा, शशिकान्तके प्रति आ
समर्पण कर दिया और सुधारके लिये प्रार्थना की त
उसकी हरेक बात माननेका वादा किया । शशिका
उनकी बड़ी प्रशंसा की । उनका जीवन बदल गया
वे घर आये । माता-पिताके चरणोंमें गिरकर उनसे क्ष
माँगी । माता-पिता आज बड़े सुखी थे । उनका रो
रोम खिल रहा था और रोम-रोमसे आशीर्वादकी
सुधाधारा निकल रही थी । उन्होंने शराबके कार
और होटलकी नौकरी छोड़ दी । उन्हीं यजमा
लड़कोंकी चेष्टासे उन्हें पहलेकी अपेक्षा अ
अर्थोपार्जनके निर्दोष काम मिल गये । दोनोंके जी
पवित्र ब्राह्मणजीवन हो गये । खान-पान, आचार-विचा
सब शुद्ध हो गये । दोनोंके विवाह हो गये । शशिका
को बड़ी प्रसन्नता थी और वे भी शशिकान्तके प्रति हृ
कृतज्ञ थे, अपनेको सदा उनके ऋणी मानते थे ।

—सदानन्द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशित हो गयी ! एक नयी पुस्तक !! प्रकाशित हो गयी !!!

श्रीमहामन्त्रराजस्तोत्रम् [हिंदी भाषासहित]

(निर्माता—पण्डितप्रवर स्वामी श्रीलक्ष्मणजी शास्त्री; अनु०—साहित्याचार्य पाण्डेय पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री 'राम')

आकार २०×३० सोलह पेजी, पृष्ठ-संख्या ५६, सुन्दर बहुरंगा चित्र, मूल्य पचीस पैसे, डाकखर्च अलग।

यों तो रामनामका अवलम्बन लेकर कविकुलगुरु आदिकवि वाल्मीकि तथा गोस्वामी तुलसीदासजीने रामचरितका आपादचूल छन्दोबद्ध निर्माण कर ही दिया है। साथ ही अन्यान्य कवियोंद्वारा रचित रामनामसम्बन्धी अनेकविध स्तोत्र भी जनताके समक्ष उपस्थित हैं, जिनसे भावुक भक्त प्रतिदिन लाभ उठा रहे हैं। परंतु यह महामन्त्र-राज-स्तोत्र कविकी अद्भुत कृति है। यह रामनाम-स्तोत्रोंमें अपना निराला स्थान रखता है। इसकी भाषा सरल और सुबोध तथा शैली मनोहर है। वसन्ततिलकावृत्तमें गुम्फित होनेके कारण इसके श्लोक चुम्बककी भाँति मनको आकर्षित कर लेते हैं। छपाईमें पूर्वार्ध और उत्तरार्धमें विभिन्नता कर देनेसे इसकी सुन्दरतामें चार चाँद लग गया है।

प्रस्तुत स्तोत्रमें ११८ श्लोक हैं, जिनमें ११६ श्लोकोंमें स्तोत्र समाप्त किया गया है। प्रत्येक श्लोकमें नौ रामनाम हैं। इस प्रकार प्रतिदिन २१ पाठ करनेसे २१९२४ रामनामकी संख्या पूरी हो जाती है, जो प्रतिदिनकी २१६०० श्वास-संख्यासे भी अधिक है। इस स्तोत्रकी महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसका पाठ करनेसे भगवन्नामका जप अनायास ही हो जाता है। अतः यह आबाल-वृद्ध, अध्यापक-छात्र, पढ़-अपढ़—सभीके लिये अत्यन्त उपयोगी एवं लाभप्रद स्तोत्र है।

इसके एक श्लोकका नमूना—

पूर्वं भवान् दशरथस्य गृहेऽर्कवंशे कौशल्यया समभवत् खलु रामनामा।
श्रीराम राम "रविवंशज" राम राम श्रीराम राम शरणं मम राम राम॥

नौ पुस्तकोंके नये संस्करण

१-**गीताभवन-चित्र-दर्शन**—गीताभवन, ऋषिकेशके ३५ बहुरंगे, १ सादे चित्रोंका दर्शन और संक्षिप्त परिचय, आकार १०×७॥, संस्करण ५, पृष्ठ-संख्या ४०, मूल्य	... ...	३.००
२-**ईश्वरकी सत्ता और महत्ता**—संस्करण ५, पृष्ठ-संख्या ४८०, मूल्य	... ...	१.५०
३-**तत्त्व-चिन्तामणि भाग ७ (बड़ा)**—ले० श्रीजयदयालजी गोयन्दका, संस्करण ४, पृष्ठ-संख्या ५२०, सचित्र मूल्य		१.२५
४-**गीतामें भगवान् श्रीकृष्णका परिचय**—ले० आचार्य अक्षयकुमार वन्द्योपाध्याय एम्० ए०, संस्करण २, पृष्ठ-संख्या २८०, सुन्दर तिरंगा चित्र, मूल्य	... ...	१.२५
५-**परमार्थ-पत्रावली चतुर्थ भाग**—ले० श्रीजयदयालजी गोयन्दका, प्रस्तुत पुस्तकमें श्रीगोयन्दकाजीके ९१ पत्रोंका संग्रह है, जो सर्वसाधारणके लिये बहुत ही उपयोगी है। संस्करण २, पृष्ठ-संख्या २१२, मूल्य		.६०
६-**शिक्षाप्रद पत्र**—ले० श्रीजयदयालजी गोयन्दका, संस्करण ३, पृष्ठ-संख्या २४२, सचित्र, मूल्य	...	.६०
७-**प्रेमी भक्त उद्धव**—संस्करण ११, पृष्ठ-संख्या ६४, रंगीन चित्र १, मूल्य	... ...	.२५
८-**अपरोक्षानुभूति**—शंकरस्वामिकृत सानुवाद, संस्करण १२, पृष्ठ-संख्या ४०, मूल्य	... ...	.२०
९-**भारतमें आर्य बाहरसे नहीं आये**—ले० श्रीनीरजाकान्त चौधरी (देवशर्मा), संस्करण दूसरा, पृष्ठ-संख्या ३६, मू०		.१८

सभी पुस्तकोंका डाकखर्च अलग—

पुस्तकोंका आर्डर यहाँ देनेसे पहले स्थानीय विक्रेताओंसे प्राप्त करनेकी चेष्टा करनी चाहिये, इससे भारी डाकखर्चकी बचत हो सकती है।

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रजि० सं० एल्० १७

‘कल्याण’क… उपासना-अङ्क’

‘कल्याण’का आगामी जनवरी १९६८ का … अङ्क ‘उपासना-अङ्क’ प्रकाशित किया जा… ऐसा निश्चय हुआ है। इस अङ्कमें उपासनासम्बन्धी प्राय… भी विषयों तथा विभिन्न उपासना-पद्धतियों… सम्बन्धमें विभिन्न प्रकारके लेख रहेंगे। विषय-सूची जूनके अङ्कमें प्रकाशित होगी, अतएव उपासना… सम्बन्धमें अधिकारी विद्वान्, अनुभवी उपासक निबन्ध भेज सकते हैं। प्रकाशनका निश्चय ले… देखनेपर ही हो सकेगा।

28-5-66
15-5-66

हनुमानप्रसाद पोद्दार
सम्पादक—‘कल्याण’, गोर…

26 MAY 1967

श्रीगीता-रामायणकी आगामी परीक्षाएँ

श्रीमद्भगवद्गीता और श्रीरामचरितमानस—ये दो ऐसे ग्रन्थ हैं, जिनको प्रायः सभी श्रेणीके लो… विशेष आदरकी दृष्टिसे देखते हैं। इसलिये समितिने इन ग्रन्थोंके द्वारा धार्मिक-शिक्षाका प्रसार करने… लिये परीक्षाओंकी व्यवस्था की है। उत्तीर्ण छात्रोंको योग्यतानुसार पुरस्कार भी दिया जाता है। परीक्षा…के स्थान-स्थानपर लगभग ५०० केन्द्र भी स्थापित हैं। तथा और भी नियमानुसार स्थापन किये जा स… हैं। आगामी गीता-परीक्षाएँ दिनाङ्क १९ एवं २० नवम्बर १९६७ को तथा श्रीरामायणकी परीक्षाएँ दि… ७ एवं ८ जनवरी १९६८ को होनेवाली हैं।

केन्द्र-व्यवस्थापकोंसे निवेदन है कि सभी परीक्षाओंके लिये आवेदनपत्र एवं नवीन केन्द्रोंके लि… प्रार्थनापत्र दिनाङ्क ३० अगस्त १९६७ तक भेज देनेकी कृपा करें।

विशेष जानकारीके लिये पत्र लिखकर नियमावली मँगा सकते हैं।

व्यवस्थापक—**श्रीगीता-रामायण-परीक्षा-समिति, पो० स्वर्गाश्रम (देहरादून)**

ब्रह्मलीन श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके द्वारा लिखित मानव-जीवनको सरलतासे उच्चतम आध्यात्मि… आदर्शोंकी ओर अग्रसर करनेवाली सरल, सुन्दर, शिक्षाप्रद सचित्र और सस्ती आठ पुस्तकें

१—**आत्मोद्धारके साधन**—धर्म, निष्कामकर्म, भक्ति, प्रेम, ज्ञान आदि ३० लेखोंका संग्रह, पृष्ठ-संख्या ४६४, रंगीन चित्र ४, मूल्य … … … १.
२—**भक्तियोगका तत्त्व**—भक्ति-सम्बन्धी २९ लेखोंका संग्रह, पृष्ठ-संख्या ४५६, रंगीन चित्र ४, मू० … १.
३—**कर्मयोगका तत्त्व**—कर्मयोग-सम्बन्धी ३१ लेखोंका संग्रह, पृष्ठ-संख्या ४२०, दो तिरंगे, तीन सादे चित्र, मू० … १.
४—**महत्त्वपूर्ण शिक्षा**—१७ लेखोंका संग्रह, पृष्ठ-संख्या ४७६, रंगीन चित्र ४, मू० १.००, सजि० … १.
५—**परम साधन**—साधनसम्बन्धी १६ लेखोंका संग्रह, पृष्ठ-संख्या ३७२, तिरंगे चित्र ५, मू० १.००, सजि० … १.
६—**परमशान्तिका मार्ग**—३४ लेखोंका संग्रह, पृष्ठ-संख्या ४१६, चित्र रंगीन ४, सादे २, मू० १.००, सजि० … १.
७—**ज्ञानयोगका तत्त्व**—२७ लेखोंका संग्रह, पृष्ठ-संख्या ३८४, चित्र रंगीन ३, मू० १.००, सजि० … १.
८—**प्रेम-योगका तत्त्व**—२२ लेखोंका संग्रह, पृष्ठ-संख्या ३८०, चित्र रंगीन ५, सादा १, मू० १.००, सजि० … १.

सभी पुस्तकोंका डाकखर्च अलग।

व्यवस्थापक—**गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल काँगड़ी

76167

कल्याण

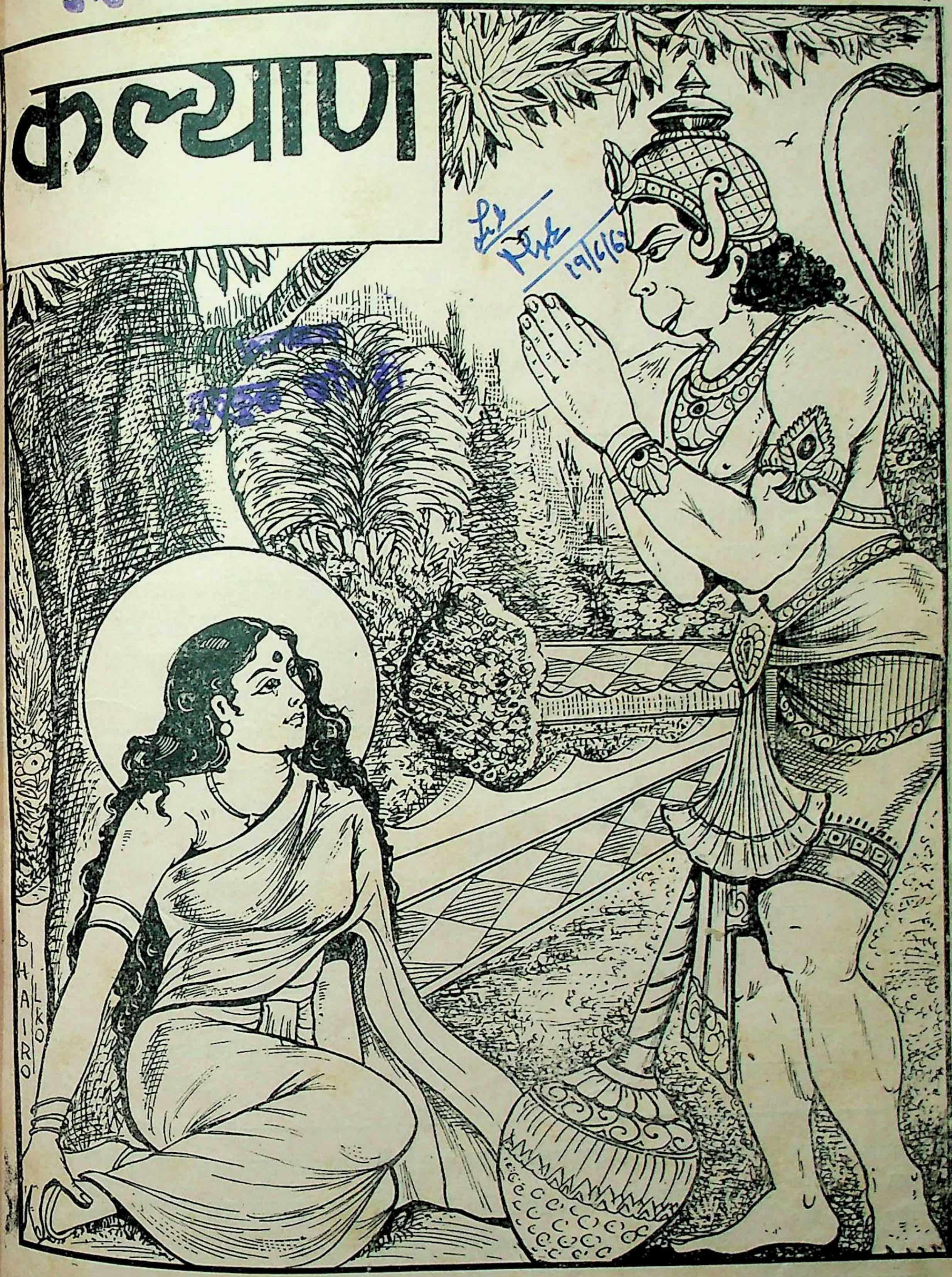

वर्ष ४१]

[अङ्क ६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

संस्करण १,५०,०००

विषय-सूची

कल्याण, सौर आषाढ़ २०२४, जून १९६७

विषय	पृष्ठ-संख्या
१—महाभावरूपा श्रीराधा [कविता] ···	९६१
२—कल्याण ('शिव') ··· ···	९६२
३—भविष्यके विषयमें संकल्प भावी जन्मका कारण होता है (ब्रह्मलीन श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके उद्गार; संग्रहकर्ता और प्रेषक श्रीशालिगरामजी)	९६३
४—मनन-माला (ब्र० श्रीमगनलाल हरिभाई व्यास) ··· ···	९६४
५—गीताकी साहित्य-सुषमा (स्व० डा० क्षेत्रलाल साहा, एम्० ए०, डी० लिट्०) ··· ···	९६७
६—मनुष्योंसे तो ये पशु-पक्षी ही अच्छे ! (डा० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, दर्शनकेसरी, विद्याभूषण) ··· ···	९७६
७—काम (ऐन्द्रिय भोगों) का प्रयोजन [कहानी] (श्री 'चक्र') ···	९८१
८—भजनके लिये प्रेरणा [कविता] (संत कबीरदासजी) ··· ···	९८५
९—वैराग्य, सत्सङ्ग और भगवत्प्राप्ति (आचार्य श्रीरामप्रतापजी शास्त्री)···	९८६
१०—चंडौतकी महासती (श्रीबलरामजी शास्त्री, आचार्य, एम्० ए०, साहित्यरत्न) ··· ···	९८९
११—सहेली [कहानी] (श्रीकृष्णगोपालजी माथुर) ··· ···	९९२
१२—मानव-कर्तव्य (श्रीअगरचन्दजी नाहटा) ··· ···	९९६
१३—दक्षिण भारतकी तीर्थयात्रा (सेठ श्रीगोविन्ददासजी, श्रीमती रत्नकुमारी देवी, श्रीगोविन्दप्रसादजी श्रीवास्तव)···	९९८
१४—कामके पत्र ··· ···	१००५
१५—गोरक्षा-आन्दोलन (हनुमानप्रसाद पोद्दार) ··· ···	१०१०
१६—जनतन्त्रकी रक्षा कैसे हो ? ···	१०११
१७—प्रभु-पद-प्रीतिकी प्रेरणा [कविता] (संत कबीरदासजी) ··· ···	१०१२
१८—पढ़ो, समझो और करो ··· ···	१०१३
१९—बिहारका भयानक अकाल ···	१०२०
२०—उपासना-अङ्ककी विषय-सूची ···	१०२१

चित्र-सूची

१—हनुमानजीकी श्रीसीताजीसे भेंट (रेखाचित्र) ··· मुखपृष्ठ

२— महाभावरूपा श्रीराधा (तिरंगा) ··· ९६१

वार्षिक मूल्य भारतमें ८.५० विदेशमें १५.६० (१५ शिलिंग)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय । सत-चित-आनँद भूमा जय जय ॥
जय जय विश्वरूप हरि जय । जय हर अखिलात्मन् जय जय ॥
जय विराट जय जगत्पते । गौरीपति जय रमापते ॥

साधारण भारतमें ५ विदेशमें ८ (१०

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाल गोस्वामी, एम्० ए०, शास्त्री

मुद्रक-प्रकाशक—मोतीलाल जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल कांगड़ी

महाभावरूपा श्रीराधा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

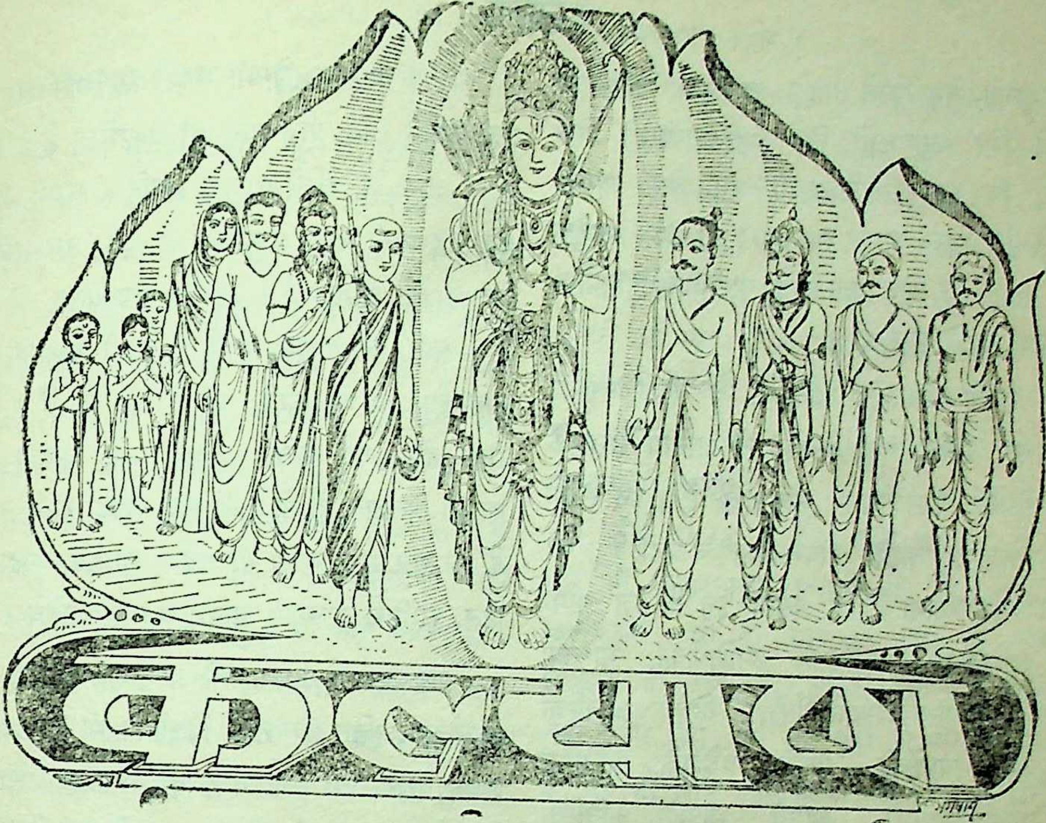

अविरतभवभावनातिदूरं भवविमुखैर्मुनिभिः सदैव दृश्यम् ।
भवजलधिसुतारणाङ्घ्रिपोतं शरणमहं रघुनन्दनं प्रपद्ये ॥
रतिपतिशतकोटिसुन्दराङ्गं शतपथगोचरभावनाविदूरम् ।
यतिपतिहृदये सदा विभातं रघुपतिमार्तिहरं प्रभुं प्रपद्ये ॥

वर्ष ४१ } गोरखपुर, सौर आषाढ २०२४, जून १९६७ { संख्या ६
पूर्ण संख्या ४८७

महाभावरूपा श्रीराधा

दुर्लभ परम त्यागमय पावन प्रेम-मूर्ति आदर्श महान् ।
महाभावरूपा श्रीराधा, जिनके प्रेमवश्य भगवान् ॥
नहीं तनिक भी स्व-सुख-वासना, नहीं मोह-माया-मद-मान ।
प्रियतम-पद पूर्णार्पित जीवन, जगके सारे द्वन्द्व समान ॥
मुक्ति-बन्ध, वैराग्य-भोगके ग्रहण-त्यागका कभी न ध्यान ।
प्रियतम-सुख ही सब कार्योंमें करता नित्य प्रेरणा-दान ॥
प्रेममयी शुचितम श्रीराधाके पद-रज-कण रसकी खान ।
वे स्वीकार करें इस जन नगण्यके नमस्कार निर्मान ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याण

याद रक्खो—तुम सबसे पहले स्वरूपतः नित्य एक आत्मा हो, फिर मनुष्य हो, फिर भारतवासी हो, फिर हिंदू हो, फिर अमुक-प्रदेशवासी हो, फिर अमुक-भाषा-भाषी हो, फिर अमुक-स्थानवासी हो, फिर अमुक परिवारके सदस्य हो, फिर माता-पिता, पत्नी-पति, पुत्र-पौत्र, स्वामी-सेवक आदि कुछ हो ।

याद रक्खो—आत्माके अतिरिक्त ये सभी स्वरूप तुम्हारे यथार्थ स्वरूप नहीं हैं । ये तो अनित्य संसारके अनित्य क्षेत्रोंमें कामचलाऊ नाम-रूप हैं । इन सबमें यथायोग्य व्यवहार करके जीवन-यात्रा चलानी है । पर यह सदा ध्यान रखना है कि अपने इन विभिन्न नाम-रूपोंके अभिमानमें मनुष्येतर प्राणियोंको, भारतके अतिरिक्त अन्यान्य-देशवासियोंको, हिंदूके अतिरिक्त अन्यान्य-धर्मजातिवालोंको, अपने प्रदेशके अतिरिक्त अन्यान्य-प्रदेशवासियोंको, अपनी भाषाके अतिरिक्त अन्यान्य-भाषा-भाषियोंको, अपने नगर-गाँवके अतिरिक्त अन्यान्य-स्थाननिवासियोंको, अपने परिवारके अतिरिक्त अन्यान्य परिवारोंके सदस्योंको, अपने सिवा अन्य सबको तुम 'पर' कहीं न समझ बैठो और कहीं अपने कल्याणके मोहमें दूसरोंका अकल्याण चाहने और करने न लग जाओ ।

याद रक्खो—किसी भी दूसरेका अकल्याण या अहित अपना ही अकल्याण या अहित है—वैसे ही, जैसे अपने एक ही शरीरके विभिन्न अङ्ग अपना ही शरीर हैं । किसी भी अङ्गपर चोट पहुँचाना अपने ही शरीरको चोट पहुँचाना है और कहीं भी चोट लगनेपर उसके दर्दका अनुभव अपनेको ही होता है । इसी प्रकार एक ही आत्माके ये सब विभिन्न नाम-रूप हैं । इनमें कोई भी कभी भी न तो 'पर' (दूसरा) है और न दूसरा हो सकता है ।

याद रक्खो—इससे भी महत्त्वकी बात यह है कि आत्मारूपमें स्वयं श्रीभगवान् ही प्रकाशित हैं । साथ ही चेतन आत्माके अरिरिक्त जड प्रकृतिके रूपमें भी उन्हीं-की मङ्गलमयी लीला प्रकाशित है, जो उन लीलामयसे सदा सर्वथा अभिन्न है । अतएव जड-चेतन जो कुछ भी है—सभी श्रीभगवान् ही हैं । वे ही लीलामय विभिन्न नाम-रूप धारण करके लीला कर रहे हैं । यदि तुम भक्त हो—या बनना चाहते हो, अथवा एकमात्र सत्यके अन्वेषक हो तो तुम्हें सदा-सर्वदा सभी नाम-रूपों-में एकमात्र भगवान्‌को ही प्रकट समझकर सदा सभीका हित, सभीका कल्याण चाहना-करना चाहिये ।

याद रक्खो—किसी भी प्राणीका असत्कार करना, किसीका अहित करना, किसीको भी दुःख पहुँचाना अपने परमाराध्य भगवान्‌का ही असत्कार-अहित करना है और भगवान्‌को ही दुःख पहुँचाना है । और यह महापाप है, अतएव इससे सदा बचे रहो । सदा सावधानीके साथ इस प्रकारकी कोई भी चेष्टा कभी मत करो ।

याद रक्खो—जो समस्त नाम-रूपोंवाले प्राणियोंमें भगवान्‌को देखकर सदा-सर्वदा सबका सम्मान करता है, सबकी सेवा करता है, सबको सुख पहुँचाता है और सबका हित करता है, उसके द्वारा सदा भगवान् ही सम्मानित, सेवित, सुखी होते हैं और हित प्राप्त करते हैं । वह सदा भगवान्‌की ही पूजा करता है । भगवान् उसकी इस नित्यपूजासे परम प्रसन्न होकर उसे अपना स्वरूपदान देते हैं ।

याद रक्खो—यदि सबमें अपने आत्माको समझकर सबका सम्मान, सेवा, हित करते हो, सबको सुख पहुँचाते हो, तब तो सदा ही आत्मसंतुष्टि प्राप्त होती रहती है और सदा ही आत्मरमण करते हुए तुम आत्म-स्वरूपमें स्थित रहते हो ।

'शिव'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Gurukula Kangri University. Library.
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भविष्यके विषयमें संकल्प भावी जन्मका कारण होता है

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके उद्गार)

भगवान्‌का विधान मङ्गलकारक है

जो लोग वृथा संकल्प करते रहते हैं, उनके संकल्प सत् नहीं होते। संकल्पके विषयमें एक रहस्यकी बात यह है कि जो मनुष्य अपना कल्याण चाहते हैं, उनको भविष्यका कोई भी संकल्प नहीं करना चाहिये। भविष्यके लिये किया हुआ संकल्प भावी जन्मका कारण होता है। आपके मनमें यह संकल्प हुआ कि मैं कल कलकत्ते जाऊँगा और किसी कारणसे आज आपकी मृत्यु हो गयी तो फिर आपको उस संकल्पके कारण दूसरा जन्म लेकर कलकत्ते जाना पड़ेगा। इसलिये कल्याणकामी मनुष्यको यही समझना चाहिये कि मुझको कुछ भी नहीं करना है। जो कुछ हो रहा है, उसे देखते रहना चाहिये। एक क्षणके बाद मुझे यह काम करना है, यह संकल्प भी नहीं करना चाहिये। यदि कहा जाय कि 'ऐसा संकल्प न करनेसे कार्य कैसे होगा ? भोजन करना है, नीचेसे ऊपर जाना है, ऊपरसे नीचे उतरना है, इसके लिये पहले तो मनमें संकल्प होगा ही, तभी उसके अनुसार क्रिया होगी।' यह कहना ठीक है। पर इस विषयमें विकल्पसहित ही संकल्प करना चाहिये। विकल्पसहितका अभिप्राय यह है कि जैसे ऊपर जानेकी आवश्यकता है, यह ठीक है; पर ऊपर जाना बन जाय तो बन जाय, न बने तो न बने। भोजन करनेका समय हो गया तो भोजनके लिये वहाँसे चल दिये। भोजन मिल गया तो खा लिया, नहीं तो नहीं। कोई संकल्प नहीं। एक लक्ष्यको रखकर चलना है, साथमें उस संकल्पके साथ यह विकल्प है—'हो जाय तो अच्छी बात है; न हो तो अच्छी बात है। अमुक काम करनेका विचार है, कोई निश्चय नहीं। जो कुछ बन जाय, वही सत्य है।' किसीने पूछा कि 'अब आपको क्या करना है ?' तो भीतरसे यह आवाज आनी चाहिये कि 'कुछ भी करना नहीं है।' जैसे महात्मा—कृतकृत्य पुरुषको तो कुछ करना शेष रहता ही नहीं, वैसे ही साधक पुरुषको भी अपने हृदयमें यह भाव रखना चाहिये कि मुझे कुछ करना नहीं है। वर्तमानमें जो भजन-ध्यान हो रहा है, वह वर्तमान क्रिया ही हो रही है, भविष्यके लिये नहीं। वर्तमान क्रियामें जो साधन चल रहा है, उसके विषयमें उसकी यही समझ है कि होनी चाहिये 'ऐसी अवस्थामें प्राण चले जायँ तो कोई हर्ज नहीं है। भविष्यमें तो मेरे लिये कुछ करना शेष है नहीं। जो कुछ हो रहा है, परमात्माकी इच्छासे हो रहा है। जो भी हो रहा है, सब ठीक हो रहा है। मेरे द्वारा जो कुछ हो रहा है, वह भी परमात्माकी इच्छासे हो रहा है। परेच्छा, अनिच्छासे जो हो रहा है, वह भी परमात्माकी इच्छासे हो रहा है, मुझको तो कुछ करना है ही नहीं। मेरे द्वारा भी जो कुछ भी परमात्मा करवा रहे हैं, वह मेरे लिये मङ्गलकी बात है। उनकी जैसी इच्छा हो, करवायें। मुझे तो कुछ भी करना है नहीं।' मनमें ऐसा निश्चय रक्खे कि 'जो कुछ हो रहा है, सब स्वाभाविक ही हो रहा है। परमात्मा करवा रहे हैं, उनकी मुझपर दया है।' इस प्रकारसे निश्चिन्त होकर रहे। जैसे कोई मनुष्य टिकट खरीदकर गठरी-मोटरी लिये ट्रेनपर बैठनेके लिये तैयार है और ट्रेनकी बाट देख रहा है, इसी प्रकारसे मनुष्यको समस्त कार्योंसे निपटकर मृत्युकी प्रतीक्षा करते रहना चाहिये। यह बहुत ही उत्तम भाव है। महात्मा पुरुषका जो स्वाभाविक भाव है, साधकके लिये वही साधन है।

अतः मनुष्यमात्रका कर्तव्य है कि परमात्माको आत्मसमर्पण करके यह निश्चय रक्खे कि परमात्मा मेरे द्वारा जो करवा रहे हैं सो ठीक करवा रहे हैं; जो कुछ अनिच्छा-परेच्छासे हो रहा है, ठीक हो रहा है। ऐसा भाव रक्खे कि भगवान्‌का जो विधान है, वह वास्तवमें न्याय है और मेरे लिये मङ्गलकारक है। साधकका यह भाव उच्चकोटिका है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनिच्छासे जैसे किसीका लड़का मर गया, शरीरमें रोग हो गया, घरमें आग लग गयी तो बहुत आनन्दकी बात है। इसके विपरीत लड़का पैदा हो गया, घरमें लाख रुपये आ गये या शरीर स्वस्थ हो गया—तब भी आनन्दकी बात है। चाहे कोई मान करे या अपमान, निन्दा करे या स्तुति—दोनोंमें तनिक भी अन्तर नहीं। जैसी निन्दा, वैसी ही स्तुति। जैसा मान, वैसा ही अपमान। जैसा मित्र, वैसा ही शत्रु और जैसा सुख वैसा ही दुःख। इस प्रकार जिनका सर्वत्र समभाव है, वे ही पुरुष श्रेष्ठ हैं। ऐसे महात्माके जो लक्षण शास्त्रोंमें बताये गये हैं, उनको लक्ष्य बनाकर जो अभ्यास करता है, वह शीघ्र महात्मा बन जाता है। यह बड़ी मूल्यवान् वस्तु है। महात्मामें तो यह स्वाभाविक है, साधकके लिये आदर्श साधन है। जो मनुष्य साधन मानकर इस प्रकार अभ्यास करता है, वह आगे चलकर शीघ्र ही महात्मा बन जाता है। किसी आदमीने गाली दी तो आनन्द; प्रशंसा की तो आनन्द; उनमें किंचित् भी भेद न समझे। यों समझे कि निन्दा-स्तुति दोनों ही वाणीके विषय हैं—आकाश-के गुण हैं, शब्दमात्र हैं। इनमें भला और बुरा क्या हैं? निन्दा और स्तुति होती है नामकी। मैं नामसे रहित हूँ। मान-अपमान होता है रूपका—देहका, मैं इस रूप या देहसे सर्वथा पृथक्—रहित हूँ। न मेरा मान है, न मेरा अपमान है; न मेरी निन्दा, न मेरी स्तुति। इनसे मेरा कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। इस प्रकारका ज्ञान आत्माका कल्याण करनेवाला है।

(संग्रहकर्ता और प्रेषक श्रीशालिग्राम)

मनन-माला

(लेखक—ब्र० श्रीमगनलाल हरिभाई व्यास)

[गतवर्ष पृष्ठ १०९१ से आगे]

५०—चित्त आत्माके नामसे तथा शरीरके नामसे अनेक प्रकारकी इच्छाएँ करता है और कर्म भी शरीरसे करता है। आत्मा सदा मुक्त है और आत्मा कोई कर्म नहीं करता और न कोई भोग भोगता है। आत्मा शरीर, इन्द्रिय, मन और बुद्धि आदिसे असङ्ग है; अतएव आत्माके लिये चित्त जो करनेके लिये कहे, उसे न करे। वस्तुतः चित्तको कुछ करना-कराना नहीं रहता। आत्मा नित्य है और मुक्त है, सुख-दुःखसे रहित है और शरीरको मृत्यु-पर्यन्त अपना प्रारब्ध भोगना है, फिर चित्तको करना क्या है? चित्तको शरीरकी प्रकृतिके अनुसार इच्छामात्रसे रहित होकर अपना अभिनय करना है और आत्मा उसका साक्षी है। मैं साक्षी आत्मा हूँ—कर्त्ता नहीं हूँ, भोक्ता भी नहीं हूँ। जन्म-जरा और मरणसे रहित, नित्य हूँ—इस प्रकारका चिन्तन करता रहे।

५१—हम शरीर बनकर कर्म करते हैं, ऐसा न मानकर आत्मा रहकर शरीरके द्वारा शरीरकी प्रकृतिके अनुसार अभिनय करना है और वह भी असङ्ग बुद्धिसे। लाभ-हानि, हर्ष-शोक, सुख-दुःख—सबमें समानचित्त रहकर प्रकृतिके अनुसार कर्म करते जाओ।

५२—मैं आत्मा हूँ—शरीर, इन्द्रिय, मन या बुद्धि नहीं हूँ; इन सबसे असङ्ग हूँ। इस अभ्यासको सिद्ध करनेके लिये पहले सब प्रकारकी चिन्ताका त्याग करो। प्राणीमात्रको मुख्यतः दो प्रकारकी चिन्ता होती है—मेरे और मेरे सम्बन्धीकी क्या हालत होगी? इस चिन्तासे मन घिरा रहता है; इसलिये मनको निश्चयपूर्वक बतलाये कि सबको स्वकर्म-प्रारब्धके अनुसार जो होनेवाला होगा, वह होगा। चिन्ता करनेसे उसमें कोई अन्तर नहीं पड़नेवाला है। तुम्हारा जो कर्तव्य-कर्म है, उसे किये जाओ। बाकी जो होनेवाला होगा, वह होगा—ऐसा समझकर चिन्ताविहीन और अशान्तिरहित हो जाओ। जलन और चिन्ता करनेसे क्या काम बनेगा? चिन्ता शास्त्र शरीरसे स्वकर्म करनेका निषेध नहीं करता। चिन्ता और उद्वेगरहित होकर प्रसन्न मनसे स्वकर्म करते जाओ और जो तुमसे शान्त मनसे करते बने, वह करो। पर चिन्ता और उद्वेग न करो; क्योंकि इसका कुछ फल ही नहीं है।

दूसरी चिन्ता यह होती है कि शरीरपात होनेके अनन्तर मेरा क्या होगा। ज्ञान और स्व-स्वरूपके स्मरणके बिना इस चिन्ताका शमन नहीं होता। मैं आत्मा हूँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कभी जन्मा नहीं, कभी बद्ध नहीं हुआ, मैं मरनेवाला नहीं हूँ। जन्म-वृद्धि, जरा और मृत्यु तो शरीरके होते हैं और मैं तो इन सबसे असङ्ग आत्मा हूँ—यह स्मरण नित्य बारंबार करते रहनेसे ही चिन्ता मिटती है। चिन्ताको दूर करनेका इसके सिवा कोई दूसरा रास्ता नहीं है।

५३—मैं आत्मा हूँ और मैं कर्ता या भोक्ता नहीं हूँ—ऐसा निश्चय करके आत्माके नामपर चित्त कर्तापनको करता है और भोगोंकी इच्छा करके भोग भोगता है और नाम लगाता है आत्माका। चित्तके इस सारे करतबको बंद करना है। इस कारण प्रयत्नपूर्वक सब भोगोंकी इच्छाका त्याग करे। भोगकी इच्छाका त्याग किये बिना, और 'मैं अकर्ता हूँ—' इसका सतत भान रक्खे बिना, 'मैं आत्माके रूपमें सदा मुक्त ही हूँ'—इस मुक्तिका अनुभव चित्त नहीं होने देगा। अतएव भोगकी इच्छामात्रका त्याग करे और मैं कर्त्ता नहीं हूँ, बल्कि मैं साक्षी आत्मा हूँ—यह सदा ध्यानमें रक्खे।

५४—परमात्मा सबमें है और वह सबमें रहनेवाला परमात्मा आत्मा कहलाता है। अतएव सबमें जो आत्मा है, वह परमात्मा स्वयं ही आत्मारूप बना है। परमात्मा सबमें है और सर्वत्र है। जैसे जल जमीनके भीतर है, परंतु जमीनको खोदनेसे मिलता है, उसी प्रकार परमात्मा सर्वत्र है, परंतु वह श्रद्धायुक्त भक्तिसे ही प्रकट होता है। जैसे काठमें अग्नि है, दूधमें घी है, परंतु वह सहज ही प्रत्यक्ष नहीं दीखता, बल्कि युक्तिपूर्वक मथनेसे प्राप्त होता है; उसी प्रकार परमात्मा सबमें और सर्वत्र है, परंतु वह श्रद्धापूर्वक भक्ति किये बिना प्रकट नहीं होता, अनुभवमें नहीं आता। वह सबमें और सर्वत्र है; इसलिये जिसमें श्रद्धा बैठे, उस मूर्त्तिको या व्यक्तिको परमात्मस्वरूप जानकर भक्ति करे। यों करनेसे वह प्रकट होगा।

५५—इसी कारण मूर्त्तिपूजा सुगम है। परमात्माकी मूर्त्ति तो है ही नहीं। तथापि साकार मूर्त्तिमें वह व्यापक है। जहाँ देखो, वहाँ परमात्मा है। ऐसी कोई जगह नहीं, जहाँ वह न हो। ऐसी कोई चीज नहीं, जिसमें वह न हो। उसके बिना जगत्‌का अस्तित्व ही नहीं है। अर्थात् परमात्मा स्वयं जगद्रूपमें दीखता है। आत्माकी मुक्तिका प्रश्न ही नहीं है। वह तो सदा मुक्त है ही। उसको जन्म-जरा, मृत्यु और विकार—इनमेंसे कुछ भी नहीं होता। प्रयत्न करना है तो केवल मनको; चित्तको शान्त करनेका—चित्तको संकल्परहित, वासनारहित करके परमात्मामें मिला देनेका। और इसीका नाम विदेहमुक्ति है। चित्त (सूक्ष्म शरीर) के ही एक देहसे दूसरे देहमें जानेका नाम संसार है। चित्त ही इच्छा और कर्म करता है। सुख-दुःखको चित्त ही भोगता है। यह चित्त जबतक देह है, तबतक शान्त-संकल्प और वासना-विहीन रहे तथा शरीरसे बिना आसक्ति और आग्रहके, शरीरकी प्रकृतिके अनुसार कर्म करे तथा फलकी इच्छाका त्याग करे तो उसको जीवन्मुक्तिका अनुभव होता है। श्रेयकी साधना करनेवाला भी चित्त ही है। अतएव चित्त इस शरीरसे क्या करे—इसका विचार करना चाहिये।

५६—इस लोक और परलोकके सारे लोकोंमें दुःख भरा है। देह चाहे लौकिक हो या पारलौकिक, वह विकारी और विनाशशील है—ऐसा निश्चय करके इस लोक और परलोकके भोगोंकी इच्छामात्रका त्याग करके, परमात्मा जो घट-घट व्यापक है; उसका नित्य भजन, चिन्तन और स्मरण करे तथा शरीरसे जो कुछ करना हो, वह परमात्माकी प्राप्तिके लिये करे। परमात्माके सिवा दूसरी किसी वस्तुकी इच्छा न करे।

५७—इसके लिये शरीरकी प्रकृतिके अनुसार जो कुछ कर्म हो, उसको कर्तव्य समझकर आसक्तिरहित और बिना फलकी इच्छाके करता रहे। ऐसा करनेसे चित्त शान्त होकर परमात्मामें समयानुसार लीन हो जायगा।

५८—फिर मनमें यदि ऐसा हो कि कर्म ही न करूँ, तो इसके लिये दो विचार करे। एक तो यह है कि कर्म किये बिना हठपूर्वक कदाचित् स्थूलशरीर तो कुछ समय बैठा रह सकता है, पर चित्त तो बेकार क्षणभर भी नहीं बैठ सकता, और स्थूलशरीरको हठपूर्वक शान्त रखकर मनसे संकल्प-विकल्प करते रहनेका कोई अर्थ ही नहीं है। यदि कुछ आवश्यक है तो चित्तको शान्त करना आवश्यक है। जो चित्तका किया होता है, वही किया हुआ माना जाता है। बाकी जिस कर्ममें चित्तकी आसक्ति, आग्रह या फलकी इच्छा नहीं होती, वैसे शरीरद्वारा किये हुए कर्म चित्तको बन्धनमें नहीं डालते। कर्ममात्रका कर्ता तो प्रकृतिरूप यह शरीर है और शरीर विभिन्न प्रकृतिके बने होते हैं। जैसे गत युद्धमें जर्मन लोगोंने यह निश्चय किया था कि मनुष्यके शरीरके रक्तकी छः जातियाँ हैं। सारांश यह है कि मनुष्यका रक्त इन छः जातियोंमेंसे मुख्यतः किसी एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जातिका होता है । इसी प्रकार शास्त्रोंने यह निश्चय किया है कि प्रत्येक मनुष्य चार जातिमेंसे किसी एककी प्रकृतिका होता है । जैसे एक जातिका रक्त दूसरी जातिके रक्तवाले मनुष्यमें डाला जाय तो वह दुःखद या घातक हो जायगा, उसी प्रकार एक प्रकृतिका मनुष्य यदि अपनी प्रकृतिके विरुद्ध कर्म करे तो वह दुःखको प्राप्त होता है । अतएव सबको अपने शरीर और मनकी प्रकृतिका निश्चय करके तदनुकूल कर्म करना चाहिये, तभी सुख-शान्ति और आनन्द होगा ।

५९–मनुष्य माने या न माने; परंतु जो अपना शरीर है, वह त्रिगुणात्मक प्रकृतिका ही बना हुआ है और इसके अनेक भेद हो सकते हैं, परंतु मुख्यतः चार भेद शास्त्रोंमें लिखे हैं—वे प्रकृतिके अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र हैं । सात्त्विक गुणप्रधान ब्राह्मण है; जिसमें सत्त्व प्रधान और रजोगुण गौण हो, वह क्षत्रिय है; जिसमें रजोगुण मुख्य और तमोगुण गौण हो, वह वैश्य है तथा तमोगुण प्रधान शूद्र है । प्रकृतिके अनुसार काम करनेसे मन क्षोभरहित और शान्त रहता है और प्रकृति-विरुद्ध कर्म करनेसे मनमें सदा क्षोभ रहता है ।

६०–कर्मको लेकर मनुष्य उच्च-नीच नहीं होता क्योंकि सबके भीतर प्रभु समानरूपसे विराज रहे हैं । मनुष्य किस प्रकार कर्म करता है, इसे देखकर उसकी अच्छाई-बुराई जानी जाती है । अपने कर्तव्यरूपमें, आसक्ति और आग्रह छोड़कर तथा फलकी इच्छाके बिना, प्राणिमात्रमें अवस्थित परमेश्वरके प्रीत्यर्थ जो कर्म किया जाता है, उस कर्मका कर्त्ता सदा श्रेष्ठ होता है—फिर चाहे वह भंगीका काम करता हो, खेती करता हो या राज्य करता हो, अथवा उपदेशका काम करता हो । कर्म ऊँचा-नीचा नहीं होता, उसका भाव ऊँचा-नीचा होता है । शुद्धभावसे परमात्माकी सेवाके रूपमें जो कर्म होता है, उसका कर्त्ता सदा श्रेष्ठ है । इस जगद्रूपी नाटकमें चारों वर्णरूपी पात्रोंकी आवश्यकता है । प्रत्येक मनुष्य इस जगद्रूपी नाटकका पात्र है । सब पात्रोंको आसक्ति, अहंता और फलेच्छासे रहित होकर अपना अभिनय करके जगन्नाटक-के स्वामीको प्रसन्न करना है । अतएव अभिनयका जो पार्ट मिला है, उसको ऊँचा-नीचा न समझकर अच्छी रीतिसे अभिनय करना और अभिनय करते समय यह सदा स्मरण रखना कि इस अभिनयसे पृथक् मैं आत्मा हूँ—इसीका नाम योग है ।

६१–अपने प्राप्त कर्मको करते हुए चित्तमें विकार न आने दे । शीत-उष्ण, मान-अपमान, जय-पराजय, हर्ष और शोकके प्रसङ्गमें मनको सदा शान्त और निर्विकार रक्खे । जिसका चित्त सदा विकाररहित, शान्त और एक-रस रहता है, वह जीवन्मुक्त है । विकार उत्पन्न होनेवाले प्रसङ्गोंमें भी चित्तको निर्विकार रखना ही जीवनका ध्येय है और यही जीवन्मुक्तिका सच्चा अभ्यास है ।

६२–सबमें परमात्मा है; परमात्मामें सब है, परमात्मा ही सर्वरूप हो रहा है—ये तीनों निष्ठाएँ जीवन्मुक्तिके अभ्यासके लिये आवश्यक हैं और ये तीनों ही सत्य हैं । ... साथ-साथ यह सब कुछ परमात्म-स्वरूप है, इस अभ्यासमें उपर्युक्त तीनों अभ्यास सम्मिलित हैं । अतएव यह अभ्यास नित्य करे, यह सबमें श्रेष्ठ साधन है । जो कुछ अनुभवमें आता है, वह सब परमात्मस्वरूप है—यह परम सत्य सिद्धान्त है, इसको अनुभवमें लानेका प्रयत्न करनेका नाम ही सच्चा योगाभ्यास है । जिससे सब परमात्मस्वरूपमें अनुभूत होते हैं, वह सच्ची ज्ञान-निष्ठा है । परमात्माके सिवा दूसरा कुछ सत्य है ही नहीं और जो कुछ भासता है, उसे मृग-मरीचिकाके जलके समान मिथ्या समझे । परमात्मा सत्य है, वह तीनों कालमें अबाधित, एक, अखण्ड, अजर, अमर और सर्वव्यापक है और इसके सिवा उसमें जो कुछ भासता है, वह मिथ्या है । यह चिन्तन सदा करता रहे ।

६३–परमात्मा सर्वत्र व्यापक है, सर्वशक्तिमान् है—यह सभी कहते हैं । यदि परमात्मा सर्वत्र है तो जगत् कहाँ है! जहाँ जगत् होता है, वहाँ परमात्मा नहीं होता और जहाँ परमात्मा होता है, वहाँ जगत नहीं होता । एक ही जगहमें दो वस्तुएँ नहीं हो सकतीं । तथापि जो दीखता है, वह दर्पणमें प्रतिबिम्बके समान, पानीमें छायाके समान, मरुभूमिमें जलके समान तथा जादूगरके झूठे रुपयेके समान मिथ्या दीखता है । इसी प्रकार परमात्मा सत्य है, सर्वत्र है और उसमें यह जगत् मिथ्या भासता है—इस सत्यको जानकर चित्तको सदा अविकारी और शान्त रखकर शरीरसे कर्तव्य कर्म करता रहे और आसक्ति, आग्रह तथा फलेच्छाका त्याग करे ।

६४–परमात्मा सर्वत्र है, सर्वज्ञ है, सर्वशक्तिमान् है, वह सब प्राणियोंका अकारण सुहृद् है और वह परमात्मा ही मेरा वास्तविक स्वरूप है । वही प्राणिमात्रका अन्तर्यामी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, और वह आत्मा मैं हूँ। यह जान लेनेपर भी मन अनेक जन्मोंके संस्कारोंके कारण इसे मानता नहीं, बुद्धि इसे स्वीकार नहीं करती। हम कैसे हैं? गीता कहती है—जैसी श्रद्धा, वैसा स्वरूप। हमारी जैसी श्रद्धा है, वैसा ही हमारा आत्मा है। वैसे ही हम हैं। श्रद्धाका आधार बुद्धि है। बुद्धिमें संसार जैसा दृढ़ होता है, वैसी श्रद्धा होती है। इसलिये जबतक बुद्धि शुद्ध न हो जाय, तबतक आत्मज्ञान दृढ़ नहीं होगा, तबतक आत्मसाक्षात्कार नहीं होगा।

गीताकी साहित्य-सुषमा

(लेखक—स्व० डा० क्षेत्रलाल साहा, एम्० ए०, डी० लिट्०*)

विश्व जिसकी कल्पना है, गीता भी उसीकी कल्पना है। विश्व-काव्यके कवि और गीता-काव्यके कवि एक ही हैं। विश्वके बारेमें हम कितना ज्ञान रखते हैं? यही बात गीताकी भी है। अन्धकारमय आकाशमें जैसे शत-सहस्र नक्षत्र प्रकाशित हैं, उसी प्रकार गीतामें शब्दसमूह प्रकाशित हो रहे हैं। हम उनमें ज्योतिर्विन्दुकी कल्पना करते हैं, परंतु वे एक-एक विशाल जगत् हैं। गीतामें एक इन्द्रजालका खेल है। जिसको हम जो समझते हैं, वह वह वस्तु नहीं है, बल्कि कुछ और ही है। प्रत्येक श्लोक मानो भावमें, आभासमें, गुञ्जनमें, चमकमें, दमकमें, क्या-क्या कहकर चला जाता है। चित्तको व्याकुल करके, बुद्धिको अभिभूत करके छिप जाता है। फिर जैसे-का-तैसा रह जाता है—एक अचञ्चल नक्षत्रके समान। गीताका कवि जादू जानता है। एक अजब यन्त्र हाथमें लेकर सैकड़ों दर्शकोंको दिखलाकर चला जाता है। कोई आम देखता है, कोई सेव, कोई जामुन, कोई बैर, कोई अनार, कोई अमरूद और कोई अंगूर। तत्पश्चात् सब विवाद करते हैं। कोई कहता है—मैंने चखकर देखा है, यह आम है। दूसरा एक कहता है कि यह अंगूर है, इसमें कोई संदेह नहीं। मायावी श्रीकृष्णने व्यास मुनिको अद्भुत काव्यकी दिशा दिखला दी थी।

गीता काव्य है तथा विश्वके समस्त काव्योंका प्राणभूत काव्य है। गीताकी इस प्रकृतिसे इसका अनुभव किया जाता है। यह दर्शन-काव्य है, दार्शनिक काव्य नहीं। यह ज्ञान-विज्ञान-काव्य है, वैज्ञानिक काव्य नहीं है। दर्शनका व्यापार होता है केवल ज्ञानको लेकर। काव्यका व्यापार जीवन और हृदयके ऊपर अवलम्बित होता है। जीवंत, प्राणवान्, गतिमान् दर्शन गीतामें अभिव्यक्त हो रहा है। इसीसे गीता-काव्य है, अद्वितीय काव्य है, इसकी कहीं तुलना नहीं है। काव्यमें सौन्दर्यका होना आवश्यक है। गीता सौन्दर्यसे पूर्ण है। भावमयी सुषमासे भरपूर है। 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्।' गीतामें निगूढ़तम रसकी स्फूर्ति है। इसी कारण बुद्धिके द्वारा गीता समझमें नहीं आती। भाव और भक्तिकी आवश्यकता होती है। यह केवल ज्ञान-तत्त्वकी समालोचना (Critique of Pure Reason) नहीं है। यह चिदानन्द द्वारमें सर्व-स्वरूपकी पूर्ण उपलब्धि है। इसको शुष्क तत्त्वग्रन्थ या गुरुतर और दृढ़तर धर्मग्रन्थ मानकर ही हम नाना प्रकारकी गड़बड़ी पैदा करते हैं। यह तत्त्व और धर्म तो अवश्य ही है, किंतु यह साक्षात् तत्त्व-संदर्शन और धर्म-संजीवन है। भेद अनेक हैं। नीति और नीतियुक्त जीवन एक वस्तु नहीं है।

समस्त विश्वतत्त्व गीताकी रूपमूर्त्ति बन रहा है। दर्शन गीतामें स्पर्शन-योग्य देह धारण कर रहा है। अङ्ग-प्रत्यङ्ग, त्वक् मांस-शोणित आदिसे युक्त देह है। इसी कारण किसी निर्दिष्ट तत्त्वकी दृष्टिसे गीताका अध्ययन करनेपर गीताकी अर्थ-संगति नहीं होती। जिस प्रकार केवल त्वक् या अस्थि या स्नायु या मनका अनुसंधान करनेसे पूर्ण मनुष्यकी उपलब्धि नहीं हो सकती। उसी प्रकार सांख्य, वेदान्त, योग, कर्म, ज्ञान, भक्ति—किसी भी एक सूत्रके पकड़नेसे गीताका स्वरूप-बोध नहीं होता। गीता सांख्य-वेदान्त-धर्म-ज्ञान-भक्तिमयी हृदय-मनः-प्राण-चञ्चला ब्रह्मज्योतिर्मयी देवी है। सुर-नर-मुनिगण उसका दर्शन करनेके लिये व्यग्र हैं।

* स्वर्गीय श्रीसाहा महोदय बहुत बड़े विचारशील विद्वान् तथा 'कल्याण'के पुराने लेखक थे। इन्होंने अपने दृष्टिकोणसे गीतापर नवीन ढंगसे विचार किया और उसे लिपिबद्ध करके भेजा था। उसीको यहाँ प्रकाशित किया जा रहा है। —सम्पादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दद्दशुस्ते ततो देवीमीषद्धासां व्यवस्थिताम् ।
सिंहस्योपरि शैलेन्द्रशृङ्गे महति काञ्चने ॥
(दु० स० श० ७ । ३)

इसी कारण गीता—

गङ्गा गीता च सावित्री सीता सत्या पतिव्रता ।
अर्द्धमात्रा चिदानन्दा भवघ्नी भ्रान्तिनाशिनी ॥

ये सब बातें उत्प्रेक्षा या अर्थवाद नहीं हैं। गीताकाव्य मूर्त्तिमयी तत्त्वार्थज्ञानमञ्जरी है। सचमुच काव्यका विशेषत्व यही है। इसमें 'अनेक' अर्थात् बहुतमें एककी प्रतिष्ठा होती है तथा एक अनेक रूपावरणमें मूर्तिमान् और क्रियावान् होता है। काव्यमें एक केन्द्रीभूत प्राण-वस्तु होती है। वह सारे अंशभूत अङ्ग-प्रत्यङ्गको अङ्गाङ्गीभावमें गूँथकर अपने साथ एकीभूत करती है, प्राणयुक्त करती है, नियन्त्रित करती है और नाना प्रकारके कार्योंमें प्रेरित करती है। वे कार्य पृथक्-पृथक् अनेक नहीं रहते, एकका अनुगमन करके एक हो जाते हैं। अखण्डरूपमें प्राण प्रत्येक अङ्गमें प्रतिबिम्बित होता है। प्रत्येक अङ्ग इस प्राणके अनुसृत होकर प्राणका दर्पण-स्वरूप हो जाता है। यह जो वृक्ष है, इसकी शाखा, प्रशाखा, पल्लव, पत्र, पुष्प, फल—कुछ भी वृक्ष नहीं है; तथापि सब ही वृक्ष हैं। प्रत्येक अंश ही इस सजीव वृक्षकी पूर्णताके साधनमें तथा जीवनानुभावमें नियुक्त है।

जैव सृष्टिका यही नियम है, कला-सृष्टिका भी यही नियम है। समष्टिके साथ व्यष्टिका भाव, परिमाण, आकार, संख्या आदिकी संगति और सामञ्जस्य स्थापित होनेपर ही सुषमाकी सृष्टि होती है। गीता सर्वत्र सुषमामयी है। गीता अष्टादश अध्यायोंमें विभक्त है। परंतु जान पड़ता है कि पहले गीताका कोई अध्याय-विभाग नहीं था। अध्याय-परिच्छेद-शून्य पूर्णाङ्गी गीता रचे जानेके बाद व्यासजीने सर्वसाधारणकी सुविधाके लिये गीताका अध्याय-विभाग कर दिया। गीताकी तत्त्व-विवृति इस प्रकार निरवच्छिन्न प्रवाहमें चली गयी है, कहीं भी छिन्न नहीं है, कहीं भी व्यवधान नहीं पड़ता। प्रत्येक अङ्ग दूसरे अङ्गसे संयुक्त है, मानो एक देह हैं। जान पड़ता है ऋषि सम्पूर्ण गीतामें केवल एक ही बात कहना चाहते हैं, केवल एक ही गीति—कविता लिखना चाहते हैं, केवल एक ही रागिणीका आलाप करना चाहते हैं। तथापि वे इस प्रकारसे करते हैं, मानो उसी एक ही बातमें विश्वकी सारी बातें प्रकाशित हो जाती हैं, मानो उसी एक कवितामें विश्वके सारे रस... अभिव्यञ्जित होते हैं, मानो उसी एक रागिणीमें ... विश्वका सारा संगीत झंकृत हो उठता है।

गीताके अवयव-संस्थानमें एक सुचारु शृङ्खला है। गीताके अध्यायोंकी संख्या अष्टादश है। प्रथम अध्याय उपक्रमणिका है—सारी गीतोपनिषद्का अधिष्ठान (back-ground या setting) है। शेष अध्याय उपसंहार है, समस्त प्रतिपादित विषयोंका संग्रह (synopsis) है। धृतराष्ट्रकी जिज्ञासासे संजयके मुखद्वारा गीताका प्रारम्भ होता है। सबके अन्तमें संजयकी उक्ति पाँच श्लोकोंमें अति मनोरम रूपमें गीताकी परिसमाप्ति है। संजय कहते हैं—श्री कृष्णार्जुनकी यह रोमाञ्चकारिणी अद्भुत कथा सुनी है, व्यासकी कृपासे वक्ता स्वयं योगेश्वर श्रीकृष्णके श्रीमुखसे यह निगूढ़ और परम तत्त्व सुना है। केशवार्जुनका यह अद्भुत संवाद मैं जितना ही स्मरण करता हूँ, उतना ही पुलकित हो रहा हूँ। मैं श्रीहरिके अति अद्भुत रूपको जितना ही स्मरण करता हूँ, उतना ही महान् विस्मयसे अभिभूत होता हूँ।' 'अद्भुत' शब्द तीन बार, 'संस्मृत्य' दो बार तथा 'हृष्यामि' दो बार प्रयुक्त हुआ है। इससे संजयकी महान् भावाविष्ट अवस्था अति उज्ज्वल रूपमें व्यक्त होती है। संजय गीताके रूप, काव्यैश्वर्यमें तन्मय हैं।

द्वितीय अध्यायसे एकादश अध्यायतक गीताका प्रथमार्द्ध है तथा द्वादशसे सप्तदश अध्यायपर्यन्त द्वितीयार्द्ध है। प्रथमार्द्धके दो भाग हैं। द्वितीयसे षष्ठ अध्यायतक तथा सप्तमसे एकादश अध्यायतक। द्वितीयार्द्धके भी दो भाग हैं—द्वादशसे पञ्चदश अध्यायतक और षोडशसे सप्तदश अध्यायतक। इन चार विभागोंमेंसे प्रथम विभागमें जीवात्मतत्त्व विवृत हुआ है। तृतीय और चतुर्थ विभागमें भी (१२ से १७ वें अध्याय तक) जीवात्मतत्त्व है। परंतु उनमें बहुत भेद है। प्रथम विभागमें जीवात्माका आत्मांश प्रधान है और वह आत्मांश परमात्माभिमुख है। तृतीय और चतुर्थ विभागमें जीवात्माका जीवांश प्रधान है और वह जीव प्रकृति-अभिमुख है। तृतीय और चतुर्थ भागका अन्तर यह है कि तृतीयमें प्रधानतः जीवकी दैवसम्पद् और चतुर्थमें आसुरभाव उक्त हुआ है।

दैवो विस्तरशः प्रोक्त आसुरं पार्थ मे शृणु।
(अ० १६।६)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संक्षेपमें, प्रथम भागमें परमात्मसाधन-प्रयासी ब्रह्मभावाकाङ्क्षी आत्माकी कथा है। द्वितीय भागमें परमात्मतत्त्वकी विवृति है। तृतीय भागमें आत्मा और प्रकृतिका सम्बन्ध है, प्रकृतिगत आत्मा है। चतुर्थ इनसे निम्न स्तरमें है, वहाँ तामसी प्रकृतिके अनुगत आत्मा है।

दूसरे देखनेपर प्रथमार्द्धमें आत्मतत्त्व ब्रह्मतत्त्वमें योगयुक्त हो रहा है। द्वितीयार्द्धमें आत्मतत्त्व प्रकृतितत्त्वमें विलीन हो रहा है और यहीं भक्तितत्त्वके प्रेमाञ्जनसे प्रकाशित दृष्टिसे देखनेपर ज्ञात होता है कि श्रीकृष्ण और श्रीराधा अति मनोहर युगल-मिलनमें प्रभासित हो रहे हैं तथा दूसरी ओरसे देखें तो ज्योतिर्मयी हर-पार्वतीकी मूर्ति दीखती है। एक ओरसे किशोर-किशोरी प्रेममयी हैं और दूसरी ओरसे जनक-जननी स्नेह-कल्याणमयी हैं; परंतु गीतामें प्रधानतः राधा-कृष्ण आभासित नहीं हैं। शिव-दुर्गा ही प्रतिभासित हो रहे हैं। यह बात अद्भुत-सी लग सकती है, परंतु है सत्य। इसपर आगे विचार करेंगे। श्रीरामकृष्ण परमहंसदेवका मैंने एक चित्र देखा है। उसमें लंबे और सीधे कुछ ऐसे काँचके टुकड़े लगाये गये हैं कि सामनेसे देखनेपर जान पड़ता है कि रामकृष्णदेव भक्ति-भक्तरूप हैं, दूसरी दृष्टिसे देखनेपर दीखता है कि सृष्टि-संहारकारिणी महाकालीके पदतलमें सकल मङ्गलमय शिव हैं। विपरीत दिशासे देखनेपर जान पड़ता है कि श्रीराधा-कृष्ण युगल—प्रेम-मिलनमें मिल रहे हैं। गीताके अन्तरङ्ग भावरूपी ध्यान-नेत्रसे देखनेपर यही भाव प्रतिभात होता है। सामनेसे कर्म-ज्ञान-भक्तिविधायिनी जीव-प्रकृति एक दृष्टिसे राधा-कृष्ण हैं और दूसरी दृष्टिसे शिव-दुर्गा हैं।

गीतामें किसी निर्दिष्ट खण्डित तत्त्वकी व्याख्या नहीं है।

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
(श्रुति)

गीतामें यही पूर्णत्वयुक्त समस्त मूर्त्त प्रकाशित है।

वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते॥
(भागवत)

—इसीकी प्रकाशरूपमयी गीता है। जीवात्माने देह धारण करके संसारमें प्रवेश किया। यही मानव-जीवनका आरम्भ है। जीव क्या है? आत्मा क्या है? देह क्या है? संसार क्या है? यह सब प्रारम्भिक जिज्ञासा है, प्रथम प्रश्न है। संसार कर्मक्षेत्र है, कर्ममय है। कर्म ही संसार है। संसार जगत्में है, संसारके लिये ही जगत् है। जगत्में जो कुछ है, सब कर्म है। जगत् ही कर्म है, जगत् कार्य भी है। किस क्रियाका कार्य है? विसर्पण-क्रियाका कार्य है। किसका विसर्जन?—ब्रह्मका अर्थात् भगवान्का। क्या विसर्जन? भगवत्ताका विसर्जन। किसके प्रति? निज प्रकृतिके प्रति। विश्वसृष्टि एक त्यागकी लीला है। तत्त्व तो 'एकमेवाद्वितीयम्' है, इसमें त्याग कैसे होगा?—होगा। ब्रह्म उनका पूर्ण स्वभाव है। उन्होंने अपना सर्वस्व अपनी प्रकृतिको दान कर दिया। प्रकृति ब्रह्मके ही अन्तर्गत है, उसकी स्वगत है, वे अखण्ड-अद्वय होकर भी दानके लिये भिन्नवत् हो गये, दो हो गये—ब्रह्म हो गये और प्रकृति हो गये। इस प्रकार एक होते हुए भी उनकी एक महती शक्ति है। उस शक्तिका नाम माया है। यह सब विविध भेदरूप अनेकीभाव वे क्यों करते हैं? बादरायण कहते हैं—'लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्।'

हम सहज ही इसका अर्थ समझ सकते हैं। ब्रह्म आनन्दमय है, रसमय है—'रसो वै सः।' जो परानन्द है, वही प्रेम है। प्रेम विसर्जनात्मक है। अपनेको दान कर देनेकी उत्कट इच्छाका नाम ही प्रेम है। ब्रह्म प्रेममय हैं, अतएव आत्मदान उनके लिये अत्यन्त आवश्यक है। ब्रह्मकी यह इच्छा ही द्वैतभाव सृजन करती है। काम और काम्य, पुरुष और प्रकृति, स्वभाव और अभाव, पाजिटिव और नेगेटिव आकर्षणमयी विभिन्न विद्युत्शक्ति—स्तर-स्तरमें इस प्रकारके भावोंके विकासमें विश्व अभिव्यक्त होता है।

कामस्तदग्रे समवर्तताधि-
मनसोपेतः प्रथमं यदासत्।
(श्रुति)

आनन्द, रस, प्रेम, काम—सब तत्त्वतः एक हैं। इसी कारण श्रुति कहती है—

आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।

विश्व-सृष्टिकी यही आदि-कथा है। गीताकी एक बात बहुत रहस्यमय जान पड़ती है—

भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः।
(८।३)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(७)

कर्म किसे कहते हैं ? जिस विसर्जनसे जीवभावका **उद्भव** होता है, वही कर्म है । ब्रह्मका वह आत्म-समर्पणका व्यापार यहाँ सूचित होता है । एक ओर राधा-**कृष्णकी प्रेमलीला** है सर्वशिरोमणि और दूसरी ओर है **जीवगणका मौन** आकर्षण । सबसे नीचे अणु-परमाणुकी **संयोगशीलता** । सर्वत्र वस्तुतः आत्मसमर्पणकी आकाङ्क्षा है ।

इसमें एक विशेष बात है । ब्रह्मने प्रकृतिके प्रति आत्म-समर्पण किया, इससे प्रकृति ब्रह्ममयी हो गयी और ब्रह्म प्रकृतियुक्त हो गये । ब्रह्मका विभाग नहीं होता, अतएव समस्त ब्रह्म ही प्रकृतिगत हो गया । परंतु सबसे बढ़कर आश्चर्यकी बात यह है कि यह सब होते हुए भी ब्रह्म ज्यों-का-त्यों ही रहा, उसके स्वरूपमें न तो कोई व्यत्यय हुआ, न कोई अंश-विभाग ही हुआ । अतएव श्रुति कहती है—

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

श्रुति और भी कहती है—

पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ।

दोनों बातोंका समन्वय कैसे होगा, यह विचारणीय है । परंतु **इधर कुछ** और ही बात हुई—

न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम् ॥

(गीता १० । ३९)

गीताके नवम अध्यायके ४-६ श्लोकमें यह विषय उक्त है । चण्डीदासका एक पद है । श्रीकृष्ण श्रीराधाजीसे कहते हैं—

जपिते तोमार नाम, वंशीधारी अनुगाम तोमार चरणेर परिवास ।
तुया प्रेम साधि गोरी, आइनु गोकुल पुरी बरज मण्डले परमाय ॥

इस पदमें जो निगूढ़ अर्थ है, वह इस ज्ञानालोकमें देखा जा सकता है । तुम्हारे चरणोंका परिवास कितना सुन्दर है ! अर्थात् मैं तुम्हारे प्रेमवश निर्गुण ब्रह्म होकर भी सगुण भगवान् बनता हूँ । इसी कारण श्रीकृष्ण **व्रजाङ्गनाओंके** 'गुण'-निधि हैं ।

(८)

कर्मसे ही विश्वकी उत्पत्ति है । कर्मको लेकर ही मनुष्य-जीवनका आरम्भ है । कर्म ही जीवन है; क्योंकि कर्म ही गति, चेष्टा और परिवर्तन है । जीवन भी वही है । सद्योजात शिशुकी भाव-गतिको ध्यानपूर्वक देखनेसे ज्ञात हो जाता है कि जीवनका अर्थ क्या है । चञ्चलता ही जीवन है । चञ्चलता अर्थात् केवल चलना । इसकी विरोधिनी स्थिरता है । जगत् भी केवल चलता है, इसी कारण इसका नाम जगत् है । जगत्का अर्थ है—नित्यगति, चञ्चल । हीराक्लिटसने यूनानमें इस तत्त्वका प्रचार किया था कि प्राकृतिक प्रेरणासे लोग काम करते हैं—

कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः ॥

(गीता ३ । ५)

स्वाभाविक कर्म सुखका हेतु है । विश्वमय कर्मका एक अंश एक-एक आदमीके भागमें अर्थात् भाग्यमें आता है । यही प्राप्त कर्म अर्थात् स्वभावगत कर्म यदि कोई अस्वीकार करता है और उसके सम्पादनसे विमुख होता है, तब विचार आरम्भ होता है । जिसके करनेमें सुख होता है, क्या वही कर्त्तव्य है ? कार्य तो एक नहीं, अनेक हैं । कौन-सा कार्य करें ? किस उद्देश्यसे करें ? कामनाको पूर्ण करनेके लिये तो बहुत-से कर्म किये जाते हैं, परंतु कामनाका कहीं अन्त नहीं दीखता । कर्म जालके समान हमको फँसाये रखता है । जो कुछ करना होता था, पहले उसे मैं ठीक समझ पाता था, देख पाता था । अब तो सब अस्पष्ट हो गया है । पद-पदपर कर्म-संशय और कर्म-संकट उपस्थित होता है । कर्म-परित्याग असम्भव हो जाता है । स्थिर होकर मैं बैठ नहीं सकता, खड़ा नहीं हो सकता । सामने कर्मकी पुकार है, पीछेसे केवल कोई ढकेलता है । पर कर्ममें प्रीति कहाँ है ? कर्म तो भार है । मैं क्यों कर्म करूँ ? कौन कर्म करेगा ? कर्मका भार अति दारुण है । मैं कर्म नहीं करूँगा, नहीं कर सकूँगा । इसी स्थितिमें गीताका प्रारम्भ होता है । इसीका नाम कर्म-जाल है । इस अवस्थामें गुरुके चरणोंका आश्रय लेना पड़ता है । इसी कारण अर्जुनने कहा है—

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः
पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः ।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे
शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् ॥

(९)

धर्म-तत्त्व या नीतितत्त्वकी आलोचना करना और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उद्देश्य नहीं है। गीताने बतलाया है कि किस प्रकारसे जीवन-यापन करना चाहिये। 'जीवनमें ही सारे तत्त्वोंका समावेश है। कर्म कौन करता है?—प्रकृति। किसके लिये? पुरुषके लिये। पुरुषके भोग और मोक्षके लिये। पुरुष कौन है?—पुरुष आत्मा है। अर्जुन! तुम्हारे सामने अति भयानक भ्रम उपस्थित हुआ है। आत्मीय स्वजनोंकी मृत्युकी चिन्तासे तुम आकुल हो रहे हो। भ्रम है! भ्रम है! मनुष्य देह नहीं है, आत्मा है। देहका विनाश होता है, आत्मा अविनाशी है। आत्माके जन्म-मरण नहीं है। आत्माने कितने देह धारण किये हैं, भविष्यमें कितने देह धारण करेगा—इसकी इयत्ता नहीं है। जैसे जीर्ण वस्त्रका परित्याग किया जाता है, वैसे ही मृत्यु भी है। तुम युद्ध करो।'

जन्म-मृत्युका प्रश्न मनुष्य-जीवनमें सबसे बड़ा प्रश्न है। इस बातको अच्छी तरह समझे बिना जीवन-यापन करना अँधेरेमें चलनेके समान है। आत्माके तत्त्वको बिना समझे जीवनका लक्ष्य स्थिर नहीं हो सकता। परंतु आत्मतत्त्व अति दुरूह है, अति निगूढ़ है।

देवैरत्रापि विचिकित्सितं पुरा
नहि सुविज्ञेय अणुरेष धर्मः। (श्रुति)

आत्माका विवरण सुननेसे ही आत्मज्ञानकी उपलब्धि नहीं हो जाती। आत्मा अज, नित्य और शाश्वत है। विरज, विमृत्यु, विशोक, सत्यकाम, सत्यसंकल्प है। अणुसे भी अणु है। महान्‌से भी महान् है। अव्यक्त, अचिन्त्य, अविकार्य है। इसका अनुभव होना बहुत ही कठिन है, इसी कारण गीता एकाध्यायिनी नहीं है, अष्टादशाध्यायिनी है। फिर भी इस वर्णनको अवहित चित्तसे सुनना आवश्यक है। एक सार बात याद रखनेयोग्य है। नीति और धर्मका साधन, भजन, जप-तप, दान-यज्ञ, ज्ञान-भक्ति—जो कुछ मनुष्यके लिये करणीय या पालनीय है, सब कुछ आत्माको जाननेके लिये है और आत्माको जाननेका अर्थ है आत्माको प्राप्त करना। जबतक हम आत्माको नहीं जान लेते, तबतक मानव-जीवन अधिकांशमें अपूर्ण रहता है। तब फिर आत्माकी आराधना न करके ईश्वरकी आराधना क्यों करें? इसलिये कि ईश्वरको पानेपर ही आत्माकी पूर्णरूपसे प्राप्ति हो सकती है—यह अति अपूर्व, अति आश्चर्यजनक तत्त्व है। ''अर्जुन! सुनो—एक-एक करके सब बतलाना है। जो सबसे निकट है, सबसे सहज है, सबसे अधिक प्रत्यक्ष है, वहींसे आरम्भ किया जाता है। वह क्या है? क्या तुम जानते हो? वह कर्म है, अतएव कर्मयोग सुनो।

''प्रापञ्चिक, मानसिक, नैतिक, आध्यात्मिक—विश्वमें जो कुछ है, सभी कुछ स्रोतके समान है। आत्मासे प्रवाहित होकर आत्मामें जाकर मिल रहा है। सब कुछ योगवर्त्म है। मनुष्य-जीवनमें जो कर्म है, वह भी एक स्रोत है। वह कर्मस्रोत किस प्रकार ब्रह्मसागरमें पड़ता है, यही आगे बतलाना है। यही कर्मयोग है। विश्वके विभिन्न स्रोत पृथक्-पृथक् नहीं हैं। सभी परस्पर संयुक्त हैं। कब कौन-सा स्रोत कैसे किसके साथ मिलता है, किस प्रकार जाल बुनकर एक साथ मिल जाता है और फिर पृथक् रूपमें प्रवाहित होता है—इसका पता लगाना बहुत ही कठिन कार्य है। तथापि जहाँतक सम्भव होगा, पृथक्-पृथक् करके बतलाया जायगा। परंतु फिर भी पृथक्-पृथक् नहीं होगा।

''कर्म आवश्यक है, परंतु कर्म इतने जाल-जंजालमें फँसाकर यन्त्रणा क्यों देता है?—कामनाके कारण। कामना करके अर्थात् सुखकी इच्छासे कर्म करनेपर दुःख होना अनिवार्य है, सांसारिक क्षणस्थायी सुखसे क्या लाभ होगा! अनन्त सुखके सिन्धु जो भगवान्, परमात्मा हैं—उन्हींको प्राप्त करनेके लिये कर्म करो। बात समझमें नहीं आ रही है, आ जायगी। पहले कामनाका परित्याग करो। वासना कुहासाके समान है, आशा कु-आशा है। ज्ञानके सूर्यको आवृत कर रखती है। सुखाशाके अभ्यासका त्याग करो। कर्मका त्याग नहीं हो सकता। उसके लिये चेष्टा न करो। **'मा ते सङ्गस्त्वकर्मणि।'** कर्म शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक स्वास्थ्यका मूल है। कर्मशक्ति नदीके समान है। बहती जायगी। बंद करोगे तो सड़न पैदा होगी। वृक्ष-लता, शस्यादि सड़ जायँगे। देशका अधःपतन होगा।

''व्यर्थकी वासनाका त्याग करके, इन्द्रियसंयम करके स्थिर होकर कर्त्तव्य कर्म करते रहनेसे ही तुम्हारा ज्ञानालोक प्रकाशित होगा। बुद्धि निर्मल होगी। अब ज्ञानकी बातें कही जाती हैं सुनो।

''ज्ञानोदयका प्रथम लक्षण है—कर्मराज्यका आलोकित होने लगना। धीरे-धीरे यह स्पष्टरूपमें दिखायी देने लगता है कि सब कुछ शृङ्खलामें गुँथा हुआ है। श्रेणीबद्ध, स्तर-स्तरपर कर्म-सुकर्म, कुकर्म-अकर्म—सारे भेद क्रमशः समझमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आने लगते हैं। इसमें एक आश्चर्यकी बात दीख पड़ेगी। जिसको तुम केवल अज्ञानात्मक कर्म समझते थे, वह केवल शुष्क कर्म नहीं है। वह भी ज्ञान है। कर्ममात्रको ही ज्ञानमें परिणत किया जा सकता है। रासायनिक प्रक्रियाके द्वारा भौतिक पदार्थको जैसे कठिनावस्थासे तरलावस्थामें तथा तरलावस्थासे वायवीयावस्थामें परिणत करते हैं, उसी प्रकार कठिन कर्मको भावमय ज्ञानमें परिणत किया जा सकता है। केवल यही नहीं। कर्म जितना ही निष्काम होता है और ज्ञान जितना ही निर्मल होता है, उतना ही कर्म बिना प्रयासके ज्ञानमें पर्यवसित हो जाता है। चाहे कितना ही घनिष्ठ भावसे कर्म क्यों न करें, जान पड़ेगा कि ज्ञानानुशीलन ही किया जा रहा है। कर्मसे ज्ञान तत्त्वतः पृथक् नहीं है।

सांख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः ॥

(गीता ५ । ४)

''ज्ञानके साधनमें आरोहण करनेपर कर्मका परित्याग नहीं किया जा सकता, ऐसी बात नहीं है। परंतु कर्मका त्याग न करना ही श्रेय है; क्योंकि कर्मका परित्याग करके ज्ञानका आश्रय लेनेपर तामसिक आलस्य और अवसादके घोर अन्धकारमें पड़कर अन्तमें ज्ञानतकको खोकर अधःपतित होनेका विशेष भय रहता है।

''संन्यास बहुत श्रेष्ठ है। परंतु संन्यासके लिये कर्मत्याग आवश्यक नहीं है। इसके अतिरिक्त केवल कर्मत्याग करनेसे ही कोई संन्यासी नहीं हो जाता। लौकिकी नीति भी यही कहती है—

वनेऽपि दोषाः प्रभवन्ति रागिणां
गृहे तु पञ्चेन्द्रियनिग्रहस्तपः ।

''तब संन्यासी कौन है ? जिसमें आकाङ्क्षा नहीं है, द्वेष नहीं है, जो सुख-दुःख, लाभालाभ, इष्टानिष्ट, शत्रु-मित्र, सबको अविकृत चित्तसे एक दृष्टिसे देखता है, वही संन्यासी है; कर्मक्षेत्र ही इस संन्यास-साधनका उत्कृष्ट स्थान है। सम्पूर्ण वासनाविहीन अहंकारशून्य कर्मानुशीलन ही श्रेष्ठ संन्यास है। मेरे भीतर जो 'मैं' है, वह मैं तो कुछ भी करता नहीं है। इन्द्रियाँ विषयोंमें विचरण करती हैं। मैं जानता हूँ, देखता हूँ—बस, इतना ही मात्र। इस कर्म-प्रवाहके बुरे-भलेके साथ, लाभ-हानिके साथ मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। देह, मन, इन्द्रियाँ, बुद्धि मिल-जुलकर अपना-अपना काम करते हैं, उनमें न मैं बाधा दूँगा और न योग ही दूँगा। प्रकृति ईश्वरके निर्देशानुसार कार्य करती जा रही है। सारे कार्य उसीके हैं और उसीके रहें। यदि कहीं मेरा कार्य है, ऐसी भावना होती है तो उसे ईश्वरको समर्पण कर देनेमें ही सुविधा है, उसीमें सुख है। दूसरेका जो है, वह दूसरेका ही है। दूसरेकी वस्तु उसको दे दें, तो भी हमको प्रचुर लाभ है। ब्रह्मके सिवा दूसरा कौन पर (दूसरा) है ? सुख चाहनेसे दुःख होता है, सुख-वासना त्याग करनेपर सुख-ही-सुख है। मैं आत्मा हूँ। आत्माको लेकर एकान्तमें रहते हुए प्रकृतिकी कर्मलीला देखते रहना अपार सुखका हेतु है। कैसी सुन्दर बात है ! जो कुछ सुख है, सब हमसे ही है; जो कुछ शान्ति, तृप्ति, आनन्द, ज्योति है—सभी कुछ तो हमारे भीतर है। हम कर्म करते हैं, ज्ञान प्राप्त करते हैं, कर्म करके भी कर्मत्याग करते हैं, संन्यास करते हैं, हमारे भीतर आनन्द और ज्योतिका अटूट स्रोत है—इस बातको ध्यानस्थ होकर देखो !

''ध्यानयोगी पतञ्जलिके द्वारा प्रदर्शित अध्यात्म-... प्रारम्भ हुआ कि चित्त स्थिर और निर्विकार हुआ। अपनेमें अर्थात् आत्मामें अधिष्ठित दीपशिखाको प्रज्वलित करता हूँ, परंतु निष्कम्प। कामनाकी वायु वह नहीं ... है। इन्द्रियानुभवसे अतीत सुख केवल बुद्धिद्वारा अनुभव हो रहा है। अति गम्भीर, अति निबिड़ सुख है। ... पड़ता है सब सुखोंका सार है। यही तो परम लाभ है, यह जब प्राप्त हो गया, तब और कुछ भी आवश्यक नहीं रहा। फिर दुःखका भय नहीं रहा, सुखका साम्राज्य प्रतिष्ठित हो गया है। सुखके साथ-साथ ज्ञान, मानो ज्ञान ही सुख है और सुख ही ज्ञान है। कैसा अद्भुत ज्ञान है! विश्वमें जो कुछ है, जो कोई है, सब कुछ भी तो ... भीतर है, यह कैसी विस्मयकी बात है ! और मैं ही ... भूतोंमें हूँ। कुछ भी तो मुझसे अतिरिक्त नहीं है।

''तो क्या आत्मा ही विश्वकी प्रतिष्ठा है ? अवश्य ... इस आत्मज्योतिके पीछे जो दूसरी ज्योति दिखायी देती है, वह और भी उज्ज्वलतर ज्योति है, ये हैं अधिष्ठानरूपमें ... परमात्मा। यहींपर चैतन्य, सच्चिदानन्द हैं, उनका ... मेरी आत्मा है, यह उन्हींकी छाया है। ज्योतिकी ... ज्योतिरूप है, हम आभासचैतन्य हैं, हम चिच्छाया हैं ... इस ज्योतिश्छायाके साथ-साथ परमात्माकी एक तन्...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, उसका भी अनुभव हो रहा है। उसके आठ अङ्ग हैं—बुद्धि, मन, अहंकार, व्योम, वायु, वह्नि, जल, भूमि। आभास-चैतन्यरूपी आत्माकी यह तमश्छाया ही उपाधि है। ये दो छाया परमात्माकी दो प्रकृति हैं—परा और अपरा। परमात्माकी पराप्रकृतिरूपिणी जीवभूता आत्मा है और अपरा प्रकृति विश्व-बीजमयी, विश्वजननी है। इसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। सब कुछ इन्हीं तीनोंके अन्तर्गत है। परमात्मा, परा प्रकृति और अपरा प्रकृति!

"विश्वमें सब कुछ ब्रह्म है, सब कुछ आत्मा है। इसमें दो भाव लक्ष्यमें रखने योग्य हैं—एक क्षर और दूसरा अक्षर। दृश्यमान जगत्‌का जो नित्य चञ्चल, नित्य परिवर्तनमय विभाव है, वही क्षर ब्रह्म है और इसके भीतर, इसके परपारमें जो दूसरा एक निश्चल, निर्विकार, नित्य, निरञ्जन, सर्वातिशायी, सनातनभाव है, वही अक्षर ब्रह्म है। इनमें विभिन्न भूतभाव धारण करके जो आत्मा स्थित है, उसका नाम अधिभूत है। समस्त विश्वके अन्तर्यामीरूपमें जो है, वह अधिदैवत है। प्रत्येक व्यष्टि देहके अन्तर्देशमें जो है, वह अधियज्ञ है। अधिदेवता ही परम पुरुष है। मृत्युकालमें उसी परम पुरुषका ध्यान करते हुए प्रयाण करनेपर फिर संसारमें लौटकर नहीं आना पड़ता। यह जो अपरा प्रकृतिके विषयमें कहा गया है, इसीका नाम अव्यक्त है। इसीसे कल्पके आदिमें विश्वका उद्भव होता है तथा कल्पके अन्तमें इसीमें विश्व विलीन हो जाता है—सब कुछ विलीन हो जाता है। रह जाता है केवल इस अव्यक्तसे विलक्षण एक अव्यक्त सनातन तत्त्व। वही ब्रह्म है, वही भगवान् है, वही परम गति है, वही परम ध्यान है, वही परम पुरुष है, उसे भक्तिके द्वारा प्राप्त कर सकते हैं।"

श्रीकृष्णने कहा—'पार्थ! सुनो। अति उत्तम, अति गुह्य, अति अन्तरङ्ग एक तत्त्व अब तुम्हें बतला रहा हूँ। सावधान होकर सुनो। यह आत्मा, यह ब्रह्म, यह परा-अपरा प्रकृति, यह परम सुन्दर, यह क्षर-अक्षर अधिदैवत, अधियज्ञ आदि जो कुछ है, सब कुछ मैं हूँ। मैं अप्रकाश्य रूपसे विश्व-ब्रह्माण्डमें व्याप्त हो रहा हूँ। मुझमें ही सब भूत अवस्थित हैं; तथापि मैं किसीमें नहीं, मुझमें ही सर्वभूत हैं, यह भी ठीक नहीं; क्योंकि मैं सब सम्बन्धोंसे परे हूँ। तथापि मैं सब भूतोंको धारण कर रहा हूँ, तथा पालन कर रहा हूँ, यही मेरा ऐश्वर योग-रहस्य है।

'अव्यक्तसे विश्वकी उत्पत्तिकी बात जो मैंने कही है, वह मेरे संकल्पाधीन है। मेरी अध्यक्षतामें प्रकृति जगत्‌का सृजन करती है।' श्रीभगवान् कुछ हँसते हुए बोले, "मेरे इस मानुषी तनुको देखकर मुझको मनुष्य मत समझना। मैं ही विश्व-ब्रह्माण्डका अधिपति हूँ—इस बातको जो नहीं जानता, उसका जीवन व्यर्थ है। वह असुरजातीय है। महात्मा-लोग मेरा ही भजन करते हैं। तुम मेरे ही नाम-गुण आदिका कीर्तन करो। मेरी ही पूजा-अर्चना करो, मेरे ही प्रति भक्तिमान् बनो। पिता-माता, वेद-वेदान्त, प्रभव-प्रलय, मृत्यु-अमृत, सत्-असत्—सब कुछ मैं हूँ।

"मैं ही सबका आश्रय हूँ। वेदोक्त कर्म करके स्वर्ग प्राप्त कर सकते हो; किंतु पुण्यके समाप्त हो जानेपर पुनः मृत्युलोकमें लौट आना पड़ेगा। परंतु मेरी आराधनासे सर्वोत्तम गति प्राप्त होती है। सारी चिन्ता मेरी ओर प्रवाहित हो, सारी भक्ति-प्रीति मुझमें ही व्यस्त हो, सारे यज्ञ मेरे ही उद्देश्यसे किये जायँ, तब निश्चय ही मेरी प्राप्ति होगी।"

इस नवम अध्यायसे ही भक्तियोग प्रारम्भ होता है। अर्जुन सुन-सुनकर विस्मित और आनन्दित है, मोहका आवरण हट रहा है। अर्जुन कहने लगे—'श्रीकृष्ण! सचमुच तुम ही परब्रह्म हो, तुम्हीं परम पुरुष हो। तुम्हीं भगवान् हो। सब लोग यही कहते हैं। योगी-ऋषि आदि सबके मुँहसे यही वाणी निकलती है। मैं आज समझा—तुम सर्वमय हो, तुम सर्वस्वरूप हो, परमात्मा हो, परमेश्वर हो। तुम्हारा विशिष्ट उत्तम उज्ज्वल प्रकाश कहाँ-कहाँ है, मुझको विशेष रूपसे बतलाओ। जिधर ही चिन्तन करता हूँ, जिधर ही दृष्टि जाती है, सर्वत्र मानो मैं तुम्हींको देख रहा हूँ। तुम्हींको पा रहा हूँ।'

यहाँ विभूतियोग विवृत हुआ है। जगत्‌में जो कुछ श्रेष्ठ है, जो कुछ गौरवविशिष्ट है, जो कुछ महिमान्वित है, जो कुछ सुन्दर है, जो कुछ प्रधान है, जो कुछ प्रभावयुक्त है, जो कुछ शक्तिशाली है, जो कुछ ज्योतिष्मान् है, सभी श्रीकृष्ण है, श्रीकृष्णकी विभूतिका अन्त नहीं है।

अर्जुनने कहा—'केशव! तुम्हारी इस विभिन्न विभूतियोंके वैभवको मैंने समझा। अब अपनी समस्त विश्वव्यापी, विश्वरूप, ब्रह्माण्डव्यापिनी महीयसी सर्वैश्वर्यमयी मूर्ति एक बार मुझको दिखाओ।' श्रीकृष्ण बोले—'देखो, इन प्राकृत नेत्रोंसे वह रूप नहीं देखा जाता। तुमको दिव्य चक्षु देता हूँ। मेरे उस सर्वाश्चर्यमय रूपको देखो।' अर्जुनने विश्वरूप देखा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहस्रों सूर्य एक साथ उदय होनेपर विश्वमें जैसी विराट् ज्योति प्रकाशित हो सकती है, उससे भी उज्ज्वल, अपूर्व अनन्त ज्योति मूर्ति प्रकाशित हो उठी।

अनन्त मुख, अनन्त नेत्र, अनन्त बाहु, अनन्त चरण—समस्त अद्भुत दर्शन। शत-शत दिव्य वर्ण, शत-शत दिव्य आभरण, शत-शत उद्यत आयुध, दिव्य माल्य, दिव्य गन्धका अनुलेपन—समस्त ज्योतिर्मय! असीम आकाश, अनन्त अन्तरिक्ष, निखिल विश्वब्रह्माण्डको व्याप्तकर अप्रमत्त, सुप्रदीप्त अनलार्कद्युति! कैसा अद्भुत! कैसा उग्र! कैसा दुर्निरीक्ष्य रूप! ब्रह्मा, प्रजापति, देवगण, ऋषिगण, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, किंनर, दैत्य-दानव—सभी इस विराट् ज्योतिर्मय देहमें विराजित हैं! रुद्रगण, आदित्यगण, वसुगण, विश्वेदेवगण, अश्विनीकुमार, मरुद्गण, पितृगण—सभी विस्मित नेत्रसे इस विशाल रूपप्रभाको देख रहे हैं। कैसा भयंकर रूप है! उधर संहाररूपी रुद्र ज्वलंत मुख फैलाकर समस्त भूतवृन्दको ग्रास बना रहे हैं। कैसा भीषण आकर्षण है! दुर्दमनीय वेगसे दौड़-दौड़कर सभी इस प्रदीप्त मुखकोटरमें प्रवेश कर रहे हैं। कैसा करालदंष्ट्र मुख है। कैसी लपलपाती वह्निशिखामयी जिह्वा है, जगत्के वीरवृन्द स्रोतमें प्रवाहित जलके वेगके समान दौड़कर इस प्रज्वलंत प्रकाण्ड वक्त्रमें प्रवेश कर रहे हैं, जैसे ज्वलंत अनलमें पतङ्गोंके समूह प्रवेश करके संहारको प्राप्त हो रहे हों।

अर्जुनने इस महाविस्मयजनक रूपको देखकर प्रत्यक्षतः समझ लिया कि श्रीकृष्ण ही अनन्त, अक्षर, परम पुराण पुरुष हैं, श्रीकृष्ण ही परब्रह्म हैं, श्रीकृष्ण ही विश्वके निधान हैं। उस ज्वलंत ब्रह्मज्योतिको अर्जुन सहन न कर सके। श्रीकृष्णने रुद्र-तेजको संवरण करके मानवरूप धारण किया। गीताका प्रथमार्द्ध यहीं समाप्त होता है। द्वितीय अध्यायसे धीरे-धीरे, स्तर-स्तरपर जो महाभावारोह चला, वह ग्यारहवें अध्यायमें जाकर सर्वोच्च शिखरपर प्रतिष्ठित हो गया। इसके आगे अब आरोह नहीं है, अब अवरोह है। वस्तुतः अवरोह असम्भव है, महान् ब्रह्मभावके अनन्त विमानमें ऊपर-नीचेका कोई भेद नहीं है। उत्प्रेक्षाके रूपमें 'अवरोह' शब्दका प्रयोग यहाँ किया गया है। गीता मानो एक उज्ज्वल वर्णमय इन्द्रधनुषका मण्डलार्द्ध है, विश्वरूपदर्शन इस मण्डलका शिखर है।

गीताकी ब्रह्माभिमुखी तत्त्वज्ञानविवृति सम्पन्न हुई। अब जीवाभिमुख तत्त्वज्ञानका आख्यान है। जीवका जो पुरुषभाव है। जिस भावपथका अनुसरण करके विश्वरूपमें प्रवेश किया जाता है, उसे कह चुके। इसको अध्यात्म ब्रह्मभाव अथवा भगवद्भाव भी कहते हैं। अब जो प्रकृतिभाव कहा जायगा। पहले पराप्रकृतिरूप भक्ति द्वादश अध्यायमें वर्णन है। इस अध्यायका भक्तियोग नहीं है। नवम, दशम और एकादश अध्यायमें भी भक्ति चला है। भक्तिके कतिपय लक्षण इनमें प्रदर्शित हुए; यह भी पञ्चम-षष्ठादि अध्यायोंमें पहले आभासित हुआ है।

ज्ञानयोगकी साधना करनी है। भक्तियोगकी करनी है। परंतु कौन किसको जानेगा? कौन किसकी भक्ति करेगा? ज्ञाता-ज्ञेय-ज्ञान, भक्ति-भक्त-भगवान् दूर-दूर नहीं हैं। तीर्थयात्रा नहीं करनी पड़ेगी। तत्त्व युक्त—युगलरूप होकर रहते हैं। क्षेत्र क्षेत्रज्ञ, प्रकृति और पुरुष—ये अनादि मिलनमें हुए हैं। मायाकी छायाके अन्तरालमें विच्छेद होता है। यही दुःख है, यही बन्ध है, यही संसार है, पाप है। सब छाया—कौतुक है, इन्द्रजाल है। इस इन्द्रजालके प्रभावको अतिक्रमण करनेके लिये ही साधना है।

हमलोग जीवात्मा नामसे एक तत्त्व समझते हैं, ऐसा है नहीं; जीव और आत्मा—दो पृथक् तत्त्व हैं। प्रकृति है, परब्रह्मकी परा प्रकृति है; आत्मा पुरुष है। इस आत्मभूत पुरुषमें भी एक द्वैतभाव है। इसका अंश पुरुष है और दूसरा अंश प्रकृति है; जो भगवत्तत्त्व और भगवत्-शक्ति है। गीतामें इसको स्पष्टरूपसे नहीं गया है। भागवत और वैष्णवदर्शनमें यह विषय विशद पूर्वक प्रकाशित और आलोचित हुआ है। गीतामें जो प्रकृतिकी बात कही गयी है, उसीमें ये युगल तत्त्व छिपे हैं। परा प्रकृति चिच्छाया है। यह चित् पुरुष है और छाया प्रकृति है। यह छाया ही गोपी है और यह चित् नन्दनन्दन श्रीकृष्ण हैं। गीतामें सब कुछ है, केवल यह बात नहीं है; परंतु फिर भी है, चतुरचूडामणि श्रीकृष्णने इसको कुशलता पूर्वक अन्तरालमें छिपा रक्खा है। इसी बातको बतलानेके लिये श्रीव्यासजीने भागवतकी रचना की। गीतामें विश्व अन्तिम बात कह दी गयी है। देव-मानव-दर्शनका अन्तिम सिद्धान्त गीता है। परंतु इस अन्तिम सिद्धान्तके भीतर एक रहस्य छिपा था, उसीको बतलानेके लिये भागवत पुराण है। गीता पढ़नेपर—

मने हय कि एकटि शेष कथा आछे।
से कथा हइले बला सब बला हय॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्पना काँदिया फिरे तारि पाछे पाछे।
तारि तरे चेये आछे समस्त हृदय ॥ ×××
मने हय कत छन्द, कत ना रागिणी।
कत ना आश्चर्य गाथा, अपूर्व काहिनी ॥
जत किछू रचियाछे जत कविगणे।
सब मिलितेछे आसि अपूर्व मिलने ॥

अर्थात् जान पड़ता है कि एक कथा शेष रह गयी है, उस कथाके कहनेपर सब कुछ कहना हो जाता है। कल्पना रो-रोकर उसीके पीछे-पीछे घूमती है, उसीके लिये सारा हृदय अपेक्षा करता है। कितने ही छन्द, कितनी ही रागिणियाँ, कितनी ही अद्भुत गाथाएँ, अपूर्व कहानियाँ, जो कुछ जिन कवियोंने प्रणयन किया है, जान पड़ता है वह सब इस अपूर्व मिलनमें आकर मिल जाता है जिस कथासे, वही कथा श्रीमद्भागवत है।

क्षेत्र-तत्त्व क्या है? सांख्य-दर्शनमें जिसे लिङ्गशरीर कहा है, वही क्षेत्र है। जिसका अवलम्बन करके आत्मा संसारमें आवागमन करता है, जन्म-मृत्युके स्रोतमें बहता है, वही भोगायतन अतिवाहिक शरीर क्षेत्र है, वही जीव है। बुद्धि, अहंकार, मन, दस इन्द्रियाँ, पञ्च तन्मात्राएँ—इन अठारह तत्त्वोंकी समष्टिसे प्रसूत लिङ्गशरीर है। 'सप्तदशैकं लिङ्गम्'—यह सांख्यका मत है। गीता कुछ चिन्तन करके इनके साथ प्रारम्भमें अव्यक्त और अन्तमें शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, इच्छा-द्वेष, सुख-दुःख, देह, चेतना, धृति—इन तेरह तत्त्वोंको जोड़कर इकतीस तत्त्वोंवाले क्षेत्रका निर्देश करती है। जो इस क्षेत्रके भीतर रहकर इसको जानते हैं, इसका भोग करते हैं, इससे प्रेम करते हैं, इसका शासन करते हैं, संयमन करते हैं, वे ही क्षेत्रज्ञ पुरुष हैं, वे ही आत्मा हैं, वे क्षेत्र नाम्नी प्रकृतिके साथ एकीभूत होकर रहते हैं, इस कारण अपने स्वरूपको भूल जाते हैं।

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया
समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
× × × ×
समाने वृक्षे पुरुषो निमग्न
अनीशया शोचति मुह्यमानः ॥

जिस साधनके द्वारा पुरुष अपने तत्त्वको जान सकता है तथा श्रीभगवान्‌को प्राप्त कर सकता है उस साधनाकी फल-समष्टिको गीताने 'ज्ञान' नामसे अभिहित किया है। ब्रह्म इस ज्ञानका विषय है, क्षेत्रज्ञ इसका ज्ञाता है, क्षेत्र प्रकृति-सम्भूत है। प्रकृति त्रिगुणमयी है। सत्त्व, रज और तम—ये तीन गुण हैं। सत्त्व प्रकाश करता है, आलोक लाता है; रज क्रियात्मक है, गति-शक्ति-वेग रूप (Force, energy) है। तम अवरोधक है, स्तब्धता-अन्धकाररूप (Inertia) है। चतुर्दश अध्यायमें इस त्रिगुणके गुण-दोषादिका विशेषरूपसे वर्णन किया गया है। इस त्रिगुणमयी प्रकृतिके अधीन होकर जीव संसारी बनता है। संसार एक अद्भुत अश्वत्थ वृक्ष है, इसका मूल ऊपरकी ओर ब्रह्ममें संलग्न है। सारी शाखा-प्रशाखाएँ निम्नाभिमुखी हैं। वैराग्यशस्त्रसे इस वृक्षको काटकर परम पदका संधान करना पड़ता है। यही परमपद ब्रह्मधाम, विष्णुपद, श्रीकृष्णलोक है। दूसरे अध्यायसे दसवें अध्यायतक अध्यात्म-साधनकी प्रणाली कही गयी है। कर्म-ज्ञान-विज्ञान-संन्यासादि योगका अनुशीलन ही इस संसारवृक्षको काटने तथा ब्रह्मपद या भगवान्‌के पादपद्मकी प्राप्तिके विभिन्न उपाय हैं। ब्रह्मके अधिभूत नामक क्षरभावकी बात कही गयी है। कूटस्थ अक्षरभावकी बात भी नाना प्रकारसे वर्णित है। क्षर यह विश्वजगत् है; अक्षर अनन्त-अव्यक्त, अनिर्देश्य, अचिन्त्य ब्रह्म है। इन दोनोंसे विलक्षण, इन दोनोंसे श्रेष्ठ, इन दोनोंकी प्रतिष्ठास्वरूप एक तृतीय भाव है, उसका नाम है पुरुषोत्तम। श्रीकृष्ण पुरुषोत्तम हैं। जीव भक्तिमार्गके द्वारा संसारसे मुक्त होकर श्रीकृष्णके पादपद्मकी सेवा प्राप्त करता है।

जिन कर्मों, चिन्तनों, भावों तथा अन्य उपायोंके द्वारा परमात्म-साक्षात्कार प्राप्त होता है, वे ही सब बातें द्वितीयसे पञ्चदश अध्यायतक कहकर, इन सब दैवी गुणसम्पद्‌का विषय विस्तारपूर्वक वर्णन करके अन्तमें सोलहवें अध्यायमें भगवान्‌ने असुरभावका तामसिक-राजसिक चरित्रका सजीव चित्र खींच दिया है। सत्रहवें अध्यायमें सत्त्व-रज-तमोगुणके तारतम्यके अनुसार कर्म-जीवनके—जप-तप-यज्ञ-दान-व्रत-पूजा आदिके जो भेद हैं, उनका विशेष विवरण दिया है। अठारहवें अध्यायमें उपसंहार है। द्वितीयसे सप्तदश अध्यायतकके प्रतिपाद्य-प्रतिपादित सारे विषयोंको संक्षेप रूपमें तथा और भी अभिनव रूपमें अनुरञ्जित करके इस अध्यायमें सुन्दरतापूर्वक अङ्कित कर दिया गया है। सबके अन्तमें गीताका सर्वसार अन्तरतम रस, परम निष्कर्ष दो श्लोकोंमें मानो बड़े आग्रहसे, अत्यन्त स्नेहानुग्रहभावसे,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानो अपने हृदयकी आकुलताको मिलाकर श्रीभगवान् अर्जुनसे कहते हैं—

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ॥
सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

यहाँ श्रीमद्भगवद्गीता समाप्त हो जाती है । 'कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति'—जिस तत्त्वको जान लेनेपर सब तत्त्व जान लिये जाते हैं, उसी तत्त्वको प्रतिपादित करना, प्रकाशित करना गीताका उद्देश्य है । गीता किसी तत्त्वका पृथक विचार नहीं करती । ॐमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत । ॐमिति ह्युद्गायतितस्योपाख्यानम् ।
(श्रुति)

'ॐ' इस वर्णका नाम उद्गीथ है । इसको परमात्माकी प्रतिमा जानकर उपासना करे । ॐकार उच्चारण करके सामगान किया जाता है । इसी कारण ॐकारको उ... कहते हैं, यह उसका उपव्याख्यान है ।

स एष रसानां रसतमः । परमः परार्ध्यो... उद्गीथः ॥
(...)

गीता भी उसी प्रकार सब रसोंका रस, सब तत्त्वोंका... सब दर्शनोंका दर्शन है । परमात्माका परमधाम यह गीता... इसमें पृथक् रूपसे एक भी बात नहीं कही गयी... विश्लेषणके रूपमें किसी विषयका विचार नहीं किया... है । एक बीजसे जैसे एक महान् वृक्ष अङ्कुरित—... होकर चारों ओर शत-शत शाखा-प्रशाखाओंमें ... और पुष्पित होकर विकासको प्राप्त होता है, गीता भी उसी प्रकार है । गीताका प्रत्येक अंश विकसित अङ्कु... है । वह उसमें संगृहीत बहुत-सी चीजोंका एकत्र ... नहीं है । गीता ज्ञान-महीरुह है, तत्त्व-कल्पतरु है, पुष्पित पारिजात-पादप है, अमृतमयी भक्ति-कल्पलता है...

मनुष्योंसे तो ये पशु-पक्षी ही अच्छे !

[जो दया, कर्तव्य, प्रेम और स्वामिभक्ति समझते हैं]

(लेखक—डाक्टर श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, दर्शनकेसरी, विद्याभूषण)

पत्र-पत्रिकाओंमें पशु-पक्षियोंके सदाचार, प्रेमके अनेक समाचार प्रकाशित होते रहते हैं । यहाँ उनमेंसे कुछ पाठकोंकी जानकारीके लिये दिये जाते हैं । इनसे यह स्पष्ट होता है कि जिन जानवरोंको हम अबोध और हिंसक मानते हैं, उनकी भी सदुद्देश्योंके सम्पादनमें बड़ी प्रवृत्ति होती है । कुछ प्रसङ्ग देखिये—

स्वामिभक्त गरुड़

बाकूका एक समाचार है—

अजरबेजानके एक गडरियेके पास एक सुन्दर गरुड़ था । उस गडरियेका नाम अलीपू तथा गरुड़का नाम बेखलीवान था । यह गरुड़ उस गडरियेका चौबीस घंटेका साथी था । साथ-साथ रहते-रहते वह गरुड़ अपने स्वामीको बहुत प्रेम भी करने लगा था । वह उसके इर्द-गिर्द रहता, मानो दोनों ही सुख-दुःखके संगी-साथी हों । प्रायः सोते समय भी गरुड़ अपने स्वामीके पास रखवाली किया करता था । गडरिया भी उसे जी-जानसे चाहता था और अच्छे-से-अच्छा भोजन खिलाया करता था । बस, यह समझिये कि उनके दो शरीर और एक आत्मा थी ।

एक दिनकी बात है । संयोगसे दिनभरके कामसे थ... बेचारा गडरिया खेतके किनारे एक छायादार वृक्षके... विश्राम कर रहा था । उसकी भेड़ें समीपकी ... झाड़ियोंमें चर रही थीं । गरुड़ पास ही बैठा था । गड... आँख लग गयी और वह गहरी निद्रामें सो गया । ... गरुड़की तीखी आँखोंने देखा कि समीपके एक बिल... साँप निकला । वह कुछ देर इधर-उधर देख गडरियेको... पाकर उधर ही बढ़ा । सर्प बड़ा जहरीला था । ग... तुरंत ऐसा लगा कि यह विषैला सर्प उसके प्रिय स्वा... काट लेगा और उसकी जीवन-लीला समाप्त हो जायगी...

गरुड़ फौरन उड़ा, सर्पपर निशाना बाँधा और ... चोंचसे उसपर आक्रमण कर दिया । थोड़ी देरतक स... आकस्मिक आक्रमणको पहचान न सका । वह कभी इध... कभी उधर भागता । इतनेपर भी जब वह दुष्ट सर्प न ... तो गरुड़ने उसे अपनी तीखी चोंचमें उठा लिया । ... सर्प भी प्रतिशोधकी भावनासे तिलमिला रहा था । चोंच... हुए सर्पने अपनेको गरुड़के चारों ओर लपेट लिया... द्वन्द्व चल ही रहा था कि शोर सुनकर गड़रिया आ...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किंतु तबतक उस स्वामिभक्त गरुड़के प्राणपखेरू उड़ चुके थे। सर्प भी अधमरा हो चुका था। गडरियेने उसे मार डाला। गरुड़के बलिदानकी कहानी वहाँके लोगोंमें चर्चाका विषय है। जानवरोंमें भी अपने स्वामीकी रक्षाका भाव पाया जाता है।

चीलझपट्टा

समस्तीपुर (बिहार) का एक अद्भुत समाचार प्रकाशित हुआ है। अंगारघाट चिकित्सालयमें कार्य करनेवाली एक नर्सके कागज़में लिपटे हुए प्रमाणपत्रों एवं नियुक्तिपत्रको रोटीके टुकड़ेके संदेहमें एक चील झपट्टा मारकर ले उड़ी।

बात यों हुई कि नर्स वहाँ गुदड़ी बाजारमें स्थित अपने मकानकी छतपर उक्त प्रमाणपत्रोंको दिखलानेके लिये खोल रही थी। चीलने समझा कि वह रोटीकी पोटली खोल रही है और भोजन पानेकी तैयारी कर रही है। वह थोड़ी देर ऊपर उड़ी, फिर एक ही झपट्टेमें पूरा पैकेट पंजोंमें लेकर आकाशमें उड़ गयी।

नर्सकी तो जैसे जान ही निकल गयी। उसके इन प्रमाणपत्रोंपर ही उसकी नौकरी आधारित थी। वह बड़ी परीशान हुई। देरतक आकाशमें उड़ती हुई उस दुष्टाका उड़ना देखती रही। उसकी आँखें वह जिधर जाती, उधर ही लगी रहीं, वह मन-ही-मन प्रार्थना कर रही थी कि पैकेट किसी प्रकार छूटकर उसकी छतपर आ गिरे तो कितना अच्छा हो। उसका खोया हुआ खजाना उसे फिर मिल जाय। पर हाय ! ऐसा न हुआ। चील आँखोंसे ओझल हो गयी। निराश और विक्षुब्ध हो दुखी नर्स बदहवास हो मकानकी छतपर बैठ गयी।

वह अपने दुर्भाग्यपर दोनों हाथ मल-मलकर परीशान हो रही थी। न जाने उस चीलने वे बहुमूल्य प्रमाणपत्र और नियुक्तिपत्र कहाँ फेंके होंगे।

लगभग एक घंटेतक वह भगवान्की प्रार्थना करती रही। आश्चर्यकी बात है कि कोई आध घंटेमें वही चील उड़ती-उड़ती फिर उसी मकानकी छतपर उस पैकेटको गिरा गयी। कुछ देर उड़कर उसने ऐसा निशाना बाँधकर उस पैकेटको गिराया कि वह उसी छतपर गिरा। अपना खोया हुआ प्रमाणपत्रोंका पैकेट पाकर वह नर्स उस उपकारी चीलकी बुद्धिकी प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकी। पैकेटमें कई जगह चोंच मारकर चीलको मालूम हो गया था कि उसमें खाने योग्य कोई वस्तु नहीं थी। अपनी गलतीपर दुखी होकर वह फिर उसी मकानकी छतपर उड़ती हुई आयी और लिपटे हुए कागज वापस पटक गयी।

गलती कभी भी सुधारी जा सकती है। यह संसार ईमानदारी और सज्जनताकी नींवपर ही टिका हुआ है। पक्षीतक परोपकार करते हैं, फिर परमार्थकी दैवी प्रवृत्ति मनुष्यकी तो सबसे प्रमुख वृत्ति है।

कीर्तनप्रेमी सर्पने सबको आश्चर्यमें डाला

देवरियाका एक समाचार यों प्रकाशित हुआ है—

घटना जनपदकी तहसील सलेमपुरके अन्तर्गत ग्राम माड़ोपारकी बतायी गयी है। वहाँके ग्रामप्रधानने इस घटनाका समाचार भेजा है।

सूचनाके अनुसार ११ जनवरी ६५ को उस ग्राममें एक अखण्ड कीर्तन था। भक्तमण्डली तन्मय भावसे भगवान्का पूजनकर धार्मिक भजन गा रही थी। चारों ओर भक्तिरसका पवित्र वातावरण छाया हुआ था। श्रोतासमाज भी मधुर-स्वरमें भजन गुनगुना रहा था। पवित्र दैवी वातावरणमें जैसे दुष्कर्म, दुष्ट हिंसक भावनाएँ दब गयी थीं। पापाचारी पुरुषोंकी कठोर वृत्तियाँ मानो नष्ट हो गयी थीं। ईश्वरकी प्रार्थनामें द्वेष और दुर्गुण मानो दूर हो गये थे। पाप और मल-विकार गायब हो गये थे। इसी बीच संगीत-माधुर्यसे प्रभावित एक सर्प न जाने कहाँसे आया और अखण्ड कीर्तनके मञ्चपर चढ़ गया। औरोंकी तरह वह भी वहीं फन ऊँचा किये बैठ गया।

पहले तो सब बड़े भयभीत हुए, किंतु उस भक्त सर्पने किसीको कुछ भी परीशान न किया। वह तन्मय हो चुपचाप कीर्तन सुनता रहा, भाव-विभोर होता रहा। गाँववालोंने जब यह सुना तो उसके दर्शन करनेवालोंका ताँता बँध गया। कीर्तन पूर्ववत् चलता रहा, कीर्तनप्रेमी सर्प बिना हिले-डुले भक्तिरसका आनन्द लेता रहा। वह वैसे ही बैठा रहा। न थका, न ऊबा ! कीर्तन समाप्त होते ही वह जल्दीसे न जाने कहाँ रफूचक्कर हो गया। गाँववालोंके आश्चर्यका ठिकाना न रहा।

कहा भी है—

अग्ने शकेम ते वयं यमं देवस्य वाजिनः।
अति द्वेषांसि तरेम ॥ (ऋग्वेद ३।२७।३)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् जिन्हें मोक्ष-प्राप्तिकी कामना हो, उन्हें चाहिये कि वे द्वेष और दुर्गुणोंसे बचकर धर्मपथपर चलते रहें। इसके लिये उन्हें विद्वान् पुरुषोंका सत्सङ्ग करना चाहिये और उत्तम रीतियोंको धारण करना चाहिये।

स्वामिभक्त गधा

अलवर (राजस्थान) की एक घटना विस्मयका कारण बनी हुई है।

ईदू नामक एक मुसल्मान धोबी जयसमंद तालाबपर कपड़े धो रहा था। यह उसका नित्यप्रतिका कर्म था। उसका जुम्मी नामक गधा भी प्रतिदिन उसके साथ घाटपर भीगे कपड़े ढोकर ले जाया करता था। दोनों प्रतिदिन साथ ही मेहनत करते थे। जब ईदू तालाबमें कपड़े धोता रहता, जुम्मी पास ही घास चरता रहता था। बहुत दिनों-तक साथ-साथ रहनेके कारण ईदू और जुम्मी एक दूसरेकी आदतोंसे भलीभाँति परिचित हो गये थे। सुख-दुःखको पहचानते थे। वे एक-दूसरेकी भाषाको चाहे न समझते हों, किंतु भावोंकी गुप्त मूक भाषासे—एक दूसरेके मनोभावोंसे पूर्ण परिचित रहते थे।

एक दिन ईदू कुछ जल्दीमें था। घबराहटमें उसे ऐसा लगा जैसे कोई कछुवा जलमें हो। डरकर वह यकायक निकलने लगा तो बेचारेका पाँव फिसल गया।

पानी काफी गहरा था। दुर्भाग्य यह हुआ कि धोबी जलमें तैरना भी नहीं जानता था। अब ईदू पानीमें छटपटा रहा था। जोर-जोरसे 'जुम्मी! जुम्मी!!' चिल्ला रहा था। पता नहीं कैसे गधेको यह आभास हुआ कि उसका मालिक खतरेमें है और उसकी मदद चाहता है। वह क्या करे? किसे सहायताके लिये पुकारे?

उसने पानीमें छलाँग लगा दी और तैरकर अपने स्वामीके पास जा पहुँचा। ईदूने उसकी पूँछ पकड़ ली और उसके सहारे अपनी जान बचा ली।

अब ईदू और जुम्मी दोनों किनारेपर खड़े थे। जुम्मीको प्रसन्नता थी कि उसने अपने स्वामीकी प्राणरक्षा कर ली थी।

यथा द्यौश्च पृथिवी च न बिभीतो न रिष्यतः। एवा मे प्राण मा बिभेः॥ (अथर्ववेद २। १५। १)

अर्थात् पृथ्वी, आकाश (पशु-पक्षी, कीट-पतंग) इत्यादि परमात्माके अनुसार सदैव जगत्का उपकार करते रहते हैं, वैसे ही धार्मिक वृत्तिवाले श्रेष्ठ पुरुषको भी चाहिये कि वे पापोंको त्यागकर सुकर्मोंद्वारा लोकोपकारके काम करें और इस प्रकार परोपकारके कामोंद्वारा निर्भय और सुखी रहें।

मैनाने चोरोंको भगाया

न्यूयार्कका एक समाचार है—

जार्जियामें एक फर्नीचरकी दूकानसे सेंध मारनेवालोंको ख़ाली हाथ लौट जाना पड़ा। घटना इस प्रकार बतायी जाती है कि फर्नीचरकी उक्त दूकानमें चोरोंने सेंध मारी थी, अचानक ही उन्हें बड़ी जोरकी आवाज सुनायी दी—

'आप क्या चाहते हैं? आप क्या चाहते हैं? आप क्या चाहते हैं?' आवाज काफी तेज थी, जैसे कोई मानव-स्वर बोल रहा हो।

चोरोंको यकायक यह डर लगा कि लोग जाग पड़े हैं और वे अब पकड़ लिये जायँगे। पहले तो उन्हें आश्चर्य हुआ कि कहाँसे यह आवाज आ रही है। वे कुछ देर इधर-उधर देखते रहे। फिर भी आवाज आती रही। आखिर खतरेसे डरकर वे ताबड़तोड़ भागे।

बादमें मालूम हुआ कि वहाँ कोई भी आदमी मौजूद नहीं था। यदि चोर चाहते, तो सारा रुपया चुरा ले जाते।

आवाज देनेवाली एक भारतीय मैना थी। उसका स्वर पुरुषकी तरह साफ था। वह बिल्कुल आदमीकी तरह एक ही वाक्य बोलना जानती थी, 'आप क्या चाहते हैं?'

दूकानके मालिकने केवल ग्राहकोंसे यह वाक्य कहलवानेके लिये उस मैनाको दूकानपर रक्खा था।

लखनऊमें कुत्तोंकी गश्त

लखनऊका एक समाचार है। गतवर्ष अपराधोंकी रोक-थामके लिये रातको पुलिसके सुराग लगानेवाले कुत्तोंकी गश्त भी जारी कर दी गयी है। यह गश्त खुफिया पुलिसने सिविल पुलिसके सहायतार्थ आरम्भ की है।

प्रयोगके रूपमें की गयी यह गश्त सफल रही है। कुल ६ कुत्ते गश्तमें लगाये गये हैं, जो दो-दो करके रोज अदल-बदलकर अमीनाबाद और गणेशगंजमें गश्त लगाते बताये जाते हैं। कहते हैं पिछले दिनों इन कुत्तोंकी सुरागसे रेलवेकैन्टीनके कर्मचारी कल्लूको पकड़ लिया गया, जो कैन्टीनकी तिजोरी तोड़कर चार सौ रुपये नकद और बहुत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सा सामान चोरी करके जा रहा था। बताया गया है कि ये चतुर कुत्ते हेड कानेस्टबिल कुँवर बहादुरसिंह, मोहम्मदकासिम और देवीदत्तके हमराहमें थे।

परमात्माने कुत्तों-जैसे पशुओंतकको कितनी समझ-बूझ दी है कि वे सज्जन और दुर्जनमें विवेक कर सकते हैं। चोरों और डकैतोंको पहचान सकते हैं।

यस्तिष्ठति चरति यश्च वञ्चति
यो निलायं चरति यः प्रतङ्कम्।
द्वौ संनिषद्य यन्मन्त्रयेते
राजा तद्वेद वरुणस्तृतीयः॥
(अथर्ववेद ४। १६। २)

'मनुष्य कितना ही छिपकर पाप क्यों न करे, परमात्मा उसे जान लेता है और उसका उचित दण्ड भी देता है। इसलिये समझदार मनुष्यको हर प्रकारके पापसे सदैव बचते रहना चाहिये।'

असद् भूम्याः समभवत् तद्यामेति महद्व्यचः।
तद् वै ततो विधूपायत् प्रत्यक् कर्तारमृच्छतु॥
(अथर्ववेद ४। १९। ६)

'दुष्टतापूर्ण कर्म चाहे छोटे हों अथवा बड़े अन्तमें करनेवालोंका सर्वनाश करते हैं। उनका प्रतिफल उन्हें ही भोगना पड़ता है।'

कुत्तोंद्वारा अंधोंका मार्ग-दर्शन

नयी दिल्लीसे एक समाचार मिला है। कुत्ते मनुष्यके सर्वोत्तम मित्र होते हैं; यही नहीं, अंधोंके लिये वे अच्छे मार्गदर्शक भी हो सकते हैं। कई देशोंमें प्रयोग करके यह निष्कर्ष निकाला गया है कि प्रशिक्षित कुत्ते अंधोंके लिये अत्यन्त सहायक सिद्ध होंगे। प्रशिक्षित कुत्ता अंधे मनुष्यका कहीं भी जानेके लिये मार्ग-दर्शन कर सकता है, बशर्ते एक बार पहले वह वहाँ हो आया हो। यहाँतक कि कुत्ता अंधे मनुष्यके साथ विश्वास एवं सुरक्षापूर्वक बस-यात्रा करनेमें भी सहायक हो सकता है। भारतमें अंधोंके प्रति द्रवित होकर स्वान-आवास क्लबने एक योजना बनायी है, जिसके अन्तर्गत अंधोंकी सहायता देनेमें कुत्तोंको प्रशिक्षित करनेके लिये शीघ्र ही एक प्रशिक्षण-केन्द्र स्थापित किया जायगा। संसारभरमें सबसे अधिक बीस लाख अंधे भारतमें हैं।

जब पशुतक अनेक उपयोगी तत्त्वोंमें मनुष्यका पथ-प्रदर्शन करते हैं, तब बुद्धि रखनेवाले मनुष्यका भी यह पवित्र कर्त्तव्य हो जाता है कि वह भूले-भटकोंको सत्य, न्याय, विवेक और कर्त्तव्यका मार्ग दिखाता रहे। हम मानव-जीवनकी विशाल सम्भावनाओं और सदुद्देश्योंको समझें और उसकी विशेषताओंका सदुपयोग करते हुए भौतिक और आध्यात्मिक प्रगतिका मार्ग प्रशस्त करें। भगवान्ने हमें अन्तरात्मा और विवेक दिये हैं, तो उनका उपभोग इस प्रकार करें कि हम वस्तुतः समझदार और सच्चे बुद्धिमान् भी कहला सकें। हम दूसरोंका अधिक-से-अधिक उपकार और सेवा करें, निःस्वार्थ भावसे सेवा करें। पुण्य परमार्थकी दृष्टिसे ही किया जाना चाहिये। पशु-पक्षी अपने उपकारोंका कोई बदला नहीं चाहते, उसी प्रकार हम भी अपने पुण्य-परमार्थका बदला न चाहें। बदलेका भाव आते ही प्रत्येक सेवा व्यावसायिक हो जाती है।

भगवान् ही रक्षक

फफूँद (इटावा) का एक समाचार है। यहाँ उस समय लोग आश्चर्यचकित रह गये, जब श्रीरामनारायणके यहाँ लोग आरा मशीनपर बीस दिन पहले ही डाली गयी एक लकड़ीकी सिल्लीमेंसे दो तोतेके बच्चे जीवित निकल पड़े। उनके बचनेकी कोई आशा नहीं थी। उन्होंने तोतेके बच्चोंकी रक्षा करते हुए पास ही बैठा एक सर्प भी देखा। सर्प तो आरा मशीनकी भेंट चढ़ गया, पर उसने तोतेके उन निरीह बच्चोंको न मरने दिया। शुभ कार्यमें किया हुआ यह बलिदान किसी युद्धमें शहीद होनेसे क्या कम है!

सोपानभूतं स्वर्गस्य मानुष्यं प्राप्य दुर्लभम्।
तथाऽऽत्मानं समाधत्स्व भ्रश्यसे न पुनर्यथा॥

याद रखिये, सुरदुर्लभ मानव-शरीर जो बड़े पुण्योंसे प्राप्त होता है, स्वर्ग-प्राप्तिका सोपान है। इसे शुभ कर्मोंमें ही लगाना चाहिये, ताकि मनुष्य अवनति, पथभ्रष्टता और पतनकी ओर अग्रसर न हो सके।

भक्त गाय

पाली (राजस्थान) जिलेमें और उसके आसपासके गाँवोंमें एक भक्त गायकी चर्चा बच्चे, बूढ़े और जवान—हर किसीसे सुननेको मिल सकती है। पालीसे १३ मील दूर पूनागर गाँवमें एक छोटी-सी पहाड़ी—टेकरी है। उसपर दुर्गा देवीका एक छोटा-सा मन्दिर है। इसी गाँवकी एक गाय प्रतिदिन ऊँची पहाड़ी चढ़कर दुर्गाके पवित्र मन्दिरमें जा पहुँचती है और भक्तिभावसे मन्दिरके सामने बैठी रहती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहे मौसम कैसा भी हो, अपने घरसे खुलते ही वह पहले मन्दिरमें दर्शनोंके लिये अवश्य जाती है । गायके मालिकने उसकी इस भक्तिभावनामें कई बार बाधा डालनेका प्रयत्न किया है, किंतु गाय कभी नहीं मानी । सात वर्षोंसे उसका यह दर्शन करनेका क्रम निरन्तर चल रहा है । उसे देखनेके लिये सैकड़ों लोग वहाँ आते हैं और कुछ खाद्य पदार्थ भेंट करते हैं । कहते हैं यह गाय आजतक गर्भवती नहीं हुई है । भक्त कन्याकी तरह यह कामवासनासे सर्वथा दूर रहकर दुर्गाकी आराधनामें निमग्न है । गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने कहा है—

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः ।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति ॥
(४ । ३९)

याद रखिये, साधनपरायण, इन्द्रियोंको नियन्त्रणमें रखनेवाले, श्रद्धावान् व्यक्ति ही ज्ञान प्राप्त करते हैं और इस प्रकार ज्ञानप्राप्त व्यक्ति ही परमात्माको प्राप्त करते हैं । भक्ति क्षणिक भावुकताका या आवेशका नाम नहीं है, वरं साधनाकी कठिनाइयोंको झेलनेकी कसौटी है । आवेशपूर्ण श्रद्धासे जीवनमें कोई लाभ नहीं होता; किंतु जो लोग दृढ़तापूर्वक साधनकी कठिनाइयोंको सहन करते हैं, उनकी श्रद्धा और भी तेजस्विनी बनती है और मनपर तथा इन्द्रियोंपर संयम करना आसान हो जाता है ।

बंदरोंने तोतेके बच्चेको पाला

शहबाजपुरके निकट कलड़ी गाँवसे बंदरोंद्वारा एक तोतेके बच्चेके पालनेके समाचार मिले हैं । बताते हैं कि एक दिन एक बाजने तोतेके एक बच्चेपर झपट्टा मारा । मामूली खरोंचके बाद बचा बच गया, किंतु दुष्ट हिंसक बाजके लगातार झपट्टोंके कारण उसके लिये अपनी जान बचाना मुश्किल हो गया ।

यह सारा दृश्य वहाँ विद्यमान बंदरोंका एक दल देख रहा था । एक मोटा-ताजा बंदर आगे बढ़कर तोतेके बच्चेके पास आया, तो नयी मुसीबत आयी जान प्राणोंकी भिक्षा माँगनेके स्वरमें वह तेजीसे चें-चें, चें-चें करने लगा । बंदरने दयाभावसे प्रेरित होकर उसे आहिस्तेसे पकड़ लिया । उसे प्यारसे सीनेसे चिपकाया । बच्चेका गुप्त भय दूर हुआ तो उसने चिल्लाना बंद कर दिया । दूसरे बंदर भी दयार्द्र हो उठे । वे पाससे कुछ पके बेर तोड़ लाये और बच्चेको बड़े वात्सल्य भावसे खिलाया । दुष्ट बाज बड़ी दे[र] तक अपने शिकारकी खोजमें चक्कर काटता रहा, पर बंद[रोंने] उस बच्चेको बचाया रक्खा । अन्तमें बंदरोंद्वारा उसे [पू]र्ण सुरक्षित जानकर वह निराश होकर उड़ गया ।

यथाहान्यनुपूर्वं भवन्ती यथ ऋतव ऋतुभिर्यन्ति सा[धु] ।
यथा न पूर्वमपरो जहात्येवा धातरायूंषि कल्पयैषाम् ॥
(ऋग्वेद १० । १८ । ५)

मनुष्यो ! हमारा जीवन-क्रम इस प्रकार चले, जैसे दिन[के] बाद दिन और ऋतुके बाद दूसरी ऋतु आती है । कोई छोटी आयुवाला बड़ी आयुवालेके सामने न मरे ।

भैंसने गायका बछड़ा पाला

मुरसाबाद (मध्यप्रदेश) से श्रीजसवंतसिंह याद[वने] समाचार दिया है कि उनकी गाय एक बछड़ेको जन्म दे[नेके] बाद किसी बीमारीके कारण मर गयी । अब उसे कौन दू[ध] पिलाये ? कौन पाले ? बिना दूध पिये बछड़ेका जीवन ख[तरेमें] खतरेमें था । निरीह और अबोध बछड़ेको देखकर स[भी] परीशान हुए ।

संयोगसे वह बछड़ा एक भैंसके पास था, जो दू[ध] देती थी । बछड़ा उठा और उस भैंसके थनोंसे दू[ध] पीने लगा । सबको डर था कि भैंस उसे लात मारकर दू[र] पटक देगी, पर भैंसका वात्सल्य जग उठा ! बछड़े[को] मारनेके स्थानपर उसने बड़े प्यारसे उसे चाटना शु[रू] किया । बछड़ा दूध पीता रहा और भैंस उसे चाटती रही । बछड़ा अपनी माताके मरनेका सारा दुःख भूल गया । आश्चर्यकी बात यह है कि उस भैंसके खुद उसका पड़[ा] भी है । दोनों ही उसका दूध पीते हैं और उसे मान रहे हैं ।

कौएकी दयालुता

कुछ दिन पूर्व रोडेशियाकी घटना है, एक छोय[े] कुत्तेका बच्चा भटककर जंगलमें चला गया और वहाँ ए[क] दलदलमें फँस गया । दुर्भाग्यसे वहाँ उसकी सहायताके लि[ये] कोई भी नहीं पहुँचा । वह निकलनेके लिये छटपटाता र[हा,] भूखसे व्याकुल हो गया; पर किसीनें उसकी खबर न ली ।

छः दिनतक वह जीवन और मौतके बीचमें झूल[ता] रहा । भूखसे उसकी अँतड़ियाँ सूख रही थीं । ईश्वर[की] अनुकम्पा देखिये, कुत्तेके बच्चेकी यह दर्दनाक हालत द[ेख]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर बैठे हुए एक कौएने देखी। उसका नन्हा-सा मन दयार्द्र हो उठा। वह प्रतिदिन शहरसे रोटीके टुकड़े लाकर उस कुत्तेको खिलाता और उसके जीवनकी रक्षा करता रहा।

कौएको बार-बार जंगलकी ओर रोटी ले जाते देख चरवाहोंको बड़ा कौतूहल हुआ। वे उसके पीछे-पीछे गये, तो उन्हें कौआ रोटीके टुकड़े कुत्तेके पास डालता हुआ मिला। उसीसे वह कुत्ता जीवित बचा रहा था।

चरवाहे कौएकी दयालुताको देखकर नतमस्तक हो गये। कुत्तेको दलदलमेंसे निकाला गया और शहर भेज दिया गया, किंतु कौएकी दयालुता लोगोंके हृदयमें घर कर गयी।

अव जहि यातुधानानव कृत्याकृतं जहि।
अथो यो अस्मान् दिप्सति तमु त्वं जह्योषधे॥
(अथर्ववेद ५। १४। २)

अन्न जैसे भूख मिटाता है, वैसे सद्‌गुणको अपने जीवनमें धारणकर हम दोष-दुर्गुणोंको दूर भगायें।

याभिः शचीभिर्वृषणा परावृजम् प्रान्धं श्रोणं चक्षस एतवे कृथः।
याभिर्वर्तिकां ग्रसितामसुञ्चतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम्॥
(ऋग्वेद १। ११२। ८)

अर्थात् समाजमें जो भी अपाहिज, अंधे, लँगड़े, लूले (बीमार, दुर्बल, निर्धन, क्षतिग्रस्त) आदि हों, वे हमारी घृणाके पात्र नहीं हैं। हमें उन्हें अपना बन्धु मानना चाहिये और उनके साथ भी दयालुताका व्यवहार करना चाहिये। हम सभी ईश्वरके एक विशाल परिवारके सदस्य हैं। सबमें समान रूपसे प्रेमभाव रहना चाहिये।

जो मनुष्य दीन-दुखी और गिरे हुएको ऊपर उठानेमें कठिनाई और बाधाओंसे घबराता नहीं, उसकी रक्षा परमात्मा करता है।

काम (ऐन्द्रिय भोगों) का प्रयोजन

[कहानी]

(लेखक—श्री'चक्र')

कामस्य नेन्द्रियप्रीतिर्लाभो जीवेत यावता॥
(श्रीमद्भा० १। २। १०)

'वरं ब्रूहि !' उस दिन उस नीरव रात्रिमें पता नहीं क्यों उसकी निद्रा टूट गयी। वैसे वह इतनी गाढ़ निद्रा सोता है कि सिरपर ढोल बजे तो कदाचित् नींद टूटे। पूरा कक्ष प्रकाशित था और एक देवता उसके समीप खड़े थे। देवता इसलिये कि प्रकाश उनके शरीरसे ही निकल रहा था—जैसे किसी धुएँके समान प्रकाशित पदार्थके द्वारा उनकी देहका निर्माण हो। साथ ही वे उसे वरदान माँगनेको कह रहे थे—वरदान माँगनेको या तो कोई देवता कहेगा या ऋषि। वे ऋषि नहीं हो सकते, क्योंकि ऋषियोंके जटा-जूट होते होंगे और वे इतने रत्नाभरण धारण क्यों करने लगे।

'धन्यवाद !' वह भी अद्भुत अक्खड़ है—ऐसा कि आपको ऐसे अक्खड़ जीवनमें कम मिले होंगे। शय्यापर उठकर बैठ गया था वह; किंतु उसने उठकर खड़े होने, देवताकी वन्दना-अभ्यर्थना करनेका कोई उपक्रम नहीं किया। भय भला क्या लगना था—जो वरदान माँगनेको कह रहा था, उससे भयकी तो कोई बात भी नहीं। वैसे भी उसे भय लगता होता तो सर्वथा एकाकी पर्वतपर अन्य गृहोंसे दूर वह आवास स्वीकार नहीं करता।

'मैंने तो आपको बुलाया नहीं था। आपसे कभी कोई प्रार्थना मैंने भूलसे भी नहीं की होगी।' देवता खड़े थे और अपने शयनके आसनपर बैठे-बैठे ही वह उनसे कहे जा रहा था। साथ ही ऊपरसे नीचे और नीचेसे ऊपरतक देवताको देख रहा था बार-बार; उसने जो पढ़ा-सुना है, उसमेंसे कोई लक्षण मिल जाय तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवताको वह पहचान ले। देवताके चरण भूमिका स्पर्श नहीं कर रहे थे—इसके अतिरिक्त और कोई लक्षण उसे ऐसा नहीं मिला, जिससे वह उनका नाम जान सकता। अतः बोला—'आपको स्वीकार हो तो आसन ग्रहण कर लें और मैं जल पिला दे सकता हूँ।'

परिचय उसने पूछा नहीं। नाम-धाम-काम, वह किसीसे भी मिले, पूछना उसके स्वभावमें नहीं है। लोग उससे पूछते हैं तो उसे झल्लाहट ही होती है; किंतु देवता—देवताका परिचय जानना भी उसे आवश्यक नहीं लगा। अपने तख्तेपर (क्योंकि वह तख्तेपर ही सोया था) एक ओर थोड़ा खिसक गया, जैसे देवताको बैठना हो तो उसीके बराबर बैठ जाय। ऐसे देवताको आसन दिया जाता है ? देवता क्या प्यासा आया होगा उसके यहाँ पानी पीने ? किंतु यह बात भी सच है कि उसके पास देवताको भेंट करनेके लिये उस समय कुछ नहीं था। दूसरा तख्ता भी कमरेमें नहीं था और न मुखमें डाला जा सके, ऐसा कोई पदार्थ था। रात्रिमें पुष्पका तो प्रश्न ही नहीं उठता। आप कह सकते हैं—'उसे उठकर खड़े हो जाना था। जल हाथमें लेकर निवेदन करना था।' यह सब उसने नहीं किया। उसे यह आवश्यक नहीं जान पड़ा।

'वरं ब्रूहि !' देवताने भी जैसे दूसरा वाक्य सीखा ही न हो। उन्होंने आसन ग्रहण नहीं किया। जलकी उन्हें आवश्यकता नहीं थी। वैसे देवताको सदा मनुष्यके दानकी आवश्यकता होती है। मानवका श्रद्धा-दान, हव्य-कव्य न मिले तो स्वर्ग और पितृलोकमें दुर्भिक्ष पड़ जाय। इसलिये देवताको मनुष्यसे अपेक्षा नहीं है, यह नहीं कहा जा सकता।

परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥

मनुष्य देवताओंको तृप्त करे हवन-पूजनादिसे और देवता यथावत् वृष्टि, वायु, महामारी आदिका नियन्त्रण करके मनुष्यको सुखी-समृद्ध बनाते रहें—व्यवस्था यही है। केवल परमात्मा पूर्णकाम, नित्य निरपेक्ष है। उसे मनुष्य जो कुछ देना चाहता है—देनेका उद्योग करता है, वह अनन्तगुणित होकर लौट आता है उसीके समीप; किंतु देवता तो ऐसे नहीं हैं। अतः उसका भाव था—'तुम वरदान देने आये—मुझे वरदान चाहिये कि नहीं, यह भिन्न प्रश्न है; किंतु मैं तुम्हें जल पिला दे सकता हूँ, यदि तुम पीना चाहो।'

देवताको प्यास नहीं होगी। पर्वतोंमें ग्रीष्ममें भी शीत रहता है। वहाँ रात्रिमें उसे भी प्यास कभी नहीं लगती और सुना है कि देवताओंकी क्षुधा-पिपासा मनुष्यसे सर्वथा भिन्न होती है। वे भोज्य वस्तुओं एवं जलको भी केवल सूँघकर तृप्त होते हैं। मुखसे खाने-पीनेकी आवश्यकता उन्हें नहीं होती।

देवता भी हो और चोर भी हो, ऐसा नहीं हुआ करता। इसलिये जबतक कोई मनुष्य अपनी ईमानदारीसे उपार्जित वस्तुको देवताके अर्पण न करे अर्थात् श्रद्धा-प्रेमसे अपने ठीक स्वत्वकी वस्तुको ग्रहण करनेका अधिकार देवताको न दे, देवता कोई पार्थिव वस्तु ग्रहण नहीं कर सकता—उसे सूँघ नहीं सकता। उसने देवताको जल पिलानेकी बात कही थी। देवता प्यासा होता तो उसके लोटेमें भरे जलको बिना स्पर्श किये घ्राण-ग्राह्य बना ले सकता था।

'वरं ब्रूहि !' देवताको पता नहीं क्यों वरदान देनेकी धुन चढ़ी थी और वह चाहता था कि वरदान देकर झटपट चला जाय; किंतु जिसे वरदान लेना था उसे कोई शीघ्रता या तत्परता उसमें नहीं जान पड़ती थी।

× × ×

'वह कौन है ?' आप अवश्य जानना चाहते होंगे; किंतु नाम-धाम-काम कोई पूछे तो उसे झल्लाहट होती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है । कहता है—'व्यक्तिका क्या परिचय ? कल उत्पन्न हुआ, परसों मर जायगा । मिट्टीके डलेको एक आकार मिल गया—इस खिलौनेका भी कोई परिचय हुआ करता है ?'

'तुमने साधुवेष क्यों ग्रहण नहीं किया ?' एक महात्माने उससे एक बार पूछा था । पूछना उचित था; क्योंकि जिसके कुल-परिवारमें कोई नहीं, जिसकी कहीं कोई झोंपड़ीतक नहीं, वह क्यों अपनेको गृहस्थ कहता है ? वह धोती, कमीजमें क्यों रहता है ? समाजकी वर्तमान परिपाटीको देखते उसे ऐसे ढंगसे क्यों रहना चाहिये ?

'मैं क्यों साधुवेष ग्रहण करता ? क्या प्रयोजन था इसका ?' उसने प्रश्नके उत्तरमें प्रश्न कर लिया था । कहा न कि वह अद्भुत अक्खड़ है । कहने लगा—'सहज प्राप्त 'क्यों है ?' यह प्रश्न अनुचित है । 'उसमें परिवर्तन क्यों किया जाय ?' प्रश्न यह ठीक है ।'

'दूसरे साधुवेष किसी प्रयोजनसे ग्रहण करते हैं ?' महात्माने पूछा ।

'दूसरोंकी बात मैं कैसे कह सकता हूँ ।' वह बोला । 'वैसे साधुवेष-ग्रहणके चार प्रयोजन मेरी समझमें आते हैं । उत्तम प्रयोजन—संसारसे वैराग्य हो गया हो और कुटुम्ब-परिवारका बन्धन अन्तर्मुख होनेमें बाधा दे रहा हो । मध्यम प्रयोजन—आसक्ति कहीं हो नहीं और साधन-भजन करनेमें पूरा समय लगाना हो । शरीर-निर्वाहके लिये अप्रयास भिक्षा मिल जाया करे । निकृष्ट प्रयोजन—योग्यता हो या न हो, किंतु दूसरोंसे सम्मान पाने, पैर पुजवानेकी इच्छा प्रबल हो । अधमतम प्रयोजन—सम्मान-सम्पत्ति, भोग भरपूर चाहिये; किंतु कुछ उद्योग करनेकी इच्छा-शक्ति न हो ।'

जिसके कुटुम्ब-परिवार, घर-द्वार, कोई है ही नहीं, उसके लिये इस बन्धनसे छुटकारेका प्रश्न नहीं उठता था । शरीर-निर्वाहके लिये उसे जितना कम श्रम करना पड़ता है, जितनी स्वच्छन्दता उसके श्रममें है, उतना तो भिक्षाजीवीको भी करना ही पड़ता है । सम्मान उसे सहज प्राप्त है और संग्रहकी सनक उसे है नहीं । वह कहता है—'मैं प्रायः अस्थिर रहता हूँ । एक तौलिया भी अधिक रख लूँ तो उसे ढोते फिरना होगा । बात त्यागकी नहीं है, समझदारी-की है । जितनेसे ठीक-ठीक जीवन-निर्वाह हो जाता है—सुखसे, सुविधासे, सामाजिक शिष्टताको रखते हो जाता है, उतना रखता हूँ । अधिकको ढोते फिरनेकी मूर्खता नहीं कर सकता ।'

अब किसके मुखमें दो हाथकी जिह्वा है कि उससे कहेगा—'बिना साधुवेष लिये ज्ञान नहीं होता या भगवत्प्राप्ति नहीं होती ।'

'भाई मेरे ! ज्ञान या भगवद्दर्शन मनुष्यको होता है, कपड़ेको नहीं,—यह उसकी बात ठीक नहीं है; ऐसा तो न कोई शास्त्र कहता और न किसी संतने कभी कहा है ।'

'भोगे रोगभयं'—अधिक जिह्वा-लोलुप बनोगे तो पेट खराब हो जायगा और सामान्य रसास्वादके सुखसे भी वञ्चित कर दिये जाओगे !

अधिक काम बढ़ेगा तो वह शक्ति प्रकृति छीन लेगी । स्नायु-दौर्बल्य, हृदय-दौर्बल्य एवं और पता नहीं कितने कष्टसाध्य—असाध्य रोगोंकी भीड़ खड़ी है कि तुम इस ओर बढ़ो और वे बलात् तुम्हारी देहको अपना आवास बना लें ।

'भोग जीवनके लिये हैं, जीवन या देह भोगके लिये नहीं है ।' यह या ऐसी बातें हम-आप सबने पढ़ी-सुनी हैं । इनको जीवनमें किसने कितना अपनाया है, यह भिन्न बात है । किंतु यह सत्य तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वीकार करना ही पड़ेगा कि जिसने जितना अधिक इन्हें अपनाया है, उतना स्वस्थ एवं सुखी है वह । जिसने जितनी इनकी उपेक्षा की है, वह उतना रोगी—दुखी है ।

उसका अपना ढंग है । कहता है—'अनावश्यक संग्रह करके उसकी चिन्ता करते रहना और उसे ढोते फिरना मूर्खता है । मैं अपने आपको स्वयं मूर्ख नहीं बना सकता । इससे भी बड़ी मूर्खता है किसी इन्द्रियके पीछे इतना पड़ना कि उसकी शक्ति—उसकी उपयोगिता ही नष्ट हो जाय । एक समय जीभके बहकावेमें जो आया—दूसरे समयके उपवाससे ही उसका छुटकारा हो जाय तो बहुत कुशल हुई । अन्यथा पेट-दर्द, सिर-दर्द आदि पता नहीं क्या-क्या उपहार सिर पड़नेवाले हों ।'

'इन्द्रियाँ शैतानकी पुत्रियाँ हैं । इनके बहकावेमें आये और यहीं रोगोंका नरक तैयार ।' उसका अपना विवेचन है । 'इन्द्रियोंकी तृप्ति तो कभी होनेकी नहीं, यह वे कहते हैं जो इनका स्वभाव बिगाड़ देते हैं । अन्यथा इन्द्रियोंका काम तो इसको—अपने विषयको व्यक्त करनामात्र है । जीवनके लिये जितना उपयोगी है—उतना रस-पदार्थ-भोगसेवन समझदारी है ।'

× × ×

'वरं ब्रूहि !' अब ऐसे व्यक्तिको वरदान देने देवता आ गये हैं । क्यों आ गये हैं, यह बात तो वे ही जानते होंगे । देवताओंको भी सम्भव है कि ऐसा कुछ व्यसन होता हो ।

'आप क्या दे सकते हैं ?' उसने देवताकी ओर ऐसे ढंगसे देखा कि उस दृष्टिमें जिज्ञासाका भाव तो सर्वथा नहीं था ।

'धन-रत्न, बल-यश, पद-प्रभुत्व, सिद्धियाँ !' देवताके स्वरमें गम्भीरताके स्थानपर उल्लास अधिक था । जैसे वरदान उसे न मिलकर स्वयं देवताको मिलनेवाला हो—'स्वर्ग एवं स्वर्गसे सम्बन्धित गन्धर्वादि लोकोंमें जो प्राप्य है, वह भी ।'

'अच्छा, तो तुम मुझे मूर्ख बनाने आये हो ?' वह खुलकर हँसा । अच्छा हुआ; क्योंकि सम्भावना इसकी भी थी कि वह क्रुद्ध हो जाता और देवताको झिड़क देता । किंतु देवताको 'आप'के स्थानपर वह 'तुम' तो कहने ही लगा था ।

'ऐसा तो नहीं है ।' देवता भी चौंका । उस बेचारे देवताको भी ऐसा व्यक्ति कभी मिला नहीं होगा । उसने बड़े गम्भीर भावसे कहा—'प्रतिभा, कला, विद्याका वरदान भी चाहो तो माँग सकते हो ।'

'अनावश्यक पदार्थ और पैसा जैसे भार है, वैसे ही विद्या-प्रतिभा भी भार ही है ।' उसने देवताकी ओर ऐसे देखा, जैसे किसी मित्रको समझा रहा हो—'तुम देख रहे हो कि ऐसी कोई आवश्यकता जीवनके लिये नहीं है, जो मुझे उपलब्ध नहीं है । जीवनके लिये जो पदार्थ, जो धन, जितनी बुद्धि-विद्या आवश्यक है, मेरे पास वह है । मुझे इससे अधिकका लोभ नहीं है ।'

'सिद्धियाँ·········'देवताने कहना चाहा ।

'बको मत !' बेचारे देवताको डाँट दिया गया । 'मैं मनुष्य हूँ । पक्षी आकाशमें उड़ते हैं और मछली जलमें डूबी रहती है । चींटी नन्ही है और हाथी भारी । तुम्हारी ऐसी कौन-सी सिद्धि है, जो किसी पशु-पक्षी अथवा कृमिमें सहज नहीं है ? मनुष्यके मनमें तुम प्रकारान्तरसे पशु-पक्षी या कीटके गुणका लोभ उत्पन्न करना चाहते हो ?'

'मनुष्यको भी पद-प्रतिष्ठाकी स्पृहा होती है ।' देवता पता नहीं क्यों डाँट खाकर भी रुष्ट नहीं हुआ था । वह सम्भवतः असफल होकर जानेको उद्यत नहीं था ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसने कहा—'आपके समीप सामग्री थोड़ी ही है। शरीर सदा स्वस्थ ही रहे, इसका आश्वासन नहीं है। आपको इस ओरसे मैं निश्चिन्त कर दे सकता हूँ।'

आश्चर्यकी बात यह है कि डाँटे जानेके पश्चात् देवताने उसे 'तुम'के स्थानपर 'आप' कहना प्रारम्भ कर दिया था; किंतु इस ओर उसने ध्यान नहीं दिया। वह कह रहा था—'तुम देवता हो; अतः तुम्हें जानना चाहिये कि मेरे लिये मेरे स्वास्थ्य और मेरे संग्रहका क्या अर्थ है। मेरे शरीरकी शक्ति, मेरी बुद्धि, मेरी विद्या कितनी अल्प है—यह तुमसे अज्ञात नहीं होना चाहिये। इतना होनेपर भी मेरी निश्चिन्तता, मेरी सुव्यवस्था तुम देख सकते हो।'

'किंतु यह सब तो इस समय है।' देवताने बड़े संकोचसे कहा। 'भाग्य अवतक आपपर सानुकूल रहा है।'

'किसका भाग्य सानुकूल रहा है?' उसने व्यंग-पूर्वक पूछा। 'परिवार, परिच्छद, पाथेय एवं अध्ययनका उच्छेद सानुकूल प्रारब्ध ही किया करता है?'

देवताको भी नहीं सूझ रहा था कि वह इसका क्या उत्तर दे। वह मौन रह गया। दो क्षण रुककर उसने कहा—'तुम देवता सही, तुम्हारी दिव्य दृष्टिकी भी सीमा है। तुम उस नटखटको नहीं देख सकते, यह तुम्हारा दोष तो नहीं है। तुम जानते हो?'

कोटि-कोटि विश्वोंके वैभवकी अधिदेवी—
इन्दिरा बढ़कर दूर खड़ी चरणोंसे
चाहती है क्षुद्रतम सेवाका सम्मान!
थर-थर काँपते हैं चरण महाकालके—
जिसके भ्रूभङ्गसे,
कन्हाई वह मेरा है!
तुम दोगे मुझको वरदान?

'देव!' जैसे कोई बड़ी भूल हो गयी हो—देवता इस प्रकार केवल एक शब्द बोल सका और क्योंकि वह देवता था, उसे वहीं अदृश्य होनेमें कहाँ क्षण लगना था।

'स्वप्न भी कैसे-कैसे आते हैं!' वह सबेरे कह रहा था। जब उसे ही स्मरण नहीं कि रात्रिमें वह सचमुच उठकर बैठा था या उसने स्वप्न ही देखा था, तब ठीक बात क्या है, कैसे कही जा सकती है।

'ठीक बात इसमें इतनी अवश्य है' वह कहता है—'समस्त भोग जीवनके लिये हैं—मनुष्यको यह तथ्य ठीक समझमें आ जाय तो उसे न इन्द्रियाँ मूर्ख बना सकतीं और न कोई देवता। मनुष्य जब इस सत्यको छोड़कर इन्द्रियोंको तृप्त करनेके लोभमें पड़ता है, उसे केवल मूर्ख ही नहीं बनना पड़ता, रोगी बनना पड़ता है और कष्टोंकी परम्परामें जकड़ा जाकर विवश हो जाना पड़ता है।'

भजनके लिये प्रेरणा

भजो रे भैया राम गोविंद हरी।
जप तप साधन कछु नहिं लागत खरचत नहिं गठरी॥
संतति संपति सुख के कारन जासों भूल परी।
कहत कबीर जा मुख में राम नहिं ता मुख धूल भरी॥
—संत कबीर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैराग्य, सत्सङ्ग और भगवत्प्राप्ति

(लेखक—आचार्य श्रीरामप्रतापजी शास्त्री)

यह भारत है, जहाँ जन्म लेनेके लिये देवता भी लालायित रहते हैं—

अहो अमीषां किमकारि शोभनं
प्रसन्न एषां स्विदुत स्वयं हरिः।
यैर्जन्म लब्धं नृषु भारताजिरे
मुकुन्दसेवौपयिकं स्पृहा हि नः॥

मनुष्य-जीवनका एक-एक श्वास अमूल्य है; क्योंकि ईश्वर-कृपासे उत्तम देश, काल और सत्सङ्ग पाकर यह मानव एक क्षणमें ही परमपदको प्राप्त कर सकता है। आधा क्षण भी कल्याणके लिये पर्याप्त कहा गया है—'क्षणार्धं क्षेमार्थम्।' परंतु हमलोग मोहरूपी मदिराको पीकर ऐसे मोहित हो रहे हैं कि उसका नशा तो कभी उतरनेवाला ही नहीं दीख पड़ता। यद्यपि भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनको इस मोह-बन्धनकी निवृत्तिके लिये शरीर और संसारकी अनित्यतापर विचार करते हुए भोगेच्छामात्रका परित्याग करनेका आदेश दिया है—

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥
(श्रीमद्भगवद्गीता ५। २२)

'जो ये इन्द्रिय तथा विषयोंके संयोगसे उत्पन्न होनेवाले भोग हैं, वे सब-के-सब आदि-अन्तवाले हैं—अनित्य हैं। बुद्धिमान् जन इन विषयोंमें कभी नहीं अनुरक्त होते।' बस, इसीलिये समस्त तपोंमें वैराग्य परम तप है—

तपसामपि सर्वेषां वैराग्यं परमं तपः।

जबतक सांसारिक पदार्थोंमें राग है, तभीतक बन्धन है और रागके छूटनेपर ही वैराग्य बनता है। वैराग्य भीतरी त्यागके भावका वाचक है। संसारमें जितने धन-धान्य हैं, जितनी स्त्रियाँ (या पुरुष) हैं, जितनी सामग्रियाँ हैं, वे सब एक साथ ही किसी व्यक्तिको मिल जायँ, तब भी उनसे उसे तृप्ति होनेकी नहीं—

यत्पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः।
एकस्यापि न पर्याप्तमिति मत्वा शमं व्रजेत्॥

इसका यही कारण है कि यह जीव ईश्वर—परमात्मा का अंश है, इसकी पिपासा इन जड भौतिक पदार्थों शान्त ही नहीं हो सकती। यह तो परमात्माके मिलने पर ही सम्भव है। चेतनकी भूख जड पदार्थोंसे भला कैसे मिट सकती है। चाहे ब्रह्माकी आयु समाप्त हो जाय, पर भोगोंसे, उनके संग्रहसे जीवकी भूख कभी नहीं मिट सकती। उसे शान्ति कहाँ? शान्ति तो तभी मिलेगी, जब कामनाओंका अन्त हो जायगा। संसारके पदार्थोंमें तथा स्वर्गके पदार्थोंमें जो सुख है, वे सब मिलकर भी तृष्णा-नाशके सुखके सोलहवें हिस्सेके बराबर भी नहीं हैं।

न सुखं देवराजस्य न सुखं चक्रवर्तिनः।
यत्सुखं वीतरागस्य मुनेरेकान्तजीविनः॥

यदि सुख होता तो राजा-महाराजागण राज्यके सुखों का त्याग क्यों करते? राजा भर्तृहरिने कहा है—

एकाकी निःस्पृहः शान्तः पाणिपात्रो दिगम्बरः।
कदा शम्भो भविष्यामि कर्मनिर्मूलने क्षमः॥

'अकेला, स्पृहारहित, शान्तचित्त, करपात्री और दिगम्बर होकर हे शम्भो! मैं कब अपने कर्मोंको निर्मूल करनेमें समर्थ हो सकूँगा?' ठीक भी है, रहने-योग्य—ठहरनेयोग्य एक वैराग्यको छोड़कर निर्भय स्थान भी तो दूसरा नहीं है—

भोगे रोगभयं कुले च्युतिभयं वित्ते नृपालाद्भयं
माने दैन्यभयं बले रिपुभयं रूपे जराया भयम्।
शास्त्रे वादभयं गुणे खलभयं काये कृतान्ताद्भयं
सर्वं वस्तु भयान्वितं भुवि नृणां वैराग्यमेवाभयम्॥

'भोगोंमें रोगादिका भय, कुलमें गिरनेका भय, धनमें राजाका भय, मानमें दीनताका भय, बलमें शत्रुका भय, रूपमें बुढ़ापेका भय, शास्त्रमें विवादका भय, गुणमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुर्जनका भय और शरीरमें मृत्युका भय तो सदा ही बना रहता है। यहाँ पृथ्वीमें मनुष्यके लिये सभी वस्तुएँ भयावह हैं, एक वैराग्य ही सर्वथा भयरहित है।'

भर्तृहरिजी कहते हैं—

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ता-
स्तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः।
कालो न यातो वयमेव याता-
स्तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः॥

'हमने भोगोंको नहीं भोगा, भोगोंने ही हमें भोग लिया—समाप्त कर दिया। अरे! इस आशा-पिशाचिनी-के ही कारण तो इस जीवनकी सारी दुर्दशा हो गयी, फिर भी इसका पिण्ड हमसे न छूट सका।'

भगवान् शंकराचार्यके वचन हैं—

अङ्गं गलितं पलितं मुण्डं दशनविहीनं जातं तुण्डम्।
वृद्धो याति गृहीत्वा दण्डं तदपि न मुञ्चत्याशा पिण्डम्॥

'अङ्ग गल गये, बाल सफेद हो गये, शरीर हिलने लगा, दाँत गिर गये, वृद्ध होनेपर डंडेका ही आश्रय रह गया। फिर भी आशाने पिण्ड न छोड़ा।' जहाँ गगन-चुम्बिनी अट्टालिकाएँ खड़ी थीं, आज वहाँ खँडहर ही दिखायी पड़ते हैं। जिसके हृदय-में वैराग्य है, उसे शरीरके जानेका भय नहीं। शरीर कल जाता हो तो आज ही चला जाय।

अवश्यं यातारश्चिरतरमुषित्वापि विषया
वियोगे को भेदस्त्यजति न जनो यत्स्वयममून्।
व्रजन्तः स्वातन्त्र्यादतुलपरितापाय मनसः
स्वयं त्यक्ता ह्येते शमसुखमनन्तं विदधति॥

विषय-पदार्थ चाहे दीर्घकालतक रहें, पर एक दिन अवश्य जानेवाले हैं। चाहे हम उनका त्याग करें या वे हमें त्याग दें, उनका वियोग अवश्य ही होगा; पर संसारी मानव स्वयं उनका त्याग करनेको तैयार नहीं है। जब विषय-पदार्थ स्वतन्त्रतासे हमारा परित्याग करते हैं, तब हमारे मनको बड़ा कष्ट पहुँचता है। परंतु यदि हम उनका स्वयं परित्याग कर दें तो हमें अनन्त सुख-शान्ति प्राप्त हो सकती है—ये ही पदार्थ मनसे छोड़ देनेपर सुख देनेवाले बन जाते हैं।

इसीलिये भर्तृहरिजीने कहा है—

अजानन् दाहार्त्तिं पतति शलभस्तीव्रदहने
न मीनोऽपि ज्ञात्वा वडिशयुतमश्नाति पिशितम्।
विजानन्तोऽप्येते वयमिह विपज्जालजटिलान्
न मुञ्चामः कामानहह! गहनो मोहमहिमा॥

'पतिंगा इस बातको नहीं जानता कि जलनेपर कैसी पीड़ा होती है, इसीलिये वह प्रचण्ड ज्वालामें कूद पड़ता है। मछलीको भी बंसीमें लगा हुआ मांसका टुकड़ा खाते समय पता नहीं रहता कि उसके भीतर लोहेका काँटा है। परंतु हमलोग तो यह जानते हुए भी कि विषय-भोग विपत्तिके जालमें फँसानेवाले हैं, उन्हें नहीं छोड़ पाते। अहो! कितना बड़ा और घना मोह—अज्ञान है।' अस्तु, वैराग्यरूपी शस्त्रसे ही इसकी जड़ काटी जा सकती है—

असङ्गशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा।

वैराग्यरूपी शस्त्रसे ही इस मोहकी जड़ समाप्त की जा सकती है। पर वह भी सहसा सम्भव नहीं है।

बिनु सतसंग न हरि कथा तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गएँ बिनु रामपद होइ न दृढ़ अनुराग॥

सत्सङ्गसे तात्पर्य है—सत्‌में आसक्ति। यह 'सत्' शब्द गीतामें परमात्माके लिये ही प्रयुक्त हुआ है—

ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः।

जिसका कभी अभाव नहीं होता है—

नाभावो विद्यते सतः।

ऐसी अव्यय नित्य सद् वस्तु परमात्मा ही हैं—

अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम्।
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति॥

वह सत्ता जिससे सम्पूर्ण संसार व्याप्त है 'सत्'—परमात्मा ही है। भगवान्‌ने स्वयं कहा है—

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'मैंने ही अव्यक्त रूपसे इस समस्त जगत्‌को व्याप्त कर रक्खा है।' जिसका वर्णन श्रुति इस प्रकार करती है—

तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्।

अर्थात् वह सृष्टि करके स्वयं ही स्थावर-जंगम सभी भूतोंमें व्याप्त हो गया। अब ये परमात्मा उन्हींको मिल सकते हैं, जो उपर्युक्त भावको समझकर सर्वत्र समदृष्टि रखकर समस्त प्राणियोंके प्रति राग-द्वेषका परित्याग करके समदृष्टियुक्त व्यवहार करनेमें निपुण हैं।

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव॥

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—जो पुरुष मेरा ही कर्म करता है, मेरे ही परायण है, मेरा ही भक्त है, आसक्तिसे रहित है और समस्त प्राणियोंमें वैररहित है, वह मुझे ही प्राप्त करता है। भगवान्‌ने यहाँ 'सङ्गवर्जितः' कहा है, विवेकीजन सङ्ग—आसक्तिको आत्माका अच्छेद्य बन्धन मानते हैं; किंतु वही सङ्ग या आसक्ति संतोंके प्रति जब हो जाती है तो मोक्षका खुला द्वार बन जाती है। इसका कारण यह है कि सत्पुरुषोंके समाजमें सदा पवित्र-कीर्ति श्रीहरिके गुणोंकी चर्चा होती ही रहती है—जिससे विषय-वार्ता पास ही नहीं आने पाती और जब नित्यप्रति भगवच्चर्चा-वार्ता-कथाका सेवन किया जाता है, तब वह मोक्षाभिलाषी पुरुषकी बुद्धिको भगवान् वासुदेवमें लगा देती है—

यत्रोत्तमश्लोकगुणानुवादः
प्रस्तूयते ग्राम्यकथाविघातः।
निषेव्यमाणोऽनुदिनं मुमुक्षो-
र्मतिं सतीं यच्छति वासुदेवे॥
(श्रीमद्भागवत ५। १२। १३)

'जो लोग दुस्तर संसार-सागरसे पार जाना चाहते हैं अथवा जो लोग भाँति-भाँतिके दुःख-दावानलसे दग्ध हो रहे हैं, उनके लिये पुरुषोत्तम भगवान्‌की लीला-कथारूप रसके सेवन किये बिना और कोई साधन नहीं है। बस, इसीसे वे अपना अभीष्ट प्राप्त कर सकते हैं। सत्-कथा, हरि-कथाको छोड़कर और सभी असत् है—

मृषा गिरस्ता ह्यसतीरसत्कथा
न कथ्यते यद्भगवानधोक्षजः।
तदेव सत्यं तदु हैव मङ्गलं
तदेव पुण्यं भगवद्गुणोदयम्॥
(श्रीमद्भागवत १२। १२। ४८)

'जिस वाणीद्वारा भगवान्‌के नाम, गुण, लीला कथन नहीं होता, वह भावयुक्त होनेपर भी व्यर्थ—सारहीन है, सुन्दर होनेपर भी असुन्दर है। जो वचन भगवद्‌गुणोंसे पूर्ण रहते हैं, वे ही परम मङ्गलमय हैं और वे ही परम सत्य हैं।' सत्सङ्ग-सुधाके परम पिपासु भक्तराज ध्रुव सत्सङ्गके लिये भगवान्‌से प्रार्थना करते हैं—

भक्तिं मुहुः प्रवहतां त्वयि मे प्रसङ्गो
भूयादनन्त महताममलाशयानाम्।
येनाञ्जसोल्बणमुरुव्यसनं भवाब्धिं
नेष्ये भवद्‌गुणकथामृतपानमत्तः॥
(श्रीमद्भागवत ४। ९। ११)

'परमात्मन्! जिनकी आपमें अविच्छिन्न भक्ति है उन निर्मल-हृदय सत्पुरुषोंका सङ्ग मुझे दीजिये; उनके सङ्गसे आपके गुणों और लीला-कथा-सुधाको पी-पीकर उन्मत्त हो जाऊँगा, जिससे सहज ही संसार-सागरसे मुक्ति मिल जायगी।'

इस प्रकार भगवान्‌की अविचल भक्ति, स्मृति ... पाप-ताप और अमङ्गलोंको विनष्ट कर देती है और उसीसे अन्तःकरण परम शुद्ध हो जाता है एवं ... वैराग्यसे युक्त भगवान् श्रीहरिके स्वरूपका सम्यक् ज्ञान तथा अनुभव प्राप्त होता है—

सत्सङ्गत्वे निस्सङ्गत्वं निस्सङ्गत्वे निर्मोहत्वम्।
निर्मोहत्वे निश्चलतत्त्वं निश्चलतत्त्वे जीवन्मुक्तिः॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चंडौतकी महासती

[११ जनवरी सन् १९६६ की सत्य घटना]

(लेखक—श्रीबलरामजी शास्त्री, आचार्य, एम्० ए०, साहित्यरत्न)

प्रस्तुत प्रसङ्गमें हमीरपुर जिला, उत्तर प्रदेशकी एक सती स्त्रीकी चर्चा की जा रही है, जो ११ जनवरी १९६६ को चंडौत गाँवमें दिनमें ही हजारों व्यक्तियोंके सम्मुख अपने मृत पतिके शवके साथ जलकर सती हो गयी। उस सतीको अपने पतिके शवके साथ जलकर प्राण न देनेके लिये वहाँकी जनता और चंडौत चौकीकी पुलिसने बहुत बार प्रयत्न किया। उसे बलपूर्वक एक कोठरीमें बंद भी किया गया। कोठरी बंद करके पहरा भी बैठाया गया, किंतु उस सतीके प्रभावसे वे सभी बन्धन बेकार हो गये और हजारों लोगोंके सम्मुख सती अपना अलौकिक दैवी प्रभाव दिखलाकर पतिके शवके साथ विधिवत् सती हो गयी। घटनाका उल्लेख निम्न प्रकारसे है—

उत्तर प्रदेशके बुंदेलखंडमें हमीरपुर एक जिला है। हमीरपुरसे पचास मील दूर राठ तहसील है। राठसे पचीस मील दूर चंडौत नामक गाँव है। हमीरपुरसे चंडौत जानेके लिये बस या लारीसे राठ होकर ही जाना पड़ता है। इस प्रकार जिलेके मुख्यावाससे चंडौत पचहत्तर मील दूरस्थ है। चंडौतके लिये वर्षा ऋतुमें जानेका कोई साधन नहीं है। जरियातक एक लारी चलती है। जरियासे चंडौत नौ मील है। बहुत ऊबड़-खाबड़ रास्ता है। ऊँची-नीची कँकरीली-पथरीली कच्ची सड़क है। इसी सड़कपर राठसे चंडौततक बरसातके बाद एक लारी चलती है। यह सब लिखनेका तात्पर्य यह है कि हमीरपुर जिलाका मुख्यावास स्वयं यमुना और बेतवाके बीचमें टापूके रूपमें है। दोनों नदियोंमें पुल न होनेसे हमीरपुरकी यात्रा बहुत कठिन मानी जाती है। हमीरपुरसे चंडौत पचहत्तर मील दूरस्थ है। चंडौतमें समाचारपत्र नहीं पहुँच पाते और न तो ऐसे संवाददाता हैं, जो ऐसी घटनाओंको समाचारपत्रोंमें दे सकें। फलतः ऐसी घटनाका समाचार पाठकोंतक पहुँच न सका होगा। इस युगमें हजारोंके बीचमें अपने अलौकिक प्रभावसे जनताको प्रभावित करके साठ वर्षकी वृद्धा अपने पतिके शवके साथ सती हो गयी और सब लोग उस सतीके प्रभावसे प्रभावित होकर उसे सती होनेसे विरत नहीं कर सके। पुलिस भी किंकर्तव्यविमूढ हो गयी। यह सब इसी युगमें ११ जनवरी १९६६ को हुआ। ऐसे समाचारको भारतीय पत्र भी प्रकाशित न कर सके। यह होता भी कैसे? उस समाचारको न तो भेजा गया, न प्रकाशित ही हो सका।

सतीका जीवनवृत्त

श्रीमती रौशीली उपनाम मयनियाँ जातिकी केवट थीं। रौशीली देवीका विवाह श्रीधंजू केवटसे हुआ था। धंजू चंडौतके निवासी थे। एक झोपड़ी बनाकर रहते थे। धंजू केवट थे, अतः उनके परिवारके लोग अपना छोटा-मोटा कार्य करते हैं, मजदूरी-खेती आदि भी करते हैं। श्रीमती रौशीली केवट जातिकी स्त्री होते हुए भी अभक्ष्य पदार्थ (मछली, मांस) नहीं ग्रहण करती थीं। अपने पतिको ही ईश्वर मानकर उनकी सेवा करती थीं। कथा-पुराण सुननेका उनका बहुत ध्यान रहता था। वे चारों धामों (तीर्थों) में जाकर दर्शन कर आयी थीं। उनके व्यवहारसे घर और पास-पड़ोसके सभी लोग प्रभावित थे। यदा-कदा उनके पति उन्हें ताड़ना देते, फटकारते; किंतु वे उसका उत्तरतक नहीं देती थीं। साठ वर्षकी अवस्थामें उनका प्रभाव उनके पुत्रों, पौत्रों, पौत्रियों और पुत्रवधुओंपर इतना था कि कोई भी उनके आदेशके पालनमें आनाकानी नहीं कर सकता था। समय-समयसे वे पुराणों और धार्मिक कथाओंके उपदेशको भी परिवारवालोंको सुनाया करती थीं। सबको सन्मार्गपर चलनेका लाभ समझाती थीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१० जनवरी १९६६ की घटना

१० जनवरी १९६६ की रात, जिस दिन भारतके लाल श्रीलालबहादुर शास्त्रीको विधाताने हमसे छीन लिया था, उसी दिन सायंकाल सात बजे चंडौतके श्रीधंजू केवट तीन-चार दिनकी साधारण बीमारीके बाद इस लोकसे विदा हो गये। उस समय उनकी अवस्था पैंसठ वर्षकी थी, श्रीमती रौशीलीदेवी अपने बीमार पतिकी सेवामें दिन-रात लगी रहीं और उन दिनों वे अपने भोजन, नित्य-नियम आदिके कार्योंको भूल गयी थीं। पतिकी मृत्यु हो जानेसे वे शान्तचित्तसे कुछ विचार करने लगीं। घरके लोग रोने लगे। श्रीमती रौशीलीदेवी मौन थीं। थोड़ी देर बाद अपना मौन भङ्ग करके उन्होंने अपने पुत्रों, पौत्रों आदिको रोने-चिल्लानेसे रोक दिया। सब लोग उनकी गतिविधि तथा उपदेश सुनकर आश्चर्यचकित थे। श्रीमती रौशीलीदेवीने अपना निर्णय सुनाते हुए कहा—'बच्चो! मैं अपने पतिके साथ सती होऊँगी। यह मेरा दृढ़ निश्चय है। तुमलोग रोना-पीटना बंद करो।' श्रीमती रौशीलीदेवी रातभर अपने पतिके शवको अपनी गोदीमें लेकर बैठी रहीं और राम-राम कहती रहीं। उनके लड़कोंको अपनी माँके कथन-पर पूरा विश्वास था—भरोसा था, अतः उन्होंने डरकर अपने पड़ोसियोंसे अपनी माँका निश्चय कह सुनाया। पड़ोसियोंके घरमें रातभर यही चर्चा रही। सबने लड़कोंको समझाया कि 'सती होना अपराध है। तुम-लोग अपराधमें गिरफ्तार हो जाओगे। अपनी माँको सती न होने दो।' गाँवके लोग श्रीमती रौशीलीदेवीके दृढ़ निश्चयको केवल विडम्बना समझ रहे थे। जो धार्मिकजन सतीकी भावनाओं और विचारोंको जानते थे, वे उनके लड़कोंको समझाने लगे—सती होना अपराध माना गया है और इस अपराधमें तुम सब फँस जाओगे। अपनी माँको सती न होने दो। दूसरे दिन अर्थात् मङ्गलके दिन ११ जनवरीको प्रातः आठ बजते-बजते सम्पूर्ण गाँवके लोग श्रीमती रौशीलीदेवीकी प्रतिज्ञाको सुनकर एकत्रित होने लगे। देखते-देखते उनके मकानके सामने एक भारी भीड़ इकट्ठी हो गयी। लोग रौशीलीदेवीको समझाने लगे, किंतु उन्होंने स... अपना दृढ़ निश्चय बतला दिया।

सती होनेका दृढ़ निश्चय

श्रीमती रौशीलीदेवी सधवा स्त्रीकी भाँति अ... शरीरको सुसज्जित करके सती होनेके लिये तैयार ... गयीं। नयी साड़ी पहनीं। आँखोंमें काजल, मा... सिंदूर लगाया और राम-राम कहती हुई उन्होंने अ... पुत्रोंसे चिता लगानेके लिये कहा। गाँववालोंने पु... सतीको समझाया; किंतु उनके ऊपर किसीके समझाने... कोई प्रभाव नहीं था। अन्तमें किसीने प्रस्ताव किया—'माताजी! यदि आप सती होना चाहती हैं तो अ... कुछ प्रभाव हमलोगोंको दिखलायें। सती स्त्री अ... प्रभावसे असम्भवको सम्भव कर देती हैं।' सतीके प्रभाव देखनेके लिये सबने उत्कण्ठा व्यक्त की।' गाँव-वालोंका प्रस्ताव सुनकर सतीने आज्ञा दी, 'तुम... पानके दो बीड़े लाओ।' सतीकी आज्ञा होते ही पानका बीड़ा लाया गया।

सतीका प्रभाव

गाँव चंडौतके बहुत-से नर-नारी वहाँ उपस्थित थे। पानके बीड़े सतीके हाथमें दिये गये। सतीने ए... बीड़ा अपने पुत्र सरमनको दिया और कहा कि अ... पिताके मुखमें पानका बीड़ा डाल दो और दू... पानका बीड़ा सती स्वयं पाने लगी। गाँववालों... देखा कि मृतक धंजूके शवने जँभाई ली और पान... बीड़ा मुखमें पड़ते ही उसके होठ हिलने लगे। शव... मुख लाल हो गया। होठोंका हिलना बंद हो गया। गाँववालोंने अपनी आँखोंसे इस दृश्यको देखा। गाँवके लोगोंके मनमें कुछ भय उत्पन्न हुआ। कुछ लो... सतीके पक्षमें हो गये। कुछ लोग चंडौत गाँवसे पुलिसचौकीपर पहुँचकर पुलिस बुला लाये। पुलिसके आनेपर और सतीका होना अपराध मानकर कुछ लो...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बलपूर्वक सतीको एक कमरेमें बंद करनेपर उतारू हो गये। मृतक शरीरको लोगोंने बाहर किया और श्रीमती रौशीलीदेवीको एक कोठरीमें बलपूर्वक बंद कर दिया गया। यह सब पुलिसकी सम्मतिसे हुआ। उस कोठरीमें ताला लगाया गया। गाँवके श्रीविश्वनाथ चौकीदारको पहरेपर लगाया गया! चौकीदार पहरा देने लगा। सतीने उस समय अपने बच्चोंको बतलाया कि मृतक शरीरको जलानेके लिये मेरे कहनेके अनुसार चिता सजाओ। सतीने अपनी सम्मतिसे चिताकी भूमिका निर्णय किया और सतीके कथनानुसार उसी स्थानपर चिता लगायी गयी। कुछ लोग शवको लेकर चितापर रख आये। चितापर शव रखकर आग लगायी गयी; किंतु चिताकी लकड़ियोंमें आगका प्रभाव नहीं होता था और चिता धू-धू करके रह जाती थी। सरमन घर वापस आया और चितामें घी डालने और हवनकी सामग्री छोड़कर चिताको प्रज्वलित करनेकी बात कही। सबने उसकी इच्छाका समर्थन किया। श्रीमती रौशीली-देवी जिस कोठरीमें बंद की गयी थीं, वह कोठरी सर्वसाधारणके लिये दृश्य थी। कोठरीमें ताला बंद था। चौकीदार पहरेपर था। लोगोंने देखा कि कोठरीके किवाड़ एक बार हिल उठे। चौकीदार कोठरीके किवाड़को पकड़कर सावधान होकर खड़ा था। सहसा दूसरी बार भी किवाड़ हिले और ताला अपने-आप खुलकर गिर गया। साँकल अपने-आप खुली। साथ ही दोनों किवाड़ भी अपने-आप खुल गये। कोठरीका ताला अपने-आप खुला, साँकल अपने-आप खुली और दोनों किवाड़ अपने-आप खुले—इसे गाँवके सभी लोग मानते हैं। इसे बहुतोंने देखा। सतीके इस प्रभावसे सब लोग स्तब्ध थे। पुलिसवाले भी किंकर्तव्यविमूढ़ थे। दरवाजा खुलते ही रौशीलीदेवी उस कोठरीसे बाहर हो गयीं और इतने वेगसे दौड़ीं कि देखनेवाले हताश हो गये। देखते-देखते वे प्रज्वलित चितापर बैठ गयीं। उनके बैठते ही चिता भी सहसा जल उठी। सतीने पतिके शवको अपनी गोदमें लिया और क्षणभरमें आग सम्पूर्ण चितामें दौड़ गयी। सतीकी साड़ी पहले जलने लगी तो कुछ लोग पासमें रखे ज्वारके कुछ डंठल डालने लगे। सतीने उन्हें ऐसा करनेसे रोका और कहा—'यह गौका भोजन है, इसे न जलाओ।' सती इतना कहकर ध्यानमग्न हो गयीं और पतिके साथ स्वर्ग चली गयीं। सतीके इस कृत्यको देखकर गाँवके लोग अपनी भावनाको छिपा न सके और कितने लोगोंने अपने शरीरके वस्त्र चितापर फेंक दिये, कितनोंने रुपये-पैसे फेंके, कितने घरसे घी आदि लाकर चितापर चढ़ा गये और देखते-देखते पति-पत्नीके शव भस्म हो गये। लोगोंने सतीकी भस्मको अपने माथेपर लगाया और सतीका जय-जयकार करने लगे। थोड़ी देरमें कई हजार जनसमुदाय इकट्ठा हो गया। गाँववालोंने मुझे यह भी बतलाया कि सती जब चिताकी ओर दौड़ीं तो उन्हें पुलिस और कुछ लोगोंने बलपूर्वक रोकनेका प्रयत्न किया; किंतु सतीने उनसे कहा, 'मुझे सती होनेमें जो बाधा डालेगा, उसे इसका भयानक परिणाम भुगतना पड़ेगा।' धार्मिक भावनासे प्रेरित जन-समुदाय सतीको रोक न सका और सती अपने प्रभावसे सबको चकित करके अपने पतिके साथ स्वर्ग सिधार गयीं।

गाँवके सब लोग यह मानते थे कि सती होना अपराध है। पुलिसके एक-दो सिपाही भी सतीको रोकना चाहते थे; किंतु सतीमें न जाने कहाँसे दौड़ने-की शक्ति आ गयी थी कि साठ वर्षकी अवस्थामें वे बिजलीकी भाँति दौड़कर चितापर चढ़ गयीं और अल्प समयमें जलकर सती हो गयीं। उन्हें किसीने रोकनेका साहस नहीं किया। विधान (कानून) पृथक् है और सतीका दृढ़ निश्चय पृथक् था। सतीका दृढ़ निश्चय सफल हुआ। लोग देखते ही रह गये। पुलिसके सिपाही कर ही क्या सकते थे। जो होना था, वह होकर ही रहा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सती-परिवारमें सतीके तीन लड़के—लाभन, सरमन और सुखुवा हैं और बाबूराम, शिवराम, आशाराम, कैलासपति पौत्र हैं। अनेकों पौत्रियाँ हैं। सब सानन्द रहकर सती माताका गुणगान करते हैं। जनवरी १९६६ को एक बजे दिनमें सती रौशीलीदेवीने अपना शरीर त्याग दिया और प्राचीन भारतीय सती-परम्पराकी लोकमें एक कड़ी जोड़कर भारतीय सती नारियोंकी यशोगाथाको अमर कर गयीं। सती अपने नश्वर शरीरको त्यागकर इस युगमें अपना नाम तो अमर कर ही गयीं, साथ ही नये युगके सामने यह प्रत्यक्ष प्रमाणित कर गयीं कि हमारा हिंदू-धर्म कितना महान् है, कितना विशाल है? सती-सावित्री, द्रौपदी-सीताकी कहानी भी सत्य है—शाश्वत है।

चंडौत गाँवमें सतीका चबूतरा बनवाकर गाँ… प्रत्येक मंगलवारके दिन सतीके नामपर मेला लगते… पास-पड़ोसकी जनता सतीके चबूतरेपर एकत्रित हो… सतीकी पूजा-अर्चना करती है। सती-परम्परामें … १९६६ की यह घटना नयी परम्परा, नयी दि… मुड़कर पथभ्रष्ट होनेवाली नारियोंके लिये ही … अपितु पथभ्रष्ट पुरुषोंके लिये भी चंडौतकी … यह (गाथा) शिक्षा ग्रहण करनेके लिये प्रेरित … है। बुंदेलखंडमें जानेपर इस लेखके लेखकको … सतीकी गाथा सुनने और चंडौत गाँवके … चबूतरेका दर्शन करनेका अवसर मिला। फलस्वरू… निबन्ध सेवामें प्रस्तुत किया जा सका।

सहेली

[कहानी]

(लेखक—श्रीकृष्णगोपालजी माथुर)

(१)

सरलाने जब देखा कि उसके पूज्य माता-पिता उसके विवाहके व्ययकी व्यवस्था न कर सकनेके कारण चिन्तासे घुले जाते हैं, तब वह संसारकी असारताको समझ हरिभजनमें अपना तन सुखाने लगी। वह नित्य सुन्दर सिंहासनपर विराजमान भगवान् श्रीराधाकृष्णजीके मनोहर चित्रके सम्मुख, कमरेके कपाट बंदकर, भक्तिरसमें मग्न हो, भक्तिमती मीराबाईके भजन गाकर कीर्तन किया करती थी। प्रत्येक परीक्षामें प्रथम श्रेणीमें उत्तीर्ण होनेके कारण कालेजके पिता-तुल्य अध्यापक उससे सदा प्रसन्न रहकर उसकी सादगी, सरलता एवं विनय-शीलताकी अन्यान्य आधुनिक रंगमें रँगी छात्राओंसे तुलना किया करते थे।

एक रविवारके दिन सरलाकी सहेली रमाने … मन्दहास्यके साथ धीरेसे उससे कहा—"तु… मेरा परिचित धनवान्का सुन्दर पुत्र रामेश्वर … 'लव मैरेज' करनेको प्रस्तुत है और चाहता है … तुम यह सादापन छोड़कर जरा ढंगसे रहा करो।"

इतना सुनते ही सरलाके चेहरेपर दुःख और … रेखाएँ उभर आयीं। वह दुःखभरे स्वरमें बोली … "रमा बहिन! तुम्हें ऐसी बात मुझसे कभी नहीं … चाहिये। हम पवित्र आर्य कुमारी हैं। … माता-पिता विधिसहित जिनके साथ विवाह … वे ही हमारे पूज्य और प्रियतम पति होंगे। … भी तो भारतीय नारीके महान् आदर्शोंको रामचरित… मेंपढ़ा है। भाई रामेश्वरसे कहो कि किसी बहनके …

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर रीझना * घोर अन्याय और महापाप है। हमारी संस्कृतिमें विवाहित पति चाहे कैसा ही हो, उसका अपमान करनेसे नरक-यातनाकी प्राप्ति होना बताया गया है—

वृद्ध रोगबस जड़ धनहीना। अंध बधिर क्रोधी अति दीना॥
ऐसेहु पति कर किएँ अपमाना। नारि पाव जमपुर दुख नाना॥
(रामचरितमानस)

हमें इसी महान् आदर्शपर चलकर सदैव अपनी भारतीय संस्कृतिकी रक्षा करनी है। आजका भारी दोष 'लव मेरिज' करना ऐसी भयंकर भूल है, जिसने अनेक घरोंको बसाया नहीं, बल्कि तलाकके रूपमें उजाड़ कर हिंदू-समाजपर कलङ्क लगाया है।'

सरलाकी बातें सुनकर रमा सकुचा गयी और प्रसङ्ग बदलते हुए बोली—तुम अपने शरीरके साथ, जो भगवान्का मन्दिर है, इतना अन्याय क्यों कर रही हो ? जानती हो—

धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्।

सरलाने हँसकर कहा—'प्रिय सखी ! त्यागमय सादे जीवनमें ही तो यथार्थ सुख है। मैं आजकलकी नयी परिधान-शैलीकी फेशनेबल पोशाक नहीं पहनती। मेरी समझसे आर्यनारीके लिये इसीमें गौरव है। मेरे विचारसे तो स्कूल-कालेजोंमें जो छात्र-छात्राओंकी प्रेम-लीला-सम्बन्धी दुर्घटनाएँ हुआ करती हैं, उसका प्रधान कारण निर्लज्जतापूर्ण चटक-मटकका पहनावा ही है, जिसने नारियोंके मुख्य गुण लज्जा, शील-संकोच, नम्रता, विनयशीलता एवं भारतीय संस्कृतिको तिलाञ्जलि देकर उच्छृङ्खलताको सहारा दिया है। यह हमारे लिये अत्यन्त लज्जाकी बात है। मैं तो सदा शुद्ध, श्वेत, खादीकी धुली हुई ढीली पोशाक पहनती हूँ और इसी पोशाकमें निस्संकोच भावसे लंबा मार्ग पार करती हुई जब महाविद्यालयमें जाती हूँ, तब वहाँ छात्रोंसे हाथ जोड़कर 'भाई साहब, जय श्रीराम' कहकर प्रणाम करती हूँ। बदलेमें वे भी हाथ जोड़कर 'बहनजी, जय श्रीराम' कहकर एक शुद्ध भावना बनाकर मुझे प्रणाम करते हैं। इस मानवोचित व्यवहारसे सात्त्विक भाव, सद्भावना, सद्विवेक एवं सद्विचारोंका उद्गम दोनों ओरसे होता है, जिससे हमारा आगेका जीवन श्रेष्ठ, शुद्ध, धर्मशील, कर्मशील एवं कर्त्तव्य-परायण बनना है और हम निर्विकार भावसे व्यक्ति, समष्टि, समाज, घर, गाँव, नगर और सारे देशकी निःस्वार्थ सेवा करनेमें समर्थ होती हैं।"

सरलाकी बातें सुनकर रमा विचारोंमें खो गयी। किंतु बचपनसे कृत्रिम बनाव-शृङ्गार करनेमें अभ्यस्त होनेके कारण इसे छोड़नेमें उसे दुःख दिखायी देने लगा। फिर भी वह सरलाको प्रसन्न करनेके हेतु बोली—'प्रिय सहेली ! आज तुमने खरी बातें सुनाकर मेरी आँखें खोल दी हैं। आजसे मैं भी ऐसा ही करूँगी और अन्य सहेलियोंको भी इसके लिये प्रोत्साहन देती रहूँगी।'

(२)

दिन बीत गये। दोनों सहेलियोंका विवाह हो जानेसे वे बिछुड़ गयीं। सरलाके श्वशुर-गृहसे थोड़ी दूर पाप-तापनाशिनी भगवती भागीरथी बहकर उस क्षेत्रको पवित्र कर रही थी। सरला नित्य प्रातःकाल पड़ोसकी महिलाओंके साथ उसमें स्नान करनेको जाती और स्नानान्तर हाथ जोड़कर प्रार्थना करती—'गङ्गा माँ ! हम अनेक दोषोंसे भरे हैं; पर भरोसा यही है कि तेरे पड़ोसमें बसते हैं।* इसी लाभसे हमारे सभी कल्मष धुल जायँगे।' सरला चक्कीसे घरका आटा पीसती और कुएँसे जल खींचकर भर लाती थी। इन

* "हो बिके जहाँ तुम बिना दाम,
वह नहीं और कुछ—हाड़-चाम !"
(महाकवि निराला—"तुलसीदास काव्य")

* भागीरथी हम दोस भरे, पै भरोस यही कि परोस तिहारे।
(स्व० पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी, "गंगा को शुभ संदेश")

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कामोंमें व्यायाम हो जानेसे उसका शरीर सदा स्वस्थ, बलिष्ठ और मन प्रफुल्ल बना रहता था।

सरलाकी ससुरालके लोग रोजी कमाते तो थे, पर उनके घरमें बरकत नहीं रहती थी। कारण यह था कि वे लोग प्रातः देरसे उठकर भोजन बनाने-खानेमें लग जाते थे। भगवान्‌के भोग लगाना तो दूर रहा, घरकी सफाई भी बादमें होती थी। इस दोषको सरलाने अनुनय-विनय करके दूर करवाया, जिससे घरमें पवित्रता आ गयी।

एक दिन गणेश नामके एक अभ्यागतने आकर अपनी व्यथा सुनाते हुए सरलासे खानेको रोटी माँगी। सासने मना किया। सरला हाथ जोड़कर विनय करने लगी—'माताजी! इसे दो रोटी दे देनेमें क्या हानि है। यह बेचारा दूर बैठकर खा लेगा—ठंडा जल पी लेगा। पेट भर जानेसे हमें असीसें देगा। हम पुण्यके भागी होंगे।' सरलाकी बात समझकर सासने आज्ञा दे दी, भोजनसे तृप्त होकर गणेश अनेक असीसें देता हुआ सरलाके चरण-स्पर्श करनेको आगे बढ़ा। सरलाने तुरंत टोंकते हुए कहा—'मेरे चर्म-चरणोंको छूनेसे कोई लाभ नहीं। आप दीनोंके दुःख-दोष-दारिद्र्यको दलनेवाले द्वारकाधीश भगवान्‌का भजन करते रहिये। अन्नदाता वे ही हैं।' इस प्रकार सरलाके द्वारा घरकी स्थितिके अनुसार सदा दान-पुण्य होता रहता था, जिसके फल-स्वरूप उसके घरमें सुख-शान्ति, बरकत और आनन्द बने रहने लगे।

इधर, रमाकी ससुरालमें वस्त्र-व्यवसायसे खूब लाभ होता था। पति सुरेशकुमार ईमानदारी, दयाधर्म, दान-पुण्यको महत्त्व न देकर लोभवश कईगुना अधिक नफा जोड़कर ग्राहकोंको ठगनेमें तनिक भी संकोच नहीं करता था। इससे शनैः-शनैः उसकी साख घटनेके साथ ही बिक्री भी बहुत कम होने लगी। सुरेशकुमार जुएके व्यसनसे धन बढ़ानेके प्रयत्नमें निजकी पूँजी भी खोने लगा। रमा घरका कोई काम न कर दिन नये-नये बनाव-शृङ्गारमें लगी रहती थी। उसके लि बहुमूल्य वस्त्रादि आते रहे। वह समझती रही— करोड़पतिकी पत्नी, सेठानी हूँ।' गृहकार्यमें शारी परिश्रम न करनेसे उसका स्वास्थ्य क्रमशः गिरने ल सुन्दर स्वास्थ्य, ऐशोआराम, पूँजी, उपार्जन—सभी धीरे घटते हुए नष्ट-से हो गये। अब तो रमा उ यादमें घुलने लगी। दूकानका दीवाला निकल जानेके ऋणदाताओंको रुपयेमें एक आनेके हिसाबसे चुकता क चिन्ताग्रस्त हो सुरेशकुमार घर बैठ गया। मकान बेच कुछ दिन तो गुजारा चलाया, परंतु फिर एक समय भोजन न मिलनेकी नौबत आ गयी। कहाँ माँगने इसी चिन्तामें पति-पत्नीके दिनभरके घड़ी-घंटे कठिनाईसे बीतने लगे—

अय्याम मुसीबतके तो काटे नहीं कटते।
दिन ऐश के घड़ियोंमें गुजर जाते हैं॥

विपत्तिमें भगवान्‌की याद आती है। रमाको चायपार्टीमें विदुषी सहेली चम्पाने पहले कभी 'ॐ रामाय नमः' मन्त्रकी बड़ी भारी महिमा बतायी उसे यादकर, अपना संकट मिटानेके हेतु दोनों पत्नी श्रद्धा-भक्तिके साथ इस मन्त्रका जप लगे, जिससे उनके मनको बहुत शान्ति मिली। परताके कारण रमेशकुमारके तो कोई अभिन्न मित्र नहीं पाया था। किंतु रमाको सरलाकी याद आ तथापि लज्जा और अपमानके निरर्थक विचारोंके उसे सरलाके पास जानेका साहस नहीं होता था— बात मन्त्र-जपसे निकल गयी। विचार शुद्ध बन वह निरभिमान होकर सरलाके पास गयी। सरला इसे देखते ही मानो रङ्कको निधि मिल गयी हो, भाँति प्रसन्नतापूर्वक शीघ्र उठकर उससे लिपटकर एक सुन्दर ऊँचे आसनपर उसे बिठाया और बहाते हुए कुशल-प्रश्न करने लगी। किंतु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुर्दशाके बारेमें थोड़ी चर्चा भी इस विचारसे नहीं की कि 'इसके मनको दुःख होगा।' उसने रमाके शिशुको वात्सल्यभावपूर्वक रमाकी गोदसे अपनी गोदमें उठा लिया और मातृवत् प्रेम उमड़ आनेसे उसे बार-बार चूमने लगी एवं आँचलमें इस प्रकार छिपा लिया, मानो अपने ही उदरके शिशुको स्तनोंका दूध पिला रही हो। बातचीतमें उसने रमाके मनकी बात जान ली। सहानुभूति दिखाते हुए मधुर वाणीमें बोली—'प्रिय बहन! चिन्ता मत करो। भगवान्‌की कृपापर विश्वास रक्खो। उनका स्मरण करो। उनकी कृपासे सब मङ्गल होगा।'

सरलाने कुछ रुपये बचा रक्खे थे। वह चुपके-से रमाके हाथोंमें रखते हुए बोली—'बहन! इस फूलपत्तीको स्वीकारकर मुझे उपकृत करो। मैं जीजाजी रमेशकुमारजीका अच्छा काम लगवा देनेका प्रयत्न अपने पतिदेवके द्वारा कराऊँगी। भगवत्कृपासे शीघ्र ही सफलता मिलेगी।' सरलाके आशातीत प्रेम और अपनत्वभरे व्यवहारसे रमा आश्चर्यचकित हो गयी। सोचने लगी—'दुनियादारीमें स्वार्थ-साधनके लिये तो मनुहारके साथ जगत्‌के लोग चुपके-चुपके चूरमा लाकर खिलाते हैं, पर विना स्वार्थके छाछकी राबड़ी भी नहीं पिलाते।* सरला तो निःस्वार्थ प्रेमकी मूर्ति, चतुर और समझदार नारी है, वह भला अवसरसे लाभ उठाना कैसे भूल सकती है। अवसरका लाभ भी बहुत दिनोंतक बना रहता है।'†

इन विचारोंके साथ कृतज्ञ हृदयसे विदा लेते समय रमाने सरलाका प्रेमपूर्वक गाढ़ आलिङ्गन किया। उस समय दोनोंकी आँखोंसे स्नेहबिन्दुओंकी अविरल धारा बह चली थी। घर पहुँचकर उसने सब समाचार पतिदेवको सुनाये। दोनों मिलकर भगवान्‌का विश्वासपूर्वक भजन करने लगे।

× × × ×

सुने री मैंने निर्बलके बल राम।

रमेशकुमार अपनी नवनिर्मित कुटियामें बैठा यह भजन गुनगुना रहा था। इतनेमें ही एक व्यक्तिने आकर कहा—'आपके प्रार्थना-पत्रपर आपको ऊँचा पद मिल गया है।' यह हर्षसूचक समाचार सुनकर रमेशकुमारने मन-ही-मन अपने इष्टदेव श्रीनीलाचलनाथको अनेकशः धन्यवाद देकर नमस्कार किया और उस आगन्तुकको मिष्टान्नका भोजन कराया। इसके पश्चात् दीनप्रतिपालक, भक्तवत्सल, भयापहारी, सब सुखदायक भगवान्‌की पूजा-आरती करके साष्टाङ्ग दण्डवत्-प्रणाम करते हुए हाथ जोड़ प्रार्थना की—'नारायण! आप अहैतुकी कृपा करते हैं। अब ऐसी दया करो कि हम आपका चौबीसों घंटे भजन करते रहनेमें कभी थोड़ा भी प्रमाद न करें।' और प्रतिज्ञा की कि 'प्रथम वेतनका रुपया भगवान्‌के अटका चढ़ानेको भेजूँगा।'

× × × ×

पहनो पहनो सुहागिन ज्ञान-गजरा।
पहनो पहनो························॥

बाजारके बीच ऊँचे मञ्चपरसे भजनोपदेशक रामप्रसादजीने यह गायन मीठे स्वरोंमें गाया। हजारों श्रोताओंमें रमा-सरला भी थीं। सरला बोली—'सखी! वास्तवमें कर्तव्य और परोपकारका ज्ञान समयपर हो जाना हम गृहिणियोंका दिव्य गुण है। मैं तुमको बताऊँ—मैं अपने भतीजेके विवाहमें उत्तूपुरा ग्रामको जा रही थी। मार्गमें एकाएक भारी वर्षा हो जानेसे इतना कीचड़ हो गया कि उसमें गाड़ी-बैल फँस जानेसे हम बड़े संकटमें पड़ गये। इतनेमें ही एक पथिकने हमारी कठिनाई देखकर पासके गाँवसे पाँच-सात व्यक्तियोंको ला गाड़ी-बैल

* मतलब री मनुवार, जगत जिमावै चूरमो।
बिन मतलब री बार, राब न पावै 'राजिया' ॥
(राजस्थान—मारवाड़में प्रचलित सोरठे)

† समजणहार सुजाण, नर औसर चूकै नहीं।
औसर रो ओसाण, रहै घणा दिन 'राजिया' ॥
(राजस्थान—मारवाड़में प्रचलित राजियाके सोरठे)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कीचड़से निकलवाये और हमें पहुँचानेको उत्तूपुरातक पैदल-पैदल कीचड़में चलकर गया। मुझे उसके इस परोपकारी कामपर बड़ा आश्चर्य हुआ, पूछ बैठी—'भैया, तुम कौन हो? हमारे लिये तुमने बड़ा कष्ट उठाया। यदि तुम ठीक समयपर आकर हमारी सहायता न करते तो इस निर्जन वनमें रात हो जानेपर हमारी क्या दुर्दशा होती।' वह बोला—'माताजी! मैं वही गणेश हूँ, जिसे आपने उस दिन भोजन देकर भूखों मरनेसे बचाया था। वही आपका अन्न-जल यहाँ उमड़ा है। मैं आपका सदा दास रहूँगा।' बात सच्ची थी। मैं तो सुनकर दंग रह गयी बहन!

अब तो रमाका जीवन ही बदल गया। दोनों पति-पत्नी नित्य नियमसे पवनकुमार श्रीहनुमान्‌जी महाराज-को ऊँचा सुन्दर आसन देकर विधिपूर्वक श्रीरामचरित-मानसका पाठ किया करते थे। उसीमें उन्होंने पढ़ा—

उमा कहउँ मैं अनुभव अपना।
सत हरिभजन जगत सब सपना॥

अतः वे हर समय एवं चर्खेसे सूत कातते समय निरन्तर रामनामका जप किया करते थे। चर्खेके सूतसे मोटा खद्दर बुनवाकर पहनते। प्रतिदिन संध्या समय बाहर निकल जाते और बहुत दूर-दूरतक जाकर निर्धनों, अनाथों, दीन-दुखियोंकी खोज करके उनकी अन्नवस्त्रादिसे यथाशक्ति सहायता करते थे। उनके बच्चोंके लिये अपने हाथकते सूतके वस्त्र सीकर वितरण करते और असहाय स्त्री-पुरुषोंको गुप्तदान दिया करते थे। इसी प्रकार उनका सादा जीवन व्यतीत हुआ।

मानव-कर्तव्य

(लेखक—श्रीअगरचन्दजी नाहटा)

आत्मा चेतन—नित्य क्रियाशील है, जडकी तरह निष्क्रिय नहीं; इसलिये प्रत्येक प्राणी हर समय कुछ-न-कुछ करता ही रहता है। पर उनकी अधिकांश क्रियाएँ प्राकृतिक और गतानुगतिक संस्कारवश होती हैं। पर मनुष्यमें विचार या विवेककी अधिकता होनेसे वह प्रत्येक क्रिया क्यों करता है, कैसी क्रिया करनी चाहिये, उससे लाभ है या हानि—इत्यादि विषयोंपर विचार करता रहता है। इसलिये पशु-पक्षी आदि प्राणियोंकी क्रियाओं और मनुष्यकी क्रियाओंमें एक महत्त्वपूर्ण अन्तर दिखायी देता है।

उदाहरणार्थ—अपनी संतानका पालन-पोषण पशु-पक्षी भी करते हैं, और मनुष्य भी करते हैं। पर उन दोनोंके पालन-पोषणमें पर्याप्त अन्तर दिखायी देगा। मनुष्य बहुतसे कामोंको अपना आवश्यक कर्तव्य मान लेता है। पशु-पक्षी ऐसा नहीं मानते। वे या तो अपने संस्कार या स्वभाववश या दूसरोंके अनुकरणमें क्रियाएँ करते हैं, कर्तव्य मानकर नहीं। कर्तव्यमें एक जिम्मेदारी आती है। साधारण क्रियासे कर्तव्यमें एक विशेषता होती है। करने योग्य काम अनेक होते हैं। पर वे सभी एक कोटिके नहीं होते। इसलिये कर्तव्यमें भी भेद किया जाता है। मनीषियोंने सबसे बड़ा कर्तव्य तो धर्मका संग्रह बतलाया है—

कर्तव्यो धर्मसंग्रहः।

साधारणतया जिनसे हम जीवनमें अनेक प्रकारके लाभ उठाते हैं, उनका हमारे ऊपर उपकार होता है। इसलिये उनकी सेवा करना, उनकी हर प्रकारसे सहायता करना, उनका हित-सुख-साधन करना हमारा कर्तव्य हो जाता है। एक तरहसे वह ऋण चुकाने-जैसा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्तव्य है। बहुत-से व्यक्तियोंसे यद्यपि हम उपकृत नहीं होते, फिर भी उनकी सेवा करना हमारा कर्तव्य होता है। इसीलिये परोपकार, दान आदि प्रवृत्तियाँ मानव-कर्तव्यके अन्तर्गत मानी जाती हैं। समाजसे हम प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपमें बहुत कुछ लाभ उठाते हैं; अतः समाज-सेवामें हमें तन, मन, धन लगाना ही चाहिये।

मानवजीवन एक दूसरेपर आश्रित-सा है। जन्मसे लेकर मरणतक अनेक व्यक्तियोंद्वारा हमारा पालन-पोषण, संरक्षण, संवर्धन अर्थात् अनेक प्रकारका विकास होता रहता है। इसलिये बालकसे लेकर वृद्धतक सभी व्यक्तियोंके साथ हमारा कर्तव्यका बन्धन जुड़ जाता है। यदि हम उस कर्तव्यका पालन न करें तो हमारे इस जीवनका कोई विशेष मूल्य नहीं रहता। दूसरे व्यक्तियों-का हमारे प्रति कर्तव्य है तो हमारा उनके प्रति। किन्हींके प्रति साधारण कर्तव्य होता है तो किन्हींके प्रति विशेष—इतना ही अन्तर समझिये। जिन कार्योंसे अपना और दूसरोंका कल्याण हो, वे कार्य सबसे पहले करने योग्य हैं। कम-से-कम दूसरोंका हमारे द्वारा कुछ भी अकल्याण न हो जाय, इसका तो हमें सदा ध्यान रखना ही चाहिये। धर्म-गुरुओंद्वारा हमें पाप और पुण्य या धर्मका बोध मिलता है, जिससे हमारा इहलोक और पारलौकिक जीवन सुधरता है। इसलिये उनके प्रति हमारा विशेष कर्तव्य होता है। इसी तरह माता-पिता आदि उपकारी जनोंका हमारे जीवन-निर्माणमें बहुत बड़ा हाथ है; इसलिये उनके प्रति भी दूसरोंकी अपेक्षा हमारा कुछ विशेष कर्तव्य हो जाता है। पारिवारिक जनों, समाज तथा देशके लोगोंके प्रति, गुरुजनों एवं माता-पिताकी अपेक्षा कर्तव्य कुछ कम होता है। यही तारतम्य सर्वत्र दिखायी देता है।

मानवके लिये सबसे पहला काम है—अपनी आत्माका उत्थान। इसीलिये धर्मको मुख्य कर्तव्य माना गया है। यह मनुष्य-जीवन बहुत लंबे कालके बाद और बहुत पुण्यसे मिलता है। और इसमें धर्मकी आराधना-जैसा कार्य जैसा मनुष्य कर सकता है, वैसा अन्य कोई भी प्राणी नहीं कर सकता। इसीलिये कहा गया है कि मनुष्य-जन्मके बिना मुक्ति नहीं मिल सकती।

धर्म अनेक प्रकारके बतलाये गये हैं और उन्हें वैसे तो साधारण कर्तव्यसे बहुत ऊँचा माना गया है। पर करने योग्य कार्यको यदि हम कर्तव्य कहें तो सबसे पहले करनेका काम तो यही है कि अनादि कालसे जो कर्म हमें बाँधते आ रहे हैं, उनमेंसे सबसे पहले अशुभ कर्मोंके बन्धनको हम रोकें और शुभ कर्मोंमें प्रवृत्त हों। अन्तमें तो शुभ और अशुभ दोनोंसे ही पृथक् हो जाना है और तभी मुक्ति मिलेगी। धार्मिक कार्य हमें अशुभ प्रवृत्तियोंसे बचाकर शुभ प्रवृत्तियोंमें जुटे रहनेकी प्रेरणा देते हैं।

मनुष्य प्रतिपल कुछ-न-कुछ करता ही रहता है। इसीलिये गीतामें कहा गया है कि कर्मोंकी आसक्ति और फलकी आशाका त्यागकर कर्तव्य-कर्म करते जाओ। वास्तवमें हमने बहुत-से कर्तव्य मान रखे हैं और जब-तक आसक्ति है, तबतक यह जाल बिछा ही रहेगा। इसीलिये हमें अपने माने हुए कर्तव्योंकी भी छटाई करनी होगी। जिन कर्तव्योंसे आत्माका उद्धार होता हो, उनको प्रथम कर्तव्य माना जाय और अवशेषको साधारण कर्तव्य। जिनसे आत्माकी अवनति हो, ऐसे कामों-को तो कर्तव्य मानना ही नहीं चाहिये। कर्तव्यके पालनसे आनन्दकी अनुभूति होती है, न करनेसे आत्मग्लानि; अतः कर्तव्यपालनमें सजग रहना है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दक्षिण भारतकी तीर्थयात्रा

(लेखक—सेठ श्रीगोविन्ददासजी, श्रीमती रत्नकुमारी देवी, श्रीगोविन्दप्रसादजी श्रीवास्तव)

[गताङ्क पृष्ठ ९३९ से आगे]

दिनाङ्क १८ सितम्बरके अपराह्ण केरलकी राजधानी त्रिवेन्द्रम्‌से हम कन्याकुमारीके लिये विदा हो गये। जिस समय हमने मोटर-बससे त्रिवेन्द्रम् छोड़ा, उस समयसे कन्याकुमारी पहुँचनेतक मोटर-बसमें केरलपर हमारी चर्चा होती रही। यह शायद इसलिये कि स्वाधीनताके बाद केरलकी राजनीति जैसे-जैसे नये-नये रंग लायी, वैसे अबतक देशके किसी अन्य प्रदेशके राज्यकी नहीं। आखिर केरलकी राजनीतिमें ये नये-नये गुल कैसे खिले, यह एक विचारका विषय है, जो सभी विचारशील व्यक्तियोंके सामने अनेक प्रश्न-सूचक चिह्न रखता है। केरल राज्यकी इस समयकी सरकार कांग्रेस और प्रजा-समाजवादी दलकी मिली-जुली सरकार थी, जिसे अन्य कुछ स्वतन्त्र सदस्योंका समर्थन भी प्राप्त था। इसके पहले केरलमें साम्यवादी सरकार थी, उसके पहले राष्ट्रपतिका शासन और सबसे पहले कांग्रेस-दलकी हुकूमत। सम्भव है आगे फिर भी कांग्रेस दलकी ही हुकूमत आ जाय। हमारे सामने प्रश्न यह नहीं कि केरलमें आगे कांग्रेस-दलकी हुकूमत कैसे बने अथवा अन्य दलोंको हम कैसे विजयी करें; वरं केरलमें स्वाधीनताके पश्चात् इस थोड़े-से समयमें जो परिवर्तन हुए, उनकी वजह क्या है—इसपर गौर करना ही हमें अभीष्ट है। आखिर इस क्षेत्रमें ऐसी राजनीतिक उथल-पुथल और साम्यवादियोंके ऐसे दौर-दौरेका क्या कारण है। गरीबीमें साम्यवाद पनपता है, यह एक मानी हुई बात है। परंतु भारतमें क्या केवल केरल ही गरीब प्रान्त है? केरलसे कहीं अधिक गरीबी उड़ीसामें है। अतः गरीबी एक कारण होते हुए भी इस समस्याके अन्य कारण भी हैं। केरल देशका सर्वाधिक शिक्षित प्रदेश है या यों कहना चाहिये कि जितने प्रतिशत शिक्षित केरलमें हैं, उतने अन्य प्रदेशमें नहीं। गरीबीके क्लेशोंका निवारण साम्यवादसे सम्भव है—यह यहाँके लोगोंका विश्वास है। दूसरी बात जो है, वह है हमारी शिक्षा-प्रणालीका सदोष होना। वर्तमानमें हमारी शिक्षा-प्रणाली केवल आजीविकाका एक साधन बन गयी है। और हर शिक्षित व्यक्ति, चाहे वह नीचेके किसी पदपर हो अथवा ऊँचे किसी बड़े ओहदे पर, अपनी प्राप्त शिक्षा-योग्यताको वह अपनी आजीवि... कसौटीपर कसता है। आर्थिक दृष्टिसे अथवा भौतिक... साधनोंके अभावमें, जिनसे कभी मानवकी तृप्ति हो... नहीं सकती, उसके मनमें असंतोष होता है और... असंतोष बुद्धि-वैषम्यपर आधारित होनेके कारण... विषमताके प्रति विद्रोही हो उठता है। आगे चलकर... वर्ग-संघर्षका रूप धारणकर हिंसा-प्रवृत्तिप्रधान साम्यवा... पोषक बन जाता है। सामाजिक विषमताकी आ... भित्ति आर्थिक विषमता ही है, और यह आर्थिक विष... किसी भी देश अथवा समाजसे शनैःशनैः ही दूर की... सकती है, जादू अथवा किसी नैसर्गिक उपायसे क... नहीं। हमने विषमताकी इस खाईको पाटनेके लि... समाजवादी समाज-रचनाके जिस सिद्धान्तको स्वीकार कि... है, उसकी पूर्तिके लिये अपने उपलब्ध साधनोंको देखते हु... हमें काफी श्रम, समय और धैर्यकी आवश्यकता है। कि... देशका एक ऐसा वर्ग, जो साम्यवादके द्वारा येन के... प्रकारेण तुरंत इस खाईको पाटनेपर आमादा है, ... राजनीतिक क्षेत्रमें यत्र-तत्र उथल-पुथल मचाता ... आता है। भारतकी जैसी सामाजिक रचना है, वैसी... अन्य किसी देशकी नहीं। भारत एक सांस्कृतिक दे... यहाँ अर्थ और भौतिक उपलब्धियोंसे बड़ी भी कोई व... और वह है हमारा अध्यात्म। अध्यात्मकी संस्कृतिपर अमिट... है। भारतीय संस्कृति, जिसका विश्वमें बोलबाला है, भार... अध्यात्मकी ही देन है। यानी सही मानेमें हमारी संस्कृ... आधार ही अध्यात्म है। संग्रह विग्रहका हेतु होता है... इसीलिये हमारा अध्यात्म संग्रहका नहीं, अपितु अपरि... पोषक है। संसारके आज बड़े-बड़े समृद्ध राष्ट्र ... दृष्टिसे ज्यों-ज्यों समृद्धिके शिखरकी ओर बढ़ रहे हैं, ... नये वाद-विग्रहको वे इस प्रगतिके साथ ही जन्म भी दे... जा रहे हैं। इस बढ़ते हुए विग्रहकी समाप्तिके लिये आ... विश्वमें प्रधान रूपसे दो ही मार्ग हमारे सामने नजर आ... रहे हैं—एक समाजवाद, दूसरा साम्यवाद। अपने ढं...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाजवादी समाज-रचनाका सिद्धान्त हमने स्वीकार भी किया ही है। दूसरा, जिससे वर्तमानमें और आगे भी हमें टक्कर लेनी है, वह है रूस अथवा चीनका साम्यवाद। समाजवाद हो, साम्यवाद हो अथवा अन्य कोई वाद, भारतमें भारतकी जलवायु, यहाँकी मिट्टी और संस्कृतिके अनुरूप ही कोई वाद पनप सकता है। भारत सनातन कालसे ही सहृदयता, सहिष्णुता, सेवा, सौहार्द और परस्परके सद्भावका स्रष्टा रहा है। इन विशिष्ट गुणोंके कारण ही भारतीय संस्कृति समन्वयकी संस्कृति है—जिसमें वैर-बुराई, हिंसा-प्रतिहिंसा आदि दुर्गुणोंको कोई स्थान नहीं है। ऐसी संस्कृतिवाले देशमें ऐसा कोई वाद, जिसमें हिंसा और शक्ति-प्रयोगकी सम्भावना हो, पनप नहीं सकता। यदि हमारे अज्ञान और प्रमाद तथा असावधानीसे पनप भी गया तो वह हमारी सनातन संस्कृतिके विपरीत होगा। इतना ही नहीं, वह भारतकी भाग्यहीनताका एक ऐसा बढ़ता हुआ भयावह कदम होगा, जिसके हर पगके साथ भारतकी भारतीयता लुप्त और उसकी संस्कृति सुप्त होती जायगी।

इस भयावह स्थितिसे अपनेको बचाये रखनेके लिये हमें ऐसे किसी वादसे बचने अथवा उसके मुकाबिलेकी जरूरत न होकर जरूरत इस बातकी है कि हम अपनेको इस बातके लिये राजी करें और तैयार रक्खें कि विश्वका कोई भी ऐसा वाद, जो हमारे विचारों, हमारी सामाजिक रचना और संस्कृतिसे मेल नहीं खाता, यदि भारतकी ओर बढ़े तो हम उसकी मुकाबिला कर सकें और उसे ऐसी शिकस्त दे सकें कि वह यहाँकी जलवायुमें कभी पनपे ही नहीं। इसके लिये हमें अपनी शिक्षा-प्रणालीमें आमूल परिवर्तन करना होगा और इस परिवर्तनमें भारतीय संस्कृतिके मूल आधार, अध्यात्मका, जिसकी विभिन्न शाखाओंके बदौलत ही हमारी संस्कृतिका वह विशिष्ट रूप है, जिसका आज सारे विश्वमें आदर है—एक महत्त्वपूर्ण पाठ्यक्रमके रूपमें अनिवार्य रूपसे प्रारम्भ करना होगा। हमारे शिक्षाशास्त्रियोंद्वारा समय-समयपर सरकारका ध्यान इस तथ्यकी ओर आकृष्ट किया जाता रहा है, किंतु दुर्भाग्यसे सरकारने जीवनके इस महत्त्वपूर्ण अङ्गकी अभीतक उपेक्षा ही की है। इसके विपरीत हर ऐसे संकटपर, जो हमारी संस्कृति और हमारी राष्ट्रीयताके लिये चुनौती बनकर आता है, उसके मुकाबिलेके लिये हमारा अध्यात्म ही सर्वप्रथम सबसे आगे आता है। अपरिग्रह, शौर्य, वीरता, दया, क्षमा, दान, संयम और उत्सर्ग आदि भावनाओंको, जो हमारी संस्कृतिका शृंङ्गार हैं, उद्दीप्त करनेमें अध्यात्मसे अधिक और कौन समर्थ है? आजकी भारतीय शिक्षाप्रणाली न केवल अध्यात्मसे अछूती है, वरं उसमें भारतीयताका ही अभाव है। जैसी शिक्षाप्रणाली होती है, वैसी ही नयी पीढ़ी बनती है। तिरुपति विश्वविद्यालयकी शिक्षाप्रणालीके सम्बन्धमें लिखते हुए हमने मुसोलिनीके समयकी इटली और हिटलरके समयकी जर्मनीकी शिक्षा-प्रणालीका उल्लेख करके यह कहा है कि उस समयकी इटली और जर्मनीकी उस शिक्षा-प्रणालीद्वारा शिक्षित नयी पीढ़ी यह मानने लगी थी कि इटलीका उपकार फासिस्टवादसे और जर्मनीका उपकार नास्तिवादसे ही हो सकता है। हमें भय है कि यदि हमारी शिक्षा-प्रणालीमें आमूल परिवर्तन नहीं हुआ तो केरलमें जो कुछ हुआ, उसकी पुनरावृत्ति होगी और न केवल केरल, वरं भारतके अन्य स्थान भी उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रहेंगे। और ऐसी स्थितिमें स्वाभाविक ही है कि हम अपने अज्ञानके कारण अपने निर्दिष्ट पथसे अनायास ही पथ-भ्रष्ट हो किसी ऐसे वादके झमेलेमें पड़ जायँ, जो न केवल अभारतीय हों वरं भारतकी सांस्कृतिक सत्तासे सर्वथा बेमेल हो। यदि यह हुआ तो भारत भारत न रहकर एक अस्तित्वहीन व्यक्तिकी भाँति किसी गुट-विशेष अथवा वाद-विशेषका कठपुतला बन जायगा। हमें विश्वकी तेजीसे बदलती हुई परिस्थितियोंमें सदा चौकन्ना रहना है और भारतकी सांस्कृतिक प्रभुसत्ताकी रक्षाके लिये उत्तरदायी भारतकी नयी पीढ़ीको अपनी निजकी शिक्षा-प्रणालीद्वारा शिक्षितकर हर ऐसे विदेशी वादके मुकाबिलेके लिये तैयार करना है, जो हमारी सार्वभौमिकता, हमारी स्वाधीन सत्ताके लिये एक चुनौतीके रूपमें हमारे सामने आये। हम अपना अस्तित्व बनाये रख सकें, यही आजकी हमारी महती आवश्यकता है और अतीतके अनुभवोंसे भी हमें यही सीख और शिक्षा मिलती है कि हम किसी वाद-बहाव अथवा भौतिक प्रगतिके किसी ऐसे आकर्षक कटघरेमें जानेसे अपनेको बचाये रक्खें, जो आगे चलकर जीवनके स्वाधीन स्रोतोंके लिये एक कैद सिद्ध हो। यह सब हमारी शिक्षापर निर्भर करता है—ऐसी शिक्षापर, जिसका हर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाठ स्वावलम्बन, स्वाभिमान, स्वातन्त्र्य-प्रेम और स्वराष्ट्र-प्रेमसे प्रारम्भ होता है।

त्रिवेन्द्रमसे कन्याकुमारीके इस रमणीक मार्गको देखते संध्याके सुहावने मौसममें ठीक छः बजे हमारी मोटर-बस कन्याकुमारीके बस-स्टैंडपर जा रुकी। बससे उतरते ही असबाब उतार आवासकी तलाश की और कन्याकुमारी-मन्दिरके निकट एक सुन्दर आवासगृहमें अपना डेरा डाल दिया।

कन्याकुमारीके धार्मिक महत्त्वपर विचार करनेसे पूर्व हम इसके प्राकृतिक गौरवको लेते हैं, जो हर देश, हर धर्म, हर विश्वास और हर रुचिके पर्यटकको सहज ही अपनी ओर आकर्षित कर लेता है।

कन्याकुमारी तीन ओर समुद्रसे घिरा है। इसके पूर्वमें बंगालकी खाड़ी, पश्चिममें अरब सागर और दक्षिणमें हिंदमहासागर है। यहाँ भारतकी सीमाका अन्त हो जाता है, जहाँ पर्यटक खड़ा होकर सूर्यका उदय और अस्त देख सकता है।

कन्याकुमारीके सूर्योदय और सूर्यास्तका मनोमुग्धकारी रूप भारत ही नहीं, सारे संसारमें प्रसिद्ध है। गोविन्ददास कन्याकुमारीके सूर्योदय और सूर्यास्तके मुग्धकारी स्वरूपके पहले भी दर्शन कर चुके थे, किंतु हम सबके लिये तो इन दोनों ही दृश्योंने एक अदेखे आकर्षणके रूपमें कन्याकुमारी-आगमनके साथ ही अपनी ओर आकृष्ट कर रक्खा था और हम अधीरभावसे उस सुनहरे प्रभातकी प्रतीक्षा लिये रातको अपने बिस्तरोंपर सोये, जिसके दर्शन बिना कन्याकुमारी-दर्शन सफल और सार्थक नहीं माना जाता। निशा गत हुई और आगत प्रभातके संदेशवाहक मुर्गेने ज्यों ही बाँग लगायी, हमने अपने बिस्तर छोड़ दिये और नित्य-नेमसे निवृत्त हो प्रभातके जनक प्रभाकरके दर्शनके लिये उनके प्रवेशके पूर्व ही अपने आवासगृहके निकट लहलहाते सिन्धु-तटपर खड़े हो सूर्य-दर्शनके सुहावने क्षणकी प्रतीक्षा करने लगे। प्रतीक्षाकी घड़ियाँ क्षण-क्षण बीतने लगीं, इसी समय सुदूर बंगालकी खाड़ीमें चञ्चल लहरें प्रसव-पीड़ासे थिरकती हुई हमारे दृष्टिपथसे टकरायीं। हम टकटकी बाँधे उन लहरोंको देख रहे थे, देखते रह गये। सिन्धुकी प्रसव-पीड़ाको हम अनुभव कर रहे थे कि उनकी उस थिरकनमें एक आह्लाद, एक उन्माद, एक आभाके मुग्धकारी स्वरूपके हमें दर्शन हुए। शिशुकी भाँति कल्लोलें करता बाल-रवि अपनी कलाओंकी आभा दमकता जब समुद्रकी जल-सतहसे ऊपर उठा तो ... पड़ा, निराकार साकार हो गया। दृश्यसे ऐसा भासता ... मानो रत्नाकरने रवि-रत्नको जन्म दिया हो। उधर रत्ना... अपनी ऊर्मियोंके उफानमें उल्लास भरता, कभी कोलाहल-सा करता रविका जन्मोत्सव मना रहा था। इधर ... निकट खड़ा बालचरोंका समूह किलकारी मार और कूद-कूदकर अपने द्विगुणित उत्साहसे जलधिके घर हुए शिशुके जन्मकी सूचना दे धूम मचा रहा था। उदधिकी ... ललकते शिशु-से प्रभाकरकी प्रभामें उनके निकट ही ... अनेक पंक्तिबद्ध वर्तमान तनी नावें दृष्टिगोचर हुईं ... मानो रातभर रत्नाकरके उदरसे रत्नोंका मन्थन करने... बाद अपना पड़ाव डाले अब विश्राम ले रही थीं। ... जन्मके साथ उदधिकी ऊर्मियोंमें ज्यों ही हलचल ... नावें भी गतिशील हो गयीं और नावोंके मछुवे ... रातभर अपने कार्य-व्यापारमें लगे रहे, सूर्य-किरणें ... बढ़ते हुए प्रकाशमें अपनी और सिन्धुकी उपलब्धि... संदेश ले लौट पड़े। एकटक कुछ देरतक ... सूर्यके शैशवको, उसके मनोहारी रूपको देखते ... उदीयमान बालरवि उदधिकी उत्ताल तरंगोंसे अठखे... करता हुआ कुछ ही क्षणोंमें अपनी प्रखर किरणों... भूमण्डलको आलोकित करता गगनमण्डलकी सैर ... लगा। उसके सामर्थ्य, शौर्य और तेजसे व्याप्त ... रूपसे अनायास ही हमारे नेत्र नत हो गये और ... नतमस्तक प्रणाम करके विदा ली। संध्याको गांधी-मन्दिर... छतपर अस्ताचलगामी सूर्यको देखने हमलोग फिर ... हुए। अपनी समस्त आभा, आलोक और रश्मि... अपनेमें समेट अस्त होता हुआ सूर्य ऐसा जान ... मानो अरब-सागरमें जल-समाधि ले रहा हो। ... समग्ररूपसे अस्त हो रहे सूर्यका यह दृश्य जब ... देख रहे थे, हमारे अन्तरङ्गमें नाना विचारों, ... भावनाओंकी सृष्टि होने लगी। प्रभातके उदित बालरवि... भाँति एक बात मनमें आती और अन्तःकरणमें ... विस्तारके साथ अस्ताचलगामी अरबसागरमें लीन ...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूर्यकी भाँति ही हमारे अन्तःकरणमें ही विलीन हो जाती। आज ही उदित रविके मुग्धकारी स्वरूपके हमने दर्शन किये थे और उसके समाधिस्थ स्वरूपको भी हम देख चुके थे। इस समय हमारी आँखोंके सामने भारतका सम्पूर्ण इतिहास एक चित्रपटकी भाँति घूमने लगा। भारतकी धरतीपर उत्कर्ष और अपकर्ष, उत्थान और पतनके न जाने कितने दृश्य यह सूर्य देख चुका है, भारतका भाग्य-सूर्य न जाने कितनी बार इस प्रकार उदित और अस्त हुआ है; किंतु यह अविचल योगीकी तरह अपने उसी रूपमें, उसी गतिसे और उसी स्थानमें उदित होकर उसी स्थानमें आदिकालसे अस्त होता आ रहा है—उस निष्काम योगीकी तरह, जिसका जीवन-लक्ष्य साधना है और साध्य है समाधि। इन्हीं भावनाओंमें डूबे गांधी-मन्दिरकी छतसे वापस हो हम सिन्धुतटपर पहुँचे। अपार सागर उत्ताल तरङ्गोंमें लहरा रहा था। इधर हमारे अन्तःकरणमें भावनाओंका एक सागर लहलहा उठा।

जिस गांधीमन्दिरके छतसे हमने अभी अस्त होते सूर्यके दर्शन किये, उस मन्दिरके देव, भारतीय स्वाधीनताके अधिष्ठाता महात्मा गांधी भी एक सूर्य ही तो थे, जो भारतके तिमिराच्छन्न गगन-मण्डलमें सूर्यके सदृश उदित होकर अपनी आभा, आलोक और प्राणदायिनी प्रखर रश्मियोंसे स्वाधीनताके सूर्यकी स्थापना कर विदा हो गये। अरबसागरमें लीन हुए प्रभाकरकी भाँति, समाधिस्थ संन्यासीकी भाँति अपनी साधनाके अन्तिम लक्ष्यपर पहुँच सो गये। पर नहीं। प्रभाकर अपनी आभा, अपने समस्त आलोक और समूल अस्तित्वसे ही अस्त होता है; बापूने ऐसा नहीं किया। वे गये; पर अपने पीछे स्वाधीनताका वह चमचमाता सूर्य-प्रकाश दे गये, जिसके प्रकाशमें ही मानव-जीवन और उसके सभी अङ्ग प्रकाशित होते हैं और जिसके अभावमें व्यक्ति, समाज और देशका जीवन, निशा-सा नीरस और अन्धकारमय बन जाता है। फिर रत्नाकरमें लीन हुए अपनी कलाओंसहित मोहन अपनी कलाओं, अपने आदर्शों और अपने सिद्धान्तोंको हमें सौंप गये, जिनके सहारे हम और हमारी पीढ़ियाँ आज और आगे स्वाधीनताके प्रकाशमें पग-पर-पग बढ़ते हुए अपना जन्म और जीवन सफल कर सकेंगी। बापूका भौतिक शरीर नष्ट हुआ। इस भौतिक विश्वमें कौन वस्तु स्थायी है? जो स्थायी है, शाश्वत है, सत्य है, चिरंतन है, उस सत्यकी स्थापनामें अपनेको समर्पित करनेवाला व्यक्ति भौतिक रूपसे इस भौतिक सृष्टिसे विदा होनेपर भी सदा इसमें कायम रहता है, अमर बना रहता है। जीवनका जो आदर्श अपने जीवनमें बापूने बनाया, वह उनके समग्र जीवनके रूपमें आज हमें एक ऐसे सत्यका साक्षात्कार करा रहा था, जिसके सहारे निर्बल-से-निर्बल, असहाय, दीन-दुखी, दुर्बल और दरिद्र, पीड़ित व्यक्तिके भी कण्ठसे आज यही आवाज निकल रही है—हममें स्वाभिमान है, स्वदेशप्रेम है, हम बलिदानी हैं, स्वतन्त्र भारतवासी हैं। आज एक उल्लास, एक आनन्द, एक भावमस्तीमें रह-रहकर जी करता जी भर इस लहलहाते सिन्धुको देख लें और जी भर सिंधु हमें देख ले। आज उदधिकी उठती हुई ये ऊर्मियाँ कितनी मोहक, कितनी सुहावनी थीं, हवाके चलते हुए झोंके जो सिन्धुसे हमारा समागम करा रहे थे, जब अपने शीतल प्रवाहसे कभी हमारे कपोलोंको सहलाते, उनपर जलकण बरसाते, कभी कानमें कुछ कहते हमारे ऊपर और आसपाससे गुजरते, जान पड़ता ये भी आज अपनी मस्तीमें झूम रहे हैं, अथवा सिन्धुसे हमारा और हमसे सिन्धुका संदेश वहन कर रहे हैं। जान पड़ा, आज हम जितने खुश हैं, खुशहाल हैं, उतने कभी नहीं थे। रत्नोंके आगार रत्नाकरके सम्मुख खड़ा कौन दुखी, अतृप्त और दीन रह सकता है। हम आज स्वाधीन थे और खड़े थे स्वाधीनदेशके एक स्वाधीन सिन्धुतटपर। आज यह लहराता अपार सागर हमारा था और हम उसके। आज न केवल हमपर और हमारे इस विस्तीर्ण सिन्धुपर ही हमारा अधिकार था, वरं इस बहती हुई हवापर, इसके ऊपर निर्मल नभपर, नीचे शस्य-श्यामला भूमिपर और उसके कण-कणपर, जलधिके प्रत्येक जलकणपर हमारा ही अधिकार था—केवल हमारा अधिकार। मातृभूमिके दो ममताभरे प्यालोंके सदृश हमने ललककर एक ओर सिन्धुका स्पर्श किया, दूसरी ओर उसके तटकी पावन मिट्टीका। जीव और देहके रूपमें दोनोंका कैसा पावन और प्राणदायी सम्बन्ध है! एक घट है तो दूसरा अमृत। भारतका और उसके तटपर लहराते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विस्तीर्ण जलधिका यही सम्बन्ध है। भारतके सीमाङ्कनमें हिमालयसे लेकर कन्याकुमारीकी बात कही जाती है— 'लोट रहा चरणोंमें सागर, सिरपर मुकुट 'हिमालयका'के गीत गाये जाते हैं। देशके छात्रोंको पाठ्य-पुस्तकोंमें उत्तरमें हिमालयकी महिमा और दक्षिणमें कन्याकुमारीका यशोगान पढ़ाया जाता है तथा देशके मानचित्रमें इन दो दिशाओं, दो ध्रुवोंको सगौरव दिखाया जाता है। गतवर्ष हमलोगोंने उत्तराखण्डकी यात्रामें देशकी उत्तरी सीमाके प्रहरी नगाधिराज हिमालयका भ्रमण किया था, उसकी महिमाका निकटसे स्वयं उसके अतिथि बन साक्षात्कार किया था, आज हमलोग देशके द्वितीय ध्रुवको कन्याकुमारीके आँचलमें, जिसके चरणोंमें सृष्टि-लयकी सामर्थ्यवाला सिन्धु लोट रहा है, अपने सामने देख रहे थे। कैसा मनोरम दृश्य था। पयोधिकी उत्ताल तरङ्गें पल-पल अपने तटकी पृथ्वीका आलिङ्गन-चुम्बन कर लौट जातीं, फिर-फिरकर आतीं! सेवा, सत्कार और समर्पणकी भावनासे भरे उदधिकी ऊर्मियोंमें कितनी शक्ति और भाव-भक्ति भरी हुई थी, इसकी कल्पना करते ही हमारे भीतर स्वाभिमान, देशाभिमानका सागर उमड़ पड़ा। धन्य है भारतभूमि और धन्य हैं भारतमें जन्म लेनेवाले नर-नारी, जिन्हें ऐसी दिव्य, पवित्र और अलौकिक धरा मिली।

संध्याके झुलपटेमें हमलोग उल्लासभरे मनसे अपने निवासस्थानपर लौट आये।

ऐतिहासिक और पौराणिक मान्यताओंसे सिद्ध होता है कि कन्याकुमारी प्राचीन कालमें भी महत्त्वका स्थान रहा होगा। एक पौराणिक मान्यताके अनुसार गोआसे कन्या-कुमारीतककी भूमि, जिसे आजकल केरल कहा जाता है, विष्णुके छठे अवतार श्रीपरशुरामके प्रयत्नोंके फलस्वरूप प्रकट हुई थी। कहा जाता है कि जब ब्राह्मणोंको दान करनेके लिये परशुरामको भूमिकी आवश्यकता पड़ी तो उन्होंने समुद्रके देवता 'वरुण' पर दबाव डाला। वरुणकी आज्ञा पाकर परशुरामने जब गोआसे अपनी कुल्हाड़ी उछालकर फेंकी तो वह कन्याकुमारीको पारकर समुद्रमें जा गिरी। बीचमें समुद्रने स्थान खाली कर दिया और गोआसे कन्याकुमारीतककी भूमि ऊपर आ गयी, जिसे आजकल केरल कहते हैं। किंतु यह ऐतिहासिक सत्य नहीं। इतिहासविज्ञोंके अनुसार यह स्थान शताब्दियों पूर्व पाण्ड्य राजाओंके अधीन था, जिन्होंने प्रचुरकालपर्यन्त सम्पूर्ण तमिळनाडपर राज्य किया। कन्याकुमारीकी शिल्प और वास्तुकला तथा लोगोंके रहन-सहनके ढंगपर तमिळ-प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। मन्दिर भी तमिळ-निर्माणशैलीके आधारपर बने हुए हैं। इससे उक्त ऐतिहासिक तथ्यकी पुष्टि होती है। और भी ऐसे अनेक प्रमाण हैं, जिनसे सिद्ध होता है कि कन्याकुमारी प्रचुरकालतक पाण्ड्य राजाओंके अधीन रहा। देवी 'कुमारी' पाण्ड्य-राजकुलकी भी आराध्य-देवी थीं। परशुरामवाली कहानीके अतिरिक्त यह जनश्रुति भी है कि प्राचीनकालमें कन्याकुमारीके दक्षिणमें भी भूमि थी, जिसे बादमें समुद्र बहा ले गया; किंतु इसका कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं है।

कन्याकुमारीके नामकरणके सम्बन्धमें अनेक धारणाएँ हैं और इस जिज्ञासाको शान्त करनेके लिये भी हमें जन-श्रुतियोंका आश्रय लेना पड़ता है। राजा भरत, जिनके नामपर हमारे देशका नाम भारत पड़ा, कहा जाता है कि उनके आठ पुत्र एवं एक पुत्री थी। जब राजा भरतने राज-काजसे संन्यास लेना चाहा, तब उन्होंने राज्यके नौ भाग किये और अपनी प्रत्येक संततिको एक-एक भाग सौंप दिया। देशका दक्षिणी भाग उनकी पुत्रीको मिला। तभीसे इस क्षेत्रका नाम कुमारी पड़ गया। पौराणिक आधारपर देवी पराशक्तिने भी यहीं अवतरित होकर तप किया। एक अन्य पौराणिक मान्यताके अनुसार एक बार असुरोंका देवताओंसे अधिक प्रभाव हो गया। परिणामस्वरूप अधर्म धर्मपर हावी होने लगा। सर्वत्र अज्ञान और अन्याय फैलने लगा। स्त्रियोंके सतीत्व भङ्ग होने लगा और असुराधिपति बाणासुरका तीनों लोकोंपर साम्राज्य हो गया। उसने देवताओंको स्वर्गसे निकाल दिया और ऋषियों-मुनियोंको कठोर यन्त्रणाएँ दीं। इन सब अत्याचारोंसे दुखी होकर पृथ्वी माता संतप्त रक्षक भगवान् विष्णुके पास गयीं और उनसे अधर्मी शक्तियोंके नाशकी प्रार्थना की। भगवान् विष्णुने पृथ्वीको उत्तर दिया कि केवल पराशक्ति ही बाणासुरके नाशमें समर्थ है। अतः देवताओंको उसीकी आराधना करनी चाहिये। भगवान् विष्णुसे आज्ञा पाकर देवताओंने एक बृहत् यज्ञ अनुष्ठान किया, जिसमें पराशक्ति प्रकट हुईं। पराशक्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुरंत एक छोटी-सी बालिकाके रूपमें पृथ्वीपर उतरीं और तप करने लगीं। जब वे युवावस्थामें पहुँचीं, तब भगवान् शिवका उनसे प्रेम हो गया। दोनोंके विवाहकी तैयारियाँ होने लगीं। नारदजीको इससे चिन्ता हुई कि यदि दोनोंका विवाह हो गया तो वाणासुर-वध टल जायगा। जब विवाहके लिये नियत समयपर शिवजी चले, तब शुचीन्द्रम्‌से तीन मीलकी दूरीपर नारदजी एक मुर्गेका रूप धारणकर बाँग देने लगे। शिवजीने समझा कि विवाहका समय बीत चुका है और वे निराश होकर शुचीन्द्रम् वापस लौट आये। उधर कुमारी पराशक्तिने आजीवन अविवाहित रहनेका प्रण कर लिया। इसी समय विवाहके लिये तैयार किये गये सभी खाद्यपदार्थ रेतके रूपमें परिवर्तित हो गये और कहा जाता है कि इसीलिये कन्याकुमारीकी रेतमें अनेक रंग हैं। नारदजीद्वारा मुर्गेके रूपमें बाँग देने मात्रसे शिवजीके यह समझ लेनेपर कि विवाहका समय बीत गया है, सहसा हम विश्वास न करें—यह अस्वाभाविक नहीं। किंतु पौराणिक आख्यानोंमें हमें ऐसी बहुत-सी घटनाएँ और उदाहरण मिलते हैं जिनमें देव-कल्याण अथवा लोक-कल्याणके निमित्त आदिपुरुष अथवा अवतारी-को हम जनसाधारणके सदृश कार्य करते तथा उसके अनुरूप मति-भ्रमसे भ्रमित होते देखनेके अनेक अवसर पाते हैं। और बहुधा इन प्रसङ्गोंकी रचना और उसका हेतु भी एक पावन और सर्वमङ्गलभावसे प्रेरित होता है। फिर प्रेम अथवा मोह, जिसमें पड़े शिवजी वरका रूप धारणकर अपने लिये वधू लेने जा रहे थे, स्वयंमें एक ऐसा आवरण है, जिसमें मति-भ्रम असंगत नहीं, अपितु सर्वथा संगत ही है। इसपर भोलेनाथ! अतः नारदजीको अधिक परिश्रम करनेकी आवश्यकता नहीं पड़ी और अपने भोलेनाथको बरगलानेके लिये उन्होंने मुर्गेका एक सहज स्वरूप धारणकर ही अपना मनोरथ साध लिया।

उधर वाणासुरने कुमारी पराशक्तिके सौन्दर्यका वृत्तान्त सुन उनसे विवाहकी इच्छा प्रकट की। कोई अन्य उपाय न देख उसने उन्हें बलपूर्वक प्राप्त करना चाहा। दोनोंमें पर्याप्त समयतक घोर युद्ध हुआ और अन्तमें पराशक्तिने उसका चक्रायुधसे वध कर दिया। यहाँकी जनता आज भी देवी पराशक्तिके इस कृत्यके प्रति कृतज्ञ है और 'वाणासुर-वध'-दिवस आज भी 'नवरात्र पर्व'के रूपमें यहाँ समारोह-पूर्वक मनाया जाता है। नवरात्रके अतिरिक्त वैशाख अथवा मई मासमें एक अन्य पर्व भी मनाया जाता है और यह भी देवी पराशक्तिसे सम्बन्धित है। यह पर्व दस दिनतक मनाया जाता है। प्रत्येक दिन और रात्रिमें देवीका जुलूस निकाला जाता है, जो प्रमुख मार्गोंमें घूमता हुआ एक सरोवरपर जाकर समाप्त हो जाता है।

जैसा कि प्रारम्भमें कहा गया है, कन्याकुमारी तीन ओर समुद्रसे घिरा हुआ है। इसके तीनों ओर समुद्र-तटके साथ-साथ सावित्री, गायत्री, सरस्वती, कन्या, माथरू, विथरू आदि अनेक पवित्र घाट हैं। तीनों ओर तीन विशेष स्नान-घाट भी हैं, जिनमें सोलह-सोलह स्तम्भोंपर एक मण्डप निर्मित है। इन मण्डपोंमें पंडे मन्त्रोचारके साथ यात्रियोंको स्नान-पूजन कराते हैं। कन्याकुमारीके इन घाटोंका धार्मिक महत्त्व भी कम नहीं है। लोगोंमें विश्वास है कि इन घाटोंपर स्नान करनेसे पाप-निवृत्ति होती है। इस सम्बन्धमें एक कहावत भी है कि पाप-निवृत्ति और पुण्य-प्राप्तिके लिये काशीमें गङ्गास्नान और कन्याकुमारीमें समुद्रस्नान समान फलदायी हैं।

कन्याकुमारीके ये ही प्राकृतिक और धार्मिक आकर्षण हजारों भारतीय एवं विदेशी पर्यटकोंको प्रतिवर्ष यहाँ खींच लाते हैं। उनकी सुविधा और आवास-व्यवस्थाके लिये सरकार और जनताकी ओरसे कुछ उल्लेखनीय कार्य किये गये हैं। देवस्थानम् और कुछ राजकीय भवन आवासके लिये यहाँ उपलब्ध हैं। केप होटल और रेस्ट हाउस भी हैं, जो आधुनिक साधन-सुविधाओंसे युक्त हैं। समुद्रतटपर एक ''स्विमिंग-पूल'' भी बनाया गया है, जिसमें यात्री बिना किसी खतरेके स्नान कर सकता है।

वर्तमान कन्याकुमारी एक छोटे-से ग्रामके रूपमें है, जिसकी जनसंख्या १९५१ की जनगणनाके अनुसार पाँच हजार है। यहाँ रोमन कैथोलिक ईसाइयोंका बाहुल्य है। यहाँके निवासी अधिकतर ईसाई हैं और समुद्रतटपर अपने छोटे-छोटे घरोंमें रहते हैं। उनका गिरजाघर भारतके प्राचीनतम और विशालतम गिरजाघरोंमेंसे एक है, जहाँ एक हजार लोग एक साथ बैठ सकते हैं। कुछ मुसलमान भी हैं और उनकी एक मस्जिद है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कन्याकुमारीमें एक पुराने किलेके अवशेष भी दर्शनीय हैं। वट्टकोट्टाई समुद्रतटसे तीन मीलकी दूरीपर स्थित होनेके कारण इसे वट्टकोट्टाई फोर्ट (Vattakkottai Fort) कहते हैं। प्राचीन दुर्ग-निर्माण-कलाका परिचय देनेके लिये इसमें अभी भी पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है। बताया जाता है कि मार्तण्डवर्माके शासनकालमें उनके प्रधान सेनापतिने इस दुर्गका सुरक्षाकी दृष्टिसे निर्माण कराया था। आजकल यह दुर्ग बाल स्काउटों, पर्यटकों एवं संध्या-भ्रमणके लिये आनेवालोंका अड्डा बना रहता है।

कन्याकुमारी-मन्दिरके अतिरिक्त यहाँके काशी-विश्वनाथ-मन्दिरका भी धार्मिक दृष्टिसे पर्याप्त महत्त्व है। कहते हैं कि जब देवी कुमारी (पराशक्ति) ने बाणासुरका वध किया, तब उनका चक्रायुध यहीं आकर गिरा। उसीकी स्मृतिमें यहाँ यह मन्दिर बनाया गया है। यह कन्याकुमारीसे एक मीलकी दूरीपर है।

कन्याकुमारी आनेवाला कोई भी पर्यटक प्रायः मरुत्वामला पहाड़ीके दर्शन किये बिना नहीं जाता। कहते हैं, रामायण-कालमें जब हनुमान्‌जी लक्ष्मणजीके उपचारके लिये संजीवनी बूटीसे युक्त पहाड़ लेकर जा रहे थे, तब उसका एक भाग यहाँ गिर पड़ा। लोगोंका विश्वास है कि इस स्थानपर थोड़ा समय बितानेसे ही बड़े-बड़े रोग और व्याधियाँ दूर हो जाती हैं।

कन्याकुमारीका एक प्रधान आकर्षण यहाँका गांधी-मन्दिर है। १८ फरवरी १९४८ को गांधीजीकी अस्थि-भस्म यहाँ समुद्रमें प्रवाहित करनेके लिये लायी गयी थी। प्रवाहित करनेसे पूर्व यहाँ जिस स्थलपर यह अस्थिपात्र रक्खा गया था, उसी स्थलपर एक दीर्घाकार सुन्दर दुमंजिले भवनका निर्माणकर उसे गांधीमन्दिर नाम दिया गया। भवनके नीचेके भागमें जिस स्थानपर बापूका भस्मपात्र एक चौकीपर रक्खा गया था, आज भी भवनके केन्द्रमें वह चौकी स्थायीरूपसे उसी स्थानपर सुरक्षित कर दी गयी है। इस मन्दिरका निर्माण त्रावणकोर-कोचीन सरकारने राष्ट्र-पिताके प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलिके रूपमें कराया था। २० जून १९५४ को इसकी आधारशिला आचार्य कृपलानीने रक्खी और अक्टूबर १९५६ में यह तीन लाखकी लागतसे बनकर तैयार हो गया। इस मन्दिरकी छतमें एक ऐसा खोल बनाया गया है, जिससे प्रति दो अक्टूबरको गांधीजीके जन्मदिवस पर सूर्यकी किरणें इस खोलसे होती हुई उपर्युक्त चौकीपर पड़ती हैं। आगन्तुक और पर्यटक सभी श्रद्धाभावसे इस चौकीपर अपनी श्रद्धाञ्जलि और श्रद्धा-सुमन भेंट करते हैं। मन्दिर समुद्र-तटपर बना होनेके कारण इसका आकर्षण अत्यधिक बढ़ गया है।

कन्याकुमारीका एक और अन्य महान् आकर्षण यहाँका 'विवेकानन्द रॉक' है। सन् १८९२ में भारतके आध्यात्मिक पुनर्जागरणके प्रतीक स्वामी विवेकानन्दने रामेश्वरम् एवं मुदुराईके बाद कन्याकुमारीकी यात्रा की थी। यहाँ पहुँचते ही समुद्रमें स्थित एक शिलापर बैठकर स्वामी विवेकानन्द ध्यानमग्न हो गये थे और घंटों उसपर बैठे मनन-चिन्तन करते रहे। इसलिये इस चट्टानका एक दर्शनीय और धार्मिक महत्त्व हो गया है। इस चट्टानको, जिसपर बैठकर स्वामी विवेकानन्दने मनन-चिन्तन किया था, 'विवेकानन्द रॉक' कहते हैं। यह समुद्रके मध्य स्थित है और पर्यटक नाव-द्वारा इसे देखने जाते हैं। स्वामीजीकी स्मृतिमें यहाँ एक विवेकानन्द-पुस्तकालय भी है, जिसमें हिंदूधर्म, दर्शन एवं साहित्यिक पुस्तकों—लगभग पाँच हजार पुस्तकोंका सुन्दर संग्रह है। अब तो वहाँ एक विशाल मन्दिरका निर्माण हो रहा है।

स्वामी विवेकानन्द आधुनिक भारतकी कुछ गिनी-चुनी विभूतियोंमेंसे एक थे। जिन स्वामी रामकृष्ण परमहंसके वे शिष्य थे, उन स्वामी रामकृष्ण परमहंसका भारतमें एक अद्वितीय स्थान हो गया है—इसी संतपरम्परामें स्वामी विवेकानन्दने उस समय, जब भारत पराधीन था, भारतीय अध्यात्म और भारतीय संस्कृतिके संदेशको सुदूर अमरीका तक पहुँचाया और इस संदेशका वहाँ प्रतिफल मिला अमेरिकामें रामकृष्ण-आश्रमकी स्थापनाके रूपमें। स्वामी विवेकानन्दके मेधावी एवं विद्वत्तापूर्ण व्यक्तित्वका अमरीकापर पर्याप्त प्रभाव पड़ा और वहाँ उनके एक बहुत बड़ी संख्यामें प्रशंसक और अनुयायी बन गये। भारतको इस महापुरुषने उस कालमें जो एक सबसे प्रधान बात सिखायी—वह था उनका अभय-मन्त्र। भय मानव जातिके विकासमें एक सबसे बड़ी जटिलता है, बाधा है। वह मानवको न केवल मानवीय उपलब्धियोंसे वञ्चित रखता है वरं प्राकृतिक प्राप्तियोंकी दिशामें भी परमुखापेक्षी और परावलम्बी बना देता है।

(क्रमशः)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कामके पत्र

(१)

असुरतन्त्रके दूर करनेका उपाय

प्रिय महोदय, सप्रेम हरिस्मरण ! आपका कृपापत्र मिला। 'जनतन्त्र या असुरतन्त्र' शीर्षक लेख आपने पत्रोंमें पढ़ा, आपको अच्छा लगा सो आपकी कृपा है। आपने लिखा कि 'असुरतन्त्रके दूर करनेका कोई उपाय लिखना चाहिये था।' इसके उत्तरमें निवेदन है कि असुरतन्त्रके मिटनेका साधन दैवीतन्त्रकी स्थापना है। श्रीमद्भगवद्गीताके सोलहवें अध्यायमें दैवी और आसुरी सम्पदाका वर्णन है। असुर-मानवका सिद्धान्त और लक्ष्य होता है इन्द्रियोंके भोगोंकी प्राप्ति और उन्हें भोगना, साधन चाहे जैसा भी हो। देव-मानवका लक्ष्य और उद्देश्य होता है—भगवान् और भगवान्‌की प्राप्ति तथा उसके साधन होते हैं—भगवान्‌के अनुकूल कार्य और भोग-वासनाका त्याग।

एक युग था, जब देशमें क्रान्तिकारी हिंसायुक्त आन्दोलन था। उसके बाद गांधीजीका असहयोग आन्दोलन आया, जिसमें अहिंसाकी प्रधानता थी। इन दोनों ही प्रकारके आन्दोलनोंमें सम्मिलित होनेवाले, साथ देनेवाले अधिकांश लोगोंका—खास करके हजारों-हजारों नवयुवकोंका—लक्ष्य था देशकी स्वतन्त्रता और उसका साधन था—विशुद्ध देशप्रेम, देशके लिये कष्ट-सहन और बलिदान, अपने सुखका सब तरहसे त्याग। देशके लिये त्याग करनेका बदला उस समय केवल उनका देश-प्रेम ही था। क्रान्तिकारी युगको तो मैंने देखा है, उसमें तो उनको समाजसे तिरस्कार मिलता, घरवालोंसे बहिष्कार मिलता, सरकारसे यातनाएँ मिलतीं; पर वे इन बातोंमें बड़ा गौरव और सुख मानते कि देशके लिये हमारा बलिदान हो रहा है, हम जेल जा रहे हैं या फाँसीपर चढ़ रहे हैं। गांधीजीके असहयोग-आन्दोलनमें आगे चलकर सम्मान मिलने लगा था, जो प्रलोभनकी वस्तु थी; पर उस समय भी उद्देश्य देश-प्रेम था, देशको स्वाधीनताकी प्राप्ति करानी थी। पर जबसे हाथमें सत्ता आयी, देशके स्थानपर अधिकांशतः व्यक्तित्व सामने आ गया और जहाँ देशका स्वार्थ और व्यक्तिका (देशभक्तका) अपना स्वार्थ परस्पर विरोधी होते हैं, वहाँ व्यक्ति देशके स्वार्थपर विजयी होता है; क्योंकि उसीके हाथमें देशकी सेवा और देशकी उन्नतिका भार रहता है। वही जब देशको न देखकर अपने स्वार्थकी सिद्धि करने लगता है, तब देश-प्रेम उसकी स्वार्थ-सिद्धिका साधन बनकर देशको तबाह कर देता है। यही आज हो रहा है, यही असुरतन्त्रका कारण है। एक ही दलके लोग, एक ही नीतिको माननेवाले लोग जब परस्पर लड़ते हैं, अपनी शक्ति, अपने साधन, अपनी कला एक दूसरेको गिरानेमें लगाते हैं, तब देश कहाँ सामने रहता है ? आज देशकी यही स्थिति है और इसीलिये देशमें भ्रष्टाचार, अनाचार और अत्याचार फैल रहे हैं। इनके नाशका उपाय है—आत्मसुखकी इच्छाका, सुखोपभोगकी वासनाका त्याग और जनसुख एवं देशके सुखमें ही अपनेको सुखी माननेकी प्रवृत्ति। भगवान्‌की कृपासे, अच्छे भाग्यसे जब कभी देशमें देशसेवकोंकी बुद्धि इस प्रकार व्यक्तिगत स्वार्थोंको छोड़कर देशके स्वार्थको अपना स्वार्थ बताने लगेगी और देशके कल्याणार्थ हर तरहके त्यागके लिये जब देशभक्त तैयार होंगे, तब अपने-आप ही दैवीसम्पदाका प्रसार होगा और देवतन्त्रका उदय होगा।

एक वाक्यमें कहना चाहें तो यह कह सकते हैं कि असुरतन्त्रका उद्देश्य है—भोग-वासनाकी तृप्ति और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवतन्त्रका उद्देश्य है—भगवान् या समष्टिकी सेवा। आपने बड़े विस्तारसे लिखनेका आदेश दिया, पर मैंने संक्षेपमें सार बातें लिख दी हैं। आशा है, इससे आपको संतोष होगा। शेष भगवत्कृपा।

(२)

भगवत्कृपाकी वर्षा

प्रिय महोदय, सप्रेम हरिस्मरण! आपका पत्र मिला। पहले भी कई पत्र मिल चुके हैं। साधनाकी व्यक्तिगत बातें प्रायः सबके सामने प्रकट करनेकी नहीं हुआ करतीं। तथापि आपका आग्रह है, इसलिये केवल इतना लिख रहा हूँ और सभीसे यही कहता भी हूँ तथा यह सत्य भी है कि मुझमें अपनी दृष्टिसे मुझे अनेक-अनेक दुर्बलताएँ प्रतीत होती हैं। साधनाका और भगवत्प्रेमका जो स्वरूप कल्पनामें आता है, वह तो कहनेमें नहीं आता और जिसको लोगोंके सामने कहा जाता है, उसके अनुसार देखनेपर अपनेमें बड़ी त्रुटियाँ प्रतीत होती हैं; पर साथ ही यह अवश्य अनुभव होता है कि भगवान्की अहैतुकी कृपा किसीकी साधनाको नहीं देखती। वह तो जो उसपर विश्वास करता है, उसपर अकारण ही सदा बरसती रहती है और उसे सब प्रकारसे विशुद्ध बनानेमें लगी रहती है। मुझे यह विश्वास अवश्य है और मैं यह अनुभव भी करता हूँ कि भगवान्की अहैतुकी कृपा मेरे ऊपर निरन्तर बरस रही है और अगर मेरेमें कोई अच्छापन दिखायी देता है तो वह उस भगवत्कृपाकी ही कृपाका फल है।

सम्मानकी चाह मनुष्यमें बहुत दूरतक बनी रहती है। मनुष्य भगवान्के नामपर अपने व्यक्तित्वका प्रचार और अहंकी पूजा करवाने लगता है। यह उसकी एक कमजोरी है। आपने मेरे सम्बन्धमें पूछा सो मुझे यही कहना चाहिये और यही लगता भी है कि इस कमजोरीसे मैं बचा नहीं हूँ। आपके कथनानुसार पुस्तकोंपर मेरा नाम छपता है, 'कल्याण' में नाम छपता है, संस्थाओंके साथ नाम जुड़ा रहता है—इन सबमें मेरे मनमें यश प्राप्त करनेकी कामना न हो—यह कौन कह सकता है? आप नहीं मानते—यह आपकी गुणदृष्टि है। वस्तुतः अन्तर्यामी भगवान् ही सब जानते हैं। मैं अपने सामने भी अपनी प्रशंसा सुनता हूँ और उद्विग्न होकर कोई घोर प्रतीकार नहीं करता—यह भी कमजोरी ही है। पर यह सब होते हुए भी आप तो बहुत ऊँचा मानते हैं, आपकी इस मान्यताके लिये मैं क्या कहूँ। पर इतना तो मैं भी मानता हूँ कि भगवान्की कृपाका बल मेरे साथ है और वह मेरे सारे बाधा-विघ्नोंको निरन्तर हटाता रहता है और मैं अपने लक्ष्यकी ओर सतत अग्रसर हो रहा हूँ। मेरा मार्ग क्या है, कैसे अग्रसर हो रहा हूँ, उसमें क्या-क्या कठिनाइयाँ और सुविधाएँ हैं—ये सब चीजें बतानेकी नहीं होतीं। आपने कृपापूर्वक पत्र लिखे और समयपर मेरा उत्तर न जानेसे भी आप अप्रसन्न नहीं हुए—यह आपकी कृपा है। मैं बहुत ही कम पत्र लिख-लिखा पाता हूँ। आपके लंबे-लंबे पत्रोंका भी यह बड़ा ही संक्षिप्त उत्तर है। मेरा विनीत अनुरोध है कि आप इसीमें संतोष कर लें। शेष भगवत्कृपा।

(३)

भगवान्की वस्तु सदा भगवान्की सेवामें लगाते रहिये

प्रिय महोदय, सादर हरिस्मरण। आपका कृपापत्र मिला। इस समय तो विहार, उत्तरप्रदेश तथा राजस्थानके कुछ भागोंमें भयानक अकाल है; पर अकाल न होनेकी स्थितिमें भी भारतवर्षमें इतने गरीब हैं, जिनको रोज भरपेट भोजन नहीं मिलता, तन ढकनेको कपड़ा नहीं मिलता। दूध, चिकित्सा, आरामका मकान आदि तो बहुत दूरकी बातें हैं। फिर आजकलकी भयानक महँगीने तो मानो प्राणियोंपर राक्षसी धावा ही बोल दिया है। इस अवस्थामें जिनके पास जो कुछ भी साधन है, उसके द्वारा इन अभावग्रस्त प्राणियोंकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने ही जैसे प्राण-मनवाले मानवोंकी सेवा करनी चाहिये। यह धर्म है और इसकी उपेक्षा बहुत बड़ा पाप है।

सच तो यह है कि यहाँ कुछ भी किसीका नहीं है, सभी भगवान्का है और उसे यथासाध्य आवश्यकतानुसार प्राणिमात्रकी सेवाके द्वारा भगवान्की सेवामें लगाना है। वस्तुतः सभी प्राणी भगवान्की ही अभिव्यक्ति हैं। अतएव इनकी सेवामें किसी वस्तुका अर्पण करना भगवान्की वस्तु भगवान्की सेवामें लगाना मात्र है। यह ईमानदारी है, कोई महत्त्वकी बात नहीं। श्रीमद्भागवतमें देवर्षि नारदजीके वाक्य हैं—

यावद् भ्रियेत जठरं तावत् स्वत्वं हि देहिनाम्।
अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति॥
(७।१४।८)

अर्थात् जितनेसे अपना पेट भरे, उतनेपर ही मानवोंका अधिकार है। जो इससे अधिकपर अपना अधिकार मानता है, वह चोर है; उसे दण्ड मिलना चाहिये।

देवर्षि नारदजीके इन शब्दोंपर ध्यान दीजिये। हमारा कुछ है ही नहीं। उदर-पोषण भरकी वस्तु स्वामीने हमें दी है। इससे अधिकको अपनी वस्तु मानना तो बेईमानी—चोरी है। हमें यदि भगवान्ने कोई वस्तु दी है तो वह इसी प्रकार दी है कि जैसे भला मालिक किसी सेवकको उसे ईमानदार मानकर अपनी वस्तु सँभालके तथा आवश्यकतानुसार अपनी सेवामें लगानेके लिये देता है, न कि उसे व्यर्थ खोने या अपनी मानकर यथेच्छ भोगनेके लिये। अतएव जहाँ-जहाँ जिस-जिस वस्तुका अभाव है, वहाँ-वहाँ भगवान् मानो अपनी उस-उस वस्तुको माँगते हैं और जिस-जिसके पास जो-जो वस्तु है, वहाँ-वहाँपर प्रसन्न चित्तसे देनी चाहिये।

जहाँ अन्नका अभाव है वहाँ भगवान् अन्न माँगते हैं; जहाँ जलका अभाव है, वहाँ जलकी इच्छा करते हैं; जहाँ वस्त्रका अभाव है, वहाँ वस्त्र चाहते हैं; जहाँ रोगीकी चिकित्सा या सेवाका अभाव है, वहाँ वे चिकित्सा और सेवाकी माँग करते हैं और जहाँ रहनेको स्थान नहीं है, वहाँ भगवान् स्थान चाहते हैं। इसी प्रकार अन्यान्य वस्तुएँ भी। अतएव जिस-जिसके पास जो-जो वस्तु है, उस-उसको वह वस्तु जहाँ भगवान् उसे चाहते हैं—अवश्य देनी चाहिये।

जो लोग भगवान्की वस्तु समुचितरूपसे तथा नेकनीयतीसे भगवान्की सेवामें न लगाकर स्वयं भोगते हैं, वे भगवान्के साथ बेईमानी तथा धोखेबाजी करते हैं। इसके परिणाममें वे दण्डके भागी होंगे ही। आज चाहे वे इस बातको न मानें, न परवा करें। जहाँ लाखों-करोड़ों अपने-ही-जैसे बहिन-भाइयोंको भरपेट रूखा-सूखा अन्न भी नहीं मिलता, वहीं कुछ लोगोंको बढ़िया-बढ़िया मेवा-मिठाई आदि खाने, व्यर्थ खोने या अपने ही लिये सुरक्षित अन्नादि जमा रखनेका क्या अधिकार है? जहाँ लाखों-करोड़ों बहनें तन ढकनेके लिये एक मोटी साड़ी भी नहीं पातीं, वहाँ कुछ बहिनोंका पाँच-पाँच सौ, हजार-हजारकी एक-एक साड़ी पहनना पाप नहीं तो और क्या है? जहाँ लाखों-करोड़ों भाइयोंको धोतीके सिवा और कोई कपड़ा नहीं मिलता, वहाँ कुछ भाइयोंको बढ़िया कपड़े, सैकड़ों रुपये सिलाई देकर सूट बनवाने-पहननेका और पेटियोंमें संग्रह कर रखनेका कार्य वस्तुतः असत्कार्य या घोर पाप ही तो है। अतएव मेरी प्रार्थना तो सबसे यही है कि अपने जीवनको सादा बनायें; फैशन, विलासिता तथा फिजूलखर्चीका त्याग करें। अनावश्यक आवश्यकताओंको न बढ़ायें, थोड़ेमें ही अपना काम चलायें तथा शेष सबको भगवान्की वस्तु मानकर भगवान्की सेवामें लगाते रहें। संग्रह तो रखना ही नहीं चाहिये। अधिक वस्त्रोंका—वस्तुओंका संग्रह होगा और मरते समय यदि उनमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन रह जायगा तो उन्हीं वस्तुओंमें कोई कीड़ा बनकर रहना पड़ेगा । बहुत कीमती कपड़े नहीं पहनने चाहिये । जो भाई हजार-पाँच सौका एक सूट पहनते हैं, वे सौ-पचासका पहनें और बचे हुए नौ-सौ या साढ़े चार सौमें नब्बे या पैंतालीस दस-दस रुपयेकी धोतियाँ खरीदकर उन लोगोंको दे दें, जिनके पास धोती नहीं है और जो उसको जुटानेमें असमर्थ हैं । इसी प्रकार एक हजारकी साड़ी पहननेवाली बहिन पचासकी साड़ी पहन लें और शेष नौ सौकी नब्बे साड़ियाँ खरीदकर उन बहिनोंके तन ढक दें, जिनके पास साड़ीका अभाव है । इसी प्रकार अन्यान्य वस्तुएँ भी ।

वर्तमानमें अकालके समय तो ऐसा करना विशेष कर्तव्य है । वैसे जीवनमें सदा ही ऐसा ही व्यवहार करना चाहिये । और जिनके पास बहुत अधिक साधन हैं और जो बहुत कमाते हैं, उन्हें तो अपने सभी साधनोंको अभिमानरहित होकर भगवान्‌की सेवामें लगाते रहना चाहिये । यह याद रखना चाहिये कि भगवान् अपनी वस्तु अपनी सेवामें स्वीकार कर रहे हैं—यह उनकी कृपा है । इसमें न तो अभिमानकी बात है न किसी प्रकारसे किसीपर अहसान करनेकी । अपनेको उपकार करनेवाला दयालु दाता और लेनेवालोंको उपकारके पात्र, दीन, भिक्षुक न मानकर यही मानना चाहिये कि 'भगवान्‌की वस्तु भगवान्‌के इच्छानुसार भगवान्‌की सेवामें लगी है । भगवान्‌ने ही उसे ग्रहण किया, मेरा इसमें क्या है । मुझसे भगवान्‌ने इस कार्यमें सेवा ली, यह भगवान्‌की कृपा और मेरा सौभाग्य है ।'

त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये ।

एक उदार दाता भक्त सदा संकोचसे भरे दान देते समय भी नेत्रोंको झुकाये रखते थे । किसीके पूछनेपर उन्होंने नीचे नेत्र रखनेका कारण बताया—

देनहार कोउ और है देत रहत दिन-रैन ।
लोग भरम हम पै धरैं, या सो नीचे नैन ॥

शेष भगवत्कृपा ।

(४)

प्रातःस्मरणीय महात्माओंकी जूठन

प्रिय महोदय,

सादर प्रणाम । आपका कृपापत्र मिला । आप[का] लिखना सर्वथा सत्य है । मैंने भक्ति-प्रेम आदिके सम्बन्ध[में] जो कुछ लिखा है—कहा है, उसमें अधिकां[श] श्रीगौड़ीय सम्प्रदायके प्रातःस्मरणीय नित्य-वन्दनी[य] महात्माओंकी अनुभूत वाणी ही प्रधान रूपसे आ[धार] है । यद्यपि श्रीराधामाधवकी मुझपर अनन्त कृपा [है] निरन्तर कृपा बरस रही है—इससे मुझ तुच्छ [ना]नगण्य जीवको भी बड़े-बड़े महानुभावोंके चरणा[नुगत] होकर किसी अंशमें स्वयं भी कुछ प्राप्त कर[नेका] सौभाग्य मिला है और वह अनुभूति उत्तरोत्त[र बढ़] रही है, तथापि यह तो सर्वथा सत्य ही है कि [मेरे] भाषण और लेख उन प्रातःस्मरणीय महात्माओंका [ही] महाप्रसाद या पवित्र जूँठन है । अलग-अलग कि[स-]किनके नाम बताऊँ—मैंने बहुतोंसे बड़ा लाभ उ[ठाया] है और अब भी उठा रहा हूँ । उन सभीका [मैं] बड़ा ऋणी हूँ; पर साथ ही उनका इतना कृपापा[त्र हूँ] कि वे मुझे निरन्तर अपना एक तुच्छ जन स[मझकर] देते ही रहते हैं—ऋणरूपमें नहीं, वात्सल्य-स्ने[ह]रूपमें । यह उनकी सहज ही महान् उदारता है ।

शेष भगवत्[कृपा]

(५)

सभी क्षेत्रोंमें आदर्श पुरुष हैं

प्रिय महोदय,

सादर हरिस्मरण ! आपका कृपापत्र मि[ला ।] अवश्य ही वर्तमान समयमें भी ऐसे बहुत-से [...] सभी क्षेत्रोंमें वर्तमान हैं, जो भारतीय सं[स्कृतिके] परमोज्ज्वल प्रकाशरूप हैं । पर ऐसे सज्जन [न] अपना विज्ञापन करते हैं, न वे यह चाहते ही [हैं कि] उन्हें लोग जानें-मानें । करोड़ों मानवोंमें, पता नहीं, [कितने] ऐसे होंगे, जिनके चरित्र अत्यन्त पवित्र और [...] हैं । जिन क्षेत्रोंके लोगोंके सम्बन्धमें आपने [...]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षेत्रोंमें भी ऐसे बहुत-से सज्जनोंसे मेरा काम पड़ा है और मैं उन्हें जानता हूँ, जो परम आदर्शचरित्र हैं।

साधुओंमें मैं ऐसे महात्माओंको जानता हूँ, जो सचमुच बड़े विरक्त और परम त्यागी, सदाचारी हैं। उनमें कौन ब्रह्मनिष्ठ हैं—परमात्माको प्राप्त हैं, यह तो मैं नहीं कह सकता; क्योंकि यह स्थिति तो स्वसंवेद्य है। एक महात्माको मैंने देखा है, जो बहुत बड़े दार्शनिक, विद्वान् हैं, पर जिनमें विद्याका जरा भी अभिमान नहीं और जिनका अत्यन्त त्यागपूर्ण, विरक्त जीवन है।

धनियोंमें भी ऐसे बहुत-से हैं। एक ऐसे सज्जन हैं, जो अपने लिये कंजूस हैं और दूसरोंके लिये बड़े उदार हैं। सदाचारी हैं, व्यसनरहित तथा अभिमान-शून्य हैं। अत्यन्त साधारण रहन-सहन रखते हैं। विनम्र हैं, भगवद्भक्त हैं। एक दूसरे धनी सदाचारी महापुरुष हैं, जिन्होंने पैसा कमाया ही धर्म तथा जनताकी सेवाके लिये। उम्रभर सेवा करते रहे।

एक डिप्टी कलक्टर हैं, जो अनुचित अर्थ ग्रहण नहीं करते, अपने नियमित नौकरीके पैसोंसे परिवार-पालन करते हैं। एक दिन मैंने पूछा,—उस दिन महीनेके अन्तकी ३० तारीख थी। उन्होंने कहा—मेरे पास आज चार आने पैसे हैं। इस महीनेके वेतनके पैसे मिलेंगे तो काम चलेगा।' एक पोशाक है, जिसे बाहर जाते हैं तब पहन लेते हैं, बड़े मितव्ययी हैं और अपनी इस स्थितिमें संतुष्ट हैं।

एक टेक्सटाइल विभागके उच्च अधिकारी थे, अब उन्होंने अवकाश ग्रहण कर लिया है। बड़े-बड़े प्रलोभन आनेपर भी उन्होंने ऊपरका एक पैसा नहीं लिया, बड़ी सादगीसे जीवन बिताया। साइकलसे आफिस जाते-आते थे। आफिससे ऊपर-नीचेके अधिकारी उनसे उतने प्रसन्न नहीं रहते थे; क्योंकि वे उनको अपनी अनुचित आयमें बाधक समझते थे। बड़े निर्मल-हृदय, विनम्र, सदाचारी तथा भक्त पुरुष हैं।

एक पुलिसके उच्च अधिकारी थे, जिन्होंने सारी उम्रमें कभी घूस नहीं ली, कभी मिथ्या मुकदमा नहीं बनाया। कमाईमेंसे गरीबोंकी सेवा करते और स्वयं बड़ी कठिनाईसे जीवन चलाते रहे। पर बड़े प्रसन्न थे। उन्हें अपनी सादगी तथा ईमानदारीका गौरव था।

एक नेता हैं, जो पहले कहीं किसी पंचायतके उच्च अधिकारी थे। अच्छे कुलके, ईमानदार, अपनी धुनके पक्के, जनताकी सेवा तथा जनताके सुख पहुँचानेके लिये अथक परिश्रम करनेवाले, देश तथा जनताकी सेवामें अपना सारा समय, शक्ति, धन लगानेवाले, कुटुम्बसे लापरवाह, सेवाकी धुनमें घरकी जमीन-मकान-जायदाद बेचकर काम चलानेवाले, पर मित्रों-बान्धवोंके द्वारा दिये जानेपर भी किसी भी हालतमें पैसा स्वीकार न करनेवाले फक्कड़ आदमी हैं। मैं उनकी कुटुम्बके प्रति लापरवाही तथा जमीन-जायदाद बेचनेके कार्योंका समर्थन नहीं करता, पर उनकी धुन देखकर तो सभी चकित हो जाते हैं। अभी-अभी उन्हें कई लाख रुपये किसी वोटके सौदेमें मिल रहे थे, पर उन्होंने स्वीकार नहीं किया और नयी सरकार बननेतक दबाव पड़नेके डरसे एकान्त-सेवन करते रहे। संग्रह करने योग्य मनुष्य हैं।

मिनिस्टरोंमें भी ऐसे बहुत-से हो चुके हैं, अब भी होंगे, जिन्होंने ऊँचे-से-ऊँचे पदोंपर आसीन होकर भी अपने घरकी ओर नहीं देखा, फकीर ही बने रहे। नया मकान बनाना तो दूर रहा, पुराने घरकी मरम्मत भी नहीं करवायी। भाड़ेका घर भी नहीं बदला।

इसी प्रकार सभी क्षेत्रोंमें परम पवित्र आचरणोंवाले सज्जन हैं। स्त्री-समाजमें तो पुरुषोंसे कहीं अधिक आदर्श चरित्रवाली त्यागमूर्ति देवियाँ हैं। इन सभीके चरणोंमें मैं सभक्ति नमस्कार करता हूँ।

दुःख तो इस बातका है कि नवीन निर्माणमें ऐसे पुरुषों तथा स्त्रियोंकी संख्या उत्तरोत्तर घट रही है, जो देशके लिये भयानक दुर्भाग्यकी बात है।

शेष भगवत्कृपा—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोरक्षा-आन्दोलन

एक वर्षतक बहुत प्रयत्न करनेपर भी सम्पूर्ण गोहत्या-बंदीका कानून नहीं बन पाया। न सरकारसे कोई आश्वासन ही मिला। आशा हो चली थी कि सरकार सम्पूर्ण गोवध-बंदीकी घोषणा कर देगी; पर वह आशा सफल नहीं हुई। सम्भव है हमारे मानस तथा आचरणमें कोई ऐसा दोष रहा हो, जिसके कारण उच्च अधिकारियोंका मन नहीं बदला। गोवध-बंदीके लिये जो असंख्य लोगोंने प्रयत्न किया, त्याग किया, देवाराधन किया, वह सब पुण्य तो है ही। और मनुष्यको इतना ही वास्तवमें करना है कि भगवान् जैसी बुद्धि दें, उसके अनुसार सबका मङ्गल चाहते हुए भगवान्‌के आश्रयसे कर्तव्य-सम्पादनमें लग जाय, उसमें प्रमाद न करे। कर्तव्य-कर्म पूर्णरूपसे सम्पन्न होगा या नहीं अथवा कर्म सम्पन्न होनेपर भी उसका फल अनुकूल होगा या प्रतिकूल—यह मङ्गलमय भगवान्‌पर छोड़ दे।

पर कर्मकी दृष्टिसे, जो कुछ किया गया है, उसके फलस्वरूप कानूनके द्वारा सम्पूर्ण देशमें गोहत्या सर्वथा बंद होनी ही चाहिये; पर प्रयत्नमें शिथिलता नहीं आनी चाहिये। खेदका विषय है कि इधर प्रयत्नमें काफी ढिलाई आ गयी। सत्याग्रह निश्चय ही अभी जारी है और वह जारी रहना चाहिये तथा उसमें शान्तिपूर्ण तीव्रता आनी चाहिये। सत्याग्रहियोंकी संख्या बढ़नी चाहिये। स्थान-स्थानपर आन्दोलन चलना चाहिये। साथ ही देवाराधन, भगवदाराधन भी संतत चालू रहना चाहिये। मेरी प्रार्थना है कि देशभरमें एक बार फिरसे गोरक्षाके लिये देवाराधन तथा ईश्वराराधन आरम्भ हो जाय। ऐसा अनुमान किया जाता है कि वर्तमान केन्द्र-सरकारके अधिकारियोंका रुख इस समय कुछ अनुकूल है। सरकार समिति बनाने जा रही है। विधेयक भी पेश है। यदि इस समय देशमें जोर[illegible] आन्दोलन हो तो उसका सरकारपर काफी प्रभाव प[illegible] सकता है।

ऐसा ज्ञात हुआ है कि शीघ्र ही साधु-मह[illegible] लोग जोरोंसे सत्याग्रह शुरू करनेवाले हैं। और [illegible] भी सचेष्ट हैं। सबको उन्हें उत्साहित करना चा[illegible] तथा क्रियात्मक सहयोग भी देना चाहिये। गोमा[illegible] सारे वंशकी रक्षा होनी चाहिये—उपयोगी [illegible] अनुपयोगीके पापमय प्रश्नको छोड़कर।

पर कानूनन गोहत्या-बंदीके साथ ही निम्नलि[illegible] कार्य भी साथ-ही-साथ करनेकी बड़ी आवश्यकता [illegible] और उनमें सरकारोंका सहयोग भी परमावश्यक है—

(१) गायोंकी नस्ल-सुधारका काम हो, अच्छे सु[illegible] बैल तैयार किये जायँ तथा बहुत अधिक दूध देने[illegible] गायोंसे ही सबल साँड़ोंका सम्पर्क विशेषरूपसे क[illegible] जाय। अनुपयोगी गौओंके तथा निर्बल रोगी साँड़ोंके [illegible] गोवंशकी वृद्धि न करायी जाय।

(२) अच्छे साँड़ काफी संख्यामें तैयार क[illegible] जायँ।

(३) अपाहिज पशुओंके लिये सुव्य[illegible] गोसदन खोले जायँ और उनमें उन पशुओंके जी[illegible] निर्वाहके लिये चारे-पानीकी व्यवस्था हो।

(४) अधिक-से-अधिक चारा बोकर चारा [illegible] किया जाय। प्राकृतिक घासके ऊपर निर्वाह [illegible] कठिन है। भारतमें करोड़ों एकड़ भूमि ऐसी [illegible] जाती है, जिसमें सिंचाईका साधन या वर्षा होने[illegible] सफल खेती हो सकती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(५) स्थान-स्थानमें गोचरभूमि छोड़ी जाय ।

(६) गायोंके खाने-पीनेकी चीजोंका निर्यात किसी रूपमें भी न हो, इसकी व्यवस्था की जाय ।

(७) जबतक सर्वत्र गोवध-बंदीका कानून न बन जाय, तबतक गायोंका निर्यात कम-से-कम उन प्रदेशोंमें न हो, जहाँ पशु-हत्या निर्बाध होती है ।

(८) कसाइयोंके हाथोंमें गाय कतई न जाय, इसकी सुदृढ़ व्यवस्था हो ।

(९) जहाँतक सम्भव हो, प्रत्येक गृहस्थ एक-एक गाय पालन करनेका व्रत ले ।

(१०) नगरपालिकाओंने जहाँ घरोंमें गायें रखनेपर रोक लगा रक्खी है, वहाँ गंदगी न फैले—इसकी व्यवस्था करके सबको गाय रखनेकी अवश्य छूट दे ।

(११) प्रतिदिन सम्पूर्ण गोरक्षाके लिये भगवान्से प्रार्थना की जाय ।

—हनुमानप्रसाद पोद्दार

जनतन्त्रकी रक्षा कैसे हो ?

देशमें चुनाव समाप्त हो गये । सभी जगह नयी सरकारें बन गयीं—कहीं कांग्रेसकी, कहीं विविध दलोंकी मिली-जुली; पर अभीतक कहीं भी शान्तिके साथ केवल देश-कल्याणकी भावनासे सरकारें काम नहीं कर पा रही हैं । इसका कारण है—पद-लोलुपता, अभिमान, आपसकी फूट, एक-दूसरेको अपदस्थ करनेकी इच्छा और क्रिया, परस्परमें कटु आलोचना और एक दूसरेपर मिथ्या अथवा बढ़ाया हुआ दोषारोपण । इस अवस्थामें स्वाभाविक ही देश तथा देश-हित सामने नहीं रहता—रहता है व्यक्तित्व, रहता है अहं और रह जाता है दलगत या अधिकांशतः व्यक्तिगत स्व-अर्थ । यह निश्चित है कि 'स्व' जितना सीमित होता है, उतना ही गंदा होता है और जितना विस्तृत तथा व्यापक होता है, उतना पवित्र । 'स्व' जहाँ देशसे निकलकर दलमें या व्यक्तिमें आ जाता है, वहाँ देशका हित विस्मृत या अत्यन्त गौण हो जाता है और दलका या व्यक्तिका स्वार्थ मुख्य बन जाता है । यही आज प्रायः हो रहा है ।

कांग्रेस हो या अन्य कोई भी दल, हम हैं तो सब भारतीय ही । हमारा सभीका लक्ष्य होना चाहिये—'भारतका कल्याण' (और भारतके कल्याणद्वारा विश्वका कल्याण) । पर जबतक हमारे चरित्रमें सत्य, अहिंसा, प्रेम, भोग-लिप्साका और अर्थका त्याग, सादगी, मितव्ययिता, संयम, परमत-सहिष्णुता, अधिकार-मदका अभाव, अभाव-ग्रस्त दुखी जनताके दुःखोंको अपना दुःख माननेकी वृत्ति, समन्वयात्मक सहयोगकी भावना तथा ईश्वरका भय नहीं आता, तबतक कांग्रेसकी या किसी भी दलकी सरकारें हों और वे एक दूसरेपर चाहे जितना दोषारोपण करती रहें, उनसे देशका कल्याण नहीं होगा ।

जैसे चुनावके समय स्वतन्त्र तथा स्वस्थ निष्पक्ष चुनाव नहीं हुआ और जनतन्त्रके नामपर ऐसी-ऐसी बातें हुईं, जो जनतन्त्रके सिद्धान्तका ही नाश करनेवाली थीं । साम, दाम, दण्ड और भेद—चारों ही उपायोंसे काम लिया गया । वैसा ही—सरकारोंके निर्माणके समय भी हुआ । एक-एक वोटके लिये लाख-लाख रुपयोंका प्रलोभन दिया गया, भय दिखाया गया, अपने दलकी मिथ्या प्रशंसा तथा प्रतिपक्षी दलकी अनर्गल मिथ्या निन्दा की गयी, भेद-नीतिसे बरगलाया गया, आपसमें फूट पैदा की गयी और आगे बैर लेनेकी धमकियाँ दी गयीं आदि । और वस्तुतः इन नीतियोंपर बनी सरकारोंका सहज ही वास्तविक देश-हितके काममें लग जाना बहुत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही कठिन है; क्योंकि सरकारमें जिन्होंने विभिन्न पद प्राप्त किये हैं, प्रायः सभीका चित्त अभी अशान्त है। वे निश्चिन्त तथा शान्तमनसे देशके हितकी बात सोचें कैसे ? यह किसी दल या व्यक्ति-विशेषकी बात नहीं है। दल तथा व्यक्ति—सब हम ही तो हैं। पराया है कौन ? सीमित स्वार्थने हमारी बुद्धिको तमसाच्छन्न कर दिया है और इसीसे हम अच्छी नीयत होनेपर भी तथा बुराई करनेकी इच्छा न होनेपर भी—'अनिच्छन्नपि', 'बलादिव' भलाईका त्याग और बुराईका ग्रहण कर रहे हैं। यह हमारा दुर्भाग्य है। ऐसी परस्पर-विरोधी सरकारें बननेके बदले सबकी मिली-जुली राष्ट्रीय सरकारें बनतीं तथा महात्मा गांधीके आदर्शको सामने रखकर रचनात्मक कार्यक्रम सामने रखतीं तो बड़ा कल्याण होता। अभी तो हमारी सारी शक्ति, साधन, विचार, क्रिया परस्परके गिरानेमें खर्च हो रही हैं। इसका कारण यही है कि हमारा जीवन-स्तर ही नीचा हो गया है। यह सभा-मञ्चके व्याख्यानों तथा वक्तव्योंसे नहीं उठ सकता। न कोई कानून ही हममें सुधार कर सकता है। यही कारण है कि अंग्रेजोंके जानेके बादसे घूसखोरी, विलासिता, चरित्रहीनता, वैर-विरोध, हिंसा-प्रतिहिंसा आदि दोष हमारे अंदर बढ़े हैं। यह राष्ट्रव्यापी रोग बातोंसे दूर नहीं होगा। इसके लिये चरित्रशुद्धि तथा चरित्रकी उच्चताकी परमावश्यकता है, जिसका आधार हमारी शिक्षा है। अतएव शिक्षा-पद्धतिमें शीघ्र-से-शीघ्र आमूल परिवर्तन करना होगा। जबतक धर्मशिक्षा नहीं होगी, तबतक सुधारकी आशा बहुत ही कम है।

वर्तमानमें तो सबसे पहले यह काम होना चाहिये कि दलोंकी भावनाको भूलकर सभी सरकारें परस्पर सहयोग, प्रेम तथा समन्वयात्मक नीतिसे शासन करें। परस्परमें प्रेम तथा आदरका व्यवहार करें। सरकारके उच्च अधिकारी खण्डन-मण्डन छोड़कर केवल देश-हितकी पवित्र दृष्टिसे ही सब बातें सोचें तथा करें। एक प्रदेश दूसरे प्रदेशके अभावको पूर्ण करे तथा एक ही शरीरके विभिन्न अङ्गोंकी भाँति सब सबकी पुष्टि तथा सबके स्वास्थ्य-साधनमें लगे रहें। स्वयं अपने उज्ज्वल तथा पवित्र चरित्रसे सभी विभागोंके सरकारी कर्मचारियोंके तथा जनताके चरित्रको उज्ज्वल तथा पवित्र बनायें और भगवान्‌से प्रार्थना करें कि वे किसीका भी विनाश न करके, सबको सद्‌बुद्धि प्रदान कर, सबको सबका हितैषी तथा सबका कल्याण साधन करनेवाला बनायें। भगवान् सबका मङ्गल करें।

प्रभु-पद-प्रीतिकी प्रेरणा

मन करि ले साहिब से प्रीत।
सरन आये सो सब ही उबरे, ऐसी उन की रीत॥
सुंदर देह देखि मत भूलो, जैसे तृन पर सीत।
काँची देह गिरै आखिर को, ज्यों बारू की भीत॥
ऐसो जन्म बहुरि नहिं पैहौ, जात उमिरि सब बीत।
दास कबीर चढ़े गढ़ ऊपर, देव नगारा जीत॥

—संत कबीरदास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़ो, समझो और करो

(१)

विनयके अवतार लालाबाबू

विनय विद्वान् एवं गुणी पुरुषोंका भूषण है। जो व्यक्ति धनी, विद्वान् और वीर होनेपर भी विनयी है, वह महान् है। एक श्लोक है—

नभोभूषा पूषा कमलवनभूषा मधुकरो
वचोभूषा सत्यं वरविभवभूषा वितरणम्।
मनोभूषा मैत्री विमलकुलभूषा सुचरितं
सदोभूषा सूक्तिः सकलगुणभूषा च विनयः॥

बंगालमें ऐसे ही विनयके अवतार श्रीलालाबाबू थे। वे सात्त्विक, वैराग्यवान्, विनयी और सरल-चित्त पुरुष थे। उनकी दानशीलताकी ख्याति दूर-दूर तक फैली थी। स्त्री-पुरुष, बालक-वृद्ध—सभीके मुखसे लालाबाबूकी प्रशंसा ही सुनी जाती थी।

लालाबाबू अपने अतुल ऐश्वर्यको त्यागकर एक साधारण अवस्थाके सामान्य व्यक्तिकी तरह शुद्ध मनसे परमार्थकी चिन्तामें लग गये। वे अकालग्रस्त, दीन-दुखियोंको बड़ी उदारतासे तथा विनम्रतासे अन्न-वस्त्रका दान किया करते थे।

उन्होंने वृन्दावनमें एक सदाव्रत स्थापित किया था। जो भी भूखे वहाँ जाते, सबको मुफ्त भोजन मिलता था।

लालाबाबूने वृन्दावनमें भगवान् श्रीकृष्णका विशाल मन्दिर भी बनवाया था।

सारी वंग-भूमिमें घर-घर लालाबाबूके पुनीत कार्योंकी प्रशंसा होने लगी; किंतु विनयी लालाबाबूके कानोंमें अपनी प्रशंसाकी चर्चा खटकने लगी। जिस महापुरुषने अहंकारको पैरोंतले दबाकर विनय एवं दैन्यको मस्तिष्कका मुकुट बनाया और सारी धन-सम्पत्तिको परोपकार-व्रतमें लगा दिया, वह अपनी प्रशंसा कैसे सुन सकता था।

वे तो अपनी निन्दा करनेवाले मनुष्योंसे प्रेम करते थे। जब उनकी प्रशंसा चारों ओर होने लगी, तब वे बंग भूमि त्यागकर वृन्दावन चले आये।

श्रीकृष्णरायजीके मन्दिरमें ही निवासकर वे भजन-चिन्तनमें लीन रहने लगे।

पर अबतक उन्होंने दीक्षा ग्रहण नहीं की थी। उन दिनों भक्तिमार्गके एक संत बाबा कृष्णदासजी वृन्दावनमें ही निवास करते थे। कृष्णदासजीने 'भक्तमाल' ग्रन्थका बँगलामें अनुवाद किया था। लालाबाबूने इन्हीं वैराग्यवान् भक्त एवं विद्वान् महात्मासे दीक्षा लेनेका निश्चय किया।

बाबा पहले ही लालाबाबूके आदर्श गुणोंसे परिचित थे। वे हृदयसे लालाबाबूसे स्नेह करते थे। जब लालाबाबू दीक्षा लेनेके लिये बाबाजीके पास पहुँचे, तब बाबाजी बोले—'तुम्हें मन्त्र देनेमें अभी देर है, कुछ समय और ठहरो। तुम्हारे विनयकी अभी और परीक्षा होगी।'

लालाबाबू बाबाजीकी बात सुनकर विस्मय और विषादमें डूब गये। उनके स्थानपर कोई अभिमानी पुरुष होते तो वे ऐसे अवसरपर दूसरे गुरुकी तलाशमें लगते! पर लालाबाबूका तो इन्हीं बाबाजीसे दीक्षा लेनेका निश्चय था। उन्होंने सोचकर देखा कि सचमुच उनके जीवनमें अभी-तक विनयका पूर्णरूपसे अवतरण नहीं हुआ है। वे विचार करने लगे—

'मैं यद्यपि ठाकुरद्वारेमें एक मुट्ठी भगवान्‌का प्रसाद पाकर आठों पहर उनका नाम जपा करता हूँ, फिर भी मेरे मनसे वैमनस्य; भेदभाव आदि अभी दूर नहीं हुए हैं। मैं सेठजीके सदाव्रतकी तरफ भिक्षा लेने कहाँ गया हूँ। मेरे मनमें अब भी उनके प्रति घृणा एवं ईर्ष्याके भाव हैं। मेरा अन्तःकरण पूर्णरूपसे पवित्र नहीं हुआ है। शत्रु-मित्र, मान-अपमान आदि भेदभावके रहते अहंकार पूरी तरहसे नष्ट नहीं हो सकता।'

बात यह थी कि जयपुरके एक धनवान् सेठ भी भगवान्‌के भक्त थे। उन्होंने भी वृन्दावनमें भगवान् मुरली-मनोहरका एक रमणीय मन्दिर बनवाया था और एक सदाव्रत भी साधु-संतोंके लिये खोल रक्खा था।

मथुराके आस-पास इनकी काफी जमीन थी। इसी इलाकेमें लालाबाबूकी भी जमीन थी, जिसकी वार्षिक आय एक लाख रुपयेके लगभग थी। इसी जमीनके सम्बन्धमें दोनों (सेठ और लालाबाबू) में कई दिनोंसे विवाद चल रहा था। झगड़ेके कारण बोल-चाल भी बंद थी।

लालाबाबू सब जगह भिक्षा माँगने जाते थे किंतु सेठजीके ठाकुरद्वारेकी तरफ उनके पैर नहीं उठते थे। अब इस वैमनस्यका उन्हें अन्त करना था। स्थितप्रज्ञ संत पुरुषके लिये, सच्चे भक्तके लिये अब कौन-सी शत्रुता, ईर्ष्या और कलह। उन्होंने सेठजीके सदाव्रतकी ओर जानेका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निश्चय कर लिया और एक दिन वे सेठजीके सदाव्रतपर पहुँच ही गये ।

बंगालके धनी पुरुषको सेठजीके सदाव्रतपर भिक्षुकके वेषमें देखकर मन्दिरके सब कर्मचारी, पुजारी आदि आश्चर्य करने लगे । वे लालाबाबूको भिक्षा देनेमें भी संकोच करने लगे; क्योंकि मन्दिरके मालिकके नाराज होनेका भी उन्हें भय था । दैवयोगसे उस समय सेठजी वहाँ उपस्थित थे । जब सेवकके द्वारा उन्होंने सुना कि लालाबाबू भिक्षा माँगने आये हैं, तब वे नंगे पैरों ही दौड़कर लालाबाबूके पास पहुँचे । लालाबाबूका साधारण वेष और अतुल वैराग्य देख सेठजीका शत्रुभाव सहसा सर्वथा लुप्त हो गया । वे लालाबाबूके पैरोंपर गिर पड़े । लालाबाबूने सेठजीको उठाकर हृदयसे लगा लिया । आज दोनोंके बीच मनोमालिन्य नष्ट हो गया । दोनोंके हृदय पवित्र हो गये । अब शत्रुताकी जगह मित्रताने ले ली । भिक्षा लेकर ज्यों ही लालाबाबू बाहर आये तो देखा कि बाबा कृष्णदास खड़े हैं ।

लालाबाबू बाबाजीके चरणोंमें गिर पड़े । बाबाजीने बड़े यत्नसे उन्हें उठाकर गले लगाया और कहा—'लालाजी ! आज तुम्हें दीक्षा दी जायगी । तुम आज परीक्षामें उत्तीर्ण हो गये ।'

लालाबाबूके नेत्रोंसे प्रेमाश्रु बहने लगे !

गुरु-शिष्यका यह मिलन अद्भुत था । ऐसे थे विनयके अवतार लालाबाबू ।

(लेखक—प्रा० श्याममनोहर व्यास एम्० एस्-सी०)

(२)

अनजानमें अपराधका दुष्परिणाम और आराधनासे शुभफलकी प्राप्ति

यह उस समयकी एक बिल्कुल सत्य घटना है, जब कि कलकत्तेमें यूरोपियन प्रतिष्ठानोंकी तूती बोलती थी । एक बहुत बड़ी जहाजी कम्पनी थी, जिसके विशाल जहाज सुदूर पूर्व एवं अन्यान्य विदेशोंमें माल लाने, ले जानेका कार्य करते थे । आज भी यह प्रतिष्ठान यहाँ कायम है ।

हाँ, तो उन दिनों इस कम्पनीके सबसे बड़े साहब—प्रधान डाइरेक्टर एक अंग्रेज सज्जन थे, जो कुछ ही समय पहले विलायतसे आये थे । उनका सुपुत्र उच्च विद्याध्ययन-हेतु अपनी माताके सहित विलायतमें ही था । ये डाइरेक्टर महोदय अपनी अद्भुत एवं पैनी सूझ-बूझ, गहरी दूरदर्शिता, विलक्षण प्रतिभाके बलपर यहाँ काफी लोकप्रिय हुए और यहाँके लोगोंमें अच्छी तरह घुल-मिल गये ।

साहबके विशाल कार्यालयके बिल्कुल पास एक प्राचीन पीपलका पेड़ था । एक बार जब कि इस मरम्मतका कार्य चल रहा था, तब उसे अनावश्यक समझ इन्हीं बड़े साहबके आदेशसे काट दिया गया । किसीने साहबको इसके लिये नहीं रोका, अन्यथा वे उसे कभी न कटाते । पेड़के कटकर गिरते समय एक विचित्र चरमराहट भयंकर आवाज हुई, जैसे कोई जोरसे देरतक कराह रहा हो । यह मार्मिक ध्वनि बहुत लोगोंको सुनायी पड़ी और घटना-स्थलपर देखनेके लिये एकत्रित हो गये । उन्होंने जो कुछ देखा, उससे वे आश्चर्यसे चकित हुए एवं किसी भावी आशङ्कासे आतङ्कित हो गये । पेड़मेंसे लाल रक्तकी-सी निरन्तर धारा बह रही थी । तरह-तरहकी बातें बनाने लगे । कोई कुछ कहने लगा, कुछ । जितने मुँह उतनी बात ।

पेड़ कटनेके ठीक सवा महीने बाद साहबके अत्यन्त पीड़ा देनेवाली दैवी घटनाएँ घटीं । करोड़ों के मालसे लदे हुए उसके दो जहाज सुदूर देशोंमें जा डूब गये । जहाज बिल्कुल नये थे, अतः बीमा कम्पनी भी बिना पूरी जाँच-पड़ताल किये दावोंकी तुरंत अदायगी साफ-साफ इन्कार कर दिया, जिससे कम्पनीके व्यापारिक लेन-देनमें भी एक बड़ी बाधा उत्पन्न हो गयी और प्रकारसे आर्थिक संकट उपस्थित हो गया । फिर भी संकट तो कष्टसाध्य था; पर इससे भी एक संकट उनके सामने और आ गया । उन्हें समुद्री केबल फोनके जरिये यह हृदयविदारक खबर मिली कि उनका मात्र किशोर पुत्र मरणासन्न अवस्थामें गत दो दिनोंसे अस्पतालमें पड़ा है । डाक्टरोंने उसकी बीमारीको एवं अपनी शक्ति-सामर्थ्यसे बाहर घोषित कर दिया । समाचारसे साहबको बड़ी मर्म-वेदना हुई । अब क्या कहाँ जाऊँ ? कम्पनीका प्रधान होनेके नाते वह इस समय ऐसी विकट परिस्थितियोंमें जकड़ा हुआ था कि उसका समयके लिये भी भारतसे बाहर जाना सम्भव नहीं भयंकर विपत्तिमें फँस गया । आर्थिक चिन्तासे भी बढ़ भयंकर थी । साहब इस भयानक चिन्तासे अर्धविक्षिप्त हो गया । वह गत दो दिनोंसे अपने बँगलेसे बाहर निकला । पुत्रकी बीमारी उसे खाये डालती थी ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीन-चार बार बिलायतसे समाचार आता—पुत्रकी हालत ज्यों-की-त्यों है।

उसी कम्पनीमें एक बहुत पुराना एवं विश्वासी ईमानदार हिंदुस्तानी वयोवृद्ध, ज्ञानवृद्ध हेड जमादार था, जो अपनी वफादारी, कर्तव्यपरायणता एवं अपनी स्पष्टवादिताके लिये प्रसिद्ध था। सारी कम्पनीमें उसकी इज्जत थी। बड़े साहब भी उसे बहुत मानते एवं उसकी इज्जत करते थे। वह दरवान साहबके कुछ मुँहलगा भी था। जो काम कम्पनीके बड़े-बड़े पदाधिकारी साहबसे नहीं करा सकते थे, वह काम व्यवहार एवं नीतिकुशल दरवान चुटकियोंमें साहबसे करा लेता था।

इधर दो दिनोंसे साहबको दफ्तरमें आया न देखकर दरवानको चिन्ता हुई और वह उसी संध्याको उनके घर पहुँचा। साहबका कमरा बंद और बाहर बेहराको देखकर उसका माथा ठनका। बेहरेसे पूछनेपर ज्ञात हुआ कि साहब दो-तीन दिनोंसे न तो कुछ खाता-पीता है और न सोता ही है। पागलकी भाँति एक हाथमें भरी पिस्तौल लिये कमरेमें चक्कर काटता रहता है। यह सुनकर दरवानने घबराकर किसी प्रकार कमरेमें प्रवेश किया। देखा, दुखी साहब सचमुच पागलकी भाँति कमरेके अंदर चक्कर काट रहा है। दरवान-को देखते ही साहबने पुनः दरवाजा बंद कर लिया और दरवान-को देखकर उसकी आँखोंसे अश्रुपात होने लगा; आत्मीयजन-को देखकर आत्मीयता फूट पड़ती है। साहबने भरे कण्ठसे दरवानसे कहा—'एक ही साथ दो भयंकर विपत्तियाँ आ पड़ीं। पर दूसरी तो अत्यन्त भयंकर है। पता नहीं क्या होगा। कुछ सूझता नहीं, क्या करूँ। एकमात्र पुत्र मृत्युके मुखमें पड़ा है, जिसकी चिन्ता मुझे खाये जाती है और ऐसा अभागा हूँ कि इच्छा होते हुए भी इस समय परिस्थिति-वश इंगलिस्तान जा नहीं सकता।'

'प्रभुपर विश्वास रक्खें—सब ठीक हो जायगा। लड़का भी बच जायगा एवं डूबे हुए जहाजोंका भी पता चल जायगा।' दरवानने उन्हें धैर्य बँधाया।

'कैसे धीरज धरूँ—घायलकी गति घायल ही जानता है। मुझे कुछ नहीं सूझता।' साहबने कहा।

'तो एक बात कहूँ ?'—दरवान बोला 'बुरा मत मानियेगा, क्योंकि शायद छोटे मुँह बड़ी बात होगी।'

'निहिचक बोलो—तुम्हारी बातोंकी उपेक्षा मैंने कब की है ?' साहबने फरमाया।

'तो साफ-साफ सुन लीजिये, साहब! यह सब हरे पीपलका पेड़ काटनेसे ही हुआ है। हमारे धर्ममें पीपलके पेड़को भगवान्‌का स्वरूप माना गया है। हमलोग तो उसे काटनेकी कल्पना स्वप्नमें भी नहीं कर सकते'—दरवानने कहा।

'लेकिन पेड़ कटवाते समय स्टाफके किसी व्यक्तिने मुझसे ऐसा कुछ नहीं बताया। खैर, उनकी बात छोड़ो। तुमने मुझे पहले यह सब क्यों नहीं बताया; जो अब पीछे बता रहे हो, जब कि मेरा सर्वस्व जा रहा है ? तुम्हारी हर बातकी मैं कद्र करता हूँ, यह तो तुम जानते ही हो।' साहबने गम्भीर स्वरसे कहा।

'आपका कहना सत्य है, साहब ! पर मुझे बतानेका अवसर ही कब मिला। कटनेके पूर्व मुझे अन्य बंदूक-धारियोंके होते हुए भी बड़े बाबूने शायद जान-बूझकर खजानेके साथ बैंक भेज दिया। वापस आया तो पेड़ कटा था। मैं लाचार था।' दरवानने उत्तर दिया।

'अब हुआ सो हुआ। यदि इस कष्ट-निवारणका कोई उपाय हो तो बताओ—मुझसे यह महान् अपराध तो हुआ है, पर हुआ है गैरजानकारीसे। किसीने कुछ नहीं बताया। अतः वैसे मैं निरपराध हूँ। निरपराधको तो भगवान् भी क्षमा कर देता है।'

'साहब ! हमारे प्रभु बड़े दीनदयालु हैं। उन्हें यदि विश्वासपूर्वक याद किया जाय तो वे अवश्य आपकी प्रार्थना सुनेंगे'—दरवान बोला।

'तो तुम्हीं कुछ करो।' साहब बोला।

'जी नहीं—मैं तो दरवानी करता हूँ। यह मेरा काम नहीं। यह कार्य किसी अच्छे विद्वान् कर्मकाण्डी अधिकारी ब्राह्मण पण्डितका है। मेरी जान-पहचानके एक अच्छे सज्जन हैं। मैं उनसे सारी व्यवस्था समझकर बताऊँगा।' दरवान बोला।

'शुभ काममें देर क्यों—अभी जाओ एवं उन्हें साथ लेकर आओ। मेरी कार ले लो।' साहबने आशाजनक शब्दोंमें कहा।

'तो ठीक है—मैं जाता हूँ; और यदि मिल गये तो उन्हें अभी साथ लेकर आता हूँ। पर यह पिस्तौल आप मुझे दे दीजिये। इस स्थितिमें आपके हाथ इसका रहना ठीक नहीं। इससे अनर्थ भी हो सकता है। प्राणरक्षार्थ होनेकी बजाय यह प्राणघातक भी हो सकता है।' साहबने उसकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वफादारीपर प्रसन्न हो पिस्तौल उसे सौंप दिया । धन्य है उसकी आत्मीयता, नेकनीयती एवं वफादारीको ।

दरवान सीधे अपनी जान-पहचानके एक कर्मकाण्डी विद्वान् पण्डितके यहाँ पहुँचा, जो शास्त्रीजीके नामसे प्रसिद्ध थे । शास्त्रीजीसे उसने सारी बातें बतायीं और पूछा कि क्या 'इस अनजानी भूल एवं समस्याका किसी प्रकारसे कोई शास्त्रीय हल या रास्ता निकल सकता है, जिससे साहबको सुख-शान्ति मिले ?' शास्त्रीने कई ग्रन्थोंको उलटने-पलटनेके बाद कहा—'यदि पुनः एक पीपलका छोटा पौधा उसी जगह लगवा दिया जाय और उसका पूजन आदि कराकर वहीं महारुद्र-यज्ञ विधिविधानसहित किया जाय तो दीन-दयालु प्रभु उनका वर्तमान संकट दूर कर सकते हैं । यह मेरा विश्वास है ।'

यह सुनते ही दरवान उन्हें साथ लेकर पुनः साहबके यहाँ पहुँचा और शास्त्रीजीसे साहबकी सारी बातचीत महा-रुद्र-यज्ञ बाबत करा दी । शास्त्रीजीने साहबको हर प्रकारसे ढाढस बँधाया—'आप अब किसी प्रकारकी चिन्ता न करें; क्योंकि हम सब लोग अपनी जानमें उस सर्वोपरि दयालु न्यायकर्ता प्रभुके सामने आपकी अनजानमें हुई भूलको क्षमा करनेकी प्रार्थनामें कोई कसर नहीं रक्खेंगे ।' आप मुझे कलसे ही उसी जगहपर ग्यारह ऋत्विजोंसहित महा-रुद्रयज्ञ करनेकी आज्ञा एवं संकल्प दें । मैं कलसे ही अपने निर्देशनमें वहाँ महारुद्रयागका आयोजन कराता हूँ ।' शास्त्रीजीने कहा ।

'अवश्य-अवश्य पूरी लगन तथा परिश्रमसे प्रयोग शुरू करें । किसी बातकी कमी नहीं रक्खें । बिल्कुल विधिविधान-सहित ही काम होना चाहिये ।' यह कहकर साहबने शास्त्रीजीको विदा किया ।

अब क्या था शास्त्रीजीने ग्यारह चुने-गिने श्रद्धा-सम्पन्न-सदाचारी ऋत्विजोंसहित वहाँ महारुद्रयाग आरम्भ कर दिया, जिससे उस मुहल्ले एवं आस-पासके क्षेत्रोंमें हर्षकी लहर दौड़ गयी । झुंड-के-झुंड लोग दर्शनार्थ आने लगे एवं पहले जो लोग साहबके इस अनजाने कुकृत्यकी निन्दा करते थे, वे सब अब प्रशंसा करने लगे । सबके मुँहसे यही आवाज निकलने लगी कि साहबका संकट अवश्य दूर होगा । साहब भी दिनमें एक बार वहाँ आता और अपने मर्यादित स्थानतक जाकर श्रद्धापूर्वक दर्शन करता, जिससे उसे बड़ा मानसिक बल मिलता । यज्ञारम्भ होनेके कुछ ही [...] साहबको जहाँ समाचार मिला था कि पुत्रकी हालत वैसी ही [...] वहाँ अब यह समाचार मिला कि—'एक ग्यारह [...] चिकित्सकोंने विचार-विमर्श करके आखिरी इलाज [...] दिया है, जिसके कुछ घंटोंके अंदर होश आ जायगा तो फिर [...] आगे किया जायगा ।' महान् आश्चर्यकी बात कि जहाँ [...] बचनेकी कोई उम्मीद नहीं थी, वहाँ यज्ञारम्भ [...] ३६ घंटोंके अंदर ही फिर टेलीफोन आया कि [...] अचानक किंचित् होश आया है, जब कि लेशमात्र आशा नहीं थी । इससे डाक्टरोंको कुछ आशा हुई [...] पर निश्चित रूपसे अभी कुछ नहीं कहा जा [...] क्योंकि बालक अभी अनर्गल बक रहा है ।' डूबतेको [...] का सहारा बहुत होता है । साहबकी यही हालत थी [...] समाचार सुनते ही ऋत्विज लोग भी और अधिक [...] होकर जी-जानसे अनुष्ठान करने लगे । अगले [...] बाद पुनः टेलीफोनद्वारा साहबको सूचना मिली कि [...] की हालत पहलेकी अपेक्षा कुछ ठीक है । रुपयेमें दो [...] हालत सुधरी है । डाक्टर बराबर आशान्वित होते [...] हैं ।' इसी प्रकार उत्तरोत्तर पुत्रकी हालतमें बराबर [...] थोड़ा सुधार होने लगा ।

इधर अनुष्ठान आरम्भ होते ही साहबका [...] बल निरन्तर बढ़ने लगा । उसका मनोबल असाधारण [...] आश्चर्यजनक ढंगसे ऊँचा उठने लगा । जहाँ वह [...] निराश एवं घबराया-सा रहता था, वहाँ उसमें भी [...] संचार होने लगा—'व्यापारमें घाटा-नफा रहेगा, इससे [...] डरना; बल्कि स्थितिका सामना करना चाहिये । [...] कम्पनीकी तो यहाँ तथा सारे अन्ताराष्ट्रीय बाजारमें [...] है । शेयर निकालकर पूँजी ली जा सकती है या लोन [...] पूँजी मिल जायगी । जाँच-पड़तालके बाद तो बीमा कम्पनी [...] बीमाके रुपये मिलेंगे ही, फिर चिन्ता क्यों ।' महारुद्र [...] प्रभावसे उसके आत्मबल एवं विश्वासमें अत्यधिक [...] आ गयी और जहाँ वह इन विपत्तियोंसे बिल्कुल [...] विमूढ और हतोत्साह हो चला था, वहाँ अब पुनः उसमें [...] शक्तिका संचार हुआ । पाँचवें दिन उसे रातमें दृष्टान्त [...] कि जैसे कोई जटा-जुटधारी व्याघ्रचर्म एवं कमण्डलु [...] एक संन्यासी महात्मा उससे कह रहा है—'चिन्ता [...] करो । बहुत शीघ्र सब कुछ ठीक हो जायगा ।' यह [...] उसे महान् आश्चर्य हुआ । वह भगवान् शंकरके प्रति [...]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आस्थावान् एवं श्रद्धालु हो गया। उसने अचानक यह सारा परिवर्तन अपनी खास डायरीमें लिखा।

अब तो नित्य प्रतिदिन ही उसके पुत्रके उत्तरोत्तर सुधारके समाचार आने लगे। महायज्ञकी समाप्तिके साथ-साथ ही साहबको खबर मिली कि 'डाक्टरोंने रोगपर काबू पा लिया है और आपका पुत्र अब खतरेसे बाहर है। रुपयेमें आठ आना हालत ठीक है; पर अभी कमजोरी आदिके कारण उसे एक मासतक वहीं अस्पतालमें रहना होगा।' यज्ञकी समाप्ति होते-होते साहबको अपने पुत्रका पत्र भी मिला, जिसमें लिखा था कि उसे गत रात एक विचित्र दृष्टान्त हुआ, जिसमें दिखायी दिया कि एक जटा-जूटधारी महात्मा उसके सिरपर हाथ फेर रहा है और प्रसन्न मुद्रामें कहता है—'चिन्ता मत करो, अब तुम्हारा संकट टल गया है।' यही बात साहबने अपनी डायरीमें दर्ज करते हुए सनातनधर्मकी उदारता, महत्त्व, मर्यादाकी परिपुष्टि की। इधर बीमा कम्पनीसे खबर मिली कि 'दोनों डूबे हुए जहाज पकड़े गये हैं एवं पूर्ण तहकीकात जारी है। माल मिलनेका भी प्रयत्न जारी है। अतः कुल नुकसानका आधा रुपया अविलम्ब शिपरको देनेकी व्यवस्था की गयी है। आधा तहकीकात समाप्त होनेपर मिलेगा।'

अब क्या था। साहबकी कामनाएँ पूर्ण हुईं। उसने दिल खोलकर ऋत्विजोंको दान-दक्षिणादि देकर और हर प्रकारसे संतुष्ट किया। उन ऋत्विजों एवं सभी लोगोंने अब साहबसे आग्रह किया कि जिन भगवान् शंकरकी असीम कृपासे आप संकटमुक्त हुए, उन्हींका इसी चौतरेपर जहाँ महारुद्र-यज्ञ हुआ है एवं पीपलका वृक्ष लगाया गया है, अब एक छोटा-सा मन्दिर बन जाना चाहिये, ताकि यह महत्त्वपूर्ण घटना युग-युगान्तरतक ऐतिहासिक एवं प्रेरणाप्रद बनी रहे। औघड़दानी आशुतोष भगवान् शंकरने आपपर पूर्ण कृपा की है और आपके आराध्यदेव भी अब हो गये हैं।' साहबने इसे बड़ी प्रसन्नतासे स्वीकार किया; क्योंकि वह उनकी दैवी कृपासे पूर्ण प्रभावित था। अब क्या था, लगते हाथ बड़ी धूम-धामसे उसी जगह एक छोटा-सा शिव-मन्दिर बना एवं विधिवत् भगवान् शिव-लिङ्गकी प्राण-प्रतिष्ठा हुई। उस समयके जलसे एवं जनसमूहमें एक विलक्षण मार्मिक दृश्य उपस्थित हुआ, जब कि सजल नेत्रोंसे साहबने हेड जमादारको बुलाकर माला पहनाते हुए सहर्ष कहा—'आजकी इस सारी प्रसन्नताका श्रेय इन्हें ही है। इन्होंने मुझे हर प्रकारसे बचा लिया; नहीं तो, न जाने मैं क्या कर डालता। मैं इनका सदैव कृतज्ञ रहूँगा।' 'यह आप क्या कह रहे हैं'—हेड जमादार बोला। 'करनेवाला प्रभु है। यह शरीर तो निमित्तमात्र है।' यह कहते-कहते प्रसन्नतासे उसके भी नेत्र भर आये। उपस्थित सज्जनोंने देखा कि दोनों ही महानुभावोंके अश्रुपात हो रहे हैं। अपूर्व दृश्य था। अब और अधिक कहने-सुननेकी कोई आवश्यकता नहीं रह गयी थी। साहब गद्गद हो जमादार-को निहार रहा था और जमादार मालिकको। आज भी कलकत्ता शेयरबाजारके निकट स्थित वह भगवान् शिवका देवालय असंख्य-असंख्य जनताकी श्रद्धा-भक्ति-भावनाका प्रतीक बना हुआ है। आज भी वह अपनी आपबीती सुनाकर लोगोंको सत्प्रेरणा दे रहा है।

—वल्लभदास बिन्नानी 'व्रजेश', साहित्यरत्न, साहित्यालंकार

(३)

गँवार लड़की कैसे सुसभ्य बनी

(डाक्टर दम्पतिका आदर्श व्यवहार)

भरौंचमें डाक्टर नटवरलाल एम्० पारीख और उनकी धर्मपत्नी शान्ता बहिनके जीवनकी एक विशिष्टता है। वे मानते हैं कि प्रभुके सिरजे हुए सब एक समान हैं।

जन-सेवामें प्रभु-सेवा है, इस सिद्धान्तको यथाशक्य जीवनमें उतारनेवाली इस आदर्श दम्पतिके यहाँ धनु नामकी एक दस वर्षकी गड़ेरियेकी लड़की घरके काम-काजके लिये रहती थी। धनु बासन माँजती, कपड़े धोती, बच्चोंको सँभालती—सारांश यह कि डाक्टरके घरका सारा काम-काज करती थी। सबको समान दृष्टिसे देखनेवाले डाक्टर दम्पति उस लड़कीको अपनी सगी लड़कीके समान मानते थे। घरके सभी लोग उसके प्रति स्नेह रखते थे।

धनु गड़ेरियाकी लड़की थी। उस घरमें काम-काजके लिये जब आयी, तब वह दूसरी गड़ेरियाकी लड़कियोंके समान गँवार थी। कपड़ा कैसे पहनना चाहिये, स्वच्छ कैसे रहना चाहिये, विवेकसे कैसे बर्तना चाहिये—इसका उसे जरा भी ज्ञान न था।

परंतु उस डाक्टर दम्पति और उनमें भी खासकर शान्ता बहिनने उसे संस्कारी बनानेका प्रयत्न शुरू किया। फलतः घरके संस्कार और स्वच्छ वातावरणका उसके ऊपर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रभाव पड़ा। धीरे-धीरे धनुकी रात्रि-पाठशालामें पढ़ाई भी शुरू हो गयी।

अन्तमें धनु बिल्कुल बदल गयी और इन संस्कारोंके रंगमें रँग गयी। बाहरी आदमियोंको तो ऐसा लगता था कि वह धनु डाक्टरकी ही लड़की है। दिन-पर-दिन बीतने लगे। धनु नवयुवती और विवाहके योग्य हो गयी। गड़ेरियोंमें उस समय बचपनमें ही विवाह हो जाता था। धनुकी सगाई बचपनमें ही सजोद नामक गाँवमें एक गड़ेरियेके लड़केके साथ हो गयी थी।

वह गड़ेरियाका लड़का एक किसानके घर नौकरी करता। जिस किसानके यहाँ वह लड़का नौकरी करता था, उसकी तबीयत खराब हुई और उसी डाक्टरकी दवा उसने शुरू कर दी, जिसके घर धनु नौकरी करती थी। दवासे फायदा होने लगा। बीमारी बिल्कुल दूर हो गयी, तब उस रोगीने डाक्टरके प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए एक बातका स्पष्टीकरण किया। उसने डाक्टरको यह बताया कि उनके घर जो लड़की काम करती है, उसकी सगाई उसके घर नौकरी करनेवाले लड़केके साथ हो चुकी है। परंतु उसे ऐसा लगता है कि 'इन दोनोंके बीच जमीन-आसमानका अन्तर है। कहाँ आपके यहाँ काम करनेवाली लड़कीके संस्कार और कहाँ यह उजड्ड और अज्ञानी लड़का! इन दोनोंमें कोई मेल सम्भव नहीं।'

बात भी बिल्कुल सच्ची थी। अन्तमें किसानके कहनेसे वह लड़का ३००) रुपये देकर सगाई तोड़नेपर राजी हो गया। उसे ३००) रुपये देकर डाक्टरने सगाई तुड़वा दी।

लड़की अवस्थापन्न हो गयी थी और विवाहके योग्य थी। इस कारण डाक्टरकी इच्छा हुई कि उसका विवाह किसी गड़ेरियेके साथ कर दें। वरके लिये खोज होने लगी। इसी बीच सूरतके निवासी और पनामामें रहनेवाले कालीदास नानालाल नामक अहीर युवकने सगाईकी माँग करते हुए डाक्टरके पास पत्र भेजा।

डाक्टर-दम्पति विवाहको एक महत्त्वपूर्ण संस्कार मानते थे; इसलिये इसमें खूब सावधानी रखनी चाहिये, ऐसा समझकर उन्होंने उस लड़केको उत्तर दिया कि 'तुम अङ्कलेश्वर आओ, लड़कीको देखो और तुम्हारा मन माने तथा दोनोंको जँचे तो विवाहकी ग्रन्थिसे दोनोंको जोड़ा जा सकता है।'

अमेरिकासे अहीरके उस लड़केने डाक्टरको पत्रद्वारा सूचित किया कि 'सूरतमें मेरी माँ रहती है। मेरी माँ लड़कीको देखेगी और पसंद कर लेगी तो मेरी भी पसंदगी हो जायगी।' इस पत्रका डाक्टर दम्पतिके ऊपर अच्छा असर पड़ा। उनको ऐसा लगा कि अमेरिकामें पनामा-जैसे शहरमें रहनेपर भी जिसे अपनी माँके प्रति इतना प्रेम है, ऐसी श्रद्धा है, जरूर वह लड़का संस्कारी होगा।

लड़केकी माँ अङ्कलेश्वर आयी और लड़कीको देखते ही ब्याहकी स्वीकृति दे दी। डाक्टर दम्पति विवाहको बहुत ही महत्त्वकी दृष्टिसे देखते थे, इसलिये उन्होंने फिर उस लड़केको अमेरिका पत्र लिखकर उसकी माँकी स्वीकृतिकी सूचना दी और उसे स्वयं आकर देख लेनेके लिये लिखा।

अन्तमें अमेरिकासे वह अहीरका लड़का आया। दोनोंमें बातें हुईं और दोनोंकी सम्मतिसे विवाह हुआ।

डाक्टर दम्पति पागल हरनाथपर अचल श्रद्धा रखते थे। इस कारण धनु भी पागल हरनाथके ऊपर अचल श्रद्धा रखती थी। विवाह हो जानेके बाद धनुको पता लगा कि अमेरिकामें रहनेवाले जिस लड़केके साथ उसका विवाह हुआ, उस लड़केने भी एक रात स्वप्नमें देखा कि पागल हरनाथ प्रकट हुए हैं और कहते हैं कि 'भारतमें रहनेवाली इस लड़कीके साथ ब्याह कर, तेरा वैवाहिक जीवन सफल होगा।'

यह बात सुनकर धनुकी हरनाथके प्रति श्रद्धा और भी बढ़ गयी। पूर्ण शास्त्रोक्त विधिसे विवाह हुआ। डाक्टर नटवरलाल पारीख और श्रीमती शान्ता बहिनने विवाहोत्सव ऐसे समारोहसे किया मानो उनकी अपनी लड़की ब्याही जा रही हो। लड़केके तथा लड़कीके माँ-बाप और कुटुम्बके लोग भी बड़ी उमंगसे विवाहमें सम्मिलित हुए। ब्याहके बाद लड़का अमेरिका चला गया और कुछ समय बाद वह लड़की भी अमेरिका गयी।

आज उस अहीरका परिवार सब प्रकारसे सुखी है। धन भी काफी कमाता है। घरमें मोटर है। उनके चार बालक हैं और चारों ही पढ़ रहे हैं। आज भी अमेरिकासे धनुके पत्र डाक्टर नटवरलाल पारीख और शान्ता बहिनके पास आते हैं। धनका सदुपयोग भी धनु खूब करती है। अभी-अभी भरौंचमें पागल हरनाथके मन्दिरका उद्घाटन हुआ है और उसका बहुत-सा खर्च धनुने वहन किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धनु डाक्टर दम्पतिको अपने माता-पिता-जैसे ही मानती है। डाक्टर दम्पति भी धनुको अपनी पुत्री-जैसी मानते हैं।

अङ्कलेश्वरमें डाक्टरके घर बासन माँजती और घरका काम-काज करती हुई एक गड़ेरियाकी लड़की संस्कारके रंगमें रँगकर अमेरिकामें सुखी जीवन बिता रही है।

शान्ता बहिनके ये शब्द मेरे कानमें सदा गूँज रहे हैं कि 'मानव चाहे जिस जातिमें जन्म ले, तथापि उसमें संस्कारका बीजारोपण हो सकता है।'

—'पटेल काका'

(मगनलाल माधवदास पटेल)

(४)

भिखारीकी ईमानदारी

लगभग एक वर्ष पहलेकी बात है। हमारे पड़ोसमें एक मुकुन्द नामका ब्राह्मण रहता था। उसके संतान नहीं थी। वह सुबह-शाम झोली लेकर घर-घर भीख माँगकर अपना गुजारा करता था। घरमें अकेला ही रहता था।

एक दिन वह गाँवसे दूर एक अरहटपर स्नान करने जा रहा था। वापस आते समय उसने देखा—रास्तेमें एक छोटी-सी कपड़ेकी पोटली पड़ी है। उसने उसको उठा लिया और चलते-चलते खोला। उसमें एक हजार रुपये नगद तथा कुछ रेजगारी थी। रुपये देखकर एक बार तो उसे बड़ी खुशी हुई। वह खुशी-खुशी पोटली लिये घर आया। सोचने लगा कि मुझे कितना धन मिला है, अब तो मैं आरामसे अपना जीवन बिताऊँगा। परंतु दूसरे ही क्षण उसकी अन्तरात्माने उसको सावधान किया—जिसका यह पैसा है, उसको ही वापस मिलना चाहिये। उसकी आत्माने उसको एकदम जाग्रत् कर दिया। वह जिस रास्तेसे आया था, उसीसे लौट चला और एक गाँवमें पहुँचा। वहाँ जाकर वह सरपंचसे मिला। उसने सारे गाँवमें यह सूचना करवा दी कि एक बूढ़े व्यक्तिको एक हजार रुपये तथा कुछ रेजगारीकी एक पोटली मिली है। जिस किसीकी हो, वह ईमानदारीसे आकर निशानी बताकर ले जाय। इसी बीचमें एक युवक रोता हुआ आया और बोला—'मेरे रुपये वहाँ गिर गये थे। मैं अपना एक बैल मेलेमें बेचकर आ रहा था। रास्तेमें रुपयोंकी पोटली गिर गयी।' मुकुन्दको दया आ गयी और उसने ईमानदारीसे रुपये उसको दे दिये। वह अत्यन्त आप्यायित हो गया। इसके बदलेमें उसने मुकुन्दको एक सौ रुपये देने चाहे, परंतु उसने साफ इन्कार कर दिया। बहुत आग्रह करनेपर उसके घर भोजन करना स्वीकार किया। घटना बिल्कुल सत्य है।

—श्यामसुन्दर 'जाला'

देवलीकलां—पाली

(५)

दाँत-दाढ़के दर्दकी अनुभूत रामबाण दवा

नियमित रूपसे मंजन न करने, अन्नादिका कुछ अंश अंदर रह जाने, शरीरमें खूनके अंदर 'फासफोरस 'एवं' कैल-शियम'की कमी और अधिकतर गरम-गरम खाद्य पदार्थ खाने-पीनेके तुरंत बाद ठंडा जल पीनेके फलस्वरूप दाँत-दाढ़के मसूढ़ोंमें सूजन पैदा हो जाती है, दाँत सड़ जाते हैं तथा दाढ़में सूराख भी हो जाता है, जिसको 'कानी' होना कहते हैं।

दाढ़का दर्द 'केरिज' (Caries) बड़ा ही भयानक वेदनाजनक होता है। रोगीको चैन नहीं लेने देता। इस दर्दमें रोगी न खा-पी सकता है और न नींद ही ले पाता है।

दवा-प्रयोग—इस दवाका अंग्रेजी नाम है **कैलशियम लेक्टास**। चूने-जैसा सफेद रंगका पाउडर होता है। ऐलोपैथिक चिकित्सा-केन्द्रोंपर एवं अंग्रेजी दवा बेचनेवालोंके यहाँ मिल सकती है। सस्ता भी है। दो तोले ले आइये। ४ माशा करीब एक बारमें लेकर दिनमें ३ बार मंजनकी तरह जहाँ दर्द हो तथा दर्दके इर्द-गिर्द अँगुलीसे मलिये। यदि कानी (केरिज) हो तो ऐसी कोशिश कीजिये जिसमें दवाका कुछ अंश सूराखमें चला जाय। यह मलनेकी क्रिया पाँच मिनट तक करते रहिये। दवासे सना थूक या लार गलेमें न उतारकर बाहर ही थूक देना चाहिये। भूलसे अंदर चला भी जाय तो हानि भी नहीं होती। एक दिनमें ही आराम मिल जायगा, फिर भी दूसरे दिन इस क्रियाको फिर कीजिये। मैंने बहुत-से रोगियोंपर इसका प्रयोग किया है और शतप्रति सफलता पायी है।

कोई सज्जन यह कार्य लोभ-लालचवश न करें। केवल 'पर हित सरिस धरम नहिं भाई'के सिद्धान्तपर ही सेवाके भावसे करें। किसी भाईको यदि दवा कहीं न मिले तो उनके लिखनेपर मैं बिना मूल्य भेज सकूँगा।

—मदनलाल काबरा 'सकन्धपाल' ए० एच०

पो०—छापेल, त० कोटड़ी निवासी हमीरगढ़के

जिला—भीलवाड़ा (राजस्थान)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिहारका भयानक अकाल

बिहारके अधिकांशमें अन्न-जलका भयानक अभाव है। मनुष्यों और गौओंकी बड़ी दुर्दशा है। उत्तरप्रदेश तथा राजस्थानमें भी कई स्थानोंमें अकाल है। बिहारमें सरकारने अकाल घोषित कर दिया है, पर मनुष्य और गौकी रक्षाके लिये जैसी व्यवस्था अपेक्षित है, वैसी सरकार अभी नहीं कर पायी है। बिहारमें ईसाई संस्थाएँ इस समय सहायताका बहुत बड़ा कार्य कर रही हैं। स्वाभाविक ही सेवाकार्यके साथ ईसाई-धर्मका भी विस्तार होगा ही। बहुत योग्य, सेवापरायण ईसाई सज्जन वहाँ गये हुए हैं, धनकी प्रचुरता है और सेवा करना जानते हैं। अतएव उनकी सेवा लोगोंको प्रिय भी हो रही है। सरकार, जनता तथा देशवासी पर्याप्त सेवा न कर सकें और उन लोगोंको उनके ईसाई होनेके नाते सेवा करनेसे रोका जाय, यह सम्भव नहीं और उचित भी नहीं। असलमें तो हम भारतीयोंका यह कर्तव्य है कि किसी भी प्रदेशकी पीड़ाको अपनी ही पीड़ा मानकर—सब लोग उस पीड़ाको दूर करनेमें जी-जानसे लग जायँ।

हमारी प्रधान मन्त्री श्रीइन्दिराजी प्रयत्न कर रही हैं, विभिन्न संस्थाओंकी ओरसे भी सराहनीय सेवा-कार्य हो रहा है। सरकार भी कर रही है; परंतु जितना आवश्यक है, उसकी दृष्टिसे अभी बहुत कुछ त्रुटि है। पशुरक्षाका प्रश्न भी बिहारमें बहुत बड़ा है। ऐसा समाचार मिला है—साठ लाख गौएँ बिहारमें सूखा-पीड़ित हैं। वहाँ सहस्रों गौएँ मर गयी हैं। काफी मात्रामें गौओं-का निर्यात हो रहा है, जो सरकारको तुरंत बंद कर देना चाहिये। 'बम्बई जीवदयामण्डल', 'बिहार राज्य-गोशाला-पिंजरापोल संघ', 'महाराष्ट्र राज्य-गोशाला-पिंजरा-पोल संघ', 'केन्द्रीय रिलीफ कमेटी बम्बई' तथा 'बिहार रिलीफ कमेटी' के संरक्षण और तत्त्वावधानमें एक लाख गोवंशकी रक्षाका प्रयत्न किया जा रहा है। प्रसिद्ध पुराने गोसेवक प्राणिमित्र श्रीधर्मलालजी महान् प्रयत्न कर रहे हैं। 'भारत-गो-सेवक-समाज' के मन्त्री श्रीजयन्ती-लालजी मानकर, जिन्होंने जीवनभर अकाल-सेवाका कार्य किया है और जो अत्यन्त सदय-हृदय होनेके साथ ही व्यवस्था करनेमें अत्यन्त निपुण हैं, वहाँ गये हुए हैं। 'गोरक्षा-महाभियान-समिति' के श्रीविश्वम्भरप्रसादजी शर्मा भी वहाँ गये थे और महाभियान-समितिकी ओरसे भी वहाँ चारा-केन्द्र खोलनेपर विचार हो रहा है।

गीताप्रेस-सेवा-दलकी ओरसे भी कुछ सेवा-कार्य हो रहा है। उससे भी लोगोंको यत्किंचित् सहारा मिल रहा है, पर वह अभी नगण्य है। काम बढ़ानेका विचार हो रहा है। हमारे बिना माँगे ही इधर कुछ सहायता बाहरसे आयी है, पर वह अभी बहुत कम है।

बिहारमें मनुष्य और गोवंश दोनोंकी ही बड़ी दयनीय दशा है। हमारे पास जो सहायता आयेगी, उसमें मानव-सेवाका कार्य तो 'गीताप्रेस-सेवादल'के द्वारा होगा और जो गोवंशकी सेवाके लिये सहायता भेजेंगे, वह सेवाकार्य श्रीमानकरजी तथा शर्माजीकी देखरेखमें किया जायगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपासना-अङ्क

'कल्याण' का आगामी विशेषाङ्क

यह निश्चय किया गया है कि निम्नलिखित सूचीके अनुसार तथा और भी उपयोगी सामग्रीका संग्रह हो गया तो 'कल्याण' का आगामी विशेषाङ्क 'उपासना-अङ्क' के नामसे प्रकाशित किया जायगा। इस अङ्कमें उपासनाके महत्त्वपूर्ण विविध विषयोंपर अनुभवी साधकों तथा विद्वान् शास्त्रज्ञ पुरुषोंके लेखोंका तथा अन्यान्य उपयोगी सामग्रीका प्रकाशन होगा। हमारी विनीत प्रार्थना है कि उपासना-तत्त्वके ज्ञाता, अनुभवी तथा साधक पुरुष एवं इन विषयोंके मर्मज्ञ विद्वान् लेख भेजनेकी कृपा करें। लेख शुद्ध स्पष्ट अक्षरोंमें, कागजकी एक पीठपर कुछ हासिया छोड़कर लिखा जाय। संस्कृत मन्त्रों-श्लोकोंका हिंदी अनुवाद भी रहे। हिंदीके अतिरिक्त संस्कृत, बँगला, मराठी, गुजराती और अंगरेजीमें भी लेख भेज सकते हैं। लेख बहुत बड़ा न हो—यथाशक्य पुनरुक्तियोंसे रहित हो। लेख अगस्तके अन्ततक अवश्य कृपा करके भेज दें।

लेखके प्रकाशित होनेका निश्चय लेख देखनेके पश्चात् ही हो सकेगा। विषय-सूची नीचे प्रकाशित है।

विनीत—सम्पादक 'कल्याण'

उपासना-विशेषाङ्ककी प्रस्तावित विषय-सूची

१-वैदिक उपासना।
- (१) उद्गीथविद्या।
- (२) उपकोशलविद्या।
- (३) पञ्चाग्निविद्या।
- (४) संवर्गविद्या।
- (५) मधुविद्या।
- (६) शाण्डिल्यविद्या।
- (७) पर्यङ्कविद्या।
- (८) अग्निविद्या—इत्यादि।

२-आगमके अनुसार वरिवस्या (उपासना)-रहस्य।
३-कामकला-विज्ञान (इस प्रसङ्गमें अग्नितत्त्व, सोमतत्त्व तथा सूर्यतत्त्वका स्वरूप-निरूपण)।
४-कामकला-तत्त्वमें सृष्टि तथा संहारका रहस्य निहित है।
५-हार्ध-कला।
६-अहंग्रह-उपासना।
७-प्रतीक-उपासना।
८-श्रीचक्र-लेखन-प्रक्रिया (बाहरसे भीतरकी ओर और भीतरसे बाहरकी ओर)।
९-श्रीचक्र-उपासना।
१०-श्रीचक्रके अवयव और उनका रहस्य।
११-अन्य देवताओंके चक्र-लेखन-प्रकार।
१२-अङ्क-यन्त्र तथा मन्त्र-यन्त्रका पार्थक्य (उपासनामें)।
१३-मार्ग-भेद—अनुपाय और शाम्भव उपाय, शाक्त उपाय, आणव उपाय।
१४-अधिकार-भेदसे मार्गभेदकी व्यवस्था।
१५-प्रतिमार्गका सविस्तर वर्णन।
१६-ज्ञानकी सप्तभूमियाँ।
१७-अज्ञानकी सप्तभूमियाँ।
१८-अद्वैत-साधनमें उपासना-मार्ग तथा विचार-मार्गका परस्पर भेद।
१९-अमनस्क योग।
२०-समना शक्तिसे उन्मना शक्तिमें प्रवेश।
२१-शाम्भवी अथवा भैरवी मुद्राका स्वरूप और इसकी साधन-प्रणाली।
२२-शाम्भवी मुद्राका उद्देश्य।
२३-चतुर्विध वाक्तत्त्वका स्वरूप-निरूपण और वाक्-साधना।
२४-वैखरी भूमिसे पश्यन्तीपर्यन्त अथवा परापर्यन्त जानेका विवरण।
२५-जप-विज्ञान।
२६-मन्त्रके दोष तथा दोषक्षालन।
२७-अजपा-रहस्य।
२८-आरोप-साधन और इसकी प्रक्रिया।
२९-त्राटकमुद्राका रहस्य।
३०-शुद्ध विद्याका उदय और उसका क्रम-विकास।
३१-शुद्ध विद्यामें ज्ञान तथा क्रियाका परस्पर सम्बन्ध।
३२-अष्टाङ्गयोग-साधना।
३३-षडङ्गयोग-साधना।
३४-बौद्ध-षडङ्गयोग तथा आगम-षडङ्गयोगका भेद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३५–बौद्ध-योगके प्रकार-भेद और प्रति प्रकारका विवरण ।
३६–वज्रयोगका उद्देश्य ।
३७–प्रातिभ ज्ञान अथवा अनौपदेशिक ज्ञानकी महिमा ।
३८–सहज साधना ।
३९–अनुपाय मार्गकी साधनासे सहज साधनाका भेद ।
४०–ज्ञान तथा अज्ञानके बौद्ध तथा पौरुष भेदका विवरण ।
४१–पौरुष अज्ञान-निवृत्तिका उपाय ।
४२–बौद्ध अज्ञाननिवृत्तिका उपाय ।
४३–जीवन्मुक्तिके लिये बौद्ध-ज्ञानकी आवश्यकता ।
४४–मलत्रयका रहस्य—इस प्रसङ्गमें आणवमल, मायामल तथा कर्ममलका विवेचन ।
४५–आत्म-प्रत्यभिज्ञाका रहस्य ।
४६–युगल अथवा यामल तत्त्वका विवेचन ।
४७–युगनद्ध स्वरूप ।
४८–पूर्णाहंता-रहस्य ।
४९–गायत्री-उपासनाका विज्ञान ।
५०–त्रिपदा गायत्री ।
५१–गायत्रीका चतुर्थ पाद ।
५२–आम्नाय-भेद ।
५३–पूर्वाम्नाय, दक्षिणाम्नाय, पश्चिमाम्नाय तथा उत्तराम्नायका सरल विवेचन ।
५४–दीक्षाका स्वरूप और प्रकार-भेद ।
५५–अभिषेक-तत्त्व—शाक्ताभिषेक, पूर्णाभिषेक आदिका रहस्य ।
५६–आवर्तनका रहस्य—दक्षिणावर्तन तथा वामावर्तनका भेद ।
५७–ऊर्ध्व-आम्नाय-तत्त्व ।
५८–समय-दीक्षा ।
५९–साधक-दीक्षा ।
६०–आचार्य-दीक्षा ।
६१–दीक्षा-प्रवृत्तिका स्वरूप—उसमें पाशक्षय तथा शिवत्व-योजनका तत्त्वनिरूपण ।
६२–विभूति-रहस्य ।
६३–खण्ड-विभूति तथा महाविभूतिका भेद ।
६४–सर्वात्मतारूप महाविभूतिका स्वरूप ।
६५–उपासनाका स्वरूप-निरूपण और अधिकार-भेदसे भेद ।
६६–नाड़ी-विज्ञान—देहस्थ सभी प्रसिद्ध नाड़ियोंके नाम तथा क्रियाओंका विवरण ।
६७–नाड़ीशुद्धि और उसका फल ।
६८–इडा, पिङ्गला, सुषुम्ना, वज्रिणी, चित्रिणी तथा ब्रह्मनाड़ीका स्वरूप तथा कार्य-विवरण ।
६९–रूप-सेवाका रहस्य ।
७०–गुरुपङ्क्ति तथा ओघत्रय—इसमें दिव्यौघ, सिद्धौघ, मानवौघ गुरुओंका विवरण । इस प्रसङ्गमें गुरु, परम गुरु, परमेष्ठी गुरु तथा परात्पर गुरु स्वरूप-निरूपण ।
७१–विहंगम-मार्ग तथा पिपीलिका-मार्गका भेद ।
७२–श्रीविद्या-तत्त्व ।
७३–कादि, हादि, कहादिके भेद ।
७४–सादि विद्याका रहस्य ।
७५–मधुमती-रहस्य ।
७६–गुरु-पादुका ।
७७–गुरु-पादुकासे उन्मना तथा समना त्रिकोणका सम्बन्ध
७८–परम पदका स्वरूप ।
७९–परब्रह्मका स्वरूप ।
८०–भक्ति-साधना ।
८१–नवधा भक्ति ।
८२–साधन-भक्ति तथा फलरूपा भक्ति ।
८३–विधि-मार्गके साधन तथा राग-मार्गके साधनमें भेद इसी प्रसङ्गमें मर्यादा-भक्ति तथा पुष्टि... भेद-निरूपण ।
८४–रागात्मिका भक्ति तथा रागानुगा भक्तिका भेद ।
८५–भक्तिका क्रम-विकास—पराभक्ति, परमाभक्ति आदि
८६–भाव-साधना ।
८७–भाव-साधनामें आश्रय तथा विषय आलम्बनका ... विचार ।
८८–महाभावका स्वरूप ।
८९–भावसे महाभावका सम्बन्ध ।
९०–रस-तत्त्वका विश्लेषण ।
९१–भावसे रसपर्यन्त प्रगति ।
९२–भगवान्‌की स्वरूपशक्तियोंका विलास—संधिनी, ... तथा ह्लादिनीका परस्पर सम्बन्ध ।
९३–कुञ्जलीला एवं निकुञ्जलीलामें भेद ।
९४–तन्त्रदृष्टिसे भाव तथा आचारका सम्बन्ध ।
९५–पशुभाव, वीरभाव तथा दिव्य भावका विचार ।
९६–पशुभावमें स्व-स्वभाव तथा विभावका विचार ।
९७–वीरभावमें विभाव तथा स्व-भावका विचार ।
९८–दिव्य भावका रहस्य—प्रसङ्गतः दक्षिणाचार, ... तथा सिद्धान्ताचारका स्वरूप, अधिकार तथा भेद ।
९९–कुमारी तथा कुमारी-उपासना ।
१००–कलाओंके भेदसे कुमारीका भेद ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१०१–पञ्चदशी, षोडशी तथा सप्तदशी विधाका स्वरूप ।
१०२–विन्दु तथा विसर्ग-तत्त्वका रहस्य ।
१०३–षट्चक्रोंका रहस्य ।
१०४–चक्रभेदका तात्पर्य ।
१०५–गुप्त चक्रोंका विचार ।
१०६–महाशून्य तथा भ्रमरगुहाका रहस्य ।
१०७–हठयोगका यथार्थ स्वरूप-निरूपण ।
१०८–वायुक्रिया तथा चित्तक्रियाका परस्पर सम्बन्ध ।
१०९–प्राणायामके भेद तथा विज्ञान ।
११०–नादानुसंधानका रहस्य ।
१११–अमरोली, वज्रोली तथा सहजोलीका रहस्य ।
११२–बौद्धसाधनमें आनापान-स्मृतिका रहस्य ।
११३–कुण्डलिनी-तत्त्व ।
११४–परा कुण्डलिनी, शक्ति-कुण्डलिनी तथा प्राण-कुण्डलिनी-का तत्त्व ।
११५–ऊर्ध्वकुण्डलिनी तथा अधःकुण्डलिनीका भेद ।
११६–आसनके भेद तथा प्रति आसनका फलगत वैशिष्ट्य ।
११७–चित्तका परिकर्म—मैत्री, करुणा, मुदिता, उपेक्षा ।
११८–बिन्दु, नाद तथा कला-तत्त्व ।
११९–भवाङ्ग-स्रोत तथा वीथिचित्तका विवरण ।
१२०–बौद्ध-साधनमें परिग्रह-निमित्त, उद्ग्रह-निमित्तादि प्रवृत्तियोंका स्वरूप-निरूपण ।
१२१–कुशल-मूलका क्रम-विकास ।
१२२–अग्रधर्म-उत्पत्तिका हेतु ।
१२३–निर्वेधभागीय तथा मोक्षभागीय संस्कारका विचार ।
१२४–स्पन्दविज्ञानका रहस्य ।
१२५–खेचरी, गोचरी, दिक्चरी और भूचरी शक्तियोंका स्वरूप तथा कार्य ।
१२६–ब्रह्मचर्यसाधनका रहस्य ।
१२७–बिन्दु-सिद्धिकी प्रक्रिया ।
१२८–ऊर्ध्वरेता होनेका उपाय ।
१२९–कैवल्यगत भेद ।
१३०–विशुद्ध विज्ञान-कैवल्य, अशुद्ध विज्ञान-कैवल्य तथा प्रलय-कैवल्यका भेद ।
१३१–परा-त्रिंशिका-रहस्य ।
१३२–मातृका-तत्त्व तथा मातृका-चक्र ।
१३३–पूर्व कौल तथा उत्तर कौलमें भेद ।
१३४–अन्तर्याग तथा बहिर्याग ।
१३५–पुत्रक-दीक्षा ।
१३६–पाशुपत साधना ।
१३७–न्यासविज्ञान ।
१३८–षोढान्यासकी महिमा ।
१३९–मातृकान्यास तथा मालिनीन्यास ।
१४०–वीरशैव-सम्प्रदायकी साधना ।
१४१–रसेश्वर-सम्प्रदायकी साधना ।
१४२–उन्मीलन-समाधि तथा निमीलन-समाधि ।
१४३–सविकल्प समाधि तथा निर्विकल्प समाधि ।
१४४–सम्प्रज्ञात समाधि तथा असम्प्रज्ञात समाधि ।
१४५–क्रममार्गका विज्ञान ।
१४६–लिङ्गोद्धार-रहस्य ।
१४७–सद्यःसमुत्क्रमण-दीक्षा ।
१४८–ज्ञान-कर्म-समुच्चय—सम समुच्चय तथा विषम समुच्चय ।
१४९–उत्क्रमण-विज्ञान तथा 'दशम द्वार'का रहस्य ।
१५०–काय-साधना—वायुमूलक, मन्त्रमूलक तथा द्रव्यमूलक ।
१५१–'ॐ'का रहस्य ।
१५२–मृतोद्धरण-दीक्षा ।
१५३–एकायन मार्ग, शरणागति तथा प्रपत्ति ।
१५४–दिव्यकरण ।
१५५–'केवल' कुम्भककी महिमा ।
१५६–मानस-पूजा ।
१५७–कालचक्र-रहस्य ।
१५८–कालसंकर्षिणी विद्या ।
१५९–परा-प्रासाद तथा प्रासाद-पराका भेद ।
१६०–शव-साधना ।
१६१–पुरश्चरण-रहस्य ।
१६२–स्वाध्याय और योगका परस्पर सम्बन्ध ।
१६३–मन्त्रार्थविज्ञान तथा मन्त्रचैतन्य ।
१६४–मन्त्रके विभिन्न अर्थोंका विवरण ।
१६५–मन्त्रकी सुषुप्ति तथा जागरण ।
१६६–मन्त्र-साधनामें कुल्लूका सेतु, महासेतु, निर्वाण-प्रवृत्तिका रहस्य ।
१६७–माला-जप ।
१६८–मालाके भेद ।
१६९–वर्णमाला, करमाला इत्यादि ।
१७०–देवता-भेदसे माला-भेदका रहस्य ।
१७१–योनि-मुद्रा-रहस्य ।
१७२–आसन-तत्त्व और आसनके प्रकार-भेद ।
१७३–उपासनामें आवाहन, संस्थापन, संनिधापन, संनिरोध, सम्मुखीकरण, अवगुण्ठन प्रभृतिका रहस्य ।
१७४–सकलीकरण-तत्त्व ।
१७५–परमीकरण ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१७६–ब्रह्म-उपासनामें सगुण तथा निर्गुणका भेद ।
१७७–हठयोगके षट्कर्म—नेति, धौति, वस्ति, त्राटक, नौलि इत्यादि ।
१७८–कपालभाति ।
१७९–प्रदक्षिण-तत्त्व परिक्रमा-रहस्य ।
१८०–प्राण-प्रतिष्ठा ।
१८१–मन्त्रसंहिताओंमें उपासना-तत्त्व ।
१८२–ब्राह्मणों तथा आरण्यकोंमें उपासना ।
१८३–उपनिषदोंमें उपासना ।
१८४–स्मृतियोंमें उपासना ।
१८५–पुराणोंमें उपासना ।
१८६–वैष्णवतन्त्रोंमें उपासना ।
१८७–शैवतन्त्रोंमें उपासना ।
१८८–शाक्ततन्त्रोंमें उपासना ।
१८९–जैनधर्ममें उपासना ।
१९०–बौद्धधर्ममें उपासना ।
१९१–हीनयानी उपासना ।
१९२–महायानी उपासना ।
१९३–वज्रयानी उपासना ।
१९४–नाथपंथमें उपासना ।
१९५–सिद्धपन्थमें उपासना ।
१९६–उपासनामें योग ।
१९७–उपासना तथा ज्ञानमार्ग ।
१९८–उपासनामें भक्तितत्त्व ।
१९९–कर्मयोग और उपासना ।
२००–उपासनामें मन्त्रोंका उपयोग ।
२०१–उपासनामें अधिकारविचार ।
२०२–उपासनामें शिष्यतत्त्व ।
२०३–उपासनामें गुरुतत्त्व ।
२०४–गुरुका स्वरूप, योग्यता तथा उपयोग ।
२०५–श्रीमद्भागवतमें उपासना-रूप ।
२०६–शैवपुराणोंमें उपासना ।
२०७–देवीभागवतमें उपासना ।
२०८–पद्मपुराणमें वैष्णवी उपासना ।
२०९–वैदिकदर्शनमें उपासना ।
२१०–उपासनाका स्वरूप भिन्न-भिन्न दर्शनोंके संदर्भमें ।
२११–श्रीवैष्णवमतमें उपासना ।
२१२–निम्बार्कमतमें उपासना ।
२१३–मध्वमतमें उपासना ।
२१४–चैतन्यमतमें उपासना ।
२१५–वल्लभमतमें उपासना ।
२१६–पारसीमतमें उपासना ।
२१७–यहूदीमतमें उपासना ।
२१८–ईसाईमतमें उपासना ।
२१९–इस्लाममतमें उपासना ।
२२०–सूफीमतमें उपासना ।
२२१–कुरानमें मान्य उपासना ।
२२२–बाइबलमें मान्य उपासना ।
२२३–उपासना तथा चौरासी सिद्ध ।
२२४–उपासक-सम्प्रदाय ।
(१) वैष्णव-सम्प्रदाय ।
(२) शैव-सम्प्रदाय ।
(३) शाक्त-सम्प्रदाय ।
(४) गाणपत्य-सम्प्रदाय ।
(५) सौर-सम्प्रदाय ।
२२५–पञ्चदेवोपासना ।
२२६–श्रीरामोपासना एवं श्रीकृष्णोपासना ।
२२७–विभिन्न देवी-देवताओंकी उपासना ।
२२८–विभिन्न भगवदवतारोंकी उपासना—नृसिंहो[illegible] हयग्रीवोपासना, दत्तात्रेयोपासना आदि ।
२२९–नाना आचार्योंकी उपासना—उनका स्वरूप तथा [illegible]
२३०–तुलसीदासकी उपासना ।
२३१–सूरदासकी उपासना ।
२३२–निर्गुणमतके संतोंकी उपासना ।
२३३–व्रजभक्तोंकी उपासना ।
२३४–उपासनासे लौकिक लाभ ।
२३५–उपासनासे लाभके सच्चे दृष्टान्त ।
२३६–उपासनासे पारमार्थिक लाभ ।
२३७–ईश्वरोपासना और देवोपासना ।
२३८–नवग्रह-उपासना ।
२३९–उपासनासे सिद्धि ।
२४०–उपासनाकी आवश्यकता ।
२४१–उपास्य देवताओंके ध्यान एवं मन्त्रादि ।
२४२–दिवंगत सिद्ध उपासकोंके उपासना-सम्बन्धी [illegible] तथा चरित्र ।
२४३–तन्त्र, भक्ति तथा उपासनाके नामपर दम्भ[illegible] प्रसार ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मलीन श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके २४१ लेखोंका एक संग्रह

(प्रत्येक भागमें सर्वथा स्वतन्त्र अलग-अलग लेख हैं)

इन लेखोंमें लौकिक, पारलौकिक, व्यावहारिक, पारमार्थिक, नैतिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक, सर्वतोमुखी उन्नति करानेमें सहायक एवं सभी वर्ण-आश्रम, स्त्री-पुरुष और बालक-बालिकाओंके कामकी यथेष्ट सामग्री है। वस्तुतः ये लेख परमात्मतत्त्वका यथार्थ ज्ञान करानेके लिये 'चिन्तामणि'के समान हैं।

भाग १–में २९ लेखोंका संग्रह, पृष्ठ ३५२, चित्र तिरंगा २, मूल्य ... .७५

भाग २–में ४८ लेखोंका संग्रह, पृष्ठ ५९२, चित्र तिरंगा १, मूल्य ... १.००

भाग ३–में ३३ लेखोंका संग्रह, पृष्ठ ४२४, चित्र तिरंगे २, मूल्य ... .८०

भाग ४–में ३१ लेखोंका संग्रह, पृष्ठ ५२८, चित्र तिरंगे ५, मूल्य ... .९५

भाग ५–में ३४ लेखोंका संग्रह, पृष्ठ ४९६, चित्र तिरंगे ४, मूल्य ... .९५

भाग ६–में ३४ लेखोंका संग्रह, पृष्ठ ४५६, चित्र तिरंगा १, मूल्य ... १.००

भाग ७–में ३२ लेखोंका संग्रह, पृष्ठ ५२०, चित्र तिरंगा १, मूल्य ... १.२५

इन सातों भागोंमें कुल लेख २४१, पृष्ठ ३३६८, चित्र तिरंगे १६, सातोंका मूल्य ६.७० डाकखर्च ३.३५ कुल १०.०५ मात्र।

भाग १ से ५ तकके छोटे आकारके गुटका संस्करण भी मिलते हैं।

भाग १–में २९ लेखोंका संग्रह, पृष्ठ ४४८, चित्र तिरंगा २, सजिल्द ०.६०
भाग २–में ४८ लेखोंका संग्रह, पृष्ठ ७५२, चित्र तिरंगा १, ,, ०.७०
भाग ३–में ३३ लेखोंका संग्रह, पृष्ठ ५६०, चित्र तिरंगा १, ,, ०.६०
भाग ४–में ३१ लेखोंका संग्रह, पृष्ठ ६८४, चित्र तिरंगा १, ,, ०.७५
भाग ५–में ३४ लेखोंका संग्रह, पृष्ठ ६२१, चित्र तिरंगा १, ,, ०.७०

पाँचों भागोंकी कुल पृष्ठ-संख्या ३०६५, तिरंगे चित्र ६, पाँचोंका अलग-अलग जिल्दमें सजिल्द मूल्य ३.३५ डाकखर्च २.१५ कुल ५.५०।

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

'29 JUN 1967
कृ० 6६७

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रजि० सं० एल्० १७

एक नयी पुस्तक ! *प्रकाशित हो गयी !!*

हिंदू-विवाहका पवित्र स्वरूप तथा महत्त्व

(आशीर्वादसहित)

[देशके कुछ चुने हुए मनीषियोंकी लेखनीसे]

विचार और मननके लिये तथा शुभ विवाह-संस्कारके मङ्गल अवसरपर वितरणके लिये आकार डिमाई आठ पेजी, पृष्ठ-संख्या १७८, श्रीराधा-माधवके विवाहका सुन्दर बहुरंगा चित्र, मूल्य एक रुपया। डाक-खर्च .८५।

प्रस्तुत पुस्तकमें नारीकी महत्ता, नारीके पवित्र आदर्श त्याग, नारीके कुसुम-कोमल हृदय तथा उसकी वज्रोपम कठिन कर्तव्यनिष्ठारूप तपस्या, विवाह-संस्कारकी महत्ता और आवश्यकता, विवाह-संस्कारके पवित्र भाव, विवाह-संस्कारके प्रधान मन्त्रोंका सारांश एवं नारी तथा पुरुष दोनोंके लिये अवश्य पालनीय धर्म एवं कर्तव्य आदिके सम्बन्धमें अमृतरसमय सदुपदेश तथा दुर्लभ मङ्गलाशिषके रूपमें आदर्श महत्-वाक्योंका संग्रह किया गया है, जो बहुत सुन्दर तथा पढ़ने-समझने और जीवनमें उतारने योग्य हैं।

देशके विभिन्न क्षेत्रोंके, विभिन्न रुचि तथा कर्तव्यनिष्ठावाले आदर्श व्यक्तियोंके द्वारा उनकी अपनी-अपनी पृथक् भाषा-शैलीमें लिखे होनेके कारण इन आशीर्वाक्योंका सौन्दर्य तथा महत्त्व और भी बढ़ गया है। ये महत्-वाक्य प्रत्येक परिस्थितिमें कर्तव्यका बोध करानेवाले, अन्धकारमें निर्मल ज्योतिका दर्शन करानेवाले, सदा सुन्दर निर्विघ्न पथ-प्रदर्शन करनेवाले एवं पवित्र सुख-शान्तिमय गृहस्थ-जीवनके निर्माणमें परम सहायक हैं।

विवाहके समय कन्या-वरको इस पुस्तिकाका मर्म समझनेके साथ ही दोनों परिवारोंके सभी आदरणीय पुरुषों और महिलाओंमें इसका वितरण करना भी बहुत लाभदायक हो सकता है।

छपाई-सफाई तथा मुखपृष्ठ सुन्दर एवं आकर्षक हैं।

व्यवस्थापक—**गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)**

'कल्याण'के पुराने प्राप्य विशेषाङ्क (डाकखर्च संबमें हमारा है)

१—मानवता-अङ्क—पृष्ठ-सं० ७०४, मानवताकी प्रेरणा देनेवाले सुन्दर चित्र—बहुरंगे ३९, दुरंगे एकरंगे १०१ और रेखाचित्र ३९, मूल्य रु० ७.५० पैसे।

२—संक्षिप्तशिवपुराणाङ्क—प्रसिद्ध शिवपुराणका संक्षिप्त सार-रूप है। इसमें ७०४ पृष्ठोंकी ठोस सामग्री है, बहुरंगे चित्र १७, दोरंगा १, सादा १२ तथा रेखाचित्र १३८, मूल्य रु० ७.५०, सजिल्दका ८.…

३—संक्षिप्तब्रह्मवैवर्त्तपुराणाङ्क—इसमें भगवान् श्रीकृष्णकी विविध दिव्य लीलाओंका बड़ा ही रोचक … है। पृष्ठ-संख्या ७०४, बहुरंगे चित्र १७, दोरंगा १, इकरंगे ६, रेखाचित्र १२०, मूल्य रु० ७.५०, सजिल्द रु० ८.…

४—धर्माङ्क—धर्म-सम्बन्धी विवेचनाओं, सुरुचिपूर्ण कथाओं, सरस सूक्तियों तथा रोचक निबन्धोंसे … पृष्ठ-सं० ७००, बहुरंगे चित्र १४, दोरंगा १, सादे चित्र ४ तथा रेखाचित्र ८१, सजिल्द (कपड़ेकी जिल्द) मूल्य रु० ८.७५।

व्यवस्थापक—**'कल्याण', पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याण

पुस्तकालय
गुरुकुल काँगड़ी

भगवान्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

वर्ष ४१] [अङ्क ८

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

संस्करण १,५०,०००

विषय-सूची

कल्याण, सौर भाद्रपद २०२४, अगस्त १९६७

विषय	पृष्ठ-संख्या
१–मृद्-भक्षण-लीला [कविता] (श्रीकृपाराम कृत प्राचीन अप्रकाशित भाषा भागवतसे)	१०८९
२–कल्याण ('शिव')	१०९०
३–एक संतका उपदेशामृत (प्रेषक—श्री'माधव')	१०९१
४–जड निष्क्रियता और सच्चा समर्पण (श्री-श्रीमाताजी, श्रीअरविन्दाश्रम, पांडिचेरी)	१०९२
५–परम पुरुषार्थका साधन (प० पू० आत्मनिष्ठ श्रीरंगनाथ महाराज परभणीकर)	१०९८
६–महर्षि कृष्णद्वैपायन (श्रीनीरजाकान्त चौधरी देवशर्मा)	११०३
७–मनन-माला (ब्र० श्रीमगनलाल हरिभाई व्यास)	११०८
८–कलियुगकी वृद्धि चरम सीमापर (पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा)	११११
९–रामचरितमानसमें विद्यार्थी-धर्म (श्री-राजेन्द्रप्रसादजी वर्मा, एम्० ए०)	१११४
१०–हम सुखी कैसे हों ? (श्रीरमानाथजी खैरा, एडवोकेट)	१११९
११–श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी-महोत्सव (श्रीरामचन्द्र-कृष्ण प्रभु)	११२४
१२–धर्मके प्रति ये भ्रान्त धारणाएँ (श्री-नारायणदासजी 'वीर')	११२७
१३–व्रजवासकी विधि [कविता] (संत श्रीव्यासदासजी)	११२९
१४–पूजा [कहानी] (श्री'चक्र')	११३०
१५–विचारक बननेका मूल मन्त्र क्या, क्यों और कैसे ? (श्रीअगरचंदजी नाहटा)	११३३
१६–दक्षिण भारतकी तीर्थयात्रा (सेठ श्रीगोविन्ददासजी, श्रीमती रत्नकुमारी देवी, श्रीगोविन्दप्रसादजी श्रीवास्तव)	११३५
१७–औषध, इंजेक्शन और स्वास्थ्य (डा० श्रीरविकिशोरजी नशीने)	११४०
१८–प्रेमावतार श्रीचैतन्य महाप्रभु (प्रो० श्रीजगन्नाथप्रसादजी मिश्र)	११४३
१९–गोरक्षा-सत्याग्रह एक बार स्थगित (हनुमानप्रसाद पोद्दार)	११४६
२०–दिल्ली तिहाड़ जेलमें गोरक्षाके सत्याग्रही साधुओंपर अमानुषिक प्रहार (हनुमानप्रसाद पोद्दार)	११४७
२१–श्रीजुगलकिशोरजी बिड़लाका परम निर्वाण (हनुमानप्रसाद पोद्दार)	११४८
२२–पढ़ो, समझो और करो	११४९

चित्र-सूची

१–श्रीराधा-मुरलीधर	(रेखाचित्र)	मुखपृष्ठ
२–मैया ! मैं माटी नहिं खाई	(तिरंगा)	१०८९

वार्षिक मूल्य
भारतमें ८.५०
विदेशमें १५.६०
(१५ शिलिंग)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय । सत-चित-आनँद भूमा जय जय ॥
जय जय विश्वरूप हरि जय । जय हर अखिलात्मन् जय जय ॥
जय विराट जय जगत्पते । गौरीपति जय रमापते ॥

साधारण ... भारतमें ... विदेशमें ... (...

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाल गोस्वामी, एम्० ए०, शास्त्री
मुद्रक-प्रकाशक—मोतीलाल जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

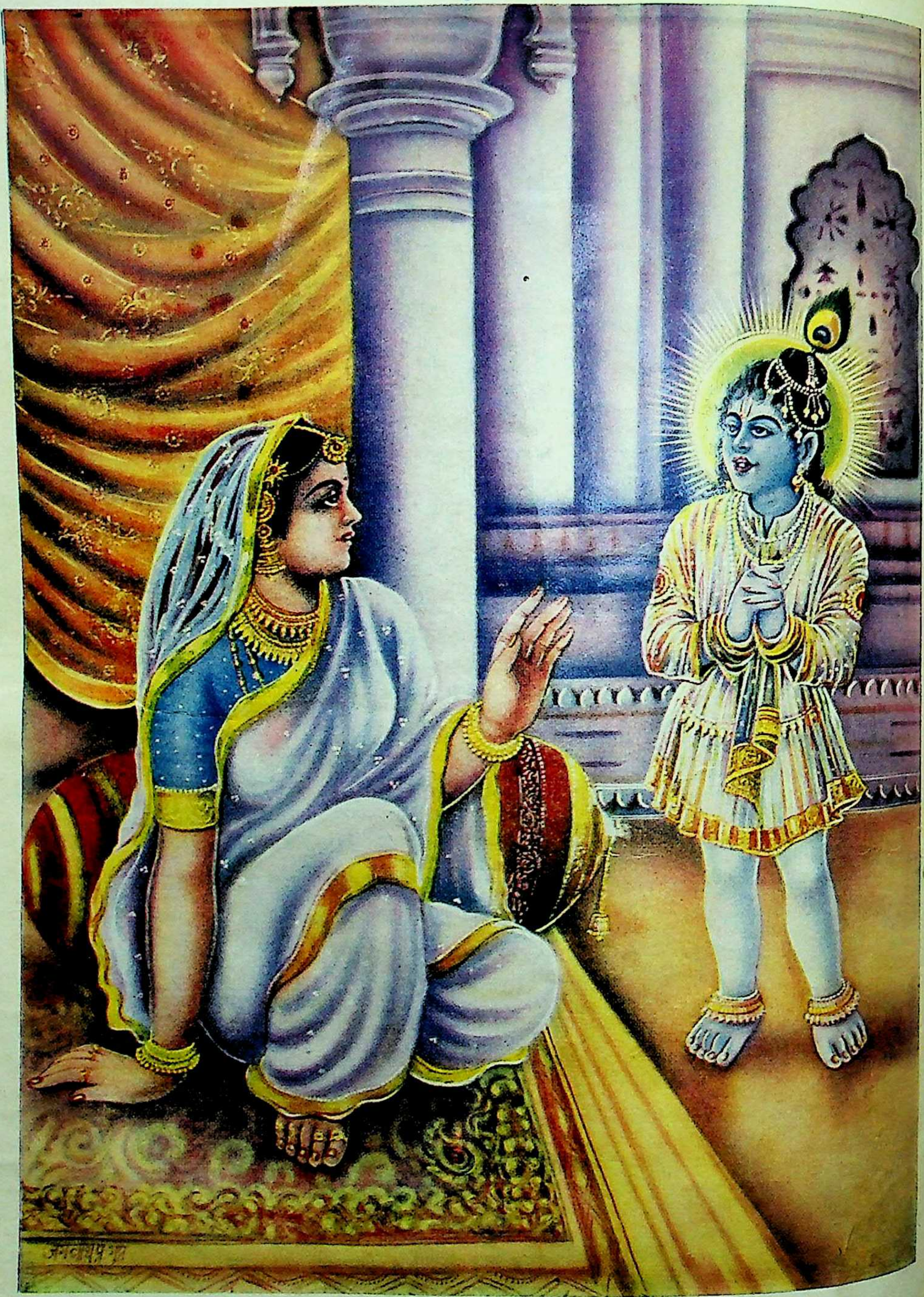

मैया ! मैं माटी नहिं खाई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

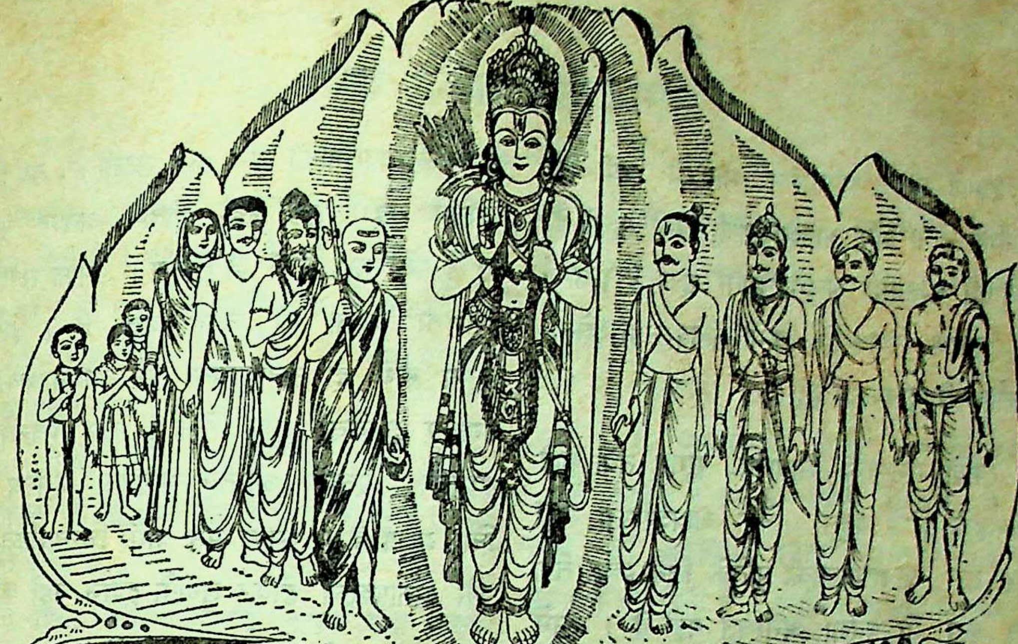

कल्याण

अविरतभवभावनातिदूरं भवविमुखैर्मुनिभिः सदैव दृश्यम् ।
भवजलधिसुतारणाङ्घ्रिपोतं शरणमहं रघुनन्दनं प्रपद्ये ॥
रतिपतिशतकोटिसुन्दराङ्गं शतपथगोचरभावनाविदूरम् ।
यतिपतिहृदये सदा विभातं रघुपतिमार्तिहरं प्रभुं प्रपद्ये ॥

वर्ष ४१ | गोरखपुर, सौर भाद्रपद २०२४, अगस्त १९६७ | संख्या ८ | पूर्ण संख्या ४८९

मृद्-भक्षण-लीला

चौ०–एक समै सब गोपकुमारा । राम आदि मिलि करत बिहारा ॥
छं०–मिलि करत सकल बिहार बालक जाइ जसुमति सौं कही ।
सुनु अंब ! कृस्न कृपाल अबहीं भखी मृद देखी मही ॥
सुत हेतु हित कर गहि जसोदा डाटि कह कैसी अही ।
भय पाइ चख अति चपल चितवनि देखि मुख अनुपम लही ॥
तू चपल गात डरात नहिं मृद-भखन तैं काहे करी ।
ए कहत सिगरे सखा तव बलदेव कह साची खरी ॥
हे अंब ! मैं नहिं भखी मृद, ए मृषावादी हैं सबै ।
जो साच मम मुख तैं बिलोकै झूठ फुर जानै अबै ॥
जो साच यह, मुख बाय, तौ हसि कृस्न मुख बायौ महाँ ।
ऐस्वर्य अब्याहत सिरोमनि कृस्न क्रीडा नर तहाँ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

(श्रीकृपारामकृत प्राचीन अप्रकाशित भाषा भागवतसे)

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याण

याद रक्खो—जहाँ सांसारिक भोगोंकी नयी-नयी इच्छाएँ उत्पन्न होती और आवश्यकताएँ बढ़ती रहती हैं, वहाँ सहज ही अभावका अनुभव होता रहता है। कैसी भी महान् सम्पन्न स्थिति हो, कभी संतोष नहीं होता; और असंतोष ही दुःखका हेतु है।

याद रक्खो—मनुष्यको साधारण, सुगम तथा सादे जीवन-निर्वाहके लिये बहुत अधिक आवश्यकता नहीं होती और उस आवश्यकताकी पूर्तिके लिये इच्छा तथा विधिसंगत कर्म भी करना अनुचित नहीं है। उसमें आपत्ति नहीं है। इस आवश्यकताकी पूर्तिमें बहुत कठिनता भी नहीं होती। व्यसन तथा तृष्णाजनित बढ़ी हुई इच्छा तथा आवश्यकताओंमें जो निरन्तर एक अभावका अनुभव होता रहता है, वह भी इसमें नहीं होता। इसलिये सहज ही जीवनमें सुख रहता है।

याद रक्खो—सुख किसी सम्पत्ति या स्थितिमें नहीं है; सुख है अभावके अनुभवसे रहित संतोषकी वृत्तिमें। यह वृत्ति किसी बाह्य अवस्थाविशेषकी अपेक्षा नहीं करती। प्रत्येक परिस्थितिमें मनुष्य संतुष्ट रह सकता है—तृष्णाजनित अभाव-आवश्यकताकी अग्निके बुझ जानेपर तथा परम सुहृद् भगवान्‌के मङ्गलमय विधानपर विश्वास करनेपर।

याद रक्खो—अपनी सहज सुखकी स्थितिसे, प्रत्येक परिस्थितिको मङ्गलमय मानने-जाननेकी वृत्तिसे और यथालाभ संतुष्ट रहनेके स्वभावसे विचलित होकर जब मनुष्य विविध भोगोंकी वासना—तृष्णाके जालमें फँस जाता है, जब उसके हृदयमें दुष्पूरणीय तथा उत्तरोत्तर बढ़नेवाली कामनाकी आग जल उठती है, तब किसी स्थितिमें वह संतुष्ट नहीं होता—अतएव कभी वह दुःखसे मुक्त नहीं हो सकता। उसका संताप-दुः उत्तरोत्तर बढ़ता ही चला जाता है। इस प्र मनुष्य स्वयं ही अनावश्यक भोग-कामनाओंको ज जगाकर दुःखोंको बुला लेता है और जीवनके अ श्वासतक, मृत्युके अन्तिम क्षणतक असंख्य दुः घिरा रहता है। उसका मन कभी चिन्तारहित, प्र और संतापशून्य होकर सुखके दर्शन नहीं कर पा

याद रक्खो—यहाँ जो भोगोंके अभावकी आ जलता हुआ मरता है, मरनेके बाद भी, लोका उसे उसी आगमें जलना पड़ता है। यहाँकी का वासना उसके अंदर वहाँ भी ज्यों-की-त्यों वर्तमान र उसे संतप्त करती रहती है।

याद रक्खो—इसके विपरीत जो अनावश्यक कामनाओंसे मुक्त है, जिसका मन हर हालतमें है, जो कभी भी अभावका अनुभव नहीं करता सदा सहज ही परम सुहृद् भगवान्‌के मङ्गलमय वि अनुसार प्राप्त प्रत्येक परिस्थितिमें भगवान्‌की दर्शन करता रहता है, वह मृत्युके समय भोगोंसे विरत और भगवान्‌की मङ्गलमयी स्मृतिमें संलग्न रह उसका मन भोगोंके अभावका अनुभव न करके के परम सौहार्दका अनुभव करके आह्लादसे भरा है। वह अत्यन्त शान्ति-सुखके साथ देह-त्याग जाता है और भगवान्‌की स्मृतिमें ही मृत्यु होनेके मृत्युके अनन्तर वह निश्चितरूपसे निस्संदेह भग ही प्राप्त होता है—**'मामेवैष्यस्यसंशयम्।'**

'शिव'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक संतका उपदेशामृत

(प्रेषक—माधव)

धन, सम्पत्ति, परिवारको छोड़कर वनमें रहनेकी आवश्यकता नहीं है। आवश्यक है लोभ, मोह, मान, काम, क्रोधका त्याग और यह तभी होता है जब साधक विनाशीके परे अविनाशीको जान लेता है, नित्य एकरस रहनेवाले आत्माको जान लेता है।

वाणीके मौनसे शक्ति बढ़ती है, मनके मौनसे अन्तर्दृष्टि खुलती है, बुद्धिके मौनसे 'स्व' के सत्य तत्त्वकी अनुभूति होती है।

निष्काम होकर कर्तव्य-पालनसे अथवा सेवा करते रहनेसे अन्तःकरण शुद्ध होता है। अन्तःकरण शुद्ध होनेसे तत्त्वज्ञान होता है। तत्त्वज्ञान होनेपर प्रज्ञा स्थिर होती है। प्रज्ञाके स्थिर होनेपर ही परमानन्द परमात्माका निरन्तर बोध होता है।

जो कुछ अनेक है, वही संसार है। इच्छाएँ, वासनाएँ, विचार, कल्प तथा दृश्य अनेक हैं, ये ही संसारकी परिधिमें हैं। विवेक, चैतन्य, ज्ञान, प्रेम एक है। वही 'एक' 'मैं हूँ' के स्वरूपमें विद्यमान है। अनेकताकी लोल लहरोंके नीचे एकताका शान्तिमय धरातल है।

प्रभुके समक्ष केवल अपने 'मैं' को समर्पित करना होता है और संसारके समक्ष जो कुछ प्रभुसे मिला है, उसे अर्पित करना होता है। अपने 'मैं' को समर्पित करनेका साहस कर सको तो अपने 'मैं' के स्थानपर पूर्ण प्रभुको पा जाओगे।

मनुष्यका शरीर एक दीपककी भाँति है और चेतना दीपकमें जलती हुई 'लौ' की भाँति है। मिट्टीके दियेमें ध्यान रहा तो जीवन व्यर्थ है। दीपककी ज्योतिमें ध्यान रहना चाहिये, तब इस चैतन्य ज्योतिमें ही अनन्त प्रभुके दर्शन होते हैं।

जब मनमें व्यर्थ संकल्प-विकल्प एवं व्यर्थ विचार उठते हों, तब प्रभुके प्रिय नाम अथवा अपने इष्टमन्त्रका अधिक-से-अधिक जाप करना चाहिये; फिर व्यर्थ संकल्प एवं व्यर्थ विचार अपने-आप शान्त हो जाते हैं और अन्तःकरणमें प्रियतम प्रभुका 'प्रसाद' प्राप्त होता है।

मूढ़ता दूर होनेपर 'मैं' के स्थानपर 'तू-ही-तू' और 'मेरा' के स्थानपर 'तेरा-ही-तेरा' दीखने लगता है। अपने भीतर प्रभु-सम्बन्धी भावों, विचारोंको भरे रहो; मनको खाली न रक्खो। खाली रखनेसे ही संसार-प्रपञ्च घुस जायगा। जितनी बुराइयाँ होती हैं, वे सूनेपनमें ही होती हैं। इसलिये बुराइयोंसे बचना है तो मनमें पवित्र भाव भरे रहो, सुसंगतिमें घिरे रहो, सदा शुभकर्ममें लगे रहो। अवकाश मिलते ही प्रभुके ध्यानमें, 'स्व' के अध्ययनमें, नामस्मरणमें, जपमें समयको सार्थक करो। व्यर्थमें ही अनर्थ होता है।

संसारमें प्रिय सम्बन्धियोंके संयोगमें, इन्द्रियोंके विषयभोगमें, धन-अधिकारमें सुख माननेवालो! सावधान होकर समझ लो, तुम्हारे सुखका अन्त दुःखमें होगा; क्योंकि जो कुछ तुम्हें मिला है, वह किसी समय अवश्य ही छूट जायगा। जिसे हम नहीं जानते, वही अपना सर्वस्व है; क्योंकि वह हमें जानता है। हमें विश्वास रखना चाहिये कि अपना परमाश्रय एकमात्र वही अकारण-करुणामय प्रभु ही है और वह हमारी प्रत्येक चेष्टाके, प्रत्येक भावनाके तथा प्रत्येक विचारके साथ ही है—वह हमारे विचारों, भावनाओं, चेष्टाओंके मध्यमें ही विद्यमान है—इसका अनुभव हम पूर्ण मौन, शान्त, शून्य होकर ही कर सकते हैं।

अशुभ संकल्पोंका त्याग करो, शुभ संकल्प प्रभुकी कृपासे पूर्ण होंगे। वे संकल्प अशुभ हैं, जिनकी पूर्तिके साधन सुलभ नहीं हैं अर्थात् जिनकी पूर्ति किसी व्यक्तिकी सहायतासे पराधीनतापूर्वक होती है। दूसरोंकी सेवा करना, दान करना, तीर्थयात्रा करना, संतोंका संग करना तथा एकान्त-सेवन करना शुभ है। स्वयं ही तीर्थ-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वरूप होकर अपने सङ्गसे दूसरोंको पवित्र बननेकी प्रेरणा लेने दो । शान्त बैठ जाओ । शरीरसे शान्त बैठनेपर शरीरके भीतर जो कुछ स्वतः होता है, तटस्थ होकर देखो । कोई निर्णय, आग्रह, निग्रह न करो । बस, देखते रहो। इस निरीक्षणसे चेतनद्वारा अचेतनमें प्रवेश होता है । देखकर घबरा न जाना, बाहरकी ओर न भागना—निरीक्षणमात्र करते रहना; यहाँ शान्ति एवं धैर्यकी परीक्षा देनी होगी । इस अचेतन स्तरसे ही कामना एवं वासनासे मुक्तिका द्वार मिल जाता है ।

परमात्मा तुम्हारी सभी दशाओंमें विद्यमान है । भोगमें, रोगमें, आधि-व्याधि-उपाधिमें—जहाँ कहीं तुम हो, वहीं वह छिपा है । इसी प्रकार तुम जब उसे पुकारते हो, तब वह तुम्हारी पुकारके ही बीचमें है; जब उसे खोजते हो, तब खोजके ही साथ मिला है; जब उसके लिये व्याकुल होते हो; तब व्याकुलताके मध्यमें ही है । जब तुम कुछ नहीं होते हो, कुछ नहीं बनते हो, कुछ नहीं चाहते हो—सर्वथा शान्त एवं अन्तर्मुख हो जाते हो, तब वह तुम्हारे समक्ष हो जाता है । … अपने-आपमें पूर्ण प्रेमके रूपमें नित्य प्राप्त प्रभु अनुभवमें आते रहें, तभी भक्तिकी पूर्णता होती है ।

नित्य प्राप्तका दर्शन ही ज्ञान है, नित्य प्राप्तसे निरन्तर मिलन ही भक्ति है ।

जड निष्क्रियता और सच्चा समर्पण

(श्रीश्रीमाताजी श्रीअरविन्दाश्रम पांडिचेरी)

'····इस झूठी और निठल्ली आशाका भी परित्याग कर दो कि भागवत-शक्ति तुम्हारे लिये समर्पण भी कर देगी । यह सत्य है—परमोच्च सत्ता अपने प्रति तुम्हारा समर्पण चाहती है, किंतु वह उसे जबरदस्ती लादती नहीं । जबतक अविलोप्य रूपान्तर नहीं हो जाता, तुम किसी भी क्षण भगवान्‌को अस्वीकार करने अथवा अपने आत्मदानको वापिस लेनेके लिये स्वतन्त्र हो, यदि तुम इसके आध्यात्मिक परिणामको भुगतनेके लिये तैयार रहो ।' ('माता'—श्रीअरविन्द)

प्र०—अविलोप्य रूपान्तरका क्या अर्थ ?

उ०—रूपान्तर अविलोप्य तब होता है, जब तुम्हारी चेतना इस तरह बदल जाती है कि तुम फिर अपनी पुरानी अवस्थामें लौट नहीं सकते । एक ऐसा क्षण आता है जब परिवर्तन इतना पूर्ण हो जाता है कि तुम जो कुछ पहले थे उस अवस्थामें पुनः लौटना असम्भव हो जाता है ।

प्र०—क्या स्वयं रूपान्तरका ही यह अर्थ नहीं कि वह अविलोप्य होता है ?

उ०—रूपान्तर आंशिक हो सकता है । … रूपान्तरकी श्रीअरविन्द यहाँ चर्चा करते हैं, उसका अर्थ है चेतनाका पलट जाना । अहंभाव-युक्त होकर … वैयक्तिक तुष्टिकी ओर मुड़े रहनेके स्थानपर … समर्पण-भावमें भगवान्‌की ओर मुड़ी रहती है । उन्होंने बड़े साफ तरीकेसे यह बतला दिया है … आरम्भमें समर्पण आंशिक हो सकता है—हम कुछ … समर्पण करते हैं और कुछ भाग समर्पण नहीं … किंतु जब सम्पूर्ण सत्ता समग्र रूपमें, अपनी सभी … विधियोंमें समर्पण कर चुकती है, केवल तभी … अविलोप्य हो जाता है । यह है मनोवृत्तिका … रूपान्तर ।

प्र०—भागवत-शक्ति और भागवत-बलमें क्या … है ?

उ०—भागवत-बल भागवत-शक्तिका एक अंश … है; भागवत-बल भागवत-शक्तिका एक गुण है … अरविन्द यहाँ 'भागवत-शक्ति' शब्द …

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्जनात्मक चेतनाके अर्थमें प्रयुक्त करते हैं। इसलिये भागवत-बल भागवत-शक्तिका एक अंशमात्र है।

× × × ×

'साधारणतः लोग जड निष्क्रियताको सच्चा समर्पण समझ लेनेकी भूल करते हैं, किंतु जड निष्क्रियतासे कोई भी सच्चा और शक्तिशाली परिणाम नहीं निकल सकता। भौतिक प्रकृतिकी जड निष्क्रियता ही उसे हर अन्धकारमय या अदिव्य प्रभावकी दयापर छोड़ देती है। भागवत-शक्ति अपना कार्य कर सके, इसके लिये एक प्रसन्न, सबल और सहायक समर्पणकी आवश्यकता है।....'

—'माता'

प्र०—प्रसन्न और सबल एवं सहायक समर्पण किसे कहते हैं?

उ०—तुम जानते हो कि प्रसन्न रहनेका क्या अर्थ है। तुम्हें पता है कि सबल होनेका क्या अर्थ है। तुम जानते हो कि उपयोगी होना किसे कहते हैं। बस, भगवान्‌के प्रति तुम्हारा समर्पण अर्थात् तुम्हारा आत्मदान हर्षपूर्ण हो, प्रसन्नतासे भरा हो, तुम्हें उससे खुशी होनी चाहिये, उसे सबल होना चाहिये; यह नहीं कि तुम उसे दुर्बलता और असमर्थताके कारण करो, वरं तुम्हें एक सबल और सक्रिय संकल्पके साथ समर्पण करना चाहिये और समर्पणको पूरा निठल्ला भी नहीं होना चाहिये—'मैंने समर्पण कर दिया, मुझे जीवनमें अब और कुछ नहीं करना है, मुझे केवल चुपचाप बैठ रहना है, मेरा समर्पण हो चुका है।' इसे सहायक भी होना चाहिये अर्थात् इसे सक्रिय होना चाहिये—इसे सत्ताके रूपान्तरका भार लेना होगा अथवा इसे कोई उपयोगी कार्य करना होगा।

× × ×

'तुम्हारा समर्पण एक जीवित सत्ताका समर्पण होना चाहिये, किसी स्वचालित यन्त्र या यान्त्रिक उपकरणका नहीं।'—'माता'

उदाहरणार्थ, तुम अपनी घड़ीके समर्पणकी बात कह सकते हो—तुम उसमें चाबी देते हो और वह चलती है, किंतु इसे सचेतन सहयोगकी अनुक्रिया नहीं कहा जा सकता।

× × ×

"रूपान्तरको समग्र होना होगा और इसलिये उस सबका त्याग भी समग्र होना होगा, जो इसका विरोध करता।'—'माता'

यह बहुत स्पष्ट है। भावात्मक क्रिया ही पर्याप्त नहीं, परित्यागकी निषेधात्मक क्रियाका भी होना आवश्यक है; क्योंकि तुम तबतक एक स्थायी रूपान्तर नहीं प्राप्त कर सकते, जबतक तुम अपनी सत्ताके भीतर इसके विरोधी तत्त्वोंको आश्रय दिये रहते हो। यदि तुम अन्धकारपूर्ण वस्तुओंको अपने अंदर रखते हो तो वे कुछ समयके लिये वहाँ चुपचाप और निष्क्रिय पड़ी रह सकती हैं—इतना शान्त और स्थिर कि तुम उन्हें कुछ भी महत्त्व नहीं देते; पर एक दिन वे पुनः उठ खड़ी होंगी और तब तुम्हारा रूपान्तर उनके सामने नहीं टिकेगा। आत्मदानकी भावात्मक क्रिया ही नहीं, तुम्हारे अंदर उन वस्तुओंके परित्यागकी निषेधात्मक क्रियाका होना भी आवश्यक है जो तुम्हारे उस आत्मदानका विरोध करती है। तुम्हें इस प्रकार अपने अंदर किसी स्थानपर वस्तुओंको गड़ी नहीं रहने देना चाहिये, जिसमें वे पहला अवसर पाते ही उठ खड़ी हों और तुम्हारे सारे कार्यको नष्ट कर दें। सत्ताके कुछ ऐसे भाग होते हैं, जो ऐसा करना भलीभाँति जानते हैं। प्राणमें कुछ ऐसे तत्त्व हैं, जो इस दृष्टिकोणसे असाधारण होते हैं। वे शान्त बने रहते हैं, एक कोनेमें छिपे रहते हैं, इस प्रकार सर्वथा चुपचाप और स्थिर पड़े रहते हैं कि तुम समझते हो कि उनका अस्तित्व ही नहीं है; तब तुम सावधान नहीं रहते, तुम अपने रूपान्तर और समर्पणसे संतुष्ट रहते हो, तुम समझते हो कि सब कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ठीक चल रहा है और तब एकाएक एक सुहावने प्रभातमें, बिना कोई चेतावनी दिये, पिटारीमें बंद भूतकी भाँति वस्तुएँ बाहर निकल आती हैं और तुमसे संसार भरकी मूर्खताएँ करवा लेती हैं। वे और भी सबल होती हैं; क्योंकि वे पहले दबी रहती हैं—एक कोनेमें दबी और घुटी पड़ी रहती हैं—वे इसलिये दबी-सी पड़ी थीं, जिसमें तुम्हारा ध्यान उधर आकर्षित न हो। वे बड़े मजेमें खूब शान्त पड़ी थीं और जब तुम्हें उनके आनेकी जरा भी आशा नहीं थी, तभी वे उभर आयीं और तब तुम कहते हो—'ओह मेरा सारा रूपान्तर किस कामका ?' वे वस्तुएँ तो वहाँ थीं ही। वस्तुतः वे वस्तुएँ वहाँ विद्यमान रहती हैं और अपनेको इतनी अच्छी तरह छिपाये रहती हैं कि यदि तुम उन्हें एक सुदीप्त मशाल लेकर न ढूँढ़ो तो तुम्हें पता ही नहीं लगेगा कि वे वहाँ विद्यमान हैं, जबतक कि एक दिन प्रकट होकर वे तुम्हारे सारे कार्यको एक मिनिटमें नष्ट नहीं कर देतीं।

प्र०—क्या ऐसा तब भी होता है, जब व्यक्तिकी अभीप्सा बड़ी तीव्र होती है ?

उ०—अभीप्साको अत्यधिक जागरूक होना होगा।

मैं ऐसे लोगोंको जानती हूँ (बहुतोंको, थोड़ोंको नहीं, मेरा मतलब उन लोगोंसे है जो योग करते हैं)— ऐसे बहुत-से लोगोंको जिनकी अभीप्सा जब-जब सुन्दर होती थी, जब-जब अत्यधिक तीव्र होती थी और उन्हें अपनी अभीप्साका प्रत्युत्तर मिलता था, तब-तब उसी दिन या अधिक-से-अधिक अगले दिन उनकी चेतना बिलकुल उलट जाती थी और उनके सामने ऐसी वस्तुएँ आ जाती थीं जो उनकी अभीप्साके बिलकुल विरुद्ध थीं। ऐसा प्रायः सदा ही होता है। ये ही हैं वे लोग जिन्होंने केवल अपने भावात्मक पक्षका ही विकास किया था। ये लोग अभीप्साकी एक प्रकारकी तपस्या करते हैं, सहायता चाहते हैं, उच्चतर शक्तियोंके सम्पर्कमें आनेका प्रयत्न करते हैं और इसमें सफलता प्राप्त करते हैं। उन्हें कुछ अनुभूतियाँ भी प्राप्त होती हैं; किंतु उन्होंने अपने कमरेको बुहारनेकी सावधानी नहीं बरती, वह पहलेकी भाँति ही गंदा बना रहा और तब, स्वभावतः ही जब अनुभूतियाँ चली गयीं तब वह गंदगी पहलेसे भी अधिक बीभत्स हो उठी।

अपने कमरेकी सफाईकी कभी अवहेलना न करो, यह बहुत ही आवश्यक है—आन्तरिक स्वच्छता कम-से-कम उतनी आवश्यक तो है ही जितनी बाह्य स्वच्छता। विवेकानन्दने लिखा है (मूल मुझे ज्ञात नहीं, मैंने केवल फ्रेंच अनुवाद पढ़ा है)—'हर सुबह तुम्हें अपनी आत्माको साफ करना चाहिये और अपने शरीरको साफ करना चाहिये; किंतु यदि तुम्हारे पास दोनोंको साफ करनेका समय न हो तो शरीरको साफ करनेकी अपेक्षा आत्माको स्वच्छ करना अधिक अच्छा है।'

प्र०—यह कैसे जाना जाय कि 'छोटी गंदगियाँ' कहीं छिपी पड़ी हैं या चली गयीं ?

उ०—इसके लिये तुम सदा छोटे-छोटे परीक्षण कर सकते हो। मैंने कहा था कि तुम्हें एक मशालका एक तीव्र प्रकाशका प्रयोग करना चाहिये। तब तुम्हें अपने अंदर चक्कर लगाना चाहिये। यदि तुम बहुत सतर्क हो तो तुम्हें वहाँ बड़ी आसानीसे कुत्सित कोने दिखायी देंगे। मान लो कि तुम्हें कोई सुन्दर अनुभूति हुई और तुम्हारी अभीप्साके प्रत्युत्तरमें अकस्मात् ही एक बहुत बड़ी ज्योति तुम्हारे सामने प्रकट हुई; तुम आनन्द, शक्ति, प्रकाश और सौन्दर्यसे अपनेको बिल्कुल आप्लावित अनुभव करते हो और तुम्हें ऐसा प्रतीत होता है कि तुम अब बस, रूपान्तरित होने ही वाले हो·······और तब वह अनुभूति लुप्त हो जाती है, ऐसा होता है न ? विशेषतः आरम्भमें—एकाएक वह बंद हो जाती है। और तब, जब कि तुम सतर्क नहीं होते, तुम अपने आपसे कहते हो—'देखो तो, वह आयी और चली भी गयी, बेचारा मैं ! वह आयी और चली गयी। उसने मुझे केवल उस वस्तुका स्वाद भर चखाया और फिर मुझे छिटकाकर चली गयी।' ऐसा कहना मूर्खता है। कहना यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहिये—'अहो, मैं इसे रख नहीं सका, और मैं इसे क्यों नहीं रख सका ?' तब तुम अपनी मशाल लो और अपने अंदर चक्कर लगाओ तथा चेतनाके परिवर्तन और उन क्रियाओंके बीचके घनिष्ठ सम्बन्धको खोजते फिरो, जो अनुभूतिके लोपकी सहवर्ती थीं। और यदि तुम अत्यधिक सतर्क होते हो और बड़ी सच्चाईसे अपने अंदर चक्कर लगाते हो तो तुम्हें एकाएक पता लगेगा कि प्राणके किसी भागमें या मनके किसी भागमें या शरीरके किसी भागमें कोई वस्तु रूपान्तरका अनुसरण नहीं कर पायी, इस अर्थमें कि मनमें अडोल और सतर्क रहनेके स्थानपर किसी वस्तुने सोचना आरम्भ कर दिया था—'अहो कौन-सी अनुभूति है यह ? क्या मतलब है इसका ?'........(जिसे यह 'समझना' कहता है)। या फिर प्राणमें किसी वस्तुने अनुभूतिका उपभोग करना आरम्भ किया था 'कितनी अच्छी है यह! कितना मैं चाहूँगा कि यह और तीव्र हो, कितना अच्छा होता यदि यह सदा बनी रहती, कितना.......' अथवा शरीरके किसी भागने कहा था, 'ओह, इसे सहना जरा कठिन है, कितनी देरतक मैं इसे बनाये रख सकूँगा ?' यह शायद इतना स्पष्ट नहीं होता जितना कि मैं तुमसे कह रही हूँ; किंतु यह कुछ जरा-सी इसी प्रकार दुबकी पड़ी रहती है। तुम्हें सदा इन तीनोंमेंसे कोई एक या ऐसी ही अन्य वस्तुएँ दिखायी देंगी। अत: यहीं मशालकी आवश्यकता है—कहाँ है वह दुर्बल स्थान ? कहाँ है अहंभाव ? कहाँ है कामना ? कहाँ है वह पुरानी गंदगी, जिसका बना रहना अब हम नहीं चाहते ? कहाँ है वह वस्तु, जो अपनेको दे देने, खोलने, खो देनेके स्थानपर अपने ऊपर ही केन्द्रित रहती है, जो कुछ घटा है उससे फायदा उठाना चाहती है, जो अनुभूतिके फलको अपने लिये प्राप्त करना चाहती है ? या अन्यथा, जो बहुत दुर्बल है, क्रियाका अनुसरण करनेके लिये अत्यधिक कठोर एवं अनम्य है ?....... यही है वह बात, तुम लीक पकड़कर अब उसका पता पा लेते हो; वह प्रकाश जो तुम्हें अभी-अभी मिला था, उसे तुम वहाँ डालना आरम्भ करते हो—यही कार्य तुम्हें करना चाहिये, प्रकाशको ठीक वहीं डालो और इस तरहसे डालो कि वह इससे अपनी रक्षा न कर सके।

यह तुम्हें पहले ही दिन प्राप्त नहीं हो जायगा; किंतु तुम इस कार्यको आग्रहपूर्वक करते रहो और धीरे-धीरे या शायद एक दिन अचानक ही वह वस्तु लुप्त हो जायगी और तब कुछ समयके बाद तुम अनुभव करने लगोगे कि तुम कोई और ही व्यक्ति हो।

किंतु यदि तुम उस वृत्तिको अपनाओ, जिसकी मैं पहले चर्चा कर चुकी हूँ, अर्थात् यदि तुम दोष भागवत-कृपा और ज्योतिपर लगाओ, यदि तुम कहो,—'लो, वह चली गयी, उसने मुझे यहींपर गाड़ दिया,' तो निश्चय समझो कि तीस, चालीस, पचास वर्षके बाद भी तुम सदा वहीं-के-वहीं रहोगे, जरा भी नहीं बदलोगे। एक ऐसी वस्तु वहाँ सदा रहेगी, जो अचानक ही उठकर तुम्हारी अनुभूतिको चट कर जायगी और तब आगे न बढ़कर तुम एक ही जगहपर अपने पाँव पटकते रहोगे; क्योंकि तुम आगे बढ़ नहीं सकते। किंतु यदि तुम तत्काल ही अवसरका लाभ उठाओ....याद रखना, कभी-कभी इससे थोड़ा कष्ट भी होता है; यदि तुम निर्ममताके साथ उस वस्तुपर प्रकाश डालो जो अनुभवका उपभोग करना चाहती है अथवा मानसिक बुद्धिद्वारा ज्ञान प्राप्त करना या अनुभूतिपर प्रभुत्व जमाना चाहती है अथवा जो अनुभूतिको ग्रहण करने और उसे सहन करने या काफी शीघ्रतासे बदलनेके लिये आवश्यक प्रयत्न करनेमें अत्यधिक आलस्यपूर्ण है, यदि तुम उस वस्तुपर कड़ाईके साथ, चेतनाके प्रकाशसे युक्त अपनी संकल्प-शक्तिका प्रयोग करो तो इससे थोड़ा कष्ट हो सकता है। और यदि तुम कहो—'ओह, इतनी शीघ्रताके साथ नहीं—मुझे विश्राम करनेकी आवश्यकता है, मैंने व्यर्थ ही अपनेको थका डाला,' तो तुम्हें फिरसे सब कुछ आरम्भ करना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पड़ता है। उसके वापिस आनेमें कभी-कभी कई दिन या महीने भी गुजर जाते हैं और कभी-कभी तो कई वर्ष बीत जाते हैं। कभी-कभी यदि तुम अपनी अभीप्सामें जरा अधिक सक्रिय एवं तीव्र होते हो तो वह जल्दी भी आ सकती है। किंतु यदि तुम उसी मूर्खताको दुहराते रहो तो वही बात बार-बार घटती रहेगी। पर यदि तुम तत्काल ही सावधान हो जाओ और जब मन, जो कुछ घट रहा है उसे जाननेके लिये सिर उठाने लगे, तब तुम उससे कहो—'चुप रह, चुप रह तू,' तब अनुभूति चालू रह सकती है। जब प्राण यह कहना आरम्भ करे—'मुझे बहुत चाहिये, बहुत अधिक और भी अधिक····', तो तुम उसे कहो—'शान्त रह, शान्त रह, हिल-डुल मत, शान्त हो जा, उत्तेजित मत हो।' अथवा जब शरीर कहे—'ओह, मैं पिसा जा रहा हूँ····'—कृपया जरा डटे रहो, तुम कायर हो, तुम परीक्षा सह सकना नहीं जानते। यदि तुम यह कार्य समयपर, आवश्यक शान्तिके साथ, आवश्यक निश्चय एवं संकल्पके साथ करनेमें सफल होओ तो तुम्हें कुछ उपलब्धि अवश्य होगी। किंतु यदि तुम यों ही निष्क्रिय, आलसी और भाग्यवादी होओ और कहो—'अब मैं अपनेको समर्पित कर चुका; जो होना होगा वह होगा; जो होगा देखा जायगा' बस, तब जान रक्खो, मैं तुम्हें पचास वर्ष देती हूँ जिसमें तुम्हारा आधा कदम भी आगे परिवर्तन नहीं होगा।

····यह उतना सरल नहीं है····यदि तुम इसे करना चाहते हो तो तुम्हें इसे ठीकसे करना होगा, अन्यथा इसके लिये कष्ट करनेसे कोई लाभ नहीं। अधूरा कार्य करनेसे कोई लाभ नहीं; करना है तो ठीकसे करना चाहिये।

निश्चय ही और भी कई मार्ग हैं। तुम केवल अपनेको पूर्ण करनेकी चेष्टा ही नहीं कर सकते, तुम एक अधिकाधिक तन्मय करनेवाले कार्यमें अपने-आपको भूलनेका प्रयत्न कर सकते हो। अर्थात् जो कार्य तुम करो; उसे भगवान्‌के प्रति अर्पण करके करो, निःस्वार्थ भावसे, पर एक परिपूर्णताके साथ, आत्मदानके साथ, अपनेको पूर्णतः विस्मृत करके—अपने विषयमें कुछ न सोचकर व्यक्ति जो कार्य करता है, केवल उसीके विषयमें सोचे। तुम जानते हो, मैं तुम्हें यह पहले ही कह चुकी हूँ; यदि तुम कोई अच्छा कार्य करना चाहते हो, चाहे जो भी हो वह, किसी भी प्रकारका कार्य हो वह, छोटेसे छोटा कार्य—खेल खेलना, पुस्तक लिखना, चित्रकारी अथवा संगीतका अभ्यास करना, दौड़में भाग लेना, जो भी हो वह, यदि तुम उसे ठीकसे करना चाहते हो तो तुम्हें वही बन जाना होगा जो तुम कर रहे होते हो, और तुम्हें वह छोटा-सा व्यक्ति नहीं बना रहना होगा जो अपने कार्यका मात्र साक्षी होता है; क्योंकि यदि तुम केवल साक्षी हो तो तुम····तो तुम अभीतक अपने अहंकी ओरसे आँखें मींचे पड़े हो। यदि तुम स्वयं वही बन जाते हो जो तुम कर रहे हो, तो वह एक बहुत बड़ी प्रगतिका चिह्न है। अत्यन्त छोटे-से-छोटे ब्यौरेमें भी इसका अभ्यास करना चाहिये। एक रोचक उदाहरण लो। तुम एक बोतलको भरना चाहते हो। तुम अपनेको एकाग्र करते हो। (तुम इसे एक अनुशासनके रूपमें, एक व्यायामके रूपमें कर सकते हो) तुम एक बोतलको दूसरी बोतलसे भरना चाहते हो। जबतक तुम वह बोतल होते हो जिसे तुम्हें भरना है, और वह बोतल भी जिसे तुम उँड़ेल रहे हो और उँड़ेलनेकी क्रिया भी, जबतक तुम इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं होते, सब कुछ ठीक चलता है। किंतु दुर्भाग्यवश यदि तुम क्षणभरके लिये भी यह सोचते हो, 'अहो, सब ठीक चल रहा है, मैं ठीकसे कार्य कर रहा हूँ,' तो अगले ही क्षण वह छलककर गिरने लगता है। सभी वस्तुओंके साथ ऐसा ही होता है, सभी वस्तुओंके साथ। इसी लिये कर्म, अनुशासनकी शिक्षाका एक बड़ा अंग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तरीका है; क्योंकि यदि तुम कर्म ठीकसे करना चाहते हो तो तुम्हें कर्म करनेवाला कोई व्यक्ति न होकर स्वयं वह कर्म ही बन जाना पड़ेगा। नहीं तो, तुम उस कर्मको भलीभाँति कभी भी नहीं कर सकोगे। यदि तुम 'कर्म करनेवाला व्यक्ति' ही बने रहो और साथ ही तुममें विचार भी चक्कर काटते रहें तो तुम निश्चय रख सकते हो कि यदि तुम तुनुक वस्तुओंमें हाथ लगाओगे तो वे टूट जायँगी, यदि तुम खाना पका रहे हो तो वह जल जायगा, यदि तुम खेल रहे हो तो सभी गेंदें तुम्हारे हाथसे बहक जायँगी। इन्हीं सब बातोंके कारण कर्म करना एक बड़ा भारी अनुशासन है; क्योंकि यदि तुम सचमुचमें किसी कर्मको अच्छी तरह करना चाहते हो तो अच्छी तरह करनेका एकमात्र तरीका यही है।

उदाहरणार्थ एक ऐसे आदमीको लो, जो कोई पुस्तक लिख रहा है। यदि वह अपनेको पुस्तक लिखते हुए देखने लगे तो तुम यह कल्पना भी नहीं कर सकते कि वह पुस्तक कितनी नीरस होगी। उसमें तत्काल ही उस छोटेसे मानवी व्यक्तित्वकी गन्ध आ आयगी, जो वहाँ विद्यमान है और उसका सारा मूल्य नष्ट हो जायगा। जब कोई चित्रकार चित्र बना रहा होता है, उस समय यदि वह अपनेको चित्र बनाते हुए देखने लगे तो चित्र कभी अच्छा नहीं बनेगा; वह सदा चित्रकारके व्यक्तित्वका ही एक प्रकारका प्रक्षेप होगा। उसमें कोई जीवन नहीं होगा, न कोई बल और न कोई सौन्दर्य ही। किंतु यदि वह एकाएक वही वस्तु बन जाय, जिसे वह व्यक्त करना चाहता है, यदि वह स्वयं तूलिका, रंग, कैनवस, चित्रका विषय, बिम्ब, वर्ण, मूल्य—सब कुछ ही बन जाय और पूर्णतया उसके अंदर समा जाय तथा उसीमें निवास करने लगे, तो वह एक विलक्षण वस्तु तैयार करेगा।

सभी वस्तुओंके लिये, सभीके लिये यही बात है। ऐसी कोई भी चीज नहीं है, जो यदि ठीकसे की जाय तो वह एक यौगिक अनुशासन न बन सके और यदि ठीकसे न की जाय तो तपस्यातकसे कोई लाभ नहीं निकलेगा और न वह तुम्हें किसी लक्ष्यकी ओर ले जायगी; क्योंकि यहाँ भी वही बात है—यदि तुम तपस्या करते हुए हर घड़ी अपनेको देखते रहो और कहते रहो, 'क्या मैं प्रगति कर रहा हूँ? क्या पहलेसे अब अधिक अच्छा चल रहा है? क्या मुझे सफलता मिलेगी?·····' तब तो यह तुम्हारा 'अहं' ही है जो अधिकाधिक फूलता जाता है और समूचे स्थानको घेर लेता है और किसी और वस्तुके लिये वहाँ स्थान नहीं बचता।·····आध्यात्मिक 'अहं' सबसे अधिक बुरा होता है; क्योंकि वह अपनी तुच्छताके प्रति पूर्णतः अचेतन होता है, उसे यह विश्वास होता है कि वह यदि पूर्णतया दिव्य नहीं तो एक बिलकुल उच्च कुछ अवश्य है!

अतः, जब तुम स्कूलमें होते हो तब तुम्हें वह एकाग्रता बन जाना चाहिये, जो उस सबको ग्रहण करनेकी चेष्टा करती है, जो अध्यापक कहता है अथवा जो विचार तुम्हारे अंदर प्रवेश करता है या जो ज्ञान तुम्हें प्रदान किया जाता है, वही तुम्हें बन जाना चाहिये। तुम्हें अपने विषयमें कुछ नहीं सोचना चाहिये; सोचना चाहिये तुम्हें उसके विषयमें, जो तुम सीखना चाहते हो। और तब तुम देखोगे कि तुम्हारी क्षमताएँ तत्काल ही दुगुनी हो जायँगी।

जो वस्तु तुम्हारे अंदर हीनताकी, सीमाकी, क्षुद्रताकी, असमर्थताकी भावना सबसे अधिक उत्पन्न करती है, वह है अपने ऊपर सदा केन्द्रित होना, वह है तिलभरके अपने अहंकी सीमाओंमें अपनेको बंद कर लेना। तुम्हें अपनेको विशाल बनाना होगा, अपने द्वार खोलने होंगे और सबसे अच्छा ढंग है अपने-आपपर केन्द्रित होनेकी जगह उस कार्यपर अपने-आपको एकाग्र करना जो तुम कर रहे हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परम पुरुषार्थका साधन

(लेखक—प० पू० आत्मनिष्ठ श्रीरङ्गनाथ महाराज परभणीकर)

आत्म राजू तव । ज्ञान मात्रचि भरीव ।
आता ज्ञाने ज्ञानासी खेव । कैसेनी दिजे ॥
(अमृतानुभव ६ । ८७)

अर्थात् 'आत्मा ज्ञानमय है; इसको ज्ञानका विषय, ज्ञेय कैसे बना सकते हैं ?' श्रीज्ञानेश्वर महाराज अध्यात्मशास्त्रके व्याख्याता हैं; उन्होंने अपने ग्रन्थमें अध्यात्मशास्त्रकी विवेचना की है । वे अपने श्रीमुखसे स्वयं एक अभङ्गमें कहते हैं—

अध्यात्म विद्येचे दाविलेसे रूप । चैतन्या चा दीप उजाळिला । अर्थात् अध्यात्म विद्या दीपकके समान है, जिससे चैतन्यका प्रकाश होता है ।

अध्यात्मविद्याका अर्थ है—ब्रह्मविद्या, जिसमें अद्वैत-सिद्धान्तका प्रतिपादन है । श्रीएकनाथजी महाराज कहते हैं—

एक अद्वितीय ब्रह्म पाही । आणिक दुसरें काहीं नाहीं ।
प्रपंच मिथ्या वस्तू चें ठायीं । हें प्रमाण पाही वेद वाक्य ॥

अर्थात् ब्रह्म एक और अद्वितीय है, उसके सिवा दूसरा कुछ नहीं है । प्रपञ्च वस्तुतः मिथ्या है । इसका प्रमाण वेदवाक्य है ।

एकका अर्थ है स्वगत, सजातीय और विजातीय भेदसे रहित अस्ति-भाति-प्रियवस्तु । पञ्चदशीमें लिखा है—

वृक्षस्य स्वगतो भेदः पत्रपुष्पफलादिभिः ।
वृक्षान्तरात्सजातीयो विजातीयः शिलादिभिः ॥

उदाहरणके द्वारा इसको स्पष्ट करते हैं । वृक्ष अनेक प्रकारके होते हैं, उनका जो परस्पर भेद होता है, उसे 'सजातीय भेद' कहते हैं । ब्रह्म कोई दूसरा नहीं है, अतएव ब्रह्ममें 'सजातीय भेद' नहीं है । वृक्ष और पत्थर, ये दोनों एक दूसरेसे बिल्कुल भिन्न हैं । इस भेदको विजातीय भेद कहते हैं । ब्रह्म-जैसी दूसरी त्रिकालाबाधित सत् वस्तु नहीं है । अतएव ब्रह्ममें विजातीय भेद भी नहीं है । एक ही वृक्षके पत्र, पुष्प, फल आदि अवयव-भेद होते हैं, इस भेदको ही 'स्वगत भेद' कहते हैं । ब्रह्म तो निरवयव, निर्विकार, निराकार, अनन्त, अखण्ड, सर्वत्र ओत-प्रोत है; उसमें 'स्वगत भेद' कैसे होगा ? सारांश यह है कि ब्रह्म स्वगत-सजातीय-विजातीय-भेदसे रहित है । वही एक अस्ति-भाति-प्रियरूप है । 'अस्ति'का अर्थ है—त्रिकालाबाधित सत् । 'भाति' का अर्थ है—अपनी सिद्धिमें अन्यकी अपेक्षा न रखनेवाला और प्रियका अर्थ है—परम प्रेमास्पद वस्तु । यह तत्त्व-चिन्तनसे समझमें आयेगा । अनन्त, अखण्ड, ऐसी वस्तु एक ही हो सकती है । अनन्त पदके अर्थको ध्यानमें लाते ही वस्तुके एकत्वका बोध आसानीसे हो जाता है ।

श्रीएकनाथ महाराजने अपनी ओवीके दूसरे चरणमें कहा है—'आणिक दुसरें काहीं नाहीं ।' इसका श्रुति प्रमाण है—**'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म ।'** ब्रह्मका ही 'अनन्त' विशेषण है, जिससे यह सिद्ध हो जाता है कि ब्रह्म अद्वितीय है । इसीको शास्त्रमें अजातवादकी संज्ञा दी गयी है, अजातवादका सिद्धान्त है कि जगत् हुआ ही नहीं, जगत् हो नहीं सकता । यदि कहिये कि जगत् हुआ है तो प्रश्न खड़ा होता है कि उसका कारण कौन है ? यदि कहिये कि इसका ब्रह्म कारण है तो ब्रह्म निर्विकार है और निर्विकार ब्रह्म कारण नहीं हो सकता । निर्विकार ब्रह्मको कारण मान लेनेमें व्याघात दोष आ जायगा । जैसे कोई आदमी कहे कि 'मेरे मुखमें जिह्वा नहीं है, मैं गूँगा हूँ' तो इसमें व्याघात दोष हो जायगा; क्योंकि गूँगा अपने मुखसे अपनेको गूँगा कह नहीं सकता । जिस प्रकार गूँगेका स्वयं बोलकर कहना असम्भव है, वैसे ही ब्रह्मको कारण कहना असम्भव है; क्योंकि इससे वह निर्विकार नहीं रह सकेगा । विकारी वस्तु ही किसी वस्तुका कारण बन सकती है ।

इसपर आशङ्का होती है कि यह ठीक नहीं; क्योंकि जगत्के पहले एक ब्रह्म ही सिद्ध होता है और जगत्की प्रत्यक्ष प्रमाणद्वारा प्रतीति होती है । अतएव जगत्का कारण ब्रह्म क्यों न कहा जाय ? इसका उत्तर श्रीएकनाथ मह अपनी ओवीके तीसरे चरणमें देते हैं—

'प्रपञ्च मिथ्या वस्तूचें ठायीं' ।

सारांश यह है कि तात्त्विक दृष्टिसे प्रपञ्च (जगत्) नामक कोई वस्तु है ही नहीं । एकनाथजी महाराजका एक और प्रमाण लीजिये—

प्रपंच एक झाला होता । ही समूळ मिथ्यावार्ता ।
पुढें होईल मागुता । हे कदा कल्पांति घडेना ॥

अर्थात् 'प्रपञ्च (जगत्) कभी उत्पन्न हुआ, यह बात बिल्कुल निराधार और मिथ्या है । विवेचन कीजिये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असत् सिद्ध होता है, इसका किसी कल्पमें कभी सृजन ही नहीं हुआ।' यही अजातवादका सिद्धान्त है।

इसपर प्रश्न होता है कि 'आप प्रपञ्च (जगत्) के न होनेकी बात करते हैं और हम अपनी आँखों इसको प्रत्यक्ष देख रहे हैं; इसकी संगति कैसे लगेगी ?' अब सिद्धान्ती एक दृष्टान्तद्वारा समझाता है—

एक रज्जु पड़ी है। देखनेवालेने उसे सर्प मान लिया। अब आप सोचें कि उसे जब सर्पकी प्रतीति हो रही है, सर्प दीख-सा रहा है, तब भी वह वस्तुतः रज्जु ही देखता है। सर्पके न होनेपर भी जिसे सर्पकी अनुभूति हो रही है, उसकी दृष्टि सर्पाकार बन गयी है, उसे सर्प सत्य-सा प्रतीत होता है। उसे डरते देखकर एक दूसरा मनुष्य बोल उठा—'अरे बाबा ! यह सर्प नहीं है, रज्जु है।' उसकी दृष्टिमें सर्पकी प्रतीति नहीं हुई। उसने रज्जु हाथमें उठाकर उसे दिखला दी। जो सर्प मानकर डर रहा था, उसकी समझमें आ गया कि रज्जुको नासमझीसे वह सर्प मान बैठा था और डर रहा था।

यहाँ सामने एक ही वस्तु रज्जु है और द्रष्टा दो हैं; दोनोंको दो प्रकारकी अनुभूति हो रही है, एक उसे रज्जु देखता है और दूसरा सर्प। अब यह प्रश्न होता है कि ऐसा हुआ क्यों। इसका उत्तर शास्त्रकार देते हैं। यह जो प्रतीति होती है, इसको शास्त्रीय भाषामें ख्याति कहते हैं। ख्याति पाँच प्रकारकी होती है—

(१) असत्-ख्याति—शून्यवादी कहते हैं कि रज्जुमें सर्प न होते हुए भी दीखता है, अतएव यह असत्-ख्याति है।

परंतु ऐसी कोई वस्तु नहीं दीख पड़ती जो है ही नहीं। उदाहरणके लिये वन्ध्या-पुत्र, शशशृङ्ग, खपुष्प आदि असत् पदार्थ कभी नहीं दिखलायी देते। पर यहाँ तो सर्पकी प्रतीति हो रही है। फिर इसे वन्ध्या-पुत्र-जैसा असत् कैसे कहें ?

(२) आत्मख्याति—क्षणिक विज्ञानवादीके मतसे क्षण-क्षण परिवर्तनशील बुद्धि ही सर्पाकार हो गयी। यह प्रतीति ही आत्मख्याति है।

परंतु ऐसी बात नहीं है, सर्पकी प्रतीति बहुत देरतक रही। यदि क्षणिक बुद्धि मानें तो एक क्षण दीखनेके बाद दूसरे क्षण उसकी प्रतीति नहीं होनी चाहिये। किंतु ऐसा है नहीं; अतएव आत्मख्यातिका सिद्धान्त अनुभवके विरुद्ध है।

(३) अन्यथा-ख्याति—न्यायशास्त्रके मतसे रज्जुकी ही अन्यथा अर्थात् सर्परूपमें प्रतीति होती है।

किंतु यह कहना नहीं बनता; क्योंकि ज्ञानका प्रकार ज्ञेयके अनुसार होता है। यहाँ ज्ञेय तो रज्जु है और ज्ञान सर्पका हो रहा है, यह कैसे सम्भव है ? यह सिद्धान्त भी अनुभवके विरुद्ध है।

(४) अख्याति—मीमांसक कहते हैं कि जिस समय रज्जुका 'इदं' रूपसे सामान्य ज्ञान हुआ, उसी समय सर्पका स्मरण हुआ। यहाँ इदं-अंशमें प्रत्यक्ष; और सर्प-अंशमें स्मृति होनेसे भेदज्ञान नहीं हुआ; क्योंकि रज्जुके विशेष अंशका भान नहीं है और सर्प-अंशका स्मरण है। स्मरण-अंशमें तथ्यांश लुप्त हो जानेसे ज्ञानके विषय और ज्ञानमें भिन्नता आ गयी। इस ज्ञानमें विषयका ग्रहण ही नहीं हुआ। इसको मीमांसाशास्त्रमें भेदाग्रह, असम्बन्धाग्रह या भेदज्ञानाभाव कहते हैं। (इसका विस्तारपूर्वक विवेचन वृत्तिप्रभाकर ग्रन्थकी सातवीं किरणमें आया है।) मीमांसक-मतसे इस अख्यातिमें चार कारणोंसे रज्जुमें सर्पकी प्रतीति हुई है—(१) रज्जुके इदंरूपका सामान्य ज्ञान, (२) सर्पांशमें स्मरण, (३) उभय विषयोंका भेदज्ञानाभाव और (४) उभय ज्ञानका भेदज्ञानाभाव।

परंतु मीमांसक-मत अनुभव-सिद्ध नहीं है; क्योंकि स्मृतिका विषय सम्मुख नहीं होता और प्रकृत स्थलमें सर्प सामने दीख रहा है, इसको स्मृतिरूप कैसे कहें ?

(५) सत् ख्याति—इस सिद्धान्तके अनुसार जिस सर्पकी प्रतीति होती है, वह सत् है। सर्प और रज्जु दोनों सावयव हैं। सृष्टिके सब पदार्थ पञ्च महाभूतोंके द्वारा बने हैं। सर्प और रज्जु दोनों अपने-अपने अवयवोंके द्वारा प्रतीत होते हैं। सर्पकी प्रतीति भी सत् प्रतीति है, असत्की प्रतीति नहीं होती।

परंतु यह कथन भी समीचीन नहीं है; क्योंकि यदि सर्प सत्य होता तो रज्जु-ज्ञान होनेके बाद सर्पके त्रैकालिक अत्यन्ताभावका निश्चय कैसे होता ? यदि मृग-जल सत्य होता तो वहाँकी जमीन गीली हो जाती; इसलिये यह मत भी दोषपूर्ण है।

यह जो पाँच प्रकारकी ख्याति बतलायी गयी, इनमेंसे किसी-न-किसी मतके माननेवाले अधिकांश लोग हैं। परंतु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विवेकशील पुरुष सत्-असत्को कसोटीपर कसकर सत् सिद्धान्तको मानकर उसपर आचरण करता है, असत्का त्याग करता है। यहाँ वास्तविक सिद्धान्त यह है कि रज्जु और सर्पके दृष्टान्तमें रज्जुको वास्तवरूपमें न समझनेके कारण ही उसमें सर्पका भ्रम होता है। ठीक इसी प्रकार परमात्माके वास्तवस्वरूपके ज्ञानके अभावमें जगदाभास या जगत्की प्रतीति होती है। श्रीसंत तुकाराम महाराज कहते हैं—

'रज्जू सर्पाकार भासियले जगडम्बर'—अर्थात् न होनेपर भी जैसे सर्प रज्जुमें आभासित होता है, उसी प्रकार जगत्का भी भ्रम हो रहा है। रज्जुमें सर्पाभास कैसे होता है? इसका विचार कीजिये।

रज्जुमें सर्पाभास जिसे होता है, उसे मानना पड़ेगा कि रज्जुका ज्ञान और अज्ञान दोनों ही है। उसे रज्जुके इदं-अंशका ही ज्ञान है; यदि रज्जुका स्पष्ट ज्ञान होता तो उसमें सर्पाभास हो ही नहीं सकता; क्योंकि पूर्ण अन्धकारमें जहाँ रज्जुका बिल्कुल ही ज्ञान नहीं होता, वहाँ सर्पकी प्रतीति नहीं होती। यहाँ यह समझनेकी बात है कि असत् उसे कहते हैं, जिसकी कभी प्रतीति नहीं होती, जैसे वन्ध्या-पुत्र, खपुष्प आदि। परंतु रज्जुमें सर्पकी प्रतीति हो रही है, इसलिये इसे असत् नहीं कह सकते। और जिसका कभी बाध नहीं होता, उसे सत् कहते हैं। यहाँ रज्जुका ज्ञान होनेपर सर्पकी प्रतीति बाधित हो जाती है, इसलिये इसे सत् कहना भी ठीक नहीं है और सत्-असत्—दोनों एक स्थलमें नहीं हो सकते। अतएव प्रतीतिका विषय और बाध योग्य प्रकारकी चौथी कोटि माननी पड़ेगी। इसीको शास्त्रमें अनिर्वचनीय ख्याति कहते हैं और इसका कारण जो अज्ञान है, उसे भी अनिर्वचनीय कहते हैं।

जगत्को समझनेके लिये इस दृष्टान्तको ठीक-ठीक समझना जरूरी है; क्योंकि जैसे रज्जुको न समझनेसे सर्पाभास उत्पन्न होता है, उसी प्रकार परमात्माको न समझनेसे जगत्की प्रतीति होती है। कुछ शास्त्रकार कहते हैं कि जगत् कार्य है। परंतु इसमें अनेक प्रश्न उठते हैं—जगत्को किसने बनाया? किस वस्तुसे बनाया? कहाँ बैठकर बनाया? किसलिये बनाया? जगत्में बैठकर जगत्को बनाया या जगत्के बाहर कहीं बैठकर जगत्को बनाया इत्यादि? इसका उत्तर आरम्भवादी दार्शनिक देते हैं कि जैसे जुलाहा सूतसे वस्त्र बनाता है, कुम्भकार मिट्टीसे घट बनाता है, उसी प्रकार ईश्वरने अपनी इच्छासे परमाणुओंके द्वारा जगत्की सृष्टि की। परिणामवादी कहते हैं कि जैसे दूधसे दही बनता है, वैसे ही प्रकृतिका परिणाम यह जगत् है। यह परिणामवाद सांख्य-मत है, इसके अनुसार प्रकृति या प्रधान सत्य है। परंतु प्रकृति स्वयं जड है, अतएव वह कार्य करनेमें स्वतन्त्ररूपसे समर्थ नहीं हो सकती। कुछ लोग शुद्ध चैतन्यका परिणाम जगत्को मानते हैं; परंतु शुद्ध चैतन्य निर्विकार है, अतएव उसका परिणाम होना असम्भव है। ये सब सिद्धान्त अनवस्था, असमञ्जस आदि दोषोंसे युक्त हैं।

दृष्टान्तानुसार रज्जुके विशेषरूपके अज्ञानसे सर्पकी प्रतीति होती है। इसी प्रकार परमात्माके विशेषरूपके अज्ञानसे जगत्की प्रतीति होती है। जिस प्रकार रज्जुके विशेषरूपके ज्ञानसे सर्प-भ्रमकी निवृत्ति होती है, और वैसे ही ब्रह्मके विशेषरूपके ज्ञानसे अज्ञान निवृत्त हो जाता है और ज्ञानसे जो निवृत्त होता है, वह अध्यस्त होता है। इसीको कल्पित या मिथ्या कहते हैं। सारांश यह है कि रज्जुका अज्ञान और तत्कार्य सर्प—ये दोनों ही मिथ्या हैं। वैसे ही परमात्मस्वरूपका अज्ञान कल्पित एवं मिथ्या है और इसका कार्य जगत् भी मिथ्या है। इसी कारण श्रीएकनाथजी महाराजने कहा है—

'प्रपंच मिथ्या वस्तू चें ठायीं।'

और इसके प्रमाणमें उसी ओवीके चतुर्थ चरणमें कहते हैं—'हें प्रमाण पाही वेदवाक्य।' अर्थात् शब्द-प्रमाणसे, वेदवाक्यसे इसका प्रतिपादन होता है।

अध्यात्मशास्त्रको समझ सके तो एक ही श्लोक या ओवीसे समझमें आ सकता है। परंतु यह समझना आसान नहीं है; यदि समझमें आ भी गया तो जँचना कठिन है; यदि जँच भी गया तो उसमें तन्मय होना कठिन है। हम जिस प्रपञ्चमें जीवन बिता रहे हैं, उस प्रपञ्चका फल अनर्थ है—यह हमारे ध्यानमें नहीं आता। इसीसे अध्यात्म-साधनमें अभिरुचि नहीं होती। वस्तुतः साधनामें अनधिकारी मनुष्य प्रगति नहीं कर सकता। इसलिये पहले अधिकारी बनकर अध्यात्मके अन्तरङ्गी बननेकी आवश्यकता है। श्रीज्ञानेश्वर महाराज भी कहते हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्यात्मशास्त्री इये । अंतरंगचि अधिकारिये ॥
परीलोक वाक्चातुर्ये । होईल सुखिया ॥
(ज्ञाने० १८ । १७४९)

अर्थात् अध्यात्मशास्त्रके अभ्यासमें अन्तरङ्गी अधिकारी होना चाहिये । दूसरे लोग वाक्चातुरी दिखलाकर ही सुखी होना चाहते हैं ।

इसीलिये ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं—

'मी कोण हा करावा विचार । म्हणे ज्ञानेश्वर निवृत्तीचा ॥'

अर्थात् 'मैं कौन हूँ—इसका विचार करो । ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं कि जागतिक प्रपञ्चसे निवृत्तिका यही मार्ग है।' परंतु 'मैं कौन हूँ'—इसको जाननेवाले संसारमें कितने होंगे ? ज्ञानरहित कोई आदमी नहीं है, सब अपनेको ज्ञानी समझते हैं; परंतु 'स्व' का ज्ञान यथार्थरूपमें विरले ही प्राप्त करते हैं । व्यावहारिक ज्ञानके विषयमें ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं—

हीं आथवीची ज्ञानें । येणें केली स्वप्नें ।
जैसा वातोर्मि गगनें । गिळिजे अंती ॥
(ज्ञानेश्वरी १४)

अर्थात्—यह अधोगतिको पहुँचानेवाला ज्ञान, जिसने उस जगत्‌रूपी स्वप्नकी सृष्टि की है, यथार्थ ज्ञान होनेपर उसी प्रकार विलीन हो जाता है, जैसे आकाशमें उठनेवाली वायुकी तरङ्गें आकाशमें ही अन्तमें विलीन हो जाती हैं ।

इस प्रकार यहाँ व्यावहारिक ज्ञानका निषेध किया गया है । लोगोंमें जो ज्ञान है, वह व्यवहारमें उपयोगी होते हुए भी कल्याणकारी नहीं है; क्योंकि यह ज्ञान दुःखका कारण बनता है । दुःखातिशयका दूसरा नाम अधोगति है । तात्पर्य यह है कि आत्मज्ञान हुए बिना जीवका कल्याण नहीं हो सकता । आत्मज्ञानका अधिकार केवल मनुष्यको है, अन्य जीवोंको आत्मज्ञान होना शक्य नहीं है । यह आत्मज्ञान-शब्द-प्रमाणका विषय है ।

शब्द दो प्रकारके होते हैं—लौकिक और वैदिक । वैदिक शब्दोंके भी दो प्रकार हैं—(१) जिन वैदिक शब्दोंके द्वारा लौकिक पदार्थका ज्ञान होता है, जैसे, वज्रहस्त पुरंदर। और (२) महावाक्य है, जैसे—'अहं ब्रह्मास्मि ।' इस महावाक्यसे यह ज्ञान होता है कि आत्मा ब्रह्मरूप है । यही ज्ञान जीवकी मुक्तिका कारण होता है, इसी ज्ञानको प्राप्त करना परम पुरुषार्थ है ।

हमारे पास ज्ञानके साधन मन, बुद्धि और इन्द्रियाँ हैं; परंतु इनके द्वारा आत्मज्ञान नहीं प्राप्त हो सकता । श्रीज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं—

मनाची नखी न लगे । जेथ बुद्धिची दृष्टी न रिघे ।
ते इन्द्रिया कीर जोगे । काय होवे ॥ (ज्ञानेश्वरी)

जहाँ मनकी गति नहीं है, जो बुद्धिमें नहीं आता, उसकी प्राप्ति इन्द्रियरूपी पक्षीके योगसे क्या हो सकती है ? सारांश यह है कि जो इन्द्रियादिके अगोचर है, उसका ज्ञान शाब्दी प्रमाके द्वारा ही हो सकता है ।

प्रमाणके द्वारा उत्पन्न ज्ञानको प्रमा कहते हैं । वह प्रमाण छः प्रकारका होता है—(१) प्रत्यक्ष, (२) अनुमान, (३) शब्द, (४) उपमान, (५) अर्थापत्ति और (६) अनुपलब्धि । इनमें केवल 'शब्द-प्रमाण' के द्वारा ही आत्मज्ञान होता है और इसका अधिकारी केवल नरदेहधारी जीव है । पर खेदकी बात यह है कि आत्मज्ञानको भूलकर मनुष्य धनवान् बननेके चक्करमें दिन-रात लगा हुआ है । परंतु भगवत्कृपासे मनुष्य चाहे कितना ही धन क्यों न अर्जन करे, उससे उसको तृप्ति नहीं होती । श्रीतुकाराम महाराज कहते हैं—

'तुका म्हणे तुम्ही श्रीमन्त नावाचे । परि ते भाग्याचे हरिभक्त ॥'

अर्थात्—संत तुकाराम कहते हैं कि तुम नामके श्रीमंत हो । यथार्थ श्रीमंत तो हरिभक्त होते हैं और वे विरले ही होते हैं ।

देह आत्मा नहीं है, पर हम इस देहको ही आत्मा समझते हैं । यही नहीं,—जो अपना नहीं है, उसे अपना माने बैठे हैं—जैसे मेरा धन, मेरा घर, मेरा परिवार आदि । यह देखकर संत तुकाराम कहते हैं—

'देह हे काळाचे, धन कुबेराचे । तेथें मनुष्याचे काय आहे ॥'

देह तो कालका है और धन कुबेरका है, इनमें मनुष्यका क्या है ? अर्थात् कुछ भी नहीं । आगे श्रीतुकारामजी कहते हैं—

'देह जाईल जाईल यासी काळोबा खाईल ।
कारे नुमगसी दगडा, कैंचे हतीं घोडवाडा ॥
लोड बालिस्ते संपत्ती जरा आलिया फजीती ।
शरीर संबंधाचे नाते भोरडपा उडविती शेताते ॥
अजूल तरी होई जागा तुका म्हणे पुढें दगा ।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारांश यह है कि 'देह तो नष्ट होनेवाला ही है, इसे एक दिन काल खा जायगा; इस मृगमरीचिकामें कुछ हाथ नहीं लगना है। धन-दौलत सब फजीहत है, इस शरीरके सम्बन्धसे इनका नाता है; ये सब अनित्य हैं। तुकारामजी कहते हैं कि यदि अभी तू नहीं चेतता तो आगे चलकर धोखा खायगा।'

इस प्रकार संत तुकाराम साधु-संत आदि सब जनोंको सचेत कर रहे हैं। 'मैं' और 'मेरा'का जो ज्ञान है, वह अज्ञान है—भ्रम है। भ्रमसे आयु व्यतीत करना खतरनाक है। अतएव श्रीगुरुके मुखसे महावाक्य श्रवण करके मनन और निदिध्यासनके द्वारा अपने स्वरूपका यथार्थ अपरोक्ष ज्ञान प्राप्त करे। इसीसे जन्म-मृत्युकी परम्परा, जो अनन्त जन्मोंसे हमारा पीछा कर रही है, छूट जायगी। इस जन्म-मृत्युरूपी परम्परामें रहनेका नाम अनर्थ है। भाष्यकार भगवान् श्रीशंकराचार्यजी अपने अध्यासभाष्यमें कहते हैं—

'अस्या अनर्थहेतोः'—

वस्तुतः आत्मामें जो अनात्माका अध्यास हो रहा है, यही सारे अनर्थोंका मूल है।

आत्मज्ञानका अभाव ही इस अनर्थका कारण है, आत्मज्ञानसे ही इसकी निवृत्ति हो सकती है, और आत्मज्ञान शुद्ध अन्तःकरणमें उदय होता है। अन्तःकरणकी शुद्धि निष्काम उपासनासे होती है। श्रीएकनाथजी महाराज कहते हैं—

नित्य नैमित्तिक कर्में जीं करावीं। तेह्नां ते पावाबी चित्त शुद्धी॥

जो नित्य और नैमित्तिक कर्मोंमें लगे रहते हैं, उनको ही चित्तकी शुद्धि प्राप्त होती है।

चित्तके तीन प्रकारके दोष हैं—(१) आत्मस्वरूपका अज्ञानरूपी आवरण, (२) विक्षेप और (३) मल। नाना प्रकारके विकार जो चित्तमें उठते हैं, वे ही मल कहलाते हैं और एकाग्रताके अभावको विक्षेप कहते हैं। इन दोनोंके निवृत्त हो जानेके बाद केवल आत्मस्वरूपका अज्ञानरूपी आवरण रह जाता है और उसकी निवृत्ति वेदान्तके श्रवण, मनन और निदिध्यासनके द्वारा होती है। आवरण-निवृत्तिका अर्थ है—अज्ञानकी निवृत्ति। इसके निवृत्त होते ही निःसंदेह आत्मज्ञान हो जाता है। श्रीएकनाथ महाराज एक अभंगमें कहते हैं—

राहिले से ज्या स्वरूपावरण। ज्ञाने निवारण होय त्याचें।

अर्थात् स्वरूपके आवरणका निवारण आत्मज्ञानके द्वारा होता है। आत्मज्ञान चिन्मात्र है, वह ज्ञानका विषय नहीं है। घट-पटादि पदार्थ जड हैं, अतएव वे ज्ञानका विषय हो सकते हैं। आत्मा तो स्वयं ज्ञानरूप है, वह किसके ज्ञानका विषय बनेगा? श्रीज्ञानेश्वरजी महाराज ज्ञानेश्वरीमें लिखते हैं—

ज्ञातृज्ञेयाविहीन। नुसंधेचि जे ज्ञान।
सुखा भरले गगन। गाळीव जे॥

अर्थात् आत्मा सत्-चित्-आनन्दस्वरूप है। उसका कभी बाध नहीं होता, अतएव सद्रूप है; अपनी सिद्धिमें अन्य किसीकी अपेक्षा नहीं करता, अतएव वह चिद्रूप है; और सर्वव्यापक आकाशके समान आनन्दसे ओतप्रोत है, अतएव वह आनन्दस्वरूप है।

न्यायशास्त्रमें ज्ञानको आत्माका गुण माना है, यानी सिद्धान्ततः मान लिया है कि चिद् आत्माका स्वरूप है। इसी प्रकार योग और सांख्यशास्त्र भी आत्माको चित् (चेतन) स्वरूप मानते हैं। इस अंशमें सबका एक मत है। इसी कारण ज्ञानेश्वर महाराजने अमृतानुभवमें लिखा है कि इस तत्त्वको न समझकर जीव किसी अनात्म-वस्तुको अपना स्वरूप मानकर व्यावहारिक ज्ञानसे अपनेको ज्ञानी मानकर धोखा खाता है। इस विषयमें वे ज्ञानेश्वरीमें कहते हैं—

'आपणचि ज्ञानस्वरूप आहे। परि ते गेले हे दुःख न सोहे। आणि विषय ज्ञाने होये। गगना येवढा॥'

अर्थात् हम ज्ञानस्वरूप हैं, बहुत ही दुःखकी बात है कि हम इसको भूल गये और आकाशके समान व्यापक विषयज्ञानमें फँस गये। इस समझमें हम किस तरह फँस गये हैं?

रावो जैसा स्वप्नी। रङ्क पणे निघे धानी।
तो दो दाणा मानी। इन्दु ना मी॥

जैसे राजा स्वप्नमें रंक हो जाय और दो दानेके लिये मारा-मारा फिरे—वही हालत जीवकी हो गयी है। अर्थात् आत्माके यथार्थ ज्ञानको भूलकर जड पदार्थके ज्ञानमें आत्मज्ञान मानकर व्यर्थ ही अमोल नरजीवनको बर्बाद कर रहा है। इस मानव-शरीरसे उसको सच्चिदानन्द-पद प्राप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करनेका अधिकार है, परंतु भूल-भुलैयामें पड़कर इस महालाभसे वह वञ्चित हो रहा है। श्रीएकनाथजी महाराज कहते हैं—

नरदेहा चे नि ज्ञाने। सच्चिदानन्द पदवी घेंग।
येवढा अधिकार नारायणें। कृपावलोकने दीधला॥

अर्थात् मनुष्यके ऊपर कृपा करके नारायणने उसको यह अधिकार दे दिया है कि ज्ञानके द्वारा वह इसी नरदेहसे सच्चिदानन्द-पदको प्राप्त करे। अतएव सत्संगतिके द्वारा साधन-पथमें अग्रसर होकर आत्मज्ञान प्राप्त करके जीव मुक्त हो जाय।

अतएव सबसे हमारी विनीत प्रार्थना है कि अपने शेष जीवनको साधनामें लगाकर परम पुरुषार्थ आत्मज्ञानकी प्राप्तिमें अग्रसर हों। श्रीतुकाराम महाराज कहते हैं—

बसेझले आजवरी। नाहीं पडलो मृत्युचे आहारी।
बाचुनी आलो येथवरी। उरले ते हरि तुम्हा समर्पण॥

'मैं आजतक धोखेमें था, संतोषका विषय है कि मृत्युका आहार नहीं बना, अबतक बचा रहा। हे हरि! अब मैं यह जीवन तुमको समर्पण करता हूँ।'

जो ऐसा संकल्प कर ले, वह कृतार्थ हो जाय।

(अनुवादक और प्रेषक—श्रीबाबासाहब बड़ेवार बार्शी)

महर्षि कृष्णद्वैपायन

(लेखक—श्रीनीरजाकान्त चौधरी देवशर्मा)

[गताङ्क, पृष्ठ १०४१ से आगे]

हम पहले शास्त्रग्रन्थोंसे और पश्चात् प्रधान और प्रसिद्ध वेदान्तभाष्यकर्त्ता आचार्यों और महान् पण्डितोंद्वारा की गयी वेदान्त-सूत्रोंकी व्याख्या आदिसे प्रमाणित करेंगे कि भगवान् कृष्णद्वैपायन वेदव्यास ही ब्रह्मसूत्र-रचयिता हैं, इस विषयमें लेशमात्र भी संदेहका अवकाश न कभी था और न हो सकता है।

(१) शास्त्र

(क) श्रीमद्भगवद्गीता (महाभारत)

ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः। (१३।४)

—गीताके इस श्लोकमें ब्रह्मसूत्रका उल्लेख प्राप्त होता है। ठीक इसी प्रकार ब्रह्मसूत्रमें भी गीताका उल्लेख अनेक बार आया है।

'अपि च स्मर्यते' (ब्र० सू० २।३।४५) सूत्रमें, गीता (४।७) **'योगिनः प्रति च स्मर्यते'** (४।२।२३) सूत्रमें, गीता (८।२३) का उल्लेख हुआ है। यहाँ सूत्रकारने गीताको 'स्मृति' कहा है। यहाँ यह सहज ही समझा जा सकता है कि ब्रह्मसूत्रकार और गीता (महाभारत) के रचयिता एक ही व्यक्ति हैं; यदि नहीं, तो दोनों कम-से-कम सम-सामयिक हैं।

(ख) स्कन्दपुराण—

कृष्णो द्वादशधा चैव पुनस्तस्यार्थवित्तये।
चकार ब्रह्मसूत्राणि येषां सूत्रत्वमञ्जसा॥

× × ×

यथा व्यासत्वमेकस्य कृष्णस्यान्यविशेषणात्।
सविशेषाणि सूत्राणि ह्यपराणि विदो विदुः॥
एवंविधानि सूत्राणि कृत्वा व्यासो महायशाः।
ज्ञानं संस्थाप्य भगवान् क्रीडते पुरुषोत्तमः॥

श्रीमध्वाचार्यने अपने ब्रह्मसूत्र-भाष्यमें स्कन्दपुराणसे उपर्युक्त श्लोकोंको उद्धृत किया है। बलदेव विद्याभूषणने भी अपने भाष्यमें इन श्लोकोंका उल्लेख किया है।

कृष्णद्वैपायन व्यासजी ब्रह्मसूत्रके प्रणेता थे, यह इन श्लोकोंसे पूर्णतः प्रमाणित होता है।

सम्भव है, कोई यह तर्क उपस्थित करे कि स्कन्दपुराण अर्वाचीन ग्रन्थ है; क्योंकि विलसन (Wilson) तथा बहुतेरे पाश्चात्त्यमतावलम्बी ऐसा ही कहते हैं। डा० हाजराके मतसे अष्टमसे चतुर्दश शताब्दीतक इसका रचनाकाल है। परंतु स्कन्दपुराण अति प्राचीन है; क्योंकि स्वयं शंकराचार्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और उनके परम गुरु गौडपादने इससे प्रमाण उद्धृत किये हैं ।*

(ग) पराशर-उपपुराण—

जैमिनीये च वैयासे विरुद्धांशो न कश्चन ।
श्रुत्या वेदार्थविज्ञानं श्रुतिपारं गतौ हि तौ ॥

यहाँ दोनों मीमांसा-दर्शनोंके सामञ्जस्यकी बात कही गयी है । दोनों ही शास्त्रोंमें वेदार्थविज्ञान संनिविष्ट है; इनमें कोई विरोध नहीं है । 'वैयास' शब्दसे व्यासप्रणीत ब्रह्मसूत्र या उत्तरमीमांसा सुस्पष्ट है ।

स्वय शंकराचार्यने कहा है कि जैमिनिका कर्मकाण्ड और व्यासका ज्ञानकाण्ड—ये दोनों मिलकर मीमांसादर्शन हैं ।

(घ) पाणिनिकी अष्टाध्यायी (वेदाङ्ग)—

हम पहले ही दिखला चुके हैं कि पाणिनिके मतसे पाराशर्य व्यासजीने भिक्षु (या ब्रह्म-) सूत्र प्रणयन किया था ।

(२) वेदान्त-भाष्यादि ।

अब हम ब्रह्मसूत्र ग्रन्थके विभिन्न साम्प्रदायिक भाष्यादिसे दिखलाते हैं कि वह व्यास-रचित है, इसमें कोई संदेह नहीं रह सकता ।

* गौडपादने अपने 'चिदानन्दकेलिविलास' नामक श्रीश्रीचण्डी-भाष्यमें स्कन्दपुराणका नाम देकर श्लोक उद्धृत किया है (८०९, ९६९, १०२ ख पृ०) । इसके बहुत दिन बाद शंकराचार्यने अपने विष्णु-सहस्रनाम-भाष्य (१०) में—

सर्वदा सर्वकार्येषु नास्ति तेषाममङ्गलम् ।
येषां हृदिस्थो भगवान् मङ्गलायतनो हरिः ॥
(स्क० पु० ५ । ३ । १५७ । ७)

—यह श्लोक स्कन्दपुराणसे उद्धृत किया है । उनकी अन्य रचनाओंमें अनेक स्थानोंमें स्कन्दपुराणकी विषय-वस्तुका संकेत पाया जाता है । प्रबोधसुधाकर २३० ख (स्कन्दपुराण, विष्णु० पुरुषोत्तम० २ । २ । ११) जगन्नाथाष्टक (स्कन्दपुराण, विष्णु० पुरुषोत्तम०) दशश्लोकी स्तुति (स्तुति स्कन्दपुराण०, काशी०, उत्तर०, ९५) इत्यादि द्रष्टव्य हैं । अतएव स्कन्दपुराण शंकराचार्यके समयमें तो था ही । गौडपादके बहुत पूर्वसे यह सर्वजनमान्य महान् शास्त्रग्रन्थके रूपमें प्राप्त होता था ।

(ङ) श्रीकण्ठभाष्य ।

बहुतोंका मत है कि श्रीकण्ठ शंकराचार्यसे भी पूर्व हुए हैं । अपनी लिखी शैवव्याख्यामें उन्होंने ब्रह्मसूत्रको 'व्यास-सूत्र' नामसे अभिहित किया है ।

श्रीमतां व्याससूत्राणां श्रीकण्ठया प्रकाशते ।
(श्रीकण्ठभाष्य (उपोद्घात)

(च) श्रीनिवासाचार्य ।

ये वैष्णवसम्प्रदायके द्वैताद्वैत या भेदाभेदवादके आचार्य श्रीमन्निम्बार्कके साक्षात् शिष्य थे । इन्होंने निम्बार्काचार्य-प्रणीत ब्रह्मसूत्रभाष्य 'वेदान्त-पारिजात-सौरभ' के ऊपर 'वेदान्त-कौस्तुभभाष्य' नामक टीका लिखी है । इसमें वे पहले ही कहते हैं—

भगवान् पुरुषोत्तमः श्रीवासुदेवः पाराशर्यात्मना नाना-कुतर्कविमोहितान् जीवान् वीक्ष्य तेषु स्वज्ञानभक्ती द्रढयितुं निःसंशयतया परब्रह्मप्रतिपत्तये शारीरकमीमांसाख्यं वेदान्त-शास्त्रं सूत्रयामास ।
(वेदान्तकौस्तुभभाष्य १ । १)

'पुरुषोत्तम वासुदेवने जीवोंको कुतर्क-विमोहित देखकर भगवद्विषयक ज्ञान और भक्तिको दृढ़भावसे स्थापन तथा निस्संदेहरूपमें परब्रह्मतत्त्वको प्रमाणित करनेके निमित्त पाराशर्य (व्यास) रूपमें शारीरकमीमांसा नामक वेदान्तसूत्रकी रचना की थी ।

निम्बार्क-सम्प्रदायके इन दोनों वेदान्तभाष्योंमेंसे किसीमें भी मायावादका उल्लेख नहीं है । इस कारण तथा प्रचलित मतके अनुसार ये दोनों ग्रन्थ शंकराचार्यके पूर्ववर्ती ज्ञात होते हैं ।

(छ) श्रीशंकराचार्य ।

(१) 'सर्वसिद्धान्तसंग्रह' ग्रन्थमें शंकर भगवत्पादने 'उत्तरमीमांसा' को 'व्याससूत्र' के नामसे स्पष्ट उल्लेख किया है ।

भवत्युत्तरमीमांसा त्वष्टाध्यायी द्विधा च सा ।
देवताज्ञानकाण्डाख्यां व्याससूत्रं द्वयोः समम् ॥
(उपोद्घात २)

(२) अक्षपादः कणादश्च कपिलो जैमिनिस्तथा ।
व्यासः पतञ्जलिश्चैते वैदिकाः सूत्रकारकाः ॥
(उपोद्घात २)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस ग्रन्थमें षड्दर्शनके आचार्योंके नामोंमें श्रीशंकराचार्यने बादरायणके बदले व्यासका नाम उल्लेख किया है, इससे प्रतीत होता है कि उनके मतसे व्यास और बादरायण एक ही व्यक्ति हैं और अभिन्न हैं ।

(३) विष्णुसहस्रनामभाष्यमें श्रीशंकराचार्य कहते हैं—

सर्वान् कामान् सदा ददातीति सर्वकामदः ।

'फलमत उपपत्तेः'—(ब्रह्मसूत्र ३ । २ । ३४) इति व्यासेनाभिहितत्वात् ।

(विष्णुस० ना० भाष्य १०४, २५७ पृ० (गीताप्रेससे) । यहाँ ब्रह्मसूत्रसे सूत्र उद्धृत करके वे स्पष्टरूपसे कहते हैं कि यह व्यासका वचन है ।

उपर्युक्त उदाहरणोंसे निस्संदेह प्रमाणित होता है कि श्रीशंकराचार्यके मतसे व्यासने ही बादरायण नामसे वेदान्तसूत्रकी रचना की थी ।

श्रीशंकराचार्यके ब्रह्मसूत्रभाष्यमें दो स्थानोंमें निम्नलिखित वाक्य पाये जाते हैं—

(४) **'इति श्रीवैयासिक्यां शारीरकमीमांसायां'**— इत्यादि । (ब्र० सू० ३ । १ । ६ । २७, ९३८ पृ० वेंकटेश्वर प्रेस)

(५) **इति श्रीमद्व्यासमहर्षिप्रणीते शारीरकदर्शने'**— इत्यादि । ब्र० सू० ४ । १ । १४ । १९, १२८४ पृ० (वें०)

अतएव संसारके श्रेष्ठ अद्वैतवादी वेदान्ती भगवत्पाद श्रीशंकराचार्य पूर्णतया विश्वास करते थे कि व्यास ही बादरायण हैं; और वे ही शारीरकमीमांसादर्शनके प्रवर्त्तक आचार्य हैं ।

(ज) वाचस्पतिमिश्र (आ० नवम शताब्दी ई०)

पण्डितसम्राट् सर्वतन्त्रस्वतन्त्र वाचस्पतिमिश्र अपनी सुप्रसिद्ध 'भामती' टीकाकी भूमिकामें कहते हैं—

ब्रह्मसूत्रकृते तस्मै वेदव्यासाय वेधसे ।
ज्ञानशक्त्यवताराय नमो भगवतो हरेः ॥

अर्थात् वेदव्यास ब्रह्मसूत्रकर्त्ता थे तथा भगवान् श्रीहरिकी ज्ञानशक्तिके अवतार थे ।

(झ) आनन्दगिरि ।

शांकरभाष्यकी टीकाके मङ्गलाचरणमें लिखते हैं—

श्रीमद्व्यासपयोनिधेर्निधिरसौ ।

(ञ) गोविन्दानन्द ।

'रत्नप्रभा' भाष्यके मङ्गलाचरणमें इन्होंने भी इसी भावमें कहा है—

श्रीशंकरं भाष्यकृतं प्रणम्य व्यासं हरिं सूत्रकृतं च वच्मि ।

(ट) श्रीमद् रामानुजाचार्य (१०१७—११३७)

विशिष्टाद्वैतवादके आचार्यपाद अपने श्रीभाष्यके मङ्गलाचरणमें लिखते हैं—

पाराशर्यवचःसुधामुपनिषद्दुग्धाब्धिमध्योद्धृताम् ।

अर्थात् उपनिषद्रूप क्षीरोदसमुद्रका मन्थन करके व्यासजीने ब्रह्मसूत्र या शारीरकमीमांसादर्शनरूप वाक्यसुधा प्रकट की है ।

(ठ) श्रीमन्मध्वाचार्य (११९७-१२७६)

शुद्धद्वैतवादके आचार्यपादने महर्षि वेदव्यासको नारायणका अवतार कहकर स्तवन किया है । उन्होंने वेदविभाजनके पश्चात् उसका अर्थनिर्णय करनेके लिये ब्रह्मसूत्रका प्रणयन किया था । अपने प्रसिद्ध ब्रह्मसूत्रभाष्य (पूर्णप्रज्ञदर्शन) में वे लिखते हैं—

भगवान्नारायणो व्यासरूपेणावततार, वेदमुत्सन्नं -यज्ञनयंश्चतुर्धा व्यभजत् । चतुर्विंशतिधा एकशतधा सहस्रधा द्वादशधा च । एवं तदर्थनिर्णयाय ब्रह्मसूत्राणि चकार ।

इसके बाद आचार्यपादने स्कन्दपुराणका उपर्युक्त वाक्य उद्धरण किया है (ऊपर 'ख' देखिये) । उपसंहारमें लिखा है—**'इति श्रीकृष्णद्वैपायनाभिधानमहर्षिवेदव्यासप्रणीतब्रह्मसूत्रं समाप्तम् ।'**

(ड) सायणाचार्य (चतुर्दश ई० सदी)—

ऋग्वेदभाष्योपक्रमणिकामें सायणने एक जगह लिखा है—

वैयासिकस्य तृतीयसूत्रस्य—यहाँ निस्संदेह ब्रह्मसूत्रको व्यासप्रणीत कहा गया है ।

(ढ) कुल्लूकभट्ट (त्रयोदश शताब्दी)

अपनी प्रसिद्ध मन्वर्थमुक्तावलीमें कुल्लूकभट्टने ब्रह्मसूत्रसे एक सूत्र उद्धृत करके टीका की है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतएव शारीरकसूत्रकृता व्यासेन सिद्धान्तितमीक्षतेर्नाशब्दम् इति ।

अतएव स्पष्ट है कि उनके मतसे व्यासजी ब्रह्मसूत्र-कर्त्ता हैं ।

(ण) विशिष्टाद्वैतवादके आचार्य श्रीमद्रामानन्द सरस्वतीने (१३००—१४११) अपने वेदान्तदर्शनकी वृत्ति 'ब्रह्मामृतवर्षिणी'को उपसंहारमें निम्नलिखित श्लोकके द्वारा भगवच्चरणोंमें उनके प्रीत्यर्थ समर्पण किया है—

विदुषां कण्ठभूषेयं कृता वृत्तिर्मया प्रभो ।
व्यासवाङ्मणिसंदब्धा प्रीतये तेऽस्तु सर्वदा ॥

इस श्लोकसे सुस्पष्ट प्रतिभात होता है कि आचार्यपादको पूर्णतः विश्वास था कि वेदव्यास ही ब्रह्मसूत्रके प्रणेता हैं ।

(त) महाप्रभु श्रीकृष्णचैतन्य देव (षोडश शताब्दी) महाप्रभु बङ्गदेशके देदीप्यमान प्रकाश थे । वे केवल श्रेष्ठ वैष्णव और सिद्ध अवतारी महापुरुष ही नहीं थे, वरं उनमें पाण्डित्य भी असाधारण था । दिग्विजयी पण्डित भी उनसे परास्त हो गये थे । वे भी जानते थे कि वेदान्तसूत्र व्यासरचित हैं । उनके मतसे श्रीमद्भागवत भी कृष्णद्वैपायनकी रचना है, यह ब्रह्मसूत्रका भाष्य और विस्तार है । कृष्णदास कविराज कृत 'श्रीश्रीचैतन्यचरितामृत' ग्रन्थसे उद्धृत निम्नलिखित श्लोकसे यह प्रमाणित होता है—

श्रीकृष्ण चैतन्य हय साक्षात् नारायण ।
व्याससूत्रेर अर्थ करे अति मनोरम ॥
दुयेर छय मत व्यास कैलु आवर्त्तन ।
सेइ सब सूत्र लैया वेदान्त वर्णन ॥

× × ×

प्रभु कहे आमि जीव अति तुच्छ ज्ञान ।
व्यास सूत्रेर गम्भीरार्थ व्यास भगवान ॥
ताँर सूत्रेर अर्थ कोन जीव नाहि जाने ।
अतएव आपन सूत्रेर करियाछे व्याख्याने ॥
अतएव भागवत सूत्रेर अर्थरूप ।
निजकृत सूत्रेर निज भाष्यरूप ॥

(चै० च० मध्य २५)

और भी—

प्रभु कहे वेदान्त सूत्र ईश्वर वचन ।
व्यास रूपे कहिल जाहा श्रीनारायण ॥

× × ×

व्यासेर सूत्रेते कहे परिणाम वाद ।
व्यास भ्रान्त वलि ताँहा उठाइल विवाद ॥
परिणाम वादे ईश्वर हयेन विकारी ।
एत वलि विवर्त्त वाद स्थापन जे करी ॥

(चै० च० आदि

आगे कहते हैं—

जीवेर निस्तार लागि सूत्र कैल व्यास ।
मायावादी भाष्य सुनिले हय सर्वनाश ॥
परिणाम वाद व्यास सूत्रेर सम्मत ।
अचिन्त्य शक्ति ईश्वर जगद्रूपे परिणत ॥
मणि जैछे अविकृत प्रसरे हेमभार ।
जगद्रूप हय ईश्वर तबू अधिकार ॥
'व्यास भ्रान्त' बलि सेई सूत्रे दोष दिया ।
विवर्त्तवाद स्थापियाछे कल्पना करिया ॥

(चै० च० मध्य ६

महाप्रभुने शंकरके मायावाद या विवर्त्तवादको निरस्त कर अचिन्त्य भेदाभेदवादकी स्थापना की थी ।

(थ) श्रीमद् वल्लभाचार्य (१४७८-१५३० ई०
पुष्टिमार्गके आचार्यपाद श्रीमद् वल्लभाचार्य भी प्र... पण्डित थे । उनके विशुद्धाद्वैतवाद-पक्षमें अणु... लिखा है—

तथा च निर्णये येन केनापि वेद वक्तव्ये हरिः स्वयं ... विचारं चिकीर्षुस्तत्कर्त्तव्यतां बोधयति । ब्रह्म... कर्त्तव्येति व्यासोक्तत्वादपि कर्त्तव्यता ।

श्रीवल्लभाचार्यजी महाप्रभुके समसामयिक थे । दो... परस्पर साक्षात्कार और वार्तालाप करनेकी बात ... चरितामृत' तथा वल्लभसम्प्रदायके ग्रन्थोंमें पायी जाती है ... उनका भी विश्वास था कि व्यासजी स्वयं नारायण ... और ब्रह्मसूत्रके प्रणेता थे ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(द) बलदेवविद्याभूषण—

इन्होंने चैतन्य महाप्रभुके अचिन्त्यभेदाभेदवाद सिद्धान्तके अनुसार ब्रह्मसूत्रके 'गोविन्दभाष्य' की रचना की है। स्वयं गोविन्दके स्वप्नादेशसे यह भाष्य लिखा गया है।

सूत्रांशुभिस्तमांसि व्युदस्य वस्तूनि यः परीक्षयते ।
स जयति सात्यवतेयो हरिरनुवृत्तो नतप्रेष्ठः ॥

'द्वापरे वेदेषु समुत्सन्नेषु संकीर्णप्रज्ञैर्ब्रह्मादिभिरभ्यर्थितो भगवान् पुरुषोत्तमः कृष्णद्वैपायनो मन्त्रान् उद्धृत्य विबभाज। तदर्थं निर्णेतुं चतुर्लक्षणां ब्रह्ममीमांसामाविश्चकार इत्यस्ति कथा स्कान्दी।'

देखा जाता है कि—गोविन्दभाष्यमें भी ऊपर उद्धृत (ख) स्कन्दपुराणके श्लोकका उल्लेख करके कहते हैं कि भगवान् पुरुषोत्तम स्वयं व्यासरूपमें अवतीर्ण होकर वेदोंका उद्धार करके चार भागों और अनेक शाखाओंमें विभाजन करते हैं। तत्पश्चात् वेदका सार अर्थ निर्णय करनेके लिये कृष्णद्वैपायनने ब्रह्मसूत्रदर्शनका आविष्कार किया है।

(ध) अप्पय्य दीक्षित। (१५२०—१५९२)

ये दक्षिणके शिवभक्त अद्वैतवादी महान् पण्डित थे। अपने 'वेदान्तकल्पतरु' नामक सुप्रसिद्ध भाष्यमें इन्होंने व्यासजीको ब्रह्मसूत्रकर्त्ता आदिगुरु कहकर प्रणाम किया है।

यन्न्यायसूत्रग्रथितात्मबोध-
सौरभ्यगर्भश्रुतिपद्ममाला ।
प्रसाधयत्यद्वयमात्मतत्त्वं
तं व्यासमाद्यं गुरुमानतोऽस्मि ॥
(मङ्गलाचरण ६)

'भारत-सार-संग्रह' पुस्तिकामें वे कहते हैं—

'श्रीबादरायणमुनिः स्वयमेव विष्णुः।'

व्यास विष्णुके अवतार हैं, अतएव बादरायण ही व्यास हैं।

उपसंहार—

शास्त्रादि मूल ग्रन्थोंसे तथा प्राचीनतम कालसे लेकर सप्तदश शताब्दीतक रचित ब्रह्मसूत्रके भाष्य आदिकी आलोचनाके द्वारा निस्संदेह यह प्रमाणित हो गया कि वैदिक धर्मके स्तम्भस्वरूप और ज्ञानकी दृष्टिसे महामानवरूप, विभिन्न सम्प्रदायोंके आचार्य और पण्डितोंने एक स्वरसे इस बातकी घोषणा की है कि महर्षि कृष्णद्वैपायन वेदव्यासके रूपमें श्रीहरिने अवतीर्ण होकर अनन्त वेदराशिका विभाग करके उसके सार अर्थके रूपमें ब्रह्मसूत्र या शारीरकमीमांसा शास्त्रका प्रणयन किया था। इसमें संदेह नहीं कि वे ही बादरायण नामसे संसारके इस सर्वश्रेष्ठ दर्शन-ग्रन्थके रचयिता हैं।

आधुनिक तथाकथित गवेषणाके द्वारा इस महासत्यके अपलापकी कुचेष्टा निरर्थक है, इसको व्यर्थ वातुलताके सिवा और कुछ नहीं कहा जा सकता। विशाल हिमालयके तुङ्गतम शृङ्गके धवल सौन्दर्यको हम बहुत दूरसे तथा अनेक निम्नस्तरसे केवल सानन्द विस्मयाभिभूत होकर देख सकते हैं, पर वहाँ जानेमें समर्थ नहीं हो सकते। इसी प्रकार व्यासजीके विराट् व्यक्तित्वके प्रभावसे मुग्ध होकर केवल हम कह सकते हैं—'हे करुणापारावार महर्षे! हम क्षुद्र हैं, आपने कृपा करके हमको संसारका बृहत्तम ग्रन्थ महाभारत, उसकी मध्यमणि श्रीमद्भगवद्गीता, अष्टादश महापुराण, उनके मध्यमणिसदृश अपूर्व ज्ञान और भक्तिका प्रस्रवण श्रीमद्भागवत तथा वेदान्तके सारे ज्ञानको निचोड़ करके संसारका सर्वश्रेष्ठ, साथ ही लघु-कलेवर दर्शनग्रन्थ ब्रह्मसूत्र प्रदान किया है। हम मूर्ख, ज्ञानहीन और अयोग्य हैं। अवाक्, विस्मित और भक्तिभावसे विनम्र होकर आपको केवल प्रणाम कर सकते हैं और इतना ही कह सकते हैं—

नमोऽस्तु ते व्यास विशालबुद्धे
फुल्लारविन्दायतपत्रनेत्र ।
येन त्वया भारततैलपूर्णः
प्रज्वालितो ज्ञानमयः प्रदीपः ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनन-माला

(लेखक—ब्र० श्रीमगनलाल हरिभाई व्यास)

[गताङ्क पृष्ठ १०३२ से आगे]

८४—घर छोड़कर जंगलमें जानेसे मुक्ति नहीं होती। सफेद छोड़कर भगवा पहननेसे मुक्ति नहीं होती। यह त्याग त्याग नहीं है। अहंकारका त्याग ही सच्चा त्याग है। हम देह नहीं हैं, तथापि हम अपनेको देह मानते हैं—इस मिथ्या अहंकारका त्याग करना आवश्यक है। शरीर, इन्द्रियाँ और मन कर्म करते हैं, तो भी हम मानते हैं कि हम कर्म करते हैं। यह सर्वथा मिथ्या है—इस मिथ्या अहंकारका त्याग आवश्यक है। यह त्याग अभ्याससे होगा। मनके इस मिथ्या भ्रमको विचारके बिना कोई दूर नहीं कर सकता। परमात्माकी निष्काम भक्तिसे सत् विचार पैदा होता है और उस विचारके बढ़नेपर सारे कल्याण सिद्ध होते हैं; इसलिये सत् विचारका सेवन करे। इसके लिये सत्सङ्गकी विशेष आवश्यकता है। सत्सङ्ग जीवित सत्पुरुषसे हो सकता है तथा सद्ग्रन्थोंके पठन-विचार और चर्चासे हो सकता है। इसकी नित्य साधना करे।

८५—यह सारा जगत् आत्मा—परमात्मामें भासित हो रहा है, यह मिथ्या है। मैं आत्मा हूँ—यह निर्णय सत्य है तथा नित्य मनन करने योग्य है। आत्मा-परमात्मामें भेद नहीं है। दोनों एक ही वस्तु हैं। चेतन आत्माके टुकड़े नहीं हो सकते। इसे करे कौन ? आत्मा अविकारी और अविनाशी है, अतएव वह व्यापक है। वह आत्मा मैं हूँ। केवल लिङ्गशरीरकी उपाधिके कारण आत्मा एक होनेपर भी अनेक रूपमें दीखता है, वासनाके नाशसे उस लिङ्गशरीरका नाश होता है। इसके सिवा करोड़ों उपाय करनेसे भी इसका नाश नहीं होता। स्वस्वरूपके ज्ञानके बिना, आत्म-ज्ञान हुए बिना वासनाका नाश नहीं होता। स्व-स्वरूपका ज्ञान निष्काम भक्ति और सत्सङ्गके बिना नहीं होता। इसलिये निष्काम भक्ति और सत्सङ्गका सदा सेवन करे।

८६—परमार्थके इस मार्गमें प्रविष्ट साधक एक बार प्रवेश करनेपर फिर निकल नहीं सकता। कदाचित् कुछ देरके लिये गड़बड़में पड़ जाय, परंतु थोड़े ही समयके बाद फिर रास्ता पकड़ लेता है। अन्तरिक्षमें अदृश्य रूपमें देवता और सिद्ध पुरुष विचरण करते हैं और वे जगत्में इस प्रकारके साधककी सदा सहायता करनेकी प्रतीक्षामें रहते हैं। वे किसी-न-किसी रूपमें आकर किसी प्रकारसे प्रेरणा प्रदान करके साधकको उसके भूले हुए मार्गपर आरूढ़ करा देते हैं, अतएव धैर्य और शान्ति रखकर साधकको साधनामें लगे रहना चाहिये। परमात्माके स्मरणमें ऐसी सामर्थ्य है कि वह सब विघ्नोंका नाश करके आत्माको परमात्मामें जोड़ देता है। साधन-अवस्थामें आत्मा और परमात्मा भिन्न-भिन्न जान पड़ते हैं, परंतु जैसे-जैसे साधन बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे अन्तर घटता जाता है और अन्तमें दोनों एक हो जाते हैं—यह निश्चित है।

८७—क्रिया करनेवाले तो स्थूलशरीर, इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि ही न हैं ! ये सब आत्माके सामीप्यसे शक्ति पाकर क्रिया करते हैं। हम शरीर, इन्द्रिय, मन या बुद्धि नहीं हैं, बल्कि इन सबके साक्षी तथा इन सबको शक्ति देनेवाला आत्मा है। कर्ता और भोक्ता तो ये सब हैं, तथापि हम अपनेको कर्त्ता और भोक्ता मानते हैं—यह बड़ी भारी भूल है। हम साक्षी हैं, और कर्त्ता-भोक्ता तो प्रकृतिरूप शरीर, इन्द्रिय, मन और बुद्धिका समुदाय है। हम असङ्ग और नित्य हैं, और ये सब विकारी, विनाशशील और मिथ्या हैं। हम असङ्ग और इन सबके साक्षी हैं, आत्मस्वरूप हैं—इसका बारंबार मनन करे।

८८—साधक श्वासमें वृत्ति लगाकर श्वासके साथ जप करे, यह अत्यन्त लाभदायक है तथा मालाके बिना भी केवल मनसे जप करे, यह भी बहुत लाभदायक है। इन दोनों प्रकारसे जप करनेसे मन दूसरे विचारोंमें नहीं रहता और तुरंत शान्त हो जाता है। ये दोनों अभ्यास नित्य नियमित रूपसे करने चाहिये।

८९—जन्म, मृत्यु, जरा और व्याधि—ये शरीरको होते हैं। आत्माको नहीं होते। हम आत्मा हैं, शरीर नहीं हैं। शरीर हमारा नहीं है। हममें और शरीरमें कोई सम्बन्ध नहीं। इस बातका बारंबार दृष्टान्त और तर्कद्वारा मनन करे। मनन किये बिना आत्मज्ञान दृढ़ नहीं होता, स्थिर नहीं रहता। इसी प्रकार हर्ष, शोक, क्रोध, भय और चिन्ता तथा मोह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और लोभ आदि जो हैं; ये चित्तमें होते हैं आत्मामें नहीं। हम चित्त नहीं हैं, बल्कि चित्तके भी द्रष्टा साक्षी आत्मा हैं—इस प्रकारका मनन बार-बार करे।

९०—शरीरकी प्रकृतिके अनुसार जो हो सके, वह स्वधर्मरूपी कर्म शान्तचित्तसे, राग-द्वेषरहित होकर और फलेच्छासे रहित होकर करे। चित्तको शान्त और निर्विकार रखकर स्वधर्मरूपी कर्मको करता जाय। विषयोंमें सुख-बुद्धि होनेसे चित्त कामनायुक्त होता है और कामनायुक्त चित्त अशान्त होता है। अशान्त चित्तमें सुखका अनुभव नहीं होता। जो कुछ करे, वह शान्तचित्तसे करे। सारे कर्मोंके कर्ता तो प्रकृतिरूपी शरीर, इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि हैं। स्थूलशरीर जड है, इन्द्रियाँ जड हैं, इन सबका प्रेरक अन्तःकरण कहलानेवाला चित्त है। अर्थात् चित्त कर्ता और भोक्ता है। तथापि हम उस चित्तका सङ्ग करके अपनेको कर्ता-भोक्ता मानकर सुख-दुःखका अनुभव करते हैं। हम चित्त नहीं हैं, चित्त अपना नहीं है। चित्तसे और अपनेसे कोई सम्बन्ध नहीं है। इस प्रकार चित्तका त्याग करे और यह त्याग ही सच्चा त्याग है।

९१—साधक प्राणिमात्रको अपना स्वरूप—मित्र मानकर तदनुसार उसके साथ बर्ताव करे। चींटीसे लेकर ब्रह्मातक सारे प्राणियोंके शरीर पञ्चभूतके बने हैं और सबमें आत्मा है। जैसे हम हैं, वैसे सब हैं। अपना शरीर पञ्चमहाभूतोंका है, सबका शरीर पञ्चमहाभूतोंका है। अपने शरीरमें आत्मा है और सबके शरीरमें आत्मा है। हम शरीर नहीं हैं, बल्कि आत्मा हैं। वैसे ही वे भी शरीर नहीं हैं, बल्कि वास्तविक रूपमें आत्मा हैं। हमारा शरीर विकारी और विनाशशील होनेके कारण केवल दिखावामात्र है और मिथ्या है, वैसे ही सबके शरीर विकारी और विनाशशील होनेके कारण दिखावामात्र और मिथ्या हैं। अपने शरीरमें स्थित आत्मा सत्य और शरीर मिथ्या है। इसी प्रकार सबके शरीरमें स्थित आत्मा सत्य और शरीर मिथ्या है। इससे ज्ञात हो जाता है कि आत्मा हमारे भीतर और सब शरीरोंके भीतर नित्य और सत्य है तथा शरीरमात्र मिथ्या है। नित्य मुक्त, अविकारी और अविनाशी, अखण्ड और व्यापक आत्मा सब शरीरोंमें विभिन्न-सा भासता है, परंतु वास्तवमें एक ही है। आत्मारूपी महासागरमें तरङ्गरूपी शरीर मिथ्या भासते हैं। वास्तविक आत्मा एक और अखण्ड है और वह आत्मा सबका साक्षी एक मैं हूँ। यह परम सत्य है। इसका बारंबार चिन्तन करे। चित्तके लिये यह समझना कठिन जान पड़ेगा; परंतु यह पूर्ण सत्य है। अतएव इसमें श्रद्धा रखकर बार-बार तर्कपूर्वक इसका चिन्तन करे।

यह अभ्यास जैसे-जैसे बढ़ता जायगा, वैसे-वैसे शरीर और इन्द्रियोंसे कर्म करते रहनेपर भी मन पूर्ण शान्त रहेगा। इस प्रकार समाहित—शान्त हुए मनको शान्त रहने दे। इस प्रकार शरीरसे जो कर्म होता है, वह बन्धनकारक नहीं होता।

९२—आत्मा कभी जन्मा नहीं, उसकी मृत्यु भी नहीं है। पहले कभी जन्मा नहीं था और आगे जन्मनेवाला नहीं है। उसके प्रारब्ध कर्म नहीं हैं। कर्ममात्रका कर्त्ता तथा एक शरीरसे दूसरे शरीरमें जानेवाला तो चित्त है, आत्मा नहीं। आत्मा तो सदासे है और सदा रहेगा। सर्वत्र है, निरञ्जन, निराकार, निर्विकार है। मुक्ति आत्माकी नहीं, चित्तकी होनेवाली है। आत्मा तो कभी बन्धनमें आया ही नहीं, वह तो सदा ही मुक्त है। प्रयत्न करके जो कुछ करना है, वह है चित्तको आत्मामें लय करना। चित्तसे ही यह संसार है, चित्तसे ही ये जन्म-मृत्यु तथा चित्तसे ही ये सुख-दुःख हैं। यह चित्त कैसे पैदा हुआ, यह विचार करना आवश्यक नहीं है, इसका पार पाना कठिन है। बल्कि पुरुषार्थ इसलिये करना है कि जिससे वह चित्त किसी प्रकार मरकर आत्मामें विलीन हो जाय। चित्तके मरनेका नाम मुक्ति है। चित्तके जीते रहनेका नाम संसार है। जैसे स्त्रीकी खुराक पतिके साथ विषय-भोग है और इससे वह पुष्ट होती है, इसी प्रकार चित्तकी खुराक भोग-वासना है और इसीसे वह पुष्ट होता है तथा फूलता-फलता है। भोगवासना नष्ट होनेपर चित्त दुर्बल हो जाता है और अन्तमें क्षीण होकर आत्मामें लीन हो जाता है। भोगकी इच्छाका नाश किये बिना वासनाका नाश नहीं होता तथा भोगोंमें सुख-बुद्धिका नाश हुए बिना और दुःख-बुद्धि हुए बिना भोगोंकी इच्छा शान्त नहीं होती। इस चित्तको शान्त करने और भोगोंमें सुख-बुद्धिका त्याग करनेमें विचार और सत्सङ्गके सिवा कोई जप, कोई तप या तीर्थयात्रा काम नहीं देते। इसलिये आत्म-विचार, सत्सङ्ग और हरिस्मरणका नित्य सेवन करे। एक क्षण भी स्मरण बिना न रहे। आत्माको कर्म बन्धनमें नहीं डालता; अज्ञानसे आसक्ति होती है और वह बन्धनकर्त्ता है; इसके लिये निम्नलिखित अर्द्धश्लोक बारंबार उच्चारण करे।

न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् कर्म मुझको लिप्त नहीं कर सकते, कर्मफलमें मेरी स्पृहा नहीं है।

मैं शरीर नहीं हूँ, किंतु तीनों शरीरका साक्षी हूँ, आत्मा हूँ—यों बारंबार बोला करे। मैं साक्षी हूँ, मैं कर्त्ता-भोक्ता नहीं हूँ—इसका चिन्तन करे।

९३–जगत्में दो चीजें हैं—एक द्रष्टा और दूसरा दृश्य। जो दृश्य है, वह विकारी और विनाशशील है, इसलिये मिथ्या है; और जो द्रष्टा है, वह नित्य अविकारी और अविनाशी है। हम द्रष्टा हैं, क्योंकि दृश्यको हम जानते हैं। जो द्रष्टा होता है, वह दृश्य नहीं होता; और जो दृश्य होता है, वह द्रष्टा नहीं होता। प्रथम साधक शरीरका द्रष्टा होता है और यह अनुभव दृढ़ होनेपर स्वयं अभ्यासके द्वारा सारे जगत्का द्रष्टा हो जाता है। मैं ब्रह्म हूँ, ऐसा अनुभव होने लगता है। यह अभ्यास सहज नहीं है। मैं आत्मा हूँ, मैं ब्रह्म हूँ—यह चिन्तन सदा करे। एक क्षण भी इस चिन्तनके बिना मनको न रक्खे। (इस पारमार्थिक मार्गके) प्रत्येक अभ्याससे मनमें ऐसी शक्ति आती है कि वह जो चिन्तन करता है, उसकी प्राप्ति होती है। इस कारण यह अभ्यास करते हुए यदि मायिक चिन्तन करता है तो मुक्तिका साधन अपूर्ण रह जाता है और साधक जन्म-मरणके चक्रसे नहीं छूटता।

९४–साधन दो कारणोंसे अधूरा रहता है—एक तो मायिक इच्छा होनेसे और दूसरा, साधन पूर्ण होनेके पूर्व ही शरीरान्त होनेसे। यदि ऐसा होता है तो साधक पवित्र तथा श्रीमंत परिवारमें जन्म लेकर वहाँ इच्छानुसार भोगोंको भोगता है और वहीं पूर्वजन्मके साधनको चालू रखता है। यदि मायिक वासना जाग्रत् न हुई और साधना शरीरान्त होनेके पहले पूर्ण न हुई तो वह साधक या सिद्ध योगीके घर जन्म लेता है और उसकी सहायतासे अपनी साधना आगे बढ़ाता है। किंतु यह मार्ग ऐसा है कि इसमें एक बार प्रवेश करनेवालेकी मुक्ति जल्दी या देरसे अवश्य होती है। इसलिये साधकको शान्ति और धैर्यपूर्वक साधनामें लगा रहना चाहिये।

९५–मुक्तिकी इच्छा रखनेवाले साधकको द्रव्योपार्जन करनेका व्यवसाय छोड़ देना चाहिये। केवल पेट भरनेके लिये किसीके द्वारा व्यवस्था कर ले। दूसरी सारी कामनाओंका त्याग करे। मैं दूसरोंकी भलाई करूँ—यह भी एक प्रकारकी कामना है। जो विश्वम्भर है, वह जगत्में जिस समय जैसी आवश्यकता होती है, वैसा कर रहा है। दूसरी बात यह है कि स्त्रीका और सांसारिक पुरुषोंके सहवासका त्याग करे। एकान्तमें रहे। प्राकृतिक दृश्यके बीचमें रहे। सङ्गसे कामना जागती है और पतन होता है। राजर्षि भरत मृगके सङ्गके कारण मृगयोनिको प्राप्त हुए थे। सौभरि ऋषि जलमें बैठकर तप करते थे, वहाँ मछलीके जोड़ेका मिलन-प्रसङ्ग देखकर विवाह करनेके लिये तैयार हो गये और ५० रूप धारण करके ५० कन्याओंसे ब्याह किया। इस कारण साधक विषयानन्दी स्त्री-पुरुषका कभी साथ न करे। मौनका अभ्यास करे तथा एकान्त सेवन करे। मनको सदा आत्मचिन्तनके अभ्यासमें लगाये रक्खे, कभी बेकार न रहने दे। आहार सदा सादा करे और आत्मनिष्ठ पुरुषका—आत्माराम पुरुषका सदा सङ्ग करे।

९६–भगवान् श्रीकृष्ण जब गोपबालकोंके साथ बछड़े चराने गये, तब ब्रह्माजी उनकी परीक्षा करनेके लिये एक ओर बछड़ोंको और दूसरी ओर गोपबालकोंको चुराकर ले गये। यह जानकर भगवान् एक होकर भी, उनके माता-पिताको प्रसन्न रखनेके लिये स्वयं सारे बछड़े और गोपबालकोंके रूपमें प्रकट हुए। वस्त्र, लकुटी, बाँसुरी—जैसे जिनका रूप-रंग और स्वभाव था, वह उनके सर्वथा सर्वरूप हो गये। स्थावर-जंगम—सर्वस्वरूप हो गये। जैसे सौभरि ऋषिने ५० रूप धारण करके ५० कन्याओंसे ब्याह किया और ५० कन्याओंके साथ ५० रूप होकर रहे, एक श्रीकृष्णभगवान्ने १६१०८ कन्याओंके साथ १६१०८ रूप धारण करके ब्याह किया और १६१०८ रूप धारण करके रहे। वे जैसे एक होते हुए भी अनेक हो गये, फिर एकके एक ही रहे, उसी प्रकार परमात्मा एक होते हुए भी अनेक स्थावर-जंगमरूप होकर विलसित हो रहे हैं। परमात्मा एक और अनन्त होकर भी अनेक रूपोंमें हो रहे हैं। सारा जगत् परमात्मस्वरूप या आत्मस्वरूप है। सर्वत्र आत्मा, परब्रह्म परमात्मा विलसित हो रहा है। इसमें जो नाम और रूप है, वह मिथ्या है। इस नाम-रूपके अणु-अणुमें व्यापक जो आत्मा है, वह सत्य है। वह आत्मा मैं हूँ—इस प्रकार सदा चिन्तन करता रहे। विषयानन्दी होनेपर साधक विषयोंको प्राप्त होगा और जन्म-मरणके प्रवाहमें बहेगा। इसलिये विषयानन्दी न बनकर आत्मानन्दी बननेका अभ्यास करे, जिससे वह मुक्त हो जाय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कलियुगकी वृद्धि चरम सीमापर

(लेखक—पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा)

कलियुगका स्वरूप और निदान

श्रीमद्भागवतादिके अनुसार महाराज युधिष्ठिर कलियुगको हटानेके लिये जन्मभर चेष्टा करते रहे और उसकी वृद्धि देखते निर्विण्ण हो हिमालयमें जा गले। इसे सुनकर अभिमन्यु-पुत्र परीक्षित् कलि-निग्रहके लिये निकल पड़े और उसे उन्होंने दण्डित किया (भागवत १ । १६ । १९) और तत्पश्चात् भी राजाओंका यह प्रयत्न चालू रहा। विक्रमादित्यने इसमें पर्याप्त सफलता पायी। श्रीव्यासजी भी कलियुगसे दुःखी हुए। शार्ङ्गधरने श्रेष्ठ श्लोकोंका संग्रह किया जिनका आधार लेकर* गोस्वामी तुलसीदासजी भी प्रभुके सामने रोये।

राज समाज कुसाज कोटि कटु कलपित कलुष कुचाल नई है॥
नीति प्रतीति प्रीति परमिति पति हेतुबाद हठि हेरि हई है।
आस्रम-बरन-धरम बिरहित जग, लोक-बेद-मरजाद गई है॥
कामधेनु धरनी कलि गोमर बिबस बिकल जामति न बई है।
कलि करनी बरनिये कहाँ लौं, करत फिरत बिनु टहल टई है॥
तापर दाँत पीसि कर मींजत, को जानै चित काह ठई है।

इत्यादि विनय-पत्रिका १३९ तथा कवितावली, मानस आदिमें भी तुलसीदासजीने ऐसी बातें बार-बार लिखी हैं।†

समर्थ रामदासजी भी कलियुगके आगमनसे व्यथित हुए। उन्होंने दासबोध (पृ० २६४-६५ हिंदी साहित्य कुटीर, बनारसका चौथा संस्करण) में लिखा है—नीच वर्णोंके गुरुपद पानेसे आचार डूब जाता है। कहा है—'वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः।' (शातातपसंहिता) अर्थात् सभी वर्णोंका गुरु ब्राह्मण ही है। पर अब (कलियुगमें) ब्राह्मण भी बुद्धिसे च्युत तथा आचारसे भ्रष्ट हो गये हैं। वे अपना गुरुत्व छोड़कर शिष्योंके भी शिष्य बन गये हैं। बहुत-से लोग स्वेच्छासे मुसलमानतक हो गये हैं। यही कलियुगका आचार है। अब विचार तो कहीं रह ही नहीं गया है। अब आगे तो सभी जगह वर्णसंकरता ही होनेको है। अब नीच जातिके ही लोगोंको गुरुत्व प्राप्त होने लगा है और उन्हींकी महत्ता भी बढ़ गयी है।' ' 'राज्य म्लेच्छोंके हाथमें चला गया है। गुरुत्व कुपात्रोंके पास चला गया है। हमलोग न इस लोकके रह गये न उस लोकके। अब हमारे पास कुछ भी न रह गया।' ' 'हमारी अवस्था अब ऐसी हो गयी कि अन्न भी नहीं मिलता इत्यादि।

यह तो ३-४ शताब्दी पूर्वके साधकवर्योंके अनुभव रहे। अबकी स्थितिका वर्णन कौन करे। न तो हमने सत्ययुग देखा और न त्रेता, न द्वापर। तथापि अपने बाल्यकालमें ही जो निश्छलता, साधुभाव, सदाचार, शुद्ध दूध, दही, घी एवं सस्ता अन्न (प्रायः १ रु० का आधा मन तथा दाल, गुड़ आदि एक मन) तक देख आये हैं, उसीके सामने यह निरन्तरव्यापी तथा १९४१ से अबतक उत्तरोत्तर भीषण महर्घता, नृशंसता, विद्वान् साधु-ब्राह्मणों एवं गवादि पशुओंकी उपेक्षा, उनकी दुर्दशा, मशीनीयुग या कलयुग (उपनाम कलियुग) की सर्वत्र बाढ़ देखते हैं तो वाणी नितरां कुण्ठित ही रह जाती है। फिर कहा जाय तो सुननेवाला कौन ? तथापि विश्वरूपव्याप्त जनार्दनके संतोषार्थ कुछ लिखना आवश्यक है—

अस्तु। प्रायः १८ पुराणों (विशेषकर उनके माहात्म्यों), अधिकांश स्मृतियों एवं ज्यौतिषग्रन्थोंमें भी कलियुगका वर्णन मिलता है। वेदों तथा ब्राह्मण-ग्रन्थों (ऐत० ७। ३-१५) में भी इसकी संक्षिप्त चर्चा आयी है। किंतु शुक्र-नीति, महाभारत तथा मनुस्मृतिमें धर्माधिक्यको सत्ययुगका तथा धर्म-निरेपक्षता—धर्मशून्यताको कलियुगका लक्षण कहकर राजाको ही उसका मुख्य कारण बतलाया गया है—

चतुष्पात्सकलो धर्मः सत्यं चैव कृते युगे।
इतरेष्वागमद्धर्मः पादशस्त्ववरोपितः।
चौरिकानृतमायाभिर्धर्मश्चापैति पादशः॥
(मनु० १। ८१-८२)

कृतं त्रेतायुगं चैव द्वापरं कलिरेव च।
राज्ञो वृत्तानि सर्वाणि राजा हि युगमुच्यते॥
(मनु० ९। ३०१)

---

* धर्मः प्रव्रजितस्तपः प्रचलितं सत्यं च दूरे गतं
पृथ्वी मन्दफला नराः कपटिनश्चित्तं च शाठ्योर्जितम्॥
राजानोऽर्थपरा न रक्षणपराः पुत्राः पितुर्द्वेषिणः
साधुः सीदति दुर्जनो विलसति प्राप्ते कलौ दुर्युगे॥
(शा० प०, गरुडपुराण १। ११५। २, बृहस्पतिनीतिसार०, चाणक्य ७। २, सुभा० भा० ३। ४१२। २८ इत्यादि)

† देखिये—खेती न किसान को भिखारीको न भीख बलि… रहा करी।

(कवितावली, उत्तरकाण्ड आदि)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कालो वा कारणं राज्ञो राजा वा कालकारणम् ।
इति ते संशयो मा भूद्राजा कालस्य कारणम् ॥
दण्डनीत्यां यदा राजा सम्यक् कार्त्स्न्येन वर्तते ।
तदा कृतयुगं नाम कालसृष्टं प्रवर्तते ॥
दण्डनीतिं परित्यज्य यदा कार्त्स्न्येन भूमिपः ।
प्रजाः क्लिश्नात्ययोगेन प्रवर्तेत तदा कलिः ॥
कलावधर्मो भूयिष्ठं धर्मो भवति न क्वचित् ।
सर्वेषामेव वर्णानां स्वधर्माच्च्यवते मनः ॥
ऋतवो न सुखाः सर्वे भवन्त्यामयिनस्तथा ।
रसाः सर्वे क्षयं यान्ति······क्वचित्सस्यं प्ररोहति ॥
राजा कृतयुगस्रष्टा त्रेताया द्वापरस्य च ।
युगस्य च चतुर्थस्य राजा भवति कारणम् ॥
ततो वसति दुष्कर्मा नरके शाश्वतीः समाः ।
प्रजानां कल्मषे मग्नोऽकीर्तिं पापं च विन्दति ॥

महाभारत, शान्तिपर्व ६९ । ७८–१०१, उद्योगपर्व० १३२ । १४–१७, शुक्रनीतिसार १ । ६०–६४, भोजप्रबन्ध चौरवंबा० सं० पृ० ९; योगवासिष्ठ (निर्णयसा० सं०) पृ० ३१७ तथा ६१८, अद्भुतदर्पण नाटक पृ० ३२७ तथा १३२ (निर्णयसा० सं०) प्रबन्धचिन्तामणि ५ । ५५ इत्यादि ।*

* यह सब कथन उपर्युक्त मनुस्मृतिका मानो भाष्य-सा प्रतीत होता है । सबका सारांश यह है कि वास्तवमें राजा ही युग है और इसमें तो लेशमात्र भी संदेह नहीं कि राजा ही युग-कालादिका कारण होता है । (दण्डनीतिका धारण खिलवाड़ नहीं है । इसे कोई परम श्रेष्ठ तपस्वी ही धारण कर सकता है । अतः राजाको परम तपोमय ही होना चाहिये ।) जब राजा उसे ठीक पालन करनेमें सक्षम होता है तो सत्ययुग होता है । जब राजा दण्डनीतिका न अपने ऊपर प्रयोग करता है और न प्रजाके ऊपर अर्थात् असंयमी बन-बनाकर जब राजा-प्रजा पूर्ण विलासोन्मुख एवं विलासी बन जाते हैं, तब कलियुग होता है । कलियुगमें सर्वथा धर्मनिरपेक्षता होती है, अधर्म बढ़ता है, धर्म (संयम, नियन्त्रण, स्वकर्तव्य, न्याय) मिट-सा जाता है । सभी लोग स्वकर्तव्यविमुख हो जाते हैं । सभी ऋतुओंमें व्यतिक्रम होता है, ग्रीष्मादिमें वर्षा तथा वर्षादिमें शीत-ग्रीष्मका प्रादुर्भाव दीखता है । जल, घी, दुग्ध, दही, मट्ठा एवं अन्यान्य सभी रस-द्रव पदार्थ भी लुप्त होने लगते हैं । ऐसे युगका निर्माता कारण वह राजा घोर नरकमें जाता है तथा अनन्तकाल तक वहीं पड़ा रहता है । इधर शाश्वत कालतक उसे अपकीर्ति एवं कल्मष अलगसे मिलते हैं । वह वेनके समान सत्पुरुषोंमें सदा अप्रतिष्ठा एवं घोर घृणाका पात्र ही बना रहता है ।

धर्मका अर्थ

धर्माङ्कके एक लेखमें श्रीसम्पूर्णानन्दजीने भी 'धर्म' तथा 'धर्मनिरपेक्षता' पर विचार करनेकी चेष्टा की थी और 'धर्मनिरपेक्षता' शब्दके आगमनको अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण ही बतलाया था । पर 'धर्म' शब्दकी उन्होंने कोई स्पष्ट व्याख्या प्रस्तुत नहीं की थी । वास्तवमें धर्म-शब्दका परम्परा-प्राप्त मुख्य अर्थ न्याय, कर्तव्य, संयम, सत्कार्य, अच्छा कार्य आदि है—

धर्मः पुण्ययमन्यायस्वभावाचारसोमपाः ।
(अमरकोश ३ । ३ । १३९)

धर्मोऽहिंसोपमायागोपनिषत्सु धनुष्यपि ।
(त्रिकाण्डशेष ३ । ३ । २९८)

धर्मोऽस्त्री पुण्य आचारे स्वभावोपमयोः क्रतौ ।
अहिंसोपनिषन्न्याये ना धनुर्यमसोमयोः ।

(मेदिनी-मद्रिकं तथा रत्नमाला, वैजयन्ती, शब्दरत्नावली, अभिधानचिन्तामणि, हलायुध, अनेकार्थसंग्रह २ । ३३९ विश्वप्रकाश पृ० १११, मद्रिकं १७ इत्यादि)

इसके अतिरिक्त 'सत्यान्नास्ति परो धर्मः' तथा 'धर्म कि दया सरिस हरिजाना' इत्यादिमें क्षमा, दया, सत्य, अस्तेय, शान्ति आदिको भी श्रेष्ठ धर्म माना गया है । तब धर्मनिरपेक्षताका अर्थ ही होता है—क्षमा, दया, सत्य, अस्तेय, न्याय, अहिंसा आदिसे रहित—अत्यन्त दूर तथा चोरी, बेईमानी, क्रोध, व्यभिचार, मिथ्या, धोखा एवं जाल-फरेब-सौदेसे अथवा इन सभीसे अलंकृत । यदि कहें कि हमारा तात्पर्य तो अंग्रेजीके Secular* तथा Theocratic† शब्दोंसे है तो यही कहना होगा कि आपके पास भारतीय भाषा तथा भारतके समस्त इतिहास, संस्कृति, साहित्य, आचार-विचारका लेशमात्र पारिचायिक ज्ञानतक भी नहीं है अन्यथा आप ऐसा शब्द-चयन न करते और न इनके अर्थमें उल्टी गङ्गा बहाकर देशपर हजारों संकट लाकर सर्वथा इसकी दुर्दशा कर देते । सच बात यह है कि धर्मनिरपेक्षता तथा विलासप्रवणताके कारण ही भारतमें जनसंख्या-वृद्धि, बेकारीकी वृद्धि, विनाशकारिणी हिंसा

* Pertaining to this present world only and not the world or life after this.

† The constitution of a state in which the Almighty is regarded as the sole sovereign, and the laws of the realm as divine commands rather than human ordinances.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृषिकी महती उपेक्षा तथा अन्नादिका उत्तरोत्तर अभाव एवं ऋतुविपर्यासादि समस्त दैवी उपद्रव भी प्राप्त हुए हैं। यदि कहें कि धर्मनिरपेक्षतासे मतलब मजहब-निरपेक्षतासे है, तो यह भी ठीक नहीं; क्योंकि सरकारद्वारा सदा ही हिंदू-धर्म, Hindu Law में हस्तक्षेप, सुधार (बिगाड़), तिरस्कार करनेका यत्न तथा बौद्ध, ईसाई, इस्लामादिको प्रोत्साहित: संवर्धित करनेका बार-बार यत्न हुआ है और यह सब भी इसी कारण है कि आपको इन किन्हीं मजहबोंके सम्बन्धमें भी पूरी जानकारी नहीं है और कम-से-कम भारतीय शास्त्र-साहित्य-संस्कृति-इतिहासका ज्ञान तो है ही नहीं। अन्य संस्कृतशास्त्र—वेद-इतिहास, पुराण-दर्शन-साहित्यकी बात तो अलग रही, रामचरितमानसका भी अध्ययन-अनुशीलन नहीं दीखता। हमारे एक विगत बहुत बड़े नेता थे, जो आजकलके कर्णधारोंके आदर्श तथा इनसे अपेक्षाकृत अधिक जानकार माने जाते थे [और यह ठीक भी है] पर उन्होंने भी रामचरितमानसका स्पर्शतक नहीं किया था और न वे यही जानते थे कि उस ग्रन्थका नाम क्या है तथा वह कब और कैसे लिखा गया था। उन्होंने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थमें उसकी कटु निन्दा की और उसका जहाँगीरके राज्यमें रचा जाना लिखा है,* जब कि तुलसीदासजी स्वयं—

संबत सोरह सै एकतीसा। करौं कथा हरि पद धरि सीसा।

—लिखते हैं और यह सन् १५७४ ईस्वी होता है, जब कि जहाँगीरका राज्यकाल, उनके आंगलाचार्योंके अनुसार, आरम्भ ही होता है ३ नवंबर १६०५ ई० अथवा संवत् १६६२ से † और समाप्त ७ नवम्बर १६२७ को ‡। वास्तवमें गोस्वामीजीका आरम्भिक समय सिकन्दर लोदी तथा इब्राहिम लोदीके कालसे होता है और हिंदी रामायण नहीं, रामचरितमानसका लेखन समय है—अकबरका राज्यत्वकाल। यह तो स्थिति है सर्वोच्च नेताके इतिहास-ज्ञानकी, जिसका उन्हें अपने ज्ञानोंमें सर्वाधिक ज्ञान तथा प्रेम होनेका गर्व था, जैसा कि उन्होंने अपने ग्रन्थके आरम्भमें लिखा है, फिर शेष ज्ञानके लिये क्या कहें। जब कि उन्हें हिंदी-संस्कृत भाषाओंका ही कोई ज्ञान न था, फिर वे तथा उनके शिष्यगण हिंदीका तिरस्कार करके अंग्रेजीके ही लिये जान न देते तो क्या करते ?

अस्तु। कलिके वर्णनमें व्यास, तुलसीदास आदिने अकालका भी भीषण चित्रण किया है—

कलि बारहिं बार दुकाल परै। बिनु अन्न दुखी बहु लोग मरै॥

इस समय यद्यपि शानके साथ कहा जाता है कि किसी भी मनुष्य या पशुकी मृत्यु नहीं हुई, पर स्थिति यह है कि हजारों-हजारों पशु मरे हैं और चमारोंने उनका चमड़ा उतारना तक छोड़ दिया है। वे खेतोंमें सड़ते रहे हैं और बिहारमें ४-५ शतसे अधिक मनुष्योंकी भी मृत्यु खाद्यान्नके अभावके ही कारण हुई है। यथार्थ स्थिति यह है कि सामान्यतया सभी मनुष्योंको पौष्टिक पदार्थोंका अभाव है—'तक्रं शक्रस्य दुर्लभम्' हो रहा है। पूर्ण भोजन तो सम्भवतः किसीको भी नसीब नहीं है। एक-एक परिवारमें बहुतसे स्त्री-बच्चे होते हैं और जब पशुधन ही नहीं तो गव्य घृत-दुग्धादि कहाँसे प्राप्त होंगे। यों तो यह समस्त देशकी ही स्थिति है। पर बिहारके कई स्थान तो सर्वथा उजाड़ से ही हो गये हैं। यद्यपि सरकारने बहुत कुछ उद्योग किया, पर निदान जाने बिना चिकित्सा सफल नहीं होती।§ इस सम्बन्धमें श्रीभाईजी (हनुमानप्रसादजी)का अप्रैलके कल्याणके

* Tulsidas in his deservedly famous poem, the Hindi Ramayan, written during Jahangir's time, painted a picture of woman, which is grossly unfair and prejudiced.

† Eight days after his father's death, the new sovereign (Jahangir) crowned himself in the fort of Agra, on Thursday, 3 November, 1605, being then thirty-six years old (Tuzuk-i-Jahangir, by Jahangir himself (1622-23), lethographed at Aligarh, 1864. English Translation by A. Rogers, Edited by H. Beveridge, Vol. 1 (1909) Campridge. Hist. India Vol. IV Mughal period, Chapter VI, V. A. Smith's Oxford History of India, Book VI, Part II, Chapter 4., p. 3 3).

‡ He died in the early morning of 7th November 1627 (*ibid*, p. 178, 3rd line).

§ इसपर हमारे कल्याणके पूर्व वर्षोंमें प्रकाशित दुर्भिक्षनिवारण तथा ‘महाराज पथ्य’ लेख देखने चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्तिम पृष्ठपर प्रकाशित वक्तव्य अवश्य मनन करना चाहिये और हमारे इस लेखके भी 'निदान' अंशको विशेष व्याख्या-पूर्वक पढ़कर लाभ उठाना चाहिये ।

साधकोंके संतोषके लिये दो शब्द

तथापि कहा जाता है कि शास्त्र समस्त दुःख-शोकापनोदक है—'मा शुचः' 'नानुशोचन्ति पण्डिताः' आदि । वास्तवमें अध्यात्मशास्त्र ऐसे ही हैं । गरुड़पुराण (१ । २२२ । २२) में कहा गया है कि भगवद्ध्यान करते ही सत्ययुग हो जाता है तथा कलिमें धर्माचरणका फल भी बहुत अधिक होता है (द्र० कल्याण ३७ । ६) ।

कलौ कृतयुगस्तस्य कलिस्तस्य कृते युगे ।
हृदये यस्य गोविन्दो यस्य चेतसि नाच्युतः ॥

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराजके भी—

कृतयुग धर्म होहिं सब केरे । हृदय राम माया के प्रेरे ॥
बुध जुग धर्म समुझि मन माहीं । तजि अधर्म रति धर्म कराहीं ॥

—आदि ये कथन कुछ इसी प्रकार हैं । योगवासिष्ठमें भी बार-बार विश्वको भगवद्रूप कहकर—समझाकर कलियुगकी निराकृति की गयी है । एवं समस्त विश्वादिको सदा मङ्गलमय-कल्याणमय प्रभुका ही शाश्वत रूप कहा गया है—यद्यपि यह ऐसा ही है तथापि सज्जनोंको शान्तिसे इसके मायिक रूपको भी सर्वथा शुद्ध शान्त करनेका सतत समस्त दोषोंसे अलग रहकर प्रयत्न करना चाहिये । इसीमें शुद्ध ज्ञान, भक्ति तथा शुद्ध कर्मका पर्यवसान हो सर्वशुद्ध शान्ति-सुखकी उपलब्धि होती है ।

रामचरितमानसमें विद्यार्थी-धर्म

(लेखक—श्रीराजेन्द्रप्रसादजी वर्मा, एम्० ए०)

हिंदू-धर्मके आधारभूत सिद्धान्तोंमें चार आश्रमों—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास—का बड़ा महत्त्व है । ब्रह्मचर्याश्रमके लिये एक दूसरा नाम भी दिया जाता है—विद्यार्थी-जीवन । यों तो विद्यार्थीका अर्थ है—ज्ञानका साधक और ज्ञान-प्राप्तिकी यह साधना आजीवन चलती रहती है; परंतु मोटे अर्थमें ब्रह्मचर्याश्रम अथवा विद्यार्थी-जीवनसे हमारा अभिप्राय शतायुके उस प्रथम चरणसे है जो जन्मसे प्रारम्भ होकर गृहस्थाश्रमसे पूर्व पचीस वर्षकी अवधिका माना जाता है । आर्योंके विभिन्न प्राचीन ग्रन्थों—वेद, पुराण, उपनिषदादिमें चारों आश्रमोंके लिये मानव-धर्मका विस्तारसे उल्लेख मिलता है । इन धर्मोंका पालन करते हुए मनुष्य देहक्षयसे पूर्व लौकिक सुख एवं पारमार्थिक लाभकी प्राप्ति कर सकता है । इन चार आश्रमों एवं उनके धर्मोंका विधान हमारे जीवनको पूर्णत्वकी प्राप्तिमें सहायता पहुँचानेके लिये ही किया गया है । इसलिये इनमें ब्रह्मचर्या-श्रम अथवा विद्यार्थी-जीवनका स्थान जीवनरूपी भवनके उस आधारभूत मूल भित्तिके समान है, जिसके सुदृढ़ हुए बिना भवनका अस्तित्व अधिक समयतक नहीं रह सकता । विद्यार्थीधर्मका उल्लेख वेदों, उपनिषदों एवं स्मृत्यादि शास्त्रोंमें विधि-निषेधके रूपमें विस्तारसे मिलता है । परंतु वहाँ इन धर्मोंका आदेशात्मक तथा उपदेशात्मक रूप होनेके कारण इतना प्रभावोत्पादक नहीं; जितना गोस्वामीजी द्वारा उन्हीं बातोंको विश्वके अद्वितीय साहित्यिक रत्न श्रीरामचरित-मानसमें जन-भाषामें निबद्ध करके प्रस्तुत किया गया है। इसे 'मानस'कर्ताने ग्रन्थारम्भमें किये गये प्रतिज्ञा-वचन—

नानापुराणनिगमागमसम्मतं य-
द्रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि……'

कहकर स्वीकार किया है ।

वे महापुरुष जो ईश्वर, पुनर्जन्म तथा परलोकादिमें विश्वास नहीं रखते, फिर भी जगत् उन्हें महापुरुष स्वीकार करनेमें नहीं सकुचाता, इसका कारण यह है कि वे सदाचार सभ्याचरण आदि समाजोचित गुणोंमें न केवल विश्वास रखते हैं अपितु वे आस्तिक कहे या समझे जानेवाले लोगोंसे उन नियमोंका अपेक्षाकृत अधिक पालन करते हैं । ये वे ही आचरण हैं, जो विश्व-साहित्यमें अपने-अपने ढंगसे वर्णित किये गये हैं । उनके तरीकोंमें ऊपरसे अन्तर होते हुए भी एक बातकी समानता है कि ऐसा व्यवहार करनेवाला समाज की दृष्टिमें शिष्ट माना जाता है । परिणामतः वह सभीके स्नेह, आदर, सम्मान एवं श्रद्धा आदि सद्भावोंका पात्र बन जाता है । जिस व्यक्तिमें इन गुणोंका जितना आधिक्य होगा, वह उतना ही अधिक समाजके लिये आदर्श बन सकेगा ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीरामचरितमानसके सत्पात्रोंके प्रति हमारे मनमें सद्भावोंके उदयका कारण उनके द्वारा सदाचारका पालन ही है। प्रस्तुत प्रसङ्गमें हम संक्षेपमें यह दिखायेंगे कि मानसके विभिन्न पात्रोंके कौन-से आचरण विद्यार्थियोंके लिये अनुकरणीय हो सकते हैं।

१. मातृ-पितृ-भक्ति एवं गुरु-भक्ति

तैत्तिरीयोपनिषद्में कहा गया है—

मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव।

अर्थात् पुत्र! तुम मातामें देव (ईश्वर-)-बुद्धि रखना, पितामें देवबुद्धि रखना, आचार्यमें देवबुद्धि रखना तथा अतिथिमें भी देवबुद्धि रखना। आशय यह कि शास्त्र आदेश देता है कि इन चारोंको ईश्वरकी प्रतिमूर्ति समझकर श्रद्धा और भक्तिपूर्वक सदा इनकी आज्ञाका पालन, वन्दन और सेवा करते रहना चाहिये और इन्हें सदा अपने विनयपूर्ण व्यवहारसे प्रसन्न रखना चाहिये। आदेश होनेके कारण कोई बात कभी-कभी रूक्ष लगने लगती है। परंतु वही बात यदि साहित्यिक ढंगसे कही जाय तब वह कान्तासम्मितोपदेश-के समान प्रभावकारी सिद्ध होती है। रामचरितमानसमें राजा भी अपने कुलगुरु तथा मुनि आदिका किस प्रकार सम्मान करता है, यह देखने योग्य है। राजा दशरथके दरबारमें विश्वामित्र जब राम-लक्ष्मणको लेने जाते हैं, तब—

मुनि आगमन सुना जब राजा। मिलन गयउ लै बिप्र समाजा॥
करि दंडवत मुनिहि सनमानी। निज आसन बैठारेन्हि आनी॥
चरन पखारि कीन्हि अति पूजा। मो सम आज धन्य नहिं दूजा॥
बिबिध भाँति भोजन करवावा। मुनिबर हृदयँ हरष अति पावा॥

जब गुरु राजाके द्वारा भी पूज्य है, तब विद्यार्थी जो अभी अपना अध्ययन पूर्ण नहीं कर पाया है, उसके द्वारा गुरु कितना पूज्य है, स्वयं समझनेकी बात है।

२. शिष्यद्वारा गुरुकी चरण-सेवा

विश्वामित्रके आश्रममें जब राम-लक्ष्मण रहते हैं, तब रात्रिको गुरुजीके शयनसे पूर्व दोनों भाई उनके चरण दबाते हैं—

मुनिबर सयन कीन्हि तब जाई। लगे चरन चापन दोउ भाई॥
… … …
तेइ दोउ बंधु प्रेम जनु जीते। गुर पद कमल पलोटत प्रीते॥
बार बार मुनि अग्या दीन्ही। रघुबर जाइ सयन तब कीन्ही॥

स्वयंको शहरी तथा 'मॉडर्न स्टुडेंट्स' समझनेवाले विद्यार्थियोंको इससे कम-से-कम इतना पाठ तो सीखना ही चाहिये कि विद्यालयमें आने, वहाँसे विदा होते समय अथवा लंबी अवधिके पश्चात् मिलनेपर गुरुजीके चरणोंका स्पर्श करें। इतना भी नहीं तो नतमस्तक होकर उन्हें प्रणाम अवश्य करें। परंतु आजकल हाथ जोड़कर तथा मस्तक नवाकर अपने पूज्य जनोंको प्रणाम करना देहाती रिवाज या गद्गदानन्दी होना समझा जाता है।

३. बड़ोंकी आज्ञाका संकेत पाने मात्रसे उसका पालन

क्रोध, उत्साह आदि भावुक क्षणोंके आनेपर भी बड़ोंका संकेत पाकर तदनुकूल आचरण करना समझदार छोटोंका धर्म है। वे किसी भी प्रकारके भावावेशमें बड़ोंकी किसी आज्ञाकी उपेक्षा न कर दें; लक्ष्मणका चरित्र इस दृष्टिसे अत्यन्त अनुकरणीय है। लक्ष्मणजी जब यह देखते हैं कि उनके अग्रज रामको सुग्रीवकी कृतघ्नतापर क्रोध आ रहा है—

लछिमन क्रोधवंत प्रभु जाना। धनुष चढ़ाइ गहे कर बाना॥

तब उन्होंने तुरंत धनुष चढ़ाकर बाण हाथमें ले लिया। भला, रामके कोपभाजनको वे किस प्रकार क्षमा कर सकते थे। जनककी स्वयंवरशालामें जब लक्ष्मण एक बार पुनः अपना उग्ररूप दिखाते हैं—

रघुबंसिन्ह महुँ जहँ कोउ होई। तेहिं समाज अस कहइ न कोई॥
सुनहु भानुकुल पंकज भानू। कहउँ सुभाउ न कछु अभिमानू॥
जौं तुम्हारि अनुसासन पावौं। कंदुक इव ब्रह्मांड उठावौं॥
काचे घट जिमि डारौं फोरी। सकउँ मेरु मूलक जिमि तोरी॥
तव प्रताप महिमा भगवाना। को बापुरो पिनाक पुराना॥
लखन सकोप बचन जे बोले। डगमगानि महि दिग्गज डोले॥
सयनहिं रघुपति लखनु नेवारे। प्रेम समेत निकट बैठारे॥

ऐसे क्रोधशील लक्ष्मण अपने अग्रज रामके संकेत मात्र-पर निर्विलम्ब संकोचपूर्वक शान्त होकर बैठ जाते हैं। हमारे कितने भी क्रोधशील होनेपर, बड़ोंके समझानेपर हमें तुरंत शान्त हो जाना चाहिये—उपर्युक्त उदाहरणमें लक्ष्मण-जीका आचरण इसी शिक्षाका द्योतक है।

४. बड़ोंसे संकोचपूर्वक परिचय पूछना

शिकारकी खोज करते हुए वनमें राजा प्रतापभानु जब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कपटमुनिके आश्रममें पहुँचता है तब उसके मुनिवेषको देखकर वह उसे सचमुच मुनि ही समझ लेता है । ऐसी दशामें राजा उससे परिचय पूछता है—

नृप बहुभाँति प्रसंसेउ ताही । चरन बंदि निज भाग्य सराही ॥
पुनि बोलेउ मृदु गिरा सुहाई । जानि पिता प्रभु करउँ ढिठाई ॥
मोहि मुनीस सुत सेवक जानी । नाथ नाम निज कहहु बखानी ॥

यह समझकर कि जिससे परिचय पूछा जा रहा है, वह वय, विद्या, पदादिमें कोई श्रेष्ठ व्यक्ति दिखायी देता है, तब हमें चाहिये कि पहले उसके प्रति पूर्णतः पूज्यभाव प्रकट करें; फिर अपने भाग्यकी सराहना करके उसे पूज्य शब्दोंसे सम्बोधित करते हुए परिचय देनेकी संकोचपूर्वक प्रार्थना करें । इस दृष्टिसे उपर्युक्त पंक्तियोंमें राजाद्वारा कपटमुनिके प्रति 'प्रभु' एवं 'नाथ' शब्दोंका प्रयोग विशेष ध्यान देने योग्य है ।

५. पूर्वपरिचित पूज्यजनका अचानक आगमन

यदि कोई पूर्वपरिचित पूज्यजन अपने घरपर एकाएक आ जायँ तो उनसे आगमनका कारण पूछते समय विशेष शिष्टता बरतनी चाहिये । राजा दशरथके पास जब विश्वामित्रजी राम-लक्ष्मणको लेने आते हैं, तब राजा मुनिजीसे आगमनका कारण कितनी शिष्टतापूर्वक पूछते हैं ! देखिये—

तब मन हरषि बचन कह राऊ । मुनि अस कृपा न कीन्हिहु काऊ ॥
केहि कारन आगमन तुम्हारा । कहहु सो करत न लावउँ बारा ॥

पूछनेके ढंगमें कहीं भी यह आभास नहीं होता कि बिना बुलाये क्यों आये । क्योंकि आगमनका कारण पूछनेके साथ ही उसका तत्क्षण पालन करनेकी प्रतिज्ञा भी व्यक्त कर दी गयी है ।

६. अपने पूज्यजनोंसे बात करते समय मुद्रा

यहाँ इसमें पूर्णतः विनीतभाव प्रकट होना चाहिये । वाल्मीकिके आश्रममें मुनिजी रामसे जब वनवासका कारण पूछते हैं, तब राम हाथ जोड़कर उत्तर देते हैं—

तब कर कमल जोरि रघुराई । बोले बचन श्रवन सुखदाई ॥

जनककी स्वयंवरशालामें जब गुरु विश्वामित्र रामसे शिवका धनुष तोड़कर जनकका परिताप हरनेका अनुरोध करते हैं, तब रामके उठकर खड़े होनेके ढंग तथा मुख-मुद्राकी ओर ध्यान दीजिये—

सुनि गुरु बचन चरन सिरु नावा । हरषु बिषादु न कछु उर आवा ॥
ठाढ़े भए उठि सहज सुभाएँ । ठवनि जुबा मृगराजु लजाएँ ॥

पूर्ण यौवनको प्राप्त हुए सिंहके समान जिन रामका बलिष्ठः शरीर है, वे भी गुरु एवं अन्य उपस्थित वृद्धजनोंके सम्मुख कितने स्वाभाविक एवं विनीत ढंगसे खड़े होते हैं ! फिर धनुष-स्थलकी ओर जब वे पग बढ़ाते हैं, तब भी एक बार पहले गुरु तथा अन्य मुनियोंसे आज्ञा ले लेते हैं । इस समय रामके चलनेके ढंगकी ओर ध्यान दीजिये—

गुरु पद बंदि सहित अनुरागा । राम मुनिन्ह सन आयसु मागा ॥
सहजहिं चले सकल जगस्वामी । मत्त मंजु बर कुंजर गामी ॥

७. घर आये गुरुजनोंके आगमनपर स्वागत करनेकी विधि

यह सुनते ही कि हमारे घर गुरुजनने आनेका कष्ट किया है, एक क्षणका भी विलम्ब किये बिना द्वारपर पहुँचकर उनका स्वागत करना, उचित रीतिसे उन्हें अंदर लिवाकर लाना, अपने घर आनेपर उन्हें कष्ट हुआ होगा, जिस कार्यके लिये उन्हें आना पड़ा 'गुरुजी, ! मुझे ही क्यों न बुलवा लिया'—यों कहते हुए जो आज्ञा हो उसे जानना समझदार छोटोंका परम कर्त्तव्य है । गुरु वसिष्ठ जब रामके महलमें आते हैं और ज्यों ही उन्हें पता लगता है कि कुलगुरुने स्वयं मेरे पास आनेका कष्ट किया है, राम दौड़कर द्वारपर पहुँचकर उनका स्वागत करते हैं, फिर जो कुछ जिस प्रकार कहते हैं, उसकी ओर ध्यान दीजिये—

गुर आगमनु सुनत रघुनाथा । द्वार आइ पद नायउ माथा ॥
सादर अरघ देइ घर आने । सोरह भाँति पूजि सनमाने ॥
गहे चरन सिय सहित बहोरी । बोले रामु कमल कर जोरी ॥
सेवक सदन स्वामि आगमनू । मंगल मूल अमंगल दमनू ॥
तदपि उचित जनु बोलि सप्रीती । पठइअ काज नाथ असि नीती ॥
प्रभुता तजि प्रभु कीन्ह सनेहू । भयउ पुनीत आजु यहु गेहू ॥
आयसु होइ सो करौं गोसाईं । सेवकु लहइ स्वामि सेवकाई ॥

८. घर आये बड़ोंको बिदाई देनेका ढंग

रामके विवाहके पश्चात् मुनि विश्वामित्र राजा दशरथके यहाँ कुछ दिन आतिथ्य पाकर जब लौटते हैं, तब राम उन्हें कुछ दूर तक छोड़ने जाते हैं—

राम सप्रेम संग सब भाई । आयसु पाइ फिरे पहुँचाई ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आजके युगमें गुरु, पण्डित और पुरोहितका मान घरमें रहनेवाले जामातासे भी 'बदकर' होने लगा है !!

९. बड़ोंकी इच्छा न होनेपर भी उनका पीछा करना धृष्टता

किसी कारणसे यदि श्रेष्ठ लोगोंके साथ अपनी इच्छासे चलना पड़ ही जाय, तब पहले उसका कारण बताना; तदनन्तर आज्ञा लेकर ही उनका अनुगमन करनेमें शिष्टता है। उनकी इच्छाके विरुद्ध पीछे-पीछे चलना आजकलके अड़ियल भिवारी स्वभावके समान है। रामके वनवासके समय मार्गमें जब उन्हें ग्रामवासी मिलते हैं, तब वे रामके आगामी मार्गकी भयंकरताको जानकर उन्हें उस मार्गसे सकुशल निकाल देनेकी भावनासे प्रेरित होकर कुछ दूरतक जानेकी इच्छा प्रकट करते हुए कहते हैं—

करि केहरि बन जाइ न जोई। हम सँग चलहिं जो आयसु होई॥
जाब जहाँ लगि तहँ पहुचाई। फिरब बहोरि तुम्हहि सिरु नाई॥

कहनेको ये लोग देहाती हैं, परंतु आचरण कितना विनय-पूर्ण एवं सभ्य है—इससे न केवल विद्यार्थियोंको अपितु पूर्ण नागरिक समाजको पाठ सीखनेकी आवश्यकता है।

१०. पूज्योंके चरण-चिह्नोंको भी पैर न लगाना

वनवासमें जब राम, सीता और लक्ष्मण चल रहे हैं, तब सीताके लिये रामके चरण-चिह्न पूज्य हैं तथा लक्ष्मणके लिये राम और सीता दोनोंके चरण-चिह्न पूज्य हैं। इसलिये दोनों अपने-अपने पूज्योंके चरण-चिह्नोंसे बचकर पैर रखते हैं। उन्हें ज्ञात है कि ऐसा करनेमें ही मर्यादाकी रक्षा है। देखिये—

प्रभु पद रेख बीच बिच सीता। धरति चरन मग चलति सभीता॥
सीय राम पद अंक बराएँ। लखन चलहिं मगु दाहिन लाएँ॥

सीता कितनी सतर्क हैं कि कहीं धोखेसे भी रामके चरण-चिह्नोंको पैर न लग जाय। मर्यादाकी रक्षामें लक्ष्मण सीतासे कम नहीं हैं। वे न केवल पीछे चल रहे हैं, चरण-चिह्नोंको बचाकर पैर रख रहे हैं, अपितु उन्हें दायीं ओर ले रहे हैं; क्योंकि पूज्यको बायीं ओर लेनेमें उसका अपमान है।

आजकल विद्यार्थी गुरुजनोंकी अनुपस्थितिमें क्या उनके सम्मुख ही उनके आसनपर जमे रहते हैं। इसे सभ्यता कहा जाय, आधुनिक शिक्षाका प्रभाव अथवा उद्दण्डता? विचार-शील पाठक स्वयं ही निर्णय करें।

११. शङ्काको संकोचपूर्वक पूछना

'मानस'की वास्तविक कथा आरम्भ करनेके समय सती शिवसे रामके अवतार होनेके विषयमें अपने मनमें उठी शङ्काको बिल्कुल स्वाभाविक एवं विनम्र ढंगसे प्रस्तुत करती हैं। साथ ही पूछनेके ढंगमें कोई भूलसे भी गलती हो गयी हो तो उसके लिये क्षमा माँग लेती हैं—

जौं अनीह ब्यापक बिभु कोऊ। कहहु बुझाइ नाथ मोहि सोऊ॥
अग्य जानि रिस उर जनि धरहू। जेहि बिधि मोह मिटै सोइ करहू॥

परंतु आजका विद्यार्थी जब अपने गुरुजनोंसे कुछ पूछता है, तब उसके लहजेको सुनकर यह समझना कठिन हो जाता है कि वह गुरुजीके सम्मुख अपनी जिज्ञासा प्रकट कर रहा है अथवा उनका 'इन्टरव्यू' ले रहा है। इतना ही नहीं—कुछ विद्यार्थी गुरुजीकी बात सुनकर यहाँतक कह देते हैं—'यह बात गलत है', 'यह बात नहीं है', 'आपको नहीं मालूम' आदि आदि।

१२. बिना पूछे बोलनेसे पूर्व क्षमा माँगना

रामको जब यह पता चलता है कि पिताजीको मेरे वनवासके वरदानसे दुःख हो रहा है, तब वे उनके बिना पूछे कुछ कहना चाहते हैं। इसके लिये पहले क्षमा माँगते हैं—

तात कहउँ कछु करउँ ढिठाई। अनुचित छमब जानि लरिकाई॥

परंतु आजकल विद्यार्थियों एवं घरमें बच्चोंका बिना पूछे बीच-बीचमें बोलना अजीब स्वभाव हो गया है। इतना ही नहीं, गुरुजनोंकी बातको क्षणभरमें गलत घोषित कर देनेमें न जाने वे अपनी कौन-सी योग्यताका प्रदर्शन करते हैं।

१३. बड़ोंके विपरीत कुछ कहनेसे पूर्व पहले उन्हींकी बातका अनुमोदन

वनके लिये प्रस्थान करनेसे पूर्व राम सीताको जब साथ न चलनेके लिये बहुत समझा चुके, परंतु विचार करनेपर सीताको यह उचित नहीं लगा, तब रामके विपरीत अपनी बात कहनेसे पूर्व पहले वे उन्हींकी बातके औचित्यको स्वीकार करती हैं—

दीन्हि प्रानपति मोहि सिख सोई। जेहि बिधि मोर परम हित होई॥

अब अपनी बात कहती हैं—

मैं पुनि समुझि दीखि मन माहीं। पिय बियोग सम दुखु जग नाहीं॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक उदाहरण भरतका भी देखिये—

रामके वन चले जानेके पश्चात् गुरु वसिष्ठ एवं सभी मन्त्रिगण भरतको हर प्रकार राजगद्दी सँभाल लेनेका औचित्य समझाते हैं। भरतके सम्मुख धर्म-संकटकी स्थिति आ पड़ी है। वह गुरुजनोंकी आज्ञाका उल्लङ्घन करें अथवा अपनी आत्माकी सच्ची पुकारका! गुरु वसिष्ठ तथा अन्य मन्त्रियोंकी बात सुनकर भरतजी अपनी बात कहनेसे पहले उन सबकी बातोंका सादर अनुमोदन करते हैं—

मोहि उपदेसु दीन्ह गुर नीका। प्रजा सचिव संमत सबही का॥
मातु उचित धरि आयसु दीन्हा। अवसि सीस धरि चाहउँ कीन्हा॥
गुर पितु मातु स्वामि हित बानी। सुनि मन मुदित करिअ भलि जानी॥
उचित कि अनुचित किएँ बिचारू। धरमु जाइ सिर पातक भारू॥
तुम्ह तौ देहु सरल सिख सोई। जो आचरत मोर भल होई॥
जद्यपि यह समुझत हउँ नीकें। तदपि होत परितोषु न जी कें॥
अब तुम्ह बिनय मोरि सुनि लेहू। मोहि अनुहरत सिखावनु देहू॥
ऊतरु देउँ छमब अपराधू। दुखित दोष गुन गनहिं न साधू॥

सभी गुरुजनोंकी सलाहको आज्ञाके समान समझकर —'अवसि सीस धरि चाहउँ कीन्हा' फिर—

उचित कि अनुचित किएँ बिचारू। धरमु जाइ सिर पातक भारू॥

तथा अन्तमें—

ऊतरु देउँ छमब अपराधू।

—आदि बातें क्रमपूर्वक कहकर भरतने शिष्टता एवं समझदारीका अद्वितीय उदाहरण प्रस्तुत कर दिया है।

१४. बड़ोंके क्रोधित होनेपर सभ्य छोटोंके द्वारा उनसे बोलनेका ढंग

जनककी स्वयंवरशालामें रामके द्वारा धनुष-भङ्ग कर दिये जानेके पश्चात् जब परशुरामजी वहाँ आकर क्रोध करते हैं तथा मिथिलेशके अतिरिक्त धनुषभङ्गकर्ताको कहने-न-कहने योग्य बातें कह डालते हैं, तब भी राम अपने धैर्यसे च्युत नहीं होते। हाँ, लक्ष्मणने अवश्य विनोदयुक्त रोष प्रकट किया; वह भी जब परशुरामने अति ही कर दी। शास्त्रोंने भी अतिको अक्षम्य कहा है। इसलिये लक्ष्मणका क्रोध न केवल धर्ममय एवं नीतिसे प्रेरित ही था अपितु स्वाभाविक भी था; क्योंकि किसी समर्थ छोटेके सम्मुख उसके पूज्यका कोई अपमान करे और वह मौन खड़ा देखता रहे, यह असम्भव है। ऐसे समय लक्ष्मण-जैसी स्थितिके व्यक्तिके लिये शान्त रहना क्लीवताका प्रदर्शन था। परंतु अन्तर्यामी एवं मर्यादाके अवतार रामने जिस धैर्य, सहिष्णुता एवं समझदारीका परिचय दिया, वह अवश्य अनुकरणीय है। जनकके प्रति परशुरामजीके कथन कहनेपर—

अति रिस बोले बचन कठोरा। कहु जड़ जनक धनुष कै तोरा॥
बेगि देखाउ मूढ़ न त आजू। उलटउँ महि जहँ लहि तव राजू॥

भरी सभामें जनकके लिये परशुरामद्वारा 'जड़' 'मूढ़' आदि शब्दोंका उच्चारण किये जानेपर भी राम इस प्रकार उत्तर देते हैं कि—

नाथ संभु धनु भंजनिहारा। होइहि केउ एक दास तुम्हारा॥
आयसु काह कहिअ किन मोही।
कहिअ बेगि जेहि बिधि रिसि जाई। मुनि नायक सोइ करौं उपाई॥

यह जानते हुए भी कि परशुराम जो कुछ बोल रहे हैं अनुचित एवं बिना विचारे क्रोधान्ध होकर बोल रहे हैं फिर भी उनके ब्राह्मणरूप एवं मुनिवेशके कारण एकाएक कोई भी उनपर रुष्ट नहीं होता। लक्ष्मण जितनी चुटकियाँ भरते हैं, उनमें उन्होंने सर्वत्र 'गोसाईं' 'देव' 'मुनि' 'मुनिराज' आदि आदरसूचक शब्दोंका प्रयोग किया है। साथ ही यह भी कहते जाते हैं—

मारतहूँ पा परिअ तुम्हारें।

१५. अभिरुचिके लिये आज्ञा लेनेकी विधि

विश्वामित्रके आश्रममें निवास करते हुए राम-लक्ष्मण एक दिन नगरकी शोभा देखना चाहते हैं। वे स्वेच्छाचारी नहीं हैं। प्रत्येक कार्यके लिये गुरुजीकी आज्ञा लेना अनिवार्य समझते हैं। नगरकी शोभा देखने जानेसे पूर्व वे बड़े संकोचपूर्वक गुरुजीकी शरणमें जाते हैं। राम, क्योंकि बड़े हैं, इसलिये यह नहीं कह सकते कि मैं शोभा देखना चाहता हूँ। अनुज लक्ष्मणकी ओरसे इच्छा प्रकट करते हुए वे करनेकी आज्ञा चाहते हैं—

परम बिनीत सकुचि मुसुकाई। बोले गुर अनुसासन पाई॥
नाथ लखनु पुर देखन चहहीं। प्रभु सकोच डर प्रगट न कहहीं॥
जौं राउर आयसु मैं पावौं। नगर देखाइ तुरत लै आवौं॥

यहाँ दो-तीन बातें ध्यान देने योग्य हैं। राम गुरुकुल-वासके नियमोंसे परिचित हैं। वे जब गुरुजीसे बात करते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं, तब कितने विनीत भावसे खड़े होते हैं। बड़ोंसे कुछ पूछते समय संकोच एवं मुखपर मुस्कान रखना समझदार छात्रोंका लक्षण है। कहीं दूर जानेके लिये गुरुकी आज्ञा प्राप्त कर लेना अनुशासन-पालनके अन्तर्गत आता है। साथ ही यह भी बता देना कि कहाँ जा रहे हैं तथा शीघ्र ही वापस लौटनेका आश्वासन देना सुयोग्य विद्यार्थियों एवं गुरुकुलवासियोंके ही लक्षण हैं।

इस प्रकार श्रीरामचरितमानसका किसी भी दृष्टिसे मनोयोगपूर्वक पारायण किया जाय तो सैकड़ों-हजारों अनुकरणीय बातें मिलेंगी। विद्यार्थी भी यदि एक मात्र 'मानस'का ही इस भावनासे अध्ययन करें कि भावी जीवनमें वे एक सुसभ्य, सदाचारी, नीतिनिपुण एवं आकर्षक व्यक्तित्वके नागरिक बनना चाहते हैं तो उन्हें अन्य सहस्रों पुस्तकोंके पढ़नेमें लगनेवाले समय एवं शक्तिको बचाना चाहिये।

हम सुखी कैसे हों ?

(लेखक—श्रीरमानाथजी खैरा, एडवोकेट)

प्रत्येक मनुष्यके मनमें यह प्रश्न उठता है कि हम सुखी कैसे हों। पर हमने कभी विचार भी किया है कि सुखका स्वरूप क्या है ? हम कथित दुःखकी स्थितिमें भी सुख देख सकते हैं और सर्वसाधनसम्पन्न सुखमय स्थितिमें भी दुःखका अनुभव कर सकते हैं। क्या गृहविहीन मजदूरको रोज मजदूरीसे पेट पालते हुए बड़े नगरोंकी फुटपाथपर पड़े मस्तीमें राग गाते हुए हमने नहीं देखा ? और भव्य महलोंमें रहनेवाले समृद्धिशाली धनी लोगोंके पीले चेहरोंपर क्या हमने चिन्ता और उदासीकी छाया नहीं देखी ? सांसारिक दुःखोंके अभावमें भी मनुष्य दुखी पाये जाते हैं और सांसारिक सुखोंके अभावमें भी अनेक सुखी हैं; इस कारण प्रकाश या दिन नहीं तो अँधेरा या रात होगी इस न्यायसे यह नहीं कहा जा सकता कि सुख नहीं तो दुःख है ही अथवा दुःख नहीं तो सुख ही है। अतः सुख और दुःख दो भिन्न-भिन्न वेदनाओंके रूपमें हमें दिखायी पड़ते हैं। कभी-कभी बिना पूर्व इच्छाके हमें अचानक हमारी इन्द्रियोंको प्रसन्न करनेवाली वस्तु या दृश्य प्राप्त हो जाता है, जिसमें हमें सुख होता है, यद्यपि उसके अभावमें हमें पहले दुःख न था।

मनुष्य इच्छाओं और कामनाओंकी मूर्ति है। इच्छाओंकी पूर्ति अग्निमें आहुतिका काम करती है। महाभारतमें कहा गया है—

तृष्णार्तिप्रभवं दुःखं दुःखार्तिप्रभवं सुखम्।

जब कोई तृष्णा उत्पन्न होती है, तब उसकी पीड़ासे दुःख होता है और उससे पूर्ति होनेपर फिर सुख उत्पन्न होता है। अर्थात् दुःख उत्पन्न होना और उसके निवारणमें सुखकी प्राप्ति होना। यदि पीड़ा उपजानेवाली इन इच्छाओंको जीवन-निर्वाहके क्षेत्रमें ही सीमित रक्खा जाय तो दुःखके एक बड़े भागसे हमें छुटकारा मिल सकता है। शरीरजन्य इच्छाओंकी साधारण पूर्ति एक संतोषी श्रमजीवीको सुखी बना देती है, पर ये ही इच्छाएँ जब विशाल तृष्णाओं या वासनाओंका रूप लेकर महलोंमें पड़े उस धनी व्यक्तिका मस्तिष्क कुरेदने लगती हैं, तब वह उस श्रमजीवीके मुकाबलेमें अत्यधिक सुखसम्पन्न स्थितिमें होते हुए भी अत्यन्त दुखी रहता है।

हमारी आजकी विलासपूर्ण जीवनकी वस्तुएँ कलकी आवश्यकताएँ बन जाती हैं और पिछले कालके आराम-तलब जीवनकी भोग-विलासकी चीजें आजकी आवश्यकताएँ बन गयी हैं। ये ही आवश्यकताएँ मनुष्यमें उनकी पूर्तिके लिये तीव्र इच्छाएँ जाग्रत् करती हैं। इनकी विफलताएँ उतनी ही तीव्र वेदना धरोहरमें हमें छोड़ जाती हैं। उनकी सफलताओंमें हमारा मन क्षणिक सुख मानकर विजयके अभिमानमें पहलेसे अधिक बलवती इच्छाओंको लेकर किसी अन्य सुखकी खोजमें दौड़ पड़ता है और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब हम इन इच्छाओंपर विचार करने बैठते हैं, तब उन्हें अनन्त और अमर्यादित पाते हैं । हम यह जानते हैं कि हमारी प्रत्येक इच्छा या अभिलाषा सफल नहीं हो सकती; फिर भी हम उन्हें हृदयमें सँजोये बैठे चिन्तन किया करते हैं । जर्मन विचारक शोपेनहरका मत है कि मनुष्यकी समस्त सुखेच्छाओंमेंसे जितनी सुखेच्छाएँ सफल होती हैं, उसी परिमाणमें हम उसे सुखी समझते हैं और जब सुखेच्छाओंकी अपेक्षा सुखोपभोग कम हो जाता है, तब मनुष्य उस परिमाणमें दुखी है ।

जब हम दुःखोंपर विचार करते हैं, तब उन्हें दो प्रकारका पाते हैं—शारीरिक दुःख और दूसरा मानसिक दुःख । शारीरिक दुःखोंका सम्बन्ध शरीरसे है और मानसिक दुःख हमारे मनसे सम्बन्ध रखते हैं । भूख, प्यास, चोट, बीमारी, शीत, उष्ण आदि हमें शारीरिक कष्ट पहुँचाते हैं । स्त्री, पुत्र या प्रियजनोंका वियोग, धन, अधिकार, मान, बड़ाई आदिका अभाव हमें मानसिक वेदना देते हैं; किंतु गहराईसे विचार किया जाय तो शारीरिक दुःख भी मानसिक दुःख हो जाते हैं; क्योंकि दुःख-सुखोंका अनुभव हमें तब होता है, जब हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ आँख, कान, नाक, जिह्वा, त्वचा बाह्य जगत्‌के सम्पर्कमें आती हैं । हमारी इन्द्रियाँ भी अपने विषयोंका ज्ञान या भोग तबतक नहीं कर पातीं जबतक उनके साथ मन न जुड़ा हो । हमारा ध्यान कहीं और हो तो हमारे कान काम नहीं देते; किसीसे बातोंमें हमारा ध्यान लगा हो तो आँखोंके सामने क्या गुजर गया, हमें ज्ञात नहीं होता । महाभारत, शान्ति-पर्वमें कहा है—

चक्षुः पश्यति रूपाणि मनसा न तु चक्षुषा ।

अर्थात् देखनेका काम केवल आँखसे होता है, किंतु उसमें मनकी सहायता होती है । अतः शारीरिक सुखों या दुःखोंकी वेदना भी अन्तमें मनको ही होती है । वास्तवमें मन ही दुःख-सुखके वार झेलता है । जब सुख-दुःखके लिये इन्द्रियोंका अवलम्बन अनावश्यक है, तभी शास्त्रकार कहते हैं—

भैषज्यमेतद् दुःखस्य यदेतन्नानुचिन्तयेत् ।
(महाभा० शा० मोक्ष० १ । ११)

अर्थात् मनसे चिन्तन न करना ही दुःख-निवारणकी अचूक दवा है । महर्षि मनुका भी विशेष ध्यान सुख-दुःखोंके आन्तरिक अनुभवपर ही है । अस्तु, यदि मनपर शासन नहीं होता और उसे छुट्टा घूमने दिया जाता है तो हमारी इच्छाओंका और इसलिये हमारे दुःखोंका अन्त नहीं है । हमारा जीवन अशान्तिमय बन जाता है। हमारा मन केवल इन्द्रियोंद्वारा विषयोपभोग चाहता है, हम बार-बार उपलब्ध सुखको भोगते हुए भी तृप्त नहीं होते । विटेरियस नामका एक रोमन बादशाह स्वादिष्ट भोजनका आनन्द निरन्तर जिह्वासे लेनेके लिये बार-बार खाकर तृप्त होनेपर ओषधि लेकर वमन करता था और फिर भूखा होकर पुनः भोजन लेकर जिह्वाका आनन्द लिया करता था । एक पौराणिक कथा है कि राजा ययाति शुक्राचार्यके शापसे वृद्ध हो गये थे, किंतु उन्हींकी कृपासे जब उसे दूसरेकी जवानी लेनेकी सुविधा मिल गयी तब उनने अपने बेटे पूरुकी तरुणावस्था माँगी और पूरे हजार वर्षतक सब प्रकारके विषय-सुखोंका उपभोग किया । अन्तमें उन्हें यही अनुभव हुआ कि इस दुनियाके सारे पदार्थ एक मनुष्यकी सुख-वासनाको तृप्त करनेके लिये भी पर्याप्त नहीं हैं । राजा मान्धाताने भी मरते समय यही कहा था और तृष्णाके इसी भयानक रूपको देखकर आदिगुरु शंकराचार्य, बौद्धग्रन्थ धम्मपद तथा जैनधर्मशास्त्र तृष्णासे मुक्ति पानेका उपदेश दे रहे हैं, जो इनके मतोंके मूलभूत आधारोंमेंसे एक है ।

पर प्रश्न उठता है कि क्या सब प्रकारकी इच्छाओं या तृष्णाओंसे मुक्ति पायी जाय । यदि जलमें डूबकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोग मर जाते हैं तो क्या उसका पीना या उसमें नहाना बंद कर दिया जाय ? अग्निसे मकान जलते देखकर उसपर खाना पकाना बंद किया जाय ? यह निर्णय हो चुका है कि कुछ आवश्यक स्वाभाविक इच्छाएँ हैं, जो शरीरजन्य और प्राकृतिक हैं। हमारे लिये शरीरनिर्वाहके हेतु कर्म करना आवश्यक है और कोई भी कर्म हमारी इच्छाका बाह्यस्वरूप ही हुआ करता है अर्थात् कर्म करनेके पूर्व मनमें उसकी इच्छा होती है। इससे इन इच्छाओंका होना उचित और आवश्यक है। ऐसी इच्छाओंको दबाकर संतोष करना उचित नहीं ठहराया जा सकता। परोपकार, विद्याध्ययन, ज्ञानप्राप्ति, जनसेवा या राष्ट्रसेवा आदि लोकसंग्रहके कर्म करनेका औचित्य शास्त्रोंने मनुष्यकी जीवन्मुक्त अवस्थामें भी बताया है। अतः ऐसे कर्मोंसे सम्बन्धित इच्छाएँ या तृष्णाएँ उत्तम ही कही जायँगी। व्यासजीने युधिष्ठिरसे कहा था—'विद्या, उद्योग और ऐश्वर्यके विषयमें असंतोष रहना अच्छा है; पर असंतोषका यह अर्थ नहीं है कि किसी वस्तु या पदको पानेके लिये हम रात-दिन हाय-हाय करते फिरें। यह स्थिति शास्त्रकारोंद्वारा निन्दनीय मानी गयी है। किंतु उसका अर्थ लोकमान्य तिलकके शब्दोंमें यह भी नहीं है कि तुम वर्तमान स्थितिमें ही पड़े सड़ते रहो और उसके सुधारके लिये शान्तचित्त कर्तव्यबुद्धिसे फलेच्छाको त्यागते हुए कर्म भी न करो। अपितु ऐसी स्थितिमें महाभारतमें कहा गया है—'असंतोषः श्रियो मूलम्'—अर्थात् असंतोष ही ऐश्वर्यका मूल है। पर साथ ही यह बात अपनी जगह सही है कि हम जितने अधिक सुखी बनना चाहते हैं, उतना ही अधिक हमें इच्छाओंका चिन्तन मनसे हटाना होगा; क्योंकि इच्छाएँ दुःखकी जननी हैं। वे मानवका स्वाभिमान हरण कर दर-दर भटकाती हैं, उनका असफल होना मनुष्यको रुलाता है और जब यह असंतोष सीमा पार कर जाता है, तब वे अपराध और विद्रोह कराती हैं।

समाजमें या किसी राष्ट्रमें शान्ति और सुरक्षाकी स्थापनाके लिये यह आवश्यक है कि जन-जीवनकी इन प्राथमिक आवश्यकताओंकी पूर्ति हो। यदि उसकी इन स्वाभाविक इच्छाओंकी पूर्ति नहीं होती तो उसका हृदय विद्रोहकी ज्वालाओंसे जल उठता है, जिसकी लाल लपटें राज्यसिंहासनको भी भस्मीभूत कर देती हैं। कभी-कभी उसकी इस दयनीय स्थितिके कारण वे लोग होते हैं, जो स्वार्थवश अपने साधनोंद्वारा उसका शोषण करते हैं और वह सोचता है कि इस शोषकवर्गके समाप्त होनेपर ही उसे आर्थिक और सामाजिक न्याय मिल सकता है, जिससे उसे चिर शान्ति और सुख प्राप्त होगा। मार्क्सने यही तो सोचा था; क्योंकि उनका हृदय आर्थिक कष्टोंसे उत्पीड़ित मानवताको देखकर सिहर उठा था और इन्हीं कारणोंसे वर्तमान पाश्चात्त्य साम्यवाद या समाजवादके सिद्धान्त जगत्‌के सामने आये।

निस्संदेह शान्ति सुखकी जननी है, अशान्ति और असंतोष दुःखके स्वरूप हैं। मानव-समाजमें शान्ति स्थापित करनेके लिये आवश्यक है कि जीवनके लिये अनिवार्य वस्तुओंके उत्पादन-स्रोत समानरूपसे सबके लिये खुले हों, प्रत्येक व्यक्तिको समान रूपसे जीवनयापनकी सुविधाएँ और साधन उपलब्ध हों, शोषक और शोषितका वर्गभेद न रहे। निर्धन श्रमजीवीके लिये उत्पादनके आवश्यक उपकरण और साधन जुटानेकी व्यवस्था हो तथा उसे अपने श्रमद्वारा उत्पादन किये मालका उचित लाभ प्राप्त हो और साथ ही उसकी व्यक्तिगत, धार्मिक, सामाजिक और विचार प्रकट करनेकी स्वतन्त्रता सुरक्षित हो—ऐसा ही कोई वाद राज्य या समाज अथवा व्यक्तिके लिये कल्याणकारी हो सकता है। राज्यकी यह शासनप्रणाली उस प्रणालीसे उत्तम होगी, जहाँ किसी वर्गविशेषके हाथमें, भले ही वह श्रमजीवी वर्ग हो, शासनसत्ता सौंप दी जाय; क्योंकि कालान्तरमें वह वर्ग अधिनायकवाद (डिक्टेटरशिप)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को जन्म न देगा, इसकी क्या गारंटी हो सकती है। कोई वर्ग या समाज व्यक्तियोंसे बनता है और व्यक्तियोंकी स्वार्थ तथा विषय-सम्बन्धी दुर्बलताओंको उस स्थितिमें, जब कि सत्ता भी उसके हाथमें हो, केवल उसके नैतिक गुण दूर किये रहते हैं। इन नैतिक गुणोंको भौतिकवादी दर्शन प्रतिष्ठित नहीं कर सकेगा, भले ही कुछ कालके लिये कुछ व्यक्तियोंमें वे रहें। पर सत्य, अहिंसा, दया, त्याग, परोपकार, बलिदान आदिकी मानवीय उच्चवृत्तियोंको पोषित होनेकी पृष्ठभूमि जडवादी विज्ञानमें कभी सम्भव नहीं है।

भौतिकवादी दर्शन इस निर्णयपर पहुँचता है कि व्यक्ति जड पदार्थकी भाँति दी हुई परिस्थितियोंमें एक नियत एवं निश्चित आचरण करेगा। यही उसका उत्तर भी हो सकता है कि 'जब व्यक्तिको सम्पूर्ण आर्थिक सुविधाएँ प्राप्त होंगी, तब वह स्वार्थके लिये डिक्टेटर नहीं बनेगा तथा विधानका कठोर बन्धन उसे ऐसा करनेसे रोकेगा।' किंतु क्या सत्तारूढ़ दल प्रमादी, आलसी, मुफ्तखोर, विलासी और व्यभिचारी नहीं बन सकता। यदि हाँ, तो क्या वह अपने साम्यवादी या समाजवादी ढाँचेको राज्यसत्ताकी शक्तिके सहारे अधिनायकवाद क्या, सामन्तशाहीमें बदलकर विधानको ताकमें नहीं रख सकता।

हमें समाजके हितमें मनुष्यके मानवीय गुणोंका मूल्याङ्कन करना होगा। उसके नैतिक गुणोंकी प्राप्ति तथा पोषणके लिये आध्यात्मिक भूमिका अपनानी होगी, मानवताको भौतिक उपलब्धियोंके हाथ नहीं बेचना होगा। उत्तम लक्ष्यकी प्राप्तिके लिये हमें उत्तम साधन अपनाने होंगे।

भौतिकवादी दर्शनपर अवलम्बित साम्यवादके लिये अच्छे-बुरे सभी साधन मान्य हैं—मान्य ही नहीं, अपितु चीनदेश तो हिंसा, युद्ध, रक्तपातको लक्ष्यकी पूर्तिके लिये अनिवार्य समझता है। इसके विपरीत भारतीय दर्शन, साधनमें ही साध्यका प्रत्यक्ष अनुभव करता है। उत्तम साधनोंका प्रयोग वास्तवमें राष्ट्रका चरित्रनिर्माण करता है, जो जनतान्त्रिक प्रणालीका एक टिकाऊ स्तम्भ है। गांधीजीने पिछले महायुद्धके प्रारम्भिक दौरमें, जब पोलैंडके पतनसे ब्रिटिश सरकार भयभीत होने लगी थी, तब उन्होंने ब्रिटिश शासकोंके प्रति यह उद्गार प्रकट किये थे कि 'यदि शासकवर्गके रक्तकी एक भी बूँद बहानेपर हमें स्वराज्य मिलता है, तो ऐसा स्वराज्य हम नहीं चाहेंगे।' यह है अध्यात्मवाद, जो भौतिकवादी दुनियाके अन्धकारपूर्ण आकाशमें एक सितारेकी भाँति चमक रहा है। पर हमें मुख्य विषयपर आना चाहिये।

जैसा कि ऊपर कहा गया है, स्वाभाविक इच्छाएँ जीवननिर्वाहके लिये आवश्यक हैं। इन स्वाभाविक इच्छाओंके अतिरिक्त, दूसरे वर्गको इच्छाएँ वे हैं, जिन्हें हम व्यसन और विषयजन्य इच्छाएँ कह सकते हैं। व्यसन लग जानेसे भी इच्छाएँ उत्पन्न होती हैं और वे इतनी तीव्र होती हैं कि कभी-कभी स्वाभाविक इच्छाओंको भी दबा बैठती हैं। उदाहरणार्थ—एक अफीमची भोजनकी अपेक्षा अफीमकी अधिक चिन्ता करने लगता है। इन इच्छाओंकी पूर्ति मनुष्यको लाभकी अपेक्षा हानि ही पहुँचाती है। इनके संकेतपर सृष्टिकी सर्वश्रेष्ठ कृति यह मानव कठपुतलीकी भाँति नाचता रहता है। मादक वस्तुओंके सेवनके अतिरिक्त आँख, कान, नाक, जिह्वा आदि इन्द्रियोंको प्रसन्न करनेवाले क्रमशः रूप, स्वर-गान, सुगन्ध, स्वाद आदिमें अनुरक्ति इस प्रकारकी इच्छाओंको जन्म देती हैं।

शरीरको किसी परिस्थितिमें लाभ पहुँचानेके लिये यदा-कदा वैद्य या डाक्टर मादक वस्तुके सेवनकी अनुमति औषधिके रूपमें दे तो उतनी आपत्ति नहीं है। मनको कभी-कभी बहलानेके लिये हम बाग या प्राकृतिक दृश्योंकी सैर करें या सिनेमा, नाटकीय कलाओं, संगीतद्वारा मन प्रसन्न कर लें, तो हानिकी बात नहीं; पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब इनका आनन्द व्यसनके रूपमें बारंबार निरन्तर इच्छाएँ उत्पन्न करने लगे, तब निश्चय ही ये सर्वथा त्याज्य हैं; क्योंकि राग ही बन्धन या दासताका कारण है। द्वन्द्वात्मक जगत्में रागके साथ द्वेष रहता है, अतएव भगवान्‌ने गीतामें राग-द्वेष दोनोंकी ही निन्दा—भर्त्सना की है और दोनोंके ही वशमें न होनेका आदेश दिया है—

इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ।
तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ॥
(गीता ३। ३४)

यही नहीं, इन रागजनित कामनाओंका या इच्छाओंका भयानक रूप हमें विलासिताकी ओर खींचता चला जाता है—जहाँ हमारा विवेक कुण्ठित—नष्ट हो जाता है। मानव असहाय होकर अपना अमूल्य जीवन इन रागात्मिका रँगीली इच्छाओंके हाथ बेच डालता है और हम चिन्ताओं, दुःखों और वेदनाओंके गर्तमें समा जाते हैं।

इन पंक्तियोंके लेखकको सन् १९४१ में असहयोग आन्दोलनमें जब कारागारमें रहनेका सुअवसर प्राप्त हुआ, तब उसने बीड़ी-तम्बाकूके आदी कैदियोंके उस मानसिक कष्टको देखा, जो उन चीजोंके उपलब्ध न होनेपर उन्हें होता था। कोई-कोई कैदी अपना दिनका भोजन और सेवाएँ एक बीड़ीके बदलेमें बेच देता था। आज भी पेटभर मजदूरी और तन ढकनेको कपड़ेतक न मिल पानेकी दशामें भी क्या मजदूरों या रिक्सावालोंको आपने नित्य सिनेमा देखने जाते हुए नहीं देखा है ?

जीवन-निर्वाहके लिये इन इच्छाओंकी पूर्ति अनावश्यक होते हुए भी भ्रमवश हमें इनमें जीवनका आनन्द दिखायी देता है। मादक वस्तुओंको छोड़कर, जो प्रारम्भमें बुरी लगती हैं, शेष विषय शुरूमें ही इन्द्रियोंको आकर्षित करनेकी क्षमता रखते हैं और जब उनकी पुनरावृत्ति होने लगती है, वह हमारा 'व्यसन' बन जाता है। इन इच्छाओं, कामनाओं या वासनाओंकी पूर्तिके समय ही सुखका आभास होता है; पर यह सुख भुला दिया जाता है और यह नहीं कि हम केवल उन्हीं भोगे हुए सुखोंको पुनः चाहें, जैसा कि स्वाभाविक इच्छाओंमें रहता है, वरं हम नित्य नये-नये सुखकी खोजमें लगे रहते हैं। साइकिल प्राप्त करनेकी इच्छा पूरी होनेपर उसपर बैठनेका प्रारम्भिक आनन्द कुछ दिनोंमें समाप्त हो जाता है और हम मोटरकारका स्वप्न देखने लगते हैं। एक भोग दूसरे नये-नये भोगोंके लिये हमें रात-दिन भटकाता रहता है। हजारपति काञ्चनके चक्करमें पड़कर लखपति और लखपति करोड़ाधीश बनना चाहता है और वह प्राप्त सुखोंको भूलकर नये सुखोंकी खोजमें दुखी रहता है। मनुष्यने अपने साधनसम्पन्न सुखमय जीवनपर बरबस इन इच्छाओंको लादकर अपना जीवन अशान्तिमय बना लिया है। किसीने ठीक कहा है कि मनुष्यके वर्तमान समयके सुख-दुःखोंका विचार उन सुखसाधनोंके आधारपर नहीं किया जाता, जो उसे प्राप्त हैं, किंतु यह विचार मनुष्य इस आधारपर करता है कि उसकी वर्तमान आवश्यकताएँ क्या हैं और जब इस दृष्टिकोणसे वह सोचता है तो अपनेको सदा अभावग्रस्त पाकर दुखी होता है। प्राप्तिकी सुखछाया आवश्यकताओं और इच्छाओंके प्रकाशमें विलीन हो जाती है। तब क्या यह सत्य नहीं है कि वस्तुतः दुःखके कारण बहुत सीमातक हम स्वयं ही हैं। महर्षि मनुने कहा है—**'सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम्।'** अर्थात् जो दूसरोंकी (बाह्य वस्तुओं) की अधीनतामें है, वह सब दुःख है और जो अपने अधिकारमें है, वह सुख है। एक अंग्रेज विद्वान् स्माइल्सने अपनी पुस्तक 'सेल्फ-हेल्प'में कहा है कि जो मनके गुलाम हो गये हैं, उन्हें किसी भी राज्यशासनप्रणालीका परिवर्तन सुखी, स्वतन्त्र नहीं कर सकता। अतः दुःख-निवारण तथा सुखकी प्राप्तिके लिये हमें व्यसन एवं विषयजन्य इच्छाओंका उन्मूलन करना होगा और स्वाभाविक इच्छाओंकी पूर्तिके लिये बिना उन इच्छाओंका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निरन्तर चिन्तन किये निषिद्ध कर्मोंको छोड़कर आवश्यक वैध कर्म करने होंगे तथा इन कर्मोंके करते हुए भी फलकी चिन्ता छोड़नी होगी। यही तो गीताका उपदेश है।

यथाशक्ति उद्योग करके भी यदि हम अपने प्रयासमें असफल हो जायँ और हमारी इच्छाओंकी पूर्ति न हो, केवल तभी हम प्रारब्धका आश्रय लें और अपनी असफलताएँ प्रारब्ध या ईश्वर-इच्छाको सौंपकर दुःख तथा निराशाओंसे छुटकारा पाकर खिलाड़ीकी भावनासे मुस्कराते हुए जीवनका आनन्द लें। असफल किंतु पुरुषार्थी व्यक्तिके मनकी इस मुस्कानपर संसारके सम्पूर्ण वैभव निछावर होते हैं; क्योंकि सफलताएँ या कामनाओंकी पूर्ति आखिर मनुष्यको दे क्या जाती हैं? मनकी प्रसन्नता ही तो। निराशाएँ और विफलताएँ जब उसके मनपर अपना प्रभाव डालनेमें असफल हो गयी हैं, तब संसारमें उसकी परीक्षा लेने सफलताओंके अतिरिक्त कौन रह गया है? इन सफलताओंमें दुःख, विषाद देनेकी क्षमता स्वभावसे ही नहीं है, वे केवल उसके मनको हर्ष-आह्लादमें उन्मत्त कर सकती हैं; पर उसकी समत्वबुद्धि उसे ऐसा करनेसे भी रोक देती है। ऐसा है यह '**दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः**'। स्थितप्रज्ञ पुरुष, जो नित्य परम सुखको प्राप्त होता है, और ऐसे ही व्यक्तियोंसे एक सुन्दर सुखी समाजका निर्माण हो सकेगा।

श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी-महोत्सव

(लेखक—श्रीरामचन्द्र कृष्ण प्रभु)

(राष्ट्रीय एकताके हितमें इस हिंदू-महोत्सवको एकदेशव्यापी सप्ताहावधि सांस्कृतिक उत्सवका रूप देनेकी योजना)

देशभरकी समस्त हिंदू-जनता भगवान् श्रीकृष्णको परमेश्वरका आठवाँ अवतार मानती है। किंतु आदरणीय शिशु, क्रीड़ाप्रिय एवं निर्भीक गोप-बालक, वंशीवादक, नटवर, मल्ल, योद्धा, राजनीतिज्ञ, अद्वितीय दार्शनिक, धर्मगोप्ता, दीनबन्धु, आर्त-रक्षक, दुष्ट-दलन, शान्तिदूत, दिव्य प्रेमके मूर्तिमान् विग्रह, गीतावक्ता, मानवमात्रके उद्धारक और भगवदवतारके रूपोंमें जिनकी लीलाओंने विगत दो हजार वर्षोंसे अधिक कालतक एवं आज भी करोड़ों भारतवासियोंको मन्त्र-मुग्ध कर रखा है, उन्हींके जन्मदिन जन्माष्टमीका पर्व मनानेकी दृष्टिसे एक सप्ताहस्थायी देशव्यापी कार्यक्रम नीचे दिया जा रहा है। यह कार्यक्रम इस दृष्टिसे बनाया गया है कि इन अद्वितीय महापुरुषके भक्त और उन्हें आदरकी दृष्टिसे देखनेवाले भारतके लोग प्रत्येक नगर एवं ग्राममें इस उत्सवको मनानेकी पहलेसे तैयारी कर सकें। इस वर्ष जन्माष्टमी अगस्तकी २७-२८ तारीखको पड़ रही है। प्रत्येक स्थानके लोग अपने साधनोंके अनुसार इस कार्यक्रमको पूरा-पूरा या इसका जितना अंश सफलता-पूर्वक किया जा सके उतना निर्धारित कर लें। प्रभात-फेरियों तथा अन्य शोभा-यात्राओंके लिये उचित यह होगा कि उनको जहाँसे प्रारम्भ किया जाय, वहीं समाप्त किया जाय। अवान्तर फेरियाँ और यात्राएँ दोनों ओरकी गलियोंसे निकलकर मुख्य शोभायात्रामें चौराहोंपर आकर मिल जायँ।

कार्यक्रमकी रूप-रेखा

भाद्रपद कृष्ण ६, तदनुसार अगस्त २६

प्रातःकाल ८ बजेसे १० बजेतक गीत गाते हुए पुरुषोंद्वारा प्रभात फेरी। इन गीतोंमें अगले दिन भगवान्के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्मोत्सव मनानेकी तैयारीके लिये लोगोंमें प्रेरणा हो। भगवान्‌के बालकृष्ण, गोपालकृष्ण, वेणुगोपाल, नवनीत-चोर, कालियदमन, गोवर्द्धनधारी आदि रूपोंमें उनकी लीलाओंका वर्णन हो तथा संगीतज्ञ, नृत्यकार, मल्ल, योद्धा, राजनीतिज्ञ, दार्शनिक, उद्धारक तथा भगवदवतारके रूपमें उनका यशोगान हो।

सायंकाल ६–३० से ७–३० बजेतक श्रीकृष्णके नाम एवं उनकी लीलाओंका गान करते हुए महिलाओं (अधिकांश बालिकाओं) द्वारा फेरी।

भाद्रपद कृष्ण ७, तदनुसार अगस्त २७।

प्रातःकाल ८ बजेसे ११ बजेतक प्रभातफेरी, जिसमें अधिकांश पुरुष रहें। बहुत-से लड़के गोप-बालकोंके वेशमें रहें। उनके हाथोंमें बाँसुरी तथा रंगीन डंडे रहें और वे श्रीकृष्णके जन्म एवं बाल-लीला-सम्बन्धी पद गाते चलें। सायमें गायों, बछड़ों और साँड़ोंका भी एक जुलूस रहे। उनके गलेमें घंटियाँ बँधी रहें। नगर और ग्रामके प्रत्येक परिवारसे यह प्रार्थना की जाय कि वे अपने घरके पशुओंको पेटभर खिलाकर उनके बछड़ोंको पेटभर उनकी माताओंका दूध पिलाकर बच्चोंसे गायोंकी आरती उतरवाकर अपने नौकर अथवा किसी दूसरेके साथ उन्हें जुलूसमें सम्मिलित होनेके लिये भेजें। जब शोभायात्रा गन्तव्य स्थलपर पहुँच जाय, तब गायोंको समीपवर्ती मैदानमें विश्राम करनेके लिये छोड़ देना चाहिये। वहाँ उनको प्रचुर मात्रामें हरी घास और दाना खिलाना चाहिये और नादोंमें पीनेके लिये पर्याप्त पानीकी व्यवस्था करनी चाहिये।

अपराह्न ३ से सायं ६ बजेतक—

सजाये हुए खंभों या बाँसोंके चारों ओर श्रीकृष्ण-लीलाओंसे सम्बन्धित लोकगीत और लोकनृत्यका तथा 'कोल्हर' नृत्योंका भी लड़कों एवं लड़कियोंद्वारा पृथक्-पृथक् आयोजन किया जाय।

रात्रिमें ८ से ११ बजे तक—

श्रीकृष्णकी एक धातु या मिट्टीकी प्रतिमा स्थापित करके अथवा उनका एक बड़े आकारका चित्रपट रखकर उसके सामने बालक-बालिकाएँ कीर्तन करें (जहाँ सम्भव हो, वहाँ कीर्तनमें नृत्यको भी स्थान दिया जाय)। ये बालक-बालिकाएँ नारद, मीराबाई, कबीर, सूरदास, चैतन्य, तुकाराम, ज्ञानेश्वर, पुरंदरदास, कनकदास, जयदेव (गीतगोविन्दकार), नरसी मेहता, लीलाशुक, शंकराचार्य, मध्वाचार्य, वल्लभाचार्य, शंकरदेव (असमवाले), त्यागराज आदिके वेश धारण किये रहें।

रात्रिके ११-१५ से १-३० (या भोरमें २) बजेतक-

बड़ी आयुके नर-नारियोंद्वारा एवं गायक-गायिकाओं-द्वारा वाद्योंके साथ कीर्तन। जहाँ श्रीकृष्णजन्मकी झाँकी सजायी जाती हो वहाँ वैसा किया जाय तथा उक्त प्रसङ्ग-के पदगान एवं कथा हो।

जन्माष्टमी, तदनुसार अगस्त २८।

प्रातःकाल ८ से ११ तक भक्तिपरक पद गाते हुए पुरुषोंद्वारा प्रभात-फेरी। ये लोग लेजिमका प्रदर्शन करते, संगीतके साथ-साथ लोक-नृत्य दिखाते, दहीके मटके फोड़ते तथा बाँसके बने हुए खिलौनेके पिस्तौल-द्वारा विरोधी दलोंपर एवं अन्य लक्ष्योंपर आक्रमण न करते, बाण चलाते, मुगदर भाँजते, लाठी एवं तलवार घुमाते तथा इसी प्रकारके अन्य साहस एवं कौशलके करतब दिखाते हुए चलें। जहाँ जन्माष्टमी सप्तमीको मनायी जाय, वहाँ दूसरे दिन प्रातः नन्द-महोत्सव (दधिकाँदो) मनाया जा सकता है।

सायंकाल ३ से ६ बजेतक—

मल्लयुद्ध तथा व्यायाम-सम्बन्धी अन्य प्रतियोगिताएँ, मलखाम बाँसके सहारे कूदना, तेल-चुपड़े खंभोंपर चढ़ना इत्यादि।

रात्रिके ८ से १० बजेतक—

श्रीकृष्णके वेषमें सोलह लड़कियों तथा गोपियोंके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेषमें सोलह अन्य लड़कियोंद्वारा अनुकूल गायन-वादनके साथ रासलीला । लीला करनेके लिये एक-से अधिक मण्डलियोंको बुलाया जा सकता है और सर्वश्रेष्ठ मण्डलीको पुरस्कारद्वारा सम्मानित किया जा सकता है ।

रात्रिमें १०–३० बजेसे लेकर १ बजेतक–

प्रौढ़ वयके कीर्तनकारों तथा अन्यजनोंद्वारा कीर्तन तथा श्रीकृष्ण-जन्मकी झाँकी ।

भाद्रपद कृष्ण ९, तदनुसार अगस्त २९ ।

प्रातःकाल ९ से ११ बजेतक—शिशु-प्रदर्शनी, १५ वर्षसे कम अवस्थाके बालक-बालिकाओंद्वारा बालकृष्ण, गोपालकृष्ण, वेणुगोपाल, कालियदमन, गोवर्धनधारी, गोप, गोपी, राधा, रुक्मिणी, सत्यभामा, कुब्जा, यशोदा, देवकी, वसुदेव, कंस, चाणूर, मुष्टिक, कुचेल (सुदामा), नारद, मीराबाई, राधाकृष्ण, यशोदाकृष्ण, देवकीकृष्ण, कृष्णार्जुन आदि वेषोंमें वेष-प्रतियोगिता । नन्द-महोत्सव ।

सायंकाल ४ से ६ बजेतक—श्रीकृष्णलीलाओंपर हरिकथा-कालक्षेप ।

रात्रिमें ९ से १२ बजेतक—भरतनाट्य, कथकली, मणिपुरी, यक्षगान अथवा कत्थक-पद्धतिसे श्रीकृष्ण-लीलाके किसी प्रसङ्गका नृत्यप्रधान नाटकद्वारा निरूपण ।

भाद्रपद कृष्ण १०, तदनुसार अगस्त ३० ।

सायंकाल ४ से ६ बजेतक—श्रीकृष्णलीलाओंका मूक एवं अचल प्रदर्शन, शास्त्रीय नृत्य एवं संगीत ।

रात्रिमें ८ से १० बजेतक—श्रीकृष्णलीलाके यशोदा-कृष्ण, कालियमर्दन, कंसवध, गोवर्द्धन-धारण, चाणूर-मुष्टिक-मर्दन, वेणुगोपाल, चक्रपाणि, रास-लीला, रुक्मिणीहरण, कुचेल (सुदामा) और कृष्ण, अर्जुन और कृष्ण (पार्थ-सारथि एवं गीतोपदेष्टा), कृष्ण एवं द्रौपदी-वस्त्रापहरण, कृष्ण एवं नारद, कृष्ण तथा मीराबाई, विश्वरूपदर्शन, शिशुपालवध, नरका-सुरवध आदि प्रसङ्गों तथा रूपोंका निदर्शन करानेवाले प्रकाशयुक्त दृश्योंको लारियोंपर मन्दगतिसे मुख्य राज-पथोंपर घुमाना ।

भाद्रपद कृष्ण ११, तदनुसार अगस्त ३१ ।

प्रातःकाल ९ से १२ बजेतक—गीताधर्म और श्रीकृष्ण-चरित्रपर प्रवचन ।

अपराह्णमें २ से ३-३० तक—श्रीकृष्णकी ऐतिहासिकतापर प्रवचन ।

भाद्रपद कृ० १२, तदनुसार सितम्बर १ ।

प्रातःकाल ९ से ११ बजेतक—गोरक्षा, गो-संवर्द्धन, जीवदया, जीवमात्रके प्रति अवध्यताबुद्धि, निरामिष आहार आदि विषयोंपर भाषण ।

सायंकाल ४ से ६ बजेतक—गाय-बैलोंका मेला और पुरस्कार-वितरण ।

रात्रिमें ८ से ११-३० बजेतक—(श्रीकृष्ण-चरित्रके किसी प्रसङ्गका) अभिनय ।

प्रभात और सायंकालीन फेरियोंमें गाये जानेवाले गीत केवल प्रादेशिक भाषामें ही नहीं होंगे वरं स्थानीय जनताके विभिन्न वर्गोंद्वारा बोली जानेवाली अथवा उनकी समझमें आनेवाली भाषामें भी होंगे। इन वर्गोंके लोगोंसे कहा जाय कि ये लोग अपने पृथक्-पृथक् दल बनाकर अपनी भाषाके गीत गाते चलें । इसी प्रकार जन्माष्टमीकी रात्रिको नाटकमें मीराबाई, तुकाराम, पुरंदरदास, जयदेव, नरसी मेहता आदिके वेष सजनेवाले बालक-बालिकाओंको चाहिये कि इन संतोंने जिस भाषामें अपने पद लिखे हैं उन्हीं भाषाओंमें उनकी रचनाओंको गायें ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्मके प्रति ये भ्रान्त धारणाएँ

(लेखक—श्रीनारायणदासजी 'वीर')

धर्म और विज्ञान

आज प्रायः यह कहा जाने लगा है कि ज्यों-ज्यों विज्ञानके चरण बढ़ते जायँगे, धर्मकी आस्थाएँ उतनी ही धूमिल होती जायँगी। पर यह विज्ञानके मदकी वाचालता मात्र है। यथार्थ सत्य तो यह है कि ज्यों-ज्यों आधुनिक विज्ञान विकसित होगा, सनातन-धर्मकी मान्यताएँ, आस्थाएँ तथा वास्तविकताएँ अधिकाधिक स्पष्ट हो सूर्यके समान प्रखर होती जायँगी।

सनातन-धर्ममें विज्ञान वस्त्रमें धागेकी तरह ओत-प्रोत है। साथ ही आजके विज्ञानसे उसमें एक विशेषता यह और है कि जहाँतक आजके विज्ञानकी गति है, उसकी परिसमाप्ति है, वहाँसे सनातन-धर्मके विज्ञानका प्रारम्भ होता है।

अभी कुछ समय पूर्व संजयद्वारा कुरुक्षेत्रकी घटनाओंके देखे जाने और सुनेजानेको कपोल-कल्पित कहा जाता था। परंतु रेडियो और टेलिविज़नके आविष्कारने उनकी सत्यता प्रमाणित कर दी।

रेडियो और टेलिविज़न किसी एक विशिष्ट स्थानसे यन्त्रके माध्यमसे एक यान्त्रिक माध्यमतक ध्वनि और दृश्यका प्रसारण करते हैं। प्रेषक और संग्राहक (Receiver) यन्त्रोंके अभावमें दृश्य और ध्वनिका प्रसारण नहीं होता। इससे यह स्पष्ट है कि ये सब क्रिया-कलाप या वैज्ञानिक आविष्कार सीमित, संकुचित और एकदेशीय हैं, जब कि यहाँ आध्यात्मिक शक्तियोंको शरीरमें ही इतना विकसित किया गया कि जब भी आवश्यकता हुई सिद्ध पुरुषोंने कितने ही दूरस्थ स्थान या किसी भी व्यक्तिके सम्बन्धमें ज्यों-के-त्यों दृश्य देखे, बातें सुनीं और मनोभावोंतकको यथावत् जान लिया। तभी तो कहा गया—

'बिस्व बदर जिमि तुम्हरे हाथा।'

शास्त्रोंमें वर्णित विमानोंके तथ्य आजके वायुयानोंने तथा प्रथम पूज्य होनेके लिये समस्त देवताओंद्वारा पृथक्-पृथक् पृथ्वी-परिक्रमाकी सचाई आजके विज्ञानने सिद्ध की है। अभी चन्द्रलोक-यात्राकी योजनाएँ चल रही हैं; परंतु भारतमें तो लोक-लोकान्तरोंमें आवागमनकी बातें सामान्य-सी थीं। अष्ट सिद्धियाँ धर्मके वे वैज्ञानिक आविष्कार रहे हैं, जिनकी ऊँचाइयोंका धरातल भी आजका विज्ञान छूनेका भी साहस नहीं कर पा रहा है। भारतका ज्योतिष-विज्ञान कितना महान् रहा, उसने मानवके जन्मते ही पूरी आयुके हाल तथा संसारके युग-युगोंकी—हजारों-लाखों वर्षोंकी सच्ची भविष्य-वाणियाँ की हैं।

धार्मिक संघर्ष

अपने देश-धर्मके इतिहाससे अनभिज्ञ या नाममात्रको परिचित विदेशी इतिहासोंके ज्ञाताओंके मतानुसार 'धर्म एक फसादकी जड़' है। अतः ऐसे लोग धर्मका समूलोच्छेदन करना चाहते हैं। परंतु धर्मके संघर्ष भारतमें नहीं, पाश्चात्त्य देशोंमें ही होते रहे हैं, जहाँ कैथलिक्स प्राँटेस्टेंटोंके पारस्परिक खून-खच्चर, शिया-सुन्नियोंकी आपसी मार-काट होती ही आयी है। परंतु सनातन-धर्मने अपना प्रसार केवल प्रेमसे ही किया है। इतिहासमें ऐसा एक भी उदाहरण नहीं मिलेगा, जहाँ सनातनियों या वैदिकोंने अन्योंसे धर्मके नामपर अपनी ओरसे संघर्षकी कोई पहल की हो। अपितु इसके विपरीत ईश्वरविरोधी बौद्ध-धर्म और वेदविरोधी जैन-धर्मके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रवर्तक 'बुद्ध' तथा ऋषभदेव सनातन-धर्ममें भगवान् माने गये। सनातन-धर्म सहिष्णु धर्म है। वह सब धर्मोंको आदरकी दृष्टिसे देखता है। उसे तो **'बुरा न दीखा कोय।'** यही कारण है कि भारतमें पारसी, ईसाई, मुसलमान आदि सभी मतावलम्बी सदासे ही सप्रेम प्रश्रय पाते आये हैं। धर्म-परिवर्तन सनातन-धर्मको कभी अभीष्ट न रहा। तभी तो कहा गया—

'स्वधर्मे निधनं श्रेयः'

सनातन-धर्म समन्वयवादी धर्म भी है। उसने वेदान्ती और वाममार्गी—अघोरपंथीको एक ही मञ्चपर एकत्र किया है, **'निज प्रभुमय देखहिं जगत, केहि सन करहिं बिरोध'** का पाठ जन-जनको पढ़ाया है। आजके धर्म-हीन मानवने कई विघटनकारी 'वादों' (Ism) को जन्म दिया है, जिनसे सुधारके नामपर बिगाड़ ही हो रहा है। मानवसेवा और विकासके नामपर आकाशसे बम गिराये जा रहे हैं। आजका प्रगतिवादी मानव पिशाच हो गया है।

आज जो भावनात्मक एकताकी बात कही जाती है, वह किसी बाह्याचारसे नहीं, वरं धर्मसे ही साध्य है। भारतके विभिन्न प्रान्तोंमें वेष, भूषा, भाषा, आचार-विचार आदिके सर्वथा पृथक्-पृथक् होते हुए भी धर्म ही सारे भारतको एक सूत्रमें पिरोये रखकर एकता बनाये हुए है। यदि ऐसे धर्मकी उपेक्षा की गयी तो जैसे सूत्रके टूटनेपर मालाकी मणियाँ बिखर जाती हैं, उसी तरह भारत व्यक्ति-व्यक्तिमें खण्डित हो जायगा।

धर्म और प्रगति

आज धर्मको अफीमकी गोलियाँ कहकर उसे प्रगति-का बाधक बतलाया जाता है। परंतु वास्तविकता यह है कि धर्मने मानवको पशुत्वके दायरेसे निकालकर मानवता दी है। आज फिर मानव धर्मसे दूर होकर आसुरी वादोंकी प्रगतिवादी नवीनतामें फँसकर केवल रोटी-कपड़ेमें सिमट गया है और इस प्रकार प्रगतिके नामपर अप्रगतिशील हो गया है। वह मानव होकर भी इतना गिर गया है कि रोटी-कपड़ा जुटानेके नामपर उसे चोरी, षड्यन्त्र, हिंसा, अन्याय, लूट आदि सब कुछ करना स्वीकार है। वास्तवमें बात तो यह है कि आजका मानव अपनेको चाहे प्रगतिशील कहे या कितने ही ऊँचे वादका माननेवाला बनावे पर इस प्रकार है वह आत्मवञ्चक और स्वयंमें सिमटा-सिकुड़ा व्यक्ति-वादी जीव।

मानवके समक्ष ये प्रश्नोत्तर होते रहते हैं कि—तुम कमाते क्यों हो? उत्तर है—खानेके लिये। और खाते क्यों हो? उत्तर है—जीनेके लिये। परंतु जीते क्यों हो? इसका कोई संतोषजनक उत्तर धर्मको अफीम माननेवाले इन तथाकथित प्रगतिमान् लोगोंके पास नहीं है। वे तो प्रत्यक्षमें या परोक्षमें स्वानवृत्ति अपनाये हुए जीते हैं। परंतु इसका उत्तर धर्मके पास यह है कि अपने समस्त व्यवहारोंसे कण-कणमें व्याप्त ईश्वरकी सेवा करनेके लिये ही जीवन धारण करते हैं।

धर्म और साम्य

धर्मके विषयमें ये भ्रान्तियाँ फैलती जा रही हैं कि धर्ममें ऊँच-नीच है और वह सर्वहाराकी उपेक्षा करके अधिनायकवाद या पूँजीवादको अपनाता है। परंतु देखिये ये तथ्य कितने आधारहीन हैं—जहाँ अजामिल, गणिका, सदन कसाई तारे गये, शबरी-कुब्जा पूज्य हुईं, विलोम जातिमें उत्पन्न सूत पूजे गये और कबीर, रैदासकी गणना महान् संतोंमें की गयी, उसपर ऊँच-नीचका दोष लगाना सर्वथा भ्रम है, धर्मके प्रति अन्याय है। एक ही शरीरके अङ्ग सिर तथा पैरमें व्यवहार-भेदकी भाँति व्यवहारभेद अनिवार्य है। पर धर्म कभी आत्मभेद नहीं सिखाता। इसीसे धर्मपरायण पुरुष समदर्शी (समदर्शिनः) होते हैं। दूसरी बात जो पूँजीवाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के पक्षके समर्थनकी कही जाती है, वह भी निराधार है। धर्मने ईश्वरको धनिकबन्धु न मानकर दीनबन्धु या दीनवत्सल कहा है। द्रव्यसाध्य यज्ञ-यागादिकी अपेक्षा ज्ञानयज्ञको, प्रेमयज्ञको सर्वोच्चता दी गयी है। उपासनामें नामकीर्तन एवं पत्र-पुष्प पर्याप्त हैं और यदि ये भी न हों तो जल ही सही।

धर्महीनता सब बुराइयोंकी जड़ है

आज उन्नत कहलानेवाले शिक्षित और उच्चवर्गोंमें जो सभी प्रकारका भ्रष्टाचार पनपकर देशको रसातलकी ओर ले जा रहा है, इसका कारण उनमें धर्मका अभाव है। यदि वे धार्मिक होते तो वे 'सीय-राममय' ही सारे जगत्‌को देखते और उस अवस्थामें वे कोई पाप, दुराचार, किसीके प्रति दुर्व्यवहार कर सकते? धर्मकी प्रेरणासे ही धार्मिक सर्वत्र सब स्वरूपोंमें उस विराट् भगवान्‌के दर्शन करता है।

आज कालेजोंके छात्रोंमें जो स्वेच्छाचार, उच्छृङ्खलता पनप रही है, उसका कारण भी धार्मिक शिक्षाका अभाव ही है। धर्म छिपकर भी पापसे रोकता है। अतः धर्महीनता सब बुराइयोंकी जड़ है।

धर्म और राष्ट्रसंघ

आजके संयुक्त राष्ट्र-संघसे भी महान् कल्पना धर्म-जगत्‌में 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के रूपमें न जाने कबसे हो गयी थी। तभी तो ये भावनाएँ, प्रार्थनाएँ इस विश्व-कुटुम्बके लिये की जाती थीं—

'सर्वे भवन्तु सुखिनः' (सब सुखी हों)

'कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्।'

(दुःखतप्त पीड़ितोंकी पीड़ाका मैं नाश चाहता हूँ)

ऐसा राष्ट्रसंघ एक संघ न रहकर निजका कुटुम्ब हो जाता है। फिर अपने आत्मीयोंसे ईर्ष्या, स्पर्धा और द्वेष कहाँ?

धर्म और वर्तमान परिस्थिति

कहते हैं आजका युग इतना जटिल और विषम है कि ऐसे समयमें धर्मपालन करना शक्य नहीं है। परिस्थितियाँ भी विकट हैं, समस्याएँ भी उग्र हैं। परंतु ये सब धर्मके प्रति अनास्था और बहानेमात्र हैं। विज्ञानने आज जीवनको इतना सरल बना दिया है कि जीवनोपयोगी साधन, जिन्हें जुटानेमें पहले अत्यन्त कठिनाइयाँ आती थीं, अब पलक मारते प्राप्त हो जाते हैं। ऐसी स्थितिमें धर्मपालन वास्तवमें और भी सुगम है।

यह निश्चय है कि ये भ्रान्तियाँ शीघ्र नष्ट होंगी और मानव-समाज आधुनिकतासे उकताकर वास्तविकतासे परिचित हो धर्मके प्रति आकृष्ट होगा।

ब्रजवासकी विधि

ऐसें ही बसिये ब्रज बीथिन।
साधुन के पनवारे चुनि चुनि, उदर पोषिये सीथिन॥
घूरन में के बीन चिनगटा, रच्छा कीजे सीतन।
कुंज कुंज प्रति लोटि लगै उड़ि, रज ब्रज की अंगीतन॥
नितप्रति दरस स्याम स्यामा कौ, नित जमुना जल पीतन।
ऐसेहिं 'व्यास' होत तन पावन, ऐसेहिं मिलत अतीतन॥

—संत व्यासदासजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूजा

[कहानी]

(लेखक—श्री'चक्र')

'यह तुम क्या कर रहे हो ?'

'पूजा कर रहा हूँ ।'

'किसकी पूजा ?'

'बाघ देवताकी ।'

'बाघ भी देवता होता है ?'

'क्यों ? क्या भवानी बाघपर बैठतीं नहीं ? मैंने तो अपने बूढ़े बापसे ऐसा ही सुना है ।'

'बैठती तो हैं ।'

'तब फिर ?'

'तुम भवानीकी ही पूजा क्यों नहीं करते ?'

'उनकी पूजा तो पण्डित करते हैं । मैं तो भील हूँ । भवानी तो संसारकी महारानी हैं । मेरा बाप कभी राजधानी जाता था तो बड़ी कठिनाईसे उसे महाराजके घोड़ेके पैर मलनेको मिलते थे ।'

'लेकिन तुम तो बाघ भी पाल सकते हो । बाघकी मूर्ति क्यों पूजते हो ?'

'जंगलके जीवको बाँधकर रखूँगा तो वह दुखी होगा । उसके लिये रोज-रोज बकरा या हिरन मारना पड़ेगा । भवानीका बाघ कैसा है, मैंने यह देखा तो है नहीं । जंगलका कोई बाघ बाँध लेनेसे लाभ भी क्या ?'

'बाघकी इस मूर्तिकी पूजा करनेसे क्या लाभ होगा ?'

'बाघ-बाघ सब देखनेमें एक-जैसे होते हैं । भवानी, सुना है कि, पर्वतकी पुत्री हैं । बाघपर बैठती हैं तो नगरमें तो घूमती नहीं होंगी । जंगल-पहाड़में घूमनेवाली वे देवी कभी इधरसे भूले-भटके निकलेंगी तो उन्हें लगेगा अवश्य कि यहाँ कोई दीन जंगली उनके बाघकी मूर्ति पूजता है ।'

'वे प्रसन्न हो जायँ तो तुम उनसे क्या माँगोगे ?'

'मैं भला क्या माँगूँगा उन सारे संसारकी महारानीसे, उनका दिया ही तो है मेरा यह देह । इस नीच जात-को एक बार दूरसे वे दीख जायँ—मैं उनके चरणोंको दूरसे पृथ्वीमें सिर रखकर प्रणाम कर लूँ, बस !'

'किंतु तुम्हारी यह पूजा कैसी है ? तुम तो बाघपर चढ़े बैठे हो !'

'महाराज ! मैं इसपर बैठा कहाँ हूँ ? वर्षाका पानी पड़ते रहनेसे काई लग गयी है इसपर । इसकी पीठ रगड़कर साफ कर रहा हूँ । राजाके घोड़ेको भी रगड़कर साईस नहलाता है, यह मैंने देखा है । इसे साफ कर दूँ तो फिर पत्ते, फूल, चिड़ियोंके पंख और गुञ्जासे इसे ऐसा सजा दूँगा कि भवानी देखें तो प्रसन्न हो जायँ ! कहीं वे एक पल इस बाघपर बैठ जायँ तो मैं सब पा गया ।'

'भाई ! तुम एक कृपा करोगे मुझपर ?'

'महाराज ! आप मुझे क्यों नरकमें डालते हैं ? मैं नीच भील आप महात्मापर भला कृपा करूँगा ? आप साधु-महात्मा हो । आप कोई आज्ञा करो तो अभी दौड़कर पूरा करूँगा । आपको कोई कंद चाहिये ! कोई जड़ी चाहिये ? कोई हिरन या बाघका चमड़ा चाहिये तो आज्ञा करो ।'

'यह सब तो मुझे नहीं चाहिये । मुझे लगता है कि देर-सबेर जगन्माता भवानी यहाँ आयेंगी अवश्य । वे यहाँ आये बिना रह नहीं सकतीं ।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'हाँ, महाराज ! वे जंगलमें ही घूमती हैं तो कभी-न-कभी इधर भी आयेंगी, मुझे यह पक्का भरोसा है ।'

'वे आयेंगी और तुम्हारे इस बाघपर बैठेंगी भी ।'

'सच महाराज ? आप महात्माओंकी बात झूठी नहीं होती । अब मैं इस बाघको और सजाया करूँगा । रोज-रोज सजाऊँगा ।'

'सो तो तुम करोगे, किंतु वे आयें तो उनसे प्रार्थना करना कि वे मुझे भी दर्शन देनेका अनुग्रह करें ।'

'महाराज ! वे सारे संसारकी महारानी—उनके सामने मुझसे बोला जायगा ? मैं तो दूरसे छिपकर उनके चरण देखूँगा । इस नीचके ऊपर उनकी दृष्टि पड़े, इतना साहस मैं कैसे करूँगा ?'

'तुम मनमें ही प्रार्थना कर लेना !'

'हाँ, यह कर लूँगा । वे मनकी बात जान लेती हैं, यह बापू कहता था ।'

× × ×

मल्लिकार्जुनका वन कुछ वर्षों पूर्वतक अगम्य था, आज भी उस वनमें शेरोंकी उन्मुक्त क्रीड़ा चलती है । इक्का-दुक्काकी बात छोड़िये, दस-बीस यात्री भी वहाँ नहीं जा सकते थे । वहाँकी यात्रा तो केवल शिवरात्रिपर होती थी, जब सशस्त्र पुलिस पूरे मार्गमें नियुक्त होती थी । यह कथा तो शताब्दियों प्राचीन है । तब तो वह वन और भी गहन था । बस तो वहाँ अब जाने लगी है, जब तीन-चार वर्ष पूर्व पक्की सड़क बनी है ।

भील सदासे अरण्य-पुत्र है । घोर काननमें उनके झोपड़े आज भी हैं । वनके हिंस्र पशुओंसे उनका पारिवारिक-जैसा सम्बन्ध होता है । वनमें खाली हाथ भील उतना निर्भय होता है, जितना राइफल भरा निपुणतम शिकारी भी नहीं होता ।

सूखे पुआलकी ढेरीके समान गुम्बदके आकारवाले परस्पर सटे थोड़े-से झोपड़े होते हैं भील-पल्लीमें । कोई ऊपर हवाईजहाजसे देखे तो लगे कि भेड़ोंका झुंड परस्पर सटा बैठा है । मिट्टीकी कच्ची दीवारें, कहीं-कहीं अनगढ़ पत्थर चुनकर वे बनी होती हैं; किंतु इतनी नीची कि आधीसे अधिक ढालुवाँ फूसके छप्परसे छिपी रहती हैं । पूरे ग्रामको घेरकर एक ऊँची, घनी कँटीली बाड़ अवश्य होगी और उसमें प्रवेशका एक संकीर्ण मार्ग होगा, जो रात्रिमें ठट्ठरसे बंद किया जाता होगा । वनमें रहना है तो वनके रात्रिचर क्रूर पशुओंसे अपनी, अपने परिवारकी, अपने पशुओंकी रक्षाकी व्यवस्था तो रखनी चाहिये ।

मल्लिकार्जुनके वनमें ऐसी ही एक भील-पल्लीके बाहर मिट्टीके ऊँचे चबूतरेपर पत्थरसे बनी एक बाघकी मूर्ति थी । मूर्ति इतनी बड़ी थी कि एक ऊँचा पूरा बाघ भी उससे तनिक छोटा ही होगा; किंतु भीलोंके हाथोंने उसे गढ़ा था । आप मूर्तिकलाकी बात करें तो वह वहाँ नहीं चलेगी । अवश्य ही वह मूर्ति चाहे जितनी भद्दी हो, बाघकी ही मूर्ति है—यह देखनेवालेको लग जाता था ।

उस दिन एक भील युवक मूर्तिकी पीठपर बैठा उसे रगड़-रगड़कर धो रहा था । उधरसे एक साधु निकले तो उन्हें कुतूहल हुआ ।

निकटतम नगर जो इस वनके समीप है, लगभग पाँच-छः योजन दूर है । ये महात्मा लोग बड़े अटपटे होते हैं । अब देखिये कि ये साधु महाराज सिंह, बाघ, भेड़िये, चीते और उनसे भी भयानक, क्रूर भीलोंसे भरे इस वनमें नगरसे दो योजन दूर आ टिके हैं एक पहाड़ीपर । भील अब इन्हें सिद्ध मानें तो आश्चर्य क्या । सुना यह है कि इनकी उस टेकरीपर बाघ-चीता कोई नहीं चढ़ता । जंगलके कंद, फल, पत्ते छोड़कर खानेको वहाँ धरा क्या है । अवश्य ही भील इन्हें मधु, कंद आदि पहुँचा दिया करते हैं ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'यहाँ पूजा ठीक हो जाती है ।' साधुओंकी बात वे ही जानें । वैसे कभी इन महात्माजीको किसीने पूजा करते देखा नहीं । ये तो प्रायः वनमें, और वह भी नगरकी दिशासे आनेवाला मार्ग जहाँ ऊँचे पठारपर लुप्त हो गया है, घूमते रहते हैं ।

'बाबा ! आप रात्रिमें पूजा करते हो ?' एक बूढ़े भीलने एक दिन पूछा था । दिनमें जो पूजा नहीं करता और अच्छी पूजाकी बात करता है, वह रातमें पूजा करता होगा, यही तो कोई सोचेगा ।

'बड़े दयामय हैं भगवान् शिव । वे नाना रूपोंमें पूजा लेने आ जाते हैं ।' भीलकी समझमें कुछ नहीं आया । उसे बस, लगा कि रात्रिमें अवश्य शिव-भगवान् साधुके समीप आते होंगे ।

साधु तो दिनभर भटकते हैं । प्रायः पठारपर भूले-भटके यात्री मिल जाते हैं उन्हें । उनको वे अपनी कुटियापर ले आते हैं । रात्रिमें कोई भूल जाय पठारपर मार्ग—भील भी रात्रिमें तो वहाँ बचे रहनेकी आशा नहीं कर सकता । ये महात्माजी ही आश्रय हैं ऐसे मार्गच्युत पथिकोंके । बड़े स्नेह-सम्मानसे सत्कार करते हैं । यही उनकी पूजा है; किंतु भील इस पूजाको कैसे समझ सकता था ।

× × ×

'महाराज ! आपका आशीर्वाद सफल हुआ ! ढेरसे कंद, फल और पूरा बड़ा छत्ता मधुका लिये भील युवक महात्माकी टेकरीपर उस दिन पहुँचा । उसके पैर ठिकाने नहीं पड़ते थे । वह जैसे उन्मत्त हो रहा था ।

'क्या ? कैसा आशीर्वाद ?' महात्मा किसीको आशीर्वाद देते नहीं । इस युवकको उन्होंने कब आशीर्वाद दिया, उन्हें स्मरण नहीं ।

'माता भवानी आयी थीं कल ! वे मेरे उस बाघपर कूदकर बैठ गयीं । देरतक बैठी रहीं ।' वह जैसे हर्षोन्मादमें कह रहा था । 'वे अपना बाघ लगता है घर छोड़ आयी थीं । मेरा बाघ दीखा तो प्रसन्न हो गयीं ।'

'भवानी आयी थीं ? वे आयी कैसे थीं ?'

'वे क्या अकेली आयी थीं ? उनके साथ तो तीन आँखवाले, चन्द्रमा सिरपर पहने, सर्प लपेटे बाबा भी थे । दोनों बैलपर चढ़े आये थे । मेरा बाघ दीखा तो महारानी बैलपरसे कूदकर उसपर बैठ गयीं ।'

'तुम कहाँ थे ?'

'मैं क्या इस नीच देहको लेकर उनके सामने जाता ? मैं तो पेड़के पीछे छिपा देख रहा था । महारानी हँस रही थीं ।' सहसा चौंककर वह बोला—'मैंने मनमें प्रार्थना तो की थी कि वे आपके यहाँ आयें । वे इधर आये भी थे । आप मिले नहीं क्या ?'

'वे उमा-महेश्वर थे ?' साधु अब चौंके । कल सायं एक वृद्ध दम्पति उनको पठारपर मिले थे । उनके साथ एक बूढ़ा बैल था । रात्रिभर वे इस कुटियामें रहे । यह वन और उसमें वृद्ध दम्पति ! इस घोर वनमें बूढ़ा बैल साथमें—क्यों इन बातोंपर ध्यान नहीं गया !

'अतिथिमात्र उन महेश्वरके रूप हैं, यह मानकर मैं पूजा कर रहा था । वे अतिथि होकर आये; किंतु...... देर लगी साधुको प्रकृतिस्थ होनेमें । भरे कण्ठसे वे बोले—'तुम्हारा सहज विश्वास कहाँ था मुझमें कि मैं उन श्रद्धा-विश्वासस्वरूपको पहचान पाता ?'

× × ×

मैंने अनेक वन्य ग्रामोंके बाहर व्याघ्रमूर्ति देखी है। ग्रामीण उस मूर्तिकी पूजा करते हैं । नहीं जानता कि व्याघ्रमूर्तिकी पूजा-परम्परा उस भील युवककी श्रद्धासे प्रारम्भ हुई, अथवा इसमें कोई और भी रहस्य है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचारक बननेका मूल मन्त्र क्या, क्यों और कैसे ?

(लेखक—श्रीअगरचंदजी नाहटा)

समस्त जीव-सृष्टिमें मनुष्यका स्थान सबसे ऊँचा है। इसका एकमात्र कारण मनुष्यकी विशिष्ट विचारशक्ति ही है। वस्तुतः मनकी विशेषताके कारण ही उसका नाम मनुष्य या मानव है। मन, वाक् एवं शरीरकी त्रिविध शक्तियोंमें सबसे प्रधान एवं मूल-शक्ति मनकी है। सर्वप्रथम विचार मनमें उत्पन्न होता है, फिर वचन एवं शरीरकी प्रवृत्ति होती है। विचारोंसे ही मनुष्य बनता है या बिगड़ता है। धर्म या पापका मापदण्ड मनुष्यके विचार ही हैं। जिस व्यक्तिके विचार पवित्र हैं, वह धार्मिक है और जिसके विचार बुरे हैं, वह पापी। भारतीय दर्शनपद्धतियोंमें विचारोंको पवित्र रखनेपर विशेष बल दिया गया है।

सत्-असत् अथवा कर्त्तव्य-अकर्त्तव्यका ज्ञान ही विवेक है और उसका मूलाधार विचार हैं। सुख-दुःखकी सारी कल्पना हमारे विचारोंपर ही निर्भर है। अतः प्रत्येक मानवके लिये विचारक बनना नितान्त आवश्यक है। पर साध्यके लिये साधनकी आवश्यकता होती है। विचारोंका मूल-मन्त्र क्या है, यह जान लेना आवश्यक है।

विश्वका सारा ज्ञान-विज्ञान हमारे जीवनकी अनुभूतियोंसे भरा पड़ा है, पर इस ओर हमारी आँखें बंद हैं। अतः इनसे हम वञ्चित रह जाते हैं। आनन्दका भंडार हमारे अंदर ही भरा पड़ा है, पर हमारी दृष्टि बाहरकी ओर लगी है। हीरोंको छोड़कर हम कंकड़-पत्थरका संग्रह कर रहे हैं। आनन्दका स्रोत हमारे पैरों-तले बह रहा है, पर हम उस ओरसे बेसुध होकर कस्तूरी-मृगकी भाँति इधर-उधर भटकते फिर रहे हैं। जैन संत आनन्दघनने कहा है—

प्रगट निधान प्रगट मुख आगले,
जगत उल्लंघी रे जाय।
आनन्दघन हीरो जन छाँडी,
नर मह्यो माया ककरी री॥

उपर्युक्त कथनको अध्यात्म-योगियोंकी ऊँची उड़ान कहा जा सकता है; किंतु साधारणतया हम इस बातका तो अनुभव करते ही हैं कि जीवन अनुभूतियोंका महत् भंडार है। प्रतिपल इतनी बातें तथा घटनाएँ हमारे अनुभवमें आती हैं कि यदि प्रत्येक बातपर विचार करनेके लिये जरा-सा भी समय दिया जाय तो हमारा स्वल्प जीवन न जाने कितनी समस्याओंमें ही उलझकर रह जायगा। फिर भी कार्य-कारणका सम्बन्ध तथा विश्वकी विविधता एवं विचित्रताका रहस्य जाने बिना मनको संतोष नहीं होता, अतः विचार करते रहना हमारे लिये स्वाभाविक एवं आवश्यक है। इसके लिये किताबी ज्ञानकी उतनी आवश्यकता नहीं, जितनी विचार करनेके अभ्यासकी है। अनुभूतिकी बृहत् पोथी खुली है; जितना ही अधिक मनुष्य उस ओर ध्यान देगा, उसका ज्ञान स्वयं विकसित होता चला जायगा। यदि वह विचार-संलग्न रहा तो जिन समस्याओंका समाधान बड़े-बड़े ग्रन्थोंकी सहायतासे नहीं मिल पाता, वे सहज ही सुलझ जायँगी। यह बात सुनी-सुनायी या पढ़ी हुई नहीं, मेरे स्वयंके अनुभवोंपर भी आधारित है। यौवनके विकासके साथ-साथ मेरी जिज्ञासा तीव्र होती चली और पग-पगपर प्रश्नोंका ताँता लगने लगा। उनके समाधानके लिये मैं ग्रन्थोंका अध्ययन तथा योग्य व्यक्तियोंसे परामर्श करता, पर पूर्ण संतोष नहीं होता था। फिर भी कुछ नये प्रश्न उपस्थित हो जाते। अन्तमें इनपर स्वयं विचार करते-करते सहज-समाधान होकर चित्त शान्त हो जाता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवनमें नित्य नयी घटनाएँ होती रहती हैं, पर उनपर समुचित विचार न करनेसे चलचित्रकी भाँति वे स्मृतिसे विलीन हो जाती हैं। पर यदि हम प्रमुख घटनाओंपर विचार करनेका अभ्यास डालें तो उनके आश्चर्यजनक रहस्य जानकर बड़ा संतोष एवं शान्ति मिलेगी।

इस विश्वके रङ्गमञ्चपर अवतरित होनेके बाद मनुष्यका मस्तिष्क शनैः-शनैः विकसित होने लगा और उसमें विचारोंका उद्गम हुआ। विविध समस्याएँ उसके सामने उपस्थित हुई हैं और उसकी विचार-शक्ति भी विकसित होती चली गयी है।

मैं कौन हूँ? जगत् क्या है? मेरा इसके साथ क्या सम्बन्ध है? विश्वके प्राणियोंके साथ मेरी मित्रता क्यों? अमुक घटनाके घटित होनेका कारण क्या है? जगत्की व्यवस्था इतनी वैचित्र्यपूर्ण एवं रहस्यमयी क्यों? इत्यादि। ऐसी जिज्ञासाएँ बढ़ती जाती हैं और उनके समाधानका प्रयास ही दर्शन-शास्त्रके उद्गमका मूल है।

इन जिज्ञासाओंका केन्द्र अथवा सूत्र 'क्या' और 'क्यों'—इन दो शब्दोंमें ही निहित है। इन्हींकी भित्तिपर दर्शनशास्त्रका भव्य प्रासाद निर्मित हुआ है।

इन्हीं सब जिज्ञासाओंके मञ्चपर विचाररूपी खिलाड़ीने विविध खेल खेले हैं। एक विचारने अन्य विचारोंको आमन्त्रित किया। समस्याएँ बढ़ने लगीं, मनुष्यकी उलझनों तथा द्विविधाओंमें पड़ी बुद्धि सत्यासत्यका निर्णय करनेमें चकरायी, विरोधी विचारोंकी परस्पर टक्कर हुई। जिसने जैसी अनुभूति की, वाणीद्वारा उसे दूसरोंतक पहुँचाया। अनुभूतियाँ शास्त्रोंके रूपमें हमारे सामने आयीं। एक ही सत्य अनेक रूपोंमें भासित होने लगा और विचार-संघर्ष छिड़ा। उसे दूर करनेके लिये कई मनीषियोंने अनेकतामें एकता खोजनेका प्रयास किया। 'सौ सुजान एक मत' में विचारोंकी एकता खोजी जाने लगी, यद्यपि साधारण जनता विचार-वैविध्य देखकर घबरायी थी। विविध दर्शनों, सिद्धान्तों एवं शास्त्रोंकी उत्पत्ति एवं विकासका यह संक्षिप्त वृत्तान्त है।

जैसा कहा जा चुका है, 'क्या' और 'क्यों' से सारे विचार-जगत्की सृष्टि हुई। आप भी विचारक बनिये। छोटी-से-छोटी बातों तथा घटनाओंके कारण, परम्परा एवं रहस्यपर विचार कीजिये—'अमुक घटना क्यों हुई? मुझे अभी क्रोध क्यों आया? अमुक बुरे विचार आये तो क्यों? मैंने अमुक कार्य क्यों किया? अमुक व्यक्तिने मेरे साथ ऐसा व्यवहार क्यों किया? मैं किसी कार्यमें सफल क्यों न हो सका? विश्वमें इतनी विविधता क्यों है?' जितने भी कार्य होते हैं उनका कोई-न-कोई कारण अवश्य है। उस कारणको खोज निकालिये। इससे आपको एक नयी दिशा मिलेगी। आपको जो कुछ करना अथवा बनना है तदनुरूप साधनोंको जुटाकर आप मनचाही सफलता प्राप्त कर सकेंगे। यद्यपि विचारोंकी दुनियामें आगे बढ़ना सरल नहीं है, मार्गमें अनेक बाधाएँ उपस्थित होंगी, तथापि उनसे घबराकर रुकिये नहीं। द्विविधाओंपर विजय प्राप्तकर आगे बढ़ते चले जाइये और जबतक कार्य-कारणको भलीभाँति न जान लें अभ्यास चालू रखिये। थोड़े दिनोंमें ही आपका चित्त समाधिस्थ होने लगेगा, चित्तकी चञ्चलता तथा मनकी दुर्बलता दूर होने लगेगी। जो ज्ञान हजारों ग्रन्थोंके अध्ययनसे नहीं मिलता, वह विचारोंके अभ्याससे अनायास आप प्राप्त हो जायगा।

विचार करनेका अभ्यास करनेपर कठिन समस्याओंको सुलझानेमें सफलता मिल सकती है। विचारोंकी अनुभूति शास्त्रीय अध्ययन एवं श्रवणसे अधिक प्रामाणिक होती है। अनुभव-ज्ञानका माहात्म्य सर्वविदित है। विचार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शक्तिके विकासके लिये एकान्त एवं मौनके साथ कार्य-कारण-सम्बन्धपर मनन आवश्यक है। किसी भी विषय-को लेकर जितनी गहराईमें उतर सकें, उतरनेका प्रयत्न कीजिये। प्रत्येक बातके कई पहलू होते हैं। एक ही पहलूपर सोचनेसे उसका यथार्थ स्वरूप नहीं ज्ञात होगा। अतः जितने अधिक पहलुओंपर विचार कर सकें, कीजिये। गम्भीर बनिये, जल्दबाजी न करके धीरज रखिये। आपका मार्ग सही है या गलत, इसकी परीक्षाके लिये शास्त्रावलोकन तथा सत्पुरुषों और विचारकोंकी संगति भी लाभदायक होगी।

प्रत्येक कार्यके हानि-लाभपर विचार कीजिये। जीवनका लक्ष्य निर्धारित कीजिये। 'क्या' और 'क्यों'—ये ही विचारक बननेके गुरु या मूल मन्त्र हैं। आप भी अभ्यास कीजिये और जीवनको सफल बनाइये।

दक्षिण भारतकी तीर्थयात्रा

(लेखक—सेठ श्रीगोविन्ददासजी, श्रीमती रत्नकुमारी देवी, श्रीगोविन्दप्रसादजी श्रीवास्तव)

[गताङ्क पृष्ठ १०६९ से आगे]

मदुरासे २२ सितम्बरके मध्याह्नमें मीटर गेजकी रेल-द्वारा हमारी यात्राटोली श्रीरामेश्वरम्‌के लिये रवाना हुई। दक्षिण भारतकी तीर्थयात्रापर हम तीन सितम्बरको जबलपुरसे प्रस्थित हुए थे और अपनी यात्राके इन बीस दिनोंमें दक्षिण भारतके प्रायः सभी प्रधान तीर्थोंका दर्शन-सेवन कर चुके थे। रामेश्वरम्‌ हमारी इस धार्मिक यात्राका अन्तिम लक्ष्य था। अतः ज्यों ही आज हम रामेश्वरम्‌को रवाना हुए, अपनी मंजिलको संनिकट देख आनन्दविभोर हो उठे। मीटर गेजकी रेल मन्थरगतिसे चल रही थी और पुलकित-तन डिब्बेमें बैठे हम खिड़कियोंसे निकटवर्ती सुषमा निहार रहे थे। दूर-दूरतक फैला रेतीला मैदान देखकर अनायास ही हमें भास हुआ, हम राजस्थानके किसी क्षेत्रमें विचरण कर रहे हैं, फिर दूर-दूरतक यत्र-तत्र अनन्नासकी अगणित झाड़ियाँ हमें दिखायी दीं, जो फलोंसे लदी थीं। फलोंसे लदी पृथ्वीतक झुकी ये झाड़ियाँ ऐसी जान पड़ती थीं जैसे अपने अङ्ग-प्रत्यङ्गमें आभूषण धारण किये कोई प्रौढ़ा नारी नतमस्तक पृथ्वीको प्रणाम कर रही हो। दूर-दूरतक फैले रेतीले मैदानमें यत्र-तत्र रेतके बड़े-बड़े टीले अथवा टापुओं-के सदृश दृश्य देखते, जहाँ-तहाँ थूहर और अनन्नासकी झाड़ियोंका अवलोकन करते अब हमारी ट्रेन संध्या होते-होते समुद्रपर बने उस पुलपर चलने लगी जो श्रीरामेश्वरम्‌—द्वीपको मुख्य भूमिसे जोड़ता है। हम अपने डिब्बेमें दायें-बायें कभी इस खिड़कीसे कभी उस खिड़कीसे समुद्र-सुषमा निहारने लगे। यद्यपि अब रात्रि हो चली थी, तथापि लहराता समुद्र हमें चाँदनीके प्रकाशमें स्पष्ट दिखायी दे रहा था। पुलके निकट समुद्रतलमें पड़े शिलाखण्डोंसे टकरा-टकराकर समुद्रका पानी अनेक आकृतियोंमें अपनी अनुपम सौन्दर्य-छटा बिखेर रहा था। शिलाखण्डोंकी एक दीर्घ कतारको देख हमें भगवान् रामके उस सेतु-निर्माणकी कथा स्मरण हो आयी, जो उन्होंने लंकापर चढ़ाई करनेके लिये नल-नील आदि बंदरोंद्वारा निर्मित कराया था। नल-नील-को ऋषि-शाप था कि उनके द्वारा फेंके गये पत्थर पानीमें नहीं डूबेंगे। अतः अथाह समुद्रपर सेतु-निर्माणके लिये उस संकटकालमें नल-नीलको दिया गया वह ऋषि-शाप वरदान-का काम करेगा, यह कौन जानता था। न शाप देनेवालेको ज्ञात था न शापित नल-नीलको। उल्टे शाप देकर ऋषिने अपना कोप शान्त किया होगा और शापित नल-नीलको उस समय क्लेश हुआ होगा। अनिष्ट-सूचक और अशुभ बातें भी कालान्तरमें कितनी इष्ट और कल्याणकारी बन जाती हैं, यदि हम यह अनुभव करें तो हमारे व्यक्तिगत, पारिवारिक और सामाजिक जीवनमें समय-असमयपर होनेवाले क्लेश हमें अधिक कष्टकारक प्रतीत न हों—यही नहीं, हम जीवनके कठिन क्षणोंमें इन अनुभवोंके आधारपर भयकातर और कर्तव्यच्युत होनेसे भी बच जायँ। यदि हम गौर करें तो ऐसी अनेक घटनाएँ आये दिनों हमारे दैनिक जीवनमें घटित होती ही रहती हैं, जिनका निकट परिणाम हमें कष्टकर प्रतीत होता है; किंतु दूर-दृष्टिसे वे हमारे कल्याणका हेतु बन जाती हैं।

लगभग एक मीलसे भी लंबे पुलको पार करते समय हमारे मस्तिष्कमें अनेक बातें उत्पन्न हुईं। त्रेतायुगमें जब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैज्ञानिक साधनोंके अभावमें क्रेन आदिके सदृश इस प्रकार-के कोई आधुनिक यन्त्रादिक निर्मित नहीं थे कि समुद्रको भी बाँधा जा सके, उस कालमें भी दुर्भेद्य लक्ष्य और अनहोनी बातों एवं कार्योंको सुसाध्य एवं सुगम बनाया गया है। यह भगवान् राम द्वारा समुद्रपर सेतु-रचना इस बातका ज्वलंत प्रतीक है। वह भी किसी जादू अथवा किसी अलौकिक एवं अव्यावहारिक अथवा अदृश्य प्रयत्नसे नहीं, अपितु अपने पराक्रम, पुरुषार्थ और अपनी अपराजेय शक्तिके द्वारा। फिर आज तो वैज्ञानिक प्रगतिके इस युगमें, जिसमें समुद्रपर बाँध या पुल बनानेकी बात भी नहीं रह गयी है, अपितु अन्तरिक्षकी यात्राएँ होने लगी हैं और इन यात्राओंसे सिद्ध हो चुका है कि चन्द्रलोक, सूर्यलोक आदि अन्य ग्रह-नक्षत्रोंके जिन लोकोंकी कल्पना ही नहीं, जिनका वर्णन हमारे धर्म-ग्रन्थोंमें किया गया है और जिनकी यात्राएँ हमारे पूर्व पुरुष कर चुके हैं, समयकी इस दीर्घ दूरीके बाद आज अगम्य होते हुए भी हमारे लिये कोई नयी बात नहीं है। विज्ञान—आज जिसके आधारपर पश्चिमी और यूरोपीय देश तरक्की कर रहे हैं, अन्तरिक्षकी उड़ानें भर रहे हैं तथा अन्यान्य अनेक आश्चर्यजनक आविष्कारोंके द्वारा मानव-जगत्में कौतूहल मचा रहे हैं—आखिर वह ज्ञान ही तो है, जिसे हमारे पूर्वपुरुषों, तपस्वियों, ऋषि और मुनियोंने युगों पूर्व प्राप्त किया था। इन्द्रलोक, चन्द्रलोक, सूर्य-लोक, नागलोक आदिकी यात्राएँ, ब्रह्मास्त्र, आग्नेयास्त्र, वारुणास्त्र, चक्र-सुदर्शन, शब्दवेधी बाण, पुष्पक विमान और भगवान्के गरुड़ और हंस आदि वाहन—जिनका आधुनिक रूप वायुयान और अणु-आयुधोंने ले लिया है, हजारों वर्ष पूर्व हमारे धर्मग्रन्थोंमें वर्णित वाहनों और अस्त्र-आयुधोंका परिवर्तित रूप नहीं तो और क्या हैं। इस प्रकार अतीत कालमें ज्ञानकी जो ज्योति हमारे पूर्वपुरुषोंने अपनी तपःसिद्धि और पुरुषार्थसे प्राप्त की थी, कालान्तरमें हमारे आलस्य, प्रमाद और अज्ञानसे विलुप्त हो गयी और समय पाकर ज्ञानकी इस शिखासे दूसरोंने प्रकाश ग्रहणकर पराक्रम और प्रगतिके इस सोपानपर हमारे देखते-देखते अपने कदम बढ़ा दिये। भारतके अतीतके ज्ञानालोकका चिन्तन करते-करते जब हमने अपने नीचे पुलके निकट पड़े पाषाण-खण्डोंको देखा, जान पड़ा, दूर-दूरतक बिखरी पानीमें पड़ी तैरती-सी ये पाषाण-शिलाएँ आजके इस वैज्ञानिक युग-में भी नल-नीलके उसी प्रयत्न, पुरुषार्थ और अपराजेय शक्तिके साक्षी रूपमें हमें भारतके पुरातन युगकी याद दिला रही हैं। इस अवसरपर हमें इस बातने भी कम गौरवान्वित नहीं किया कि कथाओंमें वर्णित भगवान् रामके अनुचरों द्वारा समुद्रपर सेतुनिर्माण किसी समय दुनियाके लिये अतीतकी एक अलौकिक, अद्भुत और असमंजस और अपरिमित सामर्थ्य भरी बात थी, पर आज हम प्रत्यक्ष देख रहे थे कि आदि मानवसे आजके मानवने कितनी तरक्की की है। कितना पराक्रम और पुरुषार्थ है उसमें। एक ओर बेग बहावहीन अगम सिन्धु पर वह पुल निर्माण करता है तो दूसरी ओर बेग-बहावपूर्ण तेज धारवाली तूफानी सरिताओंको भी बाँध-समेट मानवहितके लिये उनसे नहरें निकाल उन्हें प्रवाह-विमुख भी कर देता है। आजके वैज्ञानिक मानवके मस्तिष्कमें कितना ओज, कितनी बुद्धि और विवेक है तथा आजके श्रमिकमें शौर्य, सामर्थ्य और उसकी भुजाओंमें पौरुष है, यह समुद्रपर पड़े इस दीर्घाकार पुलको देखते ही सिद्ध हो जाता है। बुद्धिकी इस सृजनात्मक शक्तिका सदुपयोग यदि आजका मानव हर दिशामें कर सके तो अपने पारिवारिक, सामाजिक जीवनके खाई-खंदकोंको ही क्या पूर्व-पश्चिमके विशाल सिन्धुतटोंको समेटनेकी उसमें सामर्थ्य है, इसमें संदेह नहीं।

उस कालमें भगवान् रामके लङ्कागमनके लिये सेतु-रचना कर सहायक हुए थे नल-नील तो आज उन अनजाने अगणित श्रमिकों, इंजीनियरों और वैज्ञानिकोंके शरीर और मस्तिष्क-श्रमने हमें पार लगाया। इस विचारके साथ ही श्रद्धाभावसे नत-मस्तक उन सभीके प्रति जिनका समुद्रपर पड़े वर्तमान सेतु-निर्माणमें योग रहा, हमने प्रणाम किया।

लगभग आठ बजे हमारी गाड़ी रामेश्वरम् स्टेशनके प्लेटफार्मसे जा लगी। बड़े आनन्द और उत्साहभरे मनसे गंगोत्तरीका गङ्गाजलपात्र सभीने अपने-अपने हाथोंमें सम्हाले श्रीरामेश्वरम्की भूमिको प्रणाम करके ज्यों ही कुछ कदम आगे बढ़ाये, मरी हुई मछलियोंकी दुर्गन्धसे सबका मन एकदम क्षुब्ध हो गया। भारतीय मनीषियोंने हजारों वर्ष पूर्व एक ऐसे दार्शनिक सत्यकी खोज की थी, जिसे आजके बड़े-से-बड़े वैज्ञानिक भी असत्य सिद्ध नहीं कर सके और उन्होंने भी इस तथ्यको सम्पूर्णरूपसे सत्य स्वीकार किया। यह सत्य है कि यह सृष्टि मूलरूपसे एक ही तत्त्व है—जो मैं हूँ, वही तुम और जो मैं और तुम हो, वही समस्त सृष्टि। अतः भारतीय संस्कृतिका मूल आधार सदा ही 'अहिंसा' रहा है। इसलिये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस देशमें जितने निरामिषभोजी हैं, उतने संसारमें अन्यत्र कहीं नहीं। आजकी भारतीय सरकार जिस प्रकार मछली-मुर्गी-अंडे आदिका भोजनके रूपमें प्रचार कर रही है, उससे अनेक बार मन क्षुब्ध हो उठता है। रामेश्वरम्‌के सदृश तीर्थ-स्थलोंपर मछली मारने और मरी हुई मछलियोंके इस प्रकारके संग्रहको, जिससे कि इस पवित्र स्थलका सारा वातावरण ही इन मछलियोंकी सँड़ाँद और दुर्गन्धसे विषाक्त हो जाय, हम सरकारका अक्षम्य अपराध मानते हैं। हमारी सरकार एक धर्मनिरपेक्ष सरकार है, इसका अर्थ यह तो नहीं कि वह जनभावनाओंका ध्यान न रखे और उनकी धार्मिक मान्यताओं, धार्मिक रुचि और विश्वासोंके विपरीत किसी ऐसे स्थानपर, जहाँ उसकी भावनाके भगवान् बसते हों, विषैला वातावरण पैदा करे। सरकारका यह कृत्य न केवल उसकी उपेक्षावृत्तिका परिचायक कहा जायगा वरं यज्ञ और पूजाके स्थानपर पाप और पाखण्डको प्रोत्साहन देनेवाला पुराणकालके ऋषि-मुनियोंके यज्ञ-तपभङ्गके सदृश एक दानवीय कृत्य माना जायगा। यदि ऐसा नहीं है तो हमारी अपेक्षा है कि सरकार इस सम्बन्धमें तत्काल कदम उठाये और रामेश्वरम् स्टेशनमें न केवल मछलियोंके इस प्रकारके संग्रहको बंद करे वरं इस पुण्यक्षेत्रमें मछली मारना भी अवैध घोषित कर दे।

श्रीरामेश्वरम्‌के पंडा हमारे साथ मदुरासे ही आये थे। अतः उनके साथ हमने घोड़ा-ताँगोंद्वारा श्रीरामेश्वरम्‌में—

प्रबिसि नगर कीजै सब काजा। हृदय राखि कोसलपुर राजा॥

—चौपाई-स्मरणके साथ प्रवेश किया। मन्दिर-कमेटीके विश्रामालयमें पहुँचनेके पूर्व मार्गमें ही भगवान् रामेश्वरम्‌के मन्दिरके मुख्य द्वारपर माथा टेक दण्डवत् प्रणाम करके चूँकि मन्दिरके पट बंद हो चुके थे, हम अपने मुकाम, स्थानपर पहुँचे। यह स्थान, जहाँ हम ठहराये गये, मन्दिरके निकट ही आधुनिक सुविधाओंसे परिपूर्ण एक सुन्दर स्थान था। संध्या-पूजन करके हमलोगोंने कुछ जलपान किया और कलके लिये अपना कार्यक्रम पंडाजीके परामर्शसे निश्चितकर प्रभु-दर्शनकी लौ ले सुखपूर्वक भगवान्‌का ध्यान करके शिवके अतिथि बने शिवनिकेतनमें सो गये।

दिनाङ्क २३ सितम्बरके प्रातःकाल नित्य-नेमसे निवृत्त हो हम सबने असीम श्रद्धा, भक्ति और आह्लाद भरे मनसे भगवान् रामेश्वरम्‌के दर्शनार्थ मन्दिरमें प्रवेश किया।

भारतवर्ष तीर्थोंका देश है, इसकी सीमाएँ तीर्थोंकी सीमाएँ हैं, इसमें अनन्त तीर्थ हैं, फिर भी कोटि-कोटि भारतीयोंका ध्यान अपनी ओर खींचनेवाले जो तीर्थ हैं, उनमें श्रीरामेश्वरम् एक है। हमारे धर्मप्राण देशकी चारों दिशाएँ इन पवित्र तीर्थोंसे संरक्षित हैं। उत्तरमें श्रीबदरीनाथ, पूर्वमें श्रीजगन्नाथपुरी, पश्चिममें द्वारिका और दक्षिणमें श्रीरामेश्वरम्—ये चारों धाम अपनी धर्मध्वजाओंसे देशकी सीमाओंको सयोजित किये हैं। हर धर्मप्रिय भारतीयके मनमें अपने पारिवारिक दायित्व-निर्वाहके साथ इन तीर्थोंके दर्शन करके जीवन सफल करनेकी एक लालसा रहती है। उसकी यह लालसा उसे अपनी संस्कृतिसे, अपने पैतृक संस्कारोंमें मिलती है और ज्यों-ज्यों वह अपने पारिवारिक कर्त्तव्योंसे निवृत्तिकी ओर बढ़ता है, उसकी यह लालसा एक पैतृक कर्त्तव्य बन उसके सामने आ जाती है तथा यदि जीवनके चौथेपनमें उसकी यह लालसा देशके इन चारों धामोंकी यात्रा-दर्शनसे पूरी हो जाती है तो वह अपनेको सफल बना सका, वह जीवन्मुक्त हो गया—ऐसा मानता है।

हमने गत वर्ष इन्हीं भावनाओंसे उत्तराखण्डके यमुनोत्तरी, गङ्गोत्तरी, केदारनाथ और बदरीनाथकी यात्रा की थी और अभी दक्षिणके अन्य देवस्थानोंके साथ श्रीरामेश्वरम् भी अपनी इसी भावनासे आये।

भारतके धार्मिक जीवनमें गोस्वामी तुलसीदासजीने रामचरितमानसकी रचना करके एक महान् क्रान्ति की है। भारतका प्रत्येक सद्‌गृहस्थ रामायणकी कथाओंसे परिचित ही नहीं, इसका नित्य पाठ करके सुख और शान्तिका अनुभव करता है। हमने अपनी 'उत्तराखण्ड-यात्रा' पुस्तकमें तीर्थोंकी स्थापना और उनके माहात्म्यके सम्बन्धमें कुछ चर्चा की है। कहा गया है—विशिष्ट पुरुषों, साधु-संतों, ऋषि-मुनियों और अवतारोंद्वारा सेवित स्थल तत्काल पुण्यप्रद तीर्थ बन जाते हैं। श्रीरामेश्वरम्‌की स्थापनाके इतिहास और उसके माहात्म्यके सम्बन्धमें सविस्तर वर्णन आया है। माहात्म्यके सम्बन्धमें भगवान् राम स्वयं कहते हैं—

जे रामेस्वर दरसनु करिहहिं। ते तनु तजि मम लोक सिधरिहहिं॥
जो गंगा जलु आनि चढ़ाइहि। सो साजुज्य मुक्ति नर पाइहि॥

यद्यपि रामेश्वरका नामकरण भगवान् शिवके नामपर हुआ है, तथापि शिवलिङ्ग भगवान् श्रीरामके द्वारा स्थापित होनेके कारण 'रामेश्वर' नाम पड़ा। इसके नामकरणसे ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्पष्ट है—राम-ईश्वर यानी रामके देवता । उन्होंने अपनी शिव-भक्तिके प्रमाणमें एक जगह कहा भी है—

सिवद्रोही मम भगत कहावा । सो नर सपनेहुँ मोहि न पावा ॥

तथा—

संकर बिमुख भगति चह मोरी । सो नारकी मूढ़ मति थोरी ॥

इतना ही नहीं, वे आगे कहते हैं—

संकर प्रिय मम द्रोही सिव द्रोही मम दास ।
ते नर करहिं कलप भरि घोर नरक महुँ बास ॥

तथा—

होइ अकाम जो छल तजि सेइहि ।
भगति मोरि तेहि संकर देइहि ॥

मम कृत सेतु जो दरसनु करिही । सो बिनु श्रम भवसागर तरिही ॥

तुलसीदासजी अपनी ओरसे कहते हैं—

सिव पद कमल जिन्हहि रति नाहीं । रामहि ते सपनेहुँ न सुहाहीं ॥
बिनु छल बिस्वनाथ पद नेहू । राम भगत कर लच्छन एहू ॥

यही नहीं, याज्ञवल्क्य-भरद्वाज-संवादमें गोस्वामी तुलसीदासजी रामनामकी महिमा और रामभक्तिपर शिवजीके नेहको व्यक्त करते हैं—

मंगल भवन अमंगल हारी । उमा सहित जेहि जपत पुरारी ॥

तथा—

महामंत्र जेहि जपत महेसू । कासीं मुकुति हेतु उपदेसू ॥
महिमा जासु जान गनराऊ । प्रथम पूजिअत नाम प्रभाऊ ॥

और—

रामनाम कर अमित प्रभावा । संत पुरान उपनिषद गावा ॥

तथा—

संतत जपत संभु अबिनासी । सिव भगवान ग्यान गुन रासी ॥
आकर चारि जीव जग अहहीं । कासीं मरत परम पद लहहीं ॥

इतना ही नहीं—

सोपि राम महिमा मुनिराया । सिव उपदेसु करत करि दाया ॥

इस प्रकार निशि-वासर निरन्तर अपने इष्ट रामका जप करते हुए शिवजी काशीमें मरनेवाले जीवको भी परमपदकी प्राप्तिके लिये रामनामका ही उपदेश करते हैं । एक ओर राम लङ्का-विजयके पूर्व सेतु-रचनाके साथ शिव-लिङ्गकी स्थापना करके भगवान् शंकरका पूजन करते हैं और अपने उपर्युक्त कथनोंद्वारा शंकरके प्रति अपने प्रेमकी पुष्टि, तो दूसरी ओर भगवान् शंकर उन्हें अपना इष्ट मान मोक्ष-प्राप्तिके लिये भगवान् रामके नाम-जपका—उनकी आराधना-पूजाका अपने भक्तोंको उपदेश देते हैं । तुलसीदासजीके शिवजी रामके सेवक हैं, सखा हैं और स्वामी हैं। परस्परका कितना सुन्दर सम्बन्ध है—'सेवक स्वामि सखा सिय पीके' इस प्रकार शिव और रामका तथा राम और शिवका परस्परके प्रति प्रेम, आदर और भक्ति-भाव एक ओर तुलसीदासजीकी समन्वय-वृत्तिका पोषक है तो दूसरी ओर हमारी धार्मिक सहिष्णुता और भारतीय संस्कृतिका सारतत्त्व भी इसमें निहित है । वैष्णवों और शैवों, सगुण और निर्गुण मतावलम्बियोंको एक समान दृष्टिकोणके रूपमें भगवान् रामके द्वारा शिवकी और भगवान् शंकरके द्वारा रामकी पूजा, उपासना और आराधनाका उपदेश करके तुलसीदासजीने न केवल अपनी भाव-भक्तिकी पुष्टि की है वरं भारतकी पुरातन समन्वयात्मक संस्कृतिकी जो सेवा की है, उसका मूल्याङ्कन और उसकी संस्तुति आधुनिक कौन कवि और भक्त कर सकता है । जैसा कि हमारे यहाँ कहा गया है—

सूर सूर तुलसी ससी, उडगन केसौदास ।
अब के कवि खद्योत सम जहँ तहँ करत प्रकास ॥

इस प्रसङ्गमें अनेक बार लोग सूरदास और तुलसीदासजीको तुलनात्मक कसौटीपर कसनेका प्रयत्न करते हुए तुलसीदासजीकी निष्ठामें सूरदासकी अपेक्षा कमी होनेका उल्लेख करते हुए यह आरोपित करते देखे गये हैं कि जब कि सूरदासजीका समस्त साहित्य उनके एक ही इष्ट भगवान् श्रीकृष्णकी भाव-भक्तिसे भरा है तो तुलसीदासजी अपने इष्ट राम और सीताके साथ भगवान् शंकर, जगदम्बा-पार्वती, गणेशजी आदिकी वन्दना, स्तुति और भक्तिमें अनेक स्थलोंपर बह गये हैं । यह इष्ट-निष्ठाकी दृष्टिसे सूरदासकी अपेक्षा तुलसीदासजीके साहित्यमें एक कमी है ।

ऐसे लोगोंके इस मतसे न केवल हमारा विरोध ही है, वरं उनसे हमारा एक विनम्र निवेदन भी है । वह यह कि तुलसीदासजी एक कवि थे—यही नहीं, इससे कहीं अधिक भक्त थे । और उनकी भक्तिका जो सबसे बड़ा आधार था, अपने इष्टका जो साकार रूप उन्होंने स्वीकार किया था, उसे अपने ही शब्दोंमें वे कहते हैं—

जड़ चेतन जग जीव जत सकल राम मय जानि ।
बंदउँ सब के पद कमल सदा जोरि जुग पानि ॥

इतना ही नहीं—वे अपने इष्टके विशाल और व्यापक रूपकी व्याख्या करते हुए उसकी वन्दना करते हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देव दनुज नर नाग खग प्रेत पितर गंधर्ब।
बंदउँ किंनर रजनिचर कृपा करहु अब सर्ब॥

आकर चारि लाख चौरासी। जाति जीव जल थल नभ बासी॥
सीय राम मय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥

इस दृष्टिसे अपने इष्ट और इष्टके अनन्त रूपकी—जिनमें शिव-पार्वती, गणेशजी, ब्रह्मा, सरस्वती भी सम्मिलित हैं—वन्दना जो उन्होंने की है, वह उनके काव्यका और कवि तथा भक्त-हृदयका स्वाभाविक गुण-धर्म होना चाहिये। तुलसीदासजीने अपने रामकी इस उपासना-आराधनामें केवल ब्रह्मा-विष्णु-महेश और अन्य देवी-देवताओंकी वन्दना की हो, यही बात नहीं; उन्होंने तो—

जड़ चेतन गुन दोष मय बिस्व कीन्ह करतार।
संत हंस गुन गहहिं पय परिहरि बारि बिकार॥

—के अपने मतानुसार उन्होंने एक ओर संतोंकी निम्न वन्दना की है—

बंदउँ संत समान चित हित अनहित नहिं कोइ।
अंजलि गत सुभ सुमन जिमि सम सुगंध कर दोइ॥

तो दूसरी ओर—

बहुरि बंदि खल गन सतिभाएँ। जे बिनु काज दाहिनेहु बाएँ॥
परहित हानि लाभ जिन्ह केरे। उजरें हरष बिषाद बसेरे॥
हरिहर जस राकेस राहु से। पर अकाज भट सहसबाहु से॥
जे पर दोष लखहिं सहसाखी। पर हित घृत जिन्ह के मन माखी॥
तेज कृसानु रोष महिषेसा। अघ अवगुन धन धनी धनेसा॥
उदय केत सम हित सब ही के। कुंभकरन सम सोवत नीके॥
पर अकाजु लगि तनु परिहरहीं। जिमि हिम उपल कृषी दलि गरहीं॥
बंदउँ खल जस सेष सरोषा। सहस बदन बरनइ पर दोषा॥

—वे ऐसे दुष्टोंकी वंन्दनासे भी नहीं चूके हैं और उनकी सज्जन-असज्जन, संत-असंतकी इस वन्दनामें उनका जो दृष्टिकोण है, वह भी उन्होंने स्पष्ट कर दिया है। वे इस सम्बन्धमें आगे कहते हैं—

भलेउ पोच सब बिधि उपजाए। गनि गुन दोष बेद बिलगाए॥
कहहिं बेद इतिहास पुराना। बिधि प्रपंचु गुन अवगुन साना॥

तथा—

दुख सुख पाप पुन्य दिन राती। साधु असाधु सुजाति कुजाती॥
दानव देव ऊँच अरु नीचू। अमिअ सुजीवन माहुरु मीचू॥
माया ब्रह्म जीव जगदीसा। लच्छि अलच्छि रंक अवनीसा॥
कासी मग सुरसरि क्रमनासा। मरु मारव महिदेव गवासा॥
सरग नरक अनुराग बिरागा। निगमागम गुन दोष बिभागा॥

इस प्रकार अभेद दृष्टिसे उन्होंने विश्वरूप भगवान्‌की वन्दना की है और इस वन्दनामें भी उन्होंने अपने रामकी भक्ति और उनका प्रेम माँगा है। जैसा कि उनके संतहृदय-द्वारा संतोंकी वन्दनामें व्यक्त है—

संत सरल चित जगत हित जानि सुभाउ सनेहु।
बाल बिनय सुनि करि कृपा राम चरन रति देहु॥

इसी प्रकार जिन लोगोंका यह मत है कि सूरदासजीने अपने साहित्य द्वारा केवल अपने इष्ट भगवान् श्रीकृष्णकी उपासना की है, वे यह भूल जाते हैं कि इष्ट एक होते हुए भी उन्होंने राधा, बलराम और महाप्रभु वल्लभाचार्यकी स्तुतिमें पद्य रचकर अपनी भाव-भक्ति प्रकट की है। उदाहरणके लिये महाप्रभु वल्लभाचार्यके भौतिक अवसानके अवसरपर सूरदासजी-द्वारा रचित निम्न पद्य महाप्रभु वल्लभाचार्यके प्रति उनकी श्रद्धा और भक्तिको प्रकट करता है। वे कहते हैं—

भरोसो दृढ़ इन चरनन केरो।
श्री बल्लभ नख चंद्र छटा बिनु सब जग माझ अँधेरो॥
साधन और नहीं या कलि में, जासों होय निबेरो।
सूर कहा कहै दुबिधि आँधरो बिना मोल को चेरो॥ भरोसो०

इस प्रकार हम देखते हैं जहाँतक तुलसीदासजी अथवा सूरदासजीकी इष्ट-उपासनाका प्रश्न है, वह अपने एकमात्र आराध्य राम अथवा कृष्णतक सीमित नहीं रही और न भक्तिके किसी संकीर्ण दायरेकी कैदमें वह कभी बँधी। हाँ, अन्तरात्मासे दोनोंने अपने समकालीन अपना इष्ट चुना और उसकी निष्ठामें आकण्ठ डूबे रहे। जहाँतक इष्टनिष्ठाका प्रश्न है, तुलसीदासजीको एक बार जब उनके इष्टके दर्शन श्रीकृष्ण-रूपमें होते हैं तो उनका निष्ठावान् भक्त हृदय कह उठता है—

तुलसी मस्तक तब नवै, धनुष बाण लो हाथ।

और—

कित मुरली कित चंद्रिका कित गोपिन को साथ।
अपने जन के कारने नाथ भए रघुनाथ॥

भगवान् श्रीकृष्णको अपने भक्तकी भावनाके अनुरूप धनुष-बाण धारण करना पड़ता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि तुलसीदासजीके साहित्यमें निष्ठाकी न्यूनता न होकर भक्तिकी ऐसी सरिता बही है, जिसने अपनी शीतलता और प्रवाहसे न केवल अपने इष्ट अभीष्ट भगवान् रामका वन्दन-अभिनन्दन किया है, वरं 'हरि अनंत हरि कथा अनंता' के मतानुसार भगवान्‌के विविध रूपोंका यशोगान किया है। और इस दृष्टिसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्तहृदयके साथ कवि, कलाकार अथवा साहित्यकारकी दृष्टिमें, जो स्रष्टाकी दृष्टि होती है, जितनी व्यापकता और विस्तार होना चाहिये, उसके अनुसार सूरदासकी अपेक्षा तुलसीदासजीने भक्तिके सागरमें अधिक गहरा गोता लगाया जान पड़ता है, जो उनकी विविध देवोंकी समन्वयात्मक दृष्टि-कोणवाली मोतियोंकी मालाके रूपमें हमें आज प्राप्त है। फिर जैसा कि 'सूर सूर तुलसी ससी'की उपमासे उन्हें विभूषित किया गया है, उससे स्पष्ट है और उनके सारे साहित्यसे भी कि वे 'संत सरल चित जगत हित' के मूर्तिमान् रूप थे। उनका व्यक्तित्व, उनकी वाणी और उनका साहित्य सरलता, शील, सदाचार, संवेदना और सहिष्णुता आदि उन सद्गुणोंका प्रतिनिधि था, जिसकी प्रतिध्वनि और प्रतिछवि हम पुरातन कालसे भारतीय संस्कृतिमें देखते आये हैं।

फिर तुलसीदासजीकी साधना किसी ऐसे मूक साधककी साधना नहीं थी, जो अपनी तपस्या, भक्ति अथवा साधनाके द्वारा केवल अपने इष्टका ही साक्षात्कार करके मोक्ष प्राप्त करना चाहता हो। वे तो अपनी साधनाके द्वारा दूसरोंको, भारतके कोटि-कोटि जनोंको भगवत्-साक्षात्कार कराना चाहते थे, अपनी अन्तर्दृष्टिके द्वारा उन्हें दृष्टि प्रदान करना चाहते थे, विषमतामें समताका, विभेदमें अभेदका और विभिन्नतामें एकताका पाठ पढ़ाना चाहते थे। भारत विभिन्न धर्मोंवाला, विभिन्न भाषा, विभिन्न रीति-रिवाजों और विभिन्न जातियोंके लोगोंका एक विशाल देश है। इस विभिन्नतामें एकता जो हमारी संस्कृतिका मूलरूप है, बनी रहे—यही उनका प्रयत्न था। अतः उन्होंने विभिन्न देवोंके विभिन्न रूपोंकी एकरूपता और एकता प्रतिपादित करते हुए सगुण और निर्गुण मतावलम्बियों और उपासकोंको उपदेश करते हुए कहा है—

सगुनहि अगुनहि नहिं कछु भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा॥
अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेम बस सगुन सो होई॥

इस प्रकार सगुण और निर्गुणकी एकरूपता और अभिन्नतामें तुलसीदासजीका बहुदेववादमें एक ही तत्त्वकी व्यापकताका प्रतिपादन है। (क्रमशः)

औषध, इन्जेक्शन और स्वास्थ्य

(लेखक—डा० श्रीरविकिशोरजी नशीने)

जब भी आपकी तबीयत बिगड़ती है, तब क्या आप औषध प्राप्त करनेके लिये आकुल हो उठते हैं? आपकी तबीयत कहीं एकाएक बिगड़कर गम्भीर न हो जाय, इसलिये औषध हमेशा साथमें रखा करते हैं या फौरन पासके डाक्टर, वैद्यराज, होम्योपैथ अथवा बायोकैमिकके पास चल पड़ते हैं या उनमेंसे किसीको बुलवा लेते हैं। इसका अर्थ यह है कि आप यह समझते हैं कि आप औषधसे ही नीरोग हो सकते हैं। आप अपने चिकित्सकसे कहते हैं कि अच्छी-से-अच्छी और ऊँची कीमतवाली औषधका उपयोग करके वे आपको शीघ्र ही नीरोग कर दें। तब भी यदि जल्दी नीरोग होनेके लक्षण नजर नहीं आते तब आप अपने चिकित्सकसे पुनः कहते हैं—,क्या इससे अधिक मूल्यवान् दवा उपलब्ध नहीं हो सकती?' इसका आशय यह हुआ कि आप चाहते हैं कि नित्य नयी और अच्छी-से-अच्छी और ऊँची-से-ऊँची औषधें तथा इन्जेक्शन्स निर्मित हों। किंतु आप स्वास्थ बनानेकी ओर कतई ध्यान नहीं देते। औषध बनानेपर आप जोर देते हैं; परंतु स्वास्थ्यके नियमोंकी ओर आपका ध्यान ही नहीं जाता, मानो स्वास्थ्य इन्जेक्शन या औषधके रूपमें शीशीमें बंद है अथवा फार्मेसी या डाक्टरके नुस्खेमें मिल सकता है।

न्यूनतम औषध ही स्वास्थ्य है

अधिक-से-अधिक औषधें अधिक-से-अधिक स्वास्थ्य प्रदान करती हैं, ऐसा कदापि नहीं कहा जा सकता। हाँ, कम-से-कम और न्यूनतम औषध ही स्वास्थ्यकारी हो सकती है। इसलिये सर्वोत्तम स्वास्थ्य बनाइये; क्योंकि तन्दुरुस्ती हजार न्यामत है।

मन और शरीररूपी लेबोरेटरी

आप स्वयं अपना स्वास्थ्य अपने स्वयंकी प्रयोगशालामें बना सकते हैं और फिर वह कोई भी क्यों न हो, वह स्वयं ऐसा कर सकता है। इस प्रकार स्वास्थ्य बनानेमें न तो कोई पूँजी ही लगती है और न कुछ खर्च ही होता है। मैं एक कटु सत्य कह रहा हूँ—वह कटु सत्य, जो 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' 'सत्यमेव जयते' आदिमें संनिहित है। जगत्में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्य ही ईश्वर है । सदा ही सत्यके आधारपर धर्मकी स्थिति रहती है । सत्यके कारण वायु चलायमान है, सत्यके ही कारण सूर्य आकाशमें चमकता है और चन्द्रमा शीतलता देता है । सत्यके ही कारण "शब्द"की उत्पत्ति हुई है । सत्य ही सबके मूलमें है । सत्य ही सबसे श्रेष्ठ है । सत्यसे बढ़कर दूसरी कोई भी उत्तम गति नहीं है । अतएव सत्य ही सबका केन्द्र है और सत्य यह है कि स्वास्थ्य, तन्दुरुस्ती आदि आपके 'मन और शरीररूपी लेबोरेटरी'में बनाये भी जा सकते हैं ।

भावना और संस्कार

स्वास्थ्य बनानेके पहले आपके लिये सर्वप्रथम अपनी वृत्ति एवं अपने संस्कारोंको जानना आवश्यक है । जिस कर्मसे समाजकी शोभा बढ़ती है और समुदाय बनता है, वही संस्कार है । संस्कारके तीन भेद हैं—कायिक, वाचिक और मानसिक । इन सबमें मानसिक संस्कार प्रधान है । इसीका दूसरा नाम 'भावना' है । मनमें जो भी विचार आते हैं या भावनाएँ उत्पन्न होती हैं, वे भी दो प्रकारके होते हैं—सत्य और असत्य ।

सत्यकी भावना बराबर एक ही रहती है, परंतु असत्यकी भावना एक-सी न रहकर अभ्यासके कारण दृढ़ताकी ओर अग्रसर होती चली जाती है । सत्यकी भावना प्राकृतिक है । असत्यकी भावना अप्राकृतिक होकर विभिन्न चित्त-वृत्तियोंमें विभाजित हो जाती है । इसके पाँच भेद हैं । अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश अर्थात् मृत्युभय । ये सभी झूठे हैं और कष्टदायक हैं ।

सुसंस्कारके धरातलपर जब सत्यकी भावना अथवा विचार प्रबल रूप धारण करते हैं, तब मन विशुद्ध हो जाता है । उसके द्वारा किया हुआ कार्य यथार्थ-सा बन जाता है । यदि व्यक्तिविशेषमें अच्छे संस्कार हैं तो वह अपने समाजको उज्ज्वल कर सकेगा । यही सत्य भावना और विचार-संस्कार कहे जाते हैं ।

कुसंस्कार तब उत्पन्न होते हैं, जब असत्यकी भावना अभ्यासके कारण दृढ़ हो जाती है । उसे दूर करनेके हेतु हमें केवल वैसे ही कृत्य करने चाहिये, जो असत्य भावनाके विरोधी हों; क्योंकि प्रकृतिमें कारण और कार्यका नियम सब क्षेत्रोंमें व्याप्त है । प्रत्येक कारणका परिणाम कोई-न-कोई अवश्य होगा । विज्ञानका नियम है कि क्रिया और उसकी प्रतिक्रिया दोनों समान बलशाली रहती हैं; किंतु दिशा विपरीत होती है । यह नियम सत्य है और लोगोंमें समान रूपसे विद्यमान है । असत्य भावनाओंका विरोधी सत्यस्वरूप-परमात्माका 'ध्यान' है । परमात्माके ध्यानसे असत्य या झूठके संस्कार नष्ट होते हैं । हमारे चरित्रमें जो दोष हों, बुराइयाँ हों अथवा त्रुटियाँ हों, उन्हें समझकर शीघ्रातिशीघ्र त्यागनेकी चेष्टा करनी चाहिये । उन्हें जीत लेनेका सतत उपक्रम होना आवश्यक है । असत्यकी आदत मिटानेके लिये हमें वाणी तथा व्यवहारमें सदा सत्यका अभ्यास करना चाहिये और हिंसात्मक भावको मिटानेके लिये तन-मन-वचनसे निरन्तर अहिंसाका मनन और पालन करना उचित है ।

इस प्रकार सद्गुणोंके आश्रयसे दुर्गुणोंको दूर करनेका प्रयत्न सतत करना चाहिये । यह तभी हो सकता है, जब इसके लिये निरन्तर सचेष्ट रहा जाय । जो भावना तथा कर्म ईश्वरके अधिक समीप ले जायँ, वे ही पुण्य हैं और जो उससे दूर यानी विमुख करा दें, वे ही पाप हैं ।

आस्तिक वर्गके संस्कार

ईश्वरको माननेवाला मनुष्य ईश्वरके भयसे पाप नहीं करता और उसपर निर्भर हो जाता है, जिससे उसके हृदयमें निर्भयता, धीरता और गम्भीरता आदि अनेकों सद्गुण स्वयं ही आ जाते हैं । ईश्वरके चिन्तनसे अनायास ही सारे दुर्गुण, दुराचार और पापोंका नाश होकर उसके हृदयमें सद्गुण, सदाचार आ जाते हैं । परम शान्ति और परम आनन्दकी प्राप्ति होकर अन्तमें उसे उत्तम-से-उत्तम गति मिलती है । ये ही संस्कार आस्तिक कहे जाते हैं ।

नास्तिक वर्गके संस्कार

ईश्वरको न माननेवालेके हृदयमें दुर्गुण, दुराचार, पाप आदि घर कर लेते हैं । उसे किसी परिणामका भय नहीं रह जाता, फिर वह पापकी ओर सहज ही प्रवृत्त क्यों न हो ? वह पापकार्यके हेतु कटिबद्ध हो जाता है और अन्तमें उसे उन पापोंके फलस्वरूप दुःखकी प्राप्ति अवश्य होती है, जिसके कारण उसे चिन्ता, शोक, संताप, भय आदि सताते रहते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं और जब वह मृत्युको प्राप्त होता है, तब उसे दुर्गति मिलती है।

आयुर्वेदके प्रकाण्ड पण्डित चरकका दृष्टिकोण है—कि रोगोंका आश्रय मन और शरीर है।

> **शरीरं सत्त्वसंज्ञं च व्याधीनामाश्रयो मतः।**
> **तथा सुखानां योगस्तु सुखानां कारणं समः॥**

अर्थात् शरीर और मन—ये दोनों ही रोगके आश्रय माने गये हैं। कोई रोग केवल शरीरका आश्रय लेता है—जैसे कुष्ठ और कोई रोग केवल मनका सहारा लेता है, जैसे काम आदि तथा कोई रोग मन तथा शरीर दोनोंका ही आश्रय ग्रहण करता है, जैसे उन्माद। यह बात ठीक है कि शारीरिक व्याधिका मनपर तथा मानसिक व्याधिका शरीरपर प्रभाव पड़ता ही है। परंतु उन्माद आदि रोगोंमें मन एवं शरीर दोनों दोष-दुष्ट होते हैं अतएव उन्माद आदिको कभी-कभी मानस रोग भी कह दिया जाता है। इसमें प्रथम मनोभ्रंश होता है, पश्चात् प्रबुद्ध रज और तमके कारण, सत्त्वके दब जानेसे वातादि दोष बुद्धिस्थान, हृदय और मनोबल स्रोतोंको दूषित कर देते हैं। मन और आत्मा जैसे रोगके आश्रय हैं, उसी प्रकार सुख अथवा आरोग्यके भी आश्रय हैं।

अध्यात्मका दृष्टिकोण

उपर्युक्त कथनसे हमें यह तो परिज्ञात हो ही गया कि मन और शरीररूपी प्रयोगशालामें ऐसी कोई वस्तु न बने, जो मन और शरीरके लिये हानिकारक हो और जो भी कुछ हानिप्रदाता गैस आदि उसमें भर जायँ, उनको बाहर निकाल देना परम आवश्यक है; अन्यथा प्रयोगशाला न जाने किस दिन बैठ जायगी। इसके लिये हमें तीन बातोंका ध्यान रखना है।

सफलताके पथमें जप, तप, साधना

वे हैं—पहली इच्छा (यानी प्रबल इच्छाकी जागृति)। दूसरी, आदत (यानी संयमका अभ्यास)। तीसरा, व्यवस्थित जीवन (अर्थात् नियमानुवर्तिता)। सबसे पहले आप अपने-आपमें तीव्र इच्छा-शक्ति उत्पन्न करें; क्योंकि मूलके बिना वृक्ष नहीं होता। इसके द्वारा आप अपनी बुरी आदतोंपर गौर करें कि कौन-सी आदत आपको बीमार बनानेमें सहायता दे रही है। उसे भरसक दूर करनेकी कोशिश करें। इसके पश्चात् आवश्यक यह है कि आप-का जीवनक्रम यानी दिनचर्या नियमित होनी चाहिये। जब आप इन बातोंपर ध्यान देने लग जायेंगे, तो स्वास्थ्य अपने-आप आपके शरीरमें प्रस्फुटित होने लगेगा। यह स्वास्थ्य नामकी वस्तु आपको बिजलीका बटन दबानेसे नहीं मिलेगी। इसके लिये आपको सतत अभ्यास करना होगा।

सत्-चित्-आनन्द

बिन्दु-बिन्दुसे घड़ा भर सकता है, उसी प्रकार लगातार अपनी सद्-इच्छाओंको तीव्र करने तथा प्रबल बनाने, गंदी और भद्दी आदतोंके प्रति उदासीन रहने और सत्यके मार्ग-पर चलते हुए सभी काम उत्तमतासे करने तथा समयानुसार संयम रखनेसे आपके शरीरमें एक शक्ति प्रवाहित होने लगेगी और आप देखेंगे कि आप शनैः-शनैः नीरोग होते चले जा रहे हैं, स्वास्थ्य-लाभ होता जा रहा है। पहलेकी अपेक्षा अब आप कहीं अधिक चंगे नजर आने लगे हैं। इस क्रमको आप जारी रक्खें—मास-पर-मास और वर्ष-पर-वर्ष। कुछ समय बाद आप अपने आपको एक 'नये जन्म' के रूपमें देख सकेंगे। इसमें किंचित् मात्र भी शङ्का नहीं करनी चाहिये।

अपूर्व शक्ति एवं सफलता

इस प्रकार आपको स्वास्थ्यके अतिरिक्त अपने आपमें शक्तिके प्रभावका ज्ञान होगा, जिससे आप अपना प्रत्येक कार्य हर्ष और सफलताके साथ सम्पन्न कर सकेंगे और अन्तमें आपको अपार सुखका अनुभव होने लगेगा।

यदि आपने इन बातोंपर दृढ़तापूर्वक आचरण किया तो इसका आशय यह होगा कि आपने अनजानमें मुनियोंकी भाँति जप किया है, तप किया है और साधना भी की है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेमावतार श्रीचैतन्य महाप्रभु

(लेखक—प्रो० श्रीजगन्नाथप्रसादजी मिश्र)

श्रीमद्भागवतमें कहा गया है-—

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।
अहैतुक्यप्रतिहता ययाऽऽत्मा सुप्रसीदति ॥

मनुष्यके लिये परम धर्म है—'भगवान् विष्णुमें भक्ति। यह भक्ति अहैतुकी और अप्रतिहता होनी चाहिये। भगवान्ने गीतामें आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी—इन चार प्रकारके भक्तोंमें ज्ञानी भक्तको सर्वश्रेष्ठ कहा है। ज्ञानी भक्त भगवान्का प्रिय पात्र होता है। भगवान्के साथ वह नित्ययुक्त होता है। एकमात्र भगवद्भक्तिके अतिरिक्त और कुछ भी उसके लिये काम्य नहीं होता। वह सर्वान्तःकरणसे भगवान्की भक्ति करता है, लौकिक या पारलौकिक किसी सुखकी कामना नहीं करता। भगवान्के प्रति ऐकान्तिक अनुराग उसके मनःप्राणको अभिभूत किये रहता है। ऐसे भक्त जिस देश, समाज और कुलमें जन्म ग्रहण करते हैं, उनके जन्मसे—-

कुलं पवित्रं जननी कृतार्था
वसुंधरा पुण्यवती च तेन ।

"उसका कुल पवित्र हो जाता है, उसकी जननी कृतार्थ हो जाती है और उसकी जन्म-भूमि पुण्य-भूमि बन जाती है।" नारदके भक्ति-सूत्रमें कहा गया है—

मोदन्ते पितरो नृत्यन्ते देवताः सनाथा चेयं भूर्भवति ।

भक्तके जन्म लेनेपर उसके पितर आनन्दित होते हैं, देवतागण आह्लादित होकर नृत्य करने लगते हैं और यह पृथिवी सनाथा बन जाती है। मनमें भक्ति-भाव उदित होनेपर समस्त वासनाएँ शमित हो जाती हैं, आकाङ्क्षाएँ परितृप्त हो जाती हैं—यहाँतक कि पुरुषार्थ-चतुष्टयमें परम काम्य मोक्ष भी तुच्छ प्रतीत होने लगता है।

यं लब्ध्वा पुमान् सिद्धो भवति अमृतो भवति ।
(नारद-सूत्र)

भक्तके हृदयमें भक्ति-भाव सघन हो जानेपर वह सिद्ध हो जाता है और अमृतत्व प्राप्त कर लेता है। तुलसीदासजी कहते हैं—

अर्थ न धर्म न काम रुचि, पद न चहौं निर्बान ।
जन्म जन्म रति राम पद यह बरदान न आन ॥

अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष—कुछ नहीं चाहिये। जन्म-जन्मान्तरमें भगवान्के चरणोंमें लौ लगी रहे—यही वरदान भगवान्से माँगते हैं। विनयपत्रिकामें कहते हैं—

हेतु रहित अनुराग राम पद बढ़ै अनुदिन अधिकाई ।

पंद्रहवीं शताब्दीमें भगवान्के प्रति इस निष्काम भक्ति एवं अनन्य प्रेमका साक्षात् मूर्तिमान् उपदेश देनेके लिये महाप्रभु चैतन्यदेव इस धराधामपर आविर्भूत हुए थे। भगवान्के प्रति निवेदित अपनी एक कवितामें वे कहते हैं—'प्रभो! मुझे धन, जन, कवित्व, सुन्दरी पत्नी—कुछ नहीं चाहिये। जन्म-जन्मान्तरमें तुम्हारे पादपद्मोंमें अहैतुकी भक्ति बनी रहे, यही मेरी प्रार्थना है।' भक्त प्रह्लादकी उक्ति है—

नाथ योनिसहस्रेषु येषु येषु व्रजाम्यहम् ।
तेषु तेष्वचला भक्तिरच्युतास्तु सदा त्वयि ॥

"नाथ! चाहे जिस योनिमें मेरा जन्म हो, उसमें सदा तुम्हारे प्रति अविचलित भक्ति बनी रहे। भगवान्के प्रति इस अनन्य प्रेमका प्रचार करके श्रीचैतन्यदेवने अपने समयके जन-जीवनमें नव प्राणोंका संचार कर दिया था। उनके दिव्य जन्म-कर्मकी कथाएँ, उनके धर्मोपदेश, उनका लीला, कीर्तन साधारण जनोंके लिये परम श्रुति-मधुर एवं मङ्गलकारी सिद्ध हुए। गौराङ्ग प्रभुकी मधुर लीलाको जिस किसीने देखा-सुना, उसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हृदय निर्मल एवं पवित्र हो गया। प्रेमकी दिव्योन्मादनामें वे नाम-कीर्तन करते-करते भावावेशमें नृत्य करने लगते थे, नेत्रोंसे अश्रुधारा विगलित होने लगती थी। भागवतमें ऐसे भक्तके सम्बन्धमें कहा गया है—

वाग्गद्गदा द्रवते यस्य चित्तं
रुदत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च।
विलज्ज उद्गायति नृत्यते च
मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति॥

महाप्रभुके जीवनमें यह कथन सर्वथा चरितार्थ होता था।

श्रीचैतन्य भगवान्‌के प्रेममें इतने तल्लीन हो गये थे कि भोगैश्वर्य, नाम, यश, आत्मप्रशंसाकी उनमें लेशमात्र भी वासना नहीं रह गयी थी। त्याग एवं वैराग्यके वे मूर्तरूप थे। नाम-यश, अहंकार, आत्मश्लाघाको विषवत् त्याज्य समझते थे। भगवत्-प्रेममें आत्मविभोर होकर बाह्यज्ञान-शून्य बन गये थे—यहाँतक कि अपने शरीरकी भी सुध-बुध खो बैठे थे। नवद्वीप, वृन्दावन, पुरी और दक्षिण भारतकी यात्रामें उनका जीवन इतना त्यागमय एवं विरक्त हो गया था कि जन-साधारणका मस्तक उनके समक्ष भक्तिभावसे स्वतः नत हो जाता था। गौरवर्ण सुन्दर सौष्ठवयुक्त शरीर, घुँघराले बालोंसे शोभित मस्तक तथा पद्मपलाशलोचन चैतन्य जो नवद्वीपचन्द्रके नामसे विख्यात थे, अब मुण्डित मस्तक, शरीरपर एकमात्र वस्त्र धारण किये हुए धूलिधूसरित अवस्थामें श्रीजगन्नाथपुरी-में भगवत्प्रेममें पागल बनकर विचरण कर रहे हैं। नेत्रों-में आनन्द-प्रेमाश्रु और मुखमण्डलपर दिव्य छटा। नदियावासी, जो उनके पूर्वके रूप-लावण्यसे परिचित थे, उन्हें संन्यासीके वेशमें देखकर संतप्त हो जाते थे। किंतु चैतन्यदेव प्रभु-प्रेममें इतने मग्न हो गये थे कि अब उनका ध्यान ही इस ओर कहाँ था कि लोग उनके सम्बन्धमें क्या सोचेंगे। दक्षिणके तीर्थोंकी यात्रा करते समय बालकगण पागल समझकर उनपर धूल फेंकते थे। वे आपसमें एक दूसरेसे कहते थे कि कृष्णप्रेममें पागल बना हुआ कोई संन्यासी जा रहा है। किंतु चैतन्यदेव-का इधर ध्यान ही कहाँ था। मुखसे सतत श्रीकृष्ण-नामका उच्चारण हो रहा था। किसी-किसी स्थानपर वे बैठ जाते और कृष्णकी लीलाओंका भाव-विह्वल वाणीमें वर्णन करने लग जाते। स्त्री-पुरुष उन्हें घेरकर बैठ जाते और उनके मुखसे विनिस्सृत कृष्णकथामृतका पान करके आत्मतृप्ति लाभ करते। उनके अन्तरसे भक्ति-भावोद्रेकयुक्त वाणी निकलकर श्रोताओंके मर्मको प्रभावित किये बिना नहीं रहती।

चैतन्यदेवने धर्म एवं दर्शनके ग्रन्थोंका विधिवत् अध्ययन किया था। उनका पाण्डित्य अगाध था। किंतु इस पाण्डित्यके साथ प्रज्ञा एवं हृदयकी रसानुभूतिका सम्मिश्रण होनेसे वह मात्र प्रदर्शनके लिये भारवाही पाण्डित्य नहीं था। उनमें भेद-बुद्धि तिरोहित हो गयी थी। जीवमात्रमें भगवान्‌के रूपका प्रकाश उन्हें दीख पड़ता था। गीतामें पण्डितका लक्षण कहा गया है—

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥

ईश्वरप्रेमिक योगयुक्तात्मा चैतन्यदेव इसी कोटिके पण्डित थे, जिनकी दृष्टिमें विद्वान् ब्राह्मण, गाय, हाथी, कुत्ता और चण्डाल—सब ईश्वर-अंश होनेके नाते एक-समान थे। उनमें समदर्शिता थी। इसलिये जीवमात्रपर उनके प्रेमवारिकी वर्षा होती थी। उन्होंने मुक्त कण्ठसे घोषणा की थी—

चण्डालोऽपि द्विजश्रेष्ठो हरिभक्तिपरायणः।

हरिभक्तिपरायण चण्डाल भी हरिभक्तिविहीन द्विजसे श्रेष्ठ है। भगवान्‌ने भी तो गीतामें कहा है—

अपि चेत् सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग् व्यवसितो हि सः॥

चाहे कितना भी बड़ा दुराचारी हो, यदि अनन्य भावसे मेरा भजन करे तो उसे साधु मानना चाहिये;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्योंकि उसने अच्छी तरह निश्चय कर लिया है कि भगवान्‌के भजनके समान और कुछ भी नहीं है ।

भक्ति एवं प्रेमके आधारपर चैतन्यदेवने अपने धर्मका प्रचार किया था । उनके विचारसे सब प्रकारके बाह्य आकर्षणसे मनको विमुक्त करके निर्मल चेतनवृत्तिको भगवान्‌में संलग्न करनेसे प्रेमभक्तिका उदय होता है । विशुद्ध आत्माका सहजात धर्म सच्चिदानन्दस्वरूप है । भक्ति ही एकमात्र जीवको भगवान्‌की चरणसेवामें तल्लीन करती है । सब प्रकारकी कामना-वासनाओंका त्याग करके सर्व-इन्द्रियोंको कृष्णानुशीलनमें प्रवृत्त करना जीवहृदयका स्वाभाविक धर्म है । उन्होंने जिस धर्मका प्रचार किया था, वह स्त्री-पुरुष, पण्डित-मूर्ख, धनी-दरिद्र, जाति-धर्म निर्विशेष सब श्रद्धालु जनोंके लिये उपादेय सिद्ध हुआ । विभिन्न दार्शनिक विचारधाराओंको स्वीकार करते हुए उन्होंने अपना यह स्थिर मत व्यक्त किया कि जीव और ब्रह्ममें भेद और अभेद दोनों हैं । मनुष्यकी बुद्धिके लिये यह अगम्य है । अतः जीवको अपने हृदयमें अचल भक्तिभाव धारण करके एकमात्र श्रीकृष्णके ही शरणापन्न होना चाहिये ।

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।

—यही कल्याणका मार्ग है । इस दृष्टिसे वे श्रीमद्भागवत-को सम्पूर्ण आध्यात्मिक ज्ञानका अक्षय स्रोत मानते थे । शङ्कर, रामानुज, मध्व आदि विभिन्न आचार्योंने अपने-अपने चिन्तन-मननके अनुकूल ब्रह्मसूत्रकी व्याख्या की है, जिसके फलस्वरूप भारतमें विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायोंका प्रवर्तन हुआ । किंतु सब प्रकारकी विचारधाराओंका अपूर्व समन्वय श्रीमद्भागवतमें देखनेको मिलता है । ईश्वर-तत्त्वके विचारमें यह सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ है और यह ईश्वरतत्त्व श्रीकृष्ण हैं जो अनन्त, अचिन्त्य, अप्राकृत तत्त्व होनेपर भी अपनी चिन्मय शक्तिद्वारा साकार, सगुण रूप धारण करते हैं और अपने वृन्दावनवासी पार्षदोंके सहित नित्य-लीलाविलासमें रमणशील रहते हैं । इस प्रकार महाप्रभुने अपने दार्शनिक विचारको शुष्क बुद्धिवाद एवं आचार-अनुष्ठानके बाहुल्यसे मुक्त करके भक्तिभावनाके पुटद्वारा उसे सरस एवं सर्वजनग्राह्य बना दिया था । भक्ति ही साध्य एवं साधन है । यही परम तत्त्व है । भगवत्प्रेम ही एकमात्र उपेय वस्तु है । भगवान्‌का सतत ध्यान और नामसंकीर्तन ही मनुष्यके लिये इस कलि-कालमें मनःशान्ति प्राप्त करनेका उपाय है ।

हरेर्नामैव नामैव नामैव मम जीवनम् ।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

हरिनामकीर्तनपर वे बहुत अधिक जोर देते थे । कारण, कीर्तनद्वारा ही भक्त भगवान्‌के समीप उपनीत हो सकता है । उनका कथन था—

नामेर फले कृष्णपदे प्रेम उपजाय ।

भक्त हरिदास प्रतिदिवस तीन लाखसे अधिक कृष्ण-नामका जप करके अन्न-जल ग्रहण करते थे । श्रीचैतन्य-देवको जब यह मालूम हुआ, वे दौड़े-दौड़े उस भक्तके पास गये और उनका प्रेमालिङ्गन किया; कहा, 'तुम्हारे स्पर्शसे पवित्र हुआ । तुम क्षण-क्षण सकल पुण्यतीर्थोंमें स्नान और तप-दान करते हो ।' भगवान्‌के नामश्रवण, विग्रहदर्शन एवं नामोच्चारणमात्रसे भक्तप्रवर चैतन्यदेवके शरीरमें रोमाञ्च होने लगता था, बार-बार भावावेशमें आ जाते थे, नृत्य करने लगते थे और कुसुमादपि कोमल-हृदय बन जाते थे । उनमें अपर जनोंमें भाव संचारित करनेकी अपूर्व शक्ति थी । उनकी भगवदनुभूति इतनी गम्भीर एवं तीव्र थी कि जो भी उनके सांनिध्यमें आता एक अभूतपूर्व शक्तिका अनुभव करता और उसके जीवन-की गति-मतिमें परिवर्तन हो जाता । महाप्रभुके सम्पर्कमें आकर रूप और सनातनने, जो उच्चपदस्थ राजकर्मचारी थे, पदत्याग कर दिया, महाप्रभुके प्रधान सहचर हुए और महाप्रभुने उनका उद्धार किया । जडवादी, नास्तिक, भक्त, कवि, दार्शनिक सब समान भावसे उनके द्वारा प्रभावित होते थे । यहाँतक कि विधर्मी भी उनके प्रगाढ़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईश्वरप्रेमको देखकर अपने मनमें एक दिव्य अनुप्रेरणा लाभ करते थे ।

मुसलमान शासकका आदेश हुआ कि नवद्वीपमें हरिकीर्तन बंद कर दिया जाय । श्रीचैतन्यदेवने इस आदेशको सुना । शान्तभावसे नित्यानन्दको कहा—नवद्वीपकी समस्त जनताको सूचित कर दो कि निमाई (महाप्रभुका घरका नाम) काजीके आदेशको अमान्य करेंगे । दूसरे दिन सम्पूर्ण नगर नर-नारियों और बालक-बालिकाओंकी नाम-ध्वनिसे मुखरित हो उठा । काजीका महल, सैन्यनिवास कीर्तन करनेवालोंसे घिर गया । सब लोगोंके सामने चैतन्यदेवने काजीसे प्रश्न किया । तुम्हारे आदेशका कारण क्या है ? काजीने नतमस्तक होकर अपराध स्वीकार किया । इतना ही नहीं, यह भी कहा कि 'मुझे अपने साथ हरिनाम उच्चारण करनेकी अनुमति दीजिये ।' भक्तिके इस चमत्कारको देखकर सब लोग विस्मय-विमुग्ध हो गये ।

महाप्रभु चैतन्यदेवके जीवनकी प्रधान विशेषता थी भगवान् श्रीकृष्णके पदाम्बुजोंमें उनका आत्मसमर्पण । कृष्णप्रेमामृतपान करके उनका जीवन कृष्णमय बन गया था । हमारे लिये वे जो अमूल्य उपदेश छोड़ गये हैं वह है—'अनवरत प्रयत्नोंके द्वारा मनुष्य लौकिक सुख-भोगकी चाहे जितनी वस्तुएँ प्राप्त कर ले, किंतु भगवत्-प्रेम एवं भक्तिलाभ करना अत्यन्त कठिन है । इस दुर्लभ रत्नको प्राप्त करनेका एकमात्र उपाय है अहर्निश हरि-नामका कीर्तन । भगवान्के प्रति प्रेम और भक्तिका यही सर्वोत्तम उपाय है ।' ईश्वरकी शरणागति, उनका स्मरण-चिन्तन यही परम पुरुषार्थ है । फाल्गुन पूर्णिमा महाप्रभुके आविर्भावकी पुण्यतिथि है । *

गोरक्षा-सत्याग्रह एक बार स्थगित

सरकारने गोरक्षाके सम्बन्धमें एक १२ सज्जनोंकी समिति बनायी है, उसमें गोरक्षा-महाभियान समितिकी ओरसे भी तीन सदस्य हैं—(१) जगद्गुरु शंकराचार्य महाराज पुरी, (२) श्रीरमाप्रसाद मुखर्जी, भूतपूर्व न्यायाधीश, कलकत्ता उच्च-न्यायालय और श्रीमाधवराव सदाशिव श्रीगोलवलकर, सरसंघ-संचालक राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ । यह समिति छः महीनेमें अपनी रिपोर्ट देगी । यद्यपि कुछ महानुभावोंका यह मत था कि सत्याग्रह चालू रखना चाहिये और इसके लिये बड़ी संख्यामें साधु-महात्मा तथा गाँवोंके लोग तैयार थे । कुछ शिथिलता आयी थी तो प्रायः नेताओंमें आयी थी, जनतामें नहीं । गौके नामपर हिंदू जनता आज भी अपना बलिदान देनेको तैयार है । कुछ सज्जन तो इस सफल तैयारीमें थे कि १५ अगस्तको एक बहुत बड़ा लाखों नर-नारियोंका दिल्लीमें पुनः प्रदर्शन हो—लालकिलेपर जुलूस जाय और लाखों सत्याग्रही जेल जायँ ।

कुछ सज्जनोंका यह कहना था कि इस समय सत्याग्रह स्थगित करनेका अर्थ यह समझा जायगा कि 'जेलमें मार पड़नेसे सत्याग्रह बंद हुआ है, दो महीने पहले मार पड़ती तो पहले बंद हो जाता ।' यद्यपि ऐसा है नहीं, क्योंकि मार खाये हुए सत्याग्रही सज्जनोंमें साहस गिरनेकी बात तो दूर, उनमें तो उत्साहकी तरंगें उठ रही हैं । स्वयं मुझसे अस्पतालोंमें कई घायल सत्याग्रहियोंने कहा कि 'सत्याग्रह बंद नहीं करना । हमलोग तो गोहत्या सर्वथा बंद न होनेतक न लौटनेका प्रण करके आये हैं ।' तथापि भारत-सरकारकी एकाधिक बारकी प्रार्थना तथा सहयोग एवं सद्भावनाकी ओर हाथ बढ़ानेकी नीतिको दृष्टिगत करते हुए सर्वदलीय गोरक्षा-महाभियान-समितिकी सर्वोच्च सत्ता तथा कार्यसमितिने सर्वसम्मतिसे सरकारद्वारा गठित बारह सदस्यीय गोरक्षा-समितिका स्पष्ट निर्णयात्मक संकेत प्राप्त होनेतक सत्याग्रह स्थगित करनेका निर्णय किया है, जिससे दोनों ओरसे शान्त वातावरणमें गोहत्या-बंदीका समुचित निर्णय हो ।

इस प्रकार 'सर्वदलीय गोरक्षा-महाभियान समिति'की ओरसे सत्याग्रह स्थगित कर दिया गया है । आशा है कि सरकार तमाम मुकद्दमे उठाकर सब बंदियोंको छोड़ देगी तथा समितिका निर्णय सारे भारतमें गोवंशकी हत्या सर्वथा बंदीके पक्षमें कानून बनानेका होगा । भगवान्से यही प्रार्थना करनी चाहिये कि वे सबको सद्बुद्धि प्रदान करें और शीघ्र-से-शीघ्र गोहत्याके महापापसे भारतकी पवित्र भूमि सदाके लिये मुक्त हो जाय । देशमें जो स्थान-स्थानपर समितियाँ संगठित हुई हैं, उनको अभी अवश्य बनाये रखना चाहिये ।

—हनुमानप्रसाद पोद्दार

* लेख फाल्गुनके अंकमें प्रकाशनार्थ आया था, पर वह अङ्क पहले छप चुका था । इससे उसमें नहीं जा सका ।—सम्पादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिल्ली तिहाड़ जेलमें गोरक्षाके सत्याग्रही साधुओंपर अमानुषिक प्रहार !

गोहत्यानिरोध आन्दोलन चल ही रहा था। सत्याग्रह भी बराबर चालू था। गत २९ जून सन् १९६७ के दिन लगभग नौ सौ सत्याग्रही दिल्लीके तिहाड़ जेलमें थे। उनमें सनातनधर्मके प्रसिद्ध महात्मा श्रीकरपात्रीजी महाराज भी थे, जो कुछ ही दिनों पूर्व लगभग दो सौसे अधिक महानुभावोंके साथ सत्याग्रह करके जेल गये थे। इन महानुभावोंमें शास्त्रोंके विद्वान् बहुत बड़े विरक्त संन्यासी भी थे, जो केवल गोमाताके हत्यानिवारणके लिये ही सत्याग्रह करने आये थे।

बड़े ही दुःखकी बात है कि गोरक्षाके इन अहिंसाव्रती सत्याग्रही महानुभावोंपर २९ जून संध्याको लगभग ७॥ बजे जेलके घृणित अपराधोंमें दण्डित कैदियों तथा जेल वार्डरोंके द्वारा जेल-अधिकारियोंकी उपस्थितिमें बर्बरतापूर्ण आक्रमण किया गया, उन्हें भयानक निर्ममता तथा राक्षसी क्रूरताके साथ मारा-पीटा गया। श्रीकरपात्रीजी उस समय मैदानमें प्रवचन कर रहे थे और सैकड़ों श्रोता सुन रहे थे। उन शान्तिसे बैठे हुए लोगोंपर तथा बैरकोंके दरवाजोंके ताले तोड़कर, दीवालोंसे अंदर फाँदकर लाठियों, जलती लकड़ियों, लोहेके छड़ों, चाकुओं तथा ईंटों-पत्थरोंसे अंधाधुंध प्रहार किया गया!

मैं स्वयं तिहाड़ जेलमें तथा अस्पतालोंमें घायल सत्याग्रहियोंको देखकर आया हूँ। इस प्रकार अमानुषी ढंगसे उन्हें मारा गया है कि कोई भी सहृदय पुरुष ऐसा न होगा कि उन्हें देखकर जिसका हृदय द्रवित न हो जाय और जिसके नेत्रोंमें आँसू न आ जायँ। कई लोगोंको तो ऐसी चोट लगी है कि वे जीवनभरके लिये लूले-लँगड़े हो गये हैं। मैंने स्वयं वहाँ खून जमाके निशान देखे हैं और जलती लकड़ियोंसे जले हुए अंगोंपर घाव देखे हैं। एक सज्जनका जबड़ा तोड़ दिया गया। एक सज्जनका एक हाथ पहले टूटा था, दूसरा भी तोड़ दिया गया। दोनों हाथ टूटे हुए एक सत्याग्रहीको मारा गया, मनुष्य मनुष्यपर इस प्रकार राक्षसी आघात कैसे कर सकता है? हमारे पास बहुत-से घायल सत्याग्रहियोंके बयान हैं तथा उनके छायाचित्र भी हैं। उन्हें छापनेका विचार था पर यह कहा गया कि जाँचकमीशन बैठा है और जाँचके लिये पंजाब उच्चन्यायालयके अवकाशप्राप्त न्यायाधीश श्रीएस० एस० दुल्लतकी नियुक्ति भी हो चुकी है। उसकी जाँचके पहले ही सत्याग्रहियोंके बयान छप जानेपर बुरा प्रभाव पड़ सकता है। इसलिये उन्हें अभी नहीं छापा गया। जाँचकमीशनकी जाँच हो जानेपर पता लगेगा उसका क्या निर्णय होता है। चेष्टा तो पहलेसे ही हो रही थी कि जाँचकमीशनके सामने प्रमाण न पहुँच सके, पर देखा जाय, क्या होता है।

घटना क्यों कैसे हुई, यह तो भगवान् ही जानते हैं। दो पक्षके कैदियोंकी आपसकी लड़ाई होती तो दोनों ओरके लोगोंको चोट लगती, पर ऐसा नहीं हुआ। सुना गया कि डेढ़ घंटेतक वहाँ एलार्म घंटी बजती रही। एलार्म घंटी बजनेका अर्थ होता है कि जो कैदी बाहर हों, वे भीतर चले जायँ और अपने बैरकोंसे कोई बाहर न निकले। पर यहाँ तो दूसरी ही बात हुई—ज्यों-ज्यों एलार्म बजता था त्यों-ही-त्यों लोग बाहर आकर आक्रमण करते रहे। इस प्रकार निहत्थे पवित्र साधुओंपर राक्षसी प्रहार करना आकस्मिक घटना तो नहीं प्रतीत होती। पर यह किसके द्वारा नियोजित थी, यह भी नहीं कहा जा सकता। कुछ लोगोंका कहना है कि इसमें किसी बड़े उच्च अधिकारीका हाथ है। कुछ लोग कहते हैं जेलके अधिकारियोंके द्वारा ही यह सब करवाया गया। उद्देश्य यही था कि लोग डर जायँ और सत्याग्रहके लिये पुनः न आवें। जो कुछ भी हो, डेढ़ घंटेतक लगातार घंटी बजती रही, प्रहार होता रहा और जेलके अधिकारीगणने कुछ भी नहीं किया। इतना ही नहीं, इस भयानक दुर्घटनाके बाद गत ५ जुलाई १९६७को सायंकाल ५ बजे लगभग १०५ गोरक्षा-सत्याग्रही तिहाड़ जेलसे छूटे थे। वे जब जेलके मुख्य द्वारके बाहर आये तो एक गुंडेने उनमेंसे अनेक साधुओंको पीटा और कहा कि 'इस बार तो तुम्हारे हाथ-पैर तोड़े हैं; यदि दुबारा आओगे तो सिर फोड़ देंगे'''कुछ समय बाद जेलके एक अधिकारी बाहर आये और उस गुंडेने उनसे अलगमें बातें कीं। उसके बाद फिर उसने घमासान रूपमें सबको मारना शुरू कर दिया। तदनन्तर वह गुंडा दीवारके साथ बनी हुई जेलकी एक कोठीमें चला गया।

२९ तारीखकी घटनापर इतना होहल्ला मचनेके बाद भी जब दुबारा जेलके दरवाजेके बाहर ही सत्याग्रहियोंको पीटा जाता है, तब सहज ही यह संदेह हो ही जाता है कि किसी प्रभावशाली पुरुषकी योजनासे ही यह महापाप हुआ होगा!

श्रीकरपात्रीजीकी एक आँखमें ज्यादा चोट लगी है। उसमें अभी दृष्टि नहीं आयी है। डाक्टरोंका मत है—आ भी सकती है, नहीं भी। उनकी पीठपर लाठी या लोहेके छड़की चोट है। वे बता रहे थे नीचेकी चोटके कारण भीतर बहुत वेदना है। स्वामीजी श्रीशंकरानन्दजीने जेल-अस्पतालमें बतलाया कि कुछ साधुओंने श्रीकरपात्रीजीके ऊपर होकर उनको बचा लिया, नहीं तो वे उन्हें सर्वथा मार ही डालना चाहते थे।

यद्यपि जिनपर मार पड़ी है, हमारे शास्त्रोंके अनुसार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अदृष्टवश ही पड़ी है। प्रारब्धका भोग ही मिला है। प्रारब्धका भोग तीन प्रकारसे प्राप्त होता है—स्वेच्छासे, परेच्छासे और अनिच्छासे। यह 'परेच्छा' प्रारब्ध भोग है तथापि जिन्होंने प्रहार किया है, उन्होंने तो नवीन जघन्य दुष्कर्म किया है। पाप-कर्म तीन प्रकारसे सम्पन्न होता है—कृत, कारित और अनुमोदित—स्वयं करे, किसीसे कहकर करवाये और करनेवालेका समर्थन करे। अतएव यहाँ भी तीनों ही प्रकारके प्रहारक दोषी हैं और उन्हें इस पापका दण्ड अवश्य भोगना पड़ेगा। यहाँ चाहे कोई बच जायँ, पर विधाताके अनिवार्य विधानसे कोई बच नहीं सकता। श्रीकरपात्रीजी महाराजने पूछनेपर बताया कि 'हमारा अदृष्ट था'। यह वास्तवमें उनका साधुजनोचित विचार है। किसीके प्रति द्वेष नहीं, मारनेवालेके प्रति भी नहीं। पर मारनेवाले तो दण्डके पात्र हैं ही। भगवान् उनको सुबुद्धि दें जिससे वे भविष्यमें ऐसे भयानक पाप न करें।

जाँचकमीशनका निर्णय भी आ ही जायगा। आशा करनी चाहिये कि जाँचका निर्णय सत्य तथा न्यायसंगत ही होगा। यद्यपि अधिकांश जाँचकमीशनोंका फल तो प्रायः विपरीत ही होता है, भगवान् सबको सन्मति दें, सबका सदा कल्याण करें।

—हनुमानप्रसाद पोद्दार

श्रीजुगलकिशोरजी बिड़लाका परम निर्वाण

भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें कहा है कि 'भगवत्प्राप्ति-रूप योगकी तीव्र साधना करते-करते ही बीचमें जिसका प्रारब्धवश देहपात हो जाता है वह योगभ्रष्ट पुरुष पुण्यवानोंके निवासयोग्य श्रेष्ठ लोकोंको प्राप्त होकर दीर्घकालतक वहाँ निवास करता है। तदनन्तर वह पवित्रजीवन श्रीमानोंके घरमें जन्म ग्रहण करता है।'

हमारे सम्मान्य श्रीजुगलकिशोरजी बिड़ला एक ऐसे ही परम योगी महानुभाव थे। ८५ वर्षकी आयुमें गत २३ जूनको नश्वर शरीरका त्याग करके वे परम निर्वाणको प्राप्त हो गये। मेरा लगभग ५५ वर्षसे अधिक समयसे उनके साथ परिचय था। मैंने सदा ही उनको साधारण वेश-भूषामें एक असाधारण महापुरुषके रूपमें देखा। वे जन्मसे ही असाधारण मानव थे। हिंदू सनातनधर्म, जिसे विश्वधर्म या आत्मधर्म कह सकते हैं—उनके जीवनमें मूर्तिमान् था। वे प्रसिद्ध धनी होकर भी अत्यन्त विनयी थे। परम उदार होकर भी अत्यन्त संकोची थे और समस्त सुविधाओंसे सम्पन्न होनेपर भी नियम-संयमके कट्टर पालन करनेवाले थे। विशुद्ध जीवन, विशुद्ध शरीर, विशुद्ध मृदुहास्यसमन्वित मुखमण्डल, विशुद्ध विचार, विशुद्ध क्रिया,—सभी कुछ उनका विशुद्ध था। उन्होंने प्रचुर धन उपार्जन किया, पर किया केवल और केवल धर्मकी सेवाके लिये। उनका प्रत्येक क्षण इसी विचारमें जाता था कि किस प्रकार हिंदू सनातनधर्मका उत्कर्ष हो, विस्तार हो—जिससे समस्त जगत्के प्राणी सबमें एक आत्माका अनुभव करके सच्चे सुख-शान्तिको प्राप्त हो सकें।

जब कभी मैं उनसे मिलता, वे हिंदूधर्मकी उन्नतिके सम्बन्धमें ही बात करते। साधु-महात्माओंकी सेवा करते भी वे यही पूछते। वे सचमुच धर्मके लिये जीवन धारण कर रहे थे। जीवनभर उन्होंने हिंदू-धर्मकी सेवा की, करवायी—सभाओंके द्वारा, उपदेशकोंके द्वारा, संस्थाओंके द्वारा, पाठशाला-विद्यालयोंके द्वारा, संत-महात्माओंकी सेवाके द्वारा और बड़े-बड़े मन्दिरों आदिके निर्माणके द्वारा, आर्थिक सहायताके द्वारा, विविध प्रकारसे, विविध रूपोंमें, विविध प्रान्तों-देशोंमें, विभिन्न प्रकारके पुरुषोंके विभिन्न मतावलम्बियोंमें, विविध प्रकारसे नित्य सक्रिय सहयोग देकर।

वे जीवित हिंदूधर्मके रूपमें जन्मे थे, जीवित हिंदूधर्मके रूपमें उन्होंने जीवन धारण किया और जीवित हिंदूधर्मके रूपमें ही—धर्मकी ज्योतिको बढ़ाते हुए वे दिव्य देशको चले गये अत्यन्त धीरताके साथ हमारे सामने परम आदर्शको रखकर।

मैं सदा ही उनके गुणोंपर मुग्ध रहा और वे—वे मुझे इतना स्नेहदान करते रहे कि जिसकी कहीं कोई सीमा नहीं। वे चले गये, मुक्त हो गये। पर मैं गीताप्रेस तथा कल्याणके नित्य महान् शुभ चिन्तक और अपने एक परम हितैषी परम सुहृद् बड़े भाईके पवित्र स्नेहसे वञ्चित हो गया!

—हनुमानप्रसाद पोद्दार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़ो, समझो और करो

(१)

गोमाताकी रक्षा करनेवाले मुसल्मानकी गोमाताने प्रत्यक्ष प्रकट होकर रक्षा की

तपामंडी तहसील बरनाला जिला संगरूरमें एक मुसल्मान सज्जन रहते हैं जो गोमाताके बड़े परम भक्त हैं। उन्हींके जीवनकी यह सत्य घटना है। सन् १९४७ में हिंदुस्थान-पाकिस्तानके बँटवारेके समय जब समस्त देशमें भयंकर मार-काट मच रही थी तो उस घोर भयंकर विपत्तिके समयमें उन मुसल्मान सज्जनके प्राणोंकी रक्षा गोमाताने स्वयं प्रकट होकर कैसे अद्भुत ढंगसे की, इसके सम्बन्धमें स्वयं उन मुसल्मान सज्जनने सद्गुरु महाराज श्रीजगजीत सिंहजीको सुनाते हुए बताया—

सन् १९४७ से कुछ दिनों पूर्वकी बात है कि कुछ मुसल्मान कसाई बूचड़ोंको मैंने एक बहुत दुबली-पतली गाय ले जाते देखा। वे उसे काटनेके लिये ले जा रहे थे। मुझे उस गायको देखकर बड़ी दया आयी और मैंने उनसे वह गाय मोल देनेके लिये कहा। उन कसाइयोंने मुझसे अपनी उस गायके दाम २०) रुपये माँगे। मेरे पास उस समय बीस रुपये थे नहीं। मैं बड़ा गरीब आदमी था; फिर भी मैंने गायके प्राण बचानेकी सोची और मैंने अपने घरपर जाकर अपनी भौजाईसे एक सोनेकी चीज ली। उसे किसीके यहाँ गिरवीं रखकर बीस रुपये प्राप्त किये और वह गाय उनसे खरीद ली। मैंने उस कसाइयोंके हाथोंसे बचायी गयी गायको अपने घरपर नहीं रक्खा; क्योंकि मैंने यह बचानेका काम घरवालोंसे बिना पूछे चोरीसे किया था। जब वह गाय ब्यायी तो अपने घरपर लानेपर दूधके लालचसे किसीने भी इन्कार नहीं किया। कुछ साल बाद उस गायको अपने पास रखकर फिर उसे मैंने ऐसी जगहपर बेच दिया कि जहाँ फिर उसको किसी प्रकारका कष्ट न हो और उसके जीवनको किसी प्रकारका भी खतरा न हो।

सन् १९४७ में हिंदुस्थान-पाकिस्तानका बँटवारा हुआ तो सभीको यह मालूम है कि उस समय एक बहुत बड़ा कत्लेआम हुआ था और उस समय हिंदू-मुसल्मान एक दूसरेके खूनके प्यासे बन गये थे। मुसल्मानोंने हिंदुओंको और हिंदुओंने मुसल्मानोंको मारा-काटा था। हम मुसल्मान वहाँपर थोड़ी संख्यामें थे तो जब हमपर हमला हुआ तो हम हिंदुओंके उस हमलेसे डरकर एक मकानके अंदर घुस गये और अंदरसे उस मकानकी सांकल लगा ली। लोगोंने मकानको घेरकर उसमें आग लगा दी। मकानमें आग लगी देखकर सब लोग एकदमसे बाहर निकल गये। सिर्फ मैं ही अकेला उस मकानके अंदर रह गया, मकान धूएँसे भर गया। मकानके चारों ओर आग लगी थी। अब तो मैं बड़ा घबराया कि अब मेरे प्राणोंकी रक्षा इस समय कैसे होगी? अकस्मात् मैं उस समय क्या देखता हूँ कि जिस गायको मैंने कुछ दिनों पूर्व मुसल्मान कसाइयोंके हाथोंसे बचाया था, ठीक उसी प्रकारकी और ठीक उसी रंगकी गायकी पूँछ मेरे सामने घूमने लगी और अपनी पूँछसे उस धूएँसे और उस आगसे मेरी बराबर रक्षा करती रही। फिर जब वह आतंक समाप्त हुआ तो मैं बाहर निकल आया और मैं उस गायकी कृपासे जहाँ धाँय-धाँय प्रज्वलित अग्निके बीचसे जीवित निकला, वहाँ मैं आज भी जीवित हूँ और मैं अब इस समय पंजाबमें रह रहा हूँ।

यह है हमारी पूजनीया गोमाताकी भक्तिका महान् आश्चर्यजनक अद्भुत चमत्कार।*

बोलो गोमाताकी जय! बोलो सनातन धर्मकी जय!!

(२)

अद्भुत पतिव्रता

घटना अधिक पुरानी नहीं है, कुछ ही वर्षों पूर्वकी

---

* पिछले दिनों दिल्लीके 'गोरक्षा-सम्मेलनमें' भाषण देते हुए नामधारी सिक्ख-सम्प्रदायके सद्गुरु महाराज श्रीजगजीतसिंहजीने गोमाताके द्वारा प्रत्यक्ष प्रकट होकर एक मुसल्मान सज्जनकी प्राणरक्षाकी अद्भुत घटना सुनायी थी। मैंने वह घटना, जब महाराष्ट्रके सुप्रसिद्ध वारकरी सम्प्रदायके सत्य पूज्य श्रीकृष्णगोपाल बानखड़े गुरुजी महाराज कृपापूर्वक मेरे यहाँ पिलखुवा पधारे थे, उनको सुनायी। वे इसे सुनकर बड़े प्रभावित हुए और स्वयं भैनी साहब जाकर महाराज श्रीजगजीतसिंहजीसे मिले और पूरी घटना उनसे सुनकर मुझे लिखकर भिजवायी। वही ऊपर प्रकाशित है। मैं महाराजजीका अत्यन्त ही कृतज्ञ हूँ।

—भक्त रामशरणदास, पिलखुवा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बात है और अक्षरशः सत्य है। इसमें तनिक भी कल्पना नहीं है।

एक लड़का था, वह अपने परिवारसे बहुत दूर सरकारी कर्मचारी था। अच्छी कमाई थी। दूर होनेके कारण उसने पैसे बचाकर अपने पास ही इकट्ठे करने शुरू कर दिये थे। एक दिन घरसे पत्र आया कि तुम जल्दी-से-जल्दी घर आ जाओ, कोई दुर्घटना हो गयी है। लड़केने समझा कि शायद घरमें कोई मृत्यु हो गयी है। लड़का करीब दस हजार रुपये अपने साथ लेकर चला। तीन गुंडोंने इस बातको जान लिया और उससे उसका पूरा पता भी पूछ लिया। और उन्होंने भी उस पतेके अनुसार अपने रेलके टिकट ले लिये। पर भगवत्कृपासे लड़केको उनकी बुरी नीयतका पता चल गया। रास्तेमें उसकी ससुराल पड़ती थी, उसने वहींका टिकट ले लिया। लड़का ससुराल उतर गया और वे तीनों आगे चले गये।

लड़का अविवाहित था, उसकी केवल सगाई हुई थी। तो भी वह डरके मारे ससुराल चला गया। वहाँ जानेपर उसने सब हाल अपने सालाजी एवं सासुजीको सुना दिया। स्वयं किसी कामसे बाहर चला गया। इसी बीच उसके दोनों सालोंके और उसकी सासुके मनमें लोभ जाग उठा। उनकी नीयत बिगड़ गयी। लोभ पापका मूल है। उन्होंने जवाँईकी हत्या करके उसका धन अपहरण करनेकी पापपूर्ण योजना बनायी। दोनों सालोंने निश्चय करके अपनी माँसे कहा कि लड़केको इस कमरेमें सुला देना। हम दोनों बाहरसे आयेंगे और तैयार रहना, वे यों जिस समय कह रहे थे, उस समय वह कन्या भी वहीं थी, जिसका उस लड़केके साथ विवाह होना निश्चित था।

लड़का सोने लगा ही था कि उस कन्याने जाकर चुपकेसे कहा—'चलो उठो, अभी मेरे साथ चलो।' लड़केने सकबकाकर पूछा—'क्या बात है?' कन्याने कहा—'बस मेरे साथ चलो, नहीं तो अभी मार दूँगी।'

लड़का उठकर उसके पीछे हो लिया। उसने दूसरे कमरेमें ले जाकर उसे सुला दिया और कह दिया—'मैं जब कहूँ तब खोलना।' यों कहकर उस कन्याने किवाड़ बंद करके ताला लगा दिया और चाभीको अपने पास रख लिया।

उधर उस लड़कीका पिता बाहरसे आया, उसे पता नहीं था, वह आकर उसी खाटपर सो गया कि जिसपर पहले वह लड़का सोया था। उसको नींद आ गयी और ज्यों ही उसके पुत्र आये, बिना सोचे-समझे उन्होंने उसका वध कर दिया। फिर गड्ढा खोदा गया। उसके बाद तलाश की गयी कि रुपये कहाँ हैं। इतनेमें देखा कि जिसका वध किया वह तो उनका पिता ही है। ज्यों ही देखा त्यों ही वे रोने-चिल्लाने लगे और कहने लगे—जँवाईजी हमारे पिताका वध करके कहीं चले गये। बहुत चिल्लाये।

सूर्योदय होते ही थानेदार आ पहुँचा। उन्होंने बयानमें कहा कि हमारे जवाँईजी कल आये थे वे हमारे पिताको मारकर कहीं चले गये। थानेदार यह सब सुन ही रहे थे कि वह कन्या बोल उठी कि 'थानेदारजी! मेरी भी एक अर्ज सुनो—आप अभी हमारे घरमें तो गये नहीं, पहले अंदर चलकर देखिये।' जाकर देखते क्या हैं कि एक तरफ तो लाश पड़ी है और दूसरी ओर गड्ढा खुदा है। तब लड़कीने सारा वृत्तान्त कह सुनाया। फिर ताला खोला और कहा 'ये मेरे पति हैं।' लड़केसे पूछा कि 'तेरे पास क्या है?' लड़केने जवाब दिया कि, 'मेरे पास दस हजार रुपये हैं।' फिर लड़केने सारी बातें सच-सच सुना दीं। दोनों साले पकड़े गये। उस लड़कीका विवाह करके उस लड़केके साथ भेज दिया गया।

छोटी-सी कन्याका यह पातिव्रत्य और साहस सराहनीय है!

—भोनालाल विद्यार्थी

(३)

करनीका फल

घटना लगभग दो-तीन वर्ष पहलेकी है। जिला बुलन्दशहरमें दादरीके समीप एक गूजरोंका ग्राम है, जिसमें एक पहलवान रहता था। अपने परिवारमें वह अकेला ही सदस्य था। भाई, बहिन, स्त्री, माता-पिता कोई भी घरमें न था। वह अपने पास एक भैंस रखता और दूध पीता। विधाताका विधान जैसा होता है, वह होकर ही रहता है। घरको छोड़कर जैसे ही वह बाहर जाता तो पीछेसे एक कुत्ता दीवालको लाँघकर उसके अग्निपर रक्खे हुए दूधको पी जाता। कुछ दिन व्यतीत होनेपर एक दिन कुत्ता आया और दूध पीने लगा। दैवयोगसे उस दिन वह पहलवान घरपर ही था। वह उक्त कुत्तेको देखकर मन-ही-मन जल उठा और कर्त्तव्याकर्त्तव्यका विचार न करके उसने चर्खीमेंसे धुरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तकुआ निकालकर उससे तुरंत उस कुत्तेकी आँखोंको फोड़ दिया। कुत्तेके नेत्रोंसे रुधिरधारा बह निकली। वह कुत्ता आँखें फूटनेके बाद १५ दिनोंतक बड़ी पीड़ा सहता रहा। ठीक पंद्रहवें दिन वह यमलोकका अतिथि बना!

किये हुए शुभ-अशुभ कर्मका फल यहाँ या वहाँ भोगना ही पड़ता है—

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्॥

एक दिन वह पहलवान यमुनानदीके तटसे करीब एक मील दूर दराँतीसे झूँड़ काट रहा था, उसको करनीका फल दुगुना ही मिलना था। दुर्भाग्यवश वहाँपर उसकी दोनों आँखें तीक्ष्ण दराँतीकी धारसे फूट गयीं। वह अन्धा हो गया। एक मासतक वह भयानक पीड़ा सहता हुआ जीवित रहा। मासके अन्तिम दिन वह भी मर गया। करनीका फल हाथोंहाथ मिल गया!

—हेमराजसिंह शास्त्री वाचस्पति, विशारद

(४)

चिथड़ेमें लिपटा रत्न

लगभग चालीस वर्ष पहलेकी बात है। पालीतानामें कार्तिकी पूर्णिमाके दिन हजारों तीर्थयात्री उमड़ पड़े थे। सारी धर्मशालाएँ भर गयी थीं।

इसी भीड़में एक राजस्थानी बुढ़ियामाई भी यात्राके लिये आयी थी, अकेली ही थी। सामानमें उसके पास एक फटी-पुरानी साड़ीमें लपेटी हुई पोटली थी, जिसे वह बड़ी सावधानीसे सँभाले हुई थी। इस अकिञ्चन-सी दिखायी देनेवाली बुढ़ियामाईको किसी धर्मशालाके बरामदेमें भी टिकनेको जगह नहीं मिली। इसलिये उसने धर्मशालाके बाहरके चौकमें जैसे-तैसे रात बितायी।

अनाज और दूधकी बहुतायतके उस जमानेमें इस बड़ी यात्राके समय एक विशाल जीमनवार (भोज) हुआ करती और उसके लिये बम्बईके दो धनी पुरुष आवश्यक रकम दिया करते। इस बार किसी कौटुम्बिक कारणसे वे दोनों नहीं आ सके थे। अतः जीमनवार कदाचित् न हो—ऐसी चर्चा करते हुए कुछ यात्री दूसरे दिन सबेरे बुढ़ियामाईके समीपसे निकले। बुढ़ियामाईके कानोंमें आवाज गयी और वह तुरंत दौड़कर पहुँची वहाँकी व्यवस्थापक फार्मके मुनीमजी-के पास। मुनीमने इस फटेहाल बुढ़ियामाईका स्वागत किया तथा वह किस कामके लिये आयी है, सहानुभूतिके साथ पूछा।

बुढ़ियामाईने जीमनवार बंद रहेगी या होगी—इस विषयमें पूछा। मुनीमने परिस्थिति बतला दी, तब बुढ़ियामाई-ने मुनीमसे कहा कि 'आप मेरी ओरसे जीमनवारका प्रबन्ध करा दीजिये।' मुनीमजी बुढ़ियामाईकी हालत देखकर इसे स्वीकार करनेमें हिचक रहे थे, इसी बीच बुढ़ियामाईने अपनी पोटली खोली। पाँच-पाँच तोले सोनेके दस पासे निकालकर मुनीमको देते हुए बोली—'मुनीमजी! यह पचास तोला सोना है। इससे जीमनवारका प्रबन्ध करके जो कुछ बचे सो गरीब तथा सुपात्रको गुप्त दान कर दें।'

पालीतानाके यात्रियोंमें इस बातके फैलते देर न लगी और चिथड़ेमें लिपटे रत्नको देखने तथा उसका वन्दन करने थोड़ी ही देरमें यात्रियोंकी भीड़ लग गयी। 'अखण्ड आनन्द'।

—झवेरभाई, बी० सेठ

(५)

एक चौकीदारकी भलाई

बात हालकी ही है। विक्रम विश्वविद्यालयके राजनीति विभागके अध्यक्षीय पदसे अवकाश ग्रहण करनेपर मैंने काशी-में निवास करनेका निश्चय किया। १५ अक्टोबरकी रात-को कुल सामान ट्रकद्वारा उज्जैनसे भेज दिया और १६ अक्टोबरको मैं और मेरी धर्मपत्नी अपनी कारसे शिवपुरीके लिये रवाना हो गये। गाड़ीमें नाजुक चीजें-जैसे टाइपराइटर, रेडियो और कुछ कीमती चीजें जेवर आदि डिकीमें रख लिये थे। कुछ सामान गाड़ीके ऊपर बाँध लिया था। अभी गुनासे १८ मील दूर थे कि गाड़ी बम्बई-आगरा रोडपर करीब चार बजे शामको अकस्मात् रुक-कर खड़ी हो गयी। मेरे ड्राइवर गुलाबसिंहने समझा कि गियरमें कुछ गड़बड़ी है। परंतु अपनी कोशिशमें वह असफल रहा।

आसपास कोई भी आबादी नहीं थी। मिलों सिवा जंगलके और कुछ नज़र नहीं आता था। किंतु आश्चर्य कि जहाँ गाड़ी रुकी थी, करीब-करीब उसके सामने ही खटकिया-का डाकबँगला था। मैंने चौकीदारसे बातचीत की। उसने सहर्ष बँगलेके कमरे खोल दिये। गाड़ीको धक्का देकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बगलमें खड़ा कर दिया । यही नहीं, उसने आश्वासन दिया कि घबरानेकी कोई बात नहीं है । पहले भी लोगोंकी कारें खराब हुई थीं और उसने गुनाके एक चतुर कारीगरको बुलाकर उन्हें ठीक करवाया । उसके यह कहनेपर हमें संतोष हुआ । रातको साइकिलपर एक मील जाकर वह चौकीदार एक भोजनालयसे हमारे लिये भोजन लाया और उसने अपनी गायका दूध हमें पीनेको दिया ।

जो लोग पुरानी ग्वालियर रियासतसे परिचित हैं वे जानते हैं कि प्रजावत्सल माधव महाराजने अपने अफसरों और दीगर राहगीरोंके आरामके लिये कितने सुन्दर डाकबँगले बनवा दिये हैं । यह डाकबँगला भी बड़ा आरामदेह था । चारों ओर कुछ फासलेपर छोटी-छोटी पहाड़ियाँ थीं । वहाँ हमलोग चैनसे सोये ।

सुबह उठनेपर मैंने चौकीदारको गुना रवाना किया । उसने मुस्तैदीसे कहा कि साहब मैं कारीगरको बारह बजेसे पहले ही लेकर यहाँ आ जाऊँगा । और वास्तवमें साढ़े बारह बजे सुल्तान अहमद और उसके साथ एक लड़का टूलबक्स लेकर आ पहुँचे । सुल्तान अहमद खुद भी एक लड़केकी ही उम्रका था । लेकिन अपने काममें निपुण । उसने कारको देखते ही कहा कि 'गियरमें कुछ खराबी नहीं, मालूम पड़ता है कि पहियेका धुरा टूट गया है ।' उसका कहना ठीक था वह पहियेकी ओर टूटे हुए धुरेको वेलडिंगके लिये गुना ले गया और साढ़े बारह बजे रातको वापिस आकर लालटेनकी रोशनीमें ढाई बजेतक फिट कर दिया । मैंने चौकीदारसे कहा था कि डाकबँगलेमें बिजलीकी रोशनी नहीं है । रातमें फिटिंग कैसे होगी । उसने कहा कि एक लालटेन आपके कमरेकी है और एक लालटेन मैं अपनी दे दूँगा । वास्तवमें दो लालटेनोंसे बड़ा काम चला । १८ तारीखको हमलोग फिर कारसे रवाना हुए और सकुशल काशी पहुँच गये । रास्तेमें और कोई घटना नहीं हुई ।

मेरा अपना निजी विश्वास है कि खटकियामें जो घटना हुई, उसमें हमको निश्चय ही दैवी सहायता प्राप्त हुई । अगर हमारी गाड़ी डाकबँगलेके सामने न खड़ी होकर कहीं और खड़ी होती तो हमारी परीशानीका अनुमान किया जा सकता है । दूसरे वह चौकीदार कोई साधारण मनुष्य नहीं था, बल्कि ईश्वरका स्वरूप था । आजकलकी दुनियामें ऐसे लोग कम दिखायी देते हैं जो दूसरोंकी सेवामें उत्साहपूर्वक तत्पर हों ।

—डा० प्रकाशचन्द्र (एम्० ए०, एल्-एल्० बी०, पी-एच्० डी० (लन्दन)

(६)

समृद्धिकी गुरु-चाभी

एक अमेरिकन फार्मने जापानमें अपना व्यापार आरम्भ किया और अपनी आफिसमें काम करनेके लिये उसने जापानके ही लोगोंको नियुक्त किया । साधारणतया अमेरिकामें कामके पाँच दिन होते हैं और शनिवार-रविवारकी छुट्टियाँ होती हैं । अमेरिकाकी रीतिके अनुसार इस फार्मने जापानमें भी वही नीति-रीति चलायी । सोमवारसे शुक्रवारतक काम और शनि-रविवारको छुट्टी । इसपर वहाँ काम करनेवाले सभी जापानी कर्मचारियोंने इसका विरोध किया । यह बात हम सभीको आश्चर्यमें डालने-जैसी है । कोई समझेंगे कि यह विरोध छुट्टियाँ बढ़ानेके लिये होगा । बड़ा भारी आश्चर्य हुआ । विरोधका कारण समझमें नहीं आया । आखिर कर्मचारियोंसे पूछा गया—'आपलोगोंको क्या तकलीफ है ?'

जानते हैं क्या दिया गया इसका उत्तर ? उन लोगोंने कहा—'हमें दो छुट्टियाँ नहीं चाहिये, हमारे लिये एक ही छुट्टी काफी है ।' कारण क्या बताया, यह भी सुनिये । 'यहाँकी जनता मानती है कि अधिक छुट्टियाँ होनेसे हम आलसी बन जायँगे । परिश्रम करनेमें हमारा मन नहीं लगेगा और इससे भी अधिक नुकसान तो यह होता है कि छुट्टीके दिन हमलोग अधिक मौज-मजे करते हैं और खर्च भी अधिक लगता है । जो छुट्टी हमें आर्थिक भारसे दबा दे और शरीर-सम्पत्तिको घटा दे, ऐसी छुट्टी हमारे जीवनमें नहीं खपती ।'

कैसी नीरोग मनोदशा है । सचमुच इसी प्रजाको ऊँचा उठनेका अधिकार है । श्रमका जीवनके साथ गहरा अनुबन्ध है । इस प्रजाने जगत्के दूसरे देशोंको मेहनत करके बतला दिया कि कैसे टूटे-फूटे कचरेसे भव्यता प्राप्त की जा सकती है ।

अपने यहाँ भी सब इसका अनुकरण करने लगें तो ! इस समृद्धिकी गुरु-चाभी मिल गयी । श्रमका कितना औचित्यपूर्ण गौरव है ? 'अखण्ड आनन्द'

—हंसा बहेन मो० पटेल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याणका उपासना-अङ्क

लेख बहुत आ रहे हैं। एक-एक विषयपर बहुत-से। अतएव सब नहीं छप सकेंगे। सूचीके खास-खास विषयोंपर लेख भेजनेकी कृपा करें तथा ऐसी पौराणिक, ऐतिहासिक घटनाएँ भी लिखकर भेजें, जिनका उपासना-विशेषसे सम्बन्ध हो तथा जिनपर चित्र दिये जा सकें।

—सम्पादक 'कल्याण'

सूचना

कल्याणके सम्पादक श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारका स्वास्थ्य इधर ठीक नहीं है, इसलिये वे पत्रव्यवहार करनेमें असमर्थ हैं। अतएव बिना विशेष कार्यसे उन्हें कृपया पत्र न लिखें और बिना पहले समय नियत किये मिलनेके लिये भी न पधारें।

कल्याणके ग्राहकोंकी सेवामें नम्र निवेदन

इधर देशमें जो काम कम करनेकी दुष्प्रवृत्ति चली है, वह कुछ समयसे गीताप्रेसमें भी आ गयी है। सम्भव है—काम बंद हो जाय। इसलिये कल्याणके प्रत्येक ग्राहक महोदयसे यह नम्र निवेदन है कि प्रेस-बंदीके कारण यदि उन्हें कल्याणके शेष अङ्क न मिलें तो वे इतने ही अङ्कोंमें संतोष करें। एक विशेषाङ्क ही पूरे वर्षके मूल्यका है। अब तो डाक-व्यय भी इतना बढ़ गया है कि कल्याणमें वार्षिक खर्च बहुत अधिक लगेगा। यह विषय भी विचारणीय है।

नयी पुस्तक ! *प्रकाशित हो गयी !!*

गीता-दैनन्दिनी सन् १९६८ ई०

आकार २२×२९ बत्तीस पेजी, पृष्ठ ४१६, मूल्य साधारण ७५ पैसे, हाथ करघेके कपड़ेकी जिल्द ९० पैसे, डाकखर्च ८५ पैसे।

इसमें हिंदी, अंग्रेजी, पंजाबी और नये भारतीय शक-संवत्के दिनाङ्कसहित पूरे वर्षमें दैनिक क्रमसे सम्पूर्ण श्रीमद्भगवद्गीता, तिथि, वार, घड़ी और नक्षत्रका संक्षिप्त पत्रक, अंग्रेजी तारीखोंका वार्षिक केलेण्डर, अनेक उपयोगी धार्मिक उपदेशप्रद बातें तथा रेल, डाक, तार और स्वास्थ्य-रक्षा-सम्बन्धकी सूचनाएँ भी दी गयी हैं।

☞ गीता-दैनन्दिनीके विक्रेताओंको विशेष रियायत मिलती है। अतः यहाँ आर्डर देनेसे पहले अपने यहाँके पुस्तक-विक्रेताओंसे माँगिये। इससे आपके समय तथा डाकखर्चकी भारी बचत हो सकती है।

बहुत दिनोंसे अप्राप्त पुस्तकका नया संस्करण

श्रीविष्णुसहस्रनाम

(श्रीआद्यशंकराचार्यकृत भाष्य—हिन्दी-अनुवादसहित)

अनु०—स्वामीजी श्रीभोलेबाबाजी

आकार डिमाई आठपेजी, पृष्ठ-सं० २८०, संस्करण आठवाँ, मूल्य १.१० डाकखर्च १.००।

व्यवस्थापक—**गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

31 AUG 1967
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
रजि० सं० एल० १७५

उच्च आध्यात्मिक स्तरपर प्रतिष्ठित भारत

अति निम्नस्तरके भौतिक धरातलपर

त्याग और **कर्तव्य**	के स्थानपर	**धन** और **अधिकार**

सिद्धान्तका कोई मूल्य नहीं

१-विभिन्न विधानसभाओं, संसद् और सेक्रेटेरियटोंमें होनेवाले आये दिनके असाधारण शोर-गुल, हंगामे, गाली-गलौज, मारपीट, जूता-पैजार—

इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

२-छल, बल, कौशल और धनके द्वारा तथा बार-बार एक पार्टीके लोगोंका दूसरी पार्टीमें जाकर नयी सरकारमें अधिकार पानेका प्रयत्न—

इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

३-देशकी सीमाओंपर आक्रमणकारियोंकी बलवृद्धि, सैन्यसंग्रह, शस्त्रसंचय तथा घरमें भी इनकी सहायताके होनेवाले गोपनीय विशाल प्रयत्न आदिको देखते हुए भी, देशमें अन्नाभावसे मचे हुए हाहाकारको सुनते हुए भी, तमाम क्षेत्रोंमें नैतिक पतनको प्रत्यक्ष करते हुए भी केवल धन तथा अधिकारकी लिप्सासे अशोभनीय रूपमें परस्पर लड़ते-भिड़ते रहना—

इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

४-गैरकानूनी मनमानी उच्छृङ्खलताओं, घेरावों और दुराचरणोंके करने-कराने और प्रोत्साहन देनेकी हिंसापूर्ण प्रवृत्ति—

इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

इससे—

१-विश्वके अन्यान्य देशोंमें भारतकी प्रतिष्ठाको बहुत बड़ा धक्का लगता है।

२-जनतामें अविश्वास बढ़ता जा रहा है।

३-उच्चस्तरके संसद्सदस्य तथा विधायकोंकी और जननेताओंकी अनुशासनहीनता, अव्यवस्था, असद्व्यवहार, परस्पर दुर्वाक्योंके प्रयोग और हिंसावृत्तिको देखकर जनताका मानस-स्तर गिरता है और वह भी इसी प्रकार धन और अधिकारके लिये नये-नये दुर्विचार और दुष्कर्मोंमें प्रवृत्त होती है।

४-भीतरी और बाहरी शत्रुओंका बल बढ़ता है। और—

५-सबसे बड़ी हानि होती है—मानवजीवनकी परम अमूल्य निधि आध्यात्मिकताका नाश और मानवताका पतन।

इससे बचिये—शीघ्र बचिये—और देशको बचाइये।

यही विनीत प्रार्थना है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याण

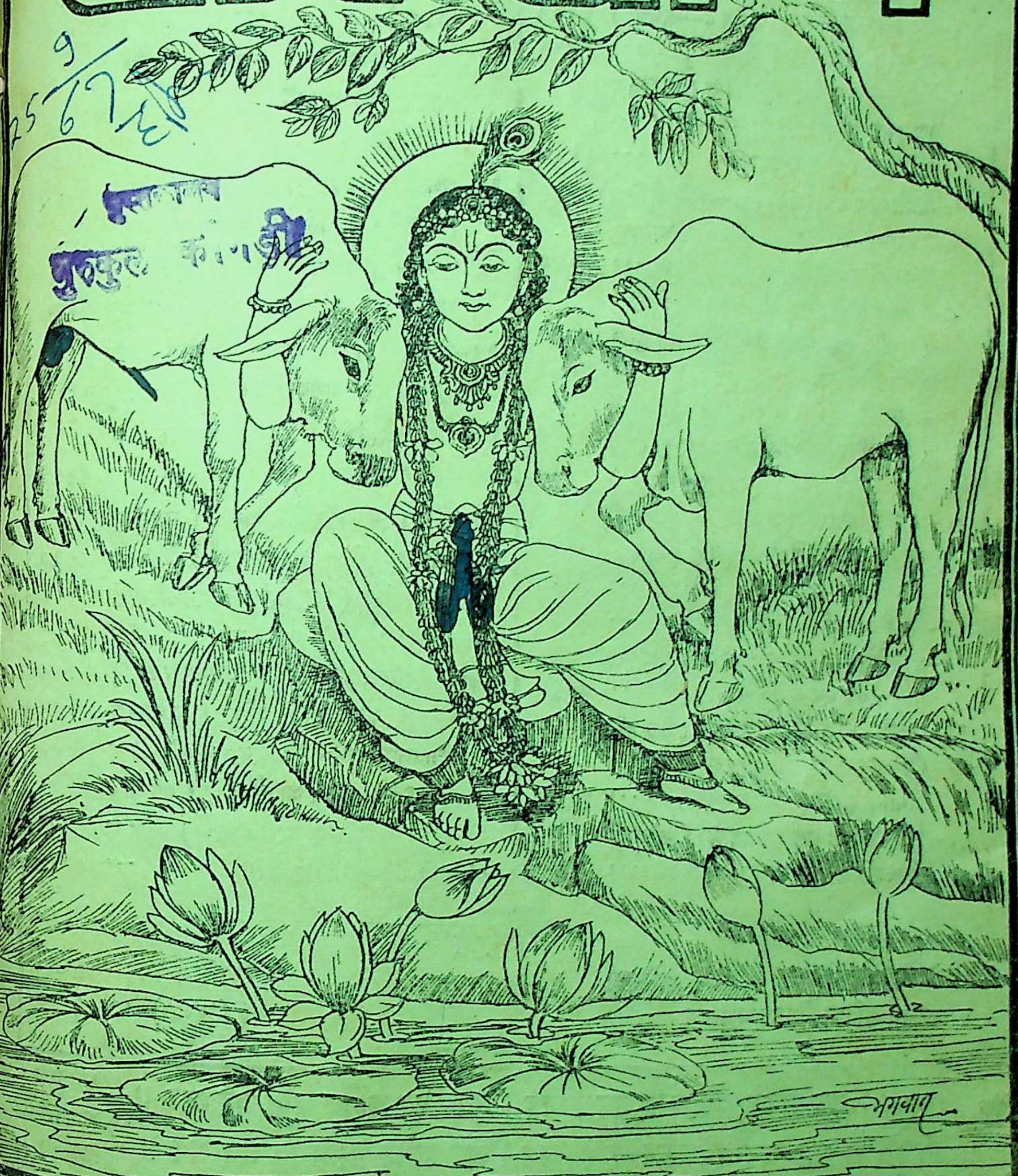

वर्ष ४१] * * * [अङ्क १

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्करण १,५०,०००

विषय-सूची

कल्याण, सौर आश्विन २०२४, सितम्बर १९६७

विषय — पृष्ठ-संख्या

१–शरभंग मुनिका ब्रह्मधाम-प्रयाण [कविता] ... ११५३
२–कल्याण ('शिव') ... ११५४
३–एक महात्माका प्रसाद (प्रेषक–'माधव') ... ११५५
४–जीवनकी सफलता [कविता] ... ११५६
५–संतों—महापुरुषोंकी महिमा (ब्रह्मलीन पूज्यपाद अनन्तश्रीविभूषित श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके वचनामृत) ... ११५७
६–योगी और योग (पं० श्रीकमलापतिजी मिश्र) ... ११६०
७–मनन-माला (ब्र० श्रीमगनलाल हरिभाई व्यास) ... ११६२
८–सिर्फ तुझे लुआठी ही तो हाथ लगेगी ! (श्रीउपेन्द्रनाथजी मिश्र 'मञ्जुल' 'काव्यतीर्थ' हि० सा० भूषण) ... ११६६
९–लोग अच्छाईकी तरफ भी बढ़ रहे हैं (डा० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, विद्याभूषण, दर्शनकेसरी) ... ११६७
१०–मानसिक स्वास्थ्य (डा० श्रीकन्हैयालालजी सहल, अध्यक्ष हिंदी-संस्कृतविभाग, बी० आई० टी० एस्०, पिलानी) ... ११७२
११–जप [कहानी] (श्री'चक्र') ... ११७३
१२–किनारेपर—(श्रीबालकृष्णजी बलदुवा बी० ए०, एल्-एल्० बी०) ... ११७५
१३–दक्षिण भारतकी तीर्थयात्रा (सेठ श्रीगोविन्ददासजी, श्रीमती रत्नकुमारी देवी, श्रीगोविन्दप्रसादजी श्रीवास्तव) ... ११७६
१४–छोटे लोगोंके बड़े कारनामे (श्रीदुर्गाशंकरजी त्रिवेदी) ... ११८०
१५–मनुष्यकी विनाशकी ओर प्रगति और उससे बचनेके उपाय (हनुमानप्रसाद पोद्दार) ११८३
१६–लीला-पुरुषोत्तमका प्राकट्य (गीतावाटिका, गोरखपुरमें श्रीकृष्णजन्माष्टमीके महोत्सवपर पठित) ... ११८७
१७–भगवान् श्रीकृष्णकी आविर्भाव-तिथि (श्रीहरिनाथ पाठक चौधुरी) ... ११८९
१८–गोवध-निरोध (आचार्य श्रीविनोबा भावे) ११९२
१९–मोक्षदायिनी मृत्युका स्वागत और मृत्युके रूपमें भगवान्के दर्शन [कविता] ११९५
२०–देशमें आसुरी सम्पदाका विस्तार और हमारा कर्तव्य ११९६
२१–गोरक्षा क्यों और कैसे करें ? (स्वामीजी श्रीकेशवपुरीजी वेदान्ताचार्य) ... ११९७
२२–विदुषी बहू (चतुर्वेदी श्रीमदनमोहनजी 'मिश्र') १२०१
२३–धर्म और राष्ट्र (श्रीराजेन्द्रप्रसादजी जैन) १२०४
२४–मृत्युसे अमरत्वकी ओर (प्राध्यापक श्रीदिनकर राव साध, एम्० ए०) ... १२०७
२५–क्या हम सचमुच जी रहे हैं ? (श्री बी० एल्० 'अरविन्द' एम्० ए०) ... १२०९
२६–पढ़ो, समझो और करो ... १२१२

चित्र-सूची

१–गोवत्स और गोपाल (रेखाचित्र) ... मुखपृष्ठ
२–शरभंग मुनिका दिव्यधाम-प्रयाण (तिरंगा) ... ११५३

वार्षिक मूल्य
भारतमें ८.५०
विदेशमें १५.६०
(१५ शिलिंग)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय । सत-चित-आनँद भूमा जय जय ॥
जय जय विश्वरूप हरि जय । जय हर अखिलात्मन् जय जय ॥
जय विराट जय जगत्पते । गौरीपति जय रमापते ॥

साधारण प्रति
भारतमें ५० पैसे
विदेशमें ८० पैसे
(१० पेंस)

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाल गोस्वामी, एम्० ए०, शास्त्री
मुद्रक-प्रकाशक—मोतीलाल जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरभंग मुनिका दिव्यधाम-प्रयाण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

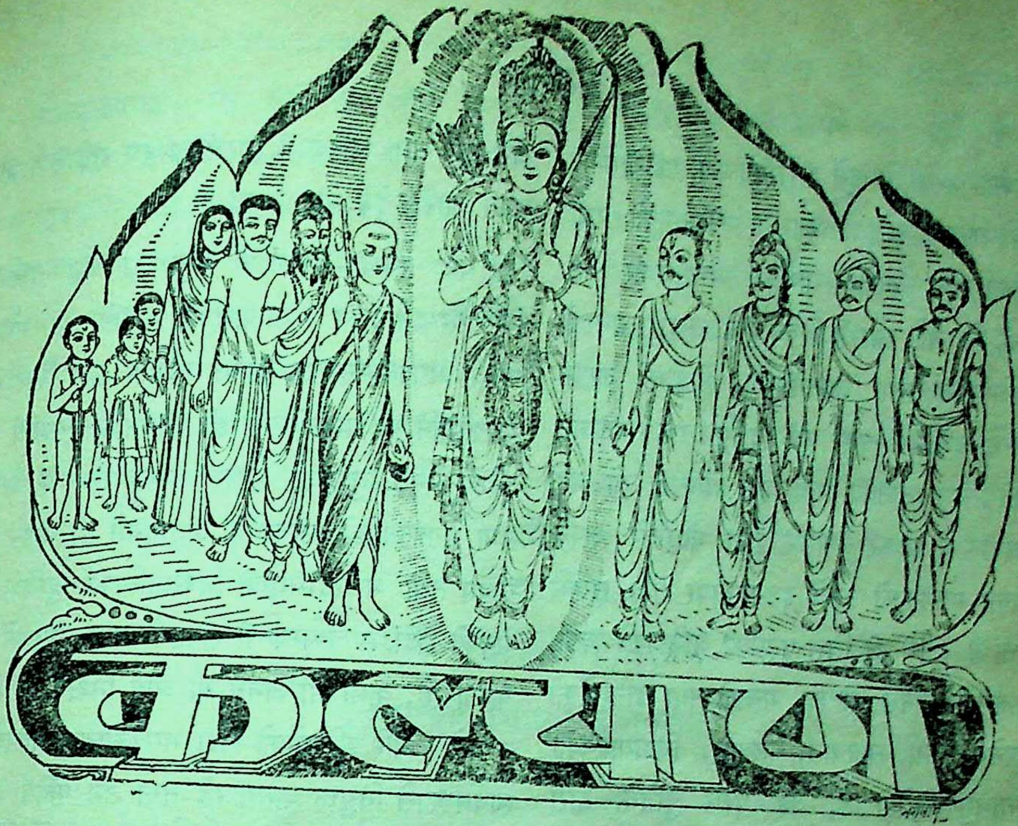

अविरतभवभावनातिदूरं भवविमुखैर्मुनिभिः सदैव दृश्यम् ।
भवजलधिसुतारणाङ्घ्रिपोतं शरणमहं रघुनन्दनं प्रपद्ये ॥
रतिपतिशतकोटिसुन्दराङ्गं शतपथगोचरभावनाविदूरम् ।
यतिपतिहृदये सदा विभातं रघुपतिमार्तिहरं प्रभुं प्रपद्ये ॥

वर्ष ४१ } गोरखपुर, सौर आश्विन २०२४, सितम्बर १९६७ { संख्या ९
पूर्ण संख्या ४९०

शरभंग मुनिका ब्रह्मधाम-प्रयाण

विधिवत् अग्निस्थापना करके किया प्रज्वलित उसे अशेष ।
घृतकी आहुति मन्त्रसहित दे, मुनिने उसमें किया प्रवेश ॥
जला सभी कुछ, अग्नितुल्य धर तेजस्वी कुमारका रूप ।
अग्निराशिसे ऊपर उठकर शोभा पाने लगे अनूप ॥
रामभद्र सीता लक्ष्मण सह रहे देखते श्रीभगवान् ।
सुर-मुनि-लोक लाँघ पहुँचे मुनि चिन्मय ब्रह्मधाम द्युतिमान् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याण

याद रक्खो—उपनिषद्में शरीरको रथ, इन्द्रियोंको घोड़े, मनको लगाम, बुद्धिको सारथी, जीवात्माको रथी और विषयोंको रथके चलनेके मार्गकी उपमा देकर यह कहा गया है कि जैसे सारथी विवेकयुक्त कहा जाना है यह स्मरण रखने तथा जाननेवाला, घोड़ोंकी लगाम थामकर उन्हें चलानेमें चतुर एवं दुर्धर्ष तथा बलवान् घोड़ोंको नियन्त्रण रखनेकी शक्तिवाला होता है तो वह घोड़ोंके अधीन न होकर लगामके द्वारा घोड़ोंको अपने वशमें रखकर मालिकको उसके इष्ट-स्थानपर शीघ्र सुखसे पहुँचा देता है। वैसे ही जिस पुरुषकी बुद्धि विवेकवती, कर्तव्याकर्तव्यके ज्ञानसे सम्पन्न, मनको तथा इन्द्रियोंको वशमें रखनेमें समर्थ, सावधान, बलवान्, निश्चयात्मिका तथा ईश्वराभिमुखी होती है, वह पुरुष बुद्धिके द्वारा मनको संयममें रखकर इन्द्रियोंके द्वारा होनेवाले प्रत्येक आचारको शास्त्रानुकूल भगवत्प्रीत्यर्थ निष्कामभावसे सम्पन्न करके अपने-आपको भगवान्के धाममें ले जाता है।

याद रक्खो—जिसकी बुद्धि अनिश्चयी, अविवेकवती, मनको अपने अधीन रखनेमें असमर्थ, इन्द्रियोंको मनके सहारे इच्छानुसार सत्पथपर भगवान्के मार्गपर चलानेमें अक्षम तथा बहुशाखावाली होती है, उसका असंयत मन उच्छृङ्खल तथा बहिर्मुखी बलवान् इन्द्रियोंके वशमें हो जाता है। इन्द्रियाँ सदा-सर्वदा दुराचार, दुष्कर्ममें लगी रहती हैं। फलतः बुद्धि और भी कुविचार तथा अविचारसे युक्त हो जाती है और वह पुरुष मानव-जीवनके परम तथा चरम लक्ष्य भगवत्प्राप्तिसे वञ्चित तो रहता ही है, बुरे कर्मोंके फलस्वरूप सदा संसारचक्रमें भटकता रहता है—बार-बार आसुरी योनियोंमें जाता है और नरकोंकी असह्य यातना भोगनेको बाध्य होता है। इस प्रकार उसका घोर पतन हो जाता है—वैसे ही जैसे मूर्ख तथा अविवेकी सारथीका रथ रथी तथा घोड़ोंके समेत गहरे गड्ढेमें गिर पड़ता है!

याद रक्खो—इसलिये मनुष्यका यह कर्तव्य है कि परमानन्दमय भगवान्की प्राप्ति या मोक्षरूपी अथवा भगवत्प्रेमस्वरूप महान् लक्ष्यपर सदा स्थिर रहे—भगवत्प्राप्ति या भगवत्प्रेमको ही जीवनका एकमात्र परम उद्देश्य समझे, बुद्धिको सदा भगवत्-सम्बन्धी विचारोंमें तथा भगवत्प्राप्तिके साधनोंके अनुष्ठानमें ही लगाये रक्खे, पवित्र तथा भगवदभिमुखी निश्चयात्मिका बुद्धिके द्वारा मनको सदा भगवत्सम्बन्धी संकल्पों तथा स्मरणमें संलग्न करता रहे, कभी भी अनर्थ या व्यर्थ निश्चय या चिन्तन न करे। और इन्द्रियोंको सदा भगवत्सम्बन्धी विषयोंमें ही साधनरूपसे नियुक्त करता रहे तथा उन पवित्र भगवत्-सम्बन्धी विषयोंमें ही निरन्तर इन्द्रिय, मन, बुद्धिको रसकी—निर्मल भगवत्प्रेमकी—परमानन्दकी प्राप्ति होती रहे।

याद रक्खो—जिसके कान परनिन्दा, पापचर्चा, असत् वार्ता, व्यर्थकी बातचीत एवं पतनकी ओर ले जानेवाले गान-वाद्य या कोई भी शब्द और अपनी प्रशंसाके वाक्य न सुनकर केवल सत्-चर्चा, भगवत्-लीला-कथा, भगवत्-स्वरूपकी वार्ता, संतों-भक्तोंके गुणगान, जीवनको उच्चस्तरपर पहुँचानेवाले वाक्य सुनते रहते हैं; जिनकी आँखें भोग्य-विषयोंको न देखकर प्राकृत जगत्में सर्वत्र भगवान्को और भगवान्के सौन्दर्यको तथा भगवद्विग्रहों, साधुमहात्मा तथा संतोंको, पवित्र वस्तुओं तथा स्थानोंको देखती हैं; जिनकी त्वगिन्द्रिय कोमल विकारी पदार्थों, विकार उत्पन्न करने तथा बढ़ानेवाले अङ्गोंका स्पर्श न करके पवित्र करनेवाले संत-चरणोंका, जीवनमें सात्त्विकता लानेवाले पदार्थोंका स्पर्श करती हैं; जिनकी जिह्वा स्वाद लगनेवाले विकारी राजस, तामस पदार्थोंका रस न चखकर सात्त्विक पदार्थोंका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा भगवत्प्रसादका रस लेती है और जिनकी नासिका विकार उत्पन्न करनेवाले सुगन्ध-द्रव्योंको छोड़कर पवित्र गन्धका, भगवत्प्रसादरूप गन्धका और सात्त्विक पदार्थोंके गन्धका सेवन करती है—वे पुरुष इन इन्द्रियोंके द्वारा भगवान्‌की सेवा करते हैं; इन्द्रियोंके ये पवित्र विषय उनके मन-बुद्धिको और भी पवित्र करते रहते हैं और उनके शरीरोंके द्वारा भी भगवत्सेवाका ही कार्य होता है—इस प्रकार उनके मन, बुद्धि, इन्द्रिय तथा शरीर स्वयं भगवत्कार्यमें लगे रहते हैं और एक दूसरेको लगाते रहते हैं। इससे उनका जीवन पवित्र, शान्त, सुखमय होकर भगवत्प्राप्तिका साधनस्वरूप बन जाता है और वे अन्तमें भगवत्प्राप्ति या भगवत्प्रेम-प्राप्तिके द्वारा सफलजीवन हो जाते हैं। अतएव सदा सर्वदा बुद्धिको विवेकवती बनाकर मन-इन्द्रियोंको निरन्तर भगवान्‌के पवित्र पथपर चलाते रहें—यही परम कर्तव्य है।

'शिव'

एक महात्माका प्रसाद

[सत्सङ्गमें यथाश्रुत यथागृहीत]

(प्रेषक—'माधव')

साधकका अर्थ है जिसे सत्सङ्ग करनेकी स्वतन्त्रता हो। सिद्धिका अर्थ है जीवनका उपयोगी हो जाना। सत्सङ्गका अर्थ अभ्यास नहीं—असत्‌का त्याग ही है सत्सङ्ग। श्रद्धा और विश्वासके आधारपर साधन-निर्माण सत्सङ्गके द्वारा ही होता है। असत्‌का त्याग ही सत्सङ्गका मूल आधार है। वह असत् है क्या? बुराई करना, बुराई चाहना असत् है। सच तो यह है कि बुराईका जीवनमें कोई स्थान है ही नहीं। हमारे शरीर, मन, वाणी, क्रियासे कभी किसीकी बुराई न हो—यही है सच्चा सत्सङ्ग। हम कभी भी बुराई नहीं करेंगे—इस सत्यको स्वीकार कर लें। सामर्थ्यसे कर्मका सम्पादन होता है। बलके बिना कर्मका आरम्भ नहीं होता। जो कुछ हमारे पास बल है—तनका, धनका, योग्यताका—सबका सदुपयोग करना ही सत्सङ्गका सार रहस्य है। बलका दुरुपयोग ही बुराई है।

राष्ट्रीयता और मजहब—दोनों ही जीवनसे बुराईको निकाल देना चाहते हैं; परंतु इनकी आड़में बुराइयाँ हुईं। राष्ट्रीयताका अर्थ है न्याय और मजहबका अर्थ है प्रेम। न्याय और प्रेम हमारे जीवनमें आ जायँ तो हमारा जीवन चरितार्थ हो जाय। न्यायका अर्थ है अपराधी अपने अपराधसे परिचित हो जाय, फिर पीड़ित हो जाय और अपराध न करनेका व्रती हो जाय। जबतक मनुष्य अपने साथ न्याय नहीं कर सकता, वह कभी सत्सङ्गका अधिकारी नहीं हो सकता। अपने प्रति न्याय एवं दूसरोंके साथ प्रेम और क्षमा। अपने अधिकारका ज्ञान मानवको है। प्रेम कहता है अपने अधिकारका त्याग करो। अधिकार-त्यागके बिना एकता रह नहीं सकती। जहाँ अपने ही लाभका ध्यान है, वहाँ ईमानदारी कहाँ है? जबतक मनुष्य अपने साथ न्याय नहीं करता, राष्ट्रीयताका विकास हो नहीं सकता। राष्ट्रीयताके बिना सुन्दर समाजका निर्माण हो नहीं सकता। इसीलिये राष्ट्रीयता=न्याय; मजहब=प्रेम।

ईश्वरको माननेवाले सभी वैष्णव हैं; क्योंकि वे ईश्वरको 'अपना' बनाकर उसे अपने अंदर प्रीति—प्यारसे उपलब्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करते हैं। मुहम्मदने उसे दोस्त माना, ईसाने पिता माना, मीराँने पति माना। जो मुहम्मदका दोस्त, ईसाका पिता और मीराँका पति है, वह हम सबका 'अपना' है और सच तो यह है कि उसके सिवा 'अपना' कोई है नहीं।

वैष्णवके हृदयमें घृणा, ईर्ष्या, क्रोध उत्पन्न ही नहीं होते। राष्ट्रीयता असफल हो गयी अपने प्रति न्याय न करनेसे। मजहब असफल हो गया दूसरोंके प्रति प्रेम न करनेसे। अधिकार छोड़नेसे ही जीवन शुरू होता है। उदारता, प्रेम, शान्ति और मुक्तिसे परिपूरित जीवन प्रभुको प्रिय होता है—यही सिद्धि है।

मनुष्यका अहं विभु है। शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, अहं क्रमशः सूक्ष्मतर हैं। विश्वकी शान्ति, अपना कल्याण और सुन्दर समाजका निर्माण एक ही वस्तु है। ईमानदारी स्वयं महान् फल है। चाहे कुछ भी हो, तुम्हारी आत्मीयता हमें सदा मिलती रहे—साधकका यही है भाव। प्यारमें मुख्य तत्त्व है अपनापन। भगवान् मेरा है और सब भगवान्का है, उसके सब प्यारे हैं।

तन भी तेरा मन भी तेरा, तेरा सब कुछ प्रान।
सब कुछ तेरा, तू है मेरा, यह दादू का ज्ञान॥

भक्तसे किसीको भय नहीं होता। भक्तको भी किसीसे भय नहीं होता; क्योंकि भगवान् उसके हैं। किसीसे वह कुछ नहीं चाहता, उसका कुछ नहीं है। सर्व-समर्थ उसका है। भक्तमें भय, चिन्ता, शोक नहीं होता। उसमें रहता है अपनेसे उदित नित्य नव रस, जिसे भगवान् पान करते हैं।

ईमानदारीका मूल्य सुख-सुविधा नहीं है। राग-रहित होनेके लिये अपने प्रति न्याय तथा दूसरेके प्रति प्रेमका होना अनिवार्य है। रागरहित भूमिमें योगका उदय होता है। रागरहित व्यक्ति ही योगवित् होता है, योगवित् होता है आत्मवित् और आत्मवित् होता है ब्रह्मवित्। दूसरेके अधिकार देते जायँ, अपने अधिकार छोड़ते जायँ—सुख और शान्तिका यही राजपथ है। चिर शान्ति, अमरत्व और शोकरहित स्थितिका यही है एकमात्र अमोघ साधन।

* * *

भक्ति भक्तका जीवन और भगवान्का स्वभाव है। भक्त वह, जो भगवान्को अपना मानता है। 'वे' मिलें न मिलें, उनकी इच्छा। उनसे कुछ लेना नहीं है। भगवान्को मान लेना ही भगवान्की सबसे प्रिय वस्तु है। शान्ति, मुक्ति, अमरत्वसे भी बढ़कर भक्ति है। भक्तिके पीछे-पीछे मुक्ति और शान्ति चलती हैं। 'उसके' होकर सदाके लिये निश्चिन्त और निर्भय हो जाओ।

जीवनकी सफलता

भोग अनित्य, अपूर्ण सदा हैं, क्षणभंगुर, दुःखोंकी खान। हैं प्रत्यक्ष देखते, तो भी उन्हें चाहते सुखमय मान॥
नित्य मनोरथ नये-नये हम करते, रचते विविध उपाय। मिलते नहीं किंतु मनचाहे, हो रहते निराश, निरुपाय॥
मिलते तो फिर अधिक प्राप्त करनेकी मनमें उठती चाह। इसी बीच वे मिले हुए भी चल देते विनाशकी राह॥
रहता यह विनाशका भय नित, छा जाता विनाशपर शोक। इन असंख्य भय-शोकोंसे है भरा सदा भोगोंका लोक॥
'भोगोंमें सुख है'—यह रहती जबतक मनमें छायी भ्रान्ति। तबतक नये-नये दुख आते कभी न मिल सकती सुख-शान्ति॥
जो हम स्थिर सुख-शान्ति चाहते तो भोगोंकी आशा त्याग। परम सुहृद आनन्दरूप प्रभुको ही भजें सहित अनुराग॥
समझें एक उन्हींको 'मेरे' उनके ही हो रहें अनन्य। उनके एक पुण्य आश्रयसे जीवन सफल, परम हो धन्य॥
यही चरम फल है जीवनका, यही साध्य है एक पुनीत। करें इसीके लिये प्रार्थना प्रभु-चरणोंमें नित्य विनीत॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संतों—महापुरुषोंकी महिमा

(ब्रह्मलीन पूज्यपाद अनन्तश्रीविभूषित श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके वचनामृत)

भगवान् और भगवत्प्राप्त पुरुषोंके कर्म अलौकिक और दिव्य होते हैं । उनके कर्मोंका रहस्य समझना चाहिये । उनके लिये न तो कोई कर्तव्य ही है और न कुछ प्राप्तव्य ही । उनकी सारी चेष्टाएँ केवल संसार-के कल्याणके लिये ही होती हैं । अतः उनकी प्रत्येक क्रियामें दिव्य अलौकिकता झलकती है । उन क्रियाओं-में न तो कर्तापन ही है और न कर्म तथा उनके फलमें ममता, आसक्ति और कामना ही है; अतः उनका अनुकरण करनेसे मनुष्यका कल्याण हो जाता है, इसमें तो कहना ही क्या है, उनकी क्रियाओंके रहस्यको समझनेपर ही मनुष्यके चित्तमें प्रतिक्षण प्रसन्नता और शान्ति होती रहती है । भगवान् और भगवत्प्राप्त पुरुष कर्म करते नहीं, उनके द्वारा शास्त्रविहित कर्म स्वाभाविक होते रहते हैं, इसीलिये उनकी क्रिया आदर्श मानी गयी है । वही साधकके लिये साधन है ।········

× × ×

········भगवत्प्राप्त पुरुषोंके लिये कोई भी प्राप्तव्य वस्तु नहीं रहती; क्योंकि प्राप्त करने योग्य सच्चिदानन्द-घन परमात्माकी उन्हें प्राप्ति हो चुकी है । अतः उनकी सम्पूर्ण आवश्यकताएँ समाप्त हो चुकी हैं । वे आप्तकाम हैं । उनमें कामनाओंका अत्यन्त अभाव है । इसलिये उनका किसी भी कर्म, प्राणी या पदार्थमें किंचिन्मात्र भी प्रयोजन नहीं रहता । उनकी स्थिति परब्रह्म परमात्मामें होनेके कारण उनका अपने देहसे भी कोई प्रयोजन नहीं है; क्योंकि वे विज्ञानानन्दघन परमात्मामें नित्य तृप्त और संतुष्ट हैं, इसलिये न तो उनके लिये कोई कर्तव्य है और न प्राप्तव्य ही ।········

× × ×

········उन महात्मा पुरुषोंके मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ, शरीर, आचरण, वाणी—सभी पवित्र और विलक्षण होते हैं; इसलिये उनके आज्ञापालन, सेवा, नमस्कार और वार्तालाप करनेसे मनुष्य ज्ञानको प्राप्त करके मुक्त हो जाता है (गीता ४ । ३४-३५) । ज्ञानी महात्माके कर्म अपने वर्ण, आश्रम, स्वभाव और देश-कालके अनुसार होते हैं; किंतु वे सभी वर्ण और आश्रमके मनुष्योंके कर्तव्यकर्मोंको स्वयं करके नहीं दिखला सकते हैं । अतः वे कल्याणकामी साधकोंको उनके वर्ण, आश्रम, स्वभाव और देशकालके अनुसार उनके कर्त्तव्यकर्मोंको वाणीद्वारा ही बतलाया करते हैं; इसलिये उनकी आज्ञाका पालन करनेसे मनुष्य संसार-सागरसे पार हो जाता है । (गीता १३ । २५)

× × ×

ज्ञानीपुरुषके द्वारा शास्त्रविहित कर्मोंकी अवहेलना या त्याग नहीं होता; फिर शास्त्रविपरीत कर्म तो उनके द्वारा हो ही कैसे सकते हैं ? क्योंकि यदि ऐसा होने लगे तो लोग भ्रष्टाचारी होकर नष्ट हो सकते हैं; किंतु महापुरुषोंकी क्रिया श्रद्धा-विश्वासपूर्वक होती हुई देखकर कोई भी मनुष्य पथभ्रष्ट नहीं हो सकता; बल्कि लोग उनके शुभ आचरणोंको देखकर उनके अनुसार सावधानीके साथ निःस्वार्थभावसे कर्म करनेमें तत्पर हो जाते हैं ।

× × ×

भगवान् तो भजनेवालोंको भजते हैं, परंतु वे दयालु संत नहीं भजनेवालेका, यहाँतक कि गाली देने और अहित करनेवालेका भी हित ही करनेमें तुले रहते हैं । कुल्हाड़ी चन्दनको काटती है, पर चन्दन उसे स्वाभाविक ही अपनी सुगन्ध दे देता है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काटइ परसु मलय सुनु भाई।
निज गुन देइ सुगंध बसाई॥

× × ×

ऐसे महापुरुषोंकी दया ही नहीं, समता भी बड़ी अद्भुत होती है। उन्हें यदि समताकी मूर्ति कहें तब भी अत्युक्ति नहीं। भगवान् सम हैं और उन संतोंकी भगवान्‌में स्थिति है, इसलिये वे भी स्वाभाविक ही समताको प्राप्त हैं। जैसे सुख-दु:खकी प्राप्ति होनेपर अज्ञानी पुरुषकी शरीरमें समता रहती है वैसे ही संतोंकी चराचर सब जीवोंमें समता रहती है।

× × ×

मान-अपमान और निन्दा-स्तुतिमें भी संतमें समता रहती है, किंतु यह आवश्यक नहीं कि व्यवहारमें सब जगह समताका ही प्रदर्शन हो। हृदयमें मान-अपमानकी प्राप्तिमें हर्ष, शोक आदि विकार नहीं होते।

× × ×

नाटकके पात्रोंमें जैसे सभी प्रकारके बाहरी व्यवहार होते हैं; परंतु उनके मनमें अभिनय-बुद्धिके अतिरिक्त कोई वास्तविकता नहीं होती, इसी प्रकार संतोंके द्वारा नाटकवत् बाहरी व्यवहार होनेपर भी उनके मनमें वस्तुत: कोई विकार नहीं होता।

× × ×

संतमें केवल समता ही नहीं, समस्त विश्वमें हेतु और अहंकाररहित अलौकिक विशुद्ध प्रेम भी होता है। जैसे भगवान् वासुदेवका सबमें अहैतुक प्रेम है, वैसे ही भगवान् वासुदेवकी प्राप्ति होनेपर संतका भी समस्त चराचर जगत्‌में अहैतुक प्रेम हो जाता है; क्योंकि साधन-अवस्थामें वह सबको वासुदेवस्वरूप ही समझकर अभ्यास करता है। अतएव सिद्धावस्थामें तो उसके लिये यह बात स्वभावसिद्ध होनी ही चाहिये।

× × ×

वे विश्वकी रक्षाके लिये पृथ्वीका, पृथ्वीकी रक्षाके लिये द्वीपका, द्वीपके लिये ग्रामका, ग्रामके लिये कुटुम्बका, कुटुम्ब और उपर्युक्त सबके हितके लिये अपने प्राणोंका आनन्दपूर्वक त्याग कर देते हैं। फिर धर्म, ईश्वर और समस्त विश्वके लिये त्याग करना तो उनके लिये कौन बड़ी बात है। जैसे अज्ञानी मनुष्य अपने-आपके लिये सबका त्याग कर देता है, वैसे ही संत पुरुष धर्म, ईश्वर और विश्वके लिये सब कुछ त्याग कर देते हैं; क्योंकि धर्म, ईश्वर और विश्व ही उनका आत्मा है; परंतु अज्ञानीका जैसे देहमें अहंकार और स्त्री-पुत्रादि कुटुम्बमें ममत्व होता है, वैसा संतका अहंकार और ममत्व कहीं नहीं होता। उनका सबमें हेतुरहित विशुद्ध और अत्यन्त अलौकिक अपरिमित प्रेम होता है।

× × ×

यद्यपि उन महापुरुषोंके लिये कुछ भी कर्तव्य नहीं है तथापि स्वाभाविक ही वे लोगोंपर दया कर लोकहितके लिये शास्त्रानुकूल आचरण करते हैं। उनसे शास्त्रविपरीत आचरण होनेका तो कोई कारण ही नहीं है; परंतु शास्त्रके अनुकूल जितने कर्म होने चाहिये, उनमें स्वभावकी उपरामताके कारण अथवा शरीरका बाह्यज्ञान न रहनेके कारण या और किसी कारण कहीं कमी प्रतीत हो तो उनको इसके लिये कोई बाध्य भी नहीं कर सकता; क्योंकि वे विधि-निषेधरूप शास्त्रसे पार पहुँचे हुए हैं। उनपर 'यह ग्रहण करो' और 'यह त्याग करो'—इस प्रकारका शासन कोई भी नहीं कर सकता। उनके गुण और आचरण ही सदाचार हैं। फिर उनकी वाणी—उपदेश-आदेश ही वेदवाणी है। फिर उनके लिये विधान करनेवाला कौन? अतएव उनके द्वारा होनेवाले आचरण सर्वथा अनुकरणीय ही हैं, तथापि जिस आचरणमें सन्देह हो, जो शास्त्रके विपरीत प्रतीत होता हो, उसके लिये या तो उन्हीं पुरुषोंसे पूछकर सन्देह मिटा लेना चाहिये अथवा उसको छोड़कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो शास्त्रानुकूल प्रतीत हों, उन्हींके अनुसार आचरण करना चाहिये ।

× × ×

अपनी भक्ति और महिमाके प्रचार करनेमें स्वाभाविक ही सबको संकोच होता है । इसलिये भगवान् भी अपनी भक्तिका विस्तारसे प्रचार स्वयं न करके अपने भक्तोंके द्वारा ही कराते हैं । अतएव भगवान्की भक्ति और महिमाका प्रचार विशेषतासे भगवान्के भक्तोंपर ही निर्भर करता है । इसलिये भगवान्के भक्त भगवान्से बढ़कर माने गये हैं ।

× × ×

तीर्थ सारे संसारको पवित्र करनेवाले हैं; परंतु भगवान्के भक्त तो तीर्थोंको भी पवित्र करनेवाले हैं ।

तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि सुकर्मीकुर्वन्ति कर्माणि सच्छास्त्रीकुर्वन्ति शास्त्राणि । (नारद-भक्ति-सूत्र ६९)

'ऐसे भक्त तीर्थोंको सुतीर्थ, कर्मोंको सुकर्म और शास्त्रोंको सत्-शास्त्र कर देते हैं ।'

× × ×

यह सत्य है कि उत्तम पुरुषके दर्शन, स्पर्श और उनके साथ भाषणसे ही लाभ है; वे जिस वस्तुको चिन्तन कर लेते हैं, देख लेते हैं और स्पर्श कर लेते हैं, वह वस्तु बड़े ही महत्त्वकी हो जाती है । उनके चरणोंसे स्पर्श की हुई धूलि बड़े ही महत्त्वकी है, परंतु यदि वे उस धूलिको सिर चढ़ानेका निषेध करें तो उस अवस्थामें उनकी आज्ञाको अधिक महत्त्व देना चाहिये । आज्ञा मानकर चरण-धूलि सिर न चढ़ानेसे यही तो हुआ कि उससे जो लाभ होता सो नहीं होगा; परंतु यह याद रखना चाहिये कि उनके आज्ञापालनसे होनेवाला लाभ बहुत ही अधिक है ।

× × ×

यदि महापुरुषने आज्ञा दे दी कि 'मुझको प्रणाम न किया करो ।' तो उनके आज्ञानुसार प्रणाम न करनेमें बहुत लाभ है । वास्तवमें प्रणाम करना तो छूटता नहीं । शरीरसे न होकर अन्तःकरणसे प्रणाम किया जाता है । फिर यह सोचना चाहिये कि एक वस्तुके ग्रहणमें जब इतना महत्त्व है तो उसके त्यागमें कितना अधिक महत्त्व होगा । विचार करना चाहिये कि एक जगह सोना पड़ा है, रत्न पड़े हैं, वे सब बहुमूल्य हैं, इस बातको जानकर भी एक आदमी उन सोने-रत्नोंको त्याग देता है; और दूसरा उनको उठा लेता है । कीमत दोनों ही समझते हैं । अब बताइये—इन दोनोंमें कौन-सा पुरुष उच्च श्रेणीका है ? स्वर्ण और रत्न इकट्ठा करनेवाला या उनका त्यागी ? फिर महापुरुषकी चरण-धूलि तो उनकी आज्ञासे छोड़ी जा रही है । इससे उसमें तो और भी परम लाभकी बात है ।

× × ×

ऐसे महात्माओंके अमोघ सङ्ग और महती कृपासे जो व्यक्ति परमात्माके रहस्यसहित गुण और प्रभावको तत्त्वसे जान जाता है, वह स्वयं परम पवित्र होकर इस अपार संसार-सागरसे तरकर दूसरोंको भी तारनेवाला बन सकता है । इसलिये महापुरुषोंका सङ्ग अवश्यमेव करना चाहिये; क्योंकि सत्पुरुषोंका सङ्ग बड़े रहस्य और महत्त्वका विषय है । श्रद्धा और प्रेमपूर्वक सत्सङ्ग करनेवाले ही इसका कुछ महत्त्व जानते हैं । पूरा-पूरा रहस्य तो स्वयं भगवान् ही जानते हैं, जो कि भक्तोंके प्रेमके अधीन हुए उनके पीछे-पीछे फिरते हैं ।

× × ×

'त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये ।'

(संग्रहकर्ता और प्रेषक—श्रीशालिग्राम)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योगी और योग

(लेखक—पं० श्रीकमलापतिजी मिश्र)

महर्षि पतञ्जलिकृत 'योगसूत्र'का प्रथम सूत्र है—'अथ योगानुशासनम् ।' इस सूत्रसे यह स्पष्ट हो जाता है कि योगदर्शनमें उनका साक्षात् शासन नहीं; अपितु अनुशासन मात्र है। वस्तुतः योग एक अत्यन्त प्राचीन शास्त्र है। इसके आदिप्रवर्तकके विषयमें अभीतक मतैक्य नहीं हो सका है। याज्ञवल्क्य स्मृतिमें एक स्थानपर आया है—

हिरण्यगर्भो योगस्य वक्ता नान्यः पुरातनः ।

इन हिरण्यगर्भके सम्बन्धमें महाभारतमें आया है—

हिरण्यगर्भो द्युतिमान् य एतच्छन्दसि स्तुतः ।
योगैः सम्पूज्यते नित्यं स च लोके विभुः स्मृतः ॥

—अर्थात् ये द्युतिमान् हिरण्यगर्भ वही हैं, जिनकी वेदमें स्तुति की गयी है। योगी उनकी नित्य पूजा करते हैं और संसारमें उनको व्यापक समझा गया है।

इसके अनुसार शेष अन्य विद्याओंकी भाँति योगका आदिप्रवर्तक भी परमेश्वर ही है।

ऋग्वेदमें योगका स्पष्ट वर्णन तो नहीं मिलता; किंतु कई ग्रन्थोंमें अश्वोंके नियन्त्रणका प्रसङ्ग आया है। इसका सम्बन्ध योगसे ही है; क्योंकि परवर्ती भारतीय साहित्य अर्थात् उपनिषद् आदिमें इन्द्रियोंको अश्वकी संज्ञा दी गयी है और योगदर्शनमें इन्द्रिय-निग्रहपर विशेष बल दिया गया है।

जहाँतक योगके दार्शनिक पक्षका सम्बन्ध है, इसे सेश्वर सांख्यकी संज्ञा दी गयी है। यह सांख्यके पचीस तत्त्वोंके प्रति सहमति प्रकट करता हुआ एक अन्य तत्त्वके प्रति भी अपनी स्वीकृति प्रदान करता है और वह तत्त्व है—'ईश्वर'। ईश्वरके सम्बन्धमें योगदर्शनके प्रथम पादके चौबीसवें सूत्रमें पतञ्जलिने लिखा है कि—

'क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः ।'

अर्थात् जो पुरुष क्लेश, कर्म, विपाक तथा आशयसे शून्य रहता है; वह ईश्वर है। ईश्वर प्रकृतिलीन एवं मुक्त दोनों प्रकारके पुरुषोंसे भिन्न है; क्योंकि वह सर्वथा मुक्त है। वेदशास्त्रोंका प्रथम उपदेष्टा होनेके कारण वह आदि आचार्य है, आत्यन्तिक ऐश्वर्य और चरम ज्ञानका अधिष्ठाता होनेके कारण वह परमेश्वर है और नित्य होनेके कारण वह भूत, वर्तमान और भविष्य—तीनों कालोंसे अनवच्छिन्न है।

योगदर्शन ईश्वरसे अधिक चित्त, उसकी वृत्तियों एवं इन वृत्तियोंके निरोधकी व्याख्या करता है। इस अर्थमें यह 'विज्ञान' है। इससे हमें अपनी शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक विशुद्धताके सम्बन्धमें स्पष्ट एवं विधिवत् संकेत मिलते हैं। संसारमें सम्भवतः ऐसा कोई भी दर्शन नहीं है, जो अपने अनुयायियोंको अपने प्रतिपाद्य तत्त्व तक ले जानेके लिये इस प्रकारके सुस्पष्ट मार्गोंका निर्देश करता हो। यही कारण है कि प्रत्येक आस्तिक भारतीय दर्शनने प्राविधिक रूपसे योगको अत्यन्त मान्यता प्रदान की है। बौद्ध और जैन दर्शनोंने भी इस दर्शनके व्यवहार-पक्षके प्रति अपनी आस्था प्रकट की है।

योगदर्शनमें चित्तका अभिप्राय अन्तःकरण अर्थात् मन, बुद्धि एवं अहंकारसे है। चित्त प्राकृत है, किंतु इसमें सत्त्वकी प्रधानता है। इसके अतिरिक्त यह प्रतिक्षण परिणामशाली है। चित्तकी पाँच अवस्थाएँ होती हैं—मूढ़, क्षिप्त, विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्ध। मूढावस्थामें तमोगुणकी प्रधानताके कारण यह विवेकशून्य हो जाता है, क्षिप्तावस्थामें चित्तमें रजोगुणका आधिक्य रहता है और इसके परिणामस्वरूप यह चञ्चल रहता है। विक्षिप्तावस्थामें यह सत्त्व-प्रधान हो जाता है। फलतः चित्तकी मूढ तथा क्षिप्त अवस्थासे यह विशिष्ट एवं स्थिर होता है। एकाग्रावस्थामें यह किसी एक ही विषयका चिन्तन करता है; किंतु निरुद्धावस्थामें तो यह सर्वथा वृत्तिहीन हो जाता है। इस अवस्थामें समस्त संस्कारोंका लय हो जाता है। एकाग्र तथा निरुद्ध ध्यान और समाधिके लिये यही दो अवस्थाएँ उपयोगी होती हैं।

क्लिष्टाक्लिष्ट भेदसे चित्तकी वृत्तियोंके पाँच भेद होते हैं—प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति। प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द—प्रमाणके ये तीन भेद हैं। किसी वस्तुके मिथ्या ज्ञानको 'विपर्यय' कहते हैं। शब्द ज्ञानसे उत्पन्न किंतु सत्यसे विरहित ज्ञानको 'विकल्प' की संज्ञा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दी गयी है। 'निद्रा'का आधार तम है। इस वृत्तिमें जाग्रत् एवं स्वप्न-वृत्तियोंका अभाव रहता है। अनुभूत विषयोंका अपरिवर्तनीय रूपसे याद आना ही 'स्मृति' है। चित्तकी इन पाँच वृत्तियोंके भीतर ही चित्तके समस्त व्यापारोंका अन्तर्भाव हो जाता है। ये वृत्तियाँ चित्तमें उत्पन्न होकर कुछ कालके उपरान्त क्षीण हो जाती हैं; किंतु उनका सर्वथा अभाव नहीं हो जाता। हमारे अवचेतनमें ये संस्कारके रूपमें बनी रहती हैं और यही संस्कार चित्तमें पुनः-पुनः वृत्तिरूपमें उत्पन्न होते रहते हैं। इस प्रकार संस्कार वृत्तिजन्य होते हैं और वृत्तियाँ संस्कारजन्य होती हैं। योगी इन स्थूल वृत्तियों और सूक्ष्म संस्कारोंका अत्यधिक निरसन करता है और इस दुष्कर कृत्यके पश्चात् ही योगकी उच्च भूमियोंमें उसकी प्रतिष्ठा होती है।

हमारा चित्त-विपर्ययरूप क्लेशोंका आवास-स्थान है। इन क्लेशोंके पाँच प्रकार हैं—अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश। जो अनित्य, अपवित्र, दुःख एवं अनात्म है, उसे नित्य, पवित्र, सुख एवं आत्मरूप मानना 'अविद्या' है। मन और बुद्धिको आत्मा मान लेना 'अस्मिता' है। सुखोत्पादक पदार्थोंके प्रति तृष्णा या लोभको 'राग'की संज्ञा दी गयी है और दुखी व्यक्तिमें प्रतिकूल साधनोंके प्रति जिस क्रोध-भावनाका उदय होता है, उसे द्वेष कहते हैं। मनुष्य अपना आत्यन्तिक नाश नहीं चाहता। वह किसी-न-किसी रूपमें बने रहना चाहता है; किंतु मृत्यु उसकी यह अभिलाषा पूर्ण नहीं होने देती। अतः वह मृत्युसे भयभीत रहता है। मृत्युके प्रति मनुष्यका यह भय 'अभिनिवेश' है।

योगदर्शनमें इन क्लेशोंसे मुक्ति-प्राप्तिका युक्तियुक्त वर्णन किया गया है। इसके लिये इसमें अष्टाङ्ग योगकी व्यवस्था है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा और समाधि—इस प्रकार योगके ये आठ अङ्ग हैं। 'यम' संयमको कहते हैं। इस संयमकी सिद्धि अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह—इन पाँच साधनोंसे होती है। शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय एवं ईश्वर-प्रणिधान—ये 'नियम'के पाँच अङ्ग हैं। 'हठयोग-प्रदीपिका' एवं कुछ अन्य ग्रन्थोंमें 'आसन'के विविध प्रकारोंका वर्णन है। आसनोंके अभ्याससे चित्तकी एकाग्रता-की प्राप्ति होती है। योग-दर्शनमें प्राणायामको अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना गया है। श्वास-प्रश्वासके गतिविच्छेदको ही 'प्राणायाम' कहा गया है। इससे प्राणशक्तिपर साधकका अधिकार हो जाता है। बाह्य विषयोंके प्रति इन्द्रियोंकी विरक्ति ही 'प्रत्याहार' है। शरीरके किसी प्रदेश-विशेषमें या किसी बाह्य आलम्बनमें चित्तके लगा देनेको 'धारणा' कहते हैं और जब इस आलम्बनमें ध्येय वस्तुका ज्ञान निश्चित रूपसे प्रवाहित होने लगता है, तब 'ध्यान'का उदय होता है। **'सम्यगाधीयते एकाग्रीक्रियते विक्षेपान् परिहृत्य मनो यत्र स समाधिः'** के अनुसार विक्षेपोंको दूरकर चित्तका एकाग्र होना ही 'समाधि' है। चित्तकी वृत्तिका ध्येयाकार बन जाना 'ध्यान' है और उस ध्येयमें वृत्तिका सर्वथा निरुद्ध हो जाना ही समाधि-लाभ है।

योगदर्शनमें समाधिके दो भेद हैं—सम्प्रज्ञात एवं असम्प्रज्ञात। सम्प्रज्ञात समाधिमें चित्तको आलम्बनकी आवश्यकता होती है। प्रारम्भमें आलम्बनके अभावमें ध्यान असम्भव हो जाता है। यह चित्तकी एकाग्रावस्था है, जिसमें चित्त किसी एक आलम्बनपर केन्द्रित हो जाता है किंतु सतत अभ्यासके पश्चात् जब चित्त निरुद्धावस्थामें पहुँच जाता है, तब साधकको असम्प्रज्ञात समाधिका लाभ होता है। इस अवस्थामें चित्तकी वृत्तियोंका आत्यन्तिक निरोध हो जाता है। वृत्तियोंके साथ-साथ इस भूमिपर आरूढ़ होनेपर संस्कारोंका भी क्षय हो जाता है और तब आत्मा अपने विशुद्ध चैतन्य रूपमें प्रतिष्ठित हो जाता है। इस उपलब्धिका नाम है—कैवल्य। दृढ़ साधना एवं अथक अध्यवसायसे ही इस स्थितिमें पहुँचना सम्भव है।

योगीको अनेक प्रकारके सिद्धि-लाभ होते हैं। सिद्धियाँ आठ प्रकारकी हैं—अणिमा, लघिमा, महिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, वशित्व, ईशित्व और यथाकामावसायिता। साधनाके मार्गमें उन सिद्धियोंकी प्राप्ति स्वाभाविक है; किंतु योगीमें इनके प्रति आकर्षणकी भावना नहीं होनी चाहिये। इनसे आकर्षित होनेपर वह पथभ्रष्ट हो जाता है। अतः समर्थ साधक इनसे उदासीन होकर अपनी साधनामें संलग्न रहता है।

योगको 'सेश्वर सांख्य' माना जाता है, किंतु यह सांख्यकी प्रतिकृति नहीं है। जहाँ सांख्य ज्ञानको मुक्तिका साधन मानता है, वहाँ योगमें मुक्तिके लिये कर्मकी व्यवस्था है। गीतामें इस अन्तरको स्पष्ट करते हुए कहा गया है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोकेऽस्मिन् द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ ।
ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम् ।
(३ । ३)

गीतामें ही एक स्थानपर आया है—**'योगः कर्मसु कौशलम्'** ।

योगकी कुछ मान्यताएँ गीताकी कुछ मान्यताओंसे आश्चर्यजनक रूपसे मिलती हैं । योगदर्शनके अनुसार साधकको उसके विश्वासके अनुरूप ही फल मिलता है । यदि साधक मुक्तिमें विश्वास करता है तो उसे मुक्ति प्राप्त होती है; किंतु यदि उसका विश्वास मुक्तिमें न होकर किसी लोकविशेषमें है, तो उसे उसी लोककी प्राप्ति होतीहै ।

गीतामें भी भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।
(४ । ११ का पूर्वार्द्ध)

भारतीय दर्शनकी प्रत्येक आस्तिक शाखाने योगके व्यावहारिक पक्षको मान्यता प्रदान की है । श्वेताश्वतर एवं कठोपनिषद्में योगकी महत्ता स्वीकृत की गयी है । शाण्डिल्य, योगतत्त्व, ध्यानबिंदु, हंस, अमृतनाद, वराह, नादविन्दु और योगकुण्डली—इन उपनिषदोंमें तो योगके स्पष्ट प्रसङ्ग मिलते हैं । शैवों और शाक्तोंमें भी योगके व्यावहारिक पक्षके प्रति श्रद्धा है ।

जिन दर्शनोंकी ईश्वर या वेदके प्रति आस्था नहीं है, उनमेंसे भी कुछ योगकी उपयोगिता स्वीकार करते हैं । जैन धर्ममें योगका पर्याप्त विवेचन मिलता है । हेमचन्द्रने योगशास्त्रमें और उमास्वामीने तत्त्वार्थसूत्रमें योगपर विचार किया है ।

मनन-माला

(लेखक—ब्र० श्रीमगनलाल हरिभाई व्यास)

[गताङ्क पृष्ठ १११० से आगे]

९७–प्रत्येक शरीरमें जो व्यापक चेतन तत्त्व है, वह आत्मा कहलाता है; और ब्रह्माण्डमें जो व्यापक चेतन तत्त्व है, वह परमात्मा कहलाता है । आत्मा और परमात्माके बीच कोई अन्तर नहीं है । एक और अखण्ड होनेपर भी मानो पृथक्-जैसा भासता है । जैसे आकाश एक और अखण्ड है तथापि प्रत्येक वस्तुमें आकाश पृथक्-जैसा भासता है । इसी प्रकार एक ही अखण्ड व्यापक परमात्मा प्रत्येक शरीरमें मानो पृथक्-पृथक् आत्मा हो, ऐसा भासता है । मैं आत्मा हूँ, तीनों शरीरोंसे भिन्न और असंग हूँ—इसका दृढ़ ज्ञान होनेपर भी इस आत्मचिन्तनका अभ्यास निरन्तर चालू रखना चाहिये । जैसे नदी जबतक सागरमें मिलकर सागर-रूप न हो जाय; तबतक उसका प्रवाह चालू रहता है; इसी प्रकार मैं आत्मा हूँ—यह चिन्तन, परमात्म-रूप न हो जाय, तबतक चालू रखना चाहिये । इसमें यदि विक्षेप पड़ा तो पतन हुआ समझो ।

९८–मोक्षके साधकको मौन, एकान्त-वास, मिताहार और धन तथा स्त्रीके संगका त्याग—इनका आग्रहपूर्वक सेवन करना चाहिये । सांसारिक जनका संसर्ग मनुष्यको सांसारिक बनाता है । त्यागीका संग त्यागी बनाता है । साधक जैसा संग करता है, वैसा ही बनता है । मुक्तिकी इच्छा करनेवाला साधक मुक्तका संग करे । संसारमें रहना, काम-धन्धेमें लगा रहना और मुक्तिकी इच्छा करना यह कभी बन नहीं सकता । साधकको यह सब त्याग करना चाहिये । साधन सिद्ध हो जानेके बाद संसारमें, व्यवहारमें रहे या नहीं—यह और बात है । राजा जनकका तथा दूसरे विदेही राजर्षियोंका दृष्टान्त व्यवहारमें रहनेके पक्षमें दिया जाता है । वे महापुरुष पूर्वजन्मके पक्के साधक थे, कुछ बाकी रह गया था, जिसके लिये अवतरित हुए थे । उनका उदाहरण साधारण साधकके लिये कामका नहीं है । प्रत्येक प्राणी जहाँ जाता है, वहाँ अपने साथ वह अपने चित्तके संस्कारके वातावरणको लेता जाता है । इसीसे कुछ प्राणियोंके संसर्गमें आनेपर उनके प्रति मेल नहीं खाता, कुछ प्राणियोंके प्रति प्रेम होता है और कुछके प्रति क्रोध होता है । राजसी और तामसी प्रकृतिवालेके संसर्गसे चित्तमें क्षोभ होता है । यही बात आहारकी है । अतएव कल्याणकी इच्छा करनेवालेको सात्त्विक आहार, सात्त्विक प्राणीका संसर्ग, सात्त्विक स्थानका सेवन करना चाहिये, जिसके सेवनसे चित्त शान्त रहे । जिससे चित्तमें क्षोभ हो उसका संग कभी न करे ।

९९–साधक जो कुछ करे वह पूर्ण शान्तिसे, उत्साहपूर्वक और आनन्दपूर्वक करे । जो कुछ करे वह आवेश या आसक्ति-रहित होकर, फलेच्छा और आसक्तिसे रहित होकर कर्तव्य समझकर करे । जिस प्रकार नाटकमें कोई अभिनेता अपने स्वरूपको भुलाये बिना अपने जिम्मेका अभिनय करता है, उसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकार हमारी आत्माने जो शरीररूप स्वाँग लिया है, इसको जो अभिनय करना है, उसे नाटकके पार्टके समान अभिनय करे। इस साधनको सिद्ध करनेकी एक प्रक्रिया यह है कि जो कुछ करे वह इस भावसे करे कि वह यहाँ मेहमान है, किसीके साथ कोई उसका सम्बन्ध नहीं है। आसक्ति और कर्त्तापनके अभिमानके बिना, कर्म करनेसे बन्धन नहीं होता। कर्त्तापनका अभिमान और कर्मके फलकी आसक्तिसहित इच्छा ही बन्धनकारक है। मैं कर्त्ता हूँ, मैं भोक्ता हूँ—इस प्रकारका जो 'मैं' है, वह बन्धनकारक है। मैं और मेरा-पनका त्याग ही सच्चा त्याग है और इस त्यागसे नित्य प्रसन्नता रहती है।

१००—जैसे नदी समुद्रमें मिले बिना कभी नहीं कह सकती कि 'मैं समुद्र हूँ'—उसी प्रकार साधक परमात्मामें मिले बिना नहीं कह सकता कि मैं सर्वस्वरूप-परमात्मस्वरूप हूँ। 'मैं तीनों शरीर नहीं हूँ और उन सबसे भिन्न मैं आत्मा हूँ'—इस प्रकारका अभ्यास ही उसको धीरे-धीरे परमात्मस्वरूपमें मिलाकर एक कर देता है। नदी जलरूप है, सागर जलरूप है। नदी वेगसे सागरकी ओर बहती है तब वह जिस प्रकार सागरमें मिलकर एक हो जाती है, उसी प्रकार आत्मा और परमात्माका वस्तुतः एक स्वरूप है, तथापि चिन्तन किये बिना एक नहीं हो सकता; क्योंकि दोनोंके बीचमें लिङ्गदेहरूपी वासनाकी आड़ है। यह वासना आत्मज्ञान हुए बिना निःशेषरूपसे नष्ट नहीं होती तथा सदाचार और ईश्वरकी भक्तिके बिना यह आत्मज्ञान नहीं होता।

१०१—सर्वत्र एक परमात्मा ही अनेक रूप धारण करके विलसित हो रहा है। हरि ही जगत्रूप हो रहे हैं। हरि ही जगत् हैं और जगत् हरि है। विकारी और विनाशशील शरीरोंमें जो अविकारी और अविनाशी चेतन तत्त्व है, वही परमात्मा है। साधक सबको आत्मरूप, परमात्मरूप देखे और प्राणिमात्रको परमात्मरूप जानकर अपने साधन, शक्ति और संयोगके अनुसार बिना किसी फलकी इच्छाके उनकी सेवा करे। इस प्रकारकी सेवा और स्मरण—ये दो ही साधकके काम हैं। चित्तको या तो सेवामें लगाये रक्खे या स्मरणमें। चित्त सेवा और स्मरणरहित रहेगा तो जरूर अनर्थ करेगा।

१०२—चित्तका सदा शान्त और विकारके हेतु रहते हुए भी निर्विकारी रहना—यही ज्ञान और निष्काम भक्तिका फल है। चाहे कैसा भी विकार उत्पन्न करनेवाला प्रसङ्ग प्राप्त होनेपर जिसका चित्त निर्विकार रहता है, वह मुक्त है। आत्मज्ञानके बिना यह सुलभ नहीं है। साधक जो करे वह शान्तचित्तसे, प्रसन्न मनसे, चिन्ता, उतावलापन और भयसे रहित होकर करे। जिससे चिन्ता हो, वह काम कभी न करे; जिसका परिणाम दुःखदायी हो, वह काम कभी न करे।

१०३—सुख नामका, मोक्ष नामका या आनन्द नामका कोई पदार्थ नहीं है, जो प्राप्त हो सके। यह तो ठीक है कि जो कुछ दीखता है, भासता है और अनुभवमें आता है, वह सब पञ्चतत्त्वका बना है। पञ्चतत्त्वकी परम्परा देखनेसे वह परमात्मासे ही उत्पन्न हुआ दीखता है। जिससे जो पैदा होता है, वह उसका स्वरूप होता है। इसलिये जो कुछ दीखता है या अनुभवमें आता है, उसको पहले तो पञ्चभूतात्मक जाने, पश्चात् पञ्चभूत परमात्मस्वरूप हैं, यह निश्चय करके सारा दृश्यमान जगत् परमात्मस्वरूप ही है—यह निश्चय करे। इसमें नाम और रूपको कल्पित, मिथ्या और नाशवान् समझे और जो तत्त्व नामरूपके स्वरूपमें दीखता है, उस तत्त्वको परमात्मा जाने। अग्नि जैसे लकड़ीके रूपमें दीखती है, सोना गहनेके रूपमें दीखता है, जल बुद्बुदके रूपमें दीखता है, उसी प्रकार परमात्मा ही जगत्-रूपमें दीखता है। अतएव 'मैं'के सहित सब कुछ हरिरूप है, 'मैं'के सहित सब परमात्मरूप है—यह अभ्यास करे। **जो वास्तविक है और शास्त्रका निष्पक्ष अन्तिम निश्चय है। परमार्थ-पथका कोई भी साधन करनेसे ज्ञान और वैराग्य प्रकट होंगे, वे यदि निष्काम और मोक्षके हेतु होंगे तो। विषयोंमें सुख-बुद्धि जैसे-जैसे घटती है और संसारसे अरुचि होती है, वैसे-वैसे जानना चाहिये कि साधना सफल हो रही है। इसके लिये खूब आदरपूर्वक लगा रहे। और समय आनेपर जैसे अपने आप नदी समुद्रमें मिलकर समुद्ररूप हो जाती है, उसी प्रकार आत्मा परमात्मामें मिलकर परमात्मारूप हो जाता है।**

१०४—जबतक शरीर और जगत्का भान होता है, तब-तक नीचे लिखे अनुसार अभ्यास अवश्य करे।

(१) प्रणवका या परमात्माके किसी भी नामका नित्य जप अवश्य करे। (२) मैं शरीर, इन्द्रिय, मन या **बुद्धि नहीं हूँ, बल्कि मैं आत्मा हूँ, सबका साक्षी हूँ। सबसे असङ्ग, अविकारी और अविनाशी आत्मा हूँ—इस प्रकार सदा चिन्तन करे।** (३) देव, द्विज, गुरु और ज्ञानी पुरुषका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदर-सत्कार और सेवा करे। पवित्र रहे। मनके विचार, वाणी और आचरणको एक रूप रक्खे। ब्रह्मचर्य-पालन करे। किसीको दुःख हो, ऐसा काम कभी न करे। (४) सत्य और प्रिय वचन बोले। (५) सदा मनको शान्त और प्रसन्न रक्खे। जो करे, जो बोले, वह प्रसन्न और शान्त मनसे करे और बोले। घबराहट, क्लेश और विवादका पूर्ण त्याग करे। सदा सब अवस्थाओंमें और सब संयोगोंमें जिस प्रकार मन प्रसन्न रहे, उस प्रकार बर्ताव करे। जिसका मन सदा प्रसन्न रहता है, जिसका मन चाहे कैसा ही प्रलोभन आनेपर भी विकारके वश नहीं होता, वह सदा मुक्त ही है।

१०५–भगवान्‌की मूर्त्ति या चित्रकी पूजा साधकके लिये बहुत उपयोगी है। जबतक शरीर जीवित है, तबतक थोड़े-बहुत प्रमाणमें देहाध्यास रहता ही है, और जबतक देहाध्यास रहता है, तबतक सगुण उपासना बहुत सुलभ होती है। परमात्मा सगुण भी है और निर्गुण भी है। साकार भी है और निराकार भी है। जबतक देहाभिमान पूर्णरूपसे चला न जाय और जबतक आशा और इच्छाका पूर्ण त्याग न हो जाय, तबतक सगुण उपासना करे। सगुण उपासनामें अद्भुत शक्ति है। उसमें उपासकको गिरनेका तो भय ही नहीं होता। केवल उसे सर्वभावसे, पूर्ण श्रद्धासे परमात्माकी शरण लेनी पड़ती है। उसका इतना ही काम होता है, बाकी सब कुछ प्रभु करते हैं। उसकी सारी सँभाल परमात्मा रखते हैं। परमात्माकी अनन्य शरण लेनेवाला परमात्माकी उपासना सकाम भावसे करे तो भी बन्धन नहीं होता। उसे किसी-न-किसी प्रकार परमात्माकी भक्ति करनी चाहिये।

सकाम भक्ति भी करते रहनेसे धीरे-धीरे वह भक्ति निष्काम हो जाती है, और इस रीतिसे भी भक्तिको चालू रखनेसे वह अपने आप निर्गुण-निराकारमें पर्यवसित हो जाती है। अतएव सगुण उपासना, सकाम हो या निष्काम हो, उसके करनेमें कोई जोखिम नहीं है। इसमें गिरनेका कोई भय नहीं है, उसकी सारी सँभाल भगवान् स्वयं रखते हैं। भगवान्‌के सिवा न दूसरेकी शरण ले और न दूसरेका चिन्तन करे।

१०६–यह जगत् सङ्कल्पसे बना है। जितना दृढ़ सङ्कल्प होता है उतना दृश्य बनता है। इसलिये साधकको सदा अच्छी भावनावाला सङ्कल्प करना चाहिये। इस दृश्य जगत्‌में सुख है ही नहीं। सुख दीखता है, पर भोगने जाओ तो परिणाममें दुःख ही जान पड़ता है। जैसे कस्तूरी–मृगकी नाभिमें कस्तूरी रहती है और उसकी उसको सुगन्ध आती है, परंतु वह जानता नहीं है कि वह सुगन्ध कहाँसे आ रही है। इस कारण वन-वन घासमें कस्तूरीकी सुगन्धकी खोज करता है कि वह कहाँसे आ रही है। पर वह उसको दूसरी जगह नहीं मिलती। वह तो उसकी नाभिमें है। वह व्यर्थ ही दूसरी जगह खोजता है और थककर दुःख भोगता है। इसी प्रकार चित्त आनन्दको ढूँढ़ता है। आनन्दस्वरूप आत्मा तो चित्तके भीतर है, इसे न जानकर जगत्‌के प्राणी-पदार्थोंमें आनन्दको खोजता है। पर दूसरी जगह है नहीं तब मिलता कहाँसे? प्राणी-पदार्थ जो सङ्कल्पसे बने हैं, विकारी और विनाशी हैं, इनमें आनन्द होगा कहाँसे? तथापि मायासे ऐसा लगता है कि इनमें आनन्द होगा। मायाका स्वरूप ही यह है कि नहीं होते हुए दीखता है। और दीखनेपर पास जाओ तो लुप्त हो जाता है। मायाके स्वरूपको अखा भक्तने कहा है।

अखा माया करे फजेत।
खातां खांड ने चा बतां रेत॥

मरीचिकाका जल दूरसे दीखता है, दौड़कर लेने जाओ तो कुछ न मिलेगा। अखा भक्तने सरस उपमा दी है–खानेमें खाँड़ (चीनी) सी दीखती है, पर मुँहमें डालकर चबाते समय रेत (बालू) सी लगती है, इसका नाम माया है। इसलिये इस मायिक जगत्‌के प्राणी-पदार्थसे सुख-आनन्द प्राप्त होनेकी तृष्णा त्यागकर आनन्दस्वरूप आत्मामें चित्तको लगावे।

जगत्‌में जितने भी प्राणी-पदार्थ हो गये हैं, सब कालके वश होकर मर गये। मुर्देको जिलानेवाला भी मर गया। सुखके लिये अनेक जीवोंने जगत्‌में मेहनत करके भी सुखके बदले दुःख पाया और वे सब अन्तमें मर गये। सुखमात्र-स्वरूप, केवल आनन्दस्वरूप, अविकारी और अविनाशी, सदा नित्यमुक्त एक आत्मा ही है। शेष सारे दृश्य मायामय, विकारी और विनाशी हैं। वह आत्मा तुम हो। इसलिये चित्तको सर्वभावसे आत्मामें जोड़ दो। सिनेमाके पर्देके ऊपर जैसे फिल्मरूपी सृष्टि दीखती है, सुननेमें आती है; परंतु वस्तुतः वहाँ पर्देके सिवा कुछ भी नहीं रहता। उसी प्रकार आत्मारूपी पर्देके ऊपर फिल्मके बिना ही परमात्माकी मायासे यह सृष्टि दीखती है। परंतु वस्तुतः आत्माके सिवा कुछ भी सत्य नहीं है। वह आत्मा तुम हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महासागरमें वायुके कारण जैसे अनेक लहरें उठती हुई दीख पड़ती हैं, परंतु वस्तुतः वहाँ जलके सिवा दूसरी कोई वस्तु नहीं होती। उसी प्रकार आत्मामें मायाके कारण यह विचित्र दृश्यजगत् दीखता है; परंतु वस्तुतः आत्माके सिवा कुछ भी सत्य नहीं है। वह आत्मा तुम हो। इसलिये सदा आत्मचिन्तन करो। सदा चित्तको आत्मामें जोड़ो।

१०७–देश, काल, वस्तु, व्यक्ति और क्रिया—इन पाँचोंका चित्तके ऊपर प्रभाव पड़ता है। ये पाँचों सात्त्विक, राजस और तामस—तीन गुणवाले हैं। इनमें जिसके संसर्गमें चित्त आता है, वैसा वह हो जाता है। इस प्रकार चित्त सात्त्विक, राजस और तामस प्रकृतिवाला बनता है। और जिस प्रकारके संस्कारसे युक्त होता है, वैसी ही क्रिया करता है। इसलिये चित्तको आत्मज्ञानकी इच्छावाले सात्त्विक संस्कारका सेवन करके सात्त्विक बनावे। पश्चात् उसको आत्मासे युक्त करके आत्माके संस्कारसे निर्गुण बनावे। यह संसार त्रिगुणात्मक प्रकृतिसे बना है। कर्ता-भोक्ता सब रूपोंमें प्रकृति ही अनेक आकार धारण कर रही है। आत्मा तो असङ्ग, साक्षी, नित्यमुक्त, अविकारी और अविनाशी है। इसका तुम रात-दिन चिन्तन किया करो। वह आत्मा तुम हो। तुम कर्त्ता नहीं हो, भोक्ता नहीं हो। तुम स्थूल, सूक्ष्म या कारण शरीर नहीं हो। तुम इन सबके द्रष्टा, नित्यमुक्त, अविकारी आत्मा हो—इसका बारम्बार मनन किया करो। स्व-स्वरूपको जानकर उसका हरदम मनन और निदिध्यासन किये बिना आत्म-साक्षात्कार नहीं होता, और आत्माका दर्शन हुए बिना जीवनमुक्तिका अनुभव नहीं होता तथा जन्म-मरणके चक्करसे छुटकारा नहीं मिलता। अतएव सुख या अखण्ड आनन्दके लिये दूसरी खोज न करके, सुखकी अभिलाषाकी इच्छामात्रका त्याग करके सदा आत्माराम बनकर आनन्दसे काल यापन करो। वह सच्चिदानन्दस्वरूप आत्मा तुम हो, जो घट-घटमें व्याप रहा है तथा जिसमें यह सारा दृश्यमात्र भासित हो रहा है।

१०८–इस १०८ मनिकाकी मालाका एक ही रहस्य है, और वह यह है कि आत्मा स्वयं नित्य, अविकारी और अविनाशी, व्यापक, अजर-अमर होकर भी अपनेको व्यर्थ ही विकारी और विनाशी, स्थूल शरीर मानकर दुःख और शोकसे युक्त तथा जन्म-मरण धर्मवाला मान बैठा है। जब-तक वह इस अज्ञानसे छूटकर अपने स्व-स्वरूपके भानवाला तथा उसमें दृढ़ निष्ठावाला नहीं बन जाता, तबतक जन्म-मरण, जरा-व्याधिसे आत्यन्तिक छुटकारा नहीं मिल सकता और अखण्ड आनन्दकी प्राप्ति नहीं हो सकती। उस ज्ञानके लिये चित्तशुद्धिकी जरूरत है, और परमात्माकी निष्काम भक्ति किये बिना चित्तशुद्धि नहीं होती। चित्तशुद्धिके लिये शास्त्रोंमें अनेक उपाय बतलाये हैं, उनमें सात्त्विक आहार, सात्त्विक वस्तुका सेवन, शास्त्र-विचार, सद्गुरुकी सेवा, परमात्माके सगुण-साकार विग्रह या चित्रकी सेवा, परमात्माके नामका जप और कीर्तन, प्राणीमात्रको आत्मारूप जानकर उनके प्रति वैसा बर्ताव करना, सत्य और प्रिय भाषण करना, मौन, एकान्तवास, प्राणायाम तथा चित्तको सङ्कल्परहित अवस्थामें रखनेका अभ्यास, दया, मैत्री, करुणा, शान्ति, क्षमा और धैर्यपूर्वक सदा आत्मचिन्तन आदि मुख्य उपाय हैं। इनका सेवन करता रहे। इच्छामात्रका त्याग किये बिना और सगुण परमात्माकी शरण लिये बिना तथा सद्गुरुकी सेवा और शरण लिये बिना कभी ज्ञान होनेवाला नहीं है। आत्मज्ञान हुए बिना जगत्की सम्पत्तिसे कोटि उपाय करनेपर भी अखण्ड सुख प्राप्त नहीं होता। परोक्ष ज्ञान होनेके बाद एक क्षण भी चिन्तन न छूटे। आत्मचिन्तन छूटते ही पतन हो जाता है। भोग-अभिलाषा करते ही पतन हो जाता है। जगत्के विषयोंमें सुख-बुद्धि होते ही पतन होता है। जगत्मेंसे सुखबुद्धि धीरे-धीरे अभ्यासपूर्वक निकालकर चित्तको आत्मामें जोड़ दे, और सदा चित्तको आत्मामें ही आनन्दका अनुभव कराये। यह अभ्यास बहुत कठिन है। बहुत धैर्यके साथ, बिना उकताये करने योग्य है। इस जन्ममें या अनेक जन्मके बाद इस अभ्यासके किये बिना जीवका ताप शमन नहीं होगा।

सर्वेऽत्र सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्॥

अर्थात् 'सब सुखी हों, सब नीरोग हों, सब कल्याणको देखें, किसीको दुःख न हो।' इस श्लोकको रोज कुछ देर बोलनेसे बहुत लाभ होगा। परमात्मा सबको सुखी रक्खे, आत्मस्वरूप करे। (समाप्त)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिर्फ तुझे लुआठी ही तो हाथ लगेगी !

एक पौराणिक कथाके आधारपर

(लेखक—श्रीउपेन्द्रनाथजी मिश्र 'मञ्जुल' 'काव्यतीर्थ' हि०सा०भूषण)

गुलिक व्याध अपनी दुर्दान्त दस्युताके लिये अपने प्रान्तमें पूर्णतया प्रसिद्ध था। लूट-पाट और हत्या उसकी दैनिक कृति थी। उसकी जीविकाके जैसे ये ही जघन्य कर्म प्रधान अङ्ग बन चुके थे। 'लूट लाओ, कूट-खाओ' एकमात्र इसीपर उसके परिवारका जीवन आधारित था। जिस वन्य प्रान्तरमें उसका निवास था, उसके पार्श्ववर्ती जनपद उसके आतंकसे संत्रस्त थे। दैवात् एक दिन उसे कुछ प्राप्त न हो सका—कोई उसके हाथका आखेट न हो पाया। वह भूखा था, आज उसे अपनी ही नहीं, अपने भूखे परिवारकी सर्वाधिक चिन्ता थी। निराशा उसे मर्मान्तक पीड़ा पहुँचा रही थी। उसके पासके ही वन्य भागमें एक महाभाग भगवत्पूजापरायण ब्राह्मण संत रहा करते थे। दीन-दुखियों, अतिथि-अभ्यागतोंकी सेवा साक्षात् भगवद्-सेवा समझकर किया करते थे। लोग उन्हें 'पुजारी बाबा' कहते। आस-पासके ग्रामीण उनसे प्रभावित हो अन्नादि-दानसे उनके सदाव्रतमें सहायक होते। गाँव-गिराँवसे दूर उनके एकान्त विविक्त मन्दिरमें अन्न-वस्त्रादिकी कमी न थी, भण्डार भरा-पूरा रहता। निराश-हृदय दस्यु गुलिकने आज इसी मन्दिरपर धावा बोलनेका निश्चय किया। साधु-संत, ब्राह्मणोंको कभी कहीं उसने सताया हो, ऐसा दिन कोई उसे याद नहीं; किंतु 'बुभुक्षितः किं न करोति पापम् ?' (भूखा कौन-सा पाप नहीं करता ?) विवश हो अन्नादि लूटनेके पहले वह पुजारी बाबाकी हत्याको उतारू हो गया। सोचा—बाबा मुझे पहचानता है, राजे-महाराजोंतक इसकी पहुँच है, प्रभाव है, सम्भव है, मैं पकड़ लिया जाऊँ और मुझे घोर प्राणान्त दण्ड मिले। अतः इन्हें प्राणविहीन करके ही लूटूँगा। फिर तो वह उनकी छातीपर सवार था। अँधेरी रातमें उसके हाथका तेज छूरा चमक रहा था। बाबा हँस रहे थे, उनके मुखमण्डलपर तनिक भी भयकी कालिमा दृग्गोचर नहीं हो रही थी। उनकी उस अप्रतिम सौम्य-शान्त प्रसन्न मुखमुद्रा देख हत्यारेका हृदय सहसा सहम उठा, उसके लिये यह अत्यन्त आश्चर्यकर अभूतपूर्व घटना थी। क्षणभर वह रुका, बोला, 'बाबा ! हम तो तुम्हारी हत्याको उद्यत हैं और एक तुम हो जो इस अवस्थामें भी निर्भय हँस रहे हो। तुम्हारे इस हास्यका कारण ज्ञात कर लेनेके बाद ही तुम्हारे प्राण-हरणकी चेष्टा करूँगा।' बाबा सहज भावमें बोले—'वत्स ! मेरी हत्याके लिये तो यह कठोर आयास क्यों ?'

गुलिक—मैं भूखा हूँ, आज मेरा समस्त परिवार क्षुधाकुल है, आज दिनभर कोई शिकार कहीं प्राप्त न हो सका, तुम्हारे मन्दिरमें अन्नोंका भरा भण्डार है, मैं तुम्हें मारकर उसे लूट ले जाना चाहता हूँ।

बाबा—(स्नेहभरे स्वरमें) 'इसमें हत्याकी कौन-सी बात है ? इच्छानुसार तू अन्नराशि ले जानेमें स्वतन्त्र और समर्थ है। नरकी सेवा भी तो नारायणकी ही सेवा है।' व्याध अविश्वस्त था, उसे भय था कि बाबाके जीवित रहते मैं अवश्य पकड़ लिया जाऊँगा, उसकी वही हठ कि 'पहले हँसनेका हेतु बताओ, बादमें मैं और कुछ सोचूँगा।' बाबाका स्मित प्रश्न हुआ, 'बेटा ! तूने कभी किसीको मरते देखा है ?' मरते ? मेरे हाथों तो न जाने कितने हर रोज ही मौतके घाट उतरते हैं और मैं ही नहीं देखूँ ?' यह व्याधका उत्तर था।

बाबा—तेरे माता-पिता और बूढ़े सगे-सम्बन्धी जीवित हैं ?

गुलिक—नहीं, वे तो कब-के-कब मर चुके।

बाबा—उनके मर जानेपर तूने या तेरे परिवारके लोगोंने क्या किया ?

गुलिक—उन्हें श्मशान ले जाया गया, उनकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुखबत्ती की गयी—एक जलती लुकारी (लुआठी) से उनका मुख जलाया गया, श्राद्ध हुआ, फिर यथासमय उनका भोजभण्डारा किया गया। पूरी-कचौरी, मिठाइयाँ बँटीं।

बाबा—ठीक है, जैसे तेरे माता-पिता घरके अन्यान्य सगे-सरदार सभी एक दिन मौतके शिकार हो संसारसे कूच कर गये, वैसे तू भी यहाँ न रहेगा, कभी सोचा है ? मरे पीछे तुझे सिर्फ लुआठी ही तो मिलेगी और लोग तेरे नामपर पूरी-पक्वान्न भोग लगायेंगे।

गुलिक—(चिन्तित मुद्रामें अपने आप) लगता है जैसे एक-एक करके सब विदा हुए, मैं भी न रह सकूँगा, मैं भी मरूँगा, ऐसा मैंने कभी नहीं सोचा। सचमुच अन्तमें मुझे लुआठी ही तो हाथ लगेगी। बोला—'बाबा ! तुमने मेरी आँखें खोल दीं। मैं महा-महादानव हूँ, तुम तो महामानव हो, घोर पाप-पंकसे तुम मेरा परित्राण करो।' गुलिक व्याधकी आँखें सजल थीं, उसका सिर बाबाके चरणोंपर अवनत था, छूरा उसके हाथसे दूर जा गिरा था। पश्चात्तापके विषम-वह्नितापमें वह बेतरह दग्ध हो रहा था या सुवर्णकी तरह वह निखर रहा था। बाबाने **'अभयं ते'** (अब तू अभय है) कहकर सस्नेह उसे अङ्कमें भर लिया। बोले—'सच्चा पश्चात्ताप ही मनुष्यका सच्चा प्रायश्चित्त है, तू अब सर्वथा शुद्ध है, निष्पाप है पुत्र ! तेरा शाश्वतिक कल्याण हो !' गुलिकको गुरु मिला, वह अन्धकारसे प्रकाशमें आ गया था। अब वह **'परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्'** का सदाके लिये सत्य-साधक बन गया। सच है, **'सत्सङ्गतिः कथय किं न करोति पुंसाम्'** (साधु-समागम, कहो पुरुषोंको क्या नहीं कर देता ?)

लोग अच्छाईकी तरफ भी बढ़ रहे हैं

(लेखक—डा० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, विद्याभूषण, दर्शनकेसरी)

बी-एस्० सी० पास रिक्शाचालक

जयपुरमें मैं रिक्शामें बैठकर युनिवरसिटी जा रहा था। आकाश मेघाच्छन्न था और हवामें कुछ सुखदायक ठंड थी। मनमें बातें करनेकी इच्छा हो उठी। रिक्शा-चालक पौशाकसे शिष्ट और सभ्य दिखायी दिया।

मैंने पूछा—'कितने दिनोंसे जयपुरमें रिक्शा चलाते हो ?'

'यही कोई दो महीनेसे।'

'यह रिक्शा तुम्हारा निजी है क्या ?'

'नो सर, आई हैव हायर्ड इट। आई पे वन एट डेली फार इट टु इट्स ऑनर।' (नहीं महाशय ! मैंने इसे भाड़ेपर ले रक्खा है, इसके मालिकको मैं इसके लिये डेढ़ रुपया रोज देता हूँ।)

उसके अंग्रेजी बोलनेपर मुझे आश्चर्य हुआ। कौतूहल बढ़ा।

मैं बोला—'अरे, तुम तो अंग्रेजी भी जानते हो। कैसे सीखी है यह भाषा ?'

वह थोड़ी देर रुका, फिर बोला—'अंग्रेजी, जी अंग्रेजी ही नहीं, और भी बहुत-सी चीजें पढ़ी हैं। फिजिक्स, मैथेमैटिक्स और कैमिस्ट्री·······एक साल नहीं, कई वर्ष पढ़ा है। सब कालेजमें रहकर नियम-पूर्वक पढ़ा है। फीसें दी हैं।'

'क्या कोई परीक्षा पास की है ?'

'जी, मैंने बीएस्-सी० की परीक्षा पास की है। दुर्भाग्यसे थर्ड डिविजनमें निकला हूँ।'

उत्तर सुनकर मुझे ऐसा लगा, जैसे बिजलीका तार ही छू गया हो।

मैं सोचने लगा, बी-एस्० सी० पास करनेपर भी रिक्शा चलाने-जैसा निम्नकोटिका कार्य ? कैसे यह युवक इस हीनकार्यसे अपने-आपको जोड़े हुए है ? मेरा मन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भानुमतीका पिटारा बना हुआ था । अनेक प्रकारके सन्देह और जिज्ञासाएँ मनमें उठ रही थीं ।

'इतना पढ़-लिखकर भी रिक्शा चलाने-जैसा मजदूरी-का काम क्यों किया ? तुम्हें तो किसी भी फैक्टरीमें, दफ्तर या स्कूलमें नौकरी मिल सकती थी ।'

'नौकरी····ना—करी । नौकरीसे गिरा हुआ दूसरा कार्य क्या होगा ?'

'मैं तुम्हारा मतलब नहीं समझा । कुछ स्पष्टीकरण करो भाई !'

'जी, मैंने शुरूसे ही यह संकल्प किया था कि नौकरीकी गुलामी न करूँगा । कोई स्वतन्त्र पेशा करूँगा । स्वयं अपने पाँवोंपर खड़ा रहूँगा । मैं नौकरीसे स्वतन्त्र कार्यको कहीं बेहतर समझता हूँ । मजबूत हाथ-पाँव और सुशिक्षित दिमाग मेरे पास है, फिर नौकरी करके क्यों किसी बुरे स्वभावके मालिककी अन्यायपूर्ण उक्तियाँ सहता फिरूँ ? मुझमें झूठी शान-जैसी कोई व्यर्थकी भावना-ग्रन्थि नहीं है । मैं आदमीके कर्ममार्ग और पुरुषार्थमें विश्वास करता हूँ । ईश्वरकी कृपा और प्रसन्नता प्राप्त करनेके लिये केवल इतना ही काफी नहीं कि हम सदा निष्क्रिय बैठे-बैठे केवल पूजा, स्तुति, जप, ध्यान और कीर्तन मात्र ही करके सन्तुष्ट हो जायँ । असली पूजा तब प्रारम्भ होती है, जब आदमी मजबूतीसे ईमानदारीके साथ कार्य करता है, कुविचारों और कुकर्मोंसे बचनेके लिये सत्कार्यों, या मेहनत-मजदूरीमें लगा रहता है । ईश्वर कार्योंमें है । परमात्मा हमसे पूरा और खरा काम माँगता है । अपने शुभ कार्योंसे खुद अपने चरित्रमें प्रकट करना ही ईश्वरको प्रिय है । आज जमानेकी जिम्मेदारी कार्य करनेमें है । हम खाली न बैठें, बल्कि जो मिले उसे ईमानदारीसे पूरा करें ।'

उसका उत्तर सुनकर मैं चकित रह गया । सत्कर्मों-द्वारा पूजा—उसका यह आदर्श मुझे जीवनके लिये बड़ा उत्तम प्रतीत हुआ ।

गुंडोंसे रक्षा करनेमें प्राणोंकी आहुति

सिलचरका एक समाचार इस प्रकार है—

गत सावन पूर्णिमाके दिन झूलन देखकर दो युवतियाँ घर वापिस आ रही थीं । सायंकालका हल्का अँधेरा था और उनका घर दूर था । पता नहीं, कबसे गुंडे उन्हें उड़ानेकी कुत्सित योजनाएँ बना रहे थे । दुर्भाग्यसे वे एक ऐसी जगह आये, जहाँ गुंडे और वे दोनों युवतियाँ ही अकेली रह गयीं । अब उनकी बड़ी ही शोचनीय हालत थी । बेचारी लज्जाशीला लड़कियाँ बड़ी विपत्तिमें फँस गयीं । उन्होंने बार-बार रक्षाके लिये ईश्वरसे प्रार्थना की ।—'हे ईश्वर ! हमारे चरित्रकी रक्षा कीजिये । इन दुष्टोंसे रक्षा करनेका कोई साधन भेजिये ।' वे यही स्वर मन-ही-मन बार-बार उच्चारण कर रही थीं । संकटके समय ईश्वरका नाम हमारे संकल्पबलको उठा देता है और अंदरसे एक गुप्त दैवी सहायता मिलने लगती है ।

इतनेमें उन्हें एक सज्जन युवक आता दिखायी दिया । वे चिल्लायीं, 'भाई साहब, हमारी इन लम्पट आदमियोंसे रक्षा कीजिये । ये हमें परेशान कर रहे हैं । हाय ! इस मानवजातिको क्या हो गया है ।'

ये जे० बी० कालेज, सिलचरके भूतपूर्व छात्र श्रीचिरंजीव सेन थे । उन्होंने अकेले होते हुए भी गुंडोंको ललकारा, जोर-जोरसे बुरी तरह लताड़ा, हाथा-पाई हुई । कुछ देर झड़प चलती रही, जिसमें उन युवतियोंने भी पत्थरोंसे दुष्टोंकी मरम्मत की । धीरे-धीरे वहाँ भीड़ एकत्रित हो गयी । इस झगड़ेमें श्रीचिरंजीव सेनके बहुत चोटें आयीं और एक हाथ भी टूट गया । पर उन्होंने दोनों युवतियोंको उनके घर पहुँचा दिया ।

लेकिन गुंडे अब चिरंजीव सेनसे बदला लेनेके लिये उनके रक्तके प्यासे बन गये ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिशोध एक दुष्ट मनोविकार है। जब यह मनमें बैठता है, तब मनुष्य साक्षात् राक्षस बन जाता है। उसे अच्छा-बुरा कुछ नहीं सूझता। वह किसी-न-किसी तरह अपने विरोधीसे, चाहे वह अच्छा ही आदमी क्यों न हो, बदला लेनेकी सोचता है।

उस समय गुंडोंकी हिंसक प्रवृत्तिसे बच जानेपर भी वे दुष्ट उनके पीछे पड़े रहे। एक दिन जब वे अकेले टहल रहे थे, तो एकाएक अँधेरेमें उन्होंने उनपर हमला कर दिया। वे छुरोंसे बुरी तरह घायल हो गये। यद्यपि बहुत देरतक लात और घूँसोंसे उन्होंने दुष्टोंको न अड़ने दिया। गुंडे उन्हें घायल और बेहोश बागमें पड़ा छोड़कर लापता हो गये।

पुलिस घटनास्थलपर पहुँची। घायल सेनको तुरंत अस्पताल पहुँचाया गया। अस्पतालमें कुशल डाक्टरोंने उनकी तुरंत बड़ी सेवा और चिकित्सा की। उन्होंने नेत्र खोले। पुलिसने उनका बयान लिया। उन्हें कुछ होश आया, तो उन्होंने आक्रमण करनेवाले गुंडोंका हवाला, शक्ल-सूरत, वस्त्र इत्यादिके विषयमें बहुत कुछ बतलाया।

लेकिन हाय! डाक्टरोंकी कोशिशें फलवती न हो सकीं। सेन इतने घायल हो गये थे कि बच न सके! उनकी अस्पतालमें ही मृत्यु हो गयी। मानवताकी रक्षामें ही उन्होंने प्राणोंकी आहुति दे दी।

बलिदानी सेनकी नश्वर देहको लेकर सिलचर-वासियोंने आत्मगौरव दिखाते हुए एक बृहत् जुलूस निकाला। उनके शवपर विभिन्न शिक्षण संस्थाओंकी ओरसे मालाएँ अर्पित की गयीं।

उच्छृङ्खलता एवं गुंडागर्दीको रोकना भी एक धार्मिक कार्य ही है। इनसे डटकर लोहा लेनेवाले भी वीर ही हैं। सत्कार्योंके लिये रचनात्मक दिशामें साहस कर सकना किन्हीं विरले ही धीर-वीर व्यक्तियोंके लिये सम्भव होता है। संकटमें दूसरेकी सहायता करना एक दैवी गुण है, जो केवल सज्जनोंमें ही पाया जाता है।

बालकका साहस

रायपुर म्युनिसिपल हायर सैकंडरी स्कूलके एक तेरह वर्षीय छात्र पवनकुमारने अपनी जान गंभीर खतरेमें डालकर एक पञ्चवर्षीय बालकको डूबनेसे बचा लिया।

बात यों हुई कि पवनकुमार पढ़कर छुट्टीके बाद थका-माँदा पैदल अपने घर लौट रहा था। वह धीरे-धीरे तालाबके किनारेसे चला जा रहा था। वहाँ प्रायः धोबी लोग कपड़े धोते हैं। उनके गधे बँधे रहते हैं और वे अपने बच्चोंको भी तालाबके एक किनारे खेलने छोड़ देते हैं। वह पाँच वर्षका बालक पानीमें कागजकी नाव चलानेका बड़ा शौकीन था। उसका बाप समीप ही बीड़ी-माचिस खरीदने गया और माँ बाहर किसी अन्य कामसे चली गयी। किसीका नियन्त्रण न देखकर बालक अपनी नाव चलाने तालाबके किनारे भाग गया। माँ-बाप न आ जायँ, इस हड़बड़ीमें वह जल्दी-जल्दी नाव तैरा रहा था कि पाँव फिसल गया। बालक पानीमें गिर पड़ा और हाथ-पाँव हिलाने लगा। पहले खूब चिल्लाया, पर पास ही कोई सहायताके लिये नहीं था। फिर क्या था, वह पानीमें डूबने-उतराने लगा। ऐसे संकटकालमें पवनकुमारकी दृष्टि डूबते हुए बालकपर पड़ी। वह स्थितिकी भयंकरताको समझ गया। यों मनुष्य अपनी प्रसिद्धि करनेके लिये कुछ तो साहस करता ही है, किंतु सराहनीय वह है, जिसने परोपकार और जन-कल्याणकी दृष्टिसे कष्ट सहने, त्याग करने और दूसरोंके प्राण बचानेमें कदम बढ़ाये हों। पवनकुमार कपड़े पहिने ही तत्काल पानीमें कूद पड़ा और अपने-आपको भयानक खतरेमें डालकर बालकको किनारे ले आया। बालक बेहोश हो गया था और उसके पेटमें कुछ जल भी भर गया था। इतनेमें बालकके माँ-बाप तथा और बहुत-से लोग एकत्रित हो गये। उसे फौरन अस्पताल पहुँचाया गया और बालकके प्राण बच गये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्कूलके छात्रों और अध्यापकोंने पवनकुमारको उसकी वीरताके लिये एक शील्ड प्रदान की । किसी देशकी सत्ता, सम्पदा उसकी धन-दौलत नहीं, वरं मनुष्योंकी भावनात्मक उत्कृष्टता ही होती है ।

जिस समाजमें जितने त्यागी, उदार, परमार्थी, सेवाभावी, सदाचारी और विवेकशील लोग हैं, उसे उतना ही सम्पन्न एवं समुन्नत कहना चाहिये ।

छात्रोंकी त्यागपूर्ण परोपकार वृत्ति

ऐसा ही एक समाचार मण्डलासे मिला है । श्रीमती चौबे अपने दो पुत्रों तथा एक भतीजेके साथ नर्मदामें खेराघाटपर स्नान करने गयी थीं, तो स्नान करते समय अचानक उनका पैर गहरे पानीमें फिसल गया और वे नदीकी तेज धारामें बहने लगीं । उनका सोलह वर्षीय भतीजा, अपनी बुआको बचानेके लिये नदीमें कूद पड़ा था, दुर्भाग्यसे वह भी नदीकी तेज धारामें काफी दूर-तक बह गया । हितेन्द्रसिंह ठाकुर, सुभासचन्द्र जैन और महादेवप्रसाद नामक तीन छात्र पास ही थे। इन लोगोंके जीवनको संकटमें फँसा देखकर वे तत्काल ही नदीमें कूद पड़े । अपने व्यक्तिगत जीवनको खतरेमें डालकर बड़े प्रयत्नोंसे उनको डूबनेसे बचाया । सामूहिकरूपसे कार्य करके उन्होंने परोपकारका एक शानदार उदाहरण प्रस्तुत किया; अपनी तत्काल बुद्धिका परिचय दिया और संकटकालीन परिस्थितियोंमें फँसे हुए दो व्यक्तियोंको बचाया । अपने देशकी सच्ची सम्पदा बढ़ रही है या नहीं, इसकी कसौटी यही हो सकती है कि उसके नागरिकोंमें स्वार्थपरतासे विरक्ति और त्यागपूर्ण पर-कार्योंमें प्रीति किस सीमातक बढ़ी है।

संकटके समय धैर्यका परिचय देना मनुष्यकी पुरुषार्थशीलता है । संकटोंमें पंजेसे जान बचानेके लिये जबतक धैर्य और साहसका सहारा नहीं लिया जायगा, तबतक विपत्तियाँ सदैव हमें विचलित करनेको तैयार रहेंगी ।

बालिकाका नेत्रदान

नयी दिल्लीका एक समाचार मिला है कि बारह वर्षीया कुमारी गीता अब इस संसारमें नहीं रही, किंतु मृत्युसे पहले उसने जो दान दिया, उससे किसीके अन्धेरे जीवनमें प्रकाश होगा ।

गीताका देहान्त कुछ मास पूर्व अखिल भारतीय चिकित्साविज्ञान-संस्थानके अस्पतालमें हुआ था । प्राण त्यागनेसे पूर्व उसने अपनी माँके समक्ष इच्छा प्रकट की, 'मेरी आँखें दान कर दी जायँ ।' संस्थानके एक डाक्टरने बालिका गीताके पिता श्रीललितकुमार शर्माको पत्र लिखकर गीताके साहसकी सराहना की है । गीताकी स्मृतिको ताजा रखनेके लिये बच्चोंके वार्डकी गैलरीमें गीताका चित्र लटकाया गया है । उसके नेत्रोंके दानसे किसी अन्धेको रोशनी मिलेगी ।

रुपये-पैसेका दान तो है ही, लेकिन मरनेसे पूर्व अपने शरीरके अङ्गोंका दान दधीचिकी हड्डियोंके दान-जैसी पुण्य-परम्परा है । प्राणीमात्रकी सेवा, जबतक बने करनी चाहिये । उत्तम तो यह है कि यह नश्वर शरीर ही किसीके काममें आ जाय ।

चालीस बार रक्तदान

हैदराबादमें गुडरके एक एडवोकेट श्री एस्० वी० नरसिंहराव अभीतक चालीस बार अपना रक्तदान दे चुके हैं; लेकिन इतनेसे ही वे संतुष्ट नहीं हुए हैं । अतः अब उन्होंने अपनी वसीयतमें अपना शव ओसमानिया जनरल अस्पतालके सुपरिंटेंडेंटके नाम कर दिया है। उन्होंने यह भी कहा है कि मेरी मृत्युके बाद मेरी आँखें किसी जरूरतमन्दके लिये सुरक्षित रख ली जायँ।

मनुष्य होकर भी जो दूसरोंका उपकार करना नहीं जानते, उन आदमियोंके जीवनको धिक्कार है । उनसे अधिक उपकारी तो पशु ही हैं, जिनका चमड़ातक (मरनेपर) दूसरोंके काम आता है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधवाका सर्वस्व-दान

श्रीमती चोहारियाबाई नामक एक वृद्ध विधवाने बिलासपुर जिलेमें अपने गाँव सिमनीमें लड़कियोंका एक स्कूल बनानेके लिये राज्यसरकारको अपनी सारी जायदाद दानमें दे दी है। विधवाने यह भेंट मध्य-प्रदेशके एक मन्त्रीको उस समय दी जब वह गाँवमें एक सार्वजनिक सभामें भाषण कर रहे थे। जब स्थानीय नेता उपमन्त्री महोदयका स्वागत कर रहे थे, यह विधवा मञ्चपर चढ़ गयी और पंद्रह सौ रुपये नकद तथा सात सौ रुपयेकी कीमतके अपनी भूमिके कागजात उन्हें दान दे दिये। उसने जल्दी ही पाँच सौ रुपये और देनेका वचन भी दिया। इस विधवाने उपमन्त्री महोदयसे अनुरोध किया कि स्कूलका निर्माण जल्दी होना चाहिये, जिससे वह उसे अपने जीवन-कालमें ही फलता-फूलता देख सके। उपमन्त्री महोदयने स्कूलके लिये तीन हजार रुपयेका अनुदान तत्काल ही स्वीकृत कर दिया।

इस विधवाका संयम और एक उच्च कार्यके लिये दान आज भी त्याग और बलिदानकी परम्पराको अक्षुण्ण बनाये हुए है। उसने जीवनमें व्यर्थकी विलासिता, अहंकार, स्वार्थ और दिखावेमें अपने पैसे खर्च नहीं किये। केवल उतना ही लिया, जितना उसके शरीरके निर्वाहके लिये आवश्यक था। शेष वह समाजके उपयोगी कामोंके लिये बचाती रही। जिस समाजमें हम पैदा हुए हैं, वही हमारा परिवार है। हमारा देश गरीब है। देशके ज्यादातर लोग तो गरीबीमें जियें और हम मौजसे गुलछर्रे उड़ायें, यह अन्यायपूर्ण है। नब्बे प्रतिशत भारतीय जनता जिस स्तरका जीवन व्यतीत करती है, उसी स्तरका रहन-सहन, खर्च और उपयोग हमें भी रखना चाहिये। साधु और ब्राह्मणकी—वानप्रस्थ और संन्यासकी—दान और पुण्यकी प्रचलित धर्मपरम्पराएँ इसीलिये बनायी गयी हैं कि हम उच्च सामाजिक कार्योंके लिये कुछ एकत्रित करें और फिर दान कर दें।

चपरासीकी कर्त्तव्यपरायणता

बुलन्दशहरके दुर्गाप्रसाद नामक स्कूलके एक चपरासीसे डकैतोंने उसका सब कुछ छीन लिया। अँगुलीमें फँसी सोनेकी अँगूठी जब उनसे न निकली, तब वह उसने स्वयं निकालकर दे दी—परंतु स्कूलकी सायकिल वह समयतक न दी, जबतक डकैतोंने उसे मारपीटकर बुरी तरह घायल ही न कर दिया। यह चपरासी बुलन्दशहरके 'शर्मा हायर सेकंडरी स्कूल'में नौकर था। वह सायकिलपर बैठ किसी स्कूलके कामसे जा रहा था। उसके पास कुछ नकदी भी थी। अकेला देख डकैतोंने उसे घेर लिया। चपरासीकी सब नकदी छीन ली गयी, किंतु जब वे स्कूलकी सायकिल छीनने लगे, तब उसने बड़े साहस और वीरतासे उनका मुकाबला किया। उसने उन्हें ललकारते हुए कहा, 'तुम मेरी सब निजी चीजें छीन सकते हो, परंतु स्कूलकी चीज मैं जिंदा रहते तुम्हें न दूँगा।' काफी छीनाझपटीपर भी वे उस सायकिलको न ले जा सके, कारण उसने एक पहियेकी हवा निकाल दी और कुछ स्पोक तोड़ डाले। कर्त्तव्यपालनसे ही मनुष्य बड़ा बनता है।

प्रसन्नताकी बात है कि नव-जागरण बेलामें जन-मानसका विकास सज्जनोचित सत्कर्मोंकी ओर बढ़ रहा है। त्याग, सेवा, बलिदान, साहसके ऐसे समाचार आये दिन समाचारपत्रोंमें छपते रहते हैं। इन अच्छी प्रवृत्तियोंके विकासकी जितनी प्रशंसा की जाय, उतनी ही कम है; जितनी चर्चा की जाय, उतनी ही थोड़ी है। दैवी प्रवृत्तियोंकी अभिवृद्धि ही भविष्यमें भारतको पुण्यभूमि बनायेगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानसिक स्वास्थ्य

(लेखक—डॉ० श्रीकन्हैयालालजी सहल, अध्यक्ष हिंदी-संस्कृतविभाग, बी. आइ. टी. एस्. पिलानी)

आधुनिक मनोविज्ञानमें सिद्ध कर दिया है कि मानसिक स्वास्थ्य शारीरिक स्वास्थ्यकी अपेक्षा भी अधिक आवश्यक । बहुत-सी शारीरिक बीमारियाँ मानसिक कारणोंसे उत्पन्न होती हैं। अजीर्ण तथा पेट एवं आँतों-सम्बन्धी बहुतसे रोग चिन्ताजन्य होते हैं । उग्र भावावेशकी हालतमें पाचन-क्रिया अपना काम बंद कर देती है । चिन्तित रहनेवाले व्यक्ति अधिकांशमें कोष्ठबद्धताके शिकार देखे गये हैं ।

यदि कोई ऐसा व्यक्ति हो, जो अपने साध्यपर पहुँच चुका हो, जहाँ जीवनकी विषम समस्याओंके साथ संघर्ष करनेके लिये कोई प्रेरणा अवशिष्ट न रह गयी हो, वहाँ बाह्य जीवन बहुत नीरस हो जायगा । यदि हम ज्ञानके उच्चतम शिखरपर पहुँच चुके हों तो फिर हम न किसी प्रकारके विचार-विमर्शोंमें लगेंगे, न किसी प्रकारके अन्वेषण अथवा अनुसन्धानमें ही प्रवृत्त होंगे । विज्ञानका अन्त हो जायगा, समस्त सृष्टि ही एक कहानीकी आवृतिमात्रके अतिरिक्त और कुछ न रहेगी; धर्म और कला, जिनके प्रयोगात्मक अनुभवोंसे हमें आनन्दकी उपलब्धि होती है, तब अर्थहीन व्यापारमात्र रह जायँगे । संघर्षोंसे छुटकारा पानेमें आनन्द नहीं है, आनन्द है संघर्षोंपर विजय प्राप्त करनेमें । यदि कोई मनुष्य समाजसे अलग होकर एकान्तवास करने लगे तो वह बहुत-सी सामाजिक त्रुटियोंसे बच जायगा, किंतु उसके व्यक्तित्वके विकासके लिये जिस सामाजिक साहचर्यकी आवश्यकता उसे थी, उससे वह वञ्चित ही रह जायगा, मानसिक स्वास्थ्यके दूषित होनेका कारण हमारी अयोग्यता उतनी नहीं है, जितना है जीवनके प्रति हमारा गलत दृष्टिकोण ।

भय और क्रोध दो ऐसे मनोवेग हैं, जो हमारे मानसिक स्वास्थ्यको आघात पहुँचाते हैं । सुरक्षाकी भावनाको जब क्षति पहुँचती है, तभी भय उत्पन्न होता है । उदाहरणार्थ भूतके भयपर विचार करें । आत्म-विश्वासकी कमीके कारण भूतका कल्पित भय भी हमारे स्नायु-दौर्बल्यका कारण बन जाता है । उन्माद तथा हिस्टीरियाके रोग भी मानसिक अस्वास्थ्यके ही द्योतक हैं और इस मानसिक अस्वास्थ्यका मूल कारण है—शक्ति होते हुए भी अपनेको शक्तिहीन समझना । मनुष्यके लिये आवश्यक है कि वह मानसिक प्रसन्नताकी आदत डाले । इसे ही गीताकारने 'प्रसाद'के नामसे अभिहित किया है ।

> प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते ।
> प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते ॥

बुद्धिके विचलित होनेसे ही मानसिक स्वास्थ्य दूषित होता है । और बुद्धि विचलित तभी होती है, जब मनुष्य प्रसन्नचित्त रहना बंद कर देता है । मानसिक स्वास्थ्यसे सम्बन्ध रखनेवाले बहुत-से उपयोगी सूत्र गीतामें मिल जाते हैं । आधुनिक मनोविज्ञानके प्रकाशमें इस दृष्टिसे भी गीताका अध्ययन किया जाना चाहिये ।

दूसरे प्रधान मनोवेग क्रोधके कारणका उल्लेख करते हुए गीतामें कहा गया है 'कामात् क्रोधोऽभिजायते।' हमारी कामनाओंकी पूर्तिके मार्गमें जब अड़चनें उपस्थित होती हैं तो क्रोध उत्पन्न होता है । ऐसी अवस्थामें कुछ मनुष्य तो कहने लगते हैं—जब हमारे मार्गमें इतने विघ्न उपस्थित होते हैं तो इन कार्योंके करनेका फल ही क्या है ? कुछ मनुष्य जीवनके प्रति बड़ा स्वस्थ दृष्टिकोण रखते हैं, कठिनाइयोंको समझनेकी चेष्टा करते हैं और तदनुकूल व्यापारमें प्रवृत्त होकर जीवनके प्रति आशावादी दृष्टिकोण बनाये रखते हैं । दूसरे प्रकारके मनुष्य वे होते हैं, जो कार्यमें अड़चनें उपस्थित होते ही क्रुद्ध होकर जमीनपर पैर पटकने लगते हैं, आकाश-पाताल एक करनेकी धमकियाँ देते हैं; किंतु इस प्रकारके मनुष्य स्वयं अपनेपर लज्जित होनेके अतिरिक्त कुछ नहीं कर पाते ।

किसके जीवनमें मुश्किलें नहीं ? कौन मुसीबतोंका शिकार नहीं होता ? किंतु उसीका धैर्य अभिनन्दनीय है, जो मुसीबतोंपर विजय प्राप्त करता हुआ मानवताका जय-जयकार करता चलता है ।

लाटरीमें जैसे किसीको एक लाख रुपये मिल जाते हैं, वैसे अकस्मात् मानसिक स्वास्थ्य प्राप्त नहीं हो जाता। मानसिक स्वास्थ्यके लिये साधना अपेक्षित है । जो मनुष्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनासक्त होकर जीवनमें काम करता है, उसका मानसिक स्वास्थ्य दूषित नहीं होता। एक न्यायाधीश वर्षोंतक फैसला देता रहा है। अनेक बार अपराधियोंको उसने मृत्यु-दण्ड भी दिया है। आज उसीका पुत्र विचारार्थ उपस्थित है। पुत्रका अपराध ऐसा है कि उसे मृत्यु-दण्ड मिलना चाहिये। किंतु न्यायाधीशकी विचार-धारा बदलने लगती है, वह सोचता है—मृत्यु-दण्ड कोई अच्छी वस्तु नहीं; क्योंकि इससे अपराधीका कोई भला नहीं होता। अन्य अपराधियोंको मृत्यु-दण्ड देते समय यदि न्यायाधीशके मनमें इस तरहके विचार उदित हुए होते तो हम न्यायाधीशकी प्रशंसा ही करते; किंतु आज तो पुत्र-मोहके कारण उसका मानसिक स्वास्थ्य दूषित हो गया है—इसलिये उसकी विचारधाराने भी दूसरा रूप धारण कर लिया है। महाभारतका युद्ध प्रारम्भ होनेसे पहले अनेक युद्ध अर्जुन लड़ चुका था और श्रीकृष्ण यदि उसे सम्बन्धियोंके अतिरिक्त अन्य किसी शत्रुसे युद्ध करनेको कहते तो न तो अर्जुनके हाथसे गाण्डीव छूटता, न कँपकँपी-सी पैदा होती। अर्जुन भी अपना मानसिक स्वास्थ्य खो बैठा था।

जप

[कहानी]

(लेखक—श्री'चक्र')

'जपात्सिद्धिर्जपात्सिद्धिर्जपात्सिद्धिः कलौ युगे।'

महात्माने इतना कहा और चुप हो गये। उनका स्वभाव ही बोलनेका नहीं है। धनके कृपण तो बहुत सुने-देखे; किंतु ये वाणीके कृपण हैं। पता नहीं इन्हें बोलनेमें क्या जोर लगता है। नीमके नीचे बने कच्चे चबूतरेपर गुमसुम बैठे रहेंगे या लेट जायँगे। पता नहीं नीमकी पत्तियोंमें इनके नेत्र क्या ढूँढ़ते रहते हैं।

'शीतल छाया नीमकी' सुना मैंने भी है। नीममें बहुत गुण हैं, यह भी बहुतोंसे सुना है। इतना ही नहीं, बचपनमें मैंने अपने द्वारपर बहुत बार नीमका पेड़ लगाया। उनमें लग गया एक और खूब सघन हुआ। मुझे बहुत प्रिय था वह; किंतु अब मुझे नीमसे चिढ़ हो गयी है। यह वृक्ष वर्षमें कई महीने कूड़ा किया करता है। पतझड़में पत्ते झड़ेंगे, फिर फूल, सींकें और तब निमौलियाँ। कहीं इससे कभी आसव-स्राव होने लगा तो दूरतक कड़वी गन्ध बैठने नहीं देगी।

इन साधुओंको तो सब सहनेमें कुछ मजा आता है। पत्ते झड़ें ऊपर वहाँतक तो एक बात है; किंतु पटापट निमौलियाँ कौवे खोपड़ी और शरीरपर गिरा रहे हैं और बाबाजी हैं कि इन्हें उधर ध्यान देनेकी आवश्यकता ही अनुभव नहीं होती। चुपचाप दृष्टि लगाये पत्तोंमें कुछ देखते रहेंगे। कोई आवे, कोई जाय, इनकी बलासे।

लोग आते हैं, संसारमें दुःख ही तो अधिक है। जहाँ हरियाली दीखती है, क्षुधातुर पशु उधर ही भागता है। सब शोक-चिन्तासे मुक्त साधुके समीप क्लेशसे निवृत्ति पानेका उपाय नहीं होगा तो कहाँ होगा? लोग आते हैं, अपना दुःख रोने ही आते हैं। ये महाराज सुनते भी हैं या नहीं, पता नहीं; किंतु लोग तो अपनी कह ही लेते हैं। घंटों लोग बैठे रहते हैं कि ये कुछ बोलें। एक दिन, दो दिनमें कहीं एक बार इनका मुख खुलता है। कोई आवश्यक नहीं कि किसीकी ओर देखकर; किसीकी बातका उत्तर ही दें। कुछ कह देंगे दो-चार शब्द और फिर चुप। गाँवके लोगोंने इनका नाम गुमसुम बाबा ठीक ही रक्खा है।

धूलिसे लिपटा गौर वर्ण, स्थूल काया, बड़े-बड़े तनिक अरुणाई लिये नेत्र, उलझे केश, जिनमें एक तिहाई श्वेत हैं और जो शेष हैं, वे भी काले नहीं, भूरे हो गये हैं। खूब सघन दाढ़ी-मूँछसे मुखका अधिक अंश ढक गया है। कमरमें एक मैली कौपीन पड़ी है।

गाँवके लोग रोटी, दाल, छाछ, जो जीमें आया, ले आते हैं। इच्छा हुई तो खा लेंगे, न इच्छा हुई तो पड़ा रहेगा। कुत्ते या कौओंका भाग है वह। गाँवके लोग ही आस-पास सफाई कर देते हैं। एक करवा अवश्य समीप पड़ा रहता है। उसे लोग जलसे भरा रखते हैं।

दिन-रातमें एक बार उठते हैं चबूतरेसे। बड़े सबेरे, अँधेरा रहते ही उठते हैं और बच्चोंके समान भागते-दौड़ते चले जाते हैं। गाँवसे लगभग मीलभर दूर एक छोटा सरोवर है। वहीं इनका नित्यकर्म पूरा होता है। सरोवरमें डुबकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगाकर गीली लंगोटी ही पहने दौड़े आयेंगे और फिर चबूतरेपर जम जाँगे ।

कभी कोई भूला-भटका परमार्थका जिज्ञासु भी आ जाता है । संसारके लोगोंको वैसे ही 'नून-तेल-लकड़ी'की चिन्तासे अवकाश नहीं । पशुप्राय मनुष्य क्षुधा, शरीरके रोग और संततिसे आगे बढ़ा तो अटक गया मान-अपमानको लेकर । इस पशुताकी निद्रासे जगनेवाले थोड़े ही होते हैं; किंतु होते तो हैं ही । कभी-भी इस ग्रामीण क्षेत्रमें भी ऐसे एकाध प्रबुद्ध पहुँच जाते हैं । जो मायाकी मोहिनीको ठेंगा दिखा चुका है, उसीके समीप तो भवाटवीमें भटका पान्थ पथ पूछने पहुँचेगा ।

'जपात्सिद्धिः' ये महात्मा हैं कि पूरा श्लोक भी बोलनेका कष्ट नहीं करेंगे । कोई योग पूछे या वेदान्त, भक्ति पूछे या ध्यान—ये एक ही उत्तर जानते हैं । यही क्या कम कृपा है कि जिज्ञासु आवे तो इतना बोल देना चाहिये, यह इनकी समझमें आ गया है । अन्यथा तो ये ठहरे गुमसुम बाबा ।

× × ×

'मन तो जपमें लगता नहीं ।' एक दिन एक जिज्ञासुने इनके पैर पकड़ लिये । साधु यदि अक्खड़ होता है तो जिज्ञासुओंमें भी एक-से-एक बीहड़ निकल आते हैं । पैर खींचा, झटका, किंतु नहीं छोड़ा उसने । अब क्या कर लोगे उसका ?

'किसने कहा कि मन लगना ही चाहिये ?' अन्ततः गुमसुम बाबा बिगड़कर बोले—'मन तेरे हाथमें नहीं तो उसे लगा देनेको तुझसे कहे वह मूर्ख ! उसे लगानेका प्रयत्न ही तू कर सकता है । जीभ लगाता है ? जीभको चैनसे मत बैठने दे ! भाग जा !'

मुझे यह जिज्ञासु अच्छा लगा । शौर्य किसे अच्छा नहीं लगता । गुमसुम बाबासे भी जो इतना कहला ले सके, उसमें शौर्य नहीं है, यह कोई कैसे कह देगा । इच्छा हुई कि उससे बात की जाय । बुलानेपर वह मेरे समीप आ गया । बहुत सरल, सुप्रसन्न और भला लगा मुझे ।

'ये संत हैं । संत क्रोध नहीं करते और कभी करें भी उससे प्राणीका हित ही होता है ।' उसने कहा—'संतोंसे भय कैसा ? इनके द्वारा किसीका कोई अमङ्गल हो ही नहीं सकता ।'

'जीभको चैनसे मत बैठने दे ।' गुमसुम बाबाकी यह बात मुझे अटपटी लगी थी । 'तुम्हें चैनसे रहना है तो जीभको बेचैन बनाये रक्खो ।' यही तो इस वाक्यका दूसरा अर्थ हुआ ? किसी-न-किसीको बेचैन रहना चाहिये और बाबाजीके इसके लिये मिली बेचारी जीभ ।

'यही बात बूढ़े तिब्बती लामाने भी कही थी ।' वह जिज्ञासु बोला—'उसके कहनेका ढंग दूसरा था; किंतु बात यही कही उसने भी ।'

'आप तिब्बत गये थे ?' मैंने पूछा ।

'अब तिब्बत नहीं जाया जा सकता और जाया भी जाय तो चीनी सैनिकोंकी संगीनोंका आतङ्क क्या वहाँ किसीको सत्सङ्ग करने देगा ? वहाँ अब किसी सिद्ध या साधननिष्ठको पा लेना अशक्यप्राय है ।' उसने बताया—'मैं ग्रीष्ममें कुलूघाटीमें गया था । घूमनेके विचारसे आगे स्पीति तक चला गया । उस ओर तिब्बतके प्रवासी इन दिनों बहुत आ गये हैं ।'

'**ॐ मणि पद्मे हुं**' यह तिब्बती लामाओंका मन्त्र है पत्थरोंपर, सींगोंपर, धातुके टुकड़ोंपर—जहाँ-तहाँ यही मन्त्र लिखा, खुदा तिब्बतमें दीखता था कुछ वर्ष पूर्व । अब वहाँ तिब्बती प्रवासी आ गये हैं, वहाँ इसे उनकी भाषामें लिखा देखा जा सकता है ।

ताम्र-गौर रंग, कपोलकी उभड़ी अस्थि, छोटे नेत्र भ्रूपर नाम मात्रके केश, ऐसे ही दाढ़ी-मूँछके नामपर थोड़े बाल, सिरके केशोंकी रंगीन ऊनके सहारे गूँथी गयी चोटी यह वर्णाकृति तिब्बतीकी चर्चा आते ही मनमें आ जाती है कोई लामा है तो उसके हाथमें एक चर्खी हो सकती है—आवश्यक नहीं कि सदा रहे । उसे वह प्रायः घुमाता रहता उस चर्खीपर उनके मन्त्र '**ॐ मणि पद्मे हुं**' की कुछ आवृत्तियाँ लिखी होती हैं । वृद्ध तिब्बतीका ललाट और कुछ गहरी झुर्रियोंसे भरा होगा । पता नहीं क्यों तिब्बतके बूढ़ोंके मुखपर इतनी गहरी झुर्रियाँ होती हैं, जो भारतमें बहुत ही कम देखनेमें आती हैं ।

'मुझे स्पीतिमें वह लामा मिल गया । झुर्रियोंने उसके लम्बे ताम्रमुखको भव्य बना दिया था । वह अपने हाथमें चर्खी घुमाये जा रहा था ।' उस जिज्ञासुने मुझे बतलाया—'मैंने पूछा तुम यह क्या कर रहे हो ?'

लामा बहुत कम हिंदी जानता था । लगता था कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय लोगोंके सम्पर्कमें पहले भी रहा है; क्योंकि हिंदी समझ लेता था। अपनी टूटी भाषामें आकाशकी ओर संकेत करके बोला—'उसके लिये करता हूँ।

'उसे तुम्हारे यह करनेसे क्या लाभ ?'

'कुछ नहीं' यह हाथके संकेतसे समझाकर फिर हाथकी अंगुली अपने वक्षपर रखकर संकेत भूमिकी ओर किया गया। वह कहना चाहता था—'मैं बहुत छोटा हूँ।' कहा उसने यह—'उसके लिये जो कर सकता करता।'

'मैं क्या करूँ उसके लिये ?'

लामा एक क्षण चकित-सा देखता रह गया। उसे आशा नहीं थी कि कोई भारतीय उससे ऐसा प्रश्न करेगा। उसने हाथ जोड़े, सिर झुकाया और हाथ हिला दिया। मैं समझ गया कि वह अपना पिण्ड छुड़ानेके लिये कह रहा है—'आप बड़े हैं, प्रगल्भ हैं, मैं आपको कुछ नहीं कह सकता।'

'लामाजी, ऐसा मत कीजिये! मुझे बतलाया गया है कि आपमें बहुत शक्ति है। आप हिमपात और अन्धड़को कई-कई दिनके लिये रोक सकते हैं। यह शक्ति आपने कैसे पायी ?'

लामाने आकाशकी ओर संकेत करके फिर अपनी चर्खी-की ओर संकेत कर दिया। यह क्या विश्वास करनेयोग्य बात है कि कोई केवल चर्खी घुमाते रहनेसे इतना सिद्ध हो जायगा ? अतः मैंने पूछ लिया—'केवल इसे घुमाते रहनेसे उस ऊपरवालेने आपको यह शक्ति दे दी ?'

लामाने फिर ऊपर संकेत किया, सिर झुकाया। लेकिन इसके साथ उसने अपनी जीभ भी हिलाकर दिखायी। चर्खीके साथ जीभ भी हिलायी गयी है, यह बात वह कहना चाहता था।

आपपर उसकी कृपा है। आप मुझे भी कुछ बतलाइये। मैं भी इसी प्रकारकी चर्खी ले लूँ ?'

'नहीं!' उसने हाथ हिलाकर मना किया। जीभ दिखा-कर, हिलाकर उसने हाथसे संकेत किया—'जीभ हिलाना पर्याप्त है!' फिर जीभ दिखाकर बोला—'बंद नहीं!'

यह कैसे हो सकता है ? भोजन करना होगा, पानी पीना होगा, सोना होगा और लोगोंसे बोलना भी होगा।'

'खाना, पानी' लामाने संकेतसे भोजन, जल पीने, सो-जानेका समर्थन कर दिया और बोला—'बोलना कम!' अर्थात् भोजन करो, पानी पीओ, सोओ और लोगोंसे कम बोलो। शेष समय जीभ हिलती रहे, यह उसने संकेतसे समझाया।

'जीभ केवल हिलाना है या कुछ बोलते रहना है ?'

'नाम' ऊपर संकेत करके बतला दिया कि उनका नाम लेते रहो।

'कौन-सा नाम ?'

'जो तुम' शेष वाक्य संकेतसे पूरा कर दिया।

'इससे मुझे आप-जैसी सिद्धि मिल जायगी ?'

'कुछ नहीं' संकेतसे कहा गया था कि यह कुछ नहीं है। 'मत' अर्थात् इसे मत चाहो। 'वह' दोनों हाथ ऊपर करके फिर उसने ऐसे बाँधे जैसे किसीको अंकमाल दे रहा हो।

'मन हमारे वशमें न सही, जीभ हमारे वशमें है।' वे जिज्ञासु महोदय जानेकी शीघ्रतामें थे। उन्होंने अपनी बात यह कहकर समाप्त कर दी—'ये महापुरुष भी यही कहते हैं कि जीभको निष्क्रिय मत रहने दो। जब भी दूसरा काम न हो, जीभ भगवन्नाम लेती रहे। इस जपसे ही सिद्धि—अभिलषितकी प्राप्ति हो जायगी।

किनारेपर—

एक दिन स्वयं ही जीवन-नौका किनारे लगा लोगे।
तब, उतरते-उतरते अनुभव करूँगा कि अमूर्त, अदृश्य बाँहोंमें सिमटा जा रहा हूँ।
और—
मेरा अविजित किंतु थकित, फिर भी पुलकित, मुँदे-नयन—मुखड़ा तेरे वक्षःस्थलसे सट जायगा।

—बालकृष्ण बलदुवा (बी० ए०, एल्० एल्० बी०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दक्षिण भारतकी तीर्थयात्रा

(लेखक—सेठ श्रीगोविन्ददासजी, श्रीमती रत्नकुमारी देवी, श्रीगोविन्दप्रसादजी श्रीवास्तव

[गताङ्क पृष्ठ ११४० से आगे]

श्रीतुलसीदासजी ही नहीं, हमारे सभी युगचेता संतों, भक्तों, साधकों और सत्पुरुषोंका समन्वयात्मक दृष्टिकोण रहा है और उनकी साधनाके इन प्रयत्नोंका सफलीभूत परिणाम हमारी जो वर्तमान संस्कृति है, वह इसी विचार-भूमि, इसी साधना-भूमिका सुवासित पुष्प ही तो है। इन्द्र और आदित्यसे लेकर राम, कृष्णतक और राम-कृष्णसे लेकर हनुमान् और शीतला माता तथा अन्यान्य ग्रामदेवताओं-तक **'सर्वदेव नमस्कारः केशवं प्रति गच्छति।'** का यह सत्य हमारे मनश्चक्षुओंसे किसी भी युगमें तिरोहित नहीं हुआ। पुराणवक्ता व्यास, शुक, शौनक और सूतने भी विविध शक्तियोंके मध्य इस यथार्थ एक ही सत्यका प्रतिपादन किया है। जिस रक्तबीजविदारिणी और शुम्भ-निशुम्भ-संहारिणी मातृ-शक्तिने असुरोंके विनाशके लिये शस्त्र धारण किया था, उसमें समस्त देवोंकी सामर्थ्य पुञ्जीभूत हुई थी। मार्कण्डेय पुराणमें इस घटनाका निम्नलिखित वर्णन मिलता है—

ब्रह्मेशगुहविष्णूनां तथेन्द्रस्य च शक्तयः।
शरीरेभ्यो विनिष्क्रम्य तद्रूपैश्चण्डिकां ययुः॥
यस्य देवस्य यद्रूपं यथाभूषणवाहनम्।
तद्वदेव हि तच्छक्तिरसुरान् योद्धुमाययौ॥
(दुर्गा सप्तशती ८। १३-१४)

इस प्रकार अनेक पूज्य और अर्चनीय अदृष्ट शक्तियोंको एक परम शक्तिका प्रतिबिम्ब माननेकी हमारी विचारधारा उतनी ही पुरानी है, जितनी पुरानी कि इन शक्तियोंकी विविध रूपोंकी अभिव्यक्तियाँ। जड और चेतनके सहस्रों आयतनों और रूपोंमें एक सर्वव्यापी सामर्थ्यका परिचय सहस्राब्दियों पहले प्राप्त कर लिया गया था। बृहदारण्यकोप-निषद्में इस अनुभूतिका उद्घोष करते हुए कहा गया है—

स यथोर्णनाभिस्तन्तुनोच्चरेद्यथाग्नेः क्षुद्रा विस्फुलिङ्गा व्युच्चरन्त्येवमेवास्मादात्मनः सर्वे प्राणाः सर्वे लोकाः सर्वे देवाः सर्वाणि भूतानि व्युच्चरन्ति तस्योपनिषत्सत्यस्य सत्यमिति प्राणा वै सत्यं तेषामेष सत्यम्। (२। १। २०)

प्रस्तुत तीर्थ, जिसका सेवन हम आज कर रहे थे तथा हमारा इष्ट जिसके साक्षात्कारके लिये हम इतनी दूरसे आये थे, राम और शिव—इन दो देवोंके अद्वैत और सम्मिलित रूपका ही दूसरा नाम 'रामेश्वर' था।

आज हम अपने अभीष्ट इष्टके न केवल निकट थे, उसका साक्षात्कार कर रहे थे। 'कोटि जनमु लगि रगर हमारी। बरउँ संभु न तु रहउँ कुआरी॥' की साधनावाली उमाके प्राणपति शिवजीके सम्मुख हम खड़े थे। भगवान् श्रीरामके द्वारा लिङ्गरूपसे प्रतिष्ठित भूतनाथ भगवान् शंकरके दर्शन कर हम कृतकृत्य हो गये। हमारी जन्म-जन्मकी साध मानो आज सफल हुई। इस समय हमारे मानस-पटलपर औघड़-दानी भगवान् शंकरकी अगणित कथाएँ उभर आयीं। अवढरढरन भोलानाथ भगवान्का भोलापन, जिसने भस्मासुरको सर्वस्व दिया और भगवान् रुद्रका वह रौद्ररूप, जिसने काम दहन किया, दृश्यवत् हमारे नेत्रोंके सामने घूमने लगा। औघड़दानी भगवान् भूतनाथके उस भोलेपन-पर, जिसके कारण भस्मासुरको वर देकर स्वयं भागते फिरे, हमने हँसकर तरस खाया, वहाँ इसकी ओर 'जब तिन तीसर नयन उघारा' की कल्पनासे सहम कर 'त्राहि माम्' कर उठे। रुद्रके इस रौद्र रूपको हमने दण्डवत् प्रणाम किया और शिवके सौम्य रूपकी मंजुल मूर्ति हृदयमें धारण कर अपने निवास-स्थानपर लौट आये।

रामेश्वरम्में हमारा चार दिन रहनेका कार्यक्रम था। यहाँके धार्मिक कृत्य, दर्शन, पूजनके साथ भगवान् रामेश्वरको गङ्गाजल-समर्पणका हमारा प्रधान उद्देश्य था, जिसके कारण ही हमें रामेश्वर-दर्शन सुलभ हुए। यहाँके प्रधान कार्य गङ्गाजल-समर्पणके साथ हमारा जो कार्यक्रम था, उसके अनुसार रामेश्वरम् द्वीपके अन्य पुण्यस्थलोंका दर्शनलाभ उठाना भी हमारा अभीष्ट था। अतः हमने दिनाङ्क २३ को रामेश्वरम्के कुछ प्रमुख स्थलोंका, जिनमें यहाँसे कुछ दूर रामझरोखा नामक स्थान प्रधान रूपसे उल्लेखनीय है, जाकर, दिनाङ्क २४ सितम्बरको धनुष्कोटि जानेका कार्यक्रम पूरा किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्वचित् ही कोई यात्री रामेश्वरम् आकर धनुषकोटि न जाता हो। कुछ लोग धनुषकोटि होकर रामेश्वरम् जाते हैं, कुछ पहले रामेश्वरम् पहुँचकर धनुषकोटि आते हैं।

प्रातःकाल साढ़े ६ बजे मीटरगेजकी रेलद्वारा हम लोग रामेश्वरम्‌से धनुषकोटिके लिये रवाना हुए। आधा घंटे बाद पामवनमें हमने गाड़ी बदली और धनुषकोटिकी ओर उन्मुख हुए। पामवनसे चलते ही प्राकृतिक दृश्य आरम्भ हो जाता है। रामेश्वरम् एक टापू है, चारों ओर समुद्रसे घिरा हुआ परंतु पामवनसे धनुषकोटि जाते हुए अनेक स्थलोंपर समुद्र दिखता है और अनेक स्थलोंपर नहीं। जहाँ समुद्र नहीं दिखता, वह स्थान राजस्थानके मरुस्थलके सदृश दिखता है और हमें भास होता है जैसे हमारी गाड़ी राजस्थानके मरुस्थलमें चल रही है; क्योंकि राजस्थानमें भी मीटरगेजकी गाड़ी चलती है। वैज्ञानिकोंका मत है कि आज जो राजस्थानका मरुस्थल है, वहाँ कभी समुद्र रहा होगा। धनुषकोटि जाते हुए इस बातकी सत्यताका अनुभव होता था। दूर-दूरतक इस बालूमें हवाने बड़े व्यवस्थित ढंगसे लहरियोंका एक जाल बना दिया था। हाँ, इन लहरोंमें कोई गति अवश्य नहीं थी। किंतु जहाँ समुद्र दिखता था, वहाँ समुद्रमें लहरें उठ-उठकर विलीन हो रही थीं। रेतकी उपर्युक्त लहरों और समुद्रकी इन लहरोंके बीच एक स्पर्द्धा-सी जान पड़ती थी। पल-पल मचलती उदधिकी उर्मियों और अचेत पड़ी रेतकी इन लहरियोंसे हमें मौनके स्वर सुनायी दिये। समुद्रकी लहरें मानो इन रेतकी लहरोंसे कह रही थीं हममें जो गति है, जीवन है, वह तुममें कहाँ? और रेतकी लहरें मानो समुद्रकी लहरोंसे कह रही थीं, हममें जो स्थायित्व है, वह तुममें कहाँ? देखो, तुम किस तरह उठ-उठकर विलीन हो रही हो। तुम्हारा जीवन कितना स्वल्पाति स्वल्प है। क्षणभंगुर! हमें देखो, न हम उठती हैं न विलीन होती हैं। समभावसे सदा एक-सी रहती हैं। सत्य है, चाहे कुछ समयके बाद बालूकी ये लहरें भी मिट जाती हों, परंतु पल-पलपर जिस प्रकार पानीकी लहरें उठ-उठकर विलीन हो रही थीं, उस प्रकार ये नहीं। हमारी दृष्टिमें दोनोंका मूल्य था। रेतकी लहरें हमें बता रही थीं कि जीवनमें सृजनके लिये समय है, कुछ अवकाश और स्थिरता है और पल-पल मचलती पानीकी लहरें हमें इसके विपरीत सचेत कर रही थीं कि हमारा यह जीवन इन लहरोंके सदृश ही सर्वथा क्षणभंगुर है। पानीके बुदबुदेके सदृश। इस स्थिरता और अस्थिरता; इस स्थायित्व और क्षणभंगुरतामेंसे दो विरोधी स्वरोंके सम्मिलित स्वरमें बस एक ही शब्द शब्दायमान हो रहा था, वह था प्रवेग वायुका सन-सन। यही वायु उदधिकी उर्मियोंकी तथा रेतकी इन लहरियोंकी जननी है और यही हम जीवधारियोंकी भी। जीव और मायाका जो सम्बन्ध ब्रह्मसे है, वही जड और चेतनका वायुसे। जड और चेतनका माया और जीवका अन्तर ही मानव-जीवनका रहस्य है और यही उसका तादात्म्य भी, जो पल-पल उसे सक्रिय कर सत्-पथगामी रखता है।

मीटरगेजकी गाड़ी मन्थरगतिसे चली जा रही थी। खिड़कियोंसे हम निकटवर्ती दृश्य देख रहे थे। एक चक्र वायु एक बालूके टीलेको उड़ा रही थी, वह उड़कर दूसरी जगह जम रहा था। उसे देख हमें अपने साहित्यका वह वर्णन याद आया, जिसमें पर्वतोंके सम्बन्धमें कहा गया है कि वे कभी उड़ते थे। हमारी समझमें इन बालूके उड़नेवाले टीलोंसे ही पर्वतके उड़नेकी कल्पना उठी होगी। कुछ आगे चलकर थूहरके सदृश झाड़ियाँ दिखायी दीं, जो बालू और बालूके टीलोंपर मीलों तक चली गयी थीं। और जैसा कि ऊपर कहा गया है ये झाड़ियाँ मीलोंतक चली गयी थीं। पहले तो हमने इन झाड़ियोंको इस ओरकी एक प्रकारकी थूहर समझा किंतु बादमें हमें अनन्नासके फल लटकते हुए दीख पड़े। फलसे लदी अनन्नासकी ये झाड़ियाँ इस रेतीले मैदानमें मीलोंतक अपनी छवि-छटा छिटका रही थीं। बगीचोंमें हमने अनन्नासके पौधे देखे थे। बागके ये अनन्नासके पौधे एक-एक पंक्तियोंमें लगाये जाते हैं और फुट-डेढ़ फुट ऊँचे होनेपर इनके बीचमें अनन्नास फल जाता है। अनन्नासकी इन झाड़ियोंके पौधेकी पत्तियाँ चाहे अनन्नासके बगीचोंवाले पौधोंके सदृश हों, पर ये झाड़ियाँ वैसी नहीं थीं। इन झाड़ियोंके पौधे काफी ऊँचे थे और जैसा ऊपर कहा गया है—ये झाड़ियाँ मीलोंतक चली गयी थीं। आस-पासका यह मनोरम दृश्य देखते हम लोग लगभग ग्यारह बजे धनुषकोटि पहुँच गये।

धनुषकोटिका नामकरण रामायण-कालकी एक घटनापर आधारित है। कहते हैं—राम रावणका वध कर लंकासे वापिस लौटते समय जब सेतु-स्थलमें आकर ठहरे तो विभीषणने उनसे प्रार्थना की कि 'भगवन्! ऐसी कृपा कीजिये जिससे इस देशमें शक्तिशाली लोग हमें सतानेके लिये सेतुद्वारा लंकामें प्रवेश न करें।' तब श्रीरामने अपने भारी कोदण्ड अर्थात्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धनुषकी कोटिसे उस सेतुको काटकर दोनों समुद्रोंको मिला दिया। इस प्रकार धनुष और कोटि—इन दो शब्दोंके योगसे इस स्थलका धनुषकोटि नाम हुआ।

धनुषकोटिका धार्मिक महत्त्व भी प्राचीन कालसे चला आ रहा है। महाभारत युद्धके अठारहवें दिन रात्रिमें अश्वत्थामाने शिवजीकी तपस्या कर एक चमत्कारी तलवार पायी और पाण्डवोंके डेरेमें जाकर धृष्टद्युम्न आदि सोते हुए लोगोंका वध कर दिया। इस शिशु-हत्या और सोते हुए क्षत्रियोंका वध करनेके पापसे अश्वत्थामा पीड़ित हुआ और दुखी होकर वेदव्यासकी शरणमें गया। व्यासजीका आदेश पाकर अश्वत्थामाने धनुषकोटिमें तीन दिनतक स्नान किया और समस्त पापोंके प्रभावसे मुक्त होकर शान्ति पायी। धनुषकोटिमें स्नानद्वारा पाप-परिमार्जनके ऐसे और भी अनेक वर्णन आये हैं।

आज भक्तजनोंको इस तीर्थकी धार्मिक पवित्रतामें विश्वास है। विशेषकर आषाढ़ और माघ मासमें इसका सेवन विशेष पावन माना जाता है और इन दिनों यात्री धनुषकोटिमें स्नानकर पुण्य लाभ करते हैं। सूर्य और चन्द्रग्रहणके समय यहाँ स्नान करनेसे पितृ-ऋण और देव-ऋणसे मुक्ति मिलती है। भौतिक और वैज्ञानिक प्रगतिके इस युगमें आज भी सहस्रों पर्यटक यहाँ तीर्थ-स्नान कर अपनेको धन्य मानते हैं।

धार्मिक मान्यताओंके अतिरिक्त इस स्थलका भौगोलिक महत्त्व भी है। धनुषकोटि बंगालकी खाड़ी और हिंद-महासागरके सम्मिलनका स्थल है। पौराणिक मान्यताके अनुसार यहाँ रत्नाकर और महोदधि—ये दो महासागर एक दूसरेसे मिलते हैं। महोदधिमें लहरें नहीं उठतीं, वह एकदम धीर-गम्भीर और शान्त है। रत्नाकर ऊँची-ऊँची तरंगोंसे तरङ्गायित रहता है। समुद्रके इस संगमको देख हमें गोविन्ददासद्वारा रचित भारतदर्शन कविताकी निम्न पंक्तियाँ स्मरण हो आयीं—

धनुषकोटिकी अद्भुत शोभा,
जहाँ मिले हैं दो सागर।
जागृत एक सतत लहरोंसे,
सुप्त दूसरा बिना लहर॥

लोग दोनोंके इस रूप-स्वरूप और स्वभावके कारण महोदधिको ब्राह्मण और रत्नाकरको क्षत्रिय रूपसे मानते हैं। अबतक नदियोंके संगम हमने देखे थे, समुद्रका नहीं। फिर दो विरोधी प्रवृत्तियोंका, विरोधी स्वभावोंका एक उफान और तूफान तो दूसरा एकदम शान्त, एक संघर्ष तो दूसरा समझौता, एक समस्या तो दूसरा समाधान। यह मिलन हमें एक दार्शनिक तथ्यकी ओर भी इंगित कर रहा था कि शान्तमें अशान्त, अक्रोधमें क्रोध, दयामें दुष्टता, शिष्टतामें अशिष्टता, न्यायमें अन्याय, क्षमामें अपराध, शीलमें शक्ति और नम्रतामें अभिमान सदा ही समाहित होता आया है। दो बड़ोंके मिलनकी भाँति महोदधि और रत्नाकरका यह मिलन भी, जो इसी तरहका था, कितना महान् था।

हमलोगोंने महोदधिमें स्नान किये और पूजन-आचमन कर धनुषकोटिका माहात्म्य उठाया। अपराह्नमें हम मीटर-गेजकी रेलद्वारा ही धनुषकोटिसे रामेश्वरम् लौट आये। रामेश्वरम् और धनुषकोटिके लिये पानीके जहाज जल-बोट-द्वारा भी यात्रा-व्यवस्था है।

श्रीरामेश्वरम् द्वीप होनेके कारण चारों ओर समुद्रसे घिरा हुआ है। जन-विश्वासके अनुसार यह द्वीप भगवान् विष्णुके कानके आकारका है। रामेश्वरम् नगर लम्बाईमें डेढ़ मील और चौड़ाईमें आधा मील है। इसका कुल क्षेत्रफल सवा दो मील और जनसंख्या लगभग साढ़े पाँच हजार है। पूरे द्वीपका क्षेत्रफल ३४ मील है। यह द्वीप रामनद जिलेके दक्षिण-पूर्वमें स्थित है। इसे मुख्य भूमिसे जोड़नेका प्रयत्न पहले इस्तमस पाम्बनद्वारा हुआ। १५वीं शताब्दीमें कृष्णम् नायकने एक पुल बनवाया था, जो बादमें समुद्रमें तूफान आनेसे नष्ट हो गया। वर्तमानमें, जिसका वर्णन पीछे आ चुका है, लगभग डेढ़ मील लम्बा पुल बना है जिसपर रामेश्वरम् तक रेल-यातायातकी व्यवस्था है।

जहाँ एक ओर रामेश्वरम्के धार्मिक माहात्म्यकी चर्चाओं, कथाओंसे भरे पुराणों और धर्मग्रन्थोंसे अनुप्रेरित हो यात्री यहाँ आते हैं, वहाँ दूसरी ओर श्रीरामेश्वरम्का मन्दिर अपनी विशालता, भव्यता और कलात्मकतासे लोगोंको मन्त्र-मुग्ध कर देता है। और इस दृष्टिसे वास्तवमें रामेश्वरम्का सबसे बड़ा धार्मिक आकर्षण स्वयं रामेश्वरम्-मन्दिर ही है। इसका निर्माण किसी एक समय एक व्यक्तिद्वारा नहीं हुआ। बताया जाता है, काफी समय तक यहाँ रामेश्वर-लिङ्ग स्थापित रहा और एक संन्यासी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निकटवर्ती एक झोपड़ीमें रहकर उसकी देखभाल करते रहे। ११७३ ईस्वी पूर्वमें श्रीलंकाके राजा पराक्रमबाहुने यहाँ एक मन्दिरका निर्माण करा दिया। सन् १४५० में मदुराईके एक धनिकद्वारा मन्दिरके अतिरिक्त भागमें कुछ परिवर्द्धन एवं परिवर्तन किये गये। मन्दिरकी दूसरी परिक्रमाका दक्षिणी भाग १४५० में तिरुमल्लै सेतुपति-द्वारा बनाया गया था। शेष भाग उसके पुत्रने १६५८ में पूर्ण किया। मन्दिरकी तीसरी परिक्रमा १७४० में रामलिंग सेतुपतिद्वारा बनायी गयी। इस प्रकार यह मन्दिर अनेक कालोंमें अनेक व्यक्तियोंद्वारा निर्मित हुआ। ऐतिहासिक तथ्योंके आधारपर मन्दिर ३५०से भी अधिक वर्षोंमें बनकर तैयार हुआ।

मन्दिर द्वीपके पूर्वी भागमें उभरी हुई भूमिपर स्थित है। इसका पूर्वी गोपुर १२६ फुट ऊँचा है और यह केवल ५० वर्ष पूर्व बनकर तैयार हुआ है। मन्दिरके पश्चिमी द्वारपर बना गोपुर ७८ फुट ऊँचा है और यह पूर्वी गोपुरसे अधिक पुराना है। मन्दिर बारह फुट ऊँची दीवारसे घिरा हुआ है। और इसके लगभग चारों ओर फुलवारियाँ हैं, जिन्हें 'रामेश्वरजीका नन्दनवन' कहते हैं। इन फुलवारियोंमें नाना प्रकारके पुष्प खिले रहते हैं। नन्दनवनकी सिंचाई मन्दिरके कुँओंके पानीसे ही होती है और मन्दिरमें पूजाके लिये माला और फूल यहींसे मिलते हैं।

मन्दिरकी परिक्रमाओंका धर्म और कलाकी दृष्टिसे सर्वाधिक महत्त्व है। तीसरी परिक्रमा विशेष उल्लेखनीय है। यह बहुत विशाल है और मन्दिरके प्रायः सभी प्रमुख स्थल एवं कुएँ आदि इसीके अन्तर्गत आते हैं। यह १७ फुट चौड़ी और २१०० फुट लम्बी है। नन्दीमण्डप दूसरी परिक्रमाके अन्तर्गत आता है। परिक्रमाएँ बरामदोंके रूपमें हैं और स्वच्छ हवादार विद्युतयुक्त हैं। इन परिक्रमाओंको स्थानीय भाषामें 'पुकारम्' कहते हैं।

उत्तरी फाटकके निकट मन्दिरका बिजलीघर है। मन्दिरको बिजलीका वितरण यहींसे होता है। उत्तर-पश्चिमी कोनेपर श्रीरामप्रतिष्ठाकी कारणस्वरूप प्रतिमा है और इन्हें देखनेके लिये प्रत्येक यात्रीसे दो पैसा शुल्क लिया जाता है। बगलके बरामदेमें एक बाजार है, जिसमें कौड़ियाँ, शंख, खिलौने और तस्वीरें बेची जाती हैं। उत्तर-पूर्वी कोनेके निकट एक मजबूत बन्द कोठरी है जिसमें देवी-देवताओंकी सोनेकी मूर्तियाँ सुरक्षित हैं। इनका मूल्य लगभग सत्तर हजार रुपये बताया जाता है। उत्सवमें इन मूर्तियोंको ले जानेके लिये चाँदीका रथ काममें लाया जाता है।

मन्दिरमें २२ पवित्र कुएँ हैं, जो परिक्रमाओंके मार्गमें पड़ते हैं। प्रत्येक कुएँके साथ एक-न-एक पौराणिक गाथा सम्बद्ध है। इनका जल पवित्र तथा ओषधियुक्त माना जाता है। विश्वास किया जाता है कि इनमें स्नान करनेसे अनेक रोग दूर हो जाते हैं और अनेक प्रकारके पापों एवं व्याधियोंका शमन हो जाता है। इन कुण्डोंको 'तीर्थम्' कहते हैं और स्नानके इच्छुक यात्रियोंको रस्सी और बाल्टी अपने साथ लानी पड़ती है।

मन्दिरमें तिरुकल्याणम्, महाशिवरात्रि और श्रीरामलिंग-प्रतिष्ठा—ये तीन पर्व विशेष रूपसे मनाये जाते हैं। तिरुकल्याणम् जुलाई (आषाढ़) मासमें १७ दिनतक, महाशिवरात्रि फरवरी मासमें १० दिनतक और श्रीरामलिंग-प्रतिष्ठा जून (ज्येष्ठ) मासमें ३ दिनतक मनायी जाती है। इन पर्वोंपर हजारोंकी संख्यामें भक्तजन एकत्रित होते हैं। वसन्तोत्सव तथा दशहरा, नवरात्रि आदि कुछ अनेक पर्व भी मनाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त हर शुक्रवारको एक सुनहरी पालकीकी शोभा-यात्रा भी निकाली जाती है, जो मन्दिरकी तीसरी परिक्रमामें घूमकर समाप्त हो जाती है।

मन्दिरकी गरिमाका एक और पक्ष है और वह है इसका कलापक्ष-सौन्दर्य। मन्दिरमें द्राविड़ शिल्पकलाकी पराकाष्ठा देखी जा सकती है। यह पाण्ड्य शिल्पकलाका भी सुन्दर प्रतिनिधित्व करता है। द्वारों और छतोंमें लगे ४० फुट लम्बे पत्थरके टुकड़ोंका भारीपन तथा उनपर की गयी कारीगरी विशेष दर्शनीय हैं। मन्दिर-गर्भगृह रंगके सख्त चूनेके पत्थरोंसे निर्मित है। मन्दिरमें अधिकांश स्थानोंपर हाथीकी ऊँची उठी हुई सूँड़, परिक्रमाओंके स्तम्भोंकी दीवारोंमें खुदे हुए पौराणिक चित्र और विशेषकर मन्दिरमें रक्खी हुई देवप्रतिमाओंमें मूर्तिकला अपने चरमोत्कर्षको पहुँच गयी है, जिनका नमूना भारतमें कम देखनेको मिलता है।

मन्दिरके प्रबन्ध-सम्बन्धी कुछ तथ्य भी ज्ञातव्य हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके लिये ट्रस्टीमण्डल बना है। मद्रास सरकारद्वारा एक वेतन-प्राप्त ट्रस्टी मन्दिरकी सम्पत्तिकी रक्षा एवं प्रबन्धकी देखभालके लिये नियुक्त किया गया है। मन्दिरमें पूजाके लिये वैतनिक महाराष्ट्रिय ब्राह्मण नियुक्त हैं। ये लोग यात्रियोंको प्रसन्न मुद्रासे सभी बातें बतलाते हैं और आवश्यक सुविधाएँ देते हैं।

मन्दिरमें पूजनके लिये कुछ विशेष नियम निश्चित हैं। मन्दिर प्रातःकाल ५ बजे खुलता है और सायंकाल १० बजे बन्द हो जाता है। शिवलिंगकी पूजाके लिये यात्रीलोग गंगोत्तरीके गङ्गाजलके अतिरिक्त प्रयाग, हरिद्वार या किसी अन्य तीर्थसे लाया हुआ गङ्गाजल चढ़ा सकते हैं किंतु इससे पूर्व अधिकारियोंसे इसकी पवित्रताकी जाँच करा लेना आवश्यक है। वैसे अलग-अलग शुल्कोंपर अनेक प्रकारका अभिषेक मन्दिरमें उपलब्ध रहता है।

रामेश्वरम् मन्दिरकी धार्मिक गरिमा और कलात्मक सौन्दर्यका वर्णन ऊपर हो चुका है; किंतु इसके अतिरिक्त यहाँ धार्मिक महत्त्वके कुछ और स्थल भी हैं और उनमेंसे प्रत्येकके साथ एक-न-एक पौराणिक कथा या किंवदन्ती अवश्य जुड़ी है। ऐसे ही कुछ स्थलोंका वर्णन हम नीचे करेंगे। (क्रमशः)

छोटे लोगोंके बड़े कारनामे

(लेखक—श्रीदुर्गाशंकरजी त्रिवेदी)

कभी-कभी 'छोटे' कहे जानेवालोंके 'बड़े' काम देखता हूँ तो आँखोंमें वे दृश्य सदा-सदाके लिये स्थायीत्व ग्रहण कर लेते हैं। ऐसे समयमें मुझे गुरु नानकका यह कथन—'हमेशा दूबके समान छोटा और विनम्र बनकर रहना चाहिये; क्योंकि बड़े-बड़े पेड़ अक्सर सूख जाया करते हैं, परंतु दूब हमेशा हरी ही बनी रहती है।' गुरु-मन्त्र की तरह उद्बोधक लगता है।

इस प्रसङ्गमें 'बड़े' और 'छोटे' शब्द कुछ महत्त्वपूर्ण हैं और वे विशेष अर्थ रखते हैं। 'बड़े'से तात्पर्य यहाँपर ऐसे व्यक्तियोंसे है, जो आधुनिकताकी आँखसे 'बड़े' हैं। पदका अहं है, डिग्रियोंकी भरमार है या नेतागिरीका रोब है।

'छोटे'से मतलब है—जो मामूली जिंदगी जी रहा है, सामाजिक प्राणीमात्र है। जिसके पास नेतागिरीके रोबसे लेकर पैसा, प्रतिष्ठा, पदका अहं आदि कुछ भी नहीं है। यहाँ ऐसे ही 'छोटे'से तात्पर्य है, जो आजकी फैशनकी आँखोंमें 'छोटे' हैं।

जिंदगीकी इस धमा-चौकड़ीमें आपने भी कई बड़ोंके काले कारनामे देख-देखकर मन-ही-मन उनकी हीन हरकतोंके लिये उनको 'छोटा' कहा ही होगा। किंतु ऐसे अवसर भी आये होंगे जब कि 'छोटे'के 'बड़े' काम देखे होंगे। लेकिन शायद आपने उनपर सोचा भी न हो। इस सन्दर्भमें आइये, छोटोंकी महत्ताभरे संस्मरणोंपर एक दृष्टि डालिये और सम्भव हो तो उनके 'सत्यं शिवं सुन्दरं' तत्त्वको अपने आचरणोंमें भी उतारनेका प्रयत्न कीजिये।

बीस दिन बाद पर्स मिला

विनोदकुमारी परांजपेका एक अनुभव स्वयं उनके ही शब्दोंमें सुनिये—

'मैं कानपुरसे लौटी थी। स्टेशनसे जो ताँगा किया था, पर्स उसीमें भूल गयी थी। पर्समें कन्याओंके विवाहके लिये खरीदी दो तोलेकी ऐरिन जोड़ियाँ, २८०) रुपये नकद और भाईद्वारा दिया गया एक हजार रुपयेका ब्रिअरर चैक था। मैं बड़ी परेशान रही इस पर्सको खोकर!

लगभग बीस दिन बाद जब मैं इन्दौर जा रही थी तो अचानक ही ताँगेवालेने दौड़कर मुझे पुकारा और मेरा वही पर्स मेरे हाथोंमें थमा दिया। मैं आश्चर्य और हर्षके झूलेमें झूल रही थी। मैं उसे दस रुपयेका एक नोट पुरस्कारमें देना चाहा। वह ना-ना करता रहा, बोला—'बीबीजी!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सब आपका ही तो खाते हैं । हरामकी कमाईमें कभी बरकत थोड़े ही होती है । मैं आपको रोज ढूँढ़ता रहा, पर आप आज मिल पायी हैं ।'

गाड़ी चल दी, तभी मेरे मनमें अचानक ही यह शङ्का उभरी कि कहीं अंदरका सामान तो नदारद नहीं है । मैंने झटसे उसे खोला । सब कुछ उसी तरहसे व्यवस्थित था । अब मेरी बारी थी, मन रह-रहकर मेरी हीन प्रवृत्तियोंके लिये मुझे धिक्कार रहा था !

'काश, उस 'बड़े' दिलवाले 'छोटे' आदमीका मैं तत्काल ही स्वस्थ मूल्य आँक पाती ।'

दो पैसेका स्कूल

'दो पैसेका स्कूल' शीर्षक पढ़कर आप आश्चर्यचकित रह जायँगे । लेकिन सारन जिलेके बड़ा गाँवमें जन्मे बाबा कैलाशनाथ त्यागीने यह कर दिखाया है ।

उन्होंने दो पैसेवाला सार्वजनिक तकनीकी स्कूल स्थापित करवाया है । इसमें लगभग २०० छात्र विभिन्न छोटे-छोटे उद्योगोंकी शिक्षा ग्रहण करते हैं । छात्रोंके आवास, भोजन, कपड़े आदिकी व्यवस्था भी संस्थानकी तरफसे ही होती है । श्रीत्यागीजीका स्वप्न एक हजार छात्रोंके एक साथ शिक्षणकी व्यवस्था करनेका है ।

बाबा धन-संग्रहके लिये देशभरका भ्रमण कर रहे हैं । पर लेते वे मात्र 'दो पैसे ही' हैं ।

एक पत्रकारने जब उनसे इस दो पैसेका रहस्य पूछा तो वे मुस्कराकर बोले—'मैं बूँद-बूँद जल भरे तलावा' की लोकोक्तिको साकाररूपमें लोगोंको दिखलाना चाहता हूँ ।'

देशमें कितनी ही समाज-कल्याण-प्रवृत्तियों, निर्माणाधीन योजनाओं आदिमें यह संस्मरण दीपस्तम्भका कार्य कर सकता है; क्योंकि इस तरहके भगीरथ प्रयत्नोंसे जहाँ जनतापर बोझ नहीं पड़ता है, वहाँ मात्र पैसेके दमपर बड़प्पन दिखानेवालोंमें भी कुछ त्यागकी वृत्ति जगेगी । समाज कल्याण-प्रवृत्तियोंके प्रसारणमें यह वृत्ति जाग्रत् करना भी कम बड़ा लाभ नहीं है ।

तेरह रुपयेका पोस्टल ऑर्डर

'तेरह रुपयेका पोस्टल ऑर्डर' १७ मई १९६६ के समाचारपत्रोंमें यह शीर्षक पढ़कर मैं किसी नये पोस्टल ऑर्डरके चलनेकी सूचनाका अनुमान कर बैठा था । पर जब इस समाचारको पूरा पढ़ा तो चिन्तनकी झीलमें बरबस ही कूदना पड़ा । पूरा समाचार इस प्रकार था—

नई दिल्ली–१५ मई । एक महिलाने रेलमन्त्रीको १३) रुपयेका पोस्टल ऑर्डर भेजते हुए लिखा था कि 'यह राशि उस किरायेकी है, जो उसे अतिरिक्त रूपमें रेल-विभागको देनी चाहिये थी; क्योंकि उसने पुत्रके साथ थर्ड क्लासके टिकटपर फर्स्ट क्लासमें कुछ स्टेशनोंके बीच सफर किया था । महिलाने लिखा था कि रेलविभागका राजस्व जनताका धन है, अतः यह राशि रेलके राजस्वमें जमा करनेको भेज रही हूँ ।'

यहाँ सवाल इन १३) रुपयोंका नहीं है, जो उसने भेजे थे, अपितु उस मनोधारणाका यहाँपर महत्त्व है जो उसने व्यक्त की । जबतक हम देशके नुकसानको अपने व्यक्तिगत नुकसानसे अधिक नहीं समझेंगे, तबतक राष्ट्रकी प्रगतिके पहियोंमें तेजी नहीं आ पायेगी ।

मित्रोंका मिलन

बात देशके विभाजनसे पूर्वकी थी । गुजरांवालामें दो पड़ोसी थे । एक हिंदू, एक मुसल्मान; पर दोनोंमें गहरी दोस्ती थी । दुर्भाग्यसे देशका विभाजन हुआ । हिंदू लुधियाना जाने लगा । चूँकि रास्तेमें लुट जानेका खतरा था, अतः उसने अपनी कुल जमा-पूँजी ५००) रुपये मुसल्मान मित्रके पास छोड़ दिये ।

साम्प्रदायिक तनाव बढ़ा और भयंकर मार-काट और खूनकी होली उस समय करीब-करीब सारे संसारने व्यथित हृदयसे देखी ।

समय सरकता गया और घटनाको १३ वर्ष हो गये । तभी अचानक मुसल्मान मित्रका खत लुधियाना हिंदू मित्रके हाथोंमें जा पहुँचता है । लिखा था, 'भई ! वाह !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम बड़े बेवफा निकले कि खबरतक भी नहीं दी आजतक ! मुश्किलसे तुम्हारा पता चल पाया है, तब जाकर यह खत लिख रहा हूँ। आओ मिल भी लेंगे और अपनी अमानत भी वापस लेते जाना।'

हिंदू मित्र गया। रुपये भी ले आया और अजीज मित्रसे भी मिल आया। लेकिन भावात्मक एकताकी एक ऐसी गाँठ भी जोड़ आया था, जो हिंदू-मुस्लिम-भेदसे परे इन्सानियतकी ही इज्जत करती है।

टैक्सी-ड्राइवरका उत्तर

एक भारतीय नेता किसी कामसे इंग्लैंड गये थे। वहाँ-पर उन दिनों पैट्रोलपर कण्ट्रोल था। बिना कूपनके पैट्रोल वहाँपर नहीं मिल पाता था। हमारे यहाँकी तरहसे ब्लैकमें मिलना तो कतई सम्भव ही नहीं था।

उनको पैट्रोलके कूपन मिल गये, तो वे टैक्सी करके अपना कामधाम करते रहे। इस प्रकार उन्हें ६-७ दिनतक टैक्सीसे यात्रा करते रहना पड़ा। जब अपना वहाँका काम वे समाप्त कर चुके तो उनके पास पैट्रोलके काफी कूपन बचे हुए थे।

टैक्सीवालेने उनके साथ पर्याप्त शालीनतापूर्ण व्यवहार किया था। वे मन-ही-मन उसके व्यवहारसे बहुत प्रसन्न भी थे। इसलिये वे कूपन उन्होंने उसे देकर कहा—'लो मिस्टर ! इन कूपनोंको अपने पास रख लो। ये तुम्हारे लिये पर्याप्त लाभदायक रहेंगे। आजकल तो यह सब दुर्लभ-सा ही है।'

इतना सुनना था कि टैक्सी-ड्राइवरकी आँखें चढ़ गयीं, मुँह बिगड़ गया। क्रुद्ध होकर वह चीख-सा उठा—'श्रीमान् ! क्या आपने मुझे इतना नीच समझ रक्खा है, जो मैं चोरीके कूपन ले लूँ। मुझे नियमानुसार जितने कूपन मिलते हैं, मैं उनसे जरा भी ज्यादा नहीं ले सकता हूँ। राष्ट्रके साथ इतना बड़ा धोखा मैं कैसे कर सकता हूँ। क्या आपके देशमें इस तरहकी धोखादेहीके प्रति जरा भी बुराई नहीं समझी जाती ?'

अब नेताजीके होश उड़ गये। उन्हें अपनी भूल-का अनुभव हुआ। उन्होंने टैक्सी-ड्राइवरसे क्षमा-याचना की। टैक्सी ड्राइवरने चटसे कह दिया, 'आप इन कूपनोंको वापस सरकारको लौटा दें। यही आपके लिये वास्तविक क्षमा होगी।'

उन्होंने वे कूपन वापस कर दिये।

बातों-ही-बातोंमें टैक्सी-ड्राइवरने बतलाया कि मैं पिछले माह ५-६ दिन बीमारीसे पीड़ित रहा। इसलिये मैं टैक्सी नहीं चला पाया। अतः जब मैं अगले माहके कूपन लेने गया तो मैंने शेष कूपन बतलाकर अगले कोटेमेंसे कटवा दिये। वह कह रहा था—'भाई साहब, हमारे राष्ट्रको ऊँचा उठाने, चरित्रको उज्ज्वल करने या गिरानेकी जवाब-दारी हमपर ही तो है। हम चाहें तो इसे गिरायें और हम चाहें तो उसे ऊँचा उठायें।'

कहनेको तो ये छोटी बातें नजर आती हैं; परंतु इनके माध्यमसे ही राष्ट्रका चरित्र उभरता है, उसमें नवीनतापूर्ण निखार आता है, जो राष्ट्रीय चरित्रकी नींवोंको अहर्निश सुदृढ़ करता ही रहता है।

ये संस्मरण न केवल सत्य संस्मरण हैं, बल्कि इनमें सन्निहित सुगन्ध अनायास ही 'छोटों'को 'बड़ों'की श्रेणीमें रख देती है। घने अन्धकारमें भी ये प्रकाशकी किरणोंकी तरह चमकते रहते हैं। और ऐसी ही घटनाओंको देखकर मैं गुजरातीके प्रसिद्ध साहित्यसेवी श्रीउमाशंकर जोशीकी इस सूक्तिपर निगाहें गड़ा देता हूँ—

'बड़ोंकी अल्पता बहुत देखी, छोटोंकी महत्ता देख-देख-कर जीता हूँ।'

सचमुच ही छोटोंके इन महत्ताभरे क्षणोंमें ही समाजका कल्याण निहित है, राष्ट्रकी प्रगतिके पहियोंमें इनका जीवन-तत्त्व ही तेजी ला सकता है। आवश्यकता है हम भी इनमें सन्निहित जीवनसंजीवनीको व्यवहारमें उतारें।

यद्यपि उपर्युक्त घटनाएँ देखनेमें छोटी हैं तथापि यदि हम इनपर मनन करें और इनमें निहित शिक्षाओंको अपने जीवनमें उतारनेका प्रयास करें तो ये हमारे अन्धकाराच्छन्न जीवनको प्रकाशमय बना सकती हैं और हमें उन ऊँचाइयोंपर पहुँचा सकती हैं, जिनकी हमने कल्पना भी नहीं की होगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्यकी विनाशकी ओर प्रगति और उससे बचनेके उपाय

जैसे सारे शरीरके सभी अङ्गोंमें एक ही आत्मा व्याप्त है। किसी भी अङ्गपर आघात होता है तो हम उसे अपने ऊपर आघात हुआ अनुभव करते हैं, और स्वाभाविक ही सभी अङ्ग एक दूसरे अङ्गकी रक्षा तथा कल्याण-साधनामें लगे रहते हैं, वैसे ही समस्त समष्टि जगत्‌में भी एक ही आत्मा व्याप्त है —इस सत्यका अनुभव हो जानेपर ही मानवकी मानवता पूर्णताको प्राप्त होती है। यही मानव-जीवनकी सफलता है। ऐसा हो जानेपर फिर कोई भी मानव किसी भी प्राणीका कभी बुरा नहीं चाहेगा, कभी किसीका अकल्याण नहीं करना चाहेगा, सबकी रक्षा करेगा और सबके कल्याण-साधनमें लगा रहेगा। भूल या प्रमादवश कभी कुछ अनिष्ट कार्य हो जायगा तो उसे वैसे ही दुःख होगा, जैसे भूलसे अपने ही द्वारा अपने किसी अङ्गपर चोट लग जानेसे हमें होता है। यह दूसरी बात है कि कभी किसी अङ्गमें अंदर सड़न पैदा होनेपर शरीरमें हम जैसे आपरेशन कराते हैं और उस अङ्गको कटवाकर सारे शरीरको विषके प्रभावसे बचा लेते हैं—ऐसे ही शुद्ध नीयत तथा कल्याणकी भावनासे कभी समष्टि जगत्‌में भी ऐसा कार्य करना पड़ता है जो देखनेमें कठोर होता है, पर वास्तवमें वहाँ उद्देश्य विशुद्ध कल्याण-साधन ही होता है।

मनुष्यको अपने जीवनमें इसी लक्ष्यको सामने रखकर चलना चाहिये। यह निश्चय रखना चाहिये कि जिसके परिणाममें दूसरोंका अहित या अकल्याण होगा, उससे हमारा हित या कल्याण कभी नहीं होगा एवं जिससे परिणाममें दूसरोंका हित या कल्याण होगा, उससे हमारा अहित या अकल्याण कभी नहीं होगा। यही धर्मका स्वरूप है। यही पाप और पुण्यकी परिभाषा है। दूसरोंका अकल्याण ही पाप है और दूसरोंका कल्याण ही पुण्य है; क्योंकि वास्तवमें समष्टि दृष्टिसे हम सब एक ही हैं। शरीरके किसी एक अङ्गके अहितसे हमारा ही अहित होता है और हितसे हमारा ही हित होता है—यही सत्य सिद्धान्त है।

मनुष्यका 'स्व' जब समष्टिसे निकलकर केवल व्यष्टिमें ही आ जाता है, तब उसका स्वार्थ (स्व-अर्थ) भी अपने व्यक्तित्वकी सीमामें ही संकुचित हो जाता है, फिर वह केवल अपनेके लिये ही सुख चाहता है, उसीके लिये सचेष्ट होता है, उसीके प्रयत्नमें लगा रहता है। और जितना ही वह इस कुमार्गमें आगे बढ़ता है, उतनी ही उसकी विषयासक्ति तथा तज्जनित भोग-कामना बढ़ती रहती है। कामनापर जहाँ चोट लगती है, वहाँ क्रोधका उदय होता है और कामना जहाँ सफल होती है, वहाँ लोभ जाग उठता है। क्रोध और लोभ—दोनों ही मनुष्यकी बुद्धिका नाश कर देते हैं; फिर उसकी बुद्धिमें जो कुछ निश्चय होता है, सब जगत्‌के हितके विपरीत होता है और फलतः उससे उसका अपना अहित—विनाश तो निश्चित ही है—

'बुद्धिनाशात् प्रणश्यति।'

इसी बुद्धिनाशकी स्थितिमें मनुष्य अनुचित तथा अकल्याणकारी साधनोंद्वारा सुखसामग्रीका संग्रह करना चाहता है—हिंसा, अधर्म युद्ध, डकैती, चोरी, छल, व्यभिचार, भ्रष्टाचार, अनाचार, प्रतिहिंसा, द्रोह, वैर, मद आदि दुर्गुण-दुराचार उसके जीवनके स्वभाव या स्वरूप बन जाते हैं। वह मनुष्यके रूपमें ही हिंसक पशु, असुर, पिशाच, राक्षस बन जाता है और अपने कुकृत्योंद्वारा अपना तथा जगत्‌के प्राणियोंका अहित करता हुआ—अपने भविष्यको घोर पतन, दीर्घकालीन संकट, यातना, पीड़ा और विविध भयानक ताप-संतापोंका क्रीड़ा-क्षेत्र बना लेता है।

आजका मानव दुर्भाग्यवश इसी पतनकी ओर अग्रसर है। वह विश्वप्राणीकी सेवा, संयम, नियम, धैर्य, मन-इन्द्रियके निग्रह, अपरिग्रह, त्याग, प्रेम, उदारता, मर्यादा, शील, परदुःखकातरता, पर-हित-साधन, शान्ति, भगवद्विश्वास, विनय, विचारशीलता, शास्त्र-मर्यादा, परलोककी गतिका विचार आदिको भूलकर अत्यन्त संकुचित स्वार्थग्रस्त, असंयमी, उच्छृङ्खल, अधीर, मन-इन्द्रियोंका गुलाम, संग्रह-परायण, भोग-जीवन, घृणापरायण, निज सुखाकाङ्क्षी, कृपण, मर्यादाशून्य, शीलरहित, पर-सुख-कातर, पर-अहितपरायण, नित्य घोर अशान्त, उत्तेजित, आवेशमय, भगवद्विश्वास-रहित, अभिमानी, अविवेकी, शास्त्रमर्यादानाशक और केवल इहलोककी मान्यतावाला होकर जीवनकालमें भीषण चिन्ताओंकी अग्निसे जलता हुआ असफलजीवन ही मर जाता है। मरनेके बाद तो दुर्गति—घोर नरकोंकी प्राप्ति होती ही है। मानव-जीवनका यह परिणाम अत्यन्त ही शोचनीय है!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज समष्टि और व्यष्टि-जगत्में जो कुछ हो रहा है, जो कुछ किया-करवाया जा रहा है, वह इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। उदाहरणार्थ विज्ञान विश्वप्राणियोंके ध्वंसकी सामग्रीके आविष्कारमें लगा है, एक देश दूसरे देशको हड़प जाना चाहता है, एक वाद दूसरे वादको मिटा देना चाहता है, एक ही वाद या मतके लोग परस्पर एक दूसरेके पतन और विनाशके प्रयत्नमें लगे हैं, धर्मके नामपर अन्य धर्मको छल-बल-कौशलसे मिटानेकी चेष्टा हो रही है, भगवान् तथा धर्मका तिरस्कार करके मनमाने आचरण तथा उच्छृङ्खल व्यवहारको बेतरह बढ़ाया जा रहा है। शिक्षामेंसे नीति-धर्म, सदाचारका बहिष्कार करके बालकों, युवकों, बालिकाओं और तरुणियोंको सदाचारविरोधी, चरित्रहीन, धर्मविमुख और यथेच्छाचारी बनाया जा रहा है। मर्यादित और संयमी जीवनके स्थानपर फैशन, शौकीनी, बाहरी बनावट, चरित्र-भ्रष्टता, अनियन्त्रितता, उच्छृङ्खलता आदिको जीवनका स्वरूप बनाया जा रहा है—सो भी उच्चजीवनस्तरके नामपर; मनुष्य-के भोग तथा अर्थलाभके लिये विश्वके इतर प्राणियोंकी भाँति-भाँतिसे निर्दय हिंसाके आयोजन हो रहे हैं—बड़े-बड़े कसाईखाने इसके प्रमाण हैं। खान-पानमें सात्त्विकता तथा विशुद्धिके स्थानपर तामस वस्तुओंका, मद्य-मांस-अंडोंका, अपवित्र अखाद्य पदार्थोंका प्रसार-प्रचार बढ़ाया जा रहा है, धनलोलुपता तो मनुष्यमें यहाँतक बढ़ी है और उसने मनुष्यको इतना गिरा दिया है कि वह छल-कपट, चोरीकी बात तो अलग रही, खान-पानकी वस्तुओंमें और दवाइयोंमें भी मनुष्यके लिये प्राणघातक वस्तुओं-का मिश्रण करनेमें अपनेको द्रव्योपार्जनमें चतुर और बुद्धिमान् मानकर गौरवका अनुभव करता है। पवित्र विवाह-संस्था उठने लगी है और उसके स्थानपर पशुओंसे भी निकृष्ट अमर्यादित पशुताका हमारे युवक-युवतियोंमें उदय होने लगा है। भारत-सरकार तो गर्भपात या भ्रूणहत्याको भी कानूनी रूपसे निर्दोष बनाने जा रही है। गुरु-शिष्यका पवित्र तथा आदर्श सम्बन्ध छिन्न-भिन्न हो रहा है। गुरुओंमें स्नेह नहीं है और शिष्य इतने अनुशासनहीन तथा यथेच्छाचारी हो गये हैं कि गुरुओंपर घातक आक्रमण करते हैं। बड़े-बड़े विद्वानोंकी सभाओंमें, नेताओंके दरबारमें, बुद्धिमान् और जनतामेंसे चुने हुए राज्य-मन्त्रियोंको तथा नर-नायकोंकी संसदों और धारा-सभाओंमें भी डंकेकी चोट अनुशासनहीनता, शोर-गुल, हंगामा, गाली-गलौज तथा जूता-पैजार चल रहा है।

पैसोंके प्रलोभन, रिश्वत, दबाव, भय, छल, मिथ्या आश्वासन आदिके द्वारा जनतन्त्रोंका जीवन भयानक और घृणास्पद बनाया जा रहा है और इस प्रकार मानव आज अपने अविवेकके कारण मस्तिष्कका संतुलन खोकर मानवता-के पतनके अनन्त विविध आविष्कार, विचार, योजना तथा कार्योंको नित्य नये-नये रूपोंमें अपनानेमें लगा है—आत्यन्तिक अज्ञानकी महामोहमयी मदिराको पीकर ! इससे पता लगता है—मनुष्य किधर जा रहा है।

घोर दुःखकी बात तो यह है कि अध्यात्मप्रधान भारतमें—जहाँसे स्मृति-अतीतकालसे सारे विश्वको उसके उज्ज्वल चरित्रके द्वारा महान् प्रकाश मिलता था, आज मोहान्धकारके बादल मँडरा रहे हैं। प्रकाश तिरोहित हो रहा है। यों ही होता रहा तो पता नहीं, क्या होगा, पतन किस सीमातक जायगा। भारतके ईश्वर-विश्वासी लोगोंको इस घोर पतनोन्मुख परिस्थितिमें बड़े विश्वासके साथ ईश्वरकी आराधना करनी चाहिये—सभी स्थानोंमें सभी प्रकारसे उसे जीवनका प्रथम तथा परम कर्तव्य मानकर ! भगवत्कृपासे ही इस भयानक अन्धकारका नाश हो सकता है।

वस्तुतः तमसाच्छन्न बुद्धि या बुद्धि-भ्रष्टताके कारण विश्वमानव इसी प्रकार कुपथपर आगे बढ़ता रहा तो इसका परिणाम बहुत ही भयानक हो सकता है। सम्भव है, इसके परिणामस्वरूप विश्वमें मानवोंकी संख्याको भयानक रूपसे कम कर देनेवाली महामारियाँ, लगातार चलनेवाले भयंकर अकाल, प्रकृतिके घोर तथा विशाल ध्वंसकार्य, दैवीप्रकोप, भीषणतम विश्वयुद्ध और तज्जनित महान् संताप, दुःख, पतन, घोर पीड़ा और भीषण नरकयन्त्रणा आदि सुख-शान्ति-स्थितिके विधानके प्रलय-प्रसङ्गोंका प्रादुर्भाव हो और शायद ऐसा आगामी बीस-तीस वर्षोंमें ही हो जाय।

यद्यपि इसमें कोई नयी बात नहीं होगी। पापका परिणाम-विनाश, दुःख, पीड़ा, नरकयन्त्रणा होता ही है। प्रकृति किसीके साथ रियायत नहीं करती, भगवान्‌के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मङ्गलनियमोंसे आबद्ध वह अपनी नीतिका पालन करेगी ही। यह भगवान्‌की लीला है। इस विनाश-लीलामें साधुचरित्रों, सात्त्विक मानवोंके भी भौतिक पदार्थों तथा भौतिक देहोंका भी प्रारब्धवश भगवान्‌के नियमानुसार वियोग होगा ही, पर वे दुःख, पीड़ा, नरकयन्त्रणाके भागी नहीं होंगे। परिवर्तनशील प्रकृतिके प्रत्येक परिवर्तनमें ईश्वर-विश्वासी संत भगवान्‌की लीलाका चमत्कार देखते हुए नित्य प्रसन्न रहते और लीलावैचित्र्यके दर्शनसे प्रमुदित होते रहते हैं; भले ही वह लीला सुन्दर मधुर रसकी हो या भयानक बीभत्स-रसकी। प्रत्येक लीलामें वे लीलामयके दर्शन करते हुए मुग्ध और आनन्दमग्न रहते हैं। आत्माकी एकता तथा अमरता, उसके सच्चिदानन्दस्वरूप तथा विश्वके रूपमें भगवान् ही प्रकट होकर सृजन-संहारकी अनवरत लीला करते हैं—ऐसा विश्वास रखने तथा अनुभव करनेवाले पुरुषोंपर इन परिवर्तनोंमें कोई दुःखमय प्रभाव नहीं पड़ सकता। वे सदा ही नित्य सत्य सनातन भगवान्‌के मङ्गलमय विधानमें मङ्गलमयता ही देखते हैं। वे देखते हैं—विश्वमें दो ही चीज। एक लीलामय भगवान्, दूसरी भगवान्‌की लीला। एवं लीलाके रूपमें भी लीलामय ही प्रकट रहते हैं। अतएव एक भगवान् ही भगवान्!

तथापि जगत्‌में रहनेवाले, विधि-विधानके अनुसार कर्मोंके अवश्यम्भावी फलमें विश्वास करनेवाले हम मानव अपने कर्तव्यसे कभी च्युत न हों। सत्कर्म-परायण अवश्य रहें, फल तो भगवान्‌के हाथमें है। शास्त्रमें कहा गया है और यह सत्य है कि जब-जब मनुष्य धर्मकी अवहेलना कर पापपरायण हो जाता है, तब-तब दैवी विपत्तियाँ बड़े विशाल रूपमें आया करती हैं। उनको रोकने या उनका नाश करनेके लिये सबको अपने-अपने मत तथा विश्वासके अनुसार देवाराधना-भगवदाराधना करनी-करानी चाहिये।

देवाराधन करें-करायें निज निज मत श्रद्धा-अनुसार।
वेदाध्ययन, यज्ञ, गायत्री पुरश्चरण कल्याणाधार॥
सप्तशती, रुद्राभिषेक, जप-मृत्युञ्जय, नारायण वर्म।
पाठ गजेन्द्रमोक्ष, पावन सप्ताह भागवत पाठ सुकर्म॥
वाल्मीकि, मानस-रामायण पारायण श्रद्धासे युक्त।
भगवन्नाम अखण्ड कीर्तन-जप विश्वास-भाव-संयुक्त॥

ग्वाँर-बिनौला, भूसा-चारा भूखी गायोंको दें दान।
श्रद्धायुक्त हृदयसे शुचितम योग्य ब्राह्मणोंको गोदान॥
अन्नकष्ट-पीड़ित मानवको अन्नदान शुचि सह-सत्कार।
दुःख दूर हो दुखीजनोंके करें नित्य ऐसा व्यवहार॥
असहाया विधवा बहनोंको—छात्रोंको दें गुप्त सहाय।
कूएँ बनवायें, जल-कष्ट-निवारणके सब करें उपाय॥
जैन, बौद्ध, सिख, करें सभी निज-निज धर्मानुकूल आचार।
ईसा-भक्त अन्यधर्मी सब करें करुण प्रार्थना-पुकार॥
करें-करायें पुण्य कार्य ये जगह-जगह सब बारंबार।
सन्मति-शान्ति-सुखोदयके हैं ये मङ्गल-साधन अविकार॥

'अपने-अपने मत तथा विश्वासके अनुसार सभी लोग देवाराधन करें तथा करावें। कल्याणके आधार वेदोंका स्वाध्याय, विविध प्रकारके वैदिक यज्ञ, गायत्री-पुरश्चरण, दुर्गासप्तशतीके विविध अनुष्ठान, रुद्राभिषेक, महामृत्युञ्जयके जप, श्रीभागवतोक्त नारायणकवच तथा गजेन्द्रमोक्षके पाठ, श्रीमद्भागवतका पावन सप्ताहपाठरूपी सत्कर्म, श्रद्धायुक्त हृदयसे वाल्मीकिरामायण तथा रामचरितमानसके पारायण और विश्वास तथा प्रेमके साथ भगवन्नामका अखण्ड संकीर्तन और जप करें। भूखी गौओंको ग्वाँर, बिनौला, भूसा, घास-चारा दें। सुयोग्य पवित्रतम ब्राह्मणोंको श्रद्धायुक्त हृदयसे गोदान करें। अन्नकष्टसे पीड़ित मनुष्योंको पवित्र सत्कारके साथ अन्नदान करें। नित्य ऐसा ही व्यवहार करें, जिससे दुखी प्राणियोंके दुःख दूर हों। असहाय विधवा बहिनों तथा गरीब छात्रोंकी गुप्तरूपसे सहायता करें, कूएँ बनवायें तथा जलकष्ट-निवारणके लिये अन्यान्य सब उपाय भी करें।

जैन, बौद्ध तथा सिख महानुभाव सभी अपने-अपने धर्मके अनुकूल आचरण करें तथा ईसाके भक्त ईसाई एवं अन्य धर्मावलम्बी भी सब भगवान्‌से करुण प्रार्थना तथा पुकार करें। ये सब पुण्य कार्य सभी लोग जगह-जगह बार-बार करें, करवायें। ये सभी सुबुद्धि, शान्ति तथा सुखकी उत्पत्तिके विकाररहित मङ्गल साधन हैं।

विश्वमें सच्ची शान्ति तथा यथार्थ सुख तो होगा नीचे लिखे अनुसार हमारे जीवन बनेंगे तब—

विश्व चराचरमें है व्यापक नित्य सत्य चित् आत्मा एक।
देखें उसे सभी कालोंमें, सबमें रखकर दृष्टि विवेक॥
सबके सुख-हितको ही समझें नित्य 'स्वार्थ' निज सुखहित-रूप।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'स्व' को रखें न सीमित, उसका कर सदा विस्तार अनूप ॥
तन-मन-धनसे कभी न चाहें करें किसीका तनिक अनिष्ट ।
त्याग सर्वविध हिंसा सबका करें सदा ही मङ्गल इष्ट ॥
अति हितंकर शुचि 'त्याग' तथा 'कर्तव्य' करें हम अङ्गीकार ।
मोह-ममत्व छोड़कर, कर दें त्याग सहज 'धन' 'पद-अधिकार' ॥
करें न संग्रह कभी वस्तुएँ, बनें न असत्-अभाव-दरिद्र ।
फैशन-व्यसन त्याग, रक्खें जीवनको सादा, शान्त, पवित्र ॥
दें अभावग्रस्तोंको समुदित सविनय अर्थ-भूमि-सम्मान ।
विद्या-बुद्धि-सुसम्मति-आश्रय, जो कुछ हम दे सकें अमान ॥
मानव-दानव-पशु-पक्षी-कृमि सबमें नित देखें भगवान ।
बरतें निज वेषानुसार, पर करें न कभी अहित-अपमान ॥
सभी वस्तुएँ हैं स्वामीकी, हमें किया अधिकार प्रदान ।
रखें, सँभालें करते रहें नियमतः प्रभु सेवामें दान ॥
जहाँ अभाव वस्तु जिसका, हैं माँग रहे उसको भगवान ।
प्रभुको प्रभुकी वस्तु नम्र हो, दे दें, करें नहीं अभिमान ॥
सेवा करें सदा ही सबकी शुद्ध ईश-सेवाके अर्थ ।
सेवाका शुचि भाव बढ़े, प्रभु रखें सदा सेवार्थ समर्थ ॥
करें न किसी पवित्र 'धर्म' पर, 'मत' पर तनिक कभी आक्षेप ।
कहें-करें कुछ भी न कभी जिससे हो पर-मनमें विक्षेप ॥
कर सकते हैं न्याय्य अर्थ-अधिकार सुरक्षा हेतु प्रयास ।
पर वह वैध शास्त्रसम्मत हो, रखकर ईश्वरपर विश्वास ॥
कभी न लें आश्रय अधर्मका, कभी न करें सत्यका त्याग ।
तन-धन जायँ, न जाये धर्म, सत्य, प्रभुपर श्रद्धा-अनुराग ॥
जीवनका उद्देश्य एक हो पावन प्रभु-पद-प्रीति अनन्य ।
प्रभु पूजाकी सामग्री बन कार्य, विचार, वस्तु हो धन्य ॥

'सारे जडचेतन विश्वमें एक चेतन आत्मा नित्य सत्यरूपमें विराजित हैं। हम सभी समय तथा सभीमें विवेक दृष्टि रखकर उसे देखें। सभीके सुख तथा हितको ही हम अपना सुख-हितरूप 'स्वार्थ' समझें, अपने 'स्व'को सीमित (छोटेसे दायरेमें) न रक्खें। उसका सदा ही अनुपम विस्तार करते रहें। प्राणिमात्रका 'स्व' ही हमारा 'स्व' हो। तन, मन तथा धनसे कभी किसीका भी तनिक-सा भी अनिष्ट न चाहें—न करें, सब प्रकारकी हिंसाका त्याग करके सभीका मङ्गल तथा इष्ट-साधन करें। अत्यन्त हितकारी 'त्याग' और 'कर्त्तव्य'को ही जीवनमें अपनावें, मोह-समता छोड़कर 'धन' और 'पद-अधिकार'की कामनाका सहज ही त्याग कर दें। कभी भी वस्तुओंका संग्रह न करें और झूठमूठ ही अपने अभावोंको बढ़ाकर दरिद्र न बनें। सारे फैशनों तथा व्यसनोंका त्याग करके जीवनको सादा, शान्त और पवित्र बनायें। जो अभावसे पीड़ित हैं, उनको हर्षित मनसे विनयपूर्वक मानकी इच्छा त्यागकर धन, जमीन, सम्मान, विद्या, बुद्धि, अच्छी सम्मति, आश्रय—जो कुछ हम दे सकें, उनको दें। मानव, दानव, पशु, पक्षी, कीट सभीमें सदा भगवान्‌को देखें। अपने-अपने वेश (धर्म) के अनुसार बरतें, पर कभी किसीका भी न अपमान करें, न अहित करें। हमारे पास जो कुछ हैं, वे सभी चीजें हमारे प्रभु भगवान्‌की हैं, हमें तो उन्होंने सँभाल तथा उपयोगका अधिकार दिया है। अतएव उन्हें अपनी न समझकर सुरक्षित रक्खें, सँभालें और विनयपूर्वक प्रभुकी सेवामें लगाते रहें। जहाँ जिस वस्तुका अभाव है, भगवान् ही वहाँ वह वस्तु हमसे माँग रहे हैं—ऐसा समझकर विनय-विनम्र होकर प्रभुकी वस्तु प्रभुके अर्पण कर दें। हमने दान किया है—ऐसा कोई अभिमान कभी न करें। प्रभुकी विशुद्ध (निष्काम) सेवाके लिये ही सभीकी सदा सेवा करें। सेवाका फल यही मिले कि सेवाका पवित्र भाव बढ़ता रहे और सेवाके लिये प्रभु हमें सदा समर्थ बनाये रक्खें। किसी भी पवित्र 'धर्म' और 'मत' पर आक्षेप न करें, ऐसा कुछ भी कभी न कहें, न करें, जिससे दूसरोंके मनमें विक्षेप होता हो। अपने न्याय्य, अर्थ तथा अधिकारकी भलीभाँति रक्षाके लिये प्रयास कर सकते हैं, पर वह प्रयास विधिसङ्गत हो—शास्त्रसम्मत हो और प्रभुपर ही विश्वास रखकर किया जाय। हम कभी भी 'अधर्मका आश्रय' न लें और कभी भी 'सत्य'का त्याग न करें। शरीर तथा धन भले ही नष्ट हो जायँ, पर धर्म, सत्य तथा प्रभुमें जो हमारी श्रद्धा तथा प्रीति है, वह कभी न हटे। पावन प्रभुके चरणकमलोंका प्रेम ही जीवनका एकमात्र उद्देश्य हो। हमारे तनसे होनेवाले सारे कार्य, मनसे होनेवाले सारे विचार तथा उपयोगमें आनेवाले धन आदि सारी वस्तुएँ प्रभुके पूजनकी सामग्री बनकर धन्य हो जायँ।'

—हनुमानप्रसाद पोद्दार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लीलापुरुषोत्तमका प्राकट्य

(गीतावाटिका गोरखपुरमें श्रीकृष्णजन्माष्टमीके महोत्सवपर पठित)

मञ्जीरनूपुररणन्नवरत्नकाञ्ची-
श्रीहार केसरिनखप्रतियन्त्रसंघम् ।
दृष्ट्वार्तिहारिमसिबिन्दुविराजमानं
वन्दे कलिन्दतनुजातटबालकेलिम् ॥
नीलोत्पलदलश्यामं यशोदानन्दनन्दनम् ।
गोपिकानयनानन्दं गोपालं प्रणमाम्यहम् ॥

गत द्वापरके अन्तमें स्वयं भगवान्‌ने प्रकट होकर विश्व-ब्रह्माण्डको,—धराधामको धन्य किया था । उसी प्राकट्य-महोत्सवका महापर्व आज है । असुरोंके और असुरमानवोंके अत्याचारसे उत्पीड़ित प्रजाजनका उद्धार करनेके लिये ही इस शुष्क जगत्‌में अखिलरसामृतसिन्धु षडैश्वर्यपूर्ण स्वयं भगवान्‌का आविर्भाव होता है । अवतारके अनेक कारण होते हैं । साधुओंका परित्राण, दुष्टोंका दमन, भूमिके भारका हरण, धर्म-संस्थापन, कामकलुषित अधर्मके अभ्युत्थानको ध्वंसकर त्यागमय विशुद्ध प्रेमधर्मका प्रसार इत्यादि । भाद्रपद-की अन्धकारमयी अष्टमीकी अर्द्धरात्रिका समय, क्रूर कंसके कारागारका स्थान, चारों ओर दैत्योपम प्रहरियोंका घोर नाद, यह सभी मानो उस समयके घोर देश, कराल काल और असुर मानवका दर्शन करा रहे थे । इसी समय, उसी अर्धरात्रिको, वहीं कंसके कारागारमें स्वयं भगवान्‌का प्राकट्य हुआ । बस, उनके प्राकट्यका समय आते ही, सारी प्रकृति प्रफुल्लित हो गयी, धन्य हो गयी और अपने प्रभुका विलक्षण रूपसे स्वागत करने लगी । काल समस्त शुभ गुणोंसे सम्पन्न और परम शोभामय हो गया । चन्द्रमा रोहिणी नक्षत्रमें स्थित थे ही । आकाशके सभी ग्रह, नक्षत्र, तारे शान्त और सौम्य हो गये । दसों दिशाएँ प्रसन्न हो गयीं । आकाशमें तारे जगमगाने लगे । पृथिवीके बड़े-बड़े नगर, गाँव और छोटी बस्तियाँ तथा रत्नोंकी खानें मङ्गलकी क्रीड़ाभूमि बन गयीं । नदियोंका जल निर्मल हो गया । रात्रिके समय भी सरोवरोंमें कमल खिल उठे । वनोंमें वृक्षोंकी पंक्तियाँ वर्ण-वर्णके सुगन्धित सुमनोंसे लद गयीं । शुक-पिकादि पक्षी मधुर ध्वनि करने लगे और मधुपान-मत्त भ्रमरोंके गुंजनसे सारा अरण्य-प्रदेश मुखरित हो उठा । परम पवित्र शीतल, मन्द, सुगन्ध वायु अपने सुख-स्पर्शसे सबको आनन्द देती हुई बहने लगी और द्विजोंके हवन-कुण्डोंकी जो अग्नियाँ कंसके अत्याचारसे बुझ गयी थीं, वे अपने-आप प्रज्वलित हो उठीं ।

यह तो बाह्य प्रकृतिने अपना शृङ्गार किया । पर बाह्य जगत्‌का यह आनन्द अन्तर्जगत्‌में भी जा पहुँचा । असुर-द्रोही साधुओंका चित्त सहसा प्रसन्नतासे भर गया । अजन्मा भगवान्‌की जन्म-लीलाके समय बिना ही बजाये स्वर्गमें देवताओंकी दुन्दुभियाँ बज उठीं, जिससे सारा स्वर्ग निनादित और मुखरित हो गया । गन्धर्व, किन्नर और सिद्ध-चारण अपने आप ही सात्त्विक मधुर भगवद्-गुण गीत गाने लगे । विद्याधरियाँ और अप्सराएँ अपने विलास-नृत्यको भूलकर भगवान्‌के गुण-गानमें मत्त गन्धर्व-किन्नरोंके गोविन्द-गुण-गानकी विशुद्ध तालोंमें ताल मिला-मिलाकर परम मधुर नृत्य करने लगीं । बड़े-बड़े देवता और मुनिगण अत्यन्त मुदित मनसे धराके सौभाग्यकी सराहना करने लगे । समुद्र मन्द-मन्द गर्जन करने लगा, मानो अपनी कन्या लक्ष्मीजीके स्वामीका—अपने जामाताका स्वागत कर रहा है । और बादल भी नीलश्यामके शुभागमनके समय अपने नीलश्याम वर्णको धन्य मानते हुए मृदु-मृदु गर्जना करके अपने सौभाग्यकी गाथा गाने लगे ।

इसी समय देवरूपिणी देवकीजीके पुत्ररूपमें भगवान्‌का प्राकट्य हुआ । चारों भुजाओंमें शंख, चक्र, गदा, पद्म–धारण किये हुए, पीताम्बर फहराते हुए बालभगवान्‌को देखकर वसुदेव-देवकी आनन्दमें भर गये, पर साथ ही कंसका भय भी लगा । भगवान्‌ने माता-पिताको भयभीत देखकर उनसे कहा कि 'तुम मुझे गोकुल पहुँचा दो । भगवान् तुरंत शिशुरूप हो गये । वसुदेवजीने उन्हें गोदमें लिया और चल दिये ।

असलमें भगवान् सर्वशक्तिमान् हैं । सब कुछ कर सकते हैं । पर जीवोंका भी कुछ कर्त्तव्य होता है । उसी कर्त्तव्य-को बतलाकर साधन-मार्गपर चलनेके लिये भगवान् लीला किया करते हैं । अस्तु,

वसुदेवजीके पैरोंकी बेड़ी खुल गयी । लोहेके सुदृढ़ द्वार अपने आप खुल गये । प्रहरीगण गाढ़ निद्रामें सो गये । वसुदेव तो सोच ही रहे थे कि मैं कैसे जाऊँगा, पर देखते-ही-देखते यह अघटन-घटना घट गयी । भगवान्‌को लेकर चले वसुदेवजी, पर बाहर तो गाढ़ अन्धकार था । आकाश मेघाच्छन्न । बूँदें बरस रही थीं । लीलामय भगवान्‌के श्रीअंगसे ज्योति प्रकट हुई और उसके प्रकाशमें वसुदेवजीको मार्ग दिखायी देने लगा । भगवान्‌के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिरपर अनन्त देवने अपने फणोंका छाता बना दिया। उनके दिव्य शरीरपर जलकी एक बूँद भी नहीं लगी। वसुदेव यमुना-किनारे पहुँचे। देखा, यमुनामें तूफान आ रहा है। बड़ी ऊँची-ऊँची तरंगें नाच रही हैं। भयानक भँवर पड़ रहे हैं। वसुदेव फिर भयभीत हो गये। इतना चमत्कार अभी-अभी देखकर आये। पर भगवान्‌की माया बड़ी विचित्र है। आगे बढ़नेका साहस नहीं हुआ।

एक जगह यह कथा आती है कि उसी समय महामायाने सियारका रूप धारण किया और वसुदेवके सामने ही वह सियार यमुनाके पार हो गया। यह देखकर वसुदेवको साहस हुआ। गोदमें भगवान् थे, पर साहस नहीं। यही जीवके विश्वासकी कमी है। भगवान्‌को लेकर वसुदेव यमुनामें उतरे।

एक विचित्र कथा ऐसी मिलती है कि यमुनाने सोचा कि 'प्रभु मेरे ऊपरसे चले जा रहे हैं। मैं एक बार भी उनका आलिंगन न करूँ!' बड़े जोरकी एक तरंग उठी और शिशु श्यामसुन्दरको जलमें ले गयी। वसुदेव हाय-हाय कर उठे। यमुना तो उस समय दर्शनकी लालसासे, आलिंगनकी इच्छासे नाच रही थी। वास्तवमें वह तूफान नहीं था, था यमुनाका आनन्द-नृत्य। पर वसुदेवजी व्याकुल हो गये और उनकी व्याकुलताको देखकर भगवान्‌ने यमुनासे कहा कि 'मेरे पिता संत्रस्त हैं। मुझे जल्दी उनकी गोदमें पहुँचा दो।' यमुनाने कहा, 'महाराज! आज्ञा शिरोधार्य है, पर मैं यह एक वरदान चाहती हूँ कि आपकी बाललीला सारी-की-सारी मेरे ही तटपर हो।' भगवान्‌ने 'तथास्तु' कह दिया और वे पिताकी गोदमें आ गये।

वसुदेवजी नन्दबाबाके महलमें पहुँचे। वहाँ भी सब लोग भगवान्‌की मायासे निद्राग्रस्त थे। वसुदेवजीने सूतिकागारमें जाकर यशोदाकी अभी-अभी जन्मी हुई कन्या महामायाको उठाया और श्रीकृष्णको वहाँ सुलाकर वे लौट आये। वस्तुतः महामायाके प्राकट्यके कुछ ही क्षणों बाद सबको नींद आ गयी थी। यशोदा भी भूल गयी थीं कि मेरे पुत्र हुआ है या कन्या? 'निद्रयाऽपगतस्मृतिः'।

शेष रात्रिमें शिशुकी रुदन-ध्वनि सुनकर यशोदा मैयाकी नींद टूटी। यशोदा पुत्रको देखकर आनन्दमें भर गयीं और आँखोंके द्वारा उस रूपसुधाका अतृप्त पान करने लगीं—'उद्वीक्षती सा पिबतीव चक्षुषा।' एक-एक अङ्गपर मैया नाना प्रकारकी उपमाओंको याद करने लगीं, पर उस रूपकी तुलनामें सारी उपमाएँ पराजित हो गयीं।

> उदय हो गये जैसे घरमें कोटि-कोटि नीले शरदिन्दु।
> देख नंदरानीके उरमें उमड़ा दिव्य सुखामृत-सिन्धु॥
> कैसी अतुलनीय सुन्दरता! कैसा सुरमुनिमोहन रूप।
> कैसी निकल रही सुषमा-आभा नख-सिखसे परम अनूप॥

यशोदा रानीने व्यस्त होकर दासियोंसे कहा—'शीघ्र महाराजको खबर दो। वे एक बार आकर देखें।' सुनते ही नन्दबाबा दौड़े आये। यशोदा बोलीं—

> देखो, देखो, कैसा आया सुघड़ नीलमणि मेरी गोद।
> निरखो आज नील चन्द्रोदय, मन-नयनोंमें भर अति मोद॥

नन्दबाबा तो देखते ही रह गये। उनके हृदयकी उस समय कैसी आनन्दमयी स्थिति थी, उसे बतलानेके लिये शब्द नहीं हैं—

> नंद देखते रहे रूप-लावण्य दिव्य छाया प्रति अंग।
> नेत्र हुए अनिमेष, लग गई निश्चल रूप-समाधि अभंग॥

बस, सारे व्रजमें समाचार फैल गया। देखते-ही-देखते नन्दबाबाके महलमें भीड़ उमड़ पड़ी। प्रातःकाल हुआ। सभी आनन्दमें नृत्य करते हुए दूध, दही, दूर्वा, माखन, हरिद्रा ले-लेकर चल पड़े अनन्त आनन्द-माधुर्य-सौन्दर्यका दर्शन कर कृतार्थ होनेके लिये।

भगवान् चाहे दैत्योंका दलन करनेके लिये प्रकट होते हों, चाहे अधर्मका नाश करके धर्मकी स्थापना करनेके लिये, पर जिन्होंने उस सौन्दर्य-सुधाराशिका तनिक-सा भी पान किया है, वे तो यही समझते हैं कि हमारे लिये ही भगवान्‌का यह दिव्य प्राकट्य है। भगवान्‌ने असुरोद्धार, गोवर्धनधारण, इन्द्रदर्पचूर्ण, ब्रह्मामोहभङ्ग, कंसोद्धार, पाण्डव-संरक्षण और दिव्य गीतोपदेश आदि बहुत-सी लीलाएँ कीं। उनकी लीलामें कोई ऐसा आदर्श कार्य नहीं, जो छूटा हो। इसीलिये उनका नाम 'लीलापुरुषोत्तम' है।

आज हम उन्हीं लीलापुरुषोत्तमके प्राकट्य-कालमें उनका स्मरण करके धन्य हो रहे हैं और चाहते हैं कि यही चिदानन्दमयी अनन्त रूपराशि हमारे जीवनका एकमात्र ध्येय और साध्य बनी रहे।

बोलो नन्दनन्दनकी जय!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवान् श्रीकृष्णकी आविर्भाव-तिथि

(लेखक—श्रीहरिनाथ पाठक चौधुरी)

आज भाद्रमासकी कृष्णाष्टमी तिथि है। इसी पवित्र तिथिको निराकार (प्राकृतिक आकार-रहित) परम ब्रह्मके वैकुण्ठस्थित साकाररूपमें भगवान् श्रीकृष्ण भारतभूमिपर अवतीर्ण हुए थे। उनका रूप था चतुर्भुज। शङ्ख, चक्र, गदा, पद्मधारी; पीताम्बर-परिहित, कण्ठमें कौस्तुभमणि, मस्तकपर उज्ज्वल किरीट, कानोंमें मकर-कुण्डल। यह मूर्ति हुई अप्राकृत—पाञ्चभौतिक नहीं। बादमें उन्होंने शिशुरूप धारण किया तो वह भी अप्राकृत ही था। मानवशिशुकी वैसी मूर्ति नहीं हो सकती। इसलिये श्रीकृष्णके सम्बन्धमें 'जन्म' लेने-जैसे शब्दका व्यवहार शुद्ध नहीं। ग्रन्थोंमें उल्लेख है—'देवकी देवीके गर्भसे उनका जन्म हुआ।' किंतु इसे व्यावहारिक रूपमें ही ग्रहण करना चाहिये।

वैकुण्ठप्रयाणके समय भी यही रूप धारण करके वे अन्तर्धान हुए। यथा—

माधवे पाछे स्नान करि जले।
बसिला आसने अश्वत्थ तले॥
धरिला दिव्य चतुर्भुज रूप॥
पाछे योग धारणा धरिला।
आपोनाक आत्माते थापिला॥
निमिषेके नर चेष्टा परि।
बैकुंठत प्रवेशिला हरि॥
हेन तनु भैला अन्तर्धान।
बिजुली छटाक येन थान॥

(आसामी भाषा—कीर्तन घोषा)

इसके बाद माधवने जलसे स्नान किया और वे अश्वत्थके नीचे आसनपर विराजे······दिव्य चतुर्भुजरूप धारण किया। तदनन्तर योगधारणा की और अपनेको आत्मामें स्थापित किया। एक निमिषमें नर-चेष्टा छोड़कर हरिने वैकुण्ठ-प्रवेश किया। इस प्रकार उनका तन अन्तर्धान हुआ और उस स्थानपर बिजलीकी छटाके समान प्रकाश हो गया।

भगवान्के पूर्ण अवतार

श्रीकृष्णके रूपमें भगवान् विष्णुका पूर्ण अवतार कहा जाता है। अन्यान्य अवतार अंश वा कला कहे जाते हैं। किसी-किसी ग्रन्थमें श्रीरामचन्द्रको भी पूर्ण अवतार माना गया है। शास्त्रमें दस अवतार कला-अवतार कहे गये हैं। श्रीकृष्णको इन कला-अवतारोंमें नहीं माना गया है। इस आधारपर वे पूर्ण अवतार हुए। भारतवासियोंकी एकान्त कामनाके फलरूपमें ही इस भूमिपर स्वयं भगवान्का यह अवतरण हुआ।

मनुष्यसमाज आदिसे ही विश्वास करता आया था कि इस विश्वजगत्का एक स्रष्टा है। वह अलक्षित रूपमें ही अन्तरिक्षमें स्थित होकर समस्त जगत्—संसारकी परिचालना कर रहा है। उसे देख न पानेपर भी सभी उसके अस्तित्वमें विश्वास करते हैं। उसके प्रति मनमें और चित्तमें एक आकर्षण अनुभव करते हैं। यह अनुभूति और विश्वास न्यूनाधिक परिमाणमें चला ही आया है।

कालक्रममें किसी-किसी प्रगतिशील समाजमें उसे इस प्रकार जानकर ही संतोष नहीं किया गया। उसकी ओरसे कोई वास्तव अभिज्ञान पानेके लिये व्यग्रता हुई। इसके फलस्वरूप किसी समाजको मिला उसका एक अनुचर, किसीको पार्षद, किसीको प्रेरित पुरुष और किसीको पुत्र। किंतु भारतके सनातनधर्मी जनसमाजकी व्याकुलता इतनी प्रबल हुई कि उसने स्वयं भगवान्को इस भूमिपर उतारकर छोड़ा। अपने बीच स्वयं भगवान्को उतार लानेका महान् साहस और प्रयास भारतके अतिरिक्त पृथ्वीपर कहीं देखनेको नहीं मिलता। इस अपूर्व अवतरणको स्मरण करके आसामके महापुरुष माधवदेवने भक्ति-गद्गद चित्तसे गाया है—

यिटो निगमर गुत वित्त।
हेन हरि गोकुले बिदित॥
शुनिते कौतुक अनुपाम।
ब्रह्मेरे वरण घनश्याम॥
अनुमाने कहे याक सकलो निगमे।
सहि हरि केलि करे गोप-शिशु समे॥
कोटि-कोटि ब्रह्माण्डर तजिया विभूति।
की लागि हइला प्रभु गोपर संगति॥
शुद्ध परम ब्रह्म गोपकुमारा।
त्रिभुवन तारण हेतु अवतारा॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो निगमके गुप्त वित्त हैं, वे ही हरि गोकुलमें प्रकट होते हैं। सुननेमें अनुपम और कौतुकपूर्ण लगता है कि ब्रह्मका वर्ण घनश्याम है। अनुमानसे ही सभी निगम जिनका वर्णन करते हैं वे ही हरि गोपशिशुओंके साथ केलि करते हैं। कोटि-कोटि ब्रह्माण्डकी विभूति छोड़कर किस हेतुसे प्रभु गोपोंकी संगति ग्रहण करते हैं? शुद्ध परम ब्रह्मको गोपकुमार बनना पड़ा। यह अवतार त्रिभुवनतारणके हेतु ही हुआ।

श्रीकृष्ण सभीके अपने

विमुग्ध भक्तोंसे भगवान्‌को केवल अपने बीच लाकर शान्त नहीं रहा गया। उनके जीवनचरितका इस प्रकार भाग किया गया कि भारतके प्रत्येक स्तर और श्रेणीके लोग श्रीकृष्णको 'अपने बीचका ही एक' सहज ही अनुभव कर सकें।

उन्होंने गोकुल-वृन्दावनमें 'गोपसमाजका ही एक' होकर विविध विचित्र लीलाएँ और खेल किये। किशोरकाल वहीं बिताया। वे ग्रामीण समाजमें इतने घुल-मिल गये कि पहले-पहल मथुरानगरके राजपथपर घूमते हुए कोई उन्हें सहज ही गँवार (ग्रामीण) मान ले। नगरीय लोग ग्रामीणों-को कोई गर्हित कर्म करनेपर आजकल जैसे पुलिसका भय दिखाते हैं, ठीक वैसे ही मथुराके धोबीने वस्त्र माँगनेपर उन्हें भय दिखाया—

किनो महामूढ़ तोरा गोवाल।
पर्वत बनत खपह काल॥
मरिवाक् लागी नाहिके त्रास।
राजार वस्त्रक पिन्धिवे चास॥
प्राण लइया पला ओइर अन्तरि।
राजदूते पाइले दंडिबे धरि॥

पर्वत और वनमें समय बितानेवाले तुम ग्वाले कैसे महामूढ़ हो! तुमको मरनेका भय नहीं लगता, जो कि राजाके वस्त्र पहननेकी साध रखते हो! भाग जाओ प्राण लेकर यहाँसे दूर, कहीं राजदूत पकड़ पायेगा तो दण्ड देगा।

नगरमें नागरिक बन जानेमें भी उन्हें अधिक दिन नहीं लगे। जो-जो गुण नगरके लोगोंमें होने चाहिये, सभी उन्होंने अर्जित कर लिये। गुरुगृहमें रहकर वेद (ज्ञान)-विद्यामें पारङ्गत हुए। युद्ध-विद्यामें निपुण हुए। उग्रसेनको राजसिंहासनपर बैठाकर राजनीति और कूटनीतिकी चर्चा की। उसमें भी विचक्षण! यथाक्रम क्षत्रियोंके साथ युद्ध-विग्रहमें लिप्त होकर उनमेंके ही एक हो गये। मगधके दुष्ट जरासंधके वधके बाद उसके कारागारमें बन्दी राजाओं की मुक्ति हुई। इसके फलस्वरूप राजन्यवर्गने भी श्रीकृष्णको अपना ही एक मान लिया। इसी कारण पाण्डवोंके राजसूय यज्ञमें सम्मिलित क्षत्रिय राजाओंके बीचमें उन्हें सर्वश्रेष्ठ पुरुष स्वीकार किया गया और उन्हें यज्ञमें अर्घ्य मिला। उनकी सर्वप्रथम पूजा हुई।

एक बार सूर्यग्रहणके समय कुरुक्षेत्रतीर्थमें श्रीकृष्णने अपने पिता वसुदेवजीके द्वारा यज्ञकर्म सम्पन्न कराया। इस उपलक्ष्यमें भारतके प्रायः सभी श्रेणीके लोगोंको आमन्त्रित किया गया था—

······कुरुक्षेत्र नाम तीर्थ अनुपम॥
सूर्यर ग्रहणे महारंग मने।
यत यदुगणे लैला नारायने॥
(नन्दयो) गोप-गोपीगण लैया परिजन।
हरषित मन करिला गमन॥
कौरव-पाण्डव यत राजा सब।
करिया उत्सव गैला सेहि ठाव॥
······यत ऋषिगण आइला सेहि क्षण॥
आत्म तत्त्व ज्ञान शास्त्रर प्रमान।
वसुदेव स्थान कैला भगवान॥

—कीर्तनघोष

···कुरुक्षेत्र नामका तीर्थ अनुपम है। सूर्यग्रहणके समय बहुत आनन्दित मनसे जितने यदुलोग थे, उनको नारायण (कुरुक्षेत्र) ले आये। (नन्दने भी) गोप-गोपी-जनों और परिजनोंको साथ लेकर हर्षित हृदय-मनसे गमन किया। जितने भी कौरव-पाण्डव राजा थे, सब उत्सव करते वहाँ गये। ······जितने भी ऋषिगण थे, उस समय आये। भगवान्‌ने वसुदेवको शास्त्रप्रमाणित आत्मतत्त्वज्ञान सुनाया।

धर्म-तत्त्व-व्याख्या

उस जनसभामें वसुदेवके उपलक्ष्यसे श्रीकृष्णने धर्म-तत्त्वकी जो व्याख्या की, वह एकत्र हुए सभी श्रेणीके लोगों के लिये थी। यह व्याख्या सुनकर आत्मतत्त्व, ब्रह्मतत्त्व आदिका विवेचन प्राप्त कर वहाँ उपस्थित ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मण, ऋषि-मुनि सभीने श्रीकृष्णको अपनेमेंसे ही एक अनुभव किया। कुरुक्षेत्र तीर्थकी यज्ञस्थलीमें सार्वजनिक रूपसे हुए इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आध्यात्मिक और पारमार्थिक धर्मतत्त्वसमूहके कीर्तनके पश्चात् उसी क्षेत्रकी रण-स्थलीमें ज्ञानयोग और भक्तियोगके पर्यायसे अर्जुनके सम्मुख गीताके रूपमें भगवान् श्रीकृष्णने व्यक्त किया। अर्जुनको युद्ध-कर्ममें संलग्न करनेके लिये उपयोगी एक अभिनव तत्त्व भी इसीके साथ उन्होंने जोड़ दिया। यह है निष्काम कर्मयोग अर्थात् कर्म और उसके फलके प्रति आसक्ति-कामनाका त्याग (गीता ४ । २०)। मालूम होता है कि यह तत्त्व यज्ञ-स्थलीमें इस कारण प्रकाश नहीं किया गया था कि जनसमाजके लिये यह साध्यातीत होनेसे अवास्तविक हो उठता। कर्म और फलके प्रति अनासक्ति रखकर अर्थात् उसकी ओर मनोनिवेश न कर या दृष्टि न रखकर किया जानेवाला कर्म सबके लिये सुचारुरूपसे सम्पन्न होकर फलदायक नहीं हो सकता। इस प्रकार कर्म करनेवाले कर्मयोगी लोगोंके उदाहरण भी इतिहास-पुराणमें बहुत कम मिलते हैं।

राजा जनकको इस प्रकारका एक कर्मयोगी बताया जाता है। गीताके तीसरे अध्यायके २०वें श्लोकमें भी यह उक्ति है। पर यह जानना चाहिये, राजर्षि जनक वास्तवमें एक ब्रह्मविद्याविद् ब्रह्मज्ञानी पुरुष थे। और राजा जनकके ब्रह्मज्ञानी होनेकी ही ख्याति ठीक बैठती है, कर्मयोगी होनेकी नहीं। फलाकाङ्क्षाका अर्थ होता है कर्मफलके प्रति अपना स्वार्थनिहित मोह। उपर्युक्त कर्मयोग-साधनके विकल्परूपमें सभी कर्म ईश्वरके मानकर, अपने न मानकर, उन्हें ही (ईश्वरको) आनन्द देनेके उद्देश्यको सामने रखकर शुद्ध चित्तसे सम्पन्न करनेपर ही 'फलाकाङ्क्षा' दोषसे मुक्त रहकर निष्काम कर्मयोगी हुआ जा सकता है।

प्रत्येक भारतीयके अन्तरमें

जो भी हो, इन सबके अतिरिक्त भी श्रीकृष्णदेवने भारतमें अवतीर्ण होकर १२५ वर्षके लीलाकालमें, भारतीय समाजके प्रतिकूल क्रियाशील शक्ति-समूहोंको समूल उखाड़ फेंका और समाजमें शान्तिकी प्रतिष्ठा की। सर्वोपरि, श्रीकृष्णको केन्द्र करके निर्मित इतने अधिक रसस्रावी साहित्य, काव्य और कला-संस्कृतिसे भारत भरपूर है कि श्रीकृष्णविहीन भारतकी बात सोची ही नहीं जा सकती। सनातनधर्मी प्रतिजन भारतीयके अन्तरमें पुरुषानुक्रमसे श्रीकृष्ण प्रतिष्ठित हो रहे हैं। भारतभूमिके उत्तरसे दक्षिण और पूर्वसे पश्चिमके छोरोंतक सम्पूर्ण जनसमाजमें वैष्णवधर्मका आधिपत्य है। श्रीकृष्णकी गुण-गरिमा और लीला-चरित्रकी आज भी इतनी अधिक चर्चा होती है और उनको रूपायित किया जाता है कि अनुभव होता है जैसे श्रीकृष्ण आज भी हमारे बीचमें ही हैं।

श्रीकृष्णके स्वयं विष्णुका पूर्ण अवतार लेनेके समयसे भारतमें विष्णु-भक्ति और विष्णु-पूजा तथा वैष्णवधर्मका प्रवर्तन हुआ। आज भी वह सब पूरी प्रभाके साथ चलता जा रहा है। किसी-किसी ग्रन्थमें वैष्णवधर्मको 'वासुदेवधर्म' बताया गया है। **'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' का द्वादशाक्षरी बीज-मन्त्र प्रसिद्ध है।**

ऊपर भगवान् श्रीकृष्णके जीवनके विषयमें जो अल्प-सा विवेचन उपस्थित किया गया है, वह मेरे कल्याणके लिये है। वास्तवमें उनके चरित्रके सम्बन्धमें विवेचन करनेकी मेरी कोई योग्यता नहीं। कारण, मानवीय दृष्टिकोणसे ईश्वरके कार्यकलापका माप करने जाना मूढ़तामात्र है। अवश्य ही श्रीकृष्णके चरित्रका एकदम स्पष्ट झलकनेवाला, आगे निकला एक पहलू है कि मानवीय मोह-मायासे वे सम्पूर्ण मुक्त थे। कंसका राज्यादेश पानेपर एक दिन अकस्मात् वे गोकुल छोड़कर चले गये। फिर जीवनभर उन्होंने व्रजभूमिपर चरण नहीं रक्खा। नन्द-यशोदाका स्नेह, गोप-गोपियोंका प्रेम, गोप-शिशुओंका संग-सुख पलभरमें त्यागकर वे गये सो गये ही। मथुरासे गोकुल केवल दो घंटेका मार्ग। इच्छा होनेपर वे प्रतिदिन ही आना-जाना रख सकते थे, पर नहीं। यह है भगवान् श्रीकृष्णके मोह-मुक्त चरित्रका एक प्रत्यक्ष प्रमाण। इसके उपरान्त, अपने ही यदुवंशके लोगोंके अत्यन्त सुरासक्त और दुर्दान्त प्रकृतिके होनेके कारण उनके ध्वंसमें साधन बनना, इसका अन्य एक निदर्शन है।

आज उन्हीं पूर्ण ब्रह्म भगवान् श्रीकृष्णके भारतभूमिपर आविर्भावके दिन उनके चरणोंमें भक्तिसहित श्रद्धाञ्जलि अर्पण करके इस प्रसङ्गकी समाप्ति की जाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोवध-निरोध *

(लेखक—आचार्य श्रीविनोबा भावे)

साधारणतया भारतमें और विशेषकर कलकत्तामें पशुओंके साथ जो व्यवहार होता है, मेरे लिये वह बड़े संतापका विषय है। प्रायः यह कहा जाता है कि कलकत्ता-की बढ़ती हुई जनसंख्याके लिये दूध उपलब्ध करना एक विकट समस्या है तथा इसके लिये एक विशाल आयोजनकी आवश्यकता है, परंतु दुर्भाग्यवश किसीने इस ओर उचित ध्यान नहीं दिया। कलकत्तेमें दूधका व्यापार करनेवाले ग्वाले, पंजाबसे सर्वश्रेष्ठ नस्लोंकी गायोंको कलकत्ता लाकर दूध देनेतक तो उन्हें पालते हैं और पीछे सूख जानेपर उनको कसाईके यहाँ कटनेको भेज देते हैं। परिणाम यह निकलता है कि कलकत्ता शहर ही सर्वश्रेष्ठ नस्लकी गायोंके विनाशके लिये उत्तरदायी है। इसके अतिरिक्त (कलकत्तामें) गायोंके साथ बड़ा नृशंस व्यवहार किया जाता है, जिसके कारण गांधीजीको दुखी होकर दूध छोड़ देना पड़ा। पीछे वे बहुत कमजोर हो गये और कस्तूरबाके विनम्र आग्रहपर उन्होंने बकरीका दूध लेना प्रारम्भ कर दिया। यह सब वृत्तान्त आपको गांधीजीकी आत्मकथामें मिलेगा। परंतु गायोंके प्रति वैसा ही नृशंस अत्याचार आज भी जारी है।

दूधकी पौष्टिकता

भारतके अर्थतन्त्र और भारतीय संस्कृतिमें पशुओंका बड़ा प्रमुख भाग है। केवल दूध और दूधसे बने पदार्थ ही, शाकाहारी लोगोंके शरीरको आवश्यक प्रोटीन देते हैं। मांसका सेवन तो बहुत थोड़े भारतीय करते हैं। इसलिये संतुलित आहारके लिये दूध, साग-भाजी और फल परमावश्यक हैं। बढ़ती हुई जनसंख्याके साथ प्रति व्यक्ति भूमिका अनुपात तेजीसे घटता जा रहा है और उस मात्रामें आमिषभोजी बढ़ेंगे नहीं। मानव संस्कृतिमें मांसाहारका स्थान कभी भी गौरवप्रद नहीं रहा।

भारतमें कृषिकी प्रधानताके कारण, पशुओंकी रक्षा होनी ही चाहिये। भारतमें कृषिके लिये यन्त्रोंके उपयोगकी बातमें कोई सार नहीं है। भारतमें कृषि-कार्य यन्त्रीकरणको झेल नहीं सकता; क्योंकि यह मानव-श्रमका स्थान लेता है और हमारे यहाँ श्रमिकोंके आधिक्यकी एक समस्या है। बैल केवल हरी या सूखी, जो भी सरलतासे मिल जाय ऐसी घास खाते हैं और गोबरके रूपमें हमारे खेतोंको बहुमूल्य उत्कृष्ट खाद देते हैं। जब कि हल-यन्त्र (ट्रैक्टर) न तो घास ही खा सकता है और न खाद ही देता है। उनके लिये जो तेल चाहिये, वह अभी भी विदेशोंसे आता है। इसलिये अमेरिकाकी नकल करनेसे कोई लाभ नहीं है। अमेरिकाके पास प्रतिव्यक्ति लगभग चौदह एकड़ भूमि है जब कि भारतके पास प्रतिव्यक्ति तीन चौथाई एकड़ है तथा बंगालके पास तो प्रतिव्यक्ति केवल आधी एकड़ भूमि ही है। इसलिये हल-यन्त्रोंके लिये कोई स्थान नहीं है और वे बैलोंका स्थान नहीं ले सकते। †

* [सर्वसेवासंघ—कृषिगोसेवासमिति, ३० शंकर मार्केट, कनाट सर्कस, नयी दिल्ली—१ के सचिव (सेक्रेटरी) श्रीनलिन मेहताद्वारा प्रकाशित 'भारतीय अर्थ-शास्त्रमें पशु' (एसेजआन इण्डियाज कैटल इकोनोमी)—नींवसे निर्माण (बिल्डिग फ्राम बिलो) के संग्रह, पृष्ठ ११–१३ पर प्रकाशित अंग्रेजी प्रबन्धसे अनूदित]

† गायकी शक्तिका शायद ही कोई अंदाज लगाता हो। इसीके द्वारा देशके कृषिक्षेत्रोंको जोतनेके लिये आवश्यक शक्ति (पावर) मिलती है। यह शक्ति बिजलीके ४० अरब (४० हजार मिलियन) किलोवाटके (K. W.) बराबर होती है तथा ईंधनके रूपमें २२ अरब (२२ हजार मिलियन) गैलन डीजल तेल (आयल) के बराबर होती है जिसका मूल्य ४८५ करोड़ रुपये वार्षिक होता है। इसके अतिरिक्त गोबरका यदि खादमें पूरा उपयोग किया जाय तो सिंदरी-जैसे नये ९ (नौ) कारखानोंके बराबर होगा।—इसके मृत शरीरसे चर्म तथा अन्य रासायनिक पदार्थ मिलते हैं, उनसे राष्ट्रकी आयमें वृद्धि होती है सो अलग। यह सब राष्ट्रके स्वास्थ्यके लिये मिलनेवाले अत्यन्त आवश्यकीय दूधसे अतिरिक्त हैं। देशको इसी जीवपर ५५ प्रतिशत दूधके लिये निर्भर करना पड़ता है। ऐसी गिरी हुई हालतमें भी इस गायके द्वारा देशको बहुत बड़ी देन मिल रही है।

[इसी संस्थाद्वारा प्रकाशित 'राजकरसम्बन्धी नीति और अर्थसम्बन्धी वृद्धि' (फिसकल पोलिसीज एण्ड इकोनोमिक ग्रोथ)—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके अतिरिक्त, पश्चिमके लोगोंकी तरह भारत कभी भी गोमांस नहीं खा सकता; क्योंकि यह उसकी सांस्कृतिक परम्पराके विपरीत है। इसलिये गाय-बैल आदि पशु हमारे लिये एक आवश्यकीय वस्तु हैं तथा सब प्रकारसे पालनीय हैं। शासन, व्यापारी और जनता—सबको इसके लिये मिलकर सम्मिलित प्रयत्न करने चाहिये।

गोहत्या कानूनद्वारा बंद होनी चाहिये। यह कहा जाता है कि एक धर्म-निरपेक्ष (सेक्युलर) राज्यमें इस प्रकारका कानून बनना सम्भव नहीं है; क्योंकि भारत विविध धर्मोंवाला एक राज्य है।

मैंने इस्लामके धर्म-ग्रन्थोंका अध्ययन किया है और मैं पूरे विश्वासके साथ यह कह सकता हूँ कि इस प्रकारकी बातें करना इस्लामधर्मका अपमान करना है। मैं इस्लामकी ओरसे यह कहता हूँ और मुझे विश्वास है कि कोई मुसल्मान इसके सम्बन्धमें विरोध नहीं करेगा कि कुरानमें ऐसी कोई भी आयत नहीं है, जो गोहत्याको चाहती हो। यही बात हिंदू-शास्त्रोंके लिये भी कही जा सकती है, जिनमें कहीं भी पशु-बलिको शास्त्रविधिका अभिन्न अङ्ग नहीं माना गया है। हिंदू और मुसल्मान तबतक विवेकशील नहीं कहे जा सकते, जबतक कि वे धर्मके नामपर की जानेवाली पशु-हत्याको छोड़ न दें। बादशाह अकबरके राज्यमें गोहत्यापर प्रतिबन्ध था। हमारी सरकारको यह महसूस करना चाहिये कि इस प्रकारका कानून धर्म-निरपेक्षताके सिद्धान्तके विपरीत नहीं है। इसलिये कानूनद्वारा गोहत्या अवश्य बंद की जानी चाहिये।

पशुपालनके वैज्ञानिक तरीके

समाजवाद सभी व्यक्तियोंके लिये समान रक्षणका दावा करता है। परंतु समाजवादकी भारतवर्षकी अपनी जो धारणा या मान्यता है, उसमें मानवसमाजके साथ पशु भी सम्मिलित माने जाते हैं; क्योंकि गाय हमारे बालकोंकी पुष्टिके लिये अपना दूध प्रदान करती है, इसलिये उसके प्रति कृतज्ञता-ज्ञापनके लिये भी गायकी रक्षा करना हमारा कर्तव्य है। गायको अपनी स्वाभाविक मृत्यु मरने देना चाहिये और तब उसके मृतक शरीरका उपयोग जूते बनाने इत्यादिके काममें किया जाना चाहिये। इसमें कोई संदेह नहीं है कि नस्लका भी सुधार होना चाहिये, और इसके लिये हमें पशुपालनकी वैज्ञानिक पद्धति अपनानी चाहिये; परंतु इसके साथ ही गायको सब प्रकारसे संरक्षण मिलना चाहिये।

हम यह नहीं कह सकते कि गायमें अन्य पशुओंकी अपेक्षा कुछ अधिक आत्मशक्ति होती है। जहाँतक आत्माका प्रश्न है सभी जीवोंकी एक ही कोटि है। चूँकि गाय भारतीय जीवन और अर्थतन्त्रका मूलाधार है, इसलिये वह विशेष सद्व्यवहारकी पात्र है।

मेरे स्वयंके ये विचार हैं कि बालक, बीमार और वृद्धोंका गायके दूधपर प्रथम अधिकार है। यदि मेरे हाथमें कानून होता तो मैं सबसे पहले गायके दूधसे बननेवाली मिठाइयोंपर प्रतिबन्ध लगा देता। परंतु ऐसा नहीं हो सकता; क्योंकि संत सूरदासजीने कहा है—

कर्मनकी गति न्यारी।
मूरख मूरख राजे कीन्हें, पंडित फिरत भिखारी॥

अतः राज्यकी बागडोर पण्डितोंके हाथ कभी नहीं आ सकती। तुम्हारे सम्मुख मेरे-जैसा भी पण्डित है, जो कि किसी भी सरकारपर विश्वास नहीं करता और न उसकी परवा ही करता है; क्योंकि वह सभी सरकारोंको उड़ाकर शासन-मुक्त समाजकी स्थापना करना चाहता है। कदाचित् मेरे हाथमें सरकारकी बागडोर होती तो मैं मिठाइयाँ बनानेमें दूधका दुरुपयोग बिल्कुल नहीं होने देता। मेरे बंगाली भाई, जिन्हें रसगुल्ले प्रिय हैं, मुझे क्षमा करेंगे। मुझे लगता है कि हमारे-जैसे गरीब देशमें, जहाँ केवल ३ आउंस (डेढ़ छटाँक) दूध ही प्रति व्यक्तिके हिस्सेमें आता है, दूधसे मिठाइयाँ बनाकर बालकों और बीमारोंको दूधसे वञ्चित रखना एक पाप है। प्रति व्यक्तिके हिस्सेमें आनेवाले ३ आउंस दूधमें गाय, भैंस, बकरी,

[राष्ट्रके निर्माण (बिल्डिंग फ्राम बिलो) संग्रहमें प्रकाशित, स्वर्गीय भूतपूर्व प्रधानमन्त्री श्रीलालबहादुर शास्त्रीद्वारा उद्घाटित अखिल भारतीय गो-संवर्धन-सम्मेलन (हैदराबाद) द्वारा २१–२३ मार्च, १९६५ के समय अङ्गीकृत प्रस्तावोंमेंसे पृष्ठ १६२के स्तम्भ २ के अंशसे अनूदित]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊँटका दूध तो शामिल है ही, और है सम्भवतः गधेतकका दूध भी। प्रत्येक शाकाहारी व्यक्तिको कम-से-कम १ पौंड (लगभग आधा सेर) दूध मिलना चाहिये। अगर इससे अधिक दूध हो तो उसका उपयोग हम मिठाई बनानेमें कर सकते हैं। इंग्लैंडमें प्रति व्यक्ति २ पौंड (लगभग एक सेर) दूध होता है, जब कि तीन पञ्चवर्षीय योजनाओंके उपरान्त भी हम अपने देशमें एक बूँद दूध भी नहीं बढ़ा सके हैं। अविभाजित भारतमें ४ आउंस (लगभग दो छटाँक) दूध प्रति व्यक्तिके हिस्सेमें आता था; परंतु अब दूध-उत्पादक भागके पाकिस्तानमें चले जानेके कारण भारतका दूधका हिस्सा बहुत कम हो गया है।

दूधका अल्प उत्पादन

जहाँतक बंगालका सम्बन्ध है, वहाँ प्रति व्यक्तिके हिस्सेमें २ आउंस (लगभग एक छटाँक) दूध ही आता है। आसामकी हालत इससे भी गयी-बीती है। अपनी आसामकी यात्रामें मुझे नित्यप्रति लगभग १० या १२ गायोंके दूधकी आवश्यकता पड़ती थी। इसीसे आप अनुमान लगा सकते हैं कि वहाँ प्रत्येक गाय कितना कम दूध देती है। अगर मेरे यूरोपियन मित्रोंको यह पता लगे कि यह भूदानी बाबा १२ गायोंका दूध रोजाना पी जाता है तो वे चौंक जायँ। यूरोपमें १ गाय ५० पाउण्ड (लगभग २५ सेर) दूध नित्यप्रति देती है। इसलिये उन्हें आश्चर्य होगा कि बाबा जरूर कोई राक्षस है जो कि नित्यप्रति ६०० पाउण्ड दूध पचा जाता है। उन्हें यह पता नहीं कि आसाममें प्रत्येक गाय नित्यप्रति मुश्किलसे कुछ तोले दूध देती है। छोड़िये इन तमाशेकी बातोंको। सच तो यह है कि यूरोपियन लोगोंका पशु-पालनका ज्ञान हमसे अधिक है। वे हमारी तरह यह ढिंढोरा नहीं पीटते कि गायमें तैंतीस करोड़ देवताओंका निवास है; परंतु वे गायकी रक्षा करना जानते हैं। पशुपालनकी दिशामें भारतको पश्चिमसे अभी बहुत कुछ सीखना है। गायमें सब देवताओंका निवास मानकर हम उसकी पूजा तो करते हैं; परंतु उसकी पूर्णरूपसे उपेक्षा करते हैं। गायकी ऐसी पूजा करना और उसका शोषण करना—इससे कुछ लाभ नहीं हो सकता।

मैंने अनेक बार यह कहा है कि कसाईखानोंके लिये पंजाबसे कलकत्तामें गायोंका आना कानूनद्वारा अवि[illegible] रोक देना चाहिये। साथ ही लोगोंको गो-पालनकी [illegible] भी उचित ध्यान देना चाहिये। गायोंका यह लालन[illegible] वैज्ञानिक ढंगसे होना चाहिये। आज हमारे सम्मुख [illegible] एक गम्भीर समस्या है। यदि मनुष्य दूधके स्थानपर [illegible] दूसरी चीज खोज निकाले और बैलकी तरह कृषि[illegible] स्वयं श्रम करने लगे तो परिस्थिति बदल सकती है [illegible] वैसी हालतमें गायका हमारे लिये कोई उपयोग नहीं [illegible] और ईश्वरकी सृष्टिमें हम उसको अपना स्वाभाविक [illegible] ग्रहण करनेको छोड़ देंगे; किंतु निकट भविष्यमें तो [illegible] होना व्यावहारिक नहीं लगता। हम यह नहीं भूले [illegible] भगवान् गोपालकृष्णका युग अभी समाप्त नहीं हुआ [illegible] गीताके श्रीकृष्णसे गोपालकृष्ण भारतीय जनताके [illegible] निकट हैं, यद्यपि गीतामें श्रीकृष्णके सर्वश्रेष्ठ उपदे[illegible] भारतीय श्रीकृष्णकी पूजा गौके साथ करते हैं। [illegible] भगवान्, गौ और मनुष्योंके मध्य ईश्वरीय प्रेमकी [illegible] बहुत गीत गाये हैं। मि० एण्ड्यूजने एक बार [illegible] कहा था कि 'ईसाई इन भावोंको भलीभाँति समझ [illegible] हैं; क्योंकि ईसामसीहका जन्म भी अस्तबलमें हुआ था।'

एक बार एक ईसाई मित्रने तर्क किया कि गाय[illegible] आत्मा है—ऐसा विश्वास नहीं किया जा सकता। [illegible] उनसे पूछा—'आप मानते हैं या नहीं कि ईश्वर [illegible] हैं?' उन्होंने इसका स्वीकारात्मक उत्तर दिया। मैंने [illegible] पूछा—'क्या पाले हुए जानवर, जिन्हें आप प्यारसे [illegible] पिलाते हैं, प्यारके व्यवहारको महसूस करते हैं और [illegible] भी उनके लिये वैसा ही अनुभव करते हैं?' उन्होंने [illegible] दिया कि 'पशु और मनुष्य—दोनों ही प्यारकी [illegible] समझते हैं।' मैंने और भी कहा कि परमेश्वर ही [illegible] और पशु प्रेमके व्यवहारको समझ सकता है तो [illegible] हो सकता है कि उसमें कोई ईश्वरीय अंश न हो। [illegible] बात छोड़ दीजिये, क्या आप अपने पास रक्खे हुए कुत्ते[illegible] प्रति आकर्षणका अनुभव नहीं करते? भारतीयोंको [illegible] प्रति दया और प्यार है और उसे वह अपने परि[illegible] सदस्य मानते हैं। हम गायकी पालना करते हैं और [illegible] हमारी पालना करती है। परस्परके इस व्यवहारसे हम [illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...प्राणियोंको अपना प्रेम अर्पित करके अपनी मानवताको ...दृढ़ करते हैं।

सामाजिकताका सार

मानवता असहाय पशुओंको मारकर खानेमें नहीं, ...कि उनकी रक्षा करनेमें है। मनुष्य सृष्टिका सम्राट् ...इसलिये माना गया है; क्योंकि वह दूसरे जीवोंकी भी रक्षा ...और सहायता करता है, न कि उन्हें खा जाता है इसलिये। ...सम्राट् वही होता है जो कि अपनी प्रजाकी रक्षा करे। ...मानवसमुदायपर जंगलका वह कानून लागू नहीं होता, ...जंगलका राजा बाघ अन्य पशुओंको खा जाता है। मानव-...ताके सिद्धान्त कहीं ऊँचे हैं। हम दूसरे प्राणियोंसे सेवा ...ले सकते हैं, परंतु बदलेमें हमें उन्हें कुछ देना चाहिये। ...यही सामाजिकताका सार है।

प्राचीन वेदोंका कथन है कि—

सन्नुः अस्तु द्विपदे, सन्नुः अस्तु चतुष्पदे।

द्विपाद और चतुष्पाद सभी प्रसन्न रहें। वहाँ मन्त्र-...द्रष्टा ऋषि मनुष्यका नाम न लेकर केवल द्विपाद ही कहते हैं और इस प्रकार द्विपाये और चौपाये—दोनोंको समान श्रेणीमें रखते हैं। यह हमारी सभ्यताकी वर्णन-शैली है। केवल इसी प्रकारकी मनोवृत्तिसे वास्तविक मानव-उत्थान हो सकता है। गाँधीजीने एक बार कहा था कि गाय करुणाकी मूर्ति है।

अन्तमें मैं संक्षेपमें यह पुनः कहता हूँ कि इस प्रकारका तर्क करना पूर्णरूपसे गलत है कि धर्म-निरपेक्ष राज्यमें गोहत्या-बंदीके लिये कानून नहीं बनाया जा सकता। साथ ही यह सोचना भी उतना ही गलत है कि गायकी केवल पूँछको पकड़कर ही हम अपनी आत्माको तो पवित्र कर सकते हैं, भले ही उसकी सेवाकी बिल्कुल परवा न करें। जो लोग गायकी पूजाके हामी हैं उन्हें पशुपालनकी वैज्ञानिक पद्धतिको जाननेकी चेष्टा करनी चाहिये। सरकार और जनता—दोनों ही यदि अपने दायित्वोंको समझ लेंगे तो कलकत्तेमें गायोंके लिये बहुत कुछ किया जा सकता है। कलकत्तेमें सर्वश्रेष्ठ नस्लकी गायोंका वध मानवताके उत्थानमें बहुत बड़ा बाधक है।

मोक्षदायिनी मृत्युका स्वागत और मृत्युके रूपमें भगवान्‌के दर्शन

[शास्त्रकी वाणी है कि जो मृत्युको निर्वाण मान लेता है, उसे मरनेपर मोक्षकी प्राप्ति होती है। इसीके अनुसार मृत्युको मोक्षदायिनी मानकर उसका स्वागत करना चाहिये। इतना ही नहीं, वस्तुतः मृत्युका स्वाँग रचकर स्वयं भगवान् ही आते हैं—ऐसा अनुभव करके मृत्युकी भयानकतामें भगवान्‌के सौन्दर्य-माधुर्यपूर्ण रूप-सुधाका पान करके उन्हींके चरणोंमें अपनेको समर्पण करना तथा उनमें घुल-मिल जाना चाहिये—]

मृत्यु ! भयानक आयी तुम ले प्रियतम प्रभुका मधु संदेश।
तोड़ सभी मायाके बन्धन की मिथ्या ममता निःशेष॥
तुमने कहीं न दिया तनिक भी असत् अहंकारका लेश।
पहुँचा दिया तुरंत उस पथपर, जो जाता प्रियतमके देश॥
जन्म-मरणके क्लेश, भविष्यत्‌के कर सभी नष्ट सविकार।
अमर बनाया, दिला दिया प्रभु-पदमें नित निवास-अधिकार॥
मुक्तिदायिनी प्रभुपद-प्रेम-प्रदायिनि मृत्यु परम सुखरूप।
करो कृतार्थ मुझे तुम लेकर निज प्रभावमें अमल अनूप॥
स्वागत-अर्घ्य कृतज्ञ हृदयका करो कृपा करके स्वीकार।
करता मैं शुचि सुरभित मन-सुमनोंसे पूजन बारंबार॥

× × × ×

भूला मैं, पहचान न पाया मृत्यु-वेशमें तुमको नाथ।
तुम्हीं रूप धर घोर मृत्युका, आये करने मुझे सनाथ॥
लीलामय लीला विचित्र अति, कोई भी न पा सका पार।
तुम्हीं पिलाते स्वयं कृपा कर रूप-सुधा निज मधुर अपार॥
कर आवरणभङ्ग तुमने ही मायाका कर पर्दा छिन्न।
देकर मुझे गाढ़ आलिङ्गन किया सदाके लिये अभिन्न॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊँटका दूध तो शामिल है ही, और है सम्भवतः गधेतकका दूध भी। प्रत्येक शाकाहारी व्यक्तिको कम-से-कम १ पौंड (लगभग आधा सेर) दूध मिलना चाहिये। अगर इससे अधिक दूध हो तो उसका उपयोग हम मिठाई बनानेमें कर सकते हैं। इंग्लैंडमें प्रति व्यक्ति २ पौंड (लगभग एक सेर) दूध होता है, जब कि तीन पञ्चवर्षीय योजनाओंके उपरान्त भी हम अपने देशमें एक बूँद दूध भी नहीं बढ़ा सके हैं। अविभाजित भारतमें ४ आउंस (लगभग दो छटाँक) दूध प्रति व्यक्तिके हिस्सेमें आता था; परंतु अब दूध-उत्पादक भागके पाकिस्तानमें चले जानेके कारण भारतका दूधका हिस्सा बहुत कम हो गया है।

दूधका अल्प उत्पादन

जहाँतक बंगालका सम्बन्ध है, वहाँ प्रति व्यक्तिके हिस्सेमें २ आउंस (लगभग एक छटाँक) दूध ही आता है। आसामकी हालत इससे भी गयी-बीती है। अपनी आसामकी यात्रामें मुझे नित्यप्रति लगभग १० या १२ गायोंके दूधकी आवश्यकता पड़ती थी। इसीसे आप अनुमान लगा सकते हैं कि वहाँ प्रत्येक गाय कितना कम दूध देती है। अगर मेरे यूरोपियन मित्रोंको यह पता लगे कि यह भूदानी बाबा १२ गायोंका दूध रोजाना पी जाता है तो वे चौंक जायँ। यूरोपमें १ गाय ५० पाउण्ड (लगभग २५ सेर) दूध नित्यप्रति देती है। इसलिये उन्हें आश्चर्य होगा कि बाबा जरूर कोई राक्षस है जो कि नित्यप्रति ६०० पाउण्ड दूध पचा जाता है। उन्हें यह पता नहीं कि आसाममें प्रत्येक गाय नित्यप्रति मुश्किलसे कुछ तोले दूध देती है। छोड़िये इन तमाशेकी बातोंको। सच तो यह है कि यूरोपियन लोगोंका पशु-पालनका ज्ञान हमसे अधिक है। वे हमारी तरह यह ढिंढोरा नहीं पीटते कि गायमें तैंतीस करोड़ देवताओंका निवास है; परंतु वे गायकी रक्षा करना जानते हैं। पशुपालनकी दिशामें भारतको पश्चिमसे अभी बहुत कुछ सीखना है। गायमें सब देवताओंका निवास मानकर हम उसकी पूजा तो करते हैं; परंतु उसकी पूर्णरूपसे उपेक्षा करते हैं। गायकी ऐसी पूजा करना और उसका शोषण करना—इससे कुछ लाभ नहीं हो सकता।

मैंने अनेक बार यह कहा है कि कसाईखानोंके लिये पंजाबसे कलकत्तामें गायोंका आना कानूनद्वारा रोक देना चाहिये। साथ ही लोगोंको गो-पालनकी ओर भी उचित ध्यान देना चाहिये। गायोंका यह पालन वैज्ञानिक ढंगसे होना चाहिये। आज हमारे सामने एक गम्भीर समस्या है। यदि मनुष्य दूधके स्थानपर दूसरी चीज खोज निकाले और बैलकी तरह कृषिमें स्वयं श्रम करने लगे तो परिस्थिति बदल सकती है। वैसी हालतमें गायका हमारे लिये कोई उपयोग नहीं … और ईश्वरकी सृष्टिमें हम उसको अपना साथी … ग्रहण करनेको छोड़ देंगे; किंतु निकट भविष्यमें ऐसा होना व्यावहारिक नहीं लगता। हम यह नहीं … भगवान् गोपालकृष्णका युग अभी समाप्त नहीं हुआ। गीताके श्रीकृष्णसे गोपालकृष्ण भारतीय जनताके … निकट हैं, यद्यपि गीतामें श्रीकृष्णके सर्वश्रेष्ठ उप… भारतीय श्रीकृष्णकी पूजा गौके साथ करते हैं। … भगवान्, गौ और मनुष्योंके मध्य ईश्वरीय प्रेमकी … बहुत गीत गाये हैं। मि० एण्ड्यूजने एक बार कहा था कि 'ईसाई इन भावोंको भलीभाँति समझ … हैं; क्योंकि ईसामसीहका जन्म भी अस्तबलमें हुआ था।'

एक बार एक ईसाई मित्रने तर्क किया कि … आत्मा है—ऐसा विश्वास नहीं किया जा सकता। … उनसे पूछा—'आप मानते हैं या नहीं कि ईश्वर … हैं?' उन्होंने इसका स्वीकारात्मक उत्तर दिया। मैंने पूछा—'क्या पाले हुए जानवर, जिन्हें आप प्यारसे … पिलाते हैं, प्यारके व्यवहारको महसूस करते हैं और … भी उनके लिये वैसा ही अनुभव करते हैं?' उन्होंने … दिया कि 'पशु और मनुष्य—दोनों ही प्यारको समझते हैं।' मैंने और भी कहा कि परमेश्वर … और पशु प्रेमके व्यवहारको समझ सकता है तो … हो सकता है कि उसमें कोई ईश्वरीय अंश न हो? … बात छोड़ दीजिये, क्या आप अपने पास रक्खे हुए … प्रति आकर्षणका अनुभव नहीं करते? भारतीयोंके … प्रति दया और प्यार है और उसे वह अपने … सदस्य मानते हैं। हम गायकी पालना करते हैं और … हमारी पालना करती है। परस्परके इस व्यवहारसे …

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...तर प्राणियोंको अपना प्रेम अर्पित करके अपनी मानवताको समृद्ध करते हैं।

सामाजिकताका सार

मानवता असहाय पशुओंको मारकर खानेमें नहीं, बल्कि उनकी रक्षा करनेमें है। मनुष्य सृष्टिका सम्राट् इसलिये माना गया है; क्योंकि वह दूसरे जीवोंकी भी रक्षा और सहायता करता है, न कि उन्हें खा जाता है इसलिये। सम्राट् वही होता है जो कि अपनी प्रजाकी रक्षा करे। मानवसमुदायपर जंगलका वह कानून लागू नहीं होता, जहाँका राजा बाघ अन्य पशुओंको खा जाता है। मानवताके सिद्धान्त कहीं ऊँचे हैं। हम दूसरे प्राणियोंसे सेवा ले सकते हैं, परंतु बदलेमें हमें उन्हें कुछ देना चाहिये। यही सामाजिकताका सार है।

प्राचीन वेदोंका कथन है कि—

सन्नुः अस्तु द्विपदे, सन्नुः अस्तु चतुष्पदे ।

द्विपाद और चतुष्पाद सभी प्रसन्न रहें। वहाँ मन्त्रद्रष्टा ऋषि मनुष्यका नाम न लेकर केवल द्विपाद ही कहते हैं और इस प्रकार द्विपाये और चौपाये—दोनोंको समान श्रेणीमें रखते हैं। यह हमारी सभ्यताकी वर्णन-शैली है। केवल इसी प्रकारकी मनोवृत्तिसे वास्तविक मानव-उत्थान हो सकता है। गाँधीजीने एक बार कहा था कि गाय करुणाकी मूर्ति है।

अन्तमें मैं संक्षेपमें यह पुनः कहता हूँ कि इस प्रकारका तर्क करना पूर्णरूपसे गलत है कि धर्म-निरपेक्ष राज्यमें गोहत्या-बंदीके लिये कानून नहीं बनाया जा सकता। साथ ही यह सोचना भी उतना ही गलत है कि गायकी केवल पूँछको पकड़कर ही हम अपनी आत्माको तो पवित्र कर सकते हैं, भले ही उसकी सेवाकी बिल्कुल परवा न करें। जो लोग गायकी पूजाके हामी हैं उन्हें पशुपालनकी वैज्ञानिक पद्धतिको जाननेकी चेष्टा करनी चाहिये। सरकार और जनता—दोनों ही यदि अपने दायित्वोंको समझ लेंगे तो कलकत्तेमें गायोंके लिये बहुत कुछ किया जा सकता है। कलकत्तेमें सर्वश्रेष्ठ नस्लकी गायोंका वध मानवताके उत्थानमें बहुत बड़ा बाधक है।

मोक्षदायिनी मृत्युका स्वागत और मृत्युके रूपमें भगवान्‌के दर्शन

[शास्त्रकी वाणी है कि जो मृत्युको निर्वाण मान लेता है, उसे मरनेपर मोक्षकी प्राप्ति होती है। इसीके अनुसार मृत्युको मोक्षदायिनी मानकर उसका स्वागत करना चाहिये। इतना ही नहीं, वस्तुतः मृत्युका स्वाँग रचकर स्वयं भगवान् ही आते हैं—ऐसा अनुभव करके मृत्युकी भयानकतामें भगवान्‌के सौन्दर्य-माधुर्यपूर्ण रूप-सुधाका पान करके उन्हींके चरणोंमें अपनेको समर्पण करना तथा उनमें घुल-मिल जाना चाहिये—]

मृत्यु! भयानक आयी तुम ले प्रियतम प्रभुका मधु संदेश।
तोड़ सभी मायाके बन्धन की मिथ्या ममता निःशेष॥
रहने कहीं न दिया तनिक भी असत् अहंकारका लेश।
पहुँचा दिया तुरंत उस पथपर, जो जाता प्रियतमके देश॥
जन्म-मरणके क्लेश, भविष्यत्‌के कर सभी नष्ट सविकार।
अमर बनाया, दिला दिया प्रभु-पदमें नित निवास-अधिकार॥
मुक्तिदायिनी प्रभुपद-प्रेम-प्रदायिनि मृत्यु परम सुखरूप।
किया कृतार्थ मुझे तुम लेकर निज प्रभावमें अमल अनूप॥

स्वागत-अर्घ्य कृतज्ञ हृदयका करो कृपा करके स्वीकार।
करता मैं शुचि सुरभित मन-सुमनोंसे पूजन बारंबार॥
× × × ×
भूला मैं, पहचान न पाया मृत्यु-वेशमें तुमको नाथ।
तुम्हीं रूप धर घोर मृत्युका, आये करने मुझे सनाथ॥
लीलामय लीला विचित्र अति, कोई भी न पा सका पार।
तुम्हीं पिलाते स्वयं कृपा कर रूप-सुधा निज मधुर अपार॥
कर आवरणभङ्ग तुमने ही मायाका कर पर्दा छिन्न।
देकर मुझे गाढ़ आलिङ्गन किया सदाके लिये अभिन्न॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देशमें आसुरी सम्पदाका विस्तार और हमारा कर्तव्य

इस समय सारे विश्वमें ही बड़े जोरोंसे परिवर्तन हो रहा है और वह हो रहा है पतनोन्मुखी। इसका परिणाम होगा—दुःख, यातना, क्लेश, युद्ध और विनाश। इसका स्थूल कारण है—भोगपरायणता। भारतीय ऋषियोंके सिद्धान्तसे जीवनका लक्ष्य है—भगवत्प्राप्ति या मोक्ष और उसका साधन है त्यागपूर्ण विशुद्ध निष्काम कर्मयुक्त सर्वहितकारी जीवन—जीवनका प्रत्येक कार्य ही भगवत्प्रीत्यर्थ हो। इसीसे 'दैवी सम्पदा' भारतीय जीवनका स्वरूप है। आजके जगत्का लक्ष्य है—भोग-प्राप्ति और उसके साधन हैं—किसी भी प्रकारसे भोग प्राप्त हों—भले ही उसमें जीवमात्रका अकल्याण होता हो। इसीसे आजका मानव 'आसुरी सम्पदा'-मय हो रहा है और आसुरी बुद्धि स्वाभाविक ही आसुरी विचारों तथा क्रियाओंको ही महत्त्व देगी। यही कारण है, आज जगत् घोर पतनकारी विस्फोटके मुँहपर स्थित है। और पाश्चात्त्य शिक्षा-दीक्षा, भोगमूलक साहित्य तथा पाश्चात्त्य विचारधाराके प्रभावसे भारत भी अपने चिरन्तन सिद्धान्त तथा लक्ष्यसे च्युत होकर हिंसामय कम्यूनिज्म-जैसे निश्चित दुःखपरिणामी आसुरी विचार-प्रवाहमें बहने लगा है और द्रुतगतिसे बहा जा रहा है।

देशकी इस समय जो स्थिति है, उससे यह प्रत्यक्ष प्रकट है। भारतके कई प्रदेशोंमें खास करके पश्चिम बंगालमें जो कुछ हो रहा है, वह एक भयानक भविष्यका चित्र सामने लाता है। ऐसी अराजकता, उच्छृङ्खलता, परिणाम-विचार-शून्यता, अनुशासनहीनता, अशान्ति और हिंसा-प्रतिहिंसा-प्रवृत्ति इधर कभी नहीं हुई थी। केवल राजनीतिक क्षेत्रमें ही नहीं—शिक्षा-क्षेत्र (छात्र-शिक्षक), औद्योगिक क्षेत्र, क्रय-विक्रयके बाजार, महिलामण्डल, शासक-समुदाय—सभी इस प्रवृत्तिसे आक्रान्त हैं। यहाँतक कि नगर-निगमों, विधानसभाओं और संसदोंमें भी ऐसे अवाञ्छनीय कार्य होते हैं, जो सर्वथा अनिष्टकारक तो हैं ही, भारतकी, भारतीय त्यागकी तथा भारतके त्यागी देशभक्त नेताओंकी प्रतिष्ठाका नाश करनेवाले हैं!

आज पश्चिम बंगाल—उसके सबसे बड़े नगर कलकत्तेमें जो कुछ हो रहा है, सिलीगुड़ीमें जो कुछ लूट-मार तथा आग लगानेका घृणित कार्य हुआ है, बड़ा ही भयानक है। हमारी राष्ट्रीयताके विचार ... संकुचित तथा सीमित हो गये हैं कि आज एक ... भाषा तथा सीमाभेदके कारण अन्य प्रदे... जीवन संत्रस्त या भयविह्वल हो गया है। सभी ... हैं, कब क्या हो जाय, पता नहीं। सारा सामाजिक ... अस्त-व्यस्त हो रहा है। लूट-मार आगजनी होती है ... बचानेवाला, सुननेवाला नहीं; महिलाओंका अपमान ... है—कोई कुछ बोलता नहीं; रेलगाड़ियाँ—बसें रोकी ... हैं, बसों तथा मोटरोंमें आग लगायी जाती है, ... जलायी जाती हैं, गैरकानूनी भीड़ चाहे जिसको ... जहाँ, चाहे जब घेर लेती है; कोई पूछनेवाला तथा ... वाला नहीं; रेलयात्रियोंपर पत्थर फेंके जाते हैं, विद्या... आक्रमण होते हैं, शिक्षक तथा छात्र मारे जाते हैं ... रोकने-टोकनेवाला नहीं; परिणाम यह हो रहा है ... औद्योगिक संस्थान कल-कारखाने बंद होते जा रहे ... आर्थिक कठिनाइयाँ बढ़ रही हैं। जीवन-यापनकी वस्तु... मिलना कठिन हुआ जा रहा है। शिक्षाक्षेत्रोंमें भय ... रहा है और दीर्घकालसे बसे हुए शान्तिप्रिय लोग प्रा... दूसरे स्थानोंपर जानेकी सोच रहे हैं। असमके ... अन्य प्रान्तीयोंके प्रति दुर्भावना, महाराष्ट्रकी ... आदि भी यही भय उभाड़ रही हैं। गरीब ... कल्याणके नामपर गरीबोंका जीवन कष्टमय बनाया ... हैं और राष्ट्र, देश तथा समाजको भूलकर व्यक्तिगत ... साधनको ही—भले ही उसमें दूसरोंका सर्वस्व न... हो—कर्तव्य माना जा रहा है।

इस उच्छृङ्खलतामय यथेच्छाचारको निर्बाध बढ़ने ... कदापि उचित नहीं है। अतएव भगवान्के शरण ... उनकी कृपापर विश्वास रखते हुए अपने प्रत्येक प्रा... तथा बुद्धिके द्वारा तुरंत ऐसे कार्य करने चाहिये ... इस विनाशके प्रवाहमें कुछ बाधा उपस्थित हो, ... पथपर चलनेवाले लोगोंको उपदेश प्राप्त हो और ... भूल समझकर उसके लिये पश्चात्ताप करें और ... अपनावें।

जो व्यक्ति या संस्थाएँ यह काम आंशिक ... रहे हैं या करना चाहते हैं, उनको सक्रिय सहयोग दे...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनावें, जिससे उनके कार्यक्षेत्र तथा कार्यसमूह विशालताको प्राप्त होकर शीघ्र ही सत्फल उत्पन्न कर सकें। सबको अपने साधारण मतभेद तथा व्यक्ति या दलकी विघटनकारी भावनाओंको छोड़कर एक सूत्रमें बँधकर कार्य करना चाहिये। भारतीय ऋषि-मुनिसेवित धार्मिक भावोंका, भारतीय त्यागमयी विचारधाराओंका तथा बुद्धिमानीके साथ सद्भावोंका प्रचार, सत् साहित्यका प्रकाशन, रक्षादलोंका संगठन, प्रहरी टुकड़ियोंकी नियुक्ति, आर्थिक सहयोग, जनसाधारणमें साहस, चरित्रबल, उत्साह तथा सेवावृत्तिका उद्बोधन और समयपर आवश्यकतानुसार त्याग-बलिदानकी तैयारी—इन सभीके लिये क्रियात्मक विचार करना आवश्यक है। **'शुभस्य शीघ्रम्।'**

गोरक्षा क्यों और कैसे करें ?

(लेखक—स्वामीजी श्रीकेशवपुरीजी वेदान्ताचार्य)

भारतके ग्रामोंमें एक पुरानी कहावत है—'दूधों नहाओ पूतों फलो।' यह कहावत स्त्री-जातिमें प्रचलित है। कहावत बताती है कि किसी समय भारतीय जनता दूधसे स्नान करती थी। उसी भारतमें आज ओषधिके लिये दूध नहीं मिल रहा है, उसको प्राप्त करनेके लिये प्राणोत्सर्ग करनेकी स्थिति उत्पन्न हो गयी है। जिस भारतका प्रत्येक घर एक डेरीफार्म था, उस भारतकी यह दशा कि गोरक्षाके लिये मरणव्रतका संकल्प करना पड़ रहा है और भारतके कर्णधार तमाशा देख रहे हैं। कितनी लज्जाकी बात है!

गौके दूध, दही और घीको ऋषियोंने अमृत बताया है। दूध ही नहीं, जिस गौका मूत्र भी अमृतके समान है, उसी गौकी हत्या करनेके लिये आजके तथाकथित बुद्धिके ठेकेदार अर्थशास्त्री खुले आम वकालत करते हैं। इससे बढ़कर कलङ्ककी बात और क्या हो सकती है? ऐसे ही बुद्धिमानोंकी कृपा है कि आज हम विदेशोंके सामने नतमस्तक होकर गिड़गिड़ाकर अनाजके दानोंके लिये दयाकी भीख माँगते हैं। श्रीमैथिलीशरण गुप्तने कहा था 'जिसको अपने देश तथा जातिका अभिमान नहीं है, वह नरपशु है और मृतक-समान है' क्या हमारी दशा आज ठीक इसी प्रकारकी नहीं हो गयी है!

गौके दूधका महत्त्व

आयुर्वेदके ग्रन्थ 'सुश्रुत-संहिता'के सूत्रस्थानके ४५वें अध्यायके ५०वें श्लोकमें गोदुग्धके गुणोंका वर्णन करते हुए कहा है—गौका दूध कफको नहीं बढ़ाता, वह चिकना, टिकाऊ, रक्त-पित्त, वात एवं पित्तनाशक, रसायन (बुढ़ापा और व्याधिको दूर करनेवाला) मधुर रसवाला, जल्दी पचनेवाला, ठंडा तथा आयुको बढ़ानेवाला है। उक्त प्रसंगमें ही भैंसके दूधके गुणोंका वर्णन करते हुए कहा है—भैंसका दूध अत्यन्त कफकारक, मधुर रसयुक्त, जठराग्निको मन्द बनानेवाला, निद्रा लानेवाला, ठंडा तथा अधिक टिकाऊ है। बकरीके दूधको गौके दूधसे मिलता-जुलता बताया है। बकरीका दूध भूखको बढ़ानेवाला, मलको सुखानेवाला, श्वास, खाँसी तथा रक्त-पित्तनाशक, जल्दी हजम होनेवाला तथा समस्त रोगोंको दूर करनेवाला होता है। अब तीनोंके दूधमें कौन श्रेष्ठ है—इसपर विचार करें। बकरीका दूध यद्यपि उत्तम है; किंतु गौके दूधमें जो 'रसायन' नामका गुण ऊपर कहा है, वह उसमें नहीं है। गौका दूध टिकाऊ है, जब कि बकरीका दूध हल्का है। उसको पीनेपर थोड़ी ही देरमें भूख लग जायगी। गौके दूधमें आयुको बढ़ानेकी जो शक्ति है, वह बकरीके दूधमें नहीं है। इन दोनोंके बाद भैंसका दूध जीवनके लिये कितना उपयोगी हो सकता है—यह आप स्वयं समझ सकते हैं। गौके मूत्रको तो पीनेका भी विधान है। कितनी ही आयुर्वेदीय ओषधियाँ गौके मूत्रसे बनती हैं। आज अत्यन्त महँगी अंग्रेजी दवाओंको न खरीद सकनेके कारण गरीब जनता तड़पकर मर जाती है।

खाद्य समस्याका हल

दूधके अभावमें आजकी नयी पीढ़ीका स्वास्थ्य कितना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गिर गया है; इसपर विचार करनेके लिये अधिकारियोंके पास समय नहीं है। आजके बालकोंकी कायाको देखिये, यदि कोई पहलवान फूँक मार दे तो उड़ जायँ। शरीरमें पोषक तत्त्वोंका अभाव होनेसे आजकल लोग अनेक प्रकारके रोगोंसे पीड़ित रहते हैं। यदि पर्याप्त मात्रामें दूध, दही और घी खानेको मिले तो अन्न अधिक खानेकी आवश्यकता ही नहीं पड़ती। दूध, दही और घीकी तरावट रहनेसे शरीरको पर्याप्त मात्रामें रस प्राप्त होता है। इससे जठराग्निमें बार-बार खाद्य पदार्थोंकी आहुति देनेकी आवश्यकताको कम किया जा सकता है। इस प्रकार विदेशोंसे अन्नके लिये भीख नहीं माँगनी पड़ेगी तथा जनताका स्वास्थ्य भी अच्छा रहेगा।

अर्थशास्त्रीय पक्ष

गोहत्याका समर्थन करते हुए श्री बी० एम० दाँडेकर तथा डोरविलन आदि अर्थशास्त्री तथा वैज्ञानिकोंका कहना है कि गोहत्यापर पूर्ण प्रतिबन्ध लगानेसे देशकी अर्थव्यवस्थापर घातक प्रभाव पड़ेगा। इन महाशयोंको सरकारका खजाना भरने तथा अपने भत्ते सुरक्षित रखनेकी तो बड़ी चिन्ता है; किंतु देशकी जनताका खजाना दिनोंदिन खाली होता जा रहा है तथा उसको रोटियोंके भी लाले पड़े हुए हैं—इसकी जरा भी चिन्ता नहीं है। केन्द्रीय खाद्य मन्त्रणालयद्वारा नियुक्त विशेषज्ञ समितिने कहा है कि गोहत्या बंद करनेसे खाद्य-स्थिति जटिल हो जायगी और डेरी आदिपर असर पड़ेगा। मैं कहता हूँ कि भारतकी जनताको आपके डेरी फार्मोंकी आवश्यकता नहीं है। भारतकी जनताको घर-घरमें डेरी फार्म बनाना है। इन महाशयोंसे मैं पूछता हूँ कि देशके करोड़ों नवजात शिशुओंको क्या आप गोमांस खिलाकर जीवित रखेंगे अथवा गायोंका रक्त उन्हें पिलायेंगे? आपके डेरी फार्मोंने देशकी जनताका कितना उद्धार किया है? विशेषज्ञ महानुभावोंका यह भी कथन है कि गायोंके मांस और चमड़ेसे विदेशी मुद्रा प्राप्त होती है। मैं पूछता हूँ कि यह विदेशी मुद्राकी भूख आपकी क्यों इतनी बढ़ गयी है? टैक्स-पर-टैक्स लगाकर आपलोगोंने जनताकी कमर तोड़ दी है। क्या आप और सरकार छाती ठोककर यह कह सकते हैं कि योजनाओंमें प्रतिवर्ष जो अरबों रुपये व्यय किये जाते हैं, उसके तीन हिस्सेका भी सदुपयोग होता है? यदि ऐसा हुआ होता तो आज प्रत्येक व्यक्तिके मनमें असंतोषकी भावना देखनेको न मिलती। गोपालनसे खाद्य-स्थिति सुधरनेकी बात ऊपर कही जा चुकी है। गायके गोबर और मूत्रसे जो खाद बनेगी, उससे अन्नके उत्पादनमें वृद्धि होगी और अरबों रुपयोंकी सरकारको बचत होगी,* यह बात आपकी बुद्धिमें क्यों नहीं बैठती? आप कहेंगे कि हम टैक्टरोंसे बैलोंकी आवश्यकता पूरी कर लेंगे और रासायनिक खादसे गोबरका काम चला लेंगे। मैं पूछता हूँ कि आपके टैक्टरोंने आजतक भारतकी गरीब जनताका कितना उपकार किया है? आपकी इन बिना सिर-पैरकी कृषि-विकास-योजनाओंने कितने ही गरीब किसानोंको भिखारी बना दिया है। भारत-जैसे गरीब देशमें आपकी रासायनिक खाद कुछ धनी किसानोंको भले ही लाभ पहुँचा सकती हो; किंतु आजतकका अनुभव बताता है कि साधारण किसानोंके लिये यह पूर्णरूपसे हानिकारक सिद्ध हुई है। उससे भूमिका सारा तत्त्व एक ही बारमें खींच लिया जाता है। जब कि गोबरकी खाद ठंडी होती है, उससे भूमिकी पोषक शक्ति बढ़ती है। इधर दो वर्षोंसे वर्षा न होनेके कारण अनेक राज्योंमें पीनेके लिये टैंकरोंसे पानी पहुँचानेकी स्थिति उत्पन्न हो गयी थी। उधर कंडला बन्दरगाहपर प्रतिमास ५०,००० (पचास हजार) टन रासायनिक खादका विदेशोंसे आयात हो रहा है, सम्भव है अन्य बन्दरगाहोंसे भी होता होगा। उस खादको भारत-सरकार क्या राशनकार्डोंपर वितरित करके जनताको खानेके लिये देगी? अथवा उसे सड़ाकर किसी रसायनका निर्माण होगा?

श्रीदाँडेकर महोदयने गोहत्याकी वकालत करते हुए कहा है कि गायोंकी हत्याकर उनके जन्म और मृत्युके बीच संतुलन कायम करना चाहिये। मैं दाँडेकर महाशयसे पूछता हूँ कि दूधका व्यवसाय करनेवाले अहीर, घोसी, गूजर तथा ग्वालोंपर गोहत्याका क्या प्रभाव पड़ता है। इसके कारणोंपर भी कभी आपने विचार किया है? ग्वाले आदिको दूधमें पानी और आरारोट क्यों मिलाना पड़ता है और

* इसी अङ्कमें प्रकाशित श्रीविनोबाजीके लेखमें इस विषयके आँकड़े देखिये। ——सम्पादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने परिवारका पोषण करनेके लिये उन्हें जनताके स्वास्थ्यके साथ खिलवाड़ क्यों करना पड़ता है,—क्या कभी इसपर सोचा है ? किसी ग्वाले या अहीरसे पूछकर उसकी कठिनाई-को समझने और दूर करनेका आपने प्रयत्न किया है ? गोहत्याके समर्थक इन वकीलोंसे मैं पूछता हूँ कि क्या कभी कसाईखानेपर जाकर यह जाननेका प्रयत्न किया है कि उसमें बेकार गायोंके नामपर अच्छी-से-अच्छी गौएँ क्यों काटी जाती हैं ? क्या इन लोगोंको यह पता है कि संविधानमें लिखित 'दूध देनेवाले पशु' आदि वाक्योंको तोड़-मरोड़-कर तथा मनमाने ढंगसे व्याख्याकर उपयोगी गायें हजारोंकी संख्यामें नित्य काटी जाती हैं ? यदि इन लोगोंने उपर्युक्त बातोंपर विचार किया होता तो इस प्रकारके अविवेक-पूर्ण वक्तव्य न दिये होते।

मद्रासमें चमड़ा-निर्यात-संवर्धन-परिषद्के अध्यक्ष श्री सी० के० डोरविलनको देशकी आर्थिक व्यवस्थाकी बड़ी चिन्ता है। ये कहते हैं कि चमड़ेसे ५ करोड़की आय होती है, उसका सरकारको घाटा होगा। आपका दूसरा तर्क यह है कि अवाञ्छनीय गायोंकी हत्यापर प्रतिबन्ध लगानेसे चमड़ेकी किस्म घटिया हो जायगी। इनके इस कथनसे ही यह स्पष्ट हो जाता है कि अच्छी किस्मकी गायोंकी हत्या करनेसे ही चमड़ेकी किस्ममें भारत बाजी मार सकता है। यह तो सीधी-सी बात है कि स्वस्थ, कम आयुवाली गायका चमड़ा ही अधिक मुलायम होगा; न कि जर्जर एवं मरणासन्न गायका। उत्तम गायोंको मारकर ही तो विदेशी महाप्रभुओंको प्रसन्न किया जा सकेगा। मैं पूछता हूँ कि क्या प्राचीन भारत चमड़े और मांसके व्यापारके बिना जीवित नहीं था ? क्या प्राचीन भारतमें जूता पहिननेवाले लोग नहीं थे ? यदि इन अर्थशास्त्रियोंको आर्थिक संतुलनकी इतनी चिन्ता है तो ५८ वर्षके बाद सरकारी एवं गैरसरकारी कर्मचारियोंको पैंशन और प्रोवीडेण्ट फण्ड क्यों दिये जाते हैं ? रिटायर होनेके बाद क्यों उन्हें गोली नहीं मार दी जाती ? इनकी बुद्धिके दिवालियेपनका एक और उदाहरण है कि गायका सम्बन्ध माताके साथ जोड़ना मूर्खता है। मैं तो समझता हूँ कि ये वैज्ञानिक बेसमझीकी सीमाको भी पार कर गये हैं। इनके-जैसे बुद्धिमान् तो अपनी जन्मदात्री मातासे भी माताका सम्बन्ध नहीं जोड़ते। लगता है कि भारतीय ग्रन्थोंका इन्होंने कभी स्पर्शतक नहीं किया है। वेदों तथा ब्राह्मणोंमें तो नदियों और वनस्पतियोंकी भी देवताके समान स्तुति की गयी है तथा उनकी पूजा की जाती है। इसका कारण यही है कि जो वस्तु मानव-जीवनमें जितनी अधिक उपयोगी है, उसका उतना ही अधिक आदर किया जाता है। गौके बराबर उपकारक तो जन्म देनेवाली माता भी नहीं है; क्योंकि जन्म लेनेके बाद अभाग्यवश उसके मर जानेपर गौ ही अपना दूध पिलाकर जीवनदान देती है—इसीलिये गौको माता कहा है। इसी प्रकार पृथ्वीको भी माता कहा गया है। कलको आप कहेंगे कि पृथ्वीका भी सम्बन्ध माताके साथ जोड़ना मूर्खता है। तब तो आपके मतसे देशकी सीमाओंकी रक्षाके निमित्त जो अरबों रुपयोंका वार्षिक व्यय किया जाता है, वह भी निरर्थक सिद्ध होगा। इतने महत्त्वपूर्ण प्राणीकी हत्याके लिये आप एड़ीसे चोटीतकका जोर लगा रहे हैं और वृद्ध मनुष्य जो कि अधिकांश परिवारोंको तथा स्वयं उनकी संतानोंको प्रत्यक्ष रूपमें भारस्वरूप प्रतीत होते हैं, उनके विषयमें मौन क्यों साधे हैं ? तरस आता है आप-जैसे बुद्धिमानों-पर ! अब इस विवादको अधिक न बढ़ाकर मैं भगवती शारदा-से प्रार्थना करता हूँ कि वे इन बुद्धिमानोंको सुबुद्धि दें।

गोरक्षा कैसे करें

अब विचार यह करना है कि गोरक्षा कैसे करें ? वस्तुतः यह एक गम्भीर प्रश्न है; किंतु असम्भव नहीं है। गोरक्षा-के सम्बन्धमें गोभक्तोंका महान् दायित्व है। आजकी विषम खाद्य-समस्यामें स्वार्थी मनुष्य गोमाताको वृद्धावस्थामें तथा दूध न देनेपर दर-दरकी ठोकरें और डंडे खानेके लिये लावारिशकी भाँति छोड़ देते हैं। और तो क्या ! कोई धर्मात्मा श्रद्धावश गोदान करता है तो अभी गौ ब्राह्मणके पास पहुँच भी नहीं पाती, उसके पहले ही ब्राह्मण बेचनेके लिये उसका सौदा तय कर लेता है। ऐसी गौ भी कसाईखानेमें पहुँचती हो तो आश्चर्य नहीं और भी बहुतसे दोष हैं। आजकल कुछ लोग गोरक्षाके लिये आन्दोलन करनेवालोंपर आक्षेप करते सुने गये हैं। उनकी शिकायत है कि आन्दोलन और प्रदर्शन करनेमें जो लाखों रुपये व्यय किये जाते हैं, उनसे यदि गोशालाएँ खोल दी जातीं तो अधिक अच्छा होता। ऐसे महानुभावोंको मालूम होना चाहिये कि गोशालाएँ हमारे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देशमें इस समय भी बहुत-सी चल रही हैं। यह दूसरी बात है कि गोशालाओंके नामपर एकत्रित धनका पूरा सदुपयोग नहीं हो पाता। साथ ही कुछ आदर्श गोशालाएँ भी इस देशमें चलती हैं। प्रश्न यह है कि क्या दो-चार गोशालाएँ (भले ही वे आदर्श हों) खोल देनेसे गौओंका कटना बंद हो जायगा ? क्या इतनेमात्रसे देशके करोड़ों मनुष्योंको पर्याप्त मात्रामें दूध मिल जायगा ? यदि यह सम्भव होता तो ७ नवम्बर १९६६ को दिल्लीमें जाकर प्रदर्शन करनेकी आवश्यकता सम्भवतः न पड़ी होती और सरकारको गोलियाँ चलानी न पड़ी होतीं। दिल्लीमें जो अशोभनीय काण्ड हुआ, वह बड़े दुःखका विषय है। ऐसा नहीं होना चाहिये था। जो होना था सो हो गया। आगे बुद्धिमत्ता इसीमें है कि सरकार कानून बनाकर सारे भारतमें गोवंशकी हत्या पूर्णरूपसे बंद कर दे। पर मैं इनसे पूछता हूँ कि क्या कृष्ण और गाँधीके देशकी सरकार इतना बड़ा काम कर सकेगी कि वह गौ, भैंस आदि सभी पशुओंकी हत्या बंद कर दे, जब कि प्रत्यक्ष दीख रहा है कि गोहत्यापर रोक लगानेकी बातसे ही सरकारके प्राण कण्ठमें आ रहे हैं। यदि सरकार सभी पशुओंकी हत्या बंद कराना चाहे तो वह आज ही कानून बना दे। मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ कि इससे सरकारका भला ही होगा, बुरा नहीं होगा। इससे यदि सरकारको कुछ आर्थिक हानि भी होती हो तो वह अन्य उपायोंसे पूरी की जा सकती है। व्यावहारिक तौरपर मैं तो यही कहूँगा कि पहले गोहत्या तो बंद हो, जिसके दूधके लिये करोड़ों बालक, युवक और वृद्ध छटपटा रहे हैं।

उपयोगी सुझाव

गोरक्षाके लिये कानून बनाना तथा गोसेवाकी व्यवस्था करना—इन दोनों कार्योंको एक साथ ही आरम्भ करना होगा। इसके लिये कुछ सुझाव यहाँ प्रस्तुत हैं।

१—आज जो गोरक्षा-महाभियान-समिति अखिल भारतीय स्तरपर बनायी गयी है, उसे भंग न किया जाय। उसका नाम 'अखिल भारतीय गोसेवा समिति' रखा जाय। यह समिति जिस प्रकार वर्तमानमें आन्दोलनके लिये जनसम्पर्क स्थापित कर रही है, उसी प्रकार गो-सेवाके लिये भी कार्य करे। प्रादेशिक एवं जिलेके स्तरपर समितियोंका संघटन हो। यदि केवल सरकारसे कानून बनवाकर ही कर्तव्यकी समाप्ति मान ली जायगी तो गोसेवा उचित रूपमें कभी नहीं होगी तथा सरकारके भरोसे रहनेसे भी काम नहीं चलेगा।

२—व्यापारियों, उद्योगपतियों तथा धार्मिक संस्थाओंसे धनसंग्रह किया जाय और भूमि खरीदकर उपयोगी गोशालाएँ स्थापित की जायँ।

३—गोशालाओंके साथ कुछ भूमि अवश्य रक्खी जाय, जिसमें गौओंके लिये चारा उगाया जा सके। उस भूमिमें कुएँ खोदे जायँ और कुँओंमें ट्यूबवेल, रहट आदि लगाये जायँ। यदि इससे भी जलकी पूर्ति नहीं हो तो सरकारको छोटी-बड़ी नदियोंमें बाँध बनानेके लिये प्रेरित किया जाय। छोटे-छोटे बाँध बनाना तो कृषिके लिये भी बहुत आवश्यक है। कल-कारखानोंपर ही ध्यान देनेसे अन्नकी समस्या नहीं सुलझेगी।

४—आज जो लोग गोरक्षा महाअभियान-समितिका विभिन्न क्षेत्रोंमें नेतृत्व कर रहे हैं, वे लोग अपने-अपने क्षेत्रोंकी गोशालाओंका कड़ाईसे निरीक्षण किया करें तथा अव्यवस्थाओंको दूर करें।

५—कुछ विशाल गोशालाएँ स्थापित की जायँ, जिनमें संयोगवश उपेक्षित लँगड़े, अशक्त पशु भी रक्खे जा सकें। साथ ही उनकी चिकित्साकी भी व्यवस्था हो सके। अहमदाबाद नगरकी पिंजरापोल नामकी गोशाला इसी प्रकारकी आदर्श गोशाला है। छोटे-छोटे बाँध बनाकर नहरें निकालनेपर तो पशुओंकी उपेक्षाका प्रश्न ही नहीं उठेगा। इसके विपरीत खादके लिये उनकी सेवा ही होगी। बहुत अंशोंमें तो बूढ़े पशु अन्य पशुओंकी जूँठनसे ही जी जायँगे।

६—सभी धनीलोग तथा बड़ी-बड़ी धार्मिक संस्थाएँ स्वयं गौओंका पालन करें। इसका निरीक्षण भी गोसेवा-समितिको करना होगा।

७—गायोंकी नस्ल सुधारी जाय तथा विशेष दूध देनेवाली गायें और बलवान् साँड़ पैदा किये जायँ।

इतने कार्य यदि सभी गोभक्त मिलकर कर लें तो गोसेवासम्बन्धी बहुत-से प्रश्न हल हो जायँगे। तभी हमारी गोभक्ति सफल होगी। तभी गोमाताके प्राणोंकी रक्षाके साथ ही गोसंवर्धन भी होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदुषी बहू

(लेखक—चतुर्वेदी श्रीमदनमोहनजी 'मिश्र')

पति—क्योंजी ! यह क्या तमाशा है ? साढ़े नौ बज गये और अभीतक रोटी तैयार नहीं ?

पत्नी—तमाशा क्या है ? आज महरी आयी नहीं । बर्तन मँजें तब रोटी बने । खाना आज होटलमें खा लेंगे ।

पति—'खाना होटलमें खा लेंगे ।' ऐसे कह रही हो मानो होटलमें मेरी ससुराल है । महीनेमें १५ दिन खाना होटलमें खाया जायगा । तनख्वाह सब खानेमें ही चली जायगी; तब सब काम कैसे चलेंगे । बर्तन माँजनेसे हाथ नहीं घिस जाते । जरूरत पड़नेपर सब कुछ करना पड़ता है । मेमसाहब बननेसे कैसे काम चलेगा ? अब तुम बच्ची नहीं हो ! घर सँभालो, नहीं तो औंधे मुँह गिरोगी !

पत्नी—देखो जी ! रोज-रोज तुम मुझे ऐसे ही ताने मारा करते हो । सहनशक्तिकी भी कुछ हद होती है । तुम्हें ऐसी सेवा करानी थी तो किसी महरिन या महराजिनसे शादी करते । पढ़ी-लिखी अप-टू-डेट बीबी क्यों ब्याही ? किसी गरीबकी लड़की लाते, रायबहादुरकी लड़की क्यों लाये ? मेरे घरपर कहार और महराज, दो-दो नौकर सिर्फ खाना (बनाने) के लिये हैं । मैं रोटी बना लेती हूँ तो तुम मुझसे बर्तन भी रगड़वाना चाहते हो ? मुँह धो रक्खो ! मैंने बर्तन न रगड़े ! हा ! ब्याहसे पहले क्या-क्या अरमान थे ! सोचती थी सजा-सजाया बँगला रहनेको होगा । तीन-चार नौकर होंगे । मोटर सवारीको होगी ! रोज सिनेमा, पार्टी इत्यादि सैर-सपाटे होंगे ! लेकिन हाय रे तकदीर ! रहनेको छोटा-सा दो कमरेका—मकान । न नौकर न चाकर । सवारीको गधा भी नहीं ! बापके यहाँ थी तो हफ्तेमें चार-पाँच दिन सिनेमा देखने जाती थी । यहाँ महीनों बीत जाते हैं—न सिनेमा न थियेटर । न कहीं किसीसे मिलना न मिलाना । बाबू साहब पौने दस बजे दफ्तर जाते हैं, शामको छः बजे लौटते हैं । फूँ-फाँ करते हुए ! गधेकी लादीकी तरह फाइलोंका बोझ साथमें साइकिलपर आता है । वह तो कहो एक टूटी-सी साइकिल है जिसपर फाइलें लाद लाते हैं । नहीं तो, शायद सिरपर लादकर लाते । दिनभर दफ्तर, रातभर दफ्तर । अरे शामको दुनिया घूमने निकलती है । कैसे-कैसे सुन्दर कपड़े पहिने पति-पत्नियोंके जोड़े चुहल करते चले जाते हैं । यह सब देखकर मेरी तो छातीपर साँप लोट जाता है । जो गहने-कपड़े डैडीने शादीमें दिये थे, उनके अलावा तिरछा तिल देहपर नहीं ! नहीं, नहीं, अब यह सब सहन नहीं हो सकता ! ! ! मैं इस तरह तुम्हारे साथ नहीं रह सकती । मैं मायके चली जाऊँगी !

पति—अल्लाह ! इतना जहर भीतर-ही-भीतर घुल रहा है ? मायके क्यों जाओ ! तलाक दे दो ! अब तो हिंदुओंमें भी तलाक-प्रथा चल निकली है । फिर कहीं अपना मनमाना नया ब्याह रचाओ ।

(*पिताजी आते हैं*)

पिताजी—आज यह क्या हंगामा मचा हुआ है ! रोज तुमलोग झगड़ा किया करते हो । यह भले आदमियोंका पड़ोस है, कुँजड़ोंका मुहल्ला नहीं ।

बहू—मुझे मायके भेज दीजिये । सब झगड़ा समाप्त हो जायगा । मैं टहलनी नहीं कि बर्तन माँजूँ । मैंने बर्तन न माँजे ।

पुत्र—देखिये पिताजी ! आज महरी नहीं आयी तो भोजन नदारद ! आज माताजी जीवित होतीं तो मैं भूखा दफ्तर जाता ? हाय री तकदीर ! (चला जाता है)

पिताजी—बेटी ! मैंने तुम दोनोंकी बातें सुनी हैं । मुझे यह सब सुनकर दुःख भी हुआ और हँसी भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आती है । बेटी ! इस तरह घर सँभाल न सकोगी । तुम ठीक कहती हो कि तुम्हारे बापके यहाँ चार नौकर हैं । उनकी इतनी औकाद है वे खुद खा सकते हैं, चारको खिला सकते हैं । तुम्हारा पति निखट्टू तो है नहीं । महीनेमें ३००) (तीन सौ रुपये) लाता है । दिन-रात बेचारा काममें पिसा रहता है । बेटी ! तुम्हें उसपर दया नहीं आती ? ऐसे वाक्-बाण चलाओगी तो उसका हृदय चलनी हो जायगा । नतीजा क्या होगा । तुम्हारा प्रेम समाप्त हो जायगा । एक दूसरेसे नफरत करने लगोगे ।

बहू—इससे तो मैं नौकरी कर लूँगी । किसीकी धौंस नहीं सहूँगी । पिताजी ! मुझे आज रातको ही मेरे मायके भेज दीजिये । मैं इस घरमें पानी भी नहीं पिऊँगी; बस हद हो गयी ।

पिताजी—मायके जाना चाहती हो तो चली जाओ; लेकिन मैं क्या कहकर तुम्हें भेजूँगा । 'बहू मेरे घर रहना नहीं चाहती, इससे भेज रहा हूँ' । सोचो तो बेटी ! यह क्या अच्छा लगेगा ?

बहू—नहीं भेज सकते तो बाप-बेटे घरमें रहिये । मैं अकेली चली जाऊँगी । मैंने घरका रास्ता देखा है ।

पिताजी—शाबाश बेटी ! तुम बड़ी बहादुर हो । मायके बिना बुलाये क्यों न चली जाओगी ? लेकिन मैं तुम्हें इन बातोंका नतीजा समझा दूँ । तुम चाहे जितनी पढ़ी-लिखी तथा होशियार हो किंतु मेरे सामने बच्ची हो । मैं अपनी भरसक, बेटी ! तुम्हें गलत रास्तेपर नहीं चलने दूँगा । आज यदि लल्लूकी माँ होतीं तो क्या लल्लू भूखा दफ्तर चला जाता ? बेटी ! सच मानना, जब वह बीमार थीं तब कमजोरीके कारण उनसे चला-फिरा नहीं जाता था । लल्लू छोटा था । मैं हठ करता था कि रसोई मैं बना लूँगा । लेकिन मजाल थी कि मैं चूल्हा फूँक सकूँ ! जानती हो बेटी ! उन्होंने क्या उत्तर दिया था ?

'जबतक मेरे शरीरमें प्राण है और मैं अशक्त नहीं हो जाती, मैं आपसे रोटी बनवाकर अपनी माँकी कोख नहीं लजाऊँगी' और बेटी ! यही तुम्हारी सासने कर दिखाया । घिसट-घिसटकर रोटी बनायी, लेकिन जबतक तुम्हारी ननद नहीं आ गयी, उन्होंने मुझे रोटी नहीं बनाने दी । अब तुम्हीं सोचो, लल्लू भूखे दुखी होकर गया है तो क्या वह होटलमें खाना खायेगा ? वह एक लोटा पानी पीकर रह जायगा । चित्त दुखी होनेसे काम नहीं होगा । छोटी-छोटी बातों पर क्रोध आयेगा । कहीं किसी अफसर अथवा मातहतसे न झगड़ पड़े । इधर न मैं खाना खा सकूँगा और न बेटी ! तुम्हीं खा सकोगी । माना, तुम्हें अपने मायकेका रास्ता मालूम है और तुम आज रातकी गाड़ीसे ही मायके चली जाओगी; लेकिन यह मत समझना कि वहाँ तुम्हारा मान होगा ।

माँ-बापकी दुलारी लड़कीका घरपर जो अधिकार ब्याहके पहिले होता है, उसका आठवाँ हिस्सा भी विवाहके बाद नहीं रह जाता । बेटी ! जरा सोचो तो जब तुम अकेली अपने मायके पहुँचोगी तो तुम्हारे माता-पिता, भाई-भौजाई, बहिन तथा नौकर-चाकर सभी चौंकेंगे कि क्या कारण हुआ कि रानी बिटिया अकेली आयी । नौकर-चाकर तथा पास-पड़ोसी आपसमें फुसफुस करेंगे 'अरे, मालिकसे बनी नहीं होगी । आजकलकी पढ़ी-लिखी लड़कियोंके ढंग ही निराले हैं । गिलोय वैसे ही कड़वी, फिर नीम चढ़ी । रायसाहबकी लड़की और लाड़ली । और क्या चाहिये ?'

साथकी सखी-सहेली मुसकरायेंगी और कहेंगी 'क्या खटपट कर आयीं ?' तब बेटी ! क्या जवाब दोगी । ऐसी एक-एक बात तुम्हें तीरकी तरह लगेगी । अगर किसीसे कुछ कहा-सुनी हो गयी तो ताना मिलेगा 'ऐसी ही थीं तो मायके रोटी तोड़ने क्यों आयीं खसमसे लड़कर अब मायकेपर अधिकार जमाने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयी हैं।' बेटी ! रायबहादुर साहब अथवा तुम्हारी माँ चाहे कुछ न कहें, पर किस-किसका मुँह पकड़ लोगी। तब खयाल आयेगा कि यह बुड्ढा ठीक कहता था। पहले इसकी बातें जहर जरूर लगती थीं, किंतु बुड्ढा कहता ठीक था। और बेटी ! एक बात और है, एक बार क्रम बिगड़ जानेपर फिर आसानीसे नहीं सुधरता। एक बार तुम घरसे या ससुरालसे अकेली निकली फिर जैसे 'धनौंचीसे उतरा घड़ा फिर धनौंचीपर नहीं चढ़ता' उसी तरह ससुर और मालिकके मनसे उतर जाओगी। तुमने रामायणमें पढ़ा होगा कि सती पार्वतीको बिना बुलाये अपने पतिकी आज्ञाके प्रतिकूल मायके जानेपर कितना अपमान सहना पड़ा, जिसके पश्चात्तापमें उन्हें प्राणत्यागतक करना पड़ा। इसलिये बेटी ! कोई काम सहसा न कर बैठना जिसमें पीछे पछताना पड़े।

बहू—पिताजी ! आप ठीक कहते हैं। मायके जाना उचित नहीं। मैं अब कोई नौकरी कर लूँगी; किंतु ऐसे अपमानका जीवन नहीं व्यतीत करूँगी।

पिताजी—"शाबाश बेटी ! देखो, कितनी सरलतासे एक बात तुम्हारी समझमें आ गयी। यही फर्क जाहिल और विदुषीमें होता है। भगवान् न करे लट्ठ स्त्री किसीके पाले पड़े। पढ़े-लिखेकी समझमें जब बात आ जाती है तो वह कुन्दन हो जाता है। मुझे तुम्हारी समझपर गर्व है। अच्छा, अब देखो दूसरी बात लो। तुम बेटी ! ठीक कहती हो कि 'मैं नौकरी कर लूँगी और चैनसे रहूँगी।' अच्छा, अब नौकरीमें चैनकी व्याख्या सुनो। तुम हमलोगोंसे अलग होकर नौकरी करने जाओगी। नया घर बसाओगी। तुम बी० ए० पास हो—किसी स्कूलमें मास्टरी मिल गयी तो सवा सौ—डेढ़ सौ अधिककी नौकरी मिलनेसे रही। अब तुम बँगलेमें रहना चाहती हो, महरी-महाराज रखना चाहती हो तो बेटी ! समझ लो, आजकलके समयमें ५०) महीना तो इसी मकानका किराया देते हैं जो तुम्हें पसंद नहीं। नौकर अगर दो न रक्खे, एक भी रक्खा तो ५०) महीना नौकरको ही देना पड़ेगा। अब ईंधन, मसाला, नाज, पानीमें कम-से-कम १००) महीना खर्च होगा; फिर सिनेमा, पार्टी, सैर-सपाटे वेषभूषाके लिये, कपड़े-गहनोंके लिये कहाँसे लाओगी ? फिर सोचो, एकाकी जीवन क्या पसंद आयेगा ? फिर बेटी ! पिछला जीवन याद आयेगा। फिर इस बुड्ढेकी बातें याद आयेंगी।

बहू—पिताजी ! आप ठीक कहते हैं। मुझसे बड़ी गलती हुई। इस नयी रोशनीके जमानेमें नये रास्तेपर चलनेसे पग-पगपर ठोकरें लगेंगी। आप मुझे क्षमा करें, (पैर छूती है) आगे अपराध न होगा।

पिताजी—शाबाश बेटी ! शाबाश। मुझे तुमसे ऐसी ही आशा थी। इसी कारण मैं पढ़ी-लिखी बहू विवाहनेके पक्षमें था। मैं जानता था कि पढ़ी-लिखी स्त्रीको यदि एक बार सही रास्ता दिखा दिया जाय तो वह मोटरकी तरह दौड़ेगी। बेटी ! आज मेरा रोम-रोम आशीर्वाद दे रहा है 'दूधो नहाओ, पूतो फलो' (बहू, बर्तन माँजती है, झाड़ू लगाती है तथा खाना बनाती है, पतिदेव आते हैं। चुपचाप टाई, कोट उतारकर खूँटीपर रख देते हैं। पाजामा चप्पल पहनकर बाहरकी ओर चल देते हैं।)

पत्नी—अजी ! कहाँ चले ? दिनभर खाया-पिया नहीं, चलो खाना तैयार है। गरम-गरम खा लो।

पति—"अरे ! खाना तैयार है। क्या पिताजीने दूसरी महरी लगा दी ? तुम तो मायके जा रही थीं, बड़े बापकी बेटी हो न ?

पत्नी—(पैरोंपर गिरकर) क्षमा कीजिये नाथ ! मैं आजकलकी नयी रोशनीकी चकाचौंधसे भटक गयी थी। अब पिताजीने ठीक रास्ता दिखा दिया है। आगे गलती नहीं होगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पति–(स्त्रीको गलेसे लगाता है) आज मेरा जीवन धन्य हुआ।

पिताजी–तुम दोनों इसी तरह घुलो-मिलो। आज मेरा कुल पवित्र हुआ। आज मेरी वह सच्ची गृहलक्ष्मी मिली। मेरे सारे स्वप्न सत्य हुए।

पिताजी–चलो बेटा! भोजन करो। आज मेरी बहू रानीने वर्तन माँजे, झाड़ू लगाया, चौका लगाया है और सुन्दर सुस्वादु भोजन बनाया है। (पिता-पुत्र बैठकर भोजन करते हैं, बहू परोसती है।)

(पटाक्षेप)

धर्म और राष्ट्र

[प्रश्नोत्तर]

(लेखक—श्रीराजेन्द्रप्रसादजी जैन)

—हमें इस बातका गर्व है कि हमारा राष्ट्र 'धर्म-निरपेक्ष' है।

—राष्ट्रका अर्थ यदि जनता है तो यहाँका राष्ट्र 'धर्म-निरपेक्ष' नहीं है और राष्ट्रका अर्थ यदि शासकीय नीतिसे किया जाय तो वह भी रूसापेक्ष, चीनापेक्ष, अल्पसंख्यकापेक्ष, नवमतापेक्ष है; धर्म-निरपेक्ष नहीं है। सम्भवतः धर्मनिरपेक्षका अर्थ तुम अपनी भाषामें यही लेते हो।

—धर्म-निरपेक्षिताका अर्थ स्पष्ट नहीं हो सका। भारतमें जितने मुँह हैं उतने ही धर्म-निरपेक्षिताके अर्थ हैं। संविधान-को इसे स्पष्ट करना चाहिये था। आपकी यह बात मेरी समझमें आती है।

—संविधानके पश्चात् भी विधायक और शासक यदि चाहते तो इसे स्पष्ट कर सकते थे, परंतु उन्होंने ऐसा उचित नहीं समझा। धर्म-निरपेक्षिता राजनीतिक अवसरवादिताका एक और साधन बन गयी। यहाँतक कि चुनाव भी धर्म-निरपेक्षिताके नामपर हारे और जीते जाने लगे। धर्म-निरपेक्षिता यदि सत्य है तो उसका एक जीवन-दर्शन होना चाहिये। भारतीय धर्म-निरपेक्षिताके पीछे न तो कोई तत्त्व-चिन्तन है, न उसकी कोई रूप-रेखा है। धर्म-निरपेक्ष राष्ट्रमें किसी भी प्रत्याशयीका समर्थन इस आधारपर होना चाहिये कि वह कितना धर्म-निरपेक्ष है, न कि इस आधारपर कि उसका सम्बन्ध अल्पसंख्यकोंके धर्मसे है या बहुसंख्यकोंके। तुम स्वीकार करोगे कि धर्म-निरपेक्षिताका अर्थ शासनकी सत्ता अल्पसंख्यकोंको सौंप देना नहीं है। धर्म-निरपेक्षिताका अर्थ यह नहीं होना चाहिये कि बहुसंख्यक समुदायमें उत्पन्न होना एक अभिशाप और अल्पसंख्यकोंमें जन्म लेना एक वरदान है।

—नहीं होना चाहिये, स्वीकार करता हूँ। यदि अल्पसंख्यकों-के हाथमें ही शासन सौंप देना धर्म-निरपेक्षिता है तो फिर कहना पड़ेगा कि हरिहर बुक्क, हमीर, कुम्भ, साङ्गा, प्रताप, राजसिंह, शिवाजी, गुरु गोविन्दसिंह, रानी लक्ष्मीबाई, तिलक और गांधी व्यर्थ ही लड़े। ११९२ से १९४७ तक भारत-में कुछ अपवादोंको छोड़कर सदैव अल्पसंख्यकोंका राज रहा है। महात्मा गांधीने स्वयं कहा था कि 'हमें स्वराज्य उन १० प्रतिशतके लिये नहीं चाहिये, जिनके हाथमें आज भी सत्ता है, अपितु उन ९० प्रतिशतके लिये चाहिये जो आज पददलित हैं।'

—परंतु आज तो भारतमें धर्म-निरपेक्षिताके नामपर ९० प्रतिशत जनताके धर्म, आचार-विचार, सभ्यता और संस्कृतिको नष्ट करनेका प्रयत्न किया जा रहा है। अंग्रेजी-को अनन्तकाल तक बनाये रखना उसी १० प्रतिशतके शासनको बनाये रखनेका कुचक्र है, जिसे ब्रिटिश युगमें भी स्वराज्य प्राप्त था। क्या धर्म-निरपेक्षिताका यही अर्थ है कि भारतकी ९० प्रतिशत जनता सदैव घुटनका अनुभव करती रहे और उसके लिये समग्र विश्वमें एक भी कोना ऐसा न हो जहाँ बैठकर वह अपने विश्वास और अपनी आस्थाके अनुसार अपना जीवन-यापन कर सके?

—यह बात मैं स्वीकार कर चुका कि धर्म-निरपेक्षिता-का अर्थ हिंदू-धर्म और हिंदू-संस्कृतिका उन्मूलन नहीं होना चाहिये।

—और न उसका अर्थ भारतको उसके अतीतसे काट देना ही है। वेदोंके प्रथम उद्घोषसे लेकर गौ-सत्याग्रह तक हमारी एक अखण्ड सांस्कृतिक धारा है। हम उसे टूटने नहीं देंगे। आकाशरूपसे जिन्होंने देशको खण्डित करवाया है, वे विघटनकारी तत्त्व अब भी भारतमें सक्रिय हैं। वे उसे कालरूपसे भी खण्डित करना चाहते हैं। तुम स्वीकार करोगे कि स्वराज्यका अर्थ मुगल-राज्यकी स्थापना नहीं है। क्या हमने दिल्लीके सिंहासनपर अकबर और औरंगजेबको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिष्ठित करनेके लिये ही स्वराज्यकी लड़ाई लड़ी थी।

—स्वीकार करता हूँ।

—तो फिर ऐसा क्यों हो रहा है ? जिस भारतमें धर्म-निरपेक्षिताके नामपर गोहत्यापर प्रतिबन्ध नहीं लग सकता, उसमें जिहादके फतवोंको राज्यका समर्थन कैसे मिल रहा है ? जानते हो जिहाद एक हिंसात्मक प्रेरणा है, घोषणा है, इस्लामके नामपर संसारसे काफिरोंको मिटा देनेकी, जिसका समर्थन कर रहा है भारत—धर्म-निरपेक्ष, अहिंसावादी, अन्ताराष्ट्रीय मामलोंमें तटस्थ भारत जिसकी ९० प्रतिशत जनता काफिर है। धर्मनिरपेक्षिताकी साङ्गोपाङ्ग व्याख्या चाहिये। यह क्या कि जिन संस्थाओंके सदस्य मुसल्मान, ईसाई सब हैं और सब हो सकते हैं, उन्हें तो साम्प्रदायिक ठहराया जाय और जिस राजनीतिक संगठनके सदस्य केवल मुसलमान और मुसल्मानोंमें भी केवल सुन्नी मुसल्मान हो सकते हों वह राष्ट्रीय समझी जाय। जो संस्थाएँ मुसल्मानोंके भारतीयकरणमें लगी हैं, वे साम्प्रदायिक और जो उनके लिये पृथक् भाषा, पृथक् लिपिकी माँग रखकर उनमें अलगावकी मनोवृत्तिको प्रोत्साहन दे रही हैं वे राष्ट्रीय ! मैं पूछता हूँ जिन तत्त्वोंने भारतका विभाजन कराया था, क्या विभाजन होते ही वे दो राष्ट्रोंके सिद्धान्तको भूल गये ? भारत छोड़कर चले गये ? यदि नहीं तो उन्हें भारतीय बनानेका कौन-सा कार्य-क्रम शासनके पास है ?

यही कि हम स्वयं अभारतीय बनते जा रहे हैं। जब भारतका उसके अतीतसे सम्बन्ध टूट जायगा, जब यहाँके तीज-त्यौहार यहाँकी भाषा-वेष-भूषा, यहाँका खान-पान, आचार-विचार, यहाँकी सभ्यता-संस्कृति, यहाँकी मर्यादाएँ और आस्थाएँ नष्ट हो जायँगी तो सारा भारत स्वतः ही एक प्रकारका पाकिस्तान बन जायगा और तब वह पुराने पाकिस्तानसे मिलकर एक अखण्ड विशाल मुस्लिम राष्ट्रके रूपमें परिणत हो जायगा। भारतके विघटनकारी तत्त्व इसी ओर प्रयत्नशील हैं। क्या कारण है कि जो मुस्लिम विधायक तथा संस्थाएँ भारतमें धर्म-निरपेक्षिताके गुण गाते हैं वे पाकिस्तान, ईरान, तुर्क तथा अरबका नाम अते ही सारी धर्म-निरपेक्षिता भूल जाते हैं ? जब धर्मसापेक्ष देश उनकी दृष्टिमें पवित्र और पूजनीय हैं तो यदि भारत भी धर्मसापेक्ष हो तो उन्हें आपत्ति क्यों ? जो ईसाई भारतको धर्मनिरपेक्ष रखना चाहते हैं वे इंग्लैंड, फ्रांस और पुर्त्तगालको धर्म-निरपेक्ष बनानेके लिये क्या कर रहे हैं ? क्या सारी धर्म-निरपेक्षिता भारतके ही भाग्यमें बदी है ? धर्म और चरित्रका घनिष्ठ सम्बन्ध है। यदि भारत धर्मसापेक्ष हो गया तो फिर यहाँ चरित्रकी पूजा होने लगेगी जो हमारे अधिकांश राजनेताओंमें नहीं है, अधिकारियों तथा राजकर्मचारियोंमें नहीं है और तब समाजका नेतृत्व उनके हाथोंसे निकलकर चरित्रवान् व्यक्तियोंके हाथोंमें पहुँच जायगा, जिसे हमारे उद्योगपति और व्यवसायी भी नहीं चाहते। वे भी नहीं जो व्यक्तिगतरूपसे धार्मिक हैं। रीता फारिया और नरगिसके युगमें फिर सीता-सावित्रीकी पूजा होने लगेगी। फिर वर्ण और जातियाँ अपनी मर्यादामें आ जायँगे और उनके नामपर चुनाव जीतनेकी आशा धूलमें मिल जायगी। भारतमें भ्रष्टाचार और विघटनको पनपना है। अतः भारतको धर्मनिरपेक्ष ही रहने दो।

—तो क्या धर्मके बिना चरित्रका विकास नहीं हो सकता ? क्या धर्मके बिना संगठन नहीं हो सकता ?

—नहीं, तुम कहोगे कि बहुत-से व्यक्ति धार्मिक न होते हुए भी चरित्रवान् होते हैं; परंतु ऐसे व्यक्ति वे होते हैं जिनकी नाड़ियोंमें कई पीढ़ियोंका धार्मिक रक्त होता है, जिनके संस्कार धार्मिक परिवार एवं समाजमें रहनेसे धार्मिक बन जाते हैं, वैसे ही जैसे शिक्षित परिवारका बेपढ़ा-लिखा सदस्य भी बहुत शिष्ट और सुशिक्षित होता है अथवा सूखे चने चबानेवाले राजकुलोंके सदस्य भी सुन्दर और बलिष्ठ होते हैं। धर्म-निरपेक्ष वातावरणकी दो-चार पीढ़ियाँ बीत जानेपर उनका फल दृष्टिगोचर होता है। क्या तुम नहीं देखते कि अब हमारी हिंदू-जातिमें तिलक, गांधी, लाजपत राय, सुभाष, पटेल और जवाहरलालने जन्म लेना छोड़ दिया है ? क्या तुम नहीं जानते कि इतिहास-के कराल गालसे वे ही जातियाँ जीवित बची हैं जिनकी बुद्धिके ऊपर किसी ईश्वरीय स्वतः प्रमाण ग्रन्थका राज्य था—हिंदू, मुसल्मान, यहूदी, पारसी। और अपनी बुद्धिसे संसारको चकाचौंध करनेवाले रोम, मिश्र, यूनान सब मिट गये, केवल बुद्धिके सहारे न तो चरित्र ही ठहर पाता है और न संगठन। चरित्र और संगठन दोनोंके लिये आवश्यकता है निष्ठाकी, एक रागात्मक भावनाकी, जिसे बुद्धि देनेमें असमर्थ है। मैं यह नहीं कहता निष्ठा और राग बुद्धिविरोधी होने चाहिये। मेरा यह कहना है बुद्धिपर भी अंकुश लगने-की आवश्यकता है; क्योंकि बुद्धि प्रायः स्वार्थ अथवा अहं-की ओर जाती है। आज धर्महीन भारतकी बुद्धि अहंकी ओर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जा रही है। वह आत्मप्रवञ्चक और मनोराज्यका प्राणी बन गया है। पाकिस्तानको यह कहनेका अवसर मिलेगा, पाकिस्तानको वह कहनेका अवसर मिलेगा। संसारके सामने सिद्ध कर ेंगे। इसके आगे कोई आधार हमारे राजनीतिज्ञों-को नहीं मिल रहा है।

—यह तो तुम भी स्वीकार करोगे कि हमारे राजनीतिज्ञोंने धर्मनिरपेक्षिताका अर्थ धर्मद्रोह नहीं लिया है।

—जिसका ज्वलन्त उदाहरण हिंदूकोड है। अवश्य ही धर्मनिरपेक्षिताका अर्थ इस्लामद्रोह एवं ईसाई-धर्मद्रोह नहीं है; क्योंकि मुस्लिमकोड और ईसाईकोड नहीं बन सके हैं; परंतु हिंदू-धर्मद्रोह तो हो सकता है। यदि मुसल्मान और ईसाई-धर्ममें हस्तक्षेप नहीं हो सकता तो फिर हिंदूधर्ममें ही क्यों हस्तक्षेप होता है? क्या हिंदूकोड पारित करानेमें पं० नेहरूके त्यागपत्रकी धमकी काम नहीं कर रही थी? क्या हिंदूकोडको दलकी प्रतिष्ठाका प्रश्न नहीं बनाया गया? क्या कांग्रेसमें भी हिंदू-बहुमत हिंदूकोडके विरुद्ध नहीं था? क्या हिंदूकोडके पक्षमें अहिंदुओं और जाति-च्युत हिंदुओंने भी मतदान नहीं किया? क्या तलाकके समर्थनमें उन विधायकोंके भी मत नहीं पड़े जिनमें तलाक पहलेसे प्रचलित है? धर्मनिरपेक्षका अर्थ धर्मद्रोह नहीं होना चाहिये और साथ-ही-साथ उसका अर्थ धर्मके प्रति उदासीनता भी नहीं होना चाहिये। क्या तुम बतलाओगे कि ९० प्रतिशत जनताकी धार्मिक निष्ठाको दृढ़ करनेके लिये इन बीस वर्षोंमें राज्यने क्या किया? क्या तुम बतला सकते हो कि चीन और पाकिस्तानसे मोर्चा लेनेके लिये जिस मनोबलकी आवश्यकता है वह कौन देगा? और वह अबतक कहाँसे आया है? स्वराज्यकी लड़ाई लड़नेके लिये मनोबल कहाँसे आया था और मिस्टर जिन्नाकी योजना किसने विफल की थी?

—धार्मिक निष्ठाको दृढ़ करनेका काम धर्माचार्योंका है न कि राजनीतिज्ञोंका। हिंदुओंके धर्माचार्यों, साधु-संन्यासियों, महन्तों, पुरोहितों और पुजारियोंने अबतक हिंदूधर्मके लिये क्या किया? अकेले निजाम हैदराबादने उर्दूके लिये जो किया है उसका एक चौथाई भी सारे धर्माचार्योंने मिलकर संस्कृतके लिये नहीं किया।

—स्वीकार है। हमारा पुरोहितवर्ग आज निष्प्राण और निस्तेज हो रहा है तो क्या इसी कारणसे राज्यका धर्मके प्रति कोई कर्तव्य नहीं रहता? हमारे धर्म और संस्कृतिका उन्नयन हो, इसीलिये स्वतन्त्र राष्ट्रकी कल्पना की जाती है। कुरसी और अर्थ तो दासतामें भी प्राप्त होता है और यदि पद और अर्थ ही जीवनका लक्ष्य है तो बहुतोंको स्वतन्त्र होनेपर पद तथा अर्थकी स्पष्ट हानि होती है। शासक और शासित तथा धनी और निर्धनको एक सूत्रमें बाँधने-वाली रज्जु धर्म एवं संस्कृतिकी ही है, पद तथा अर्थकी नहीं। आज भारतमें शासक और शासितोंमें भावात्मक एकता नहीं, प्रदेश-प्रदेशमें भावात्मक एकता नहीं; क्योंकि हम संगठनका आधार राजनीति एवं अर्थको बनाते हैं और किसी सांस्कृतिक चेतना एवं धार्मिक भावनासे शून्य राजनीतिक एवं आर्थिक संगठन क्षणस्थायी होते हैं। उनमें बहुत शीघ्र विघटनकी क्रिया-प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है—

We build in vain unless the L[ord] build with us.

बिना धार्मिक निष्ठाके किसी भी प्रकारका नि[र्माण] असम्भव है।—इलियट

क्या हमारे विधायकोंने कोई ऐसी योजना बनायी है जिससे हमारे तीज-त्यौहार और पर्वोंमें अधिक उल्लास आ सके? क्या उन्होंने विधवाओंको ब्रह्मचर्यमें दृढ़ करनेके लिये कुछ किया? क्या उन्होंने जनताको ईश्वराभिमुख होनेके लिये कोई प्रेरणा दी? प्राचीन साहित्यके प्रकाशन, प्राचीन मन्दिरोंके जीर्णोद्धार, गोरक्षा, गोपालन, जनताको शुद्ध भोजन और पानी मिल सके इस सबकी क्या राजनीतिज्ञोंने कभी आवश्यकता समझी? यदि नहीं, तो समझ लो भारत राष्ट्रका आधार बहुत कच्चा है। इस्लाम अथवा कम्युनिज्मकी एक ही चपेटमें वह लड़खड़ाकर गिर पड़ सकता है। यदि राजनीतिज्ञोंके पास जनताकी भावात्मक एवं आध्यात्मिक प्यास बुझानेके साधन नहीं हैं तो उन्हें उन लोगोंके लिये स्थान छोड़ देना चाहिये जिनके पास हैं।

—मार्ग छुटा-छुटाया है। भारत जनतन्त्रवादी राष्ट्र है। वर्तमान विधायकोंको पछाड़कर स्वधर्म और स्वसंस्कृतिके उपासकोंके हाथमें सत्ता सौंप देनी चाहिये।

—तो फिर चलो। तुम और हम मिलकर घर-घर अलख जगा दें—

कोटि कोटि कंठ कल-कल निनाद करते।

करोड़ों कण्ठोंसे ललकार दें भारत एक स्वतन्त्र राष्ट्र है, एक हिंदू राष्ट्र है, एक आर्य राष्ट्र है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाकिस्तान, चीन, जापान, रूस, इंग्लैंड और अमेरिका-की जनताके सामने उत्तरदायी न होकर भारतके शासकोंको भारतकी जनताके सामने उत्तरदायी होना पड़ेगा।

कोटि कोटि कंठ कल-कल निनाद करले।

करोड़ों कण्ठोंसे ललकार दें भारत एक स्वतन्त्र राष्ट्र है, एक हिंदू राष्ट्र है, एक आर्य राष्ट्र है।

धर्म-निरपेक्षिताका अर्थ धर्मद्रोह तथा धर्मके प्रति उदासीनता नहीं है। धर्मनिरपेक्षिताके नामपर भारतकी ९० प्रतिशत जनताको उसके न्यायपूर्ण अधिकारोंसे वञ्चित नहीं किया जा सकता। धर्मनिरपेक्षिताकी आड़में हम भारतको इस्लामिस्तान अथवा कम्युनिस्टस्तान नहीं बनने देंगे। धर्म-निरपेक्षिताकी आड़में हम विघटनकारी तत्त्वों और जिहादी जनूनियोंको नहीं पनपने देंगे।

कोटि कोटि कंठ कल-कल निनाद करले।

करोड़ों कण्ठोंसे ललकार दें भारत एक स्वतन्त्र राष्ट्र है, एक हिंदू राष्ट्र है, एक आर्य राष्ट्र है।

धर्मनिरपेक्षिताका अर्थ केवल इतना ही है कि प्रत्येक व्यक्तिको अपने धर्मानुसार जीवन-यापनकी पूर्ण स्वतन्त्रता होगी, जबतक कि उसकी क्रियाएँ जनस्वास्थ्य, सदाचार, दूसरे धर्मोंके मौलिक अधिकार और राष्ट्रकी भावात्मक एकता-पर चोट नहीं करतीं। धर्मनिरपेक्षिताका अर्थ केवल सम्प्रदाय-निरपेक्ष है, संस्कृति-निरपेक्ष एवं राष्ट्र-निरपेक्ष नहीं। धर्मनिरपेक्षिताकी आड़में हम राजनीतिक अवसरवादिताको अपना खेल नहीं खेलने देंगे। हम विघटनकारी तत्त्वोंको सहन नहीं करेंगे।

मृत्युसे अमरत्वकी ओर

(लेखक—प्राध्यापक श्रीदिनकर राव साध, एम्० ए०)

आज जीवनकी इस अन्तिम यात्रामें अकस्मात् मायासे मेरी भेंट हो गयी। उसने मुझसे पूछा—

माया—अरे पथिक! तुम इतने शान्त, निर्विकार भावसे इस अनजानी, सुनसान राहपर किधर जा रहे हो?

पथिक—मैं उस जीवन-अमृतको प्राप्त करनेके लिये जा रहा हूँ, जिसे पा लेनेपर कभी कोई अतृप्त नहीं रहता—मानव-जीवन सार्थक हो जाता है।

माया—अरे भोले पथिक! यह जीवन-अमृत एक कल्पना है, एक भ्रान्ति है, मृग-मरीचिका है, यह वास्तविक जीवनसे पलायनकी प्रवृत्ति है।

जीवनका महान् सुख तो तुम्हारे पास है। तुमने इतने सम्पन्न, शिक्षित, सभ्य और सुहृद्, माता-पिता, भाई-बहिन और रिस्तेदारोंके बीच जन्म लिया। ये लोग सारा वैभव और स्नेह तुमपर लुटा रहे हैं। इस संसारमें ऐसे बिरले लोग होते हैं, जिन्हें इतना सुख प्राप्त होता है। तुम्हारा घर धन-धान्यसे परिपूर्ण है। तुम स्वयं शिक्षित हो। तुम्हारा स्वास्थ्य और रूप सुन्दर है। तुममें अनेक सांसारिक कार्य करनेकी प्रतिभा है। क्या तुम्हें इन सबमें सुख नहीं प्रतीत होता?

पथिक—नहीं, बिल्कुल नहीं।

माया—अरे नासमझ पथिक! यह जगत् कितना सुन्दर, सरस और वैभवयुक्त है। प्रकृतिकी छटा कितनी अद्भुत और मनमोहिनी है। नदियोंमें कल-कल करता हुआ जल निरन्तर बह रहा है। पर्वतोंके नीले शिखर सूर्यकी रोशनीमें जगमगा रहे हैं, वृक्ष हरे-भरे पत्तों और स्वादिष्ट फलोंके भारसे झुक गये हैं। नाना प्रकारके पक्षी स्वच्छन्द होकर आकाशमें विचरण कर रहे हैं। इस संध्याकी शान्तिमें दूर कोई बाँसुरी बजा रहा है। कल प्रातःकाल होनेपर सूर्य फिर सम्पूर्ण आभा लेकर निकलेगा और जन-जनमें जीवन बिखेर देगा। इन सबको देखकर भी तुम आशाहीन और निःस्पृह कैसे हो रहे हो?

आशा ही जीवन है और निराशा मृत्यु!

पथिक—माया! जगत्में सर्वत्र फैली हुई यह लीला वास्तवमें अद्भुत है, परंतु इसीमें मोह बनाये रखना और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसीको जीवनका यथार्थ तत्त्व मान लेना ठीक नहीं है। आशा ही जीवन नहीं है, वरं इससे बहुत कुछ अधिक है।

यह जीवनकी आशा, उस मृगकी तृष्णाके समान है, जबकि वह अपनी लम्बी यात्रापर होता है और उसे प्यास लगती है तब उसे मरुस्थलमें सूर्यकी रोशनीमें चमचमाती रेत, जलका सरोवर दिखायी देता है। उसे आभास होता है कि हरित भूमि भी कहीं आसपास है। उसकी यह जलतृष्णा उसे बार-बार तपती जलती बालूमें इधर-उधर दौड़ाती है। अन्तमें उसे प्राप्त होती है परेशानी, बेचैनी और मृत्यु !

इसी तरह निराशा ही मृत्यु नहीं है। जब जीवन-अमृतकी खोजसे मन भटक जाय तब हम उसे मृत्यु कह सकते हैं। परंतु सांसारिक पदार्थों और वैभवोंसे निःस्पृहता, किसी भी रूपमें मृत्यु नहीं है।

और फिर मुझे तो मृत्युका कोई भय नहीं है। यह भय उन लोगोंको है जिन्होंने जो कुछ इस जगत्‌में दिखायी देता है और प्राप्त है उसीको अपना स्वरूप या अपनी सत्ता बना लिया है। उन्होंने इन सांसारिक वस्तुओंको—जैसे शरीर मैं, नाम मैं, मेरा घर, मेरा परिवार, मेरी सम्पत्ति और मेरी प्रतिष्ठा इत्यादि, केवल मात्र इन्हींको ही अपना अस्तित्व और जीवन मान रक्खा है। वे इससे अलग होना नहीं चाहते। उन्हें अवश्य ही यह डर बना रहता है कि मृत्यु उनसे यह सब छीन लेगी।

माया—परंतु पथिक ! इस समाजमें ऐसे कितने लोग हैं जो तुम्हारे इन विचारोंसे सहमत हैं। तुम इस समाजके अविच्छिन्न बन्धनमें हो। तुम्हें यह उक्ति याद होगी 'मनुष्य स्वतन्त्र जन्म लेता है पर वह सर्वत्र बन्धनोंमें है।'

पथिक—माया ! इतना समझो कि समाजके जो लोग मुझे अपनी मान्यताओं और विश्वासोंमें बाँधनेको इतने तैयार हैं, इनमेंसे ऐसे कितने लोग हैं जो दिव्य जीवन या जीवन-अमृतकी प्राप्तिके हेतु मेरे साथ मृत्युका वरण करनेको तैयार हैं ? फिर भी मुझे समाजसे कोई शिकायत नहीं है; क्योंकि समाज भी तो मेरा ही प्रतिबिम्ब है। समाज मेरे मार्गमें कहीं भी बाधक नहीं है। समाजकी अपेक्षा मैं अपने स्वयंके मनोराज्यसे अधिक हूँ।

चित्तकी निर्दोष स्थिति ही उसे प्राप्त करनेका उपाय साधन है। जब मन शान्त हो, निर्विकार और विचारशून्य हो, परंतु साथमें जाग्रत् हो ऐसी अवस्थामें उस दिव्य जीवन या अमृतत्वकी प्राप्ति होती है।

मैं इस सुनसान राहपर निश्चल, शान्त, निर्विकार और विचारशून्य चित्तसे उसी दिव्य ज्योतिकी प्रतीक्षामें खड़ा हूँ।

सुनो, उस दिव्य संगीतकी ध्वनि अब स्पष्ट सुनायी दे रही है, उस ज्योतिका प्रकाश अब मेरे समीप आता जा रहा है और माया ! तुम्हारा क्षणिक अस्तित्व विलीन होता जा रहा है।

सच ही तो है, जगत् माया ! तुम्हारी लीला उस प्रकाशमान, अनादि, परमब्रह्म परमात्माके सामने कैसे टिक सकती है, जिसके वशमें तीनों काल एवं तीनों लोक हैं।

यह ज्योतिका अंश अब दिव्य ज्योतिमें मिलने जा रहा है। प्रणाम।

असतो मा सद्गमय
तमसो मा ज्योतिर्गमय।
मृत्योर्माऽमृतं गमय॥

हे परमपिता ! मुझे असत्यसे सत्यकी ओर ले चलो, अन्धकारसे प्रकाशकी ओर ले चलो और मृत्युसे अमरत्वकी ओर ले चलो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या हम सचमुच जी रहे हैं ?

(लेखक—श्री बी० एल्० 'अरविन्द' एम्० ए०)

'जब मनुष्यके सदाचारपर दुराचार, मानवतापर दानवता, आध्यात्मिकतापर भौतिकता, आस्थापर अनास्था और नैतिकतापर अनैतिकता पूर्ण रूपसे छा जाते हैं, तो हमें यह मानना ही पड़ेगा कि संस्कृतिके शाश्वत जीवनने आत्महत्या कर ली है।'

विश्वकी जनसंख्यामें जिस अबाध गतिसे निरन्तर वृद्धि हो रही है, उससे भी अधिक गतिसे मनुष्यसे मनुष्यताका लोप होता जा रहा है। कहनेको तो हम आस्थाके युगमें जी रहे हैं, लेकिन इन कुछ वर्षोंमें हमारे माननीय मूल्यों और नैतिक आदर्शोंका जिस क्रमसे ह्रास हुआ है, वह वास्तवमें एक ऐसा प्रश्नवाचक संकेत है, जिसका हल ढूँढ़ना आजके प्रत्येक बुद्धिजीवी-के लिये नितान्त आवश्यक है।

आज हम जिस अस्थिरता, अनिश्चितता, आशंका, संदेह, भय, निराशा, कटुता और हिंसा-प्रतिहिंसाकी वृत्तिके बीच जी रहे हैं, उससे कभी-कभी हमें अपने अस्तित्वपर भी संदेह होने लगता है और कभी-कभी हम अपने-आपसे यह सवाल कर बैठते हैं, 'क्या हम सचमुच जी रहे हैं ?'

जीवनका अर्थ केवलमात्र मांस-पिण्डके हिलने, साँस चलने अथवा हाथ-पैर हिलानेतक ही सीमित रखना जीवनके शाश्वत स्वरूपकी हत्या करना होगा, विशेषकर भारतीय संस्कृतिमें जीवन हमारे सनातन आदर्शों, आध्यात्मिक उपलब्धियों और सम्पूर्ण आन्तरिक विकास-का प्रतीक रहा है। शरीर नाशवान् है, किंतु जीवन नहीं। जीवन तो आत्माका ही पर्याय है। आत्माकी तरह ही जीवन प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूपसे सर्वत्र प्रतिबिम्बित है।

जीवन एक प्रेरणा है, जो हमें अज्ञातकी ओर ले जाती है। जीवन वह मार्ग है, जिसपर चलकर हम अपने मानवीय लक्ष्योंको पूरा करते हैं और जीवन वह पूर्णता है, जिसे पाकर हम उस अखिलेशको जान सकते हैं।

इसलिये वास्तवमें जीनेका अधिकार उसीको है, जो उपर्युक्त जीवन जीता है। खाने-पीने, विलास और ऐश्वर्यके लिये जीवन धारण करना न तो जीवनका सच्चा स्वरूप ही है और न ऐसे व्यक्तियोंको हम दार्शनिक अर्थमें जीवित होनेकी संज्ञा ही दे सकते हैं।

आज समस्त विश्वकी जो तनावपूर्ण और गिरी हुई स्थिति है, उसे केवल 'दुर्भाग्यपूर्ण अवस्था' ही कहा जा सकता है। वियतनामका भीषण संघर्ष, अरब-इसरायल-संघर्ष, भारत-पाकके बिगड़ते सम्बन्ध, चीनकी विस्तारवादी नीति, अमेरिकाकी साम्राज्यवादी भावना आदि-आदि कई ऐसी विनाशकारी शक्तियाँ आज इतनी सक्रिय हैं कि किसी भी क्षण समूची मानवता भयंकर विनाशकी लपेटोंका शिकार बन सकती है। शान्तिके प्रस्ताव, सन्धियाँ-समझौते और 'डेलीगेशन्स' व्यर्थ और नाकाम सिद्ध हो चुके हैं। विज्ञानके नामपर हम अपनेको सभ्य और सुखी भले ही कह लें, लेकिन मैं तो यही समझता हूँ कि इस वैज्ञानिक जगत्में हम इतने गिर गये हैं कि अपने मानवीय कर्त्तव्यों और जीवनके सच्चे उद्देश्योंको ही हमने भुला दिया है। हमारे युगके विश्वप्रसिद्ध चिन्तक डा० राधाकृष्णन्ने इस प्रकारकी विध्वंसकारी प्रवृत्तियोंको 'दुर्भाग्यपूर्ण' और 'मानवताकी भावनाके लिये अपमानजनक' बताया है। इसी प्रकार महान् विचारक श्रीबर्ट्रेंड रसलने भी हमें चेतावनी देते हुए कहा है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'We have reached the point, where we are sure to destroy.'

'हम उस बिन्दुपर पहुँच गये हैं, जहाँ हमारा ध्वंस निश्चित है।'

यह सब क्यों ? क्योंकि पर्याप्त और समुचित स्वस्थ वातावरण और ज्ञानके अभावमें हमारी अन्तःस्मृति मर-सी गयी है। मानवकी अविवेकयुक्त भौतिक महत्त्वाकाङ्क्षाएँ उभर चली हैं। उसका दृष्टिबिन्दु इतना संकीर्ण हो चला है कि उसे सिवा अपने हित और भौतिक सुखके कुछ नहीं सूझता। इसी आसुरी महत्त्वाकाङ्क्षाने उसे भ्रष्टाचार, धूर्तता, छल, कपट, धोखा और युद्ध-जैसे सभी भयंकर अस्त्रोंका प्रयोग सिखा दिया है। उसमें अहंभाव प्रबल हो चला है, वह ताकत और तलवारसे, हिंसासे और दबावसे दूसरोंपर हावी होनेकी कुचेष्टा करता है। आजकी राजनीतिक विषमता और विश्वके तनावपूर्ण सम्बन्ध उसीके दुष्परिणाम हैं।

लेकिन हमारी संस्कृतिने हमें निराशावादी होना नहीं सिखाया। हम आशावादी हैं और यह मानते हैं कि इस अन्धकारमें प्रकाशकी किरण लाना कठिन भले ही हो, असम्भव नहीं है। हम हमारे विवेकपूर्ण संयुक्त सात्त्विक प्रयासोंसे अभी भी आहत मानवताको जिला सकते हैं।

किंतु इसके लिये हमें अपना स्वरूप ही बदलना होगा। इसके लिये हमें फिरसे उस अमर मन्त्रका उच्चारण करना होगा, जो हमें उस 'महान् सत्य'की ओर ले जानेका संकेत करता है।

असतो मा सद् गमय,
तमसो मा ज्योतिर्गमय,
मृत्योर्मामृतं गमय।

दूर-दूर तक दृष्टि फैलाने और बाहरी दुनियामें सुख-शान्ति पानेका असफल प्रयास छोड़कर हमें हमारी आत्मामें झाँकने, उसके स्वरूपोंको जाननेका यत्न करना चाहिये। आत्मज्ञान सर्वोपरि है। सारे सुख-शान्ति, ज्ञानकी जननी आत्मा ही है, हमारा परमहित उसीमें तो रहता है, देखिये:—

ज्योतिरात्मनि नान्यत्र समं तत्सर्वजन्तुषु।
स्वयं च शक्यते द्रष्टुं सुसमाहितचेतसा॥

अर्थात् उसकी (परमात्माकी) ज्योति आत्मामें ही निवास करती है, अन्यत्र नहीं—यह सभी प्राणियोंमें समान रूपसे प्रकाशित है जिसे मनकी शान्तिद्वारा स्वयं देखा जा सकता है।

आत्माकी शान्ति परम मङ्गलकारी और कल्याणकारी होती है, जिसे प्राप्त करनेवाले बड़े-बड़े संत-महात्मा अपने साथ-साथ दूसरोंको भी संसारसागरसे पार उतार देते हैं।

इस प्रकार आत्मज्ञान और जीवनकी शान्तिके लिये हमें अपने जीवनका दृष्टिकोण ही बदलना होगा। हमें अपने लिये नहीं, दूसरोंके लिये जीना होगा। दूसरोंको नहीं, अपनेको पहचानना होगा, दूसरे सबमें अपनी आत्माको ही देखना होगा, शरीरको नहीं। आत्माको पढ़ना होगा और उस आत्माकी गहराईमें उतरकर हमें उसमेंसे प्राप्त होनेवाले ज्ञान-मोतियोंको ऊपर लाना होगा, ताकि उनके प्रकाशसे हम सभीको प्रकाशित कर सकें। इससे मनुष्यकी कुप्रवृत्तियाँ अपने-आप उसी प्रकार अदृश्य हो जायँगी, जिस प्रकार सूर्योदय होनेपर अन्धकार स्वतः ही न जाने कहाँ विलीन हो जाता है। एक ऐसा प्रकाश हमें मिल सकेगा, जो हमें अमर प्रेमकी ओर अग्रसर करेगा। त्यागसे प्रेम, प्रेमसे सेवा, सेवासे आत्मीयता, आत्मीयतासे आनन्द, आनन्दसे ज्ञान और ज्ञानसे विशुद्धज्ञान—परम कल्याण या ईश्वरका प्रत्यक्ष। इसी अवस्थामें हम समस्त विश्वमें हमारी आत्माको और हमारी आत्मामें सम्पूर्ण विश्वको देख सकेंगे—यही हमारे जीवनकी पूर्णता होगी, यहीं हम मुक्त हो सकेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गीतामें भगवान् कहते हैं—

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ॥
(६ । २९)

'सर्वत्र आत्माके साथ एकताको प्राप्त पुरुष अपनेको सब प्राणियोंमें और सब प्राणियोंको अपनेमें देखता है ।' मनुस्मृतिमें सच्चे स्वराज्यकी प्राप्तिके लिये कहा गया है—

सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।
समं पश्यन्नात्मयाजी स्वराज्यमधिगच्छति ॥

अर्थात् जो सर्वस्व त्यागकर सबमें अपनेको और अपनेमें सबको देखता है, वह स्वराज्य प्राप्त करता है ।

हमें यही गुरुमन्त्र सीखना है कि कभी आत्माके प्रतिकूल आचरण नहीं करें, किसी भी प्राणीका कभी अहित न करें । सद्भावना, विश्वास और प्रेमका वातावरण व्याप्त करें । प्रेमसे बढ़कर कोई मूल्यवान् वस्तु नहीं है । प्रेमका आधार है—त्याग । हम अन्य सबके लिये त्याग करें । प्रेमके द्वारा, विश्व-प्रेमके द्वारा, ईश्वरको पाया जा सकता है—

अंग्रेजी कवि S. T. Coleridge ने कहा है—

He prayeth best who Loveth best.

(वही श्रेष्ठ भक्ति करता है, जो श्रेष्ठ प्रेम करना जानता है ।)

अन्तमें, यद्यपि वर्तमान वातावरण अत्यन्त भौतिकवादी और विध्वंसात्मक हो चला है, किंतु फिर भी मैं नहीं मानता कि हमारा भविष्य अन्धकार-मय है । ईश्वर जो हमारा पिता है, संरक्षक है, गुरु है, मित्र है, पथप्रदर्शक और सर्वस्व तथा सबका आत्मा है, उससे हम प्रार्थना करें और उसकी छायामें अपनेको, सभीको बदलनेका संकल्प लें, तो सभी कुछ सम्भव है ।

हमारा विश्वास हो कि—

'The one God hidden in all things,
All-pervading, the Inner Soul of all things,
The overseer of deeds, in all things abiding,
The witness, the sole thinker, devoid of all qualities,
The one Controller of the inactive many,
Who makes the one seed manifold—
The wise who perceive Him as standing in one's self,
They, and no others, have eternal happiness.'

एक ही परमात्मा सभी भूतोंमें छिपे हुए हैं; वे सर्वव्यापी हैं, समस्त भूतोंके अन्तरात्मा हैं । वे सबके कर्मोंका निरीक्षण करते हैं, सभी भूतोंमें निवास करते हैं; वे साक्षी (सर्वद्रष्टा) हैं, परम चेतनस्वरूप—सबको चेतना देनेवाले हैं और प्राकृतिक गुणोंसे रहित हैं । वे बहुत-से निष्क्रिय तत्त्वोंका नियमन करनेवाले हैं । वे एक ही प्रकृतिरूप बीजको अनेक रूपोंमें परिणत कर देते हैं । जो बुद्धिमान् पुरुष उन्हें अपने आत्मामें नित्य स्थित देखते हैं, वे ही शाश्वत परम सुखको प्राप्त होते हैं, दूसरे नहीं ।*

---

* यह श्वेताश्वतर उपनिषद्के निम्नलिखित (६ । ११-१२) मन्त्रोंका ही भाषान्तर है—
एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा । कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ॥
एको वशी निष्क्रियाणां बहूनामेकं बीजं बहुधा यः करोति । तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़ो, समझो और करो

(१)

असम्भव सम्भव

बन्धुओ ! अधिकारियोंका एक दल एक ऐसे स्थानका सर्वेक्षण करनेके लिये निकला था, जहाँ नदीकी उपद्रवी धाराको नियन्त्रित करनेके लिये एक बाँध बनानेकी योजना थी। संध्याके समय वे लौटकर नदीके तटपर आये, जिससे कि वे नदी पार करके अपने केन्द्रीय कार्यालयपर पहुँच सकें।

तटपर नाव थी और मल्लाह भी था। वहाँ एक दल पहलेसे ही उपस्थित था, जो पार उतार देनेके लिये मल्लाहसे आग्रह कर रहा था, परंतु मल्लाह नदीकी बाढ़की ओर इशारा करके अपनी असमर्थता-सी प्रकट कर रहा था। ज्यों ही उन लोगोंने अधिकारियोंको देखा, उनमेंसे एक आगे आकर बोला—'साहब ! हमलोगोंको किसी प्रकार नदी-पार होना ही चाहिये जिससे कि हम नवाब साहबके जन्म-दिवसके उत्सव-पर ठीक समयसे पहुँच सकें। और उन्होंने विशाल राज्यके नवाब साहबका नाम बतलाया। (यह प्रसङ्ग उस समयका है जब भारतपर विदेशी सत्ताका शासन था।)

मल्लाहने अधिकारियोंको देखा और वह हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। तभी झोपड़ीके अंदरसे एक नर्तकी युवती आकर्षक मुसकान बिखेरती हुई बाहर निकली और एक अधिकारीके प्रति, जिसके मनकी दुर्बलताको उसकी आँखोंने पहचान लिया था, कहने लगी—'साहब ! आज रात्रिमें मेरा नृत्य होगा। यह हमलोगोंकी आजीविकाका सवाल है। क्या आप हमारा इतना-सा काम नहीं बनवा देंगे ?' उस अधिकारीने मुसकानसे उसका अनुमोदन किया और मल्लाहको नाव खेनेके लिये आदेश दिया।

सभी नावमें बैठ गये। नाव काफी बड़ी थी। मल्लाहने पतवार हाथमें ली और खेना आरम्भ कर दिया।

किसीने पूछा—

'दूसरा मल्लाह कहाँ है ?'

'साहब ! गयी साल एक डूबते हुए आदमीको बचानेमें उसकी जान चली गयी।'

'तुम किसी दूसरेको मजदूरीपर क्यों नहीं रख लेते ? बहुत-से ऐसे मिल जायँगे जो प्रसन्नतासे मजदूरी करना चाहेंगे।' उस युवतीने कहा।

'मेम साहब ! मेरे पास पैसा नहीं है। जिसकी जान चली गयी, वह तो मेरा लड़का ही था।'

बूढ़े मल्लाहके जीवनकी इस दुःखद घटनाको सुनकर वह युवती करुणासे सिहर गयी और करुणापूर्ण शब्दोंमें उसने कहा—'यह जानकर मुझे बड़ा दुःख हो रहा है, भगवान् उसकी आत्माको शान्ति दें।'

नाव बीच धारामें आ गयी थी। नदीकी धाराका वेग बड़ा ही तीव्र था। मल्लाह अपने वृद्ध और अनुभवी हाथोंसे पूरी शक्ति लगाकर नाव खे रहा था। अकस्मात् उसका एक डाँड़ किसी चीजमें फँस गया। नदीमें जोरदार बाढ़ आ रही थी और शायद बाढ़से उखड़ा हुआ यह कोई वृक्ष था जो धारामें बहता हुआ आ रहा था। उस वृक्षमें फँसते ही डाँड़ टूट गया और मल्लाहके हाथमें उसका एक हिस्सा मात्र रह गया।

नावको एक जोरका झटका लगा। झटका लगते ही उस अधिकारीका, जो दूसरे डाँड़के साथ चुलबुली करके युवती नर्तकीका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करना चाहता था, संतुलन बिगड़ गया और वह नावमें गिर पड़ा। दूसरे लोग उस अधिकारीको उठानेके लिये दौड़े किंतु साथ ही वह डाँड़, जो उनके हाथसे फिसलकर धारामें गिर गया था, धाराका तीव्र वेग उसको बहा ले गया।

एक डाँड़ टूट गया और एक बह गया। मल्लाह पूर्णतः निराश हो गया। पर तुरंत ही उसने हिम्मत बाँधी और कालके गालमें जाती हुई नावको बचानेके लिये बाँसके डाँड़को हाथमें उठाया। नावके इस सिरेसे उस सिरेतक उसने कई बार चक्कर लगाये, पर नदीमें भयंकर बाढ़ थी, जगह-जगह भँवर थे, अतः उस बाँसके डंडेसे क्या होना-जाना था ? फिर भी उसने चेष्टा की.....।

तभी एक व्यक्ति नावमें खड़ा हो गया और खड़े होते ही नाव डगमगाने लगी। दूसरे लोग उसपर हल्ला मचाने लगे। तब उस बूढ़े मल्लाहने ठंडे मनसे कहा—'जो जहाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं, वहीं पर बैठ जायँ। हर-एक व्यक्तिको भगवान्से प्रार्थना करनी चाहिये। भगवान् महान् हैं।'

ज्यों ही उसने ऐसा कहा, अस्तोन्मुख सूर्यकी अन्तिम किरणोंमें उस बूढ़े मल्लाहकी सफेद दाढ़ी एक क्षणके लिये चमक उठी। जहाँपर वह था, वहींपर वह एक क्षणके लिये खड़ा हो गया और ऊपरकी ओर देखा······दूसरे ही क्षण बाँसका वह डंडा भी बह गया।

नावमें बैठे हुए लोगोंके बीच आतंक छा गया। नदीके वेगमें नाव इस प्रकार बही जा रही थी, मानो धारापर चिड़ियाका कोई पंख हो। उस मल्लाहने फिर पहले डाँड़का टूटा हुआ हिस्सा उठाया और कहा—'भगवान्ने कई बार मुझे नदीमें मौतके मुँहसे बचाया है पर आज तो हालत कुछ और ही है। ऐसा लगता है—भगवान् प्रेरणा कर रहे हैं कि हमलोग अपने पापोंके लिये क्षमा-याचना करें।'

अचानक एक चीख सुनायी दी। भग्नहृदय फूट-फूटकर रो रहा था। गहरी साँस लेते हुए उस बूढ़े मल्लाहने कहा—'हमलोग प्रपातके पास आते जा रहे हैं। आगे बहुत बड़ा जल-प्रपात है। शीघ्र ही नाव प्रपातमें गिरकर ध्वस्त हो जायगी।······भगवान् हमें हमारे पापोंके लिये क्षमा-प्रदान करें।' तुरंत एक करुण रुदन और सुनायी दिया और वह युवती बिलखते हुए कहने लगी—'हे नाथ! मेरे जघन्य पापोंका फल ये निरपराध लोग भला क्यों भोगें?'

अन्धकार बढ़ता चला जा रहा था और मृत्युकी भयंकर विभीषिका भी बढ़ती चली आ रही थी। एक व्यक्तिने कहा—'बेटी! घुटने टेककर भगवान्से प्रार्थना कर। क्षमा-याचनामें देर-अबेरका प्रश्न ही नहीं।'

भयातंकित उस बूढ़े मल्लाहने सबको सावधान कर ही दिया था। वह प्रपात, आ गया वह जल-प्रपात,······नाव जा गिरी उस भीषण प्रपातमें, घोर गर्जना करते हुए प्रपातकी भयावह धाराने नावको आत्मसात् कर लिया और सब लोग·····।

उस दलका एक व्यक्ति, जिसने इस घटनाका वर्णन सुनाया था, आजतक आश्चर्य-चकित है कि नाव, मल्लाह और सभी यात्री उस अवश्यम्भावी विनाशसे कैसे बच गये। घटनाको याद करके उसने बताया कि—'उस समय उसकी आँखोंके चारों ओर अँधेरा छा गया था। चारों ओर विस्मृतिका अन्धकार था। और फिर इतनी ही स्मृति है कि नाव तटके समीप सुरक्षित खड़ी है और घुटनेभर पानीमें खड़ा हुआ मल्लाह नावको पकड़े हुए है।'

एक बात और उसे याद थी, जिसे जीवनके अन्तिम क्षणतक भी भुला सकना उसके लिये सम्भव नहीं······विस्मृतिका अन्धकार छानेके पूर्वका एक दृश्य अच्छी तरह याद है कि वह नर्तकी युवती प्रार्थना कर रही थी। उसके कपोलोंपर आँसुओंकी धारा बह रही थी, उसके अधर धीरे-धीरे हिल रहे थे और अपनी सुबकियोंको रोकनेके प्रयासमें संलग्न सम्भवतः वह प्रभुसे कुछ निवेदन कर रही थी।

और जब वह नाव तटसे लगी, तब भी केवल वही प्रसन्न-मुद्रामें अपनी प्रार्थनामें लीन थी, बाकी सर्वत्र अस्त-व्यस्तता थी।

प्रफुल्ल प्रशान्तिसे उसका चेहरा दमक रहा था और वह प्रफुल्ल प्रशान्ति अमिट आशाका एक संदेश दे रही थी कि 'वे' किसी प्रकार भी अवाञ्छनीय मृत्युसे ग्रस्त नहीं होने देंगे।

—रामेश्वरनाथ योगी

(२)

जबानकी कीमत

मेरे पिताजीके देहावसानके बाद मैं अपने पिताजीके मालिकके यहाँ ही रहता था। ये भले महान् परोपकारी मालिक मेरे पिताकी तरह ही देख-भाल रखते। इतना ही नहीं, वर्षोंसे मैं इनके मकानमें रहता हुआ अपना अलग काम-धंधा करता चला आ रहा था, तथापि इन्होंने कभी मुझसे मकानका भाड़ा नहीं लिया। जब वह मकान बेचा गया, तब खरीदनेवाली पार्टीके साथ केवल जबानी बात करके एक लाख बीस हजार रुपये कीमत तै की गयी। इसके लिये न कोई बयाना लिया गया था, न किसी प्रकार-की लिखा-पढ़ी ही हुई थी।

इस मकानमें मेरे सिवा दूसरा कोई रहता ही नहीं था, इससे मकानके बाबत पूछ-ताछ करनेवाले दूसरे लोग मेरे पास ही आया करते थे। एक पार्टीको यह मकान बहुत ही पसंद आया; क्योंकि समुद्रके समीप होनेके कारण इसका प्राकृतिक सौन्दर्य बड़ा आकर्षक था। उस पार्टीके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वारा पूछे जानेपर मैंने बताया कि 'इसका एक लाख बीस हजारमें सौदा हो गया है।' तब उस पार्टीने कहा कि 'चाहे जैसे भी हो, यह मकान मुझे दिलवा दीजिये, मैं दो लाख रुपये दूँगा।' मैंने कहा—'सेठ तो दिल्ली हैं, मैं पत्र लिखकर पूछूँगा।' यह सुनकर वे चले गये।

मुझे यह तो विश्वास था कि सेठजी अपना विचार कभी नहीं बदलेंगे, तथापि अस्सी हजार रुपये अधिक मिल रहे थे, इससे मैंने दिल्ली पत्र लिख दिया। पत्रका कोई उत्तर नहीं मिला। जब सेठजी बंबई आये, तब मैंने उनसे बात की। उन्होंने कहा—'अपने मकान खरीदनेवाली पार्टीको जबान दी हुई है, अब उसे इन्कार कैसे किया जाय?' मैंने कहा—'तीन-चार महीने पहले केवल जबानी बात हुई थी। अपने न तो कोई लिखा-पढ़ी की और न बयाना ही लिया। रुपये अस्सी हजार अधिक आते हैं, इसलिये यह लाभ क्यों न उठाया जाय?' सेठजी तुरंत ही बोले—'पैसोंका क्या करना है! मुझसे जबान नहीं बदली जा सकती।'

यह सुनकर मैं तो दंग रह गया। अस्सी हजारकी रकम अधिक मिलती है, पर ये उसे ठोकर मार रहे हैं! यह प्रसङ्ग बड़ा अद्भुत है। जहाँ भ्रष्टाचारसे खदबदाते हुए देशमें आज पैसोंके पीछे पड़े लोगोंने सारी नीतिको निर्वासित कर दिया है, बल्कि जहाँ नीतिका स्वरूप ही मरने जा रहा है, वहाँ इतने रुपयेके लिये भी जबान न बदलनेवाले महानुभावके दर्शनका सौभाग्य मुझे मिला। यह प्रसङ्ग मेरे जीवनमें अङ्कित रहेगा।

ये महान् विभूति थे—श्रीमीनू मसाणीके पिता, बम्बईके सबसे पहले भारतीय म्युनिसिपल कमिश्नर, एक समयके बम्बई विश्वविद्यालयके वाइस चान्सलर और देशकी अनेक संस्थाओंके साथ सम्बन्धित महानुभाव स्व० सर रुस्तम पी० मसाणी महोदय। 'अखण्ड आनन्द'

—मनुभाई कण्ट्राक्टर

(३)

अन्तिम क्षणतक ईमानदारी

अभी हालमें दक्षिण कोरियाके एक दैनिक समाचार-पत्र 'कांग्वान आइल्बो'में यह मर्मस्पर्शी आदर्श घटना प्रकाशित हुई है। सन् १९४७की वसन्त ऋतु आ गयी, फिर भी विश्वयुद्धके परिणाम स्वरूप हुए विनाशके चिह्न अभी भी बर्लिनमें अवशिष्ट थे। उस विभाजित नगरकी सीमापर दृश्य देखनेके लिये ज्योंही एक पर्यटक-बस आकर ठहरी, विदेशी पर्यटकोंके हस्ताक्षरोंका संग्रह करनेके लिये जर्मन लड़कोंका एक समूह एकत्रित हो गया, जिनके वस्त्रोंके माध्यमसे उनकी गरीबी झलक रही थी।

एक कोरियायी पर्यटकने हस्ताक्षर करनेके बाद अपनी फाउन्टेन-पेन एक जर्मन लड़केको लिखनेके लिये दी। उस पर्यटकका नाम वह लड़का अभी पूरा लिख भी नहीं पाया था कि बस चल दी और आगे बढ़ने लगी। जबतक वह लड़का सिर उठाकर देखे, बस छः-सात गज आगे बढ़ चुकी थी। बसको रोकनेके लिये चिल्लाता हुआ वह लड़का पीछे-पीछे भागा, परंतु उस कोरियायी पर्यटकने, जो एक उपन्यासकार भी था, यह उचित नहीं समझा कि केवल एक पेनके लिये बसको रोककर बस-चालकको तथा अन्य पर्यटकोंको तंग किया जाय।

आठ साल बाद सन् १९५४ में उस कोरियायी लेखकको अज्ञात जर्मन महिला द्वारा भेजा हुआ एक पार्सल मिला। उसने खोलकर देखा—उस पार्सलमें चकनाचूर पेनके टुकड़े हैं तथा एक पत्र है।

उस पत्रमें लिखा था—'मेरे पुत्र हैंसने आपका पता प्राप्त करनेके लिये आठ साल तक प्रयत्न किया। हैंस यह नहीं चाहता था—एक कोरियायीके मनमें इस गलतफहमीको तनिक भी स्थान मिले कि दुर्बल पराजित जर्मन देशके एक गरीब लड़केने जान-बूझकर देर की जिससे कि बस चली जाय। यह कलकी ही बात है कि एक पर्यटक कोरियायी कविने उसको आपका पता बताया। उल्लसित हैंसने झटसे पेन ली और आपको भेजनेके लिये डाकघरकी ओर दौड़ा। तभी वह एक मोटर कारके नीचे दब गया। मरते-मरते उसने यह इच्छा व्यक्त की कि यह पेन आपके पास कोरिया भेज दी जाय।

कृपया आप विश्वास करें, पेन लेते समय उस जर्मन बालकमें किसी प्रकारकी भी बदनीयती नहीं थी।'

—श्री पी० एस० [illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(४)

मन्त्र-जापसे रोग-मुक्ति

इस घोर जडवादी युगमें अनेक शिक्षित व्यक्ति मन्त्र, उपासना एवं ईश्वर-भक्तिके चमत्कारोंपर विश्वास नहीं करते। इन्हें केवल पाखण्ड और अन्धविश्वासमात्र समझते हैं; पर विश्वमें कई बार ऐसी घटनाएँ घटती हैं, जिनके रहस्यको खोजना विज्ञानके सामर्थ्यके भी बाहर होता है।

सन् १९६४ की घटना है।

उन दिनों मैं अमरसर (जिला जयपुर, राजस्थान) में विज्ञानके प्राध्यापक पदपर कार्य कर रहा था। मेरे पड़ोसमें एक सज्जन रहते थे। आयु होगी साठ वर्षके लगभग। पेंशन पाते थे। इससे पूर्व राजकीय सेवामें थे। प्रकृतिसे सरल, सात्त्विक एवं आस्तिक।

एक दिन अकस्मात् वातव्याधि (Rheumatism) ने उनपर आक्रमण किया। आक्रमण भयानक था। उनकी दक्षिण भुजा आक्रान्त हो गयी। उन्होंने समझा एक-दो-दिनमें दर्द कम हो जायगा; पर रोग बढ़ता ही गया। डाक्टरों-वैद्योंका इलाज भी चला, पर विशेष लाभ न हुआ। कई तरहकी होम्योपैथिक तथा आयुर्वेदिक दवाइयाँ दी गयीं, पर लाभ किंचित् मात्र ही हो पाया। दिनमें कुछ आराम मिलता था; पर रात्रिमें फिर दर्द बढ़ने लगता। रोग धीरे-धीरे सारे शरीरमें फैल गया।

एक दिन सायंकालको मैं उनके पास ही बैठा था। उन्हें सान्त्वना दे रहा था।

वे कहने लगे—'रोग तो बढ़ता ही जा रहा है। मैं जीवित भी रह सकूँगा या नहीं; कह नहीं सकता। ईश्वरने न जाने, मुझे पूर्वजन्मके किन पापोंका दण्ड दिया है।'

मैंने आश्वासन देते हुए कहा—'घबराइये नहीं। ईश्वर सब ठीक करेगा। ईश्वर दीनबन्धु है, करुणानिधान है। विश्वास रखिये, ईश्वरकी कृपासे आप कुछ दिनोंमें पूर्णरूपसे स्वस्थ हो जायँगे। डाक्टर-वैद्योंका इलाज तो आप करवा चुके, अब डाक्टरोंके भी डाक्टरका इलाज करवाइये।'

उन्होंने कहा—'वह कौन है ?'

मैंने कहा—'वह है परमपिता परमेश्वर।' कल मैं आपको कल्याणका 'मानसाङ्क' दूँगा। उसका आप स्वाध्याय कीजिये और एक मन्त्रका स्वयं जप करिये और करवाइये।'

मन्त्र यह है—

दैहिक दैविक भौतिक तापा। रामराज नहिं काहुहि व्यापा॥

दूसरे दिन मैं उन्हें 'मानसाङ्क' दे आया। वे उसका नित्य स्वाध्याय करने लगे और उपर्युक्त मन्त्रका जाप भी।

ईश्वरका चमत्कार देखिये—'उन्हें' आरोग्य-लाभ होने लगा; हाथ-पैरोंका दर्द कम होने लगा और पंद्रह दिनोंमें ही वे उठने-बैठने तथा चलने-फिरने योग्य हो गये।

कितना भयंकर और दुःसाध्य रोग मानसके स्वाध्याय एवं मन्त्र-जापसे दूर हो गया। ईश्वरकी लीला अपरम्पार है।

आज वे पूर्णरूपसे स्वस्थ हैं। अब नियमितरूपसे रामायणका पाठ करते हैं। अपने आरोग्य-लाभकी मूल ओषधि वे इसी मन्त्रको मानते हैं। इसके अतिरिक्त एक दोहेके जपसे भी उन्हें काफी लाभ हुआ है। वह है—

मो सम दीन न दीन हित तुम्ह समान रघुबीर।
अस बिचारि रघुबंसमनि हरहु बिषम भवभीर॥

विपत्तिके समय इस मन्त्रके जापसे काफी लाभ होता है।

दृढ़ विश्वास, श्रद्धा, सच्ची प्रीति तथा आस्तिकभावना धारण करनेसे ईश्वर अवश्य ही भक्तोंके कष्टोंका निवारण करते हैं।

यह छोटी-सी पर महत्त्वपूर्ण घटना नास्तिकों तथा भौतिकवादियोंको भी आस्तिकताकी ओर प्रेरित करती है। धन्य ईश्वरकी महिमा।

—प्रा० श्याममनोहर व्यास एम्० एस्-सी०

(५)

सच्चा संगीत

दरभंगामें प्रतिवर्ष दुर्गापूजाके अवसरपर बड़ा मेला होता है। उसमें श्रीमती गिरिजादेवी भी बुलायी गयी थीं, परंतु कार्यक्रमको लेकर आयोजकोंके साथ उनकी कुछ बोलचाल-सी हो गयी। अतएव उन लोगोंने गिरिजादेवीसे कहा कि 'आपका कार्यक्रम रात्रिको चार बजे होगा।' और जब चार बजनेको हुए, तब उन्होंने श्रोताओंसे कहा—'अब कार्यक्रम समाप्त हो गया है।' अतएव सब लोग चले गये।

श्रीमती गिरिजादेवी मण्डपमें गयीं, तब वहाँ कोई भी नहीं था। इससे उनको बड़ा दुःख हुआ। उनको यह कल्पना भी नहीं थी कि आयोजक उनके साथ ऐसा बर्ताव करेंगे। मण्डपके सामने ही श्रीदुर्गामाताकी मूर्ति थी। बगलमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही भगवान् शिवका मन्दिर था। और इसी समय प्रातःकालकी पूजा आरम्भ हुई। घंटा और शङ्खकी ध्वनियोंके साथ उनके हृदयके तार भी झनझना उठे और उन्होंने मनमें निश्चय किया कि 'लोग सुनें या न सुनें, भगवान् तो सुनेंगे ही।'

श्रीमती गिरिजादेवीने दुर्गामाताजीके सामने, जो गायकोंके लिये मञ्च बना था उसपर बैठकर, आँखें बंदकर तम्बूरेके तार छेड़े और उन्हींके साथ हृदयके तार भी मिल गये। सुरमें सुर मिले और गिरिजाजीके कोकिल कण्ठसे राग अहिर भैरवका प्रवाह बहने लगा 'हे वैरागी रूप धरे मेरे मन भायो'। जहाँ सारा मण्डप खाली था, वहाँ देखते-ही-देखते तीन-चार हजार आदमी सुननेके लिये जमा हो गये।

तदनन्तर उन्होंने ठुमरीमें एक गीत गाया, फिर जोगियामें 'जननी, मैं न जीऊँ बिनु राम' भजन गाया। गाते-गाते उनकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बहने लगी। अरे! सारे श्रोताओंकी आँखें भी गीली हो गयीं। शिवमन्दिरके पुजारीने उनके सामने आकर कहा—

'बेटी! हृदयको द्रवित कर देनेवाला ऐसा संगीत तो मैंने आजतक कहीं भी नहीं सुना। मेरी ओरसे यह भेट और माला स्वीकार करो।'

श्रीमती गिरिजादेवीने केवल इतना ही कहा—'महाराज! मुझे केवल आपका आशीर्वाद ही चाहिये। 'अखण्ड आनन्द'

—मूलजी भाई पी० शाह

(६)

बीची (एकजिमा) की अनुभूत रामबाण दवा

यह रोग बड़ा कष्टदायक है, एक बार हो जानेपर प्रायः समूल नष्ट नहीं होता। वर्षाऋतुमें यह अधिक कष्ट दिया करता है। यह दो प्रकारका होता है। एक सूखा, जो अधिक कष्ट नहीं देता, दूसरा गीला जो भयानक कष्टकर होता है। यह प्रायः हाथों और पैरोंमें होता है। किसी-किसीके सारे बदनमें भी हो जाया करता है। शुरूमें बड़े जोरकी खुजली चलती है। फिर फफोले-से हो जाते हैं, उनमें जलन होती है, दर्द भी होने लगता है, फफोले फूटने उनमें मवाद तथा पानी बहने लगता है। जहाँ-जहाँ मवाद लगती है, रोग फैलता जाता है। जलन और दर्दके मारे रोगीको चैन नहीं पड़ती।

इस रोगके नाशकी नीचे लिखी अनुभूत दवा है—

'करंजवा'के बीजोंको दो दिनोंतक ठंडे पानीमें भिगोकर रखिये, फिर उन्हें छील लीजिये। अंदरसे बादामकी तरह की सफेद गुल्ली निकलेगी। उनको बकरीके दूधमें खूब महीन सीलपर पीस लीजिये और लेईकी तरह मलहम बना लीजिये। फिर उसे ताँबेके बर्तनमें रख दीजिये। एक बार बनी हुई दवा दो सप्ताह चल सकेगी। सूख जाय तो बकरीका दूध अथवा पानी मिला दीजिये।

सेवन-विधि—नीमके पत्तोंको पानीमें उबाल लीजिये। उस गरम पानीसे घावोंको धोइये और साफ कपड़ेसे पोंछ डालिये। तदनन्तर वहाँ मलहम लगा दीजिये, जब सूखकर पपड़ीकी तरह उतर जाय तो फिर लगा दीजिये। दिनमें तीन-चार बार लगाइये। रातको सोते समय भी लगाकर सोइये। इससे कपड़े खराब नहीं होंगे। आराम तो एक दिनके लगानेसे ही मालूम देगा। ३-४ दिन लगानेपर तो रोग साफ ही हो जाता है।

किसी भी प्रकारकी साबुन या साबुनका पानी नहीं लगाना चाहिये। रबड़के जूते, हवाई चप्पल, नाइलोनके मोंजे व्यवहारमें नहीं लाने चाहिये। खटाई, मिर्च, गरम मसालाका सेवन नहीं करे। नमकका सेवन कम करे। 'नीम'की कच्ची पत्ती घी या नारियलके तेलमें तलकर थोड़ी मात्रामें सप्ताहमें एक-दो बार सेवन करनेसे खूनमें रहे रोगके कीटाणु नष्ट हो जाते हैं।*

—तिलकचन्द ...

---

* करंजके बीज सभी जगह प्रायः मिलते हैं। मैं कलकत्तेमें रहता हूँ, अतएव कलकत्तेवालोंके लिये पता लिख रहा हूँ।

(१) बड़ी मस्जिदके सामने जड़ीबूटी और हकीमी दवा बेचनेवालोंके यहाँ मिलते हैं। इनका तेल भी मिलता है जो ... सूखी बीचीमें लगाया जाता है।

(२) चौरंगी रोडके सामने मैदानमें, जहाँ यौगिक संघके द्वारा योगासन सिखाये जाते हैं, वहाँ इसका पेड़ है। उसमें फलियाँ लगती हैं। उन फलियोंको लाकर उनमेंसे बीज निकालकर काममें लाये जा सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेखक महानुभावोंसे प्रार्थना

'कल्याण'के आगामी विशेषाङ्क उपासना-अङ्कके लेखोंका सम्पादन हो रहा है। लेख इतने अधिक आये हैं और अब भी आ रहे हैं कि उन सबका प्रकाशन कई विशेषाङ्कोंमें भी सम्भव नहीं है। एक-एक विषयपर दर्जनों लेख आये हैं। यह तो शुभ लक्षण है जो हमारे अंदर लिखनेकी प्रवृत्ति बढ़ रही है, पर साथ ही यह दुःखकी बात है कि बहुत-से लेखक केवल छपनेके लिये ही लिखकर भेजते हैं, लेखोंमें कोई खास विवेचन नहीं रहता। ऐसे लेख अवश्य ही नहीं छप सकेंगे, इसका हमें खेद है। साथ ही एक-एक विषयपर जो अनेक लेख हैं और जिनमें प्रायः सर्वथा एक-सी बातें हैं, वे सब भी नहीं छप सकेंगे। इसके लिये हम अपने कृपालु लेखकोंसे सविनय क्षमा-याचना करते हुए यह प्रार्थना करते हैं—जिन महानुभावोंसे लेख माँगे गये हैं, उनके सिवा और लेख कृपया न भेजें; क्योंकि स्थानाभावसे लेखोंका छपना सम्भव नहीं होगा और इससे सहज ही लेखकोंको दुःख होगा।

निवेदक—सम्पादक 'कल्याण', गोरखपुर

सूचना

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारका स्वास्थ्य अभी शिथिल ही चल रहा है। गताङ्कमें पत्रादि न लिखनेके लिये प्रार्थना की गयी थी; परंतु पत्र अभी प्रायः पूर्ववत् ही आ रहे हैं और उन सबके उत्तर लिखे नहीं जा रहे हैं। इससे हमलोगोंको संकोच तथा पत्र-लेखकोंको खेद होना स्वाभाविक है। अतएव पुनः यह निवेदन है, कृपया विशेष आवश्यक होनेपर ही पत्र लिखें।

'कल्याण'के पुराने प्राप्य विशेषाङ्क (डाकखर्च सबमें हमारा है)

१—**मानवता-अङ्क**—पृष्ठ-सं० ७०४, मानवताकी प्रेरणा देनेवाले सुन्दर चित्र—बहुरंगे ३९, दोरंगा १, इकरंगे १०१ और रेखाचित्र ३९, मूल्य रु० ७.५० पैसे।

२—**संक्षिप्त शिवपुराणाङ्क**—प्रसिद्ध शिवपुराणका संक्षिप्त सार-रूप है। इसमें ७०४ पृष्ठोंकी ठोस पाठ्य-सामग्री है, बहुरंगे चित्र १७, दोरंगा १, सादा १२ तथा रेखाचित्र १३८, मूल्य रु० ७.५०।

३—**संक्षिप्त ब्रह्मवैवर्त्तपुराणाङ्क**—इसमें भगवान् श्रीकृष्णकी विविध दिव्य लीलाओंका बड़ा ही रोचक वर्णन है। पृष्ठ-संख्या ७०४, बहुरंगे चित्र १७, दोरंगा १, इकरंगे ६, रेखाचित्र १२०, मूल्य रु० ७.५०, सजिल्द रु० ८.७५।

४—**धर्माङ्क**—धर्म-सम्बन्धी विवेचनाओं, सुरुचिपूर्ण कथाओं, सरस सूक्तियों तथा रोचक निबन्धोंसे युक्त। पृष्ठ-सं० ७००, बहुरंगे चित्र १४, दोरंगा १, सादे चित्र ४ तथा रेखाचित्र ८१, सजिल्द (कपड़ेकी जिल्द) मूल्य रु० ८.७५।

व्यवस्थापक—'कल्याण', पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'कल्याण'के ग्राहक महानुभावोंको सूचना

केवल बढ़े हुए डाक-खर्चके लिये 'कल्याण'के वार्षिक मूल्यमें पचास पैसेकी वृद्धि

पिछले अङ्कमें 'कल्याण'के सम्बन्धमें एक सूचना निकली थी, उससे हमारे बहुत-से प्रेमी ग्राहकोंके मनमें बहुत पीड़ा हुई और ऐसे ग्राहकोंके बहुत-से पत्र हमारे पास आये हैं तथा आ रहे हैं, जिनमें परम स्नेह एवं आत्मीयताके साथ 'कल्याण'की उपयोगिता तथा उसके द्वारा होनेवाले कार्यके प्रति बड़ी श्रद्धा प्रकट करते हुए उसके चालू रखनेका अनुरोध किया गया है और धनके अभावसे वह बंद न हो—इसके लिये अधिक-से-अधिक वार्षिक मूल्य बढ़ाने तथा ग्राहकोंसे 'विशेष चन्दा' लेनेके लिये सदाग्रह किया गया है। प्रेमी महानुभावोंकी इस अनुकम्पा एवं प्रीतिके लिये हम उनके सदा कृतज्ञ हैं। 'कल्याण'का प्रकाशन बंद करनेका न विचार था, न है। भगवान्‌का मङ्गलविधान बंद करनेका न हुआ तो यह चालू रहेगा। वह सूचना तो इसलिये दी गयी थी कि कदाचित् अनिच्छा होनेपर भी परिस्थितिसे बाध्य होकर प्रकाशन स्थगित करना पड़े तो ग्राहक महोदय संतोष करें।

इस वर्ष सरकारने डाकखर्च बहुत बढ़ा दिये हैं, इससे केवल 'कल्याण' विभागका लगभग ७५ हजारसे अधिक वार्षिक व्यय बढ़ जायगा। साथ ही लगभग एक लाख रुपये कर्मचारियोंकी क्रमवेतनवृद्धि, वेतनवृद्धि, सहायता तथा मँहगीके निमित्तसे की हुई सामयिक वृद्धि आदिमें इस वर्ष अधिक लगेंगे। इस प्रकार लगभग पौने दो लाख रुपयेका व्ययभार बढ़ गया है, जो एक रुपया 'कल्याण'का मूल्य बढ़ानेसे भी पूरा नहीं होता। गीताप्रेस सूखा, बाढ़, अकाल आदिके समय सहायता-कार्योंमें बिना माँगे यदि कोई सहायता देते हैं, उसे तो स्वीकार करता है, पर इसके अतिरिक्त प्रकाशनसम्बन्धी किसी कार्यके लिये चन्देके रूपमें सहायता नहीं लेता। इसीलिये बाध्य होकर दो-एक बार पुस्तकोंका तथा 'कल्याण'का मूल्य बढ़ाया गया था। बहुत व्यय बढ़ जानेके कारण अभी कुछ ही समय पूर्व 'कल्याण'का मूल्य बढ़ाया गया था, इसलिये और बढ़ानेका विचार नहीं था, तथापि जो डाकखर्च बढ़ा है वह तो ग्राहकोंको देना ही चाहिये और वे देनेको तैयार हैं—हमारे पास इस आशयके ग्राहकोंके बहुत-से पत्र आये हैं।

अतएव आगामी जनवरी सन् १९६८ से केवल ५० पैसे बढ़ाकर 'कल्याण'का वार्षिक मूल्य ९.०० रुपये करना पड़ा है। हमें इसके लिये बड़ा संकोच है; पर आशा है, परिस्थिति समझकर इसे सब लोग सहर्ष स्वीकार करेंगे और 'कल्याण'को बहुत अधिक घाटेसे बचायेंगे।

—व्यवस्थापक 'कल्याण'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

26.10.67
27 OCT 1967

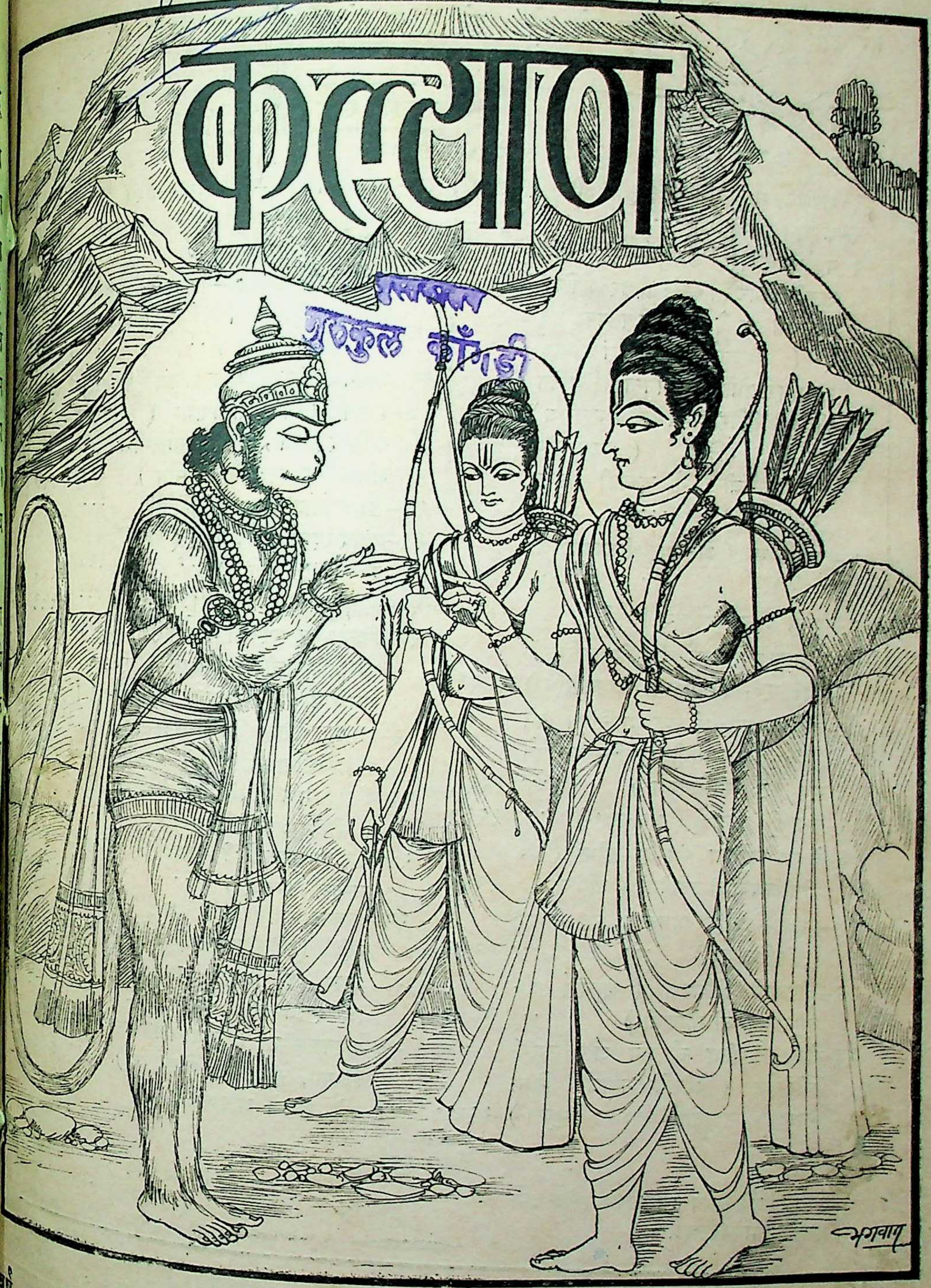

वर्ष ४१]

* * *

[अङ्क १०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची

कल्याण, सौर कार्तिक २०२४, अक्टूबर १९६७

विषय	पृष्ठ-संख्या
१–शबरीका भगवद्धाम-प्रयाण [कविता]	१२१७
२–कल्याण ('शिव') … …	१२१८
३–वर्णाश्रमधर्मका उल्लङ्घन कर तथा शास्त्रीय आचरणोंको त्यागकर मौखिक ब्रह्मज्ञानी बन बैठना अधःपतनका हेतु है (श्रीमज्जगद्गुरु शंकराचार्य गोवर्धनपीठाधीश्वर अनन्तश्रीविभूषित श्रीस्वामी श्रीनिरंजनदेव तीर्थजी महाराज)	१२१९
४–भक्तोंकी महिमा (परमश्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाकी बहुत पुरानी उक्ति) … …	१२२६
५–मन्मना भव (आचार्य श्रीरामप्रतापजी शास्त्री) … …	१२२८
६–मनको लकवा मार गया [कविता]	१२३०
७–जीवात्माका स्वरूप (श्रीयुगलसिंहजी एम्० ए०, बार-एट-ला, विद्यावारिधि)	१२३१
८–जब भगवान् श्रीकृष्ण शान्तिदूत बने (पं० श्रीबलरामजी शास्त्री, आचार्य, एम्० ए०, साहित्यरत्न) …	१२३५
९–कथा [कहानी] (श्री'चक्र') …	१२३९
१०–केवल भक्तिका पंथ ही सीधा (पं० श्रीसूरजचन्दजी सत्यप्रेमी (डाँगीजी)	१२४१
११–भगवद्भक्तिरहित असत्का सङ्ग न करो (संकलित-पद्य) … …	१२४२
१२–श्रीरामकी विशिष्टता (आचार्य श्रीयमुनावल्लभजी गोस्वामी) …	१२४३
१३–देवी द्रौपदीका चीरदान और उनकी चीर-रक्षा (श्रीउपेन्द्रनाथजी मिश्र, 'मञ्जुल, काव्यतीर्थ, हि० सा० भूषण)	१२४४
१४–धर्म-निरपेक्षता—एक पुनर्विचार (श्रीकृष्णकुमारजी त्रिवेदी, एम्० एस्-सी०, धर्मरत्न, साहित्यरत्न) …	१२४५
१५–एक जटिल समस्या—द्रुतगतिसे बढ़ती जनसंख्या (श्रोत्रिय पं० श्रीओमदत्तजी शर्मा गौड़ 'विकल') … …	१२४७
१६–जीवन शान्ति-सुखका आगार बने [कविता]	१२५०
१७–दक्षिण भारतकी तीर्थयात्रा (सेठ श्रीगोविन्ददासजी, श्रीमती रत्नकुमारी देवी, श्रीगोविन्दप्रसादजी श्रीवास्तव) …	१२५१
१८–उच्च स्तरका जीवन [कविता] …	१२५४
१९–प्रसाद-रहस्य [कहानी] (श्रीहरिकृष्णदासजी गुप्त 'हरि') … …	१२५६
२०–ऐसी रचना सुनाओ ! [कविता] …	१२५९
२१–चिन्ता दूर करनेका नया तरीका (डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, विद्याभूषण, दर्शनकेसरी)	१२६०
२२–शासन, शिक्षा और सदाचार (पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा) …	१२६२
२३–गोसंवर्धनके क्षेत्रमें गोशालाओंका प्रयोग (श्रीराधाकृष्ण बजाज) …	१२६४
२४–एक परोपकारिणी मछली (श्रीताराचन्दजी पाण्ड्या) …	१२६७
२५–सरकार सबसे बड़ा कसाई बनने जा रही है (श्रीसुरेशचन्द्रजी जैन) …	१२६८
२६–अपनी ही लगायी आग (डा० श्रीशिवदत्तजी शर्मा 'शिव') …	१२७०
२७–भगवन्नाम-जप (व्यवस्थापक—नाम-जप-विभाग, गीताप्रेस, गोरखपुर) …	१२७२
२८–पढ़ो, समझो और करो …	१२७३

चित्र-सूची

१–लंका-गमनके समय हनुमान्‌को संदेश-दान (रेखाचित्र) …	मुखपृष्ठ
२–शबरीका भगवद्धाम-प्रयाण (तिरंगा) …	१२१७

वार्षिक मूल्य भारतमें ८.५० विदेशमें १५.६० (१५ शिलिंग) } जय विराट जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥ { साधारण प्रति भारतमें ५० पै० विदेशमें ८० पै० (१० पें०)

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाल गोस्वामी, एम्० ए०, शास्त्री
मुद्रक-प्रकाशक—मोतीलाल जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शबरीका भगवद्धाम-प्रयाण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

अविरतभवभावनातिदूरं भवविमुखैर्मुनिभिः सदैव दृश्यम् ।
भवजलधिसुतारणाङ्घ्रिपोतं शरणमहं रघुनन्दनं प्रपद्ये ॥
रतिपतिशतकोटिसुन्दराङ्गं शतपथगोचरभावनाविदूरम् ।
यतिपतिहृदये सदा विभातं रघुपतिमार्तिहरं प्रभुं प्रपद्ये ॥

वर्ष ४१ | गोरखपुर, सौर कार्तिक २०२४, अक्टूबर १९६७ | संख्या १० पूर्ण संख्या ४९१

शबरीका भगवद्धाम-प्रयाण

मधुर सु-सेवासे प्रसन्न हो शबरीसे बोले श्रीराम ।
भद्रे ! शुचि शुश्रूषा की, अब जाओ निज अभीष्ट हरि-धाम ॥
आज्ञा पा, शबरीने जलते पावकमें शुभ किया प्रवेश ।
दिव्य अग्नि-सम देह प्राप्तकर तेजस्वी-धर पावन वेश ॥
वसन, हार, आभूषण, अनुलेपन सब दिव्य परम तन धार ।
विद्युत्-द्युति दमकाती पहुँची दिव्य धाम, तमके उस पार ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

याद रक्खो—मनुष्यजीवनकी चरम तथा परम सफलतारूप भगवत्प्राप्तिके लिये प्रमुख साधनोंमें एक श्रेष्ठ साधन है—भगवत्प्राप्त पुरुषका, संतका सङ्ग, उसका सेवन। सङ्ग तथा सेवनका अर्थ 'साथ रहना' और 'शारीरिक सेवा' करना भी होता है। परंतु भावरहित हृदयसे केवल साथ रहने अथवा किन्हीं सांसारिक मनोरथोंको मनमें रखकर शारीरिक सेवा करनेसे बहुत ही कम लाभ होता है।

याद रक्खो—सङ्ग वही है जिसमें उन संत पुरुषके विचारों, भावों, उपदेशों तथा उनके द्वारा प्राप्त तत्त्व-विचारोंका नित्य मनन होता रहे और 'सेवन' वह है जिसमें इन सबका जीवनमें विकास हो जाय। इसीके लिये सदा सावधान तथा प्रयत्नशील रहना चाहिये।

याद रक्खो—संतका सङ्ग या सेवन यदि लौकिक कामनाको लेकर किया जाता है तो वह ऐसा ही है जैसा अमूल्य रत्न हीराको छोड़कर काँचकी कामना करना। यही नहीं, वस्तुतः सांसारिक भोग निश्चित दुःखपरिणामी और आत्माका पतन करनेवाले हैं—इसलिये भोगकामनाकी पूर्तिके लिये संतका सङ्ग तथा सेवन तो पवित्र अमृतके बदले हलाहल विष माँगनेके समान है। यद्यपि संतसे विष मिलता नहीं; क्योंकि उनमें विष है ही नहीं, तथापि लौकिक भोग-कामी साधक परम परमार्थ-धनसे तो दीर्घकालतक वञ्चित रह ही जाता है। अतएव संतका सङ्ग और सेवन केवल भगवत्प्राप्तिके लिये अथवा उस संतकी संतुष्टिके लिये ही करो।

याद रक्खो—संतका सङ्ग तथा सेवन यदि भगवत्प्राप्तिके शुद्धभावसे होगा तो निश्चय ही—साधककी स्थिति तथा साधनकी गतिके अनुसार—उसको परमार्थ-पथपर प्रगतिके अनुभव होने लगेंगे और वह उत्तरोत्तर आगे बढ़ता चला जायगा। प्रगतिके वे लक्षण ये हैं—

१—काम, क्रोध, लोभ, मद, अभिमान, ईर्ष्या, द्वेष, वैर, हिंसा, विषाद, शोक, भय, पर-अहितमें रुचि, व्यर्थ-चिन्तन, विषय-चिन्तन, व्यर्थभाषण, कटुभाषण आदिका न रहना।

२—मनमें विकार उत्पन्न करनेवाले शारीरिक, मानसिक, साहित्यिक—कुसंगका त्याग।

३—जगत्के विषयोंकी विस्मृति।

४—भोगोंमें वैराग्य तथा उपरति।

५—जागतिक लाभ-हानि तथा अनुकूलता-प्रतिकूलतामें सुख-दुःख न होना, समान स्थिति रहना।

६—बुद्धि, मन तथा इन्द्रियोंका भोगोंकी ओरसे हटकर भगवान्में लगे रहना।

७—भगवान्के नाम-गुण-लीला, तत्त्व आदिके श्रवण-कीर्तन-स्मरणमें मधुर रुचि।

८—दैवी सम्पत्तिके सभी लक्षणोंका सहज विकास।

९—संतके तथा भगवान्के अनुकूल आचरण।

१०—अपने इष्ट भगवान्का नित्य मधुर स्मरण।

११—स्वाभाविक ही 'सर्वभूतहित' की भावना तथा शास्त्रविहित कर्मोंमें प्रवृत्ति।

याद रक्खो—उपर्युक्त लक्षण जीवनमें प्रकट होने लगें तो समझो कि वास्तवमें ही संतका सङ्ग तथा संतका सेवन हो रहा है। जैसे सूर्यके उदय होनेपर प्रकाशका होना अनिवार्य तथा स्वयं-सिद्ध प्रत्यक्ष है। वैसे ही संतके सङ्ग तथा सेवनसे उपर्युक्त भावों तथा गुणोंका प्रकाश अनिवार्य स्वयंसिद्ध तथा प्रत्यक्ष होता है।

याद रक्खो—संतका सङ्ग और संतका सेवन करनेपर भी यदि उपर्युक्त लक्षणोंका उदय न होकर उसके विपरीत आसुरी सम्पत्तिका विकास तथा विस्तार, भोगोंमें तथा पापोंमें रुचि, शास्त्रनिषिद्ध कर्मोंमें राग, पर-अहितमें प्रसन्नता, विषयचिन्तन आदि होते हैं तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझना चाहिये कि या तो जिनको संत माना गया है वे संत नहीं हैं अथवा उनका सङ्ग और सेवन न करके उनके नामपर विषय-सङ्ग तथा विषय-सेवन ही किया जा रहा है। भगवत्प्राप्तिका उद्देश्य ही नहीं है।

'शिव'

वर्णाश्रमधर्मका उल्लङ्घन कर तथा शास्त्रीय आचरणोंको त्यागकर मौखिक ब्रह्मज्ञानी बन बैठना अधःपतनका हेतु है

परम पूज्यपाद श्रीमज्जगद्गुरु शंकराचार्य गोवर्धनपीठाधीश्वर अनन्तश्रीविभूषित श्रीस्वामी श्रीनिरंजनदेवतीर्थजी महाराजके महत्त्वपूर्ण सदुपदेश

[प्रेषक—भक्त रामशरणदासजी पिलखुवा]

[भारतके स्वनामधन्य पूज्यपाद श्रीमज्जगद्गुरु शंकराचार्य गोवर्धनपीठाधीश्वर अनन्तश्रीविभूषित श्रीस्वामी श्रीनिरंजनदेवतीर्थजी महाराजके ये महत्त्वपूर्ण सदुपदेश दिल्लीमें आपके श्रीचरणोंमें बैठकर लिखे गये हैं जो नीचे दिये जा रहे हैं। आशा है, पाठक इन्हें बड़े ही ध्यानसे पढ़नेकी कृपा करेंगे और इसमें जो भी भूल रह गयी हो, वह सब मेरी ही समझेंगे, [पूज्यपाद श्रीआचार्यचरणकी नहीं।]

१–अपना उत्थान चाहते हो तो फैशन-परस्तीसे दूर रहो

प्रश्न–पूज्य महाराजजी ! हमारा और हमारे देशका उत्थान कैसे हो ?

उत्तर–अपना, अपनी जातिका और अपने देशका उत्थान करना चाहते हो तो आजकी इस विदेशी फैशनसे बचो और शास्त्रानुसार तथा सनातनधर्मानुसार अपना जीवन बनाओ एवं अपनी प्राचीन भारतीय हिंदू सभ्यता-संस्कृतिको अपनाओ, तभी उत्थान होगा, अन्यथा लाख प्रयत्न करो, नहीं होगा। आज लोग इस व्यर्थके फैशनके नामपर कैसे-कैसे घोर पाप कर रहे हैं और अपना लोक-परलोक बिगाड़ रहे हैं, यह सुनकर रोमाञ्च खड़े हो जाते हैं। आज लोग जो पाश्चात्य फैशनके वशीभूत होकर अपने पैरोंमें बढ़िया-बढ़िया मुलायम चमड़ेके जूते पहनते हैं, बढ़िया चमड़ेके बेग हाथमें लेकर चलते हैं, अपनी घड़ीमें भी बढ़िया चमड़ेका चैन धारण करते हैं, अपने गलेमें तथा अपनी कमरमें चमड़ेकी पेटियाँ लगाते हैं, बढ़िया चमड़ेका विस्तरबन्द लेकर घूमते हैं और टोपीमें भी चमड़ेका प्रयोग करते हैं। पता है आपको कि यह बढ़िया बताया जानेवाला चमड़ा कैसे-कैसे घोर पापके द्वारा और कैसे-कैसे घोर अत्याचार करनेपर प्राप्त किया जाता है, जिसे अपने प्रयोगमें लाकर लोग घोर नरकमें जानेकी तैयारी कर रहे हैं ? यह बढ़िया बताया जानेवाला चमड़ा प्राप्त होता है तब जब कि आपकी पूज्या गोमाताओंको उन्हें पहले तो कई-कई दिनोंतक भूखा-प्यासा रक्खा जाता है और फिर पाँच-सात दिनके पश्चात् उन्हें लाकर एक लाइनमें बराबर-बराबर बाँध दिया जाता है। फिर उन्हें खूब पानी पिलाया जाता है जिससे उन गायोंका पेट फूल जाता है, फिर उनके ऊपर तड़ातड़ कोड़ोंकी और हंटरोंकी मार दी जाती है, जिससे उनका सब खून चमड़ेमें आ जाता है। फिर उनके ऊपर गरम-गरम खौलता हुआ पानी डाला जाता है। फिर उनके चमड़ेको उधेड़ लिया जाता है और उनका गोमांस काट-काटकर डिब्बोंमें भर-भरकर विदेशोंको भेज दिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाता है और ऐसे घोर पापकी निकृष्ट कमाईसे डालर कमाये जाते हैं। इस प्रकार आपकी पूज्या गायोंको घोर कष्टोंपर कष्ट दे-देकर जो मुलायम चमड़ा प्राप्त किया जाता है, उसी चमड़ेसे बनायी गयी बढ़िया-बढ़िया चप्पलें, जूते पहन-पहनकर आज हिंदू प्रसन्न होते हैं। क्या यह हिंदुओंके लिये घोर लज्जाकी बात नहीं है ? आप अपनी पूज्या गोमाताओंके ऊपर घोर जुल्म ढहाकर प्राप्त किये गये चमड़ेके जूते पहनकर और हाथमें बेग लेकर चमड़ेकी अटैची लेकर घूमते हैं। आपको तनिक-भी लज्जा नहीं आती ? क्या यह आपके लिये डूब मरनेकी बात नहीं है ? जहाँ हिंदू अपनी पूज्या गोमाताकी रक्षाके लिये सहज ही अपने प्राणतक दे डालते थे और गोमाताकी ओर पैर करके बैठनेमें भी घोर पाप मानते थे, वहाँ आज वे अपनी गोमाताकी खालें खींच-खींचकर उनकी चमड़ीको उधेड़कर उस चमड़ेसे बने जूते-चप्पलें पहनकर घूम रहे हैं। इससे बढ़कर घोर अधःपतन और क्या होगा ?

२—अपने देशकी बनी वस्तुओंको प्रयोगमें लाकर धन, धर्म और शरीरकी रक्षा करो

हिंदुओ! आप आज पाश्चात्त्य सभ्यताके रंगमें रँगकर और फैशनके वशीभूत होकर अपनी प्राचीन भारतीय सभी चीजोंसे घृणा करने लगे हो, यह आपके लिये उत्थानका मार्ग नहीं, अपितु पतनका मार्ग है, एवं कदापि उचित नहीं है। अपने देशकी वस्तुओंसे घृणा कर, पाश्चात्त्योंकी नकल कर आप अपना धन-धर्म और स्वास्थ्य-शरीर सब कुछ नष्ट कर रहे हैं और अपने हाथों अपना लोक-परलोक दोनों बिगाड़ रहे हैं। आज आप भारतीय हिंदू होकर और ऋषियोंकी संतान होकर भी प्रातःकाल उठते ही सर्वप्रथम श्री-भगवत्-स्मरण नहीं करते। आज तुम खाटमें पड़े-पड़े बिना मुँह-हाथ धोये सबसे पहले चाय-चुड़ैलका स्मरण करते हो और सबकी जूँठी चायकी प्यालियाँ पीते हो तथा अण्डेसे बनाये गये बिस्कुट खाते हो। फिर अपने दाँतोंमें टूथ-पाउडर लगाकर सूअरके बालोंसे बने ब्रुशको अपने मुखमें घुसेड़कर उस गंदे ब्रुशसे दाँत साफ करते हो। अंग्रेजी टूथ-पाउडरमें न जाने क्या-क्या अशुद्ध चीजें पड़ती हैं। प्रातःकालके शुभ समयमें ऐसी-ऐसी गंदी अशुद्ध अपवित्र चीजोंके दर्शन करते हो और उनको शरीरके स्पर्श कराते हो और मुखमें ले जाते हो, यह पतनका प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं तो क्या है ? इस अंग्रेजी टूथ-पाउडर और सूअरके बालोंसे बने ब्रुशसे वास्तवमें तुम्हारे दाँत साफ भी नहीं होते। इस टूथ-पाउडरसे दाँत साफ करनेसे जहाँ आपका धन और धर्म—दोनों चले जाते हैं, वहाँ आपके दाँत भी कुछ ही दिनों बाद शिथिल होकर गिरने प्रारम्भ हो जाते हैं, यह प्रत्यक्ष देखनेमें आ रहा है। इसके विपरीत यदि आप अपने देशकी शुद्ध पवित्र नीमकी, कीकरकी दाँतुन तोड़कर लाते और दाँतुन तोड़ते समयका मन्त्र भी बोलते तो उससे आपको अनायास भगवान्‌के स्मरण करनेका भी परम सौभाग्य प्राप्त हो जाता और साथ ही नीमकी, कीकरकी ताजी दाँतुन करनेसे आपके दाँत भी साफ हो जाते और बड़े मजबूत बन जाते। इसमें आपका पैसा भी खर्च नहीं होता और आपका धर्म भी बच जाता। इस प्रकार आपके धन, धर्म, शरीर, स्वास्थ्य आदि सबकी रक्षा हो जाती। पर आज तो आप अपने धन, धर्म और शरीर आदि सबको नष्ट करनेमें ही फैशन समझ रहे हैं और गर्व-गौरवका अनुभव कर रहे हैं, पर इन बातोंसे आपका पतन ही होगा, उत्थान नहीं।

३—कर्मकाण्ड और भक्तिकी अवहेलना कर ब्रह्मज्ञानी बन जाना अधःपतनका हेतु है

[एक अपनेको ब्रह्मज्ञानी और वेदान्ती माननेवाले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सज्जनने आकर पूज्य श्रीश्रीआचार्यचरणसे बड़े ही महत्त्व-पूर्ण प्रश्नोत्तर किये जो इस प्रकार हैं—]

वेदान्ती—महाराजजी ! हम आपको अपने एक उत्सवके जुलूसमें ले जाना चाहते हैं और उसमें आपकी सवारी निकालनी है, क्या आप कृपा करेंगे ?'

पूज्य जगद्गुरुजी—'आप हमें अपने यहाँ ले जानेसे पहले यह बतायें कि आपके विचार कैसे हैं ? आपके विचार कट्टर सनातनधर्मी हैं और शास्त्रानुसार हैं या आपके विचार ढुलमुलपंथी—मनमानी हैं ? आजकल जुलूसोंमें स्त्री-शूद्र, मुसल्मान-ईसाई आदि सबको सम्मिलित कर सबसे वेदमन्त्र बुलवाये जाते हैं। यज्ञोंमें भी सभी आहुति डालने लगे हैं और वेदमन्त्र बोलने लगे हैं। हम इन सब बातोंको शास्त्रविरुद्ध बात मानते हैं।

'नहीं महाराज ! मैं तो कट्टर धार्मिक विचारोंका हूँ और मैं परमहंस साधुओंका शिष्य हूँ और बड़े-बड़े महात्माओंके पास जाता हूँ।'

'आजकल बहुत-से महात्मा कहानेवाले लोग भी मनमानी शास्त्रविरुद्ध बातें करने लगे हैं।'

'नहीं महाराज ! मैं तो सोऽहम्, अहं ब्रह्मास्मि, तत्त्वमसि, शिवोऽहम्वाला वेदान्ती हूँ।'

'फिर तो आप वास्तवमें बड़े खतरनाक हैं और शास्त्रविरुद्ध कार्य करनेवाले हैं !'

वेदान्ती—'कैसे महाराज ?'

पूज्य जगद्गुरुजी—'आप क्या करते हैं ?'

वेदान्ती—'मैं एक दफ्तरमें नौकरी करता हूँ और अफसर हूँ। साथ ही वेदान्ती भी हूँ।'

'तब तो आप बड़े विचित्र ब्रह्मज्ञानी और विचित्र वेदान्ती हैं। एक ओर तो आप इस समय कोट-बूट-नकटाई पहने पूरे साहब बहादुर बने हुए हैं और दूसरी ओर अहं ब्रह्मास्मि, शिवोऽहम्, तत्त्वमसि कहकर अपनेको ब्रह्मज्ञानी और वेदान्ती भी मान रहे हैं क्या यह उचित है ?'

'महाराज ! वेश-भूषासे क्या होता है ?'

'यदि वास्तवमें आप कोट-बूट-नकटाई धारण करनेवाले अंग्रेजी पढ़े बाबू लोग खाली अहं ब्रह्मास्मि, शिवोऽहम्, तत्त्वमसि आदि जबानसे कहकर ही वेदान्त और ब्रह्मज्ञानके अधिकारी बन गये और ब्रह्मज्ञानी हो गये तो फिर बड़े-बड़े पूज्य ऋषि-महर्षि, जो जीवनभर संध्या-वन्दन, कर्मकाण्ड, भजन-पूजन, घोर त्याग-तपस्या करते रहे, घोर जंगलोंमें रहते रहे, महान् संयम-नियममय जीवन व्यतीत करते रहे, कन्द-मूल, फल-फूल खाते रहे तथा वायु-भक्षण करते रहे, अपने शरीरोंको सुखा डाला और हजारों-लाखों वर्षकी समाधियाँ लगा दीं, क्या उन्हें आप-जैसी इतनी भी बुद्धि नहीं थी कि जो बिना त्याग-तपस्या किये और बिना योगसाधन किये आपकी ही भाँति 'अहं ब्रह्मास्मि, शिवोऽहम्, तत्त्वमसि' आदि कहकर और दो-चार किताबें पढ़-पढ़ाकर बिना ही आचरण तथा साधनके वे भी अपनेको पूरा ब्रह्मज्ञानी और पूरा वेदान्ती मान लेते ? उन्हें क्या आवश्यकता थी कि जो इतने बड़े-बड़े घोर कष्ट उठाते और व्यर्थ ही जंगलोंमें रहकर शरीर सुखाते ? वे भी आप बाबुओंकी तरह कोठियोंमें रहकर मौज मारते ?'

'नहीं महाराज ! मैंने तो बहुत-से वेदान्तके बड़े-बड़े ग्रन्थ—पञ्चदशी, विचारसागर, विवेकचूडामणि आदि देखे हैं और मैंने वेदान्ती साधु-महात्माओंका खूब सत्सङ्ग किया है।'

'आपने खूब ग्रन्थ देखे हैं और खूब साधु-संतोंका सत्सङ्ग किया है और आप अपनेको पूरे वेदान्ती और ब्रह्मज्ञानी भी मानते हैं, पर इतनेपर भी आपके सिरपर चोटी, माथेपर तिलक और गलेमें यज्ञोपवीत क्यों नहीं है ? आप खड़े-खड़े मूत्र त्याग करते हैं और मूत्रके छींटे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपकी पतलूनपर पड़ते रहते हैं, जिससे आपका पतलून भी मूत्रमें भीग जाता है। आप इस बातकी कोई परवा नहीं करते, इसीसे तो आप अद्भुत वेदान्ती, अद्भुत ब्रह्मज्ञानी हैं। आज आप अपने सिरपर उस पवित्र चोटीके चार बाल भी नहीं रख सकते कि जिस चोटीके लिये साक्षात् ब्रह्म श्रीकृष्ण श्रीमैया यशोदासे गिड़गिड़ाकर यह याचना करता था—

'मैया मोरी कबहुँ बढ़ेगी चोटी'

ज़िस चोटीकी रक्षाके लिये श्रीगुरुगोविन्दसिंहके बच्चे हँसते-हँसते जीवित दीवारोंमें चुने गये, वीर हकीकत बलिदान हो गये, वन्दा वीर वैरागीका बोटी-बोटी मांस नोचा गया और लाखों क्षत्रियोंने प्राण दे डाले। फिर आप कैसे ब्रह्मज्ञानी हैं ? हमारा शास्त्र डंकेकी चोट घोषणा करके कहता है कि जिसके सिरपर चोटी नहीं है उसके सब कार्य निष्फल हैं—

सदोपवीतिना भाव्यं सदाबद्धशिखेन च।
विशिखो व्युपवीतश्च यत्करोति न तत् कृतम्॥

द्विजमात्रको अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यको सदा यज्ञोपवीतधारी होना चाहिये और मानवमात्रको हर समय शिखामें गाँठ बाँधकर रहना चाहिये, बिना शिखा और बिना यज्ञोपवीत जो भी धर्मकार्य किया जायगा, वह सब निष्फल होगा। आप अपनी धोती भी नहीं पहन सकते तथा अपनी भारतीय हिंदू वेश-भूषाको भी नहीं अपना सकते तो आप कैसे वेदान्ती हैं ?'

'महाराजजी! हमें दफ्तरमें जाना पड़ता है इसलिये हमें पैन्ट पहननी पड़ती है।'

'क्या आप अपनी भारतीय पोशाक पहनकर दफ्तर नहीं जा सकते ? क्या आपको अपनी भारतीय वेश-भूषामें जानेपर दफ्तरमें घुसनेसे कोई रोकता है ? यदि आप धोती पहनकर दफ्तरमें जायँ तो क्या आपको कोई मना करता है कि आप धोती पहनकर दफ्तरमें क्यों आये हो ? क्या धोती पहननेपर कोई पा... लगी हुई है ?'

'महाराजजी ! धोती-कुरता पहननेपर हमारा ... मान नहीं करता। धोती पहननेपर सब लोग ह... दिल्लगी उड़ाते हैं, इसलिये हम धोती पहनकर ... नहीं जाते।'

'जब धोती-कुरता पहनकर आपके भारत... प्रधान मन्त्री लाल बहादुरशास्त्री रूस, इंग्लैंड आदि वि... जाकर बड़ा मान-सम्मान प्राप्त कर सकता है तो ... आपका धोती-कुरता पहनकर अपने देश ... दफ्तरमें जाकर धोती-कुरता पहननेके कारण ... सम्मान नहीं रह सकता, यह तो बड़ा आश्चर्य है ... जिस प्रकार आप अपने देशकी भारतीय वेश-भू... घृणाकर गोरे अंग्रेजोंकी नकल कर कोट-पत... नकटाई-बूट डाटकर काले अंग्रेज बनते चले जा रहे ... क्या आपने इस प्रकार किसी अंग्रेजको भी अपने दे... पोशाक—कोट-बूट-टोप-नकटाई आदि छोड़कर ... जगह भारतकी धोती-कुरता पहनते देखा है ? जब ... अंग्रेज अपने देशकी पोशाक पहनना नहीं छोड़ते ... अपने देशमें रहनेपर और विदेशोंमें जानेपर सब ... ही अपनी पोशाकमें जाते हैं तथा अपने अंग्रेजी ... रहते हैं तो फिर आपको ही अपने देशकी पोशाकसे ... करनेकी क्या आवश्यकता पड़ी है ? आप अपनी ... छोड़कर जो यह अंग्रेजोंकी पोशाक—कोट-बूट-पत... नकटाई आदि पहनते हैं यह घोर अधःपतनकी नि... है, उत्थानकी नहीं।'

'महाराज ! ये सब तो ऊपरकी बातें हैं। इन ... क्या होता है। मन शुद्ध होना चाहिये।'

'आप कौन जातिके मनुष्य हैं ?'

'महाराज ! अब तो मैं, जबसे मैंने वेदान्तके ... देखे हैं और साधुओंका सत्सङ्ग किया है तथा मैं ... और ब्रह्मज्ञानी बना हूँ, ब्राह्मण हो गया हूँ।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'आपकी जाति इस जन्मकी कौन-सी है, यह ...इये ?'

'महाराज ! जन्मकी जाति तो हमारी खत्री है; पर ...न्मसे जाति थोड़े ही मानी जाती है; जाति तो कर्मसे ...ती है ।'

'नहीं, नहीं; जाति कर्मसे नहीं होती, जाति जन्मसे ...ती है ।'

'नहीं महाराज ! जाति तो कर्मसे होती है ।'

'जाति कर्मसे कैसे होती है—यह सिद्ध कीजिये ।'

'महाराज ! एक ब्राह्मण है और वह यदि अपने ...र्म खराब करता है और मांस, मछली, अंडे, मुर्गे खाता ...है तो वह ब्राह्मण कैसे रह सकता है ? वह तो शूद्र है । ...और एक शूद्र है वह यदि मांस, मछली, अंडे, मुर्गे नहीं ...खाता और अच्छे कर्म करता है तो फिर वह शूद्र कैसे ...रह सकता है, वह तो फिर ब्राह्मण है ?'

'नहीं, जाति जन्मसे ही होती है । कर्मसे जाति ...कभी नहीं बदला करती । यह एक अकाट्य सत्य सिद्धान्त ...है। आपने कहीं आजतक कर्म करनेसे जाति बदलती ...देखी ?'

'महाराज ! बहुत-से ऐसे कुत्ते देखे गये हैं कि ...जो बढ़िया-बढ़िया माल पूआ खाते हैं; उनकी सेवामें कई-...कई नौकर रहते हैं, जो उनकी देख-भाल करते हैं, वे ...रोज साबुन मल-मलकर नहलाये जाते हैं, पलंगोंपर ...सोते हैं और बड़े-बड़े राजाओं तथा नवाबोंके साथ ...उनकी गोदमें बैठकर कारोंमें सैर करते डोलते हैं और ...दूध-जलेबी, मलाई-मिश्री खाते हैं । ऐसे सुख मनुष्योंको ...भी नहीं मिलते जो उन्हें प्राप्त हो रहे हैं, क्या ये सब ...उनके कर्मोंका फल नहीं है जो वे भोग रहे हैं ?'

'जो कुत्ते बढ़िया-बढ़िया माल खाते हैं और साबुन-...से मल-मलकर स्नान कराया जाता है, गद्दोंपर सोते ...है और कारोंमें घूमते हैं, उन कुत्तोंने क्या इस जन्ममें ...ऐसा कोई कर्म किया है जिसके फलस्वरूप वे इस प्रकारके सुख भोग रहे हैं ? या वह उनके पूर्वजन्मोंमें किये कर्मोंके फल नहीं हैं ? वस्तुतः यह उनके इस जन्मके कर्मोंका फल नहीं है । पूर्वजन्मोंके कर्मोंके फल हैं । अब रही यह बात कि कुत्ते खूब सुख भोग रहे हैं तो क्या कुत्तोंके बढ़िया-बढ़िया खानेसे, साबुन मल-मलकर नहानेसे और कारोंमें चलनेसे अब वे कुत्ते नहीं रहे ? क्या अब उन कुत्तोंकी जाति बदल गयी ? क्या अब वे कुत्तोंसे मनुष्य हो गये ? क्या आप उन्हें अब मनुष्य कहेंगे, कुत्ते नहीं कहेंगे ? यदि इस प्रकार जाति बदल जाती है तो आप इन कुत्तोंकी जातिको मनुष्य बना देंगे ?'

'महाराजजी ! बहुत-से ऐसे मनुष्य हैं कि जिन्हें रोटी भी नहीं मिलती, कपड़ा भी पहननेको नहीं मिलता और भूखे-प्यासे मारे-मारे डोलते हैं ।'

'तो क्या भूखसे मारे-मारे डोलनेके कारण इनकी जाति बदल गयी और वे मनुष्यसे कुत्ते हो गये ? क्या आप इन्हें अब कुत्ते बोलेंगे ? कुत्ता यदि बड़े आनन्दसे रहता है तो वह मनुष्य हो गया और यदि मनुष्य दुखी रहता है तो वह कुत्ता हो गया ? क्या आप यह मानते हैं ?'

'महाराज ! बिना अच्छे कर्म किये कुत्ता इतने सुख कैसे भोग रहा है ?'

'इसमें आपकी कर्मसे जाति बदलनेकी बात बिल्कुल भी सिद्ध नहीं हुई । अब रहा यह कि वह कुत्ता जो इस समय नवाबसाहबके पास रहकर बढ़िया-बढ़िया माल उड़ाता है, गद्दोंपर पड़ा सोता है और नौकर-चाकर उसकी सेवामें रहते हैं । उसका कारण यह है कि उस कुत्तेने अपने पूर्वजन्मोंमें अंग्रेजी स्कूल-कालेजोंको दान दिये होंगे और इसने पूर्वजन्ममें अंग्रेजी अस्पताल खुलवाये होंगे । इस प्रकार पूर्वजन्ममें इसने अन्य तामसिक दान किये होंगे जिसके परिणाम स्वरूप उसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह फल मिला कि वह बढ़िया-बढ़िया खा रहा है और मोटरोंमें बैठा सैर-सपाटे कर रहा है। पर इतनेपर भी बना तो वह कुत्ता ही, नवाब तो वह नहीं बना? यदि वह पूर्वजन्ममें शास्त्रानुसार और सनातन-धर्मानुसार सात्त्विक दान विधिपूर्वक करता तो उस सात्त्विक दानका फल उसे यह मिलता कि वह किसी नवाबका या किसी राजा-महाराजाका या किसी सेठ-साहूकारका कुत्ता नहीं बनता बल्कि यह स्वयं ही राजा-महाराजा, सेठ बन जाता। सुख भी खूब भोगता और फिर उसे यह कुत्तेकी अधम योनि भी भोगनी क्यों पड़ती? एक तोता है और वह एक राजाके महलमें है, सोनेके पिंजड़ेमें है। पैरोंमें सोनेके छल्ले पहनता है, सोनेकी कटोरीमें रानीके हाथोंसे बढ़िया-बढ़िया माल खाता है और बड़े सुखसे रहता है तो क्या इतने सुख भोगनेपर वह तोता नहीं रहा? वह लोहेके पिंजड़ेमें न रहकर सोनेके पिंजड़ेमें रहनेपर भी क्या वह बन्धनमें पड़ा हुआ नहीं है? क्या वह बन्धनमुक्त हो गया? तोतेके लाख सुख भोगनेपर भी उसकी जाति नहीं बदली और न इस जन्ममें कभी बदल सकती है। यह एक अकाट्य सत्य सिद्धान्त है।'

'ब्राह्मण होकर जो पाप करता है क्या वह फिर भी ब्राह्मण ही रहेगा?'

'ब्राह्मण यदि बुरा कर्म करता है तो वह अपने किये पापोंका फल अगले जन्ममें अवश्य ही भोगेगा और वह अगले जन्ममें अधमयोनिको प्राप्त हो जायगा——शूकर-कूकर बन जायगा।'

'महाराज! जो शूद्र अच्छे कर्म करता है तो क्या वह ब्राह्मण नहीं बनेगा?'

'हाँ, यदि शूद्र स्वधर्मका पालन करता है और शास्त्रानुसार वर्णाश्रम-धर्मानुसार मर्यादानुसार चलता है, पापोंसे बचता है और शुभ कर्म करता है तो वह अगले जन्ममें ब्राह्मण बन जायगा, इसमें संदेह नहीं, पर इस जन्ममें बिल्कुल नहीं।'

'क्या महाराज! हमें 'अहं ब्रह्मास्मि' बोलनेका और ब्रह्मज्ञानी तथा वेदान्ती बननेका अधिकार नहीं है?'

'शास्त्रदृष्टिसे आपको ब्रह्मज्ञानी बननेका और अपनेको वेदान्ती बतानेका बिल्कुल अधिकार नहीं है। आप संध्यावन्दन नहीं करते, भजन, पूजन, कर्मकाण्ड, श्राद्धतर्पण, शास्त्राध्ययन आदि सबको छोड़ बैठे हैं और खाली ब्रह्मज्ञानी और वेदान्ती बने हुए हैं तो आप यह बड़ी-भूल कर रहे हैं। आपके सिरपर हिंदुत्वका पवित्र चिह्न चोटीतक नहीं है, आपके गलेमें यज्ञोपवीत नहीं है और आप संध्यावन्दनतक भी करना नहीं जानते, फिर आप कैसे ब्रह्मज्ञानी हैं और वेदान्ती हैं। तभी तो कलिपावनावतार पूज्य गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराजने स्पष्ट शब्दोंमें लिखा है—

ब्रह्मज्ञान बिनु नारि नर करहिं न दूजी बात।
कौड़ी कारन मोहबस करैं विप्र गुरु घात॥

'आज इस ब्रह्मज्ञानकी आड़में बड़े-बड़े कुकर्म किये जा रहे हैं। यह घोर पाप है जो कदापि नहीं करना चाहिये।'

'तो क्या महाराजजी! जातिको मानना बहुत ही आवश्यक है?'

'जी हाँ, जातिका मानना बहुत ही आवश्यक है। बिना जात-पाँतको माने, बिना वर्णव्यवस्थाको माने और बिना वर्णाश्रम-धर्मको माने कल्याण नहीं हो सकता। इस विश्वमें ऐसा कोई भी देश नहीं है कि जिस देशमें यह जाति किसी-न-किसी रूपमें न मानी जाती हो? जाति माने बिना हमारा काम चल ही नहीं सकता। जाति तो मनुष्योंमें, वृक्षोंमें, पत्थरोंमें, फल-फूलोंमें, पशु-पक्षियोंमें, धातुओंमें, कुत्ते-बिल्लियोंमें सभीमें होती है। वे बड़ी भूल कर रहे हैं वह जो यह कहते हैं कि 'जातियाँ मिटा दो' या 'जातियाँ मत मानो' अथवा 'जातियाँ नहीं माननी चाहिये।' गीतामें परब्रह्म परमात्मा भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं अपने श्रीमुखसे कहते हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टम्'

चारों वर्ण अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र श्रीने बनाये हैं। जब भगवान् अपने श्रीमुखसे यह कहते हैं कि वर्णव्यवस्थाको मैंने बनाया है तो उस भगवान्की बनायी हुई वर्णव्यवस्थाको मनुष्यकृत बताना और वर्णव्यवस्थाको मिटानेका प्रयत्न करना महापाप है। जिस प्रकार इन मनुष्योंमें जातियाँ मिलती हैं, उसी प्रकार इन वृक्षोंमें भी जातियाँ मिलती हैं और इनमें भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र जातियाँ हैं। कितने ही तो कई वृक्ष ऐसे हैं कि जिनका पूजन किया जाता है और अन्य वृक्षोंका नहीं। यह जातिकी भिन्नता नहीं तो क्या है? फलोंमें क्या आपने नहीं देखा है कि एक आमकी ही कितनी-कितनी जातियाँ होती हैं? कोई दशहरी जातिका आम है तो कोई कलमी आम है। कोई लँगड़ा आम है तो कोई सरौली आम है तो कोई देशी आम है। इस प्रकार सैकड़ों जातिके आम हैं। आप बाजारमें जायँ और किसी आमवालेकी दूकानपर जाकर कहें कि हमें आम दे दो तो वह आपसे झटसे यह पूछेगा कि आपको कौन-सा आम दें? आप कहें कि कोई-सा भी आम दे दो तो वह आपसे कहेगा कि यह देशी आम है, यह सरौली आम है, यह लँगड़ा आम है और यह कलमी आम है। आपको कौन-सी जातिका आम दें यह बताओ। आप यदि यह कहें कि हम तो जातियाँ नहीं मानते, सबको बस एक-सा ही आम मानते हैं और हम कोई भेदभाव नहीं समझते, बस, हमें तो आम दे दो तो वह आपको बेसमझ ही समझेगा और कहेगा भाग जाओ तुम्हें आम नहीं मिलता। जबतक आप यह नहीं बताओगे कि आम कौन-सी जातिका चाहिये तबतक आपको आम नहीं मिलेगा। इसी प्रकार आप पत्थरको देखिये, पत्थरमें भी अनेकों जातियाँ हैं। क्या पत्थर-पत्थर सब एक-से हैं? इनमें भी जातियाँ नहीं हैं? क्या इनमें भेद नहीं है? एक साधारण पत्थर है और दूसरा मकरानेका पत्थर है, संगमरमरका कीमती पत्थर है। क्या इनमें जातियाँ नहीं हैं? ये हीरे भी तो पत्थर ही हैं पर इनकी जाति और इनकी कीमत बहुत ऊँची है। धातुओंमें भी जातियाँ हैं। सोनेको पूज्य माना जाता है, सोना नाभिसे नीचे पहनना पाप माना गया है और सोनेकी कीमत भी बहुत ऊँची है। पीतल और सोना दोनों पीले हैं, पर पीतल तथा सोनेमें बड़ा अन्तर है। लोहा भी कई जातियोंका अलग-अलग होता है। कुत्तोंमें भी जातियाँ होती हैं। एक विलायती कुत्ता है तो एक फ्रान्सीसी कुत्ता है। अनेकों जातियोंवाले कुत्ते हैं। घोड़ोंमें भी अनेक जातियाँ हैं और अनेक नस्लें हैं। शेर भी कितनी ही जातियोंके अलग-अलग होते हैं। गायोंकी भी अलग-अलग नस्लें और जातियाँ हैं। नदियोंमें भी जातियाँ हैं और कोई नदी पूज्या है तो कोई अपूज्या है। मिट्टीतकमें भी जातियाँ हैं और पीली मिट्टीके ही गणेश बनाकर पूजे जाते हैं, अन्य जातियोंकी मिट्टीके नहीं। पक्षियोंमें कौवा चाण्डाल जातिका है और अन्य पक्षी अन्य-अन्य जातियोंके हैं। ये सब तथ्य हमारे शास्त्रोंमें भरे पड़े हैं। जब सबमें जातियाँ हैं और नस्लें हैं तो क्या बस, मनुष्य ही बिना जातिके और बिना नस्लके हैं; इनकी जातियाँ ईश्वरकृत हैं। जातियाँ अवश्य होती हैं और जातिके माने बिना कभी काम नहीं चल सकता। जबतक जात-पाँतको, वर्णव्यवस्थाको, वर्णाश्रमधर्मको नहीं माना जायगा और जबतक वर्णाश्रमधर्मके अनुसार नहीं चला जायगा, तबतक लाख प्रयत्न करनेपर भी सुख-शान्ति प्राप्त नहीं होगी। रामराज्यमें सुख-शान्तिका कारण बस वर्णाश्रमधर्मके अनुसार चलना ही था। तभी पूज्यपाद कलिपावनावतार गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराजने लिखा है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बरनाश्रम निज निज धरम निरत बेद पथ लोग ।
चलहिं सदा पावहिं सुखहि नहिं भय रोग न सोग ॥

आजके नेता जो जात-पाँत मिटाकर, वर्णव्यवस्थाको समाप्त कर और वर्णाश्रम-धर्मका विध्वंस कर देशोन्नतिके स्वप्न देख रहे हैं, यह सर्वथा प्रमाद है और विपत्तियोंको निमन्त्रण देना है और कुछ नहीं ।

बोलो सनातनधर्मकी जय !

भक्तोंकी महिमा

(परम श्रद्धेय ब्रह्मलीन श्रीजयदयालजी गोयन्दकाकी बहुत पुरानी उक्ति)

भगवान्‌की अपेक्षा भी कुछ अंशोंमें भगवान्‌के भक्त ऊँचे माने जा सकते हैं; क्योंकि भगवान्‌की प्राप्तिके लिये उनके भक्तोंका सङ्ग, आज्ञाके अनुकूल आचरण, ध्यान, शरण और सेवा—यह पाँच मुख्य साधन हैं; परंतु इन पाँचोंका भगवान्‌के प्रति प्रयोग करना कठिन है, भक्तके प्रति इनका प्रयोग सुगमतासे किया जा सकता है, फल दोनोंका एक ही है। जैसे कोई पतिव्रता स्त्री निष्कामभावसे पतिके प्रति पाँचों बातोंका प्रयोग कर परमात्माको पा सकती है, इसी प्रकार परमात्माके सच्चे भक्तके प्रति इन पाँचोंका प्रयोग करके परमात्माको पा जाता है ।

भगवान्‌के प्रति इन पाँचोंका प्रयोग करनेमें कठिनता क्या है और भक्तके प्रति सुगमता क्या है सो समझना चाहिये ।

१—भगवान्‌का सङ्ग साधकको नहीं मिलता, पर भक्तका मिल सकता है ।

२—भगवान्‌की प्रत्यक्ष आज्ञा नहीं मिल सकती; शास्त्रोंको ही भगवान्‌की आज्ञा मानना पड़ता है; परंतु भक्तसे आज्ञा पाकर उसके अनुकूल आचरण किया जा सकता है; शास्त्रोंके मतभेदका भी निर्णय भक्तसे ही करवाया जा सकता है । मनमें उठी हुई स्फुरणाओंको भगवत्-आज्ञा मानें तो भी एक समय अनेक स्फुरणाएँ होती हैं, उनका निर्णय भी भक्तोंसे ही करवाया जा सकता है ।

३—भगवान्‌की मूर्तियोंका प्रत्यक्षका छायाचित्र है। अतएव मनमें उनका ध्यान करते समय ऐसी आशङ्का रह सकती है कि न माळूम भगवान्‌का ऐसा ही स्वरूप है या नहीं । परंतु भक्तकी देखी हुई साकार मूर्तिका ध्यान निस्संदेहरूपसे किया जा सकता है ।

४—प्रत्यक्षमें भगवान्‌की शरण नहीं मिलती, परंतु भक्तकी मिल सकती है ।

५—सेवा भी भगवान्‌की मूर्तियोंकी भले ही हो (यद्यपि साधककी भावनाके अनुसार वे भगवान् ही हैं तथापि साधकको मूर्तियोंमें प्रतीक या प्रतिनिधिकी ही भावना रहती है, प्रत्यक्षतया साक्षात्कारकी भावना नहीं रहती, परंतु भक्तका प्रत्यक्ष साक्षात्कार करके साधक उसकी सेवा कर सकता है । इस हिसाबसे भगवान्‌का सच्चा भक्त भगवान्‌से बढ़कर है ।

मोरे मन प्रभु अस बिस्वासा । राम ते अधिक राम कर दासा ॥

यह तो सिद्धान्तरूपसे भक्तकी विशेषता बतलायी गयी । परंतु भक्त इन पाँचों बातोंमें सङ्ग और अनुकूल आचरणोंको छोड़कर बाकी ध्यान, सेवा, शरण—इनका प्रयोग करनेमें सर्वथा निषेध करते हैं । उनका यही कथन होता है कि भाई ! ध्यान भगवान्‌का करो, शरण भी भगवान्‌की लो और सेवा भी भगवान्‌की ही करो और उनका यह कहना सत्य भी है, यद्यपि उनकी सेवासे ही काम बन जाता है; परंतु शास्त्रकी मर्यादाके कारण वे निषेध करते हैं । सङ्ग और अनुकूल आचरण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निषेध क्यों नहीं करते ? यह उनकी दयालुता है और सेवा करनेमें शास्त्रकी मर्यादामें कोई बाधा नहीं पहुँचती। सङ्ग तो किसी प्रकार आपत्तिजनक कहा ही नहीं जा सकता, अनुकूल आचरणमें शास्त्रकी मर्यादा रहते हुए साधकका हित होता है। इसलिये वे निषेध नहीं करते। यदि कोई अपनेको सिद्ध समझकर यह मान ले कि 'इन तीनोंके करवानेमें मेरी तो कोई हानि होती नहीं; क्योंकि मैं सिद्ध हूँ, इन बेचारे साधकोंका भला हो जायगा। इसलिये इन्हें करने दिया जाय'—तो यह समझना चाहिये कि उस अपनेको सिद्ध समझनेवालेका हृदय अभी अन्धकारसे भरा पड़ा है। वह वस्तुत: सिद्ध नहीं है।

सेवा करानेमें तप, महत्त्व, भक्ति, श्रद्धा और वीर्यका क्षय होता है। इनमें महत्त्व यानी लोकमें गौरव तो सिद्धका भी क्षय हो सकता है। सेवा करवानेसे तप क्षीण होता ही है। साधककी भक्तिका अंश सेवकको मिलता रहनेसे भक्तिका क्षय होता है, बारंबार सेवाके लिये आज्ञा देनेसे अपात्र सेवककी दृष्टिमें श्रद्धाका क्षय होता है। श्रद्धा सेवक या सेव्यके अपात्र होनेसे ही घटती है।

सेवा करनेवाला यदि पात्र हो तो उससे लाभ होता है। सेवाका अधिकारी वह समझा जाता है कि जिसके मनमें सेवा करनेपर जरा भी अभिमान न उत्पन्न हो, सेवामें परम हर्ष हो, रोमाञ्च-अश्रुपात होने लगे। सेवा सहज हो, सेवाका उत्साह, चाव तथा निष्कामभाव उत्तरोत्तर बढ़ता रहे और वही सेवा हो जो सेव्यके मनके अनुकूल हो। इसके विपरीत जो परिश्रम अथवा भार समझकर अपने मनको अनुकूल लगनेवाली सेवा करता है, वह सेवाका अधिकारी नहीं। भक्त तो अपनी बीमारीका भी, शारीरिक कष्ट होनेपर भी दूसरोंको भाररूप लगनेवाली सेवाके लिये आज्ञा नहीं देता।

× × ×

भक्तके साथ ऊँचा प्रेम तब समझना चाहिये जब कि उस भक्तको छोड़ मोक्षका भी तिरस्कार हो जाय। यदि भक्त कहे कि 'भाई! भगवान्की भक्ति करो, उससे मोक्षकी प्राप्ति होगी' तो उसके उत्तरमें वह प्रेमी साधक यही सोचे—कहे कि 'मेरा आपमें प्रेम नहीं है, मैं मोक्ष चाहता हूँ इसलिये तो आप मुझे मोक्षका मार्ग बतला रहे हैं। मेरी यह मोक्षकी इच्छा जबतक नहीं छूटती तबतक मुझमें प्रेम कहाँ है।' इस प्रकार सच्चे मनसे भगवत्प्राप्तिकी इच्छाका भी त्याग कर देनेवाले प्रेमी साधकके हाथ भक्त बिक जाते हैं। इन दोनोंमें इतना प्रेम होता है कि वह साधक एकान्तमें बात करते समय यदि स्वयं भगवान् भी बाहरसे आकर पुकारें तो कोई परवा नहीं करता, वह कहता है कि 'आप हमारे एकान्तमें विघ्न डालनेके लिये क्यों पधारे हैं ?' यद्यपि उनके एकान्तमें भगवच्चर्चा ही होती है किंतु उन्हें भगवान्के मिलनेकी परवा नहीं होती। ऐसे बेपरवाह परंतु प्रेमी भक्तोंके लिये भगवान् भी चाह करते हैं कि किसी प्रकार यह मुझसे मिलनेकी इच्छा करे। परंतु वह प्रेमी साधक तो किसी प्रकार भी परवा नहीं करता। यदि भगवान् भी उसके प्रेमीके वेशमें उससे मिलनेके लिये आ जाते हैं और वह जान लेता है तो पतिव्रता वृन्दाकी भाँति उसे छल समझकर अपनी टेक टूटी हुई जानकर भगवान्को शापतक देने लगता है। ऐसे प्रेमीके हाथ ही भक्त बिकते हैं। जो साधक भगवान्के लिये भक्तसे प्रेम करता है, उसके भी उद्धारके लिये ही भक्त चेष्टा करते हैं, परंतु वे उसके हाथ बिकते नहीं। जैसे जो पतिव्रता स्त्री भगवत्प्राप्तिके लिये कर्तव्य समझकर पतिकी सेवा करती है उसपर भी पति परम संतुष्ट ही होता है और उससे प्रेम ही करता है; परंतु उसके हाथ बिकता नहीं। पर जो केवल पतिके लिये ही पतिसे प्रेम करती है, भगवान्की भी परवा नहीं करती; उसके हाथों तो पति बिकनेके लिये तैयार रहता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्मना भव

(लेखक—आचार्य श्रीरामप्रतापजी शास्त्री)

इस मानवदेहकी बड़ी महिमा है, देवता भी इसकी चाह करते हैं; क्योंकि इस देहमें यथार्थ धर्मकी और परमात्म-तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति हो सकती है। इसे प्राप्त करके भी जो लोग परमात्माकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न नहीं करते, वे वस्तुतः प्रकृतिसे—मायासे मोहित हैं। यह मानव-योनि ज्ञान-विज्ञानका मूल-स्रोत है। जो इसके द्वारा इस जन्ममें अपने आत्मस्वरूप परमात्माको नहीं जान लेता, उसे कहीं भी, किसी योनिमें शान्ति या सुख नहीं प्राप्त हो सकता। यह जीव अपने कर्मोंके कारण विवश होकर अनेक योनियोंमें घूमता रहता है। परमात्माकी कृपासे ही यह कभी मनुष्य-देह प्राप्त करता है। यह शरीर इस प्रकार बहुत ही दुर्लभ है, इसमें परमात्माकी प्राप्ति और तत्त्वज्ञान और भी दुर्लभ है। परंतु यही एक ऐसी योनि है जिसमें जीवको सुखपूर्वक तत्त्व-ज्ञान और निष्ठारूप विज्ञानकी प्राप्ति सम्भव है। अतएव बुद्धिमान् पुरुषोंको उचित है कि वे अपने मनको प्रकृतिके गुणोंसे हटाकर परमात्मामें लगायें।

जगत्‌के सभी स्त्री-पुरुष केवल इसीलिये कार्य करते हैं कि उन्हें सुख प्राप्त हो और उनका दुःख दूर हो, कष्टसे छुटकारा मिले; परंतु उन कर्मोंसे न तो उनका दुःख दूर होता है और न उन्हें शाश्वत सुखकी ही प्राप्ति होती है। जीव सुखकी इच्छासे जिस-जिस वस्तु, साधन, पदार्थको जुटाता है, उसी-उसीको निर्दय काल विनष्ट कर देता है, जिसके लिये यह जीव कितना दुखी होता है, शोक करता है। इसका संक्षेपमें यही कारण है कि यह मन्दमति जीव अपने नाशवान् इस शरीरको, उसके सगे-सम्बन्धियोंको, घर, द्वार, खेत, पशु, धन एवं बन्धुओंको मोहवश अजर-अमर माने बैठा है। यहाँ यह जीव जिस-जिस योनिमें जन्म धारण करता है, उसी-उसीमें मस्त रहता है, सुख मानता है और उसे विरक्ति नहीं होती। यह प्रकृति-नटीसे ऐसा मोहित है कि कर्मवश नारकीय योनियोंमें भी जन्म लेनेपर भी वहाँके विष्ठा, मल-मूत्र और भोगोंमें ही सुख माननेके कारण उसे भी नहीं छोड़ना चाहता। यह मूढ़ अपने शरीर, स्त्री-पुत्र, गृह-द्वार, पशु-धन और बन्धु-बान्धवोंमें अत्यन्त आसक्त होकर उनके सम्बन्धमें भिन्न-भिन्न मनोरथोंकी कल्पना करता हुआ अपनेको बड़ा भाग्यशाली समझता है।

आत्मजायासुतागारपशुद्रविणबन्धुषु ।
आरूढमूलहृदयमात्मानं बहु मन्यते ॥

परंतु संसारके सब-के-सब प्रिय विषय एक मनुष्यकी कामनाओंको भी पूर्ण करनेमें समर्थ नहीं हैं। यदि वह अपनी इन्द्रियोंको वशमें न रखनेवाला संतोषी न हो।

यदृच्छयोपपन्नेन संतुष्टो वर्तते सुखम् ।
नासंतुष्टस्त्रिभिर्लोकैरजितात्मोपसादितैः ॥

प्रत्येक परिस्थितिमें सुख माननेवाला संयमी तथा संतोषी पुरुष अपना जीवन सुखसे व्यतीत करता है, परंतु अपनी इन्द्रियोंको वशमें न रखनेवाला त्रैलोक्यका राज्य पा जानेपर भी सदा दुखी ही रहता है; क्योंकि उसके हृदयमें असंतोषकी आग जो धधकती रहती है। इसमें संदेह नहीं कि धन और भोगोंसे संतुष्ट न होना ही जन्म-मृत्युका कारण है। अतः जो कुछ प्रारब्धसे मिल जाय उसीमें देव, ऋषि, पितर, मनुष्य आदिको उनका अपना अंश देकर और इस प्रकार यज्ञद्वारा बचे हुए प्रसादको जो ग्रहण करता है उसे ही जन्म-मृत्युके बन्धनसे छुटकारा मिलता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्य-देह मिलनेपर यदि कुलीनता, कर्म, अवस्था, रूप, विद्या, ऐश्वर्य और धन आदिके कारण अहंकार न हो जाय तो समझना चाहिये कि यह भगवान्की बड़ी कृपा है। कुलीनता, पद तथा धन आदि ऐसे बहुत-से कारण हैं जो अभिमान उत्पन्न करके मनुष्यको उसके श्रेय-साधनसे वञ्चित कर देते हैं। जिससे वह इन समस्त प्राणियोंमें स्थित उन परमात्मासे ही द्वेष करने लगता है। अतः कभी उसके मनको शान्ति नहीं मिल पाती।

द्विषतः परकाये मां मानिनो भिन्नदर्शिनः।
भूतेषु बद्धवैरस्य न मनः शान्तिमृच्छति॥

जब निरन्तर सभी प्राणियोंमें भगवान्की भावना की जाती है तब थोड़े ही समयमें चित्तसे स्पर्धा, ईर्ष्या, तिरस्कार और अहंकार आदि दोष दूर होकर यह निश्चय हो ही जाता है कि समस्त देहधारियोंकी आत्मा एक ही है और कार्य-कारणसे, मायासे उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। वास्तवमें उस परमात्मामें ही पहले यह जगत् लीन था, मध्यमें भी यह उसीमें स्थित है और अन्तमें भी यह पुनः परमात्मामें ही लीन हो जायगा। वे परमात्मा ही इस जगत्के आदि, मध्य और अन्त हैं। ठीक, वैसे ही जैसे घड़ेका आदि, मध्य और अन्त मिट्टी ही है। साथ ही वे ज्यों-के-त्यों हैं अर्थात् पूर्ण हैं—

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

जो लोग भगवान्की मायासे मोहित होकर देहको ही आत्मा माने बैठे हैं, उन्हींको ऐसा आत्म-मोह होता है कि यह मित्र है, यह शत्रु है और यह उदासीन है।

आत्ममोहो नृणामेव कल्प्यते देवमायया।
सुहृद् दुर्हृदुदासीन इति देहात्ममानिनाम्॥

भगवान् श्रीकृष्णका कथन है कि यह अत्यद्भुत त्रिगुणमयी मेरी माया बड़ी दुस्तर है; परंतु जो पुरुष मुझमें मन लगाकर मुझको ही निरन्तर भजते हैं वे इस मायाको सहज ही पार कर जाते हैं।

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥

जैसे सोया हुआ पुरुष किसी पदार्थके न रहनेपर भी स्वप्नमें भोक्ता, भोग्य और भोगरूप फलोंका अनुभव करता है, उसी प्रकार अज्ञानी पुरुष इस संसारकी मायाका अनुभव करते हैं। समस्त प्राणियों-का आत्मा अपने हित और अहितको भलीभाँति जानता है; क्योंकि मनुष्य अपने प्रत्यक्ष अनुभव और अनुमानके द्वारा अपने हित और अहितका निर्णय करनेमें पूर्णतः समर्थ है। हमारे समक्ष तराजूके पलड़ोंकी भाँति विचारकी दो कोटियाँ हैं, उनमें एक कोटिमें, जिसमें यह जीव निरन्तर सुख मान रहा है वे, समस्त सांसारिक सुख हैं और दूसरी कोटिमें श्रीपति भगवान् हैं। अब युक्ति और अनुभवसे हम भलीभाँति विचार करें कि इन दोनोंमें विश्रान्ति अर्थात् सुख और शान्ति किसमें है। जिसमें ये वस्तुएँ मिलें उसीको हम ग्रहण करें। भगवान् श्रीकृष्ण उद्धवसे कहते हैं—

कुटुम्बेषु न सज्जेत न प्रमाद्येत् कुटुम्ब्यपि।
विपश्चिन्नश्वरं पश्येददृष्टमपि दृष्टवत्॥

गृही पुरुष कुटुम्बमें आसक्त न हो और न प्रमाद करे। बुद्धिमान् पुरुषको यह समझ लेना चाहिये कि इस लोककी सभी वस्तुएँ नाशवान् हैं। यहाँ सुखका अत्यन्ताभाव है अर्थात् यहाँ न कभी सुख था और न रहेगा। जहाँ जन्म-मृत्युकी परम्परा चलती हो वहाँ भला, सुखकी गन्ध कहाँ? यह जो स्त्री-पुरुष, पिता-पुत्र, भाई-बन्धु और गुरुजनोंका मिलना-जुलना है। यह वैसा ही है जैसा प्याऊपर कुछ बटोही इकट्ठे हो गये हों। सबको अलग-अलग रास्ते जाना है। जैसे स्वप्न नींद टूटनेतक ही रहता है वैसे ही इन मिलने-जुलने-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वालोंका सम्बन्ध भी बस, शरीरके रहनेतक ही रहता है, फिर कौन किसको पूछता है ?

पुत्रदाराप्तबन्धूनां संगमः पान्थसंगमः ।
अनुदेहं वियन्त्येते स्वप्नो निद्रानुगो यथा ॥

संसारासक्त व्यक्ति सोचते ही रहते हैं कि हाय ! हाय ! मेरे मा-बाप बूढ़े हो गये, पत्नीके बाल-बच्चे अभी छोटे-छोटे हैं । मेरे न रहनेपर ये दीन-अनाथ और दुखी हो जायँगे; फिर इनका जीवन कैसा होगा ! इस प्रकार घर-गृहस्थीमें, सांसारिक वासनाओंमें, जिसका चित्त विक्षिप्त हो रहा है, वह मूढ़-बुद्धि पुरुष विषय-भोगोंसे कभी तृप्त नहीं होता । उन्हींमें उलझकर अपना जीवन खो बैठता है और मृत्यु होनेपर घोर तमोमय नरकमें जाता है । उससे छुटकारा पानेका उपाय एक ही है जो भगवान् स्वयं बतलाते हैं—

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः ॥
(गीता ९ । ३४)

'केवल मुझ सच्चिदानन्दघन वासुदेवमें ही मन लगाओ और मुझे ही हर तरहसे भजो । मेरा ही पूजन-नमस्कार करो । इस प्रकार करनेपर तुम मुझे ही प्राप्त करोगे ।' उद्धवसे तो उनका स्पष्ट ही कहना है—'**धर्मो मद्भक्तिकृत् प्रोक्तो ज्ञानं चैकात्म्यदर्शनम् ।**' 'उद्धव ! जिससे मेरी भक्ति हो, वही धर्म है, जिससे ब्रह्म और आत्माकी एकताका साक्षात्कार हो वही ज्ञान है ।' यद्यपि यह मनुष्यशरीर नाशवान् है; परंतु इसके द्वारा परमार्थकी, सत्यवस्तुकी प्राप्ति हो सकती है । बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि वह यह जानकर मृत्युसे पूर्व ही सावधान होकर ऐसी साधना कर ले, जिससे जन्म-मृत्युकी परम्परासे सदाके लिये छुटकारा मिल जाय ! इन्द्रियोंको और अपने प्राणोंको वशमें रक्खे । मनको एक क्षणके लिये भी स्वतन्त्र न होने दे । उसकी एक-एक गतिविधिको देखता रहे । इस प्रकार सत्त्वसम्पन्न बुद्धिद्वारा धीरे-धीरे मनको अपने वशमें कर लेना चाहिये और भगवान्में उसे अनन्य भावसे लगाये रखनेका सतत प्रयत्न करना चाहिये ।

सत्त्वसम्पन्नया बुद्ध्या मन आत्मवशं नयेत् ।

भगवान् कपिलका कथन है—जबतक समस्त प्राणियोंमें मेरी भावना—भगवद्भावना न हो जाय तबतक मन, वाणी, शरीरके सभी संकल्पों और कर्मोंद्वारा भगवान्‌की उपासना करता चले ।

यावत्सर्वेषु भूतेषु मद्भावो नोपजायते ।
तावदेवमुपासीत वाङ्मनःकायवृत्तिभिः ॥

मनको लकवा मार गया

नाथ ! तुम्हारी कितनी करुणा, कैसा अतुल तुम्हारा दान ।
हटा असत् मायाका पर्दा, दिया स्वयं ही दर्शन-ज्ञान ॥
नहीं रह गया अब तो कुछ भी अन्य, छोड़कर तुमको एक ।
मिथ्या जगमें रमनेवाले, रहे न मिथ्या बुद्धि-विवेक ॥
आते लोग सुनाते अपनी विषम समस्याओंकी बात ।
सुलझानेको उन्हें, पूछते साधन सविनय, कर प्रणिपात ॥
कहूँ उन्हें समझाऊँ क्या मैं जब न दीखता कुछ सत् सार ।
सुलझानेवाले उस मनको गया सर्वथा लकवा मार ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवात्माका स्वरूप

(लेखक—श्रीयुगलसिंहजी एम्० ए०, बार-एट-ला, विद्यावारिधि)

शंकराचार्यका 'कस्त्वम्', सुकरातका 'Know Thy-self' आपेको जानो और महर्षि रमणका 'तुम क्या हो'—ये प्रश्न हमारा ध्यान आत्मस्वरूपकी ओर आकर्षित करते हैं। आत्मा सो परमात्मा—इस लोकोक्तिमें आत्मा जीव या जीवात्माके अर्थमें प्रयुक्त हुआ है। जीवात्मा क्या है? यह विवेचन करनेसे पहले यह सम्यक् जान लेना आवश्यक है कि वह क्या नहीं है। आत्माके सम्बन्धमें अनेक धारणाएँ हैं।

भारतमें प्राचीन कालसे चार्वाक दर्शनका यह सिद्धान्त है कि देहसे भिन्न आत्माका कोई अस्तित्व नहीं है। चार्वाकको बृहस्पतिका शिष्य कहा गया है। उसके ये दो श्लोक प्रसिद्ध हैं—

देहस्थौल्यादियोगाच्च स एवात्मा न चापरः।
न स्वर्गो नापवर्गो वा नैवात्मा पारलौकिकः॥
यावज्जीवं सुखं जीवेदृणं कृत्वा घृतं पिबेत्।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः॥

अर्थात् 'स्थूल भूतोंके योगसे देहकी उत्पत्ति है और वही आत्मा है न कि कोई अन्य। न स्वर्ग है, न मोक्ष है और न परलोक है। जबतक जीओ सुखसे जीवन बिताओ और ऋण करके भी घीका सेवन करना चाहिये; क्योंकि शरीरके भस्म हो जानेपर फिर पुनर्जन्म कहाँ।' यह मत देहात्मवाद है। आधुनिक भौतिकवादी भी इसी मतके अनुयायी हैं। इसी मतका प्रचारक यूनानमें एपीक्यूरस (३४१–२७० ई० पू०) हुआ था। उसकी धारणा थी कि परमाणुओंसे बना मूर्त्त संसार ही सत्य है और सुखसे रहना ही जीवनका चरम उद्देश्य है; शरीरके साथ ही आत्मा प्रकट होता है और उसके नष्ट होनेपर आत्माका नाश हो जाता है।

चार्वाकका देहात्मवाद और उसका परिणाम सुखवाद साधारण जनोंमें इतना प्रिय हुआ कि वह लोकायत भी कहलाने लगा। आध्यात्मिक प्रवृत्तिके पोषक पण्डितोंके लिये इस विचारधारासे लोहा लेना परम कर्तव्य बन गया। महर्षि कपिलने निज युक्तिरूपी कटारके प्रहारसे इस मतके मस्तकको छिन्न-भिन्न कर डाला। उनका सूत्र है—'**न सांसिद्धिकं चैतन्यं प्रत्येकादृष्टेः**'—अर्थात् देहका स्वाभाविक धर्म चैतन्य नहीं है; क्योंकि प्रत्येक भूतमें चेतनता नहीं देखी जाती। जिस पदार्थका जो धर्म है वह सदा उसके साथ देखा जाता है, चाहे पदार्थोंका समुदाय रहे या एक ही पदार्थ रहे। यदि चैतन्य देहका धर्म होता तो वह देहसे अलग नहीं हो सकता; अतः शरीरकी विद्यमानतामें किसी-की कभी मृत्यु नहीं होती। पर देहमें चैतन्यका अभाव होनेपर देह मृत हो जाता है। सांख्यदर्शन आत्माको अनादि, चेतन, द्रष्टा, भोक्ता और प्रकृतिसे पृथक् मानता है और पुर (देह) में रहनेके कारण उसकी संज्ञा पुरुष है। प्रकृति अनादि, अचेतन और पुरुषकी भोग्या है।

महर्षि पतञ्जलिने आत्माके सम्बन्धमें सांख्य-दर्शनका अनुसरण किया है और प्रकृतिकी विकृति चित्तवृत्तिसे पृथक्ताको स्वरूप-स्थिति या कैवल्य बतलाया है। कैवल्यका अर्थ अकेलापन है। कैवल्यपादका अन्तिम सूत्र (४–३४) यह है—**पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तिरिति**—अर्थात् प्रकृतिके गुणोंका जब पुरुषके लिये कोई कर्तव्य शेष नहीं रह जाता तो वे अपने कारण (अव्यक्त प्रकृति) में विलीन हो जाते हैं और यह स्थिति कैवल्य या स्वरूपप्रतिष्ठा कही जाती है।

दोनों दर्शनोंके अनुसार पुरुष मूलतः प्रकृतिसे पृथक् है। दोनोंका संयोग होनेपर प्रकृति चेतनवत् कार्य करती है और पुरुष चित्तकी वृत्तियोंके अनु प निज स्वरूप समझने लगता है जैसा कि सूत्र है—**वृत्तिसारूप्यमितरत्र** (१।४) अर्थात् आत्माका स्वरूप चित्तवृत्तिके सदृश हो जाता है।

अब न्यायदर्शन और वैशेषिक दर्शनकी दृष्टिसे आत्मा और देहके सम्बन्धमें विचार करना है। न्यायके सूत्रकार महर्षि अक्षपाद हैं, जिनका प्रसिद्ध नाम गौतम मुनि है। न्यायमें आत्मा, शरीर, बुद्धि, मन इत्यादि बारह प्रमेय माने गये हैं। प्रमाका अर्थ यथार्थ ज्ञान है। प्रमा प्रमाणों-द्वारा प्राप्त होती है और प्रमाणोंद्वारा जिसका यथार्थ ज्ञान हो सके वह 'प्रमेय' कहलाता है। गौतमने प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द—ये चार प्रमाण माने हैं। आप्त पुरुषोंके वचनोंको शब्द-प्रमाण कहते हैं। **न्यायसूत्र**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१–१–१०) में इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख और ज्ञानको आत्माके लिङ्ग या चिह्न कहा गया है। यहाँ आत्माको जीवात्मा अर्थात् शरीरमें स्थित समझना चाहिये और वह नित्य है। इच्छा, द्वेष इत्यादि आत्माके अनुमानके चिह्न किस प्रकार हैं, इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है। जिस पुरुषने पहले आमके मधुर रसका स्वाद लिया है उसे आम देखनेपर फिर उसका आस्वादन करनेकी इच्छा होती है; अतः इच्छा करनेवाला वही है जिसने पहले आम चख लिया है, न कि शरीर, जो प्रतिक्षण बदलता रहता है। शरीरको आत्माका भोगायतन कहा है। यथा–**'चेष्टेन्द्रियार्थाऽऽश्रयः शरीरम्'** (१ । १ । ११) अर्थात् शरीर चेष्टा, इन्द्रियों और विषयोंका आश्रय है। अध्याय तृतीयके प्रथम आह्निकके सूत्रोंके भाष्यमें इस बातका विशद विवेचन है कि आत्मा शरीर, बुद्धि, इन्द्रिय इत्यादिसे भिन्न है और न उनका संघातमात्र है।

महर्षि कणादका वैशेषिक दर्शन पदार्थोंके विशेष या भेदका विवेचन करता है। पदार्थ वह है जो प्रतीति या अनुभवसे सिद्ध हो सके। धर्मी पदार्थको द्रव्य (Substance) कहा है। नौ द्रव्य—पञ्चमहाभूत, काल, दिशा, आत्मा और मन–माने गये हैं। आत्मा ज्ञानस्वरूप है और मन या अन्तःकरण ज्ञानका साधन है। न्यायदर्शनके सदृश इस दर्शनमें भी माना गया है कि **'सुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नाश्चात्मनो लिङ्गानि** (३ । २ । ४) अर्थात् सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष और प्रयत्नको आत्माके लिङ्ग माने हैं। भाष्यकार प्रशस्तपादने निज ग्रन्थ 'पदार्थधर्मसंग्रह'में लिखा है कि जैसे रथके व्यापारका कारण सारथिरूप चेतन पदार्थ है वैसे ही इष्ट वस्तुको पानेका प्रयत्न शरीरमें चेतन पदार्थ आत्मासे होता है।

आत्मा अनेक माने गये हैं। यथा–**'व्यवस्थातः नाना'** (३ । ३ । २०) और सूत्र २१ में कहा है **'शास्त्रसामर्थ्याच्च'** अर्थात् शास्त्रके अनुसार अनेक आत्मा हैं; क्योंकि मुक्त आत्मा अनेक माने गये हैं। यही धारणा नैयायिकोंकी है कि आत्मा अनेक हैं। सांख्यदर्शनके सूत्र **'जन्मादिव्यवस्थातः पुरुषबहुत्वम्'** (१ । १४९) अर्थात् जन्मादि व्यवस्थासे पुरुष या जीवात्मा बहुत हैं। वे चेतन और प्रकृति अचेतन है।

जैमिनि मुनिने मीमांसादर्शनमें वेदविहित कर्मकाण्डपर विचार करते और आत्माको नित्य मानते हुए **'स्वर्गकामो यजेत'** अर्थात् स्वर्ग-प्राप्तिके लिये यज्ञ करना आवश्यक बतलाया है। महर्षि वेदव्यासने उत्तरमीमांसा या वेदान्तदर्शनमें अध्याय ३ पाद ३ के सूत्र ५३ । ५४ में देहात्मवादका खण्डन किया है।

व्यतिरेकस्तद्भावाभावित्वान्न तूपलब्धिवत्।
(३ । ३ । ५४)

अर्थात् शरीरसे आत्मा भिन्न है; क्योंकि शरीरके विद्यमान होते हुए भी उसमें आत्मा नहीं रहता। तात्पर्य यह है कि शरीर क्षेत्र है और आत्मा क्षेत्रज्ञ है। ब्रह्मसूत्रोंपर निज शारीरक भाष्यमें शंकराचार्यने देहात्मवादके दुर्गको ध्वस्त कर दिया है। धर्मी यथा अग्नि और उसका धर्म यथा दाहकत्व–एक दूसरेसे अलग नहीं हो सकते। यदि शरीरका धर्म आत्मा होता तो शरीरकी विद्यमानतामें आत्मा उससे अलग नहीं हो सकता। पर यह प्रत्यक्ष है कि मरनेपर शवमात्र पड़ा रहता है, पर चेतन तत्त्व आत्मा चला जाता है। उन्होंने परकाया-प्रवेशद्वारा यह सिद्ध कर दिखाया कि शरीरसे आत्मा भिन्न है, जैसे निवासी और उसका निवासस्थान।

जर्मन वैज्ञानिक हेकलने निज ग्रन्थ 'दि रिडल ऑव दि यूनिवर्स' में यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया है कि परमाणुओंमें चेतनता निहित है; अतः मनुष्यमें चेतनता शरीरका कार्य है। पर यदि महाभूतोंमें चेतनता होती तो उनसे निर्मित प्रत्येक वस्तुमें वह दिखायी पड़ती। जबतक आत्मा शरीरमें रहता है तबतक ही वह चेतनवत् प्रतीत होता है; अतः चेतनताका कारण आत्मा ही है। यह भी कहा जाता है कि शरीरसे ही बाह्य जगत्‌की प्रतीति होती है। पर जैसे दीपक देखनेका साधनमात्र है न कि उसका कारण; इसी प्रकार देह बाह्य ज्ञानका साधनमात्र है। आधुनिक अनुसंधानोंसे यह सिद्ध हो गया है कि इन्द्रियोंकी सहायता बिना भी बाह्यजगत्‌का ज्ञान प्राप्त हो सकता है।

भारतीय सेनाके एक अंग्रेज अफसर श्री एल० पी० फैरल अनेक बरसोंसे इस खोजमें लगे हुए थे कि आत्माकी सत्ता शरीरसे स्वतन्त्र है, या नहीं और पुनर्जन्मका व्यापक विश्वास किस आधारपर है। उन्हें जो प्रत्यक्ष प्रमाण प्राप्त हुए, उनका रोचक वर्णन साप्ताहिक हिन्दुस्तानके १७-५-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९५९ के अङ्कमें प्रकाशित हुआ है। उन्होंने अपनी आँखोंके सामने एक वृद्ध योगीको मृत युवकके शरीरमें प्रवेशकर चलते-फिरते देखा और उससे संपर्क स्थापित कर सारा रहस्य अवगत किया। इसी प्रकार पुनर्जन्मका भी अकाट्य प्रमाण प्राप्त किया। विचार-संक्रमण (टेलीपेथी) और दिव्यदृष्टि (क्लेरवॉयेन्स) के सम्बन्धमें प्रो० जे० बी० राइन-सरीखे वैज्ञानिकोंके प्रयोगात्मक अनुसंधानोंने सिद्ध कर दिखाया है कि भौतिक साधनोंके बिना भी दूसरेके विचार और अति दूरस्थ या भविष्य घटनाओंका ज्ञान हो सकता है। यह भी प्रमाणित हो गया है कि संसारके भिन्न-भिन्न भागोंमें जीव एक देह त्याग कर नया जन्म ग्रहण करते हैं और उन्हें पूर्वजन्मकी स्मृति बनी रहती है।

आत्मा देहसे भिन्न है—यह विवेचन होनेके पश्चात् अब यह विचार करना है कि वह वास्तवमें क्या है। शरीरमें निवास करनेवाले आत्माको देही, शरीरी, पुरुष, जीव या जीवात्मा कहते हैं। जो पुरुष आवागमनके चक्रसे मुक्त हो जाता है, वह मुक्तात्मा कहलाता है। यह अवस्था मोक्ष या निर्वाण है। यह कैसे प्राप्त होती है—इसका वर्णन शिवगीतामें इस प्रकार है—

मोक्षस्य नहि वासोऽस्ति न ग्रामान्तरमेव वा।
अज्ञानहृदयग्रन्थिनाशो मोक्ष इति स्मृतः॥
(१३ । ३२)

अर्थात् मोक्ष ऐसी वस्तु नहीं है, जिसका किसी स्थानमें निवास हो या जिसके लिये किसी दूसरे ग्राम जाना पड़े, अन्तःकरणसे अज्ञानका नाश हो जाना ही मोक्ष है। मुक्तात्माके लक्षण गीताके स्थितप्रज्ञ, भक्तिमान् और त्रिगुणातीतके समान है और मुक्तावस्था ही ब्राह्मी स्थिति है।

श्रीशंकराचार्यने मुक्तावस्थामें आत्माका वर्णन इस प्रकार किया है—

योऽयमात्मा स्वयंज्योतिः पञ्चकोशविलक्षणः।
अवस्थात्रयसाक्षी सन् निर्विकारो निरञ्जनः॥
सदानन्दः स विज्ञेयः स्वात्मत्वेन विपश्चिता।
सर्वं येनानुभूयन्ते यः स्वयं नानुभूयते।
तमात्मानं वेदितारं विद्धि बुद्ध्या सुसूक्ष्मया॥

अर्थात् यह आत्मा जो स्वयंप्रकाश, अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय कोशोंसे भिन्न तथा जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्थाओंका साक्षी होकर भी निर्विकार, निर्मल और नित्यानन्द है, उसे ही विद्वान् पुरुष अपना आत्मा समझे; उसके द्वारा सबका अनुभव किया जाता है, पर वह स्वयं इन्द्रियोंद्वारा जाना नहीं जाता। सबको जाननेवाले उस आत्माको तू अपनी सूक्ष्म बुद्धिके द्वारा जान।

गीताके दूसरे अध्यायके श्लोक १७ से २५ तक भगवान् श्रीकृष्णने आत्माको अव्यक्त, अविनाशी, अजन्मा, नित्य, सनातन, अवध्य, अचिन्त्य, अविकार्य इत्यादि लक्षणोंसे व्यक्त किया है। पञ्चदश अध्यायके श्लोक सप्तममें **'ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः'**—देहमें जीवात्माको भगवान्ने अपना ही अंश बतलाया है। आगे चलकर आठवें श्लोकमें कहा है कि जैसे वायु गन्धको ग्रहण करके अन्यत्र ले जाती है, वैसे ही जीवात्मा जिस पहले शरीरको त्यागता है, उससे मनसहित इन्द्रियोंके संस्कारोंको ग्रहण करके नवीन देहमें ले जाता है। इस बातका सारांश यह है कि स्थूल शरीर शवके रूपमें पड़ा रहता है। पर मन, बुद्धि, अहंकार इत्यादि तत्त्वोंका सूक्ष्म शरीर जीवात्माका संगी रहता है। गीताके सप्तम अध्यायके श्लोक ४ और ५ में कहा है कि सूक्ष्म या लिङ्ग देह अपरा प्रकृतिके अन्तर्गत है और जीवरूप चेतन तत्त्व भगवान्की परा प्रकृति है। छठे श्लोकमें कहा गया है कि भगवान् सम्पूर्ण जगत्के मूल कारण हैं और समस्त जीव इन दोनों प्रकृतियोंसे ही उत्पत्तिवाले हैं। ईश्वर अनादि है, अतः गीतामें **'प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि'** (१३ । १९) प्रकृति और जीवात्मा भी अनादि बतलाये गये हैं।

सूक्ष्म शरीरके सम्बन्धमें 'धर्मयुग' ९ । ४ । १९६७ में प्रकाशित पूर्वजन्मकी स्मृति पठनीय है। इंगलैंडके एक नगरमें पोलक नामक पुरुषकी दो लड़कियोंकी मृत्यु दुर्घटनासे हो गयी। उस समय जौआना ११ और जैकलीन ६ वर्षकी थी। कुछ समयके बाद उसके यहाँ दो जुड़वाँ कन्याओंने जन्म लिया और उनका नाम जेनिफर और गिलियन रक्खा गया। पहली लड़की चार मिनट छोटी थी। दोनोंके स्वभावोंमें पूर्वजन्मकी समानता पायी गयी और वस्तुओं तथा घटनाओंकी स्मृति सही-सही प्रमाणित हुई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवात्माके आकारके बारेमें कठोपनिषद् कहता है कि **'अगुष्ठमात्रः पुरुषः'** (२ । ३ । १७) अर्थात् जीवका परिमाण अँगूठेके बराबर है। श्वेताश्वतरोपनिषद् इस कथनको और भी स्पष्ट कर देता है—

अङ्गुष्ठमात्रो रवितुल्यरूपः
संकल्पाहंकारसमन्वितो यः।
बुद्धेर्गुणेनात्मगुणेन चैव
आराग्रमात्रो ह्यपरोऽपि दृष्टः॥
(५ । ८)

वालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च।
भागो जीवः स विज्ञेयः स चानन्त्याय कल्पते॥
(५ । ९)

अर्थात् देखा गया है कि जीवका आकार अँगूठेके बराबर है। वह सूर्यके समान रूपवाला है, संकल्प और अहंकारसे युक्त है, बुद्धिके और अपने गुणोंके कारण आरेकी नोककी नोक-जैसा है। बालकी नोकके दस हजार भाग करनेपर एक भाग जितना सूक्ष्म हो सकता है, उसके समान उसका आकार है और वह असीम हो सकता है।

जीवके आकारका अङ्गुष्ठमात्र या बालकी नोकका दस हजारवाँ भाग होनेकी संगति इस प्रकार है। सूक्ष्मशरीरमें आत्माका रूप अङ्गुष्ठमात्र माना गया है। स्थूल शरीरसे वियोग होनेके पश्चात् जीव इसी रूपमें रह सकता है। वह जब चाहे तब संकल्पमात्रसे निज पूर्व स्थूलदेहमें प्रकट हो सकता है। रामायणमें सीताकी अग्निपरीक्षाके समय देवलोकवासी दशरथका पूर्व शरीर धारणकर आनेका उल्लेख है और महाभारतके अनुसार इसी प्रकार जनमेजयके स्वर्गवासी पिता परीक्षित् स्थूलशरीरमें प्रकट हुए थे। अरविन्दाश्रमसे प्रकाशित 'अदिति' पत्रिकाके एक लेखमें यह बात प्रकाशित हुई है कि अरविन्दके दिवंगत गुरु उनके शरीरमें प्रवेशकर 'वन्दे मातरम्'में देशोत्थानके लिये अपने विचार [व्यक्त] किया करते थे, जब कि अरविन्द अपने मित्रोंसे बातें करते रहते थे और उनकी लेखनी चलती रहती थी। सूक्ष्म शरीरकी गतिमें किसी प्रकारका भौतिक पदार्थ बाधा नहीं दे सकता। वह स्थूल शरीरका स्वामी है।

कारणशरीर सूक्ष्मशरीरसे भी सूक्ष्मतर है। उसका आकार वालाग्रके **'शतभागस्य शतधा'** श्रुतिके अनुसार है। कल्पके अन्तमें जीवात्मा इसी रूपमें परमात्माकी प्रकृतिमें लीन प्राप्त होता है। जैसा कि गीतामें वर्णन है—

सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम्।
कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम्॥
(९ । ७)

अर्थात् हे अर्जुन! कल्पके अन्तमें सब जीव मेरी प्रकृतिको प्राप्त होते हैं यानी लय होते हैं और कल्पके आदिमें मैं उनकी रचना करता हूँ। आगेके श्लोकमें कहा है कि **'भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं** प्रकृतेर्वशात्'—संस्कारोंके वशमें हुए इस समस्त जीव-समुदायको मैं उनके कर्मोंके अनुसार रचता हूँ। कारणशरीर संस्कारोंका संग्रह है और कर्मोंसे संस्कार बनते हैं, अतः कारणशरीर संस्कारमय है। कतिपय मनीषियोंकी मान्यता है कि गर्भाधानके समय जीव इसी सूक्ष्मतम रूपमें प्रवेश करता है। सारांश यह है—कारणशरीरके अन्तर्गत लिङ्गदेह या सूक्ष्मशरीर है और वह स्थूलशरीरमें व्यक्त होता है। आधुनिक विज्ञान भी सिद्ध करता है कि जो तत्त्व जितना सूक्ष्म होता है, उतना ही अधिक शक्तिशाली है और हाइड्रोजन बम इस सिद्धान्तकी पुष्टि करता है।

निष्कर्ष यह है कि जीवात्मा स्थूलशरीरका कार्य नहीं है; वह तो उससे पृथक् सत्ता रखता है। स्थूल विनाशशील शरीरमें रहता हुआ भी वह अविनाशी तत्त्व है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब भगवान् श्रीकृष्ण शान्तिदूत बने

(लेखक—पं० श्रीबलरामजी शास्त्री, आचार्य, एम० ए०, साहित्यरत्न)

इतिहास इसका साक्षी है कि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र क्रान्तिद्वारा ही धर्मकी स्थापना और अधर्मका नाश करनेके लिये अवतीर्ण हुए थे और अन्याय—अत्याचार करनेवाले दुष्ट राजाओंको मिटाकर उन्होंने सुराज्यकी स्थापना की। पर क्रान्तिकारी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने सर्वत्र क्रान्तिका ही प्रयोग नहीं किया; प्रत्युत् शान्तिका भी अवलम्बन लिया। अज्ञातवास समाप्त करके पाण्डव जब वापस आये तो उनके सम्मुख जीवन-संचालनकी समस्या उत्पन्न हुई। कुलपरम्परा-के अनुसार पाण्डवोंको आधा राज्य मिलना चाहिये था। पाण्डव धर्मके पोषक थे, सदाचारी थे; किंतु वीर थे, योद्धा थे। दुष्ट दुर्योधन उनकी वीरतासे परिचित भी और अपरिचित भी था। उसे घमंड था। अपने दुष्ट साथियोंपर भरोसा था। महाराज धृतराष्ट्र ज्ञानी थे। उन्हें पाण्डवोंकी शक्तिका पता था। वे यह भी जानते थे—'जहाँ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र हैं, जहाँ वीरवर धनुषधारी अर्जुन हैं, वहीं 'विजय' भी है। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अर्जुनके सखा हैं अतः पाण्डवोंकी विजय भी निश्चित है।' धृतराष्ट्रने यह समझ लिया था कि पाण्डवोंको उनका अधिकार मिलना चाहिये। दुर्योधनने अहंकार और अपने साथियोंके बहकावेमें आकर पाण्डवोंको कुछ भी देना नहीं चाहा। अवसरके औचित्यको समझकर राजनीतिज्ञ महाराज धृतराष्ट्रने संजय-को पाण्डवोंकी भावना जाननेके लिये भेजा। संजय पाण्डवों-के पास पहुँचकर, उनकी भावना समझकर वापस आ गये। इधर पाण्डवोंकी भावनासे राजनीतिज्ञ राजा धृतराष्ट्रको निराशा हुई। निराशा होनेका एकमात्र कारण था दुर्योधनका हठ। धृतराष्ट्र अपने पुत्रोंके अनुचित स्नेहमें पड़कर पाण्डवों-को राज्यसे वञ्चित भी रखना चाहते थे।

संजयके वापस चले जानेपर इधर पाण्डवोंने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे सलाह ली। भगवान् श्रीकृष्णने पाण्डवोंमें प्रत्येक भाईसे विचार-विमर्श किया। सर्वसम्मतिसे यह निश्चय हुआ कि दुर्योधनको समझाने और भविष्यमें होनेवाले युद्ध-को बचानेके लिये भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र स्वयं 'शान्तिदूत' बनकर महाराज धृतराष्ट्रके पास जायँ। भगवान्‌की यह सलाह उत्तम जान पड़ी। वीर पाण्डव केवल पाँच गाँव लेकर ही अपना जीवन यापन करना चाहते थे। भगवान्‌ने भी शान्ति-दूत बनकर कौरव-सभामें जानेका निर्णय कर लिया। जब भगवान्‌ने कौरवोंको समझानेके लिये हस्तिनापुर जानेका निर्णय कर लिया, तब महाराज युधिष्ठिरने भगवान् श्रीकृष्ण-चन्द्रसे अपना मन्तव्य व्यक्त करते हुए कहा—'मित्रवत्सल श्रीकृष्ण! मित्रोंकी सहायताके लिये यही उपयुक्त अवसर आया है। मैं आपके सिवा दूसरे किसीको ऐसा नहीं देखता जो इस विपत्तिसे हमलोगोंका उद्धार कर सके। राजा धृतराष्ट्र-को राज्यका बड़ा लोभ है। उनके मनमें पाप बस गया है। अतः वे अपने अनुरूप व्यवहार न करके राज्य दिये बिना ही हमारे साथ संधिका मार्ग ढूँढ़ रहे हैं, मधुसूदन! मैंने केवल पाँच गाँव ही माँगे थे। नीच दुर्योधन उसे भी नहीं स्वीकार कर रहा है। इससे बढ़कर कष्टकी बात और क्या हो सकती है? हमलोग किसी भी न्यायसे अपनी पैतृक सम्पत्तिका परित्याग करनेके योग्य नहीं हैं। इसके लिये प्रयत्न करते हुए यदि हमलोगोंका वध हो जाय तो वह भी श्रेयस्कर है। माधव! इस विषयमें हमारा ध्येय यही है कि हम और कौरव आपसमें संधि करके शान्तभावसे रहकर उस सम्पत्तिका समान रूपसे उपभोग करें। हमलोग न तो राज्य त्यागना चाहते हैं और न तो कुलके विनाशकी इच्छा ही रखते हैं। यदि नम्रता दिखानेसे भी शान्ति हो जाय तो वही सबसे बढ़कर है। ऐसे समयमें आप क्या उचित समझते हैं? हम कैसा बर्ताव करें, जिससे हमें अर्थ और धनसे वञ्चित होना न पड़े।'

भगवान् श्रीकृष्ण युधिष्ठिरका मन्तव्य समझकर बोले—'मैं दोनों पक्षोंके हितके लिये कौरवोंकी सभामें जाऊँगा, वहाँ पहुँचकर आपके लाभमें, किसी प्रकारकी बाधा न पहुँचाते हुए, यदि मैं दोनों पक्षोंमें, संधि करा सका तो समझूँगा कि मेरे द्वारा यह महान् फलदायक एवं बहुत बड़ा कार्य सम्पन्न हो गया। ऐसा करनेपर एक दूसरेके प्रति, रोषमें भरे हुए इन कौरवों एवं सृंजयों और पाण्डवोंको मृत्युके मुखसे बचा लूँगा।'

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके विचारोंको समझकर युधिष्ठिर पुनः बोले—'भगवन्! मेरी यह भावना नहीं कि कौरवों-के पास आप 'शान्तिदूत' बनकर जायँ। यदि दुष्ट दुर्योधन द्रोहवश आपके साथ कोई अनुचित बर्ताव कर बैठा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो हमारे लिये कष्टकी बात होगी ।' युधिष्ठिरको आश्वासन देते हुए और सर्वप्रकारसे विश्वास दिलाते हुए भगवान्ने गम्भीर होकर कहा—'राजन् ! दुर्योधन कितना पापाचारी है, यह मैं भलीभाँति जानता हूँ । वहाँ जाकर संधि-प्रस्ताव करनेसे हमारी प्रतिष्ठामें आँच नहीं आयेगी । सम्पूर्ण देशके राजाओंकी दृष्टिमें हम सब निन्दाके पात्र नहीं बन सकेंगे । मेरा वहाँ जाना कदापि निरर्थक न होगा । सम्भव है वहाँ जानेसे कार्यकी सिद्धि हो जाय । यदि काम न बना तो भी हम सब निन्दासे अवश्य बच जायँगे ।' भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र भूत, भविष्यके द्रष्टा हैं, वर्तमानके निर्माता हैं । जगद्गुरु हैं । जगत्-स्रष्टा हैं । लोकपरम्पराकी रक्षाके लिये महासंहारकी ज्वालासे दोनों पक्षोंको बचानेके लिये उन्होंने शान्तिदूत बनकर अपने मान-सम्मानको तिलाञ्जलि देकर संसारके सम्मुख एक महान् आदर्श उदाहरण उपस्थित किया । आज भी बुद्धिमान् और मानव-हितेच्छु राष्ट्र संघर्षकी स्थितिको वार्ताद्वारा ही सुलझाना श्रेयस्कर समझ रहे हैं । यहाँ यह स्पष्ट हो जाता है कि भगवान्का वह प्रयत्न स्तुत्य था, मङ्गलकारी था, लोक-हितकारी था । भगवान्ने लोककल्याणके लिये ही वह आदर्श कार्य किया था । भगवान्को सब पता था । क्या होनेवाला है, उसे वे जानते थे, परंतु लोकपरम्पराकी रक्षा तथा एक आदर्श स्थापित करना उनको श्रेयस्कर जान पड़ा । भगवान्का दृढ़ निश्चय जानकर पुनः युधिष्ठिर बोल उठे—'प्रभो ! आपकी जैसी इच्छा हो, वैसा करें । आपका कल्याण हो, आप प्रसन्नतापूर्वक जाइये । मैं पुनः आपको अपने कार्यमें सफलता प्राप्त करके यहाँ लौटा हुआ देखूँगा ।' युधिष्ठिर एवं अन्य पाण्डवोंको धैर्य धारण कराते हुए, भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको कहना पड़ा—'राजन् ! कौरवोंका क्या अभिप्राय है, मैं इसे भी जानता हूँ । आपके विचारोंसे भी पूर्ण परिचित हूँ । आप धर्मात्मा हैं, धर्मका आश्रय लिये हुए हैं । बिना युद्ध किये जो कुछ मिल जाय, उसे आप लेकर संतोष करना चाहते हैं ।'

भगवान्ने इस स्थलपर युधिष्ठिरकी संतोष-वृत्तिपर आक्षेप करना ही उचित समझा । भगवान्के विचारसे राजाओंको संतोष करना कायरताकी निशानी थी । भगवान् युधिष्ठिरमें सजगता, चेतनताके साथ क्षत्रियत्वको जगाते हुए पुनः बोले—'राजन् ! राज्यके प्रति क्षत्रियोंका स्वाभाविक धर्म संतोष नहीं है । सभी आश्रमोंके श्रेष्ठ पुरुषोंका यह कथन है कि क्षत्रियोंको भीख नहीं माँगनी चाहिये । क्षत्रियोंके लिये दीनता, कायरता प्रशंसाकी वस्तु नहीं है । शत्रुओंको संताप देनेवाले महाराज ! आप पराक्रम दिखायें और शत्रुओंका संहार करें—

> नहि कार्पण्यमास्थाय शक्या वृत्तिर्युधिष्ठिर ।
> विक्रमस्व महाबाहो जहि शत्रून् परंतप ॥

भगवान् श्रीकृष्णको भविष्यका पूरा ज्ञान था । वे सब जानते थे । इसी आधारपर उन्होंने युधिष्ठिरको बहुत पहले युद्धार्थ सावधान कर दिया । भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी शान्तियात्रा जब निश्चित हो गयी, तब सहसा अपने खुले बालोंको हाथोंसे पकड़े द्रौपदी एकान्तमें आकर भगवान्के सम्मुख खड़ी हो गयी और बोली—'श्रीकृष्ण ! शत्रुओंके साथ संधिकी इच्छासे आप जो-जो कार्य अथवा प्रयत्न करें, उसके पूर्व दुष्ट दुःशासनके हाथों खींचे गये मेरे इन केशोंको याद रखियेगा । मैं यदि दुःशासनकी कटी बाँह भूमिमें लोटती न देखूँ तो मेरे हृदयको कैसे शान्ति मिलेगी ! मेरे पतियोंका संधिप्रस्ताव मेरे हृदयमें बाणके समान लगा है ।'

इतना कहकर द्रौपदी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके सम्मुख फूट-फूटकर रोने लगीं । द्रौपदीको रोते देखकर भगवान् श्रीकृष्णको कहना पड़ा—'कृष्णे ! तुम शीघ्र ही कौरववंशकी स्त्रियोंको इसी प्रकार रुदन करती हुई देखोगी । तुम जिनपर कुपित हुई हो, उनकी स्त्रियाँ भी अपने पति, पुत्र, बन्धु-बान्धवोंके मारे जानेपर इसी प्रकार रोयेंगी ।' इस प्रकार सबको समझाकर उचित सान्त्वना देकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र हस्तिनापुर पहुँचे । हस्तिनापुर पहुँचकर सर्वप्रथम भगवान्ने अपनी बूआ कुन्तीके दर्शन किये । कुन्तीने भगवान्को देखकर बड़ी प्रसन्नता व्यक्त की । कुन्तीने भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा युधिष्ठिरको संदेश दिया—'बेटा युधिष्ठिर ! तुम धर्मात्मा हो, तुम्हारे (क्षत्रिय) धर्मकी बड़ी हानि हो रही है ।' पुनः कुन्तीने भगवान्से कहा—'कृष्ण ! मेरे अन्य पुत्रोंसे भी कहना—'बेटा ! क्षत्राणी जिस प्रयोजनके लिये बेटोंको उत्पन्न करती है, उसे पूरा करनेका यह समय आ गया है ।' अपने पुत्रोंको संदेश देनेके बाद माता कुन्तीने अपने परमप्रिय हितैषी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे कहा—'मधुसूदन ! राज्य छिन गया—इसका मुझे दुःख नहीं, मेरे पुत्रोंकी जुएमें हार हुई, या मेरे बेटे वनमें चले गये, इसका भी मुझे दुःख नहीं, परंतु मेरी एकवस्त्रा पुत्रवधू कृष्णाको रजस्वला-अवस्थामें बलपूर्वक भरी सभामें ले जाकर जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपमानित किया गया, इससे बढ़कर दुःखकी बात मेरे लिये और क्या हो सकती है?' अपनी बूआ कुन्तीको भी आश्वासन देते हुए भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने कहा—'बूआजी! तुम शीघ्र ही देखोगी कि पाण्डव स्वस्थ अवस्थामें तुम्हारे सामने उपस्थित हैं। उनके सब मनोरथ सिद्ध हो गये और वे अपने शत्रुओंका संहार करके, साम्राज्य और लक्ष्मीसे पूर्ण होकर जगत्के सर्वश्रेष्ठ शासक-पदपर प्रतिष्ठित होंगे।'

इस प्रकार अपनी बूआको समझाकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र आगे बढ़े। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र दुर्योधनके भवनमें पहुँचे। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको अकेले आया देखकर दुर्योधनको आश्चर्य हुआ और उनके स्वागतमें वह उठ खड़ा हुआ। यथोचित सत्कारके बाद दुर्योधनने भगवान् श्रीकृष्णको अपने यहाँ भोजनके लिये निमन्त्रित किया। भगवान् शान्तिदूत बनकर पाण्डवोंकी ओरसे गये थे। भगवान्ने दुर्योधनके निमन्त्रणको अस्वीकार कर दिया। जब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे निमन्त्रण अस्वीकार करनेका कारण पूछा गया तो उन्होंने स्पष्ट कहा—'दूत अपना प्रयोजन सिद्ध होनेपर ही भोजन एवं आदर स्वीकार करते हैं। अतः मेरा उद्देश्य सिद्ध हो जानेपर ही मैं ऐसा करूँगा। दुर्योधन! ऐसी स्थिति हो जानेपर ऐसा प्रयत्न करें।'

कृतार्था भुञ्जते दूताः पूजां गृह्णन्ति चैव ह।
कृतार्थं मां सहामात्यं समर्चिष्यसि भारत॥

भगवान्की यह नीति दुर्योधनको अच्छी न लगी। उसने पुनः कहा—'भगवन्! आपका उद्देश्य सफल हो अथवा न हो, हमारे यहाँ भोजन करनेमें आपको क्या अड़चन है?' इसके उत्तरमें भगवान्ने कहा—'राजन्! मैं काम-क्रोधसे द्वेषवश अपने स्वार्थके लिये अथवा किसी प्रकारका बदला लेनेके लिये, या किसी प्रकार बहाना करके धर्मका त्याग नहीं करना चाहता। किसीके घरका अन्न या तो प्रेमके कारण ग्रहण किया जाता है, या भूखों मरनेपर। इस समय आपका प्रेम तो प्रकट नहीं हो रहा है और मैं भूखों नहीं मर रहा हूँ।' दुर्योधनके पास भगवान्के इस सत्य कथनका कोई उत्तर नहीं था, वह चुप हो गया! भगवान्ने दुर्योधनके घर भोजन नहीं किया।

अपना पक्ष और मन्तव्य दुर्योधनको समझाते हुए भगवान्ने कह दिया—'दुर्योधन! जो पाण्डवोंसे द्वेष करता है, वह मुझसे भी द्वेष करता है और जो उनके अनुकूल है, वह मेरे भी अनुकूल है।' अपनी भावना और मन्तव्यको व्यक्त करके भगवान् विदुरके घर पहुँचे और उन्होंने वहीं भोजन किया।

अपने मनकी बात विदुरको बतलाते हुए भगवान्ने विदुरसे कहा—'विदुर! अपने मित्रको किसी व्यसन या विपत्तिमें फँसा देखकर यथाशक्ति उसे समझा-बुझाकर उसका उद्धार करना चाहिये। जो व्यक्ति अपने मित्रको शुभ परामर्श देकर उसका हित नहीं करता, उसे विद्वान् निर्दय और क्रूर मानते हैं। जो अपने मित्रकी चोटी पकड़कर उसे बुरे कामोंसे विरत करता, वही प्रशंसनीय है। मैं तो निष्कपट भावसे धृतराष्ट्रके पुत्रों और पाण्डवों तथा भूमण्डलके अन्यान्य राजाओंके हितका ही प्रयत्न करूँगा। इसपर भी दुर्योधन यदि मुझपर शङ्का करेगा तो भी मेरे मनको प्रसन्नता ही होगी।'

तदनन्तर भगवान्ने धृतराष्ट्रको भयानक युद्धसे विमुख करने और पाण्डवोंसे संधि कर लेनेके लिये समझाया और धृतराष्ट्रको भगवान्की बात मङ्गलकारी और रुचिकर भी प्रतीत हुई। भगवान्ने दुर्योधनसे शान्तिप्रयत्नको मानने और संधि कर लेनेके लिये समझाया। दुर्योधनको भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी एक भी बात मान्य नहीं हुई। दुर्योधनने रुष्ट होकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे कहा—'केशव! आपको भलीभाँति विचार करके बोलना चाहिये। आप तो पाण्डवोंके प्रेमकी दोहाई देकर उल्टी-सीधी बातें करते हुए मुझे दोषी ठहरा रहे हैं। पाण्डव अपनी इच्छासे जुआ खेलनेमें तत्पर हुए और मामा शकुनिके प्रयत्नसे वे हार गये। इसमें मेरा क्या दोष? हम जानते हैं कि पाण्डवोंमें सामना करनेकी शक्ति नहीं है। फिर भी बड़े उत्साहसे वे वैर ठान रहे हैं। मेरे पिताजी भी मुझे राज्य दे चुके हैं। उसे मेरे जीवित रहते कोई नहीं ले सकता। जबतक मैं जीवित हूँ, तबतक पाण्डवोंको इतनी भूमि भी नहीं दे सकता जितनी कि एक सूईकी नोकसे छिद सकती है।' दुर्योधनकी बात सुनकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र क्रोधका स्वाँग भरकर दुर्योधनको सावधान करते हुए बोले—'दुर्योधन! सावधान हो जा, बहुत बड़ा नरसंहार होनेवाला है। मूर्ख!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तू जो ऐसा मानता है कि पाण्डवोंके प्रति मेरा (दुर्योधनका) कोई अपराध ही नहीं है, यह असत्य है। तूने पाण्डवोंके लिये अनेकों काण्ड रचाये। वारणावत नगरमें कुन्तीसहित पाँचों पाण्डवोंको जलानेका तूने ही असफल प्रयत्न किया था। भीमको विष पिलाकर जलाशयमें फेंक दिया था। पाण्डवोंकी समृद्धिसे संतप्त होकर ही तूने पाण्डवोंको जुआ खेलनेके लिये आमन्त्रित किया था। अपने मामा शकुनिकी अनुचित जालसाजीसे पाण्डवोंको जुएमें धोखेसे हराया था। तूने और तेरे भाइयोंने सती द्रौपदीके साथ जो बर्ताव किया था, क्या कभी वह क्षम्य हो सकता है? इन समस्त कलुषित कर्मोंद्वारा तूने पाण्डवोंको मार डालनेका प्रयत्न किया; परंतु तेरे सभी प्रयत्न असफल रहे।' भगवान् कृष्ण-चन्द्रकी बातें दुर्योधनको अच्छी न लगीं। दुःशासनके संकेतपर दुर्योधन सभासे उठकर महलमें चला गया।

दुर्योधनके चले जानेपर भीष्मने भगवान्‌से कहा—'भगवन्! राजा धृतराष्ट्रका यह दुष्ट पुत्र दुर्योधन अपने समस्त साथी राजाओं और भाइयोंके साथ मृत्युके मुँहमें जाना चाहता है।' भगवान्‌ने भी भीष्म, द्रोण, धृतराष्ट्र आदि समस्त बड़े-बूढ़ोंको सावधान करते हुए कहा—'कुरुवंशके बड़े-बूढ़ोंका यह बहुत बड़ा अन्याय है कि आप सब इस दुष्ट दुर्योधनको राजाके पदपर बैठाकर इसके ऊपर नियन्त्रण नहीं कर रहे हैं। कौरवो! अब मैंने समयोचित कर्तव्यका निर्णय कर लिया है। इसको पालन करनेपर सबका भला होगा।' भगवान्‌ने एक नीतिकी बात समझाते हुए कहा—'समस्त कुल-की रक्षाके लिये एक पुरुषको और एक गाँवके हितके लिये एक कुलको, जनपद (जिला) के लिये एक गाँवको त्याग देना चाहिये और आत्मरक्षार्थ संसारको त्याग दिया जा सकता है।' आप सबका कल्याण इसीमें है कि आप सब आगामी 'महाभारत' युद्ध न होने दें। यदि महाभारत हुआ तो कौरवोंका संहार होगा। अतः आप सब दुर्योधन और दुःशासनको बंदी बना लें और राज्य पाण्डवोंके हाथमें दे दें।' भगवान्‌की घोषणाके बाद गान्धारीने भी दुर्योधनको समझाया; किंतु दुर्योधनकी समझमें कुछ न आया। दुर्योधनने अपने मन्त्रियोंसे सलाह किया और भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको, जो शान्तिदूत बनकर गये थे, बंदी बनाना चाहा। सात्यकिको दुर्योधनकी मन्त्रणाका पता चल गया। सात्यकिने उस दूषित योजनाका भण्डाफोड़ कर दिया। महात्मा विदुरसे नहीं रहा गया। उन्होंने धृतराष्ट्रको सावधान करते हुए कहा—'महाराज! आपके बेटे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको बंदी बनाना चाहते हैं। अवश्य ही ये सब पतंगोंकी भाँति जल जाना चाहते हैं।' भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने धृतराष्ट्रसे कहा—'राजन्! ये दुष्ट कौरव यदि कुपित होकर मुझे पकड़ना चाहते हैं तो आप इन्हें आज्ञा दे दें। आप देखें कि ये मुझे बंदी बनायेंगे या मैं ही इन्हें पकड़ लेता हूँ। मैं इस समय इन्हें बाँध लेनेकी शक्ति रखता हूँ। पर इस समय ऐसा निन्दित कर्म मैं नहीं करना चाहता। मैं शान्तिका संदेश लेकर 'शान्तिदूत' बनकर आया हूँ। आपके पुत्र राज्य और धनके लोभी हो गये हैं। इन्हें अब धन और प्राणोंसे भी हाथ धोना पड़ेगा। यदि ये ऐसा ही चाहते हैं तो युधिष्ठिरका कार्य सम्पन्न हो गया। राजन्! मैं आपके समीप क्रोध या अमर्षका कार्य नहीं करना चाहता' भगवान्‌के संकेतपर महाराज धृतराष्ट्रने पुनः दुर्योधनको बुलवाया। दुर्योधनको देखकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने कहा—'दुष्ट! तू जो मुझे अकेला और निर्बल समझता है, यह तेरी भूल है।' इतना कहकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अपने 'विराट् स्वरूप' को वहीं प्रकट कर दिया। भगवान्‌के विराट् स्वरूपको देखते ही कौरवोंकी आँखें बंद हो गयीं। भगवान्‌की कृपासे केवल अन्धे धृतराष्ट्रने अन्तश्चक्षुसे भगवान्‌के विराट् स्वरूपको देखा और समझा। अपना विराट् रूप दिखलाकर कौरवोंको चकित और भयभीत कर भगवान् कौरवसभासे दहाड़ते हुए चल दिये। इस प्रकार लीलामय भगवान्‌का 'शान्तिप्रयास' असफल हो गया। भगवान् इसे पहलेसेही जानते थे। अन्ततोगत्वा दुष्टोंके वधके लिये भगवान्‌ने अर्जुनको गीताका उपदेश देकर उन्हें 'कर्मयोग' की ओर अग्रसर किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कथा

[कहानी]

(लेखक—श्री 'चक्र')

'कृपया जो जहाँ हैं, वहीं बैठ जायँ ! आगे आनेका प्रयत्न न करें !'

बार-बार यह घोषणा होती थी और यह आवश्यक भी है; क्योंकि श्रद्धाके आवेगमें लोग व्यासपीठतक पहुँचकर वक्ताको स्वयं पुष्प, पुष्पमाला चढ़ाना, अपनी भेंट व्यासपीठपर अर्पित करना और कुछ न हो तो वक्ताको समीप जाकर प्रणाम करना आवश्यक मानते हैं ।

'पुण्य लूटनेके प्रयत्नमें पाप मत कीजिये ! आप कथा-में बाधक बनेंगे तो पाप होगा । आप दूसरोंको धक्का देते, पैरसे स्पर्श करते आगे आयेंगे तो पाप होगा ।' बीच-बीचमें जब आवश्यक लगता, वक्ता स्वयं भी यह घोषणा कर देते थे ।

व्यासपीठतक पहुँचने, वक्ताको प्रणाम करने, वहाँ भेंट या पुष्प चढ़ानेके आवेशमें लोग देखते ही नहीं कि उनके इस प्रयत्नसे कथा-प्रवचनमें बाधा पड़ती है । दूसरोंको धक्का देते, कुचलते आगे बढ़ना भी दोष है, यह वे समझना ही नहीं चाहते ।

कुछ लोग आवश्यकतासे अधिक चतुर होते हैं । चतुर वे अपनेको मानते हैं, केवल इसलिये चतुर; अन्यथा ऐसी चतुराई तो अज्ञता है । जिससे अपनी हानि हो, उसे चतुराई कोई कहे, उसको क्या कहा जाय ? कथामें, मन्दिरमें आप किसी छल-बलसे आगे पहुँच गये—ठीक है कि दर्शन, श्रवणकी सुविधा अधिक मिली; किंतु सात्त्विकता प्रथम ही नष्ट हो गयी और दूसरोंको वञ्चित करनेका पाप ले आये यह अलग । जहाँ गये थे पुण्य प्राप्त करने, वहाँसे क्या लाये ?

थोड़ेसे पुष्प, एकाध माला या दो फल लेकर इसलिये भी लोग कथा-प्रवचनमें जाते हैं कि पीछे पहुँचनेपर भी उसे चढ़ाने भीड़मेंसे आगे व्यासपीठतक पहुँच जायँ और तब वहीं धक्का-धुक्की करके बैठ सकें ।

'आप प्रणाम करेंगे, माला-पुष्प या और कुछ चढ़ायेंगे बड़ी कृपा आपकी ! आपका प्रसाद मेरे मस्तकपर; किंतु अभी नहीं ।' वक्ताने सब चतुराइयोंका द्वार बंद कर दिया था । वे कह रहे थे—'कथा-समाप्तिके पश्चात् मैं थोड़ी देर बैठा रहूँगा यहाँ । आप उस समय यह सब कर सकते हैं । अभी जहाँ हैं, वहीं बैठकर श्रवण करें ।'

'कोई रुपये-पैसे नहीं चढ़ायेगा । आप फल-मेवे-मिठाई व्यासपीठपर चढ़ा सकते हैं; किंतु यह जानकर चढ़ाइये कि उसे हम सबमें ही बाँट दिया जायगा । व्यासपीठपर चढ़ायी गयी कोई वस्तु, कोई वस्त्र, कोई धन वक्ता स्वीकार नहीं करते । वे उसमेंसे कुछ नहीं लेंगे !' कथाकी समाप्तिके साथ ही यह घोषणा की गयी और कई बार की गयी ।

'कथापर चढ़ी कोई वस्तु नहीं लेते !' बड़ा अद्भुत लगा । ऐसा कथावाचक कथा ही क्यों करता है ?

बहुत कम ऐसी कथा सुननेको मिलती है । बड़ा हृदयग्राही प्रवचन था । बड़ी मार्मिक व्याख्या की गयी थी । श्रीमद्भागवतके श्लोककी कथा सुनकर ही वक्तामें श्रद्धा हो गयी थी । वे कुछ लेंगे नहीं कथापर चढ़े पदार्थोंमेंसे, यह जानकर श्रद्धा विशेष पुष्ट हुई ।

'इनसे पृथक् मिलना है !' मनमें निश्चय करके उस समय उठ आया । लोग उनकी पद-वन्दना करने, उन्हें माला पहिनाने व्यासपीठके समीप भीड़ किये थे । ऐसे भम्भड़में प्रवेश करना मुझे प्रिय नहीं है । यह अपने और दूसरोंके लिये—प्रणम्यके लिये भी सुविधाजनक नहीं है । वह भी तो भीड़से छुटकारेको ही उत्सुक होगा ।

× × ×

'मैं कल कथामें आया था ।' उनके ठहरनेके स्थानपर मैं गया तो वहाँ एकान्त नहीं था । एकान्तकी न सम्भावना लेकर गया था और न मुझे कोई गोपनीय चर्चा करनी थी । दस-बारह लोग बैठे थे । चरण-वन्दन करके एक ओर बैठते हुए मैंने कहा ।

'बड़ी सुन्दर कथा लगी । ऐसी कथा कम सुननेको मिलती है । मैं बहुत बड़ा विद्वान् और अत्यन्त निपुण कथा-वाचक हूँ । है न ?' मैं हतप्रभ हो गया उनके मुखसे यह सुनकर और वे खुलकर हँस रहे थे ।

'केवल विद्वान् होनेसे…'

'ऐसी कथा नहीं की जा सकती ।' उन्होंने मुझे फिर नहीं बोलने दिया । 'मैं भक्त हूँ । आत्मसाक्षात्कार-सम्पन्न हूँ । अनुभवी हूँ । भगवद्दर्शन मुझे हुए हैं । अनेक चमत्कार मुझमें हैं । क्यों ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं क्या उत्तर देता । मैंने संकोचसे सिर झुका लिया ।

'मैं विद्वान् हूँ और बहुत अच्छी कथा कहता हूँ, यह सत्य मुझसे अविदित नहीं है ।' उन्होंने हँसते हुए कहा । 'मैं ईमानदारीसे पूरा श्रम करता रहा हूँ और अब भी करता हूँ । कथामें जानेसे पूर्व उस श्लोकपर जो टीकाएँ, उत्प्रेक्षाएँ तथा अन्य उपलब्ध साहित्य है, वह पूर्व पठित होनेपर भी एक बार देखकर जाता हूँ । जो श्रम करता है, उसे अपनी सफलताका ज्ञान रहे, यह अस्वाभाविक कहाँ है ।'

'वाग्वैखरी शब्दझरी शास्त्रव्याख्यानकौशलम् ।'

दो क्षण रुककर बोले—'यह तो मेरे समीप है; किंतु भावुकतामें मत बहिये ! इसमें भक्ति, भगवद्दर्शन, आत्म-साक्षात्कार या चमत्कार कहाँ आता है कि उसे आप मुझमें आरोपित करते हैं !'

'जो सूक्ष्म व्याख्या आपने की···'

'वह एक अनुभवी ही कर सकता है ।' फिर उन्होंने मुझे बोलने नहीं दिया । 'वे बातें आपने सुन तो ली ही हैं । अब दूसरोंसे आप उन्हें कहेंगे तो आप भी अनुभवी हुए । इतना भोलापन अच्छा नहीं । वे बातें कही अनुभवी महापुरुषोंने ही हैं, यह ठीक है; किंतु मैं उनके ग्रन्थोंसे उन्हें पढ़कर क्यों जान नहीं सकता ? मैं तो उनकी बातें दुहरानेवाला ही हूँ ।'

'आप कथा क्यों करते हैं !' प्रश्न इतना अटपटा था कि मुखसे निकलनेके पश्चात् स्वयं मुझे संकोच हुआ ।

'यह मेरा साधन है ।' वे बहुत गम्भीर हो गये । 'मेरी कुलपरम्परा कथा-वाचकोंकी है । बहुत छोटा था, तबसे मुझे यह कार्य सिखलाया गया । पहले यह कार्य आजीविका-के रूपमें मैंने अपनाया और अब भी यही मेरी आजीविका है ।'

'आप कथापर चढ़ा तो कुछ लेते नहीं ।'

'हाँ, मैं कथा-विक्रय नहीं करता ।' वे बोले । 'कुछ दक्षिणा निश्चित करके कथा-प्रवचनकी बात तो कभी कल्पना-में भी नहीं आयी थी । लोग ऐसा भी करते हैं, सुना तो बड़ा क्लेश हुआ । पहले ग्रन्थपर चढ़ौती होती थी । जब समझ आयी, इस कथाको ही जबसे साधन बनाया । कैसे सम्भव है कि मैं अपना साधन ही बेच दूँ ।'

'तब कथासे आजीविका ?'

'सो तो चलती ही है ।' वे कह रहे थे । 'अन्तर यह अवश्य पड़ गया है कि ग्रन्थपर लोग पुण्यबुद्धिसे जो यथाशक्ति अधिक दक्षिणा चढ़ाते हैं, वह नहीं मिलती; किंतु बहुतसे श्रोता व्यक्तिगतरूपसे कुछ दे जाते हैं । पर्याप्त है वह मेरे लिये ।'

'कथाको आपने साधन बनाया है ।'

'हाँ—केवल आजीविकाका साधन बनाकर चला था बचपनमें, अब यही मेरा आध्यात्मिक साधन भी है ।' वे सीधे बैठ गये और स्थिर दृष्टिसे मेरी ओर देखते हुए बोले—'कथा-श्रवण साधन है, यह तो आप-जैसे सत्संगीको बतलानेकी आवश्यकता नहीं है । श्रोता भगवत्कथा सुनता है, तो उसका मन भगवच्चरित्रमें लगता है । वक्ताको अध्ययन करना पड़ता है, बहुत कुछ स्मरण रखना पड़ता है और सुनाना पड़ता है । उसे मनको कहीं अधिक लगाना पड़ता है ।'

'इससे पूर्व भी मैं कथा-वाचकोंके सम्पर्कमें आया हूँ ।' मैंने तनिक विरक्त स्वरमें कहा ।

'उनकी कुछ समस्याएँ हैं ।' वे गम्भीर बने रहे । 'जिसे सदा ही नवीन स्थान नवीन लोगोंमें रहना है, वह अपनी आवश्यकताओंके प्रति संकोची नहीं रह सकता । उसे कुछ माँगने—आज्ञा देने, हठतक करनेमें संकोच नहीं होता । परिस्थिति उसे निःसंकोच—कह सकते हैं कि स्वार्थी बना देती है । अपनी सुविधा ही उसे प्रधान जान पड़ती है । कितने लोग हैं जो यात्रामें दूसरेकी सुविधाका ध्यान दे पाते हैं ?'

मैं कुछ बोला नहीं; किंतु स्पष्ट था कि मुझे इस उत्तरसे कोई संतोष नहीं हुआ । 'आजकल फैशन हो गया है आत्मस्वीकृतिका—मैं इसे बुरा समझता हूँ; किंतु त्याग नहीं पाता । मेरी दुर्बलता है ।' दुर्बलता है तो सिर पटको और छोड़ो, अथवा उपदेश, कथा बंद करो । अपने सार्वजनिक जीवनका त्याग करो । तुम्हारा जीवन जितना सार्वजनिक—व्यापक होगा, तुम्हारी दुर्बलता भी उतनी व्यापक होगी ।

जो त्याग-वैराग्यका उपदेश करते हैं, उनकी दृष्टि पैसे-पर ही टिकी रहे, जो अमानी होनेका उपदेश करें वे मञ्चपर बैठकर तनिकसे अपमानकी गन्धसे वे लाल हो उठें, जो ज्ञान-भक्तिकी लम्बी-चौड़ी व्याख्या करें, वे अत्यन्त देहासक्त, स्वसुख-परायण पाये जायँ—ऐसे लोगोंको उपदेशक, कथा-वाचक बननेका अधिकार है ? रामराज्य होता, तो क्या ये उपदेशक पूजित होते या कारागारमें होते ? श्रीबल्लभजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कथावाचक सूत रोमहर्षणको मार दिया था । उस समय वह घटना भ्रमवश हुई; किंतु उसके पीछे जो तथ्य है, वह तो भ्रम नहीं है। उन्होंने कहा था—

'वध्या मे धर्मध्वजिनस्ते हि पातकिनोऽधिकाः ।'

मैंने यह सब कहा नहीं । लेकिन मेरे मनमें ये बातें अवश्य आयीं । मेरे मुखपर वितृष्णाके भाव आये हों तो आश्चर्य नहीं है ।

'तुम्हारा आक्रोश उचित है ।' वे बोले । 'ऐसा आक्रोश आजके युवकोंमें है और मैं इसे शुभ लक्षण मानता हूँ ।'

'जो यश या धनके लिये भगवत्कथाका आश्रय लेते हैं, उन्हें इस कल्पवृक्षसे वह प्राप्त होता है ।' वे गम्भीर बने रहे । 'वे केवल दूसरोंको सुनानेके लिये पढ़ते, स्मरण करते हैं । उनका पठन-स्मरण सुना देनेके लिये है । वे तो रिकार्ड हैं । रिकार्ड कुछ भी बजे, उससे यन्त्रकी स्वच्छता तो नहीं होती, उनका पठन-स्मरण उनके अपने चित्तको स्पर्श नहीं करता। वे तो त्याग, सेवा, तप, भक्ति, ज्ञानादिकी बातोंको केवल सुनानेकी बातें मानते हैं ।'

'केवल सुनाना भी बुरा नहीं है । मैं भी केवल सुनाता ही हूँ ।' तनिक हँसकर वे फिर गम्भीर हो गये । 'बात इतनी है कि मैं किसी सेठ, साहूकार, मन्त्री, पदाधिकारी बाबूजीको कुछ सुनानेमें उत्साह नहीं रखता । कथाके लिये जाना है, इस बातके मनमें आते ही आता है कि जिसकी कथा सुनानी है, वही बुला रहा है । वह नाना रूप, नाना वेश धारण करके बैठेगा सुननेके लिये । उसे अपनी कथा सुननेमें रस आता है । उसे सुनाना है, अतः श्रम करो ! पूरी योग्यतासे सुनाओ !'

मैंने उनके चरणोंपर मस्तक रक्खा । अब उनसे कुछ कहनेके लिये मेरे समीप कोई शब्द नहीं था ।

केवल भक्तिका पंथ ही सीधा

(लेखक—पं० श्रीसूरजचन्दजी सत्यप्रेमी (डाँगीजी)

सर्व-समर्थ-गुरु श्रीरामदासस्वामीने अपने मनको केवल भक्तिके मार्गपर जानेकी ही सलाह दी है। उन्होंने कहा है—

'मना, सज्जना, भक्ति-पंथेचि जावे ।'

'हे सज्जन मन ! तू केवल भक्तिके मार्गपर ही चल; क्योंकि वही सीधा और सुविधाजनक है । सीधे-सादे साधु-मार्गपर चलनेसे ही सिद्धि प्राप्त हो सकती है । जो सीधा-सादा मन रखता है उसे ही सीधे खड़े रह सकनेकी शक्ति प्राप्त होती है । सीधा मनुष्य ही खड़ा रह सकता है । पशु-पक्षी आड़े-टेढ़े इसीलिये हुए कि उन्होंने पहले सीधा-सादा भक्तिका मार्ग छोड़कर आड़ा-अँवला, टेढ़ामेढ़ा, बाँकाचूका अन्य अभिमानका रास्ता पकड़ा । तिर्यक् मार्गसे—तिरछे रास्तेसे चलनेका परिणाम होता है 'तिर्यञ्चगति'—मनको सीधे भक्तिमार्गपर चलानेसे मनुज-गति और विपरीत मार्गपर चलनेसे वनस्पति-योनियोंमें विपरीत गति प्राप्त होती है । विपरीत चले इसलिये ऊपर पैर और नीचे सिर—ऐसी स्थावर योनियाँ प्राप्त होती हैं । गोस्वामीजी कहते हैं—

भगति के साधन कहहुँ बखानी ।
सुगम पंथ मोहि पावहिं प्रानी ॥

उस सुगम पंथपर कैसे चला जा सकता है—इसके साधन भगवान्ने अपने श्रीमुखारविन्दसे प्रकट किये हैं—

प्रथमहिं बिप्र चरन अति प्रीती ।
निज निज कर्म निरत श्रुति रीती ॥
एहि कर फल पुनि बिषय बिरागा ।
तब मम धर्म उपज अनुरागा ॥
संत चरन पंकज अति प्रेमा ।
मन क्रम बचन भजन दृढ़ नेमा ॥
काम आदि मद] दंभ न जाके ।
तात निरंतर बस मैं ताकें ॥

वचन कर्म मन मोरि गति भजन करहिं निःकाम ।
तिन्हके हृदय कमल महुँ करउँ सदा बिश्राम ॥

श्रीवाल्मीकिजीने भी प्रभुसे यही प्रार्थना की थी कि—

जाहि न चाहिअ कबहुँ कछु तुम्ह सन सहज सनेह ।
बसहु निरंतर तासु उर सो राउर निज गेह ॥

भक्ति-पंथमें सबसे पहले ब्राह्मणोंके चरणमें अत्यन्त प्रेम होना जरूरी है, जिससे अपने-अपने कर्तव्यकर्मोंको वेदानुकूल रीतिसे निर्वाह करके विषयोंसे वैराग्य उत्पन्न हो जाय । आज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने-अपने कर्मोंमें संकर-दोष आ जानेसे और ब्राह्मणोंके प्रति भक्ति कम होनेसे विषयवासना बढ़ गयी है। सभी तरहके लोग संस्कृति, सत्ता और सम्पत्तिपर अपना-अपना अधिकार चलाने लग गये और सेवा-धर्म जो परम गहन था—योगियोंके लिये भी अगम्य माना जाता था, उसे चारों वर्णोंके आधारभूत शूद्र जातिने भी छोड़ दिया है—वे आज शूद्र (चरणोंके समान सर्वपूज्य) धर्मको छोड़कर क्षुद्र अभिमानी और भोगपरायण हो गये हैं। परस्पर अनुराग नष्ट हो गया है, इसीलिये विषयोंको लेकर तीव्र छीना-झपटी हो रही है। पहले पुण्यकर्मके उदयसे सर्वसम्मतिसे और ईश्वरकी कृपासे पुण्यात्मा पटरानीके पेटसे राजा निकलता था—अब लाखों-करोड़ोंका व्यर्थ खर्च करके अहंकारके पापकर्मके उदयसे 'पेटी'मेंसे राजा निकलता है, जो 'पेटी' ही भरना चाहता है। चाहे प्रजाको 'पेट' पर पट्टी बाँधकर ही सोना पड़े। 'पेट'मेंसे निकलनेवाला राजा प्रजाके पेट-पालनका जिम्मेवार होता है और 'पेटी'मेंसे निकलनेवाला यह विचार करता है कि मेरी पेटी कैसे भरे ? और पेटी ज्यों ही भर जाती है कि उसका मुँह दुगुना हो जाता है। तृष्णाकी पेटी कभी भरती ही नहीं, अब प्रभु-चरणोंमें अनुराग कैसे पैदा हो ?

कामना, मद और दम्भ चारों ओर फैले हुए हैं। संतोंके चरणोंमें प्रेम कैसे हो ? प्रभुके प्रति स्वाभाविक स्नेहकी जागृति तो तभी होती है, जब सब इच्छाएँ छोड़कर भजन किया जाय। तभी प्रभुका अपने हृदय-कमलमें निवास सदाके लिये हो सकता है। 'राम' का निवास 'हराम'के खानेवाले मनमें कैसे हो ? उसका तो आराम ही हराम हो जाता है। कहा है—

आराम अगर चाहता है तो आ रामकी तरफ,
फंदेमें फँसा चाहे तो जा दामकी तरफ।
आकर्षण अगर चाहता है तो आ कृष्णकी तरफ,
फंदेमें फँसा चाहे तो जा व्यसनकी तरफ।
आनंद अगर चाहता है तो आ नंदजीके गाँव,
फंदेमें फँसा चाहे तो जा द्वन्द्वहीके ठाँव।

आज परस्पर द्वन्द्व मचा हुआ है। गोपालन और गोकुल नंदगाँवकी चर्चा गँवारी मानी जाती है।

पर गोबरको धन जबतक नहीं माना जायगा, तबतक गोवर्धनधारी की—नटनागरकी कृपा नहीं होगी।

केवल भक्तिका ही पंथ सीधा है। कारण, हमारी पृथ्वीमाता भारतभूमि ट्रेक्टर नहीं माँगती, गोमूत्र ही माँगती है। जो ट्रेक्टरोंसे खेती करते हैं वे पृथ्वीमाताका खून चूसते हैं, दूध नहीं पीते। गोमाताकी भक्तिके बिना आर्थिक दशा नहीं सुधरेगी। फिर गोदानको ही अर्थ-दान मानना पड़ेगा। ब्राह्मणोंकी भक्तिके बिना वेदोंकी श्रद्धा उड़ जायगी और उत्तम कर्मोंका अभाव होगा। संतोंकी भक्तिके बिना संतोष नहीं होनेसे ईर्ष्या-बुद्धि बढ़ेगी और भगवद्भक्तिके बिना तो सब अँधेरा-ही-अँधेरा है। इसलिये नैष्ठिक ब्रह्मचारी समर्थगुरु रामदासजीकी बात मानकर केवल भक्ति-पंथसे ही चलना चाहिये।

रामहि केवल प्रेम पियारा।
जानि लेहु जो जाननिहारा॥

'राम' को केवल प्रेम ही प्यारा है। जो जाननेवाले हैं वे जान लें, केवल 'प्रेम' ही केवल आनन्दका साधन है। केवल 'ज्ञान'ही सत्यमुक्तिका साधन है, पर भक्तिके बिना ज्ञान आनन्द नहीं दे सकता। परमानन्दकी प्राप्ति तो केवल भक्तिसे ही हो सकती है।

भगवद्भक्तिरहित असत्का सङ्ग न करो

भगवद्भक्तिहीनस्य जातिः शास्त्रं जपस्तपः। अप्राणस्यैव देहस्य मण्डनं लोकरञ्जनम्॥

जैसे प्राणहीन शरीरको गहने पहनाना केवल लोक दिखावा मात्र है, वैसे ही भगवान्की भक्तिसे रहित मनुष्यका ऊँची जातिमें जन्म, शास्त्रज्ञान, जप, तप सभी व्यर्थ है।

भगवद्भक्तिहीना ये मुख्यासन्तस्त एव हि। तेषां निष्ठा शुभा क्वापि न स्यात् सच्चरितैरपि॥
सङ्गं न कुर्यादसतां शिश्नोदरतृपां क्वचित्। तस्यानुगस्तमस्यन्धे पतत्यन्धानुगोऽन्धवत्॥

जो भगवान्की भक्तिसे रहित है, वे ही मुख्यरूपसे असत् हैं। वे सच्चरित्र होनेपर भी उनकी कभी मङ्गलमयी निष्ठा ही नहीं होती है। असत् मनुष्य शिश्नोदरपरायण होते हैं। उनका सङ्ग कभी नहीं करना चाहिये। अन्धा जैसे अन्धेके सङ्गसे अन्धकारमय कूपमें गिरता है, वैसे ही असत्के संसर्गसे अन्धतम नरकमें गिरना पड़ता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीरामकी विशिष्टता

(लेखक—आचार्य श्रीयमुनावल्लभजी गोस्वामी)

एक दिन भगवत् श्रीजयदेव महाप्रभुके वंशज दार्शनिक सार्वभौम श्रीरामराय गोस्वामी प्रभु काशी पधारे। वहाँ आपके अनुपम चमत्कारके कारण काशिराजके मन्त्री श्रीमधुसूदन पोड्वालने आपका आचार्याभिषेक कराया। नगरमें आपका यश फैल रहा था। वैशाखी पूर्णमासीको अनेक सेवकोंके साथ आपने श्रीगङ्गा-स्नान किया, श्रीगङ्गाजीके घाटपर आप सबसे कीर्तन करा रहे थे।

राधामाधव कुंजविहारी। मुरलीधर गोवर्द्धनधारी॥

कीर्तनकी तुमुल ध्वनिसे दो महापुरुष हँस रहे थे और वे थे गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी तथा श्रीनाभास्वामीजी, एक श्रीरामचरितमानसके कर्ता, दूसरे श्रीभक्तमालके प्रणेता। आपसमें कहने लगे ये लोग श्रीवृन्दावनके निवासी हैं।

श्रीरामरायप्रभुजी यह सुनकर उनकी ओर झुक गये और कहने लगे कि क्योंजी!' श्रीवृन्दावनकी क्या चर्चा कर रहे हैं?' सैकड़ों लोगोंकी भीड़ हो गयी। गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने कहा, बैठिये तब बतावें। आसन देकर आपको बिठाया और कहा कि 'आपलोग श्रीराम-नामसे विरोध रखते हैं क्या जो एक बार भी श्रीराम-नामका कीर्तन नहीं करते?' अब तो प्रभुजीको बोलनेका अवसर मिल गया। आपने कहा कि 'महाराजजी! हमारे पूर्व-पुरुष-श्रीजयदेव महाप्रभुजीके आत्मज श्रीकृष्णदेवजी महाराजने श्रीराधामाधवाष्टक लिखा है, उसमें एक श्लोक दिया है—

राकारो राधिकानाम
मकारो माधवेङ्गितः।
राम नामा धाररूपः
श्रीराधामाधवो मम॥ (४)

अर्थात् श्रीराम-नाममें 'रा' अक्षर श्रीराधाजीका नाम है और 'म' अक्षरसे माधवका इशारा किया गया है, अतः राम-नामके भीतर श्रीराधा-माधवजी हमारे प्राण-धन होकर विराजमान हैं।

श्रीगोस्वामीजी और नाभाजी दोनों आपकी भावनासे प्रफुल्लित हो गये और श्रीनाभाजीने श्रीभक्तमालकी पूर्ति होनेपर भी श्रीप्रभुजीका छप्पय रचना करके लिख दिया।

(छप्पय)

विप्र सारस्वत घर जनम श्रीरामराय हरि रतिकरी॥
भक्ति ज्ञान बैराग योग अन्तरगति पागे।
काम क्रोध मद लोभ मोह मत्सर सब त्यागे॥
कथा-कीर्तन मगन सदा आनँद रस झूले।
संत निरखि मन मुदित उदित रवि पंकज फूले॥
वैर भाव जिन द्रोह किय तासु पाग खिसि भूपरी॥
विप्र सारस्वत घर जनम श्रीरामराय हरि रतिकरी॥१९७॥

इस प्रकार श्रीप्रभुजीने श्रीरामनामकी अन्तरङ्ग-अवस्था-को सेव्य बताया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवी द्रौपदीका चीरदान और उनकी चीर-रक्षा

(लेखक—श्रीउपेन्द्रनाथजी मिश्र 'मञ्जुल' काव्यतीर्थ, हि० सा० भूषण)

करुणावरुणालय भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा कौरवसभामें भक्तिमती दीना द्रौपदीकी लज्जा-रक्षाकी मर्मस्पर्शी कथाएँ हम महाभारत एवं सत्काव्य ग्रन्थोंमें पढ़ते और सप्रेम सुनते तथा उस लीलामयके लोकोत्तर मधुर लीला-रसका पान करते अघाते नहीं हैं। 'न मे भक्तः प्रणश्यति' और 'हम भक्तनके भक्त हमारे' के अनुसार भगवान्के संरक्षणविधानमें कभी त्रुटि या देर नहीं होती। दीनकी एक ही पुकारपर वह दीनबन्धु दौड़ पड़ता है, नहीं, नहीं, वह सर्वव्यापक सहज कृपालु वहीं प्रकट हो जाता है। फिर यदि वह असहाया 'कृष्णा'की करुण पुकारपर उसका 'दस हजार गज बल थक्यो घट्यो न दस गज चीर' स्वयं बे-नजीर चीर बन गया तो आश्चर्य ही क्या ? किंतु उसके 'एकोऽहं बहु स्याम्' (एक होकर भी मैं बहु रूप हूँ)का भी रहस्य पूर्ण हेतु है और वह है उसीका 'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्' (जो जिस प्रकार मुझे भजते या शरणापन्न होते हैं मैं भी उसी प्रकार उन्हें भजता या प्राप्त होता हूँ) श्रीमुखवचन। कतिपय भावुक भक्त कवियोंने हरिप्रीतिपरायणा पाञ्चालीके पटवर्धनका कारण—

> चोरि चोरि चीर जेते राखै व्रज बालनिके,
> जोरि जोरि तेते दिये द्रौपदीके पट में॥

—बताया है; पर इसके सत्यस्वरूपकी एक मनोरम पौराणिक झाँकी और भी दर्शनीय है।

> **गावो मे अग्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः।**
> **गावो मे पार्श्वतः सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम्॥**

'गौएँ मेरे आगे हों, गौएँ मेरे पीछे हों, गौएँ मेरे दायें-बायें हों, इस तरह मैं गौओंके बीचमें ही निवास करूँ।' की भद्रभावनाको स्वयं कार्यरूपमें परिणत करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णका यह गोप्रेम और गोपालन व्रजभूमितक ही सीमित नहीं रहा, वह द्वारकापुरीमें उनके द्वारकाधीश होनेपर भी उसी भाँति बना रहा, उसमें तनिक भी त्रुटि या च्युति कभी नहीं होने पायी। घटना है, भगवान् गोविन्द एक दिन गौओंके लिये शङ्कुनिखनन (खूँटे गाड़ने) में रत थे कि दैवात् उनकी अँगुलियोंमें खरोंच लग जानेसे रक्त स्रवित होने लगा। कल्याणी कृष्णा (द्रौपदी) उन दिनों वहीं थी। श्रीरुक्मिणी-सत्यभामादि महारानियाँ भी वहाँ उपस्थित थीं। महारानियाँ प्रभुकी विक्षत अंगुलियोंमें पट्टी बाँधनेके निमित्त तदुपयुक्त वस्त्र लाने रनिवासकी ओर दौड़ीं, तबतक करुणाकातर भगवती द्रौपदीने झट अपनी बहुमूल्य परिहित साड़ीका अञ्चल फाड़कर प्रेमाश्रुओंसे भींगी पट्टी बाँध दी। पाञ्चालीकी इस प्रेमप्रवणतापर रीझकर भगवान्ने प्रसन्नताभरे स्वरमें कहा—'देवि ! तुमने आज अपने अलौकिक प्रेममय कर्तव्यपाशमें मुझे बाँध लिया। मैं कौन-सा प्रतिदान देकर तुमसे उऋण हो सकूँगा ! तुम जब भी याद करोगी कृष्णे ! कृष्ण तुम्हारी सेवामें सन्नद्ध रहेगा।'

अन्ततः वह समय आया जब कुरुराज दुर्योधनकी भरी सभामें एकवस्त्रा पाण्डव-पत्नी नग्न की जा रही थी। महाबली दुःशासन चीर खींचने लगा। अधीरा द्रौपदीने भीष्मादि गुरुजनों तथा सभी सम्भ्रान्त सभासदोंकी ओर करुणाविगलित दृष्टि डाली; परंतु कहींसे कोई त्राणका समाधान न पाकर सर्वान्तर्यामी भगवान् गोपाल कृष्णकी टेर लगायी—

> **गोविन्द द्वारकावासिन् गोपगोपीजनप्रिय।**
> **कौरवैः परिभूतां मां किन्न पश्यसि केशव॥**

'हे गोविन्द, हे द्वारकावासिन्, हे गोप-गोपियोंके प्यारे, हे केशव ! कौरवोंद्वारा अपमानित होती हुई मुझे (भरी सभामें मेरी लुटती लाजको) क्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...देखते नहीं !' यहाँ गोविन्द, द्वारकावासिन् और ...जनादि सम्बोधन सभी अर्थपूर्ण हैं। 'गोविन्द' और ...गोपीजनप्रिय' गो-समाना द्रौपदीकी अवस्था (...गोगुहार) का, 'द्वारकावासिन्' द्वारकामें घटित ...घटना एवं भगवान्‌के रक्षापरक वचनका और ...केशव' द्रौपदीके केशाकर्षणपूर्वक बलात् सभामें ...के सूचक हैं। द्रौपदीकी टेरमें देर भी न लगी ...भक्तभयहारी भगवान् भला कब चूकते ? 'ये यथा ...प्रपद्यन्ते' के प्रतिदानका अचूक समय जो उपस्थित ...हाजिर थे। साड़ीके अञ्चलके एक छोटेसे टुकड़ेके ...मंगलरूप स्वयं परिधान चीर अनन्त (साड़ीरूप) बन गये। दुःशासन खींचने लगा, पर साड़ियोंका अन्त नहीं आया। द्रौपदीके तनकी साड़ियोंका वहाँ अम्बर-सा लग गया। 'सारी बीच नारी है कि नारी बीच सारी है' का अद्भुत दृश्य प्रस्तुत हो गया। बलाभिमानी दुःशासनकी एक न चली, वह श्रान्त-क्लान्त होकर बैठ गया। यादवेन्द्रके इस अनूठे जादूसे सभी विस्मय-विमुग्ध थे। भक्त और भगवान्‌की जयध्वनिसे सभा-भवन गुञ्जित था। द्रौपदीकी रक्षा हुई। गोसेवानिरत गोपाल कृष्णकी सप्रेम तनिक-सी सेवाका यह कितना बड़ा पुरस्कार और पावनतम प्रतिदान था ! धन्य श्रीकृष्ण और धन्य देवी कृष्णा।

धर्म-निरपेक्षता—एक पुनर्विचार

(लेखक—श्रीकृष्णकुमारजी त्रिवेदी, एम्० एस्-सी०, धर्मरत्न, साहित्य-रत्न, गांधी-साहित्याचार्य)

भारत एक धर्म-निरपेक्ष राष्ट्र है। हमारे संविधानमें समस्त नागरिकोंको विश्वास, धर्म और उपासनाकी स्वतन्त्रता दी गयी है। इस विशाल देशमें, जहाँ लगभग सभी धर्मोंके अनुयायी मिलते हैं, विभिन्न धर्मावलम्बियोंके ...ह अस्तित्वके लिये इस प्रकारकी स्वतन्त्रता आवश्यक ...ही नहीं, अनिवार्य भी थी। अनेकतामें एकताके ...परिचायक—विभिन्न धर्म, विभिन्न संस्कृतियाँ, विभिन्न ...रीति-रिवाज, विभिन्न पूजा-पद्धतियाँ हमारे राष्ट्रकी प्रगतिमें बाधक न बनें, अशान्ति न उत्पन्न हो और कोई भी व्यक्ति इस क्षेत्रमें दबाव, कुण्ठा एवं असंतोषका अनुभव न करे—यही विचार प्रमुख रूपसे धर्म-निरपेक्षता-के पीछे था।

हम सदासे ही धार्मिक क्षेत्रमें सहिष्णु रहे हैं, असहिष्णुता प्रकट करनेवाले उद्धरण हमारे धार्मिक ग्रन्थोंमें नहीं मिलते। हमारा तो सिद्धान्त रहा है—

'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' 'वासुदेवः सर्वमिति'

सीय राममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥

और फिर कण-कणमें प्रभुका दर्शन करनेवाला व्यक्ति असहिष्णु भी कैसे हो सकता है—

उमा जे रामचरन-रत, बिगत काम मद क्रोध।
निज प्रभुमय देखहिं जगत, केहि सन करहिं बिरोध॥

ईश्वरमें पूर्णरूपसे विश्वास करनेवाला व्यक्ति कभी भी धार्मिक क्षेत्रमें असहिष्णु नहीं हो सकता।

मेरा वर्तमान विषय सहिष्णुता और असहिष्णुताकी व्याख्या करना नहीं है, वरं यह देखना है कि हम कहाँतक धर्म-निरपेक्षताको समझ सके हैं और कहाँतक उससे लाभान्वित हो सके हैं।

'धर्म वस्तुतः विशाल है, महान् है और असीम है; वह सर्वत्र है, पिताका पुत्रके प्रति दायित्व और पुत्रका पिताके प्रति कर्तव्य धर्मके अन्तर्गत है और उसकी विभिन्न पद्धतियाँ सम्प्रदायके अन्तर्गत हैं। धर्म आधारस्तम्भ है, जिसपर समाजका ढाँचा टिका रहता है, राष्ट्रका विशाल प्रासाद निर्मित रहता है और विश्वका गुरु भार आश्रित रहता है। समाज-धर्म और राष्ट्र-धर्मसे विमुख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं हुआ जा सकता। धारण करनेवाली वस्तुको धर्म कहते हैं और इस प्रकार सत्य, अहिंसा, अस्तेय, सदाचार, ब्रह्मचर्य आदि धर्मके अन्तर्गत आते हैं। धर्मके ये अङ्ग सभी धर्मोंमें, सभी सम्प्रदायोंमें समान रूपसे विद्यमान हैं, कोई भी धर्म असत्य-भाषण, हिंसा, चोरी, दुराचार आदिकी शिक्षा नहीं देता। इन मूलभूत तथ्योंको निकाल दिया जाय तो न समाज रह जायगा, न राष्ट्र; वे निराधार हो जायँगे; विशृङ्खलित हो जायँगे; व्यक्ति पूर्णतया स्वार्थी हो जायगा और मानवमें तथा पशुमें विशेष अन्तर नहीं रह जायगा।

धर्म-निरपेक्षता हमें धर्मसे विमुख होनेको नहीं कहती; हमें संकीर्णतासे ही विमुख होनेको कहती है।

क्या हम धर्म-निरपेक्षताके इस अर्थको समझ सके हैं ?

यह एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रश्न है; क्योंकि व्यक्तिके उत्थानपर ही राष्ट्रका उत्थान निर्भर करता है और व्यक्तिके उत्थानके लिये धर्म-निरपेक्षताका वास्तविक अर्थ समझना और उसका पालन करना अत्यन्त आवश्यक है।

कुछ समय-पूर्व समाचार-समितियाँ बनायी गयी थीं; भ्रष्टाचार दूर करनेके लिये, सदाचार सिखानेके लिये— अशिक्षित व्यक्तियोंको नहीं, वरं उन सुशिक्षित एवं उच्चपदस्थ अधिकारियोंको, जो राष्ट्रके नायक हैं, उसकी प्रतिष्ठाके रक्षक हैं, उसके कर्णधार हैं।

अनेक शिक्षा-शास्त्री इस बातपर जोर दे रहे हैं कि विद्यार्थियोंको कुछ नैतिक और धार्मिक शिक्षा अनिवार्य रूपसे दी जाय।

कुछ समय पहले दिल्लीसे समाचार मिला था कि माता-पिता अपनी संतानोंके कार्यकलापोंसे चिन्तित हैं और कुछने सम्मिलित रूपसे सायंकाल कुछ युवक-युवतियोंको एकत्र करके धार्मिक चर्चा करना प्रारम्भ किया है।

ये तथ्य इस बातके द्योतक हैं कि हम धर्मनिरपेक्षताके वास्तविक अर्थको नहीं समझ सके हैं। भारत-जैसे आध्यात्मिक राष्ट्रमें सुशिक्षित व्यक्तियोंको सदाचार सिखाने-के लिये समितियोंका निर्माण करना पड़े—इससे बढ़कर लज्जाकी और क्या बात होगी ? इससे भी बड़े दुःखकी बात तो यह है कि इन समितियोंके द्वारा भी भ्रष्टाचारका उन्मूलन नहीं किया जा सका और अनेक निःस्वार्थ कार्यकर्त्ता इस ओरसे उदासीन हो गये हैं।

हमारा युवकवर्ग—विशेषकर विद्यार्थीवर्ग—किस प्रकार उच्छृङ्खल एवं अनुशासनहीन होता जा रहा है, यह किसीसे छिपा नहीं है; प्रतिदिन ही कहीं-न-कहींसे हड़ताल, लाठी और गोलीचार्ज तथा विद्यालय बंद किये जानेके समाचार मिलते हैं। अध्ययन उनकी सबसे गौण हो गया है, अन्य विघटनकारी कार्य प्रमुख हो गये हैं। 'काकचेष्टा बकध्यानम्'—अतीतकी बातें हो गयी हैं। शिक्षक कक्षामें विद्यार्थियोंकी भलाईके लिये, उतना चिन्तित नहीं रहता, जितना उन्हें प्रसन्न रखनेके लिये, शान्त रखनेके लिये और अशोभनीय घटनाओंका निवारण करनेके लिये, और फिर—

सचिव बैद गुरु तीनि जौं प्रिय बोलहिं भय आस।

उत्तरार्द्धको लिखनेकी आवश्यकता नहीं है, उसे अनुभव करनेकी आवश्यकता है।

यदि हमारी इस स्थितिमें कोई सुधार न हुआ तो भविष्यका ईश्वर ही रक्षक है। पेड़को सूखनेसे बचाया जा सकता है, पर सूखे पेड़को हरा नहीं किया जा सकता।

आवश्यकता इस बातकी है कि हम धर्मनिरपेक्षता-के वास्तविक अर्थको समझें; समाज-धर्म और राष्ट्र-धर्मका पालन करें; अपने ही हाथों अपने ही भविष्यका विनाश न करें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक जटिल समस्या—द्रुतगतिसे बढ़ती जनसंख्या

(लेखक—श्रोत्रिय पं० श्रीओमदत्तजी शर्मा गौड़ 'विकल')

आज न केवल भारत अपितु संसारके सभी महान् देश द्रुतगतिसे बढ़ रही जन-संख्यासे अत्यन्त चिन्तित हैं। वे चाहते हैं कि किसी-न-किसी प्रकार इसपर रोक लगे। फलस्वरूप अनेकों नयी-नयी विधियाँ अपना रहे हैं। 'परिवार-नियोजन' के अन्तर्गत अनेक कार्यक्रमों—पुरुषोंका ऑपरेशन, लूप-प्रणाली, औषधि-परीक्षण और निरोध आदिमें काफी धन व्यय किया जा रहा है। भारत भी इस दिशामें उत्तरोत्तर अधिक प्रयत्नशील है। इसकी बे-हद कमी सरकारको पहले ही बाध्य कर रही है। एतदर्थ एक पृथक् विभाग भी कार्यरत है, यहाँतक कि मन्त्रालयतक भी।

इतना सब होनेपर भी, क्या भारत सरकार अपने प्रयत्नमें सफल हो रही है? उत्तर नकारात्मक है। केवल कुछ ऐसे मध्यमवर्गीय लोगोंको छोड़कर, अधिकांश इसपर ध्यानतक नहीं देना चाहते। कुछ वायुमण्डल ही इस प्रकारका हो रहा है कि वह ऐसी बातकी ओर उनका ध्यान जाने ही नहीं देता। केवल वही मध्यमवर्गीय जन, जिनकी आय सीमित और अपर्याप्त है—उन्हें करना पड़ रहा है लालचके वशीभूत होकर। यहाँतक कि उनका जीवन भी दूभर हो उठा है। फिर भी स्वेच्छासे नहीं, विवशतासे वे ही इसमें सरकारको अपना योग दे रहे हैं।

सरकारद्वारा समाचारपत्रोंमें समय-समयपर प्रकाशित करायी जानेवाली अनेकों सूचनाएँ प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। देशकी अल्पसंख्यक जनता, इसे अपने धर्म और हितोंके विरुद्ध मानकर, अपनाने एवं क्रियात्मकरूप देनेसे साफ इन्कार कर रही है। सरकार सशक्त होते हुए भी, न जाने क्यों चुप हो जाती है और क्यों उन्हें कानूनन बाध्य नहीं करती? परिणाम-स्वरूप दूसरी ओर सरकार अप्रत्यक्षरूपसे बहुसंख्यक समाजको ही, इस सदोष एवं हानिप्रद परिवार-नियोजन-प्रणालीको अपनानेके लिये बाध्य करती आ रही है? उसे ही, इस प्रकार बलिदानका बकरा क्यों बनाया जा रहा है? उसका बहुमत घट रहा है—उसकी जनसंख्या क्रमशः कम होती जा रही है! दूसरी ओर अल्पसंख्यक इस प्रणालीको न अपनाकर, दिन-रात अपनी जनसंख्या बढ़ानेमें लगा है। उनकी जनसंख्या बढ़ रही है और बढ़ती ही चली जायगी। यह तो स्पष्टरूपसे एक प्रकारसे सौतेला और अवाञ्छित व्यवहार हुआ। ऐसा क्यों? प्रश्न स्वाभाविक ही है। यदि सरकार केवल जन-संख्या-वृद्धिपर रोक ही लगाना चाहती है तो उसे सभीपर, समानरूपसे अपनी आज्ञाको लागू करना चाहिये। धर्मके नामपर या उसकी आड़ लेकर अल्पसंख्यक बचें, तो बहु-संख्यकोंके हृदयोंपर आघात लगता ही है। न्याय और संविधान प्रदत्त समान अधिकार एवं घोषणाका यह खुला और स्पष्ट उल्लङ्घन क्यों? यह प्रश्न सर्वोच्च प्राथमिकताके साथ विचारणीय एवं निर्णीत किया ही जाना चाहिये। भारतवर्षकी यह वर्तमान-सर्वोच्च समस्याओंमेंसे एक सर्वोपरि समस्या जो बन गयी? अब प्रश्न यह है कि इस समस्याका समाधान किस प्रकार किया जाय ताकि किसी भी जनको न तो किसीकी आड़ लेनेकी ही जरूरत पड़े और न किसीके हृदयको आघात ही लगे। कटुता भी न बढ़ने पाये। कार्यमें रुकावट भी न पड़ने पाये। मार्गमें न दिक्कतें आयें और न अड़चनें ही।

हर बुद्धिमान् व्यक्ति, चाहे वह किसी भी जाति,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्प्रदाय अथवा धर्मका हो, इस समस्याकी ओर इसके परिणामको ठीक-ठीक अर्थोंमें समझकर हृदयसे चाहेगा कि शीघ्र ही कुछ ऐसा हो या कुछ ऐसा किया जाय जिससे उसे छुटकारा मिले तथा वह शान्ति और सुखकी साँस ले सके। दम घुट रहा है उसका। तड़फ रहा है वह। आज इस अनेक जटिल समस्याओंसे भरे वातावरणमें।

तो अब प्रश्न यह होता है कि आखिर यह समस्या पैदा ही क्यों हुई? इसका मूल कारण क्या है? इसका ठीक-ठीक इलाज क्या किया जाय और किस प्रकार?

लेखकका दृढ़ विश्वास है कि जनसंख्याकी वृद्धिका मूल कारण ब्रह्मचर्यका पालन न किया जाना प्रमुख है, शेष सब गौण। वर्तमानमें व्याप्त चरित्र-हीनता, इसका एक दूसरा प्रधान कारण माना जा सकता है। इसके अतिरिक्त कतिपय और कारण भी हैं—जैसे, लड़के-लड़कियोंकी सहशिक्षा, छात्र-छात्राओं एवं युवक-युवतियोंका विलासप्रिय वस्तुओं एवं शृङ्गार-प्रसाधनोंमें दिन प्रतिदिन अधिकाधिक बढ़ रही आसक्ति। सिनेमा-प्रियता एवं स्वयंको पूर्णरूपसे सजा-धजाकर तथा अधिक-से-अधिक आकर्षक बनाकर घरसे बाहर निकलनेकी प्रवृत्ति आदि भी इसके सहायक कारणोंमें माने जा सकते हैं। आप स्वयं यह अनुभव करेंगे कि इस कथनमें कहाँतक सत्यता है? जिधर देखिये उधर ही, स्वयंको जरा भी सम्पन्न समझनेवाला थोड़ा-बहुत पढ़ा-लिखा व्यक्ति (बालक-बालिका, युवक-युवती यहाँतक कि अब तो प्रौढ़-जन भी) जब भी घरसे बाहर निकलता है तो अपने-आपको पूर्णरूपसे सजा-धजाकर। और उसे देखकर सहज ही अंधानुकरण करते हैं अबोध बालक-बालिकाएँ, एवं छात्र-छात्राएँ, इस महाविनाशकारक प्रवृत्तिका; विशेषकर स्कूल-कालेजोंकी छात्र-छात्राएँ इस कुप्रवृत्तिको बढ़ानेमें महत्त्व-पूर्ण योग दे रहे हैं। इसके लिये हम उन्हें ही सम्पूर्णतया दोष नहीं दे सकते। कारण, बालक स्वभावसे अनुक… शील होते हैं। जैसा वे अपने बड़ोंको करते दे… वैसा ही तो करेंगे? माता-पिता, गुरुजन आदि … आज इसमें कोई बुराई नहीं देख रहे हैं। दुर्भाग्य!

यह मनुष्यकी स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि वह सु… वस्तुको ही अधिक देखना पसंद करता है। उसके ने… हर कुरूप वस्तुसे स्वतः ही हट जाते हैं। वह … अधिक कालतक देखना कभी नहीं चाहता, कभी … भी नहीं। यह तथ्य है।

अधिक नहीं, कुछ वर्षों पूर्व ही प्रत्येक … घरानेकी सौभाग्यवती स्त्री अपना शृङ्गार करती थी, … उसी समय जब उसका पति काफी दिनोंके बाद … मिलता था। वह भी उस समय जब घरके सभी … बड़े रात्रिमें शयन करते होते थे। इस प्रकार वह … रात व्यतीत होनेपर ही निज शृङ्गार कर अपने प… शयनकक्षमें प्रवेश करती थी और रात्रि व्यतीत हो… पूर्व ही वह (सबके सोकर जागनेसे प… ही) पतिके कक्षको त्याग भी देती थी। किसी… पता भी न चलने पाता था। यदि वह … तनिक भी ढील बरतती अथवा लापर… दिखाती तो उसे अपनेसे बड़ोंसे प्रेमभरा उलाहना … सहन करना पड़ता था। इतना नहीं; यदि वह इस… जान-बूझकर उल्लङ्घन करती तो उसे फिर गृहलक्ष्मी… सम्मानित पदसे रहित भी होना पड़ता था। लज्जा स्त्री… भूषण है। लज्जाविहीना स्त्री गृहलक्ष्मी नहीं कहला सकती… थी। उसे फिर वेश्याकी उपाधितक दे दी जाती थी… और सभी गृहलक्ष्मियाँ उसका तिरस्कार करती थीं।

आज तो सब कुछ उलटा ही हो रहा है। क्यों! … प्रदर्शनप्रियता बढ़ रही है। अविचार घर कर र… है तथा लोक-लज्जाको निःसंकोच तिलाञ्जलि दी जा… रही है? परिणाम भी विनाशक, स्पष्ट और भयंक…

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। छात्र-छात्राएँ घरसे स्कूल जाते हैं—विद्याध्ययन-के हेतु। परंतु! वे सब घरसे निकलते हैं तब जब कि स्वयंको पूर्णरूपसे सज्जित कर लेते हैं। यह सब यद्यपि होता है—अज्ञानतावश ही। पर होता तो है ही!

जैसा कि ऊपर निवेदन किया जा चुका है कि स्वभावतः मानव सुन्दरता-प्रिय है। उसे जहाँ-जब भी कोई सुन्दर वस्तु दिखायी दे जाती है, उसका मन आकर्षित होता ही है उसके प्रति। आजके इस युगमें, जब सुन्दरताके प्रसाधनोंमें दिन-दूनी बढ़ोत्तरी हो रही है, वह भी हर सुन्दर वस्तुको देखने लग जाता है। उसके सामने, जब विशेष रूपसे सजकर, कोई निकलता है तो वह उसे निहारनेका लोभ संवरण कर ही नहीं पाता। यदि आपने कभी इस ओर जरा भी ध्यान दिया हो, तो आपने यह भी अवश्य ही देखा होगा कि कुछ ही सज्जनोंको छोड़कर अधिकांश ऐसे मिलेंगे जो इन बनी-ठनी (नकली प्रसाधनोंसे स्वयंको सजाकर, सुन्दर मानकर चलनेवाली) बालिका तथा स्त्री (युवा अथवा प्रौढ़) को प्रलुब्ध दृष्टिसे देखने लगते हैं और कुछ लोग तो इस प्रकारके हावभाव प्रकट करने लगते हैं कि जिन्हें देखकर लज्जा भी लज्जित हो जाती होगी। इतना ही नहीं, कोई-कोई तो ऐसी कुचेष्टाएँ भी करने लग जाता है—जिसको कोई भी स्वयंको सभ्य कहने और माननेवाला व्यक्ति कभी सहन नहीं कर सकता!

आये दिन समाचार-पत्रोंमें ऐसे समाचार छपते हैं। जिनमें गुंडोंद्वारा स्त्रियोंके साथ छेड़छाड़ करने तथा माता-पिता अथवा अभिभावकोंकी उन गुंडोंके साथ हुई मार-पीटका हाल होता है। इन गुंडोंमें न केवल युवा-पुरुष ही होते हैं—अपितु! प्रौढ़ एवं वृद्ध जन भी! इस कुप्रवृत्तिका परिणाम इससे भी आगे बढ़ता है। आपने पढ़ा और सुना होगा कि बालिका अथवा स्त्रियोंको गुंडे उड़ाकर ले गये। अब आप कल्पनातक नहीं कर सकते कि गुंडे उक्त अपहरण की गयी बालिका अथवा नारीको, किस-किस प्रकारकी यातनाएँ देकर, उसके जीवनको सर्वथा नष्ट-भ्रष्ट कर देते हैं। ऐसी स्त्री यदि गुंडोंका जरा भी विरोध करनेका सत्साहस करती है तो वे उसकी हत्या कर डालनेसे भी नहीं चूकते। यह भी बड़े ही दुःखके साथ पढ़नेमें आता है। ऐसे गुंडोंमें सभ्य तथा शिक्षित लोग भी होते हैं!

यह सब होता है हमारी इस दूषित प्रणालीके कारण। आप ही सोचिये! इसके लिये गुंडोंको सारा-का-सारा दोष देना कहाँतक न्यायसंगत होगा? यदि हम ठंडे दिलसे इसपर विचार करें, तो यह स्वतः ही स्पष्ट हो जायगा कि इन सब कुप्रवृत्तियोंके मूल कारण तो हम स्वयं ही हैं। आग और फूसको साथ-साथ रखकर यदि हम यह आशा करें कि धूआँ न उठे, आग न लगे तो यह मूर्खता नहीं तो और क्या है?

अभी इतना निवेदन इस विषयमें मैं और करना उचित समझता हूँ कि इस प्रकार सरकारके द्वारा इतना प्रयत्न किये जानेके उपरान्त भी क्या कारण है, जो जन-संख्या दिन-प्रति-दिन बढ़ती ही जा रही है? एक प्रधान कारण और भी है इस बढ़ोत्तरीका और वह है—सिनेमाके प्रति दिनदूनी, रात-चौगुनी बढ़ रही आसक्ति। कितनी भयानक आज हो उठी है यह सिनेमाकी आसक्ति? आप प्रत्यक्ष देख सकते हैं—किसी भी सिनेमाघरके सामने कुछ देर ठहर कर ही। कितनी भारी भीड़ लगी होती है, सिनेमाके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टिकट-घरोंपर शो चालू होनेके समय ? कितनी परीशानीका सामना करना पड़ता है टिकट लेनेके समय ? धक्का-मुक्की खाकर, अपनी जेबें कटवाकर भी तो हमलोग सिनेमा देखना पसंद करते हैं ! हम अकेले ही तो नहीं जाते सिनेमा देखने ? साथमें ले जाते हैं अपनी पत्नीको। यहाँतक कि हम अपने युवक पुत्र-पुत्रियोंको भी ले जाने अथवा अकेले जाने देनेमें कोई नुकसान नहीं मानते ? समझते हैं कि अब वह युवा है और उसे इतनी सुविधा तो दी ही जानी चाहिये। पर क्या हमने उसके भयंकर परिणामोंकी ओर भी ध्यान देनेकी कभी कोशिश की है ? पर यह सर्वथा सत्य है कि इस प्रकार दी गयी स्वतन्त्रताका बड़ा अनुचित और भयंकर परिणाम हो रहा है और होगा ही।

सिनेमामें अनेक प्रकारके दृश्य उपस्थित होते हैं। कुछ निश्चित रूपसे ऐसे कि जिनका हमारे अबोध बालक-बालिकाओंपर बड़ा खराब असर पड़ता है। परिणाम जो होता है—वह बतानेकी आवश्यकता नहीं। सिनेमामें आजकल ऐसे दृश्योंकी भरमार जान-बूझकर ही रक्खी जाती है जिनमें परस्पर स्त्री-पुरुषका मिलन आदि बड़े अवाञ्छनीय रूपमें दिखलाया जाता है।

यदि सरकार सत्य ही इस दिशामें कुछ करना चाहती है तो उसे अवश्य ही ऐसा कुछ करना ही होगा कि जिससे उपर्युक्त उद्देश्य-पूर्तिमें वास्तविक सहायता प्राप्त हो सके। ऐसे उन सब कारणोंपर प्रतिबन्ध लगाने ही होंगे। खासकर हम यह सादर कहना चाहेंगे कि सरकारको, भावी कर्णधार जनताकी भावनाओंको परिवर्तित करनेकी दिशामें, बालक-बालिकाएँ ऐसे चित्र कदापि न देख सकें—जिनमें ऐसे ही दृश्य हों, श्रृङ्गार-प्रियतापर भी कुछ-न-कुछ रोक लगानी ही पड़ेगी। भले ही इसमें हमें कुछ आर्थिक हानि भी क्यों न उठानी पड़े। सिनेमा-व्यवसायियों मालिकों एवं प्रबन्धकोंसे भी हम यह अनुरोध अत्यन्त सादर करना चाहेंगे कि आप भी इस दिशामें कुछ त्याग करें। उन्हें भी यह रोक लगानी होगी कि छात्र-छात्राएँ वैसे चित्र कदापि न देखने पावें, जो उन्हें चारित्रिक दृष्टिसे गिरानेवाले हों। भले ही उन्हें इस कारण कुछ आर्थिक हानि भी क्यों न सहनी पड़े। यह नम्र निवेदन है कि सभी देश-रक्षाभिलाषी महानुभाव इसपर ध्यान दें। परमपिता परमात्मा सबको शीघ्रातिशीघ्र सद्बुद्धि प्रदान करें।

जीवन शान्ति-सुखका आगार बने

जिनसे जगती विषय-वासना, बुद्धि ग्रहण करती अविवेक।
मन-इन्द्रिय होते अधर्मरत, त्याग शास्त्रमर्यादा टेक॥
बढ़ जाती अधर्म-रति, होने लगता सहज यथेच्छाचार।
अधःपात होता, जीवनमें बढ़ते दुःख-अशान्ति अपार॥
ऐसे प्राणि-पदार्थ, दृश्य, साहित्य, वस्त्र, आहार-विहार।
हैं ये सभी कुसंग, त्याज्य हैं, वृत्ति आसुरीके व्यवहार॥
बुद्धि विवेकवती हो, जिससे ऐसा हो सात्त्विक सत्संग।
मन-इन्द्रिय संयत हों, उनपर चढ़े पवित्र धर्मका रंग॥
संयम-नियम धर्मसम्मत हो मनकी वृत्ति ईश्वराकार।
सर्वभूतहित जीवन जिससे बने शान्ति-सुखका आगार॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दक्षिण भारतकी तीर्थयात्रा

(लेखक—सेठ श्रीगोविन्ददासजी, श्रीमती रत्नकुमारी देवी, श्रीगोविन्दप्रसादजी श्रीवास्तव)

[गताङ्क पृष्ठ ११८० से आगे]

'रामेश्वरम्-मन्दिर'के बाद धार्मिक पवित्रताकी दृष्टिसे 'गंधमादन पर्वत'का विशेष स्थान है। यह नगरके उत्तर-पश्चिमी किनारेपर रामेश्वरम्-मन्दिरसे डेढ़ मीलकी दूरीपर एक बालूके टीलेपर बसा है। इसके निकट ही रामनादके राजा-द्वारा निर्मित एक दुर्गका खंडहर है। यहीं एक चोटीपर एक दुमंजिला भव्य मन्दिर भी है। बताया जाता है, हनुमान्जी इसी स्थानसे लंकामें कूदे थे। यह स्थान यहाँ 'रामझरोखा' नामसे प्रसिद्ध है—

राम झरोखा बैठि के सब का मुजरा लेय।
जाकी जैसी चाकरी ताको तैसइ देय॥

—वाली कहावत इसी पुण्यस्थानको लक्ष्य कर कही जाती है। निकट ही पाँचों पाण्डवोंके नामपर पाँच तीर्थ हैं, जिन्हें धर्मतीर्थ, भीमतीर्थ, अर्जुनतीर्थ, नकुलतीर्थ और सहदेवतीर्थ कहते हैं।

गंधमादन पर्वतके बाद 'कोदण्ड राममन्दिर' भी दर्शनीय है। यहाँ पहुँचनेके लिये समुद्रके किनारे-किनारे जाना पड़ता है। इस मन्दिरमें सीता, राम, लक्ष्मण और हनुमान्जीके अतिरिक्त विभीषणकी मूर्ति भी है और कहते हैं कि श्रीरामने विभीषणका राजतिलक यहीं किया था।

इसके अतिरिक्त भद्रकाली देवी, महालक्ष्मी देवी एवं नम्बिनायकी देवी-मन्दिर और सीताकुण्ड, विल्लुनितीर्थ, कपितीर्थ तथा भैरवतीर्थ भी अपने धार्मिक महत्त्वके लिये प्रसिद्ध हैं। इन सबके साथ कुछ पौराणिक घटनाएँ सम्बद्ध हैं।

श्रीरामेश्वरम्-मन्दिरमें शिवलिङ्गके लिये 'रामलिङ्ग' अथवा 'रामेश्वर' कहते हैं। रामायण-कालमें जैसा कि पहले कहा गया है, सेतुनिर्माणके बाद भगवान् रामने लिङ्गरूपसे भगवान् शंकरकी प्रतिष्ठा की, पूजन किया जो गो० तुलसीदास-जीके निम्न कथनसे प्रमाणित है—

परम रम्य उत्तम यह धरनी।
महिमा अमित जाइ नहिं बरनी॥
करिहउँ इहाँ संभु थापना।
मोरे हृदयँ परम कलपना॥
सुनि कपीस बहु दूत पठाए।
मुनिबर सकल बोलि लै आए॥
लिंग थापि बिधिवत करि पूजा।
सिव समान प्रिय मोहि न दूजा॥

यह शिवलिङ्ग रेतका बना है। कथा है कि हनुमान्जी-को कैलाससे शिवलिङ्ग लानेके लिये भेजा, किंतु हनुमान्जीको लौटनेमें विलम्ब हो गया। ऐसी दशामें श्रीरामने सीताजी-द्वारा बनाये गये रेतके लिङ्गकी स्थापना की और उसका पूजन किया। हनुमान्जीद्वारा कैलाससे लाया गया शिवलिङ्ग 'रामलिङ्गम्'के उत्तरमें स्थापित किया गया और इसे 'विश्व-नाथार', 'काशीलिङ्गम्' और 'हनुमान्लिङ्गम्' आदि कहकर पुकारा जाता है।

हमने अपने रामेश्वरम्-प्रवासमें श्रीरामेश्वर भगवान्के दर्शन-पूजनके साथ रामेश्वरम्-मन्दिरका खूब निरीक्षण किया। इसके अतिरिक्त इस पुण्यक्षेत्रके उपर्युक्त कुछ पुण्य-स्थलोंको जाकर उनके दर्शन-सेवनका महत्त्व-माहात्म्य उठाया।

अपनी रामेश्वरम्-यात्राके अन्तिम दौरमें दिनाङ्क २४ सितम्बरको हमारा भगवान् रामेश्वरको गङ्गाजल-समर्पणका कार्यक्रम था। गतवर्ष गङ्गोत्तरीमें अपने पात्रको जब हमने गङ्गाजलसे भरा था तो उसी समय उसे भगवान् रामेश्वरको समर्पण करनेका हमारा संकल्प हो गया था। उत्तराखण्डकी यात्रासे लौटनेके उपरान्त यह गङ्गाजल-पात्र लगभग वर्ष-सवा वर्ष हमने अपने मकानमें रक्खा। गङ्गोत्तरीमें गङ्गाकी प्रवेशधारासे गङ्गाको अंशरूपमें जब हमने पृथक् किया तो इस वायदेसे कि उसे उनके इष्टदेवको सुपुर्द करेंगे। अपने इसी वचनकी पूर्तिके लिये हम रामेश्वरम् आये थे और आज इस वचनपूर्ति-का यह शुभ मुहूर्त था। हमने अपने निवासस्थानपर अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंडाजीसे गङ्गाजलीका विधिवत् पूजन कराया और पुष्पोंसे अलंकृत गङ्गाजलीको अपने दोनों हाथोंकी अञ्जलिमें लिये गाजे-बाजेसे रामेश्वर-मन्दिरकी ओर चल दिये। हमारी उत्तराखण्ड-यात्रामें बारह व्यक्ति थे। दक्षिणकी इस यात्रामें रत्नकुमारीजीके जो उत्तराखण्ड-यात्रामें हमारे साथ थीं, अचानक रुक जानेके कारण यद्यपि जबलपुरसे हमलोग ग्यारह व्यक्ति ही चले थे; किंतु बादमें मद्राससे श्रीमती प्रकाशवती देवीके हम लोगोंके साथ हो जानेसे हमारे यात्रा-दलकी संख्या फिर बारह हो गयी थी। बारह व्यक्तियोंका यह दल, जिसमें ग्यारह व्यक्ति अपने दोनों हाथोंकी अञ्जलिमें अपनी-अपनी गङ्गाजली लिये और प्रकाशवती रत्नकुमारीद्वारा भेजी गङ्गाजली लिये गाजे-बाजेसे मन्दिरकी ओर बढ़ रहे थे, हमारी धार्मिक मान्यताओंका मूर्त्तरूप था। भावनाओंसे सभीका हृदय भरा था। पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियोंका और इनमें भी श्रीमती गोदावरी देवीका अधिक। भावनाएँ नेत्रद्वारसे पानी बनकर बह रही थीं। इस समय हमें अनायास ही कन्यादानकी अनुभूति हो उठी। निर्धन हो या धनिक, शिक्षित हो या अशिक्षित हर सद्गृहस्थके ऊपर विवाह-योग्य कन्याका कैसा दायित्व होता है और जब वह इस कन्या-ऋणसे मुक्त होकर उसे अपने घरसे विदा करता है, उस समय उसकी जैसी मानसिक स्थिति हो जाती है, उस अवस्थामें हमलोग मन्दिर पहुँचे और गङ्गाजीको शिवजीके सुपुर्द करने उनके पुजारियोंके हाथोंमें थमा दिया। पुजारियोंद्वारा गङ्गाजल-समर्पणके पूर्वका पूजाविधान सम्पन्न कर कुछ ही देरमें गङ्गाजल-अर्पणका कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ। हमलोग सभी एक आतुरता, एक उत्सुकता और एक आत्मिकभाव लिये शिवजीके दरबारमें आज उनके सम्मुख बैठे थे। पुजारी गङ्गाजल-अर्पणके पूर्व पात्रको अपने हाथोंमें लेकर जिस यात्रीका यह गङ्गाजल-पात्र होता उच्च कण्ठसे उस यात्रीका नाम पुकारकर गङ्गाजल अर्पण प्रारम्भ करते। उस वक्त उस यात्रीका, जिसका गङ्गाजल शिव-समर्पण होता, मानस मानसरोवरके राजहंसकी भाँति भक्तिके सागरमें तैरने लगता। गङ्गाजल-समर्पणकी इस प्रक्रियामें दर्शक भावनाओंमें डूब जाता और ऐसा अनुभव करने लगता जैसे गङ्गाजल रूपसे आज वह स्वयं अपने इष्टदेवके समर्पित हो रहा है। बारी-बारी हम सभी लोगोंके गङ्गाजल-पात्र पुजारी उठा-उठाकर शिवलिङ्गपर उड़ेलने लगे। एक ओर पुजारी ऊँचे हाथों जलपात्रको धाराबद्ध शिवलिङ्गपर उड़ेल रहे थे, दूसरी ओर हमारे नेत्रोंसे अश्रुओंकी झड़ी लगी थी। अन्तरङ्गमें भावसरिता बिना कूल-कगारके उमड़ रही थी, मस्तिष्कमें कल्पनाएँ और कथाएँ चक्र लगा रही थीं। जान पड़ता, भगवान् शिवके जटा-जूटसे निःसृत भागीरथीकी पुराण-प्रसिद्ध प्रवेग धारा, जो युगोंतक विश्वम्भरके जटा-जूटमें बँधी रही थी, लोक-कल्याणकी अपनी लक्ष्य-पूर्तिके बाद आज पुनः उसमें समाहित हो रही है। हमने सुन रक्खा था कि गङ्गोत्तरीका पावन जल जब भगवान् रामेश्वरको चढ़ता है तो यह जलधारा लिङ्गसे सवा हाथ ऊपर उठती और उछलती है। यह हमने अनुभव किया। इतना ही नहीं, गङ्गाजल समर्पित करनेकी इस क्रियामें हमने शिवलिङ्ग और गङ्गाजलकी इस धाराका एक विशाल रूप देखा। जान पड़ा शिवमिलनके लिये आतुर गङ्गोत्तरीकी धारा धरती छोड़ गगनगामी हो गयी है और शिवलिङ्ग भी दीर्घाकार हो निस्तब्ध नीरव ऊँचे गगनतक उठ गया है। दोनोंका मिलन हो रहा है, इस मिलनमें हमें कभी गङ्गामय शिव दीखते हैं कभी शिवमय गङ्गा। बीचमें न कहीं कोई पण्डित, पुजारी, पुरोहित है और न दर्शक है, केवल निस्तब्ध नीरव, नीलाकाश। पर इस निस्तब्ध नीरव, नीलाकाशमें नीलकण्ठके इस स्वल-से भी एक मोहक शब्द सुनायी पड़ता। यह था छल-छल। इस छल-छल शब्दके कण-कणमें, इसकी ध्वनि-प्रतिध्वनिमें, इसकी लयमें, इसके अर्थ और इसकी व्याख्यामें इन दोनोंके मिलनका कैसा इतिहास, द्वैतसे अद्वैतकी कैसी मार्मिक कहानी छिपी थी, इसे कौन समझ पाया है। विचार उठा—'ईश्वर अंस जीव अविनासी' की उक्तिके अनुसार इस जड़-जंगम सृष्टिमें मानवका अस्तित्व और उसका औचित्य क्या है। एक ओर जिस मानवने विशाल देवालय, मन्दिर, मस्जिद और पिरामिड-जैसे आध्यात्मिक प्रतिष्ठानोंका निर्माण किया, दूसरी ओर अतीत कालमें अपनी सुरक्षाके लिये विशाल और सुदृढ़ दुर्गोंका निर्माण किया। यही नहीं, आज आधुनिक वैज्ञानिक अणु-आयुधोंके निर्माण अनन्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्तरिक्षके अन्वेषणके सफल परिणामोंसे सुसज्जित होकर चन्द्र-लोक और अन्य नक्षत्रलोकोंमें बसनेकी तैयारी कर रहा है। आखिर उसका मूल इष्ट क्या है ? कौन जानता है ? इस पहेलीके रहते हुए भी अतीतके अनुभव और वर्तमानका दृश्य देखकर यह प्रत्यक्ष हो जाता है कि एक महत्त्वाकाङ्क्षा, जो जीवनकी प्रेरणादायी है, इस प्रगति और प्रतियोगिताका कारण है। एक दौड़ता है तो सभी दौड़ने लगते हैं, दुनिया दौड़ती है। इस दौड़में कौन आगे जाता है और सबसे आगे पहुँचकर अपने इष्टतक पहुँचता है, यही अतीतका अनुभव और आजका विज्ञान है। पुराणकालमें भागीरथी इसी अपनी भावनासे अपनी इसी महत्त्वाकाङ्क्षासे विष्णु-चरणसे निःसृत होकर अवनिपर दौड़ी। उसके साथ अन्य अनेकों अगणित नदी-नाले भी दौड़े; किंतु अपने गन्तव्यतक लोक-कल्याणकी लम्बी मंजिल पूरी कर अपने लक्ष्य अपने इष्टदेव तक केवल गङ्गा ही पहुँचीं। इसकी क्या वजह है। यह विचार उठते ही उसके ध्येयकी पवित्रता, साधन और साध्यकी विशुद्धतापर बरबस हमारा ध्यान जाता है। लोककल्याण मात्र ही जिसका ध्येय हो और अपने इस ध्येयकी प्राप्तिके लिये जो तूफानी गतिसे अपनेको सर्व-हित-भावसे समर्पित कर दे, वह मानव पवित्र और पूजाका पात्र तो होता ही है, सर्वपूज्य और सर्वव्यापक अपने इष्टके भी अधिक निकट रहता है। किंतु इस निकटताको प्राप्त करनेके लिये उसे कठोर श्रम और कठिन मंजिल पार करनी होती है। भगीरथके सदृश प्रयत्न, परिश्रम और पुरुषार्थ हो, तभी उसे इष्टदर्शन अथवा इष्ट-प्राप्ति हो सकती है और ऐसे प्रयत्नका जो परिणाम होता है, वह उस प्रयत्नके कर्ताके नामसे उसके प्रणेता रूपसे ही जाना जाने लगता है। जैसे जाह्नवीके प्रणेता भगीरथके कारण ही जाह्नवी भागीरथी नामसे जानी और मानी जाती हैं, इसी प्रकार जीवनके अन्य सभी क्षेत्रोंमें व्यक्तिका पराक्रम उसके परिचयका कारण बनता है। जीवनके इस परिचय और प्रयोगकी परम्परामें जीवन भर जी-जानसे जुटी जाह्नवी आज अपने इष्ट अभीष्टके समर्पित होती देख सहसा भगवान् भूतनाथ और देवी उमाका प्रणय हमें दिखायी दिया अनन्त अवसरोंपर और अनन्त रूपोंमें। धाराका तारतम्य टूटते ही जब दृष्टि स्थिर हुई तो फिर हमें वही तपोलीन शिव लिङ्गरूपसे प्रतिष्ठित दिखायी दिये और तपस्विनी उमा गंगोत्तरीसे 'कोटि जनमु लगि रगर हमारी। बरउँ संभु नतु रहउँ कुआरी॥' का उद्घोष करती गङ्गासागरकी ओर उन्मुख। जाने कितनी बार शिव और उमाका प्रणय हुआ, कितने बार होगा। जाने कबसे भगवान् रामेश्वरको यह गङ्गाजल भेंट हो रहा और कितनी बार हो चुका है कौन जानता है—हमारी समझमें तो इस समर्पणका सम्बन्ध सृष्टिकालसे ही है और इसका अन्त भी सृष्टि-संहारसे ही होगा।

इस समर्पणकी भावनासे विरत मानव-धर्म नहीं। यही हर व्यक्तिका जीवन-धर्म है। धर्मसे विरत व्यक्ति जीवनकी एक विडम्बना है। एक ऐसी छलना है, जिससे विमुक्त व्यक्ति ही तो अपने जीवनमें सफल और सार्थक होता है। नहीं तो, अपने जीव-मुक्तिके मार्गसे दूर बहुत दूर भटक एक ऐसे छल—एक ऐसी छलनामें भटकता रहता है, जिसे चौरासी लाख योनियोंमें भटकना कहा जाता है। अतः जीवनके इस छल, जो काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सरतासे भरा हुआ है, जीवनकी इस छलनासे बचनेके लिये ही शिवको गङ्गाजल समर्पणके बीच जो एक शब्द छल-छल हमने सुना, वही साररूपसे भगवान् शिव और जाह्नवीका वह संदेश था, जिसके द्वारा ही मानवका जीवन सफल और सार्थक हो सकता है, सरिता-शिरोमणि सलिला गङ्गाके सदृश पवित्र और पूजायोग्य। यही एक अनुभव और अनुभूति जीवनके लम्बे सफरमें यत्र-तत्र होती रही है जो गतवर्ष उत्तराखण्ड और उसमें भी विशेषकर गङ्गोत्तरी-से प्रवाहित गङ्गाकी धाराके साथ आज उसके शिव-समर्पणके अवसरपर एक आत्मानुभवके रूपमें एक ऐसी उपलब्धि हमें हुई, जिसपर जीवनका न केवल भूत और वर्तमान, सारा भविष्य ही निर्भर है।

(क्रमशः)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उच्च स्तरका जीवन !

'जीवन उच्च स्तर' का हो यह आज हमारा है नारा।
'उच्च स्तर' का अर्थ यही है—ऊँची हो जीवन-धारा॥
सत्य, अहिंसा, त्याग, प्रेम हो सदाचार सबको प्यारा।
जीवमात्रके माध्यमसे हो 'प्रभु-सेवा' ही ध्रुवतारा॥

× × ×

अखिल विश्वके जड-चेतनमें हो पवित्र 'स्व' का विस्तार।
'सबका स्वार्थ' बने निश्चित ही 'अपना स्वार्थ' एक अविकार॥
सबका दुःख मिटाने, सुख देनेको सभी रहें तैयार।
करें सभी सबके सुख-हितके लिये सहर्ष त्याग स्वीकार॥

सदाचार, सद्भाव, साधुता, सत्य वचन, शुचि सद्व्यवहार।
सुख-दुःखादि द्वन्द्वमें समता, संयम, शील, शुद्ध आहार॥
सेवा, सर्वभूत-हितमें रति, सात्त्विक गुण विचार आचार।
सरल-सौम्य मन, संतसङ्ग-रुचि, शान्ति, सुहृदता हो साकार॥

विनय-विनम्र मधुर हितकर हो वाणी, दें सबको सम्मान।
हो अस्तेय, असंग्रह, मन-तनसे न किसीका हो अपमान॥
ब्रह्मचर्य आठों प्रकारसे नित्य सुरक्षित रहे महान्।
'उच्च स्तरका जीवन' यह—जिससे प्रसन्न होते भगवान्॥

× × ×

भय, विषाद, आलस्य, ईर्ष्या, द्वेष, असूया, भूतद्रोह।
राग, कामना, क्रोध, लोभ, मद, दम्भ, अशान्ति, दर्प, छल, मोह॥
नित्य अपूर्ण भोग-तृष्णा, पद अर्थ-भोगकी ही नित टोह।
निन्दा, वैर, विरोध, क्रूरता, हिंसा, तनिक नहीं मन छोह॥

नित्य परापकार-रुचि, दूषित तामस कर्मोंमें उत्साह।
चिन्तानल प्रज्वलित चित्तमें, नित्य हृदयमें दारुण दाह॥
विघटन-नाश-अशान्ति-उपद्रवकी बढ़ती नित नूतन चाह।
निज मिथ्या सुख-हेतु, नहीं मन पर-विनाशकी कुछ परवाह॥

नास्तिकता, अधर्ममें रति अति, बाह्य प्रदर्शन, मिथ्या त्याग।
ईश्वर-शास्त्र-संत-द्विज-निन्दामें रुचि सहज सहित अनुराग॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उच्छृङ्खल, विधिहीन, यथेच्छाचारी, अवजीवन दुर्भाग।
'निम्न स्तर'के ये दुर्गुण जिनसे आसुरपन उठता जाग॥

× × ×

ये सब निम्नस्तरके उगते बढ़ते जिससे दोष तमाम।
वही कहाता 'उच्चस्तरका जीवन' आज विगत-विश्राम॥
मर्यादा सब तोड़, छोड़कर कुलकी रीति-नीति अभिराम।
जन-जनसे ऋण लेकर करना भोग, बढ़ाना तन-आराम॥

करना मनमानी, कर गुरु-जन-शास्त्र-वचनका अति अपमान।
सीनेमा प्रतिदिवस देखना, मनमें भर रखना अभिमान॥
मदिरा-मांस उड़ाना अंडे, शूट-बूट-नकटाई तान।
सजे-धजे अकड़े रहना, नित खूब दिखाना झूठी शान॥

चाहे जहाँ, जभी, जो कुछ भी खाना-पीना बिना विचार।
खड़े-खड़े ही मूत्र त्यागना, करना नित अशुद्धि-विस्तार॥
टबमें नंगे बैठ नहाना, कर चर्बी-साबुन-व्यवहार।
बिना नहाये बिस्तरपर ही पीना चाय त्याग आचार॥

फँस फैशन कुव्यसन आदिमें करना आडम्बर स्वीकार।
खर्च बढ़ाकर, करना चोरी सभ्य बने कर कपटाचार॥
निम्न कोटिके नाच-गानको मान बैठना संस्कृति-सार।
नर-नारीका मिलना करना बाधारहित विलास-विहार॥

गला फाड़कर यह पुकारना, 'हम स्वतन्त्र हैं, नहीं गुलाम।
निजका और देशका करते, हम 'विकास' हर समय ललाम॥
जीवनको उच्च स्तर पर ला, हमने खूब कमाया नाम।
बनो कृतज्ञ हमारे सब तुम, समझो हमें देशहित-धाम॥

'उच्च स्तर' के सुखद नामपर निम्न-स्तरके करना काम।
पुण्यकर्मके पूत नामपर करना घृणित पाप अविराम॥
तामस बुद्धि बताती उलटा सत्‌को दुःख, असत् सुखधाम।
'निम्नस्तर'का इसी बुद्धिसे रखा आज 'उच्च स्तर' नाम॥

इसीलिये हम भीख माँग, हैं ऋणपर ऋण ले रहे अमान।
छाया आज दुःखपरिणामी इस 'उच्च स्तर'का अभिमान॥
ले 'विकास'का नाम इसीसे हम कर रहे 'विनाश-विधान'।
शुद्ध बुद्धि दें हमें, मोह हर आज दयामय श्रीभगवान॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रसाद-रहस्य

[कहानी]

(लेखक—श्रीहरिकृष्णदासजी गुप्त 'हरि')

सेठ लखपतिराय धनी हैं, धर्मात्मा हैं। धनी तो वे अपने नामके अनुरूप ही हैं, धर्मात्मा कितने हैं—इसका अनुमान उनकी राजमहल-सरीखी हवेलीके एक भागमें उनके द्वारा बनाये गये श्रीलक्ष्मीनारायणजीके भव्य मन्दिरसे होता है जिसमें वे नित्य नियमसे पूजा किया करते हैं—वह पूजा जो भूलसे भी कभी बिसरती-छूटती नहीं, क्षणार्धसे लेकर दो-दो पहरतककी चलती रहती है—अवसरानुसार, क्योंकि सेठजी पूरे अवसरवादी हैं। अवसर चूकना वे स्वप्नमें भी नहीं सीखे। अवसरकी महिमाके गीत गाते उनकी जबान नहीं थकती।

सेठजीने एक खास कामके लिये भगवान्‌की आराधना की। यद्यपि वह खास काम था अन्यायसंगत और अनुचित। पूर्वप्रारब्धवश उस कार्यके बहाने सेठजीकी तिजोरीमें पैसे आ गये।

जब इस खास कामसे छुट्टी मिली, तब सेठजीको सत्य भगवान्‌की याद आ गयी। अब वे उन्हें मनानेमें लगे। आखिर समझदार थे न। सबको अपना बनाये रखकर ही सबसे अपना काम बनाया जाता है।

हाँ तो, सत्य भगवान्‌को मनानेके लिये पूर्णिमाके दिन संध्याके समय श्रीसत्यनारायणजीकी कथाका आयोजन किया गया—बड़े ठाट-बाटसे। घरके मन्दिरके आँगनमें शामियाना तना, मण्डप बना, फर्श बिछा, दीपक जले। धूपका सुवासित सौरभ चारों ओर फैल गया। पूजा एवं व्रतसम्बन्धी तरह-तरहकी सामग्रियोंके ढेर लग गये। प्रसादके लिये फलोंके टोकरे आये; खीर, पूड़ी, कसार आदि भाँति-भाँतिके व्यञ्जन तैयार किये गये। कथा कहनेके लिये प्रसिद्ध कथावाचक स्वनाम-धन्य मटकू पाण्डेय बुलाये गये, जो अपनी रेशमी धोती, रेशमी दुपट्टे, लम्बी चोटी, चन्दनाभिभूत भाल तथा खटर-पटर खड़ाऊँमें बड़ी सज-धज एवं शानसे आये। संक्षेपमें आयोजनमें कोई कोर-कसर नहीं रहने दी गयी।

नियत समयपर कथा आरम्भ हुई। कथा सुननेके लिये जो जन-समुदाय एकत्र हुआ था, उससे मन्दिरका आँगन ठसाठस भर गया। मटकू पाण्डेयने गद्य-पद्यकी बाढ़ लाकर विविध प्रकारकी अंग-भंगिमा प्रदर्शन करते हुए कथामेंसे कथापर कथा निकाल-निकालकर, ऐसी-ऐसी बातें सुनायीं कि जिन्हें सुनकर हँसते-हँसते पेटमें बल पड़ जायँ। अच्छा-खासा आदमी लोटन कबूतर-सा लोटनियाँ लेने लगे। उपस्थित श्रोताओंका खूब मनोरञ्जन किया। अपनी एक कला नहीं छोड़ी उन्होंने। सबको काममें लेकर सभीको रसविभोर कर दिया। मटकू पाण्डेयकी ओर देखकर सब बावले-से बने हँसे चले जा रहे थे—मनोरञ्जनके साथ-साथ धर्म-लाभ तो हो ही रहा था।

श्रोताओंमें हरिया भगत भी थे। वही हरिया भगत जो खादीकी मोटी धोती पहिने, खादीका ही राम-नामी दुपट्टा ओढ़े, इकतारा हाथमें लिये जहाँ-तहाँ घूमते फिरते हैं, जिन्हें कोई काम नहीं है, जो एकदम निठल्ले हैं। इकतारेपर गुनगुन करते हुए, जहाँ जो मिल जाय, खा लेना और जहाँ रात आ लगे, वहीं पड़कर सो लेना—बस करतेके नामपर जिनको इतना ही भर आता है। कथा-कीर्तन अलबत्ता भगतजी यथासम्भव कहीं नहीं छोड़ते। इसीलिये यहाँ भी पधार गये हैं, वैसे तो वे सेठ लोगोंसे दूर-दूर ही रहते हैं। दूर-दूर नहीं रहें, तो करें भी क्या। उन तक उनकी पहुँच भी तो आसान नहीं है। मायासे माया...... लम्बे-लम्बे हाथ करके मिला करती हैं; यहाँ भगतजीके पास धरा ही क्या है।

भगतजी कथाके समयसे पहुँच गये थे, अतः आगे ही बैठे थे। आश्चर्यकी बात यह थी कि जब समस्त श्रोतागण रसविभोर हो रहे थे, तब भगतजी जड़ बने बैठे थे...... खोये-खोयेसे। पता नहीं कहाँ डूब गये थे। कौन कहे 'कथा' सुन भी रहे थे, या नहीं। कथाका जो प्रभाव श्रोताओंपर पड़ रहा था और जो सम्भवतः कथावाचकको अभीष्ट भी था, वह तो उनपर किञ्चित् मात्र भी पड़ा नहीं 'यह' निश्चित है। क्यों ? इसका जवाब यथार्थतः कौन दे ! हम तो केवल इतना ही कह सकते हैं कि अपने-अपने भाग्य और अपनी-अपनी लगनकी बात है।

कथा समाप्त हुई। आरती हुई। भोग लगा। एकत्रित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समुदायमें आरती और प्रसाद लेनेके लिये हलचल मची। मचनी ही थी। आरती और प्रसादका महत्त्व ही ऐसा है। न जाने इस कामकाजी दुनियाके क्या-क्या काम-काज इनसे सध जाते हैं। और फिर कहीं आरती और प्रसाद न लेने—न ले पानेसे भगवान् रूठ गये तब; तब तो लेनेके देने पड़ जायँगे ? बात यह है कि जब भय और लोभ दोनों मनमें समा जाते हैं, तब तो जो न हो जाय सो थोड़ा। ऐसी ठेलमठेल और धक्कमधक्केल मची—मचायी इन भय-लोभग्रस्त आरती-प्रसाद-इच्छुकोंने कि बस, मेले-ठेलेपर, तीर्थ जाती हुई रेलपरकी भीड़-भड़क्का और इस अवसरपर मचती धक्का-मुक्कीका हू-ब-हू दृश्य आँखोंके आगे फिर गया। उसे भी एक तरहसे इसने दूर बैठा दिया। दुनियाँका प्रिय सिद्धान्त 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' भगवान्‌के दरबारमें भी सहज सिद्ध होता दीख पड़ने लगा।

हरिया भगत आगे बैठे थे, अतः आरती तो उन्होंने आसानीसे ले ली, लेकिन फिर जो रेले आये, उन्होंने उन्हें उनकी जगहपर जमा नहीं रहने दिया। मुश्किल एक और भी थी। भगतजीके दिलमें रेले आ गये थे। उन रेलोंने उन्हें इस भावोदधिमें धकेल दिया था कि अधिक-से-अधिक व्यक्तियोंको आरती-प्रसाद सहज सुविधासे मिलना चाहिये और कम-से-कम उनके कारण ही किसीको असुविधा नहीं होनी चाहिये। नतीजा यह निकला था कि अन्य जनोंके लिये जगह खाली करते-करते पीछे पड़ते-पड़ते वे द्वारके समीप आ लगे थे और शान्त भावसे वहीं मौन खड़े रहकर प्रसाद-लाभके सौभाग्यकी प्रतीक्षा करने लगे।

आवश्यक-अनावश्यक शोर-गुलके बीच आखिर आरती-प्रसाद वितरण समाप्त हुआ। प्रसाद-वितरणके पुनीत कार्यमें अन्य जनोंके साथ-साथ स्वयं सेठजी भी लगे रहे थे। ऐसा लगाना अच्छा ही रहता है। भगवान्‌के यहाँ खातेमें सहज अतिरिक्त पुण्य जमा होता है और दुनियामें बैठे-बिठाये अपनी नम्रताकी निरभिमानताकी धाक जम जाती है। जब सब लोग आरती-प्रसाद लेकर चले गये, आँगन खाली हो गया, तब सेठजीकी निगाह हरिया भगतपर पड़ी जो अभी भी द्वारके समीप उसी शान्त किंतु अब साथ ही कुछ विचित्र भाव-मुद्रामें खड़े थे। भगतजीको देखकर सम्भवतः क्लान्तता-श्रान्ततावश कुछ चिनचिनाते-से तथा हास-परिहासद्वारा उस क्लान्ति-श्रान्तिको मिटानेकी चेष्टा करते हुए-से सेठजी बोले—

'कहो भई कलियुगी नन्दा ! तुम कैसे खड़े हो अभी ? क्या दुबारा प्रसाद लेना है। लेना है, तो बढ़ो आगे ! दुबारा, तिबारा, चौबारा जितनी बार जी चाहे, लो झटपट !'

हरिया भगत जातिके नाई थे; सेठजीके व्यंग्य-वचन उनके अन्तस्में चुभ गये। स्वाभिमान सभी रखते हैं। उनकी चलती तो वे द्वारपर आकर झाँकते भी नहीं। पर कथा-श्रवणके लिये उन्हें आना पड़ा। कथा-कीर्तनके लिये वे सब कुछ कर सकते हैं। अब भी अपने आहत-स्वाभिमानकी विशेष चिन्ता न कर उसे सेठजीपर एक मधुररस चोटके उपचारसे ही बहलाते हुए वे प्रसाद लेने आगे बढ़े।

अभी तो मिला ही नहीं, सेठजी ! दुबारा, तिबारा, चौबारा-की बात तो पीछे होगी। आपके यहाँका प्रसाद आसानीसे कब मिल पाता है ? तपस्या करनी पड़ती है उसके लिये तो, सो तपस्वी पूरे तुम हो ही।'

सेठजीने कसे हाथसे (जाने क्यों ?) प्रसाद देते हुए पुनः भगतजीपर व्यंग्य कसा, पर उन्हें अब उसपर ध्यान देनेकी फुर्सत कहाँ थी। वे तो प्रसाद ले अपने सौभाग्यपर फूल, जाने कैसे किन-किन भावोंमें विभोर हुए तीरकी तरह बाहर निकल गये।

जैसे ही बाहर आये भगतजीने देखा कि कितने दीन-हीन, दरिद्र-विपन्न एवं हरिजन भाई-बहिन, जिनकी हवेलीमें पहुँच नहीं थी, बाहर खड़े हैं...... 'प्रसादकी आशा लगाये'...... पर प्रसादसे वञ्चित। भगतजी उन्हें इस अवस्थामें देखकर करुणाविगलित हो उठे। उनकी आँखें भीगी-भीगी हो गयीं। भगवान्‌के प्रसादसे किसी भी अभिलाषीके वञ्चित रहते उन्हें प्रसाद पानेका क्या अधिकार है—सहसा उनमें विद्युत्-सा कौंध गया। अब उनसे रहा न गया। उन्होंने अपना प्रसाद उनमें वितरण करना आरम्भ कर दिया। यहाँतक कि एक किनका भी अपने लिये न रक्खा। वह उपेक्षित किंतु श्रद्धालु जनसमुदाय तनिक-तनिक-सा प्रसाद पाकर ही कृतार्थ हो गया और भगतजी उसे—उसके कृतार्थ-भावको, माधुरी एवं गरिमाको लखकर ही स्वयं प्रसाद न पाकर भी अपूर्व तृप्ति एवं कृतकृत्यतासे भर उठे।

इधर कथाका समारोह समाप्त हो चुकनेपर सेठजीने स्वयं प्रसाद पानेका आयोजन किया। एक स्वर्ण-थाल... विशेष-विशेष व्यञ्जनोंसे भरा हुआ तथा केलेके पत्तोंसे विशेष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूपसे ढककर भोगमें लगाया गया था। वह अभीतक अछूता था। समूचे प्रसाद-वितरणमें इसमें हाथतक नहीं लगाया गया था। रक्खा ही वह इस तरह गया था कि अछूता रहे, हाथतक न लगे। सेठजीकी दृष्टिमें वही असली भगवान्‌का भोग था और इसे ही प्रसाद रूपमें सेठजीको पाना था। सबके चले जानेपर जब मण्डपमें केवल सेठ-सेठानी रह गये, तब सेठजीने जल्दीसे उस थालको सरकाकर सेठानीसहित पेट भरकर बढ़िया अपने योग्य प्रसाद पाना चाहा। जल्दी सच्ची थी। पेटमें चूहे कबड्डी खेल रहे थे। व्रत जो रखना पड़ा था, माना—पेय पदार्थोंके रूपमें इस बीचमें पेटमें काफी सामान जा चुका था। किंतु इतने बड़े डील-डौलमें उससे क्या होना था। ऊँटकी डाढ़में जीरा क्या करता ?

पर···अरे···रे। यह क्या ? थाल सरकाना तो दूर, सेठजी ठीकसे उसे छू भी न सके। थाल तो अग्नि-कुण्ड बन गया था। सेठजी अँगुलिया सहलाते घबराकर आह! उह! करते······रह गये! सेठानी चकित होकर पूछने लगी—'क्या बात है !'

सेठजी कुछ कहें-बतलायें, इससे पहिले ही उनकी दृष्टि भगवान्‌की ओर गयी और घबराये हुए सेठजी और घबरा गये। उन्होंने देखा—भगवान्‌के नेत्रोंसे रोषकी चिनगारियाँ निकल रही हैं। लगा उन्हें कि जैसे वे भस्म होकर रह जायँगे! डरे, सकपकाये सेठजी। सहसा भगवान्‌ने सुदर्शन चक्रवाले हाथकी अँगुलीसे बाहरकी ओर संकेत किया। सेठजीके अन्तस्‌में भी फुरना हुई और वे पागलसे बाहरकी ओर दौड़ पड़े···घबराये···घबराये-से कुछ विचित्र-सी अवस्थामें।

हरिया भगत प्रसाद-वितरण करके अभी थोड़ा ही आगे बढ़े थे कि सेठजीने जा पकड़ा। लाख बनाकर कुछ बात करनेकी सोचते हुए भी सेठजीके मुँहसे सीधे यही शब्द निकले—

'मेरी भूल हुई, भूल जाना उसे। और हाँ·····तुम्हें भगवान् बुलाते हैं······किसकी भूल ? कौन भूलें ? और हाँ, क्या कहा ?—मुझे भगवान् बुला रहे हैं! मुझे!··· भगवान्।···अरे!···ओह!···तो चलो।

एक साथ कुछ चकित कुछ हर्षित होकर भाव-विह्वल भगतजीने और भी भाव-विह्वल होकर अटपटी वाणीमें क··· और नाचते-कूदते वे सेठजीके साथ हो लिये। अ··· अद्‌भुत पागलपन छा गया था।

मन्दिरमें भगवान्‌के समक्ष पहुँचते ही पुलकित, रोमाञ्चि··· होते हुए अजब रसभीने गद्‌गद कण्ठसे बोले भगतजी—

'क्यों याद किया नाथ मेरे ? मुझ दीन-हीन अकिञ्चनको ···सर्वथा तुच्छ, न कुछको ?···तुम्हारा हूँ, इसलि··· क्या ? फिर बोलो, क्या करूँ तुम्हारे लिये ? भजन सुनो··· क्या ? सहसा पागलोंकी तरह हँसकर। अथवा कुछ खो··· खरी सुनना चाहते हो ? अभी-अभी उसके लिये ··· तुम्हींने प्रेरणा की है, मेरे नटखट प्रेरक।'

भगतजीको देखते ही भगवान्‌का रोष हवा हो गया··· उनके प्रेमलपेटे अटपटे वचन सुनकर उनके कमलोपम ने··· एवं अमृतोपम मधुर अधरोंपर मन्द-मन्द मुस्कान छा ग··· उस विश्व-विमोहिनी मुस्कानको निरखकर भगतजी ··· सुध-बुध बिसारकर उसे ही एकटक निरखनेमें त··· हो गये।

कुछ क्षण बीते, फिर भगतजीको सेठके भोजनाल··· बैठनेका भगवान्‌की ओरसे संकेत हुआ। स्वयं सेठ··· भगतजीको अपने आसनपर बैठाया·····स प्रेरककी प्रेर··· प्रेरित होकर फिर भोगका थाल उठाकर (थाल इस ··· एक दम अपने स्वाभाविक तापमानमें था) भगतजीके ··· रक्खा। सेठानीजी रजतपात्रमें जल भरकर ले आयीं ··· तब भीत, चकित दम्पतिने कातर कण्ठसे भगतजीसे प्रसा··· पानेके लिये आग्रहपूर्वक प्रार्थना की।

भगवान्‌की माधुर्यसे ओतप्रोत आज्ञा, सेठ-सेठानी··· आग्रहपूर्वक प्रार्थना—फलतः भगतजी रुच-रुचकर अत्य··· श्रद्धा और प्रीतिसे भगवत्-प्रसाद पाने लगे। वे प्रसाद ··· रहे थे और सेठ-सेठानी बैठे-बैठे यह देखकर आश्चर्यान्वि··· हो रहे थे कि प्रसाद जिस रूपमें बनाकर रक्खा था, उस··· रूप भगतजीके सामने आते ही कुछ और ही हो गया था।··· उनका अचम्भा रह-रहकर बढ़ता ही जा रहा था। ··· देखते कि भगतजी जो भी पदार्थ समाप्त करते उसके स्था··· पर तुरंत कोई नया अलौकिक पदार्थ स्वयं थालमें आ··· जाता और इस तरह थाल जैसे-का-तैसा भरा ही रहता। ··· विचित्र लीला हो रही थी। न भगतजी प्रसाद ···

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रहण करते थक रहे थे, न प्रसाद उनके द्वारा छककर ग्रहण होते हार मान रहा था। ऐसा लग रहा था कि जैसे भगत और भगवत्-प्रसाद एकात्मभावको प्राप्त हुए एकरस-लीला कर रहे हैं।

सेठ-सेठानी भगतजीका प्रसाद पाना देख रहे थे और अचम्भेमें खोये जा रहे थे, ऐसेमें सहसा उनके मनमें जागा—

'हमारे लिये प्रसादका थाल छूना मुहाल हो गया और इस भगतके लिये यह हाल। आखिर यह बात क्या है ?'

इतना कुछ सेठ-सेठानीके मनमें आया ही था कि भगवान्के अधरोंसे उनकी ओर शब्दोंकी एक लहर-सी प्रवाहित हो चली''प्रसाद-रहस्यको उसके एक-एक परतमें खोलती।

'भगतके पास जादू है न टोटका। भगत भगत है। बस प्रसाद भगतके लिये है, भोगी भोगलोलुपके लिये''भेदभावसे भरेके लिये नहीं। भगत वही है, जिसे स्वार्थ छू नहीं गया है। जो प्रसाद स्वयं लेनेके लिये धक्कामुक्की भरी दौड़-धूप न करके औरोंको लेने-देनेमें—उन्हें उसके लिये सुअवसर प्रदान करनेमें ही अपनी कृतार्थता मानता है। लिये हुएके भी किनके-किनकेको वितरण करनेमें ही जिसे परम तृप्तिका रस मिलता है, वह है प्रसादका वास्तविक अधिकारी। अधिकारीको मिल गया प्रसाद। जो अधिकारी बने, वही पाये यह वह''तू''मैं''कोई भी······।'

सेठ-सेठानीके अन्तश्चक्षु खुल गये। प्रसाद-रहस्य उनकी समझमें आ गया। सहसा एकतारेकी तान गूँजी''यथार्थताके अलौकिक रसमें आनन्दविभोर करके उन्हें कृतार्थ करती। प्रसादलीला समाप्त हो गयी थी अपना कार्य करके, भगतजी प्रसाद पा, प्रसादका थाल पूर्ववत् छोड़कर हाथ-मुँह धोकर अब भजन गा रहे थे।

जिनपर वे और जो उनपर रीझे हुए थे उन्हीं भगवान्को, रीझे हुए भगवान्को और-और रिझानेके लिये रिझ-रिझाकर और फिर रीझनेके लिये रीझकर रस लेने और देनेके लिये सहज मधुर स्वरमें—

बने मौन सब, कौन बखाने ?
लीला तेरी तू ही जाने।
किससे छिपता, मिलता किससे ?
कटता किससे सिलता किससे ?
किससे छिलता, खिलता किससे ?
पार न पा, हार सब माने।
लीला तेरी तू ही जाने।
हृदय काँपता रह-रह हिलता,
काग-भीड़ जग कंधा छिलता,
राज-हंस किसमतसे मिलता,
पानी दूध निपट जो छाने।
लीला तेरी तू ही जाने।
राजहंस मिल जिसको जाता,
सब पा वह सबमें खो जाता,
भेट तुझे तू ही हो जाता,
तू ही लीला तेरी जाने।
लीला तेरी तू ही जाने।

भगतजी गा रहे थे''गाये जा रहे थे। तन-मनकी सुध-बुध बिसार, भावविभोर हुए और सुन-सुनकर भावविभोर हो रहे थे। स्वयं भावोदधि भगवान् और साथ-साथ सेठ-सेठानीके रूपमें हर्षाश्चर्यसे चकित, हर्षित समूचा जगत्।

ऐसी रचना सुनाओ !

सुनावौ कवि ! तुम रचना ऐसी आज।
(जातें) होय समरपन पूरन मति-मन प्रिय-पद सजि सुचि सुंदर साज॥
अनिमिष निरखत रहैं नैन नित प्रियतम-मुख-बिधु रूप ललाम।
बानी नित नव नव उछाह सौं करती रहै गान गुन-नाम॥
पीवत रहै अतृप्त मधुर मुरली-धुनि-सुधा-नाम-गुन कान।
प्रियतम-अंग-सुगंध मधुरतम सूघत रहै निरंतर घ्रान॥
प्रिय-प्रसाद-रस रसमय रसना चाखत रहै परम अविराम।
प्रियके अंग-अंग-परसन को सुख त्वक् लेव रहै रसधाम॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिन्ता दूर करनेका नया तरीका

(लेखक—डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, विद्याभूषण, दर्शनकेसरी)

उस दिन अपने एक मित्रके यहाँ गया, तो एक बड़ी अजीब बात देखी। पूजाके स्थानपर देवताओंके मुसकराते हुए चित्रोंके साथ ही काँचमें मढ़ी हुई स्वच्छ सुवाच्य अक्षरोंमें लिखी एक कविता सजी हुई थी।

'पूजामें कविताको स्थान !' यह क्या रहस्य है। मैं दूरसे देखता रहा। जब मेरी जिज्ञासा न रुकी, तो उनसे प्रश्न कर ही बैठा, 'यह क्या मढ़वाकर पूजामें रक्खा है आपने ? क्या मैं देख सकता हूँ !'

'शौकसे देखिये ! यह है स्वर्गीय महादेव भाईकी दुर्लभ कविता, जिसे प्रतिदिन प्रातःकाल पूजाके बाद मनन कर मैं दिनभरके लिये नयी प्रेरणा प्राप्त किया करता और अपनी चिन्ताएँ भगाया करता हूँ।'

यह कहते-कहते उन्होंने मढ़ी हुई कविता मेरी ओर बढ़ायी।

'नहीं-नहीं, इसे एक बार स्वयं आपके मुँहसे सुनना चाहता हूँ। पढ़नेका तरीका भी तो सीखना है।'

'तो लीजिये, मैं ही इसे पढ़कर सुनाता हूँ।'

वे उस कविताको रस ले-लेकर धीरे-धीरे पढ़ने लगे, जैसे प्रत्येक अक्षर उनके समग्र शरीरमें व्याप्त हो रहा हो, समस्त मन और आत्मामें रम गया हो। लीजिये, आप भी तन्मयतापूर्वक इसे मनमें बैठाइये और अपने मानसिक जीवनका सुदृढ़ आधार बनाइये——

'माना कि तुम्हारे अपने प्रियजन तुम्हें छोड़कर चले जायँगे, पर इसके लिये व्यर्थ ही चिन्तामें घुलनेसे काम नहीं चलेगा।

भले ही तुम्हारी आशा-लता टूट पड़े, परिश्रम और दीर्घसाधनाके फल तुम्हें न प्राप्त हों, लेकिन इन सबके लिये महज परीशान और दम तोड़नेसे फायदा न होगा !

आधी रातमें घनघोर अँधेरा आयेगा, तो क्या डरकर तुम वहीं ठहर जाओगे ? नहीं, उस समय साहसके साथ तुम बार-बार दीपक जलाकर अँधेरा दूर करनेका प्रयास करना।

और मान लीजिये अगर दीपक न भी जले, तो इसके लिये आखिर घबरानेसे तो काम नहीं चलेगा। अँधेरेमें ही आगे बढ़ना और अपना रास्ता स्वयं बनाना पड़ेगा !

यह ठीक है कि तुम्हारी करुण-वाणी सुनकर बहुतसे प्राणी तुम्हारे पास हमदर्दी जनाने आयेंगे और तब भी तुम्हारे अपने घरके पत्थर नहीं पिघलेंगे।

याद रक्खो, घर या समाजका कोई व्यक्ति सच्चाईके साथ तुम्हारे साथ सहानुभूति नहीं दिखायेगा, लेकिन इसके लिये पस्तहिम्मत होनेसे कोई लाभ न होगा। स्वयं ही अपने भरोसे आगे बढ़ना होगा। खुद ही हिम्मत करनी होगी।'

बड़ी तन्मयतापूर्वक वे इस कविताको पढ़ते रहे, फिर बोले——

'भाई साहब ! इस कविताके शब्दोंसे मुझे बड़ी प्रेरणा मिलती है और चिन्ता करनेकी जगह मैं कार्यमें नया प्रयत्न करनेमें जुट जाता हूँ। इस कविताके शब्दोंके सहारे मैंने जिंदगीमें अनेक संकटोंको हँसते-हँसते पार किया है और आत्मबल विकसित किया है। आप भी चिन्तानाशका यह मनोवैज्ञानिक तरीका इस्तेमाल करें।'

वास्तवमें मुझे भी इस कविताको प्रतिदिन पढ़ने और उसमें प्रतिपादित विचारोंको गुप्त मनमें बसानेसे बड़ा लाभ हुआ है। मनमें कठिनाइयोंसे लड़नेका पुरुषार्थ मिला है।

हम जिन-जिन विचारोंको मनमें बार-बार दुहराते हैं, जिन्हें गुप्त मनमें बसा लेते हैं, वे हमारे जीवनको चलाते हैं। मनमें साहस और आशा भरते हैं। जो विचार हमारे मनके केन्द्रमें रहते हैं, जिन्हें निगाहोंके सामने रखते हैं, जिन्हें हम हरदम देखते और ... रखते हैं, वे हमारे लिये जीते-जागते सदाके मित्र हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कमरेमें लिखे हुए सिद्धान्त-वाक्य, चित्र, विचार आदि हमारी निगाहोंके सामनेसे गुजरते हैं, उनका गुप्त प्रभाव अनजानेमें हमारे गुप्त मानसिक जीवनपर पड़ा करता है।

उनके घरमें गायत्री, आरती और पवित्र चित्र दीवारोंपर लगे हुए हैं—भगवान् बुद्धका शान्तिमय मुद्रामें चित्र, बालरूप श्रीकृष्णका विहँसता हुआ चित्र, भगवान् श्रीरामका प्रसन्न मुख, गाँधीजी, नेहरूजी, चितरंजनदास, भगतसिंह, सरोजिनी नायडू आदि नेताओंके प्रसन्न मुद्रामें आकर्षक और लुभावने चित्र! दीवारें जैसे हँस रही हों। सर्वत्र हँसता-खेलता-विकसता जीवन बिखरा पड़ा है।

मैं उनकी चित्रोंकी इस प्रदर्शिनीको देख रहा था कि वे बोले—

'मित्र! क्या तुम दीवारोंपर लगे इन चित्रोंके विषयमें एक मनोवैज्ञानिककी राय जानते हो?'

मैं चुपचाप उनके मुँहको निहार रहा था।

'नहीं जानते, बड़ी उपयोगी सलाह है। मुझे तो इन चित्रोंसे गुप्त संकेत और प्रेरणा मिलती रहती है। वह मनोवैज्ञानिक कहता है, 'किसीके घरमें लगे हुए चित्र लुभावने तो होते ही हैं, पर वे लगानेवालेके मनके चित्र भी होते हैं। इस नियमके साथ मेरी नयी खोज यह है कि ये चित्र हमारे घरका सुखद, उत्साहवर्द्धक, प्रफुल्ल, धैर्य और साहसपूर्ण प्रसन्नतादायक नया वातावरण भी बनाते हैं। हर आदमी अपना वातावरण और नयी भावनाएँ इन चित्रोंके चुनावद्वारा बना सकता है और अपने घरको स्वर्गके एक कोनेमें बदल सकता है।'

मुझे यह सलाह उपयोगी लगी है। सिद्धान्तवाक्यों, प्रेरक कविताओं और आरतीके अतिरिक्त मैंने नये-नये आशाप्रद चित्र कमरेमें लगाये हैं, जो निराशा और चिन्ताको दूर करते हैं। हमारी दीवारोंपर वह पवित्र चित्र हैं, जो दिनभर मनहूसियत और निराशाको मार भगानेवाले हैं। ये चित्र भारतकी परम्पराओंको जगानेवाले हैं, मनमें वीरता, साहस, धैर्य और कष्टसहिष्णुताको बढ़ानेवाले हैं। निराशा हटाकर मनको उल्लाससे भर देनेवाले हैं। सदा इस शान्त सुखद उत्साहवर्द्धक वातावरणमें रहनेसे भला चिन्ता क्योंकर मनमें टिक सकती है?

चित्र बनानेसे भी चिन्ता दूर होती है

चर्चिल इंगलैंडके प्रधान मन्त्री थे। सारे दिन राजनीतिमें गलेतक डूबे रहते थे। उन्हें न केवल अपने देशकी, प्रत्युत समग्र विश्वकी राजनीतिक उथल-पुथलकी चिन्ता रहती थी, पर उन्होंने चिन्तासे अपने मनकी शान्तिको बचाये रक्खा। उन्होंने फिक्र और परीशानियोंसे मुक्त रहनेका एक नया तरीका निकाला था।

वह क्या था?

'आप चिन्ताओंसे कैसे बचते हैं?'

वे बोले—'मुझमें जब जरा भी थकान आती है, तो मैं शुष्क राजनीतिको पूर्णतः विस्मृत कर चित्र बनानेमें लग जाता हूँ। ये चित्र कुछ बहुत खूबसूरत नहीं बनते; पर जितनी देरमें इस कलामें डूबा रहता हूँ, उस चित्रमें अङ्कित भाव मेरे मनसे चिन्ता दूर कर देते हैं। मैं ताजगीका अनुभव करता हूँ। कलामें लगनेसे जीवनमें सरसता आती है।'

अजीब अनुभव है। वास्तवमें चित्रकलाद्वारा दुनियाकी छोटी-बड़ी चिन्ताओंको पछाड़ा जा सकता है।

श्रीआइजन होवरका अनुभव भी इसीसे मिलता-जुलता है। उन्होंने भी लिखा है—'चित्रकलाने मुझे नया प्राण, मानसिक बल और जीवनमें कटु अनुभवोंको भूलनेकी क्षमता दी है।'

कुछ ऐसे ही अनुभव भारतीय चित्रकारोंके भी हैं। भारतीय चित्रकारोंने भी अपनी चित्रकलासे अपना दुःख-दर्द दूर किया है। चित्रकार श्रीनन्दलाल बोस एक चित्रपर परिश्रम कर रहे थे। वे आस-पासका सब कुछ उसमें भूले हुए थे। चित्रकी समस्त वृत्तियाँ कलाकी उदात्त भावनापर केन्द्रित थीं। चित्र बनानेमें वे दुनियादारीके सब दुःख-दर्द भूल गये थे। एक व्यक्तिने पूछा—

'मास्टर महाशय! आप चित्र-निर्माणमें इतना परिश्रम कैसे कर लेते हैं?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्रकारने उत्तर दिया—'चित्र-निर्माणमें मैं परिश्रम अवश्य करता हूँ, पर शौकके कारण मैं उस परिश्रमको परिश्रमके रूपमें स्वीकार नहीं करता। ज्यों-ज्यों चित्रकारकी कल्पना चित्रके रूपमें मूर्त होती जाती है तथा जितनी सफलतासे मूर्त होती है, उतना ही इस चित्रकारको अपनी कलाकी साधनामें रस मिलता है। और—उस रसका आनन्द श्रमकी क्लान्तिको प्रतिक्षण नष्ट करता है। मेरे हर चित्रके पीछे एक इतिहास है और मैं तो मानता हूँ कि मेरे हर चित्रमें मेरे ही अन्तरके सुख-दुःख, जय-पराजय तथा उतार-चढ़ावका चित्रण होता है····मेरा अनुभव है कि चित्रकारके मन और उसके चित्रमें तादात्म्य होनेसे चित्रकारके मनका बोझ हलका होता है। तब परिश्रमके लिये स्थान ही कहाँ रह जाता है भला।'

बड़े-बड़े विद्वान् और राजनीतिज्ञोंने चित्र बनाकर या घर सजाकर अपने लिये सुखद और प्रेरणादायक वातावरणका निर्माण किया है। उनकी दीवारें बोलती हुई पुस्तकें बन गयी थीं। आप भी चित्रोंसे अपने घरको सजायें। ग्रन्थोंका प्रभाव तो पढ़े-लिखे थोड़ेसे व्यक्तियों पर ही पड़ता है, किंतु उजले पक्षके धार्मिक ऐतिहासिक और नैतिक वृत्तियोंको बढ़ानेवाले चित्रोंसे बिना पढ़े-लिखे सैकड़ों व्यक्ति जीवनमें प्रेरणा और प्रकाश पा सकते हैं। चित्र बोलती पुस्तकें हैं, जो हमारे चित्तको मोहकर सत्पथपर अग्रसर करती हैं। भले चित्रोंको ही घरमें स्थान देना चाहिये। सिनेमा-सम्बन्धी कामोद्दीपक चित्र तो अनर्थकारी ही सिद्ध होते हैं।

शासन, शिक्षा और सदाचार

(लेखक—पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा)

आज अंधाधुंध प्रचारका युग है। इसमें सब प्रकारके प्रचारोंके लिये आसमान-जमीनके कुलाबे भिड़ाये जाते हैं। चुनाव आदिके प्रचारमें अनेक कुत्सित साधनोंका भी उपयोग होता है, बड़े-बड़े वादे किये जाते हैं, अनेक प्रलोभन होते हैं, पर पीछे कुछ नहीं होता। किंतु सदाचारका प्रचार करनेवाले बहुत ही कम हैं, जिसके बलपर ही संसार सदासे टिका रहा है। वेंकटेश्वर, गीतासंदेश, विश्वज्योति-जैसे कुछ पत्रोंने 'सदाचार' अङ्क छापे, पर ये सब नक्कारखानेमें तूतीकी आवाजसे अधिक नहीं सिद्ध हुए। आजके राजनीतिक नेताओं, विद्वानों, साधुओं, महंथों, बड़े-बड़े डिग्रीधारी प्राध्यापकों, कलाविदों, विद्यार्थियों आदिमें भी सदाचारके प्रति पहले-जैसी निष्ठा या रुचि नहीं रही। इसीका परिणाम यह हो रहा है कि डकैती, चोरी, हत्या, धोखा, लूट, महँगी एवं सभी क्लेशोंका विस्तार होता जा रहा और जब इन अपराधों तथा जघन्य कुकृत्योंका भण्डाफोड़ होता है तो पता चलता है कि ये दुष्कर्म आजके शिक्षित कहे जानेवाले लोगोंद्वारा किये जाते हैं! इससे शिक्षाकी दिशाका पता चलता है। एक मनीषीने तो यहाँतक कह डाला कि ऐसे हजारों डिग्रीधारियोंसे (जो चारित्रिक मेरुदण्डसे रहित हों) एक अनपढ़ किंतु सच्चरित्र व्यक्ति ही बहुत श्रेष्ठ है*। डा० राधाकृष्णन्‌ने, जो बहुत वर्षोंतक अनेक विश्वविद्यालयोंके उपकुलपति तथा देशके उपराष्ट्रपति तथा राष्ट्रपति रह चुके हैं, बहुत सोच विचारकर गुजरात-विद्यापीठके (जो गांधीजीद्वारा संस्थापित है) विगत १९ वें दीक्षान्त भाषणमें कह दिया कि 'विद्यार्थियोंके अनाचारके पीछे हम नेताओं तथा अध्यापकोंका आचार ही मूल कारण है—'What the leaders did, it was followed as an example. If there

---

* An illeterate with the strength of character is far better than a thousand of M. A. with no moral backbone. (Sri Vatre—K.kalpātaru vol 30, Devaluation of the Devalued character. p. 214)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

was anything wrong with the Students, we are guilty for it.' (Ibid. P. 213)

प्राचीन कालमें अध्ययन-अध्यापनमें सदाचारको ही प्रमुख स्थान प्राप्त था। उपनिषद् तथा धर्मसूत्रोंमें यह बार-बार आया है कि आचारहीनको वेद भी पवित्र नहीं करते। वे अन्तमें उसे सपक्ष शकुनिके नीड-त्यागके समान छोड़ देते हैं।

आचारहीनं न पुनन्ति वेदा
यद्यप्यधीताः सह षड्भिरङ्गैः।
छन्दांस्येनं मृत्युकाले त्यजन्ति
नीडं शकुन्ता इव जातपक्षाः॥

(मौक्तिको० महाभा० ५।३५।४२; ४३।५, वसिष्ठधर्म० ६।३, देवीभाग० १२।२।१)

मनुस्मृति, महाभारत आदिमें सदाचारको ही सर्वोपरि धर्म माना गया है।

'आचारः प्रथमो धर्मः' (महा० अनु० १४८।१३७)
'आचारः परमो धर्मः' (मनु० १।१०८)

सदाचारसे दीर्घजीवन, ईप्सित संतति तथा अक्षय धनकी उपलब्धि होती है—

आचाराल्लभते ह्यायुराचारादीप्सिताः प्रजाः।
आचाराद्धनमक्षय्यमाचारो हन्त्यलक्षणम्॥
(मनु० ४।१५६)

इसके विपरीत दुराचारी पुरुष सदा दुखी रहता है।
(मनु० ४।१५७)

प्रायः सभी पुराणोंमें सदाचारपर कई-कई अध्याय हैं। सभी स्मृतियों, आयुर्वेद-ग्रन्थों तथा दर्शनभाष्यों, तन्त्र वार्तिक आदिमें सदाचारपर लंबे प्रकरण एवं अंश हैं। निबन्ध-ग्रन्थोंका आचारकाण्ड प्रसिद्ध है। यदि सबका संग्रह हो तो एक बहुत बड़ा ग्रन्थ बन जाय। पहले कथा-उपदेशद्वारा सदाचार-प्रचारकी व्यवस्था थी, यह उन-उन ग्रन्थोंके अवलोकनसे सुस्पष्ट होता है। इससे जितना कार्य होता था, राजशासनसे उतना किसी प्रकार शक्य नहीं था तथा राजाओंसे उन मुनि-महात्माओंकी प्रतिष्ठा भी अधिक थी एवं राजागण स्वयं उनके आज्ञानुसार बर्तते थे। मेधातिथिने राजाको कानून न बनाकर व्यवस्थापक मात्र रहनेकी सलाह दी है। पर आजका धर्मनिरपेक्ष शासन—सदाचार एवं सदाचारियोंका विरोधी है। जिस शासनमें सदाचारी व्यक्तियोंको कष्ट दिया जाता हो, वह शासन शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। वास्तवमें सदाचारका प्रचार ही शासन-यन्त्रका प्रमुख कार्य होना चाहिये। इसीमें उसकी उन्नति, वृद्धि एवं रक्षा है। अन्यथा बड़े-बड़े छल-बल करनेपर भी वह चल नहीं सकता। अतः दण्डनीति महान् त्यागी एवं तपस्वीके द्वारा ही धार्य कही गयी है। (द्रष्टव्य महा० शान्तिपर्व ६०—१००) अन्यथा सर्वत्र अशान्ति, क्लेश, सांकर्य एवं गड़बड़ी फैल जाती है। अतः एक मनीषी व्यक्तिने ठीक ही कहा है कि 'यदि मेरी चले तो मैं शिक्षामें आधा समय सदाचार-पालनके शिक्षणमें ही यापन कराऊँ।'*

विनय-नम्रताका लोप

जथा नवहिं बुध बिद्या पाएँ।
'विद्या ददाति विनयं'
भवन्ति नम्रास्तरवः फलोद्गमैः ... परोपकारिणाम्'

—की बात ही लुप्त हो गयी। विगत नेताओंने अपने विभ्रम भीषण भाषणोंसे छात्रोंकी नम्रताको दास-मनोवृत्तिका रूप बता-बताकर कण-कण निकाल फेंका। परोपकार-साधुताकी तो बात ही कहाँसे आती। यद्यपि उन नेताओंके पुत्र-पुत्रियोंको इस विकट ललकार तथा बरगलानेका फल भी स्वयं गत चुनावोंमें भुगतना पड़ा। उच्छृङ्खल बनाये गये छात्र देशकी सम्पत्ति नष्ट कर रहे हैं; स्टेशन, डाकखाने, विद्याभवन, तथा खादी-भवन आदि जलाकर स्वयं अपना तथा अपने देशका धन नष्ट कर रहे हैं। क्रुद्ध अविनीत, अशान्त, विवेकशून्य

* If I have power, I would order the teaching and practice of moral and spiritual Values to cover half the working time alloted to the students each day. (Ibid. P. 215, Col. I.)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मस्तिष्कको हिताहित-विचारका अवसर ही कहाँ रहता है ? विवेक-बुद्धिको तिलाञ्जलि दे दी गयी। जहाँ पहले गायत्री-जपपूर्वक सद्बुद्धि, शान्ति, विनयकी सदा प्रार्थना की जाती थी। विद्यार्थीवर्ग जिस प्रज्ञाके लिये सतत प्रयत्नशील था; क्योंकि मन्त्र-तन्त्रकी साधना अभीष्ट पदार्थकी प्राप्तिके लिये ही होती है, वहीं अब वह सर्वथा विपरीत दिशामें चल रहा है, यह सब शुभ लक्षण नहीं हैं। वस्तुतः सद्बुद्धि सब श्रेय पुरुषार्थोंके मूलमें अभीष्ट है। तदर्थ पूर्ववत् संध्या, गायत्री-जप, ध्यान, विनय, अनुशासन, शान्ति सब आवश्यक हैं। कहते हैं श्रीमालवीयजीने विश्वविद्यालय इसी लक्ष्यसे बनाया था कि दस सहस्र लड़के प्रतिदिन प्रातःकाल सूर्यार्घ्य देकर उपस्थान एवं जप करेंगे। यदि ऐसा होता तो अवश्य ही विश्वका महान् मङ्गल होता। पर आज वहाँ जो कुछ हो रहा है, वह प्रत्यक्ष है। गाँधीजी भी सादगीके उपासक थे। पर शिक्षा, आजका शासन—केवल खर्चीले जीवन-यापनका आदर्श उपस्थित करता है। वस्तुतः यह शिक्षा नहीं, अशिक्षा है। सुशासन नहीं, कुशासन है। सुतरां, श्रेय इसीमें है कि हम शीघ्र चेतें तथा अपना प्राचीन मार्ग पुनः ग्रहण करें। संध्या, गायत्री, भगवद्-उपासना, साधना, सदाचार, विनय न रहा तो देश स्वर्ग नहीं नरकका रूप धारण करने लगेगा।

गोसंवर्धनके क्षेत्रमें गोशालाओंका योग

(लेखक—श्रीराधाकृष्णजी बजाज)

आज भारतमें करीब तीन हजार गोशालाएँ मानी गयी हैं। जिनमेंसे ५०० गोशालाएँ सक्षम निकल सकेंगी ऐसा मानें। प्रथम २५० गोशालाओंकी सूची बनाकर यह देखा जाय कि उनके क्या साधन उपलब्ध हैं।

एक जमाना था, जब समाजमें घर-घर गोपालन होता था, चराईके लिये पर्याप्त गोचरभूमियाँ थीं, गाय रखनेमें कोई खास खर्च नहीं करना पड़ता था। सबसे सस्ता और सबसे अच्छा दान गोदान माना जाता था। अन्नदानकी महिमा थी, पर गोदानकी अधिक थी; क्योंकि गाय जीवनभर पोषण देती है, जब कि एक बार दिया हुआ अन्न कुछ समय बाद समाप्त हो जाता है। हर घरमें सैकड़ों गायें रहती थीं, उनमेंसे कुछ गायें देनेमें दिक्कत भी नहीं होती थी। अतः गोदान हर प्रकारसे पुण्यका काम था। जमानेमें धीरे-धीरे परिवर्तन हुआ। जनसंख्या बढ़ी, चारागाह घटते गये। तब लोगोंने बेकाम गायोंको आवारा छोड़ना शुरू कर दिया। उससे खेतोंमें, बाजारकी मंडीमें आवारा गायोंकी तकलीफ बढ़ी, उस तकलीफके निवारण एवं आवारा गायोंकी व्यवस्थाके लिये मंडीवालोंने व्यापारपर कुछ लाभ लगाकर गोशालाएँ खोलीं। गोशालाओंका खर्च मंडियोंकी लागबाग तथा भावुकोंके दानसे चलने लगा। समयकी आवश्यकता पूरी हुई।

आज समय कतई बदल गया है। चारागाह नाममात्रके रह गये हैं, जनसंख्या दुगुनी-तिगुनी हो गयी है, नित्य बढ़ती ही जा रही है। शहरोंमें घर-घर गोपालन असम्भव-सा होने जा रहा है। आवारा पशुओंकी तादाद सीमासे बाहर हो गयी है। लेकिन उसकी अधिक चिन्ता नहीं करनी पड़ी। उस ओरसे आँख मूँद ली गयी तो आवारा गायें कसाईके पास पहुँचती रहीं। अब सारे देशमें गोवध-बंदीका एक आन्दोलन छिड़ा है। उसने भारतकी आत्माको जगाया है। गोवधका पाप सदा चलता रहे यह भारतकी आत्माको स्वीकार नहीं है। भारत सरकारने भी एक 'गोरक्षा कमेटी' नियुक्त की है। आज नहीं, कल भारतमें गोवध बंद होकर रहेगा, ऐसा मानना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोवध बंद होनेपर हमारी जिम्मेदारी बहुत बढ़ जाती है। बूढ़ी, लूली, लँगड़ी गायोंका पालन हो, आवारा गायोंकी तादाद क्रमशः घटे, अनुत्पादक पशुओंकी पैदाइश ही रोकी जाय, नस्ल-सुधार हो, गायोंमें दूध बढ़े, जमीन थोड़ी रह गयी है तो सिंचाईके साधन अधिक बढ़ाये जायँ आदि अनेक महत्त्वके काम हमारे सामने हैं। इन सबका बोझ केवल सरकारपर डाला जाय तो उसके लिये उठाना भारी पड़ेगा। उसके लिये जो टैक्स देना पड़ेगा, उससे भी जनता हैरान हो जायगी। फिर, सरकारी तरीकोंमें 'खर्च दूना काम आधा' जैसी आजकी स्थिति है। अतः जनता-जनार्दनको ही यह महान् काम उठाना होगा। सरकारका इसमें पूरा सहयोग रहेगा, तभी गोसेवाका यह कार्य सफल हो सकता है।

सम्पूर्ण गोवध-बंदीके संदर्भमें गोसंवर्धन-गोपालनके लिये एक अखिल भारतीय गोसेवा बोर्ड होना चाहिये, जिसका मुख्य संचालन गैरसरकारी लोगोंके हाथमें हो। उसमें सरकारके लोग भी रहें। आज केन्द्रीय गोसंवर्धन कौंसिलको इस रूपमें जिम्मेदारी सौंपी जा सकती है। प्रादेशिक गोसंवर्धन कौंसिलोंको या गोसेवासंघोंको प्रादेशिक गोसेवा बोर्डोंके रूपमें बदला जा सकता है। प्रादेशिक बोर्ड पूरे प्रदेशके गोसंवर्धनका प्लान बनावें। प्राथमिक युनिट गोशालाओंको बनावें और गोसंवर्धन-गोपालनका काम करें। गोसंवर्धन-गोपालनकी व्यापक योजना सारे देशके लिये बनायी जाकर उसको कार्यान्वित करनेका प्रयत्न होना चाहिये।

बतौर नमूनेके एक योजना राजस्थानको ध्यानमें रखकर बनायी गयी है। वह नीचे दी जा रही है। यह योजना पाँच वर्षके लिये है।

(१) राजस्थानमें २६ जिले, १०० तहसील, २३२ ब्लाक एवं करीब तीस हजार ग्राम हैं। राजस्थानकी जनसंख्या पौने दो करोड़ है। गोपशु-संख्या सवा करोड़ है।

(२) पाँच सालके कामका लक्ष्य

(अ) हर जिलेमें कम-से-कम एक गोरस-भण्डार हो, यों कुल मिलकर २६ गोरस-भण्डार चलें। हर भण्डारमें रोजाना पाँच मनसे बीस मनतक दूधकी खपत हो। एक चौथाई दूध गोशाला पैदा करें, तीन चौथाई ग्वालोंसे खरीदा जाय। गोपालकोंको गायके दूधका भाव भैंसके दूधके बराबर मिले।

(आ) साँड़-सर्विस

दस गाँवोंके बीचमें कम-से-कम एक बढ़िया साँड़ अवश्य रक्खा जाय। यानी पूरे राजस्थानमें २५०० साँड़ोंकी व्यवस्था हो। साँड़-खरीदीमें या साँड़-पालनमें एक हजारकी सहायता दी जाय। साँड़का चालू खर्च गाँववाले स्वयं उठानेको तैयार हों।

(इ) बछड़ी-पालन

सालाना ५००० नयी गायें तैयार करनेके लिये पाँच सालमें २५००० बछड़ियोंका पालन हो। हर बछड़ीको माँका दूध छूटनेके बाद करीब तीन वर्ष पालना होगा। हर बछड़ीके पीछे तीन सालमें २२५) तक इनामके रूपमें सहायता आदि एवं २५) व्यवस्था-खर्च मिलाकर २५०) प्रति बछड़ीपर सहायता खर्च होगा। तीन सालमें बछड़ीका पूरा खर्च करीब ७५०) का होगा, जिसमें २५०) सहायता एवं ५००) बछड़ीके मूल्यमें निकालना चाहिये।

(ई) हरा चारा

हरे चारेकी खेती दस हजार एकड़में हो, ऐसा प्रयत्न किया जाय। प्रति एकड़ अच्छे बीजका खर्च २५) आयेगा, ऐसा माना गया है।

(उ) गोसदन

राजस्थानमें दस गोसदन माने हैं। प्रति गोसदन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५०० पशु मानें तो कुल ५००० होते हैं। प्रति-पशु सालाना खर्च १००) माना है।

प्रदर्शनी

गोप्रदर्शनियाँ दो तहसीलोंमें एक मानी जायँ तो सालाना ५० प्रदर्शनियाँ हो जाती हैं। हर एक प्रदर्शनीको आकर्षक एवं शिक्षाका केन्द्र बनाना हो तो प्रतिप्रदर्शनी दो हजारका अनुदान और खर्च मानना चाहिये।

(३) पाँच वर्षके खर्चका अनुमान--

(अ)	गोरस-भण्डार २५ प्रति भण्डार औसत	८०००)	= रु० २ लाख
(आ)	साँड़-खरीद २५००, सहायता	१००० साँड़ प्रति	= रु० २५ ,,
(इ)	बछड़ी-पालन २५००, प्रति बछड़ी	२५०)	= रु० ६२॥ ,,
(ई)	हरा चारा १०००० एकड़, प्रति एकड़	२५)	= रु० २॥ ,,
(उ)	गोसदन १०, पशु-संख्या ५००० प्रतिवर्ष	१००) खर्च	= रु० २५ ,,
(ऊ)	प्रदर्शनियाँ ५०, प्रति प्रदर्शनी	२०००) से ५ सालमें	= रु० ५ ,,
(ए)	व्यवस्था-खर्च, अन्य खर्च		रु० ५ ,,
			रु० १२७००००० लाख

(कुल एक करोड़ सत्ताईस लाख मात्र)

(४) जन-सहयोग

राजस्थानके विशाल गोवंशके लिये यह योजना छोटी मानी जायगी, फिर भी प्रारम्भके रूपमें काफी बड़ी है। एक प्रयोग सफल होगा तो आगे और भी अधिक काम बढ़ाया जा सकता है।

चंदा करके इतनी बड़ी रकम प्राप्त करना आसान नहीं है। इसके लिये जनता एवं सरकार दोनोंका सहयोग अपेक्षित है। मंडियोंमें लागबागको व्यवस्थितरूप देनेकी जरूरत है ताकि कुछ आय स्थानीय संस्थाके पास रहे और कुछ केन्द्रमें आवे। गोशालाओंकी लाग-बागको कानूनी बनाकर उन्हें मजबूत बनाया गया तो गोशालाओंके माध्यमसे इतना बड़ा काम सहज उठाया जा सकता है।

गोदुग्धको भैंस-दूधके बराबर कीमत मिले, इसके लिये आवश्यक है कि गोदुग्धकी महिमाका प्रचार किया जाय। हर घरमें हर संस्थामें गोपालन हो सके तो अच्छा है, नहीं तो, हर संस्था या घरमें दूध तो गायका ही इस्तेमाल किया जाय। भगवान्के मन्दिरोंमें घी, दूध दोनों गायके हों। ऐसी भावना बनायी जाय। हर प्रकारसे गायको आगे बढ़ानेकी कोशिश हो। शादी-विवाह आदि प्रसंगोंमें तथा नित्य जीवनमें गोग्रासके रूपमें सहायता देते रहनेकी भावनाको जाग्रत् किया जाय। इस प्रकार जन-सहयोगसे महान् कार्य भी आसानीसे हो सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक परोपकारिणी मछली

(लेखक—श्रीताराचन्दजी पाण्ड्या)

'कल्याण'के जून १९६७ के अङ्कमें डा० श्रीरामचरणजी महेन्द्रका एक लेख छपा है, जिसमें दया, कर्तव्यशीलता आदि गुणोंवाले कुछ जानवरोंका वृत्तान्त दिया गया है। उसे देखकर मैं नीचे एक परोपकारिणी मछलीका वृत्तान्त लिखता हूँ जो कि १२-६-१९५५के 'नवभारत टाइम्स'में प्रकाशित हुआ था और वहाँसे उद्धृत कर मैंने १-७-५५ के 'अहिंसा' अङ्कमें छपवाया था—

न्यूजीलैंड द्वीपके पास कुक जलडमरूके मध्यमें ३-४ मील लम्बी एक ऐसी जगह है जो छिपी हुई, टेढ़ी-मेढ़ी चट्टानों आदिके कारण जहाजोंके लिये बड़ी खतरनाक है। उस जलडमरूमें डालफीन जातिकी एक मछली थी जो करीब १० फुट लम्बी और ३ फुट चौड़ी थी। उस मछलीका नाम जहाजियोंने पेलोरस जैक रख दिया था। जितने भी जहाज उस जलडमरू मध्यमें उस खतरनाक जगहसे होकर गुजरते, उन सबको वह मछली रास्ता बताती थी। जब कोई जहाज उस जगह आता तो वह मछली उस जहाजसे थोड़ी दूर आगे-आगे डूबती-तैरती हुई चलती और जहाज उसके पीछे-पीछे चलता। खतरेकी जगह पार करनेपर वह मछली मानो 'अलविदा (अब मैं जाती हूँ)' यह बतानेके लिये एक बार उछलती और फिर गहरी छलाँग मारकर पानीमें अन्तर्हित हो जाती। इस तरह वह सब जहाजोंको सुरक्षित पहुँचा देती थी। इस प्रकार वह वर्षों सेवा करती रही। यह वह किसी लोभसे नहीं करती थी, जहाजवाले उसके लिये कोई चीज समुद्रमें नहीं डालते थे।

एक बार रोटूरा नामक जहाजको वह मछली रास्ता दिखा रही थी तो उस जहाजके किसी अजनबी व्यक्तिने उस मछलीपर अचानक गोली दाग दी। गोली लगते ही वह मछली उछली और डुबकी लगाकर गायब हो गयी और फिर करीब सालभर तक नहीं दिखायी दी, इस अर्सेमें कई जहाज उस रास्तेमें दुर्घटनाग्रस्त हो गये। जहाजियोंका विश्वास था कि उस मछलीका घाव ठीक हो जानेपर वह फिर परोपकारका अपना काम शुरू करेगी। न्यूजीलैंडकी सरकारने भी सन् १९०३ में कानून जारी किया कि अगर वह मछली दिखायी दे तो उसे कोई नहीं मारे। इस कानूनकी घोषणा होनेपर वह मछली फिर दिखायी दी और उसने पहलेका-सा सेवा-कार्य फिरसे शुरू कर दिया एवं उसे वर्षों करती रही। किंतु आश्चर्य यह है कि रोटूरा जहाजको देखते ही वह डुबकी लगाकर भाग जाती।

जहाजीगण उस मछलीका देवताके समान आदर करते थे। जब उस मछलीकी मृत्यु हुई और इसका पता लगा तो न्यूजीलैंडमें एक दरगाहपर उसकी एक प्रस्तर-मूर्ति स्थापित की गयी जो अभी भी मौजूद है।

उपर्युक्त वृत्तान्तसे स्पष्ट है कि मछलियों आदिमें भी बुद्धि, समझ और मानवोंकी-जैसी भावनाएँ होती हैं। केवल यही नहीं अपितु परोपकारितादि सद्गुण उनमें असाधारण मात्रामें—साधारण मनुष्योंसे अधिक मात्रामें भी सम्भव है। अतः वे आदरके नहीं तो प्रेम, सहानुभूति और दयाके पात्र तो हैं ही। शास्त्रोंमें कितना सुन्दर कथन है कि सभी प्राणियोंमें परमात्मा है। अतः हम उन सभीका हृदयसे आदर तथा हित करें और सबके साथ विनयभावसे बरतें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरकार सबसे बड़ा कसाई बनने जा रही है

(लेखक—श्रीसुरेशचन्द्रजी जैन, निशाकर, उपमन्त्री 'हजरतपुर-कट्टीखाना-विरोध-समिति')

[बड़े ही दु:खकी बात है कि हमारे यहाँ जगह-जगह बड़े-बड़े वैज्ञानिक कसाईखाने—(जिनमें लाखों-करोड़ों जीवोंकी हत्या होगी) खोलनेकी योजना बनायी जा रही है। हमारे सम्मान्य स्वर्गीय श्रीलालबहादुरजी शास्त्रीने गोरखपुरमें हमसे कहा था कि कसाईखानोंकी योजना बंद करनेका पूरा प्रयत्न किया जायगा और उन्होंने आशा प्रकट की थी कि वे इस प्रयत्नमें निश्चित रूपसे सफल होंगे। साथ ही उन्होंने भारतमें गोवध सर्वथा बंद करा देनेका भी आश्वासन दिया था। विधाताका विधान—देशके दुर्भाग्यसे उनका असामयिक देहावसान हो गया और भारतीय धर्म तथा संस्कृतिकी विघातक ये दोनों ही समस्याएँ ज्यों-की-त्यों खड़ी रह गयीं !

लाखों-लाखों गायों-बैलों तथा अन्यान्य निरीह पशुओंकी (हिंसामय मुर्गी-उद्योग, मछली-उद्योग आदिके साथ ही) हत्याकी यह घोर पापमयी राक्षसी योजना बनाकर हमारी सरकार जो अपनेको सबसे बड़ा कसाई सिद्ध करने जा रही है, यह हमारा और देशका बड़ा ही दुर्भाग्य है। भगवान्‌से विनीत प्रार्थना है कि हमारी सरकारके कर्णधारोंको सुबुद्धि प्रदान करें जिससे वे घोर पापाग्निसे बच सकें।

व्रजभूमिके हजरतपुर स्थानमें कसाईखानेकी योजनाको देशमें जगह-जगह विरोध होनेपर भी कार्यान्वित करनेका काम चल रहा है। इधर समाचार मिला है कि रोहतकरोडपर एक बड़ा कसाईखाना खोला जाना निश्चित हुआ है। कुछ वर्षों पहले वहाँ कसाईखाना खोला जा रहा था, पर परम गो-भक्त स्वर्गीय लाला हरदेवसहायजी-की प्रेरणासे वहाँकी जनताके प्रबल विरोधके कारण वह विचार छोड़ दिया गया था। अब यदि फिर वहाँ कसाईखाना खोला जा रहा है तो स्थानीय निरामिषभोजी सारी जनताको चेतना चाहिये और ऐसा प्रबल विरोध करना चाहिये जिससे यह विचार सर्वथा छोड़ दिया जाय। हमारे पास उपर्युक्त हजरतपुर-कसाईखानेके बाबत एक पत्र प्रकाशनार्थ आया है, उसका कुछ अंश नीचे दिया जा रहा है—**सम्पादक**]

हजरतपुर-कट्टीखानेको बंद करानेके लिये देशकी जनतासे अपील

हमें बड़े खेदके साथ लिखना पड़ता है कि केन्द्रिय सरकारकी हठधर्मी अपनी चरम सीमापर पहुँच चुकी है। वह भगवान् श्रीकृष्णकी पवित्र व्रजभूमिमें हजरतपुर-कट्टीखाना खोलकर जबरदस्ती व्रजभूमिकी शाकाहारी जनतापर यह कलंक थोपना चाहती है। जनताके तीव्र विरोध करनेपर भी सरकारने अभी भी इस योजनाको रद्द नहीं किया है। हमने सरकारसे सभी प्रकारके शान्ति-पूर्ण, वैधानिक विरोध किये; किंतु हमारी शान्तिप्रिय अहिंसक सरकार, जो कि अपनेको गाँधीभक्त सरकार कहलानेका दावा करती है और बात-बातमें सत्य-अहिंसा-की दुहाई देते हुए नहीं थकती, जिसके कर्णधार धर्मनिरपेक्षताका ढिंढोरा पीटते नहीं थकते, इस धर्म-निरपेक्षताकी आड़में ग्राम हजरतपुर, तहसील ऐत्मादपुर, जिला आगरामें एशियाका विशाल कट्टीखाना खोलकर पवित्र व्रजभूमिमें दूध-घीके स्थानपर खूनकी नदियाँ बहा देना चाहते हैं। जनताको यह स्मरण ही होगा कि इसी व्रजभूमिमें भगवान् श्रीकृष्णने महापापी कंसका वध करके व्रजभूमिमें धर्मराज्यकी स्थापना की थी। किंतु हमारी वर्तमान सरकार हजरतपुरमें कट्टीखाना खोलकर धर्मराज्यको पापराज्यमें डुबो देना चाहती है। यह बड़े ही दुर्भाग्य और दु:खका विषय है।

मैं व्रजभूमिके कलंक हजरतपुर-कट्टीखानेको बंद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करानेके लिये भारत माँके लालोंसे प्रार्थना करता हूँ कि वे हजरतपुर-कट्टीखाना-विरोध-समिति, ऐत्मादपुरको भी गोरक्षा-आन्दोलनकी तरह तन-मन-धनसे सहयोग करके व्रजभूमिकी इस पापसे रक्षा करें। हजरतपुर-कट्टीखानेको बंद करनेके लिये ऐत्मादपुर तहसीलकी जनताने निम्न-लिखित कार्य किये हैं—

१ हस्ताक्षर आन्दोलन करके एक लाख सत्तर हजार हस्ताक्षर कराकर भारतीय संसद्में इस प्रश्नको रक्खा।

२–जहाँपर हजरतपुर-कट्टीखाना बनाया जा रहा है, वहाँपर सरकारने जबरदस्ती हजरतपुर ग्रामके १७ (सत्रह) व्यक्तियोंकी जमीनपर नाजायज कब्जा कर लिया था। उन्होंने इलाहाबाद हाईकोर्टमें रिट दायर की, जिसमें जनताकी विजय हुई, किंतु सरकारने अदालतके कानूनकी अवहेलना कर हजरतपुर-कट्टीखानेका निर्माण-कार्य जारी रक्खा।

३–कई बार कलक्ट्री तहसील आगराके सामने जिलाधीशके समक्ष हजारों व्यक्तियोंने प्रदर्शन किया।

४–समय-समयपर जुलूस निकले। जगह-जगहपर सभाएँ हुईं। इनमें मुख्यतः निम्नलिखित जगहकी रिपोर्टें आयी हैं, जैसे आगरा, फिरोजाबाद, गाँधीग्राम, ध्रांगध्रा, जूनागढ़, राजकोट, बागोड़िया, बड़ोदा आदि हैं।

५–हजरतपुर-कट्टीखानेका विरोध जाननेके लिये राज्यसभासे एक जाँच-कमीशन आया था, जिसके समक्ष एक लाख व्यक्तियोंने प्रदर्शन भी किया था।

६–दिल्लीमें गाँधी-समाधिपर ३० सितम्बर सन् १९६६ से २ अक्टूबरतक हजरतपुर-कट्टीखानेकी विरोध-समिति ऐत्मादपुरसे गये सत्याग्रहियोंने अनशन एवं आन्दोलन किया था, किंतु हमें बड़े दुःखके साथ लिखना पड़ रहा है कि हजरतपुर-कट्टीखानेका विरोध करनेमें श्रीप्यारेलाल सक्सेना शरीर दे गये। उन्होंने गाँधी-समाधि राजघाट दिल्लीमें २ अक्टूबर सन् १९६६में ५८ घंटेका उपवास किया था। जल भी ग्रहण नहीं किया था, स्मरण रहे कि हजरतपुर-कट्टीखानेके विरोधमें यह द्वितीय बलिदान था। इससे पहले पण्डित श्रीरामजी प्रथम बलिदानी हो चुके थे। मुझे इस बातकी अत्यन्त खुशी है कि व्रजभूमिकी जनताने अति संयमसे काम लिया है। उसने राष्ट्रीय तोड़-फोड़की कोई कोशिश नहीं की है। किंतु मुझे दुःख इस बातका भी है कि हमारी सरकारने इसे जनताकी कमजोरी समझकर अपने गलत उसूलको जबरदस्ती लादनेकी कोशिश की है। जिसका परिणाम यह हुआ कि जनताके हृदयमें सरकारके प्रति विद्रोहकी अग्नि धधक रही है। जिसका जीता-जागता प्रमाण है, हजरतपुर-कट्टीखाने एवं गोहत्याको बंद करानेके हेतु तथा अन्न एवं दुग्ध-उत्पादन आदि माँगोंको लेकर श्रीचौधरी चरनसिंह, नगला बूढ़ी, दयालबाग, आगराने दिनाङ्क २-१०-६७ को गाँधी-समाधि राजघाट दिल्लीमें अनशन करनेकी घोषणा कर दी है, जिससे स्थानीय जनतामें एक नयी क्रान्ति जन्म ले रही है।

हमारी सरकार २० वर्षोंमें देशका सारा अन्न और घी तो खा गयी। अब उसकी पूर्तिके लिये जानवर खानेका प्रयास कर रही है। इसके बाद हो सकता है कि मनुष्योंको भी खानेकी तरकीब सोची जाय!

अब मैं भारतके समस्त नर-नारियोंसे इस बूचड़-खानेको बंद करानेके लिये अपनी माँके दूधकी शपथ दिलाता हूँ कि वे संगठित होकर शक्तिभर प्रबल आन्दोलन करें और अपने-अपने यहाँके स्थानीय एम० पी०, एम्० एल्० ए०को बाध्य करें कि वे केन्द्रीय सरकारकी इस नीतिका विरोध भारतीय संसद्में ऐसे प्रभावशाली रूपसे करें कि जिससे सरकारको यह घोर पापका विचार सर्वथा छोड़ देना पड़े।

इस सम्बन्धमें जो भी भाई-बहन सम्पर्क स्थापित करना चाहें, वे हमसे इस पतेपर पत्रव्यवहार कर सकते हैं। पता निम्नलिखित है—

उपमन्त्री, हजरतपुर-कट्टीखाना-विरोध-समिति, ऐत्मादपुर (आगरा)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी ही लगायी आग

(लेखक—डा० श्रीशिवदत्तजी शर्मा 'शिव')

आज मैं बहुत परीशान था, क्यों ?

एक विचित्र-सी घटना घटी मेरे साथ। सुबह मेरी नींद खुली एक स्वप्नसे। ग्यारह बज रहे थे दिनके। मैं आँख खुलते ही बैठा हो गया। साँस तेजीसे चल रही थी। शरीर पसीनेसे भीग रहा था। शायद जगनेसे पहले एक चीख भी मेरे मुँहसे निकली थी। अपने आपपर काबू पाते हुए मैंने स्मृतिपर जोर डाला और स्वप्नकी बात याद करने लगा। इतना भयंकर स्वप्न था कि यदि रात होती तो मैं उसे फिरसे याद करनेका साहस भी नहीं कर सकता था। अब भी तो डर लग रहा था मुझे। इसलिये साहस बाँधनेको रातकी बात सोचने लगा—

थोड़ा-थोड़ा ख्याल आ रहा है—रातको एक निमन्त्रणपर गया था। निमन्त्रण तो एक बहाना था। हम चार-पाँच पुरुष थे और उतनी ही स्त्रियाँ भी। सभीने क्षमता भर खूब शराब पी, खाना खाया और…………

और सभीने होश खो दिये। उस उन्मत्ततामें कितना समय बीत गया है, किसीने नहीं सोचा। किंतु जब शक्तिने साथ नहीं दिया तो घर लौट आया। पता नहीं, कब नींद आ गयी या बेहोश रहा यह भी नहीं मालूम।

लेकिन स्वप्न ?—विचित्र-सा स्थान था। सूखे और काले पेड़, कहीं-कहीं उजाला-सा और मैं अकेला। चलचित्रकी तरह हलका लाल रंगका प्रकाश फैलता है। देखता हूँ—अनेक चेहरे कोई शराबका साथी, कोई सिनेमाका और कोई…………। हँसते हुए खिलखिलाते हुए। मैं पूछता हूँ—'मैं कहाँ हूँ ? हम सब कहाँ हैं ? यह कौन जगह है ?' सब मौन हो जाते हैं। मैं फिर पूछता हूँ—'सब चुप क्यों हो गये ?'

'मुर्दे बोला नहीं करते। शी………ई……! चुप रहो। यह मरघट है। हम सभी मुर्दे हैं और तुम भी क्या बकते हो ?' 'मैं तो जिंदा हूँ। हम सभी जिंदा हैं।'

धीरे-धीरे उजाला बढ़ने लगता है। चारों ओर देखता हूँ मुझे आस-पास खड़ी सूरतें डरावनी लगने लगती हैं। सभी प्रेत-जैसे दिखायी देने लगते हैं। मैं पीछे हटता हूँ। सभीके हाथ उठते हैं। ऐसे बढ़ते हैं—जैसे मेरा गला दबा देंगे ! मैं और पीछे हटता हूँ। एक जोरकी खिलखिलाहट सुनायी पड़ती है। घूमकर देखता हूँ—वही प्रेत-जैसी आकृतियाँ हाथ आगे किये ! कुछ सोच नहीं पाता; हँसी तेज होती जाती है। चीखना चाहता हूँ, किंतु आवाज नहीं निकलती। मुड़ता हूँ और एक ओर दौड़ जाता हूँ। सभी पीछे दौड़ते आ रहे हैं। प्रकाश बढ़ता जा रहा है, गरमी बढ़ती जाती है। पीछेकी चीखें और तेज होती जा रही हैं। अब और दौड़ा नहीं जाता; लड़खड़ाकर गिर पड़ता हूँ। कुछ दिखायी नहीं देता। आवाज सुनायी देती है, आँखें खोलता हूँ। चीखें बंद हो जाती हैं। देखता हूँ—बड़े-बड़े नाखूनवाले सैकड़ों हाथ ! वे बड़ी निर्ममतासे दबोच लेते हैं मुझे ! मैं छटपटाता हूँ। कोई कहता है 'इसे आगमें फेंक दो।'

चित्र बदलता है। ऊँची लपटें उठ रही हैं, बीचोंके बीच जलती आग ! मुझे उठाकर आगमें फेंक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिया जाता है। सभी गायब हो जाते हैं। मैं जलने लगता हूँ और अनायास मुँहसे निकलता है—'हे भगवन्! मेरी रक्षा करो।'

जैसे चमत्कार होता है। आगकी गरमी शान्त होने लगती है। दूरसे आती हुई एक आकृति सफेद वस्त्रोंमें धीरे-धीरे मेरी ओर बढ़ रही है, दोनों हाथ आशीर्वादकी मुद्रामें उठाये। मैं पहचाननेकी कोशिश करता हूँ, किंतु पहचान नहीं पाता। पास आकर आकृति खड़ी हो जाती है, हाथ वैसे ही उठे हैं। गम्भीर स्वर सुनायी देता है। 'पहचाना मुझे?' 'कुछ याद नहीं आता मुझे, पहचाननेकी कोशिश करता हूँ।' 'तुम मुझे उस पहाड़ीपर बने तालाबपर मिले थे शहरसे उत्तरमें, जहाँ ऊँचेसे गिरते झरनेका पानी उसमें इकट्ठा होता है, आजसे दो साल पहले दिवालीके दिन——याद करो। उस समय तुम्हारे चेहरेपर एक चमक थी। हृदयमें आस्था थी। आज मैं फिर आया हूँ। इस आगसे बचना चाहते हो तो अपने-आपको पहचानो। जो कुछ तुमने देखा है तुम्हारे अपने कर्मोंका फल है। तुम्हारा भविष्य है। यह आग, जिसमें तुम जल रहे हो, तुम्हारी अपनी लगायी हुई है। रास्ता खोजो। वास्तविकताको समझो। मैं दूर नहीं हूँ, सदा ही साथ हूँ।'

मुझे याद आ रहा था, धीरे-धीरे याद आ रहा था—मैंने कहाँ देखा था इन्हें।

उत्तरी पहाड़ीपर एक छोटा तालाब है, जिसमें चट्टानसे निकले एक झरनेका पानी निरन्तर गिरता है। चारों ओर जंगली झाड़ियाँ हैं; उनपर लदी वनलताएँ उस स्थानकी शोभा बढ़ाती हैं। बहुत अच्छा स्थान है। कुछ देव-मन्दिर भी हैं और कुछ पत्थरोंकी ही बनी कुटी हैं, जहाँ कभी-कभी कोई साधु आश्रय लेते हैं। उन दिनों मैं रोज ही वहाँ घूमने जाया करता था। वहीं मिले थे ये मुझे और बड़े ही सौम्य एवं वात्सल्यपूर्ण शब्दोंमें कहा था—'बेटे! जीवनसे कुछ पाना चाहते हो तो मायासे दूर रहो।'

और मेरे अविकसित मस्तिष्कने बातको परिहासमें उड़ा दिया था।

'वाह! क्या-क्या लम्बी हाँकते हैं ये फक्कड़ भी। भले ही इतना भी नहीं जानते होंगे कि माया क्या है। खुद तो साधनोंके अभावके कारण सांसारिक सुख भोग नहीं सकते, लोगोंसे कहते हैं—संसारसे दूर रहो, संसार माया है। हुँह····ढोंगी कहींके····।

नारि मुई गृह संपति नासी। मूँड़ मुड़ाय भए संन्यासी॥

खुद तो पराये माल खा-खाकर चिकने पड़े रहते हैं। दूसरोंसे कहते हैं—आत्महत्या कर लो। संसारसे दूर रहनेका अर्थ आत्महत्या नहीं तो और क्या है?'

उस दिनके बाद साधु और शास्त्रोंसे जैसे चिढ़ हो गयी मुझे। मैंने उधर जाना ही बंद कर दिया। बस, कभी-कभी क्लब चला जाता था या उतने समय कोई उपन्यास ही पढ़ता। ईश्वरके प्रति हृदयस्थित आस्थाका स्थान परिहासने ले लिया था। भजनका स्थान ले लिया इन्द्रिय-सुखकी खोजने। नये सिद्धान्त बन गये—'खाओ, पीओ और जीओ। जबतक जीवन है चैनसे गुजारो।'

इसके लिये प्रमुख सहायक धन समझमें आया, जिसे पानेके लिये झूठ बोलना—छल करना प्रारम्भ किया, वह भी अपने ही घरसे। लेकिन वह झूठ अधिक दिन नहीं चला। बस, फिर सभीसे झूठ बोलना शुरू कर दिया। फिर भी जो मिलता था, पर्याप्त न था। जिसके कारण जूआ, सट्टा और चोरीका सहारा लिया। किंतु ये सब तो धन प्राप्त करनेके साधन थे और धन साधन था सुख पानेका। अतः सुखकी तलाशमें बढ़ा तो बढ़ता ही गया; सिगरेट, सिनेमा, शराब और वेश्या भी सीमा नहीं बन सकी। हमेशा आजका सुख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल दु:ख बन जाता और कल फिर नये सुखकी तलाश शुरू हो जाती । मैं दिनों-दिन गिरता ही गया । अन्ततः 'नष्टस्य कान्या गतिः ।' गत कल रात्रिकी स्थिति तो यदि पशु भी देखते तो उन्हें भी आँखें बंद करनी पड़तीं । उस दिनसे कलतकका जीवन एक चल-चित्रकी तरह घूम गया । अपना घोर पतन देखकर मेरी चीख निकल गयी । मैं अपने-आपसे घबरा गया और बस मेरी आँख खुल गयी ।

महात्माजीके शब्द फिर बार-बार मस्तिष्कमें टकरा रहे थे 'जो तुमने अभी-अभी देखा है, तुम्हारा भविष्य है । जिस आगमें तुम जल रहे हो—तुम्हारी ही लगायी हुई है । तुम्हारे अपने कामोंका फल है । रास्ता खोजो, वास्तविकताको समझो । मैं दूर नहीं हूँ, सदा साथ हूँ ।' जैसे हथौड़ेकी चोट पड़ रही है कहीं मस्तिष्कमें ।

'जीवनमें कुछ पाना चाहते हो, तो मायासे दूर रहो । अपने आपको पहचानो ।'

जैसे सम्पूर्ण मस्तिष्क झनझना रहा था—मैं क्या हूँ ? वास्तविकता क्या है ? रास्ता क्या है ? और मार्ग क्या है ?

सदा साथ रहनेवाला कौन है ? आत्मा या परमात्मा किंतु परमात्माको तो मैं बिलकुल भूल चुका हूँ । मुझे फिर वहीं लौटना पड़ेगा जहाँ बचपनमें था, हृदयमें आस्था थी, विश्वास था ईश्वरके प्रति ।

हाँ, यह सब छोड़ना ही पड़ेगा । अन्यथा मानवके लिये यह सबसे बड़ा दुर्भाग्य होगा !

भगवन्नाम-जप

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

बड़े ही हर्षकी बात है कि गतवर्षकी प्रार्थनाके अनुसार 'कल्याण'के बहुत-से पाठक-पाठिकाओंने तथा भगवन्नामप्रेमी सज्जनों तथा माताओंने कृपापूर्वक स्वयं भगवन्नामका जप किया तथा दूसरोंको प्रेरणा करके करवाया। दस करोड़ मन्त्र-जपके लिये प्रार्थना की गयी थी; परंतु नामप्रेमियोंके उत्साहसे—

३३,६२,३३,७०० (तैंतीस करोड़, बासठ लाख, तैंतीस हजार, सात सौ) मन्त्रोंका जप हो गया । जिनकी नाम-संख्या होती है—

५,३७,९७,३९,२०० (पाँच अरब, सैंतीस करोड़, सत्तानबे लाख, उन्तालीस हजार, दो सौ)

सब मिलाकर १००९ स्थानोंसे नाम-जप होनेकी सूचना मिली है । स्थानोंके नाम आगामी अङ्कमें प्रकाशित होंगे ।

हमलोग बड़े हर्षके साथ नाम-जप करने-करानेवालेके प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं ।

व्यवस्थापक—**'नाम-जप-विभाग',**

गीताप्रेस, गोरखपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़ो, समझो और करो

(१)

सच्ची सहानुभूति और करनीका फल

शिवराम गरीब था । पैंसठ रुपये मासिक वेतन पाता था। उसकी कन्या बाईस वर्षकी हो गयी, अतः उसके विवाहकी बड़ी चिन्ता हो गयी । उसने नौकरीके अतिरिक्त रातको तथा सुबह एक व्यापारीके यहाँ तीन वर्षतक प्रतिदिन पाँच घंटे हिसाबी काम करके पंद्रह सौ रुपये इकट्ठे किये । बड़ी दौड़-धूपके बाद एक संस्कारी शिक्षित लड़केके साथ लड़कीकी सगाई की। विवाह एक महीने बाद करना निश्चित हुआ। परंतु विधाताका विधान दूसरा ही था—इसीसे शिवरामको पर-दुःखनिवारणका आदर्श प्रकट करनेका अवसर मिल गया ।

शिवरामके पड़ोसमें ही धनीसिंह नामक एक अच्छे घरानेके सज्जन रहते थे । इनपर झूठा आरोप लगाया गया। वहींके एक बदमाश धनीकी धनीसिंहकी पत्नीपर बुरी नीयत हो गयी। धनीसिंह गरीब था । पर था बलवान् और बहादुर। अतएव उस धनी दुराचारीने पुलिस तथा कुछ दूसरे लोगोंको मिलाकर धनीसिंहपर झूठा मुकदमा चलवा दिया। धनीसिंहको जेल भेजकर उसकी गैरहाजिरीमें उसकी पत्नीपर कब्जा करनेकी उसकी नीच वासना थी । कुछ पैसे खर्च करके धनीसिंहपर बारह सौ रुपयेकी डिग्री करवा दी और एक दूसरे फौजदारी मुकदमेमें तीन सौका जुर्माना न दे सके तो छः महीनेकी कैदकी सजाका हुक्म हो गया। रुपये वसूल करनेके लिये वारंट निकला । रुपये वसूल न हों तो धनीसिंहको जेल भेज दिया जाय । रुपये वसूल होनेकी तो सम्भावना थी ही नहीं; कारण कि धनीसिंह इतना गरीब था कि घरमें दो दिनका अनाज भी नहीं था । इस प्रकार धनीसिंहको जेल भिजवानेकी सारी व्यवस्था हो गयी।

धनीसिंहकी सुन्दरी पत्नी बड़ी ही सुशील थी । इस भयानक षड्यन्त्र और कोर्टके फैसलेकी बात सुनकर वह तो हक्कीबक्की रह गयी। पर वह साहस करके अपनी पड़ोसिन शिवरामकी पत्नी चन्दनीके पास गयी और उसको सारा हाल सुनाकर उससे सलाह माँगी ।

अश्रुधारा बहाती धनीसिंहकी पत्नीकी सारी बातें सुनते ही चन्दनीका हृदय पिघल गया। उसने अपने पतिके पास जाकर धनीसिंहकी पत्नीकी कही हुई सारी बातें सुनायीं और कहा—

'अपनी लड़कीके विवाहमें तो अभी एक महीना बाकी है । भगवान्की कृपा होगी तो इस बीच कोई दूसरी व्यवस्था हो जायगी । नहीं तो, साल-छः महीने बाद सही । पर इनका काम तो आज ही करना है । विवाहके लिये आपने जो पंद्रह सौ रुपये इकट्ठे किये हैं, वे देकर इनको इस विपत्तिसे छुड़ा लेना है ।'

शिवरामके हृदयमें भी सहानुभूतिकी बाढ़ आ गयी । उसने भी चन्दनीसे कहा—'तेरा विचार बहुत सुन्दर है । यह काम आज ही करना है । इस बहिनको आश्वासन देकर भेज दे । मैं स्वयं धनीसिंहके पास जाकर रुपये दे आता हूँ ।' पतिकी यह बात सुनकर चन्दनीको बहुत ही हर्ष हुआ । अपनी पुत्रीके विवाहकी बात भूलकर धनीसिंहको विपत्तिसे छूटा हुआ देखनेकी पवित्र इच्छासे बड़ी नम्रताके साथ तथा आदरपूर्वक चन्दनीने धनीसिंहकी पत्नीको आश्वासन देकर विदा किया ।

कुछ ही देर बाद पंद्रह सौ रुपये लेकर शिवराम धनीसिंहके पास पहुँचा और बड़ी शान्तिके साथ उसे समझाकर रुपये दे दिये । रुपये लेनेमें उसे संकोच तो हुआ । पर उसके हृदयमें जो आनन्द छाया, वह अवर्णनीय है ।

यों पंद्रह सौ रुपये भर दिये गये । बदमाशकी बुरी नीयत सर्वथा निराशामें परिणत हो गयी ।

'भगवान्का न्याय देरसे फल देता है'—ऐसा कहा जाता है, पर यहाँ तो फल भी हाथोंहाथ ही मिल गया। एक शेयर दलालके मारफत शिवरामके कुछ शेयर खरीदे हुए थे और महीनेके अंदर ही उनमें दो हजार रुपये मिल गये। ईश्वर-कृपासे कन्याका विवाह निश्चित तिथिपर ही सानन्द सम्पन्न हो गया और उस बदमाश धनीका मोटर-दुर्घटनासे दाहिना पैर टूट गया। 'जैसी करनी वैसा फल' । 'अखण्ड आनन्द'

—साधुशरण गुप्त

(२)

प्रभुकी असीम कृपा-प्रार्थनाका फल

सन् १९४२, २२ नवम्बरकी बात है जब कि रातमें लगभग दस बजे मैं सोने जा रहा था। मनसे अत्यन्त करुणापूर्ण प्रार्थना निकली—'भगवन् ! कई वर्षोंसे परिश्रम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर रहा हूँ; परंतु जिस विषयमें कल परीक्षा होने जा रही है, अभीतक सफल नहीं हो पाया। इस परीक्षामें मैं उत्तीर्ण हो जाऊँ, तो मेरे परिवारका दुःख हलका हो जाय। प्रभु! कृपा कीजिये।' अश्रु बह रहे थे। नींद आ गयी।

प्रातः स्नान-भजन आदि करके कार्यालयकी तैयारी की, ठीक दस बजे विषयका पर्चा मिला। विषय Precis-Draft था। केवल इसीमें लगातार तीन बार असफलता प्राप्त होनेके कारण मैं अत्यन्त चिन्तित हो रहा था। पर्चा भी अजब ढंगका था जो कभी नहीं आया था। परंतु मैंने कैसे लिखा, प्रभु ही जानते हैं। कोई दोहरानेकी आवश्यकता नहीं पड़ी। मनमें पूरा संतोष रहा। तीन घंटे समाप्त होनेपर मैं बाहर आया। साथियों तथा अफसरोंने पूछा, मैंने इतना ही उत्तर दिया कि सफलता अवश्य होगी। शेष विषयोंकी चिन्ता कम थी। दो मासके बाद जब परिणाम निकला तो मैं चकित रह गया। जिस विषयमें सफलता नहीं मिल रही थी, उसीमें इतने अंक आये कि इससे पहले किसीने उतने नम्बर प्राप्त नहीं किये थे। और सब विषयोंमें सारे भारतीय रेलवेमें मैं प्रथम घोषित हुआ।

उस परम पिताकी असीम कृपाकी ही यह परम कृपा है, जिसने इस दीनकी दीनताको सँभाला।

—लीलाधर मल्होत्रा (रेलवे आडीटर)

(३)

अवश्य अनुकरण करने योग्य

कुछ दिनों पूर्व एक बहन आयी थीं, वे सत्सङ्गकी दृष्टिसे बीच-बीचमें आया करती हैं। इस बार आयीं और कुछ दिन ठहरकर लौट गयीं। सत्सङ्ग बहुत लोग करते हैं परंतु वास्तविक सत्सङ्ग वही है जिसमें सत्सङ्गकी बातें केवल सुननेके लिये नहीं, जीवनमें उतारनेके लिये होती हैं। उक्त बहनका पत्र आया है, जिसका कुछ सारांश नीचे दिया जा रहा है—

आज पूर्णिमाकी रात्रिसे कुछ नियम ले रही हूँ। मन तो पहलेसे ही था, परंतु उस दिन मेरे आनेसे पूर्व आपने लगभग आध घंटे जो सुन्दर चर्चा की, उससे प्रोत्साहन मिला। निभाना भगवान्के हाथ है। यदि कभी कुछ विघ्न आया तो मैं संक्षेपमें आपको लिखती रहूँगी। आप जो उचित समझेंगे, कुछ लिखकर मुझे प्रोत्साहित करते रहेंगे। नियम ये हैं—

१. प्रतिदिन दो लाख नामजपकी कोशिश—डेढ़ लाख तो निश्चित।
२. चौबीस घंटेमें केवल एक घंटे बोलना—सो भी आवश्यक बात।
३. परदोष-दर्शन नहीं करना।
४. परनिन्दा या परचर्चा नहीं करना, व्यर्थकी [illegible] न करना।
५. सत्य बोलना।
६. भगवद्दर्शनार्थ एक मन्दिर (सो भी नियमित नहीं) में जाने अथवा किसी अत्यन्त आवश्यक [illegible] लिये और स्वास्थ्यकी दृष्टिसे घूमने जानेके लि[illegible] कहीं न जाना।
७. एक या आध घंटा संकीर्तन करना।
८. एक या आध घंटा स्वाध्याय करना।
९. क्रोध न करना।
१०. रात्रिको दस या ग्यारह बजे सो जाना और [illegible] बजेके लगभग उठ जाना। अभी तो मनमें [illegible] उत्साह है।

× × × ×

इस पत्रको पढ़नेपर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। ये [illegible] घरके कामकाजसे मुक्त हैं, ऐसे बहुत-से भाई-बहन हैं। [illegible] सभी लोग इन बहनका अनुकरण करने लगें और जीवन[illegible] एक-एक क्षण व्यर्थ-अनर्थमें न खोकर अपनी-अपनी स्थिति[illegible] अनुसार भगवान्में लगानेका प्रयत्न करें तो कितना कल्या[illegible] हो। मेरा पाठकोंसे निवेदन है कि वे इसपर ध्यान दे[illegible] अपने-अपने लिये नियम बनावें और भगवान्की कृपा[illegible] बलपर उनका पालन करें।

—कोई एक द्वारा 'कल्याण'-सम्पादक, गीताप्रेस, गोरख[illegible]

(४)

आपकी चीज आपको देनेमें एहसान किस बातका

बात सन् १९६४ के फरवरी मासकी है। एक सज्जनके अपनी छोटी पुत्रीके अन्नप्राशन करानेके लिये एक थाली[illegible] आवश्यकता थी। समयाभावके कारण वे कोई दूर बाजार[illegible] जा भी नहीं सकते थे। स्थानीय बाजार भी निकल चुका था।

उनके घरसे लगभग बारह-तेरह मील दूर आखुलवार[illegible] नामक गाँवमें बाजार लगता था। प्रातः कुछ चाय-नाश्ते[illegible] पश्चात् वे साइकिलपर सवार हो सीधे बाजार जाने लगे। [illegible] घरसे आठ या नौ मील भूमि चले होंगे कि उन्हें प्या[illegible] लगी। पानी पीनेके लिये वे पासके एक कुएँपर गये। [illegible] कुआँवाला गाँव पोड़गाँव है जो नारायणपुरसे भानुप्रता[illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जानेवाली सड़कके ठीक बीचोंबीच बसा हुआ है। गाँववालोंने कुएँपर बाल्टी रख छोड़ी थी। पानी निकाला और पीया। गोड़गाँवके आगे भंगाराम नाला पड़ता है। वहाँ जंगल तो साधारण है, पर है बड़ा भयावना स्थान। इसके कुछ ही दिनों पूर्व उसी स्थानपर मुसाफिरोंको किसीने लूटा भी था। उनके पासके पैसे एवं जेवरात आदि सब छीन लिये थे। यह भय सबके मनमें बना हुआ था। उन्हें उसी नालेको पार कर बाजार जाना था। उनके टेंटमें केवल बारह रुपये ही थे।

पानी पी लेनेके बाद वे सड़कके उस ओर देखने लगे जिधरसे वे आ रहे थे। उनके पीछेसे कोई भी आदमी आता दिखायी नहीं दिया। उन्हें डर भी लग रहा था कि भंगाराम खतरेका स्थान है। उन्होंने मन-ही-मन सोचा किसीकी प्रतीक्षा करूँ या भगवान्‌के भरोसे चल दूँ। किसी तरह मनको धैर्य बँधाया और भगवान्‌का नाम लेते-लेते वे जाने लगे।

उसी दरमियानमें एक मोटर-साइकिल उनके पीछेसे बड़ी रफ्तारसे चली आ रही थी। उसे उन्होंने रास्ता दिया। मिनटोंमें वह बड़ी दूर निकल गयी। किंतु हुआ यह कि उस मोटर-साइकिलसे प्लास्टिककी एक बैग, जिसमें छोटा-सा ताला लगा था, अचानक सड़कके किनारे गिर पड़ी। मोटर-साइकिलके गुजर जानेके पश्चात् सड़कपर उनके आगे-पीछे उस समय कोई भी न था। उन्होंने साइकिलसे उतरकर बैगको उठाया। बैग साइकिलके सामने हैंडलमें टाँगकर वे आगे बढ़ने लगे। भंगाराम नालेका डर तो प्रायः अब जाता रहा, पर था भारी डर उस बैगका। पता नहीं, उसमें क्या है, वे बेचारे कौन थे, चिन्ता करते होंगे, कैसे उनकी चीज उन्हें मिले, कहीं छिन न जाय— इसी प्रकार वे चिन्ता कर रहे थे। इस चिन्तामें वे बैग मिलनेके स्थानसे लगभग डेढ़ फर्लांग आगे बढ़े थे। उल्टे पाँव उसी मोटर-साइकिलसे वे ही दो सज्जन बड़ी रफ्तारसे अनुमानतः कोई साठ-पैंसठ मील प्रति घंटेकी चालसे धड़धड़ाते पहुँचे। इनकी साइकिलमें तो बैग टँगी ही थी। उतरकर उनसे पूछने लगे—

'आप कहाँ जा रहे हैं ?'

'आसुलखार बाजार।'

'रहते कहाँ हैं ?'

'कामता नामक गाँवमें।'

'वहाँ क्या करते हैं ? क्या खेती-बाड़ी है आपकी वहाँ ?'

'जी नहीं सरदारजी ! मैं सरकारी कर्मचारी एक शिक्षक हूँ।'

'आपने इस बैगको कहाँ पाया ?'

'यहीं कुछ दूर पीछे सड़कपर पड़ी मिली।'

'मास्टर साहब ! यह बैग मेरी है, नौकरकी लापरवाहीसे बैग अचानक गिर पड़ी। हमलोग तेजीसे जा रहे थे। किसीको इसका ख्यालतक नहीं रहा। कुछ दूर जानेके पश्चात् मैंने नौकरसे पूछा—'बैग-बैगको ठीकसे रक्खे हो न ?' उस समय पता लगा बैग मोटर-साइकिलमें नहीं है। वहींसे हमलोग लौटे और बड़ी चिन्तासे दौड़े आ रहे हैं।'

उन्होंने कहा—'सरदारजी ! यदि यह बैग वास्तवमें आपहीकी है तो ले लीजिये और अपनी चीजें सँभाल लीजिये।' यह कहकर बैग उनको दे दी।

सरदारजीने बैगको वहीं खोला और नोटोंके बंडल देखने लगे। छोटे नोट सब मिलाकर दो सौ कुछ रुपयेके मिले और बड़े नोट सैंतालीस हजार आठ सौके थे। मतलब उस बैगमें कुल निधि ४८००० और कुछ रुपये थे। जब उन्होंने गिना था, उनके मुखपर आनन्द छा रहा था। सरदारजीने उनसे प्रेमपूर्वक नाम-गाँव आदि पूछे और उन्होंने भी सरदारजीके नाम आदि मालूम किये। वे कोई सिख सरदार जंगलके ठेकेदार थे।

उन्होंने उनसे कहा—'आपने मुझपर बड़ा भारी एहसान किया। मेरे हृदयमें आग लगी थी, आपने उसे बुझा दिया। नहीं तो, मैं बेमौत मर गया होता। इस परोपकारके लिये आप ये तीन सौ रुपये लीजिये।' ऐसा कहकर सरदारजी उनको सौ-सौके तीन नोट निकालकर देने लगे।

उन्होंने कहा—'सरदारजी ! मैंने आपपर कोई एहसान नहीं किया है। आपकी वस्तु आपको ही दे रहा हूँ, इसमें भला एहसानकी कौन-सी बात है।' वे उन्हें तीन नोट लेनेके लिये बड़ा आग्रह करने लगे। पर उन्होंने लिये नहीं, तब सरदारजीने बरबस उनके खीसेमें नोट डाल दिये, पर उन्होंने तुरंत निकालकर वापस कर दिये।

जब उन्होंने देखा कि शिक्षकके मनमें जरा भी लालच नहीं है, तब वे कहने लगे—'यदि आप रुपये लेनेसे इन्कार करते हैं तो मैं आपको हाथकी एक अच्छी घड़ी खरीद दूँगा।' उन्होंने घड़ी लेनेसे भी इन्कार कर दिया। फिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्होंने रेडिओ देनेका प्रस्ताव किया जो उनके बगलमें लटक रहा था। उन्होंने उसे भी लेनेसे इन्कार किया। तब वे उपकार मानते हुए चल दिये। फिर घटनाके पाँचवें दिन स्वयं कामता स्कूलमें जीपसे आये और बच्चोंके सामने लगभग पाँच किलोसे अधिक मिठाइयोंका बड़ा-सा थैला रख दिया। मास्टरजीने मिठाई न लेनेका बहुत प्रयत्न किया, पर वे माने नहीं और छोड़कर चले गये।

—सीतारामसिंह ठाकुर

(५)

दो लाभकारक दवाइयोंके नुस्खे

एक्जिमाकी एक और दवा

[एक्जिमाकी दवाका एक नुस्खा गताङ्कमें छपा है। यहाँ दूसरा एक दिया जा रहा है। एक्जिमाके रोगी लाभ उठावें। यह निवेदन है—सम्पादक]

मैं सात सालका था तब मुझे भयानक 'एक्जिमा' हो गया। पिताजीने बताया है कि मेरे पैरोंका चमड़ा हाथीके चमड़ेकी तरह हो गया था और घावसे बराबर पानी बहता रहता था। मेरी इस पीड़ासे मेरे माता-पिता बड़े दुखी थे। मेरे पिताजी एक बार विन्ध्याचलकी ओर गये थे। उन्हें एक महात्मा मिले। पिताजीने मेरी पीड़ाका हाल उनको सुनाया। इसपर महात्माने दया करके नीचे लिखा नुस्खा सेवन-विधिसहित बतलाया। मुझे इस दवासे इतना लाभ हुआ कि फिर आजतक एक्जिमा नहीं हुआ और पैरोंमें उसके निशान तो मेरे होशसे ही नहीं हैं। और भी बहुत लोगोंको इससे लाभ हुआ है। एक्जिमासे परीशान लोग इससे लाभ उठा सकें तो महात्माके कथनानुसार यह एक सत्कर्म ही होगा।

दवा बनानेकी विधि और वस्तुएँ

रसकपूर	चार	आना	भर	१
सफेद	खैर	एक	भर	
मुर्दाशंख		एक	भर	
छोटी इलायचीके दाने		एक	भर	
माजूफल		पाँच	दाने	२
चित्ती कसैली या सुपारी		पाँच	दाने	
कइयाँ या	करंज	पाँच	दाने	
कुचिला		पाँच	दाने	
सोरही	कौड़ी	पाँच	दाने	

दूसरे समूहकी पाँचों चीजोंको एक छोटे मिट्टीके पात्रमें रखकर उसका मुँह मिट्टीके ही ढक्कनसे बंद कर दें और आटेसे उसे साट दें। तदनन्तर गोइठों (उपलों) की भट्ठी बनाकर उसमें रख दें। भीतरकी दवा जलकर राख हो जायगी, तब उसे निकालकर खरल करके पाउडर बना लें।

पहले समूहकी चारों चीजोंको अलगसे कूट तथा खरल करके उनका भी पाउडर बना लें। फिर, दोनों समूहकी दवाओंको कपड़छान करके मिला दें एवं चमेलीके शुद्ध तेलमें मिलाकर मलहम बना लें। बस, दवा तैयार हो गयी।

घावको जलसे या कपड़ेसे पहले साफ कर लें, उसके बाद प्रतिदिन उसपर दवाका लेप करते जायँ। ध्यान रहे कि घावपर पानी नहीं पड़ना चाहिये। ईश्वर-कृपासे दो-चार दिनोंमें ही लाभ मालूम होगा।

—अखिलेश्वरप्रसाद सिन्हा
जगदीशपुर (शाहाबाद) बिहार

शिशु-यकृत रोग-नाशक दवा

(Infantile Lever Cure)

बच्चोंको प्रायः लीवरकी बीमारी हो जाती है और वह बड़ी भयानक होती है। सहजमें अच्छी नहीं होती। यहाँ नीचे मैं एक नुस्खा लिख रहा हूँ, इससे बहुतसे बच्चोंकी जान बच चुकी है। दवा यह है—

जायफल (बाजारमें पंसारीके यहाँ मिलता है)

टींटकी जड़ (यमुनाके खादरमें बहुत मिलती है)

बड़ी हर्रें

काला नमक।

जायफलको गायके दूधमें तीन-चार बार उबालकर प्रयोगमें लावें।

सेवन-विधि—

इस जायफलको तथा तीनों और चीजोंको किसी साफ पत्थरपर रगड़कर एक चम्मच पानीमें सुबह तथा शामको ७। ८ दिनों तक दें। प्रभु-कृपासे लाभ होगा। यह अचूक रामबाण दवा है।

—श्रीदीपचन्द्र अग्रवाल
सिविल लाइन्स, मथुरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जारी होने पर आयताकार म० आ० मोहर
Obl... M. O. Stamp
दिनांकित मोहर

A. O. Stamp

क्रमांक No. ______ दिनांक Date ______

रुपये के लिये जारी किया गया (शब्दों में)

Issued for Rs. (in words) ______

म० ऑ० क्लर्क M. O. Clerk

देनेवाले डाकपाल Issuing Postmaster

प्रेषक को भरनी चाहिए To be filled up by the remitter

'तार से' या 'हवाई-डाक से' यदि आवश्यक हो तो ये शब्द लिख दें। Write "By Telegraph" or "By Air Mail" if required.

रकम (शब्दों में) Amount (in words)

प्राप्तकर्ता का नाम व पूरा पता Name and address of the Payee (in full)

Rs. 9.00

Rs. Nine only

व्यवस्थापक—'कल्याण'

P. O. GITA PRESS

(Gorakhpur) U. P.

दिनांक

भुगतान की आज्ञा देनेवाली गोल म० ऑ० मोहर

Round M. O. stamp authorising payment

500 400 300 200 100 50

(भारतीय डाक-तार विभाग) INDIAN POSTS AND TELEGRAPHS DEPARTMENT

MGIPAW—1275 P&T—18,00,000

Name and address of remitter

65268

व्यवस्थापक—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

म० आ०-3/M. O. 3

भारतीय मनीआर्डर INDIAN MONEY ORDER

प्रेषक डाकघर की नाम-मोहर

Name-stamp of office of issue

म० आ० क्रम-संख्या No. of M. O.......

सेवा में To

डाकपाल The Postmaster ______ उप डाकघर S.O. / मुख्य डाकघर H.O.

यहाँ से मोड़िये FOLD HERE

पीछे लिखी रकम प्राप्त की । Received the sum specified on the reverse.

प्राप्तकर्ता के हस्ताक्षर या अंगूठा निशान (यदि वह अनपढ़ हो)
Signature (in ink) of payee or thumb-impression (If payee is illiterate)

IDENTIFIER'S CERTIFICATE

गवाह के हस्ताक्षर या अंगूठा निशान (यदि वह अनपढ़ हो)
Signature of Witness or thumb-impression (If illiterate)

दिनांक .... को अदा किया।
Paid by me on ______

हस्ताक्षर
Signature ______

यहाँ से मोड़िये FOLD HERE

पीछे लिखी रकम दिनांक ______ को प्राप्त की
Received the sum specified on the reverse on ______

गवाह के हस्ताक्षर
Signature of Witness

दिनांक
Date

डाकघर की तारीख मोहर

प्रेषक डाकघर की नाम-मोहर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशित हो गयी !!

साधन-सम्पत्ति

(संग्रहकर्ता-लेखक—श्रीहरिकृष्णदासजी गोयन्दका)

आकार डबल-क्राउन सोलहपेजी, पृष्ठ-संख्या ६४, मूल्य पचीस पैसे, डाकखर्च अलग।

(प्रस्तुत पुस्तक साधकोंके लिये बड़ी लाभदायक वस्तु है। चतुर लेखकने सचमुच ही साधन-सम्पत्तिका संग्रह करके उसे मालारूपमें तीन भागोंमें विभाजित कर दिया है। प्रत्येक भागमें १०८ मनके हैं। अन्तिम भाग श्रीमद्भगवद्गीताके आधार लिखा गया है। आशा है, इसके मननसे साधकोंके साधनकी उन्नति होगी।)

ग्यारह अप्राप्त पुस्तकोंके नये संस्करण

		रु. पै.
१-**श्रीतुकाराम-चरित**—[जीवनी और उपदेश]—(लेखक—श्रीलक्ष्मण रामचन्द्र पांगारकर, बी० ए०; अनुवादक—श्रीलक्ष्मणनारायण गर्दे) पाँचवाँ संस्करण, पृष्ठ-संख्या ५९२, सचित्र, मूल्य अजिल्द १.७५, सजिल्द	...	२.१५
२-**श्रीकृष्ण-माधुरी**—द्वितीय संस्करण, सूरदासजीके पद सरल भावार्थसहित, सुन्दर तिरंगा चित्र, पृष्ठ-संख्या २७६, मूल्य अजिल्द १.२५, सजिल्द	...	१.६५
३-**परम शान्तिका मार्ग**—(लेखक—श्रीजयदयालजी गोयन्दका) तृतीय संस्करण, पृष्ठ-संख्या ४१६, चित्र रंगीन ४, सादा २, मूल्य अजिल्द १.००, सजिल्द	...	१.५०
४-**माण्डूक्योपनिषद्**—नवाँ संस्करण, सानुवाद, शांकरभाष्यसहित, सचित्र, पृष्ठ-संख्या २८४, मूल्य	...	१.२५
५-**श्वेताश्वतरोपनिषद्**—छठा संस्करण, सानुवाद, शांकरभाष्यसहित, सचित्र, पृष्ठ-संख्या २६८, मूल्य	...	१.०५
६-**स्वर्ण-पथ**—[आध्यात्मिक जीवनके विकासका पथ-प्रदर्शक] (लेखक—प्रो० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०) छठा संस्करण, सुन्दर टाइटल, पृष्ठ-संख्या २१६, मूल्य	...	.९०
७-**एक महात्माका प्रसाद**—चौथा संस्करण, यह सत्सङ्गी भाइयोंके लिये बड़े कामकी वस्तु है, पृष्ठ-संख्या २९२, मूल्य	...	.९०
८-**श्रीरामचरितमानस लंकाकाण्ड**—सटीक, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ-संख्या १३२, मूल्य	...	.६०
९-**श्रीरामचरितमानस-उत्तरकाण्ड**—सटीक, तृतीय संस्करण, पृष्ठ-संख्या १४४, मूल्य	...	.६०
१०-**प्रश्नोपनिषद्**—दसवाँ संस्करण, सानुवाद, शांकरभाष्यसहित, सचित्र, पृष्ठ-संख्या १२८, मूल्य	...	.५५
११-**भवरोगकी रामबाण दवा**—(लेखक—श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) दसवाँ संस्करण, पृष्ठ-संख्या १७६, मूल्य		.३५

सभी पुस्तकोंका डाकखर्च अलग

पुस्तकोंका आर्डर यहाँ देनेसे पहले स्थानीय विक्रेतासे प्राप्त करनेकी चेष्टा करनी चाहिये, इससे भारी डाकखर्चकी बचत होती है।

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रजि० सं० एल्० १७५

सम्मान्य एवं प्रेमी ग्राहकों और पाठकोंको सूचना तथा निवेदन

(१) 'कल्याण'का यह ४१ वें वर्षका दसवाँ अङ्क है। ग्यारहवाँ एवं बारहवाँ अङ्क और निकलेंगे। यह वर्ष पूरा हो जायगा। ४२ वें वर्षका प्रथम अङ्क 'उपासना-अङ्क' नामक विशेषाङ्क होगा। इसमें उपासनासम्बन्धी विभिन्न विषयोंपर विद्वानों तथा अनुभवी पुरुषोंके विचारपूर्ण प्रेरणात्मक सुन्दर लेख रहेंगे। सुन्दर चित्रोंकी व्यवस्था भी की जा रही है। उपासकोंके लिये यह अङ्क अत्यन्त उपादेय होगा।

(२) 'कल्याण' का खर्च बहुत बढ़ा हुआ था ही, इस वर्ष डाकखर्च बहुत बढ़ गया। इसके बाद हालमें कर्मचारियोंके वेतनकी जो सरकारी विज्ञप्ति निकली है, उसके लागू होनेपर तो इतना खर्च बढ़ जायगा जो गीताप्रेसके सस्ता साहित्य प्रकाशित करनेके उद्देश्यकी पूर्तिमें एक बड़ा प्रतिबन्धक रूप होगा। अभी तो 'कल्याण' का वार्षिक मूल्य केवल ९.०० रक्खा गया है, जो वास्तवमें बहुत कम है। अतः आप वार्षिक मूल्य मनीआर्डरके द्वारा तुरंत भेजकर ग्राहक बन जाइये। मनीआर्डर-फार्म इसके साथ भेजा जा रहा है। रुपये भेजते समय मनीआर्डरमें अपना नाम, पता, ग्राम या मुहल्ला, डाकघर, जिला, प्रदेश आदि साफ-साफ अक्षरोंमें लिखनेकी कृपा करें। ग्राहक-नम्बर अवश्य लिखें। नये ग्राहक हों तो 'नया ग्राहक' लिखना कृपया न भूलें।

(३) ग्राहक-संख्या न लिखनेसे आपका शुभ नाम नये ग्राहकोंमें लिखा जा सकता है। इससे विशेषाङ्ककी एक प्रति नये नम्बरोंसे तथा एक प्रति पुराने नम्बरोंसे वी० पी० द्वारा जा सकती है। यह भी सम्भव है कि आप उधरसे रुपये कुछ देरसे भेजें और पहले ही यहाँसे आपके नाम वी० पी० चली जाय। दोनों स्थितियोंमें आप कृपापूर्वक वी० पी० वापस न लौटाकर नये ग्राहक अवश्य बना दें और उनका नाम-पता साफ साफ लिखनेकी कृपा करें। सभी ग्राहक-पाठक महानुभावोंसे तथा पाठिका-ग्राहिका देवियोंसे यह भी निवेदन है कि वे प्रयत्न करके 'कल्याण'के दो-दो नये ग्राहक बनाकर उनके रुपये मनीआर्डरद्वारा शीघ्र भिजवानेकी कृपा करें। इससे भगवान्की सेवा होगी।

(४) जिन पुराने ग्राहकोंको किसी कारणवश ग्राहक न रहना हो, वे कृपापूर्वक एक कार्ड लिखकर अवश्य सूचना दे दें, जिससे व्यर्थ 'कल्याण'-कार्यालयको हानि न सहनी पड़े।

(५) किसी कारणवश 'कल्याण' बंद हो जाय तो केवल विशेषाङ्क और उसके बादके जितने अङ्क पहुँच जायँ, उन्हींमें पूरे वर्षका मूल्य समाप्त हुआ समझ लेना चाहिये; क्योंकि अकेले विशेषाङ्कका ही मूल्य रु० ९.०० (नौ रुपये) है।

(६) इस वर्ष भी सजिल्द अङ्क देनेमें कठिनता है और बहुत विलम्बसे दिये जानेकी सम्भावना है। यों सजिल्दका मूल्य रु० १०.५० है।

(७) 'उपासना-अङ्क' के लिये बहुत ही अधिक लेख-सामग्री आ गयी है। अतः अब कोई सज्जन लेख-कविता आदि कृपया न भेजें। इस विवशताके लिये लेखक महानुभावोंसे क्षमा-प्रार्थना है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ष ४१] * * * [अङ्क ११

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

संस्करण १,५०,०००

विषय-सूची

कल्याण, सौर मार्गशीर्ष २०२४, नवम्बर १९६७

विषय	पृष्ठ-संख्या
१—चारों भाइयोंका विवाह-संस्कार [कविता]	१२७७
२—कल्याण ('शिव')	१२७८
३—आचार्यके उपदेश (श्रीमज्जगद्गुरु शंकराचार्य अनन्तश्रीविभूषित श्रीस्वामी श्रीनिरंजनदेवतीर्थजी महाराज; प्रेषक—भक्त श्रीरामशरणदासजी)	१२७९
४—निराकारका ध्यान करनेवाले साधकोंके लिये कुछ उपयोगी युक्तियाँ (ब्रह्मलीन श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके एक पुराने पत्रका अंश)	१२८५
५—साधनाकी पगदंडी (ब्रह्मलीन स्वामी चिदानन्दजीका एक पत्र; प्रेषक—वैद्य श्रीबदरुद्दीन राणपुरी)	१२८६
६—जीव-निरूपण (शुभचिन्तक)	१२८९
७—कामनाशून्य होनेपर ही सुख-प्राप्ति सम्भव है (श्रीगोवर्धननाथजी कक्कड़)	१२९२
८—भगवान् श्रीकृष्णका स्मरण (श्रीशिवनाथ-जी दुबे)	१२९३
९—जीवेम शरदः शतम् (श्रीसुरेशचन्द्रजी वेदालंकार, एम्० ए०, एल्० टी०)	१३०१
१०—पाश्चात्त्य वैज्ञानिकोंकी चमत्कारिक नयी खोजें (डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, विद्याभूषण)	१३०३
११—रामायणपर नया दृष्टिकोण (व्योहार श्रीराजेन्द्रसिंहजी)	१३०६
१२—सामयिक परिप्रेक्ष्यमें मन्त्र (श्रीगोविन्दजी शास्त्री, एम्० ए०, सा० रत्न)	१३११
१३—दक्षिण भारतकी तीर्थयात्रा (सेठ श्रीगोविन्ददासजी, श्रीमती रत्नकुमारी देवी, श्रीगोविन्दप्रसादजी श्रीवास्तव)	१३१३
१४—श्रीराधा [कविता] (साहित्याचार्य पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री 'राम')	१३१६
१५—कीर्तन [कहानी] (श्री'चक्र')	१३१७
१६—भक्तगाथा (प्रेषक—श्रीवल्लभदासजी बिन्नानी 'व्रजेश', साहित्यरत्न)	१३१९
१७—बंधक [कहानी] (श्रीकृष्णगोपालजी माथुर)	१३२१
१८—राष्ट्रीयताका आधार देश है (श्रीश्री-अरविन्दके विचार; संकलनकर्ता तथा प्रेषक—श्रीचन्द्रदीपजी त्रिपाठी)	१३२५
१९—भगवत्कृपापर दृढ़ विश्वास करो [कविता]	१३२६
२०—मृत्युकी चाल (श्रीहरिकृष्णदासजी गुप्त 'हरि')	१३२७
२१—नये खाद्य, नये व्यवसाय (श्रीमण्डन मिश्र)	१३२८
२२—अनूठा बदला (प्रो० श्रीशिवानन्दजी)	१३२९
२३—मेरी निन्दासे किसीको संतोष होता हो तो वह खूब निन्दा करे (संकलित-पद्य)	१३३१
२४—भगवन्नाम-जप (व्यवस्थापक—नाम-जप-विभाग)	१३३२
२५—श्रीभगवन्नाम-जपके लिये विनीत प्रार्थना	१३३५
२६—पढ़ो, समझो और करो	१३३७

चित्र-सूची

१—हनुमान्‌को मुद्रिकादान	(रेखाचित्र)	मुखपृष्ठ
२—चारों भाइयोंका विवाह-संस्कार	(तिरंगा)	१२७७

वार्षिक मूल्य भारतमें ८.५०
विदेशमें १५.६० (१५ शिलिंग)

जय विराट जय जगत्पते । गौरीपति जय रमापते ॥

साधारण प्रति भारतमें ५० पै०
विदेशमें ८० पै० (१० पेंस)

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाल गोस्वामी एम्० ए०, शास्त्री
मुद्रक-प्रकाशक—मोतीलाल जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

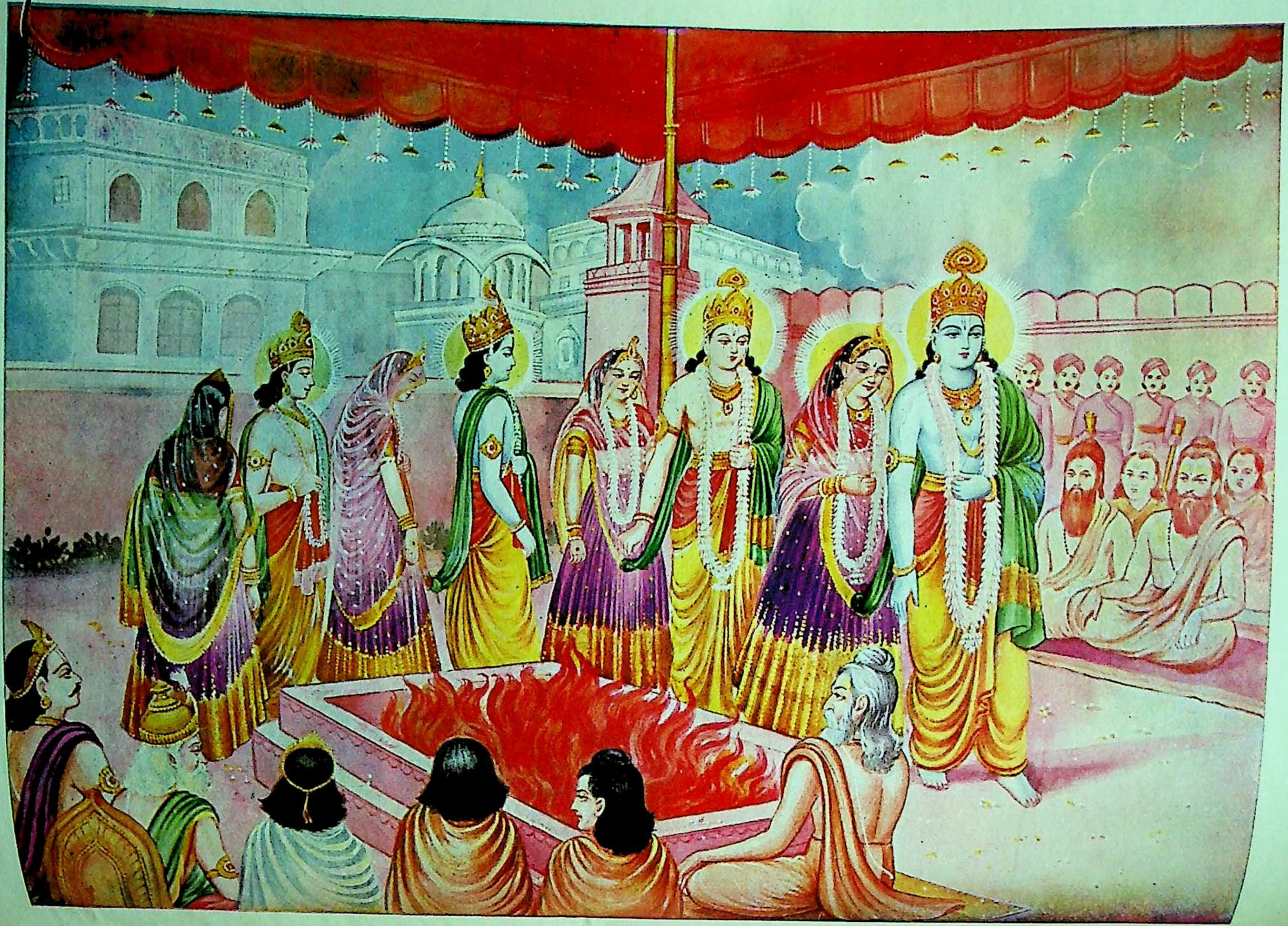

चारों भाइयोंका विवाह-संस्कार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अविरतभवभावनातिदूरं भवविमुखैर्मुनिभिः सदैव दृश्यम् ।
भवजलधिसुतारणाङ्घ्रिपोतं शरणमहं रघुनन्दनं प्रपद्ये ॥
रतिपतिशतकोटिसुन्दराङ्गं शतपथगोचरभावनाविदूरम् ।
यतिपतिहृदये सदा विभातं रघुपतिमार्तिहरं प्रभुं प्रपद्ये ॥

वर्ष ४१ } गोरखपुर, सौर मार्गशीर्ष २०२४, नवम्बर १९६७ { संख्या ११ पूर्ण संख्या ४९२

चारों भाइयोंका विवाह-संस्कार

अति प्रसन्नमन जनकराजने विधिवत् कर सारे आचार ।
चारों कन्याएँ कीं अर्पण, चारोंको शुचि सालङ्कार ॥
रामभद्रको सीता दी, दी लक्ष्मणको उर्मिला अमन्द ।
दी माण्डवी भरतको, दी श्रुतिकीर्त्ति शत्रुहनको सानन्द ॥
ऋषियोंने संविधान कराया चारोंका विवाह-संस्कार ।
जनकपुरीमें, सारे जगमें ही छाया आनन्द अपार ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

याद रक्खो—मनुष्यमें एक बड़ी मानसिक दुर्बलता यह है कि वह अपनी प्रशंसा सुनकर और दूसरोंकी निन्दा सुनकर प्रसन्न होता है। अपनी प्रशंसामें और परनिन्दामें उसे निरन्तर बढ़नेवाली ऐसी एक मिठास आने लगती है कि वह कभी अघाता ही नहीं और फिर स्वयं ही अपनी प्रशंसा तथा दूसरोंकी निन्दा करने लगता है।

याद रक्खो—जगत्में गुण-दोष भरे हैं, पर जिसकी वृत्ति दोष देखनेकी हो जाती है, उसे पर-दोषोंको ढूँढ़-ढूँढ़कर देखने तथा उनका बढ़ा-चढ़ाकर बखान करनेमें रस आने लगता है। यह बहुत बुरी वृत्ति होती है। इस वृत्तिके हो जानेपर पर-दोष देखना और परनिन्दा करना ही उसका प्रधान कार्य हो जाता है। फिर, वह जैसे अपने अति आवश्यक कामको मन लगाकर तथा विभिन्न साधनोंसे सम्पन्न करना चाहता है, वैसे ही परदोष-दर्शन तथा परनिन्दामें अपने तमाम साधनोंको लगा देता है। यही उसका स्वभाव बन जाता है।

याद रक्खो—जिसका दोष देखनेका स्वभाव हो जाता है, उसकी आँखें बदल जाती हैं, उसे गुणमें भी दोष दिखायी देते हैं और वह गुणको भी दोष बताकर निन्दा करने लगता है। इसीको 'असूया' दोष कहते हैं।

याद रक्खो—मनुष्य अपने सच्चे दोषोंकी भी निन्दा सुनना नहीं चाहता, यद्यपि यह उसकी कमजोरी है, फिर झूठी निन्दा सुननेपर तो उसे क्षोभ होता ही है और निन्दा करनेवालेके प्रति द्वेष-द्रोह हो जाता है। उस द्वेष-द्रोहके कारण वह भी अपने निन्दककी निन्दा करता है और उससे कलह करता है। परिणाम यह होता है, आपसमें दोनोंका वैर बँध जाता है और दोनों ही एक दूसरेका अनिष्ट करनेमें लग जाते हैं। दोनोंके ही अपने-अपने बन्धु-बान्धव भी होते हैं, अतएव इनके वैरका विष उन लोगोंमें भी फैलता है और परस्पर विरोधी दल बन जाते हैं, जिसका परिणाम झगड़ा ही नहीं हिंसा-हत्यातक हो जाता है और कैद-फाँसीकी भी नौबत आ जाती है। फिर पीढ़ियोंतक वैर चलता है।

याद रक्खो—जिस मानव-जीवनमें मनुष्य सबका हित करके, मन-वाणीसे सबको सुख पहुँचाकर भगवान्के सन्मार्गपर चलता और जगत्में दैवी सम्पदाका विस्तार करता तथा अन्तमें भजनमें लगकर भगवत्प्राप्ति कर लेता—उस दुर्लभ मानव-जीवनको परदोष-दर्शन तथा पर-निन्दामें तथा अपनी मिथ्या प्रशंसामें लगाकर अपने जीवनको तथा दूसरोंके जीवनको भी इस लोक तथा परलोकमें नरक-यन्त्रणा-भोगका भागी बना देना—कितना बड़ा प्रमाद और पाप है। इससे बड़ी सावधानी-के साथ सबको बचना चाहिये।

याद रक्खो—मनुष्यका परम कर्तव्य है—भगवान्के गुणोंका, उनके नामका, उनकी लीलाका श्रवण, कथन तथा कीर्तन एवं स्मरण करनेमें ही जीवनको लगाना। बुद्धिमान् मनुष्यको तो दूसरोंके न तो गुण-दोषका चिन्तन करना चाहिये, न देखने चाहिये और न उनका वर्णन ही करना चाहिये। उसे तो भगवद्गुण-चिन्तनसे ही समय नहीं मिलना चाहिये। पर यदि देखे बिना न रहा जाय तो दूसरोंके गुण देखने चाहिये और ढूँढ़-ढूँढ़कर अपने दोष देखने चाहिये। न रहा जाय तो दूसरोंके सच्चे गुणोंकी प्रशंसा करनी चाहिये और अपने दोषोंकी साहसके साथ निन्दा। वास्तवमें परमार्थकी दृष्टिसे तो यह सब कुछ न करके भगवच्चिन्तन तथा भगवन्नाम-गुणका कथन-कीर्तन-चिन्तन ही करना चाहिये।

याद रक्खो—आज ही यह प्रतिज्ञा करनी है कि मैं अबसे कभी भी न तो परदोष देखूँगा और न किसीकी निन्दा-चुगली ही करूँगा। अपना अधिक-से-अधिक मन तथा समय भगवान्के नाम-गुण-स्वरूप-चिन्तनमें ही लगाऊँगा और उन्हींका कीर्तन करूँगा।

'शिव'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आचार्यके उपदेश

[परम पूज्यपाद श्रीमज्जगद्गुरु शंकराचार्य गोवर्धनपीठाधीश्वर अनन्तश्रीविभूषित श्रीस्वामी श्रीनिरंजनदेवतीर्थजी महाराजके महत्त्वपूर्ण सदुपदेश]

(प्रेषक—भक्त रामशरणदास, पिलखुवा)

भारतके सुप्रसिद्ध महान् धर्माचार्य परम पूज्यपाद श्रीमज्जगद्गुरु शंकराचार्य गोवर्धनपीठाधीश्वर अनन्तश्रीविभूषित श्रीस्वामी श्रीनिरंजनदेवतीर्थजी महाराज अभी कुछ दिनोंपूर्व पिलखुवा हमारे स्थानपर कृपाकर पधारे थे, तभी आपके श्रीचरणोंमें बैठकर आपके ये महत्त्वपूर्ण सदुपदेश लिख लिये गये थे कि जो यहाँपर दिये जा रहे हैं। आशा है पाठक इन्हें ध्यानपूर्वक पढ़नेकी कृपा करेंगे और इसमें जो भी गलती रह गयी हो, वह सब हमारी ही समझेंगे, पूज्यपाद श्रीश्रीआचार्य-चरणकी नहीं।

१-साधु-संतोंको, धर्माचार्योंको राजनीतिमें भाग लेनेका अधिकार है, कोई पाप नहीं

प्रश्न—पूज्यपाद महाराज ! श्रीपूज्य साधुसंतोंको, धर्माचार्योंको राजनीतिमें भाग लेना चाहिये या नहीं ?

उत्तर—साधुसंतोंको, धर्माचार्योंको राजनीतिमें अवश्य भाग लेना चाहिये।

प्रश्न—क्या साधुसंतोंका, धर्माचार्योंका राजनीतिमें भाग लेना यह उचित है और शास्त्रानुसार है ? यह शास्त्रोंके विरुद्ध तो नहीं है ?

उत्तर—साधुसंतोंको, धर्माचार्योंको राजनीतिमें भाग लेना उचित है, यह शास्त्रानुसार है और शास्त्रोंके विरुद्ध कदापि नहीं है। यदि साधु-संत धर्माचार्य आदि ही राजनीतिमें भाग नहीं लेंगे और अच्छे श्रेष्ठ पुरुष ही राजनीतिसे घृणा करेंगे तो क्या राजनीतिमें गुंडे, लफंगे, धूर्त, ठग और गद्दार भाग लेंगे तब ठीक रहेगा ?

प्रश्न—क्या साधु-संतोंने, धर्माचार्योंने पहले भी कभी राजनीतिमें भाग लिया है ?

उत्तर—खूब भाग लिया है।

प्रश्न—महाराजजी ! कुछ लोगोंका कहना है कि इन पूज्य साधु-संत महात्माओंको, धर्माचार्योंको राजनीतिसे क्या मतलब और साधु-संतोंको तो भगवान्‌का भजन-ध्यान, योगसाधन और तप करना चाहिये। इन्हें राजनीतिके झगड़ोंमें कदापि नहीं पड़ना चाहिये। जब साधु-महात्मा बन गये तो फिर राजनीतिके झगड़ोंमें पड़नेकी क्या आवश्यकता ?

उत्तर—साधु-संत, धर्माचार्य जिन अनन्तकोटि ब्रह्माण्डनायक परात्परब्रह्म भगवान् श्रीरामकी, परब्रह्म भगवान् श्रीकृष्णकी उपासना-आराधना करते हैं, उन्हीं भगवान् श्रीराम-कृष्णका अवतार जब सनातनधर्मकी, हिंदूधर्मकी रक्षाके लिये होता है और गो-ब्राह्मणोंकी रक्षाके लिये, देवमन्दिरों और हिंदू-सभ्यता-संस्कृतिकी रक्षाके लिये होता है, और जब अपने परम इष्टदेव भगवान् श्रीराम-कृष्णके प्राणप्रिय इसी सत्य सनातनधर्मपर, पूज्य गो-ब्राह्मणोंपर, सभ्यता-संस्कृतिपर घोर अत्याचार हो रहा हो और घोर विपत्तियाँ आयी हुई हों, तब क्या उस समय भगवान् श्रीराम-कृष्णके भक्तोंको, संत-महात्माओंको, धर्माचार्योंको यह सब बैठे-बैठे टुकुर-टुकुर देखते रहना उचित है ? और क्या यह शोभा देता है ? क्या ऐसे समयमें साधु-संतोंका, धर्माचार्योंका धर्मरक्षा करना, देशरक्षा करना, गो-ब्राह्मण-देवमन्दिरोंकी रक्षा करना और हिंदू-सभ्यता-संस्कृतिको बचाना अनिवार्य कर्तव्य नहीं हो जाता है ? जब धर्मकी रक्षा ये धर्माचार्य ही नहीं करेंगे तो फिर इनका धर्माचार्य बनकर बैठ जानेसे क्या लाभ ? धर्माचार्यका तो सबसे बढ़कर उत्तरदायित्व है कि वह धर्मरक्षाके कार्यमें अवश्य भाग ले। तभी उसका धर्माचार्य होना सार्थक है, अन्यथा अपनी पूजा करानेके लिये ही धर्माचार्य बन जाना तो कोरा पाखण्ड है।

प्रश्न—क्या धर्माचार्योंका धर्म-प्रचार करना छोड़कर राजनीतिमें भाग लेना धर्मको हानि पहुँचानेवाला कार्य नहीं माना जायगा ?

उत्तर—धर्म और राजनीति एक दूसरेके पूरक हैं। उन्हें एक दूसरेसे अलग करना उन्हें मृतप्राय बनाना है। धर्मविहीन राजनीतिसे लोक-कल्याण कदापि सम्भव नहीं। धर्मके अभावमें अराजता एवं उच्छृङ्खलताकी भावना प्रबल होती है, जिससे स्वार्थी एवं गुंडा-तत्त्वोंको ही प्रोत्साहन मिलता है, जो लोककल्याणकारी कभी नहीं हो सकते; क्योंकि वे निजी स्वार्थोंसे प्रेरित होते हैं। भारतका इतिहास इस बातका साक्षी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है कि इस देशमें धर्म राजनीतिसे कभी भी पृथक् नहीं रहा। इस बातके बहुत प्रमाण मिलते हैं ?

प्रश्न—पहले हमारे किन-किन पूज्य ऋषि-महर्षियोंने, धर्माचार्योंने और साधु-संतोंने राजनीतिमें भाग लिया था ?

उत्तर—पूज्य महर्षि श्रीवसिष्ठजी महाराज अवधेश श्रीदशरथजीको राजकार्योंमें बराबर परामर्श दिया करते थे। महर्षि विश्वामित्रजी महाराज तो महाराज श्रीदशरथजीसे भगवान् श्रीराम-लक्ष्मणको माँगकर ले गये और उन्होंने परब्रह्म परमात्मा भगवान् श्रीराम-लक्ष्मणसे अपने सामने खड़े होकर राक्षसोंका वध कराया। यह राजनीतिमें भाग लेना नहीं तो क्या है ? श्रीपरशुरामजी महाराज और श्रीगुरु द्रोणाचार्य किस प्रकार खुलकर राजनीतिमें भाग लेते थे तथा युद्ध करते थे इसे कौन नहीं जानता ? श्रीपरशुरामजी महाराजकी इस घोषणाको—

'शास्त्रादपि शरादपि'

शास्त्र और शस्त्र दोनोंके द्वारा राक्षसोंका संहार कर धर्मकी रक्षा करूँगा—कौन भुला सकता है ? महर्षि श्रीनारदजी महाराजका राजाओंके यहाँ जाकर राजनीतिमें भाग लेना सबको ही विदित है। महान् सम्राट् चन्द्रगुप्तमौर्यके विशाल साम्राज्यके संचालनकर्ता थे महलोंसे दूर वीरान घोर जंगलमें वैभवसे परे एक फूसकी झोपड़ीमें रहनेवाले आचार्य श्रीचाणक्य। महर्षि चाणक्यने राजनीतिमें भाग लेकर किस प्रकार देश-धर्मकी रक्षा की—यह आज भी स्वर्णाक्षरोंमें अङ्कित है। पूज्य आद्य भगवान् जगद्गुरु श्रीशंकराचार्यजी महाराजने नास्तिक बौद्धोंसे टक्कर ली और शास्त्रार्थके द्वारा उनके छक्के छुड़ाये। देवमन्दिरोंकी रक्षा की और सनातनधर्मकी पताका फहराकर दिखायी। लोककल्याणके लिये राजनीतिमें हस्तक्षेपकर विजयानगरम् साम्राज्यके लिये कार्य किया और सनातनधर्मकी, हिंदू-जातिकी रक्षाके लिये ही चारों कोनोंपर अपने चार मठ स्थापितकर धर्म-रक्षा करनेका भार सौंपा—इसे कौन नहीं जानता ? जगद्गुरु रामानुजाचार्य, वल्लभाचार्य, निम्बार्काचार्य, मध्वाचार्य आदि सभी पूज्य धर्माचार्योंने देश-धर्मकी रक्षामें भाग लिया है। समर्थगुरु श्रीरामदास स्वामीजी महाराजने खुलकर राजनीतिमें भाग लिया और छत्रपति श्रीशिवाजी महाराजको अपना शुभाशीर्वाद दे उनके द्वारा अत्याचारी मुसलमानोंको मरवाया-कटवाया, देश-धर्मकी रक्षा करायी, देवमन्दिरोंको, गो-ब्राह्मणोंको बचाया, तिलक-चोटी-यज्ञोपवीतकी रक्षा करायी और हिंदूजातिकी डूबती नैयाको बचाया—इसे भला कौन भुला सकता है ? महात्मा बन्दा वीर वैरागीने साधु होकर भी जब अपने सनातनधर्मपर, अपने देशपर, पूज्य गो-ब्राह्मणोंपर, देवमन्दिरोंपर घोर विपत्ति देखी तो उनका खून खौल उठा और वे घोर तपस्या तथा समाधि-सुखको छोड़कर श्रीमद्भगवद्गीताकी इस बातको ध्यानमें रखकर—

'मामनुस्मर युध्य च'

'मेरा स्मरण कर और युद्ध कर'—अपने एक हाथमें माला तो दूसरे हाथमें तेज धारवाला चमकता भाला लेकर मुसलमान अत्याचारियोंसे लोहा लेनेके लिये रणाङ्गणमें कूद पड़े, उनसे डटकर लोहा लिया और उन्हें धरतीमें मिलाया। अन्तमें धर्मकी, देशकी, हिंदूजातिकी, गो-ब्राह्मणोंकी, हिंदूसभ्यता-संस्कृतिकी, तिलक-चोटीकी और यज्ञोपवीतकी रक्षाके लिये हँसते-हँसते अपने शरीरका गरम-गरम चीमटोंसे बोटी-बोटी मांस नुचवाना तो सहर्ष स्वीकार किया, पर धर्म छोड़ना स्वीकार नहीं किया, धर्मके लिये बलिदान हो गये। यह उनका राजनीतिमें भाग लेकर धर्म-रक्षा करना आज भी स्वर्णाक्षरोंमें अङ्कित है ? गुरु श्रीअर्जुनदेवका धर्मरक्षार्थ तेलके कड़ाहेमें डाला जाना और धर्मरक्षार्थ प्राण दे देना, एवं गुरु श्रीतेगबहादुरका राजनीतिमें भाग लेकर धर्मरक्षार्थ अपना सिर कटाना—

तिलक जञ्जु राखा प्रभुताका।
कीनो बड़ो कलूमें साका॥

और तिलक-चोटी-यज्ञोपवीतकी रक्षाके लिये प्राण दे देना—इसे हिंदू बच्चा-बच्चा जानता है। श्रीगुरुगोविन्दसिंहजी महाराजने राजनीतिमें भाग लिया और मालाकी जगह अपने हाथमें शस्त्र सँभाला एवं रौद्ररूप धारणकर मुसलमानोंसे डटकर लोहा लिया। देशरक्षार्थ और हिंदूधर्मरक्षार्थ अपने दुधमुँहे लाल श्रीजोरावरसिंह और फतेहसिंहको हँसते-हँसते दीवारोंमें चुनवाया। ये सब साधुसंतोंके, गुरुओंके राजनीतिमें प्रत्यक्ष भाग लेकर देश-धर्मकी रक्षा करनेके प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं तो क्या हैं ? भारतमें सदा-सर्वदासे ही सम्राट् और परिव्राट् दोनों मिलकर देश-धर्मकी रक्षा करते चले आये हैं—यह कोई नवीन बात नहीं है। ऋषियोंने ही तो राजा वेनको समाप्त किया था। हमारी गद्दीके पूज्यपाद ब्रह्मलीन जगद्गुरु शंकराचार्य अनन्तश्रीविभूषित श्रीस्वामी श्रीभारतीकृष्णतीर्थजी महाराज, जो एक विश्वविख्यात महान् धर्माचार्य थे और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषाओंके पूर्ण ज्ञाता थे। जहाँ उन्होंने हजारों शास्त्रार्थकर सनातनधर्म-विरोधियोंके छक्के छुड़ाकर सनातन धर्मकी रक्षा की, वहाँ उन्होंने जब यह देखा कि आज हमारी भारतमाता अत्याचारी अंग्रेजोंद्वारा परतन्त्रताकी बेड़ियोंमें जकड़ी हुई है तो उन्होंने भारतमाताकी परतन्त्रताकी बेड़ियाँ काटनेके लिये अंग्रेजोंसे डट करके लोहा लिया और वे धर्माचार्य होकर भी सहर्ष जेल गये—इसे सभी भारतीय जानते हैं। हमारे पूज्य ऋषि-महर्षियोंके और धर्माचार्योंके, संत-महात्माओंके इस प्रकार राजनीतिमें भाग लेकर देश-धर्मकी रक्षा करनेसे क्या उनकी महत्तामें किसी प्रकारकी कमी आयी? या वे उलटे राजनीतिमें भाग लेकर देश-धर्मकी रक्षा करनेके कारण जगद्वन्द्य पूज्य प्रातःस्मरणीय बन गये और सदा-सर्वदाके लिये अमर हो गये?

प्रश्न—महाराजश्री आज तो बहुत-से साधुसंत जो धर्मको छोड़कर राजनीतिमें भाग ले रहे हैं, क्या यह उचित है?

उत्तर—धर्मकी, देशकी, सभ्यता-संस्कृतिकी, गो-ब्राह्मणोंकी, देवमन्दिरोंकी रक्षाके लिये ही राजनीतिमें भाग लेना उचित है और इसीलिये लेना चाहिये। धर्मको, सभ्यता-संस्कृतिको, मर्यादाको तिलाञ्जलि देकर खाली राजनीतिमें भाग लेना तो घोर अधःपतनका मार्ग है। आज बहुत-से ऐसे साधु हैं कि जो राजनीतिमें भाग लेनेके कारण धर्म-कर्मको तिलाञ्जलि देकर बाबाजीसे बाबूजी बन बैठे हैं। वे बड़े फैशनके साथ अंग्रेजी ढंगसे रहते हैं; बढ़िया जूता पहनते हैं, हाथमें घड़ी बाँधते हैं, चमड़ेका बेग लेकर घूमते हैं, सबकी जूँठी चायकी प्यालियाँ पीते हैं, बरफ-सोडा-कोकाकोला पीते हैं। होटलोंमें मेज-कुरसीपर बैठकर खाते हैं, बड़े ठाठ-बाटसे रहते हैं और दिल्लीकी सड़कोंपर कारोंमें घूमते हैं। बहुत-से होटलपंथी बोतलपंथी बने हुए हैं। और नित्य बाल बनाते हैं, तेल-साबुनसे नहाते हैं, विदेशोंका सैर-सपाटे करते डोलते हैं, नेताओंकी चापलूसी करते हैं, बड़ी-बड़ी सभाओंमें नेताओंको बुला-बुलाकर उनका स्वागत करनेमें बड़े गौरवका अनुभव करते हैं एवं नेताओंकी कोठियोंके चक्कर काटते हैं। ये सब त्यागी साधुओंका कर्तव्य कदापि नहीं है और शास्त्रोंके तथा धर्मके विरुद्ध हैं। साधु-संतोंको कदापि शोभा नहीं देता। धर्मको तिलाञ्जलि देकर नेताओं-की चापलूसी करना साधु-संतोंके लक्षण कदापि नहीं हैं। साधु-संत महात्माओंको, धर्माचार्योंको निर्भीक होना चाहिये और धर्मद्रोहियोंका डटकर विरोध करना चाहिये। धर्म-द्रोहियोंकी चापलूसी करना अपना, अपने देशका, अपनी जाति-का सर्वनाश करना है। आज जो भारतका, हिंदूजातिका, हिंदू-धर्मका, हिंदू-सभ्यता-संस्कृतिका नाश हुआ है, इसका एक प्रधान कारण यह भी है कि जिन साधुसंत महात्माओंका, धर्माचार्योंका धर्मरक्षा करना परम कर्तव्य था और धर्म-विरोधियोंका डटकर विरोध करना परम धर्म था, आज उस अपने धर्मरक्षा करनेके परम कर्तव्यसे विमुख हो उन्होंने उलटे धर्मविरोधी नेताओंकी चापलूसी करनी प्रारम्भ कर दी। मुसल्मानी कालमें भी हमारे पतनका कारण यही था कि एक ओर हिंदूसूर्य महाराणा प्रताप-जैसे धर्मवीर शूरवीर धर्म-रक्षार्थ अकबर-जैसे धूर्त बादशाहसे टक्कर ले रहे थे और जंगल-जंगल भटककर घासकी रोटियाँ खाकर धर्मको बचा रहे थे और दूसरी ओर कुछ लोग बादशाह अकबरको अपनी बहन-बेटियाँ विवाह रहे थे और पाखण्डी पण्डित अकबरकी प्रशंसामें—

'दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा'

—के संस्कृतके श्लोक बना-बनाकर उसे प्रसन्न कर रहे थे। कलिपावनावतार गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराजने तभी तो लिखा है—

सचिव बैद गुरु तीन जौं प्रिय बोलहिं भय आस।
राज धर्म तन तीनि कर होइ बेगहीं नास॥

२—देशप्रेमी बनना चाहते हो तो पहले धर्मप्रेमी बनो

प्रश्न—महाराजजी! यदि कोई धर्मका पालन न कर सके, केवल देशप्रेमी बनकर देशकी सेवा करे तो यह कैसा है?

उत्तर—देशप्रेमी बननेसे और देश-सेवा करनेसे पहले सत्यसनातन धर्मके, हिंदूधर्मके प्रेमी बनना बहुत आवश्यक है। यदि तुम धर्मप्रेमी नहीं, तो कभी देशप्रेमी देशभक्त बन ही नहीं सकते। पहले अपने धर्मका सम्मान करो, अपने पूज्य गुरुओंका सम्मान करो, अपने पूज्य माता-पिताका सम्मान करो, अपने पूज्य गो-ब्राह्मणोंका सम्मान करो, अपनी हिंदू-सभ्यता-संस्कृतिका सम्मान करो, अपने शास्त्र-पुराणोंका सम्मान करो, अपने पूज्य देवमन्दिरोंका सम्मान करो; अपने पूज्य सच्चे साधु-संतोंका सम्मान करो, अपने पूज्य तीर्थोंका सम्मान करो, अपनी वेश-भूषाका सम्मान करो और अपने चोटी-तिलकका सम्मान करो—तभी तुम अपने देशका और अपने राष्ट्रका भी सम्मान कर सकते हो। यदि इन सबका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपमान किया और अपनेको कुशल देशभक्त मानकर बैठ गये तो फिर एक दिन जीवनमें ऐसा भी आयेगा कि देश-प्रेम भी नहीं टिक सकेगा, देशसे भी घृणा करने लगोगे। अपने देशसे प्रेम करना छोड़ इंगलैंड, अमेरिका तथा रूसके गीत गाने लगोगे। देखते नहीं, आजके इन पथभ्रष्ट नेताओंको कि जिन्होंने पहले धर्म-कर्मको तिलाञ्जलि दी, वर्णाश्रमधर्मका त्याग किया, अपनेको बड़ा भारी देश-भक्त मानकर अपनी जयके नारोंसे आकाश गुँजवाया। आज वही नेता आगे जाकर भारत देशसे भी घृणा करने और माया-मुग्ध होकर विदेशोंके गीत गाने, पाश्चात्त्य सभ्यता-संस्कृतिको सर्वथा आदर्श मानकर उसका अन्धानुकरण करने और भारतको भारत न रहने देकर इंगलैंड, अमेरिका, रूस, चीन-जैसा देश बना देनेके स्वप्न देखने लगे। अपने धर्म तथा सभ्यता-संस्कृतिको तिलाञ्जलि देकर देश-भक्ति करना बड़ा खतरनाक और सर्वनाशका कारण है जो आज प्रत्यक्ष देखनेमें आ रहा है। जो स्वयं धर्म-प्रेमी नहीं है और धर्मसे घृणा करता है क्या वह आगे जाकर देश-भक्तिकी आड़में सारे देशको ही धर्मसे घृणा करनेवाला और घोर नास्तिक देश नहीं बना देगा और बड़ा खतरनाक सिद्ध नहीं होगा! जो धर्मको तिलाञ्जलि देकर अपने देश-भक्त होनेका ढिंढोरा पीटा करते थे, उन्होंने अपने जीवनमें धर्मका, सभ्यता-संस्कृतिका तो सर्वनाश किया ही और भारतके प्राण धर्मकी हत्या करके भारतको मुर्दा बनाया। फिर उस मुर्दा भारतको भी पाकिस्तान बनाना स्वीकार करके भारतके अंग-भंग खण्ड-खण्ड टुकड़े-टुकड़े कर डाले? कहाँ गयी इनकी देश-भक्ति! जो अनादिकालसे चले आये धर्मको, सभ्यता-संस्कृतिको ठुकरा सकता है और धोखा दे सकता है, वह भला देशभक्त भी कितने दिन बना रह सकता है? जो धर्मको ठुकराकर कोरी देशभक्तिकी और देश-सेवाकी बातें करता है, वह स्वयं धोखा खा रहा तथा सबको धोखा दे रहा है। वह तीन कालमें भी देशभक्त नहीं है। पहले जो भारतमें धर्मको ठुकराकर राजनीतिक देशभक्त कांग्रेसी बने थे, अब वे ही देशभक्तिको भी तिलाञ्जलि देकर कम्यूनिस्ट-सोशलिस्ट बन गये और अपने देशकी अपेक्षा रूस और चीनकी प्रशंसाके गीत गाने लगे। यदि लोग वास्तवमें सच्चे देशभक्त और सच्चे देश-प्रेमी होते तो क्या वे अपनी आँखोंके सामने अपनी भारतमाताके प्राण धर्मकी हिंदू कोड बिल, तलाक बिलके द्वारा हत्या करते और होते देखते? क्या वे अपनी भारतमाताका पाकिस्तानके रूपमें खण्ड-खण्ड, टुकड़े-टुकड़े, अंग-भंग होना सहन कर लेते? पचास हजार वर्ग मीलसे ऊपर चीनने भारतकी भूमिपर कब्जा कर लिया और हमारे हाथसे तिब्बत, श्रीकैलाश, मान-सरोवर–जैसे परम पवित्र तीर्थ भी छिन गये। यदि वे देशके सच्चे प्रेमी होते तो क्या डूबकर नहीं मर जाते! धर्मको छोड़कर देशभक्तिकी डींग हाँकनेवालोंकी पोल खुल चुकी है। उनमें कोई तत्त्व नहीं है। आज वे देशको भूलकर धन तथा पदोंके लिये बुरी तरहसे आपसमें लड़-झगड़ रहे हैं, सिर फोड़ रहे हैं। क्या यही देशभक्ति है! हिंदूसूर्य महाराणा प्रताप, छत्रपति शिवाजी, गुरु गोविन्दसिंह, वीर छत्रसाल, राणा सांगा, वीर दुर्गादास राठौर, हरीसिंह नलुवा आदि जितने भी सनातनधर्मी धर्मवीर हिंदू सच्चे देशभक्त हुए हैं, सभी धर्मात्मा, पुण्यात्मा, त्यागी, तपस्वी, जितेन्द्रिय थे। बिना धर्मात्मा बने और बिना धर्मका सहारा लिये कभी देशकी सच्ची भक्ति हो ही नहीं सकती। यह एक अकाट्य सत्य सिद्धान्त है।

३—सबकी सेवा करना चाहते हो तो सनातन-धर्मकी शरण ग्रहण करो

प्रश्न-महाराजजी! सबकी सेवा कैसे की जाय और सबमें ईश्वरका स्वरूप कैसे देखा जाय?

उत्तर–यदि सबकी सेवा करना चाहते हो और यदि जीव-मात्रमें ईश्वरका स्वरूप देखना चाहते हो तो यह तभी होगा जब तुम सनातनधर्मकी शरण लोगे। जबतक तुम अपने सनातनधर्मकी शरण नहीं लोगे और कल्पित मतमतान्तरोंके चक्करमें फँसे रहोगे तबतक तुम न तो सबकी सेवा कर सकते हो और न जीवमात्रमें ईश्वरको ही देख सकते हो। सनातनधर्म ही यह बताता है कि माता-पिता पूज्य हैं और ये साक्षात् भगवान्‌के स्वरूप हैं, इनकी सेवा करो। साधु-ब्राह्मण साक्षात् श्रीभगवत्स्वरूप हैं, इनका आदर करो। पूज्या गोमातामें ३३ करोड़ देवी-देवताओंका वास है, गोमाताकी सेवा करो। वृक्षोंमें भी भगवान् हैं और इन वृक्षोंमें भी आत्मा है, इसलिये हरे वृक्षको काटनेमें उसे बड़ा कष्ट होता है, उसे मत काटो, उसकी सेवा करो। जिस प्रकार तुम्हें सुख-दुःखका अनुभव होता है, इसी प्रकार इन वृक्षोंको भी सुख-दुःखका अनुभव होता है। जिस प्रकार तुम्हें पानी और भोजन दिया जाय तो तुम प्रसन्न होते हो, इसी प्रकार इन वृक्षोंको भी तुम्हारी ही भाँति गरमी-सर्दीका अनुभव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता है। तेज धूप पड़नेपर ये मुरझा जाते हैं और जब इन्हें जल दिया जाता है तो हरे-भरे हो जाते हैं। वृक्षोंको तोड़ना बड़ा पाप बताया गया था। हमारे सनातनधर्मकी तथा हमारे शास्त्र-पुराणोंकी इस बातको कि 'वृक्षोंमें भी जीव होता है' आजके अंग्रेजी पढ़े बाबू लोग झूठ मानते थे और बड़ी हँसी उड़ाया करते थे। पर जब अपने ही देशके एक भारतीय हिंदू डा० जगदीशचन्द्र वसुने बड़े-बड़े पाश्चात्य वैज्ञानिकोंके सामने वृक्षोंमें भी जीवका होना सप्रमाण सत्य-सिद्ध करके दिखा दिया तो उन्हें भी वृक्षोंमें जीव होनेकी बातको माननेके लिये बाध्य होना पड़ा है।

सनातनधर्मने बताया कि श्रीतुलसीका पूजन करो और इसमें भी भगवान्‌को देखो। पीपलमें भी भगवान्‌को देखो और उसे भी जल दो। वड़में, आँवलेमें भी भगवान्‌को देखो, इन्हें भी जलद्वारा हरे-भरे करो। श्रीगङ्गा, श्रीयमुना, श्रीसरयू, श्रीगोमती, श्रीनर्मदा, श्रीत्रिवेणी, श्रीकावेरी आदि नदियोंमें भी भगवान्‌को देखो और इनका भी आदर-पूजन करो। सर्पोंमें भी भगवान्‌को देखो और नागपंचमीके दिन विषैले जहरीले सर्पोंको भी दूध पिलाओ तथा नागपूजन करो। दूबरी आठेको दूबकी घासकी भी पूजा करो, घासमें भी भगवान्‌को देखो। सूर्य-चन्द्रमाको भी भगवान्‌का स्वरूप समझकर उनको भी अर्घ्य प्रदान करो, उनका भी पूजन करो। चींटीको, कीड़ोंको भी भगवान्‌का स्वरूप समझकर उन्हें भी मीठेसे जिमाओ और मछलीको श्रीरामनामके आटेकी गोलीसे और बंदरोंको श्रीहनुमान् मानकर लड्डुओंसे जिमाओ। कुत्तोंको श्रीभैरवका प्रतीक मानकर दही-बड़े खिलाओ और गधेको श्रीशीतलाका वाहन मानकर श्रीशीतलाष्टमीके दिन पूजन करो। न दीखनेवाले पितरोंको श्राद्ध-तर्पणके द्वारा और देवी-देवताओंको हवन-यज्ञके द्वारा और भूतप्रेतोंको बलिके द्वारा तृप्त करो तथा सबको भगवान्‌का स्वरूप समझकर सबका पूजन करो, सबको तृप्त करो, सबको सुख पहुँचाओ। सबका हित करो। किसी भी जीवको कष्ट मत पहुँचाओ। इस एक मात्र सत्यको हमारा सनातनधर्म ही बताता है। यदि वास्तवमें सबकी सेवा करना चाहते हो और जीवमात्रमें ईश्वरका स्वरूप देखना चाहते हो तो उसका एक मात्र उपाय यही है कि तुम सनातनधर्मकी शरणमें आ जाओ। तभी तुम—

सीयराम मय सब जग जानी। करौं प्रनाम जोरि जुग पानी॥

—इस जगत्‌को सियाराममय देख सकोगे और यह कामना कर सकोगे।

सर्वेऽपि सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखभाग्भवेत्॥

४—अपना जो भी कार्य करो, शास्त्रानुसार और सनातनधर्मानुसार करो

प्रश्न—पूज्य महाराजजी! हमारा परम कर्तव्य क्या है, जिसके करनेसे हमारा कल्याण हो?

उत्तर—तुम जो भी अपना कार्य करो, सब शास्त्रानुसार, वर्णाश्रमधर्मानुसार, मर्यादानुसार और अपने सनातनधर्मानुसार करो। यही तुम्हारा परम कर्तव्य है। ऐसा करनेसे ही तुम्हारा कल्याण हो सकता है, अन्यथा नहीं। देखो, जिस प्रकार एक कोई पशु, एक कुत्ता, एक गधा और एक पक्षी भी खाता है, वैसे ही तुम भी खाते हो, पर तुम्हारे खानेमें और एक पशु-पक्षी, गधे, कुत्तेके खानेमें बड़ा अन्तर होना चाहिये। तुम्हारा खाना शास्त्रानुसार, सनातनधर्मानुसार और मर्यादानुसार होना चाहिये। यदि तुम्हारे खानेमें और पशु-पक्षीके खानेमें कोई अन्तर नहीं है और एक-सा है तो तुममें और पशु-पक्षी, घोड़े-गधे, कुत्ते-बिल्लीमें क्या अन्तर है! कुत्ता, घोड़ा, गधा सबके हाथका बिना विचारे खा पी लेते हैं, उन्हें यह ज्ञान ही नहीं है कि हमें किसके हाथका खाना चाहिये और किसके हाथका नहीं। इसी प्रकार यदि तुमने भी चाहे जिस मुसल्मान, ईसाई आदि चाहे जिस जाति-कर्मवाले तथा चाहे जिस व्यक्तिके हाथका और घरका खा लिया, जो कुछ सामने आया बिना विचारे उसे ही खा लिया तो तुममें और पशुमें क्या अन्तर है? पशुके सामने चारा आ गया, वह झटसे खाना प्रारम्भ कर देगा। वह यह कभी नहीं सोचेगा कि यह किसके हाथका है, उसके बच्चोंने भी और उसके माता-पिताने भी चारा खाया है या नहीं? वह चारा खाता जाता है और साथ ही पेशाब भी करता जाता है और टट्टी भी करता जाता है। पशु ही जो ठहरा। पर मनुष्य वही है कि जो सनातनधर्मानुसार चलता है और अपने खानेसे पहले यह देखता है कि 'यह भोजन कैसे बनाया गया है, इसे किसने बनाया है, भोजनमें क्या-क्या चीजें हैं, कैसे बना है, भोजन शुद्ध पवित्र चौकेमें बना है या नहीं, शुद्ध पवित्र सात्त्विक भोजन है या नहीं और इस भोजनको श्रीठाकुरजी महाराजको भोग लगाकर, श्रीतुलसीपत्र डालकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिव्य श्रीभगवत्-प्रसाद बना लिया गया है या नहीं।' यदि भोजन शुद्ध, पवित्र, सात्त्विक है और श्रीठाकुरजी महाराजको उसका भोग लगाया गया है, श्रीभगवत्प्रसाद है, तब तो उसे बड़े प्रेमसे पायेगा, जिससे उसके लोक, परलोक दोनों बनेंगे और उसके शरीर तथा आत्मा दोनों बलवान् बनेंगे तथा प्रसन्न होंगे। यदि यह बात नहीं है और तुमने होटलोंका बना और मुसल्मान, ईसाई, अंग्रेज आदि चाहे जिसका बनाया हुआ एवं अण्डे, मांस, मछली, चाय आदि जो भी सामने आ गया, उसे ही खा-पी लिया तो फिर तुम मनुष्यके रूपमें कोरे पशु हो। यदि तुमने खानेसे पहले यह नहीं देखा कि चौकेमें भोजन बना है या नहीं और पवित्र सात्त्विक है या नहीं और सबसे पहले रोटी पूज्या गायको, भूदेव ब्राह्मणको, अतिथिको दी गयी है या नहीं, पूज्य माता-पिता, वृद्ध बाबा-दादीने खाया है या नहीं, और घरमें आयी नयी बहूने खाया है या नहीं, रोगीने खाया है या नहीं और तुम स्वयं पहले खाने लगे तो तुममें और पशुमें क्या अन्तर है और क्या विशेषता है ?

इसी प्रकार नहाते तो सभी हैं। पशु-पक्षीतक भी नहाते हैं और ये मुसल्मान, ईसाई आदि भी नहाते हैं, पर इस नहानेकी कोई विशेषता नहीं है। तुम्हारे नहानेकी कोई विशेषता अवश्य होनी चाहिये और वह विशेषता होगी तब जबकि तुम शास्त्रानुसार, सनातनधर्मानुसार स्नान करोगे। जैसे सनातनधर्मीका भोजन जहाँ श्रीठाकुरजीको भोग लगनेके कारण दिव्य श्रीभगवत्प्रसाद बन जानेकी विशेषता रखता है, वहाँ सनातनधर्मी हिंदूका स्नान भी एक अद्भुत दिव्य विशेषता रखता है। सनातनधर्मी हिंदूका नहाना निराला ही होता है। जब सच्चा सनातनधर्मी स्नान करता है तो वह कूएँका या किसी नदीका पवित्र जल लेता है और जब स्नान करने लगता है तो उस जलको परम पवित्र और दिव्य जल बनानेके लिये वह अपने मुखसे श्रीगङ्गा-गङ्गा बोलता है जिससे श्रीगङ्गा बोलनेसे उस जलमें श्रीगङ्गाका निवास हो जाता है, वह जल पवित्र और दिव्य बन जाता है। ऐसे परम पवित्र दिव्य जलमें स्नान करने मात्रसे समस्त पाप-ताप भस्मीभूत हो जाते हैं। श्रीपतितपावनी कलिमल-हारिणी भगवती भागीरथी, श्रीगङ्गाजी महारानीका श्रीगङ्गा-गङ्गा नामोच्चारण करनेमें-बोलनेसे तुम्हारा खर्च भी क्या होता है ? हाँ, श्रीगङ्गा-गङ्गा कहनेसे लाभ अवश्य ही होता है। शास्त्र डंकेकी चोट बताता है—

गङ्गागङ्गेति यो ब्रूयाद् योजनानां शतैरपि।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति॥

५—धर्मसे सम्बन्ध टूटने न पाये, इसका पूरा-पूरा ध्यान रखो

प्रश्न—महाराजजी ! हमारा धर्ममय जीवन कैसे हो ?

उत्तर—अपना धर्मसे बराबर सम्बन्ध बनाये रक्खो। धर्मसे हमारा सम्बन्ध तनिक भी टूटने न पाये। इसका पूरा-पूरा ध्यान रक्खो। आज हमारा ईश्वरसे सम्बन्ध नहीं रहा, धर्मसे सम्बन्ध नहीं रहा, गो-ब्राह्मणोंसे सम्बन्ध नहीं रहा, इनमें श्रद्धा नहीं रही, देवमन्दिरोंमेंसे हमारी श्रद्धा हटा दी गयी। हमारी हिंदू-सभ्यता-संस्कृतिको मिटा दिया गया और शास्त्रोंमें, पुराणोंमें अश्रद्धा पैदा करा दी गयी तो फिर भला अपने पूज्य माता-पितामें ही श्रद्धा कहाँसे रहेगी ? आज धर्मसे हमारा सम्बन्धविच्छेद होनेके कारण अपने पूज्य वृद्ध माता-पिताको भी ठुकराया जा रहा है। बूढ़े माता-पिताकी सेवा करनेके बदले उनके लिये भी आज वृद्ध-आश्रम खोले जा रहे हैं। जब माता-पिता बुढ़िया-बूढ़े हो जायँगे और कमाने लायक नहीं रहेंगे तो बूढ़े माता-पिताको वृद्ध-आश्रममें ले जाकर पटक दिया जायगा। अब कौन इन बूढ़े-बुढ़ियाकी सेवा करे, ये दिन-रात खों-खों करते हैं और घरमें खखार थूकते रहते हैं और घरको गन्दा कर देते हैं—इन्हें घरमें रखनेसे क्या लाभ! इसी प्रकार जबतक हमारा धर्मसे सम्बन्ध बना रहा तो हम गायोंको पूज्या प्रातःस्मरणीया मानते रहे और गोमाताकी रक्षाके लिये हँसते-हँसते अपने प्राण न्यौछावर कर देनेमें महान् गौरवका अनुभव करते रहे। जबसे हमारा धर्मसे सम्बन्धविच्छेद हो गया तो उन्हीं गायोंके प्रति हमारी श्रद्धा नहीं रही। तभी तो आज हिंदूके मुखसे गंदे शब्द सुनायी पड़ रहे हैं कि बूढ़े, लँगड़े, लूले, गाय-बैल देशके लिये भार हैं। इन बूढ़े, लँगड़े, लूले बेकार गाय-बैलोंको कसाईखानोंमें बूचड़खानोंमें भेजकर कटवा देना चाहिये। यदि हमारा तनिक भी धर्मसे सम्बन्ध बना रहता तो क्या ऐसे गंदे शब्द कभी हमारे मुखसे स्वप्नमें भी निकल सकते थे ? धर्मकी बड़ी अद्भुत विलक्षण महिमा है। धर्मके कारण ही आज हम पापोंसे बचे हुए हैं। यदि हमारा धर्मसे सम्बन्ध टूट गया तो हमारा घोर अधःपतन हो जायगा और हम कोरे पशु-पिशाच-जैसे बन जायँगे। हमारा सब कुछ छूट जाय इसकी चिन्ता मत करो, पर धर्म न छूटने पाये; धर्म बना रहे इसका ध्यान रक्खो। धर्मकी रक्षाके लिये ही तो परब्रह्म भगवान् श्रीराम-कृष्णका अवतार होता है। धर्मकी रक्षाके लिये ही हिंदू-सूर्य प्रातःस्मरणीय महाराणा प्रताप जंगल-जंगल भटकते रहे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और घासकी रोटियाँ खाते रहे। धर्मकी रक्षाके लिये ही श्रीगुरु गोविन्दसिंहके दुधमुँहे बच्चे जीवित हँसते-हँसते दीवारोंमें चुने गये। धर्मके लिये ही वीर हकीकत, गुरु तेगबहादुर बलिदान हो गये और धर्मके लिये ही बन्दावीर बैरागीने गरम-गरम चीमटोंसे अपना बोटी-बोटी मांस नोचवाया। अपना सर्वस्व स्वाहा करके भी और अपने प्राणोंपर खेलकर भी धर्म-रक्षा करना हमारा परम धर्म और परम कर्तव्य है। धर्म-रक्षाके लिये अपने सर्वस्वकी बाजी लगा देनेवालेकी धर्म रक्षा करता है—

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।

पूज्यपाद गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराजने भी लिखा है—

जिमि सरिता सागर पै जाहीं। जद्यपि ताहि कामना नाहीं॥
तिमि सुख संपति बिनहिं बुलाए। धर्मसील पै जाय सुहाए॥

धर्मात्माका सब प्रकारसे कल्याण हो जाता है।

बोलो सनातनधर्मकी जय!

निराकारका ध्यान करनेवाले साधकोंके लिये कुछ उपयोगी युक्तियाँ

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके एक पुराने पत्रका अंश)

सच्चिदानन्दघन परमात्मा सर्वत्र परिपूर्ण है। परमात्मासे भिन्न कोई पदार्थ नहीं है। चराचर सभी ब्रह्मरूप हैं। उस ब्रह्मभावकी प्राप्तिके लिये नीचे लिखी युक्तिके द्वारा ध्यान करना चाहिये—

(१) पार्थिव सर्वपदार्थ अर्थात् पर्वत, वृक्ष, मनुष्य, नद-नदी, देव-दानव, पशु-पक्षी आदिको अपने शरीरसहित सब पदार्थोंको पृथ्वीमें लय करे, पृथ्वीको जलमें, जलको अग्निमें, अग्निको वायुमें, वायुको आकाशमें, आकाशको मनमें, मनको बुद्धिमें, बुद्धिको महत्तत्त्व अर्थात् समष्टि बुद्धिमें, फिर महत्तत्त्वको ब्रह्ममें लय कर दे। शेषमें ब्रह्म ही बच रहता है।

(२) ब्रह्मसे माया, मायासे महत्तत्त्व, महत्तत्त्वसे बुद्धि, बुद्धिसे मन, मनसे आकाश, आकाशसे वायु, वायुसे अग्नि, अग्निसे जल, जलसे पृथ्वी, पृथ्वीसे सर्वकार्य अर्थात् पार्थिव सब पदार्थ उत्पन्न हुए। इसलिये सब ब्रह्मरूप ही हैं; क्योंकि कारणसे कार्य भिन्न नहीं हो सकता। ऐसा जानकर सर्वत्र कारण-रूप ब्रह्मका ध्यान करे।

(३) आकाशके चारों ओर सच्चिदानन्दघन श्रीपरमात्मदेव परिपूर्ण है ऐसे ध्यान करे। सच्चिदानन्दघनकी बाढ़ बहुत वेगसे आती हुई दीखते ही प्रथम माया लय हो गयी, फिर समष्टि बुद्धि, फिर आकाशादि, फिर उस आकाशको परमात्मदेवमें लय करे। ऐसा करनेसे पृथ्वीके चारों ओर श्रीपरमात्मादेव ही रह जाता है। फिर, अपने शरीरको भी परमात्मामें लय कर दे, तब अन्तमें श्रीपरमात्मा ही रह जाता है। फिर, अपने द्रष्टा भावको भी श्रीपरमात्मामें लय कर दे। ऐसा करनेसे श्रीपरमात्मा आप ही अपने आपका ज्ञाता रह जाता है 'तस्यापि निरोधे सर्वनिरोधान्निर्बीजः समाधिः' इस सूत्रके प्रमाणसे श्रीपरमात्माको आप ही अपना ज्ञान है। जब इस वृत्तिका भी निरोध हो जाय तब निर्बीज समाधि होती है। इसीको भगवत्प्राप्ति, जीवन्मुक्ति या (ज्ञानकी) चौथी भूमिका कहते हैं।

(४) नाम, रूप सब कल्पित है। इनके मूलमें सच्चिदानन्दघन परमात्मा परिपूर्ण है।

(५) अपने शरीरसहित संसार स्वप्नवत् है। संसारके स्थानमें सच्चिदानन्दघन परमात्मा परिपूर्ण है।

(६) सर्वचराचर जगत् सच्चिदानन्दघन ही है, अन्य कुछ है ही नहीं। इस ध्यानमें श्रद्धाकी विशेष आवश्यकता है।

(७) इन्द्रियोंको मनमें लय करे अर्थात् इन्द्रियाँ चेष्टासे रहित हो जायँ, केवल मनकी क्रिया संकल्प-विकल्प आदि रहे। मनको बुद्धिमें लय करे, बुद्धिको समष्टि-बुद्धिमें लय करे, समष्टि बुद्धिको शान्तात्मा अर्थात् परमात्मामें लय करे। समष्टि बुद्धिके लय हो जानेका नाम 'भगवत्प्राप्ति' है। (कठवल्ली उ० वल्ली ३ मन्त्र १३)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(८) प्राणीमात्रमें चेतन एक है । उसका ध्यान करते-करते जब केवल चैतन्यमय वृत्ति स्थिर हो जाती है तब जड भी चैतन्य भासने लग जाता है । ऐसा होना ही भगवत्प्राप्ति है ।

(९) शरीरसे अपनेको पृथक् देखे अर्थात् शरीरका द्रष्टा रहे । व्यष्टिमें स्थित होकर भी द्रष्टा रहे । ऐसा होनेसे संसार कल्पित-सा प्रतीत होने लगता है । ऐसी स्थिति कुछ कालतक स्थिर रहे तो भगवत्प्राप्ति हो जाती है ।

(१०) सच्चिदानन्दघन परमात्मा सर्वत्र परिपूर्ण है। उसमें अपने आत्माको मिला दे । फिर परमात्मामें स्थित होकर अपने सर्वव्यापी आत्मामें सारे संसारको कल्पित देखे और संसारमें अपने आत्माको सत्य बोध-स्वरूप देखे । ऐसा होनेपर संसार भी आत्मस्वरूप ही भासता है । आत्मा अनन्त और अपार भासता है। ऐसी स्थिति कुछ कालतक रहनेपर परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है । यही तीसरी भूमिकाका अन्त समझा जाता है । (गीता ६ । २९)

(११) सच्चिदानन्दघन परमात्माके किसी एक अंश-में संसारको देखे और संसारमें सर्वत्र परमात्माको देखे। जैसे जलके किसी अंशमें बर्फ है और बर्फमें सर्वत्र जल है । (गीता ६ । ३०)

(१२) शरीर 'मैं' नहीं, शरीर 'मेरा नहीं', शरीरमें 'मैं भाव' मिथ्या कल्पित है । इसलिये ऐसा अभ्यास करे कि मैं कुछ भी नहीं हूँ । जब 'मैं' भावका अभाव हो जाता है, तब अन्तमें परमात्मा ही रह जाता है ।

जब 'मैं' था, तब 'हरि' नहीं, अब 'हरि' हैं 'मैं' नाँय।
प्रेम गली अति साँकड़ी, ता में दो न समाय ॥

साधनाकी पगदंडी

(ब्रह्मलीन स्वामी चिदानन्दजीका एक बहिनको लिखा पत्र)

[प्रेषक—वैद्य श्रीबदरुद्दीन राणपुरी]

पत्र मिला । आनन्द हुआ ।

मैं अपनेसे जितना बन पड़ता है, पढ़ती हूँ । परंतु अब तक मेरा, जैसा होना चाहिये, वैसा चित्त एकाग्र नहीं हुआ है । यह स्थिरता प्राप्त करनेके लिये क्या करना चाहिये ? कौन-सी पुस्तक बाँचनी चाहिये ? यह तुम्हारा प्रश्न है ।

तुम्हारे प्रश्नमेंसे ही उसका आधा जवाब मिल जाता है कि पुस्तक बाँचनेसे चित्तमें स्थिरता नहीं आती । अतएव जितना ही अधिक बाँचती जाओगी, उतना ही अधिक चित्तमें विभिन्न प्रकारकी सामग्री जानकारीके रूपमें इकट्ठी होती जायगी और उससे चित्तमें अस्थिरता बढ़ेगी । इसलिये पुस्तक बाँचना जहाँ तक हो सके, कम करो । इसके लिये पत्र लिखनेकी तुम्हारे मनमें स्फुरणा होनेके पहले ही मैं पटणीजीके पत्रमें निर्देश कर चुका हूँ । सस्ता साहित्य-मण्डलने ५-७ वर्ष हुए 'एकनाथी भागवत' नामक पुस्तक प्रकाशित की है । इस पुस्तकमें भागवतका केवल एकादश स्कन्ध है और उसके ऊपर एकनाथ महाराजका प्रवचन है । इसमें भक्ति, ज्ञान और वैराग्यका बहुत ही सुन्दर निरूपण है । भागवतके इस एकादश स्कन्धको गीताका बड़ा भाई कहें तो कुछ अत्युक्ति न होगी । यद्यपि उसका जन्म गीताके बाद हुआ है, तथापि विस्तार मुख्यतः गीतोक्त विषयोंका ही है । पहले तो उसे सरसरी दृष्टिसे पढ़ जाओ । दूसरी बार धीरे-धीरे पढ़ो । तीसरी बार समझनेका प्रयत्न करते हुए बाँचो । उसके बाद बाँचो तो हाथमें पेन्सिल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेकर बाँचो और जो-जो बात जीवनमें धारण करने योग्य लगे, उस-उसके नीचे पेन्सिलसे लकीर खींचती जाओ। पेन्सिलका उपयोग करनेके लिये लिखनेका मतलब यह है कि चौथी बार बाँचते समय यदि रेखाङ्कित वाक्य उपयोगी न जान पड़े तो उसे रबड़से मिटा सको। जैसे-जैसे यह व्यवहारमें आता जायगा वैसे-वैसे भक्ति, ज्ञान और वैराग्यका उभार होता जायगा और अपार आनन्द प्राप्त होगा। इसलिये यह एक ही पुस्तक बाँचनेके लिये रक्खोगी तो कभी नीरस नहीं लगेगी।

सभी शास्त्र चित्तको ही संसारका बीज कहते हैं या इसे ही संसार कहते हैं।

चित्तमेव हि संसारो रागादिक्लेशदूषितम्।
तदेव तैर्विनिर्मुक्तं भवान्त इति कथ्यते॥
(योगवासिष्ठ)

चित्त जब रागादि दोषोंसे दूषित होता है, तब वही संसारके रूपमें प्रसरित होता है और जब दोषसे मुक्त होता है तो संसारसे निवृत्त हो जाता है। इस कारण श्रुति-स्मृति तथा पुराणादि ग्रन्थोंमें ऐसा कोई ग्रन्थ नहीं है जिसमें चित्तको शान्त करनेका उपाय नहीं बताया गया हो।

गीतामें अभ्यास और वैराग्यको इसका उपाय बतलाया है। पातञ्जल योगदर्शनमें भी यही बात कही है।

अभ्यास—**मैं स्वयं ही आनन्दस्वरूप या सुखस्वरूप हूँ, इसलिये मुझे अपने सुखके लिये या आनन्दके लिये अन्य किसी प्राणी-पदार्थ या परिस्थितिकी आवश्यकता नहीं है। गुड़की भेलीको मधुरताके लिये या नमककी डलीको नमकीन बननेके लिये अन्यकी अपेक्षा नहीं होती। इसी प्रकारके आनन्दस्वरूप मननको अभ्यास कहते हैं।**

वैराग्य—शरीरमें इन्द्रियाँ बहिर्मुख हैं अर्थात् जीवको अनादि कालसे विषयोंसे ही परिचय है। इस कारण उनसे सुख पानेके लालचमें उनमें आसक्त रहता है। विषयोंसे ही सुख मिलता है, इस भ्रान्तिमें पड़कर ही चित्त उनका बारंबार स्मरण करता है और उनको पानेके लिये व्यग्र रहता है। एक विषयके प्राप्त होनेपर जब सुख नहीं मिलता, तब दूसरे विषयके पीछे दौड़ता है और उससे भी सुख नहीं मिलता तो तीसरेके पीछे। इस प्रकारकी परम्परा चलती ही रहती है, तब चित्त स्थिर कैसे हो? इस अवस्थामें चित्तको स्थिर करनेका यह उपाय दीखता है कि 'विषयोंसे सुख मिलता है' इस भ्रान्तिको दूर किया जाय। भ्रान्तिको दूर करनेके लिये विषयोंमें दोष देखे। उदाहरणार्थ बीड़ी पीनेवालेको बीड़ी सुखरूप दीखती है, परंतु दूसरे न पीनेवालेको उसका धुआँ भी अच्छा नहीं लगता। यदि बीड़ीमें सुख देनेका गुण होता तो उससे सबको सुख मिलना चाहिये, परंतु ऐसा नहीं दीखता। करैलेकी तरकारी और हरी मिर्च बच्चोंको सुखद नहीं होती, परंतु बड़े लोगोंको होती है। इसका कारण क्या है? बड़े लोग उसमें सुख मानते हैं, इससे चाहे जितनी कड़वी और तीखी चीज हो उन्हें अनुकूल लगती है। बालक उसमें सुख नहीं मानता, इस कारण उसे वह नहीं अच्छी लगती।

इस प्रकार प्रत्येक विषयको लेकर चित्तको निश्चय करा देना चाहिये कि विषयोंमें सुख देनेका कोई गुण ही नहीं है। अतएव उनकी प्राप्तिके लिये परिश्रम करना व्यर्थ है।

चित्तको स्थिर करनेके उपायोंमें (१) जप, (२) ध्यान और (३) सत्कार्य मुख्य हैं। अब इनपर विचार करें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जप—केवल सत्ताईस मनकाकी एक माला बना ले। आधा घण्टा स्थिरतासे बैठनेका समय निकाले। शान्तिसे आसनके ऊपर बैठे। पासमें घीका दीपक और सुगन्धित अगरबत्ती रक्खे। होठोंको बंद रक्खे। दाँत बंद करे और जीभको दाँतके साथ सटाकर रक्खे, जिससे वह हिले नहीं पश्चात् सुस्पष्ट मन्त्रका उच्चारण करे और मालाके मनकेको सरकाये। ऐसा करनेसे शुरूमें तो थकावट जान पड़ेगी। अतएव जब थकावट मालूम हो तब जप बंद कर दे। भले ही सात, आठ या दस ही मनके फिरे हों। फिर शामको जितना हो सके उतना जप करे। यों करते-करते आठ-दस दिनोंमें एक माला आसानीसे होने लगेगी। पश्चात् धीरे-धीरे चार मालातक बढ़ावे। चार माला आसानीसे जब होने लगेगी, तब ऐसा जान पड़ेगा कि मन जप करता है और मैं उसकी देख-रेख करता हूँ। बस, ऐसी स्थिति उत्पन्न करनी है और फिर यथाशक्ति मालाकी संख्या बढ़ाते जाना है।

ध्यान—ईश्वरके जिस स्वरूपमें प्रीति हो, उसका एक छोटा मनोहर चित्र ले और उसे सुन्दर फ्रेममें मढ़ा दे। फिर उस चित्रको एक आसनपर पधराकर धूप-दीप अर्पण करे। पश्चात् आँखें मूँदकर उस चित्रको हृदयमें देखे। हृदयमें दिखलायी न दे तो फिर आँखें खोलकर चित्रको देख ले और आँखें मूँदकर उसे फिर हृदयमें उतारे। यह भी सबेरे-शाम शुरू-शुरूमें दस मिनटतक करे और फिर स्थिरता आ जानेपर समयको बढ़ावे।

सत्कर्म—निष्कामभावसे किया गया कोई भी काम सत्कर्म कहलाता है।

'किसी भी देहधारीको जैसे हो, वैसे ही प्रयत्न करके प्रेम और संतोष प्रदान करना। यही ईश्वरकी पूजा है।'

(१) महीनेमें दो-चार बार यथाशक्ति पाँच कन्याओंको मधुर भोजन करावे। उनकी आठ वर्षसे अधिक उम्र नहीं होनी चाहिये। उनमें ऐसी भावना करे कि साक्षात् जगदम्बा ही कन्याओंके रूपमें भोजन करनेके लिये पधारी हैं।

(२) प्रातःकाल मुट्ठी दो मुट्ठी दाना पक्षियोंको डाले। दाना चुगते समय उनको देखे और यह भावना करे कि एक भगवान् ही अनेक पक्षियोंके रूपमें दाना चुग रहे हैं।

(३) कभी-कभी शामको छोटे बच्चोंको मूँगफली, पीपरमिन्ट, रेवड़ी, दाल-मोंठ आदि बाँटे।

मैं समझता हूँ कि पूरी साधना लिखी जा चुकी है। तथापि यदि कहीं न्यूनता जान पड़े या कहीं अधिक स्पष्ट करनेकी जरूरत जान पड़े तो अवश्य लिखो, किसी बातका संकोच न करो; क्योंकि इस शरीरका दूसरा कोई उपयोग ही नहीं है। ॐ तत्सत्।

स्वामी चिदानन्दका शुभाशीष।

सत्कर्म अर्थात् सच्चा कर्म तो वही हो सकता है जिसके द्वारा दूसरोंको सुख-शान्ति मिले। फिर, सत् परमात्माका स्वरूप है, उनके लिये जो कर्म किया जाय वह सत्कर्म है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीव-निरूपण

(लेखक—शुभचिन्तक)

भगवान्, परमात्मा, परमेश्वर—इन शब्दोंका अर्थ और प्रयोग सब जानते हैं। यहाँतक कि जो पढ़े-लिखे नहीं हैं, वे भी जानते हैं। इन शब्दोंसे एक ही भगवान् समझना चाहिये। उसको वेदान्तमें 'ब्रह्म' कहते हैं। जैसे घट या घड़ा समझानेके लिये पहले मिट्टी, वस्त्र समझानेके लिये पहले सूत, मेज समझानेके लिये पहले लकड़ीका उल्लेख आवश्यक है, इसी प्रकार जीव-निरूपणसे पहले ब्रह्मके विषयमें कुछ जान लेना आवश्यक है। यह तर्क नहीं करनी चाहिये कि कहाँ तो जीव-निरूपणकी बात और पहले ले बैठे ब्रह्म-कथा।

'ब्रह्म' शब्दका अर्थ है—सत्तामात्र—जैसा कि श्रुति कहती है—

'सदेव सोम्येदमग्रमासीत, एकमेवाद्वितीयम्' (तैत्तिरीयोपनिषद्)

अर्थात् इस दृश्यमान जगत्की उत्पत्तिसे पहले एक सत्ता मात्र (Existence olsolute) ही थी। दूसरा अर्थ है 'बृहत्वाद् ब्रह्म' अर्थात् जो सबसे बड़ा है, उसको ब्रह्म कहते हैं। जैसा श्रुति कहती है **'न तत्समश्चाप्यधिकश्च दृश्यते'** अर्थात् न उसके समान कोई है, न उससे अधिक कोई है अर्थात् वह सबसे बड़ा है। तीसरा अर्थ है 'सकल-प्रपञ्चाधिष्ठानत्वाद्ब्रह्म' अर्थात् सब प्रपञ्च वा जगत्का अधिष्ठान (आधार) होनेके कारण वह 'ब्रह्म' कहा जाता है।

अब सावधान होकर सुनिये—'ब्रह्म क्या है?' यह बताते हैं—

'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' (तैत्तिरीयोपनिषद्)

अर्थात् ब्रह्म सत्य है, नित्य विद्यमान है। उसका अभाव कभी नहीं है। वह ज्ञानस्वरूप, स्वयंप्रकाश, सर्वप्रकाशक है। वह अनन्त है अर्थात् अन्तरहित है। इससे यह नहीं समझना चाहिये कि अन्त नहीं है तो न हो, आदि तो होगा ही, अन्त उसका होता है, जिसका आदि होता है। यहाँ अनन्तका अर्थ है कि ब्रह्मका न आदि है, न अन्त है और न मध्य है। वह नित्य निरन्तर विद्यमान सत्ता है। अनन्तका अर्थ और अधिक स्पष्ट करते हैं। किसी वस्तुका अन्त देश, काल, वस्तुकी अपेक्षासे होता है। कोई वस्तु एक देशमें है, दूसरे देशमें नहीं है, तो दूसरे देशमें उसका अन्त है। ब्रह्म ऐसा नहीं है कि एकदेशीय हो, वह तो सर्वत्र व्यापक है। वस्तुका अन्त काल करके भी होता है। जैसे कोई वस्तु एक कालमें है, दूसरे कालमें नहीं है, तो दूसरे कालमें उसका अन्त है। ब्रह्म ऐसा नहीं है कि जो एक कालमें हो, दूसरे कालमें न हो। वह सदा सब कालमें विद्यमान है, अतः नित्य है। जैसे देश-कालकी अपेक्षासे अन्त होता है, वैसे ही वस्तुकी अपेक्षासे भी अन्त होता है। ब्रह्मका अन्त वस्तुकी अपेक्षासे भी नहीं है। यह बात नहीं है कि ब्रह्म एक वस्तुमें हो, दूसरीमें न हो। ब्रह्म सब वस्तुओं-में है। वस्तु अनेक है। अनेकमें विद्यमान होनेसे उसके खण्ड नहीं होते; क्योंकि वह व्यापक है। सबके अंदर है और बाहर भी है। अतः ब्रह्म एक है। उपर्युक्त विवेचनसे स्पष्ट है कि ब्रह्म व्यापक, नित्य और एक है।

अब प्रश्न यह उठता है कि ब्रह्म एक अद्वय है। उसके समान कोई दूसरा नहीं है। तब फिर अज्ञानावस्थामें साधकको कैसे समझाया जाय। खोज करनेसे पता चलता है कि आकाशकी उपमासे ब्रह्मका बोध कराया जा सकता है।

'ॐ खं ब्रह्म पुनातु सर्वत्र' इस मन्त्रमें शब्द 'खं' का अर्थ है आकाश। 'खं ब्रह्म' का अर्थ है वह ब्रह्म चैतन्य जो आकाशके समान सर्वत्र परिपूर्ण, व्यापक, सूक्ष्म और एक है। इस आकाशको चार प्रकारका समझना चाहिये—

(१) घटाकाश—जलसे भरा हुआ घड़ा जितनी जगह आकाशमें घेरता है उतनी जगहको 'घटाकाश' कहते हैं।

(२) जलाकाश—पानीसे भरे हुए घड़ेमें तारों एवं चन्द्रमासहित आकाशका जो प्रतिबिम्ब पड़ता है, उस प्रतिबिम्ब और घटाकाश दोनोंको मिलाकर 'जलाकाश' कहते हैं। यहाँ आकाशका प्रतिबिम्ब होनेके विषयमें शंका नहीं करनी चाहिये। घड़ेके थोड़ेसे जलमें बड़ी भारी गहराई दिखायी देती है। यह आकाशका ही प्रतिबिम्ब है।

(३) मेघाकाश—मेघ बादलको कहते हैं। जितनी जगह बादल आकाशमें घेरता है, वह जगह और बादलके पानीमें आकाशका जो प्रतिबिम्ब है, इन दोनोंको मिलाकर 'मेघाकाश' कहते हैं। बादलमें पानी होता ही है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सब जानते हैं और जहाँ पानी है वहाँ आकाशका प्रतिबिम्ब भी अवश्य होता है । बादलमें पानी और प्रतिबिम्ब दिखायी नहीं देता, अनुमानसे जाना जाता है ।

(४) **महाकाश**—प्रत्येक वस्तुमें अंदर-बाहर जो समान रूपसे सदा व्यापक आकाश है वह महाकाश कहलाता है । जिस प्रकार उपर्युक्त आकाशके चार भेद बताये गये उसी प्रकार चैतन्य भी चार प्रकारका है—

(१) **कूटस्थ**—बुद्धि या व्यष्टि अज्ञान (अविद्या) का अधिष्ठान चैतन्य 'कूटस्थ' कहलाता है । यह घटाकाशके समान है । यदि बुद्धिके साथ जीव माना जाय तो बुद्धिका अधिष्ठान चैतन्य कूटस्थ कहलायेगा । यदि व्यष्टि अज्ञानके साथ जीव माना जाय तो व्यष्टि अज्ञानका अधिष्ठान कूटस्थ कहलायेगा । यह कूटस्थ अनादि है, ब्रह्मरूप ही है, जैसे घटाकाश महाकाशसे पृथक् नहीं है । इसी कूटस्थको आत्मा, प्रत्यक् चैतन्य, जीव साक्षी भी कहते हैं ।

(२) **जीव**—बुद्धिमें जो अनेक वासना और कर्म हैं, उनके साथ बुद्धि, उस बुद्धिमें व्यापक ब्रह्म चैतन्यका प्रतिबिम्ब और बुद्धिका अधिष्ठान चैतन्य कूटस्थ—ये तीन मिलकर जीव कहलाते हैं । यदि व्यष्टि अज्ञानके साथ जीव माना जाय तो व्यष्टि अज्ञान, उसमें व्यापक ब्रह्म चैतन्यका प्रतिबिम्ब और व्यष्टि अज्ञानका अधिष्ठान कूटस्थ—ये तीन मिलकर जीव कहलाते हैं । यह जलाकाशकी तरह है । इसी जीवको चिदाभास, प्रमाता, विज्ञानमय पुरुष भी कहते हैं ।

(३) **ईश्वर**—मायामें जो व्यापक चैतन्यका प्रतिबिम्ब है वह और मायाका अधिष्ठान चैतन्य—दोनों मिलकर ईश्वर कहलाते हैं । यह जगत्-कर्ता है । यह मेघाकाशके समान है ।

(४) **'ब्रह्म'**—यह शुद्ध चैतन्य है । प्रत्येक वस्तुके अंदर-बाहर परिपूर्ण सदा समान रूपसे व्यापक है । यह महाकाशकी तरह है ।

ऊपर माया, अज्ञान, अविद्या—इन शब्दोंका प्रयोग हुआ है । इनका भेद क्या है ? प्रकृतिके तीन गुण हैं—सत्त्व, रज, तम—जब तीनों गुणोंकी साम्यावस्था होती है, तब उसको प्रकृति कहते हैं । जब सत्त्वगुण प्रधान होता है, रज और तमको दबा लेता है, वह शुद्ध सत्त्वगुण होता है, ऐसी अवस्थाका नाम माया है । उसमें प्रकाश या ज्ञानकी प्रधानता रहती है । जब रज और तम—सत्त्वगुणको दबा लेते हैं, तब मलिन सत्त्वगुण होता है । उसमें ज्ञान एवं प्रकाश ढक जाता है, ऐसी अवस्थाको अविद्या या अज्ञान कहते हैं । ईश्वरकी उपाधि माया है जो शुद्ध सत्त्वगुणप्रधान है, इसलिये ईश्वर सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, अन्तर्यामी, नित्यमुक्त, मायापति है । जीवकी उपाधि अविद्या (अज्ञान) है जो मलिन सत्त्वगुणप्रधान है । इसलिये जीव अल्पज्ञ, अल्पशक्ति, संसारी, बद्ध, अपने वास्तविक स्वरूपको भूला हुआ, अपनेको कर्ता, भोक्ता मानता है । बन्ध और मोक्ष जीवके प्रतिबिम्ब भागमें हैं । शुद्ध चैतन्य अधिष्ठान आत्मामें नहीं हैं । चिदाभासकी भ्रान्तिसे अधिष्ठानमें प्रतीत होते हैं ।

ऊपर यह बताया गया कि बुद्धि, बुद्धिमें ब्रह्म चैतन्यका प्रतिबिम्ब और बुद्धिका अधिष्ठान चैतन्य कूटस्थ—ये तीनों मिलकर जीव कहलाते हैं । अकेला प्रतिबिम्ब जीव नहीं है; क्योंकि प्रतिबिम्ब ब्रह्म चैतन्य और बुद्धिके आश्रय है, बुद्धि कूटस्थके आश्रय है । इसको यों समझिये कि तुम्हारी गर्दनपर मुख है, हाथमें मुखके सामने दर्पण है । दर्पणमें मुखका प्रतिबिम्ब है । मुखका प्रतिबिम्ब अकेला नहीं रह सकता है । उसको दर्पण और मुखकी आवश्यकता है । इसी प्रकार चैतन्य प्रतिबिम्बको चैतन्य ब्रह्म, बुद्धि और कूटस्थ अधिष्ठानकी आवश्यकता है । अब यह देखना है कि इनमें सत्य वस्तु क्या है । दर्पण है तो मुख प्रतिबिम्ब है । दर्पण नहीं तो प्रतिबिम्ब भी नहीं है । दर्पण नित्य हाथमें और सामने नहीं रहता, तो मुख प्रतिबिम्ब भी नित्य नहीं रहता । जो नित्य है, वह सत्य है । दर्पण और मुखप्रतिबिम्ब सत्य नहीं हैं । सत्य तो केवल मुख है । इसी प्रकार 'जीव' नामकी कोई सत्य वस्तु नहीं है । प्रतिबिम्ब सत्य नहीं है । बुद्धि कल्पित है, सत्य नहीं है । बुद्धि सुषुप्तिमें अपने कारण अज्ञानमें लीन हो जाती है । सत्य तो केवल ब्रह्म चैतन्य है । वही व्यष्टि-बुद्धिका अधिष्ठान होनेसे कूटस्थ कहलाता है; क्योंकि लोहारके ऐरनकी तरह नित्य, निर्विकार, एकरस रहता है । यह कूटस्थ ही आत्मा है, सबका अपना वास्तविक स्वरूप है और मन, बुद्धिका साक्षीरूपसे सबको अनुभव होता है । बन्ध-मोक्ष, सुख-दुःख, पाप-पुण्य, लोक-लोकान्तरोंमें आना-जाना—ये सब चिदाभासयुक्त बुद्धिमें हैं । न अकेले चिदाभासमें हैं और न शुद्ध, बुद्ध, नित्य असङ्ग आत्मामें हैं ।

ग्रन्थोंमें जीवका निरूपण एक प्रकारसे नहीं है । कहीं तो बुद्धिमें चिदाभासको जीव बताया है । जैसे—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कूटस्थे कल्पिता बुद्धिस्तत्र चित्प्रतिबिम्बितः ।
प्राणानां धारणाज्जीवः संसारेण स युज्यते ॥
(पञ्चदशी, चित्रदीप प्रकरण २३)

अर्थात्--कूटस्थ चैतन्यमें कल्पित बुद्धिमें चैतन्यका प्रतिबिम्ब ही जीव है। वह सब प्राणोंको धारण करता है, इसलिये उसे जीव कहते हैं। वह जीव ही संसारमें फँसा करता है। यहाँ चित्प्रतिबिम्बका अर्थ है चिदाभास। अधिष्ठान कूटस्थसहित चिदाभासको जीव कहते हैं। अन्तः-करण-चतुष्टय (मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार); पाँच प्राण (प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान), पाँच ज्ञान-इन्द्रियाँ (कान, आँख, नाक, त्वचा, रसना), पाँच कर्म-इन्द्रियाँ (हाथ, पैर, वाणी, लिंग, गुदा)—ये सब जड हैं अर्थात् इनमें चेतना, काम करनेकी शक्ति-योग्यता नहीं है। ये सब चिदाभाससे चेतना पाते हैं। इन सबमें प्राण मुख्य हैं; क्योंकि प्राणोंके सहारे ही सब शरीर है। जबतक प्राण हैं, शरीर जीवित है, चेतन है। जब प्राण शरीरको त्याग देते हैं, शरीरमें चेतना नहीं रहती। कहते हैं कि शरीर मर गया; क्योंकि चिदाभाससे प्राणादि सबकी अर्थात् स्थूल, सूक्ष्म—दोनों शरीर-की स्थिति और जीवन है, इसलिये चिदाभासको जीव कहते हैं। यह जीव ही संसारमें फँसा करता है। जब जीव चिदाभाससहित दोनों स्थूल और सूक्ष्म शरीरोंको अपने स्वरूपसे स्वीकार करता है, तब 'मैं संसारी हूँ, मैं सुखी-दुखी हूँ' ऐसा मानने लगता है। यही जीवका संसारमें फँसना है, यही बन्धन है। कहीं सूक्ष्म शरीरमें चिदाभासको जीव बताया है। जैसे—

चैतन्यं यदधिष्ठानं लिङ्गदेहश्च यः पुनः ।
चिच्छाया लिङ्गदेहस्था तत्संघो जीव उच्यते ॥
(पञ्चदशी, द्वैतविवेक प्रकरण ११)

अर्थात् एक तो कूटस्थ चैतन्य अधिष्ठान है, दूसरा कूटस्थमें अध्यस्त लिङ्ग देह (सूक्ष्म शरीर) है और तीसरा सूक्ष्म शरीरमें वर्तमान चिदाभास—ये तीनों मिलकर जीव कहलाते हैं।

कहीं अविद्यामें चिदाभासको जीव बताया है। जैसे—

अविद्यावशगस्त्वन्यस्तद्वैचित्र्यादनेकधा ।
सा कारणशरीरं स्यात् प्राज्ञस्तत्राभिमानवान ॥
(पञ्चदशी, तत्त्वविवेक प्रकरण १७)

अर्थात् अविद्यामें प्रतिबिम्बित और उसके अधीनस्थ हुए चिदात्माको जीव कहते हैं। वह अविद्या सूक्ष्म शरीरकी कारण है। इस अविद्यारूप कारण-शरीरमें अध्याससे 'मैं अज्ञानी हूँ' ऐसा अभिमान करनेवाला जीव प्राज्ञ है। प्राज्ञ सुषुप्ति अवस्थाका अभिमानी जीव है। उस अवस्थामें अज्ञान प्रधान होता है। जीवकी उपाधि अविद्या है, अविद्यामें मलिनता न्यूनाधिक होनेके कारण जीव देव, मनुष्य, पशु-पक्षी-भेदसे नाना प्रकारका होता है।

उपर्युक्त तीन श्लोकोंमें यह बताया गया कि बुद्धि, सूक्ष्म शरीर या अविद्यामें चिदाभासको अधिष्ठान कूटस्थ चैतन्यसहित जीव कहते हैं। अब यह देखना है कि इन तीनोंमेंसे कौन-सा विचार ठीक है।

(१) यदि बुद्धिमें चित्प्रतिबिम्बको जीव माना जाय तो प्राज्ञकी हानि है। शरीरकी तीन अवस्थाएँ हैं—जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति—इन अवस्थाओंके अभिमानी जीवके क्रमशः नाम विश्व, तैजस, प्राज्ञ हैं। जाग्रत्, स्वप्नमें बुद्धि है। तब जीवकी संज्ञा विश्व, तैजस भी है। सुषुप्तिमें बुद्धि अपने कारण अविद्यामें लीन हो जाती है। इसलिये जीवकी संज्ञा 'प्राज्ञ'की हानि है।

(२) यदि सूक्ष्म शरीरमें चित्प्रतिबिम्बको जीव माना जाय तो भी बुद्धिमें ही प्रतिबिम्ब मानना पड़ेगा; क्योंकि सूक्ष्म शरीर पाँच कर्म-इन्द्रियाँ, पाँच ज्ञान-इन्द्रियाँ, पाँच प्राण, अन्तःकरण-चतुष्टय, पाँच सूक्ष्मभूत—इन २४ तत्त्वोंसे बना है। इनमें केवल बुद्धि ही अत्यन्त स्वच्छ है; क्योंकि उसमें सत्त्वगुण प्रधान है जो प्रतिबिम्ब ग्रहण कर सकती है। इसलिये यह विचार भी ठीक नहीं।

(३) अब तीसरी वस्तु अविद्या है। जो व्यष्टि अज्ञान है, वह मलिन सत्त्वगुणप्रधान है, फिर भी स्वच्छ है और प्रतिबिम्ब ग्रहण कर सकती है। यह विचार ही श्रेष्ठ है। इसमें कोई शंका नहीं हो सकती। अतः इस विवेचनसे यह सिद्ध हुआ कि कूटस्थ चैतन्य अधिष्ठानसहित अविद्या प्रतिबिम्बित चैतन्य जीव कहलाता है। अर्थात् (१) व्यष्टि अधिष्ठान चैतन्य कूटस्थ, (२) व्यापक ब्रह्म चैतन्यका प्रतिबिम्ब और (३) मलिन सत्त्वप्रधान व्यष्टि अविद्या—ये तीनों मिलकर जीव कहलाते हैं।

व्यष्टि दृष्टिसे समझने और समझानेमें अविद्याकी जगह उसका कार्य बुद्धिका ही प्रयोग होता है। अविद्याकी जगह बुद्धिके प्रयोगका कारण यह भी है कि सुषुप्तिमें जो अविद्या या अज्ञान है वही जाग्रत्में बुद्धिरूपमें प्रकट होता है। अधिष्ठान कूटस्थ चैतन्यसहित बुद्धिमें प्रतिबिम्बित चैतन्यको जीव समझा जाय तो भी कोई हानि नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कामनाशून्य होनेपर ही सुख-प्राप्ति सम्भव है

(लेखक—श्रीगोवर्धननाथजी कक्कड़)

प्राणीको नित्य सुख और आनन्दकी प्राप्तिके लिये जीवनसे कामनाओंका अन्त करना ही होगा; क्योंकि कामनामय जीवन भोगप्रधान बनकर जीवनमें दुःख, अभाव और अशान्ति उत्पन्न करता है। कामनाओंके कारण चित्त-वृत्तियोंका निरोध नहीं हो पाता और अन्तःकरण सदा अशुद्ध बना रहता है। अशुद्ध अन्तःकरणके कारण जीवनमें विशुद्ध प्रेमकी अभिव्यक्ति नहीं हो पाती और प्राणी नित्य-सुख और आनन्दसे वञ्चित रहता है।

कामनाओंका अन्त करके ही प्राणी निश्चिन्तता और अमरतामें रमण करता है। कामनाओंको नष्ट करनेका अर्थ है—अपने-आपपर विजय पाना। जिसने स्वयंपर विजय प्राप्त कर ली, उसके लिये फिर शेष रहा ही क्या?

चाह गई चिन्ता मिटी मनुआ बेपरवाह।
जिनको कछू न चाहिये वे शाहन के शाह॥

कामनाओंका अन्त होते ही जीवन एक विशेष प्रकारकी मस्तीसे भर जायगा। इस मस्तीके आगे त्रैलोक्यकी सम्पदाका भी कोई मूल्य नहीं है। यही मस्ती जीवनका सार है। सब कुछ प्राप्त करके भी यदि जीवनमें यह मस्ती नहीं आयी, जीवन रसमय न हुआ तो समझो कुछ न मिला। किंतु यह मस्ती जीवनमें तभी आयेगी जब जीवनसे कामनाओंका अन्त हो जायगा। जीवनसे चाहका अन्त होते ही संसार तुम्हारे पैर चूमने लगेगा।

भागती फिरती थी दुनिया जब तलब करते थे हम।
अब जो नफरत हमने की वह बेकरार आने को है॥

अब प्रश्न यह है कि जीवनसे चाह मिटे तो कैसे? जीवन कामनासे अतीत हो तो कैसे? प्राणी जब देहभावसे भावित होकर संसारकी सत्ता स्वीकार करता है, तभी भौतिक अनात्मवस्तुओंसे उसका सम्बन्ध हो जाता है और वह उन्हें ही सुख देनेवाली मानने लगता है। वस्तुओंसे सम्बन्ध हो जानेसे उनमें उसकी आसक्ति हो जाती है। यह आसक्ति ही नाना प्रकारकी कामनाओंको जन्म देती है और प्राणीको भोगोंके बन्धनमें फँसा देती है।

आसक्तिका स्वरूप है—प्राप्तसे ममता और अप्राप्तका चिन्तन। प्राप्तमें ममताका अर्थ है—जो सांसारिक वस्तुएँ उसे प्राप्त हैं, उनमें उसका मेरापन हो जाता है और वह उनके मोहमें फँस जाता है। उन वस्तुओंसे मोहके कारण उनके वियोगका भय उसे सदा बना रहता है। अप्राप्तके चिन्तनका अर्थ है—जो वस्तु उसे प्राप्त है, उससे सम्बन्धित जो वस्तुएँ उसे प्राप्त नहीं हैं, उनका चिन्तन करने लगता है। इसे निरर्थक चिन्तन कहते हैं। अब प्राप्तसे ममता होनेपर वह चाहता हुआ भी उनकी रक्षा नहीं कर पाता और उनसे उसका वियोग हो जाता है, जो अवश्यम्भावी है। दूसरी ओर अप्राप्तका चिन्तन करके भी वह उन्हें प्राप्त नहीं कर पाता। इसका परिणाम यह होता है कि उसका जीवन निराशा, दुःख और अभावमें ही बीतता है। जीवनमें इनसे छुटकारा पाकर सुख और शान्ति पानेके लिये यह आवश्यक है कि वस्तुओंसे आसक्ति छूट जाय। आसक्तिके समाप्त होते ही कामनाओंका अन्त होकर जीवन निष्काम या कामना-शून्य होने लगेगा।

जीवनमें कामनासे रहित होकर ही प्राणी सच्चा सुख और आनन्द प्राप्त कर सकता है।

कामनाओंसे छुटकारा तभी मिलेगा जब सांसारिक वस्तुओंसे आसक्ति समाप्त होगी। यह दो ही स्थितियोंमें सम्भव है या तो मृत्युसे या त्यागसे। मृत्यु या त्याग स्वरूपसे एक होते हुए भी परिणामसे भिन्न हैं। मृत्युका परिणाम जन्म है और त्यागका परिणाम परमपदकी प्राप्ति। मृत्यु अनिच्छासे आती है जब कि त्याग इच्छापूर्वक होता है। मृत्युसे वस्तु नष्ट हो जाती है किंतु सम्बन्ध बना रहता है और त्यागसे वस्तु बनी रहती है किंतु उससे सम्बन्ध नष्ट हो जाता है। आसक्तिकी समाप्ति यदि मृत्युसे हुई तो उसका कोई लाभ नहीं। इसलिये इस स्थितिमें आनेके लिये त्यागका ही सहारा लेना होगा। कामनाशून्य स्थितिके लिये जिंदा ही मरना होगा। किंतु वह मृत्यु मृत्यु नहीं, अनन्त-जीवन होगी। चूँकि जीवनमें प्रेम और शान्तिकी आवश्यकता है, इसलिये त्याग आवश्यक है; क्योंकि बिना त्यागके प्रेम हो ही नहीं सकता। हृदयमें एक ही रह सकता है—या तो प्रेम या सांसारिक कामनाएँ। सांसारिक कामनाओंसे अशुद्ध हुए अन्तःकरणमें प्रेमकी अभिव्यक्ति हो ही नहीं सकती। जीवनमें सांसारिक कामनाओंकी निवृत्ति त्यागसे ही होगी। जीवनमें त्यागके आते ही वस्तुओंसे आसक्ति समाप्त होकर जीवन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कामनाशून्य हो जायगा। यह संसार रहेगा; सारी वस्तुएँ यथास्थिति वर्तमान रहेंगी, हम उनका उपभोग भी करेंगे किंतु वे हमारे दुःख और अशान्तिका कारण न बनेंगी; क्योंकि त्यागका आश्रय लेकर उनसे सम्बन्ध ही नष्ट किया जा चुका है। इसलिये वे रहें या न रहें, उनका जीवनपर कोई भी प्रभाव नहीं पड़ सकता। कामनाओंके आधारपर सम्बन्ध बनते हैं, सम्बन्धके कारण आसक्ति होती है और आसक्ति ही मूल रूपसे दुःखका कारण बनती है।

संसार और उसके विषय हमारा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते, यदि हमने मूलतः उनसे अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लिया है। किंतु यह सम्बन्ध तभी टूटेगा जब आसक्तियाँ समाप्त होंगी। प्राप्तमें ममता और अप्राप्तका चिन्तन छूटनेपर ही आसक्तियोंसे छुटकारा मिलेगा। आसक्तियोंके समाप्त होते ही जीवन सर्वथा कामनारहित होकर राग-द्वेष और सुख-दुःखकी मान्यताओंसे परे हो जाता है। कामनाशून्य होकर संसारमें रहते हुए, समस्त कर्मोंको करते हुए भी प्राणी पूर्ण स्वाधीन और अपनेमें मस्त रहेगा। उसके जीवनमें रसकी धारा बहेगी और सारे अभावोंका अन्त हो जायगा। जिसने अपनी कामनाओंपर विजय प्राप्त कर ली; उसके जीवनसे आसक्तियोंका अभाव होकर मोहका नाश हो जायगा। कामनाओंसे निवृत्ति मिलते ही बुद्धिसे विषमता दूर होकर समताकी स्थिति आ जायगी और देहभावका मिथ्या अहंकार गल जायगा। कामनाशून्य होनेपर प्राणीका सम्बन्ध अपने चेतन तत्त्वसे हो जायगा और उसे परम सुख तथा आनन्दकी प्राप्ति हो जायगी।

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति॥

(गीता २। ७१)

भगवान् श्रीकृष्णका स्मरण

(लेखक—श्रीशिवनाथजी दुबे)

अंसालम्बितवामकुण्डलधरं मन्दोन्नतभ्रूलतं
किञ्चित्कुञ्चितकोमलाधरपुटं साचिप्रसारीक्षणम्।
आलोलाङ्गुलिपल्लवैर्मुरलिकामापूरयन्तं मुदा
मूले कल्पतरोस्त्रिभङ्गललितं ध्यायेज्जगन्मोहनम्॥

जो कंधेतक लटकते हुए मनोहर कुण्डल धारण किये हुए हैं, जिनकी भ्रूलता धनुषकी भाँति खिंची हुई है, जिनके अधरपल्लव अति कोमल, सुन्दर और किञ्चित् कुञ्चित हैं, जिनके नेत्र बाँके और विशाल हैं और जो कल्पतरु (या कदम्ब) के नीचे मनहरण त्रिभंगरूपसे खड़े आनन्दके साथ चञ्चल कोमल अँगुलियोंको वंशीके छिद्रोंपर फिराते हुए उसे बजा रहे हैं, ऐसे जगन्मोहन मनमोहन श्याम-सुन्दरका ध्यान करना चाहिये।

× × ×

'हे कमल-सरीखे नेत्रवाली सुन्दरी! तुम कौन हो?' प्रेमरसका दान करनेवाले नन्द-नन्दन श्रीकृष्णने मथुराके राजपथपर एक युवती स्त्रीको देखा। उसका मुख सुन्दर था, किंतु वह शरीरसे कुबड़ी थी। उसके हाथमें अनुलेपनपात्र था। उसे देखकर मुस्कराते हुए उन्होंने पूछा—'यह चन्दन किसके लिये ले जा रही हो? कल्याणी! हमें सब बात सच-सच बतला दो।'

'परम सुन्दर!' भगवान्के भुवन-मोहन सौन्दर्य, उनकी सुकुमारता, रसिकता, मन्दहास्य, प्रेमालाप और चारु चितवनसे कुब्जा चकित और स्तम्भित हो गयी। उसका मन गोपिकारमण श्रीकृष्णपर अर्पित हो गया। उनके त्रैलोक्य-पावन, मुनि-जन-मन-भावन मुखारविन्दकी ओर देखती हुई उसने अत्यन्त सरलतासे मधुर वाणीमें उत्तर दिया—'मैं कंसकी प्रिय दासी हूँ। मैं अनेकवक्रा (त्रिवक्रा, कुब्जा) नामसे विख्यात हूँ। राजा कंसने मुझे अनुलेपन-कार्यमें नियुक्त किया है। राजा कंसको मेरे अतिरिक्त और किसीका पीसा हुआ उबटन पसंद नहीं है, अतः मैं उनकी अत्यन्त कृपापात्री हूँ।'

'तुम्हारी वाणी बड़ी मधुर है।' गोपिकानन्दन श्रीकृष्णने उसकी प्रशंसा करते हुए कहा। 'यह सुन्दर, सुगन्धमय अनुलेपन तो राजाके ही योग्य है, हमारे शरीरके भी योग्य कोई अनुलेपन हो तो दो। इस दानसे शीघ्र ही तुम्हारा परम कल्याण होगा।'

'अवश्य लीजिये' कुब्जाने कृतार्थताका अनुभव करते हुए कहा। 'इस उत्तम अनुलेपनके योग्यतम पात्र तो आप ही हैं, ग्रहण कीजिये।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'इसे आप लें भैया !' मुस्कराते हुए भगवान्ने लाल-रंगका अनुलेपन अपने बड़े भाई श्रीबलरामजीके हाथों थमा दिया।

श्रीबलरामजीने उत्तम लाल रंगका अनुलेपन अपने श्रीअङ्गोंपर तथा यशोदा-नन्दन श्रीकृष्णने पीले रंगका सुगन्धित अनुलेपन अपने श्रीअङ्गोंपर लगाया। उस समय उन दोनों भाइयोंका अनुपम सौन्दर्य देखते ही बनता था। महाभागा कुब्जाने तो ऐसा रूप, ऐसा लावण्य, ऐसी मुस्कान जीवनमें कभी देखी ही नहीं थी। देखती भी कैसे ? पूर्वके कितने पुण्योंके एक साथ प्रकट हो जानेपर विश्वविमोहनने आज पहली बार, जन्म-जन्मान्तरोंमें घूमते, भटकते आज प्रथम बार ही तो उसके सम्मुख उपस्थित होनेकी अनुकम्पा की है। उसके तन, उसके मन, उसके प्राण यहाँतक कि उसके रोम-रोम अर्पित हो गये थे उन नटनागरपर। वह बोल नहीं पाती थी। उसके मन, प्राण जैसे उड़कर श्रीकृष्णके मन-प्राणमें समा गये थे।

अनुकम्पा ! श्रीकृष्णकी अनुकम्पा !! वे अनुकम्पा करना चाहते हैं तो फिर पूरी तरह करते हैं, अधूरी नहीं करते। वे सब प्रकार सर्वदा भूत, भविष्य और वर्तमान त्रिकालमें पूर्णतम जो हैं। उनकी प्रत्येक वस्तुएँ पूर्णतम हैं।

कुब्जा कृतार्थ हो चुकी थी, पर भगवान् जो प्रसन्न हुए। उल्लापन-विधि (सीधे करनेकी कला) के जाननेवाले भगवान् कृष्णचन्द्रने उसकी ठोढ़ीमें अपनी आगेकी दो अँगुलियाँ लगा उसे उचकाकर हिलाया तथा उसके पैर अपने पैरोंसे दबा दिये। **इस प्रकार श्रीकेशवने उसे ऋजुकाय (सीधे शरीरवाली) बना दिया। तब सीधी हो जानेपर वह सम्पूर्ण स्त्रियोंमें सुन्दरी हो गयी।**

ततस्तां चिबुके शौरिरुल्लापनविधानवित्।
उत्पाट्य तोलयामास द्व्यङ्गुलेनाग्रपाणिना॥
चकर्ष पद्भ्यां च तदा ऋजुत्वं केशवोऽनयत्।
ततस्सा ऋजुतां प्राप्ता योषितामभवद्वरा॥
(विष्णुपुराण ५। २०। ९-१०)

कमलनयन श्रीकृष्णके (उपर्युक्त विधिसे) उचकाते ही अनेकवक्राके सारे अङ्ग सीधे और समान हो गये। प्रेम और मुक्तिके दाता भगवान्के स्पर्शसे वह तत्काल विशाल नितम्ब तथा पीन पयोधरोंसे युक्त एक उत्तम युवती बन गयी।

सा तदर्जुसमानाङ्गी बृहच्छ्रोणिपयोधरा।
मुकुन्दस्पर्शनात् सद्यो बभूव प्रमदोत्तमा॥
(श्रीमद्भागवत १०। ४२। ८)

'पुरुषोत्तम ! आप मेरे घर पधारिये।' रूप, गुण और उदारतासे सम्पन्न कुब्जाने भगवान्के दुकूलका कोना पकड़ लिया। 'आपने मेरा हृदय व्याकुल कर दिया। आप दया कीजिये। मुझ अभागिनी दासीपर अनुग्रह कीजिये। मेरा जीवन सफल कर दीजिये।'

'हाँ, तुम्हारे घर भी आऊँगा।' बड़े भाई श्रीबलदेवजीके सामने ही कुब्जाके ऐसा कहनेपर अपने साथी गोपबालकोंकी ओर मुख घुमाकर मुस्कराते हुए भगवान्ने उत्तर देकर उसे विदा किया और बलभद्रजीके मुखकी ओर देखते हुए जोर-जोरसे हँसने लगे।

आयास्ये भवतीगेहमिति तां प्रहसन् हरिः।
विससर्ज जहासोच्चै रामस्यालोक्य चाननम्॥
(विष्णुपुराण ५। २०। १३)

एक ओर तो कंसकी राजधानी मथुराके बीच, राजपथपर इस प्रकारका रसमय व्यवहार, दूसरी ओर कंसके अखाड़ेमें प्रवेश करते समय द्वारपर अमित शक्तिसम्पन्न महामहिम गजराज कुवलयापीडको वे विनोदपूर्ण क्रीड़ाके साथ मार डालते हैं और अपने कंधेपर हाथमें कुवलयापीडका उखाड़ा हुआ दाँत रखकर सर्वथा निर्भीक, निश्चिन्त मत्त गयन्दकी भाँति रंगशालाकी ओर बढ़ते हैं। उस समयकी उनकी अपूर्व शोभाका वर्णन करते हुए **श्रीशुकदेवजी कहते हैं—**

मृतकं द्विपमुत्सृज्य दन्तपाणिः समाविशत्।
अंसन्यस्तविषाणोऽसृङ्मदविन्दुभिरङ्कितः।
विरूढस्वेदकणिकावदनाम्बुरुहो बभौ॥
(श्रीमद्भागवत १०। ४३। १५)

'परीक्षित् ! मरे हुए हाथीको छोड़कर भगवान् श्रीकृष्णने हाथमें उसके दाँत लिये-लिये ही रंगभूमिमें प्रवेश किया। उस समय उनकी शोभा देखने ही योग्य थी। उनके कंधेपर हाथीका दाँत रक्खा हुआ था, शरीर रक्त और मदकी बूँदोंसे सुशोभित था और मुखकमलपर पसीनेकी बूँदें झलक रही थीं।'

भगवान् श्रीकृष्णके रंगशालामें पदार्पण करनेपर बड़ी अद्भुत बात हुई। सबने उनका दर्शन कर अपने-अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावानुरूप क्रमशः रौद्र, अद्भुत, शृंगार, हास्य, वीर, वात्सल्य, भयानक, वीभत्स, शान्त और प्रेमभक्ति-रसका अनुभव किया।

मल्लानामशनिर्नृणां नरवरः
स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान्
गोपानां स्वजनोऽसतां क्षितिभुजां
शास्ता स्वपित्रोः शिशुः।
मृत्युर्भोजपतेर्विराडविदुषां
तत्त्वं परं योगिनां
वृष्णीनां परदेवतेति विदितो
रङ्गं गतः साग्रजः॥

(श्रीमद्भागवत १०।४३।१७)

'जिस समय भगवान् श्रीकृष्ण बलरामजीके साथ रङ्गभूमिमें पधारे, उस समय वे पहलवानोंको वज्र-कठोर शरीर, साधारण मनुष्योंको नर-रत्न, स्त्रियोंको मूर्तिमान् कामदेव, गोपोंको स्वजन, दुष्ट राजाओंको दण्ड देनेवाले शासक, माता-पिताके समान बड़े-बूढ़ोंको शिशु, कंसको मृत्यु, अज्ञानियोंको विराट्, योगियोंको परम तत्त्व और भक्तशिरोमणि वृष्णिवंशियोंको अपने इष्टदेव जान पड़े।'

जाकी रही भावना जैसी। हरि मूरति देखी तिन तैसी॥

(मानस)

श्रीकृष्णको रंगशालामें इस अलौकिक वेशमें देखते ही स्त्री-पुरुष आत्मविभोर हो गये। उनके मनमें निश्चय हो गया कि ये साक्षात् भगवान् श्रीनारायणके अंश हैं।

एतौ भगवतः साक्षाद्धरेर्नारायणस्य हि।
अवतीर्णाविहांशेन वसुदेवस्य वेश्मनि॥

(श्रीमद्भागवत १०।४३।२३)

'ये दोनों साक्षात् भगवान् नारायणके अंश हैं। इस पृथ्वीपर वसुदेवजीके घरमें अवतीर्ण हुए हैं।'

अयं हि सर्वलोकस्य विष्णोरखिलजन्मनः।
अवतीर्णो महीमंशो नूनं भारहरो भुवः॥

(विष्णुपुराण ५।२०।५०)

'ये सर्वलोक और सर्वकारण भगवान् विष्णुके ही अंश हैं, इन्होंने पृथिवीका भार उतारनेके लिये ही भूमिपर अवतार लिया है।'

इन परम पावन, परम सुन्दर और विश्वमनमोहनको अलौकिक पुरुष जानकर वहाँ एकत्र स्त्री-पुरुष उनकी ओर संकेत करके उनके अद्भुत गुणोंकी चर्चा करने लगे। वे परस्पर कहने लगे—'जिसने बालघातिनी घोर राक्षसी पूतनाको मारा था, शकटको उलट दिया था और यमलार्जुनको उखाड़ डाला था, वह यही है। जिस बालकने कालियनागके फनोंपर नृत्यकर उसका मान-मर्दन किया था और सात रात्रितक महापर्वतको अपने हाथपर धारण कर समस्त गौओं, गोवत्सों, ग्वालों एवं समस्त व्रजवासियोंके प्राणोंकी रक्षा कर इन्द्रका दर्प चूर्ण कर दिया था, वह यही है। जिस महात्माने अरिष्टासुर, धेनुकासुर और केशी आदि दुष्टोंको लीलासे ही मार डाला था, वह अच्युत यही है।'

स्त्रियाँ परस्पर उन लीलाविहारीके गुणोंका गान करती हुई कहती थीं—'सखी! गोपियाँ इनकी मंद-मंद मुसकान, मधुर चितवन और सर्वदा एकरस, प्रसन्न रहनेवाले मुखारविन्दके दर्शनसे आनन्दित रहती थीं और अनायास ही सब प्रकारके तापोंसे मुक्त हो जाती थीं।' गोपियोंके परम सौभाग्यकी चर्चा करते हुए वे कहने लगीं—

गोप्यस्तपः किमचरन् यदमुष्य रूपं
लावण्यसारमसमोर्ध्वमनन्यसिद्धम्।
दृग्भिः पिबन्त्यनुसवाभिनवं दुराप-
मेकान्तधाम यशसः श्रिय ऐश्वरस्य॥
या दोहनेऽवहनने मथनोपलेप-
प्रेङ्खेङ्खनार्भरुदितोक्षणमार्जनादौ।
गायन्ति चैनमनुरक्तधियोऽश्रुकण्ठ्यो
धन्या व्रजस्त्रिय उरुक्रमचित्तयानाः॥
प्रातर्व्रजाद् व्रजत आविशतश्च सायं
गोभिः समं क्वणयतोऽस्य निशम्य वेणुम्।
निर्गम्य तूर्णमबलाः पथि भूरिपुण्याः
पश्यन्ति सस्मितमुखं सदयावलोकम्॥

(श्रीमद्भागवत १०।४४।१४-१६)

'सखी! पता नहीं, गोपियोंने कौन-सी तपस्या की थी, जो नेत्रोंके दोनोंसे नित्य-निरन्तर इनकी रूप-माधुरीका पान करती रहती हैं। इनका रूप क्या है, लावण्यका सार। संसारमें या उससे परे किसीका भी रूप इनके रूपके समान नहीं है, फिर बढ़कर होनेकी तो बात ही क्या है! सो भी किसीके सँवारने-सजानेसे नहीं, गहने-कपड़ेसे भी नहीं, बल्कि स्वयं सिद्ध है। इस रूपको देखते-देखते तृप्ति भी नहीं होती; क्योंकि यह प्रतिक्षण नया होता जाता है, नित्य नूतन है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समग्र यश, सौन्दर्य और ऐश्वर्य इसीके आश्रित हैं । सखियो ! परंतु इसका दर्शन तो औरोंके लिये बड़ा ही दुर्लभ है । वह गोपियोंके ही भाग्यमें बदा है । सखी ! व्रजकी गोपियाँ धन्य हैं । निरन्तर श्रीकृष्णमें ही चित्त लगा रहनेके कारण प्रेमभरे हृदयसे, आँसुओंके कारण गद्गद कण्ठसे वे इन्हींकी लीलाओंका गान करती रहती हैं । वे दूध दुहते, दही मथते, धान कूटते, घर लीपते, बालकोंको झूला झुलाते, रोते हुए बालकोंको चुप कराते, उन्हें नहलाते-धुलाते, घरोंको झाड़ते-बुहारते, कहाँतक कहें; सारे काम-काज करते समय श्रीकृष्णके गुणोंके गानमें ही मस्त रहती हैं । ये श्रीकृष्ण जब प्रातःकाल गौओंको चरानेके लिये व्रजसे वनमें जाते हैं और सायंकाल उन्हें लेकर व्रजमें लौटते हैं, तब बड़े मधुर स्वरसे बाँसुरी बजाते हैं । उसकी टेर सुनकर गोपियाँ घरका सारा काम-काज छोड़कर झटपट रास्तेमें दौड़ आती हैं और श्रीकृष्णका मन्द-मन्द मुस्कान एवं दयाभरी चितवनसे युक्त मुखकमल निहार-निहारकर निहाल होती हैं । सचमुच गोपियाँ ही परम पुण्यवती हैं ।'

'इतना अस्वाभाविक और इतना तीव्र आकर्षण भगवान्के अतिरिक्त और किसके लिये हो सकता है ? उन दोनों भाइयोंने चाणूर, मुष्टिक, कूट, शल और तोशल-जैसे महा-बलशाली पहलवानोंको खेल-खेलमें मार डाला और जब कंस क्रोधोन्मत्त होकर प्रलाप करने लगा, उसी समय श्रीकृष्ण अत्यन्त साहसके साथ उछलकर उसके मञ्चपर पहुँच गये और उसके केशोंको पकड़कर खींच लाये । तत्काल कंस भी उनके हाथों मार डाला गया ।'

ये उपर्युक्त दो घटनाएँ, बिना नाम बताये यदि श्रीकृष्ण-कथासे सर्वथा अपरिचित किसी सज्जनको सुनायी जायँ, तो शायद उन्हें दोनों घटनाएँ दो व्यक्तियोंसे सम्बन्धित प्रतीत हों, पर यही तो सर्वशक्तिसम्पन्न, निखिल सृष्टि-नियामक, सर्वलोकमहेश्वरके पूर्णतम अवतरित श्रीविग्रहकी विशेषता है । यहाँ तो उनकी केवल दो लीलाओंकी चर्चा की गयी है, उनके इस धराधामपर अवतीर्ण होनेसे लेकर परम धाम-गमनतक एक-से-एक छोटी-सी-छोटी और बड़ी-से-बड़ी घटनाएँ अलौकिक, चकित करनेवाली, भक्तजनोंके कल्याण एवं सुख देनेवाली एवं सम्पूर्ण धरित्रीका हित एवं मङ्गल करनेवाली हैं ।

भगवान् श्रीकृष्ण पूर्णतम परमात्मा हैं । वे पूर्ण हैं, अनन्त हैं । उस अनन्तकी प्रत्येक वस्तु भी अनन्त है । श्रीकृष्णकी सत्ता अनन्त है, श्रीकृष्णका ज्ञान अनन्त है और श्रीकृष्णका आनन्द अनन्त है । वे सच्चिदानन्दघन हैं । उनके संकल्पमात्रसे ही निखिल जगत्की सृष्टि और संहारका कार्य सम्पन्न हो जाता है । वे प्रेम, आनन्द एवं रस-स्वरूप भगवान् दयासिन्धु हैं । दयामय हैं; उनका प्रत्येक कार्य करुणासे प्रेरित होता है । भक्तोंपर, समस्त जीवोंपर दया करके ही वे अव्यय, अव्यक्त, निर्विकार परम पुरुष होते हुए भी पृथ्वीपर दया कर मनुष्यके रूपमें अवतरित होते हैं ।* अपने अवतरित होनेका हेतु भगवान्ने स्वयं श्रीमुखसे बता दिया है—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥

(गीता ४ । ७-८)

'हे भारत ! जब धर्मकी हानि और अधर्मकी वृद्धि होती है, तब-तब ही मैं अपने रूपको रचता हूँ, अर्थात् प्रकट करता हूँ; क्योंकि साधु पुरुषोंका उद्धार करनेके लिये और दूषित कर्म करनेवालोंका नाश करनेके लिये तथा धर्म-स्थापन करनेके लिये, युग-युगमें प्रकट होता हूँ ।'

जब जब होइ धरम कै हानी । बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी ॥
करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी । सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी ॥
तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा । हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा ॥

असुर मारि थापहिं सुरन्ह राखहिं निज श्रुति सेतु ।
जग बिस्तारहिं बिसद जस राम जन्म कर हेतु ॥

(मानस)

साधु-परित्राण, दुष्कृति-विनाश और धर्म-संस्थापन—ये तीन भगवान्के अवतारके मुख्य हेतु हैं । कुछ लोगोंके मनमें स्वाभाविक ही शंका उदय होती है कि अनन्त, अचिन्त्य, सर्वेश्वर, सर्वशक्तिसम्पन्न प्रभु तो संकल्पमात्रसे ही ये सारे कार्य कर सकते थे, उन्हें पृथ्वीपर अवतार लेनेका तो कोई प्रयोजन समझमें नहीं आता । इस कार्यके लिये तो वे किसी अन्य मुक्त कारक पुरुषको भी भेज सकते हैं ।

---

* एक अनीह अरूप अनामा । अज सच्चिदानंद पर धामा ॥
ब्यापक बिस्व रूप भगवाना । तेहि धरि देह चरित कृत नाना ॥
सो केवल भगतन हित लागी । परम कृपाल प्रनत अनुरागी ॥
—मानस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मायाच्छन्न, सर्वथा अल्पज्ञ हम मनुष्य भगवान्के कार्यके हेतुका पता ही कैसे लगा सकते हैं। 'सो जानै जेहि देहु जनाई' वे सर्वसमर्थ करुणा-वरुणालय भगवान् अपनी कृपासे जितना जिसे जो कुछ जना दें, वह उतना भले जान जाय। फिर कुछ संत उपर्युक्त श्लोककी व्याख्यामें कहते हैं कि 'साधु' से गोपाङ्गना-जैसे समर्पित-चित्त भक्त समझना चाहिये। जिन्हें श्रीकृष्ण प्राणोंसे प्रिय हैं। श्रीकृष्णके बिना जिनका जीवन सूना है, शरीर निष्प्राण—शवतुल्य है, उन भक्तोंका परित्राण बिना श्रीविग्रहके प्रत्यक्ष दर्शन और मिलनके कैसे सम्भव है!

'दुष्कृति'—भगवान्के अन्तरंग 'जय-विजय'-जैसे समझने चाहिये। इनकी दुष्कृतियाँ भगवान्की लीला-विशेषके लिये होती हैं। धर्म-संस्थापन—'भक्ति-प्रेम' रूप धर्मकी स्थापना समझी जा सकती है। यह भुवनमोहन, परम कमनीय श्रीविग्रहके बिना नहीं हो सकता। धर्म-संस्थापनसे पवित्र परम मङ्गलकारी सनातनधर्म भी समझमें आता है। श्रीशुकदेवजी तो कहते हैं—

नृणां निःश्रेयसार्थाय व्यक्तिर्भगवतो नृप।

'परीक्षित्! भगवान्की अभिव्यक्ति मनुष्योंके कल्याणके लिये है!' श्रीकुन्तीदेवी श्रीभगवान्के अवतरित होनेका हेतु बतलाती हैं—

तथा परमहंसानां मुनीनाममलात्मनाम्।
भक्तियोगविधानार्थं कथं पश्येम हि स्त्रियः॥
(श्रीमद्भागवत १। ८। २०)

जिनके अन्तःकरण सर्वथा मलरहित पवित्र हैं, उन परमहंस मुनियोंकी भक्तियोगमें प्रवृत्ति करानेके लिये अवतार धारण करनेवाले आपको हम अबलाएँ कैसे देख (जान) सकती हैं?

कुन्तीदेवी और अधिक स्पष्ट कर देती हैं। वे कहती हैं—

भवेऽस्मिन् क्लिश्यमानानामविद्याकामकर्मभिः।
श्रवणस्मरणार्हाणि करिष्यन्निति केचन॥
शृण्वन्ति गायन्ति गृणन्त्यभीक्ष्णशः
स्मरन्ति नन्दन्ति तवेहितं जनाः।
त एव पश्यन्त्यचिरेण तावकं
भवप्रवाहोपरमं पदाम्बुजम्॥
(श्रीमद्भागवत १। ८। ३५-३६)

'कोई महापुरुष यों कहते हैं कि जो लोग इस संसारमें अज्ञान, कामना और कर्मोंके बन्धनमें जकड़े हुए पीड़ित हो रहे हैं, उन लोगोंके लिये श्रवण और स्मरण करनेयोग्य लीला करनेके विचारसे ही आपने अवतार ग्रहण किया है। भक्तजन बार-बार आपके चरित्रका श्रवण, गान, कीर्त्तन एवं स्मरण करके आनन्दित होते रहते हैं, वे ही अविलम्ब आपके उस चरणकमलका दर्शन कर पाते हैं, जो जन्म-मृत्युके प्रवाहको रोक देता है।

ये सभी प्रयोजन उचित और युक्तियुक्त हैं। यह तो निश्चित ही है कि इच्छाशून्य, सर्वलोकमहेश्वर, करुणामय प्रभु जीवोंपर अमित कृपा करके ही अवतरित होकर सम्पूर्ण धरणी एवं जल, थल तथा आकाशमें निवास करनेवाले जीवों, पशु-पक्षियों, कीट-पतंगों, इतना ही नहीं तरु, लता-वल्लरियों—निखिल सृष्टिका परम मङ्गल करते हैं। अक्षय सुख-शान्तिका दान करते हैं, वे सर्वव्यापक सर्वसमर्थ प्रभु!

किंतु आश्चर्य है कि कुछ लोगोंके मनमें श्रीकृष्णकी भगवत्तापर ही संदेह हो गया है। उन्हें क्या कहा जाय! हिंदू ही नहीं, अनेक मुस्लिम भक्तोंकी जीवनियोंसे स्पष्ट होता है कि वे श्रीकृष्णके दर्शनसे कृतार्थ हो चुके थे। रसखानकी भावना और आकाङ्क्षा तो प्रसिद्ध ही है—

मानुस होहुँ वही रसखानि बसौं मिलि गोकुल गाँवके ग्वारन।
जो पसु होहुँ कहा बस मेरो चरौं नित नन्दकी धेनु मँझारन॥
पाहन होहुँ वही गिरिको जो कियो ब्रज-छत्र पुरन्दर धारन।
जो खग होहुँ बसेरो करौं वहि कालिन्दी-कूल कदम्बकी डारन॥

'ताज' भी पश्चिमी भारतकी मुस्लिम महिला थीं। नन्दकुमारसे एक बार नाता जुड़ा, तो सारा धर्म-कर्म और सारी उपासना छूट गयी। रह गये, तो बस, केवल वे पीताम्बरधारी मयूरमुकुटी।

नन्दजूका प्यारा, जिन कंसको पछारा,
वह बृन्दावनवारा कृष्ण साहेब हमारा है।

उन्होंने सारी लोक-लाज त्यागकर सुस्पष्ट घोषणा कर दी—

सुनो दिलजानी, मेरे दिलकी कहानी,
तुम दस्त ही बिकानी, बदनामी भी सहूँगी मैं।
देवपूजा ठानी, औ निवाज हूँ भुलानी,
तजे कलमा-कुरान सारे, गुनन, गहूँगी मैं॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साँवला, सलोना, सिरताज सर कुल्लेदार,
तेरे नेह-दावमें निदाघ हो दहूँगी मैं।
नन्दके कुमार, कुरबान ताँड़ी सूरतपर,
ताँड़े नाल प्यारे हिन्दुवानी है रहूँगी मैं॥

'वाहिद'की बस एक ही कामना है कि नन्दनन्दन श्यामसुन्दरमें मेरा मन लगा रहे—

चंचलसे तनपर, साँवरे बदनपर,
नन्दके नँदनपर लगन लगी रहै।

और 'नजीर' फरमाते हैं—

'रख ध्यान सुनो, डंडौत करो, जै बोलो कृष्ण कन्हैया की।'

'लालामूसा' तो कहते हैं कि मेरे अपराधोंको क्षमा कर दो, अपने चरणोंमें आश्रय दे दो। हे प्यारे श्यामसुन्दर! मैं बुरा या भला जैसा हूँ, बस तुम्हारा हूँ—एकमात्र तुम्हारा।

'गुनाह बख्शो रसाई दो, बसा लो अपने कदमोंमें,
बुरा है या भला है, जैसा है प्यारा तुम्हारा हूँ।'

श्रीकृष्णके हिंदूप्रेमियों और भक्तोंकी संख्याकी गणना ही नहीं है। मीराँबाई कहती हैं—

'मीरा कौ तौ गिरिधर मिक्रिया झक मारै संसारी।'—
'मैं तो गिरिधर हाथ बिकानी।'

श्रीकृष्णपर जीवन अर्पित करनेवाले नर-नारियोंकी संख्याकी गणना सम्भव नहीं; क्योंकि वे प्रत्येक रीतिसे जीवको अपनी ओर खींच लेते हैं। 'कर्षयतीति कृष्णः' स्वयं ही खींच लेते हैं।

एक बछड़ेके पीछे दौड़े चले जा रहे हैं। उधरसे एक गोपी जलकी मटकी माथेपर लिये सिर झुकाये चली जा रही है। उसका ध्यान इनकी ओर नहीं गया। बस, बछड़ेको पुकार उठे। गोपी देखने लगी और ये मुसकराते बछड़ेके पीछे भागे। ये भागे, तो भागते गये, पर बिचारी गोपी जहाँ-की-तहाँ टकटकी लगाये देखती रह गयी। देखती रह गयी।

नाचकर, कूदकर, खाँसकर, द्वार पीटकर, कपड़े खींचकर, पचासों उपाय करेंगे, पर व्रज-गोपिकाओंको बरबस अपनी ओर देखनेके लिये विवश कर देंगे। गोपिकाएँ ही क्यों, व्रजके समस्त ग्वाल-बाल, माता यशोदा, बाबा नन्द, गायें, गोवत्स, वृषभ, व्रजके समस्त स्त्री-पुरुषोंका मन अपने सुकुमार भुवनमोहन श्यामसुन्दर तन, कमल-सरीखे लाल-लाल चरणों एवं विश्वका मन मुग्ध करनेवाले मुखारविन्दकी ओर आकृष्ट किये रहते हैं। पशु-पक्षी सभी श्रीकृष्णको देखते रहना चाहते, अहर्निश उनकी सौन्दर्य-सुधाका पान करते रहना चाहते हैं, निरन्तर उन्हें निहारते रहना चाहते हैं और जब वे नहीं दीखते, तब वे व्याकुल होते हैं, छटपटाते हैं, उनका मन अशान्त हो जाता है। उनको निरन्तर देखते रहनेपर भी तृप्ति ही नहीं होती, जी अघाता ही नहीं। उनकी रूपमाधुरीका, उनकी अलौकिक छटाका, उनके मुखारविन्दके दिव्य सौन्दर्य-सुधाका जितना ही पान होता है, उतनी ही तृष्णा बढ़ती जाती है, उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती है।

जनम अवधि हम रूप निहारेनु,
नयन न तिरपित भेल।—विद्यापति

व्रजवासियोंमें गोपिकाओंकी दशाका तो कहना ही नहीं। उनके तन, मन, प्राण—सभी तो श्रीकृष्ण हैं। वे श्रीकृष्णमयी हैं। वे श्रीकृष्णकी हैं और श्रीकृष्ण उनके हैं। उनके पवित्र प्रेमकी छाया भी यदि आजके मनुष्योंमें किसी पुण्यवान्‌को प्राप्त हो जाय तो उनका जीवन धन्य हो जाय। श्यामसुन्दरके प्रति उनकी अलौकिक प्रीति देखकर उद्धवजीका ज्ञानाभिमान जाता रहा। उन्होंने कहा—

आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां
वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्।
या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा
भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम्॥
(श्रीमद्भागवत १०।४७।६१)

मेरे लिये तो सबसे अच्छी बात यही होगी कि मैं इस वृन्दावन धाममें कोई झाड़ी, लता अथवा ओषधि—जड़ी-बूटी ही बन जाऊँ। अहा! यदि मैं ऐसा बन जाऊँगा तो मुझे इन व्रजाङ्गनाओंकी चरणधूलि निरन्तर सेवन करनेके लिये मिलती रहेगी। इनकी चरण-रजमें स्नान करके मैं धन्य हो जाऊँगा। धन्य हैं ये गोपियाँ। देखो तो सही, जिनको छोड़ना अत्यन्त कठिन है, उन स्वजन-सम्बन्धियों तथा लोक-वेदकी आर्य-मर्यादाका परित्याग करके इन्होंने भगवान्‌की पदवी, उनके साथ तन्मयता, उनका परम प्रेम प्राप्त कर लिया है—औरोंकी तो बात ही क्या—भगवद्वाणी, उनकी निःश्वासरूप समस्त श्रुतियाँ, उपनिषदें भी अबतक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवान्‌के परम प्रेममय स्वरूपको ढूँढ़ती ही रहती हैं, प्राप्त नहीं कर पातीं।

जिस क्षण जीवका भाग्योदय हुआ, बस, श्रीकृष्ण सदय हुए। पर सच तो यह है कि वे करुणावरुणालय हैं ही। दया ही दया है उनमें। पर जिसपर कृपाकी दृष्टि पड़ी, बस, वह श्रीकृष्णका हो गया। इस प्रकार व्रजपुरवासियोंको उन्होंने मुग्ध कर लिया था, उन्हें अपना बना लिया था। सब खिंचकर उनकी ओर चले गये थे। उनके भाग्यको देखकर देवता भी तरसते थे।

'कृषिर्भूवाचकः शब्दो णश्च निर्वृत्तिवाचकः'—

श्रीकृष्णके 'कृष्'का नित्यता अर्थ है और 'ण'का आनन्द (रस) अर्थ है। इस श्रुतिसे श्रीकृष्ण सदा रसरूप सिद्ध होते हैं। वे रसके अधिष्ठाता हैं, रसदेवता हैं। वे प्रेम-घन हैं, प्रेम-विग्रह हैं। अतः वे रसमय हैं, रसेश्वर हैं। प्रेममय हैं, उनमें प्रेम-ही-प्रेम है, वे प्रेम-देवता हैं।

श्रीकृष्ण भगवान् हैं, परात्पर ब्रह्म हैं। सर्वलोकमहेश्वर हैं। भगवान् विष्णु, आशुतोष शिव और देवीके अनेक अवतार समय-समयपर हुआ करते हैं। किसीमें उनका अंश कम होता है और किसीमें अधिक। भगवान्‌के अवतार एकदेशीय, एकक्षेत्रीय और कभी-कभी तो एक व्यक्तिके लिये भी होते हैं। कुछ अवतारोंमें जगत्‌का तात्कालिक कल्याण होता है। कुछ कालके लिये उसकी उपयोगिता रहती है। भगवान् बुद्धदेवने अहिंसाका प्रचार-प्रसार किया, किंतु अब उनकी उपयोगिता कहाँ दीख रही है? किंतु श्रीकृष्णकी जीवन-लीला, श्रीकृष्णके उपदेश सृष्टिके अन्ततक लोक-मङ्गलकारी रहेंगे। श्रीमद्भागवतने स्पष्ट घोषणा की है—

'एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।'

अर्थात् मत्स्य, कूर्म आदि दूसरे अवतार अंशावतार एवं कलावतार हैं, परंतु भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं साक्षात् भगवान् हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण तो सर्ववेदवेद्य, परात्पर परब्रह्म परमेश्वर हैं। ब्रह्माजीने देवताओंसे कहा था—

वसुदेवगृहे साक्षाद् भगवान् पुरुषः परः।
जनिष्यते तत्प्रियार्थं सम्भवन्तु सुरस्त्रियः॥
(श्रीमद्भागवत १०।१।२३)

'वसुदेवजीके घर स्वयं पुरुषोत्तम भगवान् प्रकट होंगे। उनकी और उनकी प्रियतमा (श्रीराधा) की सेवाके लिये देवाङ्गनाएँ जन्म ग्रहण करें।' उन्होंने आगे कहा—

वासुदेवकलानन्तः सहस्रवदनः स्वराट्।
अग्रतो भविता देवो हरेः प्रियचिकीर्षया॥
विष्णोर्माया भगवती यया सम्मोहितं जगत्।
आदिष्टा प्रभुणांशेन कार्यार्थे सम्भविष्यति॥
(श्रीमद्भागवत १०।१।२४-२५)

'स्वयंप्रकाश भगवान् शेष भी, जो भगवान्‌की कला होनेके कारण अनन्त हैं। (अनन्तका अंश भी अनन्त ही होता है) और जिनके सहस्र मुख हैं, भगवान्‌के प्रिय कार्य करनेके लिये उनके पहले ही उनके बड़े भाईके रूपमें अवतार ग्रहण करेंगे। भगवान्‌की वह ऐश्वर्यशालिनी योग-माया भी, जिसने सारे जगत्‌को मोहित कर रखा है, उनकी आज्ञासे उनकी लीलाके कार्य सम्पन्न करनेके लिये अंशरूपसे अवतार ग्रहण करेंगी।'

भाद्रपद अष्टमीकी अर्द्धरात्रिमें वसुदेव और देवकीके सम्मुख जब भगवान् प्रकट हुए, श्रीशुकदेवजी कहते हैं—

तम् अद्भुतं बालकमम्बुजेक्षणं
चतुर्भुजं शङ्खगदार्युदायुधम्।
श्रीवत्सलक्ष्मं गलशोभिकौस्तुभं
पीताम्बरं सान्द्रपयोदसौभगम्॥
महार्हवैदूर्यकिरीटकुण्डल-
त्विषा परिष्वक्तसहस्रकुन्तलम्।
उद्दामकाञ्च्यङ्गदकङ्कणादिभि-
र्विरोचमानं वसुदेव ऐक्षत॥
(श्रीमद्भागवत १०।३।९-१०)

'वसुदेवजीने देखा, उनके सामने एक अद्भुत बालक है। उसके नेत्र कमलके समान कोमल और विशाल हैं। चार सुन्दर हाथोंमें शङ्ख, गदा, चक्र और कमल लिये हुए है। वक्षःस्थलपर श्रीवत्सका चिह्न—अत्यन्त सुन्दर सुवर्णमयी रेखा है। गलेमें कौस्तुभ मणि झिलमिला रही है। वर्षा-कालीन मेघके समान परम सुन्दर श्यामल शरीरपर मनोहर पीताम्बर फहरा रहा है। बहुमूल्य वैदूर्य मणिके किरीट और कुण्डलकी कान्तिसे सुन्दर-सुन्दर घुँघराले बाल सूर्यकी किरणोंके समान चमक रहे हैं। कमरमें चमचमाती करधनीकी लड़ियाँ लटक रही हैं। बाहोंमें बाजूबंद और कलाइयोंमें कङ्कण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शोभायमान हो रहे हैं। इन सब आभूषणोंसे सुशोभित बालकके अङ्ग-अङ्गसे अनोखी छटा छिटक रही है।'

श्रीकृष्ण पूर्णतम परमेश्वर, सर्वलोकमहेश्वर हैं—इस सम्बन्धमें श्रीब्रह्माजीके वचन हैं—

वासुदेवोऽर्चनीयो वः सर्वलोकमहेश्वरः ॥
तथा मनुष्योऽयमिति कदाचित् सुरसत्तमाः ।
नावज्ञेयो महावीर्यः शङ्खचक्रगदाधरः ॥

(महा० भीष्म० ६६ । १३-१४)

'सर्वलोकमहेश्वर इन वासुदेवकी पूजा करनी चाहिये। हे श्रेष्ठ देवताओ ! साधारण मनुष्य समझकर उनकी कभी अवज्ञा न करना। कारण, वे शङ्ख, चक्र, गदाधारी महावीर्य (विष्णु) भगवान् हैं।'

श्रीभीष्मपितामहने अनेक अवसरोंपर सुस्पष्ट उन्हें साक्षात् परब्रह्म परमेश्वर कहा। अग्रपूजाके समय वे कहते हैं—

कृष्ण एव हि लोकानामुत्पत्तिरपि चाप्ययः ।
कृष्णस्य हि कृते विश्वमिदं भूतं चराचरम् ॥
एष प्रकृतिरव्यक्ता कर्त्ता चैव सनातनः ।
परश्च सर्वभूतेभ्यस्तस्मात् पूज्यतमोऽच्युतः ॥

(महा० सभा० ३८ । २३-२४)

'श्रीकृष्ण ही लोकोंके अविनाशी उत्पत्ति-स्थान हैं। इस चराचर विश्वकी उत्पत्ति इन्हींसे हुई है, यही अव्यक्त प्रकृति और सनातन कर्ता हैं, यही अच्युत सर्वभूतोंसे श्रेष्ठतम और पूज्यतम हैं।'

वयोवृद्ध श्रीभीष्म फिर श्रीकृष्णके लिये और कहते हैं—

एतत्परमकं ब्रह्म एतत्परमकं यशः ॥
एतदक्षरमव्यक्तं एतद् वै शाश्वतं महः ।

(महा० भीष्म० ६६ । १५-१६)

'श्रीकृष्ण परब्रह्म, परमयश, अव्यक्त, अक्षर और सनातन तेज हैं।' ब्रह्माण्डपुराणमें आता है—

यो वैकुण्ठे चतुर्बाहुर्भगवान् पुरुषोत्तमः ।
स एव श्वेतद्वीपेशो नरो नारायणश्च यः ॥
स एव वृन्दावनभूविहारी नन्दनन्दनः ।

'जो वैकुण्ठमें चतुर्भुज नारायण (महाविष्णु), जो श्वेत द्वीप-पति (विष्णु), जो नारायण ऋषि, वही वृन्दावनविहारी श्रीकृष्ण हैं।'

इस प्रकारके वचनोंसे हमारे धर्मग्रन्थ भरे पड़े हैं। भगवान्‌में ये गुण होते हैं—

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः ।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरिणा ॥

'सम्पूर्ण ऐश्वर्य, धर्म, यश, लक्ष्मी, ज्ञान अर वैराग्य—इन छःको भग कहते हैं। ये छः जिनमें पूर्णरूपसे हों वे भगवान् कहे जाते हैं।'

सृष्टिकी समग्र शक्ति, समग्र धर्म, समग्र यश, समग्र लक्ष्मी (सौन्दर्य, माधुर्य एवं सम्पत्ति), समग्र ज्ञान और समग्र वैराग्य श्रीकृष्णमें निवास करते हैं। उनके बाल्यकालसे परमधाम-गमनतककी लीलामें तनिक भी ध्यान एवं विचारपूर्वक दृष्टि डालनेसे उनकी प्रत्येक लीलामें उनकी भगवत्ता तथा अनिर्वचनीय महिमाके दर्शन होते हैं। एक-एक लीला अचिन्त्य-शक्तिसम्पन्न भगवान्‌से सम्बन्धित होनेके कारण सरस एवं मनोमुग्धकारिणी ही नहीं, त्रयतापनिवारिणी एवं संसारार्णवसे सहज पार लगानेवाली भी है। श्रीकृष्णका सारा जीवन ही दिव्य लीलामय है। पूतना-वध, शकटासुर-अघासुर-वध, गोचारण, अग्निपान, गोवर्धन-धारण, दधि-माखन-भोग, कालिय-दमन, चीरहरण, रासलीला, यशोदाको अपने मुखमें विराट् विश्वरूपका दर्शन कराना, वर्षभरतक गो-वत्स एवं ग्वाल-बाल बने रहना, कंस-वधके अनन्तर प्राप्त राज्यका त्याग, महाराज उग्रसेनका राज्याभिषेक करना, पाञ्चालीका चीर बढ़ाना, अर्जुनको युद्धके लिये प्रेरित करना एवं विराट् रूप दिखलाना, कौरवोंकी राजसभामें विलक्षण चमत्कार दिखलाना, अपनी प्रतिज्ञा छोड़कर रथका पहिया लेकर भीष्मको मार डालनेके लिये आतुर होकर दौड़ना, कर्णार्जुन-युद्धमें कर्णके रथका पहिया पृथ्वीमें धँसनेपर धर्मकी दुहाई देनेपर अर्जुनका शस्त्र चलाना बंद करनेपर फटकारना और तुरंत कर्णके प्राण-हरणकी आज्ञा देना, नारदजीको सभी रानियोंके महलोंमें अपने दर्शन कराना, सत्यभामाके आग्रहपर स्वर्गमें इन्द्रपर आक्रमण कर पारिजात-हरण करना, जाम्बवतीके पुत्रकी प्राप्तिके लिये आशुतोष शिवकी आराधना करना और महाभारतका युद्ध प्रारम्भ होनेके पूर्व दुर्योधन और अर्जुन दोनोंके सहायता माँगनेपर दोनोंको संतुष्ट कर देना तथा भक्तवाञ्छाकल्पतरु प्रभुका पाण्डवोंके राजसूय यज्ञमें ब्राह्मणोंका पाद-प्रक्षालन करना आदि सभी लीलाएँ सरस एवं अलौकिक हैं। श्रद्धा एवं विश्वासपूर्वक इन्हें गा-गाकर इन लीलाओंका चिन्तन-मननकर मनुष्य भगवान् श्रीकृष्णकी उपासनाका फल प्राप्तकर भवार्णव पार कर सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'जन्म कर्म च मे दिव्यम्'—भगवान् स्वयं कहते हैं कि मेरे जन्म और कर्म दिव्य हैं । वे रहस्यमय हैं । उनका रहस्य समझना बड़ा ही कठिन है, पर जो भगवान्के दिव्य जन्म-कर्मके रहस्यको समझ लेते हैं, वे उन अनन्त अचिन्त्य महिमामय प्रभुके शाश्वत-सुख-शान्ति-निकेतन पद-पद्मोंका अनन्तकालके लिये आश्रय पा जाते हैं । उन्हें श्रीचरणोंमें स्थान मिल जाता है ।

श्रीलोकमान्य तिलक लिखते हैं कि 'भगवत्प्राप्ति होनेके लिये (इस रहस्यको समझना) दूसरा कोई साधन अपेक्षित नहीं है, भगवत्की यही सच्ची उपासना है ।'

भगवान्ने भी यही बात कह दी है—

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः ।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ॥
(गीता ४ । ९)

'हे अर्जुन ! मेरा वह जन्म और कर्म दिव्य अर्थात् अलौकिक है, इस प्रकार जो पुरुष तत्त्वसे जानता है, वह शरीरको त्यागकर फिर जन्मको नहीं प्राप्त होता है, किंतु मुझे ही प्राप्त होता है ।'

जीवेम शरदः शतम्

(लेखक—श्रीसुरेशचन्द्रजी वेदालंकार, एम्० ए०, एल्० टी०)

'जीवेम शरदः शतम्' सौ वर्षतक प्रभुका दर्शन करते हुए जीते रहें, यह वाक्य संकेत कर रहा है कि मनुष्यकी आयुकी अवधि साधारण रूपसे सौ वर्षकी है । इस अवधिसे कम वर्षोंका जीवन अपने पापोंका परिणाम है । पवित्र आचरण तथा ब्रह्मचर्य, संयम और भोजनसे इस अवधिको बढ़ाया भी जा सकता है । **'भूयश्च शरदः शतात्'** यह मन्त्र-भाग इसीकी सूचना दे रहा है । इस प्रकार दीर्घ आयुकी चर्चा वेदमें अनेक स्थानोंपर की गयी है । अथर्व-वेदके (८ । २ । २) मन्त्रमें कहा है—

जीवतां ज्योतिरभ्येह्यर्वाङा त्वा हरामि शतशारदाय ।
अवमुञ्चन् मृत्युपाशानशस्तिं द्राघीयः आयुः प्रतरं ते दधामि ॥

अर्थात् (जीवतां ज्योतिः) जीवितोंके प्रकाशको (अर्वाङ्) सामने होकर (अभि आ इहि) उद्योगसे प्राप्त कर (त्वा शतशारदाय आहरामि) तुझको सौ वर्षोंके लिये बचाता हूँ, लाता हूँ । (अशस्तिम्) गंदगीरूपी (मृत्युपाशान्) मृत्युके फन्दोंको (अवमुञ्चन्) दूर करके (ते प्रतरम्) तुझे बहुत बड़ी (द्राघीयः आयुः दधामि) लंबी आयु देता हूँ । इस प्रकार वेदोंमें और प्राचीन शास्त्रोंमें बार-बार दीर्घायु प्राप्त करने तथा उसके साधनोंको व्यवहारमें लानेका उपदेश दिया गया है । वेदके ईशोपनिषद्के, जो यजुर्वेदका ४० वाँ अध्याय है, दूसरे मन्त्रमें सौ वर्ष जीनेकी इच्छा करनेका अधिकार उसी व्यक्तिको दिया गया है, जो कर्म करता हुआ इतनी आयु बिता सके, अकर्मण्य या शक्तिहीनको नहीं । उपर्युक्त वेद-मन्त्रमें कहा गया है कि यदि सौ वर्षकी स्वाभाविक आयु प्राप्त करनेकी अभिलाषा है तो—

'जीवतां ज्योतिरभ्येह्यर्वाङ्'

अर्थात् 'सामने होकर जीवितोंके प्रकाशको प्राप्त कर । जो मर गये, सो मर गये, उनका क्या चिन्तन और क्या स्मरण ? वे अब हमारा कुछ नहीं बना सकते, कुछ नहीं बिगाड़ सकते । बनाना-बिगाड़ना तो जीवितोंका कार्य है, अतः सामने आ—कर्मक्षेत्रमें अवतीर्ण हो—उद्योग कर और जीते-जागतोंसे प्रकाश ले । देख जीवितोंने कैसे प्रकाश प्राप्त किया, तू भी वैसा कर ।' यहाँ जीवित व्यक्तिका तात्पर्य उस मनुष्यसे नहीं, जो कौएकी तरह जीवित है और भोजनसे अपने प्राणोंकी रक्षा कर रहा है । ऐसा जीवन, जो प्रकाश-रहित है, जो स्वच्छतासे हीन है, जिसमें दूसरोंको मार्ग दिखलानेकी शक्ति नहीं, जिसमें दूसरोंके लिये अपनेको मिटा देनेका सामर्थ्य नहीं, वह मृत व्यक्ति है । कुछ व्यक्ति मरकर भी जीवित रहते हैं । स्वामी शंकराचार्य, महात्मा बुद्ध, सुकरात, महर्षि दयानन्द, स्वामी श्रद्धानन्दको कौन मरा हुआ कहेगा ? जिसका जीवन गंदा है, वह मरा हुआ है । यही कारण है कि इस मन्त्रमें स्पष्ट कहा गया है, **'अवमुञ्चन् मृत्युपाशानशस्तिम्'** गंदगीरूपी मृत्युके फन्दोंको छोड़ो । यही कारण है अपवित्र आचरणवान् व्यक्ति शारीरिक और मानसिक मलिनताओंमें फँसकर आयुको नष्ट कर लेगा, परंतु चरित्रवान् व्यक्ति उत्तम भोजन, नियमित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यायाम, योग्य प्राणायाम आदिके अनुष्ठानसे 'अश्मा भवतु ते तनुः' तेरा शरीर पत्थरके समान हो--अपने शरीरको स्वस्थ बनायेगा और स्वस्थ शरीरमें स्वस्थ आत्मा-का प्रवेश होगा। आत्मोन्नतिके लिये काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि दुर्व्यसनोंका सर्वथा त्याग करना होगा। पवित्र आचरणके लिये प्रभुका दर्शन, श्रवण और प्रवचन आवश्यक है। यदि जीवनके प्रत्येक लक्ष्यमें अणु-अणुमें व्याप्त रहे प्रभुको हम देखते रहें, संघर्ष और संग्रामके कोलाहलसे आकुल समस्त संसारमें रहते हुए भी यदि हमें क्षण-क्षणमें स्मरण हो कि विश्वको दर्शन शक्ति दे रहे प्रभुकी दिव्य आँखें हमें देख रही हैं तो हमारे कर्म शुभ होंगे। आचरण पवित्र होगा। जीवन दिव्य होगा। शुभकर्म, पवित्र आचरण तथा दिव्यजीवन आयुकी अवधि बढ़ानेका प्रथम साधन है। कठोपनिषद्में कहा है—

नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः।
नाशान्तमानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात्॥
(२।२।२४)

अर्थात् जो दुराचारसे नहीं हटा, जिसकी इन्द्रियाँ शान्त नहीं हुईं, जो सावधान नहीं और इसलिये जिसका मन अशान्त है, वह कितना ही पण्डित क्यों न हो, इस आत्मतत्त्वको नहीं पा सकता।

वेदमें कहा है—

'अत्राजहीमो अशिवा येऽसन्।'

जो गंदा है, जो अपवित्र है, उसे यहीं और अभी छोड़ दें। इस गंदगीका त्याग करनेसे अवश्य आयु दीर्घ होगी।

आयुकी दीर्घताके लिये दूसरा प्रधान साधन ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य शब्दकी महिमा और इसका अर्थ तो कभी विस्तारसे बादमें देखेंगे; परंतु इसका भाव भी वही है जो पवित्र आचरणका है। 'ब्रह्मचर्य' कहते हैं 'ब्रह्ममें सब शक्तियोंका चराना' जिससे वे विषयोंमें न चरें। प्राचीन भारतीयोंकी आयु, शक्ति, ज्ञान और श्रेष्ठताकी तुलनामें आजके भारतीयकी दुर्बल स्थिति और अल्पायुको देखकर स्वामी विवेकानन्दने प्राचीन भारतीयोंकी शौर्य-शक्ति और आधुनिक भारतवासियोंका आत्मविनाशी दौर्बल्य स्पष्ट करते हुए कहा—'जिस जातिके सिंह-गर्जनसे सातों समुद्र विचलित हो उठते थे, जिस जातिके भ्रूकुटि-संकोचनसे दिशाएँ काँप उठती थीं, उस जातिने शक्तिबीज ब्रह्मचर्यका परित्याग कर आज सियारोंकी-सी अधम और निन्दनीय जिंदगी अख्तियार कर ली है।'

ब्रह्मचर्य और संयमसे मनुष्यमें शक्ति आती है और शक्तिसे आयु-वृद्धि होती है। महर्षि अरविन्दने बड़ौदा कालेजके छात्रोंको विदाईका आशीर्वाद देते हुए एक बार कहा था—'सब सत्योंका निचोड़ तुम्हारे सामने सिर्फ एक ही सत्य है कि निर्बलतासे बड़ा पाप जीवनमें कुछ नहीं है। तुम्हारे सारे मुक्ति-अभियान इसीके लिये हों, यही मेरी कामना है। जहाँ तुम इस कुम्भकर्णसे मुक्त हो गये, इसे तुमने जीत लिया, वहाँ तुम संसारके बड़े-से-बड़े गौरवको अनायास जीत लोगे।'

स्वामी दयानन्दके सुपुष्ट शरीर और तेजोदीप्त मुख-मण्डलसे प्रभावित एक जर्मन दर्शनशास्त्रीने उनसे इस स्वास्थ्य और तेजस्विताका रहस्य पूछा और कहा—'स्वामीजी! क्या प्रत्येक व्यक्ति आप-जैसा सुन्दर शरीर और प्रदीप्त प्रतिभा प्राप्त कर सकता है?'

स्वामीजी मुस्कराये और बोले—'जो जैसा चाहता है वैसा बन जाता है। दुःख यही है कि मनुष्य केन्द्रित भावसे कुछ चाहता नहीं। तुम संकल्प करो, संयमका पालन करो, एकाग्र भावसे मनमें सुस्वास्थ्य एवं सुबुद्धिकी तेजोमयी मूर्ति प्रतिष्ठापित करो तो उस मूर्तिके अनुरूप ही तुम्हारा तन, मन बन जायगा।'

इस संकल्प, शक्ति और स्वास्थ्यके लिये आँखोंसे प्रभुका दर्शन हो, कानोंसे उसीका श्रवण हो, जिह्वासे उसीका प्रवचन हो—यही ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य, ब्रह्मदर्शन अथवा ब्रह्मज्ञानका फल अथर्ववेदके निम्न मन्त्रोंमें इन्द्रियोंकी स्वस्थता तथा दीर्घ आयुष्य ही बताया गया है। वहाँ लिखा है—

यो वै तां ब्रह्मणो वेदामृतेनावृतां पुरम्।
तस्मै ब्रह्म च ब्रह्माश्च चक्षुः प्राणं प्रजां ददुः॥
न वै तं चक्षुर्जहाति न प्राणो जरसः पुरा।
पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते॥
(अथर्व० १०।२।२९-३०)

अर्थात् जो उपासक अमृतसे वेष्टित ब्रह्मकी नगरीको जानता है, उसको ब्रह्म और ब्रह्मजनित इतर देवता चक्षु, प्राण और प्रजा देते हैं। जो ब्रह्मकी नगरीको जानता है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसे चक्षु आदि इन्द्रिय तथा प्राण अर्थात् आयु वृद्धावस्थाके पूर्व नहीं छोड़ते ।

इस प्रकार ईशोपनिषद्‌के द्वितीय मन्त्रमें कर्म करते हुए ही सौ वर्षकी आयु प्राप्त करनेकी इच्छा की गयी है और कहा गया है कि जो इस प्रकार जीनेकी इच्छा करेगा उस मनुष्यमें कर्म लिप्त नहीं होगा । इसके लिये हमें प्रभु-भक्ति, पवित्र आचरण और ब्रह्मचर्यका मार्ग अपनाना होगा । आइये, हम प्रभुसे प्रार्थना करें—

दिव्य भावना रहे हृदयमें,
सदा रात दिन आठों याम ।
अरुण बालरविके उगनेपर,
दोपहरी दिन ढलते शाम ।

पाश्चात्य वैज्ञानिकोंकी चमत्कारिक नयी खोजें

[आयु, यौवन, स्वास्थ्य और शक्ति बढ़ानेका एक उपाय]

(लेखक—डाक्टर श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, विद्याभूषण, दर्शनकेसरी)

मनुष्यकी जीवनीशक्ति, यौवन और आयु इत्यादिकी अभिवृद्धिके सम्बन्धमें पाश्चात्य वैज्ञानिक नित्य नयी-नयी खोजें कर रहे हैं । चिकित्सा-विज्ञानमें अनेक आधुनिक खोजें बड़ी उपयोगी हैं । इनपर विश्वमें अनेक प्रयोग हो रहे हैं । यहाँ-पर युवा शक्ति बढ़ानेके सम्बन्धमें नयी जानकारी दी जा रही है । यह विभिन्न सूत्रोंसे एकत्रित की गयी है ।

प्रमुख सोवियत जीव-विज्ञानवेत्ताका अभिमत

सोवियत संघके जीव-विज्ञानवेत्ता ब्लादिमीर निकितिनके नवीनतम प्रयोगोंका निष्कर्ष यह है कि उपवासद्वारा फिरसे जवान होना और अपने यौवनको बहुत दिनोंतक बनाये रखना सम्भव है । अनेक व्यक्तियोंके जल्दी मरनेका कारण जरूरतसे ज्यादा भोजन खा डालना और सौ वर्षसे पूर्व ही अपनी पाचनशक्तिको बिगाड़ लेना है । पहले अधिक भोजन किया जाय और फिर उसे पचानेके लिये अनेक प्रकारकी दवाइयाँ खायी जायँ, यह एक मूर्खता है जो वर्तमान सभ्यताकी देन है । उन्होंने यह स्पष्ट किया है कि पेट और अधिवृक्क ग्रन्थियाँ वृद्ध होनेकी प्रक्रियामें अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं ।

उनका विश्वास है कि समयके साथ-साथ अभ्याशयमें असाधारण परिवर्तन आ जाता है । हार्मोन उत्पन्न करनेकी इस क्षमतामें कमी होती रहती है । हार्मोन पोषक तत्त्वोंसे सम्बन्धित टिशुओंकी सहायता करते हैं, परंतु अधिवृक्क ग्रन्थियाँ भिन्न प्रकारके हार्मोन उत्पन्न करती हैं और इन ग्रन्थियोंकी उत्पादन-क्षमतापर उम्र बढ़नेका कोई प्रभाव नहीं पड़ता ।

प्रोफेसर निकितिनने इसे और स्पष्ट करते हुए कहा है कि इस प्रकार हार्मोनका दो किस्मोंके बीच संतुलन बिगड़ने लगता है । इस संतुलनको ठीक करनेमें उपवास सहायक हो सकता है । जब शरीरमें भोजन नहीं पहुँचता, तो अधिवृक्क ग्रन्थियोंद्वारा उत्पन्न किये जानेवाले हार्मोनकी अधिकता शरीरमें भोजन न होनेके कारण खपने लगती है । परंतु उन्होंने इस बातपर भी जोर दिया है कि उपवास-कालमें पर्याप्त शुद्ध जल या रसोंका प्रयोग भी आवश्यकतानुसार किया जा सकता है । जलसे शरीरकी आन्तरिक शुद्धिमें बहुत मदद मिलती है । उनका कहना है कि रोमन सम्राट् वेस्पासियनका तरीका अत्यन्त अनुकूल है अर्थात् महीनेमें दो दिनका व्रत । शरीरकी जरूरतके अनुसार पेट भारी होनेपर उपवास किया जा सकता है ।

उपर्युक्त वैज्ञानिकके निष्कर्ष कि सावधानीसे नियन्त्रित उपवासके द्वारा स्वास्थ्य, आयु, यौवन और शक्ति बढ़ सकती है, चूहोंपर किये गये कई वर्षोंके अनुसंधान-कार्यका परिणाम हैं । चूहोंकी अधिकतम उम्र ढाई वर्ष होती है, परंतु भोजन-के विषयमें सावधानी बर्तनेसे उनकी आयुको चार वर्षोंतक लानेमें सफल रहे हैं । उन्होंने चूहोंको समय-समयपर भूखा रखनेके बाद यह सफलता प्राप्त की है । रूसमें आजकल कुछ चिकित्सालयोंमें उपवास और जलके सेवनकी विधिको कई रोगोंके उपचारके लिये इस्तेमाल किया जा रहा है । उपवासद्वारा मानसिक रोगोंसे लेकर श्वास-रोगतकमें अद्भुत लाभ देखा गया है ।

बरनर मैकफैडनके विचार

अमेरिकन विचारक बरनर मैकफैडनने अपना समस्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन स्वास्थ्य, यौवन और शक्तिकी वृद्धिसम्बन्धी खोजोंमें लगाया था और अंग्रेजोंने स्वास्थ्य-सम्बन्धी अनेक व्यावहारिक और प्रामाणिक ग्रन्थ लिखे हैं। उन्होंने उपवाससे लाभके सम्बन्धमें लिखा है कि 'सभ्यताकी प्रगति समुद्रके ज्वारके समान समतौल न होते हुए भी कभी ऊँची एवं कभी नीची हुआ करती है। जो वैज्ञानिक सिद्धान्त प्राचीन कालमें लोगोंको मालूम थे, वे मध्ययुगमें लुप्तप्राय हो गये थे। वे ही सिद्धान्त थोड़े-बहुत हेर-फेरकर अर्वाचीन युगमें या तो शङ्काकी दृष्टिसे देखे जाते हैं, या संशोधित रूपमें प्रस्तुत किये जाते हैं।'

उपर्युक्त मतके उदाहरणके रूपमें वे लिखते हैं कि सौर-सिद्धान्त, जो पैथेगोरसके शिष्योंको मालूम थे, वही एक हजार वर्षके बाद इतनी हदतक भूले गये कि मानो नष्ट अटलांटिक महाद्वीपका कभी अस्तित्व भी न था। लुडविन जेनके सैकड़ों वर्ष पहले ग्रीक लोगोंको यह मालूम था कि जिस प्रदेशमें घनी जन-संख्या हो, वहाँ व्यायामसे आखेट-की पूर्ति की जाय। डियोलइसके दो हजार वर्ष पहले वायु, जल, प्राकृतिक भोजन, फल, शाक-तरकारियों और व्यायाम-मात्रसे शरीरको पुनः स्वस्थ बनानेवाले प्राकृतिक चिकित्सक थे। जब यूनानी और रोमन सभ्यताएँ अपने उच्च शिखरपर पहुँची थीं, उस समय भी यह एक नियम-सा हो गया था कि तन्दुरुस्ती और मानसिक शान्ति चाहनेवाले मनुष्यको दिनमें एक बार ही भोजन करके संतुष्ट हो जाना चाहिये; अर्थात् जबतक दिनभरका कार्य पूर्ण न हो जाय और भोजन पचानेका अवकाश न मिले, तबतक भोजन न किया जाय।

भूमध्य समुद्रके किनारे बसनेवाले अनेक पुराने राष्ट्रोंमें दिनमें केवल एक बार भोजन करनेका प्रचलन चला आता रहा। आदमी दिनभर काम करनेके पश्चात् लगभग पाँच बजे लौटते थे। नारियाँ भोजन तैयार रखती थीं। घरके सब व्यक्ति आनन्दसे बैठकर खुशी-खुशी भोजन करते थे। स्त्री-पुरुष दोनों ही इतने अधिक थके हुए रहते थे कि सूखी रोटीमें भी आनन्द आता था। भोजन करना सम्पूर्ण परिवारका एक तरहका उत्सव होता था। अमीर-गरीब दोनों, समयसे पहले बार-बार थोड़ा-थोड़ा खाकर भूखको नष्ट नहीं करना चाहते थे। भोजनालयमें प्रवेश करनेसे पूर्व दिनभरकी रोजी इत्यादिकी समस्त चिन्ताओंको दूर रखते थे। भोजनके समय वे बड़े प्रसन्न, उल्लसित और हर्षित रहते थे। कभी-कभी वाद्य यन्त्रोंसे संगीतकी मधुर स्वरलहरी गूँजती रहती थी। उन लोगोंका विश्वास था कि इस तरहका आमोद-प्रमोद पाचनक्रियामें सहायक होता है। उन दिनोंका यह भोजन सूर्यास्तसे पहले किया जाता था और घूमने-फिरने, आनन्द-मस्ती करने, गायन-नृत्य-वाद्यद्वारा मनोरञ्जनके लिये भी काफी समय बच जाता था। दोपहरका भोजन तो वे जानते ही न थे। सुबहको सिर्फ रोटी या दो-चार बिस्कुट काफी समझे जाते थे। प्रातःकाल अध्ययन, चिन्तन और मेहनत करनेके समय खान-पान या सोने, निठल्ले बैठनेमें अवगुण समझा जाता था। कदाचित् नब्बे प्रतिशत सुशिक्षित ग्रीसनिवासी और साठ प्रतिशत रोमन-लोग भोजनके बीच नियमितरूपसे २२ घंटोंका अन्तर अधिक नहीं मानते थे।

जर्मनी एवं उत्तरीय आस्ट्रियामें भोजनमें ८ घंटेका अन्तर जरूरी माना जाता है। वहाँ आजकल भी दिनमें केवल दो बार भोजन करनेवाले अधिक हैं। सच तो यह है कि अधिक भोजन खाना, ठूँस-ठूँसकर खानेकी आदत आदमीकी खुदकी बनायी हुई है। अधिकतर लोग अधिक खानेकी वजहसे बीमार चल रहे हैं या जल्दी बूढ़े होकर मर रहे हैं। शरीरकी आवश्यकता इतनी अधिक नहीं होती, जितनी हम दरअसल गलतीसे समझ बैठे हैं। मन्दाग्नि, पेटके अफारे, अपच, दस्त, भूख खतम हो जाना—ये सब अधिक भोजन करनेके दुष्परिणाम हैं। पाश्चात्य देशोंके रहनेवाले भी अब इन रोगोंको दूर करनेकी दृष्टिसे उपवास—हर सातवें या पंद्रहवें दिन भूखे रहनेका महत्त्व समझने लगे हैं। वे सब इस निष्कर्षपर पहुँचे हैं कि यौवन, सौन्दर्य और जिंदगीको बढ़ानेके लिये उपवास आवश्यक है।

भारतीय दृष्टिकोण

ऊपर विदेशियोंने उपवासको क्या समझा है, यह स्पष्ट किया गया है। पर भारतीय विचारक और स्वास्थ्य-विज्ञान-वेत्ता तो उपवासको आरम्भसे ही धर्मका एक अंग ही मानते आये हैं। शारीरिक रोगोंको दूर करने और मानसिक विकारोंको दबानेके लिये हमारे यहाँ एकादशी आदि उपवासका धार्मिक विधान है। पंद्रह दिनोंके संचित अनावश्यक खाद्य भस्म हो जाते हैं। उन पदार्थोंके भरे रहनेसे हमें वास्तविक क्षुधा नहीं लगती। शरीरकी स्वच्छता उपवाससे होती है। अधिक खानेसे इन्द्रियोंमें ऊष्माका वेग बढ़ जाता है, मनमें वासना और दूषित विकार पैदा होते हैं और जब विषयविकार,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वासनाएँ अधिक उद्दीप्त हों, तो साधक क्या करे ? नियम-व्रत-उपवासके द्वारा वासनाओंका नाश करे।

आधुनिक भारतीय आयुर्वेदिक पद्धतिके अनुसार उपवासके ठीक प्रयोगसे ज्वर, सन्निपात (निमोनिया), जुकाम, जलोदर, हैजा, कुष्ठ, स्वप्नदोष, खाँसी, दमा, सूजन आदि रोग हट जाते हैं। मनके रोगोंमें उपवाससे शरीरकी विकृति हटती है। विषय-वासनाओंसे विरक्ति उत्पन्न होती है और भगवच्चिन्तनमें मन लगता है। मनके स्वस्थ होनेपर बुद्धिकी निश्चयात्मिका स्थिति और ध्यानमें एकाग्रता होती है। ईश्वरीय भजनमें मन लगानेके लिये ही योगी और तपस्वी बड़े-बड़े उपवास किया करते हैं। उसी उपवासको व्रतके नामसे पुकारा जाता है। एकादशीके दिन व्रत रखनेके लिये कहा गया है—'तपो नानशनात् परम्' उपवाससे बढ़कर कोई तपस्या नहीं है। 'व्रतं नैकादशीसमम्' अर्थात् एकादशीके समान अन्य कोई व्रत नहीं है। कहा है—

एकादशीव्रतं नाम सर्वकामफलप्रदम्।
एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि॥
मातेव सर्वबालानामौषधं रोगिणामिव।
रक्षार्थं सर्वलोकानां निर्मितैकादशी तिथिः॥
एकादशेन्द्रियैः पापं यत् कृतं येन वा द्विजाः।
नरो निर्धूय तन्नूनं प्रीतः स्वर्गतिमान् भवेत्॥
महापातकयुक्तोऽपि युक्तोऽपि ह्युपपातकैः।
एकादश्यां निराहारः स्थित्वा याति परं पदम्॥

याद रखिये, एकादशी व्रतको बच्चोंके लिये माताकी तरह उपकारी, रोगियोंके लिये औषधके समान सबके रक्षार्थ बना हुआ माना है। यह ग्यारह इन्द्रियोंसे किये हुए पापोंसे छुड़ाकर व्रतीको स्वर्गमें ले जाता है। यह महापातकोंको एक दिनमें दूर करता है।

इसके अतिरिक्त अमावास्या-पूर्णिमाके व्रत, भगवान्की अवतार-तिथियोंके व्रत, स्त्रियोंके लिये हरतालिका, सावित्री, गौरी आदिके असंख्य व्रत धर्मके अङ्गरूपमें निर्धारित हैं। उनमें उपवासकी ही प्रधानता है। आजकल जो कई जगह व्रतके दिन अन्नका त्याग करके विभिन्न प्रकारके गरिष्ठ भोजन किये जाते हैं, वह तो एक प्रकारसे व्रतके नामपर किया जानेवाला अनाचार है जो त्याज्य है।

मनुष्यके जीवनमें वृद्धावस्था, कुरूपता, अल्पायु और अशक्ति तब आती है, जब अंदर दूषित मल पदार्थ अधिक एकत्रित हो जाते हैं। पसीना तथा मलमूत्र-मार्गोंसे गंदगी पूरी तरह नहीं निकलती। डाक्टर अप्टन सिंक्लेयर अमेरिकाके प्रसिद्ध उपवास-विशेषज्ञ हो गये हैं। आपने अपने प्रयोगोंके बलपर जो लिखा है, वह बड़े कामकी सलाह है—

'उपवासको मैं यौवन स्थिर रखनेकी कुंजी समझता हूँ। यह पूर्ण और स्थायी स्वास्थ्य देता है। अपने उपवास-सम्बन्धी ज्ञानको मैं संसारकी सभी मूल्यवान् निधियोंसे मूल्यवान् समझता हूँ। उपवास प्रकृतिकी स्वास्थ्य-संरक्षक विधि है, जिसके द्वारा प्रकृति हमें मानसिक और शारीरिक रोगोंसे सुरक्षित रखती है। मेरा यह तात्पर्य नहीं कि मुझे चेचक या मियादी बुखार-जैसे भयंकर रोग कभी नहीं हो सकते। मैं एक कसरती प्राकृतिक चिकित्सकको जानता हूँ जो समय-समयपर मियादी बुखार पैदा करनेवाले कीटाणु पीकर देखा करता है कि क्या उसका शरीर निर्विकार है? किंतु मुझे इस सीमातक जानेकी आवश्यकता नहीं है। मुझे इतनेसे ही संतोष है कि ऐसे तीव्र और जीर्ण रोग, जिनसे लोग प्रायः पीड़ित रहते हैं, मुझसे दूर चले गये हैं और जबतक मैं अपने इस विश्वासपर कि तबियत खराब होते ही, जुकाम होनेपर, सिरदर्द, थकान या जीभ गंदी दिखायी देनेपर या अँगुलीके कटनेसे हुए घावके जल्दी न सूखनेपर उपवास प्रारम्भ कर दूँगा, अटल रहूँगा—उपवासके ठीक प्रयोगसे मुझे कोई भी जीर्ण रोग होनेकी सम्भावना नहीं है।'

एक दूसरे चिकित्सा-विज्ञान-विशेषज्ञ प्युरिंगटन साहब लिखते हैं—'यदि आप मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य, यौवन, जीवनका आनन्द, स्वतन्त्रता या शक्ति चाहते हैं, तो उपवास कीजिये और सिर्फ जल पीजिये। आपको सौन्दर्य, विश्वास, हिम्मत, गौरव-सरीखी निधियाँ प्राप्त करनेके लिये भी उपवास करना चाहिये। पंद्रह दिनमें निश्चय ही उपवास करनेसे मनुष्यकी नैतिक और आध्यात्मिक उन्नति होती है, उसकी दैवी बुद्धि और सात्त्विकता जागती है और वह ईश्वरकी विशालताका अनुभव कर पाता है।'

अतः आप उपवाससे लाभ उठाया करें और कम-से-कम प्रत्येक एकादशीके दिन केवल जल या फलका रस लेकर निराहार व्रत किया करें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामायणपर नया दृष्टिकोण

(लेखक—व्योहार श्रीराजेन्द्रसिंहजी)

रामायण एक चरितकाव्य है। उसका प्रारम्भ नारद-वाल्मीकि-संवादसे होता है। वाल्मीकि पूछते हैं कि इस समय कौन सबसे श्रेष्ठ चरित्रवान् है और बलवान् है—

को साम्रथ इहि लोकमें, बीर्यवान गुनवान।
को धर्मज्ञ कृतज्ञ को, दृढ़ब्रत सत्यप्रमान॥

चरित्रका अर्थ है मानव-चरित्र। महामानवके आदर्शपर साधारण मानव अपना चरित्र बनाते हैं। वैसे रामको विष्णुका अवतार माना गया है और उपमा पूर्ण करनेके लिये भरतको शंख, शत्रुघ्नको गदा और लक्ष्मणको शेषावतार बताया गया। (अनन्तात्मा वै लक्ष्मणः—पद्मपुराण) वाल्मीकि-रामायणमें भी इस प्रकारके वाक्य आये हैं कि राम विष्णुके अर्ध भाग हैं, भरत चतुर्थ भाग और बाकी चतुर्थ भागमें लक्ष्मण और शत्रुघ्न हैं—

कौसल्याजनयद् रामं दिव्यलक्षणसंयुतम्।
विष्णोरर्धं महाभागं········ (वा० १।१८।१०)

वाल्मीकिने इतना अवश्य कहा है कि राम पराक्रममें विष्णुके समान थे—

बलमें बिष्णु सौम्य जिमि सोमा। क्रोध कालसम अनल सुहोमा॥
प्रीयते सततं रामः स हि विष्णुः सनातनः। (रा० ७।१२८)

अध्यात्मरामायणमें उनको परात्मा ब्रह्म ही माना गया है। उसके आधारपर तुलसीदासजीने भी उन्हें पूर्णब्रह्म सिद्ध करनेके ही लिये रामचरितमानस लिखा।

श्रुति सेतु पालक राम तुम्ह जगदीस माया जानकी।
जो सृजति जगु पालति हरति रुख पाइ कृपानिधान की॥

रामने अपनेको प्रकृत मनुष्य ही कहा है।

रामको ईश्वर मान लेनेपर उनके द्वारा किये गये आश्चर्यजनक कार्योंका अर्थ लग जाता है; किंतु वाल्मीकिका उद्देश्य लोगोंमें कुतूहल या आश्चर्य उत्पन्न करना नहीं, बल्कि मानव-चरित्रकी विशेषता बताना था। तुलसीदासजीने रामको ईश्वर मानते हुए भी उनके मानव-चरित्रको काफी ऊँचा उठाया है; किंतु उनकी कमजोरियोंको लीलामात्र कहकर टाल दिया है। उन्होंने यह तो अवश्य कहा है कि—

करत चरित नर अनुहरत संसृति सागरसेतु।

किंतु रामको मनुष्य माननेवालोंको पाखंडी और अधम तक कहनेमें उन्होंने संकोच नहीं किया—

कहहिं सुनहिं अस अधम नर ग्रसे जे मोह पिसाच।
पाखंडी हरिपद बिमुख जानहिं झूठ न साँच॥

वाल्मीकिने एक ओर रामके महान् गुणोंकी भी चर्चा की है और दूसरी ओर मानवसुलभ भावनाओंका भी वर्णन किया है—जैसे सीताविरहमें विलाप करना आदि। तुलसीदासजीने भी लिखा है; किंतु इससे यही शिक्षा मिलती है कि इतनी आपत्तियोंके आनेपर भी उन्होंने पुरुषार्थको नहीं छोड़ा और जंगली जातियोंकी सहायतासे रावण-सरीखे प्रबल वैरीका विनाश किया।

रामायणकी कथा दशरथके पुत्रेष्टि-यज्ञसे आरम्भ होती है। राजाओंके बहुविवाहकी प्रथा प्रचलित थी। दशरथ भी इसके अपवाद नहीं थे। कहीं-कहीं उनके १०८ रानियोंकी कथा है। उनमें तीन रानियाँ प्रमुख थीं। वृद्धावस्थामें उनके चार पुत्र उत्पन्न हुए। चारोंमें परस्पर प्रेम और सद्भाव था। वेद-वेदाङ्गमें वे निष्णात थे। कुलगुरु वसिष्ठने उन्हें धनुर्वेदकी विशेष शिक्षा दी थी। चारों भाई सुन्दर, बलवान् और विद्यावान् थे।

राक्षसोंके नाश करनेके लिये विश्वामित्रके साथ राम-लक्ष्मण वनको गये और बालकपनमें ही उन्होंने असुरोंका दमन कर दिया। यज्ञमें विघ्न करनेवाले सुबाहुको मार डाला और मारीचको दूर भगा दिया।

आर्योंमें और अनार्योंमें सदा संघर्ष चला आया है। आर्यऋषि यज्ञरूप विष्णुके और राक्षस रुद्रके उपासक बतलाये गये हैं। रुद्र शब्द ही उग्रताका सूचक है। उनके क्रूर कर्मोंके कारण वे राक्षस कहलाने लगे। उन्हें मांसभक्षी ही नहीं, नर-मांसभक्षीके रूपमें चित्रित किया गया है।*

आर्योंकी त्यागवादी और राक्षसोंकी भोगवादी संस्कृतिमें संघर्ष होना अनिवार्य था। यज्ञ त्यागका प्रतीक है। अतः राक्षस उसे नष्ट-भ्रष्ट करना चाहते थे। राक्षसोंमें सबसे प्रबल

* अब भी एक समाचार था कि चीनके एक पक्षके लोग दूसरे पक्षके एक मृत मानवको पकाकर चट कर गये। ये राक्षस ही तो हैं!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा रावण हुआ। उसने सभी आर्य राजाओंको परास्त किया। केवल अयोध्याके अनुराज्यने उससे टक्कर ली; किंतु वह भी हार गया। अन्तमें उसने कहा 'मैं तो दुर्भाग्यसे हार गया; किंतु मेरे कुलमें तुम्हारा हन्ता उत्पन्न होगा।'

(वा० रा० ७ । १९)

अयोध्या और जनकपुरके रास्तेमें घोघरा और गङ्गाके बीचमें मारीच-सुबाहुने इतना अत्याचार कर रक्खा था कि चारों ओरका देश उजाड़ हो गया था।

मुदित धान्य धन युत मन भावन। किये क्षुधित धनहीन भयावन॥

नरों ही नहीं, नारियोंने भी उग्र रूप धारण कर रक्खा था। जरा-सी आहट पाकर राक्षसी ताड़का राम-लक्ष्मणपर टूट पड़ी थी। अतः उसपर बाण चलाना अनिवार्य हो गया।

सुनत सब्द क्रोधित दुखदाई। तेहिं दिसि और ताड़का धाई॥

इस दलका उच्छेद होनेसे उत्तर भारतमें राक्षस राजाओंकी सत्ता समाप्त हो गयी। मारीच अपने प्राण लेकर समुद्रतटपर जानेको बाध्य हुआ।

विश्वामित्र अपना क्षात्रधर्म छोड़कर वसिष्ठकी प्रतियोगिता करनेके कारण ब्राह्मणधर्मका पालन करने लगे थे। अतः उन्होंने स्वयं अस्त्र-शस्त्रका प्रयोग न कर रामकी सहायता ली। जो अस्त्रविद्या तथा यन्त्रविद्या (बला और अतिबला) उन्होंने सीख रक्खी थी, वह सब राम और लक्ष्मणको सिखला दी जो बादमें राक्षस-दमनमें उनके काम आयी।

रास्तेमें ही गौतम ऋषिका आश्रम था, जिनकी स्त्री अहल्याको इन्द्रने भ्रष्ट कर दिया था। वह ऋषिके शापसे पीड़ित थी। जब रामने उसकी करुण कथा सुनी, तब उनमें करुणा उत्पन्न हुई। तपस्यासे पवित्र हुई अहल्याका उन्होंने चरणसे स्पर्श किया और गौतम ऋषिको समझाकर अपने साथ रखनेके लिये राजी किया। वाल्मीकिके अनुसार अहल्याकी कथाका यही रूप है।

निराहार तप करहु दुखारी। भस्म शायिनी बात अहारी॥
रही अदृश्य तप जीवन सबहीं। सहस वर्ष इमि बीतहिं जबहीं॥

× × × ×

मेटउ साप मोचन सुखदाई। तासु चरन परसे रघुराई॥

अध्यात्मकारके अनुकरणपर तुलसीदासजीने अहल्याको तपपुञ्ज तो कहा है; किंतु रामके चरणस्पर्शसे उसका उद्धार माना है—

परसत पद पावन सोक नसावन,
प्रगट भई तप पुंज सही।

विदेह राजाओंकी पदवी जनक थी। उनके पूर्वजोंको यह धनुष कहींसे प्राप्त हो गया था।

न्यास भूत सिव धनुष सुहावा। मम पूर्वज रच्छित चलि आवा॥

इसे त्रिपुरारिका धनुष कहा गया है। जान पड़ता है वह रुद्रउपासकोंका पूज्य था। उनकी सभ्यता नष्ट हो जानेपर वे उसे छोड़कर दक्षिणकी ओर चले गये थे। कहा जाता है कि हल चलाते समय जनकको सीता मिली थीं। हो सकता है कोई उन्हें खेतमें छोड़ गया हो। पुरातत्त्वकी खोजके समान ही उनके पूर्वजोंके खेतोंमें गड़ा हुआ यह धनुष मिला होगा।

उस समय क्षत्रियोंमें स्वयंवरकी प्रथा थी। बलकी परीक्षा करनेके लिये जनकने इसे साधन बनाया और उसी वरके साथ सीताका विवाह करनेकी प्रतिज्ञा की जो उस धनुषपर डोरी चढ़ा दे। बहुतसे राजाओंने उसे देखा किंतु कोई भी उसे चढ़ानेमें समर्थ न हुआ। जब विश्वामित्रके साथ राम जनकपुर गये तो उन्हें भी यह धनुष दिखाया गया। एक मंजूषामें रक्खे हुए धनुषको सेवक लोग उनके पास लाये।

सचिव बोलि सिव धनुष मँगावा।

रामने ज्यों ही उसपर प्रत्यञ्चा चढ़ानेके लिये उसे उठाया कि वह टूट गया। असलमें उसे तोड़नेकी कोई प्रतीक्षा नहीं थी। कथा है कि रावण और बाणने उसे छुआ तक नहीं और मस्तक नवाकर चले गये; क्योंकि वह उनके आराध्यका धनुष था। बात ठीक जान पड़ती है। इससे ऊपर लिखी हुई बातका समर्थन हो जाता है। तुलसीदासजीने इस कथाको नाटकीय रूप देनेके लिये धनुषयज्ञकी रचना की है और इस प्रसंगको बड़ा ही आकर्षक बना दिया है।

उग्र स्वभावके परशुराम भी रुद्र-भक्त थे और उनको भी अपने आराध्यके धनुष टूटनेका दुःख हुआ। उसका समाचार सुनकर वे दौड़े आये और रामसे अयोध्या जाते समय रास्तेमें मिले। धनुष टूटते ही सभामें नहीं आ धमके, जैसा कि अन्य रामायणोंमें वर्णित है!

राम-सीता-विवाहके साथ लक्ष्मण-उर्मिला, भरत-माण्डवी और शत्रुघ्न-श्रुतिकीर्तिका विवाह निर्विघ्न सम्पन्न हुआ और सब लोग अवधपुर लौटे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विवाहके समय राम-सीताकी क्या अवस्था थी, यह प्रश्न उठाया जाता है। हिंदीमें एक दोहा प्रचलित है—

वर्ष अठारह की सिया सत्ताइसके राम।

पद्मपुराणसे प्रकट होता है कि विवाहके बाद १२ वर्ष तक राम-सीता अयोध्यामें रहे—

तत्र द्वादशवर्षाणि राघवः सह सीतया।
रमयामास धर्मात्मा नारायण इव श्रिया॥

वाल्मीकि-रामायणसे भी प्रकट होता है कि तेरहवें वर्ष राज्याभिषेककी तैयारी की गयी थी—

तत्र त्रयोदशे वर्षे राजामन्त्रयत प्रभुः।
अभिषेचयितुं रामं समेतो राजमन्त्रिभिः॥
(वा० ३। ४७। ५)

विवाहके समय सीताकी अवस्था १८ वर्ष और रामकी २५ वर्ष स्वयं सीताने बतलायी है—

मम भर्ता महातेजा वयसा पञ्चविंशकः।
अष्टादश हि वर्षाणि मम जन्मनि गण्यते॥

इसमें १२ वर्ष जोड़नेपर वनवासके समय सीताकी अवस्था ३० और रामकी ३७ वर्ष निकलती है। अस्तु,

श्रीराम-वनवासका असली कारण

जब राजा दशरथको अपनी वृद्धावस्थाका भान हुआ तब उन्होंने अपने ज्येष्ठ पुत्र रामको युवराज बनानेका विचार किया। सबने इसका समर्थन किया, किंतु बीचमें एक बाधा आ गयी। कैकेयीके वरदानोंके कारण रामको वनवास जाना पड़ा। ऐसा सभी रामायणकार कहते हैं। किंतु वाल्मीकिने इसका रहस्योद्घाटन किया है कि विवाहके समय ही कैकेयीके पिताने दशरथसे यह वचन ले लिया था कि कैकेयीके पुत्रको ही राज्य दिया जायगा। रामने यह बात भरतसे कही, जब वे उन्हें लौटानेके लिये चित्रकूट गये थे—

पुरा भ्रातः पिता नः स मातरं ते समुद्वहन्।
मातामहे समाश्रौषीद् राज्यशुल्कमनुत्तमम्॥
(वा० रा० २। १०७। ३)

इसी प्रकार शान्तनुसे मत्स्यगन्धाका विवाह करनेके पूर्व उसके पिताने वचन ले लिया था कि उसीका पुत्र राजा होगा।

देवासुर-संग्रामके समय कैकेयीने क्षत-विक्षत दशरथके प्राणोंकी रक्षा की थी। उसी समय दो वरदान माँगनेकी बात वाल्मीकिने लिखी है (वा० २। ९)। अध्यात्ममें तो यह बात लिखी है कि युद्धके समय कैकेयीने रथचक्रमें अपनी अंगुली लगायी, इसलिये दशरथ प्रसन्न हो गये। किंतु पहली बात अधिक युक्ति-युक्त जान पड़ती है। इसी कारण दशरथने युवराज बनानेकी जल्दी की और भरतको अपने मामाके यहाँसे नहीं बुलवाया। साथमें जनकको भी नहीं बुलवाया, जिसमें यह कहनेको हो कि जल्दीमें दोनोंको नहीं बुलवा पाये।

न तु केकयराजानं जनकं वा नराधिपः।
त्वरया चानयामास पश्चात्तौ श्रोष्यतः प्रियम्॥
(वा० रा० २। १। ४८)

समझमें नहीं आता कि ऐसी क्या जल्दी थी कि रामके दोनों प्रिय सम्बन्धियोंको ऐसे महत्त्वपूर्ण अवसरपर नहीं बुलवाया। दशरथने वसिष्ठसे स्पष्ट कहा कि भरत ननिहालमें हैं। इस बीचमें दूसरे ही दिन रामराज्याभिषेक होनेका रहस्य देखना है—

भरतो मातुलं द्रष्टुं गतः शत्रुघ्नसंयुतः।
अतोऽभिषेक्ष्ये श्वो रामं भवती चानुमोदताम्॥

इस अवस्थामें कैकेयीका क्रुद्ध हो जाना स्वाभाविक था। विवाहके समय उसके पिताने भरतको राज्य देनेका वर माँग ही लिया था। युद्धकी सहायताके समय एक और वर माँगकर उसने पहले वचनकी पुष्टि कर ली। मंथराने सुझाया कि एकसे भरतको राज्य और दूसरेसे रामको वनवास माँग ले। दूसरा वर पहलेकी प्रतिक्रिया मात्र है। साधारण दशामें वह दूसरा वर न माँगती किंतु संदेहजनक जल्दीमें अभिषेक करनेके कारण उसने भरतके राज्यपर पूरी तरह प्रतिष्ठित हो जाने तक रामको बाहर रखना ही उचित समझा।

चतुर्दश हि वर्षाणि रामे प्रव्राजिते वनम्।
रूढश्च कृतमूलश्च शेषं स्थास्यति ते सुतः॥
(वा० रा० २। ९। ३१)

लोग प्रश्न करते हैं कि कैकेयीने १४ वर्षके ही वनवासकी क्यों माँग की। रामायणके टीकाकारोंने इनके बहुत-से कारण बतानेका प्रयत्न किया है। एक कारण यह हो सकता है कि इतने लम्बे समयमें भरत अच्छी तरह राज्य-शासन जमा लेंगे और इतने लम्बे प्रवासके बाद रामका लौटना भी असम्भव हो जायगा। दूसरा एक कारण यह भी हो सकता है कि १२ वर्ष तक रामने विवाहके बाद भी राज्यसुख भोगा। अब इसके बदलेमें वे इससे भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिक वनवास भोगें। किंतु वर्षोंकी गणनाका कोई विशेष महत्त्व नहीं जान पड़ता। मुख्य बात यही है कि भरतका राज्य अकण्टक हो।

इस सब काण्डमें दशरथकी कमजोरी और कैकेयीकी कठोरता ही सामने आती है। इस सम्बन्धमें तुलसीदासजीकी युक्ति बड़े कामकी जान पड़ती है।

गमनु निठुरता भवन किय जनु धरि देह सनेहँ।

दशरथ अपनी सत्यप्रियता और स्नेह-प्रवणता दोनोंकी दुविधामें पड़े हुए थे। अपने वचनको भी नहीं तोड़ना चाहते थे और रामको भी नहीं छोड़ना चाहते थे। उनमें इतनी दृढ़ता भी नहीं थी कि जोर देकर कह देते कि मेरे वचनोंकी अपेक्षा मन्त्रि-परिषद्का निर्णय अधिक प्रामाणिक है; क्योंकि वह वंश-परम्पराके भी अनुकूल है। ज्येष्ठ पुत्रको ही राज्य मिलता आया है। परिषद्में इतना बल नहीं था कि वह अपने निर्णयको कार्यान्वित कर सके। कहा जा चुका है कि दशरथने यहाँतक कह सुनाया था कि 'मुझे बंदी करके रामका अभिषेक कर दिया जाय।' लक्ष्मण इसके पहले ही उन्हें बंदी बनानेको तैयार थे किंतु रामने यह सब नहीं होने दिया; क्योंकि इसमें उनकी राज्यलोलुपता सिद्ध होती। मन्त्रीगण केवल रोष बतलाकर रह गये और गुरु वसिष्ठका बताया हुआ उपाय कि रामकी जगह सीता ही राज्य करें, सीतादेवीको स्वीकार नहीं हुआ।

यदि केवल राजनीतिका शासन होता तो यह घटना दूसरे प्रकारका मोड़ लेती; किंतु यहाँ तो घरका शासन मुख्य था। रामने स्वयं अपने वनवासका वरण किया; क्योंकि उससे प्रेय और श्रेय दोनों सधते थे। 'प्रेय' यह था कि भरतको राज्य मिल रहा था और 'श्रेय' यह कि उन्हें वनवासके दुष्ट-दमन और मुनि-मिलनका अवसर मिल रहा था। अध्यात्मरामायणमें तो नारद रामको यह याद दिलाने आते हैं कि उन्हें दुष्ट-दमनका महान् उद्देश्य भूल तो नहीं गया। किंतु उन्हें तो कोशलके सौमित्र राज्यकी अपेक्षा वनका विशाल साम्राज्य मिल रहा था। तुलसीदासजीने दोनों उद्देश्योंको बड़ी अच्छी तरह प्रकट किया है—

भरत प्रान प्रिय पावहिं राजू। बिधि सब बिधि मोहि सन मुख आजू॥
पिता दीन्ह मोहि कानन राजू। जहँ सब भाँति मोर बड़ काजू॥

इसलिये उन्होंने तुरंत ही वन जानेकी जल्दी की, शायद वह किसीको नहीं सूझा कि भरतके आने तक उन्हें रोक रखते; यद्यपि राम भी यह सुझाव कभी स्वीकार न करते; क्योंकि भरतके आनेपर उनका वन-गमन कठिन हो जाता। यहाँ कवियोंने दशरथको स्त्रीजित और कामीके रूपमें चित्रित किया है। वाल्मीकिने भी ऐसा भाव प्रकट किया है—

कामार्तश्च महाराजः पिता दशरथः स्वयम्।
कैकेय्याः प्रियकामार्थं तं रामं नाभ्यषेचयत्॥
(वा० रा० ३। ४७। १२-१३)

किंतु अध्यात्मकारने उनके सत्यप्रतिज्ञ होनेपर ही जोर दिया—

न स्त्रीजितः पिता ब्रूयान्न कामी नैव मूढधीः।
पूर्वं प्रतिश्रुतं तस्य सत्यवादी ददौ भयात्॥
(अध्यात्म० ९)

तुलसीदासजीने उन्हें सत्य और प्रेम दोनोंका एक साथ निर्वाह करनेवाला बतलाया है। उन्होंने रामके मुखसे कहलाया है—

तजेउ मोहिं जिहि बचनहिं लागी। तनु परिहरेउ प्रेम पन पागी॥

इस सब घटनामें रामका संयमपूर्ण आचरण उनकी महानताको भी सिद्ध करता है। उन्होंने किसी प्रकारका तनिक भी विरोधका भाव प्रदर्शित नहीं किया। वे दशरथकी परवशता तथा कैकेयीकी कठोरता दोनोंको अच्छी तरहसे जानते थे। वे यह भी जानते थे कि भरत उनके बिना राज्य कभी स्वीकार नहीं करेंगे। दशरथने सोचा था कि भरतकी अनुपस्थिति ही रामके राज्याभिषेकका सबसे अच्छा समय है।

विप्रोषितश्च भरतो यावदेव पुरादितः।
तावदेवाभिषेकस्ते प्राप्तकालो मतो मम॥
(वा० रा० २४। २५)

भरतके विषयमें भी उनको संदेह बना रहा। भरतको साधु-वृत्ति समझते हुए भी वे मानते थे कि स्वार्थके कारण उनका चित्त भी बदल सकता है। (वा० रा० २४)

इससे भरतको ननिहाल भेजनेका उद्देश्य उनका स्पष्ट हो जाता है। ऐसी परिस्थितिमें यदि कैकेयी उनपर संदेह करे तो उसमें क्या आश्चर्य है। दशरथने जिसे रामके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभिषेकका उपयुक्त अवसर समझा था; उसीको कैकेयीने उनके वनवासका उपयुक्त अवसर समझा। इसलिये उसे दोष देना व्यर्थ है।

यहाँ प्रश्न उठता है कि क्या रामको यह पता नहीं था कि उनके पिता कैकेयीके विवाहके समय ही उसके पुत्रको राज्य देनेका वचन दे चुके थे? उनको ऐसा अवश्य पता था। इसीसे उन्होंने भरतसे चित्रकूटमें यह कहा भी था। किंतु जब दशरथने उनको दूत भेजकर कैकेयीके भवनमें बुलाया, तब भी उनको संदेह नहीं हुआ कि उनको वनवासकी आज्ञा मिलेगी। दूतके आनेपर उन्होंने सीतासे कहा कि 'अवश्य ही पिता और माता मेरे अभिषेकके सम्बन्धमें ही मन्त्रणा कर रहे होंगे। माता कैकेयी मेरे पक्षमें ही उनको प्रेरित कर रही होंगी।'

लक्षयित्वा ह्यभिप्रायं प्रियकामा सुदक्षिणा।
संचोदयति राजानं मदर्थमसितेक्षणा॥

(वा० रा० २। १६। १६)

इससे यह स्पष्ट ध्वनि निकलती है कि यद्यपि भरतको राज्य देनेके लिये राजा वचनबद्ध हैं, किंतु कैकेयी मेरा हित चाहनेवाली है और मुझको ही राज्य दिलानेके लिये दशरथसे आग्रह कर रही है और कह रही है कि इसीमें मेरी प्रसन्नता है।

सा प्रहृष्टा महाराजं हितकामानुवर्तिनी।
जननी चार्थकामा मे केकयाधिपतेः सुता॥

वहीं टीकाकारोंने इसका यह अर्थ लगाया कि कैकेयी मेरा दुष्ट-दमनका अभिप्राय जानकर मुझे वनमें भेजनेके लिये अनुग्रह कर रही है। पर यह क्लिष्ट कल्पना जान पड़ती है।

किंतु कैकेयीके भवनमें जानेपर रामको दूसरा ही दृश्य उपस्थित मिला। राज्यके बदले वन जानेकी आज्ञा मिली। उन्होंने माताकी आज्ञा स्वीकार की। पिताने कभी उन्हें स्पष्ट आज्ञा नहीं दी। बल्कि वे यह चाहते थे कि राम उन्हें बंदी बनाकर राज्यासनपर बैठ जायँ। भरतको राज्य मिलनेपर उन्हें कोई आश्चर्य नहीं हुआ; क्योंकि वे पहलेसे जानते थे। वनवासकी आज्ञापर उन्हें अवश्य आश्चर्य हुआ; किंतु एक अनासक्त पुरुषके नाते उन्होंने उसे सहर्ष शिरोधार्य किया। उन्होंने कैकेयीसे प्रसन्न होकर कहा—

श्रुत्वा गतव्यथो रामः कैकेयीं वाक्यमब्रवीत्॥
अनुक्तोऽप्यत्रभवता भवत्या वचनादहम्॥
वने वत्स्यामि विजने वर्षाणीह चतुर्दश।

(वा० रा० २। १९। २३)

उन्होंने अपने पिताजीकी मरणासन्न अवस्था तथा माताकी विपन्नावस्थाको देखते हुए भी अपने पक्षमें कोई तर्क उपस्थित नहीं किया। न तो उन्होंने अपने राज्याभिषेकके पक्षमें गुरुजीकी सम्मतिकी दुहाई दी और न जनपदके निर्णयका ही आश्रय लिया। भरतके आगमनतक रुकनेकी भी आवश्यकता उन्होंने अनुभव नहीं की, यद्यपि भरतकी सम्मति जानना अत्यन्त आवश्यक था; किंतु यह दूसरोंका काम था। एक आज्ञाकारी पुत्रके रूपमें बिना ननु नच किये माताकी आज्ञा मानना उनका धर्म था। प्राणोंकी बाजी लगाकर भी पिताके दिये हुए वचनको पालन करनेमें वे सहायक होना चाहते थे, बाधक नहीं।

जैसे राजाको रातों-रात तैयारीकर रामके प्रातःकाल राज्याभिषेक करानेकी जल्दी थी, उसी प्रकार रातभर पतिकी दुःसह अवस्थापर ध्यान न देकर कैकेयीको सबेरे ही रामको वनवास भेजनेकी जल्दी थी। यदि भरत अयोध्यामें होते तो वे उनके अभिषेकका आग्रह करते; किंतु इस समय तो उसका काम उनके कण्टकोंको दूर करना था। एक बार रामका अभिषेक होते ही राजनियम और परम्पराके अनुसार भरतको उनका अनुजीवी बनना पड़ता—

ज्येष्ठमेवानुगृह्णाति सततं पैत्रिकं धनम्।
अन्ये तमनुजीवेयुर्यथैव पितरं तथा॥

(मनु० ९। १०५)

दूसरे राजाओंमें यह सामान्य नियम था; किंतु इक्ष्वाकुवंशमें विशेष नियम था—

सततं राजपुत्रेषु ज्येष्ठो राजाभिषिच्यते।
राज्ञामेतत्समं तत्स्यादिक्ष्वाकूणां विशेषतः॥

(वा० रा० २। ७३। २२)

कैकेयीके पिताने इसी नियमका अपवाद करनेके लिये भरतको राज्य देनेका वचन लिया था। कैकेयी शायद उसको भूल भी गयी हो; किंतु दशरथकी संदेहजनक जल्दी (unholy haste) ने उसे सजग कर दिया और मन्थराकी सामयिक चेतावनीने उसे सावधान और सुदृढ बना दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामयिक परिप्रेक्ष्यमें मन्त्र

(लेखक——श्रीगोविन्दजी शास्त्री, एम्० ए०, सा० रत्न)

आजके विज्ञानकी सबसे बड़ी विश्वसनीयता यह है कि वह व्यावहारिक है । व्यवहारमें शक्ति है, नवीकरण है । कोई भी वस्तु कितनी भी प्रामाणिक हो, कितनी भी सत्य और सुन्दर हो, यदि उसे व्यवहारमें नहीं लाया जाय तो वह अविश्वसनीय बन जाती है, उसमें नवीकरणका सौन्दर्य नहीं रहता । भारतके कई उपयोगी, निरापद और आश्चर्यजनक विषय भी इसी अव्यावहारिकताके कारण निष्प्राण हो चुके, जिसका मूल कारण है हमारा मानसिक पतन, स्वाभिमानकी कमी । यदि भारतके योग्य व्यक्ति हमारी प्राचीन ज्ञानराशिको युगभाषामें, व्यावहारिक रूपमें पुनर्जीवित करें तो वह सामयिक विज्ञानके लिये बहुत बड़ा वरदान सिद्ध हो सकता है । मन्त्रशास्त्र भी इसी अव्यावहारिकताके कारण चमत्कारहीन हो गया है । इसके लिये हम उन प्राचीन ऋषियों या विद्वानोंको यह दोष देकर कि उन्होंने परम्परा नहीं बनायी, बरी नहीं हो सकते; क्योंकि इस प्रकारकी साधना उस युगमें एक वर्गविशेषके ही जिम्मे थी, दूसरे उस युगमें विद्या गुरु-परम्परासे चलती थी । आजकी तरह छापनेकी योग्यता उस युगके पास नहीं थी ।

जिन मन्त्रोंको हम काल्पनिक कह बैठे हैं वे किसी जमानेमें जन-सेवाके साधन थे । रोग-निवारणसे लेकर मोक्ष-प्राप्ति तकका कार्य ये मन्त्र करते थे । हम कह सकते हैं कि भौतिक विज्ञानका चमत्कार हम देख रहे हैं, देख सकते हैं, इस प्राचीन विज्ञानसे हमें कुछ भी लाभ नहीं हो रहा है । बात ठीक तो है किंतु इस भौतिक विज्ञानके विकासके लिये कितने व्यक्ति क्रियाशील हैं, कितना पैसा खर्च किया जा रहा है, कितने परीक्षण किये जा रहे हैं और मन्त्र-शास्त्र-जैसे विषयपर क्या प्रयत्न किये गये या किये जा रहे हैं—इस बातको सब समझ सकते हैं और इसके साथ ही इस अवरोधका समाधान हो जाता है ।

आजके विज्ञानके अनुसार मन्त्रोंमें निहित ध्वनि कोई महत्त्व नहीं रखती; क्योंकि श्रव्य ध्वनि (ऑडिबल साउण्ड) यदि डेढ सौ वर्षोंतक निरन्तर उत्पन्न की जाय तो उससे केवल एक प्याली पानी गरम करने लायक ऊर्जा उत्पन्न हो सकती है; किंतु भारतीय मतानुसार तो इस श्रव्य ध्वनिको निम्नश्रेणीकी ध्वनि माना जाता है । सबसे अधिक प्रभावशाली ध्वनि तो केवल अनुभव की जाती है । मानसिक जपमें होंठ तक नहीं हिलते । हमें श्वासमें ही वह ध्वनि प्रस्फुटित होती अनुभव होती है । इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि जो हमें अनुभव होता है, उस शब्दके लिये स्फोट आवश्यक होता है और यह भी सम्भव है कि उस स्फोटको नापनेके लिये आजके विज्ञानके पास कोई साधन नहीं हों । कर्णातीत तरंगें उत्पन्न करनेके लिये हमारे शरीरमें कोई ऐसा अवयव नहीं है किंतु जो जपमें स्फोट होता है वह भी उन कर्णातीत तरंगोंसे कम प्रभावशाली नहीं हैं । भारतीय सिद्धान्त शब्दको ब्रह्मका स्वरूप मानकर उसकी प्रतिष्ठा करता है तथा शब्दमें एक ही तन्मात्रा है । शेष तत्त्वोंमें तन्मात्राओंका भार बढ़ता जाता है । मन्त्रशास्त्रमें आकाश-तत्त्वकी साधना की जाती है और योगमें वायुकी । योगी प्राण-वायुके द्वारा जिस कुण्डलिनीका जागरण करता है, उसीका जागरण मन्त्रके स्फोटसे हो सकता है । जिस अगम्य स्थितिको योगी प्राप्त करता है, वही स्थिति आकाश-तत्त्वकी उपासनासे सुलभ हो सकती है ।

वास्तवमें मन्त्रशास्त्र केवल ध्वनिविज्ञान ही नहीं है भावनाविज्ञान भी है । ध्वनि तो गुणित करनेवाली शक्ति है । मुख्यतः मन्त्रकी भावना क्रियाशील रहती है । ध्वनिकी तरंगें क्रमसे गमन करती हैं और विचारोंकी चुम्बकीय शक्ति (~~)रूपमें गमन करती है । अभ्यास करनेपर दोनोंकी एक ही गति हो सकती है । वेदोंकी ऋचाओंके स्वर इसी क्रमकी पुष्टि करते हैं । ध्वनिविज्ञानकी विशेषता अगर देखनी है तो संगीतशास्त्र है, जिसके परीक्षण स्थावर और जंगम जगत्पर किये जा रहे हैं । पहले दीपक जलते थे । आज गायें रागसे मुग्ध होकर अधिक दूध देती हैं, पेड़-पौधे जल्दी बढ़ते हैं अर्थात् शक्तिके उपयोगोंमें ही परिवर्तन हुआ है, मूल शक्ति तो अक्षुण्ण है तथा इन प्रयोगोंसे यह तो स्पष्ट हो ही जाता है कि इस माध्यममें शक्ति है । भारतीय परम्परा-नुसार वैखरी वृत्तिसे जो स्फोट होता है वह अधिक शक्तिशाली और प्रयत्नसाध्य होता है । अतः हम मन्त्रका फार्मूला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शब्द× भावना शक्ति= मन्त्र होता है । ध्वनि अपने आपमें एक वातावरण है । संध्याके समय मन्दिरोंमें गूँजती वाद्योंकी ध्वनि एक भक्तिभावनाका संचार करती है तो युद्धके समय बजनेवाली बाजेकी धुन वीर-रसका उद्दीपन करती है । मृत्युके समयका संगीत श्रोताके मनमें करुणाका भाव उत्पन्न करता है । यह है ध्वनिका प्रभाव जो अन्ताराष्ट्रीय साम्य है, इससे प्राणीमात्र प्रभावित होता है ।

दूसरी विशेषता शब्दकी संवहनीयता होती है । शब्द ठोस वस्तुके माध्यमसे भी गमन कर सकता है । एक ठोस वस्तुको एक तरफ यदि ठोका जाय तो वह ध्वनि दूसरी तरफ सुनी जा सकती है । रेलगाड़ीके बहुत दूर रहनेपर भी पटरियोंमें खट्-खट्की आवाज होने लगती है । इस सब-का यह अर्थ होता है कि शब्दकी शक्ति अपरिमेय होती है । पृथ्वीपर जितने परिवर्तन होते हैं, उनमेंसे बहुत-से शब्दके द्वारा किये जाते हैं । इसके साथ ही यह भी सर्व-विदित है कि शक्तिके स्रोतोंमेंसे शब्द भी एक शक्तिका स्रोत है । भीषण शब्दसे व्यक्ति भयभीत हो जाता है, मकान धराशायी हो जाते हैं और मधुर शब्दसे हर कोई प्रसन्न हो जाता है । कभी-कभी हमारे कानोंमें किसी परिचित गानेका अथवा शब्दावलीकी गूँजका भान होता है जब कि प्रत्यक्षमें उसका कारण कहीं भी नहीं रहता । इसका अर्थ यही नहीं है कि वह हमारा पूर्वश्रुत अनुभव है, वरं वह ध्वनि गूँज रही होती है और हमारे कान उसे ग्रहण कर लेते हैं । इसी तरह कई बार हमें अपरिचित स्वरोंका भी भान होता है, किंतु हम उनपर ध्यान नहीं देते; क्योंकि हमारा-उनका कोई पूर्व सम्बन्ध नहीं रहता । और इसी अर्थमें भारतीय विज्ञान कहता है—'यत्पिण्डे तद् ब्रह्माण्डे' । किसी भी इन्द्रियको प्रबल और विशुद्ध कर लेनेपर वह प्रत्यक्ष और परोक्षका ज्ञान कर लेनेमें समर्थ हो जाती है । यह अनुभव हमें शब्दकी शक्तिका ज्ञान करा देता है । विचारोंके चुम्बकीय प्रवाहका परीक्षण हमें होता रहता है । जैसे किसी सिंहकी गुफा-के पास जानेपर हमें स्वतः भयका भान होता है, रोमाञ्च हो उठता है । रात्रिमें डाकुओंद्वारा आतंकित क्षेत्रमें प्रवेश कर लेनेपर मनमें एक अनजानी आशंका छा जाती है । इस कथनमें, कि पहले ऋषियोंकी कुटियामें सिंह और मृग एक ही स्थानपर एक साथ पानी पीते थे, भी यही विचारोंकी विद्युत्-शक्ति प्रभावशाली रहती थी । किसी भी कुत्तेको हम यदि प्रेमसे देखते हैं तो वह पूँछ हिलाने लग जाता है और क्रोधसे देखनेपर गुर्राता है । इसमें भी उसी वैचारिक विद्युत्-शक्तिका प्रवाह प्रभावी होता है । इस सबसे यह जाना और माना जा सकता है कि शब्द और विचार दोनोंमें एक प्रबल शक्ति रहती है तथा मन्त्रोंमें इन दोनों ही शक्तियों-का समावेश रहता है ।

भारतीय लिपि और अक्षर पूर्णतः वैज्ञानिक हैं तथा उनकी ध्वनियोंमें एक विशेष प्रकारका रहस्य छिपा हुआ है । इसके साथ यह कठिनता अवश्य है कि उन ध्वनियों-का पूर्ण विश्लेषण, गुण और प्रभाव विशदरूपसे विवेचित नहीं किये गये; जिसका कारण भी उन ऋषियोंकी सूत्र-पद्धति ही है । मन्त्रमें 'आस्था' एक प्रबल और आवश्यक तत्त्व होता है जिसके लिये लोग आनाकानी करते हैं । वैसे बिना आस्थाके भी मन्त्रशक्तिका अनुभव और प्रयोग किया जा सकता है, किंतु उसमें विलम्ब अधिक लगता है; क्योंकि मन्त्र अपने आपमें एक विशिष्ट वातावरण रखता है तथा उसकी निरन्तरतासे व्यक्ति उस वातावरणसे अवश्य प्रभावित होता है । मन्त्रोंके साधनमें किसी मन्त्रको दस हजार बार, किसीको एक लाख बार और किसीका पुरश्चरण किया जाना निर्दिष्ट होता है । यह सब उस मन्त्रकी और उद्देश्यकी विशेषतापर निर्भर करता है ।

जिस पाण्डु रोगकी चिकित्सा ऐलोपैथी दो और तीन सप्ताहमें कर सकती है, आयुर्वेद एक सप्ताहमें करता है, उसीकी चिकित्सा मन्त्रके द्वारा तीन ही दिनमें कर दी जाती है और विशेषता यह कि रोगीको न दवा दी जाती है, न परहेज बताया जाता है । झाड़नेपर जिस पानीमें हाथ दिलाया जाता है, वह पानी ही पीला हो जाता है और तीसरे दिन तो पानी साफ हो जाता है । इस प्रकारकी चिकित्सा करनेवाले अब भी मौजूद हैं । टाइफाइड एक भयानक बीमारी है, इसके इलाजमें बड़ी सावधानी बरतनी पड़ती है और इसके साथ ही इसका इलाज महँगा भी पड़ता है; किंतु यह सुनकर हर किसीको आश्चर्य होगा कि मैंने एक व्यक्तिको देखा है जो उसे झाड़कर साफ कर देता है और वह भी तीन ही दिनोंमें, जिसपर विशेषता यह कि रोगी न आ सके तो उसके कमीज-बनियानको ही झाड़ दिया जाता है । आजतक उनकी यह चिकित्सा कभी असफल हुई हो, यह न देखनेमें आया न सुननेमें । साँप काटेका इलाज करनेवाले तो प्रायः प्रत्येक प्रान्तमें मिल जाते हैं और उनकी विचित्र विधियाँ भी हमलोग सुनते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

…रहते हैं; किंतु आज हम उनपर विश्वास करनेको तैयार नहीं हैं। यही एक कारण है कि ये सब विधियाँ लुप्त होती जा रही हैं, इन्हें हमने ही अन्धविश्वास कहकर हेय मान लिया है, दूसरा कारण यह भी है कि इस विज्ञानके ज्ञाता कम रह गये और ढोंग अधिक चल गया, इसलिये भी इसपरसे विश्वास उठता जा रहा है। पर इसका अर्थ यह कभी नहीं होता कि यह शास्त्र ही झूठा है। आज इसे प्रचलित किया जाय और व्यवहारमें लाया जाय तथा इसके परीक्षण किये जायँ तो राष्ट्रीय श्रम और शक्ति दोनोंकी बचत हो सकती है।

दक्षिण भारतकी तीर्थयात्रा

(लेखक—सेठ श्रीगोविन्ददासजी, श्रीमती रत्नकुमारी देवी, श्रीगोविन्दप्रसादजी श्रीवास्तव)

[गताङ्क पृष्ठ १२५३ से आगे]

उपसंहार

दक्षिण भारतकी हमारी यह तीर्थयात्रा तीन सितम्बर १९६० को जबलपुरसे आरम्भ हुई और हम ९ अक्टूबर १९६० को वापिस जबलपुर पहुँचे। यद्यपि उत्तराखण्डकी यात्राके सदृश हमारी यह यात्रा भी धार्मिक तीर्थयात्राके रूपमें ही रक्खी गयी थी, परंतु हम दक्षिण भारतके तामिलनाड, केरल, मैसूर और आन्ध्र चारों राज्योंकी राजधानियों, मद्रास, त्रिवेन्द्रम् और हैदराबाद तथा धार्मिक स्थलोंके सिवा चारों राज्योंके कुछ अन्य प्रमुख स्थलोंको भी गये। इनमें प्रमुख थे—बेंगलौर, मैसूर, हैदराबाद, औरंगाबाद, एलोरा और अजन्ता। तामिलनाड, केरल और आंध्रमें तो प्रधानतया हम तीर्थोंको ही गये, परंतु हमारी बेंगलौर, मैसूर, हैदराबाद, एलोरा, अजन्ताकी यात्रासे तीर्थयात्राका कोई खास सम्बन्ध नहीं था। मैसूर हम दशहरेपर पहुँचे। दशहरा मैसूरमें जिस प्रकार शानसे मनाया जाता है, भारतमें इस समय कहीं नहीं। हमने मैसूरमें दशहरेका दरबार देखा, जुलूस देखा, रोशनी देखी, चूँकि हम मैसूरके भूतपूर्व महाराजा और इस समयके राज्यपालके मेहमान थे, इसलिये इन सभी आयोजनोंको देखनेकी हमें सभी प्रकारकी सुविधाएँ प्राप्त थीं। मैसूरमें हमने यहाँका प्रसिद्ध वृन्दावन-उद्यान भी देखा, जिसे गोविन्ददास तो दो बार पहले भी देख चुके थे, परंतु शेष लोगोंने उसे पहली बार ही देखा था। गोविन्ददास संसारके प्रायः सभी देशोंमें घूमे हैं, परंतु उनका मत है कि मैसूरके 'वृन्दावन-उद्यान' के सदृश उद्यान, जो रात्रिकी रोशनीमें एक स्वप्न-भूमिके सदृश प्रतीत होता है, संसारमें अन्य किसी जगह नहीं है। जहाँतक इस पुस्तकका सम्बन्ध है, बेंगलौर, मैसूर, हैदराबाद, औरंगाबाद, एलोरा और अजन्ता इस यात्राके दायरेके बाहर हैं। चूँकि यह पुस्तक दक्षिण भारतकी तीर्थयात्रासे सम्बन्ध रखती है, अतः पुस्तकका आरम्भ मंगलगिरिसे होकर पुस्तककी समाप्ति रामेश्वरम्में हो जाती है।

हमारी यह यात्रा रेलगाड़ी, मोटर, बस और कारसे हुई। ठहरनेका भी हर-स्थानपर सुचारु प्रबन्ध रहा। त्रिवेन्द्रम् और मैसूरमें तो हम वहाँ भूतपूर्व नरेशके मेहमान थे। बेंगलौरमें हमारे ठहरनेका प्रबन्ध मैसूर राज्यके मुख्यमन्त्री श्रीजेटीने किया था। रामेश्वरम्में हम मन्दिर कमेटीके एक विशाल भवनमें ठहराये गये। श्रीरंगम्में वहाँके एकमात्र पंडा श्रीकस्तूरी रंगाचार्यके नेपाल-भवनमें तथा इसी प्रकार श्रीबालाजी एवं अन्य स्थलोंपर मन्दिर कमेटीकी अतिथिशालाओं अथवा धर्मशालाओंमें सुविधापूर्वक ठहरे। इस प्रकार उत्तराखण्डकी यात्राके सदृश हमें न तो पैदल यात्रा करनी पड़ी और न वहाँकी गंदी चट्टियोंके सदृश स्थानोंमें ठहरना पड़ा। भोजनके लिये भी यहाँ हर वस्तु प्राप्त रही तथा कपड़े धोनेके लिये भी यहाँ धोबी भी अनुपलब्ध नहीं थे। इसलिये हमने उत्तराखण्डकी यात्रामें जिन तीन प्रधान शारीरिक असुविधाओंका सामना किया था अर्थात् भोजन, वस्त्र और आच्छादन, उनमेंसे कोई भी असुविधा यहाँ नहीं रही। परंतु उत्तराखण्डकी पैदल यात्रामें हिमालय तथा वहाँकी पवित्र नदियोंके कारण जिस प्राकृतिक सौन्दर्यके हमें यत्र-तत्र पग-पगपर दर्शन हुए और शारीरिक असुविधाओंके रहते हुए भी हमारा मन जिस स्तरपर रहा, इस यात्रामें हम उस सुखसे वञ्चित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहे। जहाँतक आध्यात्मिक भावनाओंका सम्बन्ध है, चूँकि उत्तराखण्ड यात्रा भी तीर्थयात्रा थी और यह भी तीर्थयात्रा, वे भावनाएँ दोनों यात्राओंमें एक-सी रहीं, जिनका उल्लेख उत्तराखण्डकी यात्रा पुस्तकके सदृश इस पुस्तकमें भी यत्र-तत्र हुआ।

लगभग छः हजार मीलकी दक्षिणकी इस तीर्थयात्रा-में हम निम्नलिखित प्रधान स्थानोंको गये।

मंगलगिरि, मंगलगिरिसे लौटकर विजयवाड़ा और विजयवाड़ासे मद्रास। मद्राससे तिरुपति बालाजी। बालाजीसे पक्षी-तीर्थ, महाबलीपुरम् और फिर मद्रास। मद्राससे कांचीपुरम्, कांचीपुरम्से श्रीरंगम्, श्रीरंगम्से, त्रिवेन्द्रम्, त्रिवेन्द्रम्से कन्याकुमारी, कन्याकुमारीसे छोटे-नारायण, लम्बे-नारायण, तोताद्रि और वहाँसे तिनेवली होकर मदुरा। मदुरासे रामेश्वरम्। रामेश्वरम्से धनुषकोटि और फिर रामेश्वरम् लौटकर हम बेंगलौर, मैसूर, वहाँसे हैदराबाद और हैदराबादसे औरंगाबाद होकर एलोरा और अजन्ताकी गुफाओंको देख मनमाड़ रास्ते जबलपुर लौटे। परंतु जैसा कि ऊपर कहा है प्रस्तुत पुस्तकका केवल तीर्थयात्रासे सम्बन्ध होनेके नाते रामेश्वरम्के बाद शेष स्थानोंकी यात्राका वर्णन हमने इसमें नहीं किया।

जिस समय हमने इस यात्राका कार्यक्रम बनाया, उस समय केवल ऐसे स्थानोंको चुना था, जिनकी तीर्थकी दृष्टिसे अखिल भारतीय ख्याति है। अतः यह यात्रा केवल ऐसे ही तीर्थस्थलोंकी हुई। यों तो जो तीर्थ-स्थल दक्षिणमें विख्यात हैं, उन सब स्थानोंको हम नहीं जा सके। साथ ही जहाँतक मन्दिरोंका सम्बन्ध है, वहाँ तक तो दक्षिणमें मन्दिरोंका ऐसा जाल बिछा हुआ है और यहाँके छोटे-से-छोटे मन्दिर भी इतने विशाल हैं कि यदि समूचे दक्षिणकी दृष्टिसे तीर्थयात्रा की जाय तो वह महीनोंका काम है।

हमने जिस ऋतुमें यात्रा की, वह ऋतु भी हमें बड़ी सुहावनी मिली। गरमी समाप्त हो गयी थी, वर्षा भी बहुत कुछ बीत चुकी थी। यद्यपि अक्टूबरमें दक्षिणमें फिर वर्षा होती है, किंतु हमारी यह यात्रा इस वर्षाके पूर्व ही समाप्त हो गयी। अतः हमें न कहीं गरमी मिली, न वर्षा। केवल तीन जगह पानी बरसा। एक तिरुपतिमें, दूसरे मैसूरमें और तीसरे बेंगलोरमें।

प्राकृतिक दृष्टिसे उत्तराखण्डकी यात्रामें हमने हिमालय और उससे निकली हुई सरिताओंके मनोरम दृश्य देखे थे। दक्षिणकी इस यात्रामें हमें दक्षिणके अनेक ऐसे भूखण्ड दिखायी दिये, जिन्हें समुद्रने अपने वरदानसे एक विशेष प्रकारका सौन्दर्य प्रदान कर दिया है। नारियलके ऊँचे-ऊँचे वृक्षों और केलेके वनोंने एक विशिष्ट प्रकारकी हरियाली इन भूखण्डोंको दी है। केरलके सागरदीर्घिका (Back waters) की सुषमा तो अपूर्व ही थी। और फिर समुद्रकी उठती हुई लहरोंसे इस शोभामें असीम वृद्धि हो गयी थी। इसके सिवा उत्तराखण्ड-में जो कुछ था, वह प्रकृतिकी देन थी। मनुष्यने वहाँ कुछ भी नहीं किया था। दक्षिणमें मनुष्यने भी बहुत कुछ किया है। यहाँके मन्दिर आज यहाँकी नैसर्गिक वस्तु न होते हुए भी प्रकृतिकी देनके सदृश ही हो गये हैं।

हिमालयके निर्जनमें हमने गत वर्ष प्रकृतिकी लीला देखी। दक्षिणके आँचलमें इस वर्ष पुरुषका पुरुषार्थ देखा। नारीके नर्तन और पुरुषके पुरुषार्थमें सृष्टिका आदि और अन्त, सृजन और संहार दोनों ही बीज रूपसे विद्यमान हैं।

उत्तरमें चतुर्दिक् नदी, नाले, झरने, जल-प्रपात, उमगती सरिताएँ, हिमालयकी उत्तुङ्ग शैल-मालाएँ, विशाल हिमानी, चीड़, देवदार तथा अन्य अगणित भाँतिकी विटप-सृष्टि, लताएँ, झाड़ी, झुरमुटों, पुष्प-पौधोंसे युक्त समृद्ध वनस्पति-जगत् और अनन्त खनिज रत्नोंका आगार हिमालय, जिसका कण-कण शोभायमान था; जान पड़ता, अवनि अपनी श्यामल कायापर हरित वसन धारण किये है और ऊपर नीलाकाशमें पल-प्रतिपल परिवर्तित विविध दृश्योंवाले मेघ परिधानकी चूनरी सिर-पर डाले कभी छातीतक अवगुण्ठन काढ़े कोई नववधू कुलवंती नारी नवेली बन जाती थी, कभी नख-शिख शृंगार दिये अवगुण्ठनरहित मुक्त हास करती अङ्ग-अङ्ग उमगाती कोई चपला अलबेली इठलाती थी, कभी कोई भावविमूढ़ा एक अल्हड़ बाला बन ऐंठ जाती थी और कभी प्रौढ़ा जननी बन लहलहाते धान्यभरे आञ्चलसे सभीको सरसाती थी। इन विविध रूपों, विविध दृश्योंमें नारीका जैसा रूप, उसका जैसा सौन्दर्य, अनुपम शोभा, नख-शिख शृङ्गार और जैसी सामर्थ्य उत्तरके आञ्चलमें देखनेको मिली, अन्यत्र दुर्लभ है। दक्षिणमें भी कोसोंतक फैली समतल भूमि, सुदूर दृष्टि डालो तो अवनिसे माथा टेके अम्बर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और आरम्भसे अन्ततक नारियल, केलि, आम्र, ताड़ और सुपारीके घने बगीचे । मोटर-मार्गोंके दोनों ओर वट, पीपल और इमलीके वृक्ष, तो मैदानोंमें आम, कटहलके वृक्ष, अनन्नासकी झाड़ियाँ और अंगूरकी लताएँ, जहाँ देखो तहाँ चतुर्दिक् शोभित थी सघन विटप-सृष्टि । फिर दूर-दूरतक लहलहाते धानके खेत, ज्वार और बाजराकी हवामें झूमती फसलें, जो दक्षिणकी समृद्धिकी प्रतीक थीं । कोई भी थका-माँदा मुख-म्लान व्यक्ति दक्षिणकी इस हरियालीकी महकसे सहज ही मुस्करा उठेगा । एक ओर वहाँके विशाल मन्दिर मानवके पुरुषार्थके प्रतीक बने आकाश चूम रहे थे, तो धन-धान्यसे भरे ये हरे-भरे खेत उसके उद्यमका सौरभ बिखेर रहे थे । कृष्णा, कावेरी आदि समृद्ध सरिताओं, केरलकी समुद्रदीर्घिका (बेक वाटर्स), मद्रास, महाबलीपुरम् और कन्याकुमारीके विस्तीर्ण समुद्रतटने दक्षिणको प्राकृतिक दृष्टिसे समृद्ध किया है तो दक्षिणवासियोंने प्रकृतिकी इस देनका उपयोग कर उसे सुन्दर और समुज्ज्वल बना दिया है । प्रकृति और मानवके इस सहयोगसमन्वित रूपकी छटा निराली है । उत्तरभारतमें हमने ललनाओं-जैसी मचलती, कल्लोलें करती सुकुमार सरिताओंकी सामर्थ्य, साहस और संकल्प-शक्तिको देखा तो दक्षिणमें हमने धीर-गम्भीर समर्थ सिन्धुकी शान भी देखी । अपनी आन-बानपर अड़ा दक्षिणका विस्तीर्ण समुद्रतट भारतको प्रकृतिकी महान् देन है । भारतके उत्तरी छोरपर हमने देखा था सिन्धु-सहवाससे संकल्पित सरिताओंकी सरपट दौड़को, उनके मनोरथकी विकलताको; यहाँ हमने देखा, उन्हींके आलिंगनके लिये जलधिकी प्रतिपल उमगताको, इस उमगताके कारण उसकी उठती हुई अगणित ऊर्मियों और लहरोंको एवं हमने सुना इस मिलनके लिये इन कल्लोलोंद्वारा सागरके अनवरत गानको ।

इस तरह भारतका उत्तरी आञ्चल जहाँ सरिताओंके समागम, सम्मिलन, उनके सान्निध्य तथा सहवाससे समृद्ध और सुखी है, वहाँ दक्षिण विस्तीर्ण सिन्धु-तटसे सौभाग्यशाली । एक क्षेत्र सलिलाओंके पुण्य माहात्म्यसे कृतकृत्य है, तो दूसरा उदधिकी गुण-गरिमासे उपकृत और बड़भागी !

इस प्रकार उत्तर और दक्षिण भारतके इस सहसमन्वित स्वरूपके दर्शन कर हमारी इस यात्रामें हमें यह अनुभव हुआ कि सांस्कृतिक दृष्टिसे भारत विभिन्नताके बाद भी मिलकर एक है । हमारे ऋषि-मुनियों, संतों और भक्तोंने इस समूचे राष्ट्रको सांस्कृतिक दृष्टिसे जो एक रखनेका प्रयत्न किया है, वह इस तीर्थविधानमें स्पष्ट परिलक्षित होता है । यह बात हमें उत्तराखण्डकी यात्राके समय भी दिखी थी और दक्षिणकी इस यात्रामें भी दृष्टिगोचर हुई । फिर हमारे इन मनीषियोंने राजनीतिक दृष्टिसे भी देशको एक सूत्रमें बाँधे रखनेका कम प्रयत्न नहीं किया । चक्रवर्ती राज्यपद्धति इसी उद्देश्यसे प्रचलित हुई थी और उसे धार्मिक तथा सांस्कृतिक रूपसे दिया गया था; क्योंकि चक्रवर्ती सम्राट् वही हो सकता था जो अश्वमेध और राजसूय यज्ञ करे । अश्वमेध और राजसूय यज्ञके लिये समूचे देशको विजय करना पड़ता था । हाँ, इस विजयमें माण्डलीक राजाओंका स्थान अक्षुण्ण रहता था । चक्रवर्ती राजा भी देशके विभिन्न भागोंको विजयकर भिन्न-भिन्न स्थलोंके राजाओंको बनाये रखते थे और उनका राज्य उन्हें ही सौंप देते थे । कैसा आध्यात्मिक और आधिभौतिक सांस्कृतिक सम्मिश्रण था !

आज यदि सच्ची भारतीय संस्कृतिके दर्शनका कोई इच्छुक है तो उसे दक्षिणमें ही हो सकते हैं । जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि भारतीय संस्कृति धर्मप्राण संस्कृति है । धर्म शब्दको हमारे मनीषियोंने अत्यन्त व्यापक अर्थमें लिया है जिसके अन्तर्गत व्यष्टि और समष्टिका समस्त जीवन आ जाता है । इस धर्मप्राण संस्कृतिकी नींव अध्यात्म है । जिसपर अधिभूतका भवन खड़ा हुआ है । जिन मन्दिरोंका कार्य अध्यात्मकी प्रेरणा देना है उनका रूप तो आधिभौतिक ही हो सकता था । ऐसे जिस प्रकारके मन्दिरोंके दर्शन हमें दक्षिणमें होते हैं, वैसे इस देशमें अन्यत्र कहीं नहीं । दक्षिणके छोटे-से-छोटे देवालयके सम्मुख उत्तरके बड़े-से-बड़े देवालय भी मन्दिरोंके सदृश न दिख मढ़ियोंके सदृश दिखायी देते हैं । कितने विशाल हैं यहाँके मन्दिर ! शायद ही कोई ऐसा मन्दिर हो जो लम्बे-चौड़े परकोटेसे न घिरा हो और जिस परकोटेके द्वारोंपर विशाल गो-पुर न बने हों । पिछले अध्यायोंमें हम यहाँके कुछ प्रमुख मन्दिरोंका वर्णन कर आये हैं । दक्षिणके अखिल भारतीय ख्यातिवाले मन्दिर हैं—श्रीवेंकटेश्वर बालाजी, शिवकाञ्ची, विष्णुकाञ्ची, श्रीरंगम्, कन्याकुमारी, मीनाक्षी और श्रीरामेश्वरम् । यद्यपि इन मन्दिरोंके सिवा भी हम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मार्गके अन्य मन्दिरोंके दर्शनोंसे भी वञ्चित नहीं रहे। पर विशालता, भव्यता और कलाकी उत्कृष्टताकी दृष्टिसे जितने सर्वाङ्गसुन्दर उक्त मन्दिर हैं, दक्षिणमें कदाचित् अन्य जगह नहीं। श्रीरंगम्‌के मन्दिरके परकोटोंमें तो एक नगर ही बसा है। मीनाक्षी देवीके मन्दिरमें विशालताके साथ जो कला दृष्टिगोचर होती है, वह भारत ही क्या समूचे संसारके किसी मन्दिर अथवा अन्य इमारतमें नहीं। काञ्चीपुरम्‌के शिवकाञ्चीके मन्दिरका गोपुर १८८ फुट ऊँचा है और इस गोपुरके नीचे मन्दिरमें जानेका जो फाटक है तथा उसके जो दरवाजे, इतना बड़ा फाटक और वैसे कपाट कहीं नहीं हैं। रामेश्वरम्‌के मन्दिरकी परिक्रमाओंके सदृश परिक्रमाएँ कहीं भी देखनेको नहीं मिलतीं। फिर इन मन्दिरोंका निर्माण ऐसे समय हुआ था जब भारी वस्तुओंको उठाने और उन्हें निश्चित स्थानोंपर व्यवस्थापूर्वक लगानेके लिये क्रेन इत्यादिके सदृश कोई मशीनें नहीं थीं; अतः इन मन्दिरोंका निर्माण किस प्रकार हुआ होगा, यह सोचते ही दाँतोंतले अँगुली आ जाती है। आज नयी दिल्ली तथा दुनियाँमें जो इमारतें बन रही हैं और जिनपर लाखों नहीं, करोड़ों रुपया व्यय हो रहा है, उन इमारतोंसे यदि इन मन्दिरोंका मिलान किया जाय तो सूक्ष्म और स्थूल सभी दृष्टियोंसे स्थापत्यकलाका विकास, जो आज चाहे सीमापर पहुँच गया हो, परंतु जब इन मन्दिरोंका निर्माण हुआ था, उस समयकी स्थापत्यकला आधुनिक विकसिततम कही जानेवाली स्थापत्यकलासे कहीं श्रेष्ठ थी। और आज इस प्रकारके मन्दिरोंका निर्माण एक असम्भव कल्पना हो गयी है।

रोमके रोमन कैथलिक गिरजाघरोंकी हमने बड़ी प्रशंसा सुनी थी। गोविन्ददास इटली हो आये हैं और उन्होंने रोमके इन गिरजाघरोंको देखा है। रोमके ये गिरजाघर विशाल हैं, भव्य हैं, कलात्मक भी हैं, इसमें संदेह नहीं; परंतु दक्षिणके इन मन्दिरोंके सम्मुख विशेषकर मदुराके मीनाक्षी-मन्दिरके सम्मुख ये गिरजाघर नगण्य कहे जा सकते हैं। इसीलिये हमारा मत है कि संसारकी सात आश्चर्यजनक वस्तुओंमें जो एक स्थान ताजका है, वह ताजका न होकर मीनाक्षी देवीके मन्दिरका होना चाहिये।

इन मन्दिरोंमें जो मूर्तियाँ स्थापित हैं, वे सब श्याम पाषाणकी हैं। विष्णु, राम-कृष्णकी मूर्तियोंका श्याम होना तो ठीक है, परंतु शिवके वर्णके सम्बन्धमें केवल पुराने कवियोंने ही नहीं, तुलसीदासजीने भी लिखा है—

'कुंद इंदु सम देह,
उमा रमन करुना अयन।'

—उन शिवजीकी मूर्ति भी श्याम है। इसी प्रकार गणेश, स्वामिकार्तिक, लक्ष्मी, पार्वतीकी मूर्तियाँ भी श्याम ही हैं। उत्तर भारतमें ऐसा नहीं है। दक्षिणकी ये समस्त मूर्तियाँ श्याम होनेका क्या कारण है, यह समझमें नहीं आया। यदि विष्णु, राम-कृष्णकी श्याम मूर्तियोंके साथ शिव, गणेश, स्वामिकार्तिक, लक्ष्मी, पार्वती, राधा आदिकी मूर्तियाँ श्वेत होतीं तो इसमें संदेह नहीं कि मूर्तियोंकी दृष्टिसे इन मन्दिरोंका सौन्दर्य कहीं अधिक बढ़ जाता।

(शेष आगे)

श्रीराधा

(रचयिता—साहित्याचार्य पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री 'राम')

करुणामयी है, तरुणारुण सहस्रकान्ति,
धोनेको चरण ललचाती वरुणानी है,
सच्चित् आनन्दमयी जगमग होती ज्योति
भरत सतत रति कोटि जहाँ पानी है।
नेति कहि हारे वेद जिनके निरूपणमें
शेष शारदाकी भी निरुद्ध हुई बानी है,
रानी धेनुलोककी पुरानी नयी नित्य राधा,
जित कोटि काम श्यामकी वे महारानी हैं॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कीर्तन

[कहानी]

(लेखक—श्री 'चक्र')

कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान् गुणः ।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसङ्गः परं व्रजेत् ॥
(श्रीमद्भा० १२ । ३ । ५१)

'संकीर्तनकी चार पद्धतियाँ हैं—१–हनुमदीय, २–शाम्भवी, ३–नारदीय और ४–वैयासकीय।' उन्होंने स्वयं इनकी व्याख्या की—'प्रेमोन्मत्त होकर स्वर-तालकी बात भूलकर, उछलते-कूदते, उद्दाम नृत्य करते जो कीर्तन किया जाता है, वह हनुमदीय पद्धतिका कीर्तन है । आप मेरा शरीर देख ही रहे हैं, इस पद्धतिका श्रम सँभालनेकी शक्ति मुझमें नहीं है ।'

श्रोताओंको सहज हँसी आ गयी । बहुत कृशकाय हैं वे और लम्बे कुर्तेके ऊपर दुपट्टा डालकर अधिक दुर्बल ही दीखते हैं । वैसे ही सिर छोटा है और मुख लम्बा, उसपर जब महाराष्ट्र पण्डितोंवाली गोल पगड़ी रख लेते हैं, उन्हें देखकर लोग प्रायः मुस्करा देते हैं । अब इस सूखे शरीरसे वे उछल-कूदकर उद्दाम कीर्तन करने लगें, यह कैसे बनेगा ? उनकी देह तो ऐसी है कि डर लगता है; झटका लगा और टूटी अथवा आँधीमें पड़े तो उड़ जायँगे ।

'स्वर-तालके साथ लास्य या ताण्डव नृत्य करते हुए, नृत्यके नियमोंका पालन करते जब संकीर्तन किया जाता है, तब वह शाम्भवी पद्धति होती है ।' उन्होंने बतलाया—'इस पद्धतिसे संकीर्तनके लिये नृत्य-संगीत दोनोंका प्रशिक्षण आवश्यक है । कुशल नर्तक ही यह पद्धति अपना सकते हैं ।'

'बंगाल तथा उत्तर भारतमें प्रायः नारदीयपद्धतिसे संकीर्तन होता है ।' वे कह रहे थे—'बाजोंके साथ अथवा बिना वाद्यके, बैठे हुए अथवा खड़े होकर भगवन्नामका संकीर्तन नारदीयपद्धति है । इसीमें जब लोग प्रेमोन्मत्त होकर उछल-कूद करने लगते हैं, वह हनुमदीयपद्धति हो जाती है ।'

'एक भूल मत कीजिये !' वे खुलकर हँसते होंगे कभी, ऐसा उनके मुखको देखकर लगता नहीं । ओष्ठोंमें ही मुस्कराये—'जान-बूझकर हाथ-पैर पटकना, उछलकूद करना और चश्मा बचाकर मूर्च्छित होकर गिरना कोई स्वस्थपद्धति नहीं है । यह तो रुग्णपद्धति है । मानसिक रोगी ही दम्भ करते हैं । वे दयाके पात्र हैं ।'

'महाराष्ट्रके वारकरी सम्प्रदायने संकीर्तनकी वैयासकीय पद्धति अपना रक्खी है । मैं इसी पद्धतिका अनुसरण करता हूँ ।' वे बोले—'बीच-बीचमें नाम-ध्वनि, पद-कीर्तन और भगवान् एवं उनके भक्तोंकी कथा चलती रहे, यह भगवान् व्यासकी पद्धति है । इसमें प्रमुख कीर्तनकार कथा सुनाता है, तब दूसरे श्रोता होते हैं और जब वह नाम-ध्वनि या कोई पद्यांश कीर्तन करता है तो सब उसका साथ देते हैं ।'

एक हाथमें करताल और एकमें एकतारा लेकर वे खड़े थे श्रोताओंके मध्य । कभी एकतारेका तार झंकार करता था और कभी करताल । इतनी व्याख्या संकीर्तनकी करके उन्होंने प्रारम्भ किया—

'गोपाल गोविन्द कृष्ण, गोपाल गोविन्द कृष्ण,
गोपाल गोविन्द कृष्ण गोपाल ।'

× × ×

एक सज्जन थे—उन्हें सज्जन ही कहना चाहिये; क्योंकि किसीको दुर्जन तो वह कहता है, जो स्वयं दुर्जन होता है । महाराज युधिष्ठिर दुर्योधनको भी 'सुयोधन' कहते थे । इतनी बात अवश्य थी कि वे सज्जन भटक गये थे—कहीं मेले-ठेले या जंगलमें नहीं, जीवनके पथमें । बहुत लोग भटक जाते हैं इस पथमें । बड़ा बीहड़ है यह जीवन-पथ !

'सँभालके चल रे बटोही ! बटमार लगे इस मगमें ।'
'तेरी गठरीमें लागा चोर बटोही क्यों सोवै ।'

बेचारे भटक गये थे और जब कोई भटक जाता है तब क्या होता है ? बिना मार्गके चलना पड़ता है । दुःख उठाता है और ठोकरें खाता है । सुमार्गकी बात तो बहुत स्पष्ट है—

एष निष्कण्टकः पन्था यत्र सम्पूज्यते हरिः ।
कुपथं तद्विजानीयाद् गोविन्दरहितागमम् ॥

'हरि नारायण गोविन्द गोविन्द ! हरि नारायण गोविन्द गोविन्द !'

वे सज्जन मार्गसे भटक गये और तब क्या हुआ ? हुआ वही जो इस भवाटवीमें भटकनेवालेका होता है । उन्होंने मान लिया—

टका धर्मः टका कर्म टका हि परमं तपः ।
टका हि जीवनं सर्वं बिना टका टकटकायते ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रात्रिमें स्वप्न ठनाठन नारायण और दिनमें प्रयत्न यही कि कैसे किससे क्या छीन लें, झपट लें, ठग लें !

थोड़े दिनों तो यह गाड़ी खूब चली। पापकी गाड़ी पहले दौड़ती है। ऐसे दौड़ती है, जैसे सरपट भाग रही हो; किंतु वह तो भारी खड्डेमें गिरनेकी गति है। दौड़ी-दौड़ी और धड़ाम ! गोविन्दाय नमो नमः !

उन सज्जनकी गाड़ी भी दौड़ी। कोठियाँ खड़ी हुईं, मोटरें दौड़ने लगीं और पेटका घेरा बड़ा होता गया। भला वे मेरे-जैसे दुर्बल क्यों रहते ! साथ ही खोपड़ीके भीतर सूजन बढ़ती गयी—अहंकार बढ़ता गया। दृष्टि मोटी होती गयी और व्यसन तथा मोह बढ़ते गये।

घर धन आया पापका लाया संगी साथ।
रोग, लड़ाई, मोह-मद, व्यसन लगेंगे हाथ॥

घरके लड़के-लड़कियोंका पूछना क्या। उन सज्जनको बाहर कोई भले आँख न दिखा सकता हो, घरमें तो श्रीमतीजी और मुन्ने-मुन्नी बात-बातपर झिड़क देते थे। शरीर पहलेसे रोगी था, रोग बढ़ता गया और एक नियम तो आप जानते ही हैं—

क्षते प्रहाराः प्रपतन्त्यभीक्ष्णं छिद्रेष्वनर्था बहुलीभवन्ति।

उन सज्जनको व्यापारमें घाटा लग गया। मोटर, कोठी बिक गयी थी। अब घरमें तो सम्मान पहलेसे नहीं था, बाहरके ठकुरसुहाती कहनेवाले भी आँख चुरा गये।

अपबल तपबल और बाहुबल चौथो है बल दाम।
सूर किसोर कृपा तें सब बल हारेको हरिनाम॥
भजो राम सीताराम सीताराम सीताराम।
जय जय राम सीताराम सीताराम सीताराम॥

उन सज्जनके लिये एक बात अच्छी हुई, उनके पूर्वजन्मके पुण्य जागे और उन्हें सत्संगमें जानेका स्मरण हुआ। मनुष्यके जब जन्म-जन्मके पुण्य जागते हैं, तब उसे सत्संग, भजन, कीर्तन अच्छा लगता है। नहीं तो स्वयं मर्यादापुरुषोत्तमने कहा है—

पापवंत कर सहज सुभाऊ।
भजन मोर तेहि भाव न काऊ॥

वे सज्जन सत्संगमें जाने लगे। उन्हें संतोंकी खोज रहने लगी और—

'जिन खोजा तिन पाइयाँ।'

एक विरक्त फक्कड़ संत एक बार उस बस्तीमें आये। भगवान्‌की कृपा हुई और उन सज्जनको संत मिले।

बिनु हरि कृपा मिलहिं नहिं संता।
सतसंगति संसृति कर अंता॥
संत बिसुद्ध मिलइ पुनि तेही।
राम सुकृपा बिलोकहिं जेही॥

वे सज्जन दुखी हो गये थे रोगसे, निर्धनतासे और घरवालोंके तिरस्कारसे। अब कोई उनकी सुननेवाला नहीं था। संतके समीप वे रो पड़े—

हुआ निराश-उदास, मिटा बिश्वास जगतके भोगोंका।
जिनके लिये खो दिया जीवन पता लगा उन लोगोंका॥

वे सज्जन रोकर बोले—'लेकिन महाराज ! इतना अधम हूँ कि अब भी मोह जाता नहीं। घर-परिवारके लोगोंका क्या होगा, इसी चिन्तामें रात-दिन घुलता रहता हूँ। तृष्णासे जल रहा हूँ।

'तृष्णा तू न गई मेरे मनतें।'

'कोई उपाय बतलाइये ! मुझ-जैसे पापी, रोगीके उद्धारका कोई उपाय बतलाइये।'

संत हृदय नवनीत समाना।
कहा कबिन पर कहइ न जाना॥
निज दुख दाह द्रवइ नवनीता।
पर दुख द्रवहिं संत सुपुनीता॥

संतको दया आ गयी। उन्होंने सोचा-विचारा और वे बोले—

कलिजुग केवल हरि गुन गाहा।
सुमिरत नर पावहिं भव थाहा॥
नाम लेत भव सिंधु सुखाहीं।
करउ बिचार सुजन मन माहीं॥

इसलिये तुम केवल कीर्तन करो ! दम्भ-छल छोड़कर केवल रट लगाये रहो—

राम राघव राम राघव राम राघव रक्ष माम्।
कृष्ण केशव कृष्ण केशव कृष्ण केशव पाहि माम्॥

बात और बाण सदा निशानेपर नहीं लगते। जब लगते हैं, बस पार हो जाते हैं। उन सज्जनको संतकी बात लग गयी। बात लगी और धुन चढ़ी। अब उनकी चढ़ी धुनसे कोई चिढ़े या प्रसन्न हो, कोई हँसे या रोवे, उन्होंने तो एक नन्हीं करताल मँगा ली और वह खटकती है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जय नँदलाल जय गोपाल जय मधुसूदन बनमाली ।
राधामोहन कंसनिषूदन वंशीधर गिरिधारी ॥

घर-बाहरके लोगोंने कहा—रोग और आर्थिक हानिने इसे पागल कर दिया है ।

लोग कहैं मीराँ भई बावरी ।

लोग तो ऐसोंको पागल कहते ही हैं । घरके लोग निराश हो गये । कह-सुनकर तो दोनों बड़े लड़कोंने कारबार सँभाला । अब उन सज्जनने जो नामधुनमें मन लगाया, धीरे-धीरे तन स्वस्थ होने लगा । रोग भागने लगा और मनसे मोह भी भाग खड़ा हुआ ।

राम रटनमें मन रमा, माया नासी हूह ।
काम क्रोध मद लोभका हुआ मकबरा ढूह ॥

उन सज्जनको संसार भूलता जा रहा था, लोगोंके लिये वे मरे-जैसे हो गये थे; क्योंकि जो संसारको भूले, उसे संसार क्यों स्मरण करे; किंतु उनको स्मरण करनेवाला एक नया निकल आया था । द्वारिकामें वह मोरमुकुटवाला वनमाली महारानी रुक्मिणीसे कहता था—

जो भूला संसार, उसे भूले संसार, नंदलाल उसे भूल नहीं सकता ।
जिसने त्यागा सब भार, जिसे मुझसे है प्यार, गोपाल उससे दूर नहीं रहता ॥

अतः—आप सब मनसे कहें ! वाणीसे कहें ! प्रेमसे कहें !

जय जय गोपाल, जय जय नँदलाल,
गिरिधारी मुरारीकी जय जय जय ।

× × ×

प्रायः वे भगवत्प्राप्तिके समीप लाकर ही कीर्तन समाप्त करते थे । जयध्वनिके साथ संकीर्तन उन्होंने समाप्त किया और समस्त श्रोता आरतीके लिये खड़े हो गये ।

भक्त-गाथा

[कर्नाटककी महाशिव-योगिनी वीर तपस्विनी रुद्रकन्या अक्का महादेवी]

(प्रेषक—श्रीवल्लभदासजी बिन्नानी, 'ब्रजेश' साहित्यरत्न, साहित्यालंकार)

वसंतका आगमन हुआ । मत्त मन्मथ अपने दल-बलके साथ वनकी ओर कूच कर चुका । प्रकृति देवी रंग-बिरंगी साड़ी पहने अपने सौन्दर्यको चारों ओर छिटकाकर, सुगन्ध बिखेरकर अपनी सुन्दरताकी हाट सजाये नाच दिखाती हुई प्रियतमकी बाट जोह रही थी । साँझका समय था । सूर्य भगवान् अपनी लाल-लाल किरणोंको दसों दिशाओंमें फैलाकर दिनभरके श्रमसे विश्राम पानेके लिये संध्या सुन्दरीकी गोदमें समा रहे थे । इस अपूर्व सौन्दर्यके आस्वादनसे अपनेको तृप्त पाकर संध्याकी सैरके बाद राजा कौशिक अपने महलको लौट रहा था । इस वैभवपूर्ण दृश्यको बच्चे-बूढ़े और पुरुष तो सभी, नगरकी नवयुवतियाँ अपने-अपने दरवाजों और झरोखोंसे देखती थीं और अपने-अपने नयनोंकी प्यास बुझा रही थीं । महादेवी भी उनमेंसे एक थी । उसके अपूर्व सौन्दर्यनिधिपर राजा मुग्ध हो गये ।

अक्का महादेवी एक पहुँची हुई साधिका, उच्चकोटिकी कवयित्री, अमर वेदनाकी गायिका, मधुर भावकी मधुरिमा, वीर विरागिनी, अपने इष्टदेवता मल्लिकार्जुनकी मुग्ध प्रेमिका थी ।

आपका जन्म बारहवीं शताब्दीमें कर्नाटक प्रान्तके उडुतड़ी ग्राममें हुआ । पिताका नाम निर्मल, माताका सुमति था । माता-पिता मल्लिकार्जुनके बड़े भक्त थे और सदाचारसम्पन्न गण्यमान्य धार्मिक व्यक्ति थे । इसलिये मल्लिकार्जुनके प्रति आपके हृदयमें बाल्यकालसे ही भक्तिके बीज बोये गये । शिवभक्तिमें ओतप्रोत होकर मामूली गुड़ियोंके साथ खेलनेके बजाय यह एकान्तमें मल्लिकार्जुनको ही पति मानकर खेलनेमें रत रहती थी ।

यौवन उमड़ आया । लौकिक यौवन नहीं, मानो भक्तिने ही यौवनका रूप धारण कर लिया हो । आपके मुखपर सात्त्विकताका तेज उद्भासित हुआ । कोई विवाहकी चर्चा छेड़ता तो मुँहतोड़ जवाब देती कि 'मल्लिकार्जुन ही मेरे पति हैं ।' जवानीकी चञ्चलता उसे छू तक नहीं गयी थी । वह तो अपना सारा समय माता-पिता-गुरुजनोंकी सेवामें, मल्लिकार्जुनके चिन्तनमें, पाठ-प्रवचनमें बिताती थी ।

वासनाग्रस्त चित्तको चैन कहाँ ? राजा कौशिकका यही हाल था । रह-रहकर राजाकी आँखोंके सामने उस नगरकी देवकन्या महादेवीका शान्त, स्मित-सुन्दर मुखचन्द्र बिजली-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सा कौंध जाता। अपनी मनःकामनासे बाध्य होकर राजाने अपने मन्त्रीसे कहला भेजा कि निर्मल और सुमति किसी भी हालतमें राजाकी सेवामें अपनी युवा कन्याको महारानी बनाकर भेज दें, नहीं तो और कठोरता की जायगी।

राजा कौशिककी यह कठोर आज्ञा पाकर दम्पति दुविधामें पड़ गये। उनके सिरपर आसमान टूट पड़ा। कौशिकके इस असम्बद्ध निर्लज्ज व्यवहारसे अक्का महादेवी विह्वल हो उठी, दिल दहल हो उठा। फिर भी माँ-बापपर आयी विपत्ति तथा अपने कर्तव्यका स्मरण कर स्वयं मन्त्रीसे बोली—'मैं तो राजाको वरण करनेको तैयार हूँ। परंतु शर्त है कि मेरी शिवभक्तिमें किसी प्रकारकी बाधा न पड़े। शिवतत्त्वोंपर कभी आपत्तिके बादल न मँडरावें। गुरु लिंग-जंगमकी पूजामें अड़चन न डाली जाय। राजमहलमें रहकर राजा कौशिककी मैं परीक्षा लूँगी। उसमें वे पूरे उतरेंगे तो विवाह सम्पन्न होगा, अन्यथा नहीं।'

आपपर अनुरक्त कौशिकने यह शर्त प्रसन्नतासे मान ली। महादेवी राजमहलमें रहकर लिंगपूजा तथा जंगम-दासोहमें ही अपना अधिक समय व्यतीत करने लगी। कौशिक संदेहमें पड़ गया कि कहीं ये जंगम विवाहमें विघ्नरूप न बनें। जंगमोंसे अक्का महादेवीका मिलना-जुलना रोक दिया गया। उधर दासियोंके द्वारा इनके मनको राजाकी ओर आकर्षित करनेकी भाँति-भाँतिकी चेष्टाएँ होने लगीं। भोग-वृत्ति तथा सात्त्विक शिवशक्तिमें कैसे मेल हो सकता है? इनके बाल्यकालकी स्वाभाविक विरक्ति अब उग्र रूप धारण करने लगी। विरहदग्धा चकवीकी भाँति सदा-सर्वदा ये मल्लिकार्जुनकी रटमें लगी रहीं। कौशिककी परिचारिकाओंके तंग करनेपर आपने अपना स्पष्ट मन्तव्य व्यक्त कर दिया।

अभय, अमर, मङ्गलमूर्ति मल्लिकार्जुनके प्रति मेरा मन लुभ गया है। वे ही मेरे पति हैं। मौतके मुँहमें कौर बननेवाले पुरुषोंसे मेरा क्या सम्बन्ध।

खेलता है मोर परबतपर, न कि ऊसर
टीलेपर।
तैरता है हंस सरोवरमें, न कि
नद-नालेमें
कूकती है कोयल आम किसलयोंके
फूलनेपर ही।
लुभता है भ्रमर सुगंधित सुमनके
प्रति ही।
सुन सखी री।
लग गया है मन चन्नमल्लिकार्जुनके
संप्रति ही।

कौशिक अपने वचनको निभा न सका। उलटे गुरु लिंगजंगमकी पूजामें बाधाएँ खड़ी करने लगा। इससे अक्का महादेवीमें संसारके प्रति हेयभाव बढ़ गया। वह वीर-विरागिनी बनकर आवरणहीन खड़ी हो गयी। कौशिकको महादेवीने समझाया—

देह भी क्या?
मांसका पिंजड़ा, मूत्रका मटका,
हड्डियोंका ढाँचा, सड़े खूनका गड्ढा,
इस नश्वर देहपर मरते क्यों?
जला डाला।
जान मल्लिकार्जुनको पगले॥

आपकी इस अपूर्व निर्वाण-स्थितिको देखकर राजा ठंढा पड़ गया। मैली-कुचैली देहपरका मोह मिट गया। इस दिगंबरत्वमें राजाने देवताके दर्शन प्राप्त किये। आपके चरण छूकर क्षमा माँगी। क्षेत्रोंसे शरीरको ढाँककर शरणसती महादेवी लिंगपति चन्नमल्लिकार्जुनकी खोजमें लोक-लाजकी परवा न करती हुई दिगंबर बनकर कल्याणके अनुभव-मंटप (मण्डप) की ओर बढ़ चली।

शिवानुभव-मंटपके शून्य सिंहासनपर विराजमान अल्लम-प्रभुदेव तथा भक्तिभंडारी म० बसवेश्वर आपकी महानताको अन्तर्ज्ञानसे ही भाँप करके प्रभावित हुए।

कई सवाल करके प्रभुदेवने आपके आध्यात्मिक ज्ञानका परिचय वहाँ जमे हुए शिव-शरण-शरणियोंको कराया। शिवानुभव-मंडपमें अल्लम प्रभु और अक्का महादेवीके बीच हुई आध्यात्मिक-चर्चा विश्वके धार्मिक तथा आध्यात्मिक क्षेत्रके इतिहासमें अमूल्य निधि है। प्रभुदेव तथा बसवण्णने आपको 'दीदी' कहकर पुकारा है। सभीने आपके महान् शरणत्व की प्रशंसा की है। आपने कई दिन कल्याणमें गुजारे।

अब आप अपने स्वामी मल्लिकार्जुनके दर्शन पानेको अत्यन्त व्याकुल हो उठीं। रुँधे गलेसे कल्याण त्यागकर श्रीशैल जानेको उद्यत हो गयीं, तो शरण-समाजपर दुःखके काले बादल घिर गये। किंतु क्या कर सकते थे? पीहरमें कन्याको कितने दिन रख सकते हैं?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप श्रीशैलकी ओर बढ़ती जा रही थीं। अब आपने भूख लगनेपर भी किसीके सामने हाथ नहीं पसारा। प्यास लगनेपर भी किसी मन्दिर-मठमें सुस्तानेका विचार नहीं किया। केवल मल्लिकार्जुनकी लगनमें ही लगी रहीं।

प्रकृति-सौन्दर्यके रसोन्माद और आनन्दानुभूतिमें सतत श्रीमल्लिकार्जुनकी कान्ति निरखती जा रही थीं। कोयल, हंस, मोर, शुक आदि पक्षियोंसे भी विनीत भावसे प्रार्थना करती जा रही थीं कि मेरे स्वामी चन्नमल्लिकार्जुनको कहीं देखा है? अपने प्रियतमकी खोजमें ही भूखी-प्यासी वन-जंगल भटकती जा रही थीं। श्रीशैलमल्लिकार्जुनका मन्दिर देखकर हर्षसे नाच उठीं। स्वामीने भी अपनी प्रियतमा महायोगिनी अक्का महादेवीकी अपूर्व निष्ठा, करुणा-भरी पुकार सुन प्रसन्न होकर निज दर्शन दिये।

श्रीशैलके 'कदलीवन' में अपने इष्टदेवकी उपासनामें ही लिंगाग-सामरस्य-स्थितिको प्राप्त कर लिया। चन्नमल्लिकार्जुनकी दिव्य प्रभामें आपकी आत्मा सदाके लिये समा गयी—शिवार्पित कर्पूर हो गयी।

आप कन्नड साहित्यकी सर्वप्रथम महान् कवयित्री और कर्नाटककी महायोगिनी मानी जाती हैं। कितने ही वचनकारों, कवियों और ग्रन्थकारोंके ग्रन्थोंकी प्रिय एवं पूज्य कथावस्तु आपकी जीवनी बन गयी है। आपके वचनोंमें श्रेष्ठ कवि-जीवनका सम्पूर्ण संस्कार एवं रसानुभूति व्यक्त होती है। आपके वचन अनुभवप्रधान काव्य विश्वधर्मके सिद्धान्त तथा श्रेष्ठ आध्यात्मिक तत्त्वोंकी खान हैं। कन्नड-सरस्वतीने आपके कण्ठसे वचन-मुक्तकोंको गाया है। उत्तर भारतके गाँवमें जैसे मीराँके पद श्रद्धासे गाये जाते हैं, वैसे ही अक्का महादेवीके वचन दक्षिण भारतके करोड़ों भक्त भक्तिभावसे गाते-नाचते अपनेमें झूम उठते हैं।

आपका जीवन पुनीत प्रेमका दिव्य संदेश है। लिंगपति, शरणसती वीरशैव सिद्धान्तका महान् आदर्श है।

बंधक

[कहानी]

(लेखक—श्रीकृष्णगोपालजी माथुर)

(१)

'मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई'

महिलाओंका समुदाय जुटा था। भक्तिमती गायिका मुद्राने कहा—'भगवत्प्रेममें पगी बहनो! सुनो, लीलाधारी गिरिधारी, बनवारीके प्रति आत्मसमर्पित इस युगकी प्रेममयी गोपीके संगीतमय उद्गार—

जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई—

मैं इसी मधुर भजनको तुम्हें सुना रही हूँ।'

यह कहकर मुद्राने आगेकी कड़ियाँ सुनानेको हारमोनियमपर ज्यों ही अँगुलियाँ रक्खीं, त्यों ही सेठानी सुधाकी ज्येष्ठ कन्या मुग्धाने आकर कहा—'माँ! पिताजी जल्द आपको बुला रहे हैं।' 'आप तो किसी भगवत्संकीर्तनमें कभी जाते नहीं। मैं अभी-अभी यहाँ आयी हूँ, दो घड़ी भगवत्-कीर्तन सुननेको, तो पीछे लगे ही बुलावा भेज दिया।' मनमें यह विचार कर सेठानी प्रकटमें बोली—'बैठ जा, पूरा भजन सुनकर अभी चलते हैं।' सेठानीकी यह बात पूरी भी नहीं होने पायी कि उसकी छोटी पुत्री सुधाने आकर घबराते हुए कहा—'जल्दी चलो माँ! चोरी हो गयी है।' चोरी शब्द सुनकर सेठानी मन-ही-मन हँसी, 'जल्दी बुलानेका यह अच्छा बहाना कहलाया है।' फिर बोली—'हो जाने दो चोरी, भजन पूरा सुनकर चलेंगे।'

सुधाके पति सेठ सुमन-जैसा नगरमें कोई दूसरा धनवान् नहीं था। अपने पूर्वजोंद्वारा संगृहीत धनमें काफी वृद्धि उसने की थी—गहने बंधक रखकर ऊँचे सूदपर रुपया ऋण देनेके सरल धंधेसे। सेठानीके आते ही वह एकाएक रो पड़ा। सुधाको चोरीकी बात सही होनेका संदेह हुआ। उसके द्वारा ढाढ़स बँधानेपर सुमन सिसकियाँ रोककर बोला—'प्रिये! अनर्थ हो गया। मैं सिनेमा देखने चला गया था। पीछेसे कोई चोर बंधकके और अपने सब गहने चुराकर ले गया। अब क्या होगा, यही तो रोना है।'

भक्तिमती सुधाने धैर्यसे काम लिया, बोली—'यह समय रोनेका नहीं, भगवत्स्मरण करनेका है। भगवान्के प्रत्येक विधानमें सब प्रकारसे मङ्गल-ही-मङ्गल है। उसकी उपासनासे बड़े-बड़े संकटोंका क्षणभरमें नाश हो जाता है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थोड़ी देरमें सेठको तन्द्रा आ गयी। स्वप्न देखा—'मैं लोभवश बहुत अधिक ब्याजसे गरीबोंको ऋण देकर मनमें प्रसन्न होता था। पड़ोसकी संकटग्रस्त वृद्धा कमलाने १००) रु० के जेवरपर ऋण माँगते हुए बहुत अनुनय-विनय कर कहा था—'मैं अत्यन्त गरीब हूँ, सूद कम लो, सेठ साहब!' मैंने गर्जकर कहा था—'माँजी! जिसके बेटा होता है, उसके बहू आती है और उससे बढ़ता है वंश। इसी तरह सूदसे धन बढ़ता है। सूदमें एक पैसेकी भी कमी नहीं होगी, तुम्हारी हजार खुशी हो तो कर्ज लो।' विवश होकर बेचारीने सूदकी ऊँची दर स्वीकारी की। उसका रुआँसा मुख अब भी मेरी आँखोंके सामने ज्यों-का-त्यों फिर रहा है। मैं सभी ऋणियोंके प्रति ऐसा ही रूखा व्यवहार कर खुश होता था। मैं कभी मीठा नहीं बोलता था। मेरे मुखसे तो मानो तीखे अग्निबाण निकलते थे।' फिर कैसे कोई मेरा हितू बनता। कहते हैं 'तलवारका घाव भर जाता है, पर वाणीके तीखे बोल सदा हृदयमें चुभते रहते हैं।' अब लोग सच्ची बात न मानकर यही सोचेंगे कि रकमको कहीं छुपाकर सेठने दिवाला निकाल बेईमानी की है। हे अशरणशरण भगवान्! आप ही मेरी आबरू बचानेवाले हैं।'

उधर सेठ सुमनका स्वप्नमें यह पश्चात्ताप चल रहा था, उधर सेठानी सुधा श्रीभगवान्के सम्मुख घुटने टेक कातर-भावसे रो-रोकर हाथ जोड़ उनसे प्रार्थना कर रही थी—'दयामय भगवन्! इस विपत्तिसे हमारी रक्षा करो। हमें ऐसी सद्बुद्धि, साहस, त्यागमय बल दो कि आपकी दी हुई शेष सम्पत्तिसे हम बंधक रखनेवालोंका बड़ी ईमानदारी, सचाई और सद्व्यवहारके द्वारा चुकारा कर दें। हमारी साहूकारीमें बट्टा न लगे। मैं शरीरपर जितने जेवर पहिने हूँ, उनको उतारनेमें मेरे हाथ तनिक भी न रुकें, मन मैला न हो, हृदयमें क्षोभ न उपजे और इनके द्वारा चुकारा हो जाय। मेरे पतिको भी इस कार्य-विधिमें अनुकूल बना दो महाराज! यह सब आपका ही है, फिर भी आप ही क्षणभरमें पूर्ति कर देंगे।'

इतनेमें ही सेठ सुमनकी आँख खुली तो सामने पत्नीको हँसमुख देख उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। 'तुम कैसी पत्थरकी बनी नारी हो। शायद मेरी बात झूठी समझ रही हो! अरी, उन बड़ी-बड़ी कोठियोंको तो देखो, सब खाली पड़ी हैं। पुलिसमें कहते ही बात फैल जायगी। बंधकवाले आ जायँगे। उनसे किस तरह पीछा छुड़ाया जायगा। करना क्या?'

'स्वामी! हमारे जीवनके जीवन दयासिंधु भगवान् श्रीगोपाल, गोपीजनवल्लभ, राधावर श्रीकृष्ण ही हैं, उन्हींको माता-पिता, बन्धु-बान्धव, रक्षक-पालक, विपत्ति-विदारक मानकर अगाध श्रद्धा और परम भक्तिके साथ उन्हींपर दृढ़ विश्वास रक्खो, आपकी प्रतिष्ठाकी कभी हानि नहीं होगी।' इस प्रकार सुधाने पतिको समझाकर आश्वासन दिया।

(२)

दोनों पति-पत्नी इस दुर्घटनाको अधिक दिनोंतक छिपाकर नहीं रख सके। एक दिन सुमनके परम मित्र सुदामाने आकर दोनोंको उदास देख कारण पूछा। सुमनने चोरीका हाल सुनाते हुए बंधकोंके गहने लौटाने और युवती पुत्री मुग्धाके विवाह-व्ययकी गहरी चिन्ता बता दी। सुदामा मित्रके सुख-दुःखमें समानरूपसे पूरा सहयोग देनेवाले सुप्रसिद्ध कथावाचक थे। मित्रकी इस विपत्तिको मिटानेके हेतु गद्गद-कण्ठ हो भेंटकी सारी आय सहर्ष देनेको तैयार हो गये। सुमन तो मित्रका त्यागमय उदार व्यवहार देखकर अश्रुपूरित नेत्रोंसे अस्वीकार करने लगा। कई दिनोंतक आग्रह-अस्वीकार चलता रहा। पर अन्तमें धर्मपरायण सेठ-सेठानीने भगवत्-भेंटकी आय लेना किसी दशामें भी स्वीकार नहीं किया। बोले—

धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपत काल परिखिए चारी॥
(रा० च० मा०)

इसका मुझे साक्षात् अनुभव हो गया है।

सुदामा बोले—'भाईजी! मेरे एक सत्परामर्शको बुरा मत मानना। जो कुछ बचा है, उसके द्वारा बंधकोंका चुकारा कर देनेमें ही हित है।'

'धन गया और शेष धन भी दे दें, यह कैसा सत्परामर्श?' सेठ बोला। मित्रकी लोभ-वृत्ति देखकर सुदामाने कहा—'जानते हो, तृष्णा कैसी बुरी बला होती है?' इसका अन्त नहीं है। संतोष ही परम सुख है। इसलिये इस संसारमें पण्डितजन संतोषको ही परम धन मानते हैं।* खैर, इस महामन्त्रका पाठ तो नित्य विश्वासपूर्वक किया करो—

आपदामपहन्तारं दातारं सर्वसम्पदाम्।
लोकाभिरामं श्रीरामं भूयो भूयो नमाम्यहम्॥
(रामरक्षास्तोत्र ३५)

* अन्तो नास्ति पिपासायास्तुष्टिस्तु परमं सुखम्।
तस्मात्संतोषमेवेह धनं पश्यन्ति पण्डिताः॥
(महाभारत, शान्तिपर्व ३३०। २१)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसका पाठ करनेसे सारी आपत्तियोंका निवारण होकर सम्पत्तियोंका पुनरागमन निश्चयपूर्वक होता है और सब प्रकारके अभीष्टोंकी सिद्धि होती है।'

सुमनने अन्तःकरणकी बेचैनी मिटानेका उपाय पूछा। सुदामा तत्काल ही स्मरणकर बोल उठे—'श्रीमद्भागवतके इस श्लोकको इसका अर्थ समझते हुए निरन्तर हृदयकी कातर वाणीसे गुनगुनाते रहो—

अजातपक्षा इव मातरं खगाः स्तन्यं यथा वत्सतराः क्षुधार्ताः।
प्रियं प्रियेव व्युषितं विषण्णा मनोऽरविन्दाक्ष दिदृक्षते त्वाम्॥*

इससे तुम्हारे दुःख, चिन्ता, निराशा, अवसाद, विकलताके काले बादल शीघ्र छिन्न-भिन्न होकर मनमें प्रकाशकी किरण-ज्योति जगमगाती दिखायी देगी। बाहर-भीतर तुम भगवान् श्रीकृष्णकी गोदमें अपने आपको सर्वथा सुरक्षित पाओगे। भक्तिका यह बड़ा ही सरल सोपान है।'

सेठ सुमनने इस प्रयोगका शुभारम्भ किया तथा मनमें शान्ति आती देखकर इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए मित्रका अशेष उपकार माना।

(३)

मुग्धा अपने परिवारमें सबकी बड़ी लाड़ली थी। छोटोंसे वह बहुत ही प्रेम करती हुई उनसे घरका कोई काम न करवाकर स्वयं करती थी। अध्ययनशीला थी वह। उसके मनमें सदा ही सद् विचारोंका उदय हुआ करता था। चोरीका हाल जानकर मुग्धा भारी चिन्तामें पड़ गयी। उसने अपनी सखी मुदितासे कहा—'बहन मुदिता! संसारके ऐसे सुख-दुःख मिटानेके हेतु मैं तो आजसेही आजन्म कुँवारी रहकर बड़ोंकी सेवा और भगवत्-उपासनामें सारा जीवन बितानेका अपना दृढ़ निश्चय माता-पितासे कहे देती हूँ, ताकि मेरे विवाहकी चिन्ता वे छोड़ दें। मैंने तो पिताजीसे कहा था कि ब्याजकी आयमेंसे गोमाताकी सेवा एवं सूखा-पीड़ितोंकी सहायतामें धन देकर पुण्यके भागी होइये। पर जैसा कि कहा है—'विलम्ब करनेसे शुभकर्मको काल भक्षण कर जाता है', वही हुआ।'

भक्तप्रवर ईसरदासजी जो कि वि० सं० १५९५में मारवाड़-राजस्थानमें परम संत हो चुके हैं, उन्होंने अपने डिंगल भाषाके अमूल्य ग्रन्थ 'हरिरस'में कहा है कि—'शरीर-रूपी अंजलीमेंसे आयुरूपी जल बूँदोंके रूपमें टपक रहा है—अर्थात् श्वास प्रति श्वास इस तनकी आयु बीत रही है। मनुष्य-तन पानेका अमूल्य अवसर हरिके भजन बिना यों ही बीता जा रहा है। इसीसे हे प्राणी! तू पहले आलस्य त्यागकर श्रीआदिविष्णुका स्मरण कर। तेरे मनकी कामनाओंको श्रीकृष्ण पूर्ण करेंगे। मन नहीं होनेपर भी जीभसे महामहार्णव (परब्रह्म) का चरित्र गाते रहना चाहिये; क्योंकि बिना मन अमृतको यदि पिया जाय, तो भी वह अमर कर देता है।†

अब तू ही बता कि—

हरि-सा हीरा छाँडिके, करै आनकी आस।
ते नर यमपुर जायँगे, सत माखै रैदास॥

क्यों न मैं हरिके शरण हो जाऊँ?'

सखीका शुभ दृढ़ निश्चय सुनकर मुदिता प्रसन्न हुई। उसके परिवारवाले भी सदा भक्तिरसमें डूबे रहते थे। पिता शंकरजीने एक बार उपासनाके बलसे सर्पदंशी एक बालकके प्राण बचाये थे। दोनोंने अपने जीवनके लिये कुछ कार्यक्रम बनाये और दृढ़ निश्चयके अनुसार दोनों सहेलियोंका क्रम निरन्तर चलता रहा।

(४)

वह बेसुध पागल-सी दौड़ी चली जा रही है। शरीरके वस्त्र किधर खिसक रहे हैं। लज्जाका भान नहीं। परंतु मनमें—

कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने।
प्रणतक्लेशनाशाय गोविन्दाय नमो नमः॥

—इस मन्त्रकी रट बराबर चल रही है। 'मेरे पतिको जेल न हो, वे मेरे साथ ही छूटकर आ जायँ।'

कौन है यह माता या पत्नी? जैसे गोमाता दूधसे भरे भारी थनोंके बोझको लिये अपने बछड़ेको दूध पिलानेके हेतु

---

* जिनके पाँख नहीं उगी है—ऐसे पक्षियोंके बच्चे चुगा लाने गयी माँकी आतुर प्रतीक्षा करते हैं, जैसे भूखे बछड़े अपनी माताका दूध पीनेके लिये चरने गयी गैया माके लिये आतुर रहते हैं, जैसे वियोगिनी पत्नी अपने प्रवासी पतिसे मिलनेके लिये उत्कण्ठित रहती है—वैसे ही हे कमलनयन! आपके दर्शनोंके लिये मेरा हृदय छटपटाता रहा है।

† अवध नीर तन अंजली, टपकत सास-उसास।
हरी भजन बिन जात है, अवसर ईसरदास॥३१२॥
आतम आलस पहल तज, ओलग आद विसन्न।
जेह मनोरथ मन करै, सो पूरवै किसन्न॥३१६॥
मन पाखैही महमहण, चवियै जिहाँ चरित्त।
आतम पीधा अवसही, अमर करै अमरित्त॥३४७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रँभाती हुई दौड़ी चली आती है, वैसे ही इस नारीको हम देख रहे हैं।'

दर्शकोंकी भीड़मेंसे एक वृद्ध सज्जन बोले—'अजी, यह माँ नहीं है, पतिव्रता स्त्री है। मधुर भगवत्-कीर्तन सुनानेको यह घरका आवश्यक काम छोड़ जगह-जगह जाती और श्रोताओंको भक्तिरसमें सराबोर कर देती है। इसका कीर्तन-कला-निधि पति शीतल जब मस्त होकर नृत्य करता हुआ हरिकीर्तन करता है, तब हजारों लोगोंकी भीड़ भी उसके साथ हरिकीर्तन करते-करते लोट-पोट हो जाती है। किंतु विधिकी विडम्बना तो देखो कि उसकी बुद्धि मारी गयी और उसने सुमनसेठके यहाँ चोरी की। उसे न्यायालयसे दण्ड मिला है। यह अपने उसी पतिको छुड़ाने जा रही है।'

उधर, शीतल भवभयहारी, संकटटारी भगवान्‌की मन-ही-मन कातरभावसे प्रार्थना कर रहा था—

तीन लोक के पति प्रभू, परमातम परमेस।
मन-वच-तन तैं नमत हूँ, मेटौ कठिन कलेस॥

(बुधजन सतसई ७)

'तुम तो बड़े भगवद्भक्त कीर्तनकार हो। तुमको इस घोर पाप चोरी करनेकी कैसे सूझी?'

न्यायाधीशके इस प्रश्नके उत्तरमें शीतल आँसू टपकाते हुए बोला—'इसी बातका महान् आश्चर्य और घोर संताप हो रहा है मुझे। जब मैं खंजरी और घूँघरूपर नृत्य करते हुए भक्ति-रसमें निमग्न हो जाता, तब भी मेरे मनके एक सूक्ष्म कक्षमें बैठा कोई प्रबल शैतान, महाराक्षस, घोर पाप मुझे यह दुष्कर्म करनेको निरन्तर उकसाता रहता था। मैं उसे बार-बार धिक्कारता; पर उसने मुझे ऐसा वशमें कर लिया कि मेरे ज्ञान, विवेक, सद्विचार सभी रफूचक्कर हो गये और मैं एक दिन सुअवसर पाकर यह दुष्कर्म कर ही बैठा। अब वह शैतान शान्त है। अब मेरा जागा हुआ विवेक मुझे हजारों-लाखों बार धिक्कार दे रहा है। मैं अत्यन्त दुखी हूँ।

'अब कृपया आप मुझे कड़े-से-कड़ा दण्ड दीजिये। मेरे पापका कुछ तो प्रायश्चित्त होगा, मैं उसे भोगते हुए मनमें बड़ा हर्ष मानूँगा और यह जेवरोंकी पोटली, जो मुझे विष-मंजूषाके समान दिखायी दे रही है, सेठजीको लौटा दीजिये, तभी मुझे कुछ शान्ति मिलेगी।'

'इनकी जगह मुझे कारागारमें रखिये।' रोती-चिल्लाती, विलपती-तड़पती मुद्रा कह रही थी। दर्शकोंसे अदालतका कमरा भरा था। न्यायाधीशने नारीका सम्मान करते दण्डमें कुछ कमी कर, कई प्रकारसे समझाते हुए मुद्राको उसके घर बड़े ही स्नेह तथा आदरके साथ लौटा दिया।

शीतल जब दण्ड भोगकर आया, तो सीधा सेठ सुमनके भवनपर पहुँचा और रोते-कलपते क्षमा-प्रार्थना करते हुए उनके चरणोंमें गिर पड़ा।

सेठ-सेठानी उसे उठाते हुए बोले—'यह तो हमारी ही किसी बुरी करनीका फल था। इसमें आपका तनिक भी दोष नहीं। हमने तो यह घटना प्रकट भी नहीं की थी, परंतु पुलिसने न जाने कैसे सुराग लगा लिया। हम स्वयं पश्चात्ताप कर रहे हैं। आपके प्रति कोई दुर्भावना हमारे मनमें नहीं है। आप अपने भगवत्-कीर्तनके महत् कार्यमें हर्षपूर्वक लग जायँ। हम भी उसमें सम्मिलित होकर अपार लाभ उठायेंगे। यही हमारी विनती है।'

इस सान्त्वनासे शीतलका मन प्रसन्न तो हुआ; किंतु पश्चात्तापकी आग सर्वथा समूल बुझ नहीं पायी। कुछ दिनों पश्चात् वह सुमन सेठकी पेढ़ीपर जाकर कहने लगा—'मैं आपकी प्रतिदिन दो घंटे निःस्वार्थ भावसे कोई सेवा करना चाहता हूँ। कृपया मुझसे सेवा लें।' यह सुनते ही सेठ-दम्पतिने शीतलके पाँव पकड़ लिये। बोले—'यह कभी नहीं हो सकता। आप तो हमारे पूज्य हैं।' किंतु प्रतिदिन आग्रह करते रहनेसे सेठने एक धर्मार्थ सेवा बतायी—'तो कृपया आप मेरे आटेकी रामनामकी गोलियाँ बनाकर क्षिप्रा नदीमें मछलियोंको प्रतिदिन नियत समयपर भगवत्-प्रीत्यर्थ डाला करें। यहाँ मछलियोंको पकड़नेकी मनाही है। मेरी सुयोग्य पुत्री मुग्धा, सुधा और उनकी सखी मुदिता भी आपको इस कार्यमें सहयोग देंगी।' कार्य प्रारम्भ हो गया।

× × × ×

एक दिन नगरमें दूर रातभर कव्वालियाँ होती रहीं। प्रातःकाल होते-होते उस्ताद मनहरने अपनी कव्वालीमें यह शेर कहा—

या रब! तबाहँकारोंका तू कारसाज़ है।
बन्देँको नाज़ँ है कि तू बन्दःनेवाज़ है॥

(अंजुमने वहशत)

१. विपत्ति-ग्रस्त। २. काम बनानेवाला। ३. दास। ४. गर्व।
५. भक्तवत्सल।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रोताओंमें 'वाह-वाह' गूँज उठी। इसकी ध्वनि कानमें पड़ते ही सुमन सेठ सुध-बुध भूल गया। 'हे प्रभो! आपने सद्बुद्धि दे बन्धकोंका चुकारा कराके इस दासकी प्रतिष्ठा बचायी और घरमें सम्पत्तिका भी पुनरागमन करवाया। दया-निधे! आज मैं यह प्रण करता हूँ कि अब ब्याज नाममात्रका लिया करूँगा और दीनजनोंको बिना ब्याज अथवा बन्धकके रुपया देकर उनकी कठिनाई दूर किया करूँगा। शरणागत-वत्सल! आप इस दासके प्रणको अवश्य निभावें। आपकी अहैतुकी कृपाका पार नहीं है। जय हो प्रभो! आपकी—

परब्रह्म परमात्मवर चिदानन्द घनरूप।
सत्य अनादि अनन्त सत जय जय ब्रह्म अनूप॥

सुधा भी पतिके साथ मनको एकाग्र कर श्रीहरिका ध्यान लगा प्रार्थना करनेमें लीन हो गयी। उसने प्रभुसे इतना और माँगा कि 'हमारे द्वारा आपके दिये हुए धनकी पाई-पाई सदा आपकी ही सेवाके लिये धार्मिक कार्यमें व्यय होती रहे।' दोनोंका आजन्म यही क्रम जारी रहा। भजनके प्रभावसे वे सभीके श्रद्धाभाजन एवं आदर्श दम्पति बन गये। तपस्विनीके समान पुत्री मुग्धाके उपदेशोंसे अनेक महिलाओं, युवतियों एवं बालिकाओंका आशातीत सुधार हुआ। इस कार्यमें सुधा और मुदिताने भी खूब योग दिया।

राष्ट्रीयताका आधार देश है

(श्रीश्रीअरविन्दके विचार)

[देश तथा देशवासियोंकी वर्तमान स्थितिमें ये विचार गम्भीरतासे विचारणीय हैं—सम्पादक]

देश ही राष्ट्रीयताकी प्रतिष्ठा-भूमि है, जाति नहीं है, धर्म नहीं है और कुछ भी नहीं है, एकमात्र देश है और जितने भी राष्ट्रीयताके उपकरण हैं, वे सब गौण और उपकारी हैं। देश ही मुख्य और आवश्यक है। बहुत-सी परस्परविरोधी जातियाँ एक देशमें निवास करती हैं, उनमें एकता नहीं होती, परंतु इसमें भयकी क्या बात है? जब एक देश है, एक माँ है, तब एक दिन एकता अवश्य आयेगी, अनेक जातियोंके मिलनेसे एक बलवान् अजेय राष्ट्रकी उत्पत्ति अवश्य होगी। धर्म-मत एक नहीं हैं, सम्प्रदाय-सम्प्रदायमें विरोध है, मेल नहीं है तथापि भयकी कोई बात नहीं! एक दिन स्वदेशमूर्त्तिधारिणी माँके प्रबल आकर्षणसे मेल होकर ही रहेगा; साम्प्रदायिक विभिन्नता भ्रातृभावमें, भ्रातृप्रेममें विलीन हो जायगी। एक देशमें विभिन्न भाषाएँ हैं, भाई भाईकी बात समझनेमें असमर्थ है, हम एक-दूसरेके भावमें प्रवेश नहीं कर पाते तथापि डरनेकी कोई बात नहीं; एक देश, एक जीवन, एक विचारकी धारा सबके मनमें प्रवाहित होगी ही, प्रयोजनकी प्रेरणासे एक भाषाकी सृष्टि होगी ही, माँके मन्दिरमें सब लोग उसी भाषाका व्यवहार करेंगे। इन सब बाधाओंसे चिरकाल कार्य नहीं रुकता। माँका प्रयोजन, माँका आकर्षण, माँके प्राणोंकी कामना विफल नहीं होती। वह सभी बाधाओं और सभी विरोधोंको अतिक्रमण कर जाती है, उन्हें नष्ट करती है और विजयिनी होती है। एक देश-माताके गर्भसे जन्म हुआ है, एक माँकी गोदमें निवास करते हैं, एक माँके पञ्च-भूतमें घुल-मिल जाते हैं, आन्तरिक सहस्र विवाद होने-पर भी हम माँकी पुकारपर एक हो जायँगे। प्राकृतिक नियम यही है, सभी देशोंके इतिहासकी शिक्षा यही है, देश ही राष्ट्रीयताकी प्रतिष्ठा-भूमि है, यह सम्बन्ध अव्यर्थ है, स्वदेश रहनेपर राष्ट्रीयताका आना अवश्य-म्भावी है। एक देशमें दो राष्ट्र चिरकालतक नहीं रह सकते, मिलन होगा ही। दूसरी ओर यदि एक देश न हो और जाति, धर्म, भाषा एक भी हो तो भी उससे कोई लाभ नहीं, एक दिन एक स्वतन्त्र जातिकी, राष्ट्रकी सृष्टि होगी ही। स्वतन्त्र-स्वतन्त्र देशोंको मुक्त कर एक बृहत् साम्राज्य बनाया जा सकता है, पर एक बृहत् राष्ट्र नहीं बनाया जा सकता। साम्राज्य नष्ट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो जानेपर फिरसे स्वतन्त्र जाति उत्पन्न होती है। बहुत बार वह अन्तर्निहित स्वाभाविक स्वतन्त्रता ही साम्राज्य-नाशका कारण हो जाती है।

परंतु यह फल अवश्यम्भावी होनेपर भी मनुष्यके प्रयाससे, मनुष्यकी बुद्धिसे या बुद्धिके अभावसे वह अवश्यम्भावी प्राकृतिक क्रिया शीघ्र या देरसे फलवती होती ही है। हमारे देशमें कभी एकता नहीं हुई, परंतु चिरकाल एकताकी ओर एक झुकाव था, प्रवाह था, हमारे इतिहासमें भारतके विभिन्न अङ्गोंको एक करनेके लिये आकर्षण था। इस प्राकृतिक प्रयासकी कुछ प्रधान बाधाएँ थीं। पहली बाधा थी प्रादेशिक विभिन्नता, दूसरी थी धर्म-मतका विरोध और तीसरी थी मातृदर्शनका अभाव।

प्रधान बाधा यही है—मातृदर्शनका अभाव; हमारे प्रायः सभी राजनीतिज्ञ माँके सम्पूर्ण स्वरूपका दर्शन करनेमें असमर्थ थे। रणजीतसिंह या गुरु गोविंद-सिंहने भारत माताको न देख पञ्चनद माताको ही देखा था। शिवाजी और बाजीरावने भारत माताको न देख हिंदुओंकी माताको ही देखा था। अन्यान्य महाराष्ट्रीय राजनीतिज्ञोंने महाराष्ट्र माताको ही देखा था। हमने भी बङ्गभंगके समय बङ्गमाताका ही दर्शन प्राप्त किया था—वह दर्शन अखण्ड दर्शन था, अतएव बङ्गदेशकी भावी एकता और उन्नति अवश्यम्भावी है, किंतु भारतमाताकी अखण्ड मूर्ति अभीतक प्रकट नहीं हुई है। कांग्रेसमें हम नाना प्रकारके स्तव-स्तोत्रोंके द्वारा जिस भारतमाताकी पूजा करते थे, वह कल्पित थी, अंगरेजोंकी सहचरी और प्रिय दासी थी, म्लेच्छ वेशभूषासज्जिता दानवी माया थी, वह हमारी माँ नहीं थी, उसके पीछे निविड़ अस्पष्ट आलोकमें छिपी हमारी सच्ची माँ हमारे मन-प्राणको आकर्षित करती थी। जिस दिन हम अखण्डस्वरूप मातृमूर्तिके दर्शन करेंगे, उसके रूप-लावण्यसे मुग्ध होकर उसके कार्यमें जीवन उत्सर्ग करनेके लिये उन्मत्त हो जायँगे, उस दिन यह बाधा तिरोहित हो जायगी, भारतकी एकता, स्वाधीनता और उन्नति सहजसाध्य हो जायगी। उस समय प्रदेशभेद या भाषाभेदके कारण कोई बाधा उपस्थित नहीं होगी। सब लोग अपनी-अपनी मातृभाषाकी रक्षा करते हुए साधारण भाषाके रूपमें हिंदी भाषाको ग्रहण करेंगे और वह बाधा दूर हो जायगी। उस समय हम हिंदू-मुसलमानके भेदकी भी वास्तविक मीमांसा कर सकेंगे। मातृदर्शनके अभावमें उस बाधाके दूर करनेकी बलवती इच्छा न होनेके कारण ही कोई उपाय नहीं सूझता, विरोध तीव्र होता जा रहा है; परंतु अखण्ड स्वरूप चाहिये।

(संकलनकर्त्ता तथा प्रेषक—श्रीचन्द्रदीपजी त्रिपाठी, अरविन्दाश्रम, पांडिचेरी)

भगवत्कृपापर दृढ़ विश्वास करो

भगवत्कृपा दीनका धन है, है उसपर सबका अधिकार।
नहीं योग्यताकी आवश्यकता, नहीं देश-कुल-धर्म विचार॥
नहीं प्रश्न अधिकारीका कुछ, नहीं शर्त कुछ, नहीं करार।
हो विश्वास परम दृढ़ केवल दीन-बन्धुपर बिना विचार॥

भय मत करो, न साहस छोड़ो, रक्खो प्रभुपर दृढ़ विश्वास।
प्रभुकी सहज कृपा कर देगी सब बाधा-विघ्नोंका नाश॥
करते रहो सदा श्रद्धासे प्रभुके ही प्रीत्यर्थ प्रयास।
जा पहुँचोगे सुखपूर्वक तुम परम लक्ष्य भगवत्‌के पास॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मृत्युकी चाल

(लेखक—श्रीहरिकृष्णदासजी गुप्त 'हरि')

चिड़िया चुगती कालकी,
निसि-दिन जीवन-खेत ।
चेत-चेत रे मूढ़ नर !
क्यों तू पड़ा अचेत !

मृत्यु किसी एक दिन नहीं आती । वह तो नित्य-निरन्तर साथ लगी है ।

जीवन मृत्युका भक्ष्य है । वह पल-पल क्षण-क्षण उसे भक्षण करती रहती है ।

समझना चाहिये, हमारा श्वास-श्वास मृत्युका एक-एक ग्रास है । श्वास-श्वासमें वह हमें ग्रसती रहती है ।

अन्तिम श्वासको ग्रास बनाकर ही वह दम लेती है—उसका ग्रसन-कार्य समाप्त होता है और तब हम कहते हैं—मृत्यु आ गयी, हो गयी ।

कितने भोले, कितने सीधे, कितने भ्रान्त हैं हम ? अमरताके उपासक—नित्य-जीवनके आराधक होकर मृत्युको चुनौती देनेकी तो बात करते हैं और उसकी चालसे तनिक भी परिचयका वास्ता नहीं । निरे सूरदास बने हुए हैं इस सम्बन्धमें हम । इस तरह कैसे बेड़ा पार लग सकता है ।

और चेतते भी हैं तो कब ! जब अन्त समय आ लगता है । कार्य-क्षमता निःशेष हो चुकती है । उस समय रोते-पछताते हैं, बवैला मचाते हैं । पर तब यह सब करनेपर भी परिणाम क्या निकलता है । झूठ नहीं कहा किसीने—

'अब पछताये होत क्या ?
चिड़िया चुग गयी खेत'

काश ! समय रहते हम चेतते ।

तब इस तरह निराशाके अन्धकारमें खो जाना नहीं पड़ता ।

अमरताकी उपासना, नित्य-जीवनकी आराधना एक सिरेसे विफल विनष्ट न हुई होती ।

तब तो सचमुच कोई भीतरसे कहता है, हमने अमरता प्राप्त की होती, नित्य जीवनका साक्षात्कार किया होता ।

पर अब ।

अब भी बहुत कुछ हो सकता है । करनेवाला चाहिये ।

जब जागो, तभी सबेरा; निराश होनेकी बात नहीं ।

एक श्वास भी बहुत है करनेवालेके लिये ।

तिलकी ओट पहाड़ है ।

मृत्युकी चालसे बचकर उसके किसी एक दिन आनेके भ्रममें न रहकर, जो सचाईसे पूर्णतया अनन्यतासे सतत लक्ष्य साधनामें लगें हम, तो सहज आश्चर्यचकित रह जायँगे यह देखकर कि अमरता वरमाल लिये आँखोंके आगे ही खड़ी है और नित्य-जीवन चिर-सहचर बना भीतर ही बैठा है ।

अर्पण कर दो रामको बचे हुए सब श्वास । स्मरण करो प्रभुका सदा मनमें भर उल्लास ॥
मौत मरेगी सदाको फिर न आयेगी पास । रामधाममें पहुँच तुम बन जाओगे दास ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नये खाद्य, नये व्यवसाय

(लेखक—श्रीमण्डन मिश्र)

एक पण्डितजी चिन्तित बैठे थे। पाससीसे एक बाबू साहब निकले। उन्होंने पूछा—'पण्डितजी! क्या बात है?' पण्डितजी बोले, 'क्या कहें भइया, पूजा-पाठमें लोगोंका विश्वास नहीं रह गया। कथा-वार्ता सुननेमें रुचि नहीं रही। नौकरी कभी की नहीं, व्यवसायके लिये पैसा पास नहीं, फिर गुजर कैसे हो?' बाबू साहब बोले—'व्यर्थकी चिन्तामें पड़े हो। मैं तुम्हें दो व्यवसाय बतलाता हूँ—एक है 'मुर्गीपालन' और दूसरा 'मत्स्यपालन'। दूसरेमें तो कुछ झंझट है, पर पहला तो बहुत सरल है। मुर्गियाँ पाल लो, कोई खर्च नहीं। यदि हो सके तो मुट्ठीभर दाना दे दो। यदि नहीं तो, कोई हर्ज नहीं। घूरेपर पड़े दानोंसे वे अपना पेट भर लेंगी। आजकल अंडेका दाम २५-३० पैसे है। पौष्टिक भी खूब है। दूध, दही, घी सबमें मिलावट होती है, पर अंडेमें कोई ऐसी बात नहीं। खानेमें भी कोई झंझट नहीं। अंडे बेचे जा सकते और खाये जा सकते हैं। यदि कभी बड़ी आवश्यकता आ पड़ी तो फिर मुर्गीका शोरवा भी बन सकता है, खानेमें बड़ा लजीज होता है। इस तरह नये खाद्य और नये व्यवसाय सामने हैं, फिर चिन्ता क्यों?' पण्डितजी यह व्याख्यान सुनते-सुनते सोच-विचारमें पड़ गये। रेडियोपर इन नये-नये खाद्यों और नये व्यवसायों-की चर्चा प्रायः होती रहती है। कभी-कभी तो सुनते-सुनते कान पक जाते हैं।

मांस खानेकी बात तो अपने यहाँ आती है, पर जहाँतक ज्ञात है, अंडे खानेकी बात नयी है। इसीलिये इसे नया खाद्य कहा गया है। छठीं शतीके चीनी यात्री फाहियानने लिखा है कि 'भारतीय खानेके लिये मुर्गी नहीं पालते।'

सरकारकी ओरसे भी इन खाद्योंका प्रचार भी खूब किया जा रहा है। स्कूलोंमें बच्चोंको खानेके लिये अंडे दिये जाते हैं!

आजकल विज्ञानका बोलबाला है। पर इस विज्ञान-द्वारा प्रायः ऊपरी टटोल ही अधिक की जाती है। यह तो देखा जाता है कि कौन खाद्य पौष्टिक है, पर शरीरकी दृष्टिसे ही। मनपर उसका क्या प्रभाव पड़ता है, इस ओर ध्यान ही नहीं दिया जाता? अपने यहाँ सात्त्विक, राजस, तामस—इन तीनों गुणोंकी दृष्टिसे ही प्रायः सभी बातोंपर विचार चलता है। फलतः खाद्य वस्तुओंमें भी इसका ध्यान रक्खा जाता है। आयुर्वेदिक ग्रन्थोंमें तो इसका बहुत विवेचन है। गीतामें भी संक्षिप्त तथा सरल ढंगसे इसे बतलाया गया है। गुणोंके आधारपर खाद्योंका स्पष्ट विभाजन मिलता है। भोजन-का मनपर कितना प्रभाव पड़ता है, इसका अनुभव सहज ही किया जा सकता है। पर आधुनिक विज्ञानका इस ओर बहुत कम ध्यान जाता है। उसे तो केवल शरीरके लिये पौष्टिक पदार्थोंके ढूँढ़ निकालने-की ही धुन है; किंतु शरीरकी चिन्तामें मनको भूल जाना क्या बुद्धिमत्ता है?

वैज्ञानिक प्रसंगमें ही एक और बातकी याद आ जाती है। अपने यहाँ रजस्वला स्त्रीको अस्पृश्य माना गया है। तीन दिनतक उसे एकान्तमें विश्राम करना चाहिये। पर स्कूल, कालेज, दफ्तरोंमें जानेवाली लड़कियों तथा महिलाओंके लिये यह कैसे सम्भव है? सम्भव भले ही न हो, पर जो तथ्य है, उसे तो मेटा नहीं जा सकता। 'भारतीय मेडिकल असोसियेशन जर्नल' के नवम्बर १९५० के अङ्कमें डॉक्टर रेड्डी तथा गुप्तका एक लेख प्रकाशित हुआ है। उनका कहना है कि पाश्चात्त्य डॉक्टरोंका मत है कि रजस्वला स्त्रीके स्रावमें कुछ विषैले तत्त्व होते हैं। १९२० में डॉक्टर सेरिकने यह अनुभव किया कि कुछ फूल रजस्वला स्त्रीके हाथमें देते ही मुरझा जाते हैं। १९२३ में डॉक्टर मिक्वर्ग तथा माइकेने यह बात खोज निकाली कि 'रजस्वला स्त्रीका प्रभाव प्राणियोंपर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी पड़ता है ।' उन्होंने देखा कि उसके हाथमें मेढक ऐसे मेढकके हृदयकी गति मन्द पड़ जाती है। १९३० में डॉक्टर लेनजो भी इसी निष्कर्षपर पहुँचे और उन्होंने यह भी बतलाया कि रजस्वला स्त्रीके हाथमें १०-१५ मिनट मेढक रहनेसे उसकी पाचन-शक्तिमें विकार उत्पन्न हो जाता है । डॉक्टर पालैण्ड तथा डीलका यह मत है कि यदि खमीर रजस्वला स्त्रीसे तैयार कराया जाय तो कभी ठीक नहीं होता । यूरोप तथा अमेरिकाके कई डॉक्टर इस निष्कर्षपर पहुँचे हैं कि मासिकके पहले दो दिनमें विषैले तत्त्व अधिक मात्रामें निकलते हैं । इस तरह अपने यहाँकी प्राचीन परम्पराका वैज्ञानिक आधार है । डॉक्टर रेड्डी तथा गुप्तने अपने लेखमें कई पुस्तकोंके नाम दिये हैं, जिनसे इस विषयपर अच्छा प्रकाश पड़ता है। एक बात तो प्रत्यक्ष देखनेमें आती है। यदि रजस्वला स्त्रीकी छायातक अँचारपर पड़ जाती है तो वह बिगड़ जाता है ।

ऐसी अवस्थामें हमें नये खाद्य और नये व्यवसायोंके ढूँढ़ निकालनेमें सावधानी बरतनेकी विशेष आवश्यकता है । केवल तात्कालिक लाभका ही ध्यान रखना ठीक नहीं । उसके दूरवर्ती परिणामोंको भी अच्छी तरह समझना चाहिये । आध्यात्मिककी तो आज बात ही नहीं, पर कम-से-कम मानसिक प्रभावकी उपेक्षा तो नहीं करनी चाहिये ! अंधाधुंध भेड़ियाधसानका परिणाम बहुत बुरा होगा !

अनूठा बदला

(लेखक—प्रो० श्रीशिवानन्दजी)

रात अँधेरी थी । अरबकी मरुभूमिमें रात्रि अत्यन्त भयावह प्रतीत होती थी । चारों ओर सन्नाटा था । इस निस्तब्ध वातावरणमें सहसा किसी अनजाने व्यक्तिने यूसुफके द्वारको खटखटाया । द्वार खुला । शान्त मुद्रामें खड़े यूसुफसे इस आगन्तुकने कहा, 'यह व्यक्ति जो आपके द्वारपर अर्द्धनिशाके अंधकारमें आया है, समाजसे निष्कासित एक पापी है और सभीने गर्हित मानकर इसका परित्याग कर दिया है । यह भीतित्रस्त है और प्रकम्पित है । राजकर्मचारी इसे पकड़कर दण्डित करनेके हेतु इसके पीछे लगे हुए हैं, जिनसे प्राण बचानेके लिये यह भागा-भागा घूम रहा है; परंतु कहीं भी सिर छिपानेको स्थान न पाकर आपके द्वारपर आया है । हे यूसुफ ! आप अपनी दयालुताके लिये सुविख्यात हैं । आपको सभी सत्पुरुष मानते हैं । मैं भी आपकी शरण ग्रहण करता हूँ और आपसे भोजन एवं विश्राम पानेकी याचना करता हूँ । मैं दुखी हूँ और मुझे कुछ भी सूझता नहीं है । मेरी विचारशक्ति क्षीण हो चुकी है । क्या मुझे इस द्वारपर शरण मिलेगी ?'

तुरंत ही स्वागतके लिये भुजा उठाकर यूसुफने कहा, "भद्रपुरुष ! यह घर मेरा नहीं है । उस प्रभुका है । अतः इसमें तुम्हारा भी अधिकार है । यह समस्त संसार एक धर्मशाला है, जहाँ यात्री कुछ समयतक ठहरकर चले जाते हैं । प्रत्येक सदन भी एक छोटी-सी धर्मशाला है, जहाँसे सभी कौटुम्बिक-जन कुछ अवधिके पश्चात् विदा ले लेते हैं । सच पूछो तो यह शरीर भी एक धर्मशाला है जहाँ कुछ समयतक आत्मा एक यात्रीके सदृश ठहरता है और एक दिन छोड़कर अकस्मात् कहीं चला जाता है । तो फिर जब मैं इस देहका भी स्वामी नहीं हूँ, इस आवास-निकेतनका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही एकाधिपति कैसे हूँ ? तुम्हारे लिये इसके द्वार खुले पड़े हैं । शान्त हो जाओ । यहीं भोजनादि सामग्रीका स्वतन्त्रतापूर्वक उपयोग करो; क्योंकि इसका सच्चा स्वामी परमात्मा है, जिसके द्वारपर किसीको भी 'नहीं' सुननेके लिये नहीं मिलता है ।

शरणार्थीने यूसुफके डेरेमें प्रवेश किया, जहाँ उसने शान्तिसे रात बितायी और विश्राम किया । रात्रिमें इस नवागन्तुकने आत्मपरिचय न दिया और अतिथिरूपमें समुचित सेवा-सत्कार उसे उपलब्ध हुआ । यूसुफने स्वयं उसकी परिचर्या की ।

सूर्योदयसे पूर्व ही जब कुछ नक्षत्र अभी चन्द्रदेवकी सभा विसर्जन होनेके उपरान्त भी आकाशमें विद्यमान थे, यूसुफने अपने अतिथिको धीरेसे जगाकर उससे कहा—'महाभाग ! सूर्योदयकी बेला समीप ही है । आपकी सुविधाके हेतु मैं कुछ धन आपकी सेवामें अर्पित कर रहा हूँ । यह ग्रहणकर मुझे कृतार्थ कीजिये और मेरे द्रुतगामी अश्वपर आरूढ़ होकर अन्यत्र चले जाइये, जिससे कि दिनका प्रकाश आपको आपके विरोधीगणके सम्मुख न कर सके । आपके हितकी दृष्टिसे ही मैंने यह सम्मति दी है । आप इसे अन्यथा न समझें । सेवामें भी त्रुटियाँ हुई हैं और आपको जो असुविधा हुई है, आप उसे उदारतासे क्षमा करें ।'

यूसुफके हृदयकी पवित्रता उसके मुखमण्डलपर स्वच्छ चन्द्रिकाकी भाँति छायी हुई थी । उसके मौनमें समुद्रकी गहनता अन्तर्निहित थी । उसके नेत्रोंमें मनोरम आकर्षण था । उसके दिव्य व्यवहारने आगन्तुकके हृदयमें भी सात्त्विकता उत्पन्न कर दी थी । एक दीपक दूसरे दीपकको जला देता है और उसकी अपनी ज्योतिमें न्यूनता नहीं होती है । नवागन्तुकके हृदय-प्राङ्गणमें अन्धकार आच्छन्न था । वहाँ पापकी कालिमा थी, भयका उद्रेक था और ग्लानिका तमस् था । किंतु यूसुफकी शान्त, पुण्यपूत, सद्-रंजित, आकृतिसे निःसृत होकर बिखरनेवाले किरण-पुञ्जने इस व्यक्तिके हृदयमें उल्लासकी धवलताको जाग्रत् कर दिया । भयके स्थानपर साहस और ग्लानिके स्थानपर ओज प्रकट हो गये । उसका मुख कमलकी भाँति खिल उठा और उसके हृदयकी सुमधुर पवित्रता उसके नेत्रोंसे झाँकने लगी ।

नीचे झुककर पृथ्वीपर जानु टेककर उसने यूसुफके अभयप्रदाता दक्षिण करपर अपना मस्तक रख दिया और सिसककर कहा—'हे शेख ! मैं कृतघ्न हो जाऊँ । आपने मुझे त्राण दिया, भोजन दिया, शान्ति दी, सुरक्षा दी और केवल इतना ही नहीं, आपने मुझ भटकते हुएको राह दिखायी, आत्मप्रकाशसे मेरे मनमें जीवन-ज्योति जला दी । पवित्रता दी । मैं जीवनको भार समझ रहा था और अपने आपसे भयभीत था । आपके प्रति मैं कृतज्ञता प्रकाशन करना चाहता हूँ । आज्ञा दीजिये ।'

यूसुफको इस सबका अर्थ स्पष्ट न हुआ और उसने ठिठककर कहा—'प्रियवर ! मैंने तो साधारण मानवीय कर्त्तव्यका पालन किया है । सबकी उदरपूर्ति ईश्वर करता है जो हम सबका अन्नदाता है । यदि कोई व्यक्ति मेरे घरपर ईश्वरप्रदत्त भोजन ग्रहण करता है, वह तो मेरे घरको पवित्र करता है । मैं ही आपका कृतज्ञ हूँ कि मुझे सेवाका अवसर दिया है ।'

इस अज्ञात और अपरिचित व्यक्तिने यूसुफसे फिर कहा—'मैं कैसे यह कहूँ कि यह उपकार आपने इस कुकर्मी, पातकी इब्राहिमके लिये किया है, जिसने आपके ज्येष्ठ पुत्रकी जघन्य हत्या की थी । हमारी जातिमें यह मान्यता है कि हत्यारेके वध करनेपर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही मृतककी आत्माको शान्ति मिलती है। अतएव मेरा सिर आपकी सेवामें अर्पित है। आप खड्ग उठाकर मेरा वध कर दें जिससे कि आपके पुत्रकी आत्माको शान्ति और मुझे उचित दण्ड प्राप्त हो सके।'

यह कहकर इब्राहिम मौन हो गया, किंतु उसकी मौनताने यूसुफको मुखरित कर दिया। उसके मनमें सहसा एक तूफान उठ खड़ा हुआ था, जिसे वह शान्त कर देना चाहता था। पुत्रके स्मरणमात्रसे उसके शरीरमें भावावेगका भूकम्प आ रहा था। एक ओर तो पिताके रूपमें यूसुफके हृदयमें अपने पुत्रके हत्यारेके वध करनेकी पाशविक इच्छा जाग रही थी और दूसरी ओर शरणागतकी रक्षा करना उसका महान् कर्त्तव्य था। उसके मानसमें इस संघर्षने एक क्षण ही उथल-पुथल की होगी कि दिव्य भावसे संप्रेरित होकर वह शीघ्रतासे बोल उठा—'तब तो आप और भी अधिक त्वरित गतिसे विदा लें, कहीं ऐसा न हो कि मेरे मनमें प्रतिशोधकी भावना उग्र हो जाय और मैं कर्तव्यभ्रष्ट हो जाऊँ। मेरे नेत्रोंसे आपके ओझल हो जानेके साथ ही मेरे हृदयकी कलुष भावना भी मानो विलुप्त हो जायगी। शीघ्रता करें और अब यह तिगुना धन ले जायँ।'

दिव्य यूसुफके हृदयमें करुणा भरी हुई थी। विषधर भुजंग क्षमा करना नहीं जानता और वह विषवमन ही करता है, किंतु महापुरुषका हृदय तो क्षमा और प्रेमका अथाह समुद्र होता है। उसने इब्राहिमको क्षमा किया। नेत्र मूँदकर और दुआमें दोनों भुजा ऊपर उठाकर कहा—'हे मेरे दिवंगत ज्येष्ठ पुत्र! मैं तेरे लिये दिन-रात तड़पा करता हूँ। आज मैंने तेरा बदला ले लिया है। तेरे हत्यारेकी नृशंसभावना पश्चात्तापकी अग्निसे विनष्ट हो चुकी है और आज उसका स्वरूप पवित्र है। परमात्माका विधान न्यायपूर्ण और पवित्र है। तेरी हत्याका शीघ्र प्रतिशोध आज सम्पन्न हो चुका है। अब तू शान्तिकी चिर निद्रामें सो जा।'

मेरी निन्दासे किसीको संतोष होता हो तो वह खूब निन्दा करे

सततसुलभदैन्ये निःसुखे जीवलोके
यदि मम परिवादात् प्रीतिमाप्नोति कश्चित्।
परिवदतु यथेष्टं मत्समक्षं तिरो वा
जगति हि बहुदुःखे दुर्लभः प्रीतियोगः॥

इस दुःखमय जीवलोकमें, जिसमें सदा दीनता ही सुलभ है, यदि किसीको मेरी निन्दासे सुख-संतोष होता है तो वह चाहे मेरे सामने, चाहे पीछे मेरी यथेष्ट निन्दा करे; क्योंकि इस दुःखमय संसारमें प्रसन्नताकी प्राप्ति बड़ी दुर्लभ है।

मन्निन्दया यदि जनः परितोषमेति
नन्वप्रयत्नसुलभोऽयमनुग्रहो मे।
श्रेयोऽर्थिनो हि पुरुषाः परतुष्टिहेतो-
र्दुःखार्जितान्यपि धनानि परित्यजन्ति॥

मेरी निन्दासे यदि किसीको संतोष होता है, तो बिना प्रयत्नके ही मेरी उनपर कृपा हो गयी; क्योंकि श्रेयके इच्छुक पुरुष तो दूसरोंके संतोषके लिये अपने कष्टोपार्जित धनका भी परित्याग कर देते हैं (मुझे तो कुछ करना ही नहीं पड़ा)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवन्नाम-जप

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

'कल्याण'के पिछले अङ्कमें हमारे प्रेमी पाठक-पाठिकाओंके द्वारा उपर्युक्त षोडशनामके भगवन्नाम-मन्त्रका ३३,६२,३३,७०० (तैंतीस करोड़, बासठ लाख, तैंतीस हजार, सात सौ) जप होनेकी सूचना छप चुकी है । यह जप हमें मिलि सूचनाके अनुसार १००९ स्थानोंपर हुआ । उन स्थानोंकी नामावली नीचे दी जा रही है । कोई नाम छूट गया हो या ठीक न लिखा गया हो तो वहाँके सज्जन हमें क्षमा करें—

व्यवस्थापक—**नाम-जप-विभाग**

स्थानोंके नाम

अकोला, अखतियारपुर, अगेसी, अगौस, अचलजामू, अजनी, अजबपुर, अकसेव, अजमेर, अठेहा, अदीलाबाद, अपरसर, अम्बर, अम्बापलाश, अमगवाँ, अमरदा रोड, अमरपुर, अमरपुरा, अमलनेर, अमलापुरम्, अमृतसर, असकरगंज, अमानतगंज, अमारुत, अरई, अरनतंगी, अरार, अरसारा, अरेराज, अरौद, अलमोड़ा, अलीगंज, अलीराजपुर, अवन्तिपुर, अशोकनगर, असीवाबाद, अंकोला, अंचलवाणी, अंजनगाँव सुर्जी, अंजनिया, आगरा, आगूँचा, आजमगढ़, आढ़तबाजार, आनन्दाश्रम, आपरा खेड़ा, आमी, आवली, आसनसोल, औरंगाबाद, इचलकरंजी, इटकी, इटौंजा, इन्दौर, इन्दौराबाग, इलाहाबाद, इसलामपुर, इसागढ़, ईडर, उकलानामण्डी, उगारखुर्द, उज्जैन, उजीर, उना, उन्हैल, उमधा, उमरी, उमरुधा, उगसा, उमापुर, ऊँचा, ऊँनगर, औनहा, एकवोटेवाड़ा, कंकरखेरा, ककोढ़ा, कटंगी, कड़विन्धा, कटैया, कटोला, कटोवाली, कन्धाचट्टी, कन्हौलीगजपति, कनार हरिहरपुर, कन्यामपट्टा, कन्नौज, कनौटा, कमालगंज, कमासी, कमासिन, क्योटगाँमा, कर्नलगंज, करवड, करेली, करोला, करीमनगर, करोलबाग, करौली, करौलीबाग, कलकत्ता, कल्याणमल, कल्याणीबेवी, ववदास्वाली, कवढ़व, कविनगर, कसरटौर, कसुरजी, कंकर, कंजई, काटोल, कादरगंज, कान्हाचट्टी, कानपुर, कालकाजी, कालीम्पोंग, कावा, कासगंज, काँकरोली, कांचरापाड़ा, कांधला, कांवट, किछा, किदवई-नगर, किलपुक, किष्टवार, कीजगंज, कुड़वा मठिया, कुडासन, कुछिला, कुलकुलपल्ली, कुनौली बाजार, कुम्हार, कुम्हारी, कुलगढ़ी, कुसमी, कुसुन्डा, कुंडिया, कृष्णपुर, केडगाँव, केयाल, केरागाँव, केराडिह, कैकालुर, कृष्ण, कैचलमण्डी, कैथवली, कोकलकचक, कोचिन, कोटफतुही, कोठिया, कोठीधारकला, कोमाटोर, कोयरी-डीह, कोरगवाँ, कोलर, कोलाड़, कोसमतारा, कोसली, कौडिया, कौशाफपुरी, खटिहाकलाँ, खटेली, खडेर, खमरिया, खरोसा, खलपुर, खवासा, खंगटा, खाचरौद, खार, खारकलाँ, खास, खिदिरपुर, खीजडीयारी, खुर्द, खुरई, खुसुरुपुर, खूईखेला, खेड़ाकलाँ, खेतिया, खेरैहिया, खोनीपाल, खोरी, गजसिंहपुरा, गढर, गढवा, गढ़ी, गढीकैन्ट, गदरपुर, गया, गलीखिलोनिया, गल्लेबोर, गल्लेबोर गाँव, ग्वालियर, गहा, गहोरा, गंगधार, गंगराउ, गंगापुर, गाजनपुर, गाजीपुर, गाणगापुरक्षेत्र, गाँधीनगर, गिरिडीह, गुजरा, गुजरात, गुडगाँव, गुडेबल्लर, गुम्हाँ, गुवाकोला, गुंजरचक, गूजरी, गेरोन, गैली, गोटेगाँव, गोंडगिरी, गोठारसूलपुर, गोनौन, गोमाँ, गोरंगचौड़, गोरखपुर, गोरीफा, गोलमा, गोलसपुर, गोला, गोविन्दनगर, गोविन्दपुर, गोसी अमनौर, गोहरा, गौर, गौरा, गौहरा, गोंडा, घाटकोपर, चकिया, चकौंध, चण्डेश्वर, चंडीगढ, चन्दा, चन्द्रपुराखुर्द, चनायनबान, चनौदा, चपड़ाँ, चम्पारन, चमोली, चरौदा, चाक, चाँदगंज, चिकपुर, चिखली, चितवई, चिन्तामन जवासिया, चिलवरिया, चुरखी, चुरली, चेचार, चोरमुर, चोई, चोकदी, चौइहा, चौथका बखाड़ा, चौदुआर, चौसा, छतरपुर, छतीसगढ़, छपरा, छिंदवाड़ा, छोटामिरजापुर, छोटामुरी, जगदीशपुर, जगाधरी, जटमलपुर, जबलपुर, जम्मू, जम्मूतवी, जमटी, जयपुर, जयरामपुर, जराहमोह गाँव, जरौली, जलगाँव, जवारिया, जहाँगीर, जहाँगीराबाद, जंडवालाखरथा, जागपुर, जाजोद, जामठी, जामरपुर, जार्जटाउन, जालना, जीराबाद, जूँहूँ, जेतलपुर, जैकोट, जैतहरी, जोकबंध, जोगचौक, जोगवनी, जोधपुर, जोनेवा, जोरावरडीह, जोशीमठ, जौरही, झरिया, झारसुगुड़ा, झालरापाटन, झालू, झाँगड़ी, झाँगराखाँड,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

झाँसी, झिकटिया, झिल्लीघाट, झुरका, झूमियावाली, टडियावाजार, टवडी, टहरौली, टालादीही, टिकारी, टिमरनी, ट्रिपलीकेन, टीरुपट्टी, टुटीकोरिन, टुमकुर, टेहटा, टोटरानी, टोंकर स्टेट, टटिया, डरतान, डागरवारा, डाटिया, डालमियानगर, डालीगंज, डिनसियोर्ड, डिहूरी, डुमरियाखुर्द, डुमरीधार, डूँगरपुर, डूमाइगढ, डेहरी-ऑन सोन, डैगामोहचार, डोकरकई, डोकाकुई, डोड-वालापुर, डोली, डंगोली, डोंगरी, डौंडी, ढाणकी, ढाव, ढुकवाँ डैम, ढेंगा, ढोढरामोहार, ढोली, तख्तपुरा, तरवा, तलवास, तरहजी, ताउवेरोली, तादलवाड़ी, तापडिया नगर, ताराकद, तारा जीवर, तालेव, तिलकपुर, तिलहर, तिसतर, त्रियाँलिया, तुंगणी, तेजपुर, तेमथा, तेली, तोपखानावाजार, तौरा, थनजौर, थाना, दमोह, दयुड़ाई, दरभंगा, दरियागंज, दरियापुर, दरौली, दलकि, दलीपनगर, दहिआवा टोला, दहिद, दहियावाँ, दाड़ी, दादवल्लापुर, दायाखेडा, दिनारी, दिल्ली, दुर्ग, दुर्गापुर, दुल्लापुर, दूदिया, देडगाँव, देढणा, देवनगर, देवरी, देवरीकलाँ, देवास, देशपदनगर, देहरादून, दोन, दोन्ही, धनगाँव, धनवाही, धनसाँगनी, धनिगवाँ, धनौली, धमतरी, धरमपुर, धरमावद, धरमावरम, धरवार, धामण-गाँव, धामन्दा, धार, धारचूला, धुआवै, धुंधुका, ध्रांगध्रा, धुरुआपारा, धुलिया, धौरपुर, धौराराखुर्द, धौलपुर, नई गढ़ी, नई दिल्ली, नई सराय, नगलातोरन, नगवाँगढ, नगौर, नजीवावाद, नडिआद, नन्दनम, नपोक्लू, नम्बीवाल, नयवीरपाल, नरर, नरसिंगगढ़, नरावना, नरायना, नलकुन्टा, नवरंगपुर, नागपुर, नागापट्टनम्, नानी वावड़ी, नाभा, नामकुभ, नायकोट, नार्थ टी टी नगर, नारदीगंज, नारवारा, नारायणपेठ, नाल्वाडी, नालाकुन्टा, नास्सावाद, नासिक, नांदेड, निगवानी, निगामावाद, निर्मण्ड, निरसाचट्टी, निरामा, नीमीकम, नीमटीकर, नछरावाँ, नेतनागर, नेतसपुर, नेवरा, नेर, नेवेली, नैनीगढ़ नगरा, नैनीताल, नैपाल, नैमिषारण्य, नोनार, नोहर, पचपहाड़, पचहरवा, पटना, पट्टीशाह, पटून पैलेस, पटेलनगर, पडरिया, पड़वा, पतैली, पनहाँस, पपौध, प्रतापगढ़, प्रधान खुवास, प्रह्लादपुर, परवरपार, परसदा, परसागढ़, पलामू, पचाशी, पश्चिम-शरीरा, पंचाशिया, पंढरपुर, पाचोरा, पाण्डेनाथ, पातूर, पारड़सिंगा, पालघाट, पाली, पावरखेडा फार्म, पाँचपदरिया, पिन्डारी, पिन्ड्रावल, पिन्डी ट्रस्ट, पिपरखेडे, पिपरी गहरवार, पिपल्या जोधा, पिपाड शहर, पीपरगाँव, पीपलरावा, पीपलवाडा, पुखरायाँ, पुट्टुककटार, पुरदिलपुर, पुरनावाँ, पुरविया टोला, पुरहिया, पुराचिकलवा, पुववायाँ, पुल्लीटीकुरु, पूना, पेडगाँव, पेन्डरा, पैंची, पैनाबुजुर्ग, पोचानेर, पोरदाग, फतेहगढ़, फतेहपुर, फतेहपुर चौरासी, फन्रारा, फंफूद, फरीखावाद, फरीदनगर, फरीदीवाद, फर्रुखावाद, फागी, फिरोजपुर, फिरोजावाद, फुलपरास, फुलपारा, फूपर, फूलसावंगी, फैजपुर, फैजावाद, वरवतगढ़, वगडिया, वगहा, वड़नगर, वड़मुडिया हिन्दुस्तानी, वड़माल, वनवानी, वडहलगंज, वडीगुलनी, वड़ौदा, वजौरा, वदायूँ, वनाई, वनमनखी, वनैली, वमकोयी, वम्वई, वमभई, व्रह्मपुर, वरईपारादुर्ग, वरगाँव, वरादार, वरुधन, वरेली, वलरई, वलांगीर, वल्लारपुर, वलीगाँव, वस्तर, वसखारी, वम्ना, वहेर, व्रह्मावली, वंकापुर, वंगरा, वंगलौर, वंडोल, वंदा, वाईसी, वादशाहनगर, वान्द्रा, वापूनगर, वारा, वारापाली, वालापुर, वालोदा वाजार, वावल, वाँसवाडा, विछवाँ, विदरी, विलारी, विलासपुर, विशुनदत्तपुर, वीकौरी-पनवासा, वीना, वीमतारा, वून्दी, वेतुल, वेमेतरा, वेरसिया खुर्द, वेरिया, वेलर, वेलगाम, वेलसन्डी, वेलोटी, वैजप, वैदरावाद, वैरिया, व्रोच, वौर, भटगामा, भठगुलनी, भदनूर, भद्रपुरा, भदेवाँ, भन्जराहू, भमकी, भयाअटेर, भरड़, भरतपुर, भरथौली, भरोसा, भवदेव-पुर, भवनगर, भवानीपुर, भवानी मन्दिर, भागलपुर, भाटे, भादौर, भानवाड, भाभरे, भिट्टी, भिरखेल, भिलाई, भिवानी, भीड़ी, भीमताज, भीमताल, भुवनेश्वर, भुसावल, भेडीहारी, भेरुनाला, भैरोनाला, भैंसा, भोकरधन, भोपतपट्टी, मऊखास, मऊचिरापल, मखलोटगंज, मगरोजपुर, मचून, मढ़न, मठाकीरी, मलकोली, मथुरा, मदुराई, मदोह, मधुपुर, मधुवनी, मंदोदर, मन्दोरी, मनफरा, मनाअलोर, मनासा, मनोहरपुर, मप्सावरदरी, मरदानपुर,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मलकायू, मलकापुर, मलमपुड्डी, मलयपुर, मलहरा, मल्लासवाराम, मस्तीचक, मसकी, मसौली, महन्दगाँव, महनार, महरौनी, महवल, महानगर, महाराजगंज, महाराजपुर, महुवारी, मंगरुल, मंगलाज, मंडला, माटुंगा, मातौल, माधोपाली, मानचेस्टर (इंग्लैंड), मानपुर नगरिया, मानापुर, मारवाड़ जंक्शन, मॉरंगलोइया, मालवीयनगर, मालेगाँव, मावलीजंक्शन, मिट्ठी, मिदकी, मिरजापुर, मिहोना, मीराखेड़ी, मीरापुर, मुकवासा परगना, मुकीमपुर, मुकुन्दपुर, मुजफ्फरनगर, मुजफ्फरपुर, मुरादाबाद, मुरादपुर, मुरारा, मुरेना, मुलसाई, मुहम्मदाबाद, मेठपली, मेरठ, मेलापुर, मेहगाँव, मेंहदावल, मैनगाँव, मैनपुरी, मैसूर, मोचानेर, मोटेवा छोटा, मोडासा, मोड़ी, मोत्बुङ्ग, मोतनाज, मोतीबाजार, मोम्बासा, मोरटा केवडी, मोरडोंगरी, मोरबन, मोवाड, मोसाक चक, मोहम्मदाबाद, मौदहचतुर, मौधिया, यमुनानगर, यशवन्तपुर, येवला, रगीचोटी, रघुनाथगंज, रघुनाथपुर, रसूलगढ़, रसूलपुर, रहावली, रागी, राजकोट, राजगीर, राजापुर (बाँदा), राजापुर (प्रतापगढ़), राघोपेट, राँची, रानीखेत, रानीला, रान्नु, रामनगर (वाराणसी), रामनगर (सरगुजा), रामपुर, रामपुरा, रामवन, रामसनेहीघाट, रामसागर, रामा, रायचुर, रायपुर, रायभा, रायलुभाई, रावेर, रिवाड़ी, रुकमपुर, रुद्रपुर, रुदावल, रोषपुर, रोहतक, रोहिणी, लखावटी, लखीमपुर खीरी, लत्ता, लदानाबावा, लमपुर, लश्कर, लहरनिया, लाखेरी, लाँजीगढ़, लांबोले, लालगढ़, लालपुर, लासलगाम, लिंयोरा, लिलसी, लीवीदी, लीलापहीवन कटिया, लीलापुर, लुधियाना, लेसवा, लोहागीर, लोहादी, वटेश्वर, वडगाँव, वड़रिया, वड़ियागाँव, वमौरकलाँ, वरली, वरसुइया, वर्रा, वराडीह, वरियारपुर, वरोडा, वरौत, वल्लभनगर, वल्लारशाह, वसवकल्याण, वृंदावन, वाँका, वागकलाँ, वाँचियोर, वाडीनैकाट, वाढ़, वासुकगाँव गंगा, वाराकोट, वाराणसी, वारु, वालसीगंज, वालोन, वासौदा, विछिया, विजुआ, विजोलिया, विझवट, विन्दा, विरगाँव, विलखी, विलन्दा विलसडा, विलासपुर, विशाखापट्टम्, विसड़ा, विहारीगंज, वीनागंज, वुड़वा, वेठना, वेतिया, वेलर, वेलवा, वेहटागोकुल, वोरीगारका, वोदहरी, वोड़ा, वोटाद, श्यामकोट, शकूरबस्ती, शरफुद्दीनपुर, शंखलपुर, शाहआलम-नगर, शाहपुरचाक, शाहपुरपट्टी, शाहपुरा, शाहजहाँपुर, शिराढोण, शिरूर, शिवगढ, शीरीपुर, शीतलगंज, शेखैयापुरा, स्वर्गाश्रम, स्वाड़, सकरार, सकरी (विलासपुर), सकरी (दरभंगा), सकसोहरा, सकौती, सगवारत, सत्याम, सनावद, सनावडा, सफरी, सबवडा, सम्बलपुर, समस्ती-पुर, समेसर, सरखों, सरगुजा, सरदारपुर, सरहरी, सराँयकाइयाँ, सरायकेला, सरायभावसिंह, सरायममरेज, सरेया, सरेरी, सरौली, सवलपुर, ससून्द्रा, सहरसा, सहेवा, संगरुर, साकोली, सागर, सागरदिघी, साढूमल, साधना, सामोज, सारंगगढ, सारंगपुर, सावैर, साहवगंज, सिकन्दरपुर, सिकन्द्राबाद, सिद्धपुर सरकारी, सिन्दुआरी, सिन्धरी, सिपत, सिमरौल, सिरसाकलाँ, सिरपुर, सिरोंचा, सिरोंज, सिरोही, सिलवारी, सिलीगुडी जंक्शन, सिवनी, सिंहपुरबड़ा, सिहोरा, सीकर, सीतापुर, सीधपकाल, सीधी, सीनयाली, सीयरी, सीवन, सीसवाली, सुगाँव, सुन्दरगढ़, सुन्दरग्राम, सुनलेही, सुनैल, सुरतामहमदपुर, सुरपा, सुरपालगाँव, सुरादा, सुरेन्द्रनगर, सुलतानगंज, सुलतानपुर, सूरजपुर, सूर्यपुरा, सेलीघाट, सैथियान, सैदपुर, सोई, सोढ़, सोदपुर, सोनगाँव, सोनपुर, सोनूपुर, सोनरे, सोनावा, सोलापुर, सोयगाँव, सोहन्दरघाट, सौठियाव, हजारीवाग, हत्था, हतुनिया, हदौरा, हनम-कुन्डा, हफीजाबाद, हबीबपुर, हरई, हरखौली, हरदा, हरदी, हरदोई, हरबंशगंज, हरिहरपुर, हलवाई, हवेली-खडगपुर, हसुआ, हसैजा, हानेश्वर, हायाघाट, हाँफा, हाँगकाँग, हिन्डालकोरेणुकुट, हिन्डोरिया, हिन्दुपुर, हिनौली, हिवराकोरडे, हिलौधा, हुजराबाद, हुबही, हैदरनगर, हैदराबाद, होमनाबाद, होशियारपुर ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीभगवन्नाम-जपके लिये विनीत प्रार्थना

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

भलो भलीभाँति है जो मेरे कहे लागिहै । मन रामनाम सों सुभाय अनुरागिहै ॥
राम नामको प्रभाउ जानि जूड़ि आगि है । सहित सहाय कलिकाल भीरु भागिहै ॥
राम नाम सों बिराग, जोग, जप जागिहै । बाम बिधि भालहू न करमदाग दागिहै ॥
राम नाम मोदक सनेह सुधा पागिहै । पाइ परितोष तू न द्वार द्वार बागिहै ॥
राम नाम कामतरु जोइ जोइ माँगिहै । तुलसीदास स्वारथ परमारथ न खाँगिहै ॥

तुलसीदासजी कहते हैं—'मन ! मेरे कहनेपर चलकर स्वभावसे ही तू रामनामसे प्रेम करेगा तो तेरा सब प्रकारसे भला होगा । रामनामका प्रभाव (दुःखरूपी) कँपा देनेवाली सर्दीका नाश करनेके लिये अग्निके समान है । मनुष्यकी बुद्धिको विचलित कर देनेवाला कलिकाल अपने (राग-द्वेष, कलह-क्लेश, तीन तरहके दुःख-ताप आदि) सहायकोंसमेत रामनामके डरसे तुरंत भाग जायगा । रामनामके प्रभावसे वैराग्य, योग, जप आदि जाग उठेंगे । फिर वाम विधाता भी तेरे मस्तकपर बुरे कर्मफल अङ्कित नहीं कर सकेगा । यदि तू रामनामरूपी लड्डूको प्रेमरूपी अमृतमें पागकर खायगा तो तुझे सदाके लिये संतोष मिल जायगा । फिर सुखके लिये घर-घर भटकना नहीं पड़ेगा । रामनाम कल्पवृक्ष है, इससे तू उससे स्वार्थ-परमार्थ जो कुछ भी माँगेगा, सभी मिल जायगा, किसी बातकी कमी नहीं रहेगी ।'

आजके इस आधि-व्याधि, रोग-शोक, कलह-क्लेश, द्रोह-द्वेष, वैर-हिंसा, अकाल, अवर्षा, अतिवर्षा, अनाचार, अत्याचार, भ्रष्टाचार, स्वेच्छाचार आदिसे पीड़ित तथा भगवद्विमुखतारूप दुर्भाग्यसे युक्त मानवको इन सभीसे सहज मुक्त कर सर्वाङ्गीण सुखी बनानेके लिये तथा मनुष्य-जीवनके लक्ष्य मोक्ष या भगवान्‌के प्रेमकी प्राप्ति करानेके लिये एकमात्र 'भगवन्नाम' ही परम साधन है । इस समय चारों ओर अशान्तिके बादल छाये हैं, युद्धकी भीषणता सिरपर सवार है । इसीलिये 'कल्याण'के भगवद्विश्वासी पाठक-पाठिकाओंसे प्रतिवर्षकी भाँति प्रार्थना की जाती है कि वे कृपापूर्वक स्वयं प्रेमके साथ अधिक-से-अधिक नाम-जप करें तथा प्रेमपूर्वक प्रेरणा करके दूसरोंसे करायें । यही परम हित है । गत वर्षकी भाँति इस वर्ष भी—

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

—इस उपर्युक्त १६ नामवाले परम पवित्र मन्त्रके २० (बीस) करोड़ जपके लिये ही प्रार्थना की जाती है । नियमादि इस प्रकार हैं—

१–यह श्रीभगवन्नाम-जप जपकर्ताके, धर्मके, विश्वके—सबके परम कल्याणकी भावनासे ही किया-कराया जाता है ।

२–इस वर्ष इस जपका समय कार्तिक शुक्ला १५ शुक्रवार सं० २०२४ (१७ नवम्बर १९६७) से आरम्भ होकर चैत्र शुक्ला १५ शनिवार सं० २०२५ (१३ अप्रैल १९६८) तक रहेगा । जप इस समयके बीच किसी भी तिथिसे करना आरम्भ किया जा सकता है, पर इस प्रार्थनाके अनुसार उसकी पूर्ति चैत्र शुक्ला १५ सं २०२५ को समझनी चाहिये । पाँच महीनेका समय है । उसके आगे भी जप किया जाय, तब तो बहुत ही उत्तम है । करना चाहिये ही ।

३–सभी वर्णों, सभी जातियों और सभी आश्रमोंके नर-नारी, बालक-वृद्ध-युवा इस मन्त्रका जप कर सकते हैं ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४-एक व्यक्तिको प्रतिदिन 'हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥'—इस मन्त्रका कम-से-कम १०८ बार (एक माला) जप तो अवश्य करना चाहिये। अधिक कितना भी किया जा सकता है।

५-संख्याकी गिनती किसी भी प्रकारकी मालासे, अँगुलियोंपर अथवा किसी अन्य प्रकारसे रक्खी जा सकती है।

६-यह आवश्यक नहीं है कि अमुक समय आसनपर बैठकर ही जप किया जाय। प्रातःकाल उठनेके समयसे लेकर रातको सोनेतक चलते-फिरते, उठते-बैठते और काम करते हुए—सब समय इस मन्त्रका जप किया जा सकता है।

७-बीमारी या अन्य किसी कारणवश जप न हो सके और क्रम टूटने लगे तो किसी दूसरे सज्जनसे जप करवा लेना चाहिये। पर यदि ऐसा सम्भव न हो तो स्वस्थ होनेपर या उस कार्यकी समाप्तिपर प्रतिदिनके नियमसे अधिक जप करके उस कमीको पूरा कर लेना चाहिये।

८-घरमें सौरी-सूतकके समय भी जप किया जा सकता है।

९-स्त्रियाँ रजोदर्शनके चार दिनोंमें भी जप कर सकती हैं; किंतु इन दिनोंमें उन्हें तुलसीकी माला हाथमें लेकर जप नहीं करना चाहिये। संख्याकी गिनती किसी काठकी मालापर या किसी और प्रकारसे रख लेनी चाहिये।

१०-इस जप-यज्ञमें भाग लेनेवाले भाई-बहिन ऊपर दिये हुए सोलह नामोंके मन्त्रके अतिरिक्त अपने किसी इष्ट-मन्त्र, गुरु-मन्त्र आदिका भी जप कर सकते हैं। पर उस जपकी सूचना हमें देनेकी आवश्यकता नहीं है। हमें सूचना केवल ऊपर दिये हुए मन्त्र-जपकी ही दें।

११-सूचना भेजनेवाले लोग जपकी संख्याकी सूचना भेजें, जप करनेवालोंके नाम आदि भेजनेकी भी आवश्यकता नहीं है। सूचना भेजनेवालोंको अपना नाम-पता स्पष्ट अक्षरोंमें अवश्य लिखना चाहिये।

१२-संख्या मन्त्रकी होनी चाहिये, नामकी नहीं। उदाहरणके रूपमें यदि कोई 'हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥' इस मन्त्रकी एक माला प्रतिदिन जपे तो उसके प्रतिदिनके मन्त्र-जपकी संख्या एक सौ आठ (१०८) होती है, जिनमेंसे भूल-चूकके लिये आठ मन्त्र बाद देनेपर १०० (एक सौ) मन्त्र रह जाते हैं। अतएव जिस दिनसे जो बहिन-भाई मन्त्र-जप आरम्भ करें, उस दिनसे चैत्र शुक्ला पूर्णिमातकके मन्त्रोंका हिसाब इसी क्रमसे जोड़कर सूचना भेजनी चाहिये।

१३-सूचना प्रथम तो मन्त्र-जप आरम्भ करनेपर भेजी जाय, जिसमें चैत्र-पूर्णिमातक जितना जप करनेका संकल्प किया गया हो, उसका उल्लेख रहे तथा दूसरी बार चैत्र-पूर्णिमाके बाद, जिसमें जप प्रारम्भ करनेकी तिथिसे लेकर चैत्र-पूर्णिमातक हुए कुल जपकी संख्या हो।

१४-जप करनेवाले सज्जनोंको सूचना भेजने-भिजवानेमें इस बातका संकोच नहीं करना चाहिये कि जपकी संख्या प्रकट करनेसे उसका प्रभाव कम हो जायगा। स्मरण रहे—ऐसे सामूहिक अनुष्ठान परस्पर उत्साह-वृद्धिमें सहायक बनते हैं।

१५-सूचना संस्कृत, हिंदी, राजस्थानी, मराठी, गुजराती, बँगला, अंग्रेजी अथवा उर्दूमें भेजी जा सकती है।

१६-सूचना भेजनेका पता—'नाम-जप-विभाग,' 'कल्याण'-कार्यालय, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

प्रार्थी—चिम्मनलाल गोस्वामी
सम्पादक-'कल्याण', गोरखपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़ो, समझो और करो

(१)

भगवतीने प्राणरक्षा की

कुछ वर्ष पहलेकी बात है, मैं स्वयं एल० टी० (प्रायोगिक) परीक्षामें प्रविष्ट होनेके लिये अलीगढ़ जा रहा था। मुगलसरायसे पार्सल ट्रेनमें मैं चढ़ा। कंसपुर स्टेशनपर चार बजे प्रातः गाड़ी रुकी। अपने सामानोंका रखवाला बिना किसीको दिये मैं चार डिब्बे आगे चला गया। वहाँ नित्यक्रियासे निवृत्त होकर ज्यों ही मैं अपने डिब्बेकी ओर चला, तबतक ट्रेन खुल गयी। दौड़कर भी मैं अपने डिब्बेतक नहीं पहुँच सका। दूसरे ही दिन परीक्षा थी, अतः दुस्साहस करके मैं पटरीपर बाहर खड़ा हो गया। कोई सहायक नहीं था।

ट्रेन भागी जा रही थी। फरवरीका महीना था। अभी शीत ठंढक थी। उसमें भी हवाका वेग अत्यन्त प्रचण्ड था और साथ ही मेघाच्छन्न आकाश कड़क-कड़ककर हृदयमें धड़कन उत्पन्न कर देता था। प्राणोंपर संकटके घन घुमड़ रहे थे। हाथ ठिठुर-ठिठुरकर डिब्बेका साथ छोड़ देना चाहते थे। कई स्टेशन गुजर गये। अब अत्यन्त असहायावस्था थी। ऐसा लगता था कि अब प्राण कुछ ही क्षणके अतिथि हैं।

सहसा मैंने एकमात्र अपनेको जगज्जननी जगदम्बाके चरणोंमें अर्पित कर दिया।

'नमस्तेऽस्तु भगवति मातरस्मान् पाहि सर्वतः'

—का हृदयसे जप करने लगा। इतने मनसे, जितना कभी स्मरण नहीं कर पाया था। एकाग्रता तथा व्याकुलताका विलक्षण मेल था। जगदम्बाने पुकार सुन ली और मेरा हाथ छूटनेहीवाला था कि ट्रेनमें खड़खड़ाहट हुई। वह रुकने लगी और ज्यों ही रुकी, आतङ्कवश मेरा हाथ छूट गया। फिर भी मैं धीरेसे उठा और अपने डिब्बेमें चला गया। वहाँ पहुँचनेपर मेरे हाथ-पैर काँप रहे थे और भगवतीकी करुणाका स्मरण कर मेरे रोम-रोम कंटकित हो गये थे।

—रामप्रसाद मिश्र, एम्० ए०, एल्० टी०, उपाचार्य
रामकरण इन्टर कालेज, भीमपुरा, बलिया

(२)

वैद्यका आदर्श

लगभग एक हजार वर्ष पहले स्पेनके राज्याधिकारी पक्षके इब्ने अहमर साहब भारत आये थे। उन्होंने यहाँकी विद्याका स्पेनमें प्रचार किया था। उनके सम्बन्धमें एक विद्वान् इतिहासकारने लिखा है कि वे जब व्यापारके लिये भारत आये थे, उस समय उनकी नाकमें एक बड़ा घाव हो गया था। स्पेनमें उन्होंने बहुत-सी दवाइयाँ कीं पर वह अच्छा नहीं हुआ। वहाँके वैद्योंने उन्हें सलाह दी कि इस रोगका इलाज भारतवर्षमें ही हो सकता है। परिणामस्वरूप वे फिर भारत आये।

एक प्रसिद्ध भारतीय वैद्यको उन्होंने घाव दिखाया। वैद्यने उनसे कहा कि 'मैं आपका इलाज तो कर दूँगा, पर मेरी एक शर्त है—आप यदि पूर्णरूपसे अच्छे हो जायँ तो अपनी पूर्ण सम्पत्तिमेंसे आधी सम्पत्ति मुझे दे दें।'

उन्होंने शर्त स्वीकार कर ली। वैद्यने इलाज किया और उनका घाव ठीक हो गया।

पूर्णरूपसे अच्छे हो जानेपर इब्ने अहमर साहबने वैद्यजीको बुलाकर अपनी सारी सम्पत्ति उन्हें बता दी और शर्तके अनुसार आधा हिस्सा ले लेनेके लिये वैद्यजीसे कहा।

वैद्यने उत्तरमें उस समय यह कहा कि 'मैं तो यह देखना चाहता था कि आपको धन प्यारा है या स्वास्थ्य। आपने इलाज न करवाया होता तो आपकी मृत्यु हो जाती। अब तो सारा भय निर्मूल हो गया है। आप पूर्णरूपसे स्वस्थ हैं, बस, मैं तो इतना ही चाहता था।' अन्तमें इब्ने अहमर साहबके बहुत आग्रह करनेपर वैद्यजीने अपनी पसंदगीकी एक साधारण वस्तु भेंटके रूपमें स्वीकार की।

इस प्रकार एक हजार वर्ष पूर्व भारतीय वैद्य-विद्या कितनी दूरतक फैल चुकी थी, इसका यह एक ऐतिहासिक प्रमाण है और उस समय भारतीय वैद्योंका आदर्श कितना ऊँचा था, उसका भी एक महत्त्वपूर्ण उदाहरण है। अखण्ड आनन्द।

—ए० एम० पटेल

(३)

गोरक्षार्थ बलिदान

मैं एक दिन रघुवंश पढ़ रहा था। प्रसङ्ग था—महाराज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिलीपके द्वारा नन्दिनी गौकी रक्षाके लिये कुम्भोदरके आगे अपने आपको समर्पित कर देनेका । क्षुधित सिंहका स्वयं भोजन बननेका वे आग्रह कर रहे थे । तभी मुझे अपने ग्रामके श्रीभागीरथ अहीरकी बात याद आ गयी । कुछ वर्षों पहलेकी पुरानी बात है—भागीरथ अहीर गायें चराया करता था । हृष्ट-पुष्ट था शरीरसे । घरकी जमीन-जायदाद थी; पर वह गोभक्त गायें चराना ही पसंद करता था । एक दिन प्रातःकाल ही अपनी गायें खोलकर वह जंगल चला गया । गरमीका प्रभात—भागीरथ गायें जंगलमें चरने छोड़ एक आमके वृक्षके नीचे सो गया । अभी कुछ ही देर हुई थी कि एक गाय जोर-जोरसे डकराने लगी । भागीरथ उठा और जो कुछ दृश्य सामने देखा, उससे उसका खून खौल उठा । एक सिंह गायपर हमला करनेको तैयार है । सोचनेका समय कहाँ था । भागीरथ सिंहपर टूट पड़ा और पूरी शक्ति लगाकर उसे दूर फेंक दिया । सिंह क्रोधित होकर झपटा, पर भागीरथ हर बार तैयार था । तीन बारके युद्धके बाद सिंह चला गया । गाय बची, पर भागीरथ, खूनसे तर-बतर हो गया । उसी स्थितिमें वह गाँवमें आया । लोग इकट्ठे हो गये । सब चिन्ता करने लगे, पर भागीरथ हँस रहा था। कहने लगा—'आपलोग चिन्ता मत कीजिये । वह देखो गाय माता आकाशमें खड़ी मुझे देख रही और बुला रही है । आप मेरी कोई चिकित्सा मत कराइये, मैं आरामसे हूँ—मैं मर नहीं रहा हूँ—गाय माताके साथ (गोलोक) जा रहा हूँ ।' कहते-कहते भागीरथ गोलोक चला गया । आज भी गाँवके निकट भागीरथकी स्मृतिमें एक पत्थरकी प्रतिमा रक्खी है । जब लोग वहाँ बैठते हैं—तब उस प्रतिमाको इङ्गितकर उस गोभक्तकी कथा गद्गद् कण्ठसे सुनाते हैं ।

धन्य भागीरथ ! धन्य गो-भक्ति !!

—शंकरलाल उपाध्याय 'वसंत'

(४)

पड़ोसीका धर्म

हमारे घरके सामने ही एक पण्डितजी रहते हैं । उनका अत्यन्त उदार हृदय है, वे द्वेष करनेवालोंके साथ भी प्रेमका तथा मैत्रीका व्यवहार करते हैं । अधिकांश समय पूजा-पाठमें, भगवद्भजनमें बिताते हैं । इनके पड़ोसमें एक भाई रहते हैं, उनका असली नाम तो दूसरा है । यहाँ मैं उनका वनराज कल्पित नाम रखता हूँ । यह वनराज बहुत ही क्रूर स्वभावका तथा लड़ाकू आदमी है । यह अपने साधुहृदय पड़ोसी पण्डितजीसे बहुत द्रोह करता था । बात-बातमें उन्हें खरी-खोटी सुनाया करता । पण्डितजी सदा शान्त रहते । यह उनके घरमें कूड़ा-कचरा डाल दिया करता । पण्डितजी चुपचाप उसे झाड़-बुहारकर बाहर फेंक देते । एक दिन वनराजने पण्डितजीपर यह झूठा आरोप लगाया कि आपने गुंडोंको मेरे घरमें चोरी करनेके लिये कहा है । फिर पण्डितजीको नीचा दिखानेके लिये मनमाने शब्दोंमें उनका बड़ा अपमान किया । पण्डितजीने चुपचाप सब सहन कर लिया । उन्होंने कुछ भी नहीं कहा । कुछ देर बाद वनराज बाहर चला गया । उसका लड़का साँवर छत-पर गेंद खेल रहा था । अचानक गेंद झेलते-झेलते वह जोरसे नीचे गिर पड़ा । वह सीधा पण्डितजीकी खाटपर गिरा । धमाकेकी आवाज सुनकर पण्डितजी दौड़े आये। देखा तो साँवरके सिरसे खून निकल रहा है, उन्होंने उसके घावपर पट्टी बाँधी और स्वयं पंखा झलने लगे । जब खून बहना बंद हुआ तो बाबूजीकी मोटरमें उसे दवाखाने ले गये । वहाँ पण्डितजीने डाक्टरको फीस देकर चिकित्सा करनेको कहा और चिकित्सा करवायी ।

वनराजने घर आनेपर जब सारा हाल सुना तो उसे अपनी करनीपर बड़ा खेद हुआ । उसका मन पसीज गया। उसने दवाखाने जाकर सब हाल देखा-सुना तो पण्डितजीके चरणोंमें लोट गया । पण्डितजीने कहा—'भाई ! मैंने कोई बहुत सराहनीय काम नहीं किया है । हर मनुष्यका जो कर्त्तव्य है, वही किया है । इसमें मेरी प्रशंसाकी कौन-सी बात है । तुम मेरी व्यर्थ ही बड़ाई कर रहे हो ।' यों कहकर पण्डितजीने वनराजको गले लगा लिया । वनराजका हृदय सर्वथा बदल गया । मनुष्य बुरा बर्ताव करनेवालेके साथ भी अच्छा बर्ताव करे तो उसकी अपनी अच्छाई तो सुरक्षित रहती ही है, वह बुरेको भी अच्छा बना देता है । यही मानव-धर्म है । पड़ोसीका तो यह विशेष धर्म है ।

—च० ना० त्रिवेदी

(५)

मुझे गरीबीके वे दिन आज याद हैं

मैं बम्बईमें रहता था, उस मकानके बगलका मकान भारतके दादा दादाभाई नौरोजीका था । लड़कपनके दिनोंमें दादाजीके इस मकानमें और उनके सुन्दर बगीचेमें मुझे खेलनेका सौभाग्य मिला था । दादाजीके इस मकानको पीछेसे एक मिलमालिकने खरीद लिया । उन वर्षोंमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिलमालिकको मैं 'काका' कहकर पुकारता । उनके मिलकी एक दूकान थी कालबादेवीमें । उसमें एयरकंडीशन करवाना था और वह काम उन्होंने मुझे सौंपा । वे कला और कारीगरीके पारखी थे । लगभग अस्सी वर्षकी उम्रमें भी उनकी बुद्धिशक्ति और स्मरणशक्ति बड़ी तेज थी । फेरीवालेसे मिलमालिककी स्थितिमें पहुँचनेके कारण उनका जीवन अनुभवका भण्डार था ।

उनकी उस दूकानके मुख्य दो दरवाजे थे । उनमें एक तरफके कमरेको आगेसे बंद करके एयरकंडीशन कमरा बनवाया जा रहा था । मैंने उनके आदेशानुसार काम करवा दिया । फिर, इस कमरेके बाहर एक बरामदा था । उसपर फुटपाथपर चलते लोग या और कोई फेरीवाले न बैठ सकें, इसके लिये मैंने मिलमालिक सेठसे पूछा—'काका ! इस बरामदेमें कोई फेरीवाला न बैठ सके, इसलिये इसे बंद क्यों न करा दिया जाय ?'

काकाने कहा कि 'दिनमें तो हमलोग रहते ही हैं, इसलिये बरामदेमें कोई बैठ सकता ही नहीं । अपने दूकान बंद करके जानेके बाद कोई भी बैठे या व्यापार करे तो इसमें अपना क्या बिगड़ता है ?'

कुछ देर चुप रहनेके बाद वे कहने लगे—मैंने भी इसी तरह फुटपाथपर फेरी करके दिन बिताये थे । ये अपनी मिलें कोई बाप-दादा नहीं छोड़ गये थे । ये तो मेहनत-मजदूरी करनेपर हो सकी हैं । मैं इसी तरह जहाँ-तहाँ बम्बईमें फेरी करके कपड़ा बेचा करता था । मिलमालिक तो आज हुआ हूँ । मुझे अपनी गरीबीके वे दिन याद हैं । अच्छा है, कोई भाई रातको इस जगह बैठे, अपना काम करे और रोटी कमाये ।

दो बड़ी मिलोंके मालिक और बम्बईमें पाँच-सात बँगलोंके स्वामी इस अस्सी वर्षके सेठकी बात सुनकर मैं तो विचारमें पड़ गया । जो आज सुख, सामर्थ्य और समृद्धिके शिखरपर बैठे होनेपर भी 'मुझे वे गरीबीके दिन अभी याद हैं'—यों कहकर वर्तमानके फेरीवालोंके प्रति सहानुभूति दिखानेवाले आजके युगमें थोड़े ही होंगे ।

इस प्रकार कहनेवाले ये महानुभाव थे—स्वर्गीय सेठ देवचन्द कापडिया ।

—अखण्ड आनन्द

—मनुभाई कण्ट्राक्टर (शिल्पी)

(६)

'मोहि कपट छल छिद्र न भावा'

श्रीकृष्ण-जन्माष्टमीके दिनकी बात है । सत्य घटना है । केवल नाम बदले हैं । चारभुजाजीके मन्दिरके पुजारी श्रीओंकारदास भगवान्के सामने हाथ जोड़े करुण स्वरमें प्रार्थना कर रहे थे । उनका हृदय दुःखपूर्ण था और नेत्रोंमें आँसू छलक रहे थे । मैंने पूछा—'पुजारीजी ! आज क्या बात है, अधीर क्यों हो रहे हो ?' तो कहने लगे—'इतना बड़ा हो गया हूँ, बीस कृष्णजन्मोत्सवपर भगवान्के पंजेरीकी भोग लगाता आ रहा हूँ, किंतु आज चीनीके बिना फीका भोग कैसे लगेगा । यह २५० घरोंकी आबादीका छोटा-सा कस्बा, चारों ओर नदी-नालोंसे घिरा हुआ । प्रथम तो शहरतक पहुँचना कठिन, फिर चीनी मिले या न मिले यह निश्चय नहीं । आपसे अनुरोध करता हूँ कि चीनीके प्रबन्धमें मेरी सहायता कीजिये; जहाँ भी मिले मँगवाइये । पाँच सेर तो चाहिये ही ।' 'अच्छा, आप चिन्ता न करें—भगवान् सब अच्छा करेंगे ।' इतना कहकर चन्दन लगा चरणामृत-तुलसी लेकर मैं चला मोती सेठकी दूकानकी ओर । एक तरफ बुलाकर मैंने कहा—'चारभुजाजीके प्रसादके लिये ५ किलो चीनी चाहिये, चाहे जिस भाव दो, मगर दे दो; भगवान्के लिये ना मत करना ।' उसने कहा—'मैं शर्मिन्दा हूँ, एक तोला भी नहीं है । कल दिन भर पुजारी बैठा रहा, रुपये नहीं थे; चाँदीका कड़ा गिरवी रख रहा था । किंतु मेरे पास चीनी हो तो दूँ ।' पच्चीस रुपयेके नोट मैंने उनके हाथमें देते हुए कहा—'चाहे जैसे भी हो, पाँच किलो चीनी कहींसे लाओ ।' मोती सेठने रुपये लेनेसे इन्कार करते-करते आखिर ले लिये और कहा—'अच्छा अभी सायकिल लेकर जाता हूँ ।'

सायंकाल पाँच बजे करीब वह वापस लौटा । कुछ व्यक्ति और मैं मन्दिरके चबूतरेपर ही बैठे थे बाहर प्रतीक्षामें । अंदर भक्तमण्डली ढोलक-ताल बजाते हुए भजन गा रही थी । साइकिल रोककर वह उतरा और बोला—'बड़ी कठिनतासे लाया हूँ पाँच किलो २५) में ।' साइकिलके पीछे केरियरपर लगी चीनीकी गठरी उतारने लगा तो क्या देखा एक मुट्ठीभर चीनी है । कपड़ेको टटोला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो एक काँटा लग जानेसे कपड़ा कटा हुआ पाया गया। रास्तेमें तंग पगडंडीसे गुजरते समय दोनों ओर झाड़ियाँ हैं। पोटलीकी सारी चीनी रास्तेमें गिर गयी। बड़ी चिन्ता हुई, हमारे घावपर नमक लग गया। मोती सेठ हक्का-बक्का रह गया। 'हाय री तकदीर, हे भगवान्' कहकर वह कातर हो गया। देखते-देखते भीड़ जमा हो गयी। कुछ राहगीर भी बड़े ध्यानसे बात सुनकर चल दिये। अब चीनी मिलनेकी आशा छूट चुकी थी। समय भी कम रह गया था। अतः पंजेरीमें गुड़ ही मिलानेकी सोची। मन नहीं मान रहा था। फिर भी पुजारीसे कहा कि 'आरतीके एक घंटे पहलेतक पंजेरीमें गुड़ नहीं मिलाना।' वहाँपर बैठे कई पुरुष चीनीकी खोजमें फिर गये, किंतु आशा निराशामें बदली। कहीं चीनी नहीं मिली! रात्रिके समय करीब आठ बजे होंगे, एक अपरिचित व्यक्ति हाथमें एक पोटली लिये मुझे ढूँढ़ रहा था। मिलनेपर उसने एक पत्र मेरी ओर बढ़ाया। पत्रको खोलकर मैंने पढ़ा; उसमें लिखा था——

प्रिय महोदय !

जय श्रीकृष्ण !

अभी-अभी कुछ राहगीरोंसे भगवान्‌के भोगकी चीनी रास्तेमें बिखर जानेका समाचार मिला। ऐसा भी सुना कि आपने ही २५) रुपये देकर पाँच किलो चीनी मँगवायी थी। इस समय आपके मनपर क्या बीत रही होगी, मैं जानता हूँ। आप चिन्ता छोड़िये। चीनीका बिखरना स्वाभाविक ही था। मोती सेठ अपने निकटतम रिस्तेदारसे पाँच किलो चीनी उचित मूल्य ७ रु० २५ पैसेमें ले गया था। उसने आपसे २५) रुपये लिये थे। वह भी भगवान्‌के भोगकी चीनीके। मूर्ख आदमी मृगतृष्णाके पीछे यों ही मरते हैं। जहाँ सत्रह रुपये पचहत्तर पैसे पापके कमाने चला, वहाँ सात रुपये पचीस पैसे अपने और खोये।

यह पाँच किलो चीनी भेजी जा रही है। आप भगवान्‌के बड़े प्रेमसे भोग लगायेंगे, ऐसी मैं आशा करता हूँ। धन्यवाद! धन्यवाद!!

भवदीय
गुम नाम

मेरा ध्यान पत्र पढ़नेमें था। देखता हूँ कि मेरे पास शक्करकी पोटली धरकर वह अपरिचित व्यक्ति कहाँ अदृश्य हो गया, पता नहीं। इधर-उधर पूछा भी, परंतु पता नहीं लगा। स्वप्न-सी बात प्रत्यक्षमें हो गयी। अर्धरात्रिमें भगवान्‌का जन्म हुआ। आरती हुई। पंजेरी और पञ्चामृतका प्रसाद दर्शनार्थियोंको दिया गया। आनन्दका पार नहीं। मोती सेठको भी प्रसाद दिया। उसकी भावना पलटी। मोती सेठने ही पत्रवाली सभी बात अपने-आप बता दी और पचीस रुपये वापस कर दिये। खूब पछताया। भविष्यमें प्रतिज्ञा की कि 'मैं कभी भी अन्यायपूर्ण छल-कपट-छिद्रके द्वारा धन नहीं कमाऊँगा। कितने दिनका जीना है, धन तो नाशवान् है। मेरी करनीका फल मुझे हाथों-हाथ मिल गया।'

वास्तवमें भगवान् सुन्दरकाण्डमें ठीक कहते हैं—'मोहि कपट छल छिद्र न भावा'—भगवान् ब्लेककी चीनी भोगमें नहीं खाते। इस घटनाको देखते हुए उन लोगोंको सचेत हो जाना चाहिये जो १४०) रुपयेकी चीनीकी एक बोरीके ५००) तक ले लेते हैं। मोतीसेठको मिला फल देखते, पता नहीं, भगवान् उनका क्या हाल करेंगे। प्रभु किसीका बुरा नहीं करते, वे समदर्शी और दयालु हैं। तो भी अपने कियेका फल आज नहीं तो कल, यहाँ नहीं तो वहाँ, अवश्य भोगना पड़ेगा। केवल धन प्राप्त करनेके लिये इतना घृणास्पद कार्य करना अपने मन-मस्तिष्कको गंदा करना है। इसका समाजपर ही नहीं, बल्कि सारे भारतपर बुरा असर पड़ता है। इस प्रकारसे धन कमाकर कोई ऊँचा नहीं उठ सकता। अपनी भोग-इच्छाओंका मूलोच्छेद करके सात्त्विक विचार अपनायें। इच्छाएँ जितनी कम होंगी, सुख उतना ही बढ़ेगा, ऐसा निश्चय है। भोगके लिये चीनी किसने भेजी, इसकी छान-बीन चल रही है।

—मदनलाल काबरा
—चापरेल,भीलवाड़ा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्मान्य एवं प्रेमी ग्राहकों तथा पाठकोंको सूचना और निवेदन

(१) यह 'कल्याण'के ४१वें वर्षका ग्यारहवाँ अङ्क है। एक अङ्क और निकलनेपर यह वर्ष पूरा हो जायगा। ४२वें वर्षका प्रथम अङ्क 'उपासना-अङ्क' नामक विशेषाङ्क होगा। इसमें उपासनाके विविध विषयोंपर विद्वानों तथा अनुभवी पुरुषोंके सद्विचारों, भावों तथा अनुष्ठानोंका संग्रह होगा। यह अङ्क सभी सम्प्रदायोंके लिये विशेष लाभदायक तथा उपयोगी होगा। रंगीन तथा सादे चित्र भी बहुत सुन्दर दिये जायँगे।

(२) 'कल्याण'का वार्षिक मूल्य ९ रु० रक्खा गया है, जो वास्तवमें कम है। अतः आप वार्षिक मूल्य मनीआर्डरसे तुरंत भेजकर ग्राहक बन जाइये। मनीआर्डर-फार्म गताङ्कमें भेजा जा चुका है। रुपये भेजते समय मनीआर्डरमें अपना नाम, पता, ग्राम या मुहल्ला, डाकघर, जिला, प्रदेश आदि साफ-साफ अक्षरोंमें लिखनेकी कृपा करें। ग्राहक-नम्बर अवश्य लिखें। नये ग्राहक हों तो 'नया ग्राहक' लिखना न भूलें।

(३) ग्राहक-संख्या न लिखनेसे आपका शुभ नाम नये ग्राहकोंमें लिखा जा सकता है। इससे विशेषाङ्ककी एक प्रति नये नम्बरोंसे तथा एक प्रति पुराने नम्बरोंसे वी० पी० द्वारा जा सकती है। यह भी सम्भव है कि आप उधरसे रुपये कुछ देरसे भेजें और पहले ही यहाँसे आपके नाम वी० पी० चली जाय। दोनों ही स्थितियोंमें आप कृपापूर्वक वी० पी० वापस न लौटाकर नये ग्राहक बना दें और उनका नाम-पता साफ-साफ लिखनेकी कृपा करें। सभी ग्राहक-पाठक महानुभावोंसे तथा पाठिका-ग्राहिका देवियोंसे यह भी निवेदन है कि वे प्रयत्न करके 'कल्याण'के दो-दो नये ग्राहक बनाकर उनके रुपये मनीआर्डरद्वारा शीघ्र भिजवानेकी कृपा करें। इससे भगवान्‌की सेवा होगी।

(४) जिन पुराने ग्राहकोंको किसी कारणवश ग्राहक न रहना हो, वे कृपापूर्वक एक कार्ड लिखकर अवश्य सूचना दे दें, जिससे व्यर्थ 'कल्याण'-कार्यालयको हानि न सहनी पड़े।

(५) किसी कारणवश 'कल्याण' बंद हो जाय तो केवल 'विशेषाङ्क' और उसके बादके जितने अङ्क पहुँच जायँ, उन्हींमें पूरे वर्षका मूल्य समाप्त हुआ समझ लेना चाहिये; क्योंकि अकेले विशेषाङ्कका ही मूल्य रु० ९.०० (नौ रुपये) है।

(६) इस वर्ष भी सजिल्द अङ्क देनेमें कठिनता है और बहुत विलम्बसे दिये जानेकी सम्भावना है। यों सजिल्दका मूल्य रु० १०.५० है।

(७) गीताप्रेसका पुस्तक-विभाग तथा 'कल्याण-कल्पतरु' (अंग्रेजी) का विभाग 'कल्याण' विभागसे अलग है। अतएव 'कल्याण' के मूल्यके साथ पुस्तकोंके लिये तथा 'कल्याण-कल्पतरु' (अंग्रेजी) के लिये रुपये न भेजें। उनके लिये अलग रुपये भेजें। चेक या ड्राफ्ट तो सभी गीताप्रेसके नामसे भेजने चाहिये। गोरखपुरके बाहरके चेकोंमें १) रुपया बैंक-चार्ज जोड़कर भेजना चाहिये। पुस्तकोंके आर्डर तथा रुपये व्यवस्थापक 'गीताप्रेस' के नामसे तथा 'कल्याण-कल्पतरु' के रुपये व्यवस्थापक 'कल्याण-कल्पतरु' के नामसे भेजने चाहिये।

व्यवस्थापक—**'कल्याण', पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़ा पाप है !

सादा शुद्ध सात्त्विक भोजन करो, मांस अंडे खाना बड़ा पाप है ।
सभी प्राणियोंका सुख-हित सम्पादन करो, मन-वाणी-शरीरसे किसी प्राणीका अहित करना बड़ा पाप है।
सत्य भाषण और सद् व्यवहार करो, असत्य भाषण और असद् व्यवहार बड़ा पाप है।
किसीकी भी वस्तुपर मन मत चलाओ, किसी प्रकारसे भी चोरी करना बड़ा पाप है।
शुद्ध निखालिस वस्तुका व्यापार करो, वस्तुओंमें मिलावट करना बड़ा पाप है।

'उपासना-अङ्क'के लिये लेखक महानुभावोंसे क्षमा-याचना

'उपासना-अङ्क'के लिये बहुत अधिक लेख आ चुके हैं और अब भी आ रहे हैं। 'कल्याण'के विशेषाङ्कका कलेवर बढ़ानेकी स्थिति सर्वथा नहीं है। इस अवस्थामें बहुत-से लेख अप्रकाशित रह जायँगे। अभी निश्चित तो नहीं है, पर हो सका तो फरवरीका अङ्क 'उपासना-अङ्क'के परिशिष्टाङ्कके रूपमें निकाला जा सकेगा। पर उसमें भी कितने लेख जा सकेंगे। अतः इस परिस्थितिकी विवशताके लिये हमारे परम आदरणीय लेखक महोदय कृपापूर्वक क्षमा करेंगे—यह हमारी उन सबसे करबद्ध विनीत प्रार्थना है।

एक्ज़िमाकी दवाके लेखकका पता

'कल्याण'के गताङ्क ९, पृष्ठ १२१६ पर 'बीची (एक्ज़िमा)की अनुभूत रामबाण दवा' शीर्षक सूचना निकली थी। उसमें लेखकका पता नहीं छपा था। बहुत-से ग्राहक उनका पता पूछते हैं। सो पता यह है—

श्रीतिलोकचन्द कन्दोई (सरदारशहरवासी)

२४६। सी० विवेकानन्दरोड (मानिकतल्ला), कलकत्ता ६

सूचना तथा क्षमा-प्रार्थना

'कल्याण'-सम्पादक भाई हनुमानप्रसाद पोद्दारका शरीर अब भी अस्वस्थ है। वे पत्र-व्यवहार नहीं कर पा रहे हैं। बार-बार प्रार्थना करनेपर भी उनसे प्रेम तथा आत्मीयता रखनेवाले लोगोंके तथा 'कल्याण'के जिज्ञासु जनोंके पत्र पूर्ववत् ही आ रहे हैं। पर उत्तर जा नहीं पा रहा है। इसके लिये पोद्दारजी कृतज्ञ हृदयसे उनसे क्षमा चाहते हैं।

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्करण १,५०,०००

विषय-सूची

कल्याण, सौर पौष २०२४, दिसम्बर १९६७

विषय	पृष्ठ-संख्या
१—खर-दूषणादिके वधसे प्रसन्न मुनियोंद्वारा श्रीरामका सत्कार [कविता]	१३४१
२—कल्याण ('शिव')	१३४२
३—एक महात्माका प्रसाद (प्रेषक—श्रीमाधवजी)	१३४३
४—भागवत-कार्य करनेकी प्रेरणा (श्रीमाँ, श्रीअरविन्द-आश्रम, पाण्डिचेरी)	१३४५
५—यदि भगवान्‌की उपासनासे वास्तविक लाभ प्राप्त करना चाहते हो तो अण्डे, मांस, मछली, शराब आदि तामसी वस्तुओंसे बचो (गोलोकवासी पूज्यपाद परमहंस श्रीस्वामी श्रीनारायण-दासजी महाराजके महत्त्वपूर्ण सदुपदेश; प्रेषक—भक्त श्रीरामशरणदासजी)	१३५०
६—द्विभुज श्रीकृष्ण (पं० श्रीवासुदेवकृष्णजी चतुर्वेदी, एम्०-ए०, साहित्यरत्न)	१३५४
७—श्रीकृष्ण-पदारविन्दमें मन लगानेकी महिमा [संकलित पद्य—श्रीमद्भागवत ६ । १ । १९]	१३५६
८—श्रीरामचरितमानसमें नैतिकता (श्री-राजेन्द्रप्रसादजी वर्मा, एम्० ए०)	१३५७
९—न कर्म लिप्यते नरे (श्रीसुरेशचन्द्रजी वेदालंकार, एम्० ए०, एल्० टी०)	१३५९
१०—शीलकी महिमा [संकलित पद्य]	१३६१
११—नामस्मरणसे मोक्षप्राप्ति (श्रीबैजनाथजी कपूर)	१३६२
१२—दक्षिण भारतकी तीर्थयात्रा (सेठ श्री-गोविन्ददासजी, श्रीमती रत्नकुमारी देवी, श्रीगोविन्दप्रसादजी श्रीवास्तव)	१३६५
१३—धृति [कहानी] (श्री 'चक्र')	१३६८
१४—सब रसोंका सार रस [कविता] (श्रीहरिदासजी)	१३७०
१५—जीवन-स्तर-उन्नयन—एक दृष्टिकोण (श्रीइन्दुभूषणजी पाण्डेय, एम्० ए०)	१३७१
१६—कैसे यह पतन रुकेगा ? [कविता]	१३७४
१७—दैवीकरण (श्रीराजेन्द्रप्रसादजी जैन)	१३७५
१८—कहना, पर करना नहीं [कहानी] (आचार्य श्रीडी० डी० उपमन्यु वैद्य)	१३७७
१९—अधिकाधिक चमको ! टूटो नहीं (श्रीबालकृष्णजी बलदुवा)	१३७९
२०—परम उपास्य—श्रीकृष्ण (श्रीरसिक-विहारीजी)	१३८०
२१—गीताके सर्वाङ्गीण प्रचारकी आवश्यकता (श्रीओंकारमलजी सराफ)	१३८२
२२—व्यापार, व्यापारी और अर्थनीति (हनुमानप्रसाद पोद्दारका एक भाषण)	१३८४
२३—प्रेम और मोह (श्रीहरिकिशनदासजी अग्रवाल)	१३८८
२४—परिवार-नियोजनपर एक आध्यात्मिक दृष्टिकोण (डा० श्रीके० सी० मिश्रा)	१३८९
२५—कामचोरी देशके लिये विनाशकारी है (श्रीशरदजी द्विवेदी)	१३९१
२६—हृदयका सौदा (श्रीहरिकृष्णदासजी गुप्त 'हरि')	१३९२
२७—पढ़ो, समझो और करो	१३९५
२८—वह कौन था ? (श्रीदुर्गाशंकरजी व्यास)	१४०२
२९—'कल्याण'के बारहवें अङ्क, उपासनाङ्क तथा पुस्तकोंकी छपाईमें अवाञ्छनीय देर	१४०४

चित्र-सूची

१—गोपालका गोचारण	(रेखा-चित्र)	मुखपृष्ठ
२—खर-दूषणके वधसे प्रसन्न ऋषियोंद्वारा श्रीरामका अभिनन्दन	(तिरंगा)	१३४१

वार्षिक मूल्य भारतमें ८.५० विदेशमें १५.६० (१५ शिलिंग)

जय विराट जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते ॥

साधारण प्रति भारतमें ५० पै० विदेशमें ८० पै० (१० पेंस)

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाल गोस्वामी, एम्० ए०, शास्त्री

मुद्रक-प्रकाशक—मोतीलाल जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खर-दूषणके वधसे प्रसन्न ऋषियोंद्वारा श्रीरामका अभिनन्दन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

अविरतभवभावनातिदूरं भवविमुखैर्मुनिभिः सदैव दृश्यम् ।
भवजलधिसुतारणाङ्घ्रिपोतं शरणमहं रघुनन्दनं प्रपद्ये ॥
रतिपतिशतकोटिसुन्दराङ्गं शतपथगोचरभावनाविदूरम् ।
यतिपतिहृदये सदा विभातं रघुपतिमार्तिहरं प्रभुं प्रपद्ये ॥

वर्ष ४१ } गोरखपुर, सौर पौष २०२४, दिसम्बर १९६७ { संख्या १२
पूर्ण संख्या ४९२

खर-दूषणादिके वधसे प्रसन्न मुनियोंद्वारा श्रीरामका सत्कार

सहित सहस्र चतुर्दश राक्षसगणके, जो थे पापाचार ।
धर्मद्वेषी खरदूषणका महासमरमें कर संहार ॥
बैठे रामभद्र; मुनियोंने आकर किया समुद सत्कार ।
परम प्रशंसा कर सब करने लगे चतुर्दिक् जय-जयकार ॥
लगे बजाने देव दुंदुभी अंतरीक्षमें बारंबार ।
रामचन्द्रका अद्भुत अत्याश्चर्यपूर्ण यह कर्म निहार ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

याद रक्खो—परमात्मा एक हैं और वही अनन्त रूपोंमें अभिव्यक्त हैं। जबतक उन परमात्माका बाहर-भीतर सर्वत्र सदा साक्षात्कार नहीं होता, तबतक कभी भी सदा रहनेवाली वास्तविक सुख-शान्ति नहीं मिल सकती।

याद रक्खो—जैसे एक ही अग्नि अव्यक्तरूपसे समस्त ब्रह्माण्डमें व्याप्त है, उसमें कहीं कोई भेद नहीं है, पर जब वही किसी आधार-वस्तुमें व्यक्त होकर प्रज्वलित होता है, तब वह उसी वस्तुके आकारका दृष्टिगोचर होने लगता है, वैसे ही समस्त प्राणियोंके अन्तरात्मा-रूपमें विराजित अन्तर्यामी परमात्मा सबमें समभावसे व्याप्त हैं। उनमें कहीं कोई भेद नहीं है, तथापि वे एक होते हुए ही उन-उन प्राणियोंके अनुरूप विभिन्न रूपोंमें दिखायी देते हैं। पर वे उतने ही नहीं हैं। उन सबके बाहर भी अनन्त रूपोंमें स्थित हैं।

याद रक्खो—जैसे एक ही वायु अव्यक्तरूपसे समस्त ब्रह्माण्डमें व्याप्त है, उनमें कोई भेद नहीं है। परंतु व्यक्त होकर विभिन्न वस्तुओंके संयोगसे वह उन्हीं-के अनुरूप गति तथा शक्तिमान् दिखायी देता है, वैसे ही समस्त प्राणियोंके अन्तरात्मा परमात्मा एक होते हुए ही उन-उन प्राणियोंके सम्बन्धसे विभिन्न पृथक्-पृथक् गति और शक्तिवाले दिखायी देते हैं और उन सबके बाहर भी अनन्त-असीम असंख्य विलक्षण रूपोंमें स्थित हैं।

याद रक्खो—जैसे एक ही सूर्य समस्त लोकोंको प्रकाशित करता है, उसीका प्रकाश प्राणिमात्रके नेत्रोंमें प्रकाश देता है और प्राणिमात्र उन्हीं नेत्रोंसे विभिन्न प्रकारके बाहरी दोषोंमें लिप्त होते हैं—गुण-दोषमय वस्तुओंको देखते हैं। प्राणी नेत्रोंकी सहायतासे विभिन्न प्रकारके गुण-दोषमय कर्म करते हैं, पर उन सबका प्रकाशक वह सूर्य जैसे किसीके उन गुण-दोषोंसे लिप्त नहीं होता, वैसे ही सब प्राणियोंके अन्तरात्मा—परमात्मा, (उन परमात्माकी ही शक्ति-सत्तासे क्रियाशील होकर मन-बुद्धि-इन्द्रियोंके द्वारा) प्राणी अनन्त प्रकारके जो शुभाशुभ कर्म करते हैं, उन कर्मोंसे एवं उनके फल-रूप सुख-दुःखोंसे लिप्त नहीं होते। वे सबमें रहते हुए ही सबसे पृथक् तथा सर्वथा असङ्ग रहते हैं।

याद रक्खो—ऐसे वे परमात्मा सदा ही सबके अन्तरात्मा हैं, एक—अद्वितीय हैं। सबको सदा अपने वशमें रखते हैं। वे एक ही अपने रूपको अपनी लीलासे बहुत प्रकारका बनाये हुए हैं। उन परमात्माको जो धीर-ज्ञानी पुरुष निरन्तर अपने अंदर देखते हैं, उन्हीं-को नित्य सनातन सदा रहनेवाला आत्यन्तिक सुख परमानन्द मिलता है, दूसरोंको नहीं।

याद रक्खो—जो समस्त नित्योंके भी नित्य आत्मा हैं, जो समस्त चेतनोंके चेतन आत्मा हैं और जो एक होते हुए भी इन अनन्त जीवोंकी कामनाओंको पूर्ण करते हैं, उन नित्य आत्मामें स्थित एक परमात्माको जो धीर-ज्ञानी पुरुष निरन्तर देखते रहते हैं, उन्हींको नित्य सनातन (सदा रहनेवाली) शान्ति मिलती है, दूसरोंको नहीं।

याद रक्खो—यह तत्त्वज्ञानी भगवत्प्राप्त पुरुषोंका अनुभव है। यह वेदवाणी है। यह उपनिषदूकी घोषणा है। इसको समझो और इसके अनुसार साधन करके परमात्माको नित्य-निरन्तर बाहर-भीतर देखो एवं अपने मानव-जीवनको सफल करो।

'शिव'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक महात्माका प्रसाद

[यथाश्रुत यथागृहीत]

(प्रेषक—श्रीमाधवजी)

हमारा जो अहंभाव है, वह एक प्रकारकी भूख है। वह भूख तीन भागोंमें विभाजित है। या तो हम अपने किसी अधिकारकी रक्षाके लिये भूखे हैं अथवा रस पीनेके लिये भूखे हैं अथवा किसी संदेहकी निवृत्तिके लिये भूखे हैं। ये तीनों प्रकारकी भूख मिटानेके लिये मानवमात्रको प्राकृतिक विधानसे क्रिया-शक्ति, भाव-शक्ति और विवेक-शक्ति मिली है।

मिली हुई शक्तिके सदुपयोगका नाम ही साधन है। साधन उसे ही कहते हैं जिसके करनेमें साधक समर्थ हो और कर लेनेपर साधककी भूख मिट जाय, अर्थात् वह तृप्त तथा संतुष्ट हो जाय। क्रियाशक्तिका सदुपयोग श्रम, संयम एवं सदाचारपूर्वक दूसरोंके अधिकारकी रक्षा करनेमें है, भावशक्तिका सदुपयोग हृदयको प्रेम तथा सेवा-भावसे परिपूर्ण करनेमें है और विवेकशक्तिका सदुपयोग अविवेककी निवृत्ति तथा निरभिमानतामें है।

क्रियाशक्तिको विकसित करनेके लिये यह आवश्यक है कि साधक श्रमका आदर करे; क्योंकि श्रमसे ही संयमका जन्म होता है और उसकी पुष्टि होती है। आलस्यसे न तो क्रियाशक्तिका विकास ही होता है और न जीवनमें संयम ही आता है। आलस्यसे विलास और विलाससे दुराचारमें प्रवृत्ति होती है। इसके विपरीत श्रमसे संयम और संयमसे सदाचार प्राप्त होता है।

सदाचारीकी पहचान यही है कि वह उस सुखको स्वीकार नहीं करता, जिसका जन्म किसीके दुःख अथवा अहितसे हो; अपितु उस दुःखको सहर्ष अपना लेता है जिसका जन्म दूसरोंके हित तथा प्रसन्नतासे होता हो।

कोई भी मानव विश्वासरहित नहीं होता। किसी-का विश्वास अपनेपर, किसीका देहादि भौतिक वस्तुओंपर और किसीका अपने प्रेमास्पदपर होता है। जिनका अपनेपर विश्वास होता है उनमें आत्मरति, जिनका विश्वास देहादि भौतिक पदार्थोंपर होता है उनमें आसक्ति तथा जिनका विश्वास अपने प्रेमास्पदपर होता है उनमें प्रीति सदा निवास करती है। आत्मरतिसे स्वाधीनता, आसक्तिसे पराधीनता और प्रीतिसे नित नवरस स्वतः प्राप्त होता है।

विवेकशक्तिका सदुपयोग करनेपर अविवेक मिट जाता है। अविवेक मिटते ही अचाह पद प्राप्त होता है। अचाह पद प्राप्त होते ही निरभिमानता आ जाती है। निरभिमानता आनेपर अनन्त नित्य चिन्मय जीवन-से अभिन्नता हो जाती है और फिर सर्वात्मभाव भगवत्प्रेम तथा विश्वप्रेम स्वतः सिद्ध हो जाता है और किसी प्रकार-की भूख शेष नहीं रहती। समस्त जीवनको साधन बनानेके लिये यह अनिवार्य है कि जागर्तिसे लेकर सुषुप्तितक और जन्मसे लेकर मृत्युपर्यन्त प्रत्येक कार्य सुख-बुद्धि तथा भोग-बुद्धिको त्यागकर हित-बुद्धि तथा साधन-बुद्धिसे करना चाहिये। एक कार्य करते समय दूसरे कार्यका चिन्तन न करनेसे प्राप्त कार्यमें पूरी शक्ति लग जाती है। यह नियम है कि मन जितनी एकाग्रतासे जिस कार्यमें लगता है, उस कार्यके अन्तमें अपने आप उससे पूरा हट जाता है और जबतक दूसरा कार्य प्रारम्भ नहीं होता, उस बीचकी अवस्थामें योगीको योग, प्रेमीको प्रेम और विचारकको विचार प्राप्त होता है। एक कार्य पूरा होनेपर जबतक दूसरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार्य आरम्भ नहीं होता तबतक किसी प्रकारका व्यर्थ चिन्तन नहीं होना चाहिये । कारण, व्यर्थ चिन्तनका साधनयुक्त जीवनमें कोई स्थान नहीं है । यदि व्यर्थ चिन्तनका अन्त कर दिया जाय तो प्रत्येक साधक सुगमतापूर्वक अपने लक्ष्यसे अभिन्न हो सकता है ।

व्यक्ति और वस्तु विश्वास करनेकी चीज नहीं है । वस्तुओंका सदुपयोग करना है और व्यक्तियोंकी सेवा करनी है । यह तभी सम्भव होगा जब साधक सभीको या तो अपना स्वरूप जाने या सभीमें अपने प्रभुको देखे अथवा सारा विश्व एक है—ऐसा अनुभव करे । निर्मोहता, प्रेम तथा कर्त्तव्य-परायणताको अपना लेनेपर समस्त जीवन साधन बन जायगा, जिससे सीमित अहं-भाव सदाके लिये मिट जायगा और फिर शरीर विश्वके काम आ जायगा । हृदयमें प्रीतिकी गङ्गा लहरायेगी और निरभिमानतापूर्वक अनन्त नित्य-चिन्मय जीवनसे अभिन्नता हो जायगी, जो मानवका लक्ष्य है ।

मोहजनित सम्बन्ध तथा ममताका त्याग करते ही विषयचिन्तन मिटकर भगवच्चिन्तन स्वतः उत्पन्न होता है । जबतक साधकको चिन्तन करना पड़ता है तब-तक उसे समझना चाहिये कि अभी प्रेमास्पदसे सरल विश्वासपूर्वक नित्य सम्बन्धकी स्वीकृति नहीं हुई । ज्यों-ज्यों दूरी मिटती जाती है, त्यों-त्यों चिन्तन अचिन्तामें बदलता जाता है । पूर्ण अचिन्ता आते ही प्रीति उदय होती है और स्वभावतः उत्तरोत्तर बढ़ती रहती है, उसके लिये कोई श्रम अपेक्षित नहीं है ।

प्रीति उदय होनेपर समस्त जीवन प्रीतिसे परिपूर्ण हो जाता है और फिर किसी प्रकारका अवस्थाभेद होने-पर भी रसमें भेद नहीं रहता अर्थात् प्रवृत्ति और निवृत्तिका समान अर्थ हो जाता है, जिसके होते ही समस्त जीवन साधन बन जाता है ।

समस्त जीवनको साधन बनानेके लिये प्रत्युपकारकी आशाके बिना दूसरोंके अधिकारकी रक्षा और तत्त्व-जिज्ञासाकी पूर्ति तथा प्रेमकी प्राप्ति करना परम अनिवार्य हो जाता है । यही मानवका परम पुरुषार्थ है ।

× × ×

प्रेममें किसी प्रकारकी चाह तथा भोगकी सिद्धि नहीं होती । जब विचारकी अग्नि अहंभावको भस्म कर देती है, तब स्वतः प्रेमकी गङ्गा लहराने लगती है । अहंभावके मिटते ही निर्गुणका बोध और प्रेमका उदय स्वतः सिद्ध है । यह प्रेमकी महिमा है कि निर्गुणमें अनन्त दिव्य गुणोंका दर्शन होता है और यह ज्ञानकी महिमा है कि अनन्त गुणोंमें निर्गुणका बोध होता है । अतः प्रेम और ज्ञानमें स्वरूपसे भेद नहीं है, केवल रसका भेद है । यदि ज्ञान दोको एक करनेमें समर्थ है तो प्रेम एकको दो करनेमें समर्थ है । एकमें दो और दोमें एक—यह उस अनन्तमें ही है, किसी अन्यमें नहीं । अतः योग, ज्ञान और प्रेम उस अनन्तकी ही विभूतियाँ हैं और कुछ नहीं । योगके बिना सामर्थ्य, ज्ञानके बिना जीवन और प्रेमके बिना आनन्दकी सिद्धि नहीं हो सकती । अतः मानवमात्रको योग, ज्ञान तथा प्रेम प्राप्त करना अनिवार्य है । इन तीनोंमेंसे किसी एककी पूर्णता तीनोंकी पूर्णता हो जाती है । इन तीनोंके स्वरूपमें भेद नहीं है, केवल साधन-भेद है । साधन-भेद होनेपर भी प्रीति तथा लक्ष्यकी एकता अनिवार्य है । ॐ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भागवत-कार्य करनेकी प्रेरणा

(लेखक—श्रीमाँ, श्रीअरविन्द आश्रम, पाण्डिचेरी—२)

'यदि तुम सचमुचमें भागवत-कार्य करना चाहते हो तो तुम्हारा सबसे पहला उद्देश्य यह होना चाहिये कि तुम समस्त कामनाओं और स्वार्थपरायण अहंसे पूर्णतया मुक्त हो जाओ……',

—'माता' (श्रीअरविन्द)

प्र०—कभी-कभी हम अपने लिये बाजारसे कुछ खरीदने जाते हैं, क्या ऐसा करना ठीक है ?

उ०—इसमें तुम कोई सर्वत्र लागू होनेवाला नियम नहीं बना सकते। यह उस मनोभावपर निर्भर करता है जिससे तुम खरीददारी करते हो। तुम्हें कहा जाता है कि तुम्हारे अंदर कोई कामना न हो—यदि यह कोई कामना नहीं होती तो ठीक है। ऐसी कोई भी क्रिया नहीं है, ऐसा कोई भी कर्म नहीं है जो अपने-आपमें अच्छा या बुरा हो; यह पूर्णतया उस भावनापर निर्भर करता है जिससे तुम कार्य करते हो। उदाहरणार्थ, यदि तुम इस बातके प्रति उदासीन हो कि तुम्हारे पास क्या है और क्या नहीं है (यह अवस्था प्राप्त करना थोड़ा कठिन है, किंतु फिर भी यह प्राप्त की जा सकती है—निरासक्तिकी अवस्था यदि मेरे पास यह वस्तु है तो है, यदि नहीं है तो नहीं है), तब एक ऐसा क्षण आता है, यदि तुम पूरी सचाईकी अवस्थामें हो और तुम्हें सचमुच किसी वस्तुकी आवश्यकता है (और यह मात्र एक झक, कामना या मनकी तरङ्ग भर न हो, वह सचमुचमें एक आवश्यकता होनी चाहिये), तब वह वस्तु अपने-आप ही तुम्हारे पास आ जाती है। जबसे मैं यहाँ (आश्रममें) हूँ—और इसे बहुत दिन हो गये, है कि नहीं—ऐसे कई व्यक्तियोंको जानती हूँ जिन्होंने मुझसे कभी कोई चीज नहीं माँगी। और मैं यह विश्वास भी नहीं करती कि उनमें किसी भी वस्तुके लिये कभी कोई तीव्र कामना हुई हो, किंतु जब उन्हें किसी वस्तुकी आवश्यकता हुई तो वह उन्हें अनायास ही मिल गयी। मुझे तत्काल ही यह विचार आ जाता था, इस आदमीको यह वस्तु अवश्य मिलनी चाहिये, और यदि ऐसा सीधा मेरे द्वारा न होता तो किसी और सर्वथा अप्रत्याशित तरीकेसे वह चीज उसे मिल जाती। किंतु यदि तुम अपनी आवश्यकताओंकी चिन्तामें व्यस्त रहते हो (कामनाओंके बारेमें मैं तो बात ही करना नहीं चाहती, क्योंकि वह बिलकुल दूसरी बात है); यदि तुम अपनी आवश्यकताओंमें ही व्यस्त रहते हो और उन्हींके बारेमें सोचते रहते हो और कहते हो, सचमुचमें मुझे ये मिलनी चाहिये, तब ऐसा नहीं होता कि वे बराबर तुम्हारे पास आ जायँ। तब तुम्हें अपनी तुष्टिके लिये कुछ करना पड़ता है और यदि तुम्हारे पास साधन है तो तुम स्वयं जाकर वस्तुको खरीद लाते हो। कुछ लोग ऐसे होते हैं जो सदा अपनी कामनाओंको ही आवश्यकताएँ समझते हैं……'उनकी बात हम नहीं कह रहे हैं, अधिकांश लोग ऐसे ही होते हैं। उन्हें ऐसा दृढ़ विश्वास होता है कि 'इस' या 'उस' वस्तुके बिना वे जीवित नहीं रह सकते।' यह असम्भव है, इसके बिना मैं जीवित नहीं रह सकता……मैं बीमार हो जाऊँगा या मेरे साथ कुछ बिलकुल बुरी बात घट जायगी या मैं अपना काम नहीं कर सकूँगा। यह असम्भव है यदि मुझे यह वस्तु न मिली तो मैं अपना काम नहीं कर सकूँगा।' तब सबसे पहले उन्हें एक छोटा-सा परीक्षण करना चाहिये (यदि वे सच्चे हैं) 'अच्छा यह वस्तु मुझे नहीं मिलेगी और मैं देखूँगा कि क्या होता है।' यह सचमुचमें एक बड़ा रोचक परीक्षण है। और मैं तुम्हें ९९९ प्रति सहस्र यह आश्वासन देती हूँ कि कुछ समय बाद तुम अपनेसे कहोगे 'हरे, हरे, मेरे मनमें यह बात आयी ही क्यों कि मुझे इस वस्तुकी आवश्यकता है, इसके बिना भी मैं अपना काम भलीभाँति चला रहा हूँ।' सो, इसी प्रकार थोड़ा-थोड़ा करके तुम प्रगति करते हो।

यह प्रश्न है शिक्षाका—अपनी शिक्षाका। जितनी जल्दी इसे आरम्भ करोगे उतना ही वह सरल होगा। यदि तुम बहुत बचपनसे ही आरम्भ कर देते हो तो यह बहुत सरल हो जाता है; क्योंकि तुम अपनी आन्तरिक प्रतिक्रियाओंके अभ्यस्त हो जाते हो और तब तुम बुद्धिमानी और विवेकपूर्वक कार्य कर सकते हो जब कि वे लोग, जो बचपनसे ही अपनी सभी कामनाओंको आवश्यकताएँ या अनिवार्यताएँ समझनेके अभ्यस्त हो गये हैं और बड़े उत्साह और लालसाके साथ उनमें पिल पड़ते हैं, इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मार्गको अपने लिये कहीं अधिक कठिन पाते हैं। कारण, सबसे पहले उनमें यह विवेक आना चाहिये कि वे समझें कि क्या कामना है और क्या कामना नहीं है। और यह कभी-कभी बड़ा कठिन होता है; वह सब इतना मिश्रित होता है कि कौन क्या है—यह जानना तुम्हारे लिये बहुत कठिन हो सकता है।

किंतु अन्ततः मैं विश्वास करती हूँ कि तुम्हें बहुत अधिक वस्तुओंकी आवश्यकता नहीं होती। मुझे याद आता है कि एक बार हम चार जनोंने फ्रांसकी पहाड़ियोंमें पैदल यात्रा की। हम एक शहरसे चले थे और हमें एक दूसरे शहरमें जाना था। इसका अर्थ था लगभग आठ-दस दिन पर्वतोंसे होकर यात्रा। स्वभावतया ही हममेंसे प्रत्येक अपनी पीठपर अपना थैला लिये था; क्योंकि कुछ वस्तुओंकी आवश्यकता तो पड़ती ही है। किंतु तब चलनेसे पहले हमने यह जाननेके लिये कि किन-किन वस्तुओंकी हमें सचमुचमें आवश्यकता है, कौन-सी वस्तुएँ बिलकुल अनिवार्य हैं—एक प्रकारकी छोटी-सी गोष्ठी की और सदा हमारी बात यह कहकर समाप्त होती—'देखा जाय, इस वस्तुका प्रबन्ध ऐसे हो सकता है।' और तब सारा सामान कितना कम हो गया······मैं एक डेनिश चित्रकारको जानती थी जो कहा करता था—'मैं, देखो, मैं यदि यात्राके लिये निकलूँ तो मुझे केवल एक वस्तुकी आवश्यकता पड़ती है, दाँत साफ करनेके ब्रशकी।' किंतु तभी किसीने उसका उत्तर दिया। 'पर क्यों! यदि तुम्हारे पास ब्रश नहीं है तो तुम अपने दाँतोंको अंगुलीसे माँज सकते हो।'

प्र०—किसी कामको हाथमें लेनेसे पहले व्यक्ति यह जाननेकी चेष्टा करता है कि इसकी प्रेरणा माँकी ओरसे आ रही है या नहीं, किंतु सामान्यतया व्यक्तिके पास उसे जाननेकी समझ नहीं होती पर फिर भी वह कार्य करता है। क्या कार्यके परिणामद्वारा व्यक्ति यह जान सकता है कि उसकी प्रेरणा माँसे आयी थी या नहीं?

उ०—तुममें वह समझ इसलिये नहीं है; क्योंकि तुम वह समझ प्राप्त करना नहीं चाहते। सुनो, मैं यह विश्वास नहीं करती कि कोई ऐसा भी व्यक्ति है जिसे अपने अन्तरमें कोई एक अत्यन्त स्पष्ट वस्तु नहीं दिखायी पड़ती, किंतु तुम्हें सच्चे दिलसे उसे जाननेकी इच्छा करनी होगी—हम उसी वस्तुकी ओर वापस लौट आते हैं—सच्चे दिलसे इच्छा करनी होगी। पहली शर्त है कि विषयपर सोचना और सब प्रकारके विचार गढ़ना नहीं आरम्भ कर देना चाहिये। विचारों और सम्भावनाओंको एक दूसरेके विरुद्ध खड़ा करना और एक भयानक मानसिक क्रियामें प्रवेश कर जाना नहीं चाहिये। सबसे पहले समस्याको इस प्रकार सामने रक्खो, मानो तुम उसे किसी औरके सामने रख रहे हो। और तब चुपचाप बैठ जाओ, वैसे ही निश्चल बैठे रहो। और तब कुछ समय बाद तुम देखोगे कि कम-से-कम तीन विभिन्न बातें तुम्हारे सामने घट सकती हैं, कभी-कभी अधिक भी। एक बुद्धिजीवीको लो, उसको जो अपने मस्तिष्कके निदर्शनके अनुसार कार्य करता है। उसने अपनी समस्याको सामने रखा है और प्रतीक्षा कर रहा है। यदि वह सचमुच सतर्क है तो वह देखेगा कि (यहाँ कालक्रम अनिवार्य नहीं है, वह भिन्न क्रममें भी आ सकता है) पहले एक विचार आता है, (ऐसा अधिकतर एक बौद्धिक व्यक्तिके साथ ही घटता है) 'यदि मैं इसे इस ढंगसे करूँ, तो यह ठीक रहेगा, इसे ऐसा ही होना चाहिये; यानी कि एक मानसिक रचना। दूसरी बात होती है एक प्रकारकी प्रेरणा, 'मुझे यह करना चाहिये, यही ठीक है, मुझे यही करना चाहिये।' और तब तीसरी बात, जो जरा भी शोर-गुल नहीं करती, न अपनेको दूसरोंपर लादनेका ही प्रयत्न करती है, किंतु जिसमें एक निश्चयताकी शान्ति होती है—बहुत अधिक सक्रिय नहीं, और न वह कोई जोरके धक्के ही लगाती है, न कार्य करनेको धकेलती है, किंतु वह एक ऐसी वस्तु होती है जो जानती है और शान्त, बहुत शान्त रहती है। वह दूसरोंका विरोध नहीं करती। न यह कहती है कि 'नहीं, यह गलत है।' वह केवल कहती है—'यह इस तरह है।' बस, इतना ही और फिर वह आग्रह नहीं करती। अधिकांश व्यक्ति इतने नीरव और सतर्क नहीं होते कि उसके प्रति सचेतन हो सकें; क्योंकि यह शोर नहीं मचाती। किंतु मैं तुम्हें इस बातका विश्वास दिलाती हूँ कि यह सबके अंदर विद्यमान होती है और यदि व्यक्तिमें वास्तविक सच्चाई है और वह सच्चे रूपसे नीरव हो सकता है तो वह इसे देख पायेगा। जो वस्तु सोचती है, वह इस प्रकार तर्क करना आरम्भ करती है। किंतु इस वस्तुका यह परिणाम होगा और इस दूसरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वस्तुका यह दूसरा परिणाम होगा और यदि व्यक्ति ऐसा करे……, और 'यह' और 'वह'……उसका शोर फिरसे आरम्भ हो जाता है। दूसरी वस्तु (प्राण) कहेगी—'हाँ, इसे इसी प्रकार करना होगा, करना होगा, तुम समझते नहीं, ऐसा करना अनिवार्य है।' और बस, तब तुम जान लोगे और तुम अपनी प्रकृतिके अनुसार या तो प्राणिक प्रेरणाको चुनोगे या मानसिक निदर्शनको, किंतु ऐसा विरल ही होता है कि तुम पूरी शान्तिसे अपने-आपसे कहो। 'हाँ, मैं इसे ही करूँगा, चाहे जो हो।' चाहे तुम्हें वह बहुत अच्छा न भी लगता हो। किंतु यह वस्तु वहाँ होती सदा है। मेरा विश्वास है कि इससे पूर्व कि हत्यारा हत्या करे, यह उसमें भी होती है, समझते हो न? किंतु उसकी बाह्य सत्ता इतना शोर मचाती है कि उसे इसे सुननेका विचार भी नहीं आता। किंतु वह वहाँ सदा रहती है, वह वहाँ सदा होती है, प्रत्येक परिस्थितिमें। प्रत्येक परिस्थितिमें, प्रत्येक सत्ताके अन्तस्तरमें बस यह छोटा-सा (इसे वाणी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि यह शोर नहीं मचाती), यह भागवत-कृपाका एक छोटा-सा संकेत होता है और कभी-कभी इसकी आज्ञा पालन करनेके लिये घोर प्रयास करना पड़ता है; क्योंकि सत्ताके शेष भाग इसका उग्रतापूर्वक विरोध करते हैं, एक इस विश्वासके साथ कि जो वह सोचता है वही सत्य है और दूसरा अपनी कामनाके पूरे बल और शक्तिके साथ। किंतु यह मुझसे मत कहो कि यह सम्भव नहीं है; क्योंकि यह सत्य नहीं है। इसे जाना जा सकता है। पर व्यक्ति सदा वह नहीं करता जो उसे करना चाहिये, और कभी-कभी यदि वह यह जानता भी है कि उसे क्या करना चाहिये तो वह उसे न करनेका बहाना ढूँढ़ लेता है। तुम कहते हो, 'आखिर, इस आन्तरिक संकेतका विश्वास ही क्या है, यह पर्याप्त बलपूर्वक अपनेको जानता भी तो नहीं जिससे मैं इसपर विश्वास कर सकूँ।' किंतु यदि तुम बिलकुल उदासीन होते हो, अर्थात् तुममें कोई कामना नहीं होती, न मानसिक, न प्राणिक और न शारीरिक, तो तुम यह निश्चयपूर्वक जान लोगे कि यही है वह कार्य जिसे तुम्हें करना है, दूसरा नहीं। जो वस्तु सामने आकर रुकावट पैदा करती है वह है अभिरुचियाँ, कामनाएँ और अभिरुचियाँ। तुम्हें प्रतिदिन सैकड़ों ऐसे उदाहरण मिल सकते हैं। जब लोग यह कहना आरम्भ करते हैं—'सचमुचमें मुझे पता नहीं चलता कि मैं क्या करूँ' तो इसका अर्थ यह होता है कि उनकी कोई अपनी पसंदगी है। किंतु क्योंकि यहाँ आश्रममें, वे यह जानते हैं कि यहाँ कोई और वस्तु विद्यमान है और वे कभी-कभी इसपर ध्यान भी देते हैं, उन्हें एक अस्पष्ट-सी संवेदना होती है कि 'यह बात बिल्कुल ही वैसी नहीं है।' 'यह बिलकुल वैसा नहीं है, मैं बिलकुल चैनका अनुभव नहीं कर रहा हूँ।' इसके अतिरिक्त तुमने अभी यह भी कहा था कि परिणाम ही संकेत प्रदान करता है; यहाँतक कहा गया है (पुस्तकोंमें भी लिखा गया है) कि भागवत-इच्छाका पता भी परिणामोंके द्वारा ही लगता है। जिस वस्तुको सफलता मिलती है वह भागवत-इच्छाके फलस्वरूप होती है, जिसको सफलता नहीं मिलती, उसमें भगवान्‌की इच्छा नहीं होती! यह भी फिर उन बहुत-सी मूर्खताओंमेंसे एक है जो पर्वतके समान बड़ी है। यह समस्याका मानसिक सरलीकरण है, जो कि बिल्कुल हास्यास्पद है। बात ऐसी नहीं है। यदि किसीको संकेत मिल सकता है (अपनी सचाईकी मात्रामें) तो वह विकलता होती है, जरा-सी बेकली—कोई बहुत बड़ी बेकली नहीं वरं छोटी-सी।

तुम जानते हो कि यहाँ एक और तरीका भी है, बहुत ही सरल; (मुझे पता नहीं तुम उसका प्रयोग क्यों नहीं करते; क्योंकि यह बिल्कुल ही आरम्भिक है) तुम यह कल्पना करो कि मैं तुम्हारे सामने खड़ी हूँ और अपनेसे कहो। 'क्या मैं इस कामको माताजीके सामने बिना किसी कठिनाईके, बिना जोर लगाये, बिना किसी ऐसी वस्तुके जो मुझे रोकती है, करूँगा?' यह तरीका तुम्हें कभी धोखा नहीं देगा। यदि तुम सच्चे हो तो तत्काल ही जान जाओगे। यह बहुतसे व्यक्तियोंको मूर्खताके किनारेपर रोक देगा।

प्र०—कभी-कभी ऐसा होता है कि जब हम खेलते होते हैं तो भगवान्‌को स्मरण नहीं रखते और फिर अचानक ही हमें यह बात याद आ जाती है और हमें ऐसा आभास होता है कि कुछ टूट गया और तब इसके बाद हम अच्छा नहीं खेल पाते। ऐसा क्यों होता है?

उ०—क्योंकि सब कुछ अस्तव्यस्त हो जाता है। यह तो एक समस्या है! तब क्या तुम ऐसा विश्वास करते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो कि जब तुम खेलते समय भगवान्‌को याद नहीं रखते तो तुम अच्छा खेलते हो ! नहीं; बात बिल्कुल ऐसी नहीं है। इसका कारण यह है, तुम थोड़ी एकाग्रतासे कोई काम कर रहे होते हो—चाहे वह कार्य हो या खेल—और तुम एकाग्र होते हो, किंतु तुम्हें भगवान्‌की स्मृतिको एकाग्रताके साथ मिलानेका अभ्यास नहीं होता (यह कठिन नहीं है, पर तुम्हें इसका अभ्यास नहीं होता) और अचानक तुम्हें उसकी याद आ जाती है। अब दो बातें हो सकती हैं। या तो एकाग्रता अस्तव्यस्त हो जाती है; क्योंकि चेतनाके अंदर प्रवेश करनेवाली नयी वृत्तिको पकड़नेके लिये तुम्हारे अंदर अकस्मात् एक क्रिया होने लगती है, या फिर तुम्हारे अंदर एक प्रकारके खेद, पश्चात्तापकी भावना अथवा चिन्ता पैदा हो जाती है। 'ओह, मैंने भगवान्‌को याद नहीं किया।' बस, इतना ही काफी है, यह उस सबको अस्तव्यस्त कर देता है जो कि तुम कर चुके हो; क्योंकि तुम अवस्थाको पूरी तरहसे बदल देते हो। अतएव यह स्मृति नहीं, बल्कि तुम्हारी एकाग्रताकी अस्तव्यस्तता ही है जो तुम्हारे अच्छा न खेलनेका कारण बन जाती है। यदि तुम अपनी एकाग्रताको विक्षुब्ध किये बिना भगवान्‌को याद कर सकते होते (जो कठिन नहीं है) तो तुम केवल अच्छा ही नहीं खेलते वरं पहलेसे भी अच्छा खेलते।

तुम एक और भाव भी अपना सकते हो। जब तुम खेल रहे होते हो और यह देखते हो कि अचानक ही कुछ तुम्हारे हाथसे निकला जा रहा है—तुम गलतियाँ कर रहे हो, असावधान हो, कभी-कभी विपरीत धाराएँ आती हैं और तुमने जो कुछ किया है उसे काटकर निकल जाती हैं—यदि तुम ऐसे समय अनायास ही, मानो मन्त्रके-जैसा भगवान्‌को पुकारने अथवा किसी शब्दके जप करनेका अभ्यास बना लेते हो तो इसका बड़ा असाधारण प्रभाव पड़ता है। तुम अपना मन्त्र चुन लेते हो, अथवा एक दिन, किसी कठिन क्षणमें वह स्वयं तुम्हें सहज ही प्राप्त हो जाता है। एक ऐसे क्षणमें जब कि वस्तुएँ बहुत ही कठिन हो उठती हैं, जब तुम्हें एक प्रकारके गहन दुःख या अशान्तिका अनुभव होता है कि तुम यह नहीं जानते कि क्या होनेवाला है, तब अचानक ही वह तुम्हारे अंदर फूट पड़ता है, वह शब्द फूट पड़ता है। प्रत्येकके लिये यह भिन्न हो सकता है। किंतु यदि तुम इसे ध्यानमें रख लो और ऐसे प्रत्येक समय जब तुम किसी कठिनाईके सामने होओ तो इसका जप करने लगो, तो इसकी शक्ति अदम्य हो जाती है। उदाहरणार्थ, यदि तुम्हें ऐसा लगे कि तुम बीमार पड़नेवाले हो, यदि ऐसा प्रतीत हो कि जो कार्य तुम कर रहे हो उसे ठीक नहीं कर रहे हो, यदि तुम्हें ऐसा अनुभव हो कि कोई अशुभ वस्तु तुमपर आक्रमण करनेवाली है, तब·····किंतु सत्ताकी यह एक सहज स्वाभाविक वृत्ति होनी चाहिये, बिना तुम्हारे सोचनेकी कोई आवश्यकता हुए इसे तुम्हारे अंदरसे फूट पड़ना चाहिये। तुम अपने मन्त्रको चुन लो; क्योंकि यही तुम्हारी अभीप्साकी सहज अभिव्यक्ति होगी; यह एक शब्द भी हो सकता है, दो या तीन शब्द भी हो सकते हैं, एक वाक्य भी हो सकता है, यह प्रत्येक व्यक्तिपर निर्भर करता है, किंतु इसे एक ऐसी ध्वनि होना आवश्यक है जो तुम्हारे अंदर एक विशेष स्थितिको जगा दे। जब यह अवस्था तुम्हें प्राप्त हो जाय तो मैं तुम्हें विश्वास दिलाती हूँ कि तुम सब कुछको बिना किसी कठिनाईके पार कर सकोगे। किसी खतरेके समय, वास्तविक खतरेके समय, उदाहरणार्थ किसी ऐसे व्यक्तिके आक्रमणके समय जो तुम्हें मार डालना चाहता है, यदि तुम बिना विक्षुब्ध एवं विचलित हुए शान्तिपूर्वक अपने मन्त्रका जाप करना शुरू कर दो, तो तुम्हारा कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता। स्वभावतया ही तुम्हें अपने ऊपर पूरा अधिकार होना चाहिये; तुम्हारे अंदरका कोई भाग ऐसा नहीं होना चाहिये जो पत्तेकी भाँति काँपता रहे। नहीं, तुम्हें ऐसा समग्र और सच्चे रूपसे करना चाहिये, तभी यह सर्वशक्तिमान् होता है। सबसे अच्छा समय वह होता है जब शब्द तुम्हारे पास अनायास ही आ जाय। तुम बड़ी कठिनाईके समय पुकारते हो (चाहे वह कठिनाई मानसिक, प्राणिक, शारीरिक अथवा भाविक जो भी हो), और तब अचानक ही वह तुम्हारे अंदर फूट पड़ता है, दो या तीन शब्द, जादूके शब्दोंके समान। इसे तब तुम्हें याद रखना चाहिये और जब आवे, उन क्षणोंमें इसका जाप करनेका अभ्यास डाल लेना चाहिये। यदि तुम यह अभ्यास डाल लोगे तो एक दिन यह अनायास ही तुम्हारे पास आ जायगा। ज्यों ही कठिनाई आयेगी, त्यों ही मन्त्र भी आ जायगा। तब तुम देखोगे कि इसके परिणाम आश्चर्यजनक हैं। किंतु इस वस्तुको कृत्रिम नहीं होना चाहिये या मनमाने ढंगसे तुम्हें इसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बारेमें निश्चय नहीं बनाना चाहिये, 'मैं इन्हीं शब्दोंका प्रयोग करूँगा ।' या किसी अन्य व्यक्तिको तुम्हें यह नहीं कहना चाहिये, 'अहो, तुम्हें पता है, यह वस्तु बहुत ठीक है'— वह उसके लिये शायद ठीक हो सकती है, पर सबके लिये नहीं ।

प्र०—'कर्ममें तुम्हारा समस्त उद्देश्य सेवा करना, ग्रहण करना, चरितार्थ करना एवं भागवत-शक्तिके कार्योंमें उसका एक अभिव्यक्तकारी यन्त्र बनना होगा ।'

—माता (श्रीअरविन्द)

जब तुम कर्म करते हो तो तुम्हारा एकमात्र उद्देश्य सेवा करना होता है, अर्थात् अपनी वैयक्तिक भलाईके लिये कार्य करनेके स्थानपर तुम भागवत-शक्तिकी सेवाके लिये, उसे ग्रहण करनेके लिये कार्य करते हो, बाहरसे नहीं (यह ऐसा है, इस बातपर तुम्हें बिल्कुल विश्वास नहीं करना चाहिये) वरं अपने अंदरसे, तुम अपनेको भागवत-शक्तिके प्रति खोलते हो जो तुम्हें अपने कार्यके लिये प्रयुक्त करेगी—इसका यही अर्थ है—और तुम उसीको चरितार्थ करते हो जो वह शक्ति तुमसे कराना चाहती है । वहाँ अहंभावके लिये कोई स्थान नहीं होता । इसका अ॰ एक चीजको देकर बदलेमें दूसरी चीजको लेना भी नहीं है, यह ऐसा नहीं है; इसका अर्थ बाहरसे किसी वस्तुको ग्रहण करना भी नहीं है ।

साधनाके कुछ ऐसे मार्ग भी हैं जो नियमके रूपमें यह प्रस्थापित कर देते हैं कि व्यक्तिको भगवान् या गुरुके अतिरिक्त जो कि भगवान्का प्रतिनिधि होता है, छोड़कर और किसीसे भी कुछ नहीं लेना चाहिये । कुछ ऐसे व्यक्ति हैं जो किसीसे खानेके लिये एक फलतक ग्रहण नहीं करते जबतक कि वह उनके गुरुसे ही न आया हो । यह एक अतिशयता है—यह परिस्थितियों एवं अवस्थाओंपर निर्भर करता है और सबसे अधिक यह उस वृत्तिपर निर्भर करता है जो व्यक्ति स्वयं अपनाता है, यह कई बातोंपर निर्भर करता है, यह सब बतानेमें बहुत अधिक समय लग जायगा—किंतु एक बात ऐसी है जिसे अवश्य सीखना चाहिये; भगवान्को छोड़कर और किसी व्यक्ति या वस्तुपर निर्भर न रहो । कारण, यदि तुम किसीका भी सहारा लेते हो, तो वह सहारा टूट जायगा, इस बातका तुम निश्चय रक्खो । जिस क्षणसे तुम योग आरम्भ करते हो (मैं यहाँ उन्हींकी बात करती हूँ जो योग कर रहे हैं, सामान्य जीवनकी चर्चा मैं यहाँ नहीं कर रही हूँ); क्योंकि जो लोग योग कर रहे हैं, उनके लिये दूसरोंका सहारा लेनेका मतलब है कि तुम उस क्तिको भागवत-शक्तिके प्रतिनिधिके रूपमें परिणत करना चाहते हो । और यह निश्चय रक्खो कि दस करोड़में एक भी ऐसा नहीं निकलेगा जो इस बोझको सह सकता हो । वह तत्काल ही नष्ट हो जायगा । अतएव भगवान्को छोड़कर अन्य किसीसे आश्रय, सहायता या सान्त्वनाकी आशा मत रक्खो । यह एक ध्रुव सत्य है । मुझे ऐसा कोई भी नहीं मिला—एक भी नहीं (जो योग कर रहा हो या योगके अभ्याससे सम्बन्ध रखता हो)—जो किसी वस्तुको सहारा मानकर उससे चिपटनेकी चेष्टा कर रहा हो और निराश न हुआ हो—वह टूट जाता है, टूट जाता है । और तुम सहारेको खो देते हो । और तुम कहते हो 'जीवन कठिन है'—जीवन कठिन नहीं है, केवल तुम्हें यह जानना चाहिये कि तुम क्या रहे हो । भगवान्के अतिरिक्त और किसीका सहारा न खोजो । भगवान्के अतिरिक्त और किसीमें कोई तुष्टिकी खोज मत करो । अपनी आवश्यकताओंकी तुष्टि भी भगवान्के अतिरिक्त और किसीमें मत खोजो—कभी भी नहीं, किसी वस्तुके लिये भी नहीं । तुम्हारी सभी आवश्यकताएँ भगवान्के द्वारा ही संतुष्ट हो सकती हैं, तुम्हारी सभी दुर्बलताएँ केवल भगवान्के द्वारा ही सही एवं ठीक की जा सकती हैं । केवल वे ही तुम्हें सदा-सर्वदा वह सब दे सकते हैं जिसकी तुम्हें आवश्यकता है । और यदि तुम किसी औरसे तुष्टि, आश्रय, सहारा या आनन्द ढूँढ़नेकी कोशिश करते हो····· कुछ भी हो वह तो यह निश्चित है कि तुम अवश्य एक दिन अपनी नाकके बल गिरोगे और इससे बड़ा कष्ट होता है, कभी-कभी बहुत ही अधिक कष्ट ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि भगवान्‌की उपासनासे वास्तविक लाभ प्राप्त करना चाहते हो तो अण्डे, मांस, मछली, शराब आदि तामसी वस्तुओंसे बचो

(गोलोकवासी पूज्यपाद परमहंस श्रीस्वामी श्रीनारायणदासजी महाराजके महत्त्वपूर्ण सदुपदेश)

(प्रेषक और लेखक—भक्त श्रीरामशरणदासजी)

भारतके सुप्रसिद्ध महान् संत गोलोकवासी परमपूज्यपाद प्रातःस्मरणीय परमहंस श्रीस्वामी नारायणदासजी महाराज एक बड़े ही उच्चकोटिके महापुरुष थे। सुना जाता है कि आप भगवत्साक्षात्कार-सम्पन्न थे। आपको साक्षात् श्रीबद्रीनाथ भगवान्‌के दर्शनका परम सौभाग्य प्राप्त हुआ था। आप उच्चकोटिके घोर त्यागी-तपस्वी संत थे। टाटकी लंगोटीमात्र बाँधकर अहर्निश भजन-ध्यान-उपासनामें तल्लीन रहा करते थे। एक बार आप भारतके सुप्रसिद्ध महान् तीर्थ श्रीगढ़मुक्तेश्वरमें पधारे थे। उस समय आपने पतितपावनी भगवती भागीरथीके परम पवित्र तटपर श्रीगङ्गाजीकी परम पवित्र रजमें बैठकर अपने मौन संकेतोंद्वारा अंगुलीसे रेतमें लिख-लिखकर सबको बारी-बारीसे जो महत्त्वपूर्ण सदुपदेश दिये थे, उनको मैंने डायरीमें नोट कर लिया था, वही यहाँपर नीचे दिये जा रहे हैं। आशा है, पाठक इन्हें ध्यानसे पढ़कर लाभ उठायेंगे। इसके लिखनेमें जो गलती रह गयी हो, वह सब मेरी ही है, महाराज श्रीकी नहीं।

१—श्रीकृष्ण-उपासकको सदुपदेश

स्वामीजी—तुम किसकी उपासना करते हो ?

भक्त—महाराजजी ! भगवान् श्रीकृष्णकी उपासना करता हूँ।

स्वामीजी—जप करते हो ?

भक्त—हाँ, सरकार करता हूँ।

स्वामीजी—भगवान्‌की मूर्ति भी रखते हो ?

भक्त—जी हाँ, सरकार रखता हूँ।

स्वामीजी—क्या अपने साथ अपने इष्टदेव भगवान्‌की मूर्ति लाये हो ?

भक्त—नहीं तो महाराज।

स्वामीजी—क्यों नहीं लाये ?

भक्त—महाराजजी ! मैं इसलिये अपने साथ भगवान्‌को नहीं लाया कि कभी रास्तेमें सरकारको कोई कष्ट हो। इसलिये मैं उन्हें अपने घरपर ही छोड़ आया हूँ। मेरी धर्मपत्नी ही घरपर भगवान्‌की सेवा करेगी।

स्वामीजी—जब तुम अपने साथ बहुत बड़े गट्ठरको लेकर आते हो तो फिर क्या तुम छोटेसे अपने श्रीठाकुरजी महाराजको साथमें नहीं ला सकते ? जब तुम भगवान्‌को अपने साथ नहीं लाये तो फिर तुम भगवान्‌को भोग कैसे लगाओगे ? और जब तुम भगवान्‌को भोग नहीं लगाओगे तो फिर तुम भगवान्‌के बिना भोग लगाये स्वयं भोजन कैसे पाओगे ? अबसे जहाँपर भी तुम जाओ अपने भगवान्‌को साथ अवश्य ही ले जाओ और पहले भगवान्‌को भोग लगाकर बादमें उस भोग लगे प्रसादीको स्वयं पाओ। बिना भगवान्‌को भोग लगाये हुए कभी भूलकर भी कुछ भी मत खाओ-पीओ। पहले सब चीजोंका भगवान्‌को भोग लगा लो, तब उसे बड़े प्रेमसे श्रीभगवत्प्रसाद समझकर पाओ।

भक्त—बहुत अच्छा महाराज।

स्वामीजी—भगवान्‌को तुम कितनी बार भोग लगाते हो ?

भक्त—सरकार ! मैं भगवान्‌को दो बार भोग लगाता हूँ।

स्वामीजी—नहीं, दो बार नहीं, पाँच बार भगवान्‌को भोग लगाया करो।

भक्त—महाराजजी ! पाँच बार कब तथा किस प्रकार भोग लगाना चाहिये ?

स्वामीजी—

१—प्रातःकाल भगवान्‌को स्नान कराके मेवाका भोग लगाना चाहिये।

२—दोपहरको भोजनका भोग लगाना चाहिये।

३—दोपहर बाद भगवान्‌को फलोंका भोग लगाना चाहिये।

४—रात्रिको भगवान्‌को भोजनका भोग लगाना चाहिये।

५—सोते समय भगवान्‌को दूधका भोग लगाना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्त–बहुत अच्छा महाराज।

स्वामीजी–भगवान्‌पर फूल भी चढ़ाते हो ?

भक्त–जी हाँ, चढ़ाता हूँ।

स्वामीजी–क्या गाय है ?

भक्त–जी हाँ, गाय है।

स्वामीजी–गायकी खूब सेवा किया करो और गायके दूध और भातका भगवान्‌को भोग लगाया करो।

भक्त–बहुत अच्छा सरकार।

स्वामीजी–श्रीठाकुरजी महाराजके नित्य सुगन्धित तेल और इत्र भी लगाया करो।

भक्त–बहुत अच्छा सरकार।

स्वामीजी–व्रत-उपवास भी रक्खा करो और पण्डितजीको बुलाकर उनसे बड़े प्रेमसे श्रीसत्यनारायण भगवान्‌की कथा सुना करो।

भक्त–बहुत अच्छा सरकार।

स्वामीजी–माला जपते हो ?

भक्त–जपता हूँ सरकार।

स्वामीजी–कितनी माला जपते हो ?

भक्त–माला थोड़ी जपता हूँ और कीर्तन भी करता हूँ।

स्वामीजी–नहीं, माला भी खूब जपो और कीर्तन भी खूब करो। जपको इस कीर्तनमें मत काटो।

भक्त–बहुत अच्छा सरकार।

२—स्त्रीको सदुपदेश

स्वामीजी–तुम जप करती हो ?

स्त्री–नहीं तो, महाराज।

स्वामीजी–जप किया करो।

स्त्री–बहुत अच्छा महाराज।

स्वामीजी–तुम मांस तो नहीं खाती हो ?

स्त्री–महाराज ! मैं मांस तो खाती हूँ।

स्वामीजी–फिर तो तुम्हारा जप करना व्यर्थ है।

स्त्री–महाराज ! क्या करूँ ?

स्वामीजी–तुम यह प्रतिज्ञा करो कि मैं अबसे कभी भी मांस नहीं खाऊँगी।

स्त्री–महाराज ! मैं अबसे कभी भी मांस नहीं खाऊँगी, यह प्रतिज्ञा करती हूँ।

स्वामीजी–तुम श्रीगङ्गाजीकी ओर हाथ उठाओ और कहो कि मैं अबसे कभी भी मांस नहीं खाऊँगी और मछली-अण्डे-मुर्गे भी नहीं खाऊँगी।

स्त्री–मैं गङ्गाजीकी ओर हाथ उठाकर कहती हूँ कि अबसे कभी भी मांस-मछली-अण्डे-मुर्गे नहीं खाऊँगी।

स्वामीजी–न तो तुम अबसे स्वयं मांस-मछली, अण्डे-मुर्गे खाना और न किसी औरको मांस-मछली, अण्डे-मुर्गे खिलाना।

स्त्री–महाराज ! मैं तो स्वयं नहीं खाऊँगी, पर घरपर यदि कोई मांस-अण्डे खानेवाला आ जाय तो क्या उसे भी मांस बनाकर नहीं देना चाहिये ?

स्वामीजी–नहीं देना चाहिये। उसे हाथ जोड़ देना चाहिये।

स्त्री–बहुत अच्छा महाराज !

स्वामीजी–भगवान्‌के नामका जप किया करो।

स्त्री–महाराजजी ! जप कैसे करना चाहिये ?

स्वामीजी–स्नान करके भगवान् श्रीनारायणकी चतुर्भुजी मूर्तिके सामने बैठकर जप करना चाहिये। जप करते समय होठ नहीं हिलने चाहिये।

स्त्री–बीमार होनेपर भी क्या स्नान करना चाहिये ?

स्वामीजी–तब स्नान मत करो, मुँह-हाथ धोकर और अपने वस्त्र बदलकर जप करो।

स्त्री–महाराजजी ! यदि हमारे पति मांस खायँ, तो क्या करें। क्या उन्हें भी मांस बनाकर नहीं देना चाहिये ?

स्वामीजी–पतिको अप्रसन्न मत करो। उन्हें बड़े प्रेमसे मांस न खानेके लिये समझाओ और प्रेमसे मनाओ कि वे मांस न खायें। वे तुम्हारी बात मान जायँ तो ठीक और यदि वे न मानें तो उन्हें बना दो। परंतु तुम स्वयं कभी मांस मत खाओ। पति तुम्हारे लिये साक्षात् परमेश्वर हैं, उन्हें अपना परमेश्वर समझो। पूज्य पतिकी आज्ञाको मानो और अपने पूज्य पतिके नित्यप्रति चरण दबाओ। उनकी बातोंका कभी उलट करके जवाब मत दो और जैसे भी बने अपने पूज्य पतिदेव परमेश्वरको खूब प्रसन्न रक्खो। उनकी जितनी बने, खूब सेवा करो।

स्त्री–बहुत अच्छा महाराज।

३—लड़कीको सदुपदेश

स्वामीजी–जप करती हो ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लड़की–हाँ, महाराजजी ! करती हूँ ।

स्वामीजी–कितना करती हो ?

लड़की–चार माला जप करती हूँ ।

स्वामीजी–चार माला थोड़ी हैं ।

लड़की–कितनी किया करूँ महाराज ?

स्वामीजी–पचीस माला जपो, फिर बादमें और भी माला बढ़ाती चली जाओ ।

लड़की–बहुत अच्छा महाराज ! अवश्य ही जपूँगी। आप मुझे मन्त्र और बता दीजिये कि मैं मालापर कौन-सा मन्त्र जपा करूँ ?

स्वामीजी–अब तुम कौन-सा मन्त्र जपती हो ?

लड़की–महाराजजी ! अब तो मैं 'नमः शिवाय' मन्त्र जपती हूँ ।

स्वामीजी–तुम्हारा प्रेम किस देवतामें ज्यादा है ?

लड़की–महाराजजी ! मेरा प्रेम तो श्रीकृष्णजीमें ज्यादा है।

स्वामीजी–यदि तुम्हारा प्रेम श्रीकृष्णजीमें ज्यादा है तो तुम 'नमः शिवाय' का जप न कर अबसे 'नारायण नारायण' जपा करो ।

लड़की–बहुत अच्छा महाराज ।

स्वामीजी–भगवान्‌की मूर्ति रखती हो ?

लड़की–नहीं तो महाराज !

स्वामीजी–मूर्ति अवश्य रक्खो । मूर्ति चतुर्भुजी श्रीनारायण-की होनी चाहिये ! उनके चारों हाथोंमें शंख, चक्र, गदा और पद्म होने चाहिये ।

लड़की–बहुत अच्छा महाराज ।

स्वामीजी–घरमें श्रीतुलसीजी हैं ।

लड़की–जी हाँ महाराज ! श्रीतुलसीजी हैं ।

स्वामीजी–तुम नित्यप्रति श्रीतुलसीजीका बड़े प्रेमसे पूजन किया करो । तुलसीजीको जल दिया करो, उनके चन्दन लगाया करो, उनके सामने पवित्र घृतका दीपक जलाया करो, उन्हें हाथ जोड़ा करो और उनकी नित्य परिक्रमा किया करो ।

लड़की–बहुत अच्छा महाराज ! अबसे ऐसा ही होगा ।

स्वामीजी–जप करना ।

लड़की–बहुत अच्छा महाराज !

४—एक दूसरी बहनको सदुपदेश

स्वामीजी–जप करती हो ?

बहन–करती हूँ महाराज !

स्वामीजी–जप पचीस मालासे कम नहीं होना चाहिये।

बहन–बहुत अच्छा महाराज !

स्वामीजी–महीनेकी दोनों एकादशीका व्रत रखती हो क्या ?

बहन–नहीं तो, महाराज !

स्वामीजी–महीनेकी दोनों एकादशीका व्रत रखा करो। व्रतमें दूध और फल दिनमें एक बार खाया करो और कुछ नहीं।

बहन–महाराज ! दूध और फलोंमें तो बहुत ज्यादा पैसे खर्च होते हैं ।

स्वामीजी–तो कुछ मत खाओ, खाली पानी पीकर निराहार व्रत रहो । इससे बहुत ज्यादा फल मिलता है ।

बहन–बहुत अच्छा महाराज !

स्वामीजी–पूर्णिमाका व्रत रखती हो ?

बहन–नहीं तो, महाराज !

स्वामीजी–पूर्णिमाका व्रत भी अवश्य ही रखना चाहिये और रात्रिको भगवान् चन्द्रमाको अर्घ्य देकर तब भोजन करना चाहिये ।

बहन–बहुत अच्छा महाराज !

५—ब्राह्मण लड़केको सदुपदेश

स्वामीजी–तुम कौन जातिके हो ?

लड़का–महाराज ! मैं ब्राह्मण जातिका हूँ ।

स्वामीजी–तुमने अपना जनेऊ कराया है या नहीं ?

लड़का–नहीं तो ।

स्वामीजी–ब्राह्मण होकर तुमने अभीतक अपना जनेऊ नहीं कराया, यह तो तुमने अच्छा काम नहीं किया, बड़ा पाप किया ।

लड़का–अब क्या करना चाहिये ?

स्वामीजी–तुम ब्राह्मण हो इसलिये तुम्हें जनेऊ (यज्ञोपवीत-संस्कार) अवश्य ही कराना चाहिये । नित्य प्रातःकाल तथा सायंकाल संध्या करनी चाहिये और गायत्री-मन्त्रकी चार माला अवश्य ही जपनी चाहिये ।

लड़का–बहुत अच्छा महाराज !

स्वामीजी–चार माला तो तुम गायत्रीकी जपा करो और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पचीस माला 'ॐ नारायण'की जपा करो। जनेऊ धारण किये बिना गायत्रीका जप नहीं करना चाहिये। जनेऊ हो जानेपर ब्राह्मणके लिये गायत्रीमन्त्रका जप करना बहुत ही जरूरी है। गायत्रीमन्त्रका जप रुद्राक्षकी मालापर करना चाहिये। जबतक तुम अपना जनेऊ करानेके बाद गायत्रीमन्त्रका जप और पचीस माला ॐनारायणका जप न कर लो, तबतक तुम भोजन न किया करो।

लड़का–बहुत अच्छा महाराज !

६—अंग्रेजी पढ़े बाबूको सदुपदेश

स्वामीजी–जप करते हो ?

बाबू–नहीं तो महाराज।

स्वामीजी–अण्डे-मांस-मछली खाते हो ?

बाबू–मांस-मछली, अण्डे खाता तो हूँ।

स्वामीजी–अबसे अण्डे-मांस-मछली खाना छोड़ दो।

बाबू–महाराज ! कोशिश करूँगा।

स्वामीजी–कोशिश नहीं, आजसे ही छोड़ दो।

बाबू–छोड़ दिया महाराज !

स्वामीजी–प्रतिज्ञा करो कि मैं अबसे कभी मांस-मछली नहीं खाऊँगा।

बाबू–महाराज ! मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि आजसे मांस-मछली कभी भी नहीं खाऊँगा।

स्वामीजी–श्रीगङ्गाजीकी ओर अपना हाथ उठा करके कहो और यह दृढ़ प्रतिज्ञा करो कि मैं अबसे कभी मांस नहीं खाऊँगा।

बाबू–मैं श्रीगङ्गाजीकी तरफ हाथ उठाकर कहता हूँ कि मैं अबसे कभी भी मांस नहीं खाऊँगा।

स्वामीजी–अण्डे तो नहीं खाते हो ?

बाबू–जी महाराज ! खाता हूँ।

स्वामीजी–अबसे उसे भी नहीं खाना होगा।

बाबू–नहीं खाऊँगा।

स्वामीजी–पुनः प्रतिज्ञा करो कि मैं अबसे किसी भी प्रकारका मांस नहीं खाऊँगा।

बाबू–मैं प्रतिज्ञा करके कहता हूँ कि मैं अबसे किसी भी प्रकारका मांस नहीं खाऊँगा।

स्वामीजी–कुछ तामसी चीजें और हैं। इन्हें भी मत खाना।

बाबू–वे क्या हैं महाराज !

स्वामीजी–प्याज, लहसुन, सलजम, मसूर, गोभी, गाजर—इन्हें भी मत खाना।

बाबू–नहीं खाऊँगा महाराज !

स्वामीजी–जो इन्हें खाता है वह प्रेतयोनिमें जाता है।

बाबू–बहुत अच्छा महाराज !

स्वामीजी–शराब तो नहीं पीते ?

बाबू–नहीं पीता।

स्वामीजी–२५ माला नारायणकी जपा करो।

बाबू–बहुत अच्छा महाराज !

स्वामीजी–बिना मांस त्यागे माला जपनेसे कुछ नहीं होगा।

बाबू–नहीं महाराज ! मांस त्याग दिया।

स्वामीजी–भगवान्‌की चतुर्भुजी मूर्ति रक्खा करो। लो यह हमारे पाससे माला, जपस्थली और आसन।

बाबू–बहुत अच्छा महाराज !

स्वामीजी–सत्य बोला करो।

बाबू–बहुत अच्छा महाराज !

७—सबको सदुपदेश

इसके पश्चात् पूज्य महाराज श्रीने अपने पास बैठे हुए सभी स्त्री-पुरुषोंको अपने हाथके संकेतोंसे और रेतीमें अपनी अंगुलीसे लिखकर यह महत्त्वपूर्ण सदुपदेश दिया।

स्वामीजी–जो भी यहाँपर बैठे हुए हैं उन सबको नित्यप्रति २५ माला नारायणकी जपनी चाहिये और सबको इन सात चीजोंसे बचना चाहिये और इन्हें खाना छोड़ देना चाहिये।

१–अण्डे-मांस-मछली-शराब।

२–प्याज।

३–लहसुन।

४–सलजम।

५–गोभी।

६–मसूर।

७–गाजर।

सब श्रीगङ्गाजीकी तरफ प्रतिज्ञा करके और हाथ उठा करके कहो कि हम आजसे ये ७ चीजें नहीं खायेंगे।

सबने श्रीगङ्गाजीकी तरफको हाथ उठा करके कहा—हम आजसे ये ७ चीजें कभी नहीं खायेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामीजी—सब अपने-अपने वर्णाश्रमधर्मानुसार चलो और अपने शास्त्रानुसार सब कार्य करो तथा अपने सनातन-धर्मकी शरणमें रहो ।

संध्या हो चुकी थी इसलिये आजका सत्संग यहींपर समाप्त हो गया । फिर सबने मिलकर बड़े प्रेमसे गाया—

श्रीमन्नारायण नारायण नारायण ।
भज मन नारायण नारायण नारायण ॥
बद्री नारायण नारायण नारायण ।
कह मन नारायण नारायण नारायण ॥
बोलो श्रीगङ्गा मैयाकी जय ।
बोलो सनातन धर्मकी जय ॥

द्विभुज श्रीकृष्ण

(लेखक—पं० श्रीवासुदेवकृष्णजी चतुर्वेदी, एम्० ए०, सा० रत्न)

भगवान् श्रीकृष्ण ही प्रमेय हैं । यद्यपि अन्यावतार भी भगवान्‌के हैं, किंतु यशोदास्तनन्धय श्रीकृष्णकी ही मुख्यता है । यह श्रीमद्भागवतके अध्ययनद्वारा स्पष्ट है ।

प्रपञ्चसे परे श्रीकृष्ण ही स्वयं बैकुण्ठधाममें स्वयंरूप, तदेकात्मरूप और आवेश—इन तीन रूपोंसे विलास करते हैं ।

यद्यपि श्रुतियोंमें परमात्माके एकत्वकी ओर संकेत है । यथा—'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म' श्रीमद्भागवतमें भी 'वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्' (भा० १ । २ । ११) में उनके एकत्वकी प्रमुखता है । तब उन्हींके लिये बहुवचनका प्रयोग असङ्गत है । 'कृष्णस्य तत्त्वरूपाणि' (लघुभागवतामृत १०) में स्वरूपवर्णन बहुवचनमें है । उसका परिहार करते हुए लिखा गया है कि एकत्वका त्याग किये बिना ही 'अचिन्त्य' शक्तिके द्वारा अनेक नाम-रूपोंका प्राकट्य है । अतः बहुवचनकी उक्ति भी असङ्गत नहीं है । उक्त परिहार-द्वारा 'एकमेवाद्वयं' श्रुतिका समन्वय भी हुआ है । अथर्व-वेदमें एक श्रुतिमें इस ओर स्पष्ट संकेत है—

एको वशी सर्वगः कृष्ण ईड्य
एकोऽपि सन् बहुधा यो विभाति ।
(गो० ता० पू० ३)

विष्णुपुराणमें—'एकानेकस्वरूपाय' तथा भागवतमें—'बहुमूर्त्येकमूर्तिकम्' (१० । ४० । ७) में उनके अनेक विग्रहत्वकी पुष्टि भी उपलब्ध है । सारांश यह है कि अचिन्त्य शक्तिसे उनका बहुत्व होना सर्वथा सिद्ध है ।

प्रपञ्चातीत धाम गोकुलादि हैं ।

भगवान् श्रीकृष्णके तीन रूपोंमें प्रथम रूपका नाम—

(१) स्वयंरूप है—स्वयंरूपका लक्षण यह है—

'अनन्यापेक्षि यद्रूपं स्वयं' रूपः स उच्यते ।'

'स्वयंरूप' वह है, जिसे अन्यसे व्यक्त होनेकी अपेक्षा नहीं है । तपस्वीजन स्वयं 'दास' कहे जाते हैं—'स्वयं दासास्तपस्विनः' किंतु तपस्वी दास्य अन्यापेक्षी नहीं है । उसी प्रकार भगवान् भी अपेक्षारहित हैं । श्रीमद्भागवतमें 'स्वयंरूप' का निर्देश दशमस्कन्धमें उपलब्ध है—'गोप्यस्तपः किमचरन्' (१० । ४४ । १४) श्लोकमें 'अनन्यसिद्धम्' का प्रयोग किया गया है । ब्रह्मसंहितामें भी यह स्पष्ट है—

ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः ।
अनादिरादिर्गोविन्दः सर्वकारणकारणम् ॥

उक्त श्लोकमें समागत 'कृष्ण' शब्द रूढ़ है और वह यशोदास्तनन्धयका अर्थ व्यक्त करता है । यद्यपि यहाँ योगार्थ भी है तथापि 'रूढिर्योगमपहरति' इस न्यायसे, तथा—

लब्धात्मिका सती रूढिर्भवेद् योगापहारिणी ।
कल्पनीयां तु लभते नात्मानं योगबाधतः ॥

इस भट्टवाक्यसे रूढ़िकी बलवत्ता सिद्ध है । नामकौमुदी-कारका कथन सुस्पष्ट है—

कृष्णशब्दस्य तमालश्यामलत्विषियशोदास्तनन्धये परब्रह्मणि रूढिः ।

उक्त प्रमाणद्वारा योगार्थका खण्डन किया गया है । कारिकामें समागत परम-ईश्वर विशेषणद्वयसे भी कृष्णका अनन्यापेक्षि-स्वरूप स्पष्ट है । इससे अपने विलासादि अंशोंसे विलक्षणत्व भी सिद्ध है । वह कृष्ण सच्चिदानन्दविग्रह है । इस शब्दसे अद्वैतवादी उसका चित्स्वरूप सिद्ध करते हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

किंतु यदि इसका निम्नविग्रह होता है तो 'अतिरम्याङ्गविग्रह' अर्थ निकलता है। यथा—

चिद्रूपो य आनन्दस्तन्मूर्तो विग्रह इति कर्मधारयः।

इसका अर्थ है 'मूर्त स्वप्रकाशानन्द' मुक्त जीवोंसे विलक्षणता भी इसके द्वारा स्पष्ट है। कारिकामें कृष्णके लिये 'गोविन्द' विशेषण है। इस शब्दसे उनकी गोपालनलीला स्पष्ट है। गोपालनसे हेयत्व नहीं समझना चाहिये; क्योंकि गायोंके द्वारा ही यज्ञ प्रवृत्त हुए, देवगण एवं वेद, एवं षडङ्ग गायोंद्वारा ही पल्लवित हुए—

गोभ्यो यज्ञाः प्रवर्तन्ते गोभ्यो देवाः समुत्थिताः।
गोभिर्वेदाः समुद्गीर्णाः सषडङ्गपदक्रमाः॥

यह गोसूक्तमें स्पष्ट है। वह सर्वकारणकारण भी है;

कारणं करणाधिपाधिपो
न चास्य कश्चिज्जनिता न चाधिपः।
(श्वेताश्वतर० ६। ९)

व्रजवासीगण एवं यादव उन्हें अपना ही समझते हैं। अतः श्रीकृष्ण 'स्वयंरूप' हैं। यह सिद्ध है।

(२) तदेकात्मरूप

जिसका रूप स्वरूप करके स्वयंरूपमें एकता होनेपर भी आकारादिद्वारा अन्यादृश होकर प्रकाशित होता है, उसको तदेकात्मरूप कहते हैं। यथा—

यद्रूपं तदभेदेन स्वरूपेण विराजते।
आकृत्यादिभिरन्यादृक् स तदेकात्मरूपकः॥
(लघुभागवता० १४)

इसके भी दो भेद हैं—विलास और स्वांश, विलासका लक्षण है—

स्वरूपमन्याकारं यत्तस्य भाति विलासतः।
प्रायेणात्मसमं शक्त्या स विलासो निगद्यते॥

विलासके द्वारा ही उसका स्वरूप अन्याकार-जैसा शोभित होता है। नारायण और वासुदेवमें प्रायः एकरूपता ही मानी जाती है; क्योंकि दोनों ही चतुर्भुज हैं। दोनोंका वर्ण श्याम है, आकृतिसाम्य भी है तथापि दोनोंमें भेद है। यह भेद सेव्य-सेवककी भाँति है जैसा कि श्रीराम और भरतमें था। जिस प्रकार गोविन्दके विलास परम व्योमाधिपति नारायण हैं, उसी प्रकार परम व्योमनाथके विलास आदिव्यूह वासुदेव हैं। परम व्योमनाथ और वासुदेव इन दोनोंमें आकारोंमें समानता होते हुए भी मूल देवता और आवरणभेदसे पृथक्ता है।

स्वांश—स्वांशका लक्षण—जो विलासशक्तिसे भी न्यून-शक्ति प्रकाशित करता है, वह स्वांश है—

तादृशो न्यूनशक्तिं यो व्यनक्ति स्वांश ईरितः।
सङ्कर्षणादिर्मत्स्यादिर्यथा तत्तत् स्वधामसु॥

अपने-अपने धाममें सङ्कर्षणादि पुरुषावतार और मत्स्यादि लीलावतारगण हैं।

(३) आवेश

जिन महान् जीवोंमें नारायण आविष्ट होते हैं, वे जीव आवेश कहे जाते हैं। यह आवेश ग्रहाविष्टके समान है। यह आवेश दो प्रकारका होता है। जिन महान् जीवोंमें उनसे न्यून अल्प शक्तिका आवेश होता है वे अपनेको ईश्वर-परतन्त्र कहकर अभिमान करते हैं। इस श्रेणीमें नारद एवं सनत्कुमार प्रभृतिके नाम लिखे जा सकते हैं।

और जिन महान् जीवोंमें अधिक शक्तिका आवेश होता है वह ऐसा अभिमान करते हैं कि हमीं भगवान् हैं। इस श्रेणीमें ऋषभदेवादि हैं। आवेशका लक्षण लघुभागवतामृतके अनुसार यह है—

ज्ञानशक्त्यादिकलया यत्राविष्टो जनार्दनः।
त आवेशा निगद्यन्ते जीवा एव महत्तमाः॥
वैकुण्ठेऽपि यथा शेषो नारदः सनकादयः।
अक्रूरदृष्टास्ते चामी दशमे परिकीर्तिताः॥

उक्त श्लोकोंमें यह लिखा है कि वैकुण्ठमें शेष हैं, किंतु शेष तो जलमें शय्यारूप हैं। उक्त दोनों शेष पृथक्-पृथक् हैं। उक्त तीन भेदोंके अतिरिक्त कृष्णके 'प्रकाश' तत्त्वका ज्ञान भी आवश्यक है। प्रकाश क्या है—अकारादिकी समानता रहकर एक रूपका एक ही समयमें अनेक स्थानोंमें आविर्भाव होना ही प्रकाश कहलाता है—

अनेकत्र प्रकटता रूपस्यैकस्य यैकदा।
सर्वथा तत्स्वरूपैव स प्रकाश इतीर्यते॥
द्वारवत्यां यथा कृष्णः प्रत्यक्षं प्रतिमन्दिरम्।
चित्रं बतैतद् इत्यादिप्रमाणेन स सेत्स्यति॥

यह 'प्रकाश' उक्त तीनों भेदोंमें है और न उनसे पृथक् ही है। उक्त तत्त्वद्वारा भगवान् कृष्णका एक समयमें चन्द्रावली, राधिका और रुक्मिणी-सत्यभामादिके गृहमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होना निर्बाध सिद्ध किया जा सकता है। श्रीमद्भागवतमें यह प्रकाशतत्त्व नारदने परीक्षित् भी किया है। जिस समय सोलह सहस्र रानियोंके साथ श्रीकृष्णने एक साथ पाणिग्रहण किया तो नारदने बड़ा आश्चर्य प्रकट किया था—

चित्रं बतैतदेकेन वपुषा युगपत् पृथक्।
गृहेषु द्व्यष्टसाहस्रं स्त्रिय एक उदावहत्॥
(भा० १० । ६९ । २)

इस 'प्रकाश-तत्त्व'के माननेसे श्रीकृष्णके द्विभुज और चतुर्भुजकी शङ्काका समाधान भी हो जाता है।

भागवतजीके परिशीलनसे ज्ञात होता है कि भगवान् कभी दो, कभी चतुर्भुज हो जाते थे। पर सर्वदा द्विभुज ही रहते थे। यहाँ यह शङ्का होती है कि वस्तुतः वे चतुर्भुज थे या द्विभुज। प्रकाशतत्त्वद्वारा द्विभुज ही कभी चतुर्भुज बन जाते थे। यह सिद्ध किया जा सकता है। अतः शङ्का निर्मूल है।

एक बार भगवान् रुक्मिणीसे परिहास कर रहे थे। उन्होंने रुक्मिणीसे कहा कि 'राजपुत्री ! तुमने मुझे वरण करके अच्छा नहीं किया; क्योंकि मुझे न राजगद्दीका अधिकार है, न शासनका ही और न राजाओंमें बैठनेका ही। साथ ही मैं तो क्षत्रियोचित मार्गका परित्याग करके भयवश मथुरासे द्वारकामें आ गया हूँ। तुम्हारी भावना भी जरासंधादि राजाओंमें लिप्त रही होगी, तो उचित यह है कि तुम अब भी मेरा परित्याग करके उनके समीप स्वतन्त्रतापूर्वक चली जाओ। इतना सुनते ही रुक्मिणी मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर शय्यासे गिर पड़ीं। तब भगवान् श्रीकृष्णने चतुर्भुजरूपसे उन्हें उठा लिया था। यह कथा दशम स्कन्धमें स्पष्ट है किंतु इस रूपमें भी उनका पूर्व कृष्णसे भेद नहीं है।

क्वचिच्चतुर्भुजत्वेऽपि न त्यजेत् कृष्णरूपताम्।
अतः प्रकाश एव स्यात्तस्यासौ द्विभुजस्य च॥

उक्त श्लोकमें 'रूप' शब्दका अर्थ स्वभाव भी है; क्योंकि मेदिनी कोषमें 'रूपस्वभावे सौन्दर्ये' ऐसा लिखा है। अतः श्रीकृष्णका यशोदास्तनन्धयत्व स्वभाव कभी दूर नहीं होता।

'द्विभुज' रूपसे चतुर्भुजरूप श्रेष्ठ है। यह कल्पना भी ठीक नहीं है। गोपालतापिनीमें द्विभुज ही उपास्य लिखा है—

सत्पुण्डरीकनयनं मेघाभं वैद्युताम्बरम्।
द्विभुजं मौनमुद्राढ्यं वनमालिनमीश्वरम्॥
(गोपा० पू० १०)

आनन्दसंहितामें तीनों प्रकारकी उपासना भी लिखी है एवं अष्टभुजको 'स्थूल' चतुर्भुजको 'सूक्ष्म' द्विभुजको 'परम' कहा है—

स्थूलमष्टभुजं प्रोक्तं सूक्ष्मं चैव चतुर्भुजम्।
परं तु द्विभुजं प्रोक्तं तस्मादेतत् त्रयं यजेत्॥

यह उक्ति वस्तुभेदके अभावसे कही है, किंतु द्विभुज ही वस्तुतः उपास्य हैं। यह आथर्वणी श्रुति भी निर्देश करती है—

द्विभुजमेवेदमुपास्यसृष्टत्वं ब्रह्मणा लब्धम्।
अतः द्विभुज श्रीकृष्ण ही सर्वश्रेष्ठ उपास्य हैं।

श्रीकृष्ण-पदारविन्दमें मन लगानेकी महिमा

सकृन्मनः कृष्णपदारविन्दयो-
निवेशितं तद्गुणरागि यैरिह।
न ते यमं पाशभृतश्च तद्भटान्
स्वप्नेऽपि पश्यन्ति हि चीर्णनिष्कृताः॥
(श्रीमद्भागवत ६ । १ । १९)

जिन्होंने एक बार भी श्रीकृष्णचन्द्रके चरण-कमलोंमें, उनके गुणोंमें अनुराग रखनेवाला अपना मन लगा दिया है, वे निष्पाप हो जानेसे फिर यमराज अथवा पाश लिये हुए यमदूतोंको स्वप्नमें भी नहीं देखते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीरामचरितमानसमें नैतिकता

(लेखक—श्रीराजेन्द्रप्रसादजी वर्मा, एम्० ए०)

जीवनमें नैतिकताका बड़ा महत्त्व है । संसारमें जन्म ग्रहण कर हमारा किसके प्रति क्या कर्तव्य है; हमें परस्पर कैसा व्यवहार करना चाहिये; परिवार, समाज तथा विश्वमें किस स्थान, समय एवं अवसरपर कैसा आचरण करना चाहिये, यह जाने बिना हम न तो कहीं आदरके पात्र हो सकते हैं, न सुखपूर्वक जीवन-निर्वाह कर सकते हैं और न आत्मतोष ही प्राप्त कर सकते हैं । ये सभी बातें हमारे नैतिक आचरणसे सम्बन्ध रखती हैं । गोस्वामी तुलसीदासजीके रामचरितमानसमें इस बातकी जैसी व्यवहार्य शिक्षा मिलती है, वह अनुपम है ।

नैतिकतापर कुछ कहनेसे पूर्व हमें इसके कुछ पर्यायवाची शब्दोंसे परिचित होना विषयको समझनेमें सहायक होगा । सच्चरित्रता, सदाचारिता, सरलता, शालीनता, निरभिमानता आदि शब्द थोड़े अर्थभेदसे नैतिकताके ही द्योतक हैं । रामचरितमानसके प्रायः सभी सुपात्र एवं कुपात्र विधि-निषेधके रूपमें अपने व्यवहार एवं आचरणसे इन्हीं बातोंकी ओर संकेत करते हैं ।

१. नैतिकता—एक निरभिमान भाव

विश्वके अद्वितीय ग्रन्थ अपने 'मानस'की भूमिकामें कवि देव, पितर, गन्धर्व, नर, नाग, खग एवं जड-चेतन सभीकी वन्दना करता है तथा सभीका आनुकूल्य प्राप्त करना चाहता है; इससे ज्ञात होता है कि कविके मनमें किसीके प्रति दुर्भाव नहीं है । वे सभी जड-चेतन सज्जन एवं दुर्जन इष्टदेव रामके बनाये हैं—

जड़ चेतन गुन दोषमय बिस्व कीन्ह करतार ।

तथा—

सीय राम मय सब जग जानी । करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी ॥

अपने आराध्य देवकी बनायी किसी वस्तुकी निन्दा करना प्रकारान्तरसे उसीकी निन्दा करना है । इस बातकी ओर पूर्ण सतर्क रहना कविके अन्तर्मनकी शालीनताका द्योतक है । इसीके साथ जब वे श्रेष्ठतम वस्तुओंमें अपने प्रभु रामकी श्रेष्ठता एवं भूत, वर्तमान एवं भविष्यत्‌की निकृष्टतम वस्तुओंमें अपनी गणना करते हैं—

जे जनमे कलिकाल कराला । करतब बायस बेष मराला ॥
चलत कुपंथ बेद मग छाँड़े । कपट कलेवर कलिमल भाँड़े ॥
बंचक भगत कहाइ राम के । किंकर कंचन कोह काम के ॥
तिन्ह महँ प्रथम रेख जग मोरी । धींग धरम ध्वज धंधक धोरी ॥

अपने पूज्यके प्रति आदरभाव एवं अपने प्रति निरभिमानता । अपने स्वामीका किसी भी रूपमें कृपाभाजन बननेके लिये उसके सम्मुख निरभिमानी रहना जगत्‌का एक व्यावहारिक सत्य है ।

२. नैतिकता—लौकिक दृष्टिसे मानापमान सापेक्ष

जब हमारा किसीके साथ प्रबल विरोध हो जाय तब किसी शुभावसरपर घनिष्ठ सम्बन्धीके यहाँ भी बिना बुलाये जाना बहुत भारी गलती है; क्योंकि ऐसे अवसरपर हमें यदि आतिथेयकी ओरसे उपेक्षा मिलती है तो यह बड़ा अपमान है । यही विचारकर शंकरजी सतीजीके मनोभावोंको समझते हुए कहते हैं—

कहेहु नीक मोरेहुँ मन भावा । यह अनुचित नहिं नेवत पठावा ॥

समाजमें लौकिक व्यवहारके लिये हमें कभी-कभी तुलनात्मक रूपमें भी रहना पड़ता है । उस दृष्टिसे मानापमानका विचार अत्याज्य है ।

३. नैतिकता—अधिकार-साम्य

गत सैकड़ों-हजारों वर्षोंसे हिंदू-समाजमें एक बड़ी गलत बात देखनेको मिलती है कि पतिकी मृत्युके बाद निःसंतान युवती विधवाको मृत्युपर्यन्त कठोर जीवन बिताना पड़ता है । जब कि पाँच-छः बच्चोंके पिता एवं पर्याप्त वार्द्धक्य प्राप्त हो जानेपर भी विधुरको बहुत छोटी उम्रकी कन्यासे पुनः विवाह करनेका समाजप्रदत्त अधिकार है । गोस्वामीजीने इसीकी ओर निषेधात्मक संकेत करते हुए 'मानस' में लिखा है—

जब तें सतीं जाइ तनु त्यागा । तब तें सिव मन भयउ बिरागा ॥

और—

जपहिं सदा रघुनायक नामा ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपर्युक्त पंक्तियोंमें गोस्वामीजीने विधुरके जिस कर्तव्यकी ओर संकेत किया है, वह विशेष ध्यान देने योग्य है।

४. नैतिकता—शालीनता

आजके युगमें अशिष्टताकी कुछ ऐसी हवा चली है कि स्वयंको बड़े कुलीन, सभ्य एवं शिक्षित समझनेवाले बच्चोंको अपने शंका-समाधानके लिये जब कोई प्रश्न करना होता है तब उनके बोलनेका लहजा कुछ ऐसा होता है मानो न्यायालयमें दो वकीलोंके मध्य तर्क-युद्ध हो रहा हो। यह भारी असभ्यता है। बड़ोंके सम्मुख किस प्रकार अपनी शंका प्रकट करनी चाहिये, इसकी ओर संकेत करते हुए गोस्वामीजी पार्वतीजीके शब्दोंमें कहते हैं—

जौं अनीह ब्यापक बिभु कोऊ। कहहु बुझाइ नाथ मोहि सोऊ॥
अग्य जानि रिस उर जनि धरहू। जेहि बिधि मोह मिटै सोइ करहू॥

५. नैतिकता—एक सामाजिक अनुशासन

पूज्य व्यक्तियोंके अपने घर आनेपर अपने भाग्यको सराहना, उन्हें कष्ट हुआ होगा, इसके लिये क्षमा माँगना एवं आगमनका कारण पूछनेकी विधिका भी एक उदाहरण देखिये। राजा दशरथके पास जब विश्वामित्रजी आते हैं, तब हर्षित होकर अयोध्यानरेश पूछते हैं—

तब मन हरषि बचन कह राऊ। मुनि अस कृपा न कीन्हिहु काऊ॥
केहि कारन आगमन तुम्हारा। कहहु सो करत न लावउँ बारा॥

इसी प्रकार 'मानस'में जितने भी सुपात्र हैं, वे बड़ोंसे विदा होते समय उनके चरणोंमें नतमस्तक होकर प्रणाम करना इसी प्रकार नहीं भूलते जिस प्रकार सेनामें कोई 'जूनियर' अपने 'सीनियर' को एड़ी ठोककर 'सैल्यूट' देना नहीं भूलता। इस नैतिक अनुशासनका गोस्वामीजीने 'मानस' में बड़ी बारीकीसे ध्यान रक्खा है। विद्यार्थियोंको, जो किसी भी शिक्षण-संस्थामें विद्योपार्जन करते हैं, इस बातसे शिक्षा मिलती है कि पाठशालामें आने एवं जानेपर अपने गुरुजनोंको हाथ जोड़कर प्रणाम अवश्य करें। नैतिकताके साथ संस्थाके अनुशासनकी दृष्टिसे भी यह एक अत्यन्त आवश्यक नियम है। इसकी उपेक्षा करना न केवल नैतिकताका पतन है अपितु अनुशासनहीनता भी है।

६. नैतिकता—एक सापेक्षिक गुण

यह भी समझनेकी बात है कि नैतिकता एक सापेक्षिक गुण है। केवल छोटोंका ही बड़ोंके प्रति कर्तव्य है, ऐसी बात नहीं। बड़ोंका भी छोटोंके प्रति कर्तव्य है। जिस प्रकार वे ही कनिष्ठ स्नेहके पात्र हैं जो पूज्यजनोंको समुचित सम्मान एवं आदर देते हैं। इसी प्रकार वे ही बड़े आदरके पात्र हैं जो छोटोंको समुचित स्नेह प्रदान करते हैं। प्राचीन कालमें राजा ऋषि-मुनियोंका आदर करते थे तो ऋषि-मुनि भी निरभिमान भावसे पात्रके अनुसार उसका समादर करते थे।

देखिये, यद्यपि राम-लक्ष्मण वयमें विश्वामित्रजीसे कितने छोटे हैं तथापि वे राजपुत्र हैं, अयोध्याके भावी नरेश हैं, इसलिये मुनिजी भी आश्रमके अन्य तपस्वियोंसहित—

उठे सकल जब रघुपति आए। बिस्वामित्र निकट बैठाए॥

७. संकोचपूर्वक पूछना

बड़ोंके सम्मुख भटर-भटर बोलते रहना असभ्यता है। राम और लक्ष्मण इस बातको कितना समझते हैं, यह बात वर्णनशक्तिके पूर्णतः बाहर है। जब उन्हें कुछ पूछना, बोलना अथवा आज्ञा लेनी होती है तब—

परम बिनीत सकुचि मुसुकाई। बोले गुर अनुसासन पाई॥
नाथ लखनु पुर देखन चहहीं। प्रभु सकोच डर प्रगट न कहहीं॥

८. नैतिकता—नारीसुलभ लज्जा

भारतीय नारीकी नारीसुलभ लज्जा एवं संकोचकी पराकाष्ठा इसी बातसे समझी जा सकती है कि वह अपने इष्टदेवसे भी अपने विवाहसम्बन्धी मनोरथको प्रकट रूपमें नहीं कहती। सीताके रूपमें भारतीय नारीके लज्जा एवं संकोचका सजीव चित्रण देखिये। रामके रूप, शरीर-सौष्ठव एवं पौरुषपर मोहित होनेके पश्चात् उन्हें वररूपमें प्राप्त करनेके हेतु सीता माता भवानीकी पूजा करते समय केवल इतना ही कहती हैं—

मोर मनोरथ जानहु नीकें। बसहु सदा उर पुर सबही कें॥

अर्थात् हे भवानी, माता, जगदम्बा! आप मेरे मनोरथको तो जानती ही हैं। मैं प्रकट रूपमें आपसे कैसे और क्या कहूँ? क्योंकि आप सभीके हृदयदेशमें सदा निवास करती हैं। उपर्युक्त पंक्तियोंमें सीताकी लज्जाके रूपमें भारतीय नारीकी नैतिकता अपनी पराकाष्ठापर पहुँच गयी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय परिवारमें यह लज्जा केवल नारीके ही भागमें आयी हो, ऐसी बात नहीं है। पुरुषके लिये भी अपने माता-पिताके सम्मुख अपनी पत्नीसे बात करना भारतीय शालीनताके विरुद्ध है। इसीलिये वनगमनके समय माता कौसल्याके सम्मुख जगत्पिता राम सीतासे—

मातु समीप कहत सकुचाहीं।...........॥

जगत्प्रभु राम कितने संकोची हैं !!

कौसल्याजी सीताजीको अपने पास रखना चाहती हैं। सीता धर्मसंकटमें पड़ गयी हैं। एक ओर सासुकी विनती, दूसरी ओर पतिके प्रति प्रेमासक्त आकर्षण। सीता बोलें तो किस प्रकार बोलें और क्या बोलें। फिर दोनों ही ओर विरोधी कर्तव्योंका आकर्षण ! परंतु जगज्जननी मातेश्वरी सीता वाणीकी अद्वितीया अधिष्ठातृ देवी ही हैं—

लागि सासु पग कह कर जोरी। छमबि देबि बड़ि अबिनय मोरी॥

....

मैं पुनि समुझि दीखि मन माहीं। पिय बियोग सम दुखु जग नाहीं॥

इस प्रकार यदि 'मानस' का नैतिक दृष्टिसे परिशीलन किया जाय तो तुलसीके ही शब्दोंमें कहना होगा—

बाढ़इ कथा पार नहिं लहऊँ॥

मेरे विचारसे नैतिकता किसी भी सामाजिकका वह अनिवार्य धर्म है जिसका उसे अनिवार्यतः ध्यानपूर्वक पालन करना चाहिये। इसके बिना हमारी शिक्षा व्यर्थ है। गोस्वामी तुलसीदासविरचित श्रीरामचरितमानस यह शिक्षा देनेमें पूर्ण समर्थ है।

न कर्म लिप्यते नरे

(लेखक—श्रीसुरेशचन्द्रजी वेदालंकार एम्० ए०, एल्० टी०)

ईशोपनिषद् या गीताकी शिक्षाका सार है—कर्मफल त्याग या निष्काम कर्म। मनुस्मृतिमें मनु महाराजने लिखा है-

अकामस्य क्रिया काचिद् दृश्यते नेह कर्हिचित्।
यद् यदि कुरुते किंचित् तत्तत्कामस्य चेष्टितम्॥

अर्थात् यदि कोई कहे कि मैं निरिच्छ और निष्काम हूँ या हो जाऊँ तो वह कभी नहीं हो सकता; क्योंकि सब काम अर्थात् यज्ञ, सत्यभाषणादि व्रत, यम-नियमरूपी धर्म आदि संकल्पसे ही बनते हैं। अब प्रश्न उपस्थित होता है कि जब ईशोपनिषद्के दूसरे मन्त्रमें निष्काम कर्मका उपदेश है और मनुस्मृतिमें बिना कामनाकी क्रिया असम्भव मानी गयी है तो ये दोनों बातें विपरीत हैं तो हम किसमें विश्वास करें ? परंतु जब हम गम्भीरतासे विचार करते हैं तो हमें यह विपरीतता प्रतीत नहीं होती। इस संसारमें दो तरहके मनुष्य होते हैं—एक तो वे जो कर्म करते हैं और कहते हैं कि हम फल अवश्य चखेंगे, वह हमारा अधिकार है। दूसरे प्रकारके वे आदमी हैं जो कहते हैं यदि हमें फल चखनेको नहीं मिलता तो हम कर्म ही न करेंगे। परंतु, हमारी बिना फलके क्रिया नहीं हो सकती। इस विषयमें यह विचार है कि अपने सम्मुख यदि हम कोई संकल्प बिना रखे कार्य करेंगे तो हमारा कार्य नियमित और शृङ्खलाबद्धरूपसे नहीं चल सकेगा। अतः अपने सामने संकल्प रखकर तो कार्य करना ही चाहिये; परंतु कार्य करते हुए उस कार्यमें लिप्त न होना चाहिये। यही निष्काम कर्म है। यही उपनिषद्के इस अंशका मतलब है **'एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे'** अर्थात् इस प्रकार कर्म करनेसे कर्म मनुष्यको बाँधनेवाला नहीं होता है। गीताने भी इसी भावका प्रतिपादन किया है। ये दोनों कहते हैं 'कर्म तो अवश्य करो, पर फलमें अपना अधिकार मत मानो' जो कर्म करता है उसे फलका अधिकार अवश्य है परंतु हम उस अधिकारको स्वयं छोड़ दें। यही निष्काम कर्म है।

प्राचीन शास्त्रोंमें मुक्तिके साधनोंमें 'षट्क सम्पत्ति' का उल्लेख है। ये 'षट्क सम्पत्ति' छः प्रकारके कर्म हैं। वे कर्म हैं—१. शम, २. दम, ३. उपरति अर्थात् दुष्ट कर्म करनेवालोंसे दूर रहना, ४. तितिक्षा, चाहे निन्दा, स्तुति, हानि-लाभ कितना ही क्यों न हो परंतु हर्ष और शोकको छोड़कर मुक्तिके साधनोंमें सदा लगे रहना, ५. श्रद्धा अर्थात् जो वेदादि सत्यशास्त्र और उनके बोधसे पूर्ण आप्त विद्वान्, सत्योपदेष्टा महात्मा विद्वानोंके वचनोंपर विश्वास करना. और ६. समाधान अर्थात् चित्तकी एकाग्रतासे मुक्तिकी ओर बढ़ा जा सकता है। ये छः प्रकारके कर्म हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैशेषिक दर्शनमें कर्म कौन-से हैं इसकी व्याख्या करते हुए लिखा है—'**उत्क्षेपणमवक्षेपणमाकुञ्चनं प्रसरणं गमनमिति कर्माणि**' अर्थात् उत्क्षेपण—ऊपरको चेष्टा करना, अवक्षेपण—नीचेको चेष्टा करना, आकुञ्चन—संकोच करना, प्रसरण—फैलाना, गमन—आना-जाना, घूमना आदि कर्म कहलाते हैं। इनमेंसे 'उत्क्षेपणं' ऊपरकी ओर उठानेवाले कर्म आग्नेय-शक्तिप्रधान व्यक्ति करते हैं। गीतामें 'कर्म' शब्दका प्रयोग 'स्वधर्म' में व्यवहृत हुआ है। आग्नेय-शक्तिप्रधान व्यक्ति सात्त्विक होते हैं और इसीलिये वे अपने कर्मके फलको स्वयं छोड़ देते हैं। रजोगुणप्रधान व्यक्ति कहता है 'लूँगा तो फलके सहित ही' और तमोगुणी कहता है 'छोड़ूँगा तो कर्म-समेत ही।' यही समय है कि 'सत्त्वगुणी व्यक्ति फलाशा मत रक्खो' कहते हुए भी कर्मको उत्तमता और दक्षतासे करनेको कहता है। जो व्यक्ति फलाशाकी ओर सोचता रहता है उसका कार्यकी ओर उतना ध्यान नहीं रहता। फलसम्बन्धी स्वप्न-चिन्तनमें उसका समय और शक्ति लगती है। परंतु, फलेच्छारहित पुरुषका तो प्रत्येक क्षण और सारी शक्ति कर्ममें ही लगी रहेगी। नदीको छुट्टी नहीं, हवाको विश्राम नहीं, सूर्य सदा चलता रहता है, इस प्रकार निष्काम कर्म-कर्ता भी अपने संकल्पकी ओर बढ़ता जाता है। उसमें उसे सफलता मिले तो ठीक, अन्यथा वह उस कार्यको करता ही रहेगा।

कर्मको उत्कृष्ट रूपमें करनेके लिये फलका सतत चिन्तन छोड़कर कर्ममें रमनेसे फलके चिन्तनमें लगनेवाले समयकी बचत होती है। कमलके फूलके विषयमें रामकृष्ण परमहंस कहते थे 'कमल विकास चाहता है। रात-दिन कीचड़में पैर गड़ाकर वह इसके लिये प्रयत्न करता है। वह फलको छोड़कर प्रत्येक ऋतुमें प्रयत्न करता रहता है। लेकिन, एक दिन आता है जब कि वह कमल अच्छी तरह खिलता है, उसे सूर्यकी किरण चूमती है, हवा झुलाती है, गीत सुनाती है। उसे नहीं मालूम होता कि वह परागसे, सुगन्धसे भर रहा है। परंतु, अन्तमें एक दिन भ्रमर आकर उसकी परिक्रमा करता है और कहता है, 'पवित्र कमल! तू खिल चुका है। तुझमें कितनी सुगन्ध है, तेरा कैसा सुन्दर रङ्ग है, तुझमें कितना मीठा रस है।' यही हाल मनुष्योंका भी है जो अपने अंदर संकल्प या कामना या उद्देश्य रखकर कार्य प्रारम्भ करते हैं, वे विकसित होते हैं, आगे बढ़ते हैं, अपने कार्य और यशके विस्तारका उन्हें ध्यान नहीं होता और एक दिन समाजरूपी भ्रमर उनका गुणगान करता है। दूर जानेकी आवश्यकता नहीं; समाजके अन्याय, अत्याचार अन्ध-विश्वासके कीचड़में पैदा होकर, अपने मनमें संकल्प धारण-कर और फलकी आशासे पृथक् होकर स्वामी दयानन्द और स्वामी विवेकानन्द आदिने जो विकास पाया और समाजरूपी भ्रमरने जो गुणगान किया वह निष्काम कर्मका ही उदाहरण है।

हमें अपने संकल्पको पूरा करनेके लिये उसमें अपनेको लगा देना ही निष्कामिताकी कुंजी है। महात्मा गांधी हरिजनोंकी सेवाका स्वप्न लेते थे, स्वामी रामतीर्थ स्वप्नमें कठिन समस्याओंका समाधान करते थे। अर्जुनके विषयमें कहा जाता है कि 'श्रीकृष्णके अर्जुनके प्रति प्रेमको देखकर उद्धवको ईर्ष्या होने लगी। कृष्णको जब यह पता लगा तो उन्होंने उसे अर्जुनके पास भेजा। अर्जुन सो रहे थे और उनके रोम-रोमसे कृष्ण-कृष्णकी ध्वनि आ रही थी।' यह है संकल्पकी महिमा, यह है '**अकामस्य क्रिया काचिद् दृश्यते नेह कर्हिचित्**' की भावना!

इस निष्काम कर्मसे समझनेके लिये गीताके चौथे अध्याय-पर दृष्टिपात कीजिये। वहाँ कर्म, विकर्म और अकर्म—ये तीन महत्त्वपूर्ण शब्द आये हैं। गीतामें 'कर्म' शब्द 'स्वधर्म' के रूपमें व्यवहृत हुआ है। हमारा खाना, पीना इत्यादि कर्म है; परंतु गीताका कर्म, स्वधर्माचरण है। यह स्वधर्माचरण उद्देश्ययुक्त कर्म है। परंतु कर्मको करके निष्कामता प्राप्त करनेके लिये काम और क्रोधको जीतकर चित्तको शुद्ध करना पड़ता है और चित्तके संशोधनके लिये जो-जो कर्म किये जायँ उन्हें गीता 'विकर्म' कहती है। 'कर्म' का अर्थ है स्वधर्माचरणकी बाहरी स्थूल क्रिया। इस बाहरी क्रियामें चित्तको लगाना 'विकर्म' है। तुलसीदासने रामायण लिखने-का कर्म किया पर जब उसके साथ उनके चित्तका संयोग हो गया तो यह कर्म उन्हें कर्म नहीं लगा, परंतु वे अकर्म या निष्काम कर्मकी स्थितिमें आ गये और उन्होंने इसे 'स्वान्तःसुखाय' रचनाका उद्देश्य माना।

इस प्रकार कर्मके साथ विकर्मका मेल होनेपर वह कर्म हमें कर्म नहीं प्रतीत होगा और फिर उसमें असफलता भी मिली तो वह असफलता अखरेगी नहीं। जब वह असफलता अखरेगी नहीं तो उस दशामें न क्रोध उत्पन्न होगा और न बुद्धिकी विकृति। बुद्धिकी विकृति या नाश न होनेसे हम अपना सर्वस्व नष्ट न करेंगे। कल्पना कीजिये, किसी रोगीकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमने सेवा-शुश्रूषा की; परंतु उस सेवा-कर्मके साथ मनमें कोमल दयाभाव न हो तो वह सत्य सेवा नीरस मालूम होगी और उससे जी ऊब जायगा । वह हमें भाररूप प्रतीत होगी अर्थात् मनका सहयोग न होनेसे कर्म और विकर्मका मेल न होगा और हमें अहंकार उत्पन्न होगा तथा उस दशामें कर्म करते हुए भी हम उसके बदलेकी भावनासे भर जायँगे । जिस प्रकार तेल और बत्तीके साथ ज्योतिका मेल होनेसे प्रकाशकी उत्पत्ति होती है उसी प्रकार कर्मके साथ विकर्मका मिश्रण होनेसे अकर्मकी उत्पत्ति होती है । उस दशामें हमें ऐसा नहीं प्रतीत होता कि कोई कर्म किया है । उस दशामें हम करके भी अकर्ता रहते हैं । इसी बातको ध्यानमें रखकर गीतामें श्रीकृष्ण महाराजने स्पष्ट घोषणा की है कि **'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।'** हे अर्जुन ! तेरा कर्मका ही अधिकार है फलका अधिकार तुझे नहीं ।

इस नियमका पालन करते हुए जो व्यक्ति कर्मके मार्ग-पर आनन्दपूर्वक चलते हुए अन्तिम फलतक नहीं भी पहुँचते हैं, उनकी दशा कर्म न करनेवालेकी अपेक्षा अधिकतर अवस्थाओंमें अच्छी रहती है; क्योंकि एक तो कर्मकालमें उसका जितना जीवन बीता, वह संतोष या आनन्दमें बीता और फल न मिलनेपर भी उसे यह पछतावा न रहा कि मैंने प्रयत्न नहीं किया । कर्ममें आनन्दका अनुभव करनेवाले कर्मण्य होते हैं । कर्मण्य ही सफल जीवनके अधिकारी हैं । फलकी विशेष आसक्ति कर्मके लाघवकी वासना उत्पन्न करती है । हमारे चित्तमें यही आता है कि कर्म बहुत सरल या कम करना पड़े और फल बहुत-सा मिले आजकल यही हो रहा है ।

वस्तुतः निष्काम कर्मका स्वरूप है—स्वधर्मरूप कर्मका भलीभाँति सम्पादन करना । कर्म तथा उसके फलमें आसक्ति न रहना और सफलता-असफलतामें समबुद्धि रहना ।

अतः हमें भी अपने जीवनमें कर्म करनेका निश्चय करनेके साथ उसके प्रति आसक्तिको हटानेका प्रयत्न करना चाहिये । कर्मसे विमुख होना पुरुषत्वका अपमान और मानवताका तिरस्कार है । हम तो यही कहेंगे—

आँखोंमें निश्चय, गति पदमें
स्वेद-बिन्दु मस्तकपर सुन्दर ।
पूर्ण अडिग विश्वास हृदयमें
और कण्ठमें जय जयका स्वर ॥
अन्तरमें मानव आत्माकी
सीमाहीन शक्तिका सागर ।
सम्मुख धरतीसे अम्बर तक
लहरें ज्योति उर्मियाँ भास्वर ॥
नित्य नयी बाधाका स्वागत
करनेको हों प्राण मचलते ।
आओ संघर्षोंके पथपर
विजय गीतसे गगन गुँजाओ ॥
रात तुम्हें दे स्वप्न प्रगतिके
दिनमें आगे कदम बढ़ाओ ।

शीलकी महिमा

ऐश्वर्यस्य विभूषणं सुजनता शौर्यस्य वाक्संयमो
ज्ञानस्योपशमः श्रुतस्य विनयो वित्तस्य पात्रे व्ययः ।
अक्रोधस्तपसः क्षमा प्रभवितुर्धर्मस्य निर्व्याजता
सर्वेषामपि सर्वकारणमिदं शीलं परं भूषणम् ॥

ऐश्वर्यकी शोभा सुजनता है, शूरवीरताकी शोभा कम बोलना है, ज्ञानकी शान्ति, शास्त्राध्ययनकी नम्रता, धनकी सत्पात्रको दान करना, तपकी अक्रोध, समर्थकी क्षमा, धर्मकी दम्भहीनता और सबकी शोभा सुशीलता है, जो सभी सद्गुणोंकी हेतु है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नामस्मरणसे मोक्षप्राप्ति

(लेखक—श्रीबैजनाथजी कपूर)

रामचरितमानसके बालकाण्डके प्रारम्भमें ही यह दोहा है—

ब्रह्म राम तें नामु बड़ बर दायक बर दानि।
रामचरित सत कोटि महँ लिय महेस जियँ जानि॥
(२५)

इस प्रकार नाम (निर्गुण) ब्रह्म और (सगुण) राम दोनोंसे बड़ा है। यह वरदान देनेवालोंको भी वर देनेवाला है। श्रीशिवजीने अपने हृदयमें यह जानकर ही सौ करोड़ रामचरितमेंसे इस 'राम' नामको [सार रूपसे चुनकर] ग्रहण किया है।

स्पष्ट आशय इसका यह है कि निर्गुण निराकार ब्रह्म और सगुण साकार रामसे नाम अधिक शक्तिशाली है। तुलसीदासजीने स्पष्ट शब्दोंमें लिखा है—

राम एक तापस तिय तारी। नाम कोटि खल कुमति सुधारी॥

अर्थात् श्रीरामचन्द्रजीने तो एक ही तपस्वीकी स्त्री अहल्याको तारा। पर नामने करोड़ों दुष्टोंकी बिगड़ी बुद्धिको सुधार दिया।

नाम गरीब अनेक नेवाजे। लोक बेद बर बिरिद बिराजे॥
सुमिरि पवनसुत पावन नामू। अपने बस करि राखेउ रामू॥
अपतु अजामिलु गजु गनिकाऊ। भए मुकुत हरि नाम प्रभाऊ॥
कहौं कहाँ लगि नाम बड़ाई। रामु न सकहिं नाम गुन गाई॥
नहिं कलि करम न भगति बिबेकू। राम नाम अवलंबन एकू॥

रामनामकी अपूर्व महिमा और तरनतारन शक्तिका गुणगान मानसमें भरा हुआ है। भगवद्-वाणी गीतामें भी भगवत्स्मरणकी अपूर्व, अलौकिक एवं अद्वितीय महिमा कही गयी है। भगवान् स्वयं कहते हैं—

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम्॥
(गीता)

'इसलिये सदा मुझे स्मरण कर और जूझता रह, इस प्रकार मुझमें मन और बुद्धि रखनेसे तू निस्संदेह मुझे ही पायेगा।'

संसारके सभी सांसारिक कार्योंको निपटाते एवं जूझते हुए भगवान् नाम-स्मरण करनेका आदेश दे रहे हैं। साथ ही उनकी अपनी (दिव्य परम पुरुष भगवान्‌की) प्राप्तिका निश्चित आश्वासन भी है। गीतामें भगवान्‌ने अपनी विभूतियों-का वर्णन करते हुए **'यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि'** कहा है। अपने कर्तव्य-कर्मका पालन, स्वधर्माचरण करते हुए ही प्रत्येक क्षण परमेश्वरका स्मरण करते रहनेसे निश्चितरूपेण भगवत्प्राप्ति होती है। भगवन्नाममें पापोंको नष्ट करनेकी अपूर्व शक्ति संनिहित है। प्रसिद्ध संत मलूकदासजी कह गये हैं—

राम नाम एकै रती पापके कोटि पहाड़।
ऐसी महिमा नामकी जारि करै सब छारि॥
राम नाम औषध करौ हृदय राखौ याद।
संकटमें लव लाइए दूर करै सब व्याधि॥

सत्ययुग, त्रेता, द्वापरयुगमें मानव-जीवनके अन्तिम लक्ष्य मोक्ष-प्राप्तिके बहुतसे साधन कहे गये हैं। किंतु कलियुगमें तो एक नाम ही महान् सम्बल माना गया है। तभी तो संत कह गये हैं—

कलियुग केवल नाम अधारा। सुमिरि सुमिरि भव उतरहु पारा॥

हमारे सभी शास्त्रों और धर्मग्रन्थोंने इसीलिये राम-नामकी अपूर्व महिमाका गान किया है। **'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्'** अर्थात् सभी धर्मका मूल वेद है और **'रामनामैव वेद-सारांशः'** अर्थात् राम नाम ही वेदोंका सारांश है। **'रामान्नास्ति परो देवः'** रामसे बढ़कर कोई देवता नहीं है।

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥
(ना० पु० १।४१।१५)

कलियुगमें केवल श्रीहरिनाम ही कल्याणका परम साधन है, इसको छोड़कर दूसरा कोई उपाय ही नहीं है।

कृते यद् ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात्॥
(श्रीमद्भागवत १२।३।५२)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'सत्ययुगमें भगवान् विष्णुके ध्यानसे, त्रेतामें यज्ञोंसे, द्वापरमें भगवान्की सेवा-पूजा करनेसे जो फल होता है, कलियुगमें केवल हरिके नाम-संकीर्तनसे वही फल प्राप्त होता है।'

उपनिषदोंमें भी रामनामकी महान् महिमा वर्णित है—

राम एव परं ब्रह्म राम एव परं तपः।
राम एव परं तत्त्वं श्रीरामो ब्रह्म तारकम्॥

(रामरहस्य-उपनिषद्)

'राम ही परम ब्रह्म हैं। राम ही परम तपःस्वरूप हैं। राम ही परम तत्त्व हैं और श्रीराम ही तारक ब्रह्म हैं।'

कलिसंतरणोपनिषद्में नारदजीके पूछनेपर कि कलिकालमें दोषों और पापोंका नाश कैसे हो? ब्रह्माजीने 'हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।' षोडशनामात्मक यह मन्त्र ही बताया था।

रमन्ते योगिनोऽनन्ते नित्यानन्दे चिदात्मनि।
इति राम पदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते॥

(रामपूर्वतापिन्युपनिषद् १।६)

'योगी लोग जिस अनन्त नित्यानन्द चिदात्मामें रमण होते हैं, उसीका रामपदसे बोध होता है। उसीको परम ब्रह्म कहते हैं।'

गाणपत्येषु शैवेषु शाक्तसौरेष्वभीष्टदः।
वैष्णवेष्वपि सर्वेषु राममन्त्रः फलाधिकः॥

(रामोत्तरतापिन्युपनिषद्)

'गणेश, शिव, शक्ति, सूर्य और विष्णु—इन सब नामोंसे जप होनेवाले कल्याणकी अपेक्षा राम-राम मन्त्रके जपका फल अधिक है।' हमारे शास्त्रकारोंका कथन है—

'रमन्ते योगिनोऽस्मिन्निति रामः।' जिसमें योगीगण रमण करते हैं उसका नाम राम है। अथवा **'रमते सर्वेषु भूतेषु'** जो सबके हृदयमें विहार करते हैं, वे राम कहलाते हैं। योग-दर्शनमें महर्षि पतञ्जलिने सम्पूर्ण विघ्नोंका नाश और परम ब्रह्म परमात्माकी प्राप्ति हेतु लिखा है—**'तज्जपस्तदर्थभावनम्'** उस परमात्माके नाम-जप और उसके अर्थकी भावना अर्थात् स्वरूपका चिन्तन करना ही मोक्ष प्राप्त करनेका उपाय है। संत कवि दादूका कथन है—

एक रामके नाम बिनु जिवकी जरनि न जाय।
दादू केते पच मुए कर कर बहुत उपाय॥

हमारे समस्त धर्माचार्यों तथा ऋषि-मुनियोंने निर्गुण ब्रह्म और सगुण रामसे भी बढ़कर रामनामकी महिमाको माना है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है कि रामका नाम लेकर हनुमान्जी समुद्रको पार कर गये, पर रामको समुद्र पार करनेके लिये पुल बनाना पड़ा। यह है नामका महान् चमत्कार। इसीलिये तुलसीदासजीने 'ब्रह्म राम ते नामु बड़ बर दायक बर दानि' लिखा है। नामीसे नाम बड़ा है—इसकी एक प्रेरणास्पद कथा है।

राज्याभिषेकके बाद भगवान् रामका राजदरबार लगा हुआ था। मन्त्रिमण्डलके साथ गुरु विश्वामित्र, वसिष्ठ, देवर्षि नारद तथा अन्य ऋषिगण भी राजदरबारमें शोभायमान थे। प्रश्न उठा कि नामी और नाममें कौन बड़ा? नामी स्वयं भगवान् और नाम (भगवान्का नाम) इन दोनोंमें कौन श्रेष्ठ है। **'मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना'** के अनुसार ऋषिगण एकमत न हो सके। जहाँ एक ओर देवर्षि नारद नामके चमत्कार और महत्त्वको घोषित कर रहे थे, वहाँ दूसरी ओर राजर्षि विश्वामित्रजी नामीको श्रेष्ठ मान रहे थे। नामीसे नाम बड़ा है। इसे सिद्ध करने हेतु नारदजीने हनुमान्जीको चुना। रामके अनन्य सेवक हनुमान्को उन्होंने अलग ले जाकर सिखाया कि आज राजसभाके विसर्जनोपरान्त जब आप अन्य ऋषियोंको दण्डवत् प्रणाम करें तब गुरु विश्वामित्रको सामना पड़नेपर भी ध्यान न देकर कुछ भी सम्मान प्रदर्शित न करें। तदनुसार ही हनुमान्जीने किया। कई बार सामना होनेपर भी मुनि विश्वामित्रके प्रति घोर उपेक्षा और तिरस्कारकी भावनासे गुरु विश्वामित्र क्रोधित हो गये। हनुमान्जीके इस अपमान और धृष्टताको वे सहन न कर सके। राजा रामको गुरु विश्वामित्रने कल सूर्यास्तके पूर्व हनुमान्को मृत्युदण्ड देनेके लिये आज्ञा दी। भगवान् राम अवाक् थे। गुरुकी आज्ञा शिरोधार्य कर रामने सक्लेश एवमस्तु कहा। क्षणोंमें यह बात नगरभरमें फैल गयी। हनुमान्जी घबराये हुए नारदजीके पास पहुँचे और मृत्युदण्डसे बचनेका उपाय पूछा। देवर्षि नारदने हनुमान्को सान्त्वना देकर मृत्युभयसे अभय करते हुए यह उपाय बताया—''रामके अनन्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्त सदैव अभय हैं । हनुमान् ! कल प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर सरयूमें स्नान करो । वहीं तटपर श्रद्धासहित और हृदयसे 'श्रीराम जय राम जय जय राम' इस मन्त्रका अनन्य भक्तिपूर्वक जप करते रहो । निश्चय ही भगवान् राम तुम्हारी रक्षा करेंगे ।'

तदनुसार हनुमान्‌जीने दूसरे दिन प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्तमें सरयू नदीमें स्नान किया और अनन्य भक्तिभावपूर्वक देवर्षि नारदके बताये हुए—'श्रीराम जय राम जय जय राम' मन्त्रका जप करने लगे । भारी भीड़ भी जमा हो गयी । कुछ देर बाद राजा राम भी हनुमान्‌जीका पता लगाते हुए सरयू-तटपर पहुँच गये । देखा, हनुमान्‌जी राम-नाम जपनेमें तल्लीन हैं । गुरु विश्वामित्रके आज्ञानुसार अपने अनन्य भक्तको सावधान करते हुए उन्होंने हनुमान्‌जीपर बाणोंकी वर्षा प्रारम्भ की । परंतु यह क्या ? रामका एक बाण भी हनुमान्‌को मार नहीं सका । दिन भर उन भयंकर बाणोंकी वर्षा हुई जिससे कुम्भकर्ण, रावणादि महाविशालकाय राक्षसोंका वध हुआ था—वे विषधर बाण भी हनुमान्‌जीका बाल बाँका न कर सके । हनुमान्‌जी गद्गद भावसे 'रामनाम' का जप बराबर करते ही रहे । अन्तमें खीझकर राजा श्रीरामने ब्रह्मास्त्र उठाया । यह देखकर देवर्षि नारदजी गुरु विश्वामित्रजीके पास गये और कहा—'राजर्षि ! अब आप अपना क्रोध शान्त कीजिये और भगवान् रामकी रक्षा और हनुमान्‌जीके प्राण बचाइये । आपने सबके साथ यह देख ही लिया कि राम-नाममें कितना अपूर्व चमत्कार है । मैंने नामीसे नामको श्रेष्ठ सिद्ध करनेके लिये ही कल यह नाटक रचा था ।' मुनि विश्वामित्र पिघल गये । भगवान् रामको आदेश हुआ कि 'अब आप हनुमान्‌पर अमोघ अस्त्र न चलावें ।' आशय स्पष्ट ही है ।

इस दोहेका दूसरा पद है—'राम चरित सत कोटि महँ, लिय महेस जियँ जानि ।' अर्थात् शत कोटि रामायणमेंसे शिवजीने इन दो अक्षरों 'र' और 'म' में ही सारा रस प्राप्त-कर हृदयमें धारण कर लिया ।

कथा है, आदिकवि महर्षि वाल्मीकिने शत कोटि (सौ करोड़ श्लोक) रामायणकी रचना की । उस रामायणकी महानतासे प्रभावित हो सभी उसे प्राप्त करनेकी चेष्टा करने लगे । देव, दानव और मानवमें होड़ लग गयी । वे अपने ही लिये उसे प्राप्त करना चाहते थे । झगड़ा छिड़ गया । विवाद बढ़ा । विवेकशील समुदायने इस संघर्षमें शत-कोटि रामायण नष्ट होनेकी सम्भावना देख किसी मध्यस्थके द्वारा आपसी झगड़ा निबटानेका सुझाव दिया । गम्भीर परिस्थिति-को देखते हुए सभीने इस सुझावको स्वीकार किया । खोजते-खोजते शंकरजी मध्यस्थ बनाये गये । शिवजीने शतकोटि श्लोकोंमें तैंतीस-तैंतीस करोड़ श्लोक तीनों (देव, दानव, मानव) को बराबरसे बाँट दिये । एक करोड़ श्लोक बच रहे थे । फिर तीनोंको तीस-तीस लाख श्लोक बाँट दिये । फिर एक लाख बचे । इस प्रकार उत्तरोत्तर बाँटते-बाँटते अन्तमें एक श्लोक बचा । शतकोटि रामायणके श्लोक अनुष्टुप् छन्दमें रचे गये थे जिसमें बत्तीस अक्षर होते हैं । शंकरजीने फिर दस, दस अक्षर तीनोंमें बाँट दिये । अन्ततो-गत्वा' फिर भी दो अक्षर बच रहे । पानेवाले तीन, बँटनेवाले अक्षर दो—किस प्रकार दो अक्षर तीनमें बँटे, यह समस्या थी । भोले बाबा शिवजीने मध्यस्थताके पारिश्रमिक स्वरूप इन दो अक्षरोंको स्वयं माँग लिया । सभीने सहर्ष शिवजीकी माँग स्वीकार की । वे दो अक्षर उन्हें मिले । तुरंत ही शिवजीने इन दोनों अक्षरोंको हृदयमें धारण कर लिया । ये दो अक्षर थे—'रा' और 'म' (राम) । शिवजीने इन दो अक्षरोंमें ही सारी शतकोटि रामायणको समेट लिया । इसीसे वे आज देवाधिदेव या महादेव बन सके हैं और उनके त्याग, तप, महिमा, शक्ति एवं ज्ञानकी थाह आजतक देव, दानव या मानव कोई भी नहीं पा सका है ।

यदि आप भी भगवान् रामको शिवकी भाँति हृदयमें धारण करना चाहते हैं तो गीता माताकी शरणमें जाइये । माँ गीता अपने शिशुकी भाँति शरणागतको प्रेमभावसे रामको हृदयमें रखनेकी शक्ति प्रदान करती है । भगवद्वाणी गीता उसका मार्गदर्शन करती है और वह शिवजीकी भाँति रामको हृदयमें धारण करनेकी पद्धति सिखाती है । ऐसी है हमारी अध्यात्म-दीप भगवद्गीता । साथ ही परम श्रद्धाके साथ भगवान्‌के नामका जप-कीर्तन करते रहिये ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दक्षिण भारतकी तीर्थयात्रा

(लेखक—सेठ श्रीगोविन्ददासजी, श्रीमती रत्नकुमारी देवी, श्रीगोविन्दप्रसादजी श्रीवास्तव)

[गताङ्क पृष्ठ १३१६ से आगे]

दक्षिणके मन्दिरोंकी पूजा-विधि श्रीरामानुजाचार्यकी श्रीवैष्णव-सम्प्रदायपद्धतिके अनुसार है और शैवमन्दिरोंकी शिवपुराणमें वर्णित पद्धतिके अनुसार। दक्षिणके प्रधानरूपसे दो मन्दिरोंमें श्रीबालाजी और रामेश्वरम्में यहाँकी पूजा-विधिने हमें आकर्षित किया। इन मन्दिरोंकी पूजा-विधि बदरीनाथकी पूजा-विधिके अनुसार बड़ी आकर्षक है। वेदोंकी ऋचाओं और स्तोत्रोंका कर्णप्रिय स्वरसहित पठन यहाँकी पूजा-विधिकी विशेषता है, फिर भी बदरीनाथकी पूजा-विधि सर्वापेक्षा श्रेष्ठ है। पुजारियोंमें अधिकांश संस्कृतके अच्छे पण्डित हैं। वेदोंकी ऋचाओंका स्वरसहित शुद्ध पाठ करते हैं। भोगमें प्रधानतया चावल और उड़दकी वस्तुओंका ही उपयोग होता है। मिष्टान्नमें शक्कर और गुड़ दोनों काममें लाये जाते हैं; परंतु गुड़ अधिक। खट्टी वस्तुओंके लिये इमलीका उपयोग होता है। भात कई प्रकारके बनते हैं—मीठा भात, दही-भात, इमली-भात इत्यादि। उड़दके बड़े बहुत बनते हैं। कई मन्दिरोंमें तो ये बड़े नामके अनुसार बहुत बड़े और कहीं-कहीं बड़ेके साथ काफी कड़े भी। बालाजीके बड़े तो बहुत मज़बूत दाँतवाला व्यक्ति ही खा सकता है।

'उत्तराखण्डकी यात्रा' पुस्तकमें हमने निर्गुण उपासनासे सगुण उपासनाको श्रेष्ठ बताया है और तुलसीदासजीकी निम्नलिखित चौपाईको उद्धृत किया है—

फूले कमल सोह सर कैसे। निर्गुन ब्रह्म सगुन भए जैसे॥

दक्षिणकी इस यात्राने हमारे उपर्युक्त विचारको और अधिक दृढ़ कर दिया। यदि सगुण उपासना और उसमें मूर्तिपूजाको हमने न अपनाया होता तो आज दक्षिणमें हमें जो अद्भुत मन्दिरोंके दर्शन होते हैं और इन दर्शनोंके कारण हमारे मनमें जो आध्यात्मिक भावनाओंका उदय होता है, वह कभी न हो पाता।

दक्षिणकी इस यात्रामें हमने कुछ विशेष बातोंको जाननेका प्रयत्न किया। जहाँ एक ओर हमने एक श्रद्धालु भक्तका हृदय रक्खा, वहाँ दूसरी ओर एक जिज्ञासु पाठक, पारदर्शी पर्यटक और इतिहासके विद्यार्थीकी बुद्धि भी। हमारी जिज्ञासा रही उत्तर और दक्षिणके अन्तरको जाननेकी, इस अन्तरका रहस्य समझनेकी देशके अन्य भागोंसे दक्षिणके भौगोलिक और भाषायी सम्बन्धों तथा यहाँके जन-जीवन, उनकी आजीविका, रीति-रिवाज, रहन-सहन, आचार-विचार एवं धार्मिक जीवनको जाननेकी।

बुद्धि-वैषम्यके कारण ही हर उत्तर भारतका रहनेवाला दक्षिण भारतके सम्बन्धमें इस तरहके प्रश्न—ये जिज्ञासाएँ कर सकता है, इसी प्रकार दक्षिण भारतका नागरिक उत्तर भारतके सम्बन्धमें भी। किंतु मूलमें दक्षिण और उत्तर भारतके इन अंचलोंमें जो एक भावसरणि बह रही है, जो प्राणवायु प्रवाहित है, यह वही एकमात्र भारतीय संस्कृति-संजीवनी है, जिसके आलोकसे सारा भारत व्याप्त है। हमारी जिस संस्कृतिका साक्षात् हम उत्तर भारतमें करते हैं, उसीका स्पन्दन हमें दक्षिणके जन-जीवनमें मिलता है और दक्षिणवासी जिस संस्कृतिका सहवास करते हैं उसका स्पन्दन उन्हें उत्तर भारतके मानसमें देखनेको मिलेगा। यही वजह है कि हर उत्तर भारतमें रहनेवाला न केवल दक्षिणके इन देव-मन्दिरोंके दर्शनको आता है, वरं उसकी यह तीर्थयात्रा उसकी भगवद्भक्ति और देवपूजा तबतक पूरी नहीं होती, जबतक वह उत्तरमें बहनेवाली पुण्य-सलिला भागीरथीके पवित्र नीरसे अपने पात्रको भरकर दक्षिणके प्रमुख धाम रामेश्वरम्में उसे भगवान् रामेश्वरको अर्पित न कर दे। भारतीय देवत्वकी, भारतकी एकता तथा उसके एकत्वकी इससे बड़ी, विशाल, इससे अधिक उदात्त भावना और क्या हो सकती है? संक्षेपमें उत्तर भारतके हृदयकी धड़कन हमें दक्षिणमें सुनायी देती है और दक्षिण भारतकी उत्तरमें। यह है हमारी भारतीय संस्कृति तथा जिसमें भारतकी भौगोलिक, भाषायी रीति-रिवाज और आर्थिक स्थितिकी विभिन्नताके बावजूद उत्तरसे दक्षिण और पूर्वसे पश्चिमतक एकरूपता—भारतकी भावात्मक एकताके सतत दर्शन हमें होते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दक्षिणके प्रधान मन्दिरोंका प्रबन्ध सरकारद्वारा संरक्षित होनेसे संतोषजनक हो गया है। अब भेंट-पूजामें जो द्रव्य इकट्ठा होता है, उसका बहुत दूरतक सद्-व्यय होने लगा है। बालाजीके मन्दिरकी आय तो एक करोड़ रुपया प्रति वर्षतक पहुँच गयी है और वहाँ मन्दिरके भोगराग आदिके साथ मन्दिर-कमेटीकी ओरसे अनेक संस्थाएँ चल रही हैं। यहाँतक कि एक विश्वविद्यालय भी। इधर-उधर कुछ चर्चा भी हमने सुनी कि मन्दिरोंकी भेंट-पूजाके इस द्रव्यमें कभी-कभी कुछ गड़बड़ भी होती है। सभी प्रबन्ध निष्कलङ्क नहीं हैं। परंतु इस कारण इस सारे प्रबन्धको बुरा नहीं कह सकते। इस प्रबन्धके पहले जो प्रबन्ध था, उसका और इसका मिलान करनेसे हमारे इस मतकी पुष्टि हो जाती है। फिर मनुष्य-स्वभावकी कमजोरियाँ तो सभी जगह दृष्टिगोचर होती हैं। आज विकासके कामोंमें जो करोड़ों नहीं, अरबों रुपया व्यय हो रहा है, उस रुपयेका कितना अंश कहाँ जाता है, इस सम्बन्धमें भी शिकायतोंकी कमी नहीं है।

दक्षिणके प्रायः सभी मन्दिरोंमें मरम्मतकी आवश्यकता है। रामेश्वरम्‌के मन्दिरमें तो बहुत अधिक। मदुराके मीनाक्षी-मन्दिरमें हमने कुछ सूचनापट देखे, जिनपर लिखा था—मरम्मतके लिये बीस लाख रुपया आवश्यक है। इमारतोंमें मरम्मत सदा आवश्यक होती ही है। इन मन्दिरोंकी मरम्मतके लिये जितना धन आवश्यक है, वह यहाँकी गरीब जनतासे चंदेके रूपमें मिलना सम्भव नहीं है, राज्यसरकारें ही यह पूरा कार्य कर सकती हैं। इस कार्यके लिये केन्द्रिय सरकारको ही उदारतापूर्वक सहायता करनी चाहिये। यह इसलिये भी कि इन मन्दिरोंका महत्त्व केवल किसी राज्य-विशेष या स्थान-विशेषका नहीं है, परंतु ये अखिल भारतीय महत्त्वकी चीजें हैं। इसीके साथ इन मन्दिरोंके जो सरोवर और कुण्ड हैं, उनका पानी बहुत गंदा हो गया है। इसका प्रधान कारण यह है कि इन कुण्डोंसे पानीके निकासकी और नया पानी डालनेकी कोई व्यवस्था नहीं है। बरसाती पानी ही इन कुण्डोंका आधार है। अतः इन कुण्डों और सरोवरोंमें सदा स्वच्छ जल रहे, इसके लिये इनमें पानीके निकास और नया पानी डालनेके लिये व्यवस्था की जानी चाहिये। स्वच्छताके लिये कुण्डोंमें मछलियोंका पाला जाना तथा सफाईसम्बन्धी अन्य प्रयोग और हिदायतें भी आवश्यक हैं। इन कुण्डों और सरोवरोंकी, जिन्हें यहाँके निवासी और यात्री तीर्थ मानकर इनकी पूजा करते हैं, यह दुरवस्था देख हमें बड़ा खेद हुआ। यहाँके निवासी भी इस अव्यवस्था-के लिये सरकारको कोसते हैं। शासनके धर्म-निरपेक्षताके सिद्धान्तके हम समर्थक हैं। विभिन्न धर्मावलम्बी देशका शासनतन्त्र धर्म-निरपेक्ष ही होना चाहिये, परंतु धर्म-विमुख नहीं। फिर जो शासन दिल्लीकी जामा-मस्जिदको उसके ऐतिहासिक महत्त्वके कारण लाखों रुपया मरम्मतके लिये देता है, वह इन मन्दिरोंकी उपेक्षा कैसे कर सकता है? जामा-मस्जिदको रुपया न दिया जाय, यह हम कदापि नहीं कहते, किंतु यदि जामा-मस्जिदका ऐतिहासिक महत्त्व है तो क्या इन मन्दिरोंका नहीं है? फिर जामा-मस्जिदका निर्माण तो लगभग तीन सौ वर्ष पूर्व शाहजहाँके शासनकालमें हुआ था, ये मन्दिर तो इससे कहीं पुराने हैं। इसके साथ ही जामा-मस्जिदके संरक्षणका प्रधान कारण यदि उसकी ऐतिहासिकता है तो हमारे ये मन्दिर तो अपनी ऐतिहासिकताके साथ ही भारतीय अध्यात्म और भारतीय संस्कृतिके जीते-जागते प्रतीक हैं। यही नहीं, उसकी एकता, हमारी सांस्कृतिक प्रभु-सत्ताके संरक्षक भी हैं। जिनमें हो रही मृदङ्ग, झाँझ और शङ्ख-ध्वनि तथा दर्शनार्थियोंका जनरव भारतीय इतिहासकी युग-युगोंकी कहानी कहता है। हमारा भारत-सरकारसे अत्यन्त नम्र किंतु पूरे जोरके साथ निवेदन है कि वह इन ऐतिहासिक और सांस्कृतिक स्थानोंका निरीक्षण करावे और उनकी मरम्मतके लिये पर्याप्त धन दे।

दक्षिणका जन-जीवन

दक्षिण भारतकी भारतीय जनता और उत्तर भारतकी भारतीय जनतामें भाषा-विभेदके सिवा और कोई भेद हमें दृष्टिगोचर नहीं हुआ। जहाँतक भाषाका सम्बन्ध है, वहाँ-तक तो उत्तर भारतमें भी एक ही भाषा नहीं है और न दक्षिण भारतमें ही एक भाषा। वर्णमें सभी भारतीय अधिकतर गेहुएँ और श्यामवर्णके हैं। उत्तरमें पंजाब और कश्मीरमें, वहाँकी जलवायुके कारण यदि वहाँके लोग कुछ अधिक गौरवर्णके हैं तो दक्षिणकी जलवायुके कारण यहाँके लोग कुछ अधिक साँवले। वेष-भूषामें भी अधिकतर जलवायुके अनुसार ही परिवर्तन होता है। उत्तरकी शीतमें पाजामा स्वाभाविक है तो दक्षिणकी गर्मीमें विकच्छ धोती। रीति-रिवाज सभी भारतीयोंके मिलते-जुलते हैं। गरीबीके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहते हुए भी दक्षिणमें बड़ी स्वच्छता है। शहर, कस्बे, गाँव सभी हमें बड़े साफ-सुथरे दिखे। कलकत्ता, बम्बई आदि उत्तरके बड़े-बड़े नगरोंसे मद्रास कहीं अधिक स्वच्छ है और मद्रास ही नहीं, दक्षिणके सभी शहरों, कस्बों और गाँवोंमें यह सफाई पायी जाती है। गाँवोंमें अधिकतर घर नारियलके पत्तोंकी छावनीके हैं। नारियलके पत्तोंसे छाये हुए झोंपड़े तक बड़े साफ-सुथरे हैं। अपने घरका कूड़ा-कर्कट निकालकर दूसरे घरके दरवाजेपर डालनेकी यहाँके लोगोंकी आदत नहीं है। इस प्रकार छोटे-से-छोटे कस्बे और बड़े-से-बड़े नगर मद्रास और मदुरामें भी सादगी और स्वच्छताकी यह समान रुचि पायी। एक विशेष बात हमने यहाँ और देखी। नित्य गरीब-से-गरीब गृहस्थीकी गृहिणी प्रातःकाल ही अपने गृह-द्वारके सम्मुख एक चौक पूरती है। शायद यहाँकी इन गृहलक्ष्मियोंद्वारा लक्ष्मीके आह्वानकी भावना ही इस चौक-विधानमें परिव्याप्त है। जो भी हो, स्वच्छताकी रुचिका यह एक सुन्दर प्रमाण है। स्वच्छताके साथ यहाँके लोग बड़े कला-प्रेमी भी हैं। सौन्दर्यकी यह उपासना उन्होंने शायद दक्षिणके कलात्मक मन्दिरोंकी उपासनाके साथ सीखी है। यहाँके लोगोंके कला-प्रेमके कई उदाहरण हैं। सबसे अधिक उनके कला-प्रेमका नमूना उनका पुष्प-प्रेम है। शायद ही कोई ऐसी महिला हो जो अपनी चोटी अथवा जूड़ेमें कुसुम-गुच्छ या सुमनका स्रग न गूँथे हों। पुष्प-प्रेमकी इस प्रचुरताके कारण हमारे यहाँके खोमचोंके सदृश यहाँकी स्टेशनोंपर पुष्पहार और पुष्पगुच्छ बिकते हैं। रहन-सहन भी बहुत सस्ती है। सबेरे एक आनेकी दो इडली और एक आनेकी काफी—इस प्रकार दो आनेमें नाश्ता हो जाता है। भोजनमें चावल, साँभर और रसम सबमें चार-छः आनेसे अधिक नहीं लगता। ठण्ड न होनेके कारण ऊपरके शरीरपर आधी बाँहोंका कुरता और नीचेके शरीरपर दो गजकी विकच्छ धोतीसे काम चल जाता है। हाँ, खाना-पीना और कपड़े इसमें भी पूरी स्वच्छता रहती है। किंतु, हमें दक्षिणके लोगोंके खानेका ढंग अवश्य नापसंद आया। इसमें हमें कुछ बीभत्सता दिखी। चावलमें संभार मिलाकर हाथमें उसका एक बड़ा-सा लोदा बना उसे रसमसे भिगा गोलेके सदृश एक विचित्र ढंगसे मुँहमें डाला जाता है। कई बार रसम कुहनियों तक बह जाता है और उसे बुरी तरह चाट लिया जाता है। खानेके इस ढंगमें परिवर्तनका वहाँ एक आन्दोलन होना चाहिये। पश्चिमी ढंगके खानेमें जो आज काँटा, छुरी और चम्मचका उपयोग होता है, वह बहुत पुराना नहीं है। इस ढंगसे खानेके लिये पश्चिममें एक आन्दोलन हुआ था। वही बात स्वच्छ रहनेवाले दक्षिण भारतीयोंके खानेके तरीकेके सम्बन्धमें होनी आवश्यक है।

यहाँकी आजीविकाके देशके अन्य प्रदेशोंकी भाँति अनेक मार्ग हैं, किंतु प्रधान रूपसे खेती ही यहाँका प्रमुख धंधा है। आर्थिक दृष्टिसे इस गरीब देशके सभी लोग गरीब हैं, कहीं गरीबी कुछ अधिक, कहीं कुछ कम। स्वाधीनताके बाद देशके सभी प्रदेशोंमें विकासकी योजनाएँ क्रियान्वित की जा रही हैं, दक्षिणमें भी। अतः सम्पन्नताकी दिशामें दक्षिण भी देशके अन्य क्षेत्रोंके साथ शनैः-शनैः बढ़ रहा है।

हमारे प्राचीन और अर्वाचीन तीर्थ

भारतका वर्तमान नेतृत्व ऐसे स्थानोंको तीर्थ-स्थलकी संज्ञा देता है, जहाँ आर्थिक विकासकी योजनाएँ क्रियान्वित हो रही हैं। हम भी इनका समर्थन करते हैं। इस गरीब देशका दुःखदारिद्र्य दूर करनेके लिये विकासके ये कार्य जहाँ-जहाँ चल रहे हैं, वे स्थल वर्तमान समयमें हमारे लिये अवश्य तीर्थ-तुल्य हैं। परंतु इसीके साथ भारतीय नेतृत्वसे हमारा यह निवेदन भी है कि भारतके इन प्राचीन आध्यात्मिक तीर्थस्थलोंकी भी अवहेलना कदापि नहीं होनी चाहिये। भारतको एक सूत्रमें बाँध रखनेके लिये हमारे अवतारों, ऋषि-मुनियों, दार्शनिकों, संतों और भक्तोंने धर्मप्राण भारतीय संस्कृतिके प्रतीक जिन तीर्थस्थलोंका निर्माण किया है, उन स्थलोंका महत्त्व आर्थिक विकासके आधिभौतिक तीर्थ-स्थलोंसे कहीं अधिक है। वर्तमान समयके ये आर्थिक तीर्थ-स्थल तो भारतके सम्पन्न होनेपर रोजगारीके साधन मात्र रह जायँगे, परंतु हमारे आध्यात्मिक तीर्थोंकी, जो प्राचीन भारतकी आध्यात्मिक और आधिभौतिक सुख-समृद्धिके जीते-जागते नमूने हैं, जो भारतकी सांस्कृतिक सम्पन्नताके संकेत हैं, यदि अवनति हुई तो भारत जो अपनी सांस्कृतिक प्रभुसत्ताके लिये सनातन कालसे सृष्टिका सिरमौर है, वह भारत न रहकर कोई नट या वर्तमान युगकी नाटकीय परिस्थितियोंमें पड़कर किसी नाटकके प्रधान नायककी नकल मात्र रह जायगा। अतः यदि हमें भारतको सच्चा भारत रखना है, पूर्वजोंकी विरासत अपनी सांस्कृतिक प्रभुसत्ताको अक्षुण्ण देखना है, सम्पन्नता और समृद्धिके चरम लक्ष्यको पाना है तो सदा ही भारतके इन पूर्वचिन्तकों, ऋषियों,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुनियों, दार्शनिकों, संतों और भक्तों, अवतारों तथा आदि पुरुषोंद्वारा संस्थापित इन आध्यात्मिक अधिष्ठानोंकी आराधना हमारा लक्ष्य होना चाहिये। हमारे ये आध्यात्मिक तीर्थस्थल सदा ही महत्त्वके रहेंगे। इनका जो स्थायित्व है, वह अन्य किसी भी वस्तुका नहीं। यदि ये मिटे तो भारत मिट जायगा और भारतीय धर्मप्राण संस्कृतिके कारण जो समूचा देश एक सूत्रमें बँधा है, वह खण्ड-खण्ड होकर नष्ट-भ्रष्ट हो जायगा। (समाप्त)

धृति

[कहानी]

(लेखक—श्री'चक्र')

'जिह्वोपस्थजयो धृतिः।'

प्रिय इन्द्र!

बहुत-बहुत स्नेह। तुम्हारा पत्र मिला, यह जानकर खेद हुआ कि तुम रुग्ण हो। यह बात ठीक नहीं है कि तुम रोगको प्रारब्ध-प्राप्त भोग मानकर संयम तथा चिकित्साका परित्याग कर दो। तुम धनोपार्जनमें तो ऐसी उपेक्षा नहीं दिखलाते। अपने कार्यालयमें पदोन्नतिके लिये तो तुम प्रयत्न करना नहीं छोड़ते। धन और पदोन्नति, मुकदमेमें जय-पराजय क्या प्रारब्धपर निर्भर नहीं हैं?

देखो, जबतक शरीरसें आसक्ति है, जबतक संसारके दूसरे लाभोंको पानेके लिये तथा हानियोंको दूर करनेके लिये प्रयत्न मनुष्य करता है, तबतक रोगकी चिकित्सा भी उसका कर्तव्य है। कष्टके भयसे किसी प्रयत्नका त्याग प्रमाद है। जो देहाध्याससे रहित महापुरुष हैं, शरीरके रहने, न रहनेकी जिन्हें चिन्ता नहीं है, जो धन तथा मान-प्राप्तिके लिये भी कोई प्रयत्न न करके केवल भजनमें ही लगे रहते हैं, वे रोग-निवारणका भी प्रयत्न न करें तो अनुचित नहीं है।

अनुष्ठानोंसे, पूजनादिसे तथा प्रबल उद्योगसे प्रारब्धमें भी परिवर्तन होता है, यह तुम जानते हो। चिकित्सा भी एक प्रकारका प्रायश्चित्त ही है।

एक बात और—स्थूल शरीर वर्तमान कर्मोंसे एक बड़ी सीमातक प्रभावित होता है। तुम श्रम करो और थको नहीं, यह नहीं हो सकता। इसी प्रकार अधिकांश रोग व्यक्तिके अपने असंयम तथा असावधानीसे आते हैं। तुम अपनी असावधानीसे चोट लगा लो, चाकूसे अँगुली काट लो तो उसकी चिकित्सा तथा पीड़ा असावधानीका ही प्रायश्चित्त है।

बहुत कम रोग आगन्तुक तथा बाह्य निमित्तसे होते हैं। व्यक्तिका असंयम ही उसे रोगी बनाता है। तुम रोगकी पीड़ामें व्याकुल नहीं होते, यह अच्छी बात है। लेकिन इसीका नाम धैर्य नहीं है। धृतिमान् रोगी नहीं हुआ करता। तुम धृतिमान् बनो, इस शुभाकांक्षाके साथ—

आश्विन पूर्णिमा—२०२१ { तुम्हारा—
भद्रसेन

आदरणीय पितृव्य!

सादर प्रणति। आपका पत्र मिला। आपने अपना पता नहीं दिया पत्रमें। लगता है, यात्रामें यह पत्र लिखा गया है। आपके कार्यालयके पतेपर पत्र दे रहा हूँ। शरीर अब रोगहीन है; किंतु दुर्बलता है अभी। आपका आदेश स्वीकार करके मैंने ओषधि ली और अब भी ले रहा हूँ।

'धृतिमान् रोगी नहीं हुआ करता'—यह बात समझमें नहीं आयी। कृपा करके इसे समझायेंगे। रोग भी तप है, यह आपका पिछला उपदेश बहुत काम आया इस बार। पञ्चाग्नि तापते साधुओंको मैंने देखा है। उत्तरकाशीमें एक महात्मा कई घंटे गङ्गाके हिमशीतल जलमें खड़े रहा करते थे। कष्टमें तपबुद्धि होनेसे वह प्रसन्नताका हेतु हो जाता है, यह अनुभव हो गया इस बार। ज्वर तथा उदरकी पीड़ा, मस्तक तो लगता था कि फट जायगा; किंतु इसमें बड़ा आनन्द आया। यह तपस्या मेरे लिये अत्यन्त शुभ रही।

पिछले वर्ष अपने नगरमें विसूचिकाका जब प्रकोप था, कितना धैर्य, कितनी सेवापरायणता थी विष्णुदत्तजीमें। दुर्गन्धिसे, मल तथा वमनसे सने रोगियोंकी किस स्नेहसे वे शुश्रूषा करते थे। स्वजन जहाँ प्राणभयसे छोड़कर भाग गये, वे आगे आये। उनके-जैसा धृतिमान्; किंतु आप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जानते ही हैं कि वे इस समय क्षयके शिकार हैं और चिकित्सालयमें पड़े हैं।

मुझे अनेक व्यक्ति याद आ रहे हैं। अभी चीन तथा पाकिस्तानके साथ हुए संघर्षमें जिन सैनिकोंने अपूर्व शौर्यका परिचय दिया, आपने भी पढ़ा होगा वह समाचार कि उनमेंसे एकको चिकित्साकी विशेष व्यवस्था सरकार कर रही है। इसीलिये धृतिमान्‌की विशेष व्याख्या अपेक्षित है।

इधर थोड़ी वर्षा हुई है। शीत कुछ बढ़ा है। अब तो सब दीपावलीकी स्वच्छतामें लगे हैं। छोटा भाई आपको प्रणाम कहता है।

अनिल-आवास
कार्तिक कृष्ण ८ सं० २०२१

आपका अनुग्रहाकांक्षी—
इन्द्रदत्त

प्रिय इन्द्र !

बहुत-बहुत स्नेह। तुम्हारा पत्र कार्यालय होकर मुझे मिल गया। तुम्हारा शरीर स्वस्थ हो गया, यह जानकर प्रसन्नता हुई। आशा है, यह पत्र मिलनेतक दुर्बलता भी दूर हो चुकी होगी।

तुम्हारी जिज्ञासा उचित है। मनुष्य बड़ी-बड़ी विपत्ति सह लेता है। कहते हैं कि नैपोलियन बोनापार्ट युद्धभूमिमें गोले उगलती तोपके नीचे मजेसे निद्रा ले लेता था। किंतु धृतिका आश्रय क्या है ? चित्त अथवा बुद्धि। इसे बाहरी बड़े-से-बड़ा निमित्त विचलित न करे, ऐसा होना कठिन अवश्य है; किंतु ऐसे व्यक्ति संसारमें बहुत मिलते हैं—सर्वत्र मिलते हैं।

सत्याग्रह-आन्दोलनके समय कितना कष्ट, कितना उत्पीडन सहा देशके लोगोंने, यह तुम 'कांग्रेसका इतिहास' देखकर जान सकते हो। बहुत कुछ इस विषयमें तुम जानते हो। पुलिसका प्रहार, रात-दिन भटकना, परिवारके लोगोंकी पीड़ा, अनेक घरोंका तो उस समय उच्छेद हो गया। वे देशभक्त धृतिमान् नहीं थे, ऐसा कौन कहेगा। किंतु जो उनके साथ कारागारमें रहे हैं—मैं कुछ काल रहा हूँ और अनेकोंका सम्पर्क वहाँ मिला है, तनिक-तनिक-सी बातोंके लिये उन लोगोंका उत्तेजित होना, कौड़ी-बराबर गुड़ या चीनीके लिये अनेक अनुचित उपाय अपनाना देखकर बड़ा खेद होता था। उनकी धृति कहाँ चली गयी थी ?

बात यह है कि इन्द्रियाँ मन-बुद्धिको बहुत प्रभावित करती हैं, बाह्य किसी भी निमित्तकी अपेक्षा। जो अपने सम्पूर्ण परिवार तथा अपनी मृत्यु भी सम्मुख देखकर विचलित नहीं होते, वे भी स्वादके वशमें भटक जाते हैं और तुम जानते हो कि शरीरके अधिकांश रोग उदर तथा स्नायु-के दोषसे होते हैं। जिह्वाकी लोलुपता उदरको विकृत करती है और ब्रह्मचर्य-सम्बन्धी असंयम स्नायु-दौर्बल्यका हेतु होता है।

जिह्वा और उपस्थका संयम जिसने साध लिया, वही सच्चा धृतिमान् है। उसकी बुद्धिको विचलित करनेका निमित्त नहीं रह गया। तुम इस प्रकारके धृतिशाली बनो।

मैं अब भी यात्रामें ही हूँ। पत्र कार्यालयके पतेपर ही देना। नन्हेंको स्नेह। परसों दीपावलीके दिन ही कार्यालय पहुँच पाऊँगा।

कार्तिक कृष्ण १३
सं० २०२१

तुम्हारा—
भद्रसेन

आदरणीय पितृव्य !

सादर प्रणति ! आपका पत्र दीपावलीके दूसरे दिन मिला। महालक्ष्मीपूजनके इस पावन दिनके उपलक्षमें हम सबकी वन्दना स्वीकार करें।

मुझमें थोड़ी-सी जिह्वालोलुपता है, यह आप जानते ही हैं। चाट, खटाई, मिर्च मैंने छोड़ दी है। बाजारकी वस्तुएँ अब नहीं खाता। चाय-काफी या कुल्फी-शर्बत भी छोड़ देनेका निश्चय कर लिया है। किंतु मीठा खानेको बार-बार जी करता है। आप कहते ही हैं—'इन्द्र मिष्टान्नप्रिय है।' शरीर स्वस्थ है। जिह्वा बहुत समयसे तंग करती आ रही है। आपके आदेश बार-बार भङ्ग हुए इसके कारण। अतएव अब उपवास करनेका विचार है। दो-तीन दिन (जबतक सहा जाय) केवल जल और नीबूका रस लूँगा। इससे पेट भी स्वच्छ हो जायगा। उसके पश्चात् उबाले शाक, कच्ची घिया; किंतु फल नहीं; क्योंकि फिर तो मीठा खानेकी इच्छा-को ईंधन मिलेगा। आप आशीर्वाद दें।

अनिल-आवास
कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा सं० २०२१

आपका अनुग्रहाकांक्षी
इन्द्रदत्त

प्रिय इन्द्र !

बहुत-बहुत स्नेह ! तुम्हारा पत्र मिला। संयम तथा साधनमें तुम्हारी तत्परता देखकर प्रसन्नता होती है। उपवास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुमने प्रारम्भ कर दिया होगा; क्योंकि तुम्हारे स्वभावमें ही निश्चयको 'कल'पर टालना नहीं है। चलो अच्छा है, एक सप्ताह उपवास कर लो। इससे उदरके दोष दूर हो जायँगे और तुम्हें कुछ अनुभव भी मिलेगा। किंतु इससे अधिक उपवासका आग्रह मत करना। उससे कोई लाभ होनेवाला नहीं है।

इन्द्रियाण्यनुशुष्यन्ति निराहारस्य योगिनः।
वर्जयित्वा तु रसनं तन्निरन्नस्य वर्धते॥
तावाजितेन्द्रियो न स्याजितसर्वेन्द्रियः पुमान्।
न जितेद्रसनं यावज्जितं सर्वं जिते रसे॥

अनाहार करनेसे शरीरके साथ दूसरी सब इन्द्रियोंका बल क्षीण हो जाता है। उत्तम रूप देखने, उत्तम गन्ध सूँघने, कोमल वस्त्र पाने, श्रेष्ठतम संगीत सुनने तथा अभीष्ट-तम स्त्रीको पहननेकी कामना भी उपवासमें मर जाती है। क्षुधाक्षाम व्यक्तिको यह सब कुछ सुहाता नहीं; किंतु अनाहारसे जिह्वाकी स्वादलोलुपता बढ़ती है।

तबतक मनुष्य जितेन्द्रिय नहीं है, जबतक जिह्वाको जीत न ले, भले उसने दूसरी सब इन्द्रियोंको जीत लिया हो। जिसने रसनाको जीत लिया, उसने सबको जीत लिया।

श्रीमद्भागवतका तुम नित्य पाठ करते हो, अतः यह बात तुम्हें ध्यानमें आनी चाहिये थी। किंतु इस भ्रममें नहीं रहना चाहिये कि स्वादेन्द्रियको वशमें कर लेनेसे जननेन्द्रिय भी वशमें हो जायगी। तुमने पुराणोंमें महत्तम तपस्वियोंके तपःस्खलनकी कथाएँ पढ़ी हैं। मनोभव दुर्जय है और वह किसीको भी कब पराभूत कर देगा, कहा नहीं जा सकता। अतएव इस ओरसे सम्यक् सावधानी ही व्यक्तिको सुरक्षित रख सकती है।

मुझे एक संतकी बात स्मरण आ रही है। उन्होंने कहा था—'मैंने बहुत दिनोंतक शीशमके पत्ते खाये। मुझे वे स्वादिष्ट लगने लगे। उन्हें त्यागकर नीमके पत्ते मैंने चबाने लगा। थोड़े दिनोंमें वे भी स्वादिष्ट लगने लगे। उन्हें भी खानेको जी करता था। बड़ी दुष्टा है रसना। यह अफीम-जैसे कटु पदार्थमें भी स्वाद उत्पन्न कर देती है। स्वाद न आये, यह सम्भव नहीं है। स्वादानुभवको महत्त्व मत दो। स्वादकी उपेक्षा करके स्वास्थ्य, शुचिता और अपने संयमको महत्त्व दो।'

यही बात उपस्थ-जयके सम्बन्धमें कहनी है मुझे। साधक या संत होनेका अर्थ पुंस्त्वहीन होना नहीं है। काम मनमें ही न आवे, ऐसी जिन महापुरुषोंकी स्थिति हो, वे लोकवन्द्य हैं; किंतु सामान्यतः यह असम्भवप्राय है। जो वृत्ति मनमें आनेके पश्चात् ज्ञात होती है, उस अनागता अज्ञातवृत्तिको कोई कैसे रोक सकता है ? उसे आनेका निमित्त न मिले, ऐसी अपनी ओरसे सम्यक् सावधानी और आनेपर उसे दबा देनेकी क्षमता—इतना तुम सम्पन्न कर लो तो तुम सच्चे साधक हो।

जिह्वाका स्वाद और उपस्थकी काम तृष्णा जिसको प्रतीत होकर, जिसके मनमें आकर भी उसे विचलित नहीं कर सकें, वह धृतिमान् है; क्योंकि वही सम्यक् धारणामें स्थित रहनेमें समर्थ है। यह अवस्था दृढ़ निश्चय तथा सतत प्रयत्नसे ही प्राप्त होती है। उपवासादि हठके साधन इसमें सहायक नहीं हो सकते।

आशा है, तुम इस तथ्यको ठीकरूपमें ग्रहण करोगे और सच्चे अर्थमें धृतिमान् बननेका मार्ग अपनाओगे।

अब आज लम्बे प्रयासमें जाना है। नन्हेंको प्यार।

कार्तिक शुक्ल अष्टमी
सं० २०२१

तुम्हारा शुभैषी—
भद्रसेन

सब रसोंका सार रस

गहौ मन सब रसको रस सार।
लोक बेद कुल करमै तजिये, भजिये नित्य विहार॥
गृह कामिनि कंचन धन त्यागौ, सुमिरौ स्याम उदार।
कहि हरिदास रीति संतनकी, गादीको अधिकार॥

—श्रीहरिदासजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन-स्तर-उन्नयन—एक दृष्टिकोण

(लेखक—श्रीइन्दुभूषणजी पाण्डेय एम्० ए०)

कुछ दिनोंसे हमारी सरकारने स्वदेश एवं विदेशमें एक नया नारा दिया है—'जीवन स्तरको उच्च बनाना'। भारत एक गरीब देश है। इसकी जनताका जीवन दुःखों एवं अभावोंसे भरा है। यह इस नारेकी पूर्व मान्यता है, जिसकी सत्यतामें किसीको संदेह नहीं है। इसलिये इसमें परिवर्तन करना और गरीबीको समृद्धिमें बदलना किसी भी सरकारका आवश्यक कर्तव्य है—इसे स्वीकार न करना भी असम्भव ही है। फलस्वरूप हमारे नेतृवर्गको अपने इस नये नारेके द्वारा जनप्रियता एवं जनसहयोग प्राप्त करनेकी ही आशा है—विरोधकी नहीं। इसलिये सम्भव है, इन पंक्तियोंमें व्यक्त विचार उन्हें रुचिकर न लगें, परंतु वस्तुस्थितिको ध्यानमें न रखकर, गरीबी-निवारणके नामपर एक ऐसे जीवन-दर्शनका निर्माण करना, जो हमारी संस्कृतिके लिये घातक है, समाजके चिन्तनशील, जागरूक तत्त्वोंकी मान्यता नहीं प्राप्त कर सकता। यह नारा सामयिक है, जनकल्याणकी भावनासे अनुस्यूत है, परंतु इसकी सिद्धिके लिये अपनायी जानेवाली नीतिका आधार एवं उद्देश्य क्या है, इस नीतिपर चलकर, हम अपनी संस्कृति एवं आत्मसम्मानकी कहाँतक रक्षा कर सकते हैं, इत्यादि प्रश्नोंके उत्तर विचारणीय हैं। विशेषकर जब इसे सरकारकी भी मान्यता प्राप्त हो जाय तो संकट और भी बढ़ जाता है। हमारे वर्तमान प्रधानमन्त्रीने एक बार नहीं, अनेक बार यह कहा है कि हम विदेशी सहायताके बिना अपना काम नहीं चला सकते और हमारा लक्ष्य जनताकी गरीबी दूर करना है। इस गरीबीको दूर करनेका माध्यम विदेशी सहायता ही हो सकती है, ऐसा कुछ उनके कथन एवं प्रयासोंसे स्पष्ट होता है। परंतु मेरी बुद्धिसे गरीबीकी दवा विदेशी सहायता न होकर स्वदेशी उत्पादन एवं श्रम है। दूसरोंसे प्राप्त धनके द्वारा हम दो-चार-पाँच वर्षोंतक एक कामचलाऊ उच्चस्तर भले प्रदर्शित कर लें, परंतु यह मात्रप्रदर्शन ही होगा, वास्तविकतापर आधारित एक वस्तुस्थिति नहीं। परमुखापेक्षिताके आत्मघाती दर्शनको एक तरफ छोड़कर भी, यदि हम विदेशी ऋणोंकी आर्थिक सम्भावनाओंको ही आधार मानें तो अन्ततः इसकी वाञ्छनीयता संदेहास्पद ही सिद्ध होगी। विदेशोंसे प्राप्त होनेवाली सहायताके दो मुख्य रूप हैं—एक धन-मुद्रा और दूसरा खाद्य-सामग्री एवं औद्योगिक साधन, जिनकी उपलब्धिसे हम बड़े-बड़े कल-कारखाने स्थापित कर सकते हैं। इस सहायतामें ऋणका भी एक महत्त्वपूर्ण अंश है, जिसे लौटानेकी भी समस्या अब हमारे सामने उपस्थित हो रही है। इनकी आवश्यकता हमें है; क्योंकि हमारे देशमें अन्नसंकट है और औद्योगिक पिछड़ापन है। मरते हुए लोगोंसे अन्नोत्पादनकी अपेक्षा करना मूर्खता है और बीसवीं सदीमें औद्योगिक पिछड़ापन है एक पाप। हमारा नेतृवर्ग न तो मूर्ख ही है और न तो पापी ही, इसलिये क्या आश्चर्य है यदि वह येन-केन प्रकारेण इनसे युद्ध करनेको कटिबद्ध हो। यह युद्ध स्व० प्रधान मन्त्री नेहरूजीने प्रारम्भ किया था और इसका नीति-निर्देशन भी सफलतापूर्वक किया था। उस मार्गमें चलते रहना ही हमारा पुनीत कर्तव्य है, विशेषकर हालमें हुए सशस्त्र विवादमें हमारी सफलताकी कुंजी हमारी औद्योगिक स्थिति ही थी। इस सर्वसम्मत मान्यताके बाद भी इसकी आलोचना हास्यास्पद नहीं है तो और क्या है ?

इन तर्कोंके आधारपर ही हम अपनी वर्तमान नीतिका समर्थन करते हैं। परंतु यदि भारतीय जीवनकी गहराईमें बैठकर इसके आदर्श और वर्तमान यथार्थको ध्यानसे देखा जाय तो ये सभी तर्क अयुक्त ही नहीं, आत्मघाती सिद्ध होते हैं। भारत एक देश ही नहीं, कुछ लोगोंद्वारा शासित एक भूखण्ड मात्र ही नहीं, एक जन-समूह नहीं, बल्कि एक विशेष प्रकारकी संस्कृति है, एक विशेष दर्शन है और है विश्वमें एक चिर-नूतन किरण। इसमें रहनेवालोंने समय गुजारा ही नहीं है, उसका निर्माण भी किया है। भारतीय जीवन अपनेमें ही एक आकर्षण रहा है—इस आकर्षणका केन्द्रबिन्दु केवल अन्न, अधिक मुद्रा और एक शस्त्र-सुसज्जित सेनासे ही नहीं निर्मित था, बल्कि अर्ध-नग्न, आधेभूखे प्राणियोंद्वारा अपनाया गया आध्यात्मिक जीवनका भी इसमें योगदान था। सच पूछिये तो यह दिव्य जीवन ही भारतीय जीवनकी धुरी था। अपने इस संदेशके लिये ही, अपनी इस जीवनधाराके बलपर ही वह आज भी विश्वके सांस्कृतिक मानचित्रमें एक गौरवपूर्ण स्थान रखता है। अभिप्राय यह कि सिद्धान्ततः भारतका लक्ष्य एक आध्यात्मिक आत्मत्व-स्थापन है, आर्थिक या राजनीतिक भागदौड़ नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरा अभिप्राय यह नहीं कि अन्नकी समस्या भी आध्यात्मिक है या हमारा औद्योगिक पिछड़ापन भी इसी स्तरपर मिटाया जा सकता है या इसका भी हल कुछ ऐसा ही हो सकता है। परंतु जीवनके इस पहलूकी उपेक्षा करना भी राष्ट्रीय हितमें नहीं है और न तो इससे हमारा प्रयोजन ही सिद्ध होता है।

स्थूल दृष्टिसे इसमें कोई हानि नहीं है, यदि हमारी सरकार दूसरोंसे अन्न प्राप्त कर ले और कुछ द्रव्य लेकर उससे द्रव्योपार्जनके साधन बढ़ाये, परंतु यदि सूक्ष्म ढंगसे विवेचना की जाय तो इसकी कुसम्भावनाओंपर कुछ प्रकाश पड़ सकता है। विशेषकर जब अर्थप्रधान इस नीतिको सरकार-का भी आश्रय प्राप्त हो जाय और शासन भी इसे ही अपना लक्ष्य बना ले।

भारतीय जीवनमें आध्यात्मिकता और भौतिकताके बीच रस्साकसी काफी पुरानी है। जहाँ अध्यात्म-प्रधान जीवनने हमारे राष्ट्रको अनेकों तरहसे समृद्ध बनाया, वहीं इससे कुछ बुराइयाँ भी आयीं, जिनके लिये आवश्यक पश्चात्ताप हमने दासताकी बेड़ियाँ पहनकर पूरा कर लिया है। इस तथ्यको ध्यानमें रखकर कोई भी राष्ट्रप्रेमी ऐसी नीतिका समर्थन नहीं ही कर सकता जो हमसे संसारको स्वप्नवत् मिथ्या कहे और इसके प्रति उपेक्षा दिखानेकी शिक्षा दे। हमारे राष्ट्रकी आवश्यकता आर्थिक रूपसे सुदृढ़ एवं शक्तिशाली होने-की है, इसमें कोई संदेह नहीं, परंतु उधार ली हुई समृद्धिके स्थायित्वका कोई भरोसा नहीं (जिसका कटु अनुभव हमें गत युद्धमें हो चुका है) और न तो अर्थप्रधान जीवनसे मानव-कल्याणकी आशा ही। इसलिये हमारे नेतृवर्गसे अपनी नीति उद्घोषित करनेके पूर्व जीवनके इस अध्यात्मपक्षके लिये भी कुछ सोच लेनेकी अपेक्षा करना कुछ अनुचित नहीं है। हमारे भूतपूर्व राष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन महोदयकी तो प्रसिद्ध उक्ति ही है—'मनुष्य केवल रोटीसे ही नहीं जीता है।'

येन-केन-प्रकारेण आर्थिक समृद्धिके दुष्परिणाम भी हमारे समाजमें परिलक्षित हो रहे हैं। लगभग सभी महान् नेता एक स्वरसे शासनमें भ्रष्टाचारकी आलोचना करते हैं। हमारे गृहमन्त्री महोदयने तो इसके विरुद्ध अभियानका सूत्रपात कर इस तथ्यकी आधिकारिक पुष्टि कर दी है। किंतु सच पूछिये तो यह भ्रष्टाचार हमारे समाज और उसकी समकालीन मूल्यविषयक अवचेतना तथा उसकी मान्यताओंमें ही है। भारतके जनजीवनकी समस्या आर्थिक है—आध्यात्मिक नहीं। किंतु जनमानस आध्यात्मिक मूल्योंकी श्रेष्ठताके चंगुलसे अभी नहीं निकल पाया है। प्राचीन मूल्योंकी यह संचेतना और वर्तमान मूल्योंकी प्राप्ति प्रयत्नोंकी इस बाध्यताके बीच हमारा सबसे उद्बुद्ध मस्तिष्क भी विभाजित है—परिणामस्वरूप व्यक्तिगत हित और सामूहिक हित अथवा राष्ट्रकल्याणके बीच संघर्ष अनिवार्य है। भ्रष्टाचार विभाजित हितोंका ही नाम है। राष्ट्रप्रेमके लिये, राष्ट्रहितकी रक्षाके लिये त्यागकी भावना अर्थपिपासु जनोंमें भी हो सकती है, परंतु केवल उसी सीमा तक जहाँ तक उसके अपने हितपर संकट हो। इसके विपरीत समाज-का मध्यवर्ग या गरीबवर्ग कभी भी संगठित हितके लिये आसानीसे बलिवेदीपर चढ़ाया जा सकता है। और चढ़ाया जाया करता है। इसलिये एक प्रजातान्त्रिक सरकार इसके योगक्षेमके निमित्त आर्थिक विकासकी योजना बनाये तो किसीको विरोध नहीं होना चाहिये; परंतु इस विकास-योजना-के लिये उस वर्गकी क्षमतापर भी ध्यान देना आवश्यक है। चूँकि समाजका उच्चवर्ग अर्थवादके दर्शनसे अनुप्राणित है, इसलिये विकासकी योजनाका भार पड़ता तो है, इस मध्य और गरीबवर्गपर ही, परंतु लाभ उन्हें कम ही होता है। कारण हमारी यह दुर्भाग्यपूर्ण नीति ही है। महात्माजीने इसकी बुराईको देखा था और इसलिये उनकी सीख इस प्रकारकी अर्थ-पिपासाके विरुद्ध ही थी, परंतु उनकी मृत्युने हमें दिग्भ्रान्त कर दिया और धनकी पिपासा बढ़ती चली गयी। निश्चित ही महात्माजीकी यह सीख सबके लिये थी, परंतु उसका असली लक्ष्य हमारे समाजका धनीवर्ग ही था। रोटीके लिये परेशान युवकसे आर्थिक संयमनकी बात करना किसीको भी मूर्खतापूर्ण लग सकता है, परंतु ऊँचे-ऊँचे प्रासाद खड़े करनेवाले धनियोंसे कुछ प्रार्थना तो की ही जा सकती है। क्या जलक्रीड़ाके निमित्त स्वीमिंग पुल बनवानेवाले, कलकारखानोंके लिये वातानुकूलित कार्यालयकी व्यवस्था करनेवाले सरकारी अधिकारियोंसे इस बातकी अपेक्षा करना अनुचित है कि वे कुछ संयमसे काम लें और एकाएक जीवनस्तरको ऊँचा उठानेकी कल्पना न करें! क्या झूठे सम्मानके लिये जनताद्वारा दी गयी धनराशिका दुरुपयोग करनेवाले सरकारी कर्मचारियोंसे कुछ आत्मसंयमका निवेदन करना बुरा है? क्या इसकी आवश्यकता सभी नहीं महसूस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करते हैं, परंतु कार्यरूप नहीं दे पाते। कारण सरकारकी पैसा खर्च कर देनेसे ही विकास हो जानेकी मान्यता है। जहाँतक कम खर्च करनेवाले अधिकारीकी संस्तुति होनी चाहिये, वहीं उस अधिकारीसे पैसे न खर्च कर पानेका स्पष्टीकरण माँगा जाता है। परिणाम—३१ मार्चको किसी सरकारी कार्यालय—खासकर किसी इंजीनियरिङ्ग कार्यालयमें जाइये, आपको चेकोंकी संख्या देखकर अंदाजा लग जायगा। अनधिकारिक रूपसे प्राप्त हजारोंकी रकम यदि इन अधिकारियोंको अनायास मिल जाती है तो वे इसका प्रयोग नाट्यगृहों और क्लब एवं बारोंके अतिरिक्त करें ही कहाँ? फिर उनसे मद्यनिषेधकी योजनाके कार्यान्वितकी आशा कैसे की जा सकती है? इसलिये क्या आश्चर्य यदि हमारी सरकार राजनीतिके निर्देशक तत्त्वोंके कार्यान्वयमें भी शिथिल दिखायी दे? फिर जीवनके स्तरको भी तो ऊँचा करना है? इस ऊँचाईका मापदण्ड इस वर्गके लिये अधिक-से-अधिक पैसा खर्च करना ही तो है। फलस्वरूप अधिक-से-अधिक पैसा यह वर्ग ही खर्च कर डालता है और मध्यवर्ग नाममात्रके लिये ही कुछ पाता है।

अधिकारियोंका यह वर्ग अब केवल शासनके लिये उत्तरदायी व्यक्तियोंसे ही नहीं बना है, बल्कि हमारी सरकारके मन्त्रीगण भी इसी वर्गमें आते हैं। अधिकतर ये मन्त्रीगण सामाजिक व्यक्ति भी हैं। उनका दल किसी विशेष प्रकारके सामाजिक जीवनका निर्माण करनेके लिये वचनबद्ध है अर्थात् वे समाजसुधारक एवं नीतिविधायक हैं। विधानका निर्माण भी उन्हींका काम है। इस प्रकार उत्तरदायी शासनके स्थापनक्रममें लगभग सम्पूर्ण शक्तियाँ इनके हाथोंमें ही केन्द्रीभूत हो गयी हैं। इसलिये यह कहना कि सरकार धर्म और धार्मिक जीवनके बारेमें न तो सोच सकती है और न तो कुछ कर ही सकती है, समीचीन नहीं लगता। लोककल्याणकारी शासनके बारेमें तो यह कथन और भी अनुत्तरदायित्वपूर्ण प्रतीत होता है: क्योंकि 'कल्याण' का अभिप्राय (कम-से-कम भारतमें) केवल आर्थिक समृद्धि नहीं है, बल्कि व्यक्तिका आत्यन्तिक उत्थान है, उसके समग्रका विकास है। कोई भी सरकार सच्चे अर्थमें लोककल्याणकारी रहते हुए इस उत्तरदायित्वसे मुँह नहीं मोड़ सकती। समाजके अग्रणी व्यक्ति ही जब शासक हों, तब तो इस बातका उत्तरदायित्व सरकारपर और भी बढ़ जाता है कि वह तात्कालिक समस्याओंका हल भी राष्ट्र, जाति एवं व्यक्तिके सच्चे कल्याणको ध्यानमें रखते हुए करे। पैसेके बलपर जीवनस्तर ऊँचा उठाकर हम कहाँतक समाजका वास्तविक कल्याण कर सकते हैं, यह एक विचारणीय प्रश्न है। फिर दूसरोंसे ऋण लेकर ऐसा करनेकी इच्छा रखना तो और भी भ्रान्तिपूर्ण है। इस संदर्भमें यह कहना आवश्यक लग रहा है कि सुशासनका अभिप्राय जनसाधारणकी इच्छाका बलवती होना ही नहीं है, बल्कि सामान्य इच्छाकी भी अभिव्यक्ति आवश्यक है। विद्वान् फ्रांसीसी दार्शनिक रूसीके विचार हमारे पथप्रदर्शक होने चाहिये, न कि मात्र जनप्रिय हल्के-फुल्के मूल्योंकी स्थापना और घटिया नारोंकी सिद्धिके विचार। फिर व्यक्तिगत समृद्धि या जातिगत कल्याणकी भावनासे शासनका चलना कितना हानिप्रद है, यह सोचनेकी बात है। शासक, सुधारक, विधायक सभी शक्तियाँ जब कुछ ही लोगोंके पास हों, तब तो किसी एक पक्षकी उपेक्षा होती है जैसा कि आजकी स्थितिसे स्पष्ट है। सरकारद्वारा अपनाये गये इस अर्थप्रधान जीवनदर्शनका दुष्परिणाम, केवल अधिकारियोंके स्वाभाविक पतनतक ही नहीं सीमित है, बल्कि जन-साधारण भी अपना कर्तव्य भूलकर केवल अधिकारोंके लिये लड़नेका दुराग्रही बन गया है। यदि हमारे यहाँ अन्नसंकट है, गरीबी है, तो इसके लिये व्यक्ति अपनेको उत्तरदायी नहीं समझता, बल्कि सरकार और समाजको दोष देता है और उनसे विद्रोह करनेकी उतावली दिखलाता है। परंतु विद्रोह शक्ति-सापेक्ष है। निर्बलका विद्रोह, दो-एक सप्ताहतक लूटपाट मचाकर शान्त हो जाता है और दो-एक छटाँक गल्ला लेकर या दो-चार तथाकथित नेताओंको सरकारी जेलोंसे छुट्टी दिलाकर अपना कर्तव्य समाप्त समझ लेता है। उसे यह नहीं समझमें आता कि हमें अन्नोत्पादनमें वृद्धि करनी चाहिये और अधिक श्रमसे जीवनको सुखमय बनानेका प्रयास करना चाहिये। सरकार उसे अच्छे जीवनके आँकड़े दे देती है और वह शान्त हो जाता है। स्थानीय स्तरपर ही किसी कामको कर लेनेका न तो प्रयास होता है और न तो उसे सफलता ही मिलती है। केरलके लोगोंको अधिक चावल चाहिये, तो इसका निर्णय खाद्यमन्त्री और प्रधानमन्त्रीद्वारा ही होगा, जिन्हें अपने अधीनस्थ अधिकारियोंकी सूचनाओंका ही भरोसा है। ये सूचनाएँ कहाँतक विश्वसनीय हैं इसका आभास स्व० प्रधानमन्त्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पं० नेहरू और डा० लोहियाके बीच हुए विवादसे मिल गया था। कार्यव्यस्तता तथा कुछ नियमोंका पालन इन मन्त्रियोंको जनसाधारणसे अलग ही रखता है। इसलिये इन्हें न तो जनताकी इच्छाओंका निजी ज्ञान है और न तो उसकी आवश्यकताओंका अनुभव। परिणामस्वरूप एक छोटेसे निर्णयके लिये भी अनावश्यक विलम्ब होता है और शासन एवं जनताके बीच मनमुटाव उत्पन्न होकर अनस्पृहणीय आन्दोलनों एवं झगड़ोंका प्रारम्भ। चूँकि जनबल शासनद्वारा संचालित है, असंगठित है, अशिक्षित है, इसलिये सरकार विजयी होती है। छोटी-मोटी सुविधाएँ देकर जनताका मुँह बंद कर दिया जाता है। इसमें ही शासन अपने कर्तव्यकी इति मान लेता है। अपने अभीष्टको इस आसानीसे प्राप्त होते देखकर जनताका विध्वंसात्मक मनोबल बढ़ता है और उसे कर्तव्योंका ध्यान ही नहीं रह जाता। किसान कुछ अन्न, कुछ बीज, कुछ तकावी प्राप्त कर लेता है और संतुष्ट होकर विपत्तियोंसे लड़नेकी तैयारी नहीं करता, बल्कि हाथ-पर-हाथ रखकर बैठा रहता है, जबतक उसके कार्य चलते हैं। वह तभी चौंकता है, जब कोई प्राकृतिक विपत्ति आती है। आश्चर्य तो यह है कि इन प्राकृतिक आपत्तियोंके लिये भी शासनको जिम्मेदार ठहराया जाता है और पापी शासनका कुफल अनावृष्टि या अतिवृष्टि, सूखा और अकाल हैं, ऐसा कहनेवाले भी कम नहीं होते। इस प्रकार सरकार उनकी हर सुविधाको कम-से-कम श्रमपर उपलब्ध करनेके लिये उत्तरदायी समझी जाती है। कोई भी हितचिन्तक इस स्थितिको आन्तरिक दुर्बलता ही कहेगा। इसे परसुखापेक्षिताका मानसिक रोग भी कहा जाय तो भी अत्युक्ति नहीं होगी।

सारांश यह कि शासनका कर्तव्य एक लोककल्याणकारी संगठन होना मात्र ही नहीं है, बल्कि बहुत कुछ शैक्षणिक भी है। सुशासन, यदि किसी विशेष हितको दृष्टिगत रखकर चलाया जाता है, तो वह निश्चित ही व्यक्तिका वास्तविक हित है, जिसका सम्बन्ध उसके जीवनके धनधान्यपूर्ण होनेसे ही नहीं है, बल्कि मूल्योंके यथोचित समापनसे भी है। सरकार जनताको मूल्योंकी शिक्षा देती है और ये मूल्य यदि जीवन-स्तरको ऊँचा उठानेके नामपर एकांगी बना दिये गये तो उससे आत्यन्तिक कल्याण करनेमें असफलता होगी, इसमें कोई संदेह नहीं। इसलिये यह आवश्यक है कि हमारा नेतृवर्ग अपने इस कर्तव्यके प्रति भी जागरूक हो और साहसके साथ जनतासे उसके जीवन-स्तरको ऊँचा करनेके साथ-ही-साथ जीवनके मानदण्डको भी ऊँचा करनेके लिये उद्‌बोधित करे। इस साहसके लिये अपेक्षित है त्याग एवं आध्यात्मिक बल। त्याग अर्थप्रधान नीतिपर आवश्यक अङ्कुश लगानेका ही दूसरा नाम है। इसकी थोड़ी-सी झलक हमें अपने वर्तमान प्रधान मन्त्रीके व्यवहारमें मिली है। सचमुच अमेरिकी कांग्रेसको भेजा गया राष्ट्रपति जानसनका संदेश हमारे गौरवके अनुकूल था। राष्ट्र-गौरवको ध्यानमें रखकर जनता अपना काम विदेशी सहायताके बिना भी चला लेगी, जीवन-स्तर ऊँचा उठानेकी बेचैनी उसे इतनी अधिक नहीं है कि वह 'येन केन प्रकारेण' की नीतिसे सहमत हो सके। इसलिये शासनको एकांगी होनेकी आवश्यकता और भी असमीचीन है। फिर जीवनविषयक मूल्योंका यह पक्ष आन्तरिक है। यह हमेशा, हर कहीं और हर समय प्रकट नहीं होता। इसकी अभिव्यक्ति मानवविकासके इतिहासके कुछ विशेष अवसरोंपर ही होती है। इसके प्रति हुए अन्यायके विरुद्ध रोष एकाएक फूट पड़ता है। शासन जब धनधान्य-समृद्धिके लिये हर सम्भव उपाय करता रहता है और सफल होता हुआ भी दृष्टिगोचर होता है, तभी सहसा यह असंतोष फूट सकता है और स्थितिको संकटापन्न कर सकता है। इसलिये इसके साथ न्याय करना वर्तमान परिस्थितिमें परम आवश्यक है।

कैसे यह पतन रुकेगा ?

जबसे बना हमारे जीवनका उद्‌देश्य—'अर्थ', 'अधिकार'।
तबसे उठा पवित्र त्याग, आध्यात्मिक बलका शुचि आधार॥
आयी अस्तव्यस्तता, छाया सभी ओर व्यापक व्यामोह।
मिटी सभी कर्तव्य-भावना, छाया नीच स्वार्थ मद-मोह॥
हटा हृदयसे प्रेम, द्वेष-हिंसाने छीन लिया वह स्थान।
बुद्धि तामसी हुई, मिट गया धर्माधर्म-हिताहित-ज्ञान॥
तोड़-फोड़कर, आग लगाकर, हत्या कर—करते अभिमान।
दुर्बलको दुख देते, करते गुरुजनका सगर्व अपमान॥
छाया भ्रष्टाचार चतुर्दिक्‌ अनाचार, अति अत्याचार।
हुआ विनाश सत्यका, हुआ प्रवर्तित मिथ्यामय व्यापार॥
राजनीतिने कर ली वेश्यावृत्ति सहर्ष आज स्वीकार।
जहाँ 'अर्थ' वहाँ चली वरण कर, छोड़ सभी सिद्धान्त-विचार॥
कैसे यह बहुमुखी रुकेगा पतन, पुनः होगा उत्थान?
सबको दें सद्‌बुद्धि पतितपावन करुणाकर श्रीभगवान॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दैवीकरण

[परस्पर बातचीत]

(लेखक—श्रीराजेन्द्रप्रसादजी जैन)

—शिक्षाका राष्ट्रीयकरण होना चाहिये। शिक्षा-जगत्में जो आज भ्रष्टाचार, तोड़-फोड़, अनुशासनहीनता, अन्याय, आघात और उत्पीड़न फैला हुआ है, प्रतिभाओंका जो विकास अवरुद्ध हो रहा है और कहीं-कहीं शिक्षालयोंकी आड़में विघटनकारी तत्त्व पनप रहे हैं, उसकी एकमात्र चिकित्सा उसका एकमात्र समाधान है—शिक्षाका राष्ट्रीयकरण।

—राष्ट्रीयकरणसे हमारा तात्पर्य है सरकारीकरण। यह मैंने विषयको स्पष्ट करनेके लिये कहा; क्योंकि राष्ट्रीयकरणके अर्थोंमें लोग खींचातानी करने लगते हैं। सरकारीकरण शब्द बहुत स्पष्ट है, इसके दो अर्थ नहीं लग सकते। हमारी माँग है कि समस्त मान्यताप्राप्त शिक्षालयोंपर राज्यका पूर्ण नियन्त्रण हो जाना चाहिये। उनका प्रबन्ध और सञ्चालन भी ठीक उसी प्रकार उन्हीं राज्याधिकारियोंद्वारा होना चाहिये जिस प्रकार कि राजकीय विद्यालयोंका होता है।

—यह अच्छा हुआ कि आपने विषयको स्पष्ट कर दिया, परंतु क्या सरकारी विभागोंमें भ्रष्टाचार नहीं फैला हुआ है? क्या सरकारी विभागोंमें भी विघटनकारी तत्त्व नहीं पनप रहे हैं? कश्मीर, बिहार और तिहाड़-जेलमें जो हुआ क्या आप उससे अपरिचित हैं? और क्या जो अराजकीय विद्यालयोंकी ...याँ आपने गिनायी हैं वे अधिकारियोंसे छिपी हुई हैं और ... शिक्षाविभागके अधिकारियोंको आज भी इतने अधि-... नहीं कि वे इन शिक्षालयोंमें चलनेवाली प्रत्येक ...कार प्राप्त ... ...कें? भ्रष्टाचार, तोड़फोड़, अन्याय, उत्पीड़न ...बुराईको रोक ... प्रवृत्तियाँ समाजके प्रत्येक क्षेत्रसे दूर की और विघटनकारी ... राजकीय हों अथवा अराजकीय। ...नी चाहिये, चाहे ... ...ी आप शासनकी क्षमता सीमित केवल राजकीय क्षेत्रतक ... ...फ सरकारी विभागोंके बाहर समझते हैं तो इसका अर्थ है ... ...ासन उत्तरदायी नहीं। जो कुछ भी होता है उसके लिये ... ...ा न सुधरी तो फिर यदि सरकारीकरणसे भी शिक्षालयोंकी द... है कि राजकीय कौन-सा करण लायेंगे। यह बात ठीक ... ...भावृत ऊँचा विद्यालयोंमें शिक्षा और अनुशासनका स्तर अप... कम हो होता है और नियमबद्धताके कारण वहाँ पक्षपात भी पाता है, परंतु ऐसी नियमबद्धता यदि शासन चाहे तो अराजकीय विद्यालयोंमें भी लायी जा सकती है। रही अनुशासन और शिक्षास्तरकी बात, सो इनमें राजकीय विद्यालयोंकी विशेषता तभीतक है, जबतक उनकी संख्या नगण्य है। तभीतक राजकीय विद्यालयोंमें छाँट-छाँटकर विद्यार्थी लिये जा सकते हैं। सभी शिक्षालयोंका सरकारी-करण होनेके पश्चात् यह स्थिति नहीं रहेगी और यदि अराज-कीय अध्यापकोंको भी वे ही सुविधाएँ प्राप्त हो गयीं जो राजकीय अध्यापकोंको प्राप्त हैं तो फिर अराजकीय विद्यालयों-में भी योग्यसे योग्य अध्यापक आने लगेंगे और तब अनुशासन तथा शिक्षाके स्तरको लेकर दोनों प्रकारके विद्यालयोंमें कोई अन्तर नहीं रह जायगा।

—सरकारीकरणसे एक हानि और होगी, तब सरकारी कर्मचारी बन जानेके कारण कोई भी अध्यापक राजनीति-में भाग नहीं ले सकेगा।

—मेरे विचारमें तो राजकीय अध्यापकोंको भी राजनीतिमें भाग लेनेकी छूट होनी चाहिये। वास्तवमें १२०० वर्षतक विदेशियोंकी दासतामें रहनेके कारण हमारे आर्य-संस्कार कुण्ठित हो गये हैं। पराधीन देशमें राजा और प्रजामें भावात्मक एकता नहीं होती। राजा अपना शासन बनाये रखना चाहता है, प्रजा उसे उखाड़ फेंकना चाहती है। प्रजाके किसी भी वर्गका राजनीतिमें भाग लेनेका अर्थ होता है राजद्रोह, परंतु स्वतन्त्र देशमें ऐसा नहीं होता। वहाँ राजा और प्रजा, शासक और शासित सभीका उद्देश्य राष्ट्रको सबल और पुष्ट करना होता है। नीतियाँ भिन्न-भिन्न होती हैं, उद्देश्य एक होता है। अतः स्वाधीन देशमें विरोधी दलोंको, नेताओंको, राजद्रोही न समझा जाकर सम्मान एवं प्रतिष्ठा दी जाती है। आज भारतमें राजनीतिमें भाग लेनेका वही अर्थ नहीं होना चाहिये जो हमारे शासक तुर्कों, मुगलों तथा अंगरेजोंके शासनकालमें लगाते थे। फिर उसका एक पक्ष और है। जब राजनीतिमें विद्यार्थी, अध्यापक, सरकारी कर्मचारी, राजे-महाराजे, साधु-संन्यासी, धर्माचार्य, मजूर—इन सबको भाग लेनेसे रोक दिया जायगा तो फिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाग लेगा कौन ? विशेषतः एक समाजवादी राष्ट्रमें, जिसमें उद्योगधंधोंके राष्ट्रीयकरणकी नीतिके कारण शनैः-शनैः स्वतन्त्र व्यवसायियोंकी संख्या घटती और राजकीय कर्मचारियोंकी संख्या बढ़ती जा रही है। मेरी समझमें तो सेना, पुलिस, न्याय और कार्यकारिणीसे सम्बन्धित कर्मचारियोंको छोड़कर और अन्य सभी राजकर्मचारियोंको भी राजनीतिमें भाग लेनेकी अनुमति होनी चाहिये । यदि विद्यार्थियों, अध्यापकों, सभी सरकारी कर्मचारियों, राजे-महाराजों, साधु-संन्यासियों, धर्माचार्यों और मजूरोंको राजनीतिमें भाग लेनेसे रोक दिया गया तो फिर राजनीति कुछ पेशेवर लोगोंका अखाड़ा बनकर रह जायगी । हिंसा, तोड़-फोड़ तथा विघटनकी बात दूसरी है। वैसी राजनीतिकी तो प्रजाके किसी भी वर्गको अनुमति नहीं होनी चाहिये ।

—तो आप शिक्षालयोंके सरकारीकरणके साथ-साथ अध्यापकोंके लिये कुछ ऐसी विशेष सुविधाएँ भी चाहते हैं जो अबतक राजकीय अध्यापकोंको प्राप्त नहीं। आप यह भी चाहेंगे कि सरकारीकरणके पश्चात् भी अध्यापकोंका स्थानान्तरण न हुआ करे और उनके अवकाशग्रहणकी आयु भी ६० वर्ष यथापूर्व बनी रहे ।

—अवश्य !

—तो फिर आप शिक्षालयोंका सरकारीकरण नहीं, अध्यापकीकरण चाहते हैं । राजकीय तथा अराजकीय विद्यालयोंमें चलनेवाला पाठ्यक्रम तो एक ही है। इस प्रकार शिक्षाका तो सरकारीकरण है ही, केवल अध्यापकोंकी स्थितिमें जो अन्तर है उसे आप दूर करना चाहते हैं।

—इसे ही मैं दूर करना चाहता हूँ, परंतु उसका अर्थ अध्यापकीकरण नहीं है । शिक्षाके अध्यापकीकरण तथा उद्योगधंधोंके श्रमिकीकरणके मैं विरुद्ध हूँ । शिक्षाका सम्बन्ध केवल अध्यापकोंसे न होकर छात्रों, उनके अभिभावकों, दाताओं, समाज और राष्ट्र सभीसे है । इसी प्रकार उद्योग-धंधोंका सम्बन्ध उपभोक्ताओं, कच्चा माल उत्पन्न करनेवाले कृषकों, शिक्षा, विज्ञान, पूँजी, यातायात, नागरिक जीवन, व्यापारियों तथा राष्ट्रकी आर्थिक एवं वैदेशिक नीतिसे भी है । फिर अध्यापक अध्यापकका और श्रमिक श्रमिकका उत्पीड़न न करता हो ऐसी बात नहीं है ।

—सरकारीकरणके पश्चात् यदि सरकारसे ही धर्म और न्यायका लोप हो गया तो फिर सरकारीकरणसे क्या लाभ होगा। सरकार अन्यायी नहीं बन सकती यह आपने कैसे मान लिया ?

—जो सरकार प्रजाके प्रति उत्तरदायी है वह अन्यायी नहीं बन सकती ।

—प्रजाके बहुमतके प्रति-—बहुमत सदैव न्यायके पक्षमें जाता है, यही आप कहते हैं न, आज जो बात अल्पमत कहता है, उसे ही कल बहुमत कहने लगता है। आज जो बहुमत कहता है, कल उसके पीछे बहुमत नहीं रहता। निष्कर्ष यह कि न्याय, अन्याय, धर्म, अधर्म इनके पीछे कोई शाश्वत सिद्धान्त नहीं ।

—प्रजातन्त्रके मैं इसलिये पक्षमें नहीं हूँ कि मैं बहुमतको ईश्वरकी वाणी समझता हूँ । मैं प्रजातन्त्रके पक्षमें इसलिये हूँ कि इसमें अवाञ्छनीय शासनको हटानेके लिये हिंसा, षड्यन्त्र और तोड़फोड़की आवश्यकता नहीं होती, दूसरे किसी भी समस्यापर निर्णय लेनेसे पूर्व उसपर पर्याप्त वाद-विवाद हो लेता है, जिससे उसके प्रत्येक पहलूपर भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण सामने आ जाते हैं। यदि बहुमतका निर्णय ईश्वरकी वाणी नहीं तो क्या राजा अधिनायक अथवा सामन्तोंका निर्णय सदैव ईश्वरकी ही वाणी होता है ?

—प्राचीन कालमें राजा लोग प्रत्येक समस्यापर धर्माचार्योंसे निर्णय माँगते थे और उसे उचित महत्त्व देते थे।

—नहीं भी देते थे, और धर्माचार्य भी स्वार्थ, प्रमाद और अज्ञानके वशीभूत कभी न होते हों, ऐसी बात नहीं। प्राचीन कालमें धर्माचार्य राजाओं और सामन्तोंकी श्रद्धा जीतनेमें समर्थ हुए थे तो क्या वे बहुमतकी श्रद्धा जीतनेमें समर्थ नहीं हो सकते । धर्माचार्योंको निर्णय देने और अपने विचारोंका प्रचार करनेसे कौन रोकता है। वे राजनीतिमें उतरें परंतु इससे कई कठिनाइयाँ उत्पन्न होंगी। प्रथम तो यह कि फिर सभी धर्मोंके धर्माचार्य राजनीतिमें उतरेंगे; क्योंकि हमारा राष्ट्र धर्मनिरपेक्ष है, जिसके दो ही अर्थ हो सकते हैं—सभी धर्मोंका उन्मूलन अथवा सभी धर्मोंको अपने प्रचारकी समान स्वतन्त्रता; परंतु आप यह स्वतन्त्रता केवल आर्य धर्मोंतक ही सीमित रखना चाहते हैं । आपकी धर्मनिरपेक्षिता अभारतीय धर्मोंपर लागू नहीं होती।

—जिन धर्मोंका लक्ष्य भारतकी राष्ट्रियताको खण्डित करना हो, अवश्य ही मैं नहीं चाहता कि उन्हें धार्मिक स्वतन्त्रता प्राप्त हो । धार्मिक स्वतन्त्रताका अर्थ विघटन और राष्ट्रद्रोह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की स्वतन्त्रता नहीं होना चाहिये । धर्मके नामपर व्यभिचार-अनाचारकी स्वतन्त्रता नहीं दी जा सकती । वाममार्ग, अघोर पन्थ और नरबलिको तो आप भी सहन नहीं करेंगे। भारतमें बहुत-से धर्म रह सकते हैं, परंतु उन सबके ऊपर एक राष्ट्रीय धर्म भी होगा । उसकी परिधिमें ही सब धर्म अपना काम करेंगे । धार्मिक स्वतन्त्रता हो, परंतु उसके पीछे एक तात्त्विक चिन्तन होना चाहिये कि धर्मके नामपर किसी भी वर्गको कहाँतक स्वतन्त्रता प्रदान की जा सकती है। इसकी भी एक संहिताकी आवश्यकता है । उस राष्ट्रीय धर्मका पहिला सिद्धान्त होगा—भारत एक और अखण्ड है न केवल भौगोलिक अर्थमें अपितु, इतिहासके अर्थमें भी। वेदोंका भारत, रामायण, महाभारतका, जैनियों और बौद्धोंका भारत, शङ्कर एवं रामानुजका भारत, प्रताप-शिवा तथा गुरु-गोविन्दका भारत तथा दयानन्द, तिलक एवं गान्धीका भारत एक है, जो उन सबमें एकसूत्रताका अनुभव नहीं करता वह भारतीय नहीं है । कश्मीरसे कन्याकुमारी तथा अटकसे कटकतक ही भारत एक नहीं है, वह अग्निमीडे जातवेदा' से लेकर 'सत्यमेव जयते' और बुद्धसे लेकर अरविन्दतक भी एक है। सरकारीकरणसे पूर्व मैं सरकारका राष्ट्रीयकरण और राष्ट्रका भारतीयकरण चाहता हूँ।

—भारतीयकरण तो होना ही चाहिये, परंतु भारतमें उत्पन्न सभी कुछ तो भारतीय नहीं है । वाममार्ग और अघोर-पन्थकी बात तो आप कर ही चुके ।

—जो तत्त्व भारतीय सांस्कृतिक धाराके अङ्ग बन सके, जो आज भी राष्ट्रमें प्राण फूँक सकते हैं, जो शास्त्रानुमोदित तथा श्रेष्ठोंद्वारा आधारित हैं वही भारतीय हैं । जिस प्रथा, जिस आदर्श और जिस विधि-निषेधमें राष्ट्रीय रस है वही भारतीय है । भारतीयकरणसे पूर्व भारतके ही दैवीकरण-की आवश्यकता है, परंतु उस दैवीकरण तक कैसे पहुँचा जाय समस्या यही है ।

कहना, पर करना नहीं

[कहानी]

(लेखक—आचार्य श्री डी० डी० उपमन्यु वैद्य)

एक बहेलिया था बहेलिया । वह चौथे-पाँचवें दिन किसी जंगलमें जाता, वहाँसे चार-पाँच तोते पकड़ लाता और उन्हें बेचकर अपने बच्चोंका लालन-पालन करता । एक बार वह वनमें गया तो उसे कहीं तोते दिखायी न पड़े । बहेलियाको बहुत दूर जाना पड़ा । वहाँसे तोते पकड़कर लौटा तो उसे बड़ी प्यास लगी, ज्येष्ठका महीना था । आस-पास कहीं पानी न मिला तो वह घबराने लगा । कुछ आगे बढ़ा तो उसे एक हरा-भरा बगीचा दिखायी दिया, जैसे-तैसे वहाँ आया । बगीचामें बैठे हुए बाबाजीसे बोला—'बाबा-जी ! बड़ी प्यास लगी है ।' बाबाने उसे पानी पिला-कर पूछा—'अरे भाई ! तुमने इन जीवोंको क्यों पकड़ रक्खा है । इन्हें छोड़ दो न ?'

बहेलिया बोला—'बाबाजी ! मैं इन्हें मारूँगा नहीं । इन्हें बेचकर सिर्फ अपने बच्चोंका पेट पालता हूँ, यही मेरी एकमात्र जीविका है । इससे रुपया, सवा रुपया मिल जाता है और बच्चोंको रोटियाँ हो जाती हैं।'

बाबाने बैठे हुए अपने एक भक्तसे दो रुपये दिलवाकर तोते खरीद लिये । बाबाने उन तोतोंको पाँच बातें पढ़ायीं ।

१—बहेलिया आवेगा,

२—जाल बिछावेगा,

३—दाने डालेगा,

४—वह हमें पकड़ेगा,

५—हम शपथ लेते हैं, हम नहीं पकड़े जायँगे ।

जब तोते खूब पढ़ गये, ज्यों-का-त्यों बोलने लगे तब बाबाने उन्हें उड़ा दिया । उन तोतोंने वन-उपवनके सभी तोतोंको पाँचों बातें पढ़ा दीं—

१—बहेलिया आवेगा,

२—जाल बिछावेगा,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३–दाने डालेगा,

४–वह हमें पकड़ेगा,

५–हम शपथ लेते हैं हम नहीं पकड़े जायँगे।

बहेलिया अबकी बार वनमें आया तो उसने तोतोंकी यह बात सुनकर बड़ा आश्चर्य माना।

अरे ! ये तोते आज क्या पढ़ रहे हैं ?

बहेलिया सोचमें पड़ गया और हताश-सा होकर जैसे-जैसे आगे वनकी ओर बढ़ने लगा उसे आगेसे आगे यही सुनायी दिया —

१–बहेलिया आवेगा,

२–जाल बिछावेगा,

३–दाने डालेगा,

४–वह हमें पकड़ेगा,

५–हम शपथ लेते हैं हम नहीं पकड़े जायँगे।

बहेलिया सोचता चलता है—ओहो ! आज तो कोई भी तोता नहीं फँसेगा। अरे राम ! क्या करूँ ? आज तो खाली हाथ ही लौटना पड़ेगा ? अब मैं अपने प्यारे बच्चेको क्या खिलाऊँगा ? मैंने आजतक कोई दूसरा व्यापार नहीं किया और फिर मैं बुड्ढा भी हो चला। आखिर मैं करूँगा भी क्या ?

थका-माँदा बेचारा बहेलिया निराश हो एक पेड़के नीचे बैठकर चिलम पीने लगा। चिलमका धूँआ उड़ाता हुआ वह विचार करता है—अरे भाई ! जरा जाल बिछाकर तो देखो। बहेलियाने जाल बिछाया। दाने डाले। वह इधर पेड़के नीचे आकर बैठता है कि उसे झप्पी-सुस्ती आ गयी, उधर एक तोता जालके अंदर आ गया, दाने चुगने लगा और पढ़ने लग जाता है—

१–बहेलिया आवेगा,

२–जाल बिछावेगा,

३–दाने डालेगा,

४–वह हमें पकड़ेगा,

५–हम शपथ लेते हैं हम नहीं पकड़े जायँगे।

फिर क्या, एकके बाद दूसरा आया, तीसरा आया, चौथा आया और लीजिये पाँचवाँ भी आ गया—पेड़पर बैठे हुए और जालमें दाने चुगते हुए सभी तोते एक स्वरमें मिलकर चिल्ला-चिल्लाकर गला फाड़-फाड़कर रट लगाते हैं—

१–बहेलिया आवेगा,

२–जाल बिछावेगा,

३–दाने डालेगा,

४–वह हमें पकड़ेगा,

५–हम शपथ लेते हैं हम नहीं पकड़े जायँगे।

उधर बहेलियाकी आँखें खुलीं। उसने देखा–अरे वाह ! जालमें पाँच तोते आ चुके ! उसने आव देखा न ताव—झटसे जालका फंदा खींचा और जालको कंधेपर रख, हँसते-हँसते चलता बना, पर मजा यह है जालमें फँसे मूर्ख तोते अब भी वही चिल्ला-चिल्लाकर रटते जाते।

१–बहेलिया आवेगा,

२–जाल बिछावेगा,

३–दाने डालेगा,

४–वह हमें पकड़ेगा,

५–हम शपथ लेते हैं हम नहीं पकड़े जायँगे।

वाचकवृन्द ! हमने लिखा—सम्पादकजीकी कृपासे पत्रमें छपा, आपने पढ़ा और अनेकोंने सुना–अल्लाह-अल्लाह खैर सल्लाह····

आज हम तथा हमारे स्वतन्त्र भारतके बड़े-बड़े नेता, महानेता तालियोंकी गड़गड़ाहटमें बड़ी-बड़ी स्पीचें झाड़ते हैं, प्रायः प्रतिदिन उद्घाटन होते हैं। नित्य जन्म-जयन्तियाँ, निधन-तिथियाँ मनायी जाती हैं, कमेटियाँ होती हैं, चाय-पार्टियाँ जमतीं और चित्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खिंचते हैं और इन पर्वोंपर बड़े लंबे-चौड़े भाषण होते हैं क्या ?—

'बहिनो, भाइयो और साथियो ! देश परम समृद्ध होगा, हमारा त्यागमय ऊँचा जीवन होगा।

जल्दी न करो, दूध-दहीकी नदी बहेगी, जरा ठहरो, अब मँहगाई नहीं बढ़ेगी। तनिक रुको, नयी आचार-संहिता नयी छपेगी। समिति बैठी है।

रिश्वत लेना-देना पाप है। मोटो लटकाये जा रहे हैं। मिलावट करना महापाप है! सप्ताह मनाइये, चोरबाजारी नहीं होने देंगे! इन्सपेक्टर नियुक्त हैं। आयुर्वेदकी उपेक्षा नहीं रहेगी, विचाराधीन है। हर क्षेत्रमें आत्मनिर्भर होंगे! राष्ट्र-भाषा हिंदी हो— योजनाएँ बन रही हैं। गोहत्या नहीं होनी चाहिये, राज्योंको लिखना। सत्य, अहिंसाका पालन करना चाहिये। गान्धी बाबाके पद-चिह्नोंपर चलना चाहिये। रोज प्रतिज्ञाएँ होतीं, घोषणाएँ होतीं और अन्तमें जय-हिंद बोलकर भाषण समाप्त कर देते।

निःसंदेह आज हम तोतोंकी भाँति पढ़ते, चिल्ला-चिल्लाकर, बोल-बोलकर मिथ्या आश्वासन देते—वस्तुतः यह सब जंगली तोतोंकी तरह अर्थ-अधिकाररूपी जालमें फँसे स्वार्थरूपी दाना चुगते हुए गला फाड़-फाड़कर पढ़ना-पढ़ाना, सुनना-सुनाना शपथ लेना भर खूब जानते, पहिचानते हैं, पर मजा यह है—अमल आचरणमें लाना नहीं जानते-पहिचानते। परिणाम हमारे सामने है।'

अधिकाधिक चमको ! टूटो नहीं

अपनी गति जब उपास्यको सौंप दी है, तो गति-विधि वही सँभालेगा।

चिन्ता न करो वह सब देखकर जो तुम्हारे लिये अप्रत्याशित घट रहा है। भविष्य समझनेकी चेष्टा उद्विग्नता ही लायेगी।

आस्था तनिक विभ्रमित अस्थिरतासे संस्पर्शित भर होती है; डगमगाती नहीं, उखड़ती नहीं, जमी रहती है। यही शुभ है। व्यर्थ ऊहापोहमें डूबो-उतराओ नहीं।

निश्चय ही अकर्मण्य नहीं बनना है। अनिश्चित भी नहीं रहना है।

उचित-अनुचित, नैतिक-अनैतिक निर्णीत करो और चलती हवाकी तेजीमें उखड़े बिना चलो जिधर कर्तव्य इंगित करे!

ऐसा करनेमें मन कसके तो कसकने दो! प्यार मरे, तो मरने दो!

प्रथम बार ऐसा नहीं हो रहा है। कसौटी फिर सामने है। घिसे जानेपर चमको! अधिकाधिक चमको! टूटो नहीं!

—बालकृष्ण बलदुवा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परम उपास्य—श्रीकृष्ण

(लेखक—श्रीरसिकविहारीजी)

ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः।
अनादिरादिर्गोविन्दः सर्वकारणकारणम् ॥

समस्त कारणोंके कारण, समस्त अवतारोंके मूल, सर्वाकर्षक आनन्दविग्रह, रसोंमें, शक्तिमें, ऐश्वर्यमें सर्वातिशायी, नरवपु, किंतु प्राकृत पाञ्चभौतिक शरीरसे अतीत घनीभूत आनन्द ही है—श्रीकृष्णका शरीर। वह मायिक या प्राकृत आनन्द नहीं है, चिन्मय आनन्द है। श्रीकृष्णकी सौन्दर्य-माधुरी भी अप्राकृत है। 'वृन्दावने अप्राकृत नवीनमदन।' प्राकृत जगत्में कामनाकी वस्तुकी प्राप्तिके बाद लालसाका प्रशमन हो जाता है। किंतु कृष्ण-प्राप्तिमें लालसाका अवसान नहीं होता, तृष्णा और बढ़ती जाती है। नित्य नवायमान है कृष्ण-माधुरी!

श्रीकृष्ण समस्त रसोंके विषय—आश्रय हैं। वे अखिलरसामृत-मूर्ति हैं, रसोंका राजा है शृङ्गार और उसीकी प्रतिमूर्ति हैं श्रीकृष्ण। श्रीकृष्णलीलामें ही भगवत्-लीला अत्यन्त माधुर्यमय रूपमें प्रकाशित हुई है। जो शक्ति श्रीकृष्णको आह्लादित करती है, वह शक्ति है—राधिका। यह केवल श्रीकृष्णको ही नहीं, कृष्ण-भक्तको भी सुखास्वादन कराती है। इस ह्लादिनी-शक्तिका सार है प्रेम, आनन्द—चिन्मय रस। प्रेमका सार है महाभाव और महाभावरूपा ही हैं—श्रीराधिका। वे प्रेमकी प्रतिमा हैं। सदा श्रीकृष्णसङ्ग, तथा कृष्ण-चिन्तनमें लीन हैं। श्रीराधिकाके माध्यमसे ही श्रीकृष्ण अपना आस्वादन स्वयं करते हैं। श्रीराधाके बिना श्रीकृष्णकी गति नहीं है। पण्डितप्रवर महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराजने अपने 'श्रीकृष्ण-प्रसङ्ग' नामक ग्रन्थमें कहा है—'एकमात्र राधाभावके प्राप्त करनेपर ही श्रीकृष्ण-तत्त्वके परम स्वरूपका स्फुरण सम्भव है, इससे पहले उसकी ठीक-ठीक स्फूर्ति नहीं होगी।' श्रीराधिका कृष्ण-प्रेममयी हैं।

देवी कृष्णमयी प्रोक्ता राधिका परदेवता।
सर्वलक्ष्मीमयी सर्वकान्तिः सम्मोहिनी परा॥

श्रीराधिकाका श्रीकृष्णप्रेम अनिर्वचनीय है। यह एक दुरवगाह्य अननुमेय हृदयानुभूति है।

एमन पिरीति कभु देखि नाहीं शुनि।
पराने परान बाँधा आपना आपनि॥
दुहुँ कोरे दुहुँ काँदे विच्छेद भाविया।
आध तिल ना देखिले जाय से मरिया॥
जल बिनु मीन येन कभु नाहीं जिये।
मानुषे एमन प्रेम कोथा सुनिये॥

—चण्डीदास

'अपने-आप ही प्राणोंसे प्राण बँध गये हैं। मिलनमें भी वियोगकी आशंकासे दोनों ओर दोनों सशंकित हैं। एक क्षण भी बिना देखे नहीं रह सकते, वैसे ही जैसे जलके बिना मछली नहीं रह सकती। मनुष्यमें ऐसा प्रेम कहीं नहीं सुना गया।'

प्रियस्य संनिकर्षेऽहनि प्रेमोत्कर्षस्वभावतः।
या विश्लेषधियार्तिस्तत् प्रेमवैचित्त्यमुच्यते॥

(उज्ज्वलनीलमणि, शृंगारभेदप्रकरणम्)

श्रीकृष्ण अखण्ड रसस्वरूप हैं और श्रीराधा अखण्ड रसवल्लभा हैं। प्रेममूर्ति राधा जैसे कृष्णमयी हैं, प्रेमविग्रह श्रीकृष्ण भी वैसे ही राधामय हैं। '**चिदचिल्लक्षणं सर्वं राधाकृष्णमयं** जगत्।' जगत्की सब चित् और अचित् वस्तु राधाकृष्णमय हैं। सब उनकी ही विभूति हैं। '**बिना ताभ्यां न किंचन**' राधा-कृष्णके बिना और कुछ नहीं।

श्रीकृष्ण राग हैं श्रीराधा रति हैं। श्रीकृष्ण सूर्य हैं, श्रीराधा प्रभा हैं। श्रीकृष्ण शशाङ्क हैं श्रीराधा अनपायिनी कान्ति हैं। श्रीकृष्ण दिन हैं, श्रीराधा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्युति हैं। श्रीकृष्ण लोभ हैं, श्रीराधा तृष्णा हैं। श्रीकृष्ण द्रुम हैं, श्रीराधा लता हैं। श्रीकृष्ण भगवान् हैं, श्रीराधा भक्त हैं। श्रीराधा ही श्रीकृष्णकी मूर्तिमयी आराधना हैं। तभी श्रीराधाके बिना श्रीकृष्णका कोई अस्तित्व नहीं। श्रीराधाकी कृपाके बिना श्रीकृष्ण-कृपा प्राप्त नहीं हो सकती। भक्तकी सेवाके बिना भगवान्‌की प्रसन्नता अलभ्य है।

अनाराध्य राधापदाम्भोजरेणु-
मनाश्रित्य वृन्दाटवीं तत्पदाङ्काम्।
असम्भाष्य तद्भावगम्भीरचित्तान्
कुतः श्यामसिंधो रसस्यावगाहः॥

भक्तिशास्त्रमें रागात्मिका भक्तिको भगवत्-प्राप्तिका परमोत्कृष्ट और मधुरतम साधन बताया गया है। उस असीम रूपातीतकी उपलब्धि रागात्मिका भक्तिके द्वारा ही सम्भव है। यह भक्ति ही सब प्रकारकी सिद्धियोंकी अन्तर्निहित प्राणधारा है। भक्तकी सारी चेष्टाएँ भगवत्-सेवा है। भगवान्‌की प्रीतिको छोड़कर कोई और काम उसे नहीं है। भक्त सुखकी कामना नहीं करता, केवल सेवा करना चाहता है। फिर सेवाके आनन्दसे सेवाकी अभिलाषामें ही उसे अधिक आनन्द मिलता है।

महाप्रभु श्रीकृष्णचैतन्यने इस प्रेमोज्ज्वल भक्ति-मार्गका प्रदर्शन नाम-संकीर्तनके माध्यमसे किया है। कलिकालमें नाम-संकीर्तनमें ही भक्तिका समुत्थान हुआ है। नामसे ही शान्ति मिलती है, संसृतिका नाश होता है। एकमात्र नाममें ही प्रेमदानकी क्षमता है। नाम माधुरी है। नाम पापहर है, यह बड़ी बात नहीं। नाम मुक्तिदाता है, यह भी बड़ी बात नहीं। नाम प्रेमिक बना देता है, यही बड़ी बात है। नाम और नामी अभिन्न हैं। तभी नाममें इतनी महान् शक्ति है। यह नामाक्षर ही ब्रह्म है।

नवधा भक्तिकी पूर्णता भी नाममें है। शुकदेवजीने भागवतमें कहा है—'भगवान् विष्णुका नाम-संकीर्तन ही जगत्‌में मङ्गल-स्वरूप है। इसके द्वारा बड़े-से-बड़े पापोंसे भी छुटकारा मिल जाता है। भगवान् हरिके पुण्य-चरित्रके निरन्तर श्रवण-कीर्तनसे भक्ति उपजती है। उस भक्तिसे जो चित्त-शुद्धि होती है, वह विभिन्न व्रत-नियम आदिसे भी कभी लभ्य नहीं। जो एक बार श्रीकृष्णपादपद्ममधुका स्वाद पा लेता है, फिर उसकी दुर्गतिमय माया-विषयोंमें रति नहीं होती।'

सत्ययुगका तारक ब्रह्म नाम है—

नारायणपरा वेदा नारायणपराक्षरा।
नारायणपरा मुक्तिर्नारायणपरा गतिः॥

त्रेतायुगका तारक ब्रह्म नाम है—

राम नारायणानन्त मुकुन्द मधुसूदन।
कृष्ण केशव कंसारे हरे वैकुण्ठ वामन॥

द्वापरयुगका तारक ब्रह्म नाम है—

हरे मुरारे मधुकैटभारे
गोपाल गोविन्द मुकुन्द शौरे।
यज्ञेश नारायण कृष्ण विष्णो
निराश्रयं मां जगदीश रक्ष॥

और कलियुगका तारक ब्रह्म नाम है—

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥

हरिनामके अतिरिक्त और सत्कर्म कौन-सा है? हरिनाम ही सर्वार्थ दान कर सकता है। नामाश्रयीकी रक्षा नाम ही करता है।

न गतिर्विद्यते नाथ! त्वमेव शरणं मम।

हे करुणामय! तुम ही अनन्यशरण हो, मुझे दृढ़ अचल भक्ति देकर रक्षा करो।

राम राघव राम राघव राम राघव रक्ष माम्।
कृष्ण केशव कृष्ण केशव कृष्ण केशव पाहि माम्॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गीताके सर्वाङ्गीण प्रचारकी आवश्यकता

(लेखक—श्रीओंकारमलजी सराफ)

भारतदेश अपनी भौगोलिक और भाषाजनित विषमताके होनेपर भी सांस्कृतिक एकता और आध्यात्मिक चेतनाका लीलास्थल है। इसका इतिहास जहाँ गौरव-मण्डित है, वहाँ सामाजिक चेतना और अचेतनाका द्वन्द्व-विवरण भी है। हमारे सामने अतीतमें भी कई बार ऐतिहासिक रूपसे निर्णायक स्थिति आयी है और हमारा समाज हारा भी है, विजयी भी हुआ है। कुछ विद्वानोंने भारतीय इतिहासको विजयका इतिहास कहा है तो कुछने पराजयका। वस्तुतः हमारे इतिहासको विजयकी जाज्वल्यमान पराकाष्ठापर भी देखा गया है और पराजयकी अन्धी तलहटीमें भटकते हुए घायल सिंहकी भाँति भी देखा गया है। जहाँ हमारी विजय हुई है, वहाँ हमारी आध्यात्मिक और सांस्कृतिक शक्तिका प्रभाव है और जहाँ हमारी पराजय हुई है वहाँ हमारी वैयक्तिक स्वार्थभावनामूलक सामाजिक अस्तित्व-प्रतिष्ठा ही है। एक सत्य यहाँ कहना अप्रासङ्गिक न होगा कि हमारा भारतीय अध्यात्मचिन्तन जितना उन्नत रहा, वहाँ हमारी सामाजिक व्यवस्था कभी-कभी बड़ी अस्त-व्यस्त भी होती रही। इसीलिये हमारे यहाँ अधिक महापुरुषोंके अवतार हुए हैं।

सत्य और असत्यका परस्पर द्वन्द्व अपने-अपने अस्तित्वकी स्थापनाके लिये ही होता है। असत्यकी अनास्तित्व सत्ता जब सत्यके अस्तित्वसे टकराती है तो भयानक परिणाम उपस्थित होने लगते हैं, पर इस अस्तित्व और अनास्तित्वके इस कुघर्ष-संघर्षमें सत्यकी विजय होना सनातन सत्य है। सत्य दैवी प्रकृति और आध्यात्मिक चेतनाका अपरिवर्तनशील रश्मि-पुञ्ज है, जब कि असत्य आसुरी अवचेतन प्रकृतिका अन्धकार। वस्तुतः असत्यकी कोई सत्ता ही नहीं है। यही सत्य नैतिकता-अनैतिकता, धर्म-अधर्म और दैवी-आसुरी सम्पदाके सम्बन्धमें भी है।

अधर्मका—अनास्तित्वका मोह विषादका कारण होता है। यह विषाद धर्म-संकट ही है। दैवी और आसुरी प्रकृतिकी निर्णायक घड़ीमें विषादका उत्पन्न होना या किंकर्तव्यविमूढ़ होना आत्माका कलङ्क है। गीता हमें इसी धर्म-संकटसे मुक्त होकर सत्यका पंथ पहचानने और धर्मकी विजयके लिये अपने भीतर बैठे विवेकरूप सर्वोच्च सत्य परमात्माके अनुशासन और मार्ग-दर्शनमें दैवी प्रकृतिकी विजयके लिये अमोघ तथा दिव्य संदेश देती है।

आज भी हम सामाजिक, ऐतिहासिक, आर्थिक, शैक्षिक एवं सांस्कृतिक रूपसे क्षीण हो चुके हैं। वह इसलिये कि हमारी आध्यात्मिक अवनति हो चुकी है और भौतिक भोग-लिप्साकी पराकाष्ठाने हमें आसुरी-सम्पदासे ओतप्रोत कर दिया है। सचमुच आज निर्णायक स्थिति है। एक ऐसी निर्णायक स्थिति जो पाँच हजार वर्ष पूर्व अर्जुनके सामने थी और इस पांच हजार वर्षके अन्तरालमें अनेक बार हमारे इतिहासके सामने न्यूनाधिक रूपमें आयी है और आज भी है। यह स्थिति एक व्यक्तिके सामने है, सम्पूर्ण समाजके सामने है, सम्पूर्ण राष्ट्र और सम्पूर्ण विश्वके सामने है, सम्पूर्ण चेतनाके सामने है।

भौतिकवादी प्रगल्भताने जिस महाविनाशका बीजारोपण किया है, वह हिंसात्मक प्रवृत्तिको जन्म दे चुकी है और प्रत्येक शक्तिका निर्दोष और शान्तिप्रिय विश्व-समाजके विनाशमें प्रयोग करनेका अज्ञान भी दे चुकी है। प्रश्न शक्तिका, उपकरण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं, उसके भीतर निहित एकाधिकारकी आसुरी कामना है। अणुव्रम न रहे, किंतु आसुरी प्रवृत्ति ही तो हम शल्य-शस्त्रोंसे ही विनाश कर सकते हैं। कानून मद्य-निषेध करता है, किंतु मद्यपानकी प्रवृत्ति 'क्रेच-पालिस' पीती है और नशेके बदले कभी न टूटनेवाली मृत्युको देती है।

प्रश्न है, हम आसुरी सम्पदाको कैसे उतार फेंकें और कैसे स्वाभाविक दैवी सम्पदासे अपनेको विभूषित करें। आसुरी सम्पदासे ग्रस्त स्थितिमें विपरीत निर्णय करनेवाली तामसिक बुद्धिके कारण टूटनेमें सुख मिलता है, पतनकी ढालपर फिसलनेमें सिहरन भरी स्फुरणा होती है। अनास्तित्वका मोह प्यारा लगता है। अशान्ति, उपद्रव, कलह, उन्नतिके चिह्न प्रतीत होते हैं और पतन अधिक अच्छा लगता है; क्योंकि उत्थान साधना है और साधनाका पंथ कर्ममय या यज्ञमय होता है। 'स्व' और 'पर'का अज्ञान मिटाकर सम्पूर्ण भूतोंमें व्याप्त सर्वोच्च परमात्म-सत्ता और उस सत्तामें व्याप्त सम्पूर्ण भूतका ज्ञान ही हमें ईश्वरकी रची सृष्टिसे प्रेम पैदा करा सकता है और हम यज्ञमय हो सकते हैं। फिर हमारा प्रत्येक कर्म यज्ञार्थ ही होता है।

सचमुच आज भारतीय इतिहासके सामने फिर निर्णायक स्थिति है और इससे मुँह मोड़ना हमारी ऐतिहासिक और सामाजिक पराजयके साथ ही आध्यात्मिक पराजय भी होगी, जिसके साथ सब कुछ डूब जायगा। आज गीताका सर्वाङ्गीण प्रचार और उसका वैयक्तिक आचरण ही हमें इस भयानक क्लेशसे मुक्त कर सकता है।

विज्ञानने हमें कई साधन उपलब्ध किये हैं। सिनेमा और टेलीवीजन शैक्षणिक कार्योंके लिये सर्वाधिक शक्तिशाली साधन हैं। इनका भयानक तथा अनवरत दुरुपयोग होता है और इसीसे राष्ट्रीय चरित्र मनोरञ्जनके मिथ्या मोह-जालमें फँसकर घोर विषाक्त हो गया है। सिनेमाके द्वारा आज जो अनिष्ट हो रहा है, वह अकथनीय है। अतः सिनेमाके द्वारा ही सद्भावोंके प्रसारका प्रयत्न होना अत्यन्त आवश्यक और उपयोगी है। सिनेमाके द्वारा उचित रीतिसे गीताका प्रचार किया जाय तो वह गीताको समझानेमें सर्वश्रेष्ठ साधन बन सकता है। अत्यन्त ही हर्षकी बात है कि आगामी वर्षमें महात्मा गाँधी-जन्म-शताब्दि मनायी जायगी। गाँधीजीको बहुत-सी श्रद्धाञ्जलियाँ दी जायँगी। उन्होंने गीताको अनिवार्य माना था। यहाँतक कि गीताको उन्होंने अपनी माता कहा था। गीताके सर्वतोमुखी प्रचारसे बढ़कर महात्मा गाँधी-शताब्दिके लिये और कोई अच्छी श्रद्धाञ्जलि नहीं हो सकती। इससे दोनों पक्ष ही फलप्रद होंगे। महात्मा गाँधीकी सर्वाधिक प्रिय वस्तु उनके देशको मिलेगी और इतिहासकी इस निर्णायक घड़ीमें भौतिकवादी वितण्डावादके विरुद्ध आध्यात्मिक भावनाकी विजयका पथ प्रशस्त भी होगा।

टेलीवीजनद्वारा गीताके सिद्धान्तोंपर आधारित अभिनय और अन्य सङ्गीतात्मक कार्यक्रम प्रस्तुत किये जा सकते हैं। पंचायत-स्तरपर गीतापाठकी व्यवस्था की जा सकती है और सबसे बड़ा कार्य यह हो सकता है कि गाँधीजीकी कल्पनाके अनुसार स्कूलों तथा कालेजोंमें गीताको पाठ्यक्रममें स्थान दिया जाय। जहाँ अन्यान्य विविध प्रकारोंसे गीताके भावोंका प्रचार किया जाय, वहाँ फिल्मके द्वारा * गीता-प्रचार करना भी एक सर्वाधिक प्रभावशाली कदम होगा। इससे

* सिनेमाके फिल्मोंद्वारा समाजको सर्वथा अधः-पतनकी विषाक्त गर्तमें गिरानेका जो पापकार्य मनोरञ्जनके नामपर हो रहा है, वह अत्यन्त ही भयानक है। पर कुछ ऐसी समाजकी पतनोन्मुखी वृत्ति हो गयी है कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिल्म-संसारकी सड़ी-गली विषाक्त परम्परामें भी एक नयी अमृतमयी क्रान्तिका सूत्रपात होगा। यह कार्य प्रारम्भ-सा हो चुका है और ईश्वरकी कृपा हुई तो सम्पन्न भी होगा। इस प्रकार गीताके सर्वतोमुखी प्रचारद्वारा भारतीय संस्कृतिकी रक्षा हो सकेगी, ऐसा मेरा दृढ़ मत है।

व्यापार, व्यापारी और अर्थनीति

(हनुमानप्रसाद पोद्दारका एक भाषण)

भारतीय संस्कृतिमें प्रसिद्ध चार पुरुषार्थ हैं—अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष। अर्थ सबसे पहले है; क्योंकि अर्थके बिना संसारमें जीवन-यापन नहीं हो सकता, पर अर्थ अनर्थरूप बनकर पतन, भीषण दुःख एवं नरक-यन्त्रणाका कारण भी बन सकता है और अर्थ परमार्थरूप बनकर उत्थान, आत्यन्तिक सुख और परम कल्याण—मोक्षका हेतु भी बन सकता है। जो अर्थ धर्मनियन्त्रित, धर्ममूलक और धर्मसाधनार्थ है, वह परमार्थरूप है। उससे प्राप्त होनेवाला 'काम' भी पवित्र है और उसका फल मोक्ष है। धर्म वही है, जिससे परिणाममें अपना और दूसरोंका हित हो, जिससे सबका धारण हो। यह धर्म तथा अध्यात्म भारतीय संस्कृतिका आत्मा है। पर जो अर्थ भोगवासना-प्रेरित है, भोगमूलक और नीच स्वार्थ, मोहजनित, संग्रह या इन्द्रिय-तृप्त्यर्थ है, उसका फल बन्धन है, नरक है। इसीसे धर्महीन तथा भौतिक भोगोंमें रचा-पचा मनुष्य पशु या असुर ही हो जाता है।

शुद्ध अर्थका धर्मके साथ नित्य सम्बन्ध है। इसीसे वर्णधर्मके अन्तर्गत एक पूरा वर्ण—वैश्य वाणिज्य, गोरक्षण और कृषि आदिके द्वारा अर्थोत्पादन करके अपना एवं सबका जीवन-निर्वाह करता है, वाणिज्य आदिके द्वारा वह अपनी जीविका चलाता हुआ सबकी सेवा करता है और इसीके द्वारा वह मानव-जीवनके चरम लक्ष्य मोक्षका अधिकारी होता है। हमारा प्रत्येक क्षुद्र-से-क्षुद्र कर्म भी धर्मसे सम्बन्धित है; अतएव व्यापार-वाणिज्य भी धर्मसे सम्बन्धित है। यह धर्म-सम्बन्ध आज क्रमशः भुलाया जा रहा है। इसीसे व्यापारके पवित्र सेवाके क्षेत्रमें क्षुद्र स्वार्थका प्रवेश हो गया है और इसीसे उसमें विभिन्न प्रकारके दोषोंका अवाञ्छनीय उदय और संवर्द्धन हो रहा है एवं फलतः हमारा नैतिक पतन हो रहा है एवं हम आये हुए संकटोंसे मुक्त होनेके लिये नित्य नये-नये संकटोंको बुला रहे हैं!

'स्व' जितना सीमित होता है, उतना ही 'स्वार्थ' भी सीमित तथा संकुचित होता है। यही कारण है कि विश्व-चराचरमें आत्म-दर्शन करनेवाला भारतवर्ष आज राज्यों तथा जमींदारियोंके विलयनके बाद भी एक राष्ट्र न होकर खण्ड-खण्ड हुआ जा रहा है और भूमिकी सीमा, भाषावाद, जातिवाद आदिको लेकर भारतवासी आज एक-दूसरेपर वैसे ही मूर्खतापूर्ण आघात करके अपना ही विनाश-साधन कर रहे हैं, जैसे कोई मनुष्य अपने ही अङ्गोंकी रक्षाके लिये अपने ही अङ्गोंको अपने ही अङ्गोंके द्वारा मार-काट रहा हो। इसीसे आज नये-नये वादोंकी सृष्टि हुई है और सभी वाद विवादग्रस्त होकर प्रमादवश अपने ही हाथों अपना संहार करनेमें संलग्न हैं। अपने वादके या वादगत किसी एक दलके हितके मनोरथसे देशका स्वार्थ या हित भुला दिया जाता है और व्यक्तिकी हितकामना या स्वार्थ-साधनाके लिये दलके हितका त्याग कर दिया जाता है। सर्वत्र इसी क्षुद्र-संकुचित भावका विस्तार हो रहा है—व्यक्तिके स्वार्थके लिये देशके स्वार्थका अनायास बलिदान हो रहा है! यह स्थिति सभी क्षेत्रमें है। वर्तमान अर्थतन्त्र भी मुख्यतया इसीलिये अस्त-व्यस्त तथा अनिश्चित हो गया है। वाणिज्य-व्यापारके क्षेत्रमें भी यही विष प्रवेश कर

इस पतनके प्रवाहको—सिनेमाको सर्वथा बंद करना असम्भव नहीं तो, बहुत ही कठिन हो गया है। इस परिस्थितिमें जैसे विनाशकारी संखिया आदि विषोंको शुद्ध करके औषधके रूपमें उनका सेवन किया जाता है और उससे जीवनरक्षा होती है; वैसे ही यदि सिनेमाके द्वारा बड़ी सावधानीके साथ गीताका फिल्म बनाकर सद्भावोंका प्रचार किया जाय तो बड़ा लाभ भी हो सकता है—सम्पादक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया है। इसीसे सत्य, ईमानदारी, परहित आदि सद्भावों, सद्विचारोंका परित्याग करके मनुष्य अवाञ्छनीय व्यक्तिगत स्वार्थसाधनके लिये हेय प्रवृत्तिमें लगा हुआ उसीमें गौरवका अनुभव करता है। इसीसे खाद्यपदार्थोंमें, रोगियोंको रोगमुक्त करनेके लिये दी जानेवाली दवाइयोंमें ऐसी चीजें मिलायी जाती हैं, जिनका स्वास्थ्यपर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। ऐसी बातें सुननेमें आयी हैं कि घीमें पशुओंकी चरबी मिलायी जाती है, चीनीमें आटा मिलाया जाता है, आटेमें लकड़ीका चूरा मिलाया जाता है, पिसी हल्दीमें घोड़ेकी लीद मिलायी जाती है; नकली जीरा, नकली काली मिर्च, नकली पीपल, नकली केसर, नकली तेल आदि बनते हैं, जो स्वास्थ्यनाशके साथ ही अन्य अनेक प्रकारके दोष उत्पन्न करते हैं। बढ़िया वस्तु बताकर घटिया देना, तौलमें कम देना, धोखा देकर दाम ज्यादा लेना या कम देना आदि अनेक दोष प्रधानतया नीच स्वार्थके कारण ही व्यापारी-समाजमें आ गये हैं। ये दोष धर्महीनता तथा अर्थ-पैशाचिकताके ज्वलन्त प्रमाण हैं, जो चोरी-डकैतीसे भी बुरे हैं !

व्यापारियोंमें वह परम्परागत ईमानदारी आज प्रायः नहीं रही है, जो रहनी चाहिये थी; पर यह भी निर्विवाद है कि यह रोग केवल व्यापारी-समाजमें ही नहीं आया है, प्रायः सभी क्षेत्र इससे आक्रान्त हैं। व्यापारी-समाजको खुले आम 'चोर' कहा जाता है और समाजवादके नामपर उसकी जड़ खोदी जा रही है। भाँति-भाँतिसे उसको संत्रस्त किया जाता है। 'कर' तो इतने अधिक बढ़ गये हैं कि वे 'कर' न रहकर मानो धनकी बलात् डकैती-जैसे हो गये हैं। बचतके पैसे रह ही नहीं पाते। यही कारण है कि निजी व्यापारका विस्तार होनेमें बड़ी रुकावट आ गयी है। पिछले १५ वर्षोंमें कई सौ गुना करभार प्रजापर बढ़ा है। जितने कर बढ़े हैं, उतनी ही 'कर' की चोरी भी स्वाभाविक ही बढ़ी है। आदत बिगड़ने और पैसोंका मोह बढ़ जानेके कारण पूरी तो चोरी बंद नहीं होगी, पर कर घटा दिये जायँगे तो बहुत अंशमें चोरी भी घट जायगी। शायद घटी दरमें भी 'कर' के उतने ही पैसे आ जायँगे, जितने बढ़ी दरमें आते हैं। ऐसा होनेपर सरकारी लोकप्रियता बढ़ेगी और व्यापारियोंका व्यापार-विस्तारमें सुविधा होनेके साथ उनकी चोरीकी बुरी आदत भी अंशतः छूटेगी। सरकारको इस प्रश्नपर गम्भीरतासे विचार करना चाहिये।

व्यापारियोंकी चोरीमें अधिकारियोंका भ्रष्टाचार भी एक प्रधान कारण है, चूँकि अधिकारियोंमें भी व्यक्तिगत नीच स्वार्थ है, जो उन्हें भ्रष्टाचारमें लगाये रखता है और वे स्वाभाविक ही व्यापारियोंसे मिल-जुलकर चोरी करते-कराते हैं। व्यापारियोंका स्थान आजकल सहकारी-मण्डलोंको दिया जा रहा है और उन्हींके द्वारा खरीद-बिक्रीका काम करवाया जाता है; पर उनके भी कार्यकर्ता उसी स्वार्थसे ग्रस्त हैं। अतएव वे भी चोरी करते हैं और उनसे सम्बन्ध रखनेवाले स्वार्थपरायण अधिकारी, शासक या नेतृवृन्द भी, जिनका सहकारी-मण्डलवालोंसे स्वार्थ-सम्बन्ध है, चोरी करने-करानेमें सीधे-टेढ़े सहायक होते हैं। यों सहकारी-मण्डलके रूपमें प्रायः काला बाजार करनेवाला एक नया भीषण वर्ग बन गया है। ऐसे कई सहकारी-मण्डल पकड़े भी गये हैं। झूठे राशनकार्ड जगह-जगह पकड़े जाते हैं (पर सब थोड़े ही पकड़े जाते हैं)। बात भी यह है कि जिस चीजकी कण्ट्रोलमें दो रुपया किलो कीमत है, उसके जब काले बाजारमें ६ या ८ रुपये किलो दाम आते हों, तब झूठा राशनकार्ड बनाने-बनवानेमें आजके अर्थपरायण स्वार्थी लोगोंका सचेष्ट होना क्या आश्चर्यकी बात है ? फिर कण्ट्रोलमें जहाँ २-४ किलोसे अधिक वस्तु नहीं मिलती, वहाँ काले बाजारमें ऊँची कीमत देनेपर बोरे-के-बोरे मिल जाते हैं, तब उसका यह अर्थ लगाना भी अनुचित नहीं कहा जा सकता कि सरकारी तन्त्र ही आवश्यकतावाले लोगोंको मानो काले बाजारसे माल खरीदनेका मूक परामर्श देकर काले बाजारोंको प्रोत्साहन देते हैं। इसमें भी सरकारी तन्त्रके अधिकारियोंका व्यक्तिगत स्वार्थ ही प्रायः कारण होता है।

जबसे सरकार खाद्यपदार्थोंका व्यापार करने लगी है, तबसे कई बार ऐसे समाचार मिले हैं कि अमुककी भूलसे या अमुक अनिवार्य कारणसे इतने हजार बोरे चावल या गेहूँ सड़ गये और वे मनुष्योंके खानेके योग्य नहीं रह गये। फिर वह सड़ा माल मिट्टीके मोल बेच दिया जाता है और वही काले बाजारोंमें पहुँचकर अच्छे मालके साथ मिलाकर बेचा जाता है। इसमें बहुतोंकी हिस्सेदारी तो रहती ही है।

संकुचित स्वार्थके साथ ही कुछ ऐसे और कारण भी हैं, जिनसे व्यापारियोंकी कठिनाइयाँ बढ़नेके साथ ही व्यापारके क्षेत्रमें कई अवाञ्छनीय दोष आ गये हैं। उनमें एक प्रधान कारण है—ऐसे लोगोंके हाथोंमें शासनाधिकारका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहना, जो कदाचित् अधिकांश ईमानदार होनेपर भी व्यापारसे सर्वथा अनभिज्ञ हैं। जिनको जो काम आता नहीं, वे उस कामको ठीक नहीं कर सकते, चाहे वे अपने दूसरे काममें बड़े ही निपुण हों। व्यापारी पद्धति तथा व्यापारी मनोवृत्तियोंसे तथा व्यापारी हानि-लाभसे पूर्ण परिचित न होनेके कारण वे ऐसे कार्य कर बैठते हैं, जिनसे विभिन्न प्रकारकी बहुत-सी कठिनाइयाँ और अस्त-व्यस्तता उत्पन्न हो जाती है। जैसे—व्यापारियोंपर प्रतिबन्ध, वस्तुओंके मूल्यपर प्रतिबन्ध, यातायातपर प्रतिबन्ध, उत्पादनपर प्रतिबन्ध, परमिटसे माल मिलना, आये दिन नये-नये करोंकी वृद्धि, अफसरी स्वभावके अधिकारियोंद्वारा उद्योगधंधोंका संचालन आदि। व्यापारी जब खुला निजी व्यापार करते हैं, मूल्य तथा यातायातपर कोई प्रतिबन्ध नहीं होता, तब वे जिस प्रदेशमें माल अधिक होता है और सस्ता होता है, वहाँसे खरीदकर उस प्रदेशमें पहुँचाकर बेचते हैं, जहाँ मालकी कमी है और बहुत तेजी है। व्यापार ज्यादा हो, इसलिये वे थोड़े नफेपर काम करते हैं, और चूँकि स्वयं घाटे-नफेके उत्तरदायी होते हैं, अतएव माल सड़ने नहीं देते, उजड़ने नहीं देते, रेलपर पड़ा नहीं रहने देते; क्योंकि उनको इससे कष्ट होता है। परिणाम यह होता है कि अधिकता तथा न्यूनतावाले दोनों ही स्थानोंमें वस्तुओंकी कीमत प्रायः समान-सी हो जाती है, सबको सब चीजें मिल जाती हैं। काला बाजार न होनेसे व्यर्थका लालच नहीं बढ़ता और वस्तुओंका संग्रह नहीं किया जाता; क्योंकि संग्रहकी प्रवृत्ति तेजी और कमीमें ही हुआ करती है। उत्पादनपर प्रतिबन्ध न होनेपर वह माल सहज ही सस्ता हो जाता है। पक्षान्तरमें कण्ट्रोल होते ही वस्तु भूमिगत हो जाती है और सहज ही कीमत बढ़ जाती है। यह सब अनुभवहीन अधिकारका ही दुष्परिणाम है।

इसीके साथ-साथ सरकारकी श्रमिकों तथा कर्मचारियोंके साथ बरती जानेवाली नीति भी दोषपूर्ण है। महँगाके युगमें उन्हें वेतन अच्छा अवश्य मिलना चाहिये, इसमें जरा भी दो मत नहीं हो सकते। पर उनमें काम न करके पैसे लेनेकी जो प्रवृत्ति बढ़ रही है, यह प्रत्यक्ष राष्ट्रकी हानि है। इससे, उत्पादन घटता है, उत्पादित वस्तुका मूल्य बढ़ता है, पूँजी लगानेवालोंको लाभ कम मिलता है और श्रमिकोंमें अकर्मण्यता तथा आलस्य-प्रमादकी आदत पड़ जाती है, जो आगे चलकर उनके लिये तथा प्रकारान्तरसे देशके लिये बड़ी घातक होती है। सरकारको इन विषयोंपर गहराईसे विचार करना चाहिये। मेरी समझसे मूल्योंपर तथा यातायातपर कम-से-कम प्रतिबन्ध लगाये जायँ, उत्पादनपर प्रतिबन्ध न लगे, निजी उद्योगोंपर प्रतिबन्ध हटा दिये जायँ, व्यापारियोंको बेरोकटोक प्रतियोगिता करने दिया जाय और माल चाहे जहाँसे चाहे जहाँ भेजा-लाया जा सके, तो बहुत कुछ संतुलन ठीक हो सकता है।

इधर व्यापार-संगठनोंके राष्ट्रीयकरण या सरकारीकरणकी बातें बहुत उठ रही हैं। प्रतिबन्ध तो जब-तब लगाये ही जाते हैं; पर ध्यान देकर देखा जाय तो अबतकके अनुभवसे यही सिद्ध होता है कि उद्योगधंधोंके क्षेत्रमें सरकार प्रायः असफल ही रही है। रेलवेमें, जो सदा ही नफा करती आयी है, घाटेके दर्शन होने लगे हैं। यह खेदकी बात है। यह कार्यकुशलताका लक्षण नहीं है। सरकारी उद्योगधंधोंमें घाटेके कारणोंमें व्यक्तिगत नीच स्वार्थवश बढ़ी हुई चोरी तो कारण है ही, संचालनकी त्रुटि भी एक प्रधान कारण है। वस्तुतः सरकारी उद्योग-धंधोंकी स्थिति आज बड़ी शोचनीय है। कोई भी विचारशील निरपेक्ष पुरुष उस स्थितिसे संतुष्ट नहीं हो सकता। सरकारी उद्योगधंधोंमें जितनी पूँजी लगी है, उसके अनुपातसे लाभ बहुत ही कम मिला है। सभी प्रकारके खर्चकी अधिकता है, उत्पादनकी कोई खास चिन्ता नहीं। अफसराना ढंगके अधिकारियोंका नुकसानमें अङ्ग नहीं कटता, इसीलिये वे उससे लापरवाह रहते हैं। चीजें उजड़ती-बिगड़ती हैं, उत्पादन नहीं होता। पर वे इससे दुखी नहीं होते; अवश्य ही अपने कागज-कलमको वे ठीक रखते हैं। यह स्थिति है। सरकारी कारखाने तभी सफल समझे जायँगे, जब उनमें लगी हुई पूँजी देशको बदलेमें पूरा लाभ देगी और तभी उनकी प्रशंसा भी होगी।

अतएव सरकारको मेरी समझसे नये-नये उद्योगोंका राष्ट्रीयकरण न करके अथवा नये सरकारी उद्योगधंधे न खोलकर पुराने चलाये हुए कामोंको सँभालना तथा उनकी त्रुटियोंको दूर करके उन्हें सफल बनाना चाहिये। और सरकारको उन्हीं महत्त्वपूर्ण कार्योंको करना चाहिये, जिन्हें सरकार ही भलीभाँति कर सकती है, दूसरे नहीं। शेष उद्योगधंधोंके सारे कार्योंको निजी तौरपर करनेके लिये स्वतन्त्र छोड़ देना चाहिये। जैसे पड़ोसी छोटे-से देश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जापानकी सरकार देशके अर्थतन्त्रके विकासके लिये मार्ग-दर्शन करती है, सहकार करती है, अर्थ-सहयोग देती है, पर निजी कार्योंमें दखल नहीं देती। जापानमें उद्योगधंधोंका सरकारी क्षेत्र भारतकी अपेक्षा बहुत ही सीमित है। इसी प्रकार यहाँ भी करना चाहिये।

ईमानदारी घटनेका एक प्रधान कारण 'जीवनस्तर ऊँचा करनेका' आन्दोलन भी है। इसका परिणाम यह हुआ कि लोगोंमें देखा-देखी अनावश्यक अभाव बढ़ गया, आदतें बिगड़ गयीं, जीवन खर्चीला हो गया, स्वयं श्रम करने और काम सँभालनेकी वृत्ति घट गयी, आमोद-प्रमोद, छायाचित्र आदिके व्यसन बढ़ गये। इससे कुशिक्षा तथा असदाचारको प्रोत्साहन मिला। शिक्षालयोंकी स्थिति बिगड़ी। अप्रौढ़ धर्महीन शिक्षा मिली। फलतः चरित्रहीन संस्कारहीन जीवन-का निर्माण होने लगा। उसीका दुष्परिणाम है—वर्तमान बढ़ती हुई अराजकता, किसीका भी किसी भी व्यवस्थाको न मानना और इसमें गौरवका अनुभव करना, लूटपाट करना, राष्ट्रीय सम्पत्तिका नाश करना, तोड़फोड़ करना, आग लगाना और दंगायी हिंसात्मक प्रवृत्तियोंके लिये उत्साहित रहना। फलस्वरूप बाजारमें अशान्ति, घरमें अशान्ति, शिक्षालयोंमें अशान्ति, सरकारी कार्यालयोंमें अशान्ति, कारखानोंमें अशान्ति। ऐसी सार्वत्रिक अशान्तिमें व्यापार कैसे पनपे? वहाँ तो शान्ति चाहिये। फिर, आये दिन व्यापारियोंके प्रति सरकारके नये-नये प्रतिबन्ध तथा कानूनोंका आतङ्क, बैंकोंकी सहूलियत छिन जानेकी आशङ्का, कम्यूनिस्टोंका बढ़ता हुआ भय तथा पड़ोसी देशोंके द्वारा आक्रमणकी तैयारी और व्यापारियोंकी अपनी झूठी शानके लिये बढ़ाये हुए अभावोंकी पूर्तिके हेतु नीच स्वार्थसाधनाकी वृत्ति, चोरी-असत्यकी बढ़ती हुई आदतें—वर्तमान व्यापारी जगत्‌की यह दुःस्थिति वस्तुतः बड़ी ही भयानक है।

इधर सरकारकी बड़ी विचित्र 'विकास-योजना' चल रही है। उससे कुछ सुविधाएँ अवश्य हुई हैं, पर अबतक विकासके नामपर जो कुछ हुआ है, उसे 'विनाश' न भी कहें तो यह तो कहा ही जा सकता है कि जो नैतिक विकास समाज-के लिये नित्य वाञ्छनीय है, वह तो नहीं हुआ। बल्कि इससे देशमें नैतिक और भौतिक दोनों ही प्रकारकी दरिद्रता और निराशाकी वृद्धि अधिकांशमें हुई है। देशमें आज चारों ओर त्राहि-त्राहि मची है। करोड़ों नर-नारी महँगीकी भयानक चक्कीमें बुरी तरह पिसे जा रहे हैं। लोगोंके नैतिक चरित्रका बुरी तरह पतन हुआ है और अशान्ति बढ़ी है। कुछ समय पूर्व श्रीजयप्रकाशनारायणजीने कहा था—

'विकास-योजना तो निष्फल गयी ही और लोगोंमें सत्ता तथा धन प्राप्त करनेकी होड़ चली और अनुचित लाभ उठानेके लिये राजकीय पक्षने ग्रामीण क्षेत्रोंमें पहुँचकर गाँवोंमें झगड़नेकी जड़ रोप दी।'

इन विकास-योजनाओंके लिये हमारी सरकारने ऋण लेना स्वीकार किया। स्वतन्त्रता-प्राप्तिके समय भारतके पास अपनी पूँजी थी। अब बीस वर्षोंमें जो ऋण बढ़ा है, उसके आँकड़े सभीको चौंका देनेवाले हैं।

सन् १९६७-६८ के अन्ततक भारतपर ११,७२६ करोड़ ३१ लाख यानी १,१७,२६,३१,००,००० एक खरब सत्रह अरब छब्बीस करोड़ एकतीस लाख रुपये कर्जके देने होंगे। सम्मान्य श्रीमोरारजी भाईके कथनानुसार सन् १९६७ के मार्चकी ३१ तारीखको ४७,९७,७७,००,००० सैंतालीस अरब, सत्तानबे करोड़ सतहत्तर लाख रुपये केवल विदेशोंका ऋण देना था। इसमेंसे इस वर्ष मूल रकमकी किश्तके १६७.४९ करोड़ तथा ब्याज पेटे १४१.४७ करोड़ रुपये चुकाने पड़ेंगे। श्रीमोरारजी भाईकी गणनाके अनुसार आगामी सन् २०१७ के मार्चकी ३१ तारीखतक पचास वर्षोंमें अन्तिम किश्त चुकायी जा सकेगी!

यह सभी जानते हैं कि व्यक्ति हो चाहे राष्ट्र, बहुत अधिक ऋण बढ़ जानेसे आर्थिक स्थिति बड़ी कमजोर हो जाती है, साख घटती है, सिर नीचा होता है और उसका बुरा प्रभाव सभी क्षेत्रोंपर पड़ता है। फिर एक बुरी आदत पड़ जाती है। जबतक ऋण मिलता है, तबतक ऋण लेकर ही सब काम बड़ी शानसे करनेका मन रहता है। फिर वह चाहे हमारी सरकारकी भाँति नया उद्योगधंधा हो या भूखे पेटमें दाने डालनेके लिये अनाजका प्रयोजन हो; शासन सुदृढ़ बनाना हो या युद्धसामग्रीका निर्माण या संग्रह करना हो; हवाई विमानों, समुद्री जहाजों या रेलोंका सुधार-निर्माण हो या सड़कें-नहरें आदि निकालना हो—एक-दूसरे प्रदेशोंमें, विभागोंमें, शासन तथा व्यक्तियोंमें इसके लिये प्रतिद्वन्द्विता और आग्रह-दुराग्रह चलते हैं। भगवत्कृपासे उत्पादन बढ़ जाय, यथार्थ रूपमें विकास हो, तब तो किसी तरह काम चल जाता है; पर कहीं दुर्भाग्यवश ऐसा न हो तो फिर बढ़ा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ कर्ज राष्ट्रके सम्मान तथा गौरवको नष्ट करनेमें कारण बनता है । भगवान् ही जाने देशका क्या होनेवाला है ?

ऊपर जो कुछ भी कहा गया है, वह किसी दूसरेकी आलोचना नहीं है । अपने द्वारा अपनी ही स्थितिका दिग्दर्शन मात्र है; क्योंकि हम ही व्यापारी हैं, हम ही सरकार हैं, हम ही मालिक हैं, हम ही मजदूर हैं । सब एक ही शरीरके विभिन्न अङ्ग हैं ।

भगवान् हम सबको सद्बुद्धि दें । सरकारी अधिकारी, व्यापारी सभी व्यक्तिगत संकुचित स्वार्थको छोड़कर देश तथा राष्ट्रका हित सोचें तथा धर्मसम्मत सर्वहितकारक अर्थोपार्जन एवं अर्थतन्त्रका संचालन करें तो सभीका कल्याण हो सकता है । जबसे समझें, तभीसे मङ्गल !

प्रेम और मोह

(लेखक—श्रीहरिकिशनदासजी अग्रवाल)

प्रेम फूल है, मोह काँटा; प्रेम सुगन्ध है, मोह दुर्गन्ध । प्रेम निःस्वार्थ है, मोह स्वार्थ; प्रेम निष्काम है और मोह कामान्ध है ।

जिस तरह काँटा चुभ जानेसे मनुष्य दुखी होता है, उसी प्रकार मोहका डंक लग जानेसे वह उसे चुभता है । किसी एक माताका लड़का बिलायत पढ़नेके लिये गया । कुछ दिनों बाद वहाँसे तार आया कि तुम्हारा लड़का यहाँ बहुत बीमार है । माँ बहुत घबरा गयी । वह छटपटा उठी । दुःखके कारण उसे कुछ सूझता नहीं कि वह क्या करे । यह मोहके कारण होता है ।

इसी प्रकार पड़ोसीका भी एक लड़का पढ़नेके लिये विदेश गया हुआ था । वहाँसे लड़केके मरनेका तार आया । किंतु उस घरमें किसी प्रकारका दुःख नहीं पैदा होता । कारण कि उन लोगोंको मोह नहीं । दुःखका मूल कारण मोह है । जैसे पाँवमें काँटा लग जानेसे उसकी चुभन बनी रहती है और उसमें पीब बन जाती है । जबतक उस काँटेको निकाला नहीं जाता, तबतक वह काँटा चैन नहीं लेने देता । इसी प्रकार जबतक हम मोहरूपी काँटा निकाल नहीं फेंकते, तबतक उसकी चुभन रही जाती है ।

अधिकतर संसारी पति-पत्नियोंका प्रेम नहीं, किंतु मोह होता है । वे अपने ही स्वार्थके लिये एक-दूसरेको चाहते हैं । जब स्वार्थकी पूर्तिकी सम्भावना नहीं रहती, तब एक दूसरेकी चाहना भी नहीं रहती । एक दूसरेके रोगग्रस्त हो जानेपर घृणा हो जाती है; क्योंकि प्रेम सच्चा नहीं होता ।

प्रेम कोई सौदागरी नहीं । प्रेम बदलेमें कुछ नहीं चाहता । प्रेम देना-ही-देना जानता है, प्रेम लेना नहीं जानता । प्रेम बलिदान जानता है । प्रेम एक बहुत ऊँची मानस अवस्था है, जो कहीं, किंचित् ही पायी जाती है । दूसरेके लिये जीना प्रेम है और अपने स्वार्थके लिये जीना मोह है ।

गोपिकाओंका प्रेम निःस्वार्थ था, निष्काम था। वे श्रीकृष्णके लिये जीती थीं । उन्हींकी खुशीमें अपनी खुशी मानती थीं । प्रेममें नेम नहीं होता । प्रेममें रीति-रिवाज नहीं । मैंने तेरे लिये यह किया, मेरे लिये तुझे ऐसा करना चाहिये—ऐसी लेन-देनकी बात प्रेममें नहीं होती । प्रेम सात्त्विक है और मोह तामसिक है, संसारियोंकी दृष्टिसे मोहको ही प्रेम कहा जाता है !

जैसे संस्कृतमूलक भारतीय भाषाओंमें 'प्रेम' और 'मोह' दो भिन्न-भिन्न अर्थोंको समझानेवाले शब्द हैं, वैसे अंग्रेजीमें दो शब्द देखनेमें नहीं आते । वहाँपर एक ही शब्द Love है, जो प्रेम और मोह दोनोंके लिये व्यवहारमें लाया जाता है ।

उर्दू शब्द मोहब्बत भी 'मोह-बत' ही है ।

जब प्रेम और मोहका अन्तर समझमें आ जाता है, मनुष्य-अन्तरके पट खुल जाते हैं । वह प्रेमके मार्गपर चलकर पूर्ण निःस्वार्थता—निष्कामताको प्राप्त हो निज स्वरूपको प्राप्त हो जाता है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिवार-नियोजनपर एक आध्यात्मिक दृष्टिकोण

(लेखक—डा० श्रीके० सी० मिश्रा)

यह समूची सृष्टि परमेश्वरका परिवार है। वही इसका सृजन, पालन और संहारकर्ता है। यह कार्य वह प्रकृति (नेचर) के माध्यमसे करता है। इसलिये सृष्टि पूर्णतया प्रकृतिमय है। प्रकृतिसे ही वह नियन्त्रित होती है। प्रकृतिका पूर्ण नियन्त्रण केवल परमेश्वरके ही वशकी बात है। अन्य सभी जीव प्रकृतिके आश्रित तथा अधीन हैं और जीव प्रकृतिका विरोध करके सुखी नहीं रह सकता। जीवके द्वारा प्रकृतिपर अधिकार प्राप्त करना मृत्युको जीतनेके समान अथवा साक्षात् परमेश्वर-हीको जानने जैसा अति कठिन है।

जैसे यह सृष्टि प्रकृतिसहित परमेश्वररूपी कर्ताका परिवार है, वैसे ही प्रत्येक पति-पत्नीका जोड़ा अपने-अपने परिवारका कर्ता है। परिवार बननेकी स्थिति गृहस्थाश्रममें ही सम्भव होती है, जो सनातनधर्मका व्यावहारिक सिद्धान्त है। सनातनधर्मको अन्य शब्दोंमें अकाट्य सिद्धान्त या सार्वभौम सत्य (Universal Truth) भी कह सकते हैं। सनातनधर्म मानव-समाजके कल्याणके लिये अप्रत्यक्षरूपसे बहुत ही सुघड़ परिवार-नियोजन (Family planning and Birth control) का साधन बताता है, जिसके अन्तर्गत (१) ब्रह्मचर्य, (२) गृहस्थ, (३) वानप्रस्थ और (४) संन्यास—चार वर्ग (Class) अथवा आश्रम आते हैं, जो इस युगके मानवमात्रकी औसत पूर्ण आयु (१०० वर्ष) को दृष्टिमें रखकर गढ़े हुए-से लगते हैं। इन चार आश्रमोंमें केवल एक गृहस्थ-आश्रममें रहकर मनुष्यको परिवार बनानेकी सुविधा है, शेष तीनों आश्रमोंमें नहीं। उसमें भी, गृहस्थ-आश्रममें केवल पचीस वर्षके समयमें ही (२५ वर्षसे ५० वर्षके भीतर-भीतर)। महीनेकी दो रात्रियाँ, वह भी पर्वकी तिथियोंको बचाते हुए, (जैसा कि मनुस्मृति ३ । ४५-४७, ५० पर उल्लेख है) संतानोत्पत्तिकी सुविधा प्रदान करती हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि सनातनधर्म अथवा अकाट्य सिद्धान्त हमें परिवार-नियोजनके पूर्ण चारित्र्य-संयमका आदेश देता है, जिसपर भारतवर्षने सफलतापूर्वक चलकर हर प्रकारकी उन्नति प्राप्त की थी। किंतु आज दुर्भाग्यवश भारतवर्षने 'गोदमें लड़का नगरमें ढिंढोरा' वाले मार्गको अपनानेका फैसला कर लिया है। अब हम अपने ही पास रक्खे हुए सफल साधनों और उपायोंकी ओरसे आँखें मूँदकर विदेशियोंके सामने हाथ पसारनेके अभ्यस्त होते जा रहे हैं। यह अन्धानुकरण निश्चय ही हमें घोर गर्तमें गिराता जा रहा है। जिस प्रकार काश्मीरकी वर्षभर ठंडी जलवायुमें पहना जानेवाला ऊनी वस्त्र पूर्व मैदानोंकी वर्षके कई महीनोंकी पूर्ण गरम जलवायुके लिये सर्वथा अनुपयुक्त ही नहीं, बल्कि रोगकारी भी है। अतएव यह स्पष्ट है कि देश-काल-परिस्थितिके अनुसार ही साधन अथवा उपाय हमारा कल्याण कर सकते हैं, अन्यथा नहीं। और यही प्रकृतिका नियम (The Law of Nature) भी है। भारतवर्ष एक गरम देश है। यहाँ पूर्ण ठंडे देशोंमें अपनाये जानेवाले साधनोंकी नकलें कभी भी कल्याणकारिणी नहीं सिद्ध हो सकतीं। परिवार-नियोजन अथवा जन-संख्या घटानेके लिये अपनाये जानेवाले विदेशोंके उपाय नसबंदी, गर्भनिरोधक दवाएँ और उपकरण, गर्भपात आदिके प्रयोगके फलस्वरूप प्रदर, हिस्टीरिया, स्नायु-दौर्बल्य, मस्तिष्क और हृदयके रोग, कामोन्माद और अन्यान्य नयी-नयी जटिल बीमारियाँ बराबर देखनेमें आ रही हैं। जिसके कारण जीवन नारकीय बन जाता है। 'The disadvantage from the medical point

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

of view that very highly recognized authorities have declared is that the methods employed to prevent birth-control are responsible for so many diseases in females and males also. Illness, mental strain, over-work, worry, sorrow and the several ups and downs of life make one quite unfit for the struggle of life to which we are subject. The natural remedies for these are regularity of habit, restful sleep and cool-headedness. Method s of birth-control such as contraceptives, loops, vasectomy etc. are unnatural. The result is that they aggravate the diseases to which we are exposed in the present day world.'

ऐसे लोगोंमें आत्महत्या आदिकी कुप्रवृत्तियाँ भी जोर पकड़ती हुई देखी जा सकती हैं; क्योंकि रोगी हो जानेके कारण जीवन स्वाभाविक ही भाराक्रान्त हो उठता है।

परिवार-नियोजन-विषयपर खोज करनेवाले (चीन-देशमें २४ वर्ष), (अरबमें ४ वर्ष) और (भारतमें १२ वर्ष) डाक्टर राबर्ट बी० एम० सी० क्लुरने अभी हालमें ही कहा है कि (Dr. Robert B. M. C. Clure who has worked in China (24 years), Arabia (4 years) and India (12 years) recently said that until public health education made sterilization acceptable, there would be no good contraceptive available in rural areas. Things like un-natural methods have all had serious drawbacks in the nervous disturbance and digestive trouble etc.)

जन-संख्या-नियन्त्रणके उपायों और दवाओंसे भयानक स्नायविक रोग और पाचन-सम्बन्धी गड़बड़ियाँ उत्पन्न हुई हैं।

इसके अतिरिक्त, उपयुक्त दूषित और अनुपयुक्त साधनों तथा ओपधियोंका खुलकर दुरुपयोग भी हो रहा है। एकतीस वर्षके अनुभवी डाक्टरकी हैसियतसे लेखकने देखा है कि करीब-करीब ५० वर्षके ऊपरके व्यक्तिके लिये उन नसबंदी आदि उपायोंका कोई महत्त्व ही नहीं है। दूसरी ओर तरुणवर्ग ही मूर्खतावश, अज्ञानवश उन हानिप्रद उपायोंको अपनाकर अपना तथा देशकी शक्तिका विनाश कर रहा है; क्योंकि तरुण-वर्गकी संतानोत्पत्तिकी शक्तिका नाश होनेका स्पष्ट अर्थ है कि देशको भविष्यके लिये युवक सैनिकोंकी भारी कमीका सामना करना पड़ेगा, जबकि यही तरुण-वर्ग आगे बढ़कर, रोगग्रस्त होकर, पूर्ण निकम्मा और काहिल बनकर (Conscription) अथवा आवश्यकतानुसार अनिवार्य सैनिक-भर्ती योग्य भी नहीं रहेगा। इस प्रकार निकट भविष्यमें देशकी सैनिक-शक्तिका लोप होकर उसकी स्वतन्त्रता भी समाप्त हो जायगी और इन सबके ऊपर हो जायगा देशका सदा-सर्वदाके लिये पूर्णतः चारित्रिक पतन !

अतः परिवार-नियोजन (अथवा उचित परिवार) की दिशामें हमें कृत्रिम साधनोंको न अपनाकर नैतिक प्राकृतिक साधनको अपनाना चाहिये। उसीसे हमारा तथा समाज, देश और राष्ट्रका वास्तविक कल्याण सम्भव है। 'परिवार-नियोजन' की दिशामें सर्वप्रथम आवश्यकता तो यह है कि मानव-समाज अपनी पशु-प्रवृत्तिको त्याग-कर ज्ञानयुक्त संयमका सहारा ले, जो हमारे सत्-शास्त्रों तथा पूज्य संत, महात्मा एवं अन्य अनुभवी महानुभावोंसे सदा प्राप्त हो सकता है। किंतु खेदके साथ लिखना पड़ता है कि आजका भारत 'परिवार-नियोजन'के लिये अपने सहज स्वाभाविक आध्यात्मिक साधनकी ओरसे सर्वथा आँखें बंदकर, सर्वथा दूषित और निश्चित पतनकारी उपायोंके फेरमें पड़कर भयानक गड्ढेमें गिरनेकी ओर चल पड़ा है। क्या आज ठंडे मस्तिष्कसे इस अति महत्त्वपूर्ण विषयपर विचार करनेका हमारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमावश्यक पुनीत कर्तव्य नहीं है ? ऐसा न करना, स्पष्टतः समाज, देश और राष्ट्रके प्रति भीषण द्रोह है।

'परिवार-नियोजन' अथवा उचित परिवारका विषय भारतवर्षके लिये नया नहीं है, जैसा कि इस देशमें प्रचलित अति प्राचीन लोकोक्ति 'चादर देखकर पैर फैलाओ' से स्पष्ट है। हाँ, अवश्य ही आज हम अपने पूर्वजोंके दिखाये हुए सहज स्वाभाविक सरल मार्ग—उपर्युक्त चार आश्रमोंकी व्यवस्थाकी ओरसे मुँह फेरकर भ्रमसे उसे अति कठिन उलझन-जैसा मान बैठे हैं। तदनुसार ही गलत मार्गकी ओर चल पड़े हैं!

कामचोरी देशके लिये विनाशकारी है

आज जहाँ देखिये, वहीं कामचोरी नजर आती है। कहीं 'गो स्लो' है, कहीं बहाना है, कहीं इन्कार है। सरकारी महकमोंमें इसका विस्तार अधिक हो सकता है। वैसे खेतके खलिहान, कारखाने, बैंक, दूकान, घर, पाठशाला, विद्यालय, महाविद्यालय आदि कहीं भी, जरा गहराईसे देखनेपर मेहतरसे लेकर मन्त्रीतकमें सर्वत्र यह रोग फैला दिखायी देगा।

हमारे अर्थतन्त्रमें यह कामचोरीका विष प्रवेश कर गया है और देश धीरे-धीरे इसके कारण दुर्बल तथा जर्जर हुआ जा रहा है। निश्चित घंटे काम करनेका निश्चित वेतन ले लिया जाता है, पर उतने घंटे जरूरी काम पूरा नहीं किया जाता। इससे व्यवस्था बिगड़ जाती है, काम पूरा न होनेसे प्रगति रुक जाती है और आगेका काम अटक जाता है।

खास करके सरकारी कचहरियोंमें कामचोरीका यह रोग सबसे अधिक पीड़ा देता है। सात-आठ घंटोंमें मुश्किलसे तीन-चार घंटे अच्छी तरह काम होता होगा। शेष समय दुनियाभरकी व्यर्थकी गप्पें चलती रहती हैं। उधर कामकी फाइलें तथा काम अकारण ही रुके रह जाते हैं।

कभी-कभी तो यहाँतक देखा गया है कि खेती सूखनेके बाद नहरका पानी छोड़ा गया अथवा कैदीको फाँसी लग चुकनेके बाद उसके छूटनेका हुक्म पहुँचा। ये सब कामचोरीके ही परिणाम हैं। मिनटोंके कामोंमें घंटों लगें और घंटोंका काम सप्ताहोंतक पूरा न हो, इसीका यह परिणाम है।

अब तो यह रोग गाँवोंतकमें फैलने लगा है। पुराने किसानकी तरह आजका किसान मेहनत करके काम नहीं करता। शहरोंकी कामचोरीके रंगमें रँगे हुए किसानोंके लड़के आज इस रोगके पूरे झपाटेमें आ गये हैं। सरकारी आँकड़े कुछ भी कहें, वस्तुतः देशका कृषि-उद्योग प्रगति नहीं कर रहा है।

अब आँकड़ोंकी बात लीजिये। आँकड़े तैयार करनेका काम बड़ी ही जिम्मेवारी तथा बुद्धिमानीका माना जाता है; क्योंकि इसीपर भूतकालका मूल्याङ्कन और भविष्यका कार्यक्रम निर्भर करता है। परंतु कर्मचारियोंके कारण ये आँकड़े कैसे होते हैं, इस विषयका कभी अनुसंधान करना चाहिये। खेतीके ही आँकड़े लीजिये। इन आँकड़ोंके इकट्ठे करनेकी शुरुआत गाँवसे होती है। पर कामचोर सरकारी कर्मचारी पिछली सालके आँकड़े निकालते हैं और यदि खेती अच्छी हुई तो उन आँकड़ोंमें कुछ बढ़ाकर तथा खेती खराब हुई तो कुछ घटाकर, अपने कमरेमें बैठे-बैठे ही आँकड़े तैयार कर डालते हैं।* पिछले दिनों समाचारपत्रोंमें आया था कि 'इस वर्ष जितने अनाजका कम होना अनुमान किया गया था, उससे पचास-साठ लाख टन अधिक कम हुआ है।' कामचोर कर्मचारियोंके द्वारा बनाये आँकड़ोंका ही यह परिणाम है।

कामचोरी आज फैशन ही नहीं, अभिमानकी वस्तु बन गयी है। सरकारी महकमोंसे छूटे हुए साहब या बाबू लोग, विद्यालय-कालेजोंसे छूटे हुए विद्यार्थी और कारखानोंसे छूटे हुए मजदूर गौरवके साथ अपने संगी-साथियोंसे यह चर्चा करते दिखायी देते हैं कि आज उन्होंने कितना कम काम किया और किस सफाईसे सबकी आँखोंमें धूल झोंकी। यह रोग किसी एक ही वर्गको लगा

* एक बार मैंने स्वयं एक स्थानमें इस प्रकार एक ही जगह बैठे 'मनुष्य गणनाके आँकड़े' तैयार करते हुए लोगोंको देखा था।

—सम्पादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो, ऐसी बात नहीं है । क्लाससे बाहर निकलकर विद्यार्थी अपने साथियोंके सामने अपनी गौरव-गाथा गाता है कि 'अध्यापककी रोक-टोक चालू रहनेपर भी क्लासमें बैठे-बैठे ही उसने एक उपन्यास पूरा पढ़ डाला ।' इधर अध्यापक महोदय अपने सहकारियोंसे या घर जाकर पत्नीसे कहते हैं कि 'आज क्लासमें कुछ भी न पढ़ाकर हमने यों ही आरामसे सारा समय बिताया ।'

निर्माण होनेके कुछ ही दिनों बाद मकानों, पुलों या बाँधोंमें दरारें पड़ जाती हैं, यह इंजिनियरों और ओवरसियरोंकी कामचोरीका ही परिणाम है । कामचोर व्यापारी थोड़ा माल बेचकर अधिक-से-अधिक मुनाफा पानेका प्रयत्न करता है और इस प्रकार वह चीजोंके भाव बढ़ा देता है । यों कुछ विचार करनेपर कामचोरीके घातक और गम्भीर परिणाम सामने आ जाते हैं ।

निश्चित की हुई जिम्मेवारीके कामके समय दूसरा काम करना भी एक प्रकारकी कामचोरी है । जनता मन्त्रियोंको राज्यसञ्चालनके लिये चुनती है और वे मन्त्रीगण आवश्यकतासे अधिक उद्घाटन-समारोहों और भाषणोंमें ही अधिक समय गँवा देते हैं । तो वे भी कामचोर ही हैं ।

घरमें अपने बालकों तथा कुटुम्बियोंकी सँभाल न करके बाहर फिरने-घूमनेमें अधिक रुचि रखनेवाली गृहिणी भी कामचोर है ।

भ्रष्टाचार और रिश्वतकी पैदाइश कामचोरीसे ही होती है । कामचोर कभी ईमानदार नहीं होता; जहाँ जितनी अधिक कामचोरी होगी, वहाँ उतना ही अधिक भ्रष्टाचार होगा ।

हमारे समाजमें रहनेवाले ये कामचोर दूसरोंपर, अर्थतन्त्रपर, समाजपर और देशपर भारी बोझरूप बने हुए हैं । जिस देशमें जितने अधिक कामचोर होंगे, वह देश उतना ही पिछड़ा हुआ होगा ।

यह कामचोरी या मुफ्तखोरी एक बड़ा राष्ट्रीय अपराध है । इसके मिटाये बिना देशका कल्याण नहीं है । चाहे जितनी योजनाएँ बनायी जायँ, आन्दोलन या संघर्ष किये जायँ, कामचोरी मिटे बिना देशका विकास नहीं होगा ।

देखो तो, तुम्हारे आसपास तो कोई कामचोर नहीं है न ? कम-से-कम तुम स्वयं तो कामचोर नहीं ही हो न! 'अखण्ड आनन्द ।' —श्रीशरद द्विवेदी

हृदयका सौदा

दीपावलीके विश्वभरकी अप्रतिम वस्तुओंसे भरे और विविध रंगोंके आलोकसे आलोकित जगमग-जगमग करते लंबे-चौड़े बाजारमें मैंने भी अपनी हाट सजायी ।

बहुत बड़ा नामपट लगाया—'देहहाट' और दूकानके बीचो-बीच जँचकर बैठ गया—अपनी चीजको अपने सिरपर रख, एक कौतूहल-सा बनकर !

मेरी दूकानमें एक ही वस्तु थी; किंतु मुझे उसपर अभिमान था—गर्व था । मुझे पूरा भरोसा था कि यह अकेली ही सारे ग्राहकोंके मनोंको खींच लेगी, आँखें अटका लेगी, जेबें खाली करा लेगी और साथ ही उनकी आत्माको तृप्त कर देगी ।

जानना चाहोगे—क्या थी वह वस्तु ?

वह वस्तु थी—लाड-चावमें पला मेरा हृदय—प्रेमकी भट्ठीमें तपा, करुणा-जलसे धुला, सहानुभूति-सरितामें तैरा, समवेदनाके समुद्रमें डूबा, समझके बियाबानको पीछे छोड़कर आया हुआ, रोम-रोमसे सर्व-भूत-हितके संगीतका गायक, और जाने क्या-क्या और क्या-क्या नहीं ।

मैं जँचकर बैठा रहा—सिरपर धरे अपनी सिर-चढ़ी चीजको एक कौतूहल बना—कौतूहल ही वास्तवमें !

ग्राहकसे बात करनेकी, उसे अपनी ओर आकृष्ट करनेकी मुझे आवश्यकता ही क्या थी ! अपनी वस्तुपर भरोसा भी तो कोई वस्तु है !

हाँ, तो गर्वसे आँखें आधी मूँदे मैं बैठा रहा—अपनेमें चूर !

और जन-प्रवाह अपने शोर-गुलसे कान गुँजाता मेरी आँखों तले प्रवाहित होता रहा अविरल गतिसे !

× × × ×

आना-जाना बंद हो चला । बाजार बढ़ चला । जन-प्रवाहसे अपनी-अपनी हैसियतके अनुसार सभीने कुछ-न-कुछ पाया था । दूकानदारोंके दिल खिले थे । जेबें भरी थीं ।

लेकिन मेरे आश्चर्य और क्षोभकी सीमा न रही, जब मैंने देखा कि मेरी दूकानको तो किसीने समीप आकर झाँकातक भी नहीं,—हाँ ! दूर-दूरसे ही तिरस्कार-भरी दृष्टि अवश्य डाली !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुझे गहरा धक्का लगा। निराशासे भरे हृदयको सिरसे उतार मैंने नीचे रखना चाहा; किंतु अरे-रे यह क्या ? वह तो हाथसे छूटे काँचकी तरह टूट-फूट, बिखरकर खील-खील हो गया ! सहस्र-सहस्र दृष्टियोंके तिरस्कारके शिकारकी और क्या दशा हो सकती थी ?

मेरा कलेजा बैठ गया। यह धक्का संभाला न गया और मैं चेतनाशून्य हो गया।

× × × ×

होशमें आया तो क्या देखता हूँ कि 'एक बालक साँवला-सलोना, रूपका छौना, खील-खील हुए हृदयके उन बिखरे टुकड़ोंको बड़ी सावधानीसे सहेज रहा है।

टुकुर-टुकुर उस बालककी करतूत निहारनेके अतिरिक्त मैंने दम न मारा। दम था ही कहाँ जो मारता ?

परंतु जब वह उन टुकड़ोंको एकत्रित कर झोलीमें भरनेको हुआ तो मुझसे न रहा गया। गर्व अवश्य ही मेरा चूर-चूर हो चुका था, फिर भी उसका चूरा तो था ही। रस्सी जल गयी थी, पर ऐंठको तो ऐंठना था। चूरेने अमचूर घोला। ऐंठ ऐंठी —

'क्या है जी ? क्यों चुन रहे हो, भर रहे हो ये टुकड़े ? क्या तुम्हें यही—'

'चोर-चकोर नहीं हैं जी हम।' मुझे मेरी बात पूरी न करने देकर बीचमें ही बोल उठा वह बालक। 'हम तो मोल लेंगे—मोल इन्हें। गाहक हैं हम।'

अमचूर—घोलके कानोंमें अमृत-से बोल पड़े। 'मोल लेगा ! गाहक है ! आखिर गाहक आया ही—मन एक आशासे भर गया। किंतु एक ही क्षणको ही ! क्षण बीतते ही आशाको निराशा खाने लगी—'कौन किसे क्या लेना-लिवाना है। सारा बाजार ही जब उठ गया, तब यह बालक ही क्या तीर मारेगा ?'

आशा-निराशाको ढाँपकर खिन्नता बोली—

'मोल लोगे ? तुम ?'

'क्यों ?' बालक सहजभावसे बोला। 'क्यों नहीं लेंगे ? सारा बाजार तो हमने ले डाला। केवल एक तुम्हारी ही दूकान रह गयी है। तुमने बुलाया ही नहीं।'

मैंने आँख उठाकर बालकके मुखकी ओर देखा, एक लंबी साँस ली और मन-ही-मन कहा—'ठीक ही तो कहता है। बालकोंके बल-बूतेपर ही तो हैं सारी 'यह' घर-गृहस्थी और हाट-बाजार !'

बालककी दृष्टि हठात् मेरी दृष्टिमें तैर गयी। एक आकर्षण—खिंचाव-सा मुझे उसकी ओर होने लगा। खिन्नताके साथ-साथ कुछ उसके प्रति प्रेमसे भी भर, मैंने उससे कहा—'मोल ! क्या मोल इनका ? तुम तो—

'मुन्ने वैसे ही'........'पर आखिर तुम करोगे क्या इन टुकड़ोंका नटखट !'

'नटखट मत कहो जी !' गम्भीर बनकर बालकने कहा। 'मैं और मेरी सखी इनके साथ खेलेंगे ! और क्या करेंगे !' हाँ तो—

'तुम्हारी सखी कौन-सी है विचित्र बालक ?'

बीचमें ही बात काटकर मैं पूछ बैठा।

बालक उन्मुक्त हास्य हँसा—'अरे ! तुम नहीं जानते मेरी सखीको ? उसे तो सब जानते हैं। सब एक सिरेसे। अभी दिखाऊँगा तुम्हें उसे। यहीं आयेगी। जरा पूजामें गयी है। बड़ी लंबी पूजा होती है उसकी, समझे ?' जरा रुककर बालकने अपनी बात पूरी की—'हाँ तो, क्या मोल होगा इसका ?'

खिन्नता लोप हो रही थी। प्रेम फैल रहा था। बोल उमड़े—

'मोल ? मोल क्या होगा इन नाचीज टुकड़ोंका ? तुम वैसे ही ले जाओ !

'प्रिय बालक ! पर हाँ, एक बात तो बताओ ! इतनी रात बीते इस सन्नाटेमें तुम अकेले कैसे घूम-फिर रहे हो ?'

'इतनी रात बीते ? अकेले ? तुमने क्या बात कही ? मैं डरपोक थोड़े ही हूँ ! जो रातसे डरूँ ? डरते होंगे तुम-जैसे ! और फिर मैं अकेला ही कहाँ हूँ। मेरी सखी जो मेरे साथ है और हाँ, यह तुमने क्या कहा—'वैसे ही ले जाओ !' क्या हम कोई भिखमंगे हैं ? क्या तुमने हमें मुफ्त-खोरा समझ रक्खा है ? देखोजी, सौ बातकी एक बात।, बेचना हो, तो बेकार बात बनाना छोड़, सचा-सचा मोल बताओ; अन्यथा, यह लो—मैं चला !'

बालककी वार्ता-भंगिमाने मुझे एक विचित्र आनन्द-उद्वेगसे भर दिया। बोला मैं—

'तो मोल देकर ही ले जाओ। जाते क्यों हो ? इनका मोल है—सच-सच बताऊँ ?

'बिलकुल सच-सच। एक बाल-बराबर भी न इधर, न उधर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'ऐसा ही लो, मेरे नन्हे गाहक ! इनका मोल है—तुम्हारा सिर ।'

'मेरा सिर—सिर ही ?'

बालक ठठाकर हँस पड़ा मेरे रीझ-खीझभरे, तीखे-सरस व्यङ्गपर, फिर जाने कौन-कौनसे भावोंमें स्वयंको भर, समूचे विश्वको भी भरते हुए वह बोला—

'छिः ! कैसे भोले दूकानदार हो तुम ! अपनी चीजका मोल भी नहीं बता सकते ।—इसका मोल है मेरा सिर, मेरे पैर—मेरा सब कुछ!—समझे, लो मोल ।'

पलमें मेरे हृदयकी खील-खीलसे अपनी झोली भर, उस नटखट बालकने मुसकुराते हुए, मुहँ बिराते हुए अपना अरुण-चरण विद्युत्‌की-सी चपलताके साथ मेरे नासाग्रके सम्मुख कर दिया । सम्मुखतामें सामीप्य लहरा उठा । अरुण-चरणने नासाग्रको छू दिया !

क्या कर डाला इसने । क्रोधसे विकराल मुझे होना था; पर मैं,—मैं तो······'योंहीका यों ही केवल मात्र स्तम्भित होकर रह गया । क्या था उस चरणमें—उस नन्हे-से चरणके तलुवेमें ?—कुछ मत पूछो—मुझ-समेत समूचा विश्व—नाना प्रकारके व्यापारोंमें निरन्तर व्यस्त, और······और विश्वसे परे भी जो कुछ, वह सब ······ सब दरस रहा था उस नन्हेसे कोमल अरुण-चरणकमलमें—

× × × ×

'दाम मिल गये न दूकानदार ?' शब्द बाँसुरीके मधुरातिमधुर स्वर बनकर कानमें गूँजे । 'दूकानदार' के पास 'कुछ'था । तभी तो एक तुच्छ अवस्तुके बदलेमें विश्वात्माके चरणतलका स्पर्श मिला । इस 'कुछ'को न समझूँ—ऐसा कच्चा दूकानदार मैं कब था ? व्यङ्गय-चषकमें अमृत-रस लबालब भरा था और मैं गटागट पी रहा था । पी-पीकर रस-निमग्न हो रहा था—विमुग्ध, बेसुध !

× × × ×

मैं बैठा था—'कुछ' (अकारण-कृपाकी पात्रता) के बदलेमें 'सब कुछ' पाकर भी खोया-सा—ठगा-सा । काल रुककर, झुककर मेरे सौभाग्यको झाँक रहा था और विवश हो-होकर हाथ मल रहा था !

'क्या कहने तुम्हारे । बड़े वैसे हो तुम । सब जगह खोज हारी मिले भी तो कहाँ । तुम्हारी यही बातें नहीं जातीं । जीमें आती है—एकदम तुम्हें छोड़कर चली जाऊँ—कितव कहींके !'

मैंने चिहुककर गर्दन ऊपर उठायी और देखकर रस-चकित रह गया ।

बालककी वयसकी ही एक बालिका, जिसके अङ्गकी कान्तिसे रूप स्वयं निखार पा रहा था, सोना जिससे शोभा पा रहा था; रूपा राज रहा था और जवाहिरात जगमग-जगमग कर रहे थे, कहींसे आकर बालककी बगलमें खड़ी हो गयी थी और हँसती भौंहोंसे कुपित हो, बालकको उलाहना दे रही थी,······धमका रही थी ।

बालकने बालिकाकी मुद्राका एक क्षणको भरपूर रस लिया और फिर सहजभावमें अनन्त भाव भर वाक्य-पुष्प बिखेरे—

'सखी ! निरपराधीपर इतना रोष मत करो ! मैं तो दिन-रात तुम्हें पुजानेमें ही लगा रहता हूँ ।' और फिर, मेरी ओर मुड़कर अनुग्रह-वर्षा की—

'लो भाई ! दूकानदार ! उठो, अब तो तुम्हारे मालका सौदा हो चुका । अब ऐसे क्यों बैठे हो ? उठो और पूर्ण प्रसन्नतासे भरकर पूजा करो, तुम भी श्रीलक्ष्मीजीकी ! तुम्हारे-जैसा बड़भागी कौन होगा, जिसके द्वारपर साक्षात् श्रीजी कृपा—'

जो कहा जा रहा था, वह पूरा हो—इससे पूर्व ही एक सहज किंतु अपूर्व प्रकाशने मुझे बालक-बालिकाकी एक अनूप रूप-प्रतिमाके श्रीचरणोंमें उँड़ेल दिया । उन श्रीचरणोंमें, जो नृत्य कर रहे थे—रास-नृत्य ! मेरी दूकानमें ।

× × ×

जीवन-प्रदीप बुझ गया था । हाट उठ गयी थी । पौ फट चली थी ।

हरी प्रियतमा और श्री प्रियतम रास-नृत्य कर रहे थे । उनके चारु चरणोंकी धमकसे मेरे 'मैं' की—जन्म-जन्मान्तरसे ललकती कपाल-क्रिया हो रही थी और जीवन-कृतकृत्यता मेरे 'मेरेपन' से मुक्त तन-मनके रोम-रोम और कण-कणको अनन्त चुम्बनसे भर रही थी—मीठे सरस अलौकिक चुम्बनोंसे !

श्रीहरिकृष्णदास गुप्त 'हरि'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़ो, समझो और करो

(१)

प्रायश्चित्तमें त्यागपत्र दे दिया !

सूरतकी एक घटना है । सूरत शहरकी नगरपालिकाकी सफाई-कमेटीके अध्यक्षकी सिफारिशपर सार्वजनिक अस्पतालमें गरीबोंका मुफ्त एक्स-रे होता है । वे जिनके नुस्खोंपर अपनी सिफारिश कर देते हैं, उन रोगियोंसे कोई फीस नहीं ली जाती । उनकी सिफारिश सर्वमान्य है । अत्यधिक प्रामाणिक हैं । गरीबोंके झुंड उनकी सिफारिशके लिये प्रायः उनके मकानके आगे एकत्रित रहते हैं । वे सबकी आर्थिक अवस्थाकी पूछताछ करते हैं और बहुत सोच-विचारकर अपनी सिफारिश लिखते हैं । यह उनके लिये बड़ी जिम्मेदारीका कर्तव्य है । प्रत्येक केसमें अस्पताल-वालोंको हानि उठाकर निर्धनोंके लिये खास रियायतें देनी पड़ती हैं । उनकी इन्सानियत यह है कि बड़े-बूढ़ों और अस्पतालवालों—सबका उनके प्रति अखण्ड विश्वास जम गया है । जब मनुष्यकी ईमानदारी उसके स्वभावका एक अङ्ग बन जाती है, तो ऐसा ही होता है ।

एक बार उनकी पत्नी बीमार पड़ीं । लम्बी बीमारी और मनकी विक्षुब्ध दशामें उन्होंने उसी अस्पतालमें गरीबोंकी तरह अपनी पत्नीका भी मुफ्त एक्स-रे करा लिया । इस प्रकार फीसके पैसे बचा लिये । कुछ दिनों बाद उनकी पत्नी स्वस्थ हो गयी । उनका मन भी कुछ सँभला । विवेकबुद्धि स्वच्छ हुई । जब पूरी चिकित्साका हिसाब लगाया, तो एकाएक उन्होंने अनुभव किया कि सार्वजनिक गरीबोंको प्राप्त सुविधाओंका उन्होंने दुरुपयोग किया था । जो पैसे गरीबोंकी चिकित्सामें खर्च होने चाहिये थे, उन्हें खुद अपने व्यक्तिगत काममें लगा लिये थे । यह एक निन्द्य पापकर्म था । अब उनकी आत्मा बार-बार उन्हें इस पापकर्मके लिये कचोटने लगी । अपने लालचपर वे अत्यधिक आत्मग्लानिका अनुभव करने लगे; पर गलती तो आखिर हो चुकी थी । अस्पतालके सब रजिस्टरोंमें इसकी इन्दराज थी । उन्हें अपनी बेईमानी खलने लगी । 'सार्वजनिक जीवनमें ऐसी बेईमानी ! हाय, यह मैंने क्या किया । थोड़ेसे पैसोंके लिये अस्पतालके कर्मचारियोंको धोखा दिया । अपनी ईमानदारीको नष्ट कर दिया । लोभ-वृत्तिने मुझे कर्तव्यसे च्युत कर दिया । मैं भी भ्रष्ट कर्मचारी कहलाऊँगा । जो लोग मेरी कपट-झूठ और बेईमानीको जानेंगे, वे भला मुझे क्या-क्या कहेंगे ।' वे अपनी भूलपर तरह-तरहसे पछताने लगे । पर जो तीर हाथसे छूट चुका था, वह कैसे वापस आता । गलती तो हो चुकी थी, उसे कैसे सुधारा जाय, वे प्रायश्चित्त करनेका तरीका सोचने लगे ।

कोई कुसंस्कारी, भ्रष्ट, स्वार्थपरायण, संकीर्ण भावना-वाला सार्वजनिक अफसर होता, तो चुप होकर बैठ जाता और अपने गौरवको उसी तरह चलने देता । किंतु इन अफसर महोदयने मनमें सोचा,—'पता नहीं, यह प्रलोभन फिर कब दिमागमें घुसकर और बड़ा अनर्थ करा बैठे । समाजहितकी दृष्टिसे यही ठीक है कि इस पद-प्रतिष्ठासे बचा जाय । वह स्थान किसी अन्य चरित्रवान् सदाचारी व्यक्तिको मिलना चाहिये । खुद, इस सार्वजनिक पदपर चिपके रहना एक बड़ी सामाजिक विकृति है । मेरा इसपर अधिकार नहीं है ।' बस, उन्होंने प्रायश्चित्तस्वरूप नगरपालिका-की सफाई-कमेटीकी अध्यक्षतासे त्यागपत्र दे दिया । आदमी वही है जो अपनी गलतीके लिये सच्चे मनसे पछताये और फिर कभी भूल न करनेकी प्रतिज्ञा करे, अपनी सज्जनता और ईमानदारीकी रक्षा करे और प्रलोभनोंसे बचता रहे ।

—डा० श्रीरामचरण महेन्द्र (एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

(२)

भाई-भाई

कुछ वर्ष पहलेकी बात है । हमारे गाँवमें दो राजपूत भाई रहते थे । उनको पिताकी ओरसे उत्तराधिकारमें एक गाँव मिला था । दोनों भाई उस गाँवमें न रहकर अपने जन्मस्थानके गाँवमें ही रहते थे ।

बड़े भाईका नाम था अमरसिंह और छोटे भाईका नाम लक्ष्मणसिंह था । संयुक्त परिवार था । एक ही चौकेमें छोटे-बड़े मिलाकर अठारह-बीस आदमी भोजन करते थे । दोनों भाइयोंमें बड़ा प्रेम था । गाँवमें सब लोग उन्हें राम-लक्ष्मणकी जोड़ी कहा करते थे ।

पासमें रखे बरतन भी बज उठते हैं; इसी तरह घरमें स्त्रियोंमें कभी कुछ अनबन-सी रहने लगी । दोनों भाई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अलग हो गये । अन्तमें उस गाँवकी जमीनका भी बँटवारा करनेका निश्चय हुआ ।

गाँवके एक बनिये और एक ठाकुरको बँटवारेका काम सौंपा गया । गाँवमें ये दोनों मुखिया माने जाते थे और इनका उन राजपूतोंके कुटुम्बके साथ पुराना सम्बन्ध भी था ।

गाँवकी जमीन, मकान, पेड़ इत्यादि सभी बँट गये । बचा केवल एक आमका पेड़ । उसमें प्रतिवर्ष बढ़िया मीठे आम फलते थे । इस पेड़को लेकर बँटवारेमें अड़चन आ गयी । बड़े अमरसिंहने कहा—'यह पेड़ मेरा है' और छोटे लक्ष्मणसिंहने कहा 'मेरा है ।' केवल इस एक पेड़के लिये दोनों भाई लड़ पड़े । यहाँतक कि एक दूसरेके यहाँ जाने-आनेका तथा आपसमें बोलचालका व्यवहार भी बंद हो गया ।

गाँवमें दो खटपटी बनिये रहते थे । एक अमरसिंहसे मिला और उसने अमरसिंहसे कहा—'आप बड़े हैं, छोटे भाईको आपका मान रखना चाहिये, कुछ भी हो जाय, अपने पेड़ छोड़ना नहीं है ।' दूसरेने छोटे भाई लक्ष्मणसिंहको समझाया—'आप दोनों एक बापके बेटे हैं । बड़े भाईको अपना बड़ापन बताना ही चाहिये था । वे बड़े होकर एक पेड़के लिये इस प्रकार लड़ गये हैं, यह ठीक नहीं है । पर अपने भी अब यह पेड़ छोड़ना नहीं है ।' यों बार-बार दोनों भाइयोंको ये लोग बरगलाते तथा जोश दिलाते रहे । यहाँतक हो गया कि बड़े भाईने समझा कि छोटा भाई मुझे मरवा देगा और छोटे भाईको लगा कि बड़ा भाई मुझको मरवा डालेगा । दोनों भाई चार-चार, पाँच-पाँच हथियार-बंद आदमी अपने-अपने साथ रक्षाके लिये रखने लगे । इस प्रकार खर्च बढ़ता गया । झगड़ा चलते छः-सात वर्ष बीत गये । दोनों ओरसे बीस-पचीस हजार रुपये लग चुके । सगे-सम्बन्धी समझाते-समझाते थक गये । पर दोनोंमेंसे किसीने भी आमका पेड़ छोड़ना स्वीकार नहीं किया । राज्यसे छूटनेके बाद पितासे जो कुछ जायदाद मिली थी, वह सारी खर्च हो गयी और उन बनियोंके यहाँ गिरवी रखकर ऋण लेना पड़ा । ये दोनों बनिये राजदरबारोंके साथ लेन-देन करते थे, इससे उनकी अच्छी कमाई होती थी । अभिप्राय यह कि दोनोंको शहदका छत्ता ही हाथ लग गया था ।

एक दिन वर्षा ऋतुमें शामको छः बजे लगभग छोटा भाई लक्ष्मणसिंह शौचके लिये बाहर गया था । आसपास जल भरा होनेके कारण वह रेलवेकी नालीकी एक पुलियाके नीचे साफ जगह देखकर शौचके लिये बैठ गया । इसी बीच वे दोनों बनिये भाई भी घूमते-फिरते वहाँ आ निकले और पुलियापर बैठ गये । दोनोंमें बात शुरू हुई और राजपूत भाइयोंकी बात निकली । एकने कहा—'दोनों भाई कैसे मूर्ख हैं ? देखो न ! एक आमके पेड़के लिये हमने दोनोंको कैसा लड़ा दिया । ऐसा न करें तो इस छोटेसे गाँवमें अपना काम भी कैसे चले ?'........लक्ष्मणसिंहने ये बातें अपने कानसे सुनीं और दोनोंको पहचाना । कुछ देर बाद दोनों बनिये भाई तो उठकर गाँवको चले गये । लक्ष्मणसिंह भी घर आया । रातको वह न कुछ खा सका, न उसे नींद ही आयी ।

सबेरा हुआ । दाँतुन-कुल्ला करके लक्ष्मणसिंह अकेला बिना ही हथियार या किसी रक्षकको साथ लिये बड़े भाईके घरकी ओर चल दिया । बड़ा भाई अमरसिंह दो-चार मित्रोंके साथ मेड़ीपर बैठा था । एकने कहा—'लखुभाई आ रहा है ।' तुरंत ही अमरसिंहने कहा—'हैं, लाओ मेरी बन्दूक ।' इसपर उसने कहा—'वह तो खाली हाथ अकेला ही आ रहा है ।' अमरसिंह बोला 'ऐसा नहीं हो सकता ।' फिर खुद देखकर उसने भी यही समझा । लेकिन सबसे कहा कि 'तैयार रहना, देखना, लखुभाई कहीं दगा न कर बैठे ।' सब तैयार होकर बैठ गये । लखुभाई ऊपर जाकर सीधा बड़े भाईके पास पहुँचा और सिर झुकाकर पैर छूकर राम-राम करके वहीं उसके पैरोंके पास बैठ गया । थोड़ी देर तो वह कुछ भी नहीं बोल सका, फिर उसने पूछा—'भाईजी ! आमके पेड़का क्या करना है ?' बड़े भाईने गुर्राकर आँख फिराकर पूछा—'क्या करना है ?' लक्ष्मणसिंह बोला—'यों नहीं, भाईसाहेब, मेरी बात सुन लें—मैं आज ही इस पेड़के झगड़ेको मिटाने आया हूँ ।' तब तो अमरसिंहने चीखकर कहा—'मिटाया, मिटाया तैंने ? मिटाना क्या है ? आमका पेड़ मेरा है, इसमें मिटानेकी कौन-सी बात है ?'—उसको बोलते हुए बीचमें ही रोककर लखुभाईने कहा—'भाईजी ! पहले मेरी पूरी बात सुन लीजिये, फिर जो करना हो सो कीजिये ।' अमरसिंह बोला—'अच्छा, बोल, तुझे क्या कहना है ?' लखुभाईने कहा—'आप बड़े हैं, इससे मेरे पिताके समान हैं, पर आपके दोनों लड़कोंका मैं चाचा लगता हूँ, इससे मैं उनके पिताके समान हूँ या नहीं ?' अमरसिंह बोला—'इसमें कौन ना करता है ?'. तुरंत ही लखुभाईने कहा—'तो भाईजी ! मैं अपने दोनों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

110326

भतीजोंको यह आमका पेड़ उपहारमें दे रहा हूँ ।'

सारा वातावरण ही बदल गया । बड़ा भाई अमरसिंह बोला—'ले छोड़, छोड़ इस बातको । मैं बड़ा हूँ और तेरे बच्चोंका बाप हूँ । मैं ही यह पेड़ तेरे बच्चोंको देता हूँ ।' वहाँ बैठे सभी लोग आश्चर्य-चकित रह गये । इतनेमें अमरसिंहकी धर्मपत्नी उषाबा वहाँ आ पहुँची । लखुभाई उठकर उनके चरणोंपर गिर गया और बोला—'भाभी ! तुम मेरी माँ हो, मेरे बड़े भाईसाहबको समझाओ ।' सारी बातें जानकर उषाबाको बड़ी ही प्रसन्नता हुई । उसने कहा—'आज दोनों भाई यहाँ साथ ही जीमो ।' इसपर अमरसिंह बोला—'हमें अकेले नहीं जीमना है, बहू और बच्चोंको भी बुलाओ ।' तुरंत ही उषामैयाने बहू तथा बच्चोंको बुलवा लिया और छः-सात वर्षोंके बाद सारे कुटुम्बने आज एक ही रसोईमें एक पंक्तिमें एक साथ भोजन किया । आनन्द-ही-आनन्द छा गया !

फिर बड़े भाई अमरसिंहने पूछा—'लखुभाई ! छः-सात वर्षोंमें तू कभी मुझसे मिलने नहीं आया । आज अचानक तुझे यह बात कैसे सूझी ?' लखुभाईने पुलिया-वाली बात सुनायी । उसे सुनकर अमरसिंह तथा वहाँ बैठे हुए सभी लोग चिल्ला उठे कि 'खटपटी बनियोंने दोनों भाइयोंके भोलेपनका स्वार्थवश कैसा अनुचित लाभ उठाया है ।'

फिर तो जीवन रहा, तबतक दोनों भाइयोंने साथ ही भोजन किया । आज भी गाँव उन दोनों भाइयोंके भ्रातृप्रेम तथा कुटुम्बप्रेमको याद करता है । 'अखण्ड आनन्द'

—टी० बी० झाला ।

(३)

पंजाबकेशरीका दण्ड

मध्याह्न वेला । पंजाबकेशरी महाराज रणजीतसिंह अपने अङ्गरक्षकोंके साथ कहीं बाहर जा रहे थे । उनके साथ पर्याप्त सैनिक भी थे ।

महाराज रणजीतसिंह विचारमग्न थे । वे विचारोंमें इतने तल्लीन थे कि उन्हें पता भी नहीं था कि वे कहाँ जा रहे हैं ?

अचानक उन्होंने सिर थाम लिया । किसीने बड़े जोरका पत्थर मारा था । पंजाबकेशरीके सिरमें कसकर चोट ही नहीं लगी, रक्त भी निकल पड़ा ।

सैनिक उधर दौड़े, जिधरसे पत्थर आया था । उनका हृदय उद्विग्न और अशान्त हो गया था । उनकी उपस्थितिमें धर्म-प्रतिपालक, हिंदू-भूपति, वीरवर पंजाबकेशरीपर हाथ उठा दिया जाय और वे कुछ न कर सकें—इससे बढ़कर उनके लिये लज्जा ही नहीं, कलङ्ककी बात और क्या हो सकती है ? पंजाबकेशरीपर जो हाथ उठना चाहे, उसे उठनेके पहले कलम कर देना वे अपना प्रधान कर्तव्य समझते थे, पर आज तो वही हो गया, जिसकी उन्हें स्वप्नमें भी कल्पना नहीं थी ।

'यह दुष्टा रही ।' एक सैनिकने क्रोधसे काँपते हुए महाराजसे निवेदन किया । 'इसी पापिनने महाराजको पत्थर मारा था ।'

'मैं बेकसूर हूँ सरकार ।' बुढ़िया रो रही थी । उसका शरीर थर-थर काँप रहा था । 'महाराज ! मुझे माफी दें । दया करें सरकार !'

'क्यों, क्या हुआ माँ !' स्वनामधन्य रणजीतसिंहने संकेतसे सैनिकोंको एक ओर हटाते हुए बड़ी ही नम्रतासे वृद्धासे पूछा । 'मेरे किस अपराधपर तुमने पत्थर मारकर मेरा सिर फोड़ दिया ?'

'ना, ना सरकार ।' वृद्धाने गिड़गिड़ाते हुए कहा । 'मैंने आपको जान-बूझकर पत्थर नहीं मारा । मौतकी गोदमें लेटनेवाली मैं भला किसीको पत्थर कैसे मार सकती हूँ सरकार ? आपको एतबार आता है ?'

'पर तुमने पत्थर मारा किसलिये ?' वीरवर रणजीतसिंहने मन-ही-मन मुसकराते हुए पूछा ।

'मेरा बच्चा भूखसे व्याकुल था सरकार ।' बुढ़ियाने रोते हुए बताया । 'पत्थर मैंने बेरके पेड़को मारा था, जिससे कुछ बेर बटोरकर बच्चेका पेट भर सकूँ । आपकी सवारी तो मैंने देखी भी नहीं । आपको या किसीको पत्थर फेंककर मारनेका मेरा इरादा बिलकुल नहीं था सरकार ! मुझे माफ कर दें ।'

'यह लो एक हजार रुपये ।' पंजाबकेशरीकी बात सुनकर वृद्धा सहसा विश्वास नहीं कर सकी । मैंने इन्हें अनजानमें पत्थर मारकर इनके सिरसे खून बहा दिया और ये मुझे इतना रुपया दे देंगे, जितना मैंने अपने जीवनमें कभी देखा भी नहीं ।

'ले लो माँ, ले लो ।' महाराज बोले । 'डरो नहीं, रुपये लेकर घर जाओ । बच्चेको खिलाओ और पढ़ाओ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम्हारा बेटा पंजाब ही नहीं, सम्पूर्ण आर्यधराकी सम्पत्ति है।'

महाराजके दिये हुए दण्डपर सैनिक तो आश्चर्य-चकित थे।

'फलोंसे लदी डालियोंपर पत्थर फेंके जाते हैं, सूखी डालियोंपर नहीं।' महाराजने आगे बढ़ते हुए सैनिकोंसे कहा। 'अचेतन वृक्ष जब पत्थर मारनेपर मधुर फल देकर लोगोंको कृतार्थ करते हैं तो मैं तो मनुष्य और पंजाबकेशरी कहा जाता हूँ न ! मैं वृद्धाको खाली हाथ कैसे लौटने देता !'

(४)

करनीका फल

लगभग तीस वर्ष पहलेकी घटना है। उत्तरप्रदेशमें एक छोटा-सा रेलवे-स्टेशन था। वह अब तो काफी बड़ा जंकशन बन गया है। वहाँ केवल एक ही कमरा था। वही कमरा स्टेशन-मास्टरका कार्यालय था। पार्सल और बुकिंग आफिस भी वही था। वहाँ वेटिंग रूम या वेटिंग हाल भी नहीं था। केवल एक छोटा-सा टीनका शेड था। उसे हम कुछ भी कह सकते हैं—वेटिंग रूम या वेटिंग हाल ! चारों ओरसे खुला, प्रकाशविहीन स्टेशन।

शामकी ट्रेनसे एक नवयुवक वहाँ उतरा। जब ट्रेन चली गयी तो वह युवक स्टेशन-मास्टरके पास पहुँचा। स्टेशन-मास्टर वयोवृद्ध थे। उस युवकको बैठनेका संकेत किया, वह बैठ गया। जब अपना कार्य निपटाकर युवककी ओर ध्यान दिया और पूछा, तब उस युवकने आकाशकी ओर अँगुली उठाकर कहा कि 'अन्धकार घिर आया है, मुझे यहाँसे दस-बारह मील दूर एक गाँवमें जाना है। मैं नितान्त अकेला हूँ। मेरे पास टार्चतक नहीं। कैसे जा सकूँगा ?' तब स्टेशनमास्टरने अपनी विवशता व्यक्त कर दी और उसे चले जानेका सुझाव दिया। फिर भी युवकने कहा कि 'मैं कहीं भी जानेमें सर्वथा असमर्थ हूँ—आप कुछ तो प्रबन्ध कीजिये।'

स्टेशन-मास्टरने उस अँधेरे और सुनसान 'शेड'के नीचे सो जानेके लिये कह दिया। परंतु युवक था कि हटनेका नामतक न लेता—वह अपनी बातपर अड़ा था। वह कोई सुरक्षित स्थान माँगता था। वास्तवमें उन दिनों उस स्टेशनपर चोरियाँ बहुत ज्यादा होती थीं। वह बार-बार अनुनय-विनय कर रहा था।

जब अपना कार्य बनते न देखा तो उसने स्टेशन-मास्टरकी अवस्था देखते हुए वास्तविकता व्यक्त कर दी। उसने स्पष्ट कह दिया—''मेरे पास इस समय आठ-दस हजार रुपये हैं, मुझे अकेले डर लगता है। मैं अकेला इतनी दूर किसी भी अवस्थामें नहीं जा सकता और न यहाँ सुनसान एवं अँधेरे 'शेड'के नीचे सो ही सकता हूँ।''

तब एक पोर्टरके साथ उस युवकको अपने घर भिजवाया और उसके सोनेका प्रबन्ध बाहर बरामदेमें हो गया। उसका प्रबन्ध करके वह पोर्टर लौट आया। रातमें स्टेशनमास्टरकी नीयत खराब हो गयी। उसने मन-ही-मन एक योजना बना ली। उसने पोर्टरसे सहयोग माँगा। वह इन्कार कर गया। फिर समझाने-बुझानेपर और रुपयोंके लोभमें आकर वह सहमत हो गया। अब पूरा इन्तजाम किया गया। पहले एकदम सुनसान जगहपर झाड़ियोंके बीच एक लंबा और गहरा गड्ढा तैयार किया, फिर एक तेज हथियारकी व्यवस्था हुई। रातके गहन अन्धकारमें स्टेशन-मास्टर और पोर्टर गये, एक ही वारसे युवकका सिर धड़से अलग कर दिया, उसे चूँतक करनेका अवसर न मिला। उस युवककी हत्याके बाद जब उसकी तलाशी ली गयी तो उसके पास एक भी पैसा न निकला। उसे कपड़ोंमें लपेटकर उठाया और दफना दिया गया। गुनाह बे-लज्जत हो गया !

हाथ-पैर धोकर दोनों आदमी पुनः अपनी-अपनी ड्यूटीपर तैनात हो गये। प्रातः सूर्योदयके साथ-ही-साथ वही युवक स्टेशन-मास्टरके सम्मुख आ खड़ा हुआ। जब स्टेशन-मास्टरने उस युवकको देखा तो चेहरेपर हवाइयाँ उड़ने लगीं—पसीनेसे लथपथ हो उठा सारा शरीर और पैरोंके नीचेसे धरती खिसक गयी। हकलाते हुए उस युवकसे पूछा—'कहाँसे आ रहे हो ?' 'आपके घरसे आ रहा हूँ।' युवकने उत्तर दिया। 'रातमें कहाँ सोये थे ?' स्टेशन-मास्टरने पुनः पूछा। 'आपके घरके अंदर।' युवकका उत्तर था। 'मेरे घरके अंदर ?' स्टेशन-मास्टर फिर पूछ बैठे। युवकने कहा—'हाँ-हाँ, आपके घरके ही अंदर मैं सोया था।'

'तो, फिर बाहर कौन था ?' स्टेशन-मास्टर आश्चर्यसे पूछ रहे थे। 'वह तो आपका लड़का था।' युवकने सहज ही उत्तर दे दिया। वास्तवमें जब पोर्टर उस युवकको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुलाकर आ गया तो स्टेशन-मास्टरका बड़ा लड़का, जो कि बनारसके किसी कालेजमें पढ़ता था और गरमीकी छुट्टियोंमें घर आया हुआ था। उस युवककी योग्यता एवं सज्जनतासे प्रभावित होकर उसे अपना सम्मानित अतिथि मानकर अपने कमरेमें सुला दिया था और स्वयं बाहर सो गया था। संयोगसे घरमें और कोई नहीं था, सब लोग बाहर रिश्तेदारीमें गये हुए थे।

स्टेशन-मास्टरने लोभमें अंधे होकर स्वयं अपने ही हाथों अपने पुत्रकी हत्या कर दी। उन्हें एक भी पैसा न मिला, पुत्रसे हाथ धोया और मुकदमेमें सारा धन फुँक गया। फिर भी अन्तमें फाँसीकी सजा हो गयी। पोर्टर आजीवन कारावासका दण्ड भुगतता रहा!

—देवेन्द्रसिंह 'नीर'
पो० खोंगसरा
जिला विलासपुर (म० प्र०)

(५)

[एक सम्मान्य सज्जनका पत्र है, वे अपना नाम-पता प्रकाशित कराना नहीं चाहते। वे इसको लकवेपर सफल-प्रयोग बतलाते हैं। पत्र नीचे उद्धृत है। लकवेके रोगी प्रयोग करके देखें।]

(पत्र)

निवेदन है कि लकवा-सम्बन्धी सर्वसाधारणके लाभार्थ निम्नलिखित ओषधि 'कल्याण'में प्रकाशनार्थ सेवामें प्रेषित कर रहा हूँ—

अर्धाङ्गवायु (Paralysis) या लकवापर काढ़ा

अर्धाङ्गवायु (Paralysis) या लकवा रोगपर निम्नलिखित काढ़ा रामबाण ओषधि है। इस काढ़ेके सेवन करनेसे अर्धाङ्गवायुका नया या पुराना रोगी ठीक हो जाता है तथा उसे पुनः अर्धाङ्गवायुका झटका नहीं आता। लाभका निरीक्षण करते हुए आवश्यकतानुसार यह काढ़ा ९ दिन, १८ दिन, २७ दिन और ३६ दिनतक लिया जा सकता है।

ओषधियोंके नाम

(१) बाय सुरई (यह मध्यप्रदेशके दतिया शहरमें अधिकतासे मिलती है)
(२) छोटा गोखरू
(३) एरंड-मूल
(४) देवदारकी लकड़ी
(५) बिसखपड़ेकी जड़
(६) नीम गिलोय
(७) अमलतासका गूदा
(८) छोटी हरें
(९) सोंठ

सेवन-विधि—

उपर्युक्त सब ओषधियाँ प्रत्येक डेढ़ तोला लेकर, अलग-अलग कूटकर, दरदरी कर ली जायँ। फिर ओषधियोंके ९ भाग इस प्रकार किये जायँ, जिसमें प्रत्येक ओषधि सम-प्रमाणमें हो। इस प्रकार ९ खुराक बनेगी।

एक खुराक रातको कोरी मटकियामें डालकर तीन पाव पानीमें भिगो दी जाय और सवेरे उसी मटकियामें उबालकर उसका चौथाई काढ़ा बना लिया जाय। यह काढ़ा दूसरे बर्तनमें कपड़ेसे छानकर निकाल लिया जाय और उसमें ६ माशे शहद डालकर कुनकुना पी लेना चाहिये। फिर कपड़ा ओढ़कर एक घंटे लेट जाना चाहिये। जो ओषधि मटकीमें बचेगी, उसमें फिर तीन पाव पानी डालकर रख दिया जाय और उसका चौथाई काढ़ा शामको बनाकर उसमें ६ माशे शहद डालकर कुनकुना पी लेना चाहिये और कपड़ा ओढ़कर एक घंटे लेट जाना चाहिये। फिर बची हुई ओषधि फेंक देनी चाहिये और दूसरे दिनके लिये दूसरी नयी खुराक भिगो देनी चाहिये।

पथ्य—

दाल, रोटी, घी, दूध, लौकी, तुरई, पालक खा सकते हैं।

तेल, तीखा, खटाई, गुड़, भुट्टे, सौजनेकी फली, अदरख नहीं खाना चाहिये।

आवश्यक सूचना

इस काढ़ेके प्रवर्तक पूज्य महात्माजीका वचन है कि इस काढ़ेसे यदि कोई पैसा कमायेगा तो उसपर दैवी प्रकोप होगा।

(६)

कुछ रोगोंके अनुभूत प्रयोग

[वृन्दावनके मौनी बाबाने निम्नलिखित दवाइयोंके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रयोग लिखे हैं और इन्हें अपना अनुभूत बताया है। पाठकोंमें कोई भी इनका प्रयोग करके लाभ उठा सकते हैं। मौनी बाबाजीने लिखा है कि जिनको जिस दवासे लाभ हो वे कृपया उन्हें पत्र लिखकर सूचना दे देंगे तो उन्हें प्रसन्नता होगी।

—सम्पादक]

(१) 'लकवे' पर प्रयोग—

(क) किसीको लकवा होनेकी सम्भावना हो या हो गया हो तो असली हींग जलमें खूब महीन पीसकर उसकी चार-चार बूँदें नाकमें डालना।

(ख) अंगीठीमें कोयले जलाकर उसमें अजवायन डाल देना और रोगीको उसका धूनी देना। रोगी चारपाईपर इस प्रकारसे लेटे, जिससे लकवेके अङ्गपर अजवायनका धुँआ लगता रहे।

लकवा होनेके बाद आठ घंटेके अंदर यह प्रयोग करनेसे लाभ होता है।

(२) 'रक्तविकार' पर प्रयोग—

शरीरके खूनमें जब दोष पैदा हो जाता है, तब खुजली, एकज़िमा, दाद आदि होते हैं। इसपर निम्नलिखित सरल प्रयोग करना चाहिये।

एक दिन रोगी केवल मिश्री खाकर रहे। २४ घंटे और कुछ भी खाये-पीये नहीं, बस, दूसरे ही दिनसे लाभ मालूम होगा।

(३) सिरपर फोड़े-फुंसीपर प्रयोग—

गरमीके दिनोंमें बहुत लोगोंके—खास करके बालकोंके सिरमें फोड़े-फुंसी हो जाते हैं, बड़ी जलन होती है। रोगी बेचैन हो जाता है। इसपर सरल प्रयोग है—

ताँबेके बर्तनमें पावभर या आधा सेर दही डालकर उसे ढककर रख देना। तीन दिनोंतक रक्खे रहना। इस बीचमें ताँबेका काट दहीमें आ जायगा। इस दहीको सिरपर लगानेसे फोड़े-फुंसी मिट जाते हैं और नये नहीं होते।

(४) आँख दुखना-रोकनेवाला प्रयोग—

गोरखमुण्डी नामक फल, जो फालसा-जैसा होता है। चैत्रमें पकता है। जहाँ गड्ढोंमें पानी भरकर सूख जाता है, वहाँ गोरखमुण्डीके पेड़ हुआ करते हैं। इसका एक फल निगल जानेसे एक सालतक आँख दुखनी नहीं आती। जितने फल निगले जायँगे, उतने ही साल आँख दुखनी नहीं आयेगी। सात फल निगलनेपर बहुत भूख लगती है।

(५) क्षय—(टी० बी०) पर प्रयोग—

क्षयरोग होनेकी सम्भावना हो या डाक्टरोंके मतके अनुसार रोग हो गया हो तो भय-चिन्ता न करके निम्नलिखित प्रयोग करने चाहिये। भगवान्‌की कृपासे लाभ हो सकता है।

(क) रोगीको एक दिन सुबहसे शामतक प्रति घंटा (हर एक-एक घंटापर) एक-एक तोला गोमूत्र पिलाना। दिनभर कुछ भी खाना-पीना नहीं। जलसे कुल्ला कर सकते हैं। जल पिलाना नहीं।

(ख) कुछ दिनोंके बाद एक दिन दिनभर केवल पान (जितना मन हो) खिलाना। पानमें केवल कत्था और चूना ही लगा हो, और कुछ भी न हो। उस दिन कुछ भी खाना-पीना नहीं। यह अनुभूत प्रयोग है।

ऊपर जो प्रयोग लिखे हैं, इनसे लाभ होनेपर अपनी शक्तिके अनुसार गौओंको घास डलवाना चाहिये।

मौनी बाबाका पता है—श्रीराधेश्याम मौनीबाबा वंशीवाला, वंशीवट, वृन्दावन (मथुरा)

(७)

पश्चात्ताप

मेरे बड़े भाईसे कर्जकी रकम वापिस न मिलनेके कारण महाजनने नालिश कर दी। सुनवाईके दिन भाई साहबने कोर्टमें जाकर कृतघ्नका मुँह देखनेसे इन्कार कर दिया।

इसकी पिछली साल उन महाजनकी बहुत बड़ी बीमारीमें मेरे बड़े भाई साहबने उन्हें मित्र समझकर तीन महीनेतक बड़ी लगनसे इलाज करके उनका रोग दूर किया था।

भाई साहबकी ओरसे मैं अदालतमें हाजिर हुआ। महाजनने मेरी बात मान ली। रुपये चुकानेकी किश्त कर दी गयी। पर पाँच सौ रुपये अधिक लगा दिये। हर तीसरे महीने मैं किश्त चुकाकर रसीद ले आता। जब मूल रकम पूरी हो गयी तब मैंने कहा—'पाँच सौ रुपये जो आपने अधिक लगाये हैं, इन्हें छोड़ दें तो अच्छा है। पर वे नहीं माने। अन्तमें जिस दिन मैं ये पाँच सौ रुपये चुकाने गया तो देखा कि महाजन बीमार हैं और बिस्तरपर पड़े हैं। बुढ़ापा तो था ही और कितनी ही पुरानी स्मृतियाँ जाग उठनेसे वे रो पड़े। मैंने जाकर रुपये उनके पास रख दिये। रुपये देखकर उनका भरा हुआ हृदय एकदम खाली हो गया। उन्होंने कहा—'ये रुपये मैं नहीं लूँगा। मेरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असली पूरी रकम ब्याजसमेत किश्तोंमें मिल चुकी।' पर मैंने हठ करके रुपये देकर उनसे रसीद ले ली।

जाते समय उन्होंने मुझसे कहा—'वैद्यराजजीसे कहियेगा, मैं अपनी भूलके लिये क्षमा चाहता हूँ। दो वर्षोंसे मैंने उनका मुख नहीं देखा। वे मुझपर नाराज हैं, अतएव वे तो क्यों मुख देखते! और क्यों मेरे पास आते? किंतु शरमके मारे मैं भी उनके पास नहीं जा सका। मैं हीरे-जैसे मित्रको खो बैठा। इस समय इस बीमारीसे मुझे कौन बचायेगा?' यों कहते-कहते वे फुफकार मारकर रोने लगे।

घर आकर मैंने सारी बातें भाई साहबको सुना दीं। सुनते ही वे चौंक पड़े। एक घंटे बाद महाजनके एक नौकरने रुमालसे ढकी एक रकाबी लाकर भाई साहबके सामने रख दी। नौकरको पहचानते ही उन्होंने पूछा—'महाजन कैसे हैं और यह क्या है?'

नौकरने रुमाल उठा लिया। रकाबीमें एक कागजका परचा था, उसे उठाकर उन्होंने पढ़ा; उसमें लिखा था—'भूल-चूक माफ कीजियेगा, मृत्युशय्यापर पड़ा हूँ।' इसे पढ़ते ही तुरंत कपड़े पहनकर वे नौकरके साथ चल दिये और रोगीके लिये चिकित्सा-दवा आदिकी व्यवस्थामें पूरी तरहसे लग गये।

अच्छे होनेके बाद महाजन हमारे घर आये और उन्होंने जेबमेंसे नोटोंका एक बंडल निकालकर भाई साहबके सामने रखते हुए कहा—'असली मूल रोग तो यह था, अब इसे मैं अपने पास नहीं रख सकता।'

भाई साहब खिलखिलाकर हँस पड़े—'वाह जी वाह। मैं तो ऐसे रोगसे साफ अलिप्त ही रहता हूँ।' खूब वाद-विवाद हुआ—प्रेमभरा। अन्तमें, ये पाँच हजार रुपये थे, इनमें महाजनने अपनी बचतकी सारी रकम मिलाकर भाई साहबकी सलाहके अनुसार सब रुपये पाठशाला-निर्माणके लिये सरकारको दे दिये। 'अखण्ड आनन्द'

—चन्द्रसेन

(८)

बाँहाजोटीका पानी

रामनाममें बहुत बल होता है। इसपर मुझे विश्वास हुआ; परंतु एक विचित्र ढंगसे। वह घटना मैं यहाँ देता हूँ—

कई वर्ष पहलेकी बात है, मैं अपने गाँवमें, जो यमुना नदीके किनारेपर है, रह रहा था। गाँवमें एक कुँआ था, पर तो भी अधिकांश लोग यमुना-जलके सहारे ही जीवन-यापन कर रहे थे। गरमीके दिन थे और यमुनाकी धारा बालुकामयी भूमिके विस्तारमें एक क्षीण रेखामात्र रह गयी थी।

एक दिन गाँवके पुरोहितने शंखनादके साथ समूचे गाँवको वह रेतीला मार्ग पार करके यमुना-तटतक पहुँचनेका आह्वान किया। इसके तुरंत बाद ही गाँवके पुरुष, स्त्रियाँ, बालक सभी यमुना-तटकी ओर जाते-से दिखायी पड़ने लगे। कुछ लोग पूछ-ताछ करने लगे कि कारण क्या है? पूछ-ताछ करनेवालोंमें एक मैं भी था। बिना कारण जाने इस भेड़िया-धसान समारोहमें जानेको तैयार न था। पुरोहितजी स्वयं मेरे पास आये। कहने लगे—'भैया! इसी दम चलो।'

'बात क्या है, महाराज!'

'सब वहीं पहुँचनेपर मालूम हो जायगा। चलो, शुभ कार्यमें विघ्न मत डालो।' मैं उनके साथ चल पड़ा। यमुना किनारे पहुँचने भी न पाया था कि देखा, ग्रामके निवासी अपनी बाहें फैलाये सम्पूर्ण मार्गमें इस तरह खड़े किये जा रहे हैं, जैसे वे किसीका मार्ग रोक रहे हों।

'यह क्या तमाशा है? महाराज!' मैंने पुरोहितजीसे पूछा।

'तमाशा नहीं है बच्चा!' वे बोले। 'एक गड़ेरिनकी जान बचानी है। पिछली तीन रातोंसे वह प्रसव-वेदनासे पीड़ित है। यदि कुछ उपाय न हुआ तो शिशु-जन्म तो दूर रहा, वह भी मर जायेगी।'

'तो आप कर क्या रहे हैं?'

'उस औरतको 'बाँहा-जोटीका' पानी पिलाया जायेगा।'

'इससे क्या होगा?'

वे बोले—'देखते जाओ, मेरी आजमायी हुई ओषधि है। ज्यों ही लोटेसे भरा यमुना-जल उसकी खाटके पास खड़े उसके पतिके हाथमें पहुँचेगा और वह शंकर भगवान्‌का नाम लेकर उसका एक घूँट पानी पियेगा और फिर वह जूँठा पानी अपनी स्त्रीके पेटपर छिड़केगा, बस, उसके बच्चा हो जायगा।'

'पुरोहितजी महाराज!' वह स्त्री मर जायेगी! मैंने कहा। 'उसे शीघ्र अस्पताल पहुँचाओ।'

'अस्पताल यहाँसे १२ मील दूर शहरमें है। कैसे उसे ले जाया जाय? डोली-कहार कहाँ मिलें? न सड़क, न कोई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सवारी ? यहाँ भगवान्‌के नामके सिवा और क्या सहारा है ?'

'नावसे तो जा सकते हैं ?' मैंने कहा।

'हाँ, पर नाव १२ घंटेमें पहुँचेगी और वह स्त्री घंटे-दो-घंटेकी मेहमान जान पड़ती है।'

मैं निरुत्तर हो गया। इस बीचमें यमुना-तटसे गाँवके निकटतक बाँहें फैलाकर खड़े हुए पुरुषोंकी पङ्क्ति बन गयी थी। इस पङ्क्तिमें गाँवके सब पुरुष आबद्ध हो चुके थे। फिर भी पङ्क्ति अभी कुछ छोटी पड़ रही थी। तब स्त्रियाँ आगे बढ़ीं। गड़ेरियाकी स्त्री अपनी झोपड़ीमें जहाँ लेटी थी, वहाँतक यह मानव-बाँह-पङ्क्ति पहुँच गयी। तब गड़ेरिया पुरोहितजीके आदेशानुसार लोटा लेकर चला। उसने यमुनामें स्नान किया और पवित्र जल भरकर किनारे खड़े व्यक्तिकी हथेलीपर रक्खा। पुरोहितजी चिल्लाये—'बोल शंकर भगवान्‌की जय।' समूची मानव-पङ्क्तिसे यही स्वर-लहरी प्रतिध्वनित हो उठी। गड़ेरिया लोटेके साथ दौड़ा। जिस तरह हाथों-हाथ लोटा बढ़ रहा था, उसी तरह गड़ेरिया बढ़ता जा रहा था। अपनी पत्नीकी खाटके पास पहुँचते ही गड़ेरियेने अन्तिम व्यक्तिके हाथसे लोटा ले लिया और जोरसे चिल्लाया—'शंकर भगवान्‌की जय।' पुनः यह स्वर-लहरी यमुनाके किनारेसे उसके झोपड़ेतक गूँज उठी।

गड़ेरियेने पुनः 'शंकर भगवान्‌की जय' कहकर लोटेसे एक घूँट पानी पिया और शेष जल अपनी पत्नीके पेटपर छिड़क दिया।

इतनेमें ही वहाँ एकत्र ग्रामीण महिलाओंमेंसे एक बोली—'बाहर जाओ, बचा पैदा हो गया।' अब समस्त ग्रामवासी गड़ेरियेके द्वारपर और आसपासके तंग रास्तोंमें जमा हो गये। सभी एक साथ जोर-जोरसे 'शंकर भगवान्‌की जय'का उच्चार करने लगे।

पुरोहितजीने मेरी ओर बढ़कर कहा—'देखा, औघड़-दानी भोलानाथने हमारी पुकार सुन ली। न सौ दवा न एक रामनाम।'

जब मैं लौटा, अपशकुनकी प्रतीक्षामें एकत्र गड़ेरियोंके कण्ठसे सोहरके स्वर उठ रहे थे !

यह घटना मेरे मानस-पटलपर आज भी वैसी ही ताजी है।

—श्रीनाथसिंह

वह कौन था ?

(लेखक—श्रीदुर्गाशंकरजी व्यास)

भक्त और भगवान्‌की बातें आजकलके अधिकतर लोगोंको कर्णप्रिय नहीं लगतीं—इन दिनोंकी शिक्षा-दीक्षा और वातावरण ही कुछ ऐसा विकृत, दूषित और पाश्चात्त्यताके रंगमें रँगा हुआ है कि परमात्मा नामसे ही जनताको चिढ़-सी होने लगती है और वे भगवान्‌के नाम तकको कल्पना कहनेसे झिझकते नहीं। प्रायः वे कहते सुने जाते हैं—"हमारे पूर्वजोंने, पण्डितों और ब्राह्मणों एवं तत्त्ववेत्ताओंने केवल अपना प्रभुत्व स्थापित करनेके लिये ही 'भगवान्' नामकी रचना करके अनपढ़ जनताको अपने प्रभावके आधीन रखनेका षड्यन्त्र मात्र किया था।"

भक्तिकी बातें उन्हें इसलिये कदापि सह्य नहीं हैं—इसके विरुद्ध वे आवाज बुलंद करनेमें किंचित्-मात्र लज्जाका अनुभव नहीं करते। जब कभी घरमें बड़े-बूढ़े माता-पिता रामायण-भागवतकी कथा करने बैठते हैं तो आजकी पीढ़ी बड़ी विचित्र प्रकारकी टीका-टिप्पणी उनपर किया करती है। इन दिनों उनके लिये अपने घरोंमें कथावार्ताका आयोजन करना-करवाना तक एक जटिल समस्या बन गयी है। मैं आँखों देखी बातें कह रहा हूँ—कल्पना नहीं। जब कभी वृद्ध माता-पिता घरमें राम-नामका सत्सङ्ग करना-करवाना चाहते हैं, तो उन्हें उनकी इस युगकी अंग्रेजी पढ़ी संतान ऐसा करनेकी अनुमति नहीं देती। यदि किसी अमीर माँ या बापने कथावार्ता चालू करवा ही दी तो उनकी संतान उस कथावार्ताको सुननेमें बिल्कुल रुचि नहीं दिखाती। समय ही कुछ ऐसा बदल गया है। क्यों ऐसा परिवर्तन हो रहा है ? यह इस लेखका विषय नहीं है। घरमें किसी पुरोहित एवं ब्राह्मणको भोजन आदि कराना या श्राद्ध करना तक आजकी संतानको चुभने लगा है—ऐसे सब कृत्योंको वे पाखण्ड और धोखा तथा भ्रान्ति आदिकी संज्ञा दिया करते हैं।

जब इनपरसे इनकी श्रद्धा हट गयी है तो भगवान् और भक्तके रिश्तेकी बात इनकी समझमें बिल्कुल आनेकी नहीं। ऐसी इन बातोंको वे नितान्त ढकोसला कहकर पुकारते हैं। ऐसी मनोवृत्तिके कारण ही तो आज देशका नैतिक स्तर प्रत्येक क्षेत्रमें गिरता चला जा रहा है !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक स्थलपर ऐसी कथा आती है कि भगवान् श्रीकृष्णसे युधिष्ठिरने पूछा—'भगवन् ! आपका ध्यान तो सब दूसरे लोग किया करते हैं; आप फिर किसका ध्यान किया करते हैं ? अर्थात् आपको ऐसा ध्यान करनेकी आवश्यकता ही नहीं होनी चाहिये ।'

उत्तर मिला—'भीष्मपितामह-सरीखे जो भक्तजन दिन-रात मेरा ध्यान करते हैं, मैं उनका ध्यान किया करता हूँ ।'

यह जवाब सुनकर युधिष्ठिर अवाक् रह गये ।

लेकिन कहनेवालेने एक ऐसा मार्केका उत्तर दिया था, जो भक्त और भगवान्के सम्बन्धको शाश्वत बनाये रखनेकी गारंटी है । पर इस तथ्यको भी आज कौन माननेके लिये तैयार है ?

कहनेका तात्पर्य यह कि हमारा युवकसमाज आज अपने बौद्धिक विकासमें रूस, चीन और अन्य ऐसे देशोंकी विचारधाराको अधिक अपनाने लगा है । यही कारण है कि उसे अपनेपनसे दुराव होता जा रहा है और धर्मग्रन्थोंमें लिखी बातोंपर श्रद्धा हट रही है । उनकी ऐसी सुप्त हो रही श्रद्धाको जगानेके लिये मैं आज यहाँ केवल एक जीता-जागता उदाहरण देना चाहता हूँ । हो सकता है, इसे पढ़कर किसी पाठकमें श्रद्धाकी भावना दृढ़ हो पाये ।

मेरी माँ बचपनसे ही भक्तिपरायणा हैं । विवाहके बाद भी वे पूजा-पाठ, गीता-रामायण इत्यादि भक्ति-मार्गकी पुस्तकें काफी पढ़ती रहती हैं । भजन, सत्सङ्ग, कथावार्तामें ही उनका अधिकतर समय बीतता है । भगवान्का नाम उनकी जिह्वापर मैंने प्रायः सुना है । एक घटना उन्होंने मुझे सुनायी थी । वही आपको सुनानेकी है ।

दूसरे महायुद्धमें वे अमृतसरसे अकेली ही जैसलमेर जा रही थीं । उन दिनों गाड़ी हैदराबादसे होकर जाया करती थी । वहाँ गाड़ी बदलनी पड़ती थी । गाड़ी वहाँ रातके बारह बजेके करीब पहुँची । उसी गाड़ीके कई एक डिब्बोंमें इटली और जर्मनीके कैदी भी भरे पड़े थे । अतः जिस डिब्बेमें वह बैठी थीं, वहाँ स्त्रीपुरुष गाय-भैंसोंकी तरह ठूँसे हुए थे । उस डिब्बेमेंसे बाहर निकलनेको एक स्त्रीके लिये बड़ी कठिनाई हो रही थी; कारण यह कि उस छोटेसे डिब्बेमें अन्य सवारियाँ बाहरसे खिड़कियोंद्वारा अंदर सामान फेंक रही थीं और कूद-कूदकर अंदर चढ़ रही थीं । उन्हें बाहर निकलनेको कोई रास्ता ही नहीं दे रहा था । जो उतर रहा था, किसी खिड़कीसे छलाँग लगाकर ही उतरता और जो चढ़ता वह भी ऐसा ही कर रहा था ।

इसी बीच गाड़ीके आगे चलनेका समय निकट आ गया । एक सीटी हो गयी—दूसरी भी, और माँ अंदर ही रहती नजर आ रही थी । माँने बताया कि तब उसने भगवान्को पुकारना शुरू कर दिया कि 'मैं कैसे उतरूँगी और कैसे दूसरी गाड़ी पकड़ पाऊँगी ।' तभी उनके डिब्बेके सामने छः फुट लंबा गोरा चिट्टा एक आदमी आकर खड़ा हो गया । सफेद वस्त्रधारी ! और जोरसे उसने पुकारा—'माई ! पकड़ाओ मुझे अपना बिस्तर ! आओ तुम्हें नीचे उतार दूँ !!'

माँने उसे अपना बिस्तर पकड़ा दिया । एक हाथमें उस लंबे-तगड़े आदमीने बिस्तर पकड़ा और दूसरे हाथमें माँको खिड़कीसे पकड़कर तुरंत बाहर प्लेटफार्मपर खड़ा कर दिया ।

और तब वह बोला—'अपना यह बिस्तर सँभाल लेना !'

माँ कहती है कि अभी वह उसका धन्यवाद भी नहीं कर पायी थी कि वह आदमी एकदम लोप हो गया । माँने उसे वहाँ काफी ढूँढ़नेकी कोशिश की, पर वह फिर दूसरी बार नजर ही नहीं आया ।

मैंने माँसे पूछ ही लिया था—'तो, माँ ! वह कौन था ?'

माँने द्रवित होकर कहा—'वह मेरे राम थे, बेटा ! और कौन इतना लंबा-ऊँचा हो सकता है ?'

यह बिल्कुल सच्ची बात है, जो मैंने पाठकोंको सुनायी है । अब वे स्वयं सोचें कि वह सचमुच 'राम' थे या नहीं ! माँका पक्का विश्वास है कि उसने जीवनभरमें इतना लंबा-ऊँचा आभावान् पुरुष पहले कभी देखा ही नहीं था ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'कल्याण'के बारहवें अङ्क, उपासनाङ्क तथा पुस्तकोंकी छपाईमें अवाञ्छनीय देर

पाठकोंकी सेवामें ठीक समयपर साहित्य न भेजे जा सकनेकी विवशताके लिये क्षमा-प्रार्थना !

'कल्याण'का यह बारहवाँ अङ्क बहुत विलम्बसे पाठकोंकी सेवामें पहुँच रहा है। इसी प्रकार 'कल्याण'के आगामी विशेषाङ्क 'उपासना-अङ्क'के प्रकाशनमें भी अवाञ्छनीय विलम्बकी सम्भावना है। इसका कारण है गीताप्रेसके कर्मचारियोंका बिना ही सूचना दिये गत ४ दिसम्बरको अचानक काम करनेसे इन्कार करना। वे प्रेसमें आये और बैठ गये। कामके हाथ नहीं लगाया। उनका ऐसा करना अवश्य ही अवैधानिक था, पर सोचा गया कि वे समझ जायँगे, प्रेसका कार्य उनका अपना ही कार्य है, समझकर काम करने लगेंगे। समझानेकी चेष्टा भी की गयी, पर वे नहीं माने। लगातार चौदह दिनोंतक प्रतीक्षा की गयी। वे प्रेसमें आते, बैठे रहते और चले जाते। आखिर कुछ और उत्पातकी आशंका हुई, तब प्रेसके संचालकोंको गत १८ तारीखसे तालाबंदी करना पड़ा। इस बीचमें भी प्रयास चालू रहा। अब किसी तरह प्रेस खुला है। आगे कैसे क्या होगा, भगवान् जानते हैं। हम चाहते हैं, प्रेम केवल बना ही न रहे, उत्तरोत्तर बढ़ता रहे और कर्मचारीगण सद्भावना-के साथ शान्तिपूर्वक इसे अपना काम समझकर पूरी शक्तिसे काम करते रहें। पिछले बहुत समयसे आजकल देशमें प्रायः सर्वत्र फैले हुए अविवेकजनित 'काम कम करने या न करनेके' रोगका शिकार हमारे ये गीताप्रेसके अधिकांश भले कर्मचारीगण भी हो गये। इससे प्रेसकी तो हानि हुई ही, इनकी भी आर्थिक हानि बहुत हुई। पर कुछ ऐसा कुप्रभाव रहा कि बात समझमें आयी ही नहीं। विधिका विधान है। अब यदि काम चालू रहा और यदि पूरा काम हुआ तो विशेषाङ्क 'उपासनाङ्क' प्रकाशित हो सकेगा, सो भी फरवरीके तीसरे सप्ताहतक; क्योंकि अभी लेखोंकी छपाईका आधेसे अधिक और चित्रोंकी छपाईका सारा काम बाकी है। काम पूर्णरूपसे न हुआ तो और भी देर हो सकती है। हम अपनी इस विवशताके लिये 'कल्याण'के प्रेमी ग्राहकोंसे करबद्ध क्षमा-प्रार्थना करते हैं। हमें स्वयं बड़ा खेद है कि 'कल्याण'का १२ वाँ अङ्क बहुत देरसे जा रहा है और विशेषाङ्कके प्रकाशनमें बहुत देर होनेकी सम्भावना है। भगवान्से प्रार्थना है कि वे प्रेसके सभी कार्यकर्ताओंको सद्बुद्धि प्रदान करें, जिससे हम सभी प्रेसके कार्यको भगवान्का कार्य समझ-कर परस्पर सद्भावना, प्रेम तथा सौहार्द रखते हुए पूरे तन-मनसे उत्साहपूर्वक करें। होगा तो वही, जो भगवान्के मङ्गलविधानके अनुसार होना है। अपनी समझसे कहीं भी राग-द्वेष न रखकर, सबका हित चाहते हुए, सद्भावनाके साथ निर्दोष प्रयत्न करते रहना चाहिये। फल अपने हाथमें नहीं है—**'मा फलेषु कदाचन'**।

पुस्तकोंकी भी काफी माँगें आयी पड़ी हैं, इसी कारण समयपर पुस्तकें भी नहीं भेजी जा सकीं। पुस्तकोंकी छपाईका काम भी बंद रहा। क्या किया जाय।

गीताप्रेसके प्रेमी, हिताकाङ्क्षी और कल्याण-प्रेमी समस्त पाठक-पाठिकाओंसे हम पुनः क्षमा चाहते हैं। भगवान् सबका कल्याण करें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीहरिः

कल्याण

[भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और सदाचार-सम्बन्धी सचित्र मासिकपत्र]

वर्ष ४१

[साधारण अङ्क संख्या २ से १२ तकको विषय-सूची; विशेषाङ्कको विषय-सूची उसीके आरम्भमें देखनी चाहिये; वह इसमें सम्मिलित नहीं है।]

सं० २०२३-२०२४

सन् १९६७ ई०

की

निबन्ध, कविता

तथा

चित्र-सूची

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार] ❊ [प्रकाशक—मोतीलाल जालान

कल्याण-कार्यालय, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

वार्षिक मूल्य रु० ८.५० (आठ रुपये पचास पैसे) विदेशोंके लिये रु० १५.६० [१५ शिलिंग]

प्रतिसंख्या .५० पैसे (पचास पैसे) विदेशमें .८० (अस्सी पैसे) [१० पेंस]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निबन्ध-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
१–अखण्ड आनन्दकी उपलब्धि (डा० श्रीनरेन्द्र-कुमारजी सेठी, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, संचालक—भारतकेन्द्र, न्यूयार्क,) …	१०५४
२–अधिकाधिक चमको ! टूटो नहीं (श्रीबालकृष्णजी बलदुवा बी० ए०, एल्-एल्० बी०) …	१३७९
३–अध्यात्म-गुरु (श्रीस्वामीजी श्रीकृष्णानन्दजी महाराज; अनुवादक—श्री ति० न० आत्रेय)	९१७
४–अध्यात्म-हलके बैल—विवेक-वैराग्य (श्रीहरिकिशनदासजी अग्रवाल) …	८२१
५–अनारम्भ (श्रीपरमेश्वरीशरणजी वर्मा) …	७७५
६–अनूठा बदला (प्रो० श्रीशिवानन्दजी) …	१३२९
७–अपनी ही लगायी आग (डॉ० श्रीशिवदत्तजी शर्मा, 'शिव') … …	१२७०
८–अशान्ति और हिंसात्मक प्रवृत्तियोंका उत्तरदायित्व प्रशासन-नीतिपर (श्रीइन्द्र-लालजी शास्त्री, जैन) … …	७५०
९–आचार्यके उपदेश (परमपूज्यपाद श्रीमज्ज-गद्गुरु शंकराचार्य अनन्तश्रीविभूषित श्रीस्वामी श्रीनिरञ्जनदेवतीर्थजी महाराजके महत्त्वपूर्ण सदुपदेश; प्रेषक—भक्त श्रीराम-शरणदासजी) … …	१२७९
१०–आत्मनिवेदन (श्रीश्रीमाताजी, श्रीअरविन्दा-श्रम पाण्डिचेरी) … …	८४५
११–आत्मविश्लेषण और बुद्धियोग (डॉ० श्री-मुन्शीरामजी शर्मा, 'सोम') …	८७९
१२–उपनिषद् और वैदिक यज्ञ (श्रीवसन्तकुमार चट्टोपाध्याय) … …	९०१
१३–उपासना-अङ्ककी विषय-सूची …	१०२१
१४–एक जटिल समस्या—द्रुतगतिसे बढ़ती जनसंख्या (श्रोत्रिय पं० श्रीओमदत्तजी शर्मा गौड़ 'विकल') … …	१२४७
१५–एक परोपकारिणी मछली (श्रीताराचन्दजी पाण्डया) … …	१२६७
१६–एक महात्माका प्रसाद (संकलयिता—श्री'माधव') …	८३५, ९००, ११५५, १३४३
१७–एक संतका उपदेशामृत (प्रेषक—श्री'माधव')	१०९१
१८–औषध, इन्जेक्शन और स्वास्थ्य (डॉ० श्रीरविकिशोरजी नशीने) …	११४०
१९–कर्म करो, कर्म करो (श्रीसुरेशचन्द्रजी वेदालंकार, एम्० ए०, एल्० टी०) …	९२८
२०–कलियुगकी वृद्धि चरम सीमापर (पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा) …	११११
२१–कल्याण ('शिव') … ७०६, ७७०, ८३४, ८९८, ९६२, १०२६, १०९०, ११५४, १२१८, १२७८,	१३४२
२२–'कल्याण' के बारहवें अङ्क, उपासनाङ्क तथा पुस्तकोंकी छपाईमें अवाञ्छनीय देर … …	१४०४
२३–कामके पत्र … ७४२, ८०८, ८८८, ९५२, १००५,	१०७१
२४–कामचोरी देशके लिये विनाशकारी है (श्रीशरदजी द्विवेदी) …	१३११
२५–कामनाशून्य होनेपर ही सुख-प्राप्ति सम्भव है (श्रीगोवर्धननाथजी कक्कड़) … …	१२९२
२६–किनारेपर (श्रीबालकृष्णजी बलदुवा, बी० ए०, एल्-एल्० बी०) … …	११७५
२७–(श्री) कृष्ण-जन्माष्टमी-महोत्सव (श्रीराम-चन्द्रकृष्ण प्रभु) … …	११२४
२८–केवल भक्तिका पन्थ ही सीधा (पं० श्रीसूरज-चन्दजी सत्यप्रेमी (डाँगीजी) …	१२४१
२९–क्या हम सचमुच जी रहे हैं ! (श्री बी० एल्० 'अरविन्द', एम्० ए०) …	१२०९
३०–'क्लैब्यं मा स्म गमः' (डॉ० गणेश खरे एम्० ए०, एल्-एल्० बी०, पी-एच्० डी०) …	१०५७
३१–गीताकी साहित्य-सुषमा (स्व० डा० श्रीक्षेत्र-लाल साहा, एम्० ए०, डी० लिट्०) …	९६७
३२–गीताके सर्वाङ्गीण प्रचारकी आवश्यकता (श्रीओंकारमलजी सराफ) …	१३८२
३३–(श्री) गोपाङ्गनाओंका विशुद्ध प्रेम	

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(श्रीरामचरणजी हयारण 'मित्र', साहित्य-शिरोमणि) १०७५
३४–गोरक्षा-आन्दोलन (हनुमानप्रसाद पोद्दार) १०१०
३५–गोरक्षा क्यों और कैसे करें? (स्वामीजी श्रीकेशवपुरीजी वेदान्ताचार्य) ... ११९७
३६–गोरक्षार्थ बाबा भोलेनाथका शरीर-त्याग (श्रीओमप्रकाशजी गोयल) ... ८९१
३७–गोरक्षा-सत्याग्रह एक बार स्थगित (हनुमानप्रसाद पोद्दार) ११४६
३८–गोवध-निरोध (आचार्य श्रीविनोबा भावे) ११९२
३९–गोवधपर केवल केन्द्रीय शासन ही प्रतिबन्ध लगा सकता है (श्रीमती उर्मिला जोशी)... ८००
४०–गोसंवर्धनके क्षेत्रमें गोशालाओंका योग (श्रीराधाकृष्णजी बजाज) १२६४
४१–गोस्वामी तुलसीदासजीका सांस्कृतिक व्यक्तित्व (डॉ० श्रीरघुराजशरणजी शर्मा, एम्० ए०, पी-एच्० डी०) ७९४
४२–गोहत्या-निरोध (हनुमानप्रसाद पोद्दार)... ८१३
४३–गोहत्यापर प्रतिबन्ध क्यों? (श्रीओंकारनाथजी बजाज) ... ७५६
४४–गोहत्या-बंदीका प्रयत्न चालू है (हनुमानप्रसाद पोद्दार) ७५३
४५–गौ और गोपालके भक्त श्रीपाहुजा (श्रीराधेश्यामजी बंका) ८२२
४६–चंडौतकी महासती (श्रीबलरामजी शास्त्री, आचार्य, एम्० ए०, साहित्यरत्न) ... ९८९
४७–चिन्ता दूर करनेका नया तरीका (डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, विद्याभूषण, दर्शनकेशरी) ... १२६०
४८–छोटे लोगोंके बड़े कारनामे (श्रीदुर्गाशंकरजी त्रिवेदी) ११८०
४९–जड निष्क्रियता और सच्चा समर्पण (श्रीश्रीमाताजी, श्रीअरविन्दाश्रम, पांडिचेरी) ... १०९२
५०–जनतन्त्रकी रक्षा कैसे हो?... ... १०११
५१–जनतन्त्र या असुरतन्त्र (हनुमानप्रसाद पोद्दार) ८१८
५२–जब भगवान् श्रीकृष्ण शान्तिदूत बने (पं० श्रीबलरामजी शास्त्री, आचार्य, एम्० ए०, साहित्यरत्न) ... १२३५
५३–जीवनमें स्वरोदयकी महत्ता (श्रीगुरुरामप्यारेजी अग्निहोत्री) ८५५
५४–जीवन-स्तर-उन्नयन—एक दृष्टिकोण (श्रीइन्दुभूषणजी पाण्डेय, एम्० ए०) ... १३७१
५५–जीव-निरूपण (शुभचिन्तक) ... १२८९
५६–जीवात्माका स्वरूप (श्रीयुगलसिंहजी, एम्० ए०, बार-एट्-ला, विद्यावारिधि) ... १२३१
५७–जीवेम शरदः शतम् (श्रीसुरेशचन्द्रजी वेदालंकार, एम्० ए०, एल्० टी०) ... १३०१
५८–(श्री) जुगलकिशोरजी बिड़लाका परम निर्वाण (हनुमानप्रसाद पोद्दार) ... ११४८
५९–ज्ञानदान (श्रीश्रीरामजी शर्मा 'राम') ... ७९१
६०–दक्षिण भारतकी तीर्थयात्रा (सेठ श्रीगोविन्ददासजी, श्रीमती रत्नकुमारी देवी, श्रीगोविन्दप्रसादजी श्रीवास्तव)... ७४५, ८०३, ८५७, ९३२, ९९८, १०६२, ११३५, ११७६, १२५१, १३१३, १३६५
६१–दिल्ली तिहाड़ जेलमें गोरक्षाके सत्याग्रही साधुओंपर अमानुषिक प्रहार (हनुमानप्रसाद पोद्दार) ११४७
६२–द्विभुज श्रीकृष्ण (पं० श्रीवासुदेवकृष्णजी चतुर्वेदी, एम्० ए०, साहित्यरत्न) ... १३५४
६३–देवी द्रौपदीका चीर-दान और उनकी चीर-रक्षा (श्रीउपेन्द्रनाथजी मिश्र 'मञ्जुल' काव्यतीर्थ, हि० सा० भूषण) ... १२४४
६४–देशमें आसुरी सम्पदाका विस्तार और हमारा कर्तव्य ११९६
६५–दैवीकरण (श्रीराजेन्द्रप्रसादजी जैन) ... १३७५
६६–धर्म और राष्ट्र (श्रीराजेन्द्रप्रसादजी जैन) १२०४
६७–धर्म और विश्व-शान्ति (श्रीबिरधीलालजी सेठी) १०६९
६८–धर्मके प्रति ये भ्रान्त धारणाएँ (श्रीनारायणदासजी 'वीर') ११२७
६९–धर्म-निरपेक्षता—एक पुनर्विचार (श्रीकृष्णकुमारजी त्रिवेदी, एम्० एस्-सी०, धर्मरत्न, साहित्यरत्न) १२४५
७०–धर्म-निरपेक्ष राज्य एवं धार्मिक शिक्षा (श्रीरामनारायणजी परमार, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०, साहित्यरत्न) ... ९२३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

७१–न कर्म लिप्यते नरे (श्रीसुरेशचन्द्रजी वेदालंकार, एम्० ए०, एल्० टी०) ··· १३५९
७२–नये खाद्य, नये व्यवसाय (श्रीमण्डन मिश्र) १३२८
७३–नामस्मरणसे मोक्ष-प्राप्ति (श्रीबैजनाथजी कपूर) ··· ··· ··· १३६२
७४–निराकारका ध्यान करनेवाले साधकोंके लिये कुछ उपयोगी युक्तियाँ (ब्रह्मलीन श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके एक पुराने पत्रका अंश) ··· ··· १२८५
७५–पढ़ो, समझो और करो ··· ७६५, ८२६, ८९३, ९५५, १०१३, १०८३, ११४९, १२१२, १२७३, १३३७, १३९५
७६–परम उपास्य—श्रीकृष्ण (श्रीरसिकविहारीजी) १३८०
७७–परम पुरुषार्थका साधन (प० पू० आत्मनिष्ठ श्रीरंगनाथजी महाराज परभणीकर) ··· १०९८
७८–परमात्मापर एक सरल दृष्टिकोण (अज्ञात) ··· ७७१
७९–परिवार-नियोजनपर एक आध्यात्मिक दृष्टिकोण (डा० श्रीके० सी० मिश्रा) ··· १३८९
८०–पवित्र अन्तःकरण ही सर्वश्रेष्ठ तीर्थ है (श्रीगोवर्धननाथजी कक्कड़) ··· १०८१
८१–पाश्चात्त्य वैज्ञानिकोंकी चमत्कारिक नयी खोजें (डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, विद्याभूषण, दर्शनकेसरी) १३०३
८२–पुरुषार्थ (अनन्तश्रीस्वामीजी श्रीअखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज) ··· १०३२
८३–पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण (डॉ० श्रीहजारीप्रसादजी माहेश्वरी) ··· ··· ९४३
८४–प्राचीन भारतकी लोकतान्त्रिक व्यवस्था (श्रीगोवर्धनलालजी पुरोहित, एम्० ए०) १०७२
८५–प्राचीन भारतमें गौका महत्त्व और पालन (श्रीसुरेशचन्द्रजी वेदालंकार, एम्० ए०, एल्० टी०) ··· ··· ७९६
८६–प्रेम और मोह (श्रीहरिकिशनदासजी अग्रवाल) ··· ··· १३८८
८७–प्रेमावतार श्रीचैतन्य महाप्रभु (प्रो० श्रीजगन्नाथप्रसादजी मिश्र) ··· ··· ११४३
८८–बिहारका भयानक अकाल ··· १०२०
८९–ब्रह्मलीन पूज्यपाद अनन्तश्रीविभूषित श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके अनुपम अमृतोपदेश (संकलनकर्ता और प्रेषक—श्रीशालिगरामजी) ··· ··· ८९९
९०–ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामीजी श्रीचिदानन्दजी सरस्वती ··· ··· १०५५
९१–भक्त-गाथा (प्रे०—श्रीवल्लभदासजी बिन्नानी, 'व्रजेश', साहित्यरत्न, साहित्यालंकार) ··· १३११
९२–भक्तोंकी महिमा (परम श्रद्धेय ब्र० श्रीजयदयालजी गोयन्दकाकी बहुत पुरानी उक्ति) ··· १२२६
९३–भगवन्नाम-जप (व्यवस्थापक, नाम-जप-विभाग, गीताप्रेस, गोरखपुर) ··· १२७२, १३३२
९४–(श्री) भगवन्नाम-जपके लिये विनीत प्रार्थना (चिम्मनलाल गोस्वामी) ··· १३३५
९५–भगवान्‌की सच्ची पूजा (पं० श्रीजयकान्तजी झा) ९४८
९६–भगवान् कैसे भोजन कराते हैं ? (श्रीनिरञ्जनदासजी 'धीर') ··· ··· ९५०
९७–भगवान् श्रीकृष्णका स्मरण (श्रीशिवनाथजी दुबे) ··· ··· १२१३
९८–भगवान् श्रीकृष्णकी आविर्भाव-तिथि (श्रीहरिनाथ पाठक चौधुरी) ··· ११८९
९९–भगवान् श्रीरामका घोष (पं० श्रीरामचन्द्रजी शर्मा एम्० ए०, साहित्यरत्न) ··· ७७२
१००–भविष्यके विषयमें संकल्प भावी जन्मका कारण होता है (ब्रह्मलीन श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके उद्गार; संग्रहकर्ता और प्रेषक—श्रीशालिगरामजी) ··· ९६३
१०१–भागवत-कार्य करनेकी प्रेरणा (श्रीमाँ, श्रीअरविन्द-आश्रम, पाण्डिचेरी) ··· १३४५
१०२–भारतीय संस्कृतिका एक आवश्यक अङ्ग—गोरक्षा (श्रीअगरचन्दजी नाहटा) ··· १०५९
१०३–भारतीय संस्कृतिकी ये विशेषताएँ अपने चरित्रमें उत्पन्न कीजिये (डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०) ··· ७८१
१०४–भारतीय सभ्यताकी सनातन वाणी (प्रा० श्रीजगन्नाथप्रसादजी मिश्र) ··· ९२०
१०५–मनन-माला (ब्र० श्रीमगनलाल हरिभाई व्यास) ··· ९६४, १०२९, ११०८, ११६२
१०६–मनुष्यकी कामनाएँ (पं० श्रीदेवदत्तजी मिश्र, काव्य-व्याकरण-सांख्य-स्मृतितीर्थ) ··· ७७८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१०७–मनुष्यकी विनाशकी ओर प्रगति और उससे बचनेके उपाय (हनुमानप्रसाद पोद्दार) ··· ११८३
१०८–मनुष्योंसे तो वे पशु-पक्षी ही अच्छे ! (डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, दर्शनकेसरी, विद्याभूषण) ९७६
१०९–मन्मना भव (आचार्य श्रीरामप्रतापजी शास्त्री) १२२८
११०–महर्षि कृष्णद्वैपायन (श्रीनीरजाकान्त चौधरी देवशर्मा) ··· ··· ११०३
१११–महर्षि कृष्णद्वैपायन क्या ब्रह्मसूत्र-कर्ता बादरायण हैं ? (श्रीनीरजाकान्त चौधरी देवशर्मा) ··· १०३६
११२–मानव-कर्तव्य (श्रीअगरचन्दजी नाहटा) ··· ९९६
११३–मानसिक स्वास्थ्य (डा० श्रीकन्हैयालालजी सहल, अध्यक्ष हिंदी-संस्कृत-विभाग, बी० आई०, टी० एस्०, पिलानी) ··· ११७२
११४–मृत्युकी चाल (श्रीहरिकृष्णदासजी गुप्त 'हरि') ··· ··· १३२७
११५–मृत्युसे अमरत्वकी ओर (प्राध्यापक श्रीदिनकर राव साध, एम्० ए०) ··· १२०७
११६–यदि भगवान्की उपासनासे वास्तविक लाभ प्राप्त करना चाहते हो तो अण्डे, मांस, मछली, शराब आदि तामसी वस्तुओंसे बचो (गोलोकवासी पूज्यपाद परमहंस श्रीस्वामी श्रीनारायणदासजी महाराजके महत्त्वपूर्ण सदुपदेश; प्रेषक—भक्त श्रीरामशरणदासजी) ··· १३५०
११७–योगी और योग (पं० श्रीकमलापतिजी मिश्र) ११६०
११८–रस (प्रेम)-साधनकी विलक्षणता (गीता-भवनमें हनुमानप्रसाद पोद्दारके एक प्रवचनके आधारपर) ··· ··· १०४५
११९–राम—एक मनोवैज्ञानिक अध्ययन (प्रो० श्रीलल्लनजी पाण्डेय, एम्० ए०, बी० एल्०) ··· ··· ९३९
१२०–(श्री) रामकी मानसी पूजा (श्रीरामलालजी) ७२५
१२१–(श्री) रामकी विशिष्टता (आचार्य श्रीयमुनावल्लभजी गोस्वामी) ··· १२४३
१२२–(श्री) रामके आदर्श उपदेश और चरित्र (श्रीवल्लभदासजी बिन्नानी 'व्रजेश' साहित्यरत्न, साहित्यालंकार) ··· ··· ७३७
१२३–रामचरितमानसमें वर्णित शिव (श्री बा० विष्णुदयालजी, मारीशस) ··· ··· ८७५
१२४–रामचरितमानसमें विद्यार्थी-धर्म (श्रीराजेन्द्र-प्रसादजी वर्मा, एम्० ए०) ··· १११४
१२५–(श्री) रामचरितमानसमें नैतिकता (श्रीराजेन्द्रप्रसादजी वर्मा, एम्० ए०) ··· १३५७
१२६–रामायणपर नया दृष्टिकोण (व्योहार श्रीराजेन्द्रसिंहजी) ··· ··· १३०६
१२७–(श्री) रामोपासना-योग ··· ७१५
१२८–राष्ट्रीयताका आधार देश है (श्रीश्रीअरविन्दके विचार, संकलन-कर्ता तथा प्रेषक—श्रीचन्द्रदीपजी त्रिपाठी, अरविन्दाश्रम, पांडिचेरी) ··· ··· १३२५
१२९–लीला-पुरुषोत्तमका प्राकट्य (गीतावाटिका, गोरखपुरमें श्रीकृष्ण-जन्माष्टमीके महोत्सवपर पठित) ··· ··· ११८७
१३०–लोग अच्छाईकी तरफ भी बढ़ रहे हैं (डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, विद्याभूषण, दर्शनकेसरी) ··· ११६७
१३१–वर्णाश्रमधर्मका उल्लंघनकर तथा शास्त्रीय आचरणोंको त्यागकर मौखिक ब्रह्मज्ञानी बन बैठना अधःपतनका हेतु है (परम पूज्यपाद श्रीमज्जगद्गुरु शंकराचार्य गोवर्धनपीठाधीश्वर अनन्तश्रीविभूषित श्रीस्वामी श्रीनिरञ्जनदेव-तीर्थजी महाराज; प्रेषक—भक्त श्रीरामशरणदासजी)१२१९
१३२–वह कौन था ? (श्रीदुर्गाशंकरजी व्यास) ··· १४०२
१३३–विचारक बननेका मूल मन्त्र क्या, क्यों और कैसे ? (श्रीअगरचन्दजी नाहटा) ··· ११३३
१३४–विदुषी बहू (चतुर्वेदी श्रीमदनमोहनजी 'मिश्र') ··· ··· १२०१
१३५–विलक्षण भाव-जगत् (हनुमानप्रसाद पोद्दारके एक प्रवचनके आधारपर) ··· ··· ८६८
१३६–वैराग्य, सत्सङ्ग और भगवत्प्राप्ति (आचार्य श्रीरामप्रतापजी शास्त्री) ··· ··· ९८६
१३७–व्यापार, व्यापारी और अर्थनीति (हनुमान-प्रसाद पोद्दारका एक भाषण) ··· १३८४
१३८–व्रज-जनताकी पुकार ! (मन्त्री, पशुरक्षिणी-सभा, आगरा) ··· ··· ८११
१३९–शासन, शिक्षा और सदाचार (पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा) ··· ··· १२६२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१४०–शुक्ल-संन्यासी (श्रीचारुचन्द्र चट्टोपाध्याय) ९०८
१४१–श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यौ (श्रद्धेय आचार्य अनन्तश्री अनिरुद्धाचार्यजी महाराज) ··· ७११
१४२–संकल्पका सुन्दरतम स्वरूप (पं० श्रीसत्यपालजी शर्मा वेदशिरोमणि, एम्० ए०) ८६४
१४३–संतों-महापुरुषोंकी महिमा (ब्रह्मलीन पूज्यपाद अनन्त श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके वचनामृत; संकलनकर्ता-प्रेषक—श्रीशालिगरामजी) ८३७, १०२७, ११५७
१४४–सदाचारका स्वरूप—वैज्ञानिक विवेचन (श्रीहरिहरदयालजी गुप्त एडवोकेट—भूतपूर्व अध्यक्ष दर्शनविभाग, बरेली कालेज) ··· ८८३
१४५–समाजका प्रबन्धकर्ता कौन हो ? (श्रीसीताशरणजी बी० एस्-सी०) ··· ७३९
१४६–सम्पूर्ण गोवध-बंदी क्यों ? (श्रीराधाकृष्णजी बजाज) ··· ··· ७५४
१४७–सरकार सबसे बड़ा कसाई बनने जा रही है (श्रीसुरेशचन्द्रजी जैन) ··· ··· १२६८
१४८–सर्वदलीय गोरक्षा-महाभियान-समितिका चुनावसे सम्बन्ध नहीं ··· ··· ७६५
१४९–सहज सुखका मार्ग (प्रो० पं० श्रीलालजीरामजी शुक्ल, एम्० ए०) ··· ७८९
१५०–साधनाकी पगडंडी (ब्रह्मलीन स्वामी चिदानन्दजीका एक बहिनको लिखा पत्र; प्रेषक—वैद्य श्रीबदरुद्दीन, राणपुरी) ··· १२८६
१५१–साधनाका फल (श्रीरामपुनीतजी श्रीवास्तव, एम्० ए०) ··· ··· ८७४
१५२–सामयिक परिप्रेक्ष्यमें मन्त्र (श्रीगोविन्दजी शास्त्री, एम्० ए०, साहित्यरत्न) ··· १३११
१५३–सिर्फ तुझे लुआठी ही तो हाथ लगेगी ! (श्रीउपेन्द्रनाथजी मिश्र, 'मञ्जुल', काव्यतीर्थ, हिंदीसाहित्य-भूषण) ··· ११६६
१५४–स्वप्नकी परिणति (श्रीरामपुनीतजी श्रीवास्तव, एम्० ए०) ··· ··· १०७८
१५५–स्वरज्ञान और सामान्य जीवन (श्रीरविप्रकाशजी नाग, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०) ··· ··· ९४६
१५६–हम सुखी कैसे हों ? (श्रीरमानाथजी खैरा, एडवोकेट) ··· ··· १११९
१५७–हिंदू देवताओंमें विभिन्न रंगोंका छिपा हुआ गुप्त अभिप्राय (डा० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०) ··· ८४९
१५८–हिंदूधर्म उपयोगी जीवन-तत्त्वोंको महत्त्व देता है (डा० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०) ··· ७३३
१५९–हृदयका सौदा (श्रीहरिकृष्णदासजी गुप्त 'हरि') ··· ··· १३१२
१६०–होलाका-रहस्य (तत्त्वचिन्तक श्रीअनिरुद्धाचार्य अनन्तश्री स्वामीजी श्रीवेंकटाचार्यजी तर्कशिरोमणि) ··· ··· ८४०

पद्य-सूची

कविता

१–उच्च स्तरका जीवन ··· ··· १२५४
२–ऐसी रचना सुनाओ ··· ··· १२५१
३–कृतिकी सद्गति (डॉ० श्रीबलदेवप्रसादजी मिश्र) ··· ··· ८८२
४–कैसे यह पतन रुकेगा ? ··· ··· १३७४
५–खर-दूषणादिके वधसे प्रसन्न मुनियोंद्वारा श्रीरामका सत्कार ··· ··· १३४१
६–चारों भाइयोंका विवाह-संस्कार ··· १२७७
७–जन्मे, पले और बढ़े (श्रीबालकृष्णजी बलदुवा) ··· ··· ८३६
८–जय-शंकर-गौरी-गणपति ··· ··· १०२५
९–जीवनकी सफलता ··· ··· ११५६
१०–जीवन शान्ति-सुखका आगार बने ··· १२५०
११–पवित्र कर्तव्य और धर्म ··· ··· ८३२
१२–भक्तिकी महिमा ··· ··· ८९७
१३–भगवत्कृपापर दृढ़ विश्वास करो ··· १३२६
१४–भगवान्‌का स्वभाव ··· ··· ७७४
१५–भ्रातृत्वका अवतार (लाला श्रीजगदलपुरीजी) ८६७
१६–मनको लकवा मार गया ··· ··· १२३०
१७–महाभावरूपा श्रीराधा ··· ··· ९६१
१८–मीराँका प्रेम-नृत्य ··· ··· ७६१
१९–मोक्षदायिनी मृत्युका स्वागत और मृत्युके रूपमें भगवान्‌के दर्शन ··· ··· ११९५
२०–(श्री) राधा (साहित्याचार्य पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री 'राम') ··· १३१६
२१–शबरीका भगवद्धाम-प्रयाण ··· ··· १२१७
२२–शरभंगमुनिका ब्रह्मधाम-प्रयाण ··· ११५३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२३–शुभ भावना ७९०
२४–सर्वत्र सबमें भगवान् १०५६
२५–सुग्रीवकी विनयसे लक्ष्मणजीका क्रोध शान्त ... ८३३
२६–हे राम ! तुम्हारा ध्यान रहे (श्रीसूरजचन्दजी डाँगी 'सत्यप्रेमी') ... ७५२

संकलित पद्य

१–(श्री) कृष्ण-पदारविन्दमें मन लगानेकी महिमा (श्रीमद्भागवत ६ । १ । १९) ... १३५६
२–चेतावनी (भारतेन्दु हरिश्चन्द्र) ... ९०७
३–प्रभुका सर्वत्र दर्शन (संत मानपुरी महाराज) ९५१
४–प्रभु-पद-प्रीतिकी प्रेरणा (संत कबीरदासजी) १०१२
५–प्रीति किससे करनी चाहिये ? (संत कबीर) १०४१
६–भगवद्भक्तिरहित असत्का संग न करो ... १२४२
७–भजनके लिये प्रेरणा (संत कबीरदासजी) ... ९८५
८–मनको प्रबोध (संत कबीर) ... ७३२
९–मृद्-भक्षण-लीला (श्रीकृपारामकृत प्राचीन अप्रकाशित भाषा भागवतसे) ... १०८९
१०–मेरी निन्दासे किसीको संतोष होता हो तो वह खूब निन्दा करे १३३१
११–रसभरी राधिका (श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजी) १०८८
१२–राग-द्वेषसे हानि (श्रीमद्भगवद्गीता) ... ८२०
१३–(श्री) रामकी भक्तवत्सलता (श्रीरामचरितमानस) ७०५
१४–रामसे लगन कैसी हो ? (संत तुकारामजी) ... ९१३
१५–(श्री) राम-स्तवन [रामभुजङ्गप्रयात-स्तोत्र] (भगवान् आदिशंकराचार्य) ... ७०७
१६–व्रजवासकी विधि (संत श्रीव्यासदासजी) ... ११२९
१७–शीलकी महिमा १३६१
१८–सब रसोंका सार रस (श्रीहरिदासजी) ... १३७०

कहानी

१–अकुतोभय (श्री 'चक्र') ८६०
२–अर्थ (धन) का प्रयोजन (श्री 'चक्र') ... ९०९
३–कथा (श्री 'चक्र') ... १२३९
४–कहना, पर करना नहीं (आचार्य श्री डी० डी० उपमन्यु, वैद्य) १३७७
५–काम (ऐन्द्रिय-भोगों) का प्रयोजन (श्री 'चक्र') ९८१
६–कीर्तन (श्री 'चक्र') १३१७
७–जप (श्री 'चक्र') ११७३
८–जीवनका प्रयोजन (श्री 'चक्र') ... ७८५
९–धृति (श्री 'चक्र') १३६८
१०–पराजय [लघु कथा] (पं० श्रीविष्णुदत्तजी द्विवेदी) ८७८
११–पाठ (श्री 'चक्र') ७३०
१२–पूजा (श्री 'चक्र') ११३०
१३–प्रभु-विश्वास (श्रीरामरूपजी तिवारी, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०) ... ९१४
१४–प्रसाद-रहस्य (श्रीहरिकृष्णदासजी गुप्त 'हरि') १२५६
१५–बन्धक (श्रीकृष्णगोपालजी माथुर) ... १३२१
१६–भक्ति—पञ्चम पुरुषार्थ (श्री 'चक्र') ... १०४२
१७–सहेली (श्रीकृष्णगोपालजी माथुर) ... ९९२

बहुरंगे-चित्र

१–खर-दूषणके वधसे प्रसन्न ऋषियोंद्वारा श्रीरामका अभिनन्दन १३४१
२–गौरी-शंकर-गणपति १०२५
३–चारों भाइयोंका विवाह-संस्कार ... १२७७
४–भक्तिकी महिमा—भगवत्कृपा ... ८९७
५–मदरहित सुग्रीवका माला तोड़ना ... ८३३
६–महाभावरूपा श्रीराधा ९६१
७–मीराँका प्रेम-नृत्य ७६९
८–मैया ! मैं माटी नहिं खाई १०८९
९–(श्री) रामकी भक्तवत्सलता ... ७०५
१०–शबरीका भगवद्धाम-प्रयाण १२१७
११–शरभंग मुनिका दिव्यधाम-प्रयाण ... ११५३

रेखा-चित्र

१–गोपालका गोचारण ... १२ वें अङ्कका मुखपृष्ठ
२–गोप्रेमी गोपाल ... ७ वें अङ्कका मुखपृष्ठ
३–गोवत्स और गोपाल ... ९ वें अङ्कका मुखपृष्ठ
४–गौओंके बीचमें श्रीराधा-गोविन्द ... ५ वें अङ्कका मुखपृष्ठ
५–जटायुपर कृपा ... २ रे अङ्कका मुखपृष्ठ
६–(श्री) राधा-मुरलीधर ... ८ वें अङ्कका मुखपृष्ठ
७–लंका-गमनके समय हनुमान्‌को संदेश-दान ... १० वें अङ्कका मुखपृष्ठ
८–षड्वर्गात्मक श्रीराममन्त्र-यन्त्र ... ७१७
९–सूरदास और बालकृष्ण ... ४ थे अङ्कका मुखपृष्ठ
१०–हनुमान्‌की मुद्रिका-दान— ... ११ वें अङ्कका मुखपृष्ठ
११–हनुमान्‌जीकी श्रीसीताजीसे भेंट ... ६ ठें अङ्कका मुखपृष्ठ
१२–हरि-हर ... ३ रे अङ्कका मुखपृष्ठ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जनवरी सन् १९६८ का विशेषाङ्क

'उपासना-अङ्क'

'कल्याण'के आगामी विशेषाङ्क 'उपासना-अङ्क'में उपासनासम्बन्धी प्रायः सभी विषयों, विभिन्न उपासना-पद्धतियों तथा उपासनाके विविध उपयोगी अङ्गोंपर अनुभवी साधकों, विद्वान्, शास्त्रज्ञ एवं उपासना-तत्त्वके ज्ञाता, अधिकारी पुरुषोंकी लेखनीसे लिखे हुए महत्त्वपूर्ण लेखोंका अन्यतम संग्रह होगा। रंगीन, सादे तथा प्रसङ्गानुसार रेखाचित्र भी रहेंगे। वार्षिक मूल्य रु० ९.००, सजिल्दका रु० १०.५० मात्र। विशेष कारणोंसे अबकी बार अङ्कके जानेमें देर होगी, अतः कृपया धैर्य रक्खें।

'कल्याण'के पुराने प्राप्य विशेषाङ्क (डाकखर्च सबमें हमारा है)

१—मानवता-अङ्क

पृष्ठ-संख्या ७०४, मानवताकी प्रेरणा देनेवाले सुन्दर चित्र—बहुरंगे ३९, दुरंगा १, एकरंगे १०१ और रेखाचित्र ३९, मूल्य रु० ७.५० पैसे।

२—संक्षिप्त शिवपुराणाङ्क

प्रसिद्ध शिवपुराणका संक्षिप्त सार-रूप है। इसमें ७०४ पृष्ठोंकी ठोस पाठ्य-सामग्री है, बहुरंगे चित्र १७, दोरंगा १, सादा १२ तथा रेखाचित्र १३८, मूल्य रु० ७.५०।

३—संक्षिप्त ब्रह्मवैवर्त्तपुराणाङ्क

इसमें भगवान् श्रीकृष्णकी विविध दिव्य लीलाओंका बड़ा ही रोचक वर्णन है। पृष्ठ-संख्या ७०४, बहुरंगे चित्र १७, दोरंगा १, एकरंगे ६, रेखाचित्र १२०, मूल्य रु० ७.५०, सजिल्द रु० ८.७५।

४—धर्माङ्क

धर्म-सम्बन्धी विवेचनाओं, सुरुचिपूर्ण कथाओं, सरस सूक्तियों तथा रोचक निबन्धोंसे युक्त। पृष्ठ-संख्या ७००, बहुरंगे चित्र १४, दोरंगा १, सादे चित्र ४ तथा रेखाचित्र ८१, सजिल्द (कपड़ेकी जिल्द) मूल्य रु० ८.७५।

५—श्रीरामवचनामृताङ्क

मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रके विविध विषयोंपर कहे हुए आदर्श वचनोंका अभूतपूर्व संग्रह है। रामगीता भी है। पृष्ठ-संख्या ७०४, बहुरंगे चित्र ९, दोरंगा १, एकरंगा १, रेखाचित्र ६४, मूल्य रु० ८.५०, सजिल्द रु० १०.०० मात्र।

व्यवस्थापक—'कल्याण', पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साबुनमें चर्बी !

साबुन हरेक हिंदू अपने व्यवहारमें लाता है और मन्दिरोंतक पवित्र स्थानोंमें भी साबुन ...लायी जाती है। उन्हें क्या पता कि मन्दिरको साफ तथा शुद्ध करनेके बदले वे उसे अपवित्र ...रहे हैं। साबुनके बाबत यह बात इसीलिये लिखी जा रही है कि सरकारने साबुन (नहाने ...कपड़ा धोनेका) बनानेके लिये चर्बी (Tallow) काफी तादादमें आयात करके दी है, जिससे कि ...बुन बनानेके काममें जो तेलकी खपत होती थी उसका बचाव हो। तेलका बचाना तो ठीक है। ...सरकारके लिये यह सोचना भी अत्यावश्यक था कि इस तरहकी साबुनका प्रचार करनेमें ...धिकांश हिंदुओंकी धार्मिक भावनापर कितना भारी आघात पहुँचेगा। अब दो-चार स्थानोंको ...ड़कर प्रायः सभी जगह सभी साबुन चर्बीसे ही बनने लगी है। दुःख है कि जनताको इसकी ...नकारी भी नहीं करायी गयी। शायद किसी समाचारपत्र या सरकारी विज्ञप्तिमें कहीं छोटा-सा ...ट निकला होगा। पर हमारी समझसे अब भी ९९ प्रतिशत जनताको यह पता नहीं है कि हम ...शुद्ध साबुनका व्यवहार कर रहे हैं। कहाँ तक सत्य है यह तो सरकार ही बता सकेगी, पर ऐसा ... कहा जाता है कि जो चर्बी (Mutton Tallow) आयात की गयी है उसमें अधिकांश गायकी ...र्बी ही है। यदि कहीं यह बात सत्य है तब तो यह कहना पड़ेगा कि हमारी सरकार गोरक्षापर ...चार करके धार्मिक भावनाको मान देनेका मिथ्या ही आश्वासन दे रही है।

और भी एक भयानक बात यह सुननेको मिली है कि चर्बी साबुनके बड़े-बड़े कारखानोंके ...लावा छोटे-छोटे कारखानोंको भी दी गयी है। सम्भवतः उनमेंसे कई कारखानेवाले लोग चर्बीको ...ाबुन बनानेके काममें न लाकर ऊँचे भावोंमें बाजारमें बेच देते हैं और इस तरह बिकी हुई ...र्बी घी-बटरमें मिला दी जाती है। इसकी पूर्णतया सत्यता भी सरकार ही मालूम कर सकती है। ...पर यदि इस तरहकी मिलावट होनेकी जरा-सी भी सम्भावना हो तो सरकारको फौरन बड़े-से-बड़ा ...कदम उठाकर इसे रोकना चाहिये।

सरकारसे यह निवेदन है कि सरकारको कानूनसे यह नियम कर देना चाहिये कि साबुन बनानेवालेको हरेक साबुनकी टिकियापर तथा ऊपरके कागजपर बड़े अक्षरोंमें यह छाप लगानी जरूरी होगी कि 'यह साबुन चर्बीसे बनी है'।

सरकारकी ओरसे सदा कहा जाता है कि 'सरकारकी नीति हरेक नागरिककी धार्मिक भावनाकी रक्षा करना है।' यदि यह बात है तो फिर इस तरह जनताको अँधेरेमें रखकर जो धार्मिक भावनापर आघात किया जा रहा है, यह सर्वथा अनुचित है और इसे तुरंत बंद कर देना चाहिये। जिनको चर्बीसे बनी साबुन काममें लेनेपर आपत्ति है, वे क्यों जानकारीके अभावसे चर्बीकी साबुन काममें लें।

सरकारसे हमारा यह भी निवेदन है कि साबुनके कारखानेवालोंको कुछ प्रतिशत माल बिना चर्बीका बनानेकी आज्ञा देनी चाहिये या बाध्य करना चाहिये। चाहे उसकी कीमत चर्बीवाली साबुन...से अधिक हो, जिससे कि धार्मिक भावनाको मान्यता देनेवाले उस तरहकी साबुनका व्यवहार कर सकें।

साबुन बरतनेवालोंसे यह निवेदन है कि वे समझ-बूझकर ही साबुन बरतें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्मान्[illegible] ग्राहकों तथा पाठकोंसे प्रार्थना

१–इस अङ्कमें भगवत्कृपासे 'कल्याण'का ४१वाँ वर्ष पूरा हो गया है। अब अगला बयालीसवें प्रथम अङ्क 'उपासना-अङ्क' नामक विशेषाङ्क होगा। इसमें विविध प्रकारकी उपासनाओंके सम्बन्धमें पूर्ण विवेचन रहेगा, जो बड़े-बड़े विद्वानोंके साथ ही सर्वसाधारणके लिये भी बड़ा उपयोगी होगा। भक्ति, योग आदि सभी मार्गोंके एवं निर्गुण, सगुण, साकार तथा अन्य सभी सम्प्रदायोंके पुरु इससे लाभ उठा सकेंगे। लेखों तथा साधनाके वर्णनके साथ ही इसमें सुन्दर रंगीन तथा भी रहेंगे।

२–खर्च बहुत ज्यादा बढ़ा है, और भी बढ़नेकी सम्भावना है, तथापि मूल्य अभी ९.०० (नौ) रक्खा गया है। यह मूल्य एक 'विशेषाङ्क'के लिये भी पूरा नहीं है, पर यदि अनिवार्य बाधा नहीं तो ११ महीनेतक साधारण मासिक अङ्क भी दिये जायँगे। मनीआर्डर-फार्म भेजा जा चुका है। भेजते समय मनीआर्डर-कूपनमें अपना नाम, पूरा पता, ग्राम या मुहल्ला, डाकघर, जिला, प्रदेश साफ अक्षरोंमें लिखनेकी कृपा करें। ग्राहक-नम्बर अवश्य लिखें। नये ग्राहक हों तो 'नये लिखना कृपया न भूलें।

३–ग्राहक न रहना हो तो कृपया कार्ड लिख दें। रुपये भेजनेपर भी कदाचित् पहले द्वारा विशेषाङ्क पहुँच जाय तो वी० पी० लौटावें नहीं, नया ग्राहक कृपया बना दें। 'कल्याण' ग्राहक अधिक होंगे, उतना ही भगवद्भावोंका प्रचार अधिक होगा, जो विश्वकल्याणके लिये आवश्यक है। अतएव सभी कल्याणप्रेमियोंसे साग्रह निवेदन है कि वे इस बार विशेष चेष्टा 'कल्याण'के अधिक-से-अधिक नये ग्राहक बनाकर उनके रुपये मनीआर्डरद्वारा तुरंत भिजवानेकी कृपा

४–किसी अनिवार्य कारणवश 'कल्याण'का प्रकाशन बंद हो जाय तो केवल विशेषाङ्क या बादके जितने अङ्क पहुँच जायँ, उन्हींमें पूरे वर्षका मूल्य समाप्त हुआ समझ लें।

५–इस बार यह बारहवाँ अङ्क बहुत ही देरसे जा रहा है और 'उपासना-अङ्क' भी बहुत विल जायगा। विवशताके कारण ही ऐसा हुआ है। 'कल्याण'के प्रेमी-जन इसके लिये कृपया क्षमा करें।

गीताप्रेसकी आठ पुस्तकें पुनर्मुद्रित

मानस-पीयूष—सप्तम सोपान (उत्तरकाण्ड)—ले० अंजनीनन्दनशरणजी, चौथा संस्करण, पृष्ठ ७८४, मू० १

पातञ्जलयोगप्रदीप—ले०—ओमानन्दजी तीर्थ, पञ्चम संस्करण, २२×२९ आठपेजी, पृष्ठ ६५२, सचित्र मू० ५

छान्दोग्योपनिषद्—सानुवाद, शाङ्करभाष्यसहित, पञ्चम संस्करण, डिमाई आठपेजी, पृष्ठ ९६८, ९ चित्र ५

विष्णुपुराण—मूल श्लोक, हिंदी-अनुवादसहित, पृष्ठ ६२४, चित्र तिरंगे ८, षष्ठ संस्करण, मू० .... ५

उत्तराखण्डकी यात्रा—चौंतीस चित्रोंसहित, दूसरा संस्करण, पृष्ठ ३०८, ले०—सेठ गोविन्ददासजी आदि, मू० २

लघुसिद्धान्तकौमुदी—इस बार विभक्त्यर्थ-निरूपण और पद-साधुत्वलेखनप्रकार दो चीजें नयी हैं। मू० .... ०

प्राचीन भक्त—नवम संस्करण, चार बहुरंगे चित्र, १५ भक्तोंकी गाथाएँ, मू० .... ०

गणेशसहस्रनामस्तोत्रम्—तीसरा संस्करण, गणेशजीकी स्तुतिके लिये उपयोगी है, मू० ....

डाकखर्च सब पुस्तकोंका अलग

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

373
RmShar
13.3.93

Compiled
1999-2000

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri